प्रकाशक

डॉ० प्रभात मिश्र शास्त्री

प्रधानमंत्री : हिन्दी साहित्य सम्मेलन ० प्रयाग

१२, सम्मेलन मार्ग ० इलाहाबाद



प्रकाशन वर्ष : शक १९०७ : सन् १९८५ ई०

प्रथम संस्करण

मूल्य : ७५ रुपए



मुद्रक

सम्मेलन मुद्रणालय

प्रयाग

प्रकाशकीय

⊙

भारतीय वाङ्मय में पुराणों की व्यापकता एवं महत्ता असन्दिग्ध है और वे भारत की अतीतकालीन धर्म और संस्कृति के मूर्तिमान् गौरव के प्रतीक हैं। आज की बौद्धिकता भी पुराणों के प्रभाव और उनके महत्त्व को रंचमात्र भी कम नहीं कर पायी है। इस समय भी उनके प्रति वही श्रद्धा और सम्मान का भाव दृष्टिगोचर होता है, जैसा सुदूर अतीत में था। अपौरुषेय वेद में भी पुराणों की चर्चा है और उन्हें वेदों की ही भाँति नित्य और प्रमाणभूत बताया गया है। जैसे अध्वर्यु यज्ञ में कुछ पुराण-पाठ के लिए यह कह कर प्रेरणा देता है कि 'पुराण' वेद है। यह वही वेद है--'तानुपदिशति पुराणम्'। वेदः सोऽयमिति। किञ्चित् पुराणमाचक्षीत एवमेवाध्वर्युः सम्प्रेषितः...... (शतपथब्राह्मण १३।४।३।१३)। इसी प्रकार अथर्ववेद बृहदारण्यकोपनिषद् आदि वैदिक वाङ्मय में पुराणों के प्रति प्रकृष्ट श्रद्धा प्रकट की गयी है।

सन् १९४३ में सम्मेलन के उन्नायक राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन को यह ज्ञात हुआ कि अंग्रेजी, बंगला, आदि भाषाओं में प्रायः सभी पुराणों के अनुवाद उपलब्ध हैं, पर हिन्दी में नहीं हैं। इससे प्रेरित होकर उन्होंने विद्वानों से परामर्श करके सम्मेलन द्वारा पुराणों के हिन्दी अनुवाद योजना का प्रवर्तन किया जिससे कि हिन्दी भाषी पुराण के अध्येता भी उनके अध्ययन से लाभान्वित हो सकें। यह कार्य अत्यधिक श्रम, व्यय और समय साध्य था, फिर भी सम्मेलन ने पुराण प्रकाशन योजना के अन्तर्गत मत्स्य तथा वायुपुराणों के मात्र हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किये थे। अनेक कारणों से यह योजना भी कई वर्षों तक स्थगित रही। किन्तु सम्मेलन के लोकतंत्रीय स्वरूप के पुनः स्थापित होने के बाद मंत्रिमंडलीय प्रशासन ने इस महत्त्वपूर्ण पुराण प्रकाशनयोजना को गतिशील करने का संकल्प किया। परिणाम स्वरूप इस योजना को और भी सार्थक रूप देने की दृष्टि से संस्कृत के मूल

श्लोक, हिन्दी अनुवाद और पाठान्तरों के साथ पुराणों के प्रकाशन कार्य को पुनः गतिमान् बनाया। इस पद्धति से सन् १९७६ में 'ब्रह्मपुराण' प्रकाशित किया। सम्मेलन के इस पुराण को उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत भी किया गया। विद्वानों ने भी सम्मेलन की इस योजना के प्रति अपना सन्तोष व्यक्त किया। इसी क्रम में सन् १९८१ में ब्रह्मवैवर्तपुराण का पूर्वभाग, सन् १९८४ में उत्तर भाग का पूर्वार्ध तथा सन् १९८५ में उत्तरभाग का उत्तरार्ध प्रकाशित हुआ।

सम्मेलन ने इसी योजना के अन्तर्गत 'अग्निपुराण' का भी प्रकाशन दो भागों में किया है। 'अग्निपुराण' पुराण क्रम में आठवाँ पुराण है, जिसमें अग्नि को मूल तत्त्व निरूपित किया गया है। मत्स्य एवम् स्कन्दपुराण में अग्निपुराण के सम्बन्ध में वर्णित है कि ईशान कल्प सम्बन्धी जो ज्ञान अग्निदेव ने वशिष्ठ को दिया था, उसी को अग्निपुराण में प्रकाशित किया गया है--

यत्तदीशानकं कल्पं वृत्तान्तमधिकृत्य च।
वशिष्ठायाग्निना प्रोक्तमाग्नेयं सम्प्रकाशते।

भारतीय एवम् पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में अग्निपुराण भारतीय ज्ञानकोष है। इसके पौराणिक स्वरूप में कारणसृष्टि, कार्यसृष्टि और लय, देवपितरों की वंशावली, समस्त मन्वन्तर तथा वंशानुचरित (सूर्य, चन्द्र प्रभृति) वंशों में उत्पन्न राजाओं का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। इसमें तन्त्र, अलंकार, छन्द, ज्योतिष, व्याकरण, आयुर्वेद, राजनीति, कोश आदि विविध विषयों का सुन्दर परिचय मिलता है।

अग्निपुराण के महत्त्व को ध्यान में रखकर इसका हिन्दी अनुवाद सहित संस्करण प्रकाशित करने का निश्चय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने बहुत पहले किया था। तदनुसार राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन के समय में ही सम्मेलन ने इस पुराण की हिन्दी अनुवाद श्री तारिणीश झा तथा श्री घनश्याम त्रिपाठी से कराया था। पश्चात् अग्निपुराण के विषयबाहुल्य एवं अर्थगाम्भीर्य को दृष्टि में रखकर हमने तत्तत् विषय के विद्वानों से इसका संशोधन कराया। व्याकरण अंश के अनुवाद में पण्डित श्री रामपाल त्रिपाठी, तन्त्र अंश के अनुवाद में पण्डित श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी, ज्योतिष अंश में श्री हरिशरण द्विवेदी और आयुर्वेद में श्री रामराज शुक्ल तथा श्री योगीन्द्र चन्द्र शुक्ल से सहयोग प्राप्त किया।

अब पूरी पाण्डुलिपि का यथोचित संशोधन एवं मुद्रण-कार्य पुराण-साहित्य के विख्यात विद्वान् एवं हमारे सहयोगी पण्डित श्री तारिणीश झा के निदेशन में सम्पन्न हुआ है।

इसकी प्रेस कापी तैयार करने में पण्डित श्री रुद्रप्रसाद मिश्र की दक्षता तथा इसकी साजसज्जा, आवरण पृष्ठ आदि के निर्माण में साहित्य विभागाध्यक्ष श्री हरिमोहन मालवीय की तत्परता उल्लेखनीय है।

हमने संस्कृत जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ श्री रामशंकर भट्टाचार्य जी से इसकी भूमिका लिखने के लिए अनुरोध किया था। श्री भट्टाचार्य महोदय ने भूमिका लिखकर जो सहयोग दिया है, उसके प्रति सम्मेलन परिवार आभारी है। पर उनकी कुछ स्थापनाएँ विचार-णीय हैं।

विश्वास है, अग्निपुराण का यह संस्करण लोकप्रिय होगा। आशा है, जिज्ञासु अध्येताओं के स्नेह संबल के सहारे हिन्दी साहित्य सम्मेलन इस प्रकाशन योजना को सफलतापूर्वक निष्पन्न करने में सक्षम रहेगा।

डॉ० प्रभात शास्त्री
प्रधानमंत्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

वसन्तपञ्चमी

संवत् २०४२

भूमिका

अग्निपुराण का स्वरूप एवं उसका श्लोकपरिमाण

पुराणों में अष्टादश पुराणों (जो कभी कभी महापुराण भी कहलाते हैं) की जो सूचियां मिलती हैं, उनमें अग्नि या आग्नेय नाम अवश्य मिलता है, जिससे अग्निपुराण की प्राचीनता एवं प्रामाणिकता ज्ञात होती है। अग्नि नामक देव इस पुराण के वक्ता हैं, अतः यह अग्नि नाम से अभिहित होता है। आग्नेय का अर्थ है—अग्नि से सम्बन्धित अथवा अग्नि द्वारा प्रोक्त।

अग्निपुराण के स्वरूप एवं परिमाण के विषय में पुराणों में कुछ निर्देश मिलते हैं। मत्स्यपुराण में कहा गया है कि जिस पुराण में अग्नि ने वसिष्ठ को ईशानकल्प का वृत्तान्त कहा, वह आग्नेय पुराण है (५३।२८)। स्कन्दपुराण के प्रभासखण्ड (२।४७) तथा नारदीयपुराण (१।९९।१) का भी यही मत है।

प्रचलित अग्निपुराण का वक्ता यद्यपि अग्नि है, तथापि इसमें ईशानकल्प का नाम नही मिलता। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कोई प्राचीनतर ईशानकल्पीय-वृत्तान्तख्यापक अग्निपुराण था जो लुप्त हो गया है और प्रचलित अग्निपुराण उस पुराण का आश्रय करके लिखा गया है (अल्प प्राचीन सामग्री के साथ अत्यधिक नवीन सामग्री जोड़कर)।

विभिन्न समयों में विभिन्न अग्निपुराण (प्राचीन तथा नवीन सामग्री का संयोजनात्मक) प्रचलित थे—इस तथ्य में सर्वबलिष्ठ हेतु है—अग्निपुराण के परिमाण के विषय में मतभेद। अग्निपुराण में एक स्थल पर अग्निपुराण का परिमाण १२००० (२७२।११), तथा अन्यत्र (३८३।६४) १५००० कहा गया है। इस पुराण का श्लोक परिमाण भागवतानुसार १५४०० (१२।१३।५), देवीभागवतानुसार १६००० (१।३।९) तथा नारदीय-पुराणानुसार १५००० है (१।९९।२)। एक निश्चित ग्रन्थ के श्लोक परिमाण के विषय में ऐसे मतभेद

---

१. श्लोकपरिमाण का तात्पर्य है—३२ अक्षरों को एक श्लोक मानकर गणना करना। मुद्रित अग्निपुराण के प्रत्येक अध्याय में जो श्लोकगणना मिलती है, वह श्लोकपरिमाण-गणना नही है। अग्निपुराण में कितने ही श्लोक हैं जिनमें

नहीं हो सकता, अतः यह स्वीकार्य है कि इन पुराणों के रचनाकारों ने अपने समय में जिस अग्निपुराण को देखा था, उसके परिमाण का ही उल्लेख उन्होंने किया है।

निबन्धग्रन्थों को देखने से भी ज्ञात होता है कि कभी प्रचलित अग्निपुराण से पृथक् (चाहे सर्वथा भिन्न न हो) कोई अग्निपुराण विद्यमान था, क्योंकि निबन्ध-ग्रन्थों में उद्धृत अग्निपुराण के श्लोक प्रचलित अग्निपुराण में नही मिलते (अपेक्षा-कृत अर्वाचीन निबन्धग्रन्थों में प्रचलित अग्निपुराण के श्लोक उद्धृत मिलते हैं)। प्रसिद्ध निबन्धग्रन्थकार वल्लाल सेन ने तो प्रचलित अग्निपुराण को अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में एक अप्रामाणिक ग्रन्थ कहा है।[1]

अग्निपुराण को 'तामस' माना गया है (पद्मपु० ६।२६३।८१-८२)। पुराणों में ही कहा गया है कि तामस वह पुराण होता है जिसमें अग्नि अथवा शिव की महिमा का प्रधानतः प्रतिपादन किया गया हो (मत्स्यपु० ५३।६८-६९)। प्रचलित अग्निपुराण में अग्निदेवता के माहात्म्य के विषय में कुछ भी नहीं कहा गया। इससे भी यह सिद्ध होता है कि प्रचलित अग्निपुराण से भिन्न कोई प्राचीन-तर अग्निपुराण था जिसमें अग्निमहिमा का विशेषरूप से प्रतिपादन किया गया था।

उपलब्ध प्राचीनतर अग्निपुराण

हमारा सौभाग्य है कि अग्निपुराण के पुराणोक्त लक्षण जिसमें घटते हों ऐसे एक अग्निपुराण का हस्तलेख प्राप्त हो गया है। इसका हस्तलेख एसियाटिक

---

३२ से अधिक अक्षर हैं। कितने ही बड़े बड़े मन्त्र हैं, जिनमें ५० से भी अधिक अक्षर हैं। ऐसे स्थलों में ३२ अक्षरों को एक श्लोक मानकर ही गणना की जाती है। अग्निपुराण के आनन्दाश्रम संस्करण में श्लोकपरिमाण ११४५७ कहा गया है। प्रत्येक अध्याय के श्लोकों को गिनकर यह संख्या दी गई है—ऐसा प्रतीत होता है। यह गणना श्लोकों की संख्या को दिखाती है, श्लोकों के परिमाण को नही।

१. तार्क्ष्यं पुराणमपरं ब्राह्ममाग्नेयमेव च।
दीक्षाप्रतिष्ठापापण्डमुक्तिरत्नपरीक्षणैः ॥
मृषावंशानुचरितैः कोशव्याकरणादिभिः
असंगतकथावन्ध - परस्परविरोधितः।
इत्यादि। वल्लालसेन-कृत दानसागर-ग्रन्थ के ये श्लोक डा० हाजरा कृत आग्नेयपुराण-सम्बन्धी लेख में उद्धृत हुये हैं।
(इस लेख के विषय में अगली टिप्पणी देखें)।

सोसायटी (कलकत्ता) में है और वह्निपुराण नाम से अभिहित हुआ है। निबन्ध-ग्रन्थों में 'आग्नेयपुराण' नाम से जो उद्धरण मिलते हैं, वे इस पुराण में मिल जाते हैं। इस पुराण में तान्त्रिक प्रभाव अणुमात्रा में नहीं है। इसमें अग्निमाहात्म्य का प्रतिपादन है। पर इसमें भी ईशानकल्प का उल्लेख नहीं है जिससे सिद्ध होता है कि यह आग्नेय-पुराण (प्रचलित अग्निपुराण से प्राचीन होने पर भी) वह पुराण नहीं है जो मत्स्य-आदि-पुराणकारों के द्वारा लक्षित हुआ है। यह भी हो सकता है कि इस आग्नेयपुराण से ईशानकल्प का वृत्तान्त च्युत हो गया है। प्रचलित अग्निपुराण के साथ इस आग्नेयपुराण का तुलना-मूलक अध्ययन करके तथा आग्नेय पुराण पर सर्वांगीण विचार करके डा० आर० सी० हाजरा ने एक विद्वत्-प्रशंसित निबन्ध प्रकाशित किया है।[1] अग्निपुराण के विषय में विशेष जिज्ञासुओं को यह निबन्ध अवश्य देखना चाहिये।

प्रचलित अग्निपुराण का वैशिष्ट्य

उपर्युक्त आग्नेय पुराण के अतिरिक्त अन्य भी अग्निपुराण (कथंचित् सदृश) थे—यह निश्चित है। चूंकि ये अनुपलब्ध हैं, अतः इन पर कुछ विचार नहीं किया जा सकता। आग्नेयपुराण पर भी विवाद करना व्यर्थ है, क्योंकि यह अभी तक अमुद्रित है।

अग्निपुराण के नाम से जो पुराण आजकल प्रचलित है (जिसके संस्करण आनन्दाश्रम एवं वेंकटेश्वर प्रेस से देवनागरी लिपि में तथा कलकत्ता के वङ्गवासी प्रेस से बंगलालिपि में प्रकाशित हुये हैं), उस पुराण के विषय में हम मुख्य रूप से कुछ चर्चा करना चाहते हैं।

प्रचलित अग्निपुराण (जो मूलतः अग्नि-वसिष्ठ संवाद में है) अपने को 'विद्या-सार' कहता है (१।६, १।७, १।१३)। इस पुराण में सभी विद्याएँ प्रदर्शित हुई हैं—यह ३८३।५२ में कहा गया है। अग्निदेवता से उपदेश पाने के बाद वसिष्ठ स्वयं भी व्यास को कहते हैं कि 'मैं दोनों प्रकार के ब्रह्म को कहूँगा' (१।८)। इन कथनों से ज्ञात होता है कि इस पुराण का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है—'नानाविध विद्यायें'। पुराणपरम्परा में प्रसिद्ध 'पञ्चलक्षण' (सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंश्या-

---

१. Our Heritage (Vol I तथा II) में प्रकाशित Studies in the genuine Āgneyapurāṇa alias Vahni-purāṇa शीर्षक लेख द्र०। All-India Kāshirāj Trust द्वारा प्रकाशित Dr. R. C. Hazra Commemoration Volume, part I में यह लेख अन्तर्भूत है।

नुचरित; वंशानुचरित शब्द असंगत है) इस पुराण में गौण हैं, यद्यपि इन पांच विषयों का प्रतिपादन भी विभिन्न अध्यायों में मिलता है। अग्निपुराण का गौरव विविध विद्याओं का प्रतिपादन करने में ही है। गरुड़ एवं नारदीय पुराणों में भी विद्याओं का विवरण मिलता है, पर अग्निपुराण में यह विवरण अधिक मात्रा में है—यह प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है।

अग्निपुराण के विषयों का क्रमबद्ध निर्देश

अग्निपुराण में जिस क्रम के अनुसार विषयों का प्रतिपादन किया गया है, उसका एक स्पष्ट विवरण नारदीयपुराण (पूर्वार्ध ९९।१-२२) में मिलता है। नारदीय-पुराणोक्त क्रम के साथ प्रचलित अग्निपुराण का विषयक्रम सर्वथा समान नहीं है।[1] इससे यह अनुमित होता है कि सूचीकार ने जिस अग्निपुराण को देखा था वह प्रचलित अग्निपुराण से थोड़ा-बहुत भिन्न था। सूचीकार के द्वारा दृष्ट अग्निपुराण ने पुनः संपादित (परिवर्तन-परिवर्धन-परिवर्जन से युक्त) होकर वर्तमान अग्निपुराण का रूप लिया है—यह कहना असंगत नहीं है।

प्रचलित अग्निपुराण में जिन विषयों की चर्चा की गई है, उन विषयों का क्रमबद्ध निर्देश अग्निपुराण के ३८३ अध्याय (अन्तिम अध्याय) में किया गया है (श्लोक ५२-६४)। ऐसा प्रतीत होता है कि यह सूची प्रचलित अग्निपुराण को देखकर लिखी गई है और पुराण के अन्तिम अध्यायके रूप में इस सूची को रखा गया है। सूची-रचना के बाद भी पुराण में ईषत् परिवर्तन हुआ है, क्योंकि सूची में पूर्वमीमांसा और न्यायविस्तर का उल्लेख है (श्लोक ६०), पर ये विषय प्रचलित अग्निपुराण में नहीं मिलते।

---

१. सूची में रामोक्त नीति (अग्नि० २३८-२४२) के बाद रत्नलक्षण कहा गया है, जो अ० २४६ में है। पर अ० २४३-२४४ में पुरुषलक्षण, स्त्रीलक्षण आदि कहे गये है, जिनका निर्देश सूची में नहीं है। रत्नलक्षण (अ० २४६) के बाद धनुर्विद्या का उल्लेख किया गया है जो २४९-२५२ अध्यायों में है। पर अ० २४७ -२४८ में वास्तुपूजा का विधान है जो सूची में नहीं है। व्यवहार (अ० २५३-२५८) के बाद देवासुरविमर्द का उल्लेख है जो अ० २७६ में है। अ० २५९-२७५ में चतुर्वेदविधान, पूजा, वेदशाखा, पुराण, वंश आदि कथित हुये हैं, इन विषयों का निर्देश सूची में नही है।

अग्निपुराण का रचनाकाल

प्रत्येक पुराण का रचनाकाल सामान्यतः इतना विवादास्पद है कि 'भूमिका' में इस पर विचार नहीं किया जा सकता। सामान्य रूपसे यह कहा जा सकता है कि चूंकि वल्लालसेन (ईसवीय १२वां शती का मध्य) को प्रचलित अग्नि-पुराण ज्ञात था, अतः यह पुराण उनसे कई शताब्दियों से पहले प्रणीत हुआ था। 'कितनी शताब्दियों से पहले' इसका अवधारण करना दुष्कर है। आधुनिक गवेषक विद्वानों का अनुमान है कि अग्निपुराण का रचनाकाल ईसवीय सप्तम शताब्दी के बाद का है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह पुराण ईसवीय नवम शताब्दी में या उससे कुछ काल बाद रचित हुआ था।[1]

इस विषय में यह स्पष्टतया ज्ञातव्य है कि नवमशताब्दी अथवा उससे किंचित् पूर्व या पश्चात् काल की रचना होने पर भी अग्निपुराण के सभी श्लोक अग्निपुराण-रचना-काल में ही रचित हुये हैं—एसा नहीं समझना चाहिये। 'पुराण-रचना-काल' का अर्थ है—पुराण के अन्तिम सम्पादन का काल—यद्यपि सम्पादित सामग्री सम्पादनकाल की ही है, ऐसी बात नहीं। इसमें अणुमात्र संशय नहीं है कि अग्निपुराण के अनेक प्रकरण प्राचीन-प्राचीनतर ग्रन्थों के आधार पर (वहुधा उन ग्रन्थों के वाक्यों का ही प्रयोग कर) देश-काल-संप्रदायानुसार अल्प या अधिक परिवर्तन (जिसमें परिवर्धन एवं परिवर्जन दोनों हैं) के साथ लिखे गये हैं। विद्वानों का कहना है कि इस पुराण का तान्त्रिक कर्म-प्रतिपादक अंश अपेक्षाकृत अर्वाचीन है। रचनाकाल के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त है।

अग्निपुराणोक्त विषय

चूंकि अग्निपुराण अपना परिचय विविध विद्याओं के संग्राहक के रूप में देता है इसलिए इस पुराण में प्रतिपादित विषयों पर विचार करना हम सर्वाधिक आवश्यक समझते हैं। प्रस्तुत भूमिका में इन विषयों पर विस्तृत विचार करना संभव नहीं है। हम यहां पुराणोक्त कुछ विशिष्ट बातों का ही उल्लेख करेंगे, जिससे पाठकों का ध्यान इन विषयों पर आकृष्ट हो।

---

१. द्रष्टव्य P. V. Kane कृत History of Sanskrit Poetics (पृ० ९); J. R. A. S. १९२३ पृ० ५२७-५४९ में प्रकाशित डॉ० सुशील-कुमार दे का निबन्ध; Dr. R. C. Hazra कृत Puranic Records ग्रन्थ (पृ० १३८), J A. H. R. S. भाग १०, पृ० १२७-१३४ में S. B. Chowdhury का निबन्ध आदि।

(अध्याय १) ऋषियों के प्रश्न के उत्तर में सूत ने शब्दब्रह्म (ऋग्वेदादि-शास्त्र) एवं परब्रह्म (ब्रह्मविद्या) रूप द्विविध विद्या का परिचय दिया है (५-९)। यह भी कहा गया है कि यह मत 'आथर्वणी श्रुति' का है। यह कथन सत्य है, क्योंकि अथर्ववेदीय मुण्डक उपनिषद् (१।४-५) पुराणवाक्य का आधार है। १५-१८ श्लोकों में १८ अपरा विद्याओं के नाम हैं—चार वेद, छह अङ्ग, ज्योतिष, छन्दःशास्त्र (छन्दः है अभिधान=नाम जिसका वह छन्दोऽभिधान-छन्दः शास्त्र), मीमांसा, धर्मशास्त्र, पुराण, न्याय, वैद्यक, गान्धर्व, धनुर्वेद तथा अर्थशास्त्र। यहां यह ध्यान देने की बात है कि उपर्युक्त मुण्डकवाक्य में चार वेद और छह अङ्गों का ही निर्देश है, मीमांसा, धर्मशास्त्र आदि आठ शास्त्रों का नहीं। यह निश्चित है कि पुराणवाक्य का आधार मुण्डक उपनिषद् है (अग्नि १।१७ख, १८ के साथ मुण्डक १।१।५-६ तुलनीय हैं) और यह भी निश्चित है कि पुराणोक्त विद्यागणना (अष्टादश विद्या-गणना) परम्परा-प्रसिद्ध है। अतः यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि पुराणकार ने मुण्डक उपनिषद् को अपने आधार के रूप में क्यों कहा।

प्रतीत होता है कि मुण्डक उपनिषद् का ऐसा भी कोई पाठ प्रचलित था जिसमें चार वेद और छह अंगों के अतिरिक्त मीमांसा आदि की गणना भी की गई थी और अग्निपुराणकार ने उस पाठ के अनुसार उपर्युक्त मत को कहा है। यह मत काल्पनिक नहीं है क्योंकि न्यायवार्त्तिक की भूमिका में पं० विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि उन्होंने मुण्डक का ऐसा हस्तलेख देखा है जिसमें अपरा-विद्या की गणना में वेदवेदाङ्गों के साथ मीमांसादि शास्त्रों के नाम भी गिनाये गये हैं (पृ० २०)।'

(अ० २-१६) विभिन्न अवतारों का विवरण इन अध्यायों में दिया गया है।[2] मत्स्यावतार के प्रसंग में कृतमाला नदी का उल्लेख है, जो भागवत (८।२४।१२)

---

१. मुण्डक उपनिषद् के किसी पाठ में मीमांसादि का उल्लेख था, यह मुण्डक उपनिषद् के शांकरभाष्य की नारायणकृत दीपिका टीका से भी जाना जाता है। यह बात दूसरी है कि टीकाकार नारायण ने उस पाठ को प्रक्षिप्त माना है। प्रबोध-चन्द्रोदय (कृष्णमिश्रकृत) की चन्द्रिका टीका से भी ज्ञात होता है कि मुण्डक उपनिषद् के किसी पाठ में मीमांसा, इतिहास-पुराण आदि का उल्लेख था (पृ० ३१)। अग्निपुराण का मत कितना सुदृढ़ है—यह उपर्युक्त उदाहरण से ज्ञात होता है।

२. इन अवतारों के स्वरूपादि के विषय मे (मुख्यतया पुराणवाक्यों का आश्रय करके) रूपगोस्वामी ने संक्षेपभागवतामृतग्रन्थ (विद्याभूषणकृत टीका

में भी मिलता है, यद्यपि इस कथा के वैदिक मूल (शतपथ ब्राह्मण १।८।१।१) में इस नदी का कोई उल्लेख नहीं है। सम्भवतः अग्निपुराण का आधार भागवत-पुराण ही है (महाभा० वनपर्व में इस प्रसंग में चीरिणी नदी का उल्लेख है, १८७।६)। मत्स्य ने वेदापहरणकारी हयग्रीव दानव का भी वध किया था, यह २।१६-१७ में कहा गया है। कूर्मावतार की घटना वाराहकल्प की है, यह ३।१७ में कहा गया है। अ० ४ में वराह, नरसिंह, वामन तथा परशुराम (४।१६ में 'राम' शब्द प्रयुक्त हुआ है जो इनका प्रकृत नाम है; परशुयुक्त राम=परशुराम) की कथाएँ हैं। ये कथाएं अन्यान्य पुराणों में भी है; अग्निपुराण के विवरण में कोई वैशिष्ट्य नहीं है।

५-११ अध्याय में रामावतार की कथा है। यहां का विवरण सप्त-काण्डयुत वाल्मीकि-रामायण पर पूर्णतया आधारित है। पुराण के कितने ही वाक्यांश हैं जो रामायण में अविकल रूप से या ईषत् पाठभेद के साथ मिलते हैं। यह लक्षणीय है कि गुह का उल्लेख (६।३३) रहने पर भी शबरी का कोई उल्लेख अग्निपुराण में नहीं मिलता। अ० १२ में कृष्णावतार का वर्णन है। यहां 'हरिवंशं प्रवक्ष्यामि' (१२।१) कहा गया है; हरिवंश का अर्थ है—हरि का वंश, न कि हरिवंश नामक पुराण। कृष्ण का जो चरित विष्णुपुराण (अ० ४), ब्रह्मपुराण (अ० १८०-२१२), हरिवंशपुराण (विष्णुपर्व) और भागवत में है, उसका संक्षिप्त-सार यहां कहा गया है। कृष्णानुरक्त गोपियों का उल्लेख १२।२३ में है, यद्यपि राधा का नाम नही है।

अ० १३-१५ में भारत-कथा (महाभारत की मूल घटना) दी गई है—'भारतं संप्रवक्ष्यामि' कहा गया है (१३।१), 'महाभारतम्' नही। इससे यह अनुमित हो सकता है कि २४ सहस्रश्लोकमय जो भारतसंहिता थी, उसका सार यहां दिया गया है। पर यह अनुमान सुदृढ़ नही है, क्योंकि अग्निपुराण के रचनाकाल में भारतग्रन्थ प्रचलित था—ऐसा मानना कठिन है। यह हो सकता है कि परम्परा में भरतवंशियों की जो कथा ज्ञात थी, उसके आधार पर यह श्लोकबद्ध प्रकरण लिखा गया है। गीता का उपदेश अ० १४ में लक्षित हुआ है।

अ० १६ में बुद्ध और कल्कि का वर्णन है। बुद्ध को दैत्यमोहकर एवं शुद्धोदनसुत कहा गया है। कलियुगान्त में आविर्भूत होने वाले कल्की के प्रसंग में दो

सहित) में तथा सनातन गोस्वामी ने बृहद्भागवतामृतग्रन्थ मे विशद विचार किया है।

बातें कही गई हैं जो अस्पष्ट हैं—(१) कलियुगान्त में वाजसनेयक वेद की १५ शाखाओं की स्थिति[1] तथा (२) याजवल्क्य को कल्की का पुरोहित मानना।

(अ० १७-२०) अ० १७ में जगत्-सृष्टि, अ० १८ में स्वायंभुवमनु (प्रथम मनु) के वंशजों के नाम तथा अ० १९ में कश्यप के वंशजों के नाम कहे गये है। १९।२३-२९ में राज्यप्रदान का विवरण (किसको किस विषय का अधिपति बनाया गया—इसका विवरण) है। यह विषय गीता (अ० १०) में भी हैं (अमुकों में मैं अमुक हूं—इस प्रकार का उल्लेख करके)। गीता में जहां 'मरीचि-र्मरुतामस्मि' (१०।२१) कहा गया है, वहां पुराण में 'मरुतां वासवः प्रभुः' कहा गया है (१९।२४), प्रह्लाद[2] को दानवाधिप कहा गया है (१९।२४), यद्यपि जातितः प्रह्लाद दैत्य है (दिति-गर्भज हिरण्यकशिपु के पुत्र होने के कारण)। गीता में उचित ही कहा गया है—प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानाम्' (१०।३०)। अ० २० में प्राकृत आदि सर्गों का उल्लेख तथा भृगु, मरीचि आदि के वंशों का विवरण है। उपर्युक्त सभी विषय अन्यान्य पुराणों में भी हैं। अग्नि-पुराणगत विवरण अत्यल्प है तथा इस विवरण का कोई वैशिष्ट्य नहीं है।

(अ० २१-१०६) अनेक स्मार्त एवं तान्त्रिक कर्मों का विवरण इन अध्यायो में मिलता है। यह विवरण तन्त्र एवं स्मृतिग्रन्थों पर आधारित है। आधार-ग्रन्थों की तुलना में पुराण का विवरण अनेकत्र संक्षिप्त एवं सामान्य है। इन अध्यायों में विभिन्न देवताओं की सामान्य पूजा (स्नान आदि कर्मों के वर्णनों के साथ) तथा प्रतिष्ठाविधि (वास्तुपूजा, प्रसाद में देवतास्थापन, प्रतिमाओं के लक्षण, शालिग्रामों के लक्षण, शान्तिकर्म, अधिवास, ध्वजारोपण, होम, दीक्षा आदि के साथ) कही गई हैं।

यहां कुछ विशिष्ट बातें मिलती हैं, यथा—हयशीर्ष आदि २५ तन्त्रों के नाम (अ० ३९), स्मार्तकर्मों के प्रसंग में अनेक वैदिक मन्त्र, सूक्त आदि का

---

१. अग्निपुराण के आनन्दाश्रम संस्करण के संपादक ने वेदशाखापरक वाक्य के पाठ को सन्दिग्ध माना है (प्रश्नज्ञापक चिह्न का प्रयोग कर के)। इस प्रसंग में यह ज्ञातव्य है कि हरिवंश के कलियुग-विवरण में कहा गया है—सर्वे वाजसनेयिनः (३।३।१२)। इस पर टीकाकार नीलकण्ठ कहते हैं—'शाखान्तरलोपात्। तेन वेदत्रयसाध्यो यज्ञ उत्सन्नो भविष्यति इति भावः। इदानीमेव पश्चिमदेशे तथा दर्शनात्'।

२. अग्निपुराण में 'प्रह्राद' ऐसा रकारघटित मुद्रित पाठ है। यह पाठ अन्यत्र भी मिलता है।

उल्लेख[1] (अ० ५६, ५८, ६०, ६१, ६२, ६४, ६६, ६७) है; ये सभी मन्त्र आदि वैदिक ग्रन्थ एवं सूत्रग्रन्थों में मिल जाते हैं। पुस्तक लेखन की चर्चा ६३।१३-१६ में है। यहां रौप्य आधार में स्वर्णनिर्मित लेखनी से नागराक्षर लिखने का उल्लेख है। 'गर्गविद्या' शब्द का प्रयोग ६५।७ में है; इसका अर्थ है—गृह-प्रासादादि निर्माण का शास्त्र। वास्तुशास्त्र से तथा बृहत्संहिताग्रन्थ से ज्ञात होता है कि गर्ग इस विद्या के आचार्य थे।

दीक्षा के प्रसंग में अनेक तान्त्रिक मन्त्र भी उद्धृत हुये हैं। (मन्त्रों का पाठ तन्त्रग्रन्थ के आधार पर कहीं-कहीं संशोधनीय है)। तन्त्र की कई गूढ़ बातें (जैसे शक्तिपात, ८८।५६-६१) यहां कही गई हैं।

(अ० १०७-१२०) स्वायंभुव मनु (प्रथम मनु) का वंश, तीर्थ एवं भुवन-कोश यहां प्रतिपादित हुये हैं। स्वायंभुव मनु के वंशजों ने पृथिवी को सात द्वीपों में बांटकर राज्य किया था—यह पुराणप्रसिद्ध मत है। इन द्वीपों (जम्बू आदि) के वर्ष, नदी, पर्वत आदि का विवरण पुराणीय भुवनकोश का मुख्य विषय है। अग्निपुराण का विवरण संक्षिप्त है। यहां यह महत्त्वपूर्ण सूचना दी गई है कि स्वायंभुववंशीय भरत के नाम से इस देश का नाम भारत (वर्ष) पड़ा था (१०७। १२)। प्रायः सभी पुराणों में यह मत मिलता है। शकुन्तलापुत्र भरत के नाम से इस देश का नाम भारत हुआ था—यह मत पुराणों द्वारा कथमपि समर्थित नहीं होता है—यह ज्ञातव्य है। भरत का उल्लेख १०७ अ० में है, उनका चरित ३८० अ० में द्रष्टव्य है। इस पुराण में भुवनकोश का प्रारम्भिक विवरण १०७-१०८ में दिया गया है; अ० ११८-१२० में भारतवर्ष, प्लक्ष आदि द्वीप तथा पाताल आदि का विवरण दिया गया है। अग्निपुराण के विवरण में कोई विशिष्ट बात नहीं मिलती।

अग्निपुराण में तीर्थपरक विवरण विस्तृत नहीं है। अ० १०९ में तीर्थों की गणना, अ० ११० में गंगा का माहात्म्य, अ० १११ में प्रयागमाहात्म्य, अ० ११२

---

१. अग्निपुराण के सभी संस्करणों में ये मन्त्र आदि कहीं-कहीं भ्रष्टरूप से मुद्रित हुये हैं। २५।२९ में यज्ञ को 'सप्तरूप' कहा गया है, पर छह ही रूपों के नाम कहे गये हैं—अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और अप्तो-र्याम (२८-२९)। यहां अग्निष्टोम के बाद अत्यग्निष्टोम नाम होना चाहिये। इन अध्यायों में जिन वैदिक सूक्तों के नाम कहे गये हैं (श्रीसूक्त, मैत्रक, वृषाकपि आदि) उनके परिचय के लिए मेरा 'पुराणगत वेद विषयक सामग्री का समीक्षात्मक अध्ययन' ग्रन्थ (अ० २, परि० ५) द्रष्टव्य है।

में वाराणसी-माहात्म्य, अ० ११२ में नर्मदामाहात्म्य, अ० ११४-११६ में गया-माहात्म्य कहे गये हैं। इन अध्यायों के कुछ श्लोकों का तात्पर्य स्पष्टीकरणीय है (यथा १११।४)[1] कहीं-कहीं यात्राविधि भी कही गई है। वाराणसी-माहात्म्य में अष्ट गुह्येश्वर की गणना है (११२।३-५)। पर गिनने पर सात नाम होते हैं। हिन्दी-अनुवादक ने भूमि और चण्डेश्वर को दो नाम मानकर आठ संख्या की पूर्ति की है, जो विचारणीय है। गयातीर्थ के प्रसंग में महाबोधितरु का उल्लेख है (११५।३२)। अन्य पुराणों में भी इसी प्रकरण में इसका उल्लेख मिलता है। गया के प्रसंग में ही चार प्रकार की मुक्ति कही गई है।"[2]

कात्यायन द्वारा प्रोक्त श्राद्धकल्प का उल्लेख ११७।१ में है। चूंकि गयातीर्थ के साथ श्राद्ध का निकटतम सम्बन्ध है, अतः गयातीर्थ के बाद श्राद्ध का प्रसंग किया गया है—ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। कात्यायन नामक ऋषि का कोई श्राद्धसूत्र था—यह वैदिकपरम्परा में प्रसिद्ध है, निबन्धग्रन्थों में इस ग्रन्थ के वाक्य उद्धृत हुये हैं।

(अ० १२१-१४३) फलितज्योतिष, युद्धजयार्णव, नानाविध, मन्त्र औषधि एवं तान्त्रिक कर्म इन अध्यायों में कहे गये हैं। अ० १२३-१३९ में युद्धजयार्णव है; युद्ध में विजय प्राप्ति के लिए जिन तान्त्रिक कर्मोंका अनुष्ठान किया जाता है, वे यहां कहे गये हैं। युद्धजयार्णव नामक कोई ग्रन्थ अवश्य था, क्योंकि निबन्ध-ग्रन्थों में इस ग्रन्थ का उल्लेख मिलता है। यहां जो कुब्जापूजा और त्वरिता-पूजा का उल्लेख है, उनका विशेष विवरण तन्त्रग्रन्थों में द्रष्टव्य है (द्र० कृष्णानन्द आगमवागीश-कृत तन्त्रसार)। इन अध्यायों में कुछ विशिष्ट बातें कही गई हैं— (१) जरामृत्युनाशक ३६ औषधियों की एक सूची १४१।१-५ में दी गई है,

---

१. गङ्गायमुनयोर्मध्यं पृथिव्या जघनं स्मृतम्। प्रयागं जघनस्यान्तरुपस्थमृषयो विदुः॥ (१११।४)। जघन एवं उपस्थ से कौन-सा सादृश्य विवक्षित है—यह निर्धारणीय है।

२. ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं तथा। वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा॥ (११५।५ ख-६ क)। यहां प्रकृत पाठ 'गोग्रहे मरणं' (किसी के द्वारा बलपूर्वक गो का ग्रहण होने पर उसका विरोध करने वाले का जो मरण होता है वह 'गोग्रहे मरणम्' है)। 'गोगृह में मरण' कोई उदात्त कर्म नहीं है। यह श्लोक अन्य ग्रन्थों में भी मिलता है जहां 'गोग्रहे मरणम्' पाठ है।

(२) अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी आदि नक्षत्रों के संक्षिप्त नाम (अ, भ, कृ, रो आदि) १३६।७-८ में कहे गये हैं।[1]

(अ० १५०) स्वायंभुव, स्वारोचिष आदि चौदह मन्वन्तरों का जैसा विवरण अन्य पुराणों में मिलता है, वही यहां भी है। अध्यायान्त में एक वेद के चतुर्धाकरण का तथा ऋक् आदि चार वेदों की शाखाओं का अतिसंक्षिप्त उल्लेख मिलता है। यहां यजुर्वेद की २७ शाखायें हैं—ऐसा कहा गया है (१५०।२७)। इस मत का मूल अन्वेषणीय है। वेदशाखाविवरणपरक चरणव्यूहग्रन्थ में 'यजुर्वेदस्य चतुर्विंशतिभेदा भवन्ति' कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'सप्तविंशतिभेद', मानने वाली भी कोई वैदिक परम्परा थी। अथर्ववेदीय शाखा के प्रसंगमें पिप्पलाद आदि शाखाकार आचार्यों का उल्लेख है (पैप्पलादीन् सहस्रशः, १५०।३०; 'पैप्पलादीन्' के स्थान पर 'पिप्पलादीन्' होना चाहिए—'पिप्पलाद' ही ऋषि का नाम है, पैप्पलाद नहीं)।[2]

(अ० १५१-२१७) वर्णाश्रम धर्म तथा व्रत आदि का विशद विवरण इन अध्यायों में मिलता है। इस विवरण में कोई वैशिष्ट्य नहीं है; मनु, याज्ञवल्क्य आदि के वाक्य अविकलरूप से या अल्पाधिक परिवर्तन के साथ यहां मिलते है। कहीं-कहीं भ्रष्ट पाठ भी है।

अग्निपु० में 'पञ्चधा धर्म' कहा गया है (१६६।१)। वर्ण, आश्रम, वर्णाश्रम, गुण और नैमित्तिक रूप पांच भेद स्वीकृत हुये हैं। यह दृष्टि परम्परास्वीकृत है (द्र० मनुस्मृति २।५ का मेधातिथिकृत भाष्य)। यह ज्ञातव्य है कि पुराणों में वर्णित धर्मकृत्य पृथक्-पृथक् शाखा पर प्रायेण प्रतिष्ठित होता है। यही कारण है कि कर्मानुष्ठानसम्बन्धी पौराणिक मतों में कभी-कभी भिन्नता पायी जाती है; उदाहरणार्थ अग्निपुराण में बृहस्पतिग्रह का मन्त्र 'बृहस्पते अतियदर्यो...' (ऋग्वेद २।२३।१५) है (१६४।७), जबकि मत्स्यपुराण (१३।३५) में 'बृहस्पते परिदीया...' (ऋग्वेद १०।१०३।४) है।

---

१. संक्षेपीकरण की ऐसी प्रवृत्ति अन्यत्र भी देखी जाती है। आषाढ़ी-कार्तिकी-माघी-वैशाखी (पूर्णिमा) के लिए 'आ-का-मा-वै' शब्द का प्रयोग स्मार्त ग्रन्थकारों ने किया है।

२. अथर्ववेद की दो शाखायें आजकल प्रचलित हैं—शौनक तथा पिप्पलाद। पुराणों में अथर्ववेद के प्रथम मन्त्र के निर्देश में पिप्पलादशाखा के प्रथम मन्त्र का ही उल्लेख सर्वत्र किया गया है। यह ज्ञातव्य है (द्र० पुराणगत-वेदविषयक सामग्री का समीक्षात्मक अध्ययन, पृ० १३९-१४०)।

व्रत के प्रसंग में यह कहा गया है कि व्रत को क्यों 'तपः' या 'नियम' कहा जाता है (१७५।२-३)। इस पुराण में तिथि के अनुसार व्रतों का विवरण दिया गया है और बाद में 'नक्षत्रव्रत', 'दिवसव्रत' आदि का विवरण है। प्रत्येक व्रत के साथ सम्बन्धित पूजा, उपवास आदि भी उल्लिखित हुये हैं। दानों का विवरण अ० २१० में है; प्रकरण के अन्त में सन्ध्या एवं गायत्री का विवरण दिया गया है।

गायत्री का अर्थ अ० २१५ में सविस्तार दिया गया है। इस प्रसंग में एक विशेष बात ज्ञातव्य है। गायत्री मन्त्र (ऋग्वेद ३।६२।१०) में जो 'प्रचोदयात्' शब्द है, वह लेट्लकार का रूप है, विधिलिङ् का नहीं, पर अग्निपुराण में 'प्रचोदयात्' की व्याख्या 'प्रेरयेत्' शब्द से की गई है, जो विधिलिङ् का रूप है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि पुराणकार को यहां भ्रम हुआ है।[1]

(अ० २१८-२४२) राजनीति-राजधर्म का प्रतिपादन इन अध्यायों में किया गया है। अ० २१८-२३७ में वक्ता पुष्कर हैं और श्रोता राम अर्थात् परशुराम (भार्गवराम) हैं, दाशरथि राम नही। इन अध्यायों में राजा का अभिषेक, सहाय-संपत्ति, भृत्य आदि के कर्त्तव्य, दुर्ग, राज्यपालन, अन्तःपुर-व्यवस्था, साम-दान-दण्ड-भेद, युद्ध, शकुन (शुभाशुभसूचक चिन्ह), षाड्गुण्य (सन्धि, विग्रह आदि), तथा प्रात्यहिक राजकर्म आदि का विशद विवरण दिया गया है। अ० २३८-२४२ पर्यन्त राम-प्रोक्त राजनीति है (लक्ष्मण के प्रति प्रोक्त)। इसमे सात अंग (स्वामी, अमात्य, राष्ट्र आदि) एवं सन्धि आदि छह गुणों के साथ तीन शक्तियों (प्रभाव-मन्त्र-उत्साह-शक्ति) राजव्यसन, सामादि उपाय एवं षड्-विध बलों की विस्तृत चर्चा की गई है।

दोनों नीतियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि रामनीति कामन्दकीय-नीतिसार का अतिसंक्षिप्त रूप है; तथा पुष्करोक्त नीति की अपेक्षा इसमें कौटिल्य की चिन्ताधारा अधिक मात्रा में प्रतिफलित हुई है।[2]

---

१. देवीभागवत की टीका में नीलकण्ठ ने भी गायत्रीमन्त्रस्थ 'प्रचोदयात्' को विधिलिङ् का रूप ही समझा है, क्योंकि वे कहते हैं—

'प्रचोदयात् प्रेरयेत् प्रार्थनायां लिङ्', (टीकारम्भ में भागवतस्वरूप-निर्णयप्रकरण द्रष्टव्य)।

२. [illegible] शर्मा के Political thought and practice in the Agnipurāṇa शीर्षक लेख (Purāṇa Vol. III, pp. 23-37 २५-३७) में इन दोनों नीतियों पर विशद चर्चा की गई है।

(अ० २४३-२४५) अ० २४३-२४४ में समुद्र नामक आचार्य के द्वारा प्रोक्त स्त्री-पुरुष -लक्षणशास्त्र का सार कहा गया है। यह सामुद्रिक विद्या कहलाता है। शरीर का कौन अंग किस प्रकार का होने पर किस भाव (शुभ-अशुभ) का सूचक होता है—यह इस शास्त्र में दिखाया जाता है। यह 'अङ्गविद्या' बहुत प्राचीन है। पाणिनि के गणपाठ (४।३।७३) में इस विद्या का निर्देश है। लक्षणप्रकाश आदि ग्रन्थों में इस शास्त्र के अनेक वाक्य उद्धृत मिलते हैं। अ० २४५ में चामर, खड्ग आदि के विषय में कई ज्ञातव्य बातें कही गयी हैं; यथा किस देश के खड्ग का वैशिष्ट्य क्या है, यह २४५।२२ में उल्लिखित हुआ है।

(अ० २४६-२४८) विभिन्न दलों के लक्षण, वास्तु (गृह-निर्माणार्थ भूमि) का लक्षण, तथा पूजा में उपयोगी पुष्पों का विवरण यहां कहे गये हैं।

(अ० २४९-२५२) इन अध्यायों में धनुर्वेद का स्पष्ट विवरण दिया गया है। वैशम्पायन आदि के प्राचीन धनुर्वेदविषयक ग्रन्थ लुप्त हो गये हैं। वसिष्ठी धनुर्वेदसंहिता प्रचलित है, पर वह अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ प्रतीत नहीं होता (इस ग्रन्थ का बंगला-अनुवाद प्रकाशित हो चुका है)। कोदण्डमण्डन-ग्रन्थ बंगला-लिपि में सानुवाद प्रकाशित है, पर यह बहुत ही अर्वाचीन ग्रन्थ है। युक्तिकल्पतरु आदि कुछ ग्रन्थों में इस शास्त्र का अल्प विवरण मिल जाता है। ऐसी स्थिति में अग्निपुराणोक्त धनुर्वेद महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यहां का विवरण अपेक्षाकृत विशद है। कामन्दकीय नीतिसार का कुछ प्रभाव भी पुराणोक्त विवरण में देखा जाता है। चतुरङ्गबल प्रसिद्ध है, अग्निपुराण में अस्त्रहीन योद्धा को पञ्चम बल माना गया है। योद्धाओं के आसनों के नामों में कुछ भिन्नता मिलती है।

(अ० २५३-२५८) स्मृतिशास्त्रीय व्यवहार-प्रकरण का एक सारवान् विवरण इन अध्यायों में दिया गया है। जिन विषयों को लेकर विवाद, हिंसा आदि कर्म किये जाते हैं, वे 'व्यवहार' के विषय हैं। ऋण, साक्ष्य, संपत्तिविभाग, सीमा, परुषवाक्य आदि से सम्बन्धित व्यवहार व्यवहारप्रकरण में विचारित होते हैं। अग्निपुराण का यह प्रकरण याज्ञवल्क्यस्मृतिगत व्यवहारप्रकरण पर अधिकांशतः आधारित है; कहीं-कहीं नारदस्मृति का भी अनुसरण किया गया है—ऐसा विद्वानों का कहना है।[1]

---

1. The vyavahāra portion of the Purāṇa leaves no doubt that it is borrowed partly from the Nārada-smṛti and largely from the Yājñavalkya-smṛti (द्र० Purāṇa पत्रिका के वर्ष २० में S. C. Banerjee का लेख 'Vyavahāra portion of the Agni

(अ० २५९-२६२) ऋग्-यजुः-साम-अथर्ववेदों के मन्त्र-सूक्त-अनुवाक आदि का विनियोग (कर्मों में प्रयोग) इन अध्यायों में दिखाया गया है। यह प्रकरण ऋग्विधान आदि ग्रन्थों पर प्रतिष्ठित है। खेद है कि इन अध्यायों के पाठ अनेकत्र भ्रष्ट हो गये हैं।[1] कुछ शब्द अस्पष्ट हैं, यथा—एकचक्रा (२६०।८१), तनूनपाग्ने सदिति (२६०।१५)। विनियोग के लिए ऋषि, देवता, छन्द का ज्ञान चाहिए—इस वैदिक दृष्टि का उल्लेख २६२।२५ में किया गया है।

(अ० २६३-२७०) उत्पातशान्ति, पूजा, वैश्वदेव-बलि, स्नान, होम, नी·ाजन (एक प्रकार का कर्म जो युद्ध से पहले राजा के द्वारा अनुष्ठित होता है) आदि यहां कहे गये हैं। स्मृति आदि शास्त्रों में इन कर्मों का जो विवरण है, इस पर ही पुराण का विवरण आधारित है। कहीं-कहीं मन्त्रादि के पाठ में भ्रंश है। 'स्रावन्तीयं...'(२६३।२) का प्रकृत पाठ 'श्रायन्तीयं...' होगा। यह 'श्रायन्त इव सूर्यम्...इस सामवेदीय मन्त्र (२६७ स्वाध्यायमण्डल संस्क०) पर गायी जाने वाली गीति का नाम है। २६९।१४ में कुमुद, ऐरावत (ऐरावण पाठ भ्रष्ट है) आदि दिग्गजों के नाम कहे गये है (अमरकोश, दिग्वर्ग ५); इनको यहां 'देवयोनि' कहा गया है। अवश्य ही 'देवयोनि' पाठ भ्रष्ट है, क्योंकि अन्यान्य ग्रन्थों में भी कुमुद आदि को 'दिग्गज' ही कहा गया है।

(अ० २७१-२७२) वेद की शाखाओं तथा अट्ठारह पुराणों का विवरण यहां दिया गया है। चारों वेदों के मन्त्रों की संख्या एक लाख कही गयी है (२७१।१)। यह मत परम्परागत है, क्योंकि चरणव्यूह में 'लक्षं तु चतुरो वेदाः' कहा गया है। 'शत-साहस्र-संमित' (अर्थात् एक लाख परिमाण वाले) वेद का उल्लेख विष्णुपुराण ३।४।१ में मिलता है। यह गणना किस रीति से की गई है—यह अज्ञात है। ऐसी एक प्रसिद्धि है कि वेद के ८०००० मन्त्र कर्मकाण्डपरक, १५००० मन्त्र उपासनापरक तथा ५००० मन्त्र ज्ञानपरक हैं। इस प्रसिद्धि की

---

purāṇa, पृ० ३९); काणे कृत History of Dharmaśāstra भाग १ पृ० १६२ भी द्रष्टव्य।

१. उभे पुमान्...मन्त्र २५९।३३ में उक्त हुआ है, जिसका प्रकृत पाठ 'उभे पुनामि' है (द्र० ऋग्वेद १।१३३।१)। 'स्वस्ति पन्था' मन्त्र (२५९।५१) मन्त्र का प्रकृत पाठ 'स्वस्ति पन्थाम्' होगा (ऋग्० ५।५१।१५); या ओषधयः (२५९।८५) 'या ओषधीः' होगा; या सेना (२६०।३५) याः सेना' होगा (यजुर्वेद ११।७७), चत्वारि शृङ्गः (२६०।३८) 'चत्वारि शृङ्गाः' होगा (यजुः १७।९१); परिमे गामनेनेति (२६०।७७) 'परी मे' (यजुः ३५।१८) होगा।

संगति चिन्तनीय है। यहां ऋग्वेदीय मन्त्र के परिमाण के विषय में 'शतानि दश' (१००००) कहा गया है (२७१।२), जो प्रायः सत्य है।[1] ऋग्वेदीय ब्राह्मण के परिमाण के विषय में जो कहा गया है (ब्राह्मणं द्विसहस्रकम्), वह परीक्षणीय है। इस पुराण में ऋग्वेद की आश्वलायन शाखा एवं शाङ्खायन शाखा का उल्लेख है (२७१।२)। वायु आदि पुराणों के शाखाप्रकरण में ये नाम नहीं मिलते हैं। कुछ विद्वानों का कहना है कि ये दो शाखाएं कृष्णद्वैपायन व्यास से पहले काल की है, अतः वायु आदि पुराणों में इन दोनों के नाम नहीं लिये गए क्योंकि इन पुराणों में कृष्णद्वैपायन की परम्परा में कृत शाखाविभाग का ही विवरण दिया गया है। चारों वेदों की शाखा आदि के मुद्रित नामों में कई भ्रष्ट पाठ हैं।

मूल पुराणसंहिता (जिसको व्यास ने बनाकर लोमहर्षण को पढ़ाया) का उल्लेख २७१।११-१२ में मिलता है। छह आदिम पुराणाचार्यों के नामों के पाठ कुछ भ्रष्ट हो गये हैं[2]—शिशपायन शांशपायन होगा, कृतव्रण अकृतव्रण होगा।

यहां १८ पुराणों में प्रत्येक का जो श्लोकपरिमाण कहा गया है (२७२।१-२३) उसका पूर्णयोग ३४०००० (तीन लाख चालीस हजार) होता है—चार लाख नहीं। कुछ पुराणों के श्लोकपरिमाण सांशयिक हैं—पद्मपुराण का श्लोकपरिमाण १२००० कहा गया है, जो अन्यत्र नहीं मिलता। पद्मपुराण का जो प्रचलित रूप है, उसमें न्यूनाधिक ५०००० श्लोक निश्चयेन हैं। सम्भवतः पद्मपुराण के श्लोकपरिमाण का मुद्रित पाठ भ्रष्ट है।

(अ० २७३-२७८) सूर्य एवं सोम वंशों (ये दो राजवंश हैं) का धारावाहिक विवरण यहां दिया गया है। इस विवरण में अग्निपुराण का कोई वैशिष्ट्य नही है। यह विवरण प्राचीन प्रतीत नहीं होता। अनेक नये श्लोक बनाकर पुराणकार

---

१. तुल० दशेदमृक्सहस्राणि निर्मथ्य (शान्तिपर्व २४६।१४)। इसकी व्याख्या में नीलकण्ठ ने कहा है कि प्रकृतमन्त्रसंख्या दश सहस्र से कुछ अधिक है। इस विषय में अतिविस्तृत विचार के लिए पं० युधिष्ठिर मीमांसक-कृत 'ऋग्वेद की ऋक्संख्या' ग्रन्थ द्रष्टव्य है।

२. इन छह पुराण प्रणेताओं एवं मूलपुराणसंहिता के विषय में विशद विवरण के लिए Ancient Indian Historical Tradition ग्रन्थ (पृ० २१-२४) तथा पं० बलदेव उपाध्यायकृत पुराणविमर्श (पृ० ५८-६२) द्रष्टव्य हैं।

ने इस प्रकरण की रचना की है। कान्यकुब्ज एवं काशी वंश के विवरण में कई भ्रान्तियां लक्षित होती हैं।[1]

इन अध्यायों में कई नाम भ्रष्ट रूप से मुद्रित हुये हैं। एक उदाहरण लें—गङ्गायां शन्तनोर्भीष्मः काल्यायां चित्रवीर्यकः। कृष्णद्वैपायनश्चैव क्षेत्रे वै चित्रवीर्यके॥ (२७८।३६)। इन श्लोकों में 'काल्यायां' के स्थान पर 'काल्यां' पाठ होगा तथा 'वैचित्रवीर्यके' एक शब्द होगा।

यहां शकुन्तलापुत्र भरत के विषय में कहा गया है—दुष्यन्ताद् भरतोऽभवत्। शकुन्तलायां तु वली यस्य नाम्ना तु भारताः (२७८।६-७)। 'भारताः' का अर्थ है—'भारता जनाः'—भारत नामक जनसमुदाय (क्षत्रियगण)। इससे स्पष्ट है कि पुराणकार के अनुसार इस देश का 'भारत' नाम शकुन्तलापुत्र के नाम के अनुसार नहीं पड़ा। सभी पुराणों के अनुसार इस नाम का हेतु है—स्वायंभुव-मनुवंशीय भरत, जो इस भारतवर्ष के अधिपति थे।[2]

(अ० २७९-२८६) धन्वन्तरि ने सुश्रुत के प्रति जो आयुर्वेदविषयक सिद्धान्त कहा, वह यहां प्रतिपादित हुआ है। मनुष्य, अश्व तथा हस्ती के रोग, रोगों की चिकित्सा तथा अन्यान्य आवश्यक विषय संक्षेप-विस्तार के साथ कहे गये हैं। यह विवरण वाग्भट-कृत अष्टाङ्गहृदय पर मुख्यतया आधारित है।[3]

(अ० २८७-२९२) अङ्गराज लोमपाद (१८६।२४) के प्रति 'हस्तिशास्त्र-विद् पालकाप्य ने जो कहा, उसका सार यहां दिया गया है। पालकाप्य का ग्रन्थ प्रसिद्ध रहा है। उनका हस्त्यायुर्वेदपरक ग्रन्थ मुद्रित हुआ है। कुमारिल भट्ट के तन्त्रवार्त्तिक में इस ग्रन्थ का वाक्य उद्धृत हुआ है (पृ० २५९, आनन्दाश्रम संस्क०)।

अश्वायुर्वेद के दो वक्ता हैं—धन्वन्तरि (अ० २८८) तथा शालिहोत्र (२८९-२९१)। गजशान्ति (अ० २९१) के वक्ता भी शालिहोत्र हैं। अद्भुत-

---

१. द्र० Ancient Indian Historical Tradition ग्रन्थ (पृ० ८०)।

२. यहां यह ध्यान देने योग्य है कि कालिदास ने भी शकुन्तला नाटक में शकुन्तलापुत्र भरत के विषय में यह नहीं कहा कि इस देश का नाम भरत के नाम के अनुसार हुआ था।

३. अग्निपुराण के इन अध्यायों पर पूर्ववङ्ग-निवासी कविराज (वैद्य) गङ्गाधर (१७९८-१८८५ ई०) का एक भाष्य है। यह भाष्य अब अप्रचलित हो गया है। भाष्यकार ने चरक पर जल्पकल्पतरु-नामक सुप्रसिद्ध टीका लिखी है।

सागर ग्रन्थ में शालिहोत्र के मत उद्धृत हुये हैं। धन्वन्तरि द्वारा प्रोक्त गवायुर्वेद का विवरण अ० २९२ में मिलता है। यहां गोचिकित्सा के साथ गोपरक शान्तिकर्म भी उक्त हुआ है।[1]

(अ० २३९-३२७) नानाविध (वैदिक एवं तान्त्रिक) मन्त्रों का प्रयोग, तथा मन्त्रसिद्धि के उपाय यहां कहे गये हैं। अ० २९५ में मन्त्रप्रयोग द्वारा सर्पदंश की चिकित्सा कही गई है, इस अध्याय में विषसम्बन्धी आवश्यक बातें मिलती हैं। स्तम्भनादि-षट्कर्म-परक मन्त्र अ० ३१५ में हैं।

(अ० ३२८-३४५) छन्दःशास्त्र-परक जो विवरण यहां दिया गया है, वह पिङ्गलछन्दःसूत्र पर आधारित है। छन्दःसूत्र के विषयक्रम का भी अनुसरण अनेक स्थलों पर किया गया है—यह देखा जाता है। छन्दसम्बन्धी गण, छन्दों के देवता, पाद, उत्कृति आदि छन्दोभेद, सम-अर्धसम-विषम रूप तीन छन्द-प्रकार, यति तथा प्रस्तार का विशद विवरण यहां मिलता है।

कुछ श्लोकों के पाठ भ्रष्ट हैं। ३३०।९ (स्कन्धो ग्रीवा...) का पाठ भ्रष्ट है; शुद्ध पाठ होगा—'स्कन्धोग्रीवी क्रौष्टुकेः स्याद् यास्कस्योरोबृहत्यपि; द्र० छन्दसूत्र ३।२९-३०। ३३४।२६ में मत्तक्रीडा नाम छपा है जो मत्ता क्रीडा होगा (द्र० छन्दःसूत्र ७।२८), उसी प्रकार ३३४।२९ में जो 'दण्डदः' शब्द है, वह दण्डकः होगा।

(अ० ३३६) शिक्षा ('वर्णोच्चारण-शास्त्र') परक यह अध्याय श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा पर आधारित है—यह स्पष्टतया प्रतीत होता है।

डा० मनोमोहन घोष द्वारा संपादित 'पाणिनीय शिक्षा' (कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित) में इस शिक्षा-अध्याय का अन्तर्भाव किया गया है। सम्पादक ने टिप्पणियोंमें अग्निपुराण के मतों पर कहीं कहीं संक्षिप्त आलोचना की है।

(अ० ३३७-३४७) इन ११ अध्यायों के विषय यथाक्रम में हैं—काव्यादि-लक्षण, नाटकादि-लक्षण, रसनिरूपण, रीतिनिरूपण, नृत्यादिगत अङ्ग-कर्म, अभिनयादि, शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार, शब्दार्थालङ्कार, काव्यगुण तथा काव्य-दोष।

अग्निपुराण के इन अध्यायों के विषय में कई विद्वानों ने विचार किया है। पुराणोक्त मतों का मूल क्या है तथा पुराणमतों का आश्रयणकारी कौन कौन

---

१. गोपरकशास्त्र प्राचीनकाल में रचित हुआ था—यह निश्चित है। बृहत्संहिता (अ० ६१) में पराशरकृत गोलक्षण का उल्लेख है।

आचार्य हैं—इत्यादि विषयों का निरूपण करने की चेष्टा की गई है।[1] डा० सुशीलकुमार दे ने अत्यन्त विशदता के साथ यह दिखाया है कि अग्निपुराणगत यह विवरण भोज के सरस्वतीकण्ठाभरण ग्रन्थ का उपजीव्य है।

(अ० ३४८) एकाक्षराभिधान अर्थात् एकाक्षर कोश। इसमें अ, आ आदि वर्णो के अर्थ दिये गये हैं, कु आदि अक्षरों (व्यन्जन सहित स्वर=अक्षर) के अर्थ भी कहीं कहीं कहे गये हैं। एक दो स्थलों पर मुद्रित पाठ भ्रष्ट हैं—ऋशब्दे चादितौ ऋ स्यात् (३४८।३) का शुद्ध पाठ होगा—'ॠ (दीर्घ ॠ) स्यात्।' ॠ का अर्थ अदिति है—यह प्रसिद्ध है (अदितिपुत्र देवों को 'ऋभु' कहा जाता है)।

पूर्वाचार्यों ने कई एकाक्षर-कोश लिखे हैं।[2] इन ग्रन्थों के आधार पर यह अंश लिखा गया है। (अ० ३४९-३५९) व्याकरण-परक यह प्रकरण कातन्त्र (नामान्तर कलाप) पर आधारित है। स्कन्द ने कात्यायन से यह शास्त्र कहा यह ३४८।२८ तथा ३४९।१ में कहा गया है। यह प्रसिद्ध है कि कातन्त्र व्याकरण मूलतः कुमार (स्कन्द) द्वारा प्रोक्त है (अर्थात् कुमार की कृपा से शर्ववर्मा ने यह व्याकरण रचा है) तथा कात्यायन नामक विद्वान् ने इस व्याकरण का आंशिक पूरण किया है।

यह आश्चर्य है कि इस प्रकरणमें पाणिनीय पद्धति भी अंशतः मिश्रित है,। यहाँ जिस क्रम में व्याकरणीय विषय रखे गये हैं, वह क्रम पाणिनि-व्याकरण का नहीं है, वह अधिकांशतः कातन्त्र में मिलता है। यह ज्ञातव्य है कि इस प्रकरण में जितने उदाहरण दिये गये हैं वे सब कातन्त्र में मिल जाते हैं।

(अ० ३६०-३६७) कोशपरक ये अध्याय सर्वथा अमरकोश पर आधारित है। इसके प्रायः सभी वाक्य अमरकोश के वाक्य (क्वचित् अल्पाधिक परिवर्तित रूप में) ही है। शब्दों का क्रम भी प्रायेण सर्वत्र अमरकोशानुसारी है, क्वचित्

---

१. द्रष्टव्य P. V. Kane कृत History of Sanskrit Poetics (पृ० ४-९); P. C. Lahiri का Theory of रीति and गुण in Agni Purāṇa शीर्षक लेख (Indian Historical Quarterly, IX); Descriptive style of Alankāra's in the Agnipurāṇa (Munshi Felicitation Volume, पृ० ९६-११०); अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग आदि।

२. द्र० नानार्थरत्नमालाकोश (शास्वत कोश के साथ प्रकाशित, Oriental Book Agency), सीमरिकृत एकार्थनाममाला, एकाक्षरीकोश (ज्ञानपीठ-मूर्तिदेवी जैनग्रन्थमाला के अन्त में मुद्रित।

भिन्नता देखी जाती है। अमर में 'संश्लेष उपगूहनम्' के बाद 'प्रत्यादेशो निराकृतिः' कहा गया हैं (संकीर्णवर्ग ३०-३१)। पर अग्निपुराण में प्रत्यादेशो निराकृतिः (२४ श्लोक) के बाद 'संश्लेष उपगूहनम्' (२५) कहा गया है। अ० ३६७ के अन्त में अनुमा, शाब्द, उपमानक' अर्थापति और अभाव का उल्लेख है, पर ये शब्द अमरकोश में नहीं मिलते।[1]

(अ० ३६८-३७१) नित्य, नैमित्तिक, प्राकृत और आत्यन्तिक रूप चार प्रकार के प्रलय का विवरण यहां दिया गया हैं। प्रसंगतः यहां परार्ध का परिमाण कहा गया है, जो १ के बाद १७ शून्य हैं (१००००००००००००००००)।[2] नागेश भट्ट द्वारा उद्धृत ब्रह्माण्डपुराण-वचन में यह मत माना गया है (सप्तशती २।४१ की टीका)। इसी प्रकार आतिवाहिक शरीर का विवरण अ० ३६९ में मिलता है, गर्भोत्पत्ति तथा शरीरावयवों का विवरण इसी अध्याय में तथा अ० ३७० में दिया गया है। अ० ३७१ में प्राणनिर्गमन-मार्गो के नाम तथा नरकों के नाम आवश्यक विवरण के साथ कहे गये हैं। क्षिति के अधोदेश में अष्टाविंशति नरक-कोटि (२८ प्रकार के नरक) की सत्ता ३७१।१३ में कही गई है तथा नरक के २८ नाम १४-१८ श्लोकों में कहे गये हैं।

(अ० ३७२-३८०) इन अध्यायों में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि तथा ब्रह्मज्ञान (अन्तिम तीन अध्यायों में) का उत्कृष्ट विवरण दिया गया है। प्राचीन तथा अर्वाचीन योगग्रन्थों में तथा स्मृतियों में अष्टाङ्ग योग का जो विवरण मिलता है, पुराणोक्त विवरण उससे सारतः भिन्न नहीं है। उपनिषद्, गीता एवं याज्ञवल्क्य स्मृति के कई वचन यहां अविकल रूप से या ईषत् पाठभेद के साथ पठित हुये हैं। ३७९। ७ख—३२ क० में प्रतिपादित विषय विष्णुपुराण (६।५—७) में मिलता है, अ० ३८० का विषय भी विष्णुपु० (२।१५-१६) में मिलता है। संभवतः विष्णुपुराण से ही

---

१. यह ज्ञातव्य है कि अमरकोश की पूर्ति के लिए त्रिकाण्डशेष नामक जो कोश पुरुषोत्तमदेव द्वारा प्रणीत हुआ था, उसमें अनुमा का उल्लेख है (अनुमा त्वनुमानं स्यात् ३।२।११, अग्निपु० का वाक्य है—अनुमा पक्षहेत्वाद्यैः, ३६७। २५)। पर इस कोश में शाब्द, उपमान और अर्थापत्ति का कोई उल्लेख नही है।

२. परार्ध-परिमाण के विषय में मतभेद हैं। शुक्लयजुर्वेद संहिता के अनुसार परार्ध = १०००००००००००० (१ के बाद १२ शून्य) है; पर वेदव्याख्याकार महीधर परार्ध = १००००००००००००००००० (१ के बाद १७ शून्य) कहते हैं। ज्योतिषी धनंजय भट्ट के अनुसार परार्ध = १ के बाद ३१ शून्य है।

इन विषयों को अग्निपुराणकार ने लिया है। खाण्डिक्य-केशिध्वजसंवाद नारदीय पुराण १।४६-४७ में भी है। यह पुराण विष्णुपुराण से अर्वाचीन है)।

इन अध्यायों में कई मुद्रित पाठ भ्रष्ट हैं। 'पातितः श्रावणोवार्तुर्दशनस्वाङ्ग वेदनाः' (३७६।६) का प्रकृतपाठ होगा—'प्रातिमः श्रावणो वार्ता आदर्श-स्वाद-वेदनाः'; तुलनीय योगसूत्र ३।३६।' ३७६।१३ का 'तथा विपक्षकरणः' का शुद्ध पाठ 'तथाऽविपक्तकरणः' होगा। ३८०।४६ का 'निदाघ-ऋतु-संवादम्' 'निदाघऋभुसंवादम्' होगा (इस अध्याय में जहां भी 'ऋतु' है वह 'ऋभु' होगा)।

(अ० ३८१-३८२) कृष्ण ने अर्जुन के प्रति जो कहा (भगवद्गीता) उसका संक्षिप्तसार अ० ३८१ में दिया गया है। इसके प्रायः सभी वाक्य गीता के शब्दों पर आश्रित हैं, कुछ वाक्य शब्दों पर आश्रित न होकर अर्थों पर आश्रित हैं, जैसे 'दुःसंगहानिः सत्संगात् मोक्षकामी च कामनुत्' (३८१।४)। गीता (१८।१४) में 'विविधाश्च पृथक् चेष्टाः' कहा गया है, पर पुराण में 'त्रिविधाश्च' पाठ है (३८१।५१)। शायद यह भ्रष्ट पाठ है। क्या यह हो सकता है कि यहां 'शारीरिक, वाचिक और मानसिक' रूप त्रिविध चेष्टा की बात कही गई है?

यमगीता (अ० ३८२) कठोपनिषद् पर आधारित है। इस उपनिषद् के कई वाक्य यहां अविकलरूप से या किंचित् पाठभेद के साथ उद्धृत हुये हैं। इस अध्याय में कपिल, पञ्चशिख, जैगीषव्य, देवल आदि कुछ आचार्यो (सांख्याचार्यो) के श्रेयः-परक मत उद्धृत हुये हैं (३८२।३-१०) इन नामों में 'गङ्गाविष्णु' नाम भी है, जो सर्वथा सांशयिक है। इस नाम का कोई आचार्य इतिहासपुराणादि में स्मृत नही हुये हैं। यह अवश्य ही भ्रष्ट पाठ है, प्रकृत पाठ क्या होगा—इसका निर्धारण करना दुष्कर है।[२]

---

१. ३।३६ योगसूत्र का मुद्रित पाठ है—'ततः प्रातिम-श्रावण-वेदना-दर्शास्वादवार्ता जायन्ते'। सभी व्याख्याकार षष्ठ सिद्धि का नाम 'वार्ता' (आकारान्त) समझते हैं, यह वस्तुतः अकारान्त वार्त शब्द है। इस विषय में विस्तृत विचार के लिए मेरा An Introduction to the Yoga-sūtra (Chapter V, Section 2) द्रष्टव्य है।

२. अग्निपुराण के श्रेयःपरक श्लोक (३८२।३-११) विष्णुधर्मनामक पुराण में भी हैं। यह अमुद्रित है। इस पुराण में गङ्गाविष्णु के स्थान पर मृगारिष्ट पाठ है; द्रष्टव्य आर० सी० हाजरा कृत Studies in the Upapurāṇas ग्रन्थ Volume I (पृ० १३०)। यह नाम भी अशुद्ध प्रतीत होता है।

(अ० ३८३) अग्निपुराणके स्वरूप तथा माहात्म्य के साथ इस पुराण में प्रतिपादित विषयों का परिचय यहां दिया गया है। इस अध्याय की सामग्री के विषय में भूमिका में यथास्थान विचार किया गया है।

विविध विद्याओं के विवरण से विभूषित साथ ही अनेकत्र भ्रष्ट पाठों से दूषित अग्निपुराण का अनुवाद करना वस्तुतः एक कठिन कार्य है। अग्निपुराण में ऐसे अनेक वाक्य या वाक्यांश है जो दुरूहार्थक हैं, कहीं कहीं अस्पष्टार्थक भी। प्रस्तुत अनुवाद में अनुवादक महोदय का परिश्रम दर्शनीय है। हम उनको धन्यवाद देकर इस भूमिका को समाप्त करते हैं।

रामशंकर भट्टाचार्य
(सम्पादक पुराण
सर्वभारतीय काशिराज न्यास
वाराणसी)



अग्निपुराण—भाग २ की विषयानुक्रमणिका

अध्याय २०९ (पृ० ९६१-९७०)

दान परिभाषा कथन। वापी, कूप आदि के निर्माण से मुक्ति प्राप्ति का वर्णन। अग्निहोत्र वेदादि का परिपालन करने से स्वर्ग की प्राप्ति। ग्रहण आदि में दान आदि का कर्त्तव्यत्व कथन। युगादि में दान की महिमा। युगों का उत्पत्ति काल। आश्विन शुक्ल नवमी आदि में दान का आवश्यकत्वेन कथन। दान-काल में 'दाता को पूर्व मुख होना चाहिए और प्रतिगृहीता को उत्तरमुख होना चाहिए' यह कथन। सुवर्ण, अश्व, तिल आदि दान का महादानत्व कथन। प्रतिज्ञा करके न देने पर वंश-नाश। गुरु आदि का पुण्यदान कथन। दान में पात्र, अपात्र का विचार। कन्या आदि दान के प्राजापत्य आदि देवता हैं, यह कथन। यज्ञ के लिए शूद्र के धन का अग्राह्यत्व। अध्यापन करने और यज्ञ कराने तथा निन्दित प्रतिग्रह लेने से विप्रों का दोषाभाव कथन।

अध्याय २१० (पृ० ९७१-९७६)

महादान। तुला पुरुष आदि सोलह महादानों का निरूपण। मेरु दान का कथन। दश धेनुओं का दान। धेनु की प्रशंसा, गोदान आदि की विधि।

अध्याय २११ (पृ० ९७७-९८७)

नाना दान। गोदान कथन। गोदान प्रशंसा। महिषी आदि का दान। वृषोत्सर्ग विधि का वर्णन। शय्या आदि दान का कथन। काले तिल के बने पुरुष का दान और उसकी प्रशंसा। सुवर्ण आदि दान के फल की प्राप्ति। अन्नदान की प्रशंसा। अभयदान की प्रशंसा। विद्यादान की प्रशंसा। पुस्तक दान का फल निरूपण। विष्णु आदि देवता की प्रतिमा का दान।

अध्याय २१२ (पृ० ९८७-९९३)

मेरुदान। मार्गशीर्ष आदि में पिष्टमय (आटे के बने) अश्व आदि के दान का वर्णन। मेरुदान की विधि। मेरुदान का फल वर्णन। महामेरुदान। सुवर्ण मेरुदान आदि का कथन।

अध्याय २१३ (पृ० ९९३-९९४)

पृथ्वीदान। पांच भार सोने से सात द्वीपों वाली समुद्र समेत पृथ्वी बना कर दान करने का कथन। पृथ्वी दान का फल कथन। पाँच सौ पल सुवर्ण से

कामधेनु कामधेनु बनाकर दानकी विधि। धेनुदान। सालङ्कार (आभूषणयुक्त) स्त्री दान करने से अश्वमेध यज्ञ की प्राप्ति। भूमिदान आदि का कथन।

अध्याय २१४ (पृ० ९९५-१००१)

नाड़ीचक्रकथन। नाभि से नीचे मूलाधार से बहत्तर हजार नाड़ियों की उत्पत्ति का कथन। उनके बीच इडा आदि प्रधान नाड़ियों का कथन। प्राण अपान आदि वायुओं का प्रतिपादन। नाग, कूर्म आदि उपवायुओं का कथन। प्राणादि वायुओं का लक्षण। जीव के दश स्थानों से प्रयाण करने का वर्णन। सुषुम्ना आदि नाडियों का स्थान कथन। प्राणायाम कथन। अजपा गायत्री का जप विधान देह में ब्रह्मादि देवताओं का स्थान कथन। प्रासाद का लक्षण। जप होम आदि की विधि।

अध्याय २१५ (पृ० १००१-१००८)

सन्ध्या-विधि। 'ओं' कार सभी मंत्रों के लिए उपयोगी है, यह कथन। गायत्री-माहात्म्य-वर्णन। गायत्री मंत्र के ऋषि आदि का कथन। गायत्री के वर्ण, देवता आदि का कथन। मार्जन, अघमर्षण आदि का विधान।

अध्याय २१६ (पृ० १००९-१०११)

गायत्री-निर्वाण। गायत्री जप की कर्तव्यता। हवन से वृष्टि आदि की उत्पत्ति का कथन।

अध्याय २१७ (पृ० १०१२-१०१३)

गायत्री-निर्वाण। लिङ्गमूर्ति-शिव-स्तुति कथन। वशिष्ठ के प्रति शिव कृत वरदान आदि का कथन।

अध्याय २१८ (पृ० १०१४-१०१९)

राज्याभिषेक कथन। राजलक्षण। संवत्सर पर्यन्त पुरोहित आदि का वरण। राज्याभिषेक के पहले ऐन्द्री शान्ति का विधान। अभिषेक दिन के कर्तव्य विधि का निरूपण अभिषेक के लिए मृत्तिकाहरण आदि का कथन। सौ छिद्र वाले सुवर्ण पात्र से अभिषेक का कथन। विष्णु आदि देवताओं की पूजा-विधि।

अध्याय २१९ (पृ० १०१९-१०२८)

अभिषेक मन्त्र।

अध्याय २२० (पृ० १०२८-१०३२)

सहाय सम्पत्ति। राजा द्वारा ब्राह्मण और क्षत्रिय में से किसी एक नीतिज्ञ को सेनापति बनाने का कथन। दूत आदि का संग्रह। उत्तम, मध्यम और अधम पुरुषों को उन-उन कार्यों में नियुक्त करने का कथन। शरण चाहने की इच्छा से दूसरे राजा के गृह से आये हुए दुष्ट और अदुष्ट का विचार करके शरण देना। राजाओं को शत्रुओं के प्रति व्यवहार करने का क्रमिक निरूपण।

अध्याय २२१ (पृ० १०३२-१०३५)

अनुजीवियों का राजा के प्रति कर्तव्य का वर्णन।

अध्याय २२२ (पृ० १०३५-१०३९)

दुर्ग सम्पत्ति। राजा के लिए संग्रहणीय देश का कथन। दुर्ग संरचना वर्णन। विष आदि से राजा की रक्षा करने का वर्णन। प्रसंगतः विष से पीड़ित वृक्ष आदि का कथन। विषनाशक वृक्ष का ज्ञान करना। देवता सम्बन्धी द्रव्य आदि का हरण करने से राजा को नरक की प्राप्ति। देवालय आदि के निर्माण से स्वर्ग आदि की प्राप्ति। राजधर्म कथन। स्त्रीधर्म कथन।

अध्याय २२३ (पृ० १०३९-१०४४)

राजधर्म। ग्रामाधिपति के स्थापन आदि का कथन। प्रजापालन आदि राज नियम का निरूपण। नष्टस्वामिक द्रव्य की व्यवस्था। राजा द्वारा ग्राह्य राज-कर का निरूपण। राजाओं द्वारा अपने धर्म के पालन से आयुवृद्धि आदि फल-प्राप्ति का कथन।

अध्याय २२४ (पृ० १०४४-१०५०)

राजधर्म। विरक्ता स्त्री का त्याग कथन। अनुरक्ता स्त्रियों का संग्रहण। स्नानोपयोगी द्रव्यों का कथन। मुखरोग विनाशक गुटिका का प्रयोग कथन। स्त्रियों की रक्षा का निरूपण।

अध्याय २२५ (पृ० १०५०-१०५६)

राजधर्म। राजकुमारों को उपदेश। राजा के लिए दिन में सोने का निषेध। राजा के गुप्त मन्त्रणा करने का कथन।

कामादि का निषेध। आन्वीक्षिकी आदि के द्वारा अर्थ विज्ञान आदि का चिन्तन—प्रकार। ब्रह्मचारियों और संन्यासियों के अहिंसा आदि सामान्य धर्मों का कथन।

अध्याय २३९ (पृ० १११८-११२५)

राजधर्म। राज्य के सप्ताङ्ग का कथन। अच्छे राजा का गुण निरूपण। आत्म-सम्पदा रूप गुण का कथन। मंत्री के गुण का कथन। पुरोहित के गुण का वर्णन। मित्र-संग्रह आदि का कथन। अनुजीवियों का आचार कथन। अष्टवर्ग के परिपालन आदि का कथन।

अध्याय २४० (पृ० ११२५-११३०)

छहगुण। बारह राजमण्डल आदि का निरूपण। संधि-विग्रह यान और आसन का कथन। संधि का सोलह प्रकार। बाल, वृद्ध आदि के साथ सन्धि न करने का विचार। सापत्न्य आदि भेद से वैर का पाँच प्रकार से वर्णन। विग्रह के अवसर का वर्णन। यान के पाँच प्रकार का कथन। आसन का भी पाँच प्रकार से कथन।

अध्याय २४१ (पृ० ११३०-११४०)

साम आदि। प्रभाव और उत्साह आदि के द्वारा मन्त्र-शक्ति की प्रशस्ति का वर्णन। विज्ञान भेद से मन्त्र के पञ्चांग का कथन। कर्मसिद्धि के लक्षण का कथन। राजदूत का लक्षण-निरूपण। शत्रु के छिद्र का पता लगाने का प्रकार। राज-व्यसन का कथन। सचिव व्यसन का कथन। राष्ट्र व्यसन आदि का कथन। पंचविध दान का वर्णन। शत्रुओं को डराने के लिए इन्द्रजाल का निर्माण।

अध्याय २४२ (पृ० ११४०-११५२)

राजनीति। सेना-रचना का वर्णन। युद्ध धर्म का कथन। सेना के विभाग से व्यूह आदि की रचना का कथन। गोमूत्रिका आदि रूप में व्यूह का वर्णन। गोमूत्रिका आदि व्यूहों का लक्षण।

अध्याय २४३ (पृ० ११५२-११५६)

पुरुष लक्षण। त्रिवली युक्त पुरुष का त्रिकालज्ञत्व आदि कथन।

अध्याय २५२ (पृ० ११८०-११८५)

धनुर्वेद कथन । ढाल तलवार आदि अनेक प्रकार के शस्त्र धारण कर लेने पर भ्रान्तोद्भ्रान्त (पैंतरे बदलने) आदि भेद से नाना जातीय प्रकार का वर्णन ।

अध्याय २५३ (पृ० ११८५-११९६)

व्यवहार कथन । नीति, अनीति का विवेचन । दो प्रकार के अभियोग का कथन । धरोहर के लक्षण । मूल्य लेकर विक्रेय वस्तु वेंचकर क्रेता को न देने सम्बन्धी विवाद का कथन ।

अध्याय २५४ (पृ० ११९६-१२०१)

व्यवहार कथन । ऋण चुकाने आदि का व्यवहार कथन ।

अध्याय २५५ (पृ० १२०१-१२१०)

दिव्य प्रमाण कथन । साक्षी के लक्षण आदि का कथन । कूटसाक्षी (मिथ्या साक्षी) को पातक लगने का कथन । उसको दण्ड देने का प्रकार । लिखा-पढ़ी के साथ दिये गये ऋण का देना इत्यादि कथन । सत्य परीक्षण आदि में सात पीपल के पत्तों पर अग्निमय लौह पिण्ड को सूत्रों से वेष्ठित करके हाथों पर धारण करने का वर्णन ।

अध्याय २५६ (पृ० १२१०-१२१६)

पैतृक धन का विभाग । माता-पिता के मर जाने के बाद सम्पत्ति को समरूप से बाँटने का कथन । विद्या से उपलब्ध धन का बटवारा न होने का कथन । औरस आदि पुत्रों के भेद का कथन । धनाधिकारियों का निरूपण । स्त्री धन आदि का कथन । स्त्री धन के अधिकारी का कथन । दुर्भिक्ष आदि संकट काल में स्वामी द्वारा गृहीत स्त्री धन को पुनः न लौटाने का कथन ।

अध्याय २५७ (पृ० १२१६-१२२६)

सीमा विवाद का निर्णय । मिथ्या सीमा विवाद होने पर दण्ड का निरूपण । अनाज को क्षति पहुँचाने वाले भैंस आदि पशुओं को दण्ड देने का विधान । काम करने वालों को वेतन आदि देने का कथन ।

अध्याय २५८ (पृ० १२२६-१२४०)

वाणी की कठोरता आदि का प्रकरण। मिथ्या बोलने वालों को अनेक प्रकार के दण्ड का कथन।

अध्याय २५९ (पृ० १२४०-१२५६)

ऋचा का विधान। गायत्री जप आदि की विधि का निरूपण 'अग्निमीले पुरोहितं' इस ऋचा का एक वर्ष पर्यन्त जप करने से सभी कामनाओं की पूर्ति कथन। 'सदसस्पति' आदि मन्त्रों से अनेक प्रकार के अनुष्ठान का कथन।

अध्याय २६० (पृ० १२५६-१२६८)

यजुर्विधान। होम आदि अनेक प्रकार के अनुष्ठानों का निरूपण। उन अनुष्ठानों का फल कथन।

अध्याय २६१ (पृ० १२६९-१२७३)

साम विधान। 'यत इन्द्र भयामहे' इत्यादि मन्त्र के जप से हिंसा जनित दोष के विनाश का फल। 'सर्पसाम' मन्त्र का प्रयोग करने से सर्पभय का नाश कथन। अनेक प्रकार के अनुष्ठानों का कथन। उनकी फल-प्राप्ति का वर्णन।

अध्याय २६२ (पृ० १२७३-१२७६)

अथर्व विधान। होमादि अनुष्ठान की विधि।

अध्याय २६३ (पृ० १२७७-१२८२)

उत्पात शान्ति। भक्ति पूर्वक श्री सूक्त का जप करने से लक्ष्मी की प्राप्ति आदि का कथन। 'अमृता' अभया' आदि शान्तियाँ सभी प्रकार के उत्पातों की नाशक हैं, यह कथन। उल्कापात आदि की शान्ति का निरूपण। अकाल प्रसव एवं विकृत प्रसव की शान्ति का कथन। आकाश में तुरही आदि के शब्द की शान्ति।

अध्याय २६४ (पृ० १२८२-१२८६)

देवपूजा और वैश्व देव बलि। मन्त्रपूर्वक विष्णु पूजा विधि का कथन। विष्णु के उद्देश्य से होम विधि का निरूपण। देवताओं को बलिदान अर्पण-का कथन। पिण्ड प्रदान का विधान।

अध्याय २५२ (पृ० ११८०-११८५)

धनुर्वेद कथन। ढाल तलवार आदि अनेक प्रकार के शस्त्र धारण कर लेने पर भ्रान्तोद्भ्रान्त (पैंतरे बदलने) आदि भेद से नाना जातीय प्रकार का वर्णन।

अध्याय २५३ (पृ० ११८५-११९६)

व्यवहार कथन। नीति, अनीति का विवेचन। दो प्रकार के अभियोग का कथन। धरोहर के लक्षण। मूल्य लेकर विक्रेय वस्तु वेंचकर क्रेता को न देने सम्बन्धी विवाद का कथन।

अध्याय २५४ (पृ० ११९६-१२०१)

व्यवहार कथन। ऋण चुकाने आदि का व्यवहार कथन।

अध्याय २५५ (पृ० १२०१-१२१०)

दिव्य प्रमाण कथन। साक्षी के लक्षण आदि का कथन। कूटसाक्षी (मिथ्या साक्षी) को पातक लगने का कथन। उसको दण्ड देने का प्रकार। लिखा-पढ़ी के साथ दिये गये ऋण का देना इत्यादि कथन। सत्य परीक्षण आदि में सात पीपल के पत्तों पर अग्निमय लौह पिण्ड को सूत्रों से वेष्ठित करके हाथों पर धारण करने का वर्णन।

अध्याय २५६ (पृ० १२१०-१२१६)

पैतृक धन का विभाग। माता-पिता के मर जाने के बाद सम्पत्ति को समरूप से बाँटने का कथन। विद्या से उपलब्ध धन का बटवारा न होने का कथन। औरस आदि पुत्रों के भेद का कथन। धनाधिकारियों का निरूपण। स्त्री धन आदि का कथन। स्त्री धन के अधिकारी का कथन। दुर्भिक्ष आदि संकट काल में स्वामी द्वारा गृहीत स्त्री धन को पुनः न लौटाने का कथन।

अध्याय २५७ (पृ० १२१६-१२२६)

सीमा विवाद का निर्णय। मिथ्या सीमा विवाद होने पर दण्ड का निरूपण। अनाज को क्षति पहुँचाने वाले भैंस आदि पशुओं को दण्ड देने का विधान। काम करने वालों को वेतन आदि देने का कथन।

अध्याय २६५ (पृ० १२८७-१२६०)

दिक्पाल आदि का स्नान। देवालय आदि में स्नान से पृथक् फल प्राप्ति का वर्णन। गदहपुरना आदि से उबटन लगाकर स्नान करने का विधान। मण्डल में विष्णु आदि देवता का पूजन पूर्वक होम विधि का निरूपण। कलश में ओषधि प्रक्षेपण का विधान।

अध्याय २६६ (पृ० १२६०-१२६३)

विनायक-स्नान। दुःस्वप्न दर्शन के दोष विनाशक विधि का प्रतिपादन। स्त्रियों की सन्तान-हीनता दोष के विनाशक स्नान विधि का निरूपण। होमादि विधि कथन।

अध्याय २६७ (पृ० १२६४-१२६८)

माहेश्वर स्नान, लक्ष कोटि होम। राजा आदि के जय वर्द्धक माहेश्वर स्नान। मन्त्रपूर्वक होम विधि का कथन। शूलपाणि का पूजन। घृतादि के स्नानादि से आयुवर्धन रूप फल का कथन। विष्णु के चरणोदक से स्नान की उत्तमता का कथन। 'अक्रन्दयति' इस सूक्त से हाथ मे मणिबन्धन आदि प्रकार का वर्णन। घृत आदि से विष्णु-स्नान। धूपदीप आदि से विष्णु पूजन का विधान। लक्ष होम, कोटि होम का प्रतिपादन।

अध्याय २६८ (पृ० १२६८-१३०३)

नीराजन विधि। जन्म नक्षत्र में राजपूजन और अगस्त्योदय में अगस्त पूजन। चातुर्मास्य में विष्णुपूजन। विष्णु के शयन और जागरण के अवसर पर पाँच दिन उत्सव मनाने का कथन। भाद्रपद के शुक्ल पक्ष में इन्द्रध्वज-स्थापन पूर्वक शची और इन्द्र का पूजन। ब्रह्मा आदि की प्रार्थना। भद्रकाली पूजन। नीराजन आदि विधियों का कथन।

अध्याय २६९ (पृ० १३०३-१३०८)

छत्र आदि की प्रार्थना के मन्त्र।

अध्याय २७० (पृ० १३०८-१३११)

विष्णुपञ्जर। विष्णु के आयुध गदा आदि का पृथक्त्वेन वर्णन। वासुदेव प्रार्थना।

अध्याय २७९ (पृ० १३४८-१३५९)

सिद्धौषध। अधोगामी ज्वर में वमन एवं ऊर्ध्वगामी ज्वर में विरेचन करने का कथन। ज्वर आदि की निवृत्ति के लिए सिद्ध औषध। वात रोग आदि में तक्रारिष्ट की हितकारकता।

अध्याय २८० (पृ० १३५९-१३६६)

सर्वरोगहारक औषध। शारीरिक, मानसिक, आगन्तुक तथा सहज व्याधियों का पृथक्-पृथक् वर्णन। इनके परिहार के लिए रविवार आदि में घृत-गुड़ आदि के दान का कथन। शिशिर आदि का धर्म-कथन। रोगोत्पत्ति के निदान का निरूपण। वात, प्रकृति आदि का लक्षण-कथन।

अध्याय २८१ (पृ० १३६६-१३७२)

रसादि का लक्षण। कषाय कल्पना आदि का कथन। कषाय में द्रव्य परिमाण का कथन। लेह्य चूर्ण के गुण का वर्णन। निदाघ आदि में मालिश कराने का विधान। 'अजीर्णता में परिश्रम नहीं करना चाहिए' यह कथन। व्यायाम आदि के द्वारा कफ नाश आदि का कथन।

अध्याय २८२ (पृ० १३७२-१३७४)

वृक्षायुर्वेद। उत्तर आदि दिशाओं में वटादिवृक्षों का शुभत्वेन कथन। ब्राह्मण और चन्द्रमा का पूजन पूर्वक वृक्षारोपण करने का विधान। अशोक आदि वृक्षों को ग्रीष्म ऋतु में सायं प्रातः सींचने का वर्णन। शीतकाल में एक दिन का अन्तर करके सींचने का निरूपण। वृक्षों के फल फूल की समृद्धि के लिए वायविडंग और घृत आदि से सींचने का विधान।

अध्याय २८३ (पृ० १३७५-१३८३)

अनेक रोग नाशक औषध। सर्वातिसार आदि रोगों में सिंही शटी इत्यादि ओषधियों से निर्मित काढ़े का विधान। वात-रोग-नाशक औषध। बवासीर में तक्रादि सेवन करने का विधान। मूत्रकृच्छ्र आदि रोग नाशक कषायादि का वर्णन।

अध्याय २८४ (पृ० १३८३-१३८५)

मन्त्ररूप औषध कथन। ओंकारादि मन्त्र आयु और आरोग्य के वर्धक हैं यह कथन।

अध्याय २८५ (पृ० १३८६-१३९८)

मृतकों को जिलाने वाला सिद्धयोग। वातजन्य ज्वर आदि में बेल आदि पञ्च मूल का काढ़ा। गण्ड माला रोग नाशक तेल आदि का कथन स्त्रियों के प्रदर रोग नाशक औषध। दिन और रात्रि में अन्धत्व निवारक गुटिका अंजन आदि का कथन।

अध्याय २८६ (पृ० १३९८-१४०२)

मृत्युञ्जय कल्प। रोग मर्दक त्रिफला आदि चूर्ण का कथन। कुष्ठ नाशक क्वाथ आदि का कथन। बालों को काला करने वाले तेल आदि का कथन।

अध्याय २८७ (पृ० १४०२-१४०७)

गज चिकित्सा। हाथी का विशेष लक्षण कथन गज रोग नाशक औषध। मद से क्षीण हुए हाथी का पय: पान आदि। हाथी के नेत्रों में गौरैया आदि के मल का अंजन।

अध्याय २८८ (पृ० १४०७-१४१८)

अश्व वाहन सार। घोड़े आदि वाहनों के सम्बन्ध में अश्विन्यादि नक्षत्रों की प्रशस्ति। घोड़े के मुँह पर प्रहार करने का निषेध। अश्व के शरीर में ब्रह्मा आदि देवताओं को जोड़ने का प्रकार। अश्व की प्रार्थना। अश्वारोहण आदि का वर्णन। मक्खी आदि के काटने से श्रम विनाशक अंग लेप आदि का कथन। गुण विशेष के दर्शन से अश्वों में द्विज आदि जातीयता का कथन।

अध्याय २८९ (पृ० १४१८-१४२६)

अश्व-चिकित्सा। अश्व के लक्षण। अश्व के अतिसार रोग नाशक क्वाथ (काढ़ा) आदि का कथन। अनार, त्रिफला, सोंठ, पीपर, मिर्च आदि को अश्व पोषक बताना। अश्व-शोथ आदि के नाशक लेपादि का कथन।

अध्याय २९० (पृ० १४२६-१४२८)

अश्वशान्ति। अश्व रोग नाशक शान्ति प्रयोग।

अध्याय २९१ (पृ० १४२८-१४३२)

गजशान्ति। गज रोग नाशक शान्ति प्रयोग।

अध्याय २६२ (पृ० १४३२-१४३६)

गवायुर्वेद। गौ का माहात्म्य वर्णन। महा शान्तपन व्रत कथन। कृच्छ्र अतिकृच्छ्र और तप्तकृच्छ्र आदि व्रतों का कथन। गोमती विद्या के जप से गोलोक की प्राप्ति का वर्णन। गो रोग नाशक तेल आदि का कथन।

अध्याय २६३ (पृ० १४३६-१४४७)

मंत्र परिभाषा। स्त्री, पुरुष नपुंसक के भेद से मंत्र की जातियों के तीन प्रकार। स्त्री आदि मंत्रों के लक्षण। गुरु लक्षण। शिष्य लक्षण। कपट से मंत्र ग्रहण करने की अनर्थकता। मंत्र जप का विधान आदि। अंग सहित मंत्रों का सिद्धिदायकत्व कथन।

अध्याय २६४ (पृ० १४४७-१४५४)

नाग लक्षण। शेष, वासुकि, तक्षक आदि का प्रधानत्वेन वर्णन। विविध नाग जातियों का वर्णन। प्रस्थान काल में शुभ शकुन आदि का कथन।

अध्याय २६५ (पृ० १४५४-१४६१)

डसे हुए की चिकित्सा। विषके दो प्रकार। विषनाशक तार्क्ष्य आदि का कथन।

अध्याय २६६ (पृ० १४६१-१४६४)

पञ्चाङ्ग रुद्र विधान। विष व्याधिनाशक पञ्चांग मंत्रों का कथन। विष हरण करने वाले कुब्जिका आदि देवताओं का कथन।

अध्याय २६७ (पृ० १४६४-१४६६)

विषहारक मन्त्र और औषध। विषनाशक औषध-कथन।

अध्याय २६८ (पृ० १४६७-१४७१)

सर्पादि की चिकित्सा। सर्पादि के विषनाशक औषध। मन्त्र पूर्वक औषध-सेवन का विधान।

अध्याय २६९ (पृ० १४७१-१४८१)

बालादि ग्रहनाशक बालतन्त्र। बालपीड़ा-निर्वतक धूप आदि का विधान। देवता के उद्देश्य से बलिदान आदि का विधान। बालग्रह नाशक मंत्रों का कथन।

अध्याय ३२७ (पृ० १६०७-१६१०)

देवालय माहात्म्य। माला जप विधि का निरूपण। शिवलिंग पूजा की महिमा का वर्णन। वित्त के अनुसार देवालय बनाने का विधान।

अध्याय ३२८ (पृ० १६१०-१६११)

छन्दःसार।

अध्याय ३२९ (पृ० १६११-१६१२)

छन्दःसार। यजुओं की छह अक्षरों वाली गायत्री। ऋचाओं की अठारह अक्षरों वाली गायत्री का भेद निरूपण। गायत्री का छन्द निरूपण।

अध्याय ३३० (पृ० १६१२-१६१८)

छन्दःसार। पाद भेद से छन्दों का भेद कथन। छन्दों के देवता का कथन।

अध्याय ३३१ (पृ० १६१८-१६२३)

छन्दजाति का निरूपण। उत्कृति आदि छन्दों की जाति का कथन।

अध्याय ३३२ (पृ० १६२४-१६२६)

विषमवृत्त कथन।

अध्याय ३३३ (पृ० १६२७-१६२८)

अर्धसमवृत्त निरूपण।

अध्याय ३३४ (पृ० १६२९-१६३६)

समवृत्त निरूपण।

अध्याय ३३५ (पृ० १६३६-१६३७)

प्रस्तार निरूपण।

अध्याय ३३६ (पृ० १६३७-१६४१)

शिक्षा निरूपण। कण्ठस्थान आदि का निरूपण।

अध्याय ३३७ (पृ० १६४२-१६४८)

काव्य आदि का लक्षण। काव्य लक्षण, गद्य-पद्य आदि भेद से काव्य का तीन प्रकार से वर्णन। आख्यायिका आदि भेद से गद्य काव्य का पाँच प्रकार। आख्यायिका आदि का लक्षण। पद्य कुटुम्बादि का कथन। महाकाव्य लक्षणादि कथन।

अध्याय ३३८ (पृ० १६४६-१६५३)

नाटक निरूपण। नाटक प्रकरण आदि का भेद निरूपण। नाट्य लक्षण। पूर्व रंग में नान्दी मुख लक्षण। नटी, विदूषक, पारिपार्श्वक आदि पात्रों का कथन। कथोद्घात लक्षण। सिद्धोत्प्रेक्षितादि के भेदों का कथन।

अध्याय ३३६ (पृ० १६५३-१६६२)

शृंगारादि रसों का निरूपण। रति, हास आदि का लक्षण। विभाव का आलम्बन उद्दीपन भेद से दो प्रकार का वर्णन। धीरोदात्त आदि नायकों का भेद। शृंगार में नायक के नर्मसचिवों और अनुनायकों का कथन। भाषण आदि का स्वरूप-कथन।

अध्याय ३४० (पृ० १६६२-१६६४)

रीति निरूपण। पाञ्चाली, गौड़ी आदि भेद से रीति निरूपण।

अध्याय ३४१ (पृ० १६६४-१६६७)

नृत्य आदि में अंग कर्मों का निरूपण। स्त्रियों के लीला-विलास आदि भेद से शरीर चेष्टा विशेष का कथन। शिरः कम्पन से आकम्पित आदि भेद के द्वारा तेरह प्रकार का वर्णन। सात प्रकार से भृगुटि-प्रदर्शन। तारक आदि का नवधा कर्मादि कथन।

अध्याय ३४२ (पृ० १६६८-१६७३)

अभिनय आदि का निरूपण। अभिनय लक्षण। रस आदि के विनियोग का कथन। शृंगार के सम्भोग, विप्रलम्भ भेद से दो प्रकार का कथन। पुनः उन भेदों का निरूपण। हास आदि का लक्षण। करुण आदि रसों के भेद का निरूपण। शब्दालंकार लक्षण।

अध्याय ३४३ (पृ० १६७३-१६८४)

शब्दालंकार। अनुप्रास आदि अलंकारों का कथन। चक्रबन्ध आदि का निरूपण। गोमूत्र आदि अनेक बन्धों का कथन।

अध्याय ३४४ (पृ० १६८४-१६८९)

अर्थालंकार। सादृश्य आदि अलंकारों का निरूपण। उनके लक्षणों का निरूपण।

अध्याय ३४५ (पृ० १६९०-१६९३)

शब्दार्थालंकार। प्रशस्ति इत्यादि से छह भेदों का कथन। उनके लक्षण का कथन।

अध्याय ३४६ (पृ० १६९३-१६९७)

काव्य गुण विवेक। शब्द गुण कथन। गुण लक्षण। प्रसाद आदि गुणों का लक्षण। द्राक्षा एवं नारिकेल पाकों का कथन।

अध्याय ३४६ (पृ० १६९८-१७०४)

राग लक्षण आदि का कथन।

अध्याय ३४७ (पृ० १७०५-१७०९)

काव्यदोष विवेक। श्रव्य काव्यों के उद्वेग जनक दोष का सात प्रकार से वर्णन। असाधुत्व और अप्रयुक्तत्व दोषों का पदनिग्रहत्वेन प्रतिपादन और उन दोनो के शब्द शास्त्र विरुद्ध होने से असाधुत्वेन कथन। छान्द सत्व, अविस्पृष्टत्व आदि दोषों का कथन। उनका लक्षण-कथन। विसन्धि आदि दोषों का कथन।

अध्याय ३४८ (पृ० १७०५-१७०९)

एकाक्षराभिधान (कोश)। एकाक्षर मंत्र निरूपण। मातृका मन्त्र कथन। नवदुर्गा का पूजन विधान। गणपति मन्त्र कथन। स्वाहान्त मन्त्र से हवन पूजन विधान।

अध्याय ३४९ (पृ० १७०९-१७११)

व्याकरण-सार। प्रत्याहार साधक सूत्रों का कथन। अण् आदि प्रत्याहारों का कथन।

अध्याय ३६० (पृ० १७६०-१७७४)

स्वर्ग पातालादि वर्ग ।

अध्याय ३६१ (पृ० १७७४-१७८१)

अव्यय वर्ग ।

अध्याय ३६२ (पृ० १७८१-१७८८)

नानार्थ वर्ग ।

अध्याय ३६३ (पृ० १७८९-१८०१)

भूमि वनौषधि आदि वर्ग ।

अध्याय ३६४ (पृ० १८०१-१८०६)

मनुष्य ब्रह्मक्षत्रविट्शूद्रवर्ग

अध्याय ३६५ (पृ० १८०७-१८०८)

ब्रह्म वर्ग ।

अध्याय ३६६ (पृ० १८०९-१८१७)

क्षत्रविट्शूद्र वर्ग ।

अध्याय ३६७ (पृ० १८१७-१८२२)

सामान्य नामों के लिङ्ग ।

अध्याय ३६८ (पृ० १८२२-१८२६)

प्रलय वर्णन । नित्य, नैमित्तिक, प्राकृत, आत्यन्तिक आदि भेदों से चार प्रकार के प्रलयों वर्णन ।

अध्याय ३६९ (पृ० १८२७-१८३३)

आत्यन्तिकलय और गर्भोत्पत्ति का निरूपण । शारीरिक और मानसिक भेद से आध्यात्मिक संताप का दो प्रकार से वर्णन । भोगदेह को त्यागकर कर्म से जीव का गर्भान्तर प्राप्त करने का कथन । शुभाशुभ कर्म फल निरूपण । गर्भ में स्थित जीव के प्रथम आदि मासो में तत्तत् अवयवों की उत्पत्ति का कथन । सात्त्विक आदि गुणों का लक्षण । देह में रुधिर आदि का गुण. कथन ।

अध्याय ३७० (पृ० १८३४-१८४०)

शरीर के अवयव। कर्मेन्द्रियों का निरूपण। देह में सात आशयों का कथन। पैर से लेकर सिर तक शरीर में सोलह जालों का निरूपण। ग्रीवा आदि अवयवों में नाडी का प्रमाण।

अध्याय ३७१ (पृ० १८४०-१८४६)

नरक निरूपण। 'शुभ कर्म करने वाले पुरुषों के प्राण ऊर्ध्वगामी होते हैं' यह कथन। याम्य मार्ग कथन। तामिस्र आदि नरकों का निरूपण। पापियों के नाना प्रकार की जातनाओं का वर्णन। आध्यात्मिक आदि तापों का लक्षण।

अध्याय ३७२ (पृ० १८४६-१८५१)

यमनियम। अष्टांग योग निरूपण। बलपूर्वक दूसरे का धन हरण करने पशु पक्षी योनि की प्राप्ति होती है, यह कथन। मन पर विजय आदि का कथन। विष्णु पूजन से उत्तम गति होती हैं, यह कथन।

अध्याय ३७३ (पृ० १८५२-१८५५)

आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार।

अध्याय ३७४ (पृ० १८५५-१८६०)

ध्यान। ध्यान-यज्ञ मुक्ति का साधन हैं, यह कथन। हृदय में विष्णु के ध्यानादि का कथन।

अध्याय ३७५ (पृ० १८६०-१८६४)

धारणा। धारणा लक्षण कथन। वारुणी धारणा। ऐशानी धारणा। धारणा आदि से साधक क्लेश रहित हो जाता है, यह कथन।

अध्याय ३७६ (पृ० १८६४-१८७०)

समाधि। समाधि का लक्षण। योगी की प्रशंसा। योगी सूर्यमण्डल का भेदन तथा ब्रह्मलोक का अतिक्रमण करके श्रेष्ठ गति को प्राप्त करते हैं, यह निरूपण। सदाचारी गृहस्थ की भी मुक्ति होती है, यह कथन।

अध्याय ३७७ (पृ० १८७०-१८७४)

ब्रह्मज्ञान। देह आत्मा नहीं है, यह कथन। आत्मा का सर्वद्रष्टा होना, सर्व भोक्ता होना, यह कथन। लिंग शरीरादि की उत्पत्ति। ब्रह्मज्ञाता संसार से मुक्त हो जाता है, यह कथन।

अध्याय ३७८ (पृ० १८७४-१८७७)

ब्रह्मज्ञान।

अध्याय ३७९ (पृ० १८७७-१८८२)

ब्रह्मज्ञान। यज्ञों से देवताओं की प्राप्ति। तप से वैराग्य पद की प्राप्ति, कर्म संन्यास से ब्रह्मपद की प्राप्ति, वैराग्य से कृति में लय, ज्ञान से कैवल्य (मोक्ष) की प्राप्ति' ये पाँच गतियाँ जीव की होती हैं, यह कथन। ब्रह्मज्ञान लक्षण आदि का कथन।

अध्याय ३८० (पृ० १८८२-१८९३)

अद्वैतब्रह्म विज्ञान। अन्त काल में मृग का स्मरण करने से मृग की ही देह मिली, यह कथन। अद्वैत ज्ञान के विषय में राजा और ब्राह्मण का संवाद। राजा और ब्राह्मण के संवाद में निदाघ ऋतु का संवाद कथन। ब्राह्मण के उपदेश से राजा की मुक्ति।

अध्याय ३८१ (पृ० १८९३-१९०२)

गीतासार।

अध्याय ३८२ (पृ० १९०३-१९०९)

यमगीता। गीता पठन का फल।

अध्याय ३८३ (पृ० १९०९-१९१९)

आग्नेय महापुराण का माहात्म्य। हेमन्त आदि में आग्नेय पुराण सुनने से अग्निष्टोमादि यज्ञों की फल प्राप्ति। आग्नेय पुराण के अन्तर्गत विषयक्रम का निरूपण। पुराण संख्या कथन। पुराण पाठक के पूजन आदि का निरूपण। पुस्तक दान प्रशंसा ॥+॥

———

अथ नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः

दानपरिभाषाकथनम्

अग्निरुवाच—

दानधर्मान्प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदाञ्शृणु ।
दानमिष्टं तथा पूर्तं धर्म्मं कुर्वन्हि सर्वभाक् ॥१

अग्निदेव बोले—अब मैं मुक्तिभुक्ति देने वाले दान धर्मों को बता रहा हूँ, उन्हें सुनो । इष्ट तथा पूर्त आदि दान करने वाला मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है ।१।

वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च ।
अन्नप्रदानमारामाः पूर्तं धर्मं च मुक्तिदम् ॥२

बावली, कूप, तथा तालाब खोदवाना, देवालय बनवाना, अन्नदान करना तथा सार्वजनिक बगीचा लगवाना—यह पूर्त धर्म कहलाता है और मुक्ति दिलाने वाला हुआ करता है ।२

अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चानुपालनम् ।
आतिथ्यं वैश्वदेवं च प्राहुरिष्टं च नाकदम्[1] ॥३
ग्रहोपरागे यद्दानं सूर्यसंक्रमणेषु च ।
द्वादश्यादौ च यद्दानं पूर्तं तदपि नाकदम् ॥४

अग्निहोत्र, तप, सत्य, वेदानुसरण, आतिथ्य तथा वैश्वदेव—यह इष्ट धर्म कहलाता है और स्वर्गदायक हुआ करता है । ग्रहणकाल, सूर्यसंक्रमण कला (संक्रान्ति) तथा द्वादशी आदि में दिया जाने वाला दान पूर्त धर्म कहलाता है और स्वर्गप्रद होता है । ३-४।

देशे काले च पात्रे च दानं कोटिगुणं भवेत् ।
अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये ॥५
युगादिषु च संक्रान्तौ चतुर्दश्यष्टमीषु च ।

---

१ ख. ग. °म् । महो° ।

सितपञ्चदशीसर्वद्वादशीष्वष्टकासु च ॥६
यज्ञोत्सवविवाहेषु तथा मन्वन्तरादिषु ।
वैधृते दृष्टदुःस्वप्ने द्रव्यब्राह्मणलाभतः ॥७
श्रद्धा वा यद्दिने तत्र सदा वा दानमिष्यते ॥७½

(उचित) देश, काल तथा पात्र में दिया हुआ दान करोड़ों गुना अधिक फलदायक होता है। अयन, विषुव, पुण्यपर्व व्यतीपात, दिनक्षय, युगादि, संक्रान्ति, चतुर्दशी, अष्टमी, शुक्ल पंचदशी (पूर्णिमा) सर्वद्वादशी, अष्टकाकृत्य, यज्ञ, उत्सव, विवाह, मन्वन्तर तथा वैधृत योग में दुःस्वप्न देखने पर दान करना चाहिए। दान तो जिस दिन श्रद्धा हो उसी दिन या सदा करना चाहिए। ५-७½ ।

अयने द्वे विषुवे द्वे चतस्रः षडशीतयः ॥८
चतस्रो विष्णुपद्यश्च सङ्क्रान्त्यो द्वादशोत्तमाः ।
कन्यायां मिथुने मीने धनुष्यपि रवेर्गतिः ॥९
षडशीतिमुखाः प्रोक्ताः षडशीतिगुणाः फलैः ।
अतीतानागते पुण्ये द्वे उदग्दक्षिणायने ॥१०

दो अयन, दो विषुव, चार षडशीतियाँ, चार विष्णुपदियाँ और बारह संक्रान्तियाँ दान के लिए उत्तम हैं। कन्या, मिथुन, मीन तथा धनु राशि में सूर्य की गति षडशीतिमुख कहलाती है। उसमें दान करने से (अन्य समय के दान की अपेक्षा) छियासी गुना अधिक फल होता है। अतीत और अनागत दो पुण्य होते हैं। उत्तरायण और दक्षिणायन—ये दो अयन हैं।८-१०।

त्रिंशत्कर्कटके नाड्यो मकरे विंशती[1] स्मृताः ।
वर्तमाने तुलामेषे नाड्यास्तूभयतो दश ॥११
षडशीत्यां व्यतीतायां षष्टिरुक्तास्तु नाडिकाः ।
पुण्याख्या विष्णुपद्यां च प्राक्पश्चादपि डशषो॥१२
श्रवणाश्विधनिष्ठासु नागदैवतमस्तके ।
यदा स्याद्रविवारेण व्यतीपातः सः उच्यते ॥१३

---

१ क. ख. ग. घ. °शतिः स्मृ° ।

कर्क राशि में सूर्य के प्रवेश करने पर तीस घड़ी तक पुण्यकाल रहता है, मकर में बीस घड़ी तक और तुला तथा मेष में दस-दस घड़ी तक। षडशीति के बीत जाने पर साठ घड़ी तक पुण्यकाल माना गया है। विष्णुपदी के पूर्व और पश्चात् भी सोलह घड़ी तक पुण्यकाल होता है। श्रवण, अश्विनी, घनिष्ठा तथा आश्लेषा में जब रविवार पड़ता है तब व्यतीपात योग होता है।११-१३।

नवम्यां शुक्लपक्षस्य कार्तिके निरगात्कृतम्।
त्रेतासिततृतीयायां वैशाखे द्वापरं युगम् ॥१४
दर्शे वै माघमासस्य त्रयोदश्यां नभस्यके।
कृष्णे कलिं विजानीयाज्ज्ञेया मन्वन्तरादयः ॥१५

कार्तिक शुक्ल पक्ष की नवमी में, सत्ययुग, वैशाख शुक्ल पक्ष की तृतीया में त्रेता, माघ की अमावस्या में द्वापर और भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशी में कलि-युग का प्रारम्भ हुआ था। इन दिनों को मन्वन्तर कहते हैं।१४-१५।

अश्वयुक्शुक्लनवमी द्वादशी कार्तिके तथा।
तृतीया चैव माघस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥१६
फाल्गुनस्याप्यमावस्या पौषस्यैकादशी तथा।
आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी ॥१७
श्रावणे चाष्टमी कृष्णा तथाऽऽषाढे च पूर्णिमा।
कार्तिके फाल्गुने तद्वज्ज्येष्ठे पञ्चदशी तथा ॥१८
[1]ऊर्ध्वे चैवाऽऽग्रहायण्या अष्टकास्तिस्र ईरिताः।
अष्टकाख्या चाष्टमी स्यादासु दानानि चाक्षयम् ॥१९

आश्विन शुक्ल पक्ष की नवमी, कार्तिक की द्वादशी, माघ तथा भादों की तृतीया, फाल्गुन की अमावस्या, पौष की एकादशी, आषाढ़ की दशमी, माघ की सप्तमी, श्रावण, की अष्टमी, आषाढ़ की पूर्णिमा, कार्तिक, फाल्गुन, ज्येष्ठ तथा मार्गशीर्ष की पञ्चदशी में भी दान-करने से मन्वन्तर में दान करने के समान फल मिलता है। पौष माघ तथा फाल्गुन की अष्टमियों को अष्टका कहते हैं। इनमें दान करने से भी अक्षय-फल की प्राप्ति होती है।१६-१९।

---

१ ख. ग. ऊर्जे चै०।

गयागंगाप्रयागादौ तीर्थे देवालयादिषु ।
अप्रार्थितानि दानानि विद्यान्न कन्यकानि (?)हि ॥२०
दद्यात्पूर्वमुखो दानं गृह्णीयादुत्तरामुखः ।
आयुर्विवर्धते दातुर्ग्रहीतुः क्षीयते न तत् ॥२१

गया, गंगा, प्रयाग आदि तीर्थों में तथा देवालय आदि में बिना माँगे जो मिल जाय वह ले लेना चाहिये, किन्तु कन्यादान में यह नियम नहीं है। पूर्व मुँह करके दान देना चाहिए और उत्तराभिमुख दान लेना चाहिए। ऐसा करने से देने वाले की आयु बढ़ती है और लेने वाले की भी घटती नहीं है।२०-२१।

नामगोत्रं समुच्चार्य सम्प्रदानस्य चाऽऽत्मनः ।
सम्प्रदेयं प्रयच्छन्ति कन्यादाने पुनस्त्रयम् ॥२२
स्नात्वाऽभ्यर्च्य व्याहृतिभिर्दद्याद्दानं तु सोदकम् ॥
कनकाश्वतिला नागा दासीरथमहीगृहाः ॥२३
कन्या च कपिलाधेनुर्महादानानि वै दश ।२३½

(दान देने वाले को) अपने तथा दान लेने वाले के नाम तथा गोत्र का उच्चारण करके दान देना चाहिए। कन्या दान में तीनों (दाता, देय, संप्रदान) के नाम और गोत्रों का उच्चारण करना चाहिए। सुवर्ण, अश्व, तिल, हाथी, दासी, रथ, पृथ्वी, गृह, कन्या तथा कपिला गौ—ये दश महादान कहलाते है।२२-२३½।

श्रुतशौर्यतपः कन्यायाज्यशिष्यादुपागतम् ॥२४
शुल्कं धनं हि [1]सकलं [2]शुल्कं शिल्पानुवृत्तितः ।
कुसीदकृषिवाणिज्यप्राप्तं यदुपकारतः[3] ॥२५
पाशकद्यूतचौर्यादिप्रतिरूपकसाहसैः ।
व्याजेनोपार्जितं कृत्स्नं त्रिविधंत्रिविधं फलम् ॥२६

वेद (के अध्यापन) शौर्य, तप, कन्या के पाणिगहण, पौरोहित्य और शिष्य से प्राप्त धन शुल्क कहलाता है। इसी प्रकार व्यवसाय, व्याज, कृषि, वाणिज्य

१ क. ख. ग. शवलं । २ ख. ग. शुल्कशिष्यार्थ वृ° । ३ ख. ग. °तः । प्रार्थिकद्यू । क. ङ. तः । प्रार्थकद्यू ।

तथा दूसरे के उपकार से प्राप्त धन भी शुल्क ही कहलाता है। पासे तथा अन्य प्रकार के द्यूतकर्म, चोरी, तथा अन्य साहस के कार्यों से प्राप्त अथवा व्याज से उपार्जित धन का फल तीन प्रकार का हुआ करता है।२४-२६।

अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च[1] प्रीतिकर्मणि।
भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ॥२७
ब्रह्मक्षत्रविशां द्रव्यं शूद्रस्यैषामनुग्रहात्।
बहुभ्यो न प्रदेयानि गौर्गृहं शयनं स्त्रियः[2] ॥२८

स्त्री धन छह प्रकार का होता है। अध्यग्नि (वह धन जो स्त्री को अग्नि के निकट दिया जाता है), अध्यावाहनिक (वह धन जो स्त्री को पितृकुल छोड़ते समय दिया जाता है), प्रीतिकर्म में (पति या मित्रों) से प्राप्त धन। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का धन उनके अनुग्रह से शूद्र का भी हो जाता है। गाय, घर, शय्या और स्त्रियाँ दान में बहुत से व्यक्तियों को नहीं देनी चाहिए।२७-२८।

कुलानां तु शतं हन्यादप्रयच्छन्प्रतिश्रुतम्।
देवानां च गुरूणां च मातापित्रोस्तथैव च ॥२९
पुण्यं देयं प्रयत्नेन यत्पुण्यं चार्जितं क्वचित्।
प्रतिलाभेच्छया दत्तं यद्धनं तदपार्थकम् ॥३०

(दान की) प्रतिज्ञा करके न देने वाले को सौ कुलों के नाश करने का पाप लगता है। देवता, गुरु तथा माता-पिता को प्रयत्न करके पुण्य देना चाहिए फिर वह पुण्य चाहे जहाँ कहीं से भी उपार्जित क्यों न किया गया हो। बदले में लाभ की इच्छा से दिया गया धन व्यर्थ हो जाता है।२९-३०।

श्रद्धया साध्यते धर्मो दत्तं वार्यपि चाक्षयम्।
ज्ञानशीलगुणोपेतः परपीडाबहिष्कृतः ॥३१
अज्ञानां पालनात्त्राणात्तत्पात्रं परमं स्मृतम्।
मातुः शतगुणं दानं सहस्रं पितुरुच्यते ॥३२
अनन्तं दुहितुर्दानं सोदर्ये दत्तमक्षयम्।
अमनुष्ये समं दानं पापे ज्ञेयं महाफलम् ॥३३

---

१ ख. ग. च. प्रति°। २ ख. ग. यः। फला°।

वर्णसंकरे द्विगुणं शूद्रे दानं चतुर्गुणम् ।
वैश्ये चाष्टगुणं क्षत्रे षोडशत्वं (कं) द्विजब्रुवे ॥३४
वेदाध्याये शतगुणमनन्तं वेदबोधके ।
पुरोहिते याजकादौ दानमक्षयमुच्यते ॥३५

श्रद्धापूर्वक (दान) देने से ही धर्म होता है। श्रद्धा से दिया हुआ जल भी अक्षय (फल देता) है। दान का पात्र वही हुआ करता है, जो ज्ञानी, शीलवान्, दूसरे को कष्ट न देने वाला और अज्ञानियों की रक्षा करने वाला है। माता को दिया हुआ दान सौ गुना, पिता को दिया हुआ हजार गुना, पुत्री को दिया हुआ अनन्त गुना और सहोदर (भाई) को दिया हुआ दान अक्षय फल प्रदान करता है। मनुष्येतर को दान देने से साधारण फल और पापी को दान देने से महाफल प्राप्त होता है। वर्णशंकर को दान देने से दूना, शूद्र को देने से चौगुना, वैश्य को देने से आठ गुना और द्विजबन्धु को दान देने से सोलह गुना फल प्राप्त होता है। वेदाध्यायी को देने से सौगुना, वेदाध्यापक को देने से अनन्त गुना और पुरोहित तथा यज्ञ करने वाले आदि को देने से अक्षय फल प्राप्त होता है।३१-३५।

श्रीविहीनेषु यद्दत्तं तदनन्तं च यज्वनि ।
अतपस्व्यनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः ॥३६
अम्भस्यश्मप्लवेनैव सह तेनैव मज्जति ।
स्नातः सम्यगुपस्पृश्य गृह्णीयात्प्रयतः शुचिः ॥३७

दीन तथा यज्ञ करने वाले को दान देने से अनन्तफल होता है। जो द्विज तपस्या तथा वेदाध्ययन से वंचित है और सदा दान प्राप्त करने की कामना किया करता है, वह जल में पत्थर की तरह उसी के साथ डूब मरता है। दान लेने वाले को स्नान करके सम्यक् प्रकार से आचमन के द्वारा पवित्र होकर दान लेना चाहिए।३६-३७।

प्रतिग्रहीता सावित्रीं सर्वदैव प्रकीर्तयेत् ।
ततस्तु कीर्तयेत्सार्धं द्रव्येण सह दैवतम् ॥३८

प्रतिग्रहीता को सदा सावित्री का जप करना चाहिए। तत्पश्चात् द्रव्य के साथ देवता का संकीर्तन (गुणगान भी) करना चाहिए।३८।

प्रतिग्राही पठेदुच्चैः प्रतिगृह्य द्विजोत्तमात् ।
मन्दं पठेत्क्षत्रियात्तु उपांशु च तथा विशः ॥३९
मनसा च तथा शूद्रात्स्वस्तिवाचनकं तथा ।
अभयं सर्वदैवत्यं भूमिर्वै विष्णुदेवता ॥४०

दान लेने वाले को श्रेष्ठ ब्राह्मण से दान लेकर जोर-जोर से मन्त्र पढ़ना चाहिए । क्षत्रिय से दान लेते समय धीरे-धीरे, वैश्य से दान लेते समय उपांशु (जिसमें केवल ओष्ठ हिलें) और शूद्र से दान लेने के समय मन ही मन मन्त्र पढ़ना चाहिए । तदनन्तर स्वस्तिवाचन करना चाहिए । अभय सभी देवताओं से मिलता है ।३९-४०।

कन्या दासस्तथा दासी प्राजापत्याः प्रकीर्तिताः ।
प्राजापत्यो गजः प्रोक्तस्तुरगो यमदैवतः ॥४१
तथा चैकशफं सर्व याम्यश्च महिषस्तथा ।
उष्ट्रश्च नैर्ऋतो धेनू रौद्री छागोऽनलस्तथा ॥४२
आप्यो मेषो हरिः क्रोड आरण्याः पशवोऽनिलाः ।
जलाशयं वारुणं स्याद्वारिधानी घटादयः ॥४३
समुद्रजानि रत्नानि हेमलौहानि चानलः ।
प्राजापत्यानि सस्यानि पक्वान्नमपिसत्तम ॥४४
गान्धर्व गन्धमित्याहुर्वस्त्रं बार्हस्पतं स्मृतम् ॥४४½

कन्या, हाथी, दास तथा दासी प्रजापति से सम्बद्ध हैं । अश्व तथा एक खुर वाले जीव के देवता यम, महिष तथा ऊँट के नैर्ऋत, गाय के रुद्र, बकरे के अग्नि, भेड़ के वरुण, सिंह, सुअर तथा जंगली पशुओं के वायु, जलाशय, वारिधानी तथा घट आदि के वरुण, समुद्र से उत्पन्न रत्न, सुवर्ण तथा लोहे आदि के अग्नि, शस्य तथा पक्वान्न के प्रजापति, गन्ध के गान्धर्व, वस्त्र के बृहस्पति देवता हैं ।४१-४४½।

वायव्याः पक्षिणः सर्वे विद्या ब्राह्मी तथाऽङ्गकम् ॥४५
सारस्वतं पुस्तकादि विश्वकर्मा तु शिल्पके ।
वनस्पतिर्द्रुमादीनां द्रव्यदेवा हरेस्तनुः ॥४६
छत्रं कृष्णाजिनं शय्या रथ आसनमेव च ।
उपानहौ तथा यानमुत्तानाङ्गिर ईरितम् ॥४७

पक्षियों के वायु, विद्या, पुस्तक आदि के सरस्वती, शिल्प के विश्वकर्मा, वृक्ष आदि के वनस्पति, द्रव्यों के विष्णु और शरीर छत्र, कृष्णमृगचर्म, शय्या, रथ, आसन, जूते तथा यान (सवारी) के देवता उत्तानाङ्गिर हैं ।४५-४७।

[1]रणोपकरणं शस्त्रं ध्वजाद्यं सर्वदैवतम् ।
गृहं च सर्वदैवत्यं सर्वेषां विष्णुदेवता ॥४८
शिवो वा न ततो द्रव्यं व्यतिरिक्तं यतोऽस्ति हि ।
द्रव्यस्य नाम गृह्णीयाद्ददामीति तथा वदेत् ॥४९

युद्धोपकरण—शस्त्र, ध्वजा आदि और गृह के देवता सभी हैं । और सबके देवता विष्णु या शिव हैं क्योंकि कोई भी द्रव्य ऐसा नहीं है जो उनसे अतिरिक्त हो । दान देने के समय द्रव्य का नाम तथा 'मैं दे रहा हूँ'—यह कहना चाहिए ।४८-४९।

तोयं दद्यात्ततो हस्ते दाने विधिरयं स्मृतः ।
विष्णुर्दाता विष्णुर्द्रव्यं प्रतिगृह्णामि वै वदेत् ॥५०

तदनन्तर दान देने वाले के हाथ में जल देना चाहिए—यही दान का विधान है । प्रतिग्रहीता को यह कह कर दान लेना चाहिए कि 'विष्णु ही दाता हैं और विष्णु ही द्रव्य हैं ।५०

स्वस्तिप्रतिग्रहं धर्मं भुक्तिमुक्तीफलद्वयम् ।
गुरून्भृत्यानुज्जिहीर्षुरर्चिष्यन्देवताः पितृन् ॥५१
सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्न तु तृप्येत्स्वयं ततः ।
शूद्रीयं न तु यज्ञार्थं धनं शूद्रस्य तत्फलम् ॥५२

प्रतिग्रह (दान) धर्म तथा कल्याणकारक और भुक्तिमुक्तिदायक हुआ करता है । देवता तथा पितरों के पूजन करने वाले ब्राह्मण को गुरु, भृत्य तथा चोरों से भी दान लेना चाहिए । दान सबसे लेना चाहिए, इससे कभी भी तृप्त नही होना चाहिए । शूद्र का धन यज्ञ से भिन्न कार्यों के लिए लेना चाहिए, क्योंकि यज्ञ के लिए वह धन लेने से उस यज्ञ का फल शूद्र को ही प्राप्त हो जायेगा ।५१-५२।

---

१ ग. रसोप° ।

गुडतक्ररसाद्याश्च शूद्राद्ग्राह्या[1] निवर्तिना ।
सर्वतः प्रतिगृह्णीयादवृत्त्या कर्षितो द्विजः ॥५३
नाध्यापनाद्याजनाद्वा गर्हिताद्वा प्रतिग्रहात् ।
दोषो भवति विप्राणां ज्वलनार्कसमा हि ते ॥ ५४

शूद्र से गुड़, तक्र, रस आदि लेना चाहिए । जीविकाहीन द्विज को सभी से दान लेना चाहिए। पढ़ाने, यज्ञ कराने तथा निन्दित दान लेने से विप्रों को दोष नहीं लगता है क्योंकि वे ब्रह्मतेज से सूर्य के समान जाज्वल्यमान रहते हैं ।५३-५४।

कृते तु दीयते गत्वा त्रेतास्वानीय दीयते ।
द्वापरे याचमानाय कलौ[2] त्वनुगमान्विते ॥५५
मनसा पात्रमुद्दिश्य जलं भूमौ विनिक्षिपेत् ।
विद्यते सागरस्यान्तो नान्तो दानस्य विद्यते ॥५६

सत्ययुग में लोग स्वयं ब्राह्मणों के घर जाकर दान देते हैं, त्रेता में अपने यहाँ बुला कर दान दिया जाता है, द्वापर में माँगने पर और कलियुग में अनुगमन (खुशामद) करने से दान दिया जाता है । मन में (दान के) पात्र के उद्देश्य से भूमि पर जल गिराना चाहिए । सागर का अन्त हो सकता है किन्तु दान का (कोई) अन्त नहीं है ।५५-५६।

अद्यसोमार्कग्रहणसंक्रान्त्यादौ च कालके ।
गङ्गागयाप्रयागादौ तीर्थदेशे महागुणे ।५७
तथा चामुकगोत्राय तथा चामुकशर्मणे ॥
वेदवेदाङ्गयुक्ताय पात्राय सुमहात्मने ॥५८
यथानाम महाद्रव्यं विष्णुरुद्रादिदैवतम् ।
पुत्रपौत्रगृहैश्वर्यपत्नीधर्मार्थसद्गुणाः ॥५९
कीर्तिविद्यामहाकामसौभाग्यारोग्यवृद्धये ।
सर्वपापोपशान्त्यर्थं स्वर्गार्थं भुक्तिमुक्तये ॥६०

---

१ ख. ग. °द्राद्भोज्यं नि° । २ गङ्गाप्रयाग······महागुणे क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति ।

दान देने के समय यह कहना चाहिए—"मैं सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहण या संक्रान्ति आदि काल में और गंगा, प्रयाग आदि महागुणशाली तीर्थ में अमुक गोत्र वाले, अमुक नाम वाले, वेदवेदाङ्गों का ज्ञान रखने वाले महात्मा पात्र (तुम विप्र) को अमुक नामवाला तथा विष्णु, रुद्र आदि देवता वाला, यह द्रव्य दे रहा हूँ; जिससे मेरे पुत्र, पौत्र, गृह, ऐश्वर्य, पत्नी, धर्म, अर्थ, सद्गुण, कीर्ति, विद्या, महाकाम, सौभाग्य, आरोग्य की वृद्धि, सकल पापों की शान्ति, स्वर्ग तथा भुक्ति-मुक्ति की प्राप्ति हो ।५७-६०।

एतत्तुभ्यं सम्प्रददे प्रीयतां मे हरिः शिवः ।
दिव्यान्तरिक्षभौमादिसमुत्पातौघघातकृत् ॥६१
धर्मार्थकाममोक्षाप्त्यै ब्रह्मलोकप्रदोऽस्तु मे ।
यथानामसगोत्राय विप्रायामुकशर्मणे ॥६२
एतद्दानप्रतिष्ठार्थं सुवर्णं दक्षिणां ददे ।
अनेन दानवाक्येन सर्वदानानि वै ददेत्[1] ॥६३

यह तुम्हें प्रदान कर रहा हूँ। मेरे ऊपर विष्णु और शिव प्रसन्न रहें। भगवान् विष्णु आकाश, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी आदि पर मेरे समस्त उत्पातों का विध्वंस करते रहें। वे मुझे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तथा ब्रह्मलोक प्रदान करें। इसके बाद यह कहकर दक्षिणा देनी चाहिए—"इस दान की प्रतिष्ठा के लिए मैं अमुक गोत्रवाले, अमुक शर्मा विप्र को सुवर्ण दक्षिणा में दे रहा हूँ।" इसी प्रकार समस्त दानों में दान-वाक्य पढ़कर दान देना चाहिए ।६१-६३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दानपरिभाषावर्णनं नाम
नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०९

---

१ क, ङ. वदेत् ।

अथ दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

महादानानि

अग्निरुवाच—

सर्वदानानि वक्ष्यामि महादानानि षोडश ।
तुलापुरुष आद्यं तु हिरण्यगर्भदानकम् ॥१
ब्रह्माण्डं कल्पवृक्षश्च गोसहस्रं च पञ्चमम्[1] ।
हिरण्यकामधेनुश्च हिरण्याश्वश्च सप्तमम् ॥२
हिरण्याश्वरथस्तद्वद्धेमहस्तिरथस्तथा ।
[2]पञ्चलाङ्गलकं तद्वद्धरादानं तथैव च ॥३
विश्वचक्रं कल्पलता सप्तसागरकं परम्[3] ।
रत्नधेनुर्महाभूतघटं शुभदिनेऽर्पयेत् ॥४
मण्डपे मण्डले दानं देवान्प्राच्यार्पयेद्द्विजे ।४½

अग्निदेव बोले—अव मैं सम्पूर्ण दानों का वर्णन करूँगा, जिनमें महादान सोलह प्रकार के हैं—पहला तुलापुरुषदान, दूसरा हिरण्यगर्भदान, तीसरा ब्रह्माण्ड दान, चौथा कल्पवृक्षदान, पाँचवां गोहसस्रदान, छठा सुवर्णकामधेनु दान, सातवाँ हिरण्याश्वदान, आठवाँ सुवर्णाश्वयुक्त रथदान, नवाँ स्वर्णगजयुक्त रथदान, दसवाँ पाँच लाङ्गल (हर) दान, ग्यारहवाँ पृथ्वीदान, चौदहवाँ सप्त-सागरदान, पन्द्रहवाँ रत्नधेनुदान और सोलहवाँ महाभूतघटदान हैं। किसी शुभ दिन में मण्डप पर मण्डल की रचना करके उसके ऊपर देवपूजन करके ब्राह्मण को दान देना चाहिए ।१-४½।

मेरुदानानि पुण्यानि मेरवो दश[4] ताञ्शृणु ॥५
धान्यद्रोणसहस्रेण उत्तमोऽर्धार्धतः परौ ।
उत्तमः षोडशद्रोणः कर्तव्यो लवणाचलः ॥६

---

१ क. ख. ङ. सप्तमः । २ क. ङ. °ञ्च शाङ्गलि° ३ ख. ग. वरम् ।
४ क. ङ. °र्च्याथ विक्षिपेत् । मे° । ५ क. ङ. °शधा शृणु ।

पवित्र मेरुदान भी दस प्रकार के हुआ करते है। उन्हें सुनो ! एक सहस्र दोण (४००० अढैया) परिमित धान्य का वना धान्यपर्वत उत्तम होता है। उसके आधे से वना हुआ मध्यम और उससे भी आधे से वना हुआ अधम माना गया है। (इसी तरह) सोलह द्रोण (६४ अढैया) लवण से वना लवणाचल उत्तम होता है।५-६।

दशभारैर्गुडाद्रिः स्यादुत्तमोऽर्धार्धतः परौ।
उत्तमः पलसाहस्रैः[1] स्वर्णमेरुस्तथा[2] परौ ॥७
दशद्रोणैस्तिलाद्रिः स्यात्पञ्चाभिश्च त्रिभिः क्रमात्।
कार्पासपर्वतो विंशभारैश्च दशपञ्चभिः ॥८

दस भार गुड़ से वना गुड़ पर्वत उत्तम और उसके आधे-आधे से वना हुआ पर्वत क्रमशः मध्यम और अधम माना जाता हे। एक हजार पल सुवर्ण से वना स्वर्ण पर्वत उत्तम तथा उसके आधे- आधे से वना हुआ क्रमशः मध्यम और अधम हुआ करता है। दशद्रोण (४० अढैया) तिल से वना तिल पर्वत उत्तम, पाँच द्रोण से वना हुआ मध्यम और तीन द्रोण तिल से वना हुआ पर्वत अधम माना जाता है। वीस भार कपास से वना कार्पास पर्वत उत्तम और दस तथा पांच भार कपास से वना पर्वत क्रमशः मध्यम और अधम माना जाता है।७-८।

विंशत्या घृतकुम्भानामुत्तमः स्याद्घृताचलः।
दशभिः पलसाहस्रैरुत्तमो रजताचलः ॥९
अष्टभारैः शर्कराद्रिमध्यो मन्दोऽर्धतोऽर्धतः।
दशधेनूः प्रवक्ष्यामि या दत्त्वा मुक्तिभुक्तिभाक् ॥१०

वीस घड़े घी से वना हुआ पर्वत उत्तम हुआ करता है। दस हजार पल चाँदी से वना हुआ रजताचल उत्तम हुआ करता है। आठ भार शक्कर से वना हुआ शर्कराचल उत्तम और उसके आधे से वना हुआ पर्वत क्रमशः मध्यम और अधम हुआ करता है।९-१०।

प्रथमा गुडधेनुः स्याद्घृतधेनुस्तथाऽपरा।
तिलधेनुस्तृतीया च चतुर्थी जलधेनुका ॥११

१ ख. ग. °ह स्रः स्व° । २ ख. ग. परः । द° ।

क्षीरधेनुर्मधुधेनुः शर्करादधिधेनुके ।
रसधेनुः स्वरूपेण दशमीविधिरुच्यते ॥१२

अब मैं दस धेनुओं का वर्णन करूँगा, जिनका दान करने में भुक्तिमुक्ति की प्राप्ति होती है। पहली गुड़ धेनु है दूसरी घृतधेनु है, तीसरी तिलधेनु, चौथी जलधेनु, पाँचवीं क्षीरधेनु, छठी मधुधेनु, सातवी शर्कराधेनु, आठवी दधिधेनु, नवीं रत्नधेनु और दसवी साक्षात् धेनु है।११-१२।

कुम्भाः स्युर्द्रवधेनूनामितराशां तु राशयः ।
कृष्णाजिनं चतुर्हस्तं प्राग्ग्रीवं विन्यसेद्भुवि ॥१३
गोमयेनानुलिप्तायां दर्भानास्तीर्य सर्वतः ।
लघ्वैणकाजिनं तद्वद्वत्सस्य परिकल्पयेत् ॥१४

पिघलने वाली (वस्तुओं से बनी हुयी) धेनुओं के लिए राशि का व्यवहार करना चाहिए। (धेनुदान करने का विधान यह है—) गोबर से लिपी हुई भूमि पर अच्छी तरह कुशों को बिछाकर उसके ऊपर चार हाथ लम्बे कृष्णमृग-चर्म को पूर्वाभिमुख करके बिछाना चाहिए। उसी प्रकार छोटे हरिण का चर्म भी रखना चाहिए।१३-१४।

प्राङ्मुखीं कल्पयेद्धेनुमुदक्पादां सवत्सकाम् ।
उत्तमा गुडधेनुः स्यात्सदा भारचतुष्टयात् १५
वत्सं भारेण कुर्वीत भाराभ्यां मध्यमा स्मृता ।
अर्धभारेण वत्सः स्यात्कनिष्ठा भारकेण तु ॥१६

उसके ऊपर (उपर्युक्त पदार्थों से) एक गाय की रचना करनी चाहिए, जिसका मुख पूर्व की ओर और पैर उत्तर की ओर हों, तथा जिसके साथ एक बच्चा भी हो। चार भार गुड़ से बनी हुई धेनु उत्तम हुआ करती है। इस (उत्तम धेनु) का बच्चा एक भार (गुड़ से बना) होना चाहिए। दो भार से बनी हुयी धेनु मध्यम होती है, जिसका बछड़ा आधे भार से बनाना चाहिए। एक भार से बनी धेनु अधम होती है।१५-१६।

चतुर्थांशेन वत्सः स्याद्गुडपित्तानुसारतः ।
पञ्चकृष्णलको माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश ॥१७
पलं सुवर्णाश्चत्वारस्तुला पलशतं स्मृतम् ।
स्याद्भारो विंशतितुला द्रोणस्तु चतुराढकः ।१८

उसका वछड़ा एक भार के चतुर्थांश से वनाना चाहिए। वित्त (सामर्थ्य) के अनुसार गुड़धेनु आदि की रचना करनी चाहिए। पाँच कृष्ण (गुञ्जा) का एक माष, (माशा), सोलह माष का एक सुवर्ण, चार सुवर्ण का एक पल (चार तोले) सौ पल का एक तुला, वीस तुला का एक भार और चार आढक (अढैया) का एक द्रोण होता है।१७-१८।

धेनुवत्सौ गुडस्योभौ सितसूक्ष्माम्बरावृतौ।
शुक्तिकर्णाविक्षुपादौ शुचिमुक्ताफलेक्षणौ ॥१९
सितसूत्रशिरालौ[1] च सितकम्वलकम्वलौ।
ताम्रगड्डुकपृष्ठौ तौ सितचामररोमकौ ॥२०
विद्रुमभ्रूयुगावेतौ नवनीतस्तनान्वितौ।
क्षौमपुच्छौ कांस्यदोहाविन्द्रनीलकतारकौ ॥२१
सुवर्णश्रृङ्गाभरणौ[3] रजतक्षुरसंयुतौ।
नानाफलमया दन्ता गन्धघ्राणप्रकल्पितौ ॥२२

गुड़ की धेनु तथा वत्स दोनों को स्वच्छ सूक्ष्म वस्त्र से ढंक देना चाहिए दोनों के कान सीप के, पैर ईख के, आँखें स्वच्छ मोतियों की, भाल श्वेत सूत्र का, गलकँवरिया शुक्ल कम्वल की, गड्डुक (डील) और पीठ ताँवे के, रोम श्वेत चामर के, भौंहें विद्रुम (मूगे) की, स्तन मक्खन के, पूँछें रेशमी वस्त्र की, थन काँसे के, आँखों की पुतलियाँ इन्द्रनीलमणि की, सीग सोने की, खुंर चाँदी के, दाँत अनेक फलों के और नाकें गन्ध (घिसे चन्दन आदि) की वनी हुई होनी चाहिए।१९-२२।

रचयित्वा यजेद्धेनुमिमैर्मन्त्रैर्द्विजोत्तम।
या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवेष्ववस्थिता ॥२३
धेनुरूपेण सा देवी मम शान्तिं प्रयच्छतु।
देहस्था या च रुद्राणी शंकरस्य सदा प्रिया ॥२४
धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥२४½

हे द्विजोत्तम ! इस प्रकार धेनु की रचना करके यह कहते हुये स्तुति करनी चाहिए कि जो समस्त प्राणियों की लक्ष्मी है तथा देवताओं में विराजमान है,

---

१ क. ङ. °रालेभ्य असिक° । २ ख. ग. गड्डुक° । ३ ख. ग. °णौराज°

वह देवी धेनु रूप से मुझे शान्ति प्रदान करती रहे। जो साक्षात् भगवान् शंकर की प्रियतमा रुद्राणी है, वह धेनुरूप देवी मेरे पापों का सर्वनाश करती रहे।२३-२४½।

विष्णुवक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसोः ॥२५
चन्द्रार्कऋक्षशक्तिर्या धेनुरूपाऽस्तु सा श्रिये।
चतुर्मुखस्य या लक्ष्मीर्या लक्ष्मीर्धनदस्य च ॥२६
लक्ष्मीर्या लोकपालानां सा धेनुर्वरदाऽस्तु मे।
स्वधात्वं पितृमुख्यानां (णां) स्वाहा यज्ञभुजां यतः ॥२७
सर्वपापहरा धेनुस्तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे।
एवमामन्त्रितां धेनुं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥२८

जो विष्णु के वक्षःस्थल पर लक्ष्मी रूप से रहती है, अग्नि में स्वाहा रूप से रहती है और सूर्य, चन्द्र तथा नक्षत्रों में शक्तिरूप से रहती है, वह धेनु रूपी देवी धन प्रदान करती रहे। जो ब्रह्मा, कुबेर तथा लोकपालों की लक्ष्मी है, वह धेनु रूप देवी मुझे वर प्रदान करती रहे। वह पितरों की स्वधा, यज्ञ-भोक्ताओं की स्वाहा और सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाली है, अतएव धेनु रूप से मुझे (भी) शान्ति प्रदान करे। इस प्रकार मन्त्रों से अभिमन्त्रित वह धेनु ब्राह्मण को दे देना चाहिये।२५-२८।

समानं सर्वधेनूनां विधानं चैतदेव हि।
सर्वयज्ञफलं प्राप्य निर्मलो भुक्तिमुक्तिभाक् ॥२९
स्वर्णशृङ्गी शफैः रौप्यैः सुशीला वस्त्रसंयुता।
कांस्योपदेहा दातव्या क्षीरिणी गौःसदक्षिणा ॥३०
दाताऽस्याः स्वर्गमाप्नोति वत्सरान्रोमसंमितान्।
कपिला चेत्तारयति भूयश्चाऽऽसप्तमं कुलम् ॥३१
स्वर्णशृङ्गी रौप्यखुरां कांस्यदोहनकान्विताम्।
शक्तितो दक्षिणायुक्तां दत्त्वा स्याद्भुक्तिमुक्तिभाक् ॥३२

सभी धेनुओं के दान करने का विधान समान ही है। जो व्यक्ति उक्त प्रकार से धेनु दान करता है, वह सम्पूर्ण यज्ञों का फल प्राप्त करके निर्मल हो जाता है और भुक्तिमुक्ति भी प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य सुन्दर स्वभाववाली

तथा खूब दूध देने वाली गौ के सींगों में सोना तथा खुरों में चाँदी मढ़कर, स्तन में काँसे (दोहन) पात्र लगाकर और ऊपर से वस्त्र ढककर दक्षिणा सहित दान करता है, वह उतने ही वर्षों तक स्वर्ग में निवास करता है जितने उस धेनु के शरीर में रोयें होते हैं। यदि इस प्रकार दान की गई धेनु कपिला हो तो उसके दान करने, से दाता के सात कुलों का उद्धार हो जाता है। जो सोने के सींग, चाँदी के खुर तथा कांसे के (दोहन) पात्र के साथ गोदान करता है तथा अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणा देता है, उसे भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है।२९-३२।

सवत्सरोमतुल्यानि युगान्युभयतोमुखीम्।
दत्त्वा स्वर्गमवाप्नोति पूर्वेण विधिना ददेत् ॥३३
आसन्नमृत्युना देया सवत्सा गौस्तु पूर्ववत्।
यमद्वारे महाघोरे तप्ता[1] वैतरणी नदी ॥
तां तर्तुं च ददाम्येनां कृष्णां वैतरणीं च गाम् ॥३४

जो पूर्वोक्त विधि के अनुसार दोनों ओर मुखवाली (अर्थात सवत्सा गौ) दान करता है, वह उतने ही वर्षों तक स्वर्गवास करता है, जितने उस गाय तथा बछड़े के शरीर में रोयें होते है। जिसकी मृत्यु निकट है उसे पूर्वोक्त रीति से यह कहते हुए बछड़े वाली गाय का दान करना चाहिए कि महा-भयंकर यममार्ग में उलझती हुई वैतरणी नदी को पार करने के लिए मैं इस कृष्णा गौ का दान कर रहा हूँ।३३-३४।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये महादानवर्णनं नाम दशाधिक-द्विशततमोऽध्यायः।२१०

अथैकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नानादानानि

अग्निरुवाच—

एकां गां दशगुर्दद्याद्दश दद्याच्च गोशती।
शतं सहस्रगुर्दद्यात्सर्वे तुल्यफला हि ते ॥१

---

१ क. ङ. घोरा। ख. ग. कष्टा।

अग्निदेव बोले—जिसके पास दश गायें हैं उसे एक गाय दान करना चाहिये। जिसके पास सौ गायें हैं उसे दश गायें और जिसके पास एक हजार गायें हैं उसे सौ गायें दान करना चाहिये। इन सबका फल बराबर ही होता है।१

प्रासादा यत्र सौवर्णा वसोर्धारा च यत्र सा।
गन्धर्वाप्सरसो यत्र तत्र यान्ति सहस्रदाः।२
गवां शतप्रदानेन मुच्यते नरकार्णवात्।
दत्त्वा वत्सतरीं चैव स्वर्गलोके महीयते॥३

सहस्र गोदान करने वाला उस लोक को चला जाता है, जहाँ सोने के भवन बने हुए हैं, सम्पत्तियों की धारा बहती रहती है और गन्धर्व और अप्सरायें रहती हैं। सौ गायों का दान करने से नरक के सागर से छुटकारा मिल जाता है और बछिया का दान करने से स्वर्ग में पूजित होता है।२-३।

गोदानादायुरारोग्यसौभाग्यस्वर्गमाप्नुयात्।
इन्द्रादिलोकपालानां या राजमहिषी शुभा॥४
महिषीदानमाहात्म्यादस्तु मे सर्वकामदा।
धर्मराजस्य[1] साहाय्ये यस्याः पुत्रः प्रतिष्ठितः॥५
महिषासुरस्य जननी या साऽस्तु वरदा मम।
[2]महिषीदानाच्च सौभाग्यं वृषदानाद्दिवं व्रजेत्॥६

गोदान करने से आयु, आरोग्य, सौभाग्य तथा स्वर्ग की प्राप्ति होती है। भैंस का दान करते समय यह कहना चाहिये—'इन्द्र आदि लोकपालों की राजमहिषी इस भैंस के प्रभाव से मेरी सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करती रहे। इस भैंस का पुत्र धर्मराज की सहायता करता है। जो महिषासुर की माता है वह मुझे वर प्रदान करे।' भैंस का दान करने से सौभाग्य की प्राप्ति होती है और बैल का दान करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है।४-६।

संयुक्तहलपङ्क्त्याख्यं दानं सर्वफलप्रदम्।
पंक्तिर्दशहला प्रोक्ता दारुजा वृषसंयुता॥७
सौवर्णपट्टसंनद्धा दत्त्वा स्वर्गे महीयते॥७½

१ ग. °स्य माहात्म्याद्यस्याः। २ क. ङ. °षीसर्वसौ°।

'संयुक्तहलपङ्क्ति' नामक दान करने से सब कुछ प्राप्त हो जाता है। (इस दान में) काठ के बने दस पाद लम्बे हल में बैलों को जोतकर और उसे सोने से मढ़कर दान करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है।७-७½।

दशानां कपिलानां तु दत्तानां ज्येष्ठपुष्करे ॥८
तत्फलं चाक्षयं प्रोक्तं वृषभस्य तु मोक्षणे ।
धर्मोऽसि त्वं चतुष्पादश्चतस्रस्ते प्रिया इमाः ॥९
नमो ब्रह्मण्य देवेश पितृभूतर्षिपोषक ।
त्वयि[1] मुक्तेऽक्षया लोका मम सन्तु निरामयाः ॥१०

पुष्कर नामक तीर्थ में दश कपिला गायों का दान करने और एक बैल को मुक्त करने से अत्यन्त फल की प्राप्ति होती है। (एकादशाह श्राद्ध में बैल को चक्र और शूल से अंकित करके छोड़ा जाता है) अंकित करते समय यह प्रार्थना करनी चाहिये कि—'ब्रह्मण्य! देवेश! पितरों तथा ऋषियों के पोषक तुम धर्म स्वरूप हो। तुम्हें नमस्कार है। ये चारों (बछिया) तुम्हारी प्रिया हैं। तुम्हें मुक्त कर देने पर मेरे सम्पूर्ण लोक मङ्गलमय तथा अविनश्वर हों।८-१०।

मा मे ऋणोऽस्तु दैवत्यो भौतः पैत्रोऽथ मानुषः ।
धर्मस्त्वं त्वत्प्रपन्नस्य या गतिः साऽस्तु मे ध्रुवा ॥११
अङ्कयेच्चक्रशूलाभ्यां मन्त्रेणानेन चोत्सृजेत् ।
एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्यते वृषः ॥१२
मुच्यते प्रेतलोकात्तु षण्मासे चाब्दिकादिषु ।
दशहस्तेन दण्डेन[2] त्रिंशद्दण्डान्निवर्तनम् ॥१३

मेरे ऊपर देवता, पितृ, भूत तथा मनुष्य किसी का भी ऋण न रहने पाये। तुम धर्म हो। जो गति तुम्हारे भक्तों को मिलती है, वही निश्चय ही मुझे मिले। इस प्रकार जिस प्रेत के एकादशाह में बैल छोड़ा जाता है, वह छह मास या एक वर्ष में अवश्य प्रेतलोक से छुटकारा पा जाता है। दशहाथ का परिमाण एक दण्ड कहलाता है, तीस दण्डों का निवर्तन होता है।११-१३।

तान्येव दशविस्तारादगोचर्मैतत्प्रदोऽघभित् ।
गोभूहिरण्यसंयुक्तं कृष्णाजिनं तु योऽर्पयेत् ॥१४

---

१ ग° यि दत्तेऽक्ष° । २ च.° न त्रिदण्डेन निव° ।

सर्वदुष्कृतकर्माऽपि सायुज्यं ब्रह्मणो व्रजेत् ।
भाजनं तिलसम्पूर्णं मधुना पूर्णमेव च ॥१५
दद्यात्कृष्णतिलानां च प्रस्थमेकं च मागधम् ।
शय्यां दत्त्वा तु सगुणां भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ॥१६

दश निवर्तनों का एक गोचर्म माना गया है। उस एक गोचर्म का दान करने से बड़े-बड़े पापों का नाश हो जाता है। जो व्यक्ति गाय, भूमि और सोने के साथ कृष्णमृगचर्म का दान करता है, वह पापी होने पर भी ब्रह्मसायुज्य (मोक्ष) को प्राप्त कर लेता है। जो तिलपूर्ण पात्र, मधुपूर्ण पात्र, एक प्रस्थ (सेर) तिल तथा मागध और सजी हुई शय्या का दान करता है, उसे भुक्तिमुक्ति की प्राप्ति होती है।१४-१६।

हैमीं प्रतिकृतिं कृत्वा दत्त्वा स्वर्गस्तथाऽऽत्मनः ।
विपुलं तु गृहं कृत्वा दत्त्वा स्याद्भुक्तिमुक्तिभाक् ॥१७
गृहं मठं सभां स्वर्गी दत्त्वा स्याच्च प्रतिश्रयम् ।
दत्त्वा कृत्वा गोगृहं च निष्पापः स्वर्गमाप्नुयात् ॥१८

स्वर्ण की प्रतिमा का दान करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। बड़ा सा घर बनाकर उसका दान करने से तथा धर्मशाला और गोशाला बनवाने से मनुष्य निष्पाप होकर स्वर्ग चला जाता है।१७-१८।

([1]यममाहिषदानात्तु निष्पापः स्वर्गमाप्नुयात् ।
ब्रह्मा हरो हरिर्देवैर्मध्ये च यमदूतकः ॥१९
पार्श्वी तस्य शिरश्छित्त्वा तं दद्यात्स्वर्गभाग्भवेत् ।)
त्रिमुखाख्यमिदं दान गृहीत्वा तु द्विजोऽघभाक् ॥२०

भैसा दान करने से मनुष्य निष्पाप होकर स्वर्ग को प्राप्त करता है। ब्रह्मा, शिव, तथा विष्णु के मध्य में यमदूत की प्रतिमा रखकर उसका शिर काटकर दान करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। इस दान को त्रिमुखाख्य दान कहते हैं। इसको लेने वाला द्विज पाप का भागी होता है।१९-२०।

[2]चन्द्रं रूपमयं कृत्वा[3] के धृत्वा[4] तत्प्रदापयेत्[5] ।
होमयुक्तं द्विजायैतत्कालचक्रमिदं महत् ॥२१

---

१ 'यममाहिषदानात्तु......स्वर्गभाग्भवेत्' पुस्तके नास्ति। २ घ. चक्रं। ३ च. °त्वा व्यापकत्वात् प्र°। ४ ग. भृत्वा। ५ घ. °त्। हेम°।

आत्मतुल्यं तु यो लौहं दद्देन्न नरकं व्रजेत् ।
पञ्चाप (श) त्पलसंयुक्तं लौहदण्डं तु योऽर्पयेत् ॥२२
वस्त्रेणाऽऽच्छाद्य विप्राय यमदण्डो न विद्यते ।
मूलं फलादि वा द्रव्यं संहृतं वाऽथ चैकशः ॥२३
मृत्युञ्जयं समुद्दिश्य दद्यादायुर्विवृद्धये[1] ॥२३½

चाँदी का चन्द्रमा बनाकर उसे जल में रखकर सोने के साथ ब्राह्मण को देना चाहिये, इसका नाम कालचक्र है । यह अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है । जो अपने बराबर लौहदान करता है, उसे नरक नहीं जाना पड़ता है । जो पचास पल लौहदण्ड को वस्त्र से ढँककर ब्राह्मण को दान करता है, उसे यमदण्ड का भय नहीं रह जाता है । जो फल, मूल आदि द्रव्यों को एक साथ या अलग-अलग मृत्युञ्जय (शिव) के उद्देश्य से दान करता है, उसकी आयु बढ़ती है ।२१-२३½।

पुमान्कृष्णतिलैः कार्यो रौप्यदन्तः[2] सुवर्णदृक् ॥२४
खड्गोद्यतकरो दीर्घो जपाकुसुममण्डलः ।
रक्ताम्बरधरः स्रग्वी शङ्खमालाविभूषितः ॥२५
उपानद्युगयुक्ताङ्घ्रिः [3]कृष्णकम्बलपार्श्वकः ।
गृहीतमांसपिण्डश्च वामे वै कालपूरुषः ॥२६
सम्पूज्य तं च गन्धाद्यैर्ब्राह्मणायोपपादयेत् ।
मरणव्याधिहीनः स्याद्राजराजेश्वरो भवेत् ॥२७

काले तिलों की एक पुरुष प्रतिमा बनानी चाहिए । उसके दाँत चाँदी के और नेत्र सोने के होने चाहिये । उसके हाथ में एक तलवार होनी चाहिये, उसका आकार लम्बा तथा मण्डल जपाकुसुम से सुशोभित होना चाहिए । उसे लाल वस्त्र, पुष्पमाला तथा शंखमाला से विभूषित होना चाहिये । वह पैरों में जूते पहने हुए हो । उसके पार्श्व में काला कम्बल पड़ा होना चाहिए । उसे मांसपिण्ड लिये हुए होना चाहिये । सुगन्धित पदार्थों से उसका पूजन करके ब्राह्मण को दे देना चाहिये । ऐसा करने से मनुष्य मृत्यु और व्याधि से रहित होकर राजराजेश्वर बन जाता है ।२४-२७।

---

१ क. ख. ग. ङ.° विवर्धते । पु० । २ क. ङ. °दण्डः सु° । ३ ख. ग. कृष्णः कमलपा° ।

गोवृषौ तु द्विजे दत्त्वा भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्[1] ।
हेमन्ताधिष्ठितं चाश्वं हैमं दत्त्वा न मृत्युभाक्[2] ॥२८
घण्टादिपूर्णमप्येकं दत्त्वा स्याद् भुक्तिमुक्तिभाक् ।
सर्वान्कामानवाप्नोति यः प्रयच्छति काञ्चनम् ॥२९

ब्राह्मण को गाय तथा बैल देने से भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। हेमन्त ऋतु में अश्व में स्वर्ण प्रतिमा दान करने से अपमृत्यु नहीं होती है। जो घण्टा आदि से युक्त एक भी (अश्व की) स्वर्ण प्रतिमा का दान करता है, उसे भुक्तिमुक्ति की प्राप्ति हो जाती है। सुवर्ण दान करने से सभी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं।२८-२९।

सुवर्णे दीयमाने तु रजतं दक्षिणोच्यते ।
अन्येषामपि दानानां सुवर्णं दक्षिणा स्मृता ॥३०
सुवर्णं रजतं ताम्रं तण्डुलं धान्यमेव च ।
नित्यश्राद्धं देवपूजा सर्वमेतददक्षिणम् ॥३१

सुवर्ण का दान करने पर चाँदी की दक्षिणा देनी चाहिये तथा अन्य (वस्तुओं का) दान करने में भी सोने की ही दक्षिणा देनी चाहिये। सोना चाँदी, ताँबा, चावल तथा (अन्य) धान्य के दान और नित्य श्राद्ध तथा देवपूजन दक्षिणा के बिना ही होने चाहिये।३०-३१।

रजतं दक्षिणा पित्र्ये (त्ये) धर्मकामार्थसाधनम् ।
सुवर्णं रजतं ताम्रं मणिमुक्तावसूनि च ॥३२
सर्वमेतन्महाप्राज्ञो ददाति वसुधां ददत् ।
पितृंश्च[3] पितृलोकस्थान्देवस्थाने च देवताः ॥३३
सन्तर्पयति शान्तात्मा यो ददाति वसुन्धराम् ॥३३½

पितृकर्म में चाँदी की दक्षिणा देने से धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति होती है। पृथ्वी के दान में बुद्धिमान् मनुष्य को सोना, चाँदी, ताँबा, मणि, मुक्ता तथा धन की दक्षिणा देनी चाहिए। जो शान्तात्मा व्यक्ति वसुन्धरा का दान करता है वह पितृलोक में पितरों को तथा देवलोक में देवताओं को तृप्त कर देता है।३२-३३½।

---

१ ग. घ. च. °त् । रेवन्ता° । २ क. ङ. °क् । जप्यादि । ३ ख. ग. कामोद्वहा वे° ।

खर्वटं खेटकं वाऽपि ग्रामं वा [1]सस्यशालिनाम् ॥३४
निवर्तनशतं वाऽपि तदर्धं वा गृहादिकम् ।
अपि गोचर्ममात्रां वा दत्त्वोर्वीं सर्वभाग्भवेत् ॥३५

खर्वट, खेटक, सस्यसम्पन्न गाँव, सौ पचास निवर्तन, परिमित गृह आदि और एक गोचर्म परिमित पृथ्वी का दान करने से सभी वस्तुओं की प्राप्ति हो जाती है ।३४-३५।

तैलविन्दुर्यथा चाप्सु प्रसर्पेद्भूगतं तथा ।
सर्वेषामेव दानानामेकजन्मानुगं फलम् ॥३६
हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलम् ।
त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य कन्यादो ब्रह्मलोकभाक् ॥३७

तेल की बूँद जैसे जल में गिरने से फैलने लगती है (उसी तरह कहीं भी किया गया दान अवश्य ही फल प्रदान करता है) । सब दानों का फल तो एक जन्म तक ही मिलता है, परन्तु सुवर्ण, पृथ्वी तथा कन्यादान का फल सात जन्मों तक प्राप्त होता रहता है । कन्यादान करने वाला अपनी इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार करके ब्रह्मलोक को चला जाता है ।३६-३७।

गजं सदक्षिणं दत्त्वा निर्मलः स्वर्गभाग्भवेत् ।
अश्वं दत्त्वाऽयुरारोग्यसौभाग्यस्वर्गमाप्नुयात् ॥३८
दासीं दत्त्वा द्विजेन्द्राय अप्सरोलोकमाप्नुयात् ।
दत्त्वा ताम्रमयीं स्थालीं पलानां पञ्चभिः शतैः[2] ॥३९
अर्धैस्तदर्धैरर्धैर्वा भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ।
शकटं वृषसंयुक्तं दत्त्वा यानेन नाकभाक् ॥४०

दक्षिणा के साथ गजदान करने वाला व्यक्ति निर्मल होकर स्वर्ग को चला जाता है । अश्वदान करने से आयु, आरोग्य, सौभाग्य और स्वर्ग की प्राप्ति होती है । किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को दासी का दान करने से अप्सरालोक की प्राप्ति होती है । पाँच सौ, ढाई सौ या सवा सौ पल ताँबे की बनी हुई थाली का दान करने से भोग और मोक्ष मिलता है । बैल से युक्त गाड़ी का दान करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।३८-४०।

---

१ क. ङ. °स्यमालि° । २ ख. °तैः । अर्धस्तदर्धैर्युक्ता वा भु° ।

वस्त्रदानाल्लभेदायुरारोग्यं स्वर्गमक्षयम् ।
धान्यगोधूमकलमयवादीन्स्वर्गभाग्ददत् ॥४१
आसनं तैजसं पात्रं लवणं गन्धचन्दनम् ।
धूपं दीपं च ताम्बूलं लोहं रूप्यं च रत्नकम्[1] ॥४२
([2]दिव्यानि नानाद्रव्याणि दत्त्वा स्याद्भुक्तिमुक्तिभाक् ।
तिलांश्च तिलपात्रं च दत्त्वा स्वर्गमवाप्नुयात् ॥)४३

वस्त्र के दान से आयु, आरोग्य तथा अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति होती है। (कोई भी) धान्य (जैसे) गेहूँ, कलम (धान्य-भेद) और यव आदि का दान करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। आसन, घी, पात्र, लवण, गन्ध, चन्दन, धूप, दीप, ताम्बूल, लोहा, चाँदी, रत्न तथा विविध प्रकार के सुन्दर द्रव्यों का दान करने से भुक्तिमुक्ति की प्राप्ति होती है । तिल तथा तिलपात्र दान करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है।४१-४३।

अन्नदानात्परं नास्ति न भूतं न भविष्यति ।
हस्त्यश्वरथदानानि दासीदासगृहाणि च ॥४४
अन्नदानस्य सर्वाणि कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
कृत्वाऽपि सुमहत्पापं यः पश्चादन्नदो भवेत् ॥४५
सर्वपापविनिर्मुक्तो लोकानाप्नोति चाक्षयान् ।
([3]पानीयं च प्रपां दत्वा भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ॥४६

अन्नदान से बढ़कर कोई दान न हुआ है, न होगा। हाथी, घोड़े, रथ, दासी तथा गृह का दान अन्नदान की सोलहवीं कला की भी समता नहीं कर सकता । महापाप करने वाला भी अन्नदान कर देने से समस्त पापों से मुक्त होकर अक्षय लोक को चला जाता है। जल तथा प्याऊ का दान करने से भोग और मोक्ष मिलता है।४४-४६।

अग्निं काष्ठं च मार्गादौ दत्त्वा दीप्त्यादिमाप्नुयात् ।)
देवगन्धर्वनारीभिर्विमाने सेव्यते दिवि ॥४७
घृतं तैलं च लवणं दत्त्वा सर्वमवाप्नुयात् ।
क्षत्रोपानहकाष्ठादि दत्त्वा स्वर्गे सुखी वसेत् ॥४८

---

१ क. ख. ग. °म् । विद्यादिनां । २ 'दिव्यानि····· स्वर्गमवाप्नुयात्' पुस्तके नास्ति । ३ 'पानीयं... .....दीप्त्यादिमाप्नुयात् नास्ति च. पुस्तके ।

अग्नि और लकड़ी का दान करने से तथा मार्ग आदि में दीपक जलाने से मनुष्य स्वर्गलोक को चला जाता है, जहाँ देवता तथा गन्धर्वों की स्त्रियाँ उसकी परिचर्या किया करती है। घी, तेल तथा लवण दान करने से सब कुछ प्राप्त हो जाता है। छाता, जूता और खड़ाऊँ आदि का दान करने से स्वर्गलाभ होता है।४७-४८।

प्रतिपत्तिथिमुख्येषु विष्कम्भादिषु योगके।
चैत्रादौ वत्सरादौ च अश्विन्यादौ हरिं हरम् ॥४९
ब्रह्माणं लोकपालादीन्प्राच्र्य दानं महाफलम्।
वृक्षारामान्भोजनादीन्मार्गसंवाहनादिकान् ॥५०
पादभ्यङ्गादिकं दत्त्वा भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ॥५०½

प्रतिपदा आदि तिथियों में, विष्कम्भ आदि योगों में, चैत्र आदि मासों में और अश्विनी आदि नक्षत्रों में हरि, हर, ब्रह्मा तथा लोकपाल आदि देवताओं का पूजन करके, दान देने से महाफल प्राप्त होता है। वृक्ष, उपवन, भोजन, मार्ग-संवाहन (पाथेय) तथा पादाभ्यङ्ग (जूता) आदि का दान करने से भुक्ति-मुक्ति प्राप्ति होती है।४९-५०½।

त्रीणि तुल्यफलानीह गावः पृथ्वी सरस्वती ॥५१
ब्राह्मीं सरस्वतीं दत्त्वा निर्मलो ब्रह्मलोकभाक्।
सप्तद्वीपमहीदः स ब्रह्मज्ञानं ददाति यः ॥५२
अभयं सर्वभूतेभ्यो यो दद्यात्सर्वभाङ्नरः।५२½

गौ, पृथ्वी तथा विद्या—इन तीनों के दान का फल समान हुआ करता है। विद्यादान करने वाला व्यक्ति निर्मल होकर ब्रह्मलोक को चला जाता है। जो ब्रह्मविद्या का दान करता है उसे सातों द्वीप की पृथ्वी दान करने का फल प्राप्त होता है। जो समस्त प्राणियों को अभयदान देता है उसे सभी पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं।५१-५२½।

पुराणं भारतं वाऽपि रामायणमथाऽपि वा ॥५३
लिखित्वा पुस्तकं दत्त्वा भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्।
वेदशास्त्रं नृत्यगीतं योऽध्यापयति नाकभाक् ॥५४

जो व्यक्ति पुराण, महाभारत या रामायण लिखकर दान करता है, वह भुक्ति मुक्ति का भागी होता है। वेदशास्त्र तथा नृत्यगीत का अध्ययन कराने वाला स्वर्गगामी होता है।५३-५४।

वृत्तिं दद्यादुपाध्याये छात्राणां भोजनादिकम् ।
किमदत्तं भवेत्तेन धर्मकामादिदर्शिना ।।५५
वाजपेयसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् ।
तत्फलं सर्वमाप्नोति विद्यादानान्न संशयः ।।५६

धर्म, काम आदि का मर्म समझने वाले जिस व्यक्ति ने आचार्य को वृत्ति दी और छात्रों को भोजन आदि दिया, उसने सब कुछ दे डाला। सम्यक् प्रकार से एक हजार वाजपेय-यज्ञ करने से जो फल प्राप्त होता है, वही फल विद्या-दान करने से प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं ।५५-५६।

शिवालये विष्णुगृहे सूर्यस्य भवने तथा ।
सर्वदानप्रदः स स्यात्पुस्तकं वाचयेत्तु यः ।।५७
त्रैलोक्ये चतु (त्वा) रो वर्णाश्चत्वारश्चाऽऽश्रमाः पृथक् ।
ब्रह्माद्या देवताः सर्वा विद्यादाने प्रतिष्ठिताः ।।५८
विद्याकामदुघा[1] धेनुर्विद्या चक्षुरनुत्तमम् ।
उपवेदप्रदानेन गन्धर्वैः सह मोदते ।।५९

शिवालय, विष्णुमन्दिर तथा सूर्य मन्दिर में पुस्तक का पाठ करवाने वाला, सब कुछ दान करने वाला (माना जाता) है। त्रैलोक्य में जो कुछ भी है—चार वर्ण, चार आश्रम तथा ब्रह्मा आदि देवता—वह विद्यादान में ही प्रतिष्ठित हैं। विद्या कामधेनु है, वही सर्वोत्तम नेत्र है। उपवेदों का दान करने से गन्धर्वों के साथ आनन्दोपभोग का अवसर मिलता है ।५७-५९।

वेदाङ्गानां च दानेन स्वर्गलोकमवाप्नुयात् ।
धर्मशास्त्रप्रदानेन धर्मेण सह मोदते ।।६०
सिद्धान्तानां प्रदानेन मोक्षमाप्नोत्यशंसयम् ।
विद्यादानमवाप्नोति प्रदानात्पुस्तकस्य तु ।।६१
शास्त्राणि च पुराणानि दत्त्वा सर्वमवाप्नुयात् ।
शिष्यांश्च शिक्षयेद्यस्तु पुण्डरीकफलं लभेत् ।।६२

वेदाङ्ग के दान से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। धर्मशास्त्र का दाता धर्म के साथ आनन्दित होता रहता है। सिद्धान्तों का दाता मोक्ष प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं है। पुस्तक दान करने से विद्यादान का फल मिलता है।

१. ख. ग. कामोद्वहा धे° ।

शास्त्र और पुराणों का दान करने से सभी पदार्थों की प्राप्ति होती है। जो शिष्यों को शिक्षा देता है, उसको वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है।६०-६२।

येन जीवति तद्दत्त्वा फलस्यान्तो न विद्यते।
लोके श्रेष्ठतमं[1] सर्वमात्मनश्चापि यत्प्रियम् ॥६३
सर्वं पितृणां दातव्यं तेषामेवाक्षयार्थिना।
विष्णुं रुद्रं पद्मयोनिं देवीं विघ्नेश्वरादिकान् ॥६४
पूजयित्वा प्रदद्याद्यः पूजाद्रव्यं स सर्वभाक्।
देवालयं च प्रतिमां कारयन्सर्वमाप्नुयात् ॥६५

अपनी जीविका के साधन को दान कर देने वाले के फलों का अन्त ही नहीं होता है। लोक में जो वस्तु सबसे उत्तम तथा अपनी प्रिय हो, उसे पितरों को दान करना चाहिए। इससे वे वस्तुयें अक्षय होकर (पुनः दाता को) प्राप्त होती हैं। विष्णु, रुद्र, ब्रह्मा, देवी, गणेश आदि का पूजन करके पूजा की वस्तु ब्राह्मण को समर्पित कर देने वाला सब कुछ प्राप्त कर लेता है। देवालय बनवाने तथा प्रतिमा स्थापित कराने से सभी कामनायें पूरी होती हैं।६३-६५।

संमार्जनं चोपलेपं कुर्वन्स्यान्निर्मलः पुमान्।
नानामण्डलकार्यग्रे मण्डलाधिपतिर्भवेत् ॥६६

देवमन्दिरों में झाड़ू लगाने तथा लीपने से मनुष्य (स्वयं) निर्मल हो जाता है। देवालय के आगे विविध प्रकार के मण्डलों का निर्माण कराने वाला मनुष्य मण्डलाधिपति हो जाता है।६६

गन्धं पुष्पं धूपदीपं नैवेद्यं च प्रदक्षिणम्।
घण्टाध्वजवितानं च प्रोक्षणं वाद्यगीतकम् ॥६७
वस्त्रादि दत्त्वा देवाय भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्।
कस्तूरिकां सिह्लकं च श्रीखण्डमगुरुं तथा ॥६८
कर्पूरं च तथा मुस्तं गुग्गुलं विजयं[2] ददेत्।
घृतप्रस्थेन संस्नाप्य संक्रान्त्यादौ स सर्वभाक् ॥६९

देवता को गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, प्रदक्षिणा, घण्टा, पताका, वितान, दर्पण, वाद्य, गीत, वस्त्र आदि समर्पण करने से भुक्तिमुक्ति की प्राप्ति होती

---

१ क. ङः °मं यच्च आत्म° । २ क. ङ. दहेत्।

है। कस्तूरी, सिह्लक (सुगन्धित द्रव्य), श्रीखण्ड, अगर, कपूर, मुस्ता, तथा गुग्गुल समर्पित करने से विजय लाभ होता है। संक्रान्ति आदि में घी से देवता को स्नान कराने से सब कुछ प्राप्त हो जाता है।६७-६९।

स्नानं पलशतं [1]ज्ञेयमभ्यङ्गं पञ्चविंशतिः।
पलानां तु सहस्रेण महास्नानं प्रकीर्तितम् ॥७०

एक पल परिमित घी का स्नान, स्नान होता है। पच्चीस पल से अभ्यङ्ग और एक हजार पल से महास्नान कहा गया है।७०

दशापराधास्तोयेन क्षीरेण स्नापनाच्छतम्।
सहस्रं पयसा दध्ना घृतेनायुतमिष्यते ॥७१
दासीदासमलङ्कारं गोभूमश्वगजादिकम्।
देवाय दत्त्वा सौभाग्यं धनायुष्मान्व्रजेद्दिवम् ॥७२

देवताओं को जल से स्नान कराने से दश पापों की शान्ति होती है, दुग्ध-स्नान से सौ पापों की, दूध-दही से हजार पापों की और घृत से दश हजार पापों की शान्ति होती है। जो देवता को दासी, दास, आभूषण, गाय, भूमि, घोड़े, हाथी आदि का दान करता है वह सौभाग्य, धन, तथा आयु प्राप्त करके स्वर्ग को जाता है।७१-७२।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानादानमहिमवर्णनं नामैकादशाधिक-द्विशततमोऽध्यायः।२११

अथ द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

मेरुदानानि

अग्निरुवाच—

काम्यदानानि वक्ष्यामि सर्वकामप्रदानि ते।
नित्यपूजां मासि मासि [2]कृत्वाऽथो काम्यपूजनम् ॥१

---

१ ग. ज्ञेयं मङ्गलं प°।   २ क. ङ. कृत्यार्थे का°।

व्रतार्हणं गुरोः पूजा वत्सरान्ते महार्चनम् ।
अश्वं वै मार्गशीर्षे तु कमलं पिष्टसम्भवम् ॥२
शिवाय पूज्य दद्यात् सूर्यलोके चिरं वसेत् ॥२½

अग्निदेव बोले—अब मैं कामनाओं को पूर्ण करने वाले काम्यदानों के सम्बन्ध में कहूँगा। इष्ट देवता अथवा गुरु की पूजा नित्यपूजा हुआ करती है और व्रत आदि का अनुष्ठान प्रतिमास हुआ करता है। मार्गशीर्ष में शिवपूजन करके पिष्ट (तण्डुल चूर्ण) का बना अश्व तथा कमलदान करने वाला व्यक्ति चिरकाल तक सूर्यलोक में निवास करता है। १-२½।

गजं पौषे पिष्टमयं त्रिसप्तकुलमुद्धरेत् ॥३
माघे चाश्वरथं पैष्टं दत्त्वा न नरकं व्रजेत् ।
फाल्गुने तु वृषं पैष्टं स्वर्गभुक्स्यान्महीपतिः ॥४

पौष मास में पिष्टमय गजदान करने से इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार होता है। माघ मास में पिष्ट का बना हुआ अश्व और रथ दान करने से नरक में नहीं जाना पड़ता है। फाल्गुन में पिष्टमय (पीठ के) बैल का दान करने से मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करके (अन्त में) राजा होकर जन्म लेता है।३-४।

चैत्रे[1] चेक्षुमयागारं दासदासीसमन्वितम् ।
दत्त्वा स्वर्गे चिरं स्थित्वा तदन्ते स्यान्महीपतिः ॥५
सप्तव्रीहींश्च वैशाखे दत्त्वा शिवमयो भवेत्।
बलिमण्डलकं[2] चान्नैः कृत्वाऽऽषाढे शिवो भवेत् ॥६

चैत्र में ईख का बना हुआ घर तथा दास-दासियाँ दान करने से मनुष्य स्वर्ग में चिरकाल तक निवास करके अन्त में महीपति होता है। वैशाख में सप्तधान दान करने से दाता शिवमय हो जाता है। आषाढ़ में अन्न का बलि मण्डल बनाकर दान करने से मनुष्य शिव (ही) हो जाता है।५-६।

विमानं श्रावणे पौष्पं दत्त्वा स्वर्गी ततो नृपः ।
शतद्वयं फलानां तु दत्त्वोद्धृत्य कुलं नृपः ॥७
गुग्गुलादि दहेद्भाद्रे स्वर्गी स स्यात्ततो नृपः ।
क्षीरसर्पिर्भृतं पात्रमाश्विने स्वर्गदं भवेत् ॥८
कार्तिके गुडखण्डाज्यं दत्त्वा स्वर्गी ततो नृपः ।
मेरुदानं द्वादशकं वक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्तिदम् ॥९

---

१ घ. च. °मयी° गावं दा° । २ ख. ग. °कं रात्रौ कृ° ।

श्रावण मास में पुष्पविमान दान करने से मनुष्य स्वर्ग-लाभ करके अन्त में नृपति होता है। उसी मास में सौ फलों का दान करने से (दाता अपनी) इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार करके अन्त में भूपति होता है। भाद्रपद में (देवता के सम्मुख) गुग्गुल आदि सुलगाने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। आश्विन में घी से भरा पात्र दान करने वाला स्वर्ग को चला जाता है। कार्तिक मास में गुड़, खाँड़, घी से भरा पात्र दान करने वाला स्वर्ग को चला जाता है। तथा (कालान्तर में) राजा होता है। अब मैं बारह प्रकार का मेरुदान बतलाता हूँ; जो भोग और मोक्ष दिलाने वाला हुआ करता है।७-९।

मेरुव्रते तु कार्तिक्यां रत्नमेरुं ददेद्द्विजे।
सर्वेषां चैव मेरूणां प्रमाणं क्रमशः शृणु ॥१०

कार्तिकी पूर्णिमा में मेरुव्रत में ब्राह्मण को रत्न का मेरुपर्वत देना चाहिए। अब क्रमशः सभी मेरुओं का प्रमाण सुनो।१०

वज्रपद्ममहानीलनीलस्फटिकसंज्ञितः।
पुष्पं मरकतं मुक्ता प्रस्थमात्रेण चोत्तमः ॥११
मध्योऽर्धः स्यात्तदर्धोऽधो वित्तशाठ्यं विवर्जयेत्।
कर्णिकायां न्यसेन्मेरुं ब्रह्मविष्णवीशदैवतम् ॥१२

वज्र, पद्म, महानील, नील, स्फटिक, पुखराज, मरकत, मुक्ता—इन सबसे मेरु बनता है। सेर भर द्रव्य से बना मेरु उत्तम होता है। आधे सेर से बना मध्यम और पाव भर से बना हुआ मेरु अधम हुआ करता है। (मेरुदान में) धन की शठता (कृपणता) का परित्याग कर देना चाहिये। (पूर्ववर्णित कमल चक्र की) कर्णिका के ऊपर ब्रह्मा, विष्णु, महेश देवताओं से सम्बद्ध मेरु का न्यास करना चाहिये।११-१२।

[1]माल्यवान्पूर्वतः पूज्यस्तत्पूर्वो भद्रसंज्ञितः।
अश्वरक्षस्ततः प्रोक्तो निषधो मेरुदक्षिणे ॥१३
हेमकूटोऽथ हिमवांस्त्रयं सौम्ये तथा त्रयम्।
नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च पश्चिमे गन्धमादनः[2] ॥१४
वैकङ्कः केतुमालः स्यान्मेरुर्द्वादशसंयुतः।
सोपवासोऽर्चयेद्विष्णुं शिवं वा स्नानपूर्वकम् ॥१५

१ ग. °वान्पूर्व°। २ क. ङ.° नः। वौषट्कं के°।

उसकी पूर्व दिशा में माल्यवान् और माल्यवान् के पूर्व की ओर भद्र और अश्वरक्ष पर्वतों की पूजा करनी चाहिये। मेरु के दक्षिण की ओर हेमकूट, हिमवान्, तथा निषध, उत्तर की ओर नील, श्वेत, शृंगी तथा पश्चिम की ओर गन्धमादन, केतुमाल और वैकङ्क नामक पर्वतों की पूजा करनी चाहिये। उस दिन उपवास करते हुए स्नानपूर्वक विष्णु अथवा शिव का पूजन करना चाहिये।१३-१५।

देवाग्रे प्राच्र्य मेरुं च मंत्रैर्विप्राय वै ददेत्।
विप्रायामुकगोत्राय मेरुं द्रव्यमयं परम् ॥१६
भुक्त्यै मुक्त्यै निर्मलत्वे विष्णुदैवं ददामि ते।
इन्द्रलोके ब्रह्मलोके शिवलोके हरेः पुरे ॥१७
कुलमुद्धृत्य क्रीडेत विमाने [1]देवपूजितः।
अन्येष्वपि च कालेषु संक्रान्त्यादौ प्रदापयेत् ॥१८

तदनन्तर देवताओं के सम्मुख मन्त्रों से मेरु की पूजा करके उसे ब्राह्मण को दे देना चाहिए। 'मैं निष्पाप होकर भुक्तिमुक्ति प्राप्त करने के लिये विष्णु देवता से सम्बद्ध यह द्रव्यमय मेरु अमुक गोत्र वाले विप्र को समर्पण कर रहा हूँ।' इस प्रकार मेरुदान करने वाला व्यक्ति अपने कुल का उद्धार कर देवताओं का पूज्य हो जाता है तथा इन्द्रलोक, ब्रह्मलोक, शिवलोक और गोलोक में विमान पर क्रीड़ा करता है। संक्रान्ति आदि अन्य कालों में भी मेरुदान करना चाहिये।१६-१८।

पलानां तु सहस्रेण[2] महामेरुं प्रकल्पयेत्।
शृङ्गत्रयसमायुक्तं ब्रह्मविष्णुहरान्वितम् ।१९
एकैकं पर्वतं तस्य शतैकेन कारयेत्।
मेरुणा सह शैलास्तु ख्यातास्तत्र त्रयोदश ॥२०
अयने ग्रहणादौ च विष्ण्वग्रे हरिमर्च्य च।
स्वर्णमेरुं द्विजायाऽर्प्य विष्णुलोके चिरं वसेत् ॥२१

सहस्रपल परिमित सोने का बड़ा सा मेरु बनाना चाहिये। उसके तीनों शिखरों को ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर से युक्त होना चाहिये। उस महामेरु का एक-एक पर्वत सौ-सौ पल का होना चाहिये। मेरु को मिलाकर उन

१ क. ङ. देवपूजितं। २ घ. °ण हेममे°।

पर्वतों की संख्या तेरह होनी चाहिए। अयनों में तथा ग्रहण आदि में विष्णु के आगे पूजा करके स्वर्णमेरु ब्राह्मण को दे देना चाहिये। ऐसा करने वाला चिरकाल तक विष्णु लोक में निवास करता है।१९-२१।

परमाणवो यावन्त इह राजा भवेच्चिरम्।
रौप्यमेरुं द्वादशाद्रियुतं संकल्पतो ददेत्॥
प्रागुक्तं च फलं तस्य विष्णुं विप्रं प्रपूज्य च।
भूमिमेरुं च विषयं मण्डलं ग्राममेव च॥२३
परिकल्प्याष्टमांशेन शेषांशाः पूर्ववत्फलम्।
द्वादशाद्रिसमायुक्तं हस्तिमेरुस्वरूपिणम्॥२४
ददेत्त्रिपुरुषैर्युक्तं दत्त्वाऽनन्तफलं लभेत्॥२४½

तदनन्तर इस लोक में उतने वर्षो तक राज्य करता है, जितने यहाँ परमाणु हैं। विष्णु तथा विप्र की पूजाकर चाँदी के बारह पर्वतों के साथ एक रजतमेरु दान करने से भी पूर्वोक्त फल प्राप्त होता है। आठ राज्य मंडल (जिला) तथा नगरों से युक्त भूमिमेरु का दान करने से भी उक्त फल प्राप्त होता है। बारह पर्वतों से युक्त हस्तिमेरु दान करने से मनुष्य तीन पीढ़ियों का उद्धार करके अनन्त फल प्राप्त कर लेता है।२२-२४½।

त्रिपञ्चाश्वैरश्वमेरुं हयद्वादशसंयुतम्॥२५
विष्णवादीन्पूज्य तं दत्त्वा भुक्तभोगो नृपो भवेत्।
अश्वसंख्याप्रमाणेन गोमेरुं पूर्ववद्ददेत्॥२६

विष्णु आदि देवताओं की पूजा करके बारह अश्वों के साथ पन्द्रह अश्वों का बना अश्वमेरु दान करने वाला व्यक्ति सम्पूर्ण भोगों का उपभोग करता हुआ (अनेक जन्मों में) राजा होता है। अश्वमेरु (दान में दिये गये अश्वों) की संख्या के अनुसार गोमेरु दान करना चाहिए।२५-२६।

[1]पट्टवस्त्रैर्भारमात्रैर्वस्त्रमेरुश्च मध्यतः।
शैलैर्द्वादशवस्त्रैश्च दत्त्वा तं चाक्षयं फलम्॥२७
घृतपञ्चसहस्रैश्च पलानामाज्यपर्वतः।
शतैः पञ्चभिरेकैकः पर्वतेऽस्मिन्हरिं यजेत्॥२८
विष्णवग्रे ब्राह्मणायाऽऽर्प्य सर्वं प्राप्य हरिं व्रजेत्॥२८½

---

१ 'पट्टवस्त्रै.........मध्यतः' इत्यत्र क. ङ. पुस्तकयोरेतद्दृश्यते—
"यद्भवेद्भारगात्रैस्तु वसुमेरुं च मध्यतः।" इति।

भारमात्र रेशमी वस्त्रों का वस्त्रमेरु का दान मध्यम कोटि का होता है। बारह वस्त्रों के साथ वस्त्रमेरु दान करने से अक्षयफल प्राप्त होता है। पाँच हजार पल घी का आज्यपर्वत होता है। उसका प्रत्येक उपपर्वत पाँच-पाँच सौ पल घी का होना चाहिए। उसके ऊपर भगवान् विष्णु की पूजा करके और भगवान् विष्णु के सामने ही ब्राह्मण को यह पर्वत दान कर देने से विष्णु (लोक) की प्राप्ति होती है।२७-२८३।

एवं च खण्डमेरुं च कृत्वा दत्त्वाऽऽप्नुयात्फलम् ॥२९
धान्यमेरुः पञ्चखारोऽपर एकैकखारकाः।
स्वर्णत्रिशृङ्गकाः सर्वे ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥३०
सर्वेषु पूज्य विष्णुं वा विशेषादक्षयं फलम्।
एवं दशांशमानेन तिलमेरुं प्रकल्पयेत् ॥३१

इसी प्रकार खाँड़ का मेरु बनाकर उसका दान करने से (अभीष्ट) फल की प्राप्ति होती है। पाँच खार (मन) का धान्यमेरु हुआ करता है। उसका प्रत्येक उपपर्वत एक-एक मन का होना चाहिये। उन सब के तीन-तीन सोने के शिखर होने चाहिये जिनके ऊपर ब्रह्मा, विष्णु, महेश की पूजा करनी चाहिए। ऐसा करने से अक्षय फल प्राप्त होता है। धान्यमेरु के दशांश परिणाम से तिलमेरु की रचना करनी चाहिये।२९-३०।

शृङ्गाणि पूर्ववत्तस्य तथैवान्यनगेषु च।
तिलमेरुं प्रदायाथ[1] वन्धुभिर्विष्णुलोकभाक् ॥३२

उसके शिखर पूर्ववत् हों, जिनके ऊपर पूर्ववत् विष्णु आदि देवताओं की पूजा करनी चाहिए। तिलमेरु का दान करने से मनुष्य अपने वन्धुओं के साथ विष्णुलोक को जाता है।३२।

नमो विष्णुस्वरूपाय धराधराय वै नमः।
ब्रह्मविष्णवीशशृङ्गाय धरानाभिस्थिताय च[2]।३३
नगद्वादशनाथाय सर्वपापापहारिणे।
विष्णुभक्ताय शान्ताय त्राणं मे कुरु सर्वदा ॥३४
निष्पापः पितृभिः सार्धं विष्णुं गच्छामि ओं नमः।
त्वं हरिस्तु हरेरग्रे अहं विष्णुश्च विष्णवे।
निवेदयामि भक्त्या तु भुक्तिमुक्त्यर्थहेतवे ॥३५

१ क. ङ. च. °भिर्ब्रह्मलो°। २ क. ङ. च। दशद्वा°।

मेरुओं की प्रार्थना इस प्रकार से करनी चाहिये—'विष्णुरूप मेरु को नमस्कार है। भूधर को नमस्कार है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश को, शिखरों पर धारण करने वाले (पर्वतों) को नमस्कार है। बारह पर्वतों के स्वामी (इन पर्वतों) को नमस्कार है। सकल पापों को अपहरण करने वाले को नमस्कार है। मैं विष्णुभक्त तथा शान्त हूँ। सब प्रकार से मेरी रक्षा कीजिये। मैं निष्पाप होकर पितरों के साथ विष्णुलोक को जा रहा हूँ, ओम् को नमस्कार है। तुम विष्णु हो, मैं विष्णु के समक्ष विष्णु हूँ और भुक्ति मुक्ति पाने के लिये मैं भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णु को नमस्कार कर रहा हूँ।३३-३५।

**इत्यादिमहापुराण आग्नेये मेरुदानवर्णनं नाम द्वादशाधिक-
द्विशततमोऽध्यायः। २१२**

अथ त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

पृथ्वीदानानि

पृथ्वीदानं प्रवक्ष्यामि पृथिवी त्रिविधा मता।
शतकोटिर्योजनानां सप्तद्वीपा[1] ससागरा ॥१
जम्पूद्वीपावधिः सा च उत्तमा[2] मेदिनीरिता।
उत्तमा पञ्चभिर्भारैः काञ्चनैश्च प्रकल्पयेत् ॥२

अब मैं पृथ्वीदान के सम्बन्ध में कहूँगा। सौ करोड़ योजनों में विस्तृत पृथ्वी, जिसमें सातों द्वीप और सागर भी आ जाते हैं। तीन प्रकार की कही गयी है। उनमें जम्बूद्वीप तक सीमित पृथ्वी उत्तमा पृथ्वी है। (दान करने के लिये) उत्तमा पृथ्वी को पाँच भार सुवर्ण से बनाना चाहिये। इस प्रकार निर्मित पृथ्वी उत्तम हुआ करती।१-२।

तदर्धान्तरजं कूर्मं तथा पद्मं समादिशेत्।
उत्तमा कथिता पृथ्वी द्व्यंशेनैव तु मध्यमा ॥३
कन्यसा च त्रिभागेन (ण) त्रिहान्या कूर्मपङ्कजे।
पलानां तु सहस्रेण कल्पयेत्कल्पपादपम् ॥४

१ख. च. पावसानतः। ज°। २ ख. °माद्रिः समीरि°।

इसके आधे से बनी हुयी पृथ्वी मध्यम होती है तथा उसके भी तिहाई भाग से बनी हुयी पृथ्वी अधम कोटि की होती है जिस पर तिहाई भाग से कूर्म और पद्म बने रहते हैं। एक हजार पल (सुवर्ण) से कल्पवृक्ष की रचना करनी चाहिये ।३-४।

मूलदण्डं सपत्रं च फलपुष्पसमन्वितम् ।
पञ्चस्कन्धं तु संकल्प्य पञ्चानां दापयेत्सुधीः ।।५
एतद्दाता ब्रह्मलोके पितृभिमादते चिरम् ।५ $\frac{1}{2}$

उसमें मूल, दण्ड, पत्र, पुष्प तथा पाँच शाखायें होनी चाहिये। इस प्रकार की पृथ्वी का दान करने वाला बुद्धिमान् पितरों के साथ चिरकाल तक ब्रह्मलोक में आनन्द प्राप्त करता है ।५-५$\frac{1}{2}$।

विष्ण्वग्रे कामधेनुं तु पलानां पञ्चभिः शतैः ।।६
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या देवा धेनौ व्यवस्थिताः ।
धेनुदानं सर्वदानं सर्वदम् ब्रह्मलोकदम् ।।७

विष्णु के समक्ष पाँच सौ पल सुवर्ण की बनी हुई कामधेनु का दान करना चाहिये। ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवता गाय में निवास किया करते हैं। वह सब कुछ देने वाला और ब्रह्मलोक को प्रदान करने वाला है ।६-७।

विष्ण्वग्रे कपिलां दत्त्वा तारयेत्सकलं कुलम् ।
अलंकृत्य स्त्रियं दद्यादश्वमेधफलं लभेत् ।।८

भगवान् विष्णु के समक्ष कपिला गौ दान करने वाला व्यक्ति अपने सम्पूर्ण कुल का उद्धार कर देता है। अलङ्कारों से अलङ्कृत स्त्री का दान करने से अश्वमेध का फल प्राप्त होता है ।८।

भूमिं दत्त्वा सर्वभाक्स्यात्सर्वसस्यप्ररोहिणीम् ।
ग्रामं वाऽथ पुरं वाऽपि खेटकं च ददत्सुखी ।।९
कार्तिक्यादौ वृषोत्सर्गं कुर्वंस्तारयते कुलम् ।।१०

सब प्रकार के अन्न से युक्त भूमि का दान करने से सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। गाँव, नगर तथा खेटक (छोटा गाँव) दान करने वाला सुखी रहता है। कार्तिकी पूर्णिमा आदि मे सांड़ छोड़ने वाला अपने कुल का उद्धार कर देता है ।९-१०।

इत्याग्नेये महापुराणे आग्नेये पृथ्वीदानवर्णनं नाम त्रयोदशाधिक-द्विशततमोऽध्यायः ।२१३

अथ चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नाडीचक्रकथनम्

अग्निरुवाच—

नाडीचक्रं प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञानाज्ज्ञायते हरिः।
नाभेरधस्ताद्यत्कन्दमङ्कुरास्तत्र निर्गताः ॥१

अग्निदेव बोले—अब मैं नाडीचक्र को बतलाऊँगा, जिसे जान लेने से भगवान् विष्णु का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। नाभि के नीचे जो कन्द है, उससे अङ्कुर निकलते हैं।१

द्वासप्ततिसहस्राणि नाभिमध्ये व्यवस्थिताः।
तिर्यगूर्ध्वमधश्चैव व्याप्तं ताभिः समन्ततः ॥२
चक्रवत्संस्थिता ह्येताः प्रधाना दश नाडयः।
इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्णा च तथैव च ॥३
गान्धारी हस्तिजिह्वा च पृथा[1] चैव यशा तथा।
अलम्बुषा[2] हुहुश्चैव शङ्खिनी दशमी स्मृता ॥४

नाभि के मध्य में बहत्तर हजार नाडियाँ स्थित हैं जो ऊपर, नीचे तथा तिरछे फैलकर चारों ओर व्याप्त हो गयी हैं। उनकी स्थिति चक्राकार है। उनमें प्रधान दश नाडियाँ हैं जिनका नाम—इडा, पिगंला, सुषुम्णा, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पृथा, यशा, अलम्बुषा, हुहु तथा शङ्खिनी है।२-४।

दशप्राणवहा ह्येता नाडयः परिकीर्तिताः।
प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ॥५
नागः कूर्मोऽथ कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः।
प्राणस्तु प्रथमो वायुर्दशानामपि स प्रभुः ॥६

उन नाड़ियों में दश प्राणों का संचार होता रहता है, जिनके नाम हैं—प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर देवदत्त तथा धनञ्जय। उन दशों में प्राणवायु सर्वप्रथम है और सबका स्वामी है।५-६।

---

१ क. ङ. पूषा। २ क. ख. ङ. °षाकुहूश्चै°।

प्राणः प्राणायते प्राणं विसर्गात्पूरणं प्रति ।
नित्यमापूरयत्येष प्राणिनामुरसि स्थितः ॥७
निःश्वासोच्छ्वासकासैस्तु[1] प्राणो जीवसमाश्रितः ।
([2]प्रयाणं कुरुते यस्मात्तस्मात्प्राणः प्रकीर्तितः ॥८

प्राणवायु प्राण को विसर्ग (त्याग=अपान वायु) से हटाकर पूर्णता की ओर ले जाता है। अर्थात् वह प्राणियों के उर (हृदय) में नित्य रहता हुआ (श्वास को) पूर्ण करता है। निःश्वासोच्छ्वास के द्वारा प्राण जीव से मिलता है। क्योंकि यह (एक निश्चित अवधि के बाद शरीर से) प्रयाण करता है इसलिये इसका नाम 'प्राण' पड़ा है।७-८।

अधो नयत्यपानस्तु आहारस्तु नृणामधः ।
मूत्रशुक्रवहो वायुरपानस्तेन कीर्तितः ॥६
पीतभक्षितमाघ्रातं रक्तपित्तकफानिलम् ।
समं नयति गात्रेषु समानो नाम मारुतः ॥)१०
स्पन्दयत्यधरं वक्त्रं नेत्ररागप्रकोपनम् ।
उद्वेजयति मर्माणि उदानो नाम मारुतः ॥११

अपान वायु मनुष्यों के आहार को नीचे ले जाता है और मूत्र तथा वीर्य को प्रवाहित करता है; इसलिये उनका नाम अपान पड़ा है। समान वायु पिये हुए, खाये हुए तथा सूंघे हुए पदार्थों को और रक्त, पित्त, कफ तथा वायु को समान रूप से शरीर के अङ्गों में पहुँचाता है, इसलिये उसका नाम समान है। उदान वायु अधर और मुख में स्पन्दन उत्पन्न करता है, नेत्रों में रक्तिमा लाता है और मर्मों को उद्विग्न करता है, इसलिये उसे उदान कहते हैं।६-११।

व्यानो विनामयत्यङ्गं व्यानो व्याधिप्रकोपनः ।
प्रतिदानं यथा कण्ठाद्व्यापनाद्व्यान उच्यते ॥१२
उद्गारे नाग इत्युक्तः कूर्मश्चोन्मीलने स्थितः ।
कृकरो भक्षणे चैव देवदत्तो विजृम्भते ॥१३
धनञ्जयः स्थितो घोषे मृतस्यापि न मुञ्चति ॥१३[1/2]

---

१ क. ङ. °स्तु जीवनो नाममारुतः। २ प्रयाणं......मारुतः क. ङ. पुस्तकयो र्नास्ति ।

व्यान वायु, अंगों को झुकाता है, व्याधियों को बढ़ाता है, कण्ठ में वायु को रोकता है और सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है। डकार लाने का काम नाग-वायु करता है; (नेत्रों को) खोलने का काम कूर्म वायु का है; भक्षण करने में कृकर वायु और जंभाई लेने में देवदत्त वायु काम किया करता है। धनञ्जय नामक वायु घोष (ध्वनि) में स्थित रहता है और वह मरने पर भी नहीं छोड़ती है।१२-१३½।

जीवः प्रयाति दशधा नाडीचक्रं हि तेन तत् ॥१४
सङ्क्रान्तिर्विषुवं चैव अहोरात्रायनानि च।
अधिमास ऋणं चैव ऊनरात्रधनं तथा ॥१५
ऊनरात्रं भवेद्धिक्का अधिमासो विजृम्भिका।
ऋणं चात्र भवेत्कासो निःश्वासो धनमुच्यते ॥१६

इन दशों द्वारा जीव प्रयाण करता है, इसलिए प्राणभेद से नाड़ीचक्र के भी भेद हैं। संक्रान्ति, विषुव, दिन, रात, अयन, अधिमास, ऋण, ऊनरात्र एवं धन—ये सूर्य की गति से होने वाली दश दशायें शरीर में भी होती हैं। इस शरीर में हिक्का (हिचकी), ऊनरात्र, विजृम्भिका (जंभाई), अधिमास, कास (खाँसी), ऋण और निःश्वास 'धन' कहा जाता है।१४-१६।

उत्तरं दक्षिणं ज्ञेयं वामं दक्षिणसंज्ञितम्।
मध्ये तु विषुवं प्रोक्तं पुटद्वयविनिःसृतम् ॥१७
संक्रान्तिः पुनरस्यैव स्वस्थानात्स्थानयोगतः।
सुषुम्णा मध्यमे ह्यङ्गः इडा वामे प्रतिष्ठिता ॥१८
पिंगला दक्षिणे विप्र ऊर्ध्व प्राणो ह्यहः स्मृतम् ॥१८½

शरीर के दक्षिण भाग को उत्तर और बायें भाग को दक्षिण कहते हैं। मध्य में विष्णु कहा गया है, जो दोनों नासिकापुटों से निकलता है। उसी को संक्रान्ति भी कहते हैं, जो अपने स्थान से दूसरे स्थान को जाता रहता है।—सुषुम्णा मध्य भाग में, इडा वाम भाग में पिङ्गला दक्षिण भाग में और प्राण ऊपर के भाग में प्रतिष्ठित रहते हैं उसी को दिन कहा गया है।१७-१८½।

अपानो रात्रिरेवं स्यादेको वायुर्दशात्मकः[1] ॥१९
आयामो देहमध्यस्थः सोमग्रहणमिष्यते ।
[2]देहातितत्त्वमायाममादित्यग्रहणं विदुः ॥२०

अपान को रात्रि कहते हैं। इस प्रकार एक ही वायु दस प्रकार का हुआ करता है। देह के मध्य में स्थित आयाम को चन्द्रग्रहण कहते हैं; और वही जब देह से निकल जाता है तब उसे (योग की भाषा में) सूर्यग्रहण कहने लगते हैं।१९-२०।

उदारं पूरयेत्तावद्वायुना यावदोप्सितम् ।
प्राणायामो भवेदेष पूरको देहपूरकः ॥२१
पिधाय सर्वद्वाराणि निःश्वासोच्छ्वासवर्जितः ।
सम्पूर्णकुम्भवत्तिष्ठेत्प्राणायामः स कुम्भकः ॥२२
मुञ्चेद्वायुं[3] ततस्तूर्ध्वं श्वासेनैकेन मन्त्रवित् ।
उच्छ्वासयोगयुक्तश्च वायुमूर्ध्वं विरेचयेत् ॥२३

साधक अपने उदर में जितनी वायु भरी जा सके, भर ले। यह देह को पूर्ण करने वाला 'पूरक' प्राणायाम है। श्वास निकलने के सभी द्वारों को रोक कर, श्वासोच्छ्वास की क्रिया से शून्य हो परिपूर्ण कुम्भ की भाँति स्थित हो जाय—इसे 'कुम्भक' कहते हैं। तदनन्तर मन्त्रवेत्ता साधक ऊपर की ओर एक ही नासारन्ध्र से वायु को निकाले। इस प्रकार उच्छ्वास योग से युक्त हो वायु का ऊपर की ओर विरेचन (निःसारण) करे (यह 'रेचक' प्राणायाम है)।२१-२३।

उच्चरति स्वयं यस्मात्स्वदेहावस्थितः शिवः ।
तस्मात्तत्त्वविदां चैव स एव जप उच्यते ॥२४
अयुते द्वे सहस्रैकं षट्शतानि तथैव च ।
अहोरात्रेण योगीन्द्रो जपसंख्यां करोति सः ॥२५
अजपा नाम गायत्री ब्रह्मविष्णुमहेश्वरी ।
अजपां जपते यस्तां पुनर्जन्म न विद्यते ॥२६

---

१ क. ङ. वा स्वर्गचार्यकः। २ क. ङ. °हातीतभ्रमा°। ३ क. ङ. °ञ्चेच्छ्वासं त°।

(मनुष्यों के) शरीर में रहने वाला शिव ही (हृदय स्पन्दन के समय हंसः हंसः के रूप में) उच्चारण किया करता है, इसीलिये तत्त्ववेत्ता (योगी) लोग उसे जप कहते हैं। उच्चकोटि के योगीगण एक रात-दिन में इक्कीस हजार छह सौ बार उसका जप करते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश से सम्बद्ध गायत्री का नाम अजया है। जो इस अजया का जप करते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता है।२४-२६।

चन्द्राग्निरविसंयुक्ता आद्या कुण्डलिनी मता।
हृत्प्रदेशे तु सा ज्ञेया अङ्कुराकारसंस्थिता ॥२७
सृष्टिन्यासो भवेत्तत्र स वै सर्गावलम्बनात्।
स्रवन्तं चिन्तयेत्तस्मिन्नमृतं सात्त्विकोत्तमः ॥२८
देहस्थः सकलो ज्ञेयो निष्कलो देहवर्जितः।
हंस हंसेति यो ब्रूयाद्धंसो नाम सदाशिवः ॥२९

चन्द्रमा, अग्नि तथा सूर्य मे संयुक्त आधा शक्ति कुण्डलिनी कहलाती है। वह अंकुर रूप हृदय-देश में स्थित रहा करती है। सम्पूर्ण सृष्टि का न्यास सृजन अवलम्ब है। श्रेष्ठ सात्विक साधक को सदैव यह चिन्ता करते रहना चाहिये कि उस कुण्डलिनी से अमृत टपक रहा है। जो देह में रहता है, वह सकल (पूर्ण) है और जो उससे अलग है वह निष्कल (अपूर्ण) है। जो हंसः हंसः कहा जाता है, वह हंसः सदाशिव का ही है।२७-२९।

तिलेषु च यथा तैलं पुष्पे गन्धः समाश्रितः।
पुरुषस्य तथा देहे सबाह्याभ्यन्तरं स्थितः ॥३०
ब्रह्मणो हृदये स्थानं कण्ठे विष्णुः समाश्रितः।
तालुमध्ये स्थितो रुद्रो ललाटे तु महेश्वरः ॥३१
प्राणाग्रं तु शिवं विद्यात्तस्यान्ते तु परापरम्।
पञ्चधा सकलः प्रोक्तो विपरीतस्तु निष्फ(ष्क)लः ॥३२

जैसे तिल में तेल और पुष्प में गन्ध व्याप्त है, उसी तरह पुरुष के शरीर में वाहर भीतर सर्वत्र वह हंसः व्याप्त रहता है। ब्रह्मा का स्थान हृदय में है तथा विष्णु कण्ठ में हैं, रुद्र तालु में और महेश्वर ललाट में निवास किया करते हैं। प्राणाग्र में शिव और उसके भी अन्त में परापर (ब्रह्म) का स्थान है। सकल पाँच प्रकार का है और निष्कल उसका विपरीत होता है।३०-३२।

प्रासादं नादमुत्थाप्य शततन्तु जपेद्यदि ।
षण्मासात्सिद्धिमाप्नोति योगयुक्तो न संशयः ।।३३
गमागमस्य ज्ञानेन सर्वपापक्षयो भवेत् ।
अणिमादिगुणैश्वर्यं षड्भिर्मासैरवाप्नुयात् ।।३४

जो व्यक्ति छह मास तक योगयुक्त होकर प्रासाद नामक नाद को उठाकर शततन्तु का नित्य जप करता है, उसे निःसन्देह सिद्धि प्राप्त हो जाती है। गमागमन (आने जाने वाले) वायु का ज्ञान प्राप्त होने से सम्पूर्ण पापों का नाश हो जाता है। ऐसे व्यक्ति को छह मास के भीतर अणिमा आदि ऐश्वर्य प्राप्त हो जाते हैं।३३-३४।

स्थूलः सूक्ष्मः परश्चेति प्रासादः कथितो मया ।
ह्रस्वो दीर्घः प्लुतश्चेति प्रासादं लक्षयेत्त्रिधा ।।३५
ह्रस्वो दहति पापानि दीर्घो मोक्षप्रदो भवेत् ।
आप्यायने प्लुतश्चेति मूर्ध्नि विन्दुविभूषितः ।।३६

स्थूल, शूक्ष्म तथा पर नामक प्रासाद (ध्वनियों) को तो मैं बता चुका हूँ। इसके तीन लक्षण हैं—ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत। ह्रस्व पाप को जलाता है, दीर्घ मोक्ष प्रदान करता है और प्लुत मस्तक में विन्दु भूषित होकर आप्यायन (वृद्धि) करता है।३५-३६।

आदावन्ते च ह्रस्वस्य फट्कारो मारणे हितः ।
आदावन्ते च हृदयमाकृष्टौ संप्रकीर्तितम् ।।३७
देवस्य दक्षिणां मूर्तिं पञ्चलक्षं स्थितो जपेत् ।
जपान्ते घृतहोमस्तु दशसाहस्रिको भवेत् ।।३८

(मन्त्र के) आदि और अन्त में ह्रस्व फट् जोड़ देने से मारण क्रिया का प्रयोग सफल होता है। (मन्त्र) के आदि और अन्त में हृदय जोड़ने से आकर्षण सिद्ध होता है। देवता की दक्षिणामूर्ति का पूजन कर पाँच लाख मन्त्र का जप करना चाहिये। जपान्त में घी से दस हजार बार हवन करना चाहिए।३७-३८।

एवमाप्यायितो मन्त्रो वश्योच्चाटादि कारयेत् ।
ऊर्ध्वे शून्यमधः शून्यं मध्ये शून्यं निरामयम् ।।३९

त्रिशून्यं यो विजानाति मुच्यतेऽसौ ध्रुवं द्विजः।
प्रासादं यो न जानाति पञ्चतन्त्रमहातनुम् ।।४०
अष्टत्रिंशत्कलायुक्तं न स आचार्य उच्यते ।
तथोंकारं च गायत्रीं रुद्रादीन्वेत्त्यसौ गुरुः ।।४१

इस प्रकार मन्त्र सिद्ध करने से वशीकरण, उच्चाटन आदि सब सफल होते हैं। ऊपर शून्य है, नीचे शून्य है और मध्य में शून्य है । जो ऐसे त्रिशून्य निरामय ब्रह्म को जानता है, वह निश्चय ही ससार से मुक्त हो जाता है। जो पाँच मन्त्रों के महातनु (मुख्य अङ्ग) तथा अड़तीस कलाओं से युक्त प्रासाद को नहीं जानता है, वह आचार्य कहलाने योग्य नहीं है। उसी तरह जो ओंकार, गायत्री तथा रुद्र आदि को जानता है, उसे गुरु कहना चाहिये ।३९-४१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नाडीचक्रकथनं नाम चतुर्दशाधिक-द्विशततमोऽध्यायः ।२१४

अथ पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सन्ध्याविधिः

अग्निरुवाच—

ओङ्कारं यो विजानाति स योगी स हरिः पुमान् ।
ओङ्कारमभ्यसेत्तस्मान्मन्त्रसारं तु सर्वदम् ।।१

अग्निदेव बोले—जो मनुष्य ओंकार को भलीभाँति जानता है, वह योगी है, वह विष्णु है। इसलिये ओंकार का अभ्यास (जप) करना चाहिये; क्योंकि यह सब मन्त्रों का सार है। इससे सकलकामनायें पूर्ण होती है ।१

सर्वमन्त्रप्रयोगेषु प्रणवः प्रथमः स्मृतः।
तेन संपरिपूर्णं यत्तत्पूर्णं कर्म नेतरत् ।।२
ओंकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः ।
त्रिपदा चैव सावित्रीविज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम् ।।३

सभी मन्त्रों के प्रयोग में प्रणव (ओं) पहले ही आता है। जो कर्म ओंकार से युक्त रहता है, वही पूर्ण होता है, दूसरा नहीं। ओंकार पूर्वक तीनों महाव्याहृतियाँ (भूर्भुवः स्वः) अव्यय हैं। त्रिपदा (गायत्री) सावित्री ब्रह्मा का मुख है ।२-३।

योऽधीतेऽहन्यहन्येतास्त्रीणि [1]वर्षाण्यतन्द्रितः ।
स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान् ॥४
एकाक्षरं परंब्रह्म प्राणायामः[2] परं तपः ।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते ॥५

जो मनुष्य तीन वर्षों तक आलस्य-रहित होकर प्रतिदिन महाव्याहृतियों (गायत्री) का अध्ययन (जप) करता है, वह वायु तथा आकाश (शून्य) होकर परब्रह्म में लीन हो जाता है। सावित्री से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है। मौन रहने से सत्य बोलना अच्छा है ।४-५।

सप्तावर्ता पापहरा दशभिः प्रापयेद्दिवम् ।
विंशावर्ता तु सा देवी नयते हीश्वरालयम् ॥६
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा तीर्णः संसारसागरात् ।
रुद्रकूष्माण्डजप्येभ्यो गायत्री तु विशिष्यते ॥७

सात वार गायत्री का जप करने से पापों का नाश हो जाता है। दस वार जप करने से स्वर्ग की और बीस वार जप करने से वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है। एक सौ आठ वार जप करने से संसार-सागर से उद्धार हो जाता है। रुद्र कूष्माण्ड आदि मन्त्रों से गायत्री उत्तम है ।६-७।

न गायत्र्याः परं जप्यं न व्याहृतिसमं हुतम् ।
गायत्र्याः पादमप्यर्धमृगर्धमृचमेव वा ॥८
ब्रह्महत्या सुरापानं सुवर्णस्तेयमेव च ।
गुरुदारागमश्चैव जप्येनैव पुनाति सा ॥९

न तो गायत्री के समान कोई मन्त्र है और न व्याहृति के समान कोई हवन है। गायत्री के एक पाद, आधा पाद, आधी ऋचा या एक ऋचा का जप

१ घ. छ. °तन्त्रितः । २ छ. °यामप° ।

करने से ब्रह्महत्या, मद्यपान, सुवर्णस्तेय तथा गुरुपत्नीगमन आदि महापाप भी नष्ट हो जाते हैं ।८-६।

पापे कृते तिलैर्होमो गायत्री जप ईरितः ।
जप्त्वा सहस्रं गायत्र्या उपवासी स पापहा ॥१०
गोघ्नः पितृघ्नो मातृघ्नो ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।
ब्रह्मघ्नः स्वर्णहारी च सुरापो लक्षजप्यतः ॥११
शुध्यते वाऽथ वा स्नात्वा शतमन्तर्जले जपेत् ।
अपः शतेन पीत्वा तु गायत्र्याः पापहा भवेत् ॥१२

पाप करने पर (उसके प्रायश्चित्त के लिये) तिल से होम तथा गायत्री का जप बताया गया है । एक हजार गायत्री का जप करके उपवास करने से पापों का नाश हो जाता है । गोघाती, पितृघाती, मातृघाती, ब्रह्मघाती, गुरुपत्नीगामी, सुवर्णहारी तथा मद्यपान करने वाला मनुष्य एक लाख गायत्री जप करने से भी शुद्ध हो जाता है । अथवा स्नानोपरान्त जल के भीतर एक सौ बार गायत्री जप करने से भी शुद्ध हो जाता है । सौ वार गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित जल पीने से पापों का नाश होता है ।१०-१२।

शतं जप्ता तु गायत्री पापोपशमनी स्मृता ।
सहस्रं जप्ता सा देवी उपपातकनाशिनी ॥१३
अभीष्टदा कोटिजप्ता देवत्वं राजतामियात् ।
ओंकारं पूर्वमुच्चार्य भूर्भुवः स्वस्तथैव च ॥१४
गायत्री प्रणवश्चान्ते जपे चैवमुदाहृतम् ॥१४½

सौ वार गायत्री का जप करने से वह पाप को नष्ट करती है । हजार वार जप करने से उपपातकों का शमन करती है । एक करोड़ गायत्री का जप करने से इच्छायें पूर्ण होती हैं और उसका जप करने वाला देवत्व और राजत्व को प्राप्त कर लेता है । पूर्व में ओंकार तथा भूर्भुवः स्वः का उच्चारण करना चाहिये ।१३-१४½।

विश्वामित्रऋषिश्छन्दो गायत्रं सविता तथा ॥१५
देवतोपनये जप्ये विनियोगो हुते तथा ।
अग्निर्वायू रविर्विद्युद्यमो जलपतिर्गुरुः ॥१६

पर्जन्य इन्द्रो गन्धर्वः पूषा च तदनन्तरम् ।
मित्रोऽथ वरुणस्त्वष्टा वसवो मरुतः शशी ॥१७
अङ्गिरा विश्वनासत्यौ कस्तथा सर्वदेवताः ।
रुद्रो ब्रह्मा च विष्णुश्च क्रमशोऽक्षरदेवताः ॥१८
गायत्र्या जपकाले तु कथिताः पापनाशनाः ॥१८½

इसके ऋषि विश्वामित्र, छन्द गायत्री, देवता सविता हैं । इसका विनियोग उपनयन जप तथा हवन में किया जाता है। गायत्री के जपकाल में अग्नि, वायु, पर्जन्य, इन्द्र, गन्धर्व, पूषा, मित्र, वरुण, त्वष्टा, वसु, मरुत, शशी, अंगिरा, विश्व, नासत्य, रुद्र, ब्रह्मा तथा विष्णु क्रमशः इन देवताओं का नाम लेने से पापों का नाश हो जाता है ।१५-१८½।

पादाङ्गुष्ठौ च गुल्फौ च नलकौ जानुनी तथा ॥१९
जङ्घे शिश्नश्च वृषणौ कटिर्नाभिस्तथोदरम् ।
स्तनौ च हृदयं ग्रीवा मुखं तालु च नासिका[1] ॥२०
चक्षुषी च भ्रुवोर्मध्यं ललाटं पूर्वमाननम् ।
दक्षिणोत्तरपार्श्वे द्वे शिर आस्यमनुक्रमात् ॥२१
पीतः श्यामश्च कपिलो[2] मारकतोऽग्निसंनिभः ।
रुक्मविद्युद्धूम्रकृष्णरक्तगौरेन्द्रनीलभाः ॥२२
स्फाटिकस्वर्णपाण्ड्वाभाः पद्मरागोऽखिलद्युतिः ।
हेमधूम्ररक्तनीलरक्तकृष्णसुवर्णभाः ॥२३
शुक्लकृष्णपलाशाभा गायत्र्या वर्णकाः क्रमात् ।
ध्यानकाले पापहरा हुतैषा सर्वकामदा ॥२४

(गायत्री के जप करने में) चरण, अङ्गुष्ठ, गुल्फ (टखने), नलक, घुटने, जङ्घा, शिश्न, अण्डकोष, कटि, नाभि, उदर, स्तन, हृदय, ग्रीवा, मुख, तालु, नासिका, चक्षु, भ्रूमध्य, ललाट, वाम दक्षिण पार्श्व, शिर तथा मुख—इन अङ्गों का न्यास करना चाहिए । गायत्री का वर्ण पीत, श्याम, कपिल, मरकतमणि, सोना तथा विद्युत् के समान धूम्र कृष्ण, रक्त, गौर, इन्द्रनील मणि के समान, स्फटिक के समान, पाण्डु, पद्मरागमणि के समान शुक्ल, कृष्ण और हरा हुआ करता है। गायत्री का ध्यान करने से सभी पापों का नाश हो जाता है, इससे हवनकरने से सभी अभिलाषायें पूरी होती हैं ।१९-२४।

---

१ ख. ग. घ. छ. नासिके । २ क. ङ. ॰पिलः कवरः शिवसं॰ ।

गायत्र्या तु तिलैर्होमः सर्वपापप्रणाशनः ।
शान्तिकामो यवैः कुर्यादायुष्कामो घृतेन च ॥२५
सिद्धार्थकैः कर्मसिद्ध्यै पयसा ब्रह्मवर्चसे ।
पुत्रकामस्तथा दध्ना धान्यकामस्तु शालिभिः ॥२६
क्षीरिवृक्षसमिद्भिस्तु ग्रहपीडोपशान्तये ।
धनकामस्तथा बिल्वैः श्रीकामः कमलैस्तथा ॥२७
आरोग्यकामो दूर्वाभिर्गुरूत्पाते स एव हि ।
सौभाग्येच्छुर्गुग्गुलुना विद्यार्थी पायसेन (च) ॥२८

गायत्री पढ़कर तिल से हवन करने से समस्त पापों का नाश हो जाता है । शान्ति का इच्छुक व्यक्ति यव से, आयु का इच्छुक घी से, कार्य में सिद्धि चाहने वाला सफेद सरसों से, ब्रह्मवर्चस् का इच्छुक दूध से, पुत्राभिलाषी दही से, अन्नाभिलाषी चावल से, ग्रहपीड़ा की शान्ति चाहने वाला गूलर की समिधा से, धन का इच्छुक बिल्व से, लक्ष्मी का इच्छुक कमल से, आरोग्यकामी दूर्वा से, भयङ्कर उत्पात की शान्ति चाहने वाला दूर्वा से, सौभाग्यकामी गुग्गुल से और विद्यार्थी को खीर से हवन करना चाहिए ।२५-२८।

अयुतेनोक्तसिद्धिः स्याल्लक्षेण मनसेप्सितम् ।
कोट्या ब्रह्मवधान्मुक्तः कुलोद्धारी हरिर्भवेत् ॥२९
ग्रहयज्ञमुखो वाऽपि होमोऽयुतमुखोऽर्थकृत् ।
आवाहनं च गायत्र्यास्तत ओङ्कारमभ्यसेत् ॥३०

दस हजार बार (गायत्री पढ़कर) हवन करने से उपर्युक्त वस्तुओं की सिद्धि होती है । एक लाख बार हवन करने से मनोकामना पूरी होती है । करोड़ बार गायत्री मंत्र से हवन करने से मनुष्य ब्रह्महत्या से मुक्त होकर अपने कुल का उद्धार कर विष्णुसायुज्य प्राप्त कर लेता है । ग्रह-शान्ति के लिए तथा यज्ञ में हवन करना चाहिए । दस हजार होम करने से अर्थसिद्धि होती है । पहले गायत्री का आवाहन करके तदनन्तर ओङ्कार का ध्यान करना चाहिये ।२९-३०।

स्मृत्वोङ्कारं तु गायत्र्या निबध्नीयाच्छिखां ततः ।
पुनराचम्य हृदयं नाभिं स्कन्धौ च संस्पृशेत् ॥३१
प्रणवस्य ऋषिर्ब्रह्मा गायत्री छन्द एव च ।
देवोऽग्निः परमात्मा स्याद्योगो वै सर्वकर्मसु ॥३२

ओङ्कार का स्मरण करके तत्पश्चात् गायत्री से शिखा बाँधनी चाहिये। पुनः आचमन कर हृदय नाभि और स्कन्धों का स्पर्श करना चाहिये। प्रणव का ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री, देवता अग्नि और परमात्मा तथा विनियोग सभी कर्मों में हुआ करता है।३१-३२।

शुक्ला चाग्निमुखी दिव्या कात्यायनसगोत्रजा।
त्रैलोक्यवरणा दिव्या पृथिव्याधारसंयुता॥
अक्षसूत्रधरादेवी पद्मासनगता शुभा॥३३

गायत्री का ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—'वह शुक्लवर्ण है, अग्नि के समान देदीप्यमान उसका मुख है, वह दिव्यरूपा है, कात्यायन गोत्र में उत्पन्न हुई है। वह अपने तेज से तीनों लोकों को भासित करने वाली है, पृथिवी उसका आधार है। वह रुद्राक्ष की माला धारण किये हुए पद्मासन पर बैठी हुई तथा अत्यन्त सुन्दरी है।३३

ॐ तेजोऽसि [1]सहोऽसि वलमसि भ्राजोऽसि देवानां
धामनामाऽसि विश्वमसि विश्वायुः सर्वमसि
सर्वायुरोमभि भूः॥३४

तदनन्तर यह कहकर गायत्री का आवाहन करना चाहिये—"देवि! तुम तेज हो, समृद्धि हो, वल हो, कान्ति हो, देवों का ओज हो, विश्व हो, विश्वायु हो, सब हो, सर्वायु हो और तुमसे सम्पूर्ण पृथ्वी व्याप्त है।३४

आगच्छ वरदे देवि जप्ये (पे) मे संनिधौ भव॥
गायन्तं त्रायसे यस्माद्गायत्री त्वं ततः स्मृताः॥३५
व्याहृतीनां तु सर्वासामृषिरेव प्रजापतिः।
व्यस्ताश्चैव समस्ताश्च ब्राह्ममक्षरमोमिति॥३६

देवि! वरदायिनि! आओ, मेरे जयकाल मे उपस्थित रहो। तुम अपने गाने वाले का त्राण करती हो, इसलिये तुम्हारा नाम गायत्री है।" ब्राह्म अक्षर ओङ्कार अलग-अलग व्याहृतियों के साथ-साथ रहते हुए भी आता है।३५-३६।

---

१ घ. छ. 'सि महोऽ°। च. °सि व°।

विश्वामित्रो जमदग्नि[1] भरद्वाजोऽथ गौतमः[2] ।
ऋषिरत्रिर्वशिष्ठश्च काश्यपश्च यथाक्रमम् ॥३७
अग्निर्वायू रविश्चैव) वाक्पतिर्वरुणस्तथा ।
इन्द्रो विष्णुर्व्याहृतीनां दैवतानि यथाक्रमम् ॥३८
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्च बृहती पङ्क्तिरेव च ।
त्रिष्टुप् जगति चेति च्छन्दांस्याहुरनुक्रमात् ॥३९
विनियोगो व्याहृतीनां प्राणायामे च होमके ॥३९½

व्याहृतियों के देवता क्रमशः ये हैं—विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वशिष्ठ, कश्यप, अग्नि, वायु, रवि, बृहस्पति, वरुण, इन्द्र तथा विष्णु । व्याहृतियों के छन्द क्रमशः इस प्रकार है—गायत्री उष्णिक् अनुष्टुप्, बृहती पंक्ति, त्रिष्टुप् तथा जगती । व्याहृतियों का विनियोग प्राणायाम तथा हवन में किया जाता है ।३७-३९½।

आपो हि ष्ठेत्यृचा चापो द्रुपदादीति वा स्मृता ॥४०
तथा हिरण्यवर्णाभिः पावमानीभिरन्ततः ।
विप्रुषोऽष्टौ क्षिपेदूर्ध्वमाजन्मकृतपापजित् ॥४१
अन्तर्जलं ऋतं चेति जपेत्त्रिरघमर्षणम् ।
आपो [3]हिष्ठेति त्र्यृचस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः स्मृतः ॥४२
[4]ब्राह्मस्नानाय च्छन्दोऽस्य गायत्री देवता जलम् ।
मार्जने विनियोगोऽस्य[5] ह्यावभृथके क्रतोः ॥४३

'आपो हिष्ठा', 'आपो द्रुपदादि' तथा 'हिरण्यवर्णाभिः पावमानीभिः'—इन मन्त्रों को पढ़कर आठ बार जलबिन्दुओं को ऊपर की ओर छिड़ककर मार्जन करना चाहिये । ऐसा करने से जन्म भर का किया हुआ पाप नष्ट हो जाता है । फिर जल के भीतर 'ऋतं च' इत्यादि अघमर्षण मन्त्र का तीन बार जप करना चाहिये । 'आपो हिष्ठा' से प्रारम्भ होने वाली तृच का ऋषि सिन्धुद्वीप कहा गया है । ब्रह्मज्ञान साधक गायत्री इसका छन्द है और जल देवता है । अवभृथ स्नान में इसका विनियोग किया जाता है ।४०-४३।

अघमर्षणसूक्तस्य ऋषिरेवाघमर्षणम् (णः) ।
अनुष्टुप् च भवेच्छन्दो भाववृत्तस्तु[6] दैवतम् ॥४४

---

१ भरद्वाजोऽथ.........रविश्चैव च. पुस्तके नास्ति । २ घ. गोतमः ।
३ छ. °ष्ठेत्यृचोऽस्याश्च सि० । ४ ख. ग. ब्रह्मज्ञानाय । ५ घ. छ. °योगस्य ।
६ क. ख. ग. ङ. °वृत्तं च दै० ।

आपो ज्योती रस इति गायत्र्यास्तु शिरः स्मृतम् ।
ऋषिः प्रजापतिस्तस्य च्छन्दोहीनं यजुर्यतः ॥४५
ब्रह्माग्निवायुसूर्याश्च देवताः परिकीर्तिताः ।
प्राणरोधात्तु वायुः स्याद्वायोरग्निश्च जायते ॥४६

'अघमर्षणसूक्त' का ऋषि अघमर्षण है, छन्द अनुष्टुप् है और देवता भाववृत्त है।'आपो ज्योतीरसः' यह गायत्री का सिर है। इसका ऋषि प्रजापति हैं और इसका छन्द कोई भी नही है, क्योंकि यह यजुष् (गद्य) है। इसके देवता ब्रह्मा, अग्नि, वायु और सूर्य कहे गये हैं। प्राण निरोध करने से वायु की उत्पत्ति होती है, वायु से अग्नि उत्पन्न होता है।४४-४६।

अग्नेरापस्ततः शुद्धिस्ततश्चाऽऽचमनं चरेत् ।
अन्तश्चरति भूतेषु गुहायां विश्वमूर्तिषु ॥४७
तपो यज्ञो वषट्कार आपो ज्योती रसाऽमृतम् ।
उदुत्यं जातवेदसमृषिः प्रस्कण्व[1] उच्यते ॥४८
गायत्री छन्द आख्यातं सूर्यश्चैव तु दैवतम् ।
अतिरात्रे नियोगः स्यादग्नीषोमो(ग्निष्टोमो) नियोगकः॥४९
[2]चित्रं देवेति च ऋच ऋषिः कौत्स उदाहृत ।
त्रिष्टुप्छन्दो दैवतं च सूर्योऽस्याः परिकीर्तितम् ॥५०

अग्नि से जल उत्पन्न होता है। जल से शुद्धि तथा आचमन करना चाहिये। उसका मन्त्र है—

'उदुत्यं जातवेदसम्' मन्त्र का ऋषि प्रस्कण्व, छन्द गायत्री और देवता सूर्य कहा गया है। इसका विनियोग अतिरात्र तथा अग्निष्टोम यज्ञ में है। 'चित्रं देवेति' ऋचा का ऋषि कौत्स, छन्द त्रिष्टुप् और देवता सूर्य कहा गया है।४७-५०।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सन्ध्याविधिकथनं नाम पञ्चदशाधिक-द्विशततमोऽध्यायः।२१५

---

१ क ङ. च. प्रस्यश्च उ° । घ. छ. प्रष्कन्न । २ घ. छ. °तिस्रृचकस्र°।

अथ षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

गायत्रीनिर्वाणम्

अग्निरुवाच—

एवं सन्ध्याविधिं कृत्वा गायत्रीं च जपेत्स्मरेत् ।
गायञ्शिष्यान्यतस्त्रायेत्कायः [1](यं) प्राणांस्तथैव च ॥१
ततःस्मृतेयं गायत्री सावित्र्यायं ततो यतः ।
प्रकाशनात्सा सवितुर्वाग्रूपत्वात्सरस्वती ॥२

अग्निदेव बोले—इस प्रकार सन्ध्याविधि करके गायत्री का जप और ध्यान करना चाहिये । इसको गाते हुये मनुष्य शिष्यों की, अपने शरीर की तथा अपने प्राणों की रक्षा करता है, इसलिये उसे गायत्री कहा गया है । यह सविता का प्रकाश रूप होने से सरस्वती भी कही जाती है ।१-२।

तज्ज्योतिः परमं ब्रह्म भर्गस्तेजो यतः स्मृतम् ।
भा दीप्ताविति रूपं हि भ्रस्जः पाकेऽथ तत्स्मृतम् ॥३
ओषध्यादिकं पचति भ्राजृदीप्तौ तथा भवेत् ।
भर्गः स्याद्भ्राजत इति वहुलं छन्द ईरितम् ॥४
वरेण्यं सर्वतेजोभ्यः श्रेष्ठं वै परमं पदम् ।
स्वर्गापवर्गकामैर्वा वरणीयं सदैव हि ॥५

ज्योति परब्रह्म है और उन्हीं का तेज है । यह 'भा दीप्तौ' तथा 'भ्रस्ज पाके' धातु का रूप है । यह स्वयं दीप्ति है तथा ओषधि आदि को पकाती है । 'भाजृ दीप्तौ' धातु से 'वहुलं छन्दसि' नियम के अनुसार 'भ्राजते' शब्द वनता है जिसके कारण यह भर्ग कहलाती है ; यह सब तेजों में श्रेष्ठ तथा परम पद है । स्वर्गकामी तथा मोक्षकामी के द्वारा उसका सदैव वरण किया जाना चाहिये ।३-५।

वृणोतेर्वरणार्थत्वाज्जाग्रत्स्वप्नादिवर्जितम् ।
नित्यं शुद्धं बुद्धमेकं सत्यं तद्धीमहीश्वरम् ॥६
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्ध्यायेमहि (?) विमुक्तये ।
तज्ज्योतिर्भगवान्विष्णुर्जगज्जन्मादिकारणम् ॥७

---

१ ख. ग. घ. छ. °येद्भार्यां प्रा° ।

'वरेण्य' शब्द वरणार्थक वृज् धातु से निष्पन्न होता है। (इसीलिये ब्रह्म वरेण्य है क्योंकि) वह जागृति और स्वप्न आदि अवस्थाओं से परे है। वह नित्य, शुद्ध, बुद्ध, अद्वितीय, सत्य और सर्वशक्तिमान् है। इसका साधक मन में यह चिन्तन करता रहे कि 'मैं अपनी मुक्ति के लिये परब्रह्म ज्योतिःस्वरूप का ध्यान करता रहूँ।' वह ज्योति है, भगवान् विष्णु, जो संसार के जन्म आदि का कारण है।६-७।

शिवं केचित्पठन्ति स्म शक्ति रूपं पठन्ति च।
केचित्सूर्यं केचिदग्निं वेदगा अग्निहोत्रिणः।।८
अग्न्यादिरूपी विष्णुर्हि वेदादौ ब्रह्म गीयते।
तत्पदं परमं विष्णोर्देवस्य सवितुः स्मृतम्।।९

उसे कोई शिव कहते हैं कोई शक्ति। कोई वेदवेत्ता सूर्य समझते हैं, कोई अग्निहोत्री उसे अग्नि मानते हैं। अग्नि आदि रूपों में रहने वाला ही वेद आदि शास्त्रों में ब्रह्म कहा गया है। उस विष्णु का परमपद ही सवितृ देवता का भी परमपद कहा गया है।८-९।

महदाद्यं सूयते हि स्वयं ज्योतिर्हरिः प्रभुः।
पर्जन्यो वायुरादित्यः शीतोष्णाद्यैश्च पाचयेत्।।1०
अग्नौ प्रास्ताऽऽहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।।11

स्वयं ज्योतिरूप भगवान् विष्णु से ही महत् आदि (तत्त्व) उत्पन्न होते हैं। पर्जन्य, वायु, आदित्य ही सर्दी, गर्मी से (अन्नादि को) पकाते हैं। अग्नि में सम्यक् प्रकार से डाली हुई आहुतियाँ सूर्य को प्राप्त होती हैं। सूर्य से वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न और अन्न से प्रजा की उत्पत्ति होती है। १०-११।

दधातेर्वा धीमहीति मनसा धारयेमहि।
नोऽस्माकं यश्च भर्गश्च सर्वेषां प्राणिनां धियः।।1२
चोदयात्प्रेरयेद्बुद्धिर्भोक्तृणां सर्वकर्मसु।
दृष्टादृष्टविपाकेषु विष्णुसूर्याग्निरूपवान्।।1३

'धीमहि' शब्द की व्युत्पत्ति धारण करने के अर्थ में 'धा' धातु से भी हो सकती है। इस प्रकार मन्त्र का अर्थ हुआ हम मन से धारण करें। जिससे

वह हमारी तथा समस्त प्राणियों की बुद्धि को सत्कर्म में प्रेरित करें (क्योंकि यह सिद्धान्त है कि) सूर्य तथा अग्नि रूपी विष्णु से सम्पूर्ण कर्मों में तथा उनके दृष्ट और अदृष्ट परिणामों में निखिल जीवों की बुद्धि को प्रेरणा मिलती है ।१२-१३ ।

ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ।
ईशावास्यमिदं सर्वं महदादि जगद्धरिः[1] ।।१४
स्वर्गाद्यैः क्रीडते देवो यो हंसः पुरुषः प्रभुः ।
आदित्यान्तर्गतं यच्च भर्गाख्यं वै मुमुक्षुभिः ।।१५
जन्ममृत्युविनाशाय दुःखस्य त्रिविधस्य च ।
ध्यानेन पुरुषोऽयं च द्रष्टव्यः सूर्यमण्डले ।।१६

ईश्वर से प्रेरित होकर जीव या स्वर्ग नरक को जाता है। महत् तत्त्वादि विशिष्ट सम्पूर्ण जगत् ईश (परमात्मा) का निवास-स्थान है। वह 'हंस' पुरुष स्वर्ग आदि बनाकर क्रीड़ा करता है । सूर्य के अन्तर्गत जो तेज है, वह उसी का है। मुमुक्षुओं को जन्म-मृत्यु और त्रिविध पापों (आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक) से छुटकारा पाने के लिये सूर्यमण्डल में उसी हंस का ध्यान करना चाहिये । १४-१६ ।

तत्त्वं सदसि चिद्ब्रह्म विष्णोर्यत्परमं पदम् ।
देवस्य सवितुर्भर्गो वरेण्यं हि तुरीयकम् ।। १७
देहादिजाग्रदाब्रह्म[2] अहं ब्रह्मेति धीमहि ।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहमनन्तओम्[3] ।।
ज्ञानानि शुभकर्मादीन्प्रवर्तयति यः सदा ।। १८

साधक मन में यह चिन्तन करता रहे कि जो तत्, सत्, चित् विष्णु का परमपद तथा सविता देव का तुरीय श्रेष्ठ तेज है, वही मैं हूँ और उसी ब्रह्म का मैं ध्यान करता हूँ। आदित्य-मण्डल में जो ज्ञान तथा शुभकर्मों का सदा प्रवर्तक है, वही अनन्त और ओंकार मैं हूँ। १७-१८।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गायत्रीनिर्वाणकथनं नाम षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः । २१६

१ क. ङ. °द्धरेः । स्व° । २ ङ. °दास्वर्गमहं । ३ क. ङ. °म् । यज्ञादिशु° ।

अथ सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

गायत्रीनिर्वाणम्

अग्निरुवाच—

लिङ्गमूर्ति शिवं स्तुत्वा गायत्र्या योगमाप्तवान् ।
निर्वाणं परमं ब्रह्म[1] वशिष्ठोऽन्यश्च शंकरात् ॥ १
नमः कनकलिङ्गाय वेदलिङ्गाय वै नमः ।
नमः परमलिङ्गाय[2] व्योमलिङ्गाय वै नमः ॥ २

अग्निदेव बोले—लिङ्गमूर्ति शिव की स्तुति करने से वशिष्ठ तथा अन्य उपासक गायत्री योग और निर्वाण रूप पर-ब्रह्म को प्राप्त हुये थे । वशिष्ठ ने शिवलिङ्ग की स्तुति इस प्रकार की थी ।—"सुवर्णमय लिङ्ग को नमस्कार है । वेदलिङ्ग को नमस्कार है । परमलिङ्ग को नमस्कार है । आकाशलिङ्ग को नमस्कार है । १-२ ।

नमः सहस्रलिङ्गाय वह्निलिङ्गाय वै नमः ।
नमः पुराणलिङ्गाय श्रुतिलिङ्गाय वै नमः ॥ ३
नमः पाताललिङ्गाय ब्रह्मलिङ्गाय वै नमः ।
नमो रहस्यलिङ्गाय सप्तद्वीपोर्ध्वलिङ्गिने ॥ ४
नमः सर्वात्मलिङ्गाय सर्वलोकाङ्गलिङ्गिने ।
नमस्त्वव्यक्तलिङ्गाय बुद्धिलिङ्गाय वै नमः ॥ ५

सहस्रलिङ्ग को नमस्कार है । वह्निलिङ्ग को नमस्कार है । पुराणलिङ्ग को नमस्कार है । श्रुतिलिङ्ग को नमस्कार है । पाताललिङ्ग को नमस्कार है । ब्रह्मलिङ्ग को नमस्कार है । रहस्यलिङ्ग को नमस्कार है । सातों द्वीपों से ऊर्ध्व (वहिर्भूत) लिङ्ग को नमस्कार है । सर्वात्मलिङ्ग को नमस्कार है । समस्त लोकों के अङ्गभूत लिङ्ग को नमस्कार है । अव्यक्तलिङ्ग को नमस्कार है । बुद्धिलिङ्ग को नमस्कार है । ३-५ ।

नमोऽहङ्कारलिंगाय भूतलिङ्गाय वै नमः ।
नम इन्द्रियलिंगाय नमस्तन्मात्रलिङ्गिने ॥ ६

---

१ ख. च. 'ष्ठोऽप्येवशं' । २ क. ङ. पवनलि' ।

नमः पुरुषलिङ्गाय भावलिङ्गाय वै नमः ।
नमो रजोर्धलिङ्गाय सत्त्वलिङ्गाय वै नमः ॥ ७
नमस्ते भवलिङ्गाय नमस्त्रैगुण्यलिङ्गिने ।
नमोऽनागतलिङ्गाय तेजोलिङ्गाय वै नमः ॥ ८

अहङ्कारलिङ्ग को नमस्कार है। भूतलिङ्ग को नमस्कार है। इन्द्रियलिङ्ग को नमस्कार है। तन्मात्ररूप लिङ्ग को नमस्कार है। पुरुषलिङ्ग को नमस्कार है। भावलिङ्ग को नमस्कार है। रजोलिङ्ग को नमस्कार है। सत्त्वलिङ्ग को नमस्कार है। भवलिङ्ग को नमस्कार है। त्रैगुण्यलिङ्ग को नमस्कार है। अनागतलिङ्ग को नमस्कार है। तेजोलिङ्ग को नमस्कार है। ६-८।

नमो [1]वायूर्ध्वलिङ्गाय भावलिङ्गाय वै नमः ।
नमस्तेऽथर्व[2] लिङ्गाय[3] सामलिङ्गाय वै नमः ॥ ९
नमो यज्ञाङ्गलिङ्गाय यज्ञलिङ्गाय वै नमः ।
नमस्ते[4]तत्त्वलिङ्गाय देवानुगतलिङ्गिने ॥ १०

वायु से ऊपर जाने वाले लिङ्ग को नमस्कार है। अथर्वलिङ्ग को नमस्कार है। सामलिङ्ग को नमस्कार है। यज्ञाङ्गलिङ्ग को नमस्कार है। यज्ञलिङ्ग को नमस्कार है। तत्त्वलिङ्ग को नमस्कार है। देवपूज्यलिङ्ग को नमस्कार है। ९-१०।

दिश नः परमं योगमपत्यं मत्समं तथा ।
ब्रह्म चैवाक्षयं देव शमं चैव परं विभो ॥ ११
अक्षयत्वं च वंशस्य धर्मे च मतिमक्षयाम् ॥१२

देव ! मुझे परम योग का उपदेश दीजिये। (मुझे) मेरे समान संतान दीजिये। अक्षय ब्रह्म (विद्या) दीजिये। शान्ति दीजिये। जिस वंश का नाश न हो, ऐसा वंश दीजिये। धर्म में दृढ़ बुद्धि प्रदान कीजिये" ।११-१२।

अग्निरुवाच—
वशिष्ठेन स्तुतः शम्भुस्तुष्टः श्रीपर्वते पुरा ।
वशिष्ठाय वरं दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥१३

अग्निदेव बोले—पूर्वकाल में श्रीपर्वत पर वशिष्ठ द्वारा (इस तरह) स्तुति किये जाने पर भगवान् शङ्कर वशिष्ठ को वरदान देकर अन्तर्धान हो गये ।१३

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गायत्रीनिर्वाणकथनं नाम सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२१७

---

१ क. ङ. वागूर्ध्व° । २ ग. °स्ते सर्व° । ३ ङ. °य श्रुतिलि° । ४ ङ °स्ते-भवलि° ।

अथाष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजाभिषेककथनम्

अग्निरुवाच—

पुष्करेण च रामाय राजधर्मं हि पृच्छते ।
यथाऽऽदौ कथितं तद्वद्वशिष्ठ कथयामि ते ॥१

अग्निदेव बोले—हे वशिष्ठ ! प्राचीन काल में राम के प्रश्न करने पर पुष्कर ने जिस प्रकार राजधर्म का वर्णन किया था, वह मैं तुम्हें बतला रहा हूँ ।१

पुष्कर उवाच—

राजधर्मं प्रवक्ष्यामि सर्वस्माद्राजधर्मतः ।
[1]राजा भवेच्छत्रुहन्ता प्रजापालः [2]सुदण्डवान् ॥२
[3]पालयिष्यामि वः सर्वान्धर्मस्थान्व्रतमाचरेत् ।
संवत्सरं स वृणुयात्पुरोहितमथ[4] द्विजम् ॥३
मन्त्रिणश्चाखिलात्मज्ञान्महिषीं धर्मलक्षणाम् ।
सांवत्सरं नृपः काले ससंभारोऽभिषेचनम् ॥४

पुष्कर बोले—मैं राजा के अन्य कर्तव्यों से भिन्न राजधर्म को बतला रहा हूँ । राजा को शत्रुनाशक, प्रजापालक तथा (अपराधियों को) दण्ड देने वाला होना चाहिये । उसे यह संकल्प करना चाहिये—"मैं धर्म पर आरूढ़ प्रजाओं का पालन करूँगा ।" उसे ज्योतिष शास्त्रवेत्ता विप्र पुरोहित तथा नीतिनिपुण मन्त्रियों और धर्म को जानने वाली (पतिव्रता) स्त्री को रानी के रूप में वरण करना चाहिये । राज्ज प्राप्ति के एक वर्ष बाद राजा का अभिषेक बड़े समारोह के साथ मनाना चाहिये ।२-४।

कुर्यान्मृते नृपे नात्र कालस्य नियमः स्मृतः।
तिलैः सिद्धार्थकैः स्नानं साम्वत्सरपुरोहितैः ॥५
घोषयित्वा जयं राज्ञो राजा भद्रासने स्थितः ।
अभयं [5]घोषये द्वद्धान्मोचयेद्राज्य पालके[6] ॥६

१ क. ख. ग. घ. ङ. च. °जा हरिः शत्रु° । २ क. ख. ग. घ. ङ. च. सदण्डवान् । ३ घ. छ. पालयिष्यति । ४ क. ख. ग. ङ. च. °र्थत्विज° । ५ छ. °येद्दुर्गान्मो° । ६ क. ङ. च.° ज्यकालिके ।

एक राजा के मर जाने पर दूसरे को राजा बना देना चाहिये, इसमें काल का नियम नहीं है। राजा को श्वेत सरसों तथा तिल (मिश्रित जल) से स्नान कर भद्रासन पर बैठना चाहिये। तदनन्तर पुरोहित के राजा का जयघोष करना चाहिये। राजा को (प्रजा को) अभय दान देना चाहिये और बन्दियों को बन्धन-मुक्त कर देना चाहिये।५-६।

पुरोधसाऽभिषेकात्प्राक्कार्यैन्द्री शान्तिरेव च।
उपवास्याभिषेकाहे वेद्यग्नौ जुहुयान्मनून् ॥७
वैष्णवानैन्द्रमन्त्रांस्तु सावित्रान्वैश्वदैवतान्।
सौम्यान्स्वस्त्ययनं शर्म आयुष्याभयदान्मनून् ॥८
अपराजितां च कलशं वह्नेर्दक्षिणपार्श्वगम्।
संपातवन्तं हैमं च पूजयेद्गन्धपुष्पकैः ॥९

अभिषेक से पूर्व पुरोहित को इन्द्रशान्ति का आयोजन करना चाहिये। अभिषेक के दिन राजा को उपवास करके वेदी की अग्नि में वैष्णव-मन्त्र, ऐन्द्र-मन्त्र, सावित्र-मन्त्र, वैश्वदेव-मन्त्र, सौम्य-मन्त्र तथा कल्याण, आयु और अभय देने वाले मन्त्रों से हवन करना चाहिये। अग्नि के दक्षिण भाग में अपराजिता (लता विशेष) से वेष्टित तथा आम्रपल्लव युक्त स्वर्णकलश की स्थापना कर गन्ध, पुष्प आदि से उसकी पूजा करनी चाहिये।७-९।

प्रदक्षिणावर्तशिखस्तप्तजाम्बूनदप्रभः।
[1](रथौघमेघनिर्घोषो विधूमश्च हुताशनः ॥१०
अनुलोमः सुगंधिश्च स्वस्तिकाकारसंनिभः।)
प्रसन्नार्चिर्महाज्वालः स्फुलिङ्गरहितो हितः ॥११
न व्रजेयुश्च मध्येन मार्जारमृगपक्षिणः।
पर्वताग्रमृदा तावन्मूर्धानं शोधयेन्नृपः ॥१२

अग्नि की प्रभा तप्त सुवर्ण के समान हों तथा उसकी शिखा (लपटें) घूमने वाली हों। उसका शब्द रथसमूह तथा मेघ के गर्जन के समान होना चाहिये। उसमें धुँआ नहीं होना चाहिए। वह अनुलोम (सीधा) हो, सुगन्ध युक्त हो तथा उसकी आकृति स्वस्तिक के समान हो उसमें चमक हो, बड़ी-बड़ी ज्वालायें हों और चिनगारियाँ न निकलती हो। उसके बीच से होकर बिलाव और पसु पक्षी न निकलने पायें। राजा को पर्वत के शिखर की मिट्टी से अपने मस्तक को शुद्ध करना चाहिये।१०-१२।

१ 'रथौघमेघ.................संनिभः' ग. पुस्तके नास्ति।

तदनन्तर यजुर्वेदी और अथर्ववेदी ब्राह्मण को 'गन्ध द्वारा' मन्त्र को पढ़ते हुए गोरोचन से राजा के सिर तथा कण्ठ का स्पर्श करना चाहिये। पश्चात् ब्राह्मणों को समस्त तीर्थों के जल और सर्वोपधियों से परिपूर्ण घट को राजा के आगे रख देना चाहिये। उस समय गाना-बजाना, जयनाद आदि होते रहना चाहिये तथा चामर और पंखा आदि भी झलकते रहना चाहिये।२६-२७।

तं पश्येद्दर्पणं राजा घृतं वै मङ्गलादिकम्।
अभ्यर्च्य विष्णुं ब्रह्माणमिन्द्रादींश्च ग्रहेश्वरान् ॥२८
व्याघ्रचर्मोत्तरां शय्यामुपविष्टः पुरोहितः।
मधुपर्कादिकं दत्त्वा पट्टबन्धं प्रकारयेत् ॥२९
राज्ञो मुकुटबन्धश्च 'पञ्चचर्मोत्तरं ददेत् ॥२९½

तब राजा को कलश, दर्पण, घी तथा मांगलिक वस्तुओं को देकर विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र तथा ग्रहेश्वरों की अर्चना करनी चाहिये। तदनन्तर व्याघ्रचर्म से ढंकी हुई शय्या पर बैठे हुए पुरोहित को राजा को मधुपर्क आदि देकर उसके ऊपर पगड़ी तथा मुकुट आदि बांधना चाहिये।२८-२९½।

ध्रुवाद्यैरिति च विशेद्वृषजं वृषभांशजम्[2] ॥३०
द्वीपिजं सिंहजं व्याघ्रजातं चर्म तदासने।
अमात्यसचिवादींश्च प्रतिहारः प्रदर्शयेत् ॥३१
गोजाविगृहदानाद्यैः सांवत्सरपुरोहितौ।
पूजयित्वा द्विजान्प्राच्र्य ह्यन्यान्भूगोन्नमुख्यकैः ॥३२

'ध्रुवाद्यैः' इस मन्त्र को पढ़ते हुए राजा को पञ्चचर्मावृत आसन प्रदान करना चाहिये। ये पाँच चर्म वृष, मृग, हाथी, सिंह तथा व्याघ्र के होने चाहिये। तत्पश्चात् पुरोहित को चाहिये कि वह राजा से द्वारपाल, अमात्य, सचिव आदि को मिलाये। राजा को गाय, बकरा, मेंड़ा, भवन आदि का दान करके ज्योतिषी तथा पुरोहित का पूजन करना चाहिये। अन्य ब्राह्मणों को भी भूमि, गौ, अन्न आदि देना चाहिये।३०-३२।

वह्निं प्रदक्षिणीकृत्य गुरुं नत्वाऽथ पृष्ठतः।
वृषमालभ्य गां वत्सं पूजयित्वाऽथ मन्त्रितम् ॥३३

---

१ क. ङ. च. ञ्चवर्मोत्तरच्छदे। ध्रु॰। २ घ. छ. वृषदंशजम्।

अश्वमारुह्य नागं च पूजयेत्तं समारुहेत् ।
परिभ्रमेद्राजमार्गे वलयुक्तः प्रदक्षिणम् ॥३४
पुरं विशेच्च दानाद्यैः[1] प्रार्च्य सर्वान्विसर्जयेत्[2] ॥३५

तदनन्तर अग्नि की प्रदक्षिणा करके गुरु को प्रणाम करना चाहिये तथा पृष्ठ भाग से वृष का आलम्भन कर बछड़े सहित गौ का पूजन करना चाहिये। फिर घोड़े तथा हाथी की पूजा करके उन पर सवारी करनी चाहिये। तदनन्तर दल-वल के साथ राजमार्ग से नगर भर का चक्कर लगाते हुए लोगों को दान आदि से सन्तुष्ट करके विदा करना चाहिये ।३३-३५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये राज्याभिषेककथनं नामाष्टादशाधिक-द्विशततमोऽध्यायः ।२१८

अथैकोनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अभिषेकमन्त्राः

पुष्कर उवाच—
राजदेवाद्यभिषेकमन्त्रान्वक्ष्येऽघमर्दनान् ।
कुम्भात्कुशोदकैः सिञ्चेत्तेन सर्वं हि सिद्ध्यति ॥१
सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
वासुदेवः सकर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः ॥२
भवन्तु विजयायैत इन्द्राद्या दश दिग्गताः ।२½

पुष्कर बोले—अब में राजा तथा देवताओं के अभिषेक मन्त्रों को बतलाऊँगा, जो पापों का नाश करने वाले हुआ करते हैं। घड़े से कुशोदक लेकर (राजा तथा देवता को) स्नान कराने से सब कार्य सिद्ध होते हैं। अभिषेक के समय यह कहना चाहिए कि—देवगण तुम्हारा अभिषेक करें।। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, वासुदेव, बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा इन्द्र आदि दस दिक्पाल तुम्हारी विजय के साधक बनें ।१-२½।

---

१ क. ङ. प्रार्थ्य । २ क. पुस्तके श्लोकार्धमधिकं तद्यथा—"एवं कृत्वा तु विधिवद्राज्याभिषेकमाचरेत्" इति ।

रुद्रो धर्मो मनुर्दक्षो रुचिः श्रद्धा च सर्वदा ॥३
भृगुरत्रिर्वशिष्ठश्च सनकश्च सनन्दनः ।
सनत्कुमारोऽङ्गिराश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥४
मरीचिः कश्यपः[1] पातु[2] प्रजेशं [3]पृथिवीपतिम् ।
प्रभासुरा वर्हिषद अग्निष्वात्ताश्च पान्तु ते ॥५

रुद्र, धर्म, मनु, दक्ष रुचि, श्रद्धा, भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, सनक, सनत्कुमार, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, मरीचि तथा कश्यप तुम्हारी रक्षा करते रहें। आप प्रजा के स्वामी तथा पृथिवीपति हैं। प्रभासुर, वर्हिषद तथा अग्निष्वात्त तुम्हारी रक्षा करते रहें।३-५।

क्रव्यादाश्चोपहूताश्च आज्यपाश्च सुकालिनः ।
अग्निभिश्चाभिषिञ्चन्तु लक्ष्म्याद्या धर्मवल्लभाः ॥६
आदित्याद्याः कश्यपस्य[4] वहुपुत्रस्य वल्लभाः ।
कृशाश्वस्याग्निपुत्रस्य भार्याश्चारिष्टनेमिनः ॥७
अश्विन्याद्याश्च चन्द्रस्य [5]पुलहस्य तथा प्रियाः ।
भूता च कपिशा दंष्ट्री सुरसा सरमा दनुः ॥८
श्येनी भासी तथा क्रौञ्ची धृतराष्ट्री शुकी तथा[6] ।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु अरुणश्चार्कसारथिः ॥९

क्रव्याद, उपहूत, आज्यपान करने वाले, सुकालि, अग्नियों के साथ तुम्हारा अभिषेक करें। लक्ष्मी आदि धर्म की पत्नियाँ, अदिति आदि वहुपुत्र, कश्यप की पत्नियाँ, अरिष्टनेमि आदि अग्निपुत्र, कृशाश्व की पत्नियाँ, अश्विनी आदि चन्द्रमा की पत्नियाँ और भूता, कपिशा, दंष्ट्री, सुरसा, सरमा, दनु, श्येनी, भासी, क्रौञ्ची, धृतराष्ट्री, शुकी आदि पुलह की पत्नियाँ तुम्हारा अभिषेक करें। तथा सूर्य-सारथि अरुण तुम्हारी रक्षा करें।६-९।

आयतिर्नियती रात्रिर्निद्रा लोकस्थितौ स्थिताः ।
उमा मेना शची पान्तु धूमोर्णा निर्ऋतिर्जया ॥१०
गौरी शिवा च ऋद्धिश्च वेला या चैव नड्वला ।
असिक्नी च तथा ज्योत्स्ना देवपत्न्यो वनस्पतिः ॥११

---

१ छ. पान्तु । २ छ. प्रजेशाः । ३ छ. पृथिवीपतिः ४ च. देवपुत्रस्य । ५ क. ङ. च. पुलस्त्यस्य । ६ ख. ग, ङ. छ. 'था । पत्न्यस्त्वा' ।

महाकल्पश्च कल्पश्च मन्वन्तरयुगानि च ।
संवत्सराणि वर्षाणि पान्तु त्वामयनद्वयम् ॥१२
ऋतवश्च तथा मासा:पक्षा रात्र्यहनी तथा ।
सन्ध्यातिथिमुहूर्ताश्च कालस्यावयवाश्च[1] ये ॥१३
सूर्याद्याश्च ग्रहा:पान्तु मनुः स्वायंभुवादिकः ॥१३½

आयति, नियति, रात्रि, निद्रा, उमा, मेना, शची, धूमा, ऊर्णा, निर्ऋति, जया, गौरी, शिवा, ऋद्धि, वेला, नड्वला, असिक्नी, ज्योत्स्ना, देवपत्नियाँ वनस्पति, महाकल्प, कल्प, मन्वन्तर युग, सम्वत्सर तथा वर्ष, तुम्हारी रक्षा करते रहें। दोनों अयन, ऋतु, मास, पक्ष, रात्रि, दिन, सन्ध्या, तिथि, मुहूर्त्त तथा कालावयव, सूर्यादि ग्रह तथा स्वायंभुव आदि मनु तुम्हारी रक्षा करते रहें ।१०-१३½।

स्वायम्भुवः स्वारोचिष[2] उत्तमस्तामसो मनुः ॥१४
रैवतश्चाक्षुपः षष्ठो वैवस्वत इहेरितः ।
[3]सावर्णिर्ब्रह्मपुत्रश्च धर्मपुत्रश्च रुद्रजः ॥१५
दक्षजो रौच्यभौत्यौ च मनवस्तु चतुर्दश ।
विश्वभुक्च विपश्चिच्च सुचित्तिश्च शिखी विभुः ॥१६
मनोजवस्तथौजस्वी वलिरद्भुतशान्तयः ।
वृषश्च ऋतधामा च दिवस्पृक्कविरिन्द्रकः ॥१७
रैवन्तश्च कुमारश्च तथा वत्सविनायकः ।
वीरभद्रश्च नन्दी च विश्वकर्मा पुरोजवः ॥१८
एते त्वामभिषिञ्चन्तु सुरमुख्याः समागताः ॥१८½

स्वायंभुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, ब्रह्मपुत्र, धर्मपुत्र, रुद्रज, दक्षज, रौच्य, भौत्य - ये चौदहों मनु, विश्वभुक्, विपश्चित्, सुचित्ति, शिखी, विभु, मनोजव, ओजस्वी, बली, अद्भुत, शान्ति, वष, ऋतधामा, दिवस्पृक्, कवि, इन्द्र, रैवन्त, कुमार, वत्सविनायक, वीरभद्र, नन्दी, विश्वकर्मा तथा पुरोजव आदि यहाँ पर आये हुए प्रमुख देवगण तुम्हारा अभिषेक करें ।१४-१८½।

---

१ क. ङ. घ. छ.° वाकृतिः। सू°। २ ख. ग. घ. छ. °ष औत्तमिस्ता°।
३ क. ख. ग. घ. ङ. छ.° वर्णो ब्रह्म°।

नासत्यौ देवभिषजौ ध्रुवाद्या वसवोऽष्ट च ॥१९
दश चाङ्गिरसो[1] वेदास्त्वाऽभिषिञ्चन्तु सिद्धये ।
आत्मा ह्यायुर्मनो दक्षो मदः प्राणस्तथैव च ॥२०
हविष्यांश्च गरिष्ठच ऋतः सत्यश्च प न्तु वः ।
क्रतुर्दक्षो वसुः सत्यः[2] कालकामो धुरिर्जये ॥२१
पुरूरवा[3] अद्रिवाश्च विश्वेदेवाश्च रोचनः ।
अङ्गारकाद्याः सूर्यस्त्वां निर्ऋतिश्च तथा यमः ॥२२
अजैकपादहिर्बुध्न्यो धूमकेतुश्च रुद्रजाः[4] ।
भरतश्च तथा मृत्युः कापालिरथ किङ्किणिः ॥२३
भवनो भावनः पान्तु स्वजन्यः स्वजनस्तथा ॥२३½

नासत्य, अश्विनीकुमार, ध्रुव आदि आठों वसु, दश अङ्गिरस और (चारों) वेद तुम्हारा अभिषेक करें। आत्मा, आयु, मन, दक्ष, मद, प्राण, हविष्मान्, गरिष्ठ, ऋतु तथा सत्य तुम्हारी रक्षा करते रहें। क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, कालकाम, धुरि, जय, पुरूरवा, आर्द्रव, विश्वेदेव, रोचन, अंगारक, सूर्य, निर्ऋति, यम, अज, एकपाद, अहिर्बुध्न्य, धूमकेतु, रुद्रज, भरत, मृत्यु, कापालि, किंकिणि, भवन, भावन, स्वजन्य तथा स्वजन तुम्हारी रक्षा करते रहें।१९-२३½।

क्रतुश्रवाश्च मूर्धा च याजनोऽभ्युशनास्तथा ॥२४
प्रसवश्चाव्ययश्चैव दक्षश्च भृगवः सुरा ।
मनोनुमन्ता प्राणश्च नवोऽपानश्च[5] वीर्यवान् ॥२५
वीतिहोत्रो नयः साध्यो हंसो नारायणोऽवतु ॥२५½

क्रतुश्रव, मूर्धा, याजन, उशना, प्रसव, अव्यय, दक्ष, भृगु, सुर, मन, अनुमन्ता, प्राण, नव, अपान, वीर्यवान्, वीतहोत्र, नय, साध्य, हंस तथा नारायण तुम्हारी रक्षा करें।२४-२५½।

विभुश्चैव प्रभुश्चैव [6]देवश्रेष्ठा जगद्धिताः ॥२६
धाता मित्रोऽर्यमा पूषा शक्रोऽथ वरुणो भगः ।
त्वष्टा विवस्वान्सविता विष्णुर्द्वादशभास्कराः ॥२७

१ क. ख. ग. ङ. °सो देवास्त्वाऽ° । २ क, ङ. कालः का° । ३ क. ङ. घ. छ. °वा माद्रवा° । ४ क. ङ. रुद्रकाः । ५ क. ख. ग. घ. ङ. नरोऽपा° । ६ ग. देवज्येष्ठा ।

एकज्योतिश्च द्विज्योतिस्त्रिश्च (च) तुर्ज्योतिरेव च।
एकशक्रो द्विशक्रश्च त्रिशक्रश्च महाबलः ॥२८
इन्द्रश्च मेत्यादिशतु ततः प्रतिमकृत्तथा।
मितश्च संमितश्चैव अमितश्च महाबलः ॥२९
ऋतजित्सत्यजिच्चैव सुषेणः सेनजित्तथा।
अतिमित्रोऽनुमित्रश्च पुरुमित्रोऽपराजितः ॥३०
ऋतश्च ऋतवाग्धाता विधाता धारणो ध्रुवः।
विधारणो महातेजा वासवस्य परः सखा ॥३१
ईदृक्षश्चाप्यदृक्षश्च एतादृगमिताशनः।
क्रीडितश्च सदृक्षश्च सरभश्च महातपाः ॥३२
धर्ता धुर्यो धुरिर्भीम (?) अभिमुक्तोऽक्षपात्सहः।
धृतिर्वसुरनाधृष्यो रामः कामो जयो विराट् ॥३३
देवा एकोनपञ्चाशन्मरुतस्त्वामवन्तु ते ॥३३½

विभु, प्रभु, देवश्रेष्ठ, जगद्धित, धाता, मित्र, अर्यमा, पूषा, शक्र, वरुण, भग, त्वष्टा, विवस्वान्, सविता, विष्णु, बारहों आदित्य, एक ज्योति, द्विज्योति, त्रिज्योति, चतुर्ज्योति, एकशक्र, द्विशक्र, त्रिशक्र, महाबल, इन्द्र, प्रतिमकृत्, मित, संमित, अमित, ऋतजित्, सत्यजित्, सुषेण, सेनजित्, अतिमित्र, अनुमित्र, पुरुमित्र, अपराजित, ऋत, ऋतवाक्, धाता, विधाता, धारण, ध्रुव, विधारण, महातेजा, इन्द्रमित्र, ईदृक्ष, अदृक्ष, एतादृक्, अमिताशी, क्रीडित, सदृक्ष, सरभ, महातप, धर्ता, धुर्य, धुरि, अभिमुक्त, अक्षपान, सह, धृति, अनाधृष्य, राम, काम, जय, विराट्, देवगण और उनचासों वायु तुम्हारी रक्षा करते रहें ।२६-३३½

चित्राङ्गदश्चित्ररथश्चित्रसेनश्च वै कलिः ।३४
ऊर्णायुरुग्रसेनश्च धृतराष्ट्रश्च नन्दकः।
हाहाहूहूर्नारदश्च विश्वावसुश्च तुम्बुरुः ॥३५
एते त्वामभिषिञ्चन्तु गन्धर्वा विजयायते ॥३५½

चित्राङ्गद, चित्ररथ, चित्रसेन, कलि, ऊर्णायु, उग्रसेन, धृतराष्ट्र, नन्दक, हाहा, हूहू, नारद, विश्वावसु तथा तुम्बुरु तुम्हारा अभिषेक करें। गन्धर्व तुम्हें विजय प्रदान करें ।३४-३५½।

पान्तु ते [1]मुनयो मुख्या दिव्याश्चाप्सरसां गणाः ॥३६
अनवद्या सुकेशी च मेनका सह जन्यया ।
क्रतुस्थला घृताची च विश्वाची पुञ्जिकस्थला ॥३७
प्रम्लोचा चोर्वशी रम्भा पञ्चचूडा तिलोत्तमा ।
चित्रलेखा लक्ष्मणा च पुण्डरीका च वारुणी ॥३८
प्रह्लादो विरोचनोऽथ वलिर्वाणोथ [2]तत्सुतः ।
एते चान्येऽभिषिञ्चन्तु दानवा राक्षसास्तथा ॥३९

प्रमुख मुनिगण, अनवद्या, सुकेशी, मेनका, सहजन्या, क्रतुस्थला, घृताची, विश्वाची, पुंजिकस्थला, प्रम्लोचा, उर्वशी, रम्भा, पञ्चचूडा, तिलोत्तमा, चित्रलेखा, लक्ष्मणा, पुण्डरीका, वारुणी—ये दिव्य अप्सरायें, प्रह्लाद, विरोचन, वलि वाण, वाणपुत्र—ये तथा अन्य दानव और राक्षस तुम्हारा अभिषेक करें। ३६-३९।

हेतिश्चैव प्रहेतिश्च विद्युत्स्फूर्जथुरग्रकाः ।
यक्षः सिद्धात्मकः पातु मणिभद्रश्च नन्दनः ॥४०
पिङ्गाक्षो द्युतिमांश्चैव पुष्पवन्तो जयावहः ।
शङ्खः पद्मश्च मकरः कच्छपश्च निधिर्जये ॥४१
पिशाचा ऊर्ध्वकेशाद्या भूता भूम्यादिवासिनः ।
महाकालं पुरस्कृत्य नरसिंहं च मातरः ॥४२
गुहः स्कन्दो विशाखस्त्वां नैगमेयोऽभिषिञ्चतु ॥४२½

हेति, प्रहेति, विद्युत्, स्फूर्जथु, अग्रक, यक्ष, सिद्धात्मक, मणिभद्र, नन्दन, पिंगाक्ष, द्युतिमान्, पुष्पवान् जयावह, शंख, पद्म, मकर, कच्छप, निधि, पिशाच, ऊर्ध्वकेश, आदिभूत, भूमि आदि पर निवास करने वाले जीव, महाकाल, नरसिंह, मातृगण, गुह, स्कन्द, विशाख तथा नैगमेय तुम्हारा अभिषेक करें। ४०-४२½।

डाकिन्यो याश्च योगिन्यः खेचराभूचराश्च याः ॥४३
गरुडश्चारुणः पान्तु संपातिप्रमुखाः खगाः ।
अनन्ताद्या महानागाः शेषवासुकितक्षकाः ॥४४
ऐरावतो महापद्मः कम्वलाश्वतरावुभौ ।
शङ्खः कर्कोटकश्चैव धृतराष्ट्रो धनञ्जयः ॥४५

---

१ ख. च. कुरवो। ग. कुरुवा। घ. छ. कुरूपा। २ ख. ग. घ. छ. °त्सुताः। ए°।

कुमुदैरावणौ पद्मः पुष्पदन्तोऽथ वामनः।
सुप्रतीकोञ्जनो नागाः पान्तु त्वां सर्वतः सदा ॥४६

डाकिनी, योगिनी, खेचर, भूचर, गरुड़, अरुण, संपाति आदि पक्षी, अनन्त, शेष, वासुकि, तक्षक आदि महानाग, ऐरावत, महापद्म, कम्बल, अश्वतर, शंख, कर्कोटक, धृतराष्ट्र, धनञ्जय, कुमुद, ऐरावण, पद्म, पुष्पदन्त, वामन, सुप्रतीक, अञ्जन आदिगज तुम्हारी सब ओर से रक्षा करते रहें। ४३-४६।

पैतामहस्तथा हंसो वृषभः शंकरस्य च।
दुर्गासिंहश्च पान्तु त्वां यमस्य महिषस्तथा ॥४७
उच्चैःश्रवाश्चाश्वपतिस्तथा धन्वन्तरिः सदा।
कौस्तुभः[1] शङ्खराजश्च वज्रं शूलं च चक्रकम् ॥४८
नन्दकोऽस्त्राणि रक्षन्तु धर्मश्च व्यवसायकः।
चित्रगुप्तश्च दण्डश्च पिङ्गलो मृत्युकालकौ ॥४९
वालखिल्यादिमुनयो व्यासवाल्मीकिमुख्यकाः।
पृथुर्दिलीपो भरतो दुष्यन्तः [2]शत्रुजिद्वली ॥५०
[3]मनुः ककुत्स्थश्चानेना [4]युवनाश्वो जयद्रथः।
मान्धाता मुचकुन्दश्च पान्तु त्वां च पुरुरवाः ॥५१

ब्रह्मा का हंस, शंकर का वृष, दुर्गा का सिंह, यम का महिष, अश्वपति, उच्चैःश्रवा, धन्वन्तरि, कौस्तुभ, शंखराज, वज्र, शूल, चक्र, नन्दक तथा अस्त्र तुम्हारी रक्षा करते रहें। धर्म, व्यवसायक, चित्रगुप्त, दण्ड, पिङ्गल, मृत्यु, काल, वालखिल्य, व्यास, वाल्मीकि आदि मुनि, पृथु, दिलीप, भरत, दुष्यन्त शत्रुजित्, वली, मनु, ककुत्स्थ, अनेना, युवनाश्व, जयद्रथ, मान्धाता, मुचुकुन्द तथा पुरुरवा तुम्हारी रक्षा करते रहें। ४७-५१।

[5]वास्तुदेवाः पञ्चविंशत्तत्वानि विजयाय ते।
रुक्मभौमः शिलाभौमः पातालो नीलमृत्तिकः ॥५२
पीतरक्तः क्षितिश्चैव श्वेतभौमो रसातलम्।
भूर्लोकोऽथ भुवर्मुख्या [6]जम्बूद्वीपादयः श्रिये ॥५३

१ क. ङ. च. ° मः पाञ्चजन्यश्च। २ घ. छ. शक्रजि°। ३ घ. छ. मल्लः। ४ ङ. पावनाश्वो ५ क. ङ वासुदेवः। ६ ग. °दयश्च ये।

उत्तराः कुरवः पान्तु रम्यो हिरण्यकस्तथा ।
भद्राश्वः केतुमालश्च वर्षश्चैव वलाहकः ॥५४
हरिवर्षः किंपुरुष इन्द्रद्वीपः कशेरुमान् ।
ताम्रवर्णो गभस्तिमान्नागद्वीपश्च सौम्यकः ॥५५
गान्धर्वो वारुणो यश्च नवमः पातु राज्यदः ॥५५½

वास्तुदेव तथा पचीस तत्त्व तुम्हारी विजय के लिये हों। रुक्मभौम, शिलाभौम, पाताल, नीलमृत्तिक, पीतरक्त, क्षिति, श्वेतभौम, रसातल, भूर्लोक, भुवर्लोक तथा जम्बूद्वीप आदि तुम्हारा कल्याण करते रहें। उत्तरकुरु तुम्हारी रक्षा करते रहें। रम्य, हिरण्यक, भद्राश्व, केतुमाल, वर्ष, वलाहक, हरिवर्ष, किंपुरुष, इन्द्रद्वीप, कशेरुमान, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्यक, गान्धर्व तथा वारुण तुम्हारी रक्षा करते रहें। ५२-५५½।

हिमवान्हेमकूटश्च निषधो नील एव च ॥५६
श्वेतश्च शृङ्गवान्मेरुर्माल्यवान्गन्धमादनः ।
महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षवान्गिरिः ॥५७
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च गिरयः शान्तिदास्तु ते ।
ऋग्वेदाद्याः षडङ्गानि इतिहासपुराणकम् ॥५८
आयुर्वेदश्च गान्धर्वधनुर्वेदोपवेदकाः ।
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषां गतिः ॥५९
छन्दोऽङ्गानि च वेदाश्च मीमांसा न्यायविस्तरः ।
धर्मशास्त्रं पुराणं च विद्याह्येताश्चतुर्दश ॥६०
सांख्यं योगः पाशुपतं वेदा वै पञ्चरात्रकम् ।
कृतान्तपञ्चकं ह्येतद्गायत्री च शिवा तथा ॥६१
दुर्गा विद्या च गान्धारी पान्तु त्वां शान्तिदाश्च ते ॥६१½

हिमवान्, हेमकूट, निषध, नील, श्वेत, शृङ्गवान् मेरु, माल्यवान्, गन्धमादन, महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्षवान्, विन्ध्य, परियात्र आदि पर्वत तुम्हें शान्ति प्रदान करें। इतिहास, पुराण, आयुर्वेद, गान्धर्ववेद, धनुर्वेद, उपवेद शिक्षा, कल्प व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्दस्, वेद, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र—ये चौदहों विद्यायें और सांख्य, योग, पाशुपत (तन्त्र) पञ्चरात्र, कृतान्तपञ्चक, गायत्री, शिवा दुर्गा, विद्या तथा गान्धारी तुम्हारी रक्षा करती रहें। ५६-६१½।

लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलाब्धयः ॥६२
चत्वारः सागराः पान्तु तीर्थानि विविधानि च ।
पुष्करश्च प्रयागश्च प्रभासो नैमिषः परः ॥६३
गयाशीर्षो ब्रह्मशिरस्तीर्थमुत्तरमानसम् ।
कालोदको नन्दिकुण्डतीर्थं पञ्चनदस्तथा ॥६४
भृगुतीर्थं प्रभास च तथा चामरकण्टकम् ।
जम्बूमार्गश्च विमलः कपिलस्य तथाऽऽश्रमः ॥६५
गङ्गाद्वारकुशावर्तौ विन्ध्यको नीलपर्वतः ।
वराहपर्वतश्चैव तीर्थं कनखलं तथा ॥६६
कालंजरश्च केदारो रुद्रकोटिस्तथैव च ।
वाराणसी महातीर्थं बदर्याश्रम एव च ॥६७

लवण, इक्षु, मद्य, घी, दही, दूध तथा जल के समुद्र, चार सागर, विविध तीर्थ—पुष्कर, प्रयाग, प्रभास, नैमिष, गयाशीर्ष, ब्रह्मशिर, उत्तरमानस कालोदक, नन्दिकुण्ड, पञ्चनद, भृगुतीर्थ, प्रभास, अमरकण्टक, जम्बूमार्ग–विमल, कपिलाश्रम, गङ्गाद्वार, कुशावर्त, विन्ध्यक, नीलपर्वत, वराहपर्वत, कनखल, कालञ्जर, केदार, रुद्रकोटि, वाराणसी, महातीर्थ बदरिकाश्रम, तुम्हारा अभिषेक करें एवं तुम्हारी रक्षा करें । ६२-६७ ।

द्वारकाश्रीगिरिस्तीर्थं तीर्थं च पुरुषोत्तमः ।
शालग्रामोऽथ वाराहः सिन्धुसागरसंगमः ॥६८
फल्गुतीर्थं विन्दुसरः करवीराश्रमस्तथा ।
नद्यो गङ्गासरस्वत्यः शतद्रु गण्डकी तथा ॥६९
अच्छोदा च विपाशा च वितस्ता देविका नदी ।
कावेरी [1]वरुणा चैव निश्चिरा गोमती नदी ॥७०
[2]पारा चर्मण्वती रूपा मन्दाकिनी महानदी ।
तापी पयोष्णी वेणा च गौरी वैतरणी तथा ॥७१
गोदावरी भीमरथी तुङ्ग[3]भद्राऽरणी तथा ।
चन्द्रभागा शिवा गौरी अभिषिञ्चन्तु पान्तु[4]च ॥७२

---

१ क. ङ. वरदा । २ ग. परा । ३ ग. घ. छ. द्राऽग्रणी । ४ ग. घ. छ. वः

द्वारका, श्रीगिरि, पुरुषोत्तम, शालग्राम, वाराह, सिन्धुसागरसंगम, फल्गुतीर्थ, विन्दुसर, करवीराश्रम, गंगा, सरस्वती, शतद्रु, गण्डकी, अच्छोदा, विपाशा, वितस्ता, देविका नदी, कावेरी, वरुणा, निश्चिरा, गोमती नदी, पारा, चर्मण्वती, रूपा, मन्दाकिनी, महानदी, तापी, पयोष्णी, वेणा, गौरी, वैतरणी, गोदावरी, भीमरथी तुंगभद्रा, अरणी, चन्द्रभागा, शिवा तथा गौरी तुम्हारा अभिषेक करें और तुम्हारी रक्षा करती रहें। ६८-७२।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽभिषेकमन्त्रकथनं नामैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्याय।२१९

अथ विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सहायसम्पत्तिः

पुष्कर उवाच—

सोऽभिषिक्तः सहामात्योजयेच्छत्रून्नृपोत्तमः।
राज्ञा सेनापतिः कार्यो ब्राह्मणः क्षत्रियोऽथ वा॥१

पुष्कर बोले—इस प्रकार अभिषिक्त होकर श्रेष्ठ राजा को मन्त्री के साथ शत्रुओं के ऊपर विजय प्राप्त करना चाहिये। राजा, ब्राह्मण या क्षत्रिय को अपना सेनापति बनाये॥१

कुलीनो नीतिशास्त्रज्ञः प्रतीहारश्च नीतिवित्।
दूतश्च प्रियवादी स्यादक्षीणोऽतिवलान्वितः॥२
ताम्बूलधारी ना स्त्री वा भक्तः[1] क्लेशसहः प्रियः।
सांधिविग्रहिकः कार्यः षाड्गुण्यादिविशारदः॥३

राजा का द्वारपाल कुलीन, नीतिशास्त्रज्ञाता, तथा (राज) नीति जानने वाला होना चाहिये। दूत को प्रियवक्ता, बलवान् और हृष्ट-पुष्ट होना चाहिये। ताम्बूल वहन करने के लिये पुरुष या स्त्री होनी चाहिये, परन्तु उसे (राजा की) भक्त, प्रिय और क्लेश को सहन करने वाली होना चाहिये। सांधि-विग्रहिक को सन्धिविग्रह आदि छह गुणों से सम्पन्न होना चाहिये।२-३।

---

१ क. ङ. भुक्तः।

खड्गधारी रक्षकः स्यात्सारथिः स्याद्बलादिवित् ।
सूदाध्यक्षो हितो विज्ञो महानसगतो हि सः ॥४
सभासदस्तु धर्मज्ञा [1]लेखकोऽक्षरविद्धितः ।
आह्वानकालविज्ञाः स्युर्हिता दौवारिका जनाः ॥५

रक्षक को खड्गधारी तथा सारथी को सेना आदि का ज्ञाता होना चाहिये । भण्डारी को (राजा का) हितचिन्तक, (पाकशास्त्र का) ज्ञाता तथा रसोई में रहने वाला होना चाहिये । सभासद (सदस्य) को धर्मज्ञ होना चाहिये । लेखक सुन्दर और शुद्ध लिखने वाला तथा हितैषी होना चाहिये । द्वारपाल (राजा का) शुभचिन्तक तथा ऐसा होना चाहिये जिसे यह ज्ञात हो कि उसे कब बुलाया जा सकता है ।४-५ ।

रत्नादिज्ञो धनाध्यक्षो[2] ह्यर्थद्वारे हितो नरः ।
स्यादायुर्वेदविद्वैद्यो गजाध्यक्षोऽथ हस्तिवित् ॥६
जितश्रमो गजारोहो हयाध्यक्षो हयादिवत् ।
दुर्गाध्यक्षो हितो [3]धीमान्स्थपतिर्वास्तुवेदवित् ॥७

धनाध्यक्ष (खजान्ची) रत्न आदि को परखने वाला और खजाने का रक्षक (राजा का) हितैषी होना चाहिये । वैद्य आयुर्वेद का ज्ञाता हो और गजाध्यक्ष हाथियों (के स्वभाव) की जानकारी रखने वाला हो । महावत परिश्रमी होना चाहिये । अश्वाध्यक्ष अश्वों का ज्ञाता होना चाहिये । दुर्ग का अध्यक्ष हित-चिन्तक तथा बुद्धिमान् होना चाहिये । स्थपति (कारीगर) को वास्तुवेद (भवन-निर्माण-कला) का ज्ञाता होना चाहिये । ६-७ ।

यन्त्रमुक्ते पाणिमुक्ते अमुक्ते मुक्तधारिते ।
अस्त्राचार्यो नियुद्धे च कुशलो नृपतेर्हितः ॥८
वृद्धश्चान्तःपुराध्यक्षः पञ्चाशद्वार्षिकाः स्त्रियः ।
सप्तत्यब्दास्तु पुरुषाश्चरेयुः सर्वकर्मसु ॥९

जिसे यन्त्रों (मशीनों), धनुषबाणों तथा खड्ग आदि से युद्ध करना आता हो ऐसा अस्त्राचार्य राजा के लिये हितकारक हुआ करता है । अन्तःपुर का अधिकारी वृद्ध होना चाहिये । यदि वह स्त्री हो तो पचास वर्ष की और यदि पुरुष हो तो सत्तर वर्ष का होना चाहिये । ये लोग सभी काम किया करते हैं । ८-९ ।

---

१ क. ङ. °को रक्षको हितः । २ घ. छ. °ध्यक्ष अ (स्त्व) नुद्वा° । ३ क. ङ. मान्स्थाप्यते वास्तु° ।

जाग्रत्स्यादायुधागारे ज्ञात्वा वृत्तिर्विधीयते ।
उत्तमाधममध्यानि ([1]बुद्ध्वा कर्माणि पार्थिवः ॥१०
उत्तमाधममध्यानि) पुरुषाणि (न्वि) नियोजयेत् ।
जयेच्छुः पृथिवीं राजा सहायानान[2]येद्धितान् ॥११
धर्मिष्ठान्धर्मकार्येषु शूरान्सङ्ग्रमार्मसु ।
निपुणा[3]नर्थकृत्येषु सर्वत्र च तथा शुचीन् ॥१२

अस्त्रागार के रक्षक को सतत जागरूक रहना चाहिये जो (अवसर) जानकर कार्य कर सके । राजा को उत्तम, मध्यम, और अधम कार्यों की दृष्टि से उत्तम, मध्यम और अधम कोटि के मनुष्यों को नियुक्त करना चाहिये । पृथ्वी को जीतने की इच्छा करने वाले राजा को हितैषी सहायकों की नियुक्ति करनी चाहिये । धर्मनिष्ठों को धर्मकार्य में, शूरों को संग्राम कार्य में, चतुरों को अर्थ कार्य में और निष्कपटों को सभी कार्यों के लिये नियुक्त करना चाहिए । १०-१२ ।

स्त्रीषु षण्ढान्नियुञ्जीत तीक्ष्णान्दारुणकर्मसु ।
यो यत्र[4] विदितो राज्ञा शुचित्वेन तु तं नरम् ॥१३
धर्मे चार्थे च कामे च नियुञ्जीताधमेऽधमान् ।
राजा यथार्हं कुर्याच्च उपधाभिः परीक्षितान् ॥१४
समन्त्री च यथान्यायात्कुर्याद्धस्तिवनेचरान् ।
तत्पदान्वेषणे यत्तानध्यक्षांस्तत्र कारयेत् ॥१५

स्त्रियों के लिये नपुंसकों को और कठोर कर्मों के लिये तीक्ष्ण पुरुषों को नियुक्त करना चाहिये । जो जिस कार्य के योग्य हो उसको उसी में लगाना चाहिये । परन्तु नियुक्ति से पहले नियोज्यों के धर्म आदि की परीक्षा कर लेनी चाहिये । हाथियों के वन का अध्यक्ष वनेचरों में से किसी एक दक्ष वनेचर को बनाना चाहिये । १३-१५ ।

यस्मिन्कर्मणि कौशल्यं यस्य तस्मिन्नियोजयेत् ।
पितृपैतामहान्भृत्यान्सर्वकर्मसु योजयेत् ॥१६
विना दायादकृत्येषु तत्र ते हि [5]सभा मताः ।
परराजगृहात्प्राप्ताञ्जनान्संश्रयकाम्यया ॥१७

---

१ 'बुद्ध्वा······मध्यानि' क. ङ. पुस्तकयोः नास्ति । २ क. ङ. च. °यान्मानयेद्द्विजान् । ३ क. ङ. °णान्गृहक्ष° । ४ क. ङ. विहितो । ५ घ. छ. समागताः ।

दुष्टानप्यथ वाऽदुष्टान्संश्रयेत प्रयत्नतः ।
दुष्टं ज्ञात्वा विश्वसेन्न तद्वृत्तिं वर्तयेद्वशे ॥१८

जो जिस कार्य में निपुण हो उसे उसी कार्य में लगाना चाहिये । पितृ-पितामह से चले आने वाले नौकरों तथा दाय आदि के विवादों को छोड़कर अन्य सभी कामों में लगाना चाहिये । दूसरे राज्य को छोड़कर शरण पाने की इच्छा से आया हुआ व्यक्ति चाहे दुर्जन हो या सज्जन उसे आश्रय अवश्य देना चाहिये । यदि शरणार्थी दुष्ट हो तो उसका विश्वास न करे, अपितु उसकी जीविका को अपने अधीन रखे । १६-१८ ।

[1]देशान्तरागतान्पार्श्वेचारैर्ज्ञात्वा हि पूजयेत् ।
शत्रवोऽग्निर्विषं सर्पो निस्त्रिंशमपि चैकतः ॥१९
भृत्यं त्रिशिष्टं विज्ञेयाः कुभृत्याश्च तथैकतः ।
चारचक्षुर्भवेद्राजा नियुञ्जीत सदा चरान् ॥२०
जनस्याविहितान्सौम्यांस्तथाऽज्ञातान्परस्परम् ।
वणिजो मन्त्रकुशलान्सांवत्सरचिकित्सकान् ॥२१
तथा प्रव्रजिताकारान्बलाबलविवेकिनः ।
नैकस्य राजा श्रद्दध्याच्छ्रद्दध्याद्बहुवाक्यतः ॥२२

देशान्तर से आये हुये के विषय में गुप्तचर द्वारा पता लगाकर यथावत् व्यवहार करना चाहिये । दुष्ट सेवक एक साथ शत्रु, अग्नि, विष, सर्प तथा तलवार है । राजा को गुप्तचरों की दृष्टि से देखना चाहिये । इसके लिये उसे ऐसे गुप्तचरों को नियुक्त करना चाहिये जो मनुष्य से अज्ञात रहें । बनिये, मन्त्र,तन्त्र करने वालों, ज्योतिषियों, चिकित्सकों, संन्यासी के वेष में रहने वालों और वलाबल की परीक्षा करने वालों के ऊपर एक आदमी के कहने से ही राजा को विश्वास नहीं कर लेना चाहिये, अपितु बहुत आदमियों के कहने से ही उन पर श्रद्धा करनी चाहिये ।१९-२२।

रागापरागौ भृत्यानां जनस्य च गुणागुणान् ।
शुभानामशुभानां च ज्ञानं कुर्याद्वशाय च ॥२३
अनुरागकरं कर्म चरेज्जह्याद्विरागजम् ।
जनानुरागया लक्ष्म्या राजा स्याज्जनरञ्जनात् ॥२४

---

१ क. ख. ग. ङ. च. °न्तरग° ।

उसे सेवकों के अनुराग-विराग, प्रजा के गुण अवगुण तथा शुभ-अशुभ कर्मों का ज्ञान रखना चाहिये राजा को ऐसा ही कार्य करना चाहिये जिससे लोगों का अनुराग वढ़े। ऐसा कर्म जिससे प्रजा में विराग उत्पन्न हो, छोड़ देना चाहिये। राज्यलक्ष्मी वही है जो जनता का अनुरञ्जन करती रहे और उसी (जन-रञ्जन) से राजा राजा कहलाता है।२३-२४।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सहायसम्पत्तिवर्णनं नाम विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।२२०

अथैकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अनुजीविवृत्तम्

पुष्कर उवाच—

भृत्यः कुर्यात्तु राजाज्ञां [1]शिष्यवत्सु स्त्रियः [2]पतेः (त्युः)।
न क्षिपेद्वचनं राज्ञो अ (ह्य) नुकूलं प्रियं वदेत् ॥१

पुष्कर बोले—सेवक को राजा की आज्ञा का पालन उसी प्रकार करना चाहिये जिस प्रकार शिष्य गुरु की और पतिव्रता स्त्री पति की आज्ञा का पालन करती है। उसे राजा का वचन भंग नही करना चाहिये तथा उसे सदैव राजा के अनुकूल रहकर प्रिय बोलना चाहिये।१

रहोगतस्य वक्तव्यमप्रियं यद्धितं भवेत्।
न नियुक्तो हरेद्वित्तं नोपेक्षेत्तस्य[3] मानकम् ॥२

जब राजा एकान्त में हो तब अप्रिय बात भी कही जा सकती है, यदि वह हितकर हो। (कोश में) नियुक्त होने पर धन का अपहरण नहीं करना चाहिये और न तो राजा के सम्मान के विरुद्ध ही कोई कर्म करना चाहिये।२

---

१ घ छ. °वत्सच्छ्रियः। २ क. ङ. °तेः। नाऽऽक्षिपे° ।३ क. ङ. °क्षेन्नास्य।

राज्ञश्च न तथा कार्यं वेशभाषाविचेष्टितम् ।
अन्तःपुरचराध्यक्षो[1] वैरभूतैर्निराकृतैः ॥३

अन्तः पुर के अधिकारी को उस व्यक्ति के साथ सम्पर्क नहीं करना चाहिये और न राजा के सम्मान के विरुद्ध ही कोई कार्य करना चाहिये। राजा के वेशभाषा तथा चाल-ढाल का अनुकरण नहीं करना चाहिये।३

संसर्गं न व्रजेद्भृत्यो राज्ञो गुह्यं च गोपयेत् ।
प्रदर्श्य कौशलं किंचिद्राजानं तु[2] विशेषयेत् ॥४
राज्ञा यच्छ्रावितं गुह्यं न तल्लोके प्रकाशयेत् ।
आज्ञाप्यमाने वाऽन्यस्मिन्कि करोमीति वा वदेत् ॥५

अन्तःपुर के अधिकारी को उस व्यक्ति के साथ सम्पर्क नहीं रखना चाहिये जो राजा से उपेक्षित हों तथा उससे वैर रखता हो। सेवक को राजा की गुप्त बात को छिपाये रखना चाहिये। उसे अपने कौशल से राजा को विशेषता प्रदान करनी चाहिये। राजा के द्वारा कही हुई बात को जनता में प्रकट नहीं करना चाहिये।४-५।

[3]वस्त्रं रत्नमलङ्कारं राज्ञा दत्तं च धारयेत् ।
[4]नानिर्दिष्टो द्वारि विशेन्नायोग्ये (ग्य) भुवि राजदृक् ॥६
जृम्भा निष्ठीवनं कासं कोपं पर्यङ्किकाश्रयम्[5] ।
भृकुटीं वातमुद्गारं तत्समीपे विवर्जयेत् ॥७

राजा के द्वारा आज्ञा प्राप्त होने पर उसे तुरन्त कहना चाहिये कि मैं क्या करूँ ? उसे राजा के दिये हुये वस्त्र, रत्न तथा आभूषण को धारण करना चाहिये। उसे अनिर्दिष्ट द्वार से प्रवेश नहीं करना चाहिये और जो स्थान जाने योग्य नहीं है वहाँ जाना भी नही चाहिये। राजा के समीप जँभाई लेना, थूँकना, खाँसना, क्रोध करना, पलंग पर लेटना, त्यौरी चढ़ाना, अपानवायु छोड़ना और डकारना (आदि) नंही चाहिये।६-७।

स्वगुणाख्यापने युक्त्या परानेव नियोजयेत् ।
शाठ्यं लौल्यं सपैशून्यं (शु) नास्तिक्यं क्षुद्रता तथा ॥८

---

१ क. ङ. 'क्षो वरैर्भृत्यैर्नि' । २ क. ङ. न । ३ क. ङ. 'स्त्रं पत्रम्' । ४ क. ङ. 'दिष्टे द्वा' । ५ ख. घ. छ. 'र्यन्तिका' ।

चापल्यं च परित्याज्यं नित्यं राजानुजीविना ।
श्रुतेन विद्याशिल्पैश्च संयोज्याऽऽत्मानमात्मना ॥९

उसे युक्तिपूर्वक दूसरों को अपने गुणों की प्रशंसा में लगाना चाहिये । राजा के सेवक को सदैव शठता, लोभ, पिशुनता, नास्तिकता, क्षुद्रता तथा चपलता का परित्याग कर देना चाहिये । उसे श्रुत, वेद, शास्त्र, विद्या और शिल्प में निपुण होना चाहिये ।८-९।

राजसेवां ततः कुर्याद्भूतये भूतिवर्धनः ।
नमस्कार्या सदा चास्य पुत्रवल्लभमन्त्रिणः॥ १०
सचिवैर्नास्य विश्वासो राजचित्तप्रियं चरेत् ।
त्यजेद्विरक्तं रक्तात्तु वृत्तिमीहेत राजवित् ॥११
अपृष्टश्चास्य न ब्रूयात्कामं[1] कुर्यात्तथाऽऽपदि ।
प्रसन्नो वाक्यसंग्राही रहस्ये न च शङ्कते ॥१२

तत्पश्चात् राजा की नौकरी करनी चाहिये क्योंकि ऐसा व्यक्ति राजा के ऐश्वर्य को वढ़ाने वाला हुआ करता है । उसे राजा के पुत्रों, मित्रों तथा मन्त्रियों को नमस्कार करना चाहिये । उसे सचिवों पर विश्वास न करके सदैव राजा के मन को रुचिकर लगने वाला कार्य करना चाहिये । जो (राजा से) विरक्त हों उनका परित्याग करना चाहिये तथा (राजा में) अनुरक्त रहने वाले से व्यवहार (ज्ञान) की इच्छा करनी चाहिये । उसे विना पूछे कुछ बोलना नहीं चाहिये और विपत्ति में (अपनी) इच्छा से कार्य करना चाहिये । उसे प्रसन्नचित्त और वाक्यसंयमी होना चाहिये तथा एकान्त में सशंकित नही रहना चाहिये ।१०-१२।

कुशलादिपरिप्रश्नं संप्रयच्छति चाऽऽसनम् ।
तत्कथाश्रवणाद्धृष्टो अ (ह्य) प्रियाण्यपि नन्दते ॥१३
अल्पं दत्तं प्रगृह्णाति स्मरेत्कथान्तरेष्वपि ।
[2]इति रक्तस्य कर्तव्यां[3] सेवाऽन्यस्यविवर्जयेत् ॥१४

आसन पर बैठ जाने के वाद उसे राजा से कुशलमंगल पूछना चाहिये । राजा का समाचार सुनकर आनन्दित होना चाहिये और उसकी अप्रिय वातों

---

१ क. ङ. °मं ब्रूयाद्यथाविधि । प्र° । २ इति ....विवर्जयेत् क . ङ. पुस्तकयोर्नास्ति । ३ घ. छ. °र्तव्यं सेवामन्य° ।

से भी अप्रसन्न नहीं होना चाहिए। राजा थोड़ा बहुत जो कुछ दे उसे ले लेना चाहिए और बातचीत में उसका स्मरण करते रहना चाहिए। इस प्रकार से (अपने में) अनुरक्त राजा की सेवा करनी चाहिए तथा अपने से विरक्त राजा की सेवा को छोड देना चाहिए।१३-१४।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽनुजीविवृत्तकथनं नामैक-विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।२२१

अथ द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

दुर्गसम्पत्तिः

पुष्कर उवाच—
दुर्गसम्पत्तिमाख्यास्ये दुर्गदेशे वसेन्नृपः।
वैश्यशूद्रजनप्रायो ह्यनाहार्यस्तथा परैः॥१
किंचिद्ब्राह्मणसंयुक्तो बहुकर्मकरस्तथा।
अदेवमातृको[1]ऽभक्तजलो देशः प्रशस्यते॥२

पुष्कर बोले—अब मैं दुर्ग (किले) की सम्पत्ति के विषय में कहूँगा। राजा को दुर्ग में निवास करना चाहिए। दुर्गदेश में वैश्य और शूद्रों की अधिकता होना चाहिए और ऐसा होना चाहिए जिससे शत्रुओं से अपहरण न हो सके। वहाँ ब्राह्मणों को कम किन्तु शिल्पकारों को अधिक संख्या में होना चाहिए। वह देश प्रशंसनीय हुआ करता है जिसमें जल का समुचित वितरण हो और (जो जल के लिये) देवताओं के ऊपर निर्भर न हो।१-२।

परैरपीडितः पुष्पफलधान्यसमन्वितः।
अगम्यः परचक्राणां[2]व्यालतस्करवर्जितः॥३

उसे शत्रु से सुरक्षित तथा पुष्प, फल और अन्न से समृद्ध होना चाहिए। उसे शत्रु-समूह से अगम्य तथा सर्प और चौर आदि से रहित होना चाहिए।३

षण्णामेकतमं दुर्गं तत्र कृत्वा वसेद्बली।
धनुर्दुर्गं[3]महीदुर्गं नरदुर्गं[4] तथैव च॥४
([5]वार्क्षं चैवाम्बुदुर्गं च गिरिदुर्गं च भार्गव।
सर्वोत्तमं शैलदुर्गमभेद्यं चान्यभदेनम्॥)५

---

१ ङ. भुक्तजनो। २ क. ङ. °लसूकर°। ३ ग. महादुर्ग। ४ क. ङ. नखदुर्ग।
५ वार्क्षं⋯चान्यभदेनम्, पुस्तके नास्ति।

पुरं तत्र च हट्टाद्यं देवतायतनादिकम् ।
([1]अनुयन्त्रायुधोपेतं सोदकं दुर्गमुत्तमम् ॥६

बलवान् राजा को छह दुर्गों में से कोई एक दुर्ग बनवाकर उसके अन्दर निवास करना चाहिए। अये भृगुपुत्र ! उक्त छह दुर्गों के नाम ये हैं—धनुदुर्ग, महीदुर्ग, नरदुर्ग, रक्षदुर्ग, जलदुर्ग तथा गिरिदुर्ग । इनमें सर्वश्रेष्ठ गिरिदुर्ग होता है क्योंकि वह स्वयं अभेद्य होता हुआ दूसरे का भेदन करने वाला हुआ करता है। वहाँ पुर, हाट तथा देवालय होने चाहिए यन्त्रों तथा आयुधों से युक्त जलदुर्ग अच्छा होता है।४-६।

राजरक्षां प्रवक्ष्यामि रक्ष्यो भूपो विषादितः ।
पञ्चाङ्गस्तु शिरीषः स्यान्मूत्रपिष्टो विषार्दनः ॥७
शतावरी छिन्नरुहा विषघ्नी तण्डुलीयकम् ।
कोषातकी च कह्लारी ब्राह्मी चित्रपटोलिका ॥८
मण्डूकपर्णी वाराही धात्र्यानन्दकमेव च ।
उन्मादिनी सोमराजी विषघ्नं रत्नमेव च ॥९
वास्तुलक्षणसंयुक्ते वसन्दुर्गे सुरान्यजेत्)।
प्रजाश्च पालयेद्दुष्टाञ्जयेद्दानानि दापयेत् ॥१०

अब मैं राजा के सम्बन्ध में बतलाऊँगा । राजा की रक्षा विष आदि से करनी चाहिए। मूत्र में पिसा हुआ पञ्चाङ्ग (पत्र, मूत्र, फल, फूल तथा छाल से युक्त) शिरीष विष का नाशक है । शतावरी, छिन्नरुहा, तण्डुलीयक, कोषातकी, कह्लारी, ब्राह्मी, चित्रपटोलिका, मण्डूकपर्णी, वाराही, धात्री, आनन्दक, उन्मदिनी, सोमराजी—ये ओषधियाँ तथा रत्न भी विषनाषक हैं। वास्तुविद्या के लक्षणों से युक्त दुर्ग में रहते हुये राजा को देवताओं पर विजय प्राप्त करना चाहिये तथा दान दिलाना चाहिये।७-१०।

देवद्रव्यादिहरणात्कल्पं तु नरकं वसेत् ।
देवालयानि कुर्वीत देवपूजारतो नृपः ॥११
सुरालयाः पालनीयाः स्थापनीयाश्च देवताः ।
मृन्मयाद्दारुजं पुण्यं दारुजादिष्टकामयम् ॥१२
ऐष्टकाच्छैलजं पुण्यं शैलजात्स्वर्णरत्नजम् ।
क्रीडन्सुरगृहं कुर्वन्भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ॥१३

१ अनुयन्त्रायुधोपेत……सुरान्यजेत क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति ।

देवता के द्रव्य आदि का अपहरण करने से एक कल्प तक नरक में निवास करना पड़ता है। राजा को देवालयों का निर्माण तथा देवपूजन करते रहना चाहिये। उसे देवालयों की रक्षा तथा देवताओं की स्थापना करनी चाहिये। मिट्टी के बने हुये देवालय से लकड़ी का बनवाया हुआ मन्दिर (अधिक) पुण्यवान् होता है। लकड़ी की अपेक्षा ईंटों का, ईंटों की अपेक्षा पत्थर का, और पत्थर की अपेक्षा सोने और रत्नों का बनवाया हुआ मन्दिर (अधिक) पुण्य देने वाला हुआ करता है। खेल-खेल में देवालय बनवाने से (भी) भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है।११-१३।

चित्रकृद्गीतवाद्यादिप्रेक्षणीयादिदानकृत्।
तैलाज्यमधुदुग्धाद्यैः स्नाप्य देवं दिवं व्रजेत् ॥१४
पूजयेत्पालयेद्विप्रान्द्विजस्वं न हरेन्नृपः।
सुवर्णमेकं गामेकां भूमेरप्येकमङ्गलम् ॥१५
हरन्नरकमाप्नोति यावदाभूतसंप्लवम्।
दुराचारं न द्विषेच्च सर्वपापेष्वपि स्थितम् ॥१६

(देवालय में) चित्रकारी, गीत, वाद्य, प्रदर्शनी तथा दान करने से और तेल, घी, मधु आदि से (देवताओं को) स्नान कराने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। राजा को विप्रों का पालन और सम्मान करना चाहिये, और उनके धन का अपहरण नहीं करना चाहिये। क्योंकि (ब्राह्मण की) एक भी स्वर्ण मुद्रा, एक भी गौ तथा एक अंगुल भी भूमि का अपहरण करने से आकल्पान्त नरक वास करना पड़ता है। ब्राह्मण चाहे दुराचारी हो या महापापी, उससे द्वेष नहीं करना चाहिये ।१४-१६।

नैवास्ति ब्राह्मणवधात्पापं गुरुतरं क्वचित्।
अदैवं दैवतं कुर्युः कुर्युर्दैवमदैवतम् ॥१७
ब्राह्मणा हि [1]महाभागास्तान्नमस्येत्सदैव तु।
ब्राह्मणी रुदती हन्ति कुलं राज्यं प्रजास्तथा ॥१८

ब्राह्मण हत्या से बढ़कर कोई पाप होता ही नहीं है। ब्राह्मण दुर्भाग्य को सौभाग्य और शौभाग्य को दुर्भाग्य बना सकता है। महाभाग्यशाली ब्राह्मणों को सदैव प्रणाम करना चाहिये। रोती हुयी ब्राह्मणी कुल, राज्य तथा प्रजा का नाश कर देती है।१७-१८।

१ च. 'न्न हिंस्यात्स°।

साध्वीस्त्रीणां पालनं च राजा कुर्याच्चि धार्मिकः ।
स्त्रिया प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्यैकदक्षया ॥१९
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये च मुक्तहस्तया ।
यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां शुश्रूषेत्तं पतिं सदा ॥२०

धार्मिक राजा को प्रतिव्रता स्त्रियों का पालन करना चाहिये । स्त्री को प्रसन्नचित्त, गृहकार्य में निपुण शरीर और गृहस्थी के सामान को साफ-सुथरा तथा सुन्दर ढंग से रखने वाली और मितव्ययिनी होना चाहिये (स्त्री का) पिता उसे जिसे दे दे, उस पति की सदा सेवा करनी चाहिये ।१९-२०।

मृते भर्तरि स्वर्यायाद्ब्रह्मचर्ये स्थिताऽङ्गना ।
परवेश्मरुचिर्न स्यान्न स्यात् कलहशालिनी ॥२१
मण्डनं वर्जयेन्नारी तथा प्रोषितभर्तृका ।
देवताराधनपरा तिष्ठेद्भर्तृहिते रता ॥२२
धारयेन्मङ्गलार्थाय किंचिदाभरणं तथा ॥२२½

पति के मर जाने पर स्त्री को ब्रह्मचर्य से रहना चाहिये । इससे उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है । उसे दूसरे के घर में रुचि नहीं करनी चाहिये और झगड़ालू भी नही होना चाहिये । जिसका पति परदेश में हो उसे शृङ्गार छोड़ देना चाँहिये । उसे अपने पति के कल्याण की कामना से देवाराधन में तत्पर रहना चाहिये । मंगल (की सूचना) के लिये कुछ आभूषण अवश्य पहने रहना चाहिये । २१-२२½।

भर्त्राग्निं या विशेन्नारी साऽपि स्वर्गमवाप्नुयात् ॥२३
श्रियः सम्पूजनं कार्यं गृहसम्मार्जनादिकम् ।
द्वादश्यां कार्तिके विष्णुं गां सवत्सां ददेत्तथा ॥२४
सावित्र्या रक्षितोभर्ता [1]सत्याचारव्रतेन च ॥२४½

जो स्त्री अपने पति के साथ अग्नि में प्रवेश कर जाती है, उसे भी स्वर्ग की प्राप्ति होती है । स्त्री को पूजा करनी चाहिये तथा झाड़ू आदि से घर को साफ रखना चाहिये । कार्तिक मास में द्वादशी को भगवान् विष्णु की पूजा करके बछड़े के साथ गोदान करना चाहिये । क्योंकि सत्याचरण-व्रत के प्रभाव से ही सावित्री ने अपने पति की रक्षा करली थी ।२३-२४½।

---

१ क. ङ. सत्यवान्सुव्र° ।

सप्तम्यां मार्गशीर्षे तु सितेऽभ्यर्च्य दिवाकरम् ।।२५
पुत्रानाप्नोति च स्त्रीह नात्र कार्या विचारणा ।।२६

मार्गशीर्ष में शुक्लपक्ष की सप्तमी में सूर्य की पूजा करने वाली स्त्री पुत्रों को प्राप्त करती है, इसमें संशय नही करना चाहिये ।२५-२६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दुर्गसम्पत्तिवर्णनं नाम द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२२२

अथ त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजधर्माः

पुष्कर उवाच—
ग्रामस्याधिपतिं कुर्याद्दशग्रामाधिपं नृपः ।
शतग्रामाधिपं चान्यं तथैव विषयेश्वरम् ।।१

पुष्कर बोले—राजा को एक गाँव का, दश ग्रामों का, सौ ग्रामों का और सम्पूर्ण राज्य का एक मुखिया नियुक्त करना चाहिए । इन्हें क्रमशः ग्रामाधिपति, दशग्रामाधिपति, शतग्रामाधिपति और विषयेश्वर कहा जाता है ।१

तेषां भोगविभागश्च भवेत्कर्मानुरूपतः ।
नित्यमेव तथा कार्यं तेषां चारैः परीक्षणम् ।।२
ग्रामे दोषान्समुपन्नान्ग्रामेशः प्रशमं नयेत् ।
अशक्यो दशपालस्य स तु गत्वा निवेदयेत् ।।३

वेतन उनके कार्य के अनुरूप ही होना चाहिये । गुप्तचरों के द्वारा नित्य ही उनकी परीक्षा करते रहना चाहिये । गाँव में होने वाले उत्पातों को ग्रामाधिपति को शान्त करना चाहिये । यदि वह इसमें असमर्थ हो तो उसे दशग्रामाधिपति को शान्त करना चाहिये ।२-३।

—श्रुत्वाऽपि दशपालोऽपि तत्र युक्तिमुपाचरेत् ।
वित्ताद्याप्नोति राजा वै विषयात्तु सुरक्षितात् ।।४
धनवान्धर्ममाप्नोति धनवान्काममश्नुते ।
उच्छिद्यन्ते विना ह्यर्थैः क्रिया ग्रीष्मे सरिद्यथा ।।५

विशेषो नास्ति लोकेषु पतितस्याधनस्य च।
पतितान्नतु गृह्णाति दरिद्रो न प्रयच्छति ॥६

दशग्रामाधिपति को भी सुनते ही उसे दूर करने का उपाय करना चाहिये क्योंकि यदि राज्य सुरक्षित रहता है तो राजा को उससे धन आदि का लाभ रहता है और धनवान् व्यक्ति को धर्म तथा सुख की प्राप्ति होती है। धन के बिना सभी क्रियायें उसी प्रकार से नष्ट हो जाती हैं जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में नदियाँ। लोक में पतित और निर्धन में कोई अन्तर नहीं हुआ करता है, क्योकि पतित से कोई (दान) लेता नहीं है और दरिद्र (कुछ) दे ही नही सकता है।४-६।

धनहीनस्य भार्याऽपि नैव [1]स्याद्वशवर्तिनी।
राष्ट्रपीडाकरो राजा नरके वसते चिरम् ॥७
नित्यं राज्ञा तथा भाव्यं गर्भिणी सहधर्मिणी।
यथा स्वं सुखमुत्सृत्य गर्भस्य सुखमावहेत् ॥८

धनहीन की स्त्री भी उसके वश में नहीं हुआ करती है। राष्ट्र को पीडा पहुँचाने वाला राजा चिरकाल तक नरक में निवास करता है। राजा को (प्रजा के प्रति) वैसा ही व्यवहार करना चाहिये जैसे कि गर्भवती स्त्री अपने सुख की चिन्ता को छोड़कर गर्भ के सुख का ध्यान रखती है।७-८।

किं यज्ञैस्तपसा तस्य प्रजा [2]यस्य न रक्षिताः।
सुरक्षिताः प्रजा यस्य स्वर्गस्तस्य गृहोपमः ॥९
अरक्षिताः प्रजा यस्य नरकं तस्य मन्दिरम्।
[3]राजा षड्भागमादत्ते सुकृताद्दुष्कृतादपि ॥१०
([4]धर्मागमो रक्षणाच्च पापमाप्नोत्यरक्षणात्।
सुभगा विटभीतेव राजवल्लभतस्करैः ॥११
भक्ष्यमाणाः प्रजा रक्ष्याः कायस्थैश्च विशेषतः।
रक्षिता तद्भयेभ्यस्तु राज्ञो भवति सा प्रजा ॥१२

१ ग. घ. छ. स्यादुपव°। २ क. ङ. येन। ३ राजा......'तस्करैः' पुस्तके नास्ति। ४ 'धर्मागमो.......करमाददेत्' क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

उस राजा के यज्ञ और तप से क्या लाभ, जिसकी प्रजा (ही) सुरक्षित नहीं है। जिसकी प्रजा सुखी है उसके लिए घर ही स्वर्ग हैं; परन्तु जिसकी प्रजा दुःखी है, उसके लिये घर ही नरक है। राजा, प्रजा के पुण्य और पाप दोनों के षष्ठांश का भागी हुआ करता है। प्रजा की रक्षा करने से राजा को धर्मलाभ होता है और रक्षा न करने से उसे पाप का भागी होना पड़ता है। विटों से संत्रस्त सुन्दरी स्त्री के समान राजकर्मचारियों, चोरों तथा विशेषकर कायस्थों से सतायी जाने वाली प्रजा की रक्षा करनी चाहिये। उनके भय से मुक्त प्रजा ही वास्तव में राजा की प्रजा हुआ करती है।९-१२।

अरक्षिता सा भवति तेषामेवेह भोजनम्।
दुष्टसंमर्दनं कुर्याच्छास्त्रोक्तं करमादरेत्)॥१३
([1] कोषे प्रवेशयेदर्धं नित्यं चार्धं द्विजे ददेत्।
निधिं द्विजोत्तमः प्राप्य गृह्णीयात्सकलं तथा॥१४
चतुर्थमष्टमं भागं तथा षोडशमं (कं) द्विजः।
वर्णक्रमेण दद्याच्च निधिं पात्रे तु धर्मतः॥१५
अनृतं तु वदन्दण्ड्यः सुवित्तस्यांशमष्टमम्।
प्रणष्टस्वामिकमृक्थं राजा त्र्यब्दं निधापयेत्॥१६

अरक्षित प्रजा तो उन दुष्टों का भोजनमात्र बनकर रह जाती है। इसलिए राजा को दुष्टों का दमन करना चाहिये और शास्त्रानुकूल प्रजा से कर लेते रहना चाहिए और आधा भाग ब्राह्मणों को दान में दे देना चाहिए। श्रेष्ठ ब्राह्मण को राजा से प्राप्त सम्पूर्ण निधि को लेकर उसके चौथे, आठवें तथा सोलहवें भाग को वर्णक्रम से सुपात्रों में न्यायपूर्वक बाँट देना चाहिए। मिथ्या बोलने वाले पर उसके धन का अष्टमांश दण्ड देना चाहिए। जिस धन का स्वामी नष्ट हो गया हो उस धन को राजा को तीन वर्ष तक अपने पास धरोके रूप में रखना चाहिए।१३-१६।

अर्वाक्त्र्यब्दाद्धरेत्स्वामी परेण नृपतिर्हरेत्।
ममेदमिति यो ब्रूयात्सोऽर्थयुक्तो यथाविधि॥१७
संपाद्य रूपसंख्यादीन्स्वामी तद्द्रव्यमर्हति।
बालदायादिकमृक्थं तावद्राजाऽनुपालयेत्॥१८
यावत्स्यात्स समावृत्तो यावद्वाऽतीतशैशवः॥१८½

१ 'कोषे......दद्यात्स्वयं' पुस्तके नास्ति।

यदि उसके पहले ही उस धन का कोई अधिकारी राजा से आकर निवेदन करे कि 'यह धन मेरा है' तथा उसका रूप, संख्या आदि चिह्न पता बताये तो राजा को उसे वह धन लौटा देना चाहिए। जिस सम्पत्ति का अधिकारी बालक हो, देखरेख राजा को तब तक करना चाहिए जब तक वह बालक योग्य न हो जाये अथवा उसका शैशव समाप्त न हो जाय।१७-१८३।

वालपुत्रासु चैवं स्याद्रक्षणं निष्कुलासु च ॥१९
पतिव्रतासु च स्त्रीषु विधवास्वातुरासु च।
जीवन्तीनां तु तासां ये संहरेयुश्च वान्धवाः ॥२०
ताञ्छिशष्याच्चौरदण्डेन धार्मिकः पृथिवीपतिः।
सामान्यतो हृतं चौरैस्तद्वै दद्यात्स्वयं) नृपः ॥२१

इसी प्रकार जिस स्त्री का पुत्र छोटा हो अथवा जिसके कुल में कोई हो ही नहीं, जो विधवा हो, दुःखी हो और पतिव्रता हो उसकी भी रक्षा करनी चाहिए। धार्मिक राजा को चाहिए कि इन (स्त्रियों के) जीवन काल में ही उनकी सम्पत्ति का अपहरण करने वालों को चोरों की भाँति दण्ड दे। सामान्यतः यदि उनका धन चोरों के द्वारा चुरा लिया जाये तो राजा को अपनी ओर से (इन्हें) उतना धन देना चाहिए।१९-२१।

चौररक्षाधिकारिभ्यो राजाऽपि हृतमाप्नुयात्।
अहृते यो हृतं ब्रूयान्निःसार्यो दण्ड्य एव सः ॥२२
न तद्राज्ञा प्रदातव्यं गृहे यद्गृहगैर्हृतम्।
स्वराष्ट्रपण्यादादद्याद्राजा विंशतिमं द्विज ॥२३
शुल्कांशं परदेशाच्च क्षयव्ययप्रकाशकम्।
ज्ञात्वा संकल्पयेच्छुल्कं लाभं वणिग्यथाऽऽप्नुयात् ॥२४

घर में घर के ही किसी व्यक्ति के द्वारा चुरायी गयी वस्तु के लिए राजा को (कुछ) नहीं देना चाहिए। अये द्विज ! अपने राष्ट्र की विक्रेय वस्तुओं का बीसवाँ भाग राजा के कर रूप में लेना चाहिये। बाहर से आये हुए विक्रेय वस्तु के कर-निर्धारण में उनके निर्माण के मूल्य, आवागमन में टूट-फूट और व्यापारी के द्वारा प्राप्त लाभ को ध्यान में रखना चाहिए।२२-२४।

विंशांशं लाभमादद्याद्दण्डनीयस्ततोऽन्यथा ।
स्त्रीणां प्रव्रजितानां च तरशुल्कं विवर्जयेत् ॥२५

किसी भी दशा में यह कर बीसवें भाग से अधिक नहीं होना चाहिए। इसमें विघ्न डाल देना चाहिए। स्त्रियों और सन्यासियों से कर नहीं लेना चाहिए।२५

तरेषु दासदोषेण नष्टं दासस्तु[1] दापयेत् ।
शूकधान्येषु षड्भागं शिम्बिधान्ये तथाऽष्टमम् ॥२६
राजावन्यार्थमादद्याद्देशकालानुरूपकम् ।
पञ्चषड्भागमादद्याद्राजा पशुहिरण्ययोः ॥२७

शुक धान्य और शिमि धान्य में व्यापार करने वालों सेवकों के द्वारा घाट या सीमा का कर छिपाये जाने पर राजा को उक्त धान्य का क्रमशः षष्ठांश और अष्टमांश ले लेना चाहिए। राजा को वन्य सम्पत्ति पर देशकाल के अनुरूप कर लगाना चाहिए। राजा को षशुधन और सुवर्ण पर क्रमशः पञ्चमांश और षष्ठांश कर लेना चाहिए।२६-२७।

गन्धौषधिरसानां च [2]पुष्पमूलफलस्य च ।
पत्रशाकतृणानां च वंशवैणवचर्मणाम् ॥२८
वैदलानां च भाण्डानां सर्वश्याश्ममयस्य ।
षड्भागमेव चाऽऽदद्यान्मधुमांसस्य सर्पिषः[3] ॥२९
म्रियं चापि न वाऽऽदद्याद्ब्राह्मणेभ्यस्तथा करम् ।
यस्य राज्ञस्तु विषये श्रोत्रियः सीदति क्षुधा ॥३०
तस्य सीदति तद्राष्ट्रं व्याधिदुर्भिक्षतस्करैः ॥३०½

सुगन्धित पदार्थो, ओषधि, रस, पुष्प, मूल, फल, पत्र, शाक, तृण, बाँस, चर्म, बाँस के पात्र पर षष्ठांश कर लेना चाहिए। मधु, मांस तथा घी का भी छठा भाग कर रूप में लेना चाहिए। ब्राह्मणों से कर कभी नहीं लेना चाहिए, चाहे कितनी भी आवश्यकता क्यों न हों। जिस राजा के राज्य में श्रोत्रिय ब्राह्मण भूख से पीड़ित रहा करते है उसके राज्य में दुर्भिक्ष, व्याधि तथा चोरों का उपद्रव हुआ करता है।२८-३०½।

१ घ. छ. दासांस्तु दा° । २ क. ङ. फलपुष्पौषधीषु । ३ ख. ग. घ. छ. पः । म्रियन्नपि ।

श्रुतं वित्तं च विज्ञाय वृत्तिं तस्य प्रकल्पयेत् ॥३१
रक्षेच्च सर्वतस्त्वेनं पिता पुत्रमिवौरसम् ।
संरक्ष्यमाणो राज्ञा यः कुरुते धर्ममन्वहम् ॥३२
तेनाऽऽयुर्वर्धते राज्ञो द्रविणं राष्ट्रमेव च ।
कर्म कुर्युर्नरेन्द्रस्य मासेनैकं च शिल्पिनः ॥३३
भुक्तमात्रेण ये चान्ये स्वशरीरोपजीविनः ॥३४

श्रोत्रिय ब्राह्मण का समाचार पाकर उनकी जीविका का प्रबन्ध कर देना चाहिए। राजा को ब्राह्मण की रक्षा उसी प्रकार से करनी चाहिये जिस प्रकार से पिता अपने औरस-पुत्र की रक्षा करता है। राजा की देखरेख में जो श्रोत्रिय ब्राह्मण प्रतिदिन धर्माचरण किया करते हैं उससे राजा की आयु बढ़ती है, उसका धन बढ़ता है और उसका राष्ट्र भी बढ़ता है। कारीगरों को मास में राजा का एक कार्य (बिना पारिश्रमिक के) कर देना चाहिए और जो व्यक्ति ऐसे हैं जिन्हें अपने शरीर पर आश्रित रहना पड़ता है, उन्हें केवल भोजन से राजा का कार्य करना चाहिए।३१-३४।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये राजधर्मकथनं नाम त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः। २२३

अथ चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजधर्माः

पुष्कर उवाच—
वक्ष्येऽन्तः पुरचिन्तां च धर्माद्याः पुरुषार्थकाः।
अन्योन्यरक्षया तेषां सेवा कार्या स्त्रिया नृपैः ।१
धर्ममूलोऽर्थविटपस्तथा[1] कामफलो महान्।
त्रिवर्गपादपस्तत्र रक्षया फलभाग्भवेत् ॥२

पुष्कर बोले—अब मैं अन्तःपुर के नियमों के सम्बन्ध में बतलाऊँगा। धर्म, अर्थ आदि पुरुषार्थों की एक दूसरे के द्वारा रक्षा करते हुए सेवन स्त्री सहित राजाओं को इनका सेवन करना चाहिए। क्योंकि त्रिवर्ग वृक्ष का मूल धर्म है, शाखा अर्थ है और महान् फल काम है। अतएव उस वृक्ष की रक्षा करने से फल की प्राप्ति होती है।१-२।

१ ग. घ. छ. कर्मफलो।

[1]कामाधीनाः स्त्रियो राम तदर्थं रत्नसंग्रहः ।
सेव्यास्ता नातिसेव्याश्च भूभुजा विषयैषिणः ॥३
आहारो मैथुनं निद्रा सेव्या नाति हि रुग्भवेत्[2] ।
मञ्चाधिकारे कर्तव्याः स्त्रियः सेव्याः स्वरात्मिकाः[3] ॥४

हे राम ! स्त्रियाँ काम के अधीन हुआ करती हैं। इसलिये उनके लिए रत्न (आदि धन) का संग्रह करना चाहिए। विषयाभिलाषी राजा को उन कामिनियों का सेवन तो करना चाहिये परन्तु अत्यधिकसेवन नहीं करना चाहिए। क्योंकि आहार, निद्रा और मैथुन का अत्यधिक सेवन करने से रोग उत्पन्न होता है। राजा को शय्या का अधिकार अपनी परमप्रिय स्त्री को ही देना चाहिए।३-४।

दुष्टान्याचरते या तु नाभिनन्दति तत्कथाम् ।
ऐक्यं द्विषद्भिर्व्रजति गर्वं वहति चोद्धता ॥५
चुम्बिता मार्ष्टि वदनं दत्तं न बहु मन्यते ।
स्वपित्यादौ प्रसुप्ताऽपि तथा पश्चाद्विबुध्यते ॥६

जो कामिनी दुष्ट आचरण करती है, उसकी (राजा की) प्रशंसा नहीं करती, उसके विरोधियों से नाता जोड़ती है, उच्छृंखलतापूर्वक गर्व करती है, चुम्बन करने पर मुँह पोंछ लेती है, (दान) देने पर कुछ नहीं समझती है, (राजा के) पहिले ही सो जाती है तथा सोने पर भी बाद में उठती है।५-६।

स्पृष्टा धुनोति गात्राणि गात्रं च विरुणद्धि या ।
ईषच्छृणोति वाक्यानि प्रियाण्यपि पराङ्मुखी ॥७
न पश्यत्यग्रदत्तं तु जघनं च निगूहति ।
दृष्टे विवर्णवदना मित्रेष्वथ पराङ्मुखी ॥८
तत्कामितासु च स्त्रीषु मध्यस्थेव च लक्ष्यते ।
ज्ञातमण्डनकालाऽपि न करोति च मण्डनम् ॥९
या सा विरक्ता तां त्यक्त्वा सानुरागां स्त्रियं भजेत् ॥९२

---

१ क. ङ. कामाधाराः । २ क. ङ. °त् । नवाधि° । ख. °त् । न चाधि° । च. °त् । न चाभिचारे । ३ छ. स्वरामिकाः ।

जो स्पर्श करने पर अङ्गों को झिटक देती है तथा अङ्गों को छिपा लेती है, प्रिय बातों को भी पराङ्मुख होकर कम सुनती है, सामने दी हुई चीज की ओर देखती नहीं है, जघन को छिपा लेती है, देखने पर उसका मुख पीला पड़ जाता है, (पति के) मित्रों से पराङ्मुख रहती है, मित्रों की कामिनियों के बीच मध्यस्थ की भाँति प्रतीत होती है, शृङ्गार का समय जानती हुई भी शृङ्गार नहीं करती है और विरक्त रहती है—ऐसी स्त्री का परित्याग करके राजा को उस स्त्री का सेवन करना चाहिये जो उसमें अनुरक्त हो ।७-९½।

दृष्ट्वैव हृष्टा भवति वीक्षते[1] च पराङ्मुखी ॥१०
दृश्यमाना तथाऽन्यत्र दृष्टिं क्षिपति चञ्चलाम् ।
तथाऽप्युपावर्तयितुं नैव शक्नोत्यशेषतः ॥११
विवृणोति तथाऽङ्गानि स्वस्या गुह्यानि भार्गव ।
गर्हितं च तथैवाङ्गं प्रयत्नेन निगूहति ॥१२

जो (राजा को) देखते ही प्रसन्न हो उठती है, दूसरी ओर से पराङ्मुख होकर उसे देखने लगती है, देखी जाने पर अपनी चञ्चल दृष्टि दूसरी ओर घुमा लेती है, किन्तु (अनुरागातिरेक के कारण) पूर्णरूप से उसकी ओर से विमुख नहीं हो सकती है, जो अपने गुप्ताङ्गों को प्रकट कर देती है किन्तु अपने दूषित अंगों को यत्नपूर्वक छिपा लेती है ।१०-१२।

तद्दर्शने च कुरुते बालालिङ्गनचुम्बनम्[2] ।
आभाष्यमाणा भवति सत्यवाक्या तथैव च ॥१३
स्पृष्टा पुलकितैरङ्गैः[3] स्वेदेनैव च भज्यते ।
करोति च तथा राम सुलभद्रव्ययाचनम् ॥१४
ततः स्वल्पमपि प्राप्य करोति परमां मुदम् ।
नामसंकीर्तनादेव मुदिता बहु मन्यते ॥१५
करजाङ्काङ्कितान्यस्य फलानि प्रेषयत्यपि ।
तत्प्रेषितं च हृदये विन्यसत्यपि चाऽऽदरात् ॥१६
आलिङ्गनैश्च गात्राणि लिम्पतीवामृतेन या ।
सुप्ते स्वपित्यथाऽऽदौ च तथा तस्य विबुध्यते ॥१७
ऊरू स्पृशति चात्यर्थं सुप्तं चैनं विबुध्यते ॥१७½

१ ख. छ. वीक्षिते । २ क. ङ. °म्बने । आ° । ३ क. ङ. °ङ्गैः सा स्वेदैनं च ।

पति के देखने पर उसका आलिंगन-चुम्बन करती, है, वातचीत में सच बोलती है और थोड़ी भी अभीष्ट वस्तु प्राप्त करके अत्यन्त आनन्दित हो उठती है, नाम लेने से 'ही प्रसन्न होकर अपने को धन्य समझने लगती है, नख-चिह्न से चिह्नित फलों को भेजने पर भी उसको सम्मानपूर्वक हृदय से लगा लेती है। शरीर का आलिंगन इस प्रकार से करती है मानो उसके ऊपर अमृत का लेप कर रही हो, (पतिदेव के) सोने के बाद सोती है और उनके पहिले ही जाग उठती है। जंघाओं का स्पर्श करके सोये हुए पति को जगा लेती है १३-१७½।

कपित्थचूर्णयोगेन तथा दध्नः स्रजा तथा ॥१८
धृतं सुगन्धि भवति दुग्धैः क्षिप्तैस्तथा यवैः।
भोज्यस्य कल्पनैवं स्याद्गन्धमुक्तिः प्रदर्श्यते ॥१९
[1]शौचमाचमनं राम तथैव च विरेचनम्।
भावना चैव पाकश्च[2] बोधनं धूपनं तथा ॥२०
वासनं चैव निर्मृष्टं कर्माष्टकमिदं स्मृतम् ॥२०½

राम ! दही के साथ थोड़ा-सा कपित्थ (कैथ) का चूर्ण मिला देने से जो घी तैयार होता है, उसकी गन्ध उत्तम होती है। घी, दूध आदि के साथ जौ, गेहूँ आदि के आटे का मेल होने से उत्तम खाद्य-पदार्थ तैयार होता है। अब भिन्न-भिन्न द्रव्यों में गन्ध छोड़ने का प्रकार दिखलाया जाता है। शौच, आचमन, विरेचन, भावना, पाक, वोधन, धूपन और वासन—ये आठ प्रकार के कर्म बतलाये गये हैं। १८-२०½।

कपित्थविल्वजम्ब्वाम्रकरवीरकपल्लवैः ॥२१
कृत्वोदकं तु यद्द्रव्यं शौचितं शौचनं तु तत्।
एषामभावे शौचं तु मृगदर्पाम्भसा भवेत् ॥२२

कपित्थ, विल्व, जामुन, आम और करवीर के पल्लवों से जल को शुद्ध करके उसके द्वारा जो किसी द्रव्य को धोकर या अभिषिक्त करके पवित्र किया जाता है, वह उस द्रव्य का शौचन (शोधन अथवा पवित्रीकरण) कहलाता है। इन पल्लवों के अभाव में कस्तूरी मिश्रित जल के द्वारा द्रव्यों की शुद्धि होती है। २१-२२।

१ ङ. शौचं च वमनं। २ क. ङ.° कस्यवो°।

नखं कुष्ठं घनं मांसी स्पृक्कशैलेयजं जलम् ।
तथैव कुङ्कुमं लाक्षा चन्दनागुरुनीरदम् ॥२३
सरलं देवकाष्ठं च कर्पूरं कान्तया सह ।
बालः [1]कुन्दुरुकश्चैव गुग्गुलु श्रीनिवासकः ॥२४
सह सर्जरसेनैवं धूपद्रव्यैकविंशतिः ।
धूपद्रव्यगणादस्मादेकविंशाद्यथेच्छया ॥२५
द्वे द्वे द्रव्ये समादाय [2]सर्जभागैर्नियोजयेत् ।
नखपिण्याकमलयैः संयोज्य मधुना तथा ॥२६

नख, कूट, घन (नागरमोथा), जटामांसी, स्पृक्क, शैलेयज (शिलाजीत), जल, कुंकुम (केसर) लाक्षा (लाह), चन्दन, अगुरु, नीरद, सरल, देवदारु, कपूर, कान्ता, वाल (सुगन्धबाला), कुन्दुक, गुग्गुल, श्रीनिवास और करायल—ये धूप के इक्कीस द्रव्य हैं। इन इक्कीस धूप द्रव्यों में से अपनी इच्छा के अनुसार दो-दो द्रव्य लेकर उनमें करायल मिलावे। फिर सबमें नख (एक प्रकार का सुगन्ध द्रव्य), पिण्याक (तिल की खली) और मलय चन्दन का चूर्ण मिलाकर सबको मधु से युक्त करे। २३-२६।

धूपयोगा भवन्तीह यथावत्स्वेच्छया कृताः ।
[3]त्वचं नाडीं फलं तैलं कुंकुमं [4]ग्रन्थिपर्वकम् ॥२७
शैलेयं तगरं क्रान्तां चोलं कर्पूरमेव च ।
मांसीं सुरां च कुष्ठं च स्नानद्रव्याणि निर्दिशेत् ॥२८

त्वक्, नाडी, फल, तेल, कुङ्कुम, ग्रन्थिपर्व, शैलेय, तगर, क्रान्ता, चोल, कर्पूर, जटामांसी सुरा और कुष्ठ—ये स्नान के द्रव्य बताये गये हैं।२७-२८।

एतेभ्यस्तु समादाय द्रव्यत्रयमथेच्छया ।
मृगदर्पयुतं स्नानं कार्यं कन्दर्पवर्धनम् ॥२९
त्वङ्मुरानलदैस्तुल्यैर्वालकार्धसमायुतैः ।
स्नानमुत्पलगन्धि स्यात्सतैलं कुङ्कुमायते ॥३०

इनमें से इच्छापूर्वक तीन-तीन ग्रंथों को लेकर उनमें कस्तूरी मिलाकर स्नान करने से (कन्दर्प) काम बढ़ता है। त्वक्, मुर, अनलद तथा वाल के

१. क. कुरुन्दक॰। २ च सर्वगन्धैर्नि॰। ३ क. ङ. ॰चं जातीफ॰। ४ क. ग्रन्थिजन्तुकम्।

चूर्ण मिले हुए जल से स्नान करने से कमल की-सी सुगन्धि निकलती है और उसमें तेल मिलाकर स्नान करने से केसर की-सी सुगन्धि आती है। २९-३०।

जातीपुष्पसुगन्धि स्यात्तगरार्धेन योजितम्।
सद्यचामकं स्याद्बकुलैस्तुल्यगन्धि मनोहरम् ॥३१
मञ्जिष्ठा तगरं चोलं त्वचं व्याघ्रनखं नखम्।
गन्धपत्रं च विन्यस्य गन्धतैलं भवेच्छुभम् ॥३२

पुनः उसमें तगर का चूर्ण मिला देने से शरीर से मालती पुष्प की-सी सुगन्धि निकलने लगती है। मौलश्री मिलाने से उसी की-सी सुगन्धि निकलने लगती है। मँजीठ, तगर, चोल, त्वक्, व्याघ्रनख, नख तथा गन्धपत्र रख देने से तेल सुगन्धित हो जाता है। ३१-३२।

तैलं निपीडितं राम तिलैः पुष्पाधिवासितैः।
वासनात्पुष्पसदृशं गन्धेन तु भवेद् ध्रुवम् ॥३३

अये राम! पुष्पों से सुवासित तिलों को पेरने से तेल से उस पुष्प की सुगन्धि आने लगती है। ३३

एलालवंगकक्कोलजातीफलनिशाकराः।
जातीपत्रिकया सार्धं स्वतन्त्रा मुखवासकाः ॥३४
कर्पूरं कुङ्कुमं कान्ता मृगदर्पं हरेणुकम्।
कक्कोलैलालवङ्गं च जातीकोशकमेव च ॥३५
त्वक्पत्रं त्रुटिमुस्तौ च लतां कस्तूरिकां तथा।
कण्टकानि लवंगस्य फलपत्रे च जातितः ॥३६
कटुकं च फलं राम कार्षिकाण्युपकल्पयेत्।
तच्चूर्णे खदिरं सारं दद्यात्तुर्यं तु वासितम् ॥३७
सहकाररसेनास्य कर्तव्या गुटिकाः शुभाः।
मुखन्यस्ताः सुगन्धास्ता मुखरोगविनाशनाः ॥३८

मुख को सुवासित करने के लिये इलायची, लवंग, कक्कोल, जायफल, कपूर तथा जातीपत्र का व्यवहार करना चाहिये। कर्पूर, कुंकुम, कान्ता, कस्तूरी, हरेणुक, कक्कोल इलायची, लवंग, जातीकोश, त्वक्पत्र, त्रुटि, मुस्ता, लता, कण्टक तथा कटुक में खैर और आम का रस मिलाकर गोली बनाना चाहिये। उस गोली को मुख में रखने से मुख सुगन्धित तथा रोगरहित हो जाता है। ३४-३८।

पूगं प्रक्षालितं सम्यक्पञ्चपल्लववारिणा ।
शक्त्या तु गुटिकाद्रव्यैर्वासितं मुखवासकम् ॥३९
कटुकं दन्तकाष्ठं च गोमूत्र[1] वासितं त्र्यहम् ।
कृतं च पूगवद्राम मुखसौगन्धि (न्ध्य) कारकम् ॥४०

पूर्वोक्त पंचपल्लवों के जल से अच्छी तरह सिक्त की हुई सुपारी के साथ उक्त गोली मिलाकर खाने से मुख सुवासित रहता है। कटुक तथा दन्तकाष्ठ को तीन दिनों तक गोमूत्र में छोड़कर उसे सुपारी से सुवासित करके व्यवहार करने से मुख की सुगन्धि बढ़ती है। ३९-४०।

त्वक्पथ्ययोः समावंशौ शशिभागार्धसंयुतौ ।
नागवल्लीसमो भाति मुखवासो मनोहरः ।४१
एवं कुर्यात् सदा स्त्रीणां रक्षणं पृथिवीपतिः ।
न चाऽऽसां विश्वसेज्जातु पुत्रमातुर्विशेषतः ॥
न स्वपेत्स्त्रीगृहे रात्रौ विश्वासः कृत्रिमो भवेत् ॥४२

समान अंश में त्वक् और पथ्य लेकर उनमें आधा भाग कपूर मिलाकर सेवन करने से मुख से पान की सी सुगन्धि आने लगती है। इस प्रकार राजा को स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिये। स्त्रियों का तनिक भी विश्वास नहीं करना चाहिये। राजा को रात्रि में स्त्री के कक्ष में नहीं सोना चाहिये अपितु उसके प्रति विश्वास दिखावटी ही होना चाहिये। ४१-४२।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये राजधर्मकथनं नाम चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः । २२४

अथ पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजधर्माः

पुष्कर उवाच—

राजपुत्रस्य रक्षा च कर्तव्या पृथिवीक्षिता ।
धर्मार्थकामशास्त्राणि[1] धनुर्वेदं च शिक्षयेत् ॥१

१ क. ङ. ॰मसूत्राणि ।

शिल्पानि शिक्षयेच्चैनमाप्तैर्मिथ्याप्रियंवदैः ।
शरीररक्षाव्याजेन रक्षिणोऽस्य नियोजयेत् ॥२

पुष्कर बोले—राजा को राजकुमार की रक्षा करनी चाहिये । उसे धर्म-शास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, धनुर्वेद तथा शिल्प की शिक्षा विश्वासपात्र लोगों द्वारा दिलानी चाहिये, न कि मिथ्या प्रिय बोलने वालों से । उसकी शरीर-रक्षा के व्याज से रक्षकों की नियुक्ति करनी चाहिये ।१-२।

न चास्य सङ्गो दातव्यः क्रुद्धलुब्धविमानितैः ।
अशक्यं तु गुणाधानं कर्तुं तं वन्धयेत्सुखैः ॥३
अधिकारेषु सर्वेषु विनीतं विनियोजयेत् ।
मृगयां पानमक्षांश्च राज्यनाशांस्त्यजेन्नृपः ॥४

उसे क्रोधी, लोभी तथा पतितों का साथ नहीं करने देना चाहिये । यदि वह गुणों को ग्रहण कर सकने में असमर्थ हो तो उसे सुखों से बाँध देना चाहिये । राजा को चाहिये कि वह विनयशील राजकुमार को सभी अधिकारों में नियुक्त करे । शिकार, मद्यपान और जुआ –ये सब राज्यनाशक हैं, अतः राजा को इनका परित्याग कर देना चाहिये ।३-४।

दिवास्वप्नं वृथाट्यां[1] च वाक्पारुष्यं विवर्जयेत् ।
निन्दां च दण्डपारुष्यमर्थदूषणमुत्सृजेत् ॥५

उसे दिन में शयन, व्यर्थ में भ्रमण, कठोर वचन, निन्दा, कठोरदण्ड तथा अर्थ-दोष का परित्याग कर देना चाहिये ।५

आकाराणां समुच्छेदो दुर्गादीनामसत्क्रिया ।
अर्थानां दूषणं प्रोक्तं विप्रकीर्णत्वमेव च ॥६
अदेशकाले यद्दानमपात्रे दानमेव च ।
अर्थेषु दूषणं प्रोक्तमसत्कर्मप्रवर्तनम् ॥७
कामं क्रोधं मदं मानं लोभं[2] दर्पं च वर्जयेत् ।
ततो भृत्यजयं कृत्वा पौरजानपदं जपेत् ॥८

१ ख. ग. °थावाचं वा° । २क. ङ. हर्ष° ।

खानों का विध्वंश तथा अनियमित ढंग से दुर्ग-निर्माण अर्थदोष कहलाता है। उसी को विप्रकीर्णत्व भी कहते हैं। अनुचित स्थान में, अनुचित समय में तथा अनुचित पात्र में जो दान दिया जाता है उसे अर्थदोष कहते हैं और उससे असत् कार्यों की उत्पत्ति होती है। राजा को काम, क्रोध, मद, मान, लोभ का परित्याग कर देना चाहिये। उसे पहले सेवकों को अपने वश में करके पुरवासियों तथा देशवासियों को (भी) वश में कर लेना चाहिये।६-८।

जयेद्वाह्यानरीन्पश्चाद्वाह्याश्च त्रिविधारयः।
गुरवस्ते यथापूर्वं कुल्यानन्तरकृत्रिमाः॥९
पितृपैतामहं मित्रं सामन्तश्च तथा रिपोः।
कृत्रिमं च महाभाग मित्रं त्रिविधमुच्यते॥१०

तदनन्तर उसे वाह्य शत्रुओं को जीतना चाहिए। वाह्य शत्रु तीन प्रकार के होते हैं—कुलक्रमागत, जातिक्रमागत, और कृत्रिम। अये महाभाग! उसी प्रकार राजा के मित्र भी त्रिविध हुआ करते हैं—पिता-पितामह के मित्र, सामन्त और कृत्रिम।९-१०।

स्वाम्यमात्यो जनपदा दुर्गो दण्डस्तथैव च।
कोषो मित्रं च धर्मज्ञ सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते॥११
मूलं स्वामी स वै रक्ष्यस्तस्माद्राज्यं विशेषतः।
राज्याङ्गद्रोहिणं हन्यात्काले तीक्ष्णो मृदुर्भवेत्॥१२
एवं लोकद्वयं राज्ञो भृत्यैर्हासं विवर्जयेत्।
भृत्याः परिभवन्तीह नृपं हर्षणसत्कथम्॥१३
लोकसंग्रहणार्थाय[1] कृतकव्यसनो भवेत्।
स्मितपूर्वाभिभाषी स्याल्लोकानां रञ्जनं चरेत्॥१४

अये धर्मज्ञ! राज्य के सात अंग हुआ करते है—स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, दण्ड, कोष और मित्र। परन्तु सबका मूल राजा ही है। इसलिये राजा की और उससे भी वढ़कर राज्य की रक्षा करनी चाहिये। जो व्यक्ति राज्य के उक्त सातों अंगों से द्रोह करता है, उसे मार डालना चाहिये। राजा

१ ख. भृतकव्यसनो।

को समयानुसार कठोर तथा कोमल होना चाहिये। ऐसा करने से राजा के दोनों लोक बन जाते हैं। राजा को सेवकों के साथ हास-परिहास नहीं करना चाहिये। हास-परिहास करने से नौकर-चाकर उसके अनुशासन में नहीं रहते हैं। लोगों को प्रसन्न करने के लिये सेवकों के साथ बनावटी व्यसन में लगे रहना चाहिये, उसे बोलने से पहले मुस्करा देना चाहिये, जिससे लोकानुरञ्जन होता रहे।११-१४।

दीर्घसूत्रस्य नृपतेः कर्महानिर्ध्रुवं भवेत्।
रागे दर्पे च माने च द्रोहे पापे च कर्मणि ॥१५
अप्रिये चैव वक्तव्ये दीर्घसूत्रः प्रशस्यते।
गुप्तमन्त्रो भवेद्राजा नाऽऽपदो गुप्तमन्त्रतः ॥१६
ज्ञायते हि कृतं कर्म नाऽऽरब्धं तस्य राज्यकम्।
आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च ॥१७
नेत्रवक्त्रविकाराभ्यां गृह्यतेऽन्तर्गतं पुनः।
नैकस्तु मन्त्रयेन्मन्त्रं न राजा बहुभिः सह ॥१८
बहुभिर्मन्त्रयेत्कामं राजा मन्त्रान्पृथक्पृथक्।
मन्त्रिणामपि नो कुर्यान्मन्त्री मन्त्रप्रकाशनम् ॥१९

देर से कार्य करने वाले राजा की कार्यहानि निश्चित रूप से होती है; क्योंकि दीर्घसूत्रता, राग दर्प, मान, द्रोह, पाप तथा अप्रिय वचन में ही प्रशंसनीय हुआ करती है (अन्यथा नहीं)। राजा को गुप्त मन्त्रणा करनी चाहिये, क्योंकि गुप्त विचार करने से विपत्तियाँ नहीं आती हैं। कार्य इस प्रकार से करना चाहिये कि वह सम्पन्न होने पर ही ज्ञात हो सके, न कि आरम्भ में ही। आकृति, इङ्गित, गति, चेष्टा, भाषण, नेत्र तथा मुख के विकार से मन की बात जान ली जाती है। राजा को पृथक्-पृथक् (मन्त्री) के साथ मन्त्रणा करनी चाहिये। एक मन्त्री को भी बहुत से मन्त्रियों से मन्त्रणा को प्रकाशित नहीं करना चाहिये।१५-१९।

क्वापि कस्यापि विश्वासो भवतीह सदा नृणाम्।
निश्चयश्च तथा मन्त्रे कार्य एकेन सूरिणा ॥२०

नश्येदविनयाद्राजा राज्यं[1] च विनयाल्लभेत् ।
त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम् ॥२१
आन्वीक्षिकीं चार्थविद्यां वार्तारम्भांश्च लोकतः ।
जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः ॥२२
पूज्या देवा द्विजाः सर्वे दद्याद्दानानि तेषु च ।
द्विजे दानं चाक्षयोऽयं निधिः कैश्चिन्न नाश्यते ॥२३

मनुष्य का विश्वास किसी न किसी पर होता ही है, इसलिये किसी एक बुद्धिमान् (मन्त्री) के साथ मन्त्रणा करके निश्चय कर लेना चाहिये । अविनय से राजा के राज्य का नाश हो जाता है किन्तु विनय से राज्य की वृद्धि होती है । त्रैविद्यों (तीन विद्याओं के जानकारों) से शाश्वती, दण्डनीति, आन्वीक्षिकी तथा अर्थनीति की शिक्षा लेनी चाहिए । वातचीत का ढंग संसार से सीखना चाहिये । जितेन्द्रिय राजा ही प्रजा को अपने वश में कर लेता है । राजा को देवता और ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिये । ब्राह्मणों को दान देने से धन अक्षय हो जाता है जिससे कोई भी कोश का नाश नहीं कर सकता है ।२०-२३।

संग्रामेष्वनिवर्तित्वं प्रजानां परिपालनम् ।
दानानि ब्राह्मणानां च राज्ञो निःश्रेयसं परम् ॥२४
कृपणानाथवृद्धानां विधवानां च योषिताम् ।
योगक्षेमं च वृत्तिं च तथैव परिकल्पयेत् ॥२५
वर्णाश्रमव्यवस्थानं कार्यं तापसपूजनम् ।
न विश्वसेच्च सर्वत्र तापसेषु च विश्वसेत् ॥२६

संग्राम में मुँह न मोड़ना, प्रजा का सम्यक् रूप से पालन करना और ब्राह्मणों को दान देना—ये तीन कार्य राजा के लिए कल्याणकारक हुआ करते हैं । राजा को कृपण (दीन), अनाथ, वृद्ध तथा विधवाओं का योग-क्षेम करना चाहिये और उनकी जीविका का प्रवन्ध करना चाहिये । उसे वर्णाश्रम की व्यवस्था और तपस्वियों का सम्मान करना चाहिये । सबका विश्वास नहीं करना चाहिये किन्तु तपस्वियों में विश्वास करना (ही) चाहिए ।२४-२६।

---
१ क. वृद्धिं ।

विश्वासयेच्चापि परं तत्त्वभूतेन हेतुना ।
वकवच्चिन्तयेदर्थं सिंहवच्च पराक्रमेत् ॥२७
वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिष्पतेत् ।
दृढप्रहारी च भवेत्तथा शूकरवन्नृपः ॥२८
चित्राकारश्च शिखिवद्दृढभक्तिस्थाऽश्ववत् ।
भवेच्च मधुराभाषी तथा कोकिलवन्नृपः ॥२९

राजा को अपने चरित्र से दूसरों का भी विश्वासपात्र बनना चाहिये । उसे बगुले की भाँति धनोपार्जन की चिन्ता करनी चाहिये, सिंह की भाँति पराक्रम करना चाहिये, भेड़िये की भाँति (छिपकर) आक्रमण करना चाहिये, खरहे की तरह भागना चाहिये, शूकर की तरह दृढ़ प्रहार करना चाहिये, मयूर की तरह नाना प्रकार का रूप धारण करना चाहिये, अश्व की तरह (दृढ) भक्ति करनी चाहिए तथा कोयल की भाँति मधुरभाषी होना चाहिये ।२७-२९।

काकशङ्की[१] भवेन्नित्यमज्ञातां वसतिं वसेत् ।
नापरीक्षितपूर्वं च भोजनं शयनं स्पृशेत् ॥३०
नाविज्ञातां स्त्रियं गच्छेन्नाज्ञातं नावमारुहेत् ।
राष्ट्रकर्षी भ्रश्यते च राज्यार्थाच्चैव जीवितात् ॥३१
भृतो वत्सो जातवलः कर्मयोग्यो यथा भवेत् ।
तथा राष्ट्रं महाभाग भृतं कर्मसहं भवेत् ॥३२
सर्वंकर्मेदमायत्तं विधाने दैव पौरुषे ।
तयोर्दैवमचिन्त्यं हि पौरुषे विद्यते क्रिया ॥
जनानुरागप्रभवा राज्ञो राज्यमहीश्रियः ॥३३

कौवे की तरह सशंकित रहना चाहिये । उसे अज्ञात स्थान में निवास करना चाहिए । बिना पहले परीक्षा किये (दूसरे के दिये हुए) भोजन तथा शय्या का स्पर्श नहीं करना चाहिये । अनजान स्त्री के साथ सहवास नहीं करना चाहिये और न अज्ञात नाव पर बैठना चाहिये । राष्ट्र को चूसने वाला राजा

१ ख. ग. °न्नित्यं नाज्ञा° ।

राज्य तथा जीवन दोनों से भ्रष्ट हो जाता है। अये महाभाग ! जैसे बछड़े का जितना भरणपोषण किया जाता है उतना ही वह बलवान् और (भार) वहन करने योग्य बनता है, वैसे ही राष्ट्र का भी जितना भरण-पोषण किया जाता है उतना ही वह दृढ़ और उन्नतिशील बनता है। संसार के जितने भी कार्य हैं सब भाग्य और पौरुष के अधीन हैं। उनमें दैव तो अचिन्त्य है, किन्तु पौरुष से कार्य की सिद्धि होती है । राजा की राज्यश्री प्रजा का अनुरंजन करने से बढ़ती रहती है। ३०-३३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये राजधर्मकथनं नाम पञ्चविंशत्यधिक-द्विशततमोऽध्यायः ।२२५

अथ षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सामाद्युपायकथनम्

पुष्कर उवाच—

स्वयमेव कर्म दैवाख्यं विद्धि देहान्तरार्जितम् ।
तस्मात्पौरुषमेवेह श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः ।।१
प्रतिकूलं तथा दैवं पौरुषेण विहन्यते ।
सात्त्विकात्कर्मणः पूर्वात्सिद्धिः स्यात्पौरुषं विना ।।२

पुष्कर बोले—पूर्व जन्म में सञ्चित अपने कर्म को ही दैव (भाग्य) समझिये। इसलिये मनुष्यों ने (दैव की अपेक्षा) पौरुष को ही श्रेष्ठ बतलाया है। दैव यदि प्रतिकूल भी हो तो भी पुरुषार्थ करने से उसका निराकरण हो सकता है। हाँ, यदि पूर्व जन्म में कोई सात्त्विक कर्म किया गया हो तो बिना पुरुषार्थ के भी सिद्धि प्राप्त हो जाती है ।१-२।

पौरुषं दैवसम्पत्त्या काले फलति भार्गव ।
दैवं पुरुषकारश्च द्वयं पुंसः फलावहम् ।।३

अये भृगुपुत्र ! समय आने पर दैव के बल से पुरुषार्थ फलित हुआ करता है। मनुष्य के लिए दैव और पुरुषार्थ दोनों ही फलित हुआ करता है ।३

कृषेर्वृष्टिसमायोगात्काले स्युः फलसिद्धयः ।
सधर्मं पौरुषं कुर्यान्नालसो न च दैववान् ।।४

सामादिभिरुपायैस्तु सर्वे सिद्ध्यन्त्युपक्रमाः ।
साम चोपप्रदानं च भेददण्डौ तथाऽपरौ ॥५
मायोपेक्षेन्द्रजालं च उपायाः सप्त ताञ्शृणु ।
द्विविधं कथितं साम तथ्यं चातथ्यमेव च ॥६

कृषि (पुरुषार्थ) और वृष्टि (दैव) के योग से समय पर फल प्रदान करते हैं। इसलिये (सदैव) धर्म से युक्त पुरुषार्थ करना चाहिए, न तो आलसी होना चाहिए और न भाग्यवादी। साम आदि उपायों से सब कार्य सिद्ध होते हैं। उपाय सात हैं—साम, दान, भेद, दण्ड, माया, उपेक्षा तथा इन्द्रजाल। इनके विषय में सुनिये। साम दो प्रकार के होते हैं—तथ्य और अतथ्य।४-६।

तत्राप्यतथ्यं साधूनामाक्रोशायैव जायते ।
महाकुलीना ह्यृजवो धर्मनित्या जितेन्द्रियाः ॥७
सामसाध्या अतथ्यैश्च गृह्यन्ते राक्षसा अपि ।
तथा तदुपकाराणां[1] कृतानां[2] चैव वर्णनम्[3] ॥८
परस्परं तु ये द्विष्टाः क्रुद्धभीतावमानिताः ।
तेषां भेदं प्रयुञ्जीत परमं दर्शयेद्भयम् ॥९

उनमें अतथ्य तो सज्जनों के लिये निन्दास्पद है। महाकुलीन, सीधे सादे, धर्मात्मा और जितेन्द्रिय (तथ्य) साम (उपाय) के द्वारा अनुकूल बनाये जा सकते हैं। अतथ्य साम से राक्षसों को वशीभूत किया जाता है। सज्जनों के लिये उनके किये उपकारों का वर्णन करना ही पर्याप्त है। जो मनुष्य परस्पर द्वेष करते हों, क्रोधित हों, भयभीत हों तथा अपमानित हों, उनमें (परस्पर) फूट डालकर उन्हें भारी भय दिखाना चाहिए।७-९।

आत्मीयां दर्शयेदाशां येन दोषेण बिभ्यति ।
परास्तेनैव ते भेद्या रक्ष्यो वै ज्ञातिभेदकः ॥१०
[4]सामन्तकोपो बाह्यस्तु मन्त्रामात्यात्मजादिकः ।
[5]अन्तःकोषं चोपशाम्यं कुर्वञ्शत्रोश्च तं जपेत् ॥११
उपायश्रेष्ठं दानं स्याद्दानादुभयलोकभाक् ।
न सोऽस्ति नाम दानेन वशगो यो न जायते ॥१२

---

१ क. ङ. 'दुक्तका' । २ क. ङ. कृतीनां । ३ क. ङ. वर्तनम् ।
४ सामन्तकोपो..........मजादिकः । क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति ।
५ क. ङ. अन्तकोपं ।

तदनन्तर अपनी ओर से आश्वासन प्रदान करना चाहिये। शत्रु जिस दोष से डरते हों, उसी दोष का उद्घाटन कर उनमें फूट डाल देना चाहिए। राजा को उस भेदक की सदैव रक्षा करनी चाहिये (जो राजा की ओर से शत्रुओं में फूट डालता है)। शत्रुओं के सामन्त, मन्त्री, अमात्य तथा पुत्र आदि जिस प्रकार उनसे (शत्रुओं से) क्रुद्ध हो, ऐसा उपाय करना चाहिये। राजा को उन शत्रुओं के कोश (खजाने) को भी वर्बाद कर देना चाहिये। सर्वश्रेष्ठ उपाय है दान क्योंकि दान से दोनों लोकों की प्राप्ति हो जाती है। कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जिसे दान से वशीभूत नही किया जा सकता है।१०-१२।

दानवानेव शक्नोति सहतान्भेदितुं परान्।
त्रयासाध्यं साधयेत्तं दण्डेन च कृतेन च ॥१३
दण्डे सर्वं स्थितं दण्डी नाशयेद्दुष्प्रणीकृतः[1]।
अदण्ड्यान्दण्डयन्नश्येद्दण्ड्यान्राजाऽप्यदण्डयन् ॥१४
देवदैत्योरगनराः सिद्धा भूताः पतत्त्रिणः।
उत्क्रमेयुः स्वमर्यादां यदि दण्डान्न पालयेत् ॥१५

(वस्तुतः) दान देने वाला ही संगठित शत्रुओं में फूट डलवा सकता है। तीनों उपायों से (शत्रु को) वशीभूत न कर सकने पर उसे दण्ड और उपकार से वश में करना चाहिये। दण्ड सबका आधार है, किन्तु अनुचित ढंग से प्रयुक्त दण्ड (राजा का ही) नाश कर देता है। जो राजा अदण्ड्य को दण्ड देता है और दण्ड्य को दण्ड नहीं देता है, उसका नाश हो जाता है। यदि दण्ड का सदुपयोग न किया जाये तो देव, दैत्य, नाग, मनुष्य, सिद्ध, भूत तथा पशु-पक्षी अपनी-अपनी मर्यादा को छोड़ दिया करते हैं।१३-१५।

यस्माददान्तान्दमयत्यदण्ड्यान्दण्डयत्यपि।
दमनाद्दण्डनाच्चैव तस्माद्दण्डं विदुर्बुधाः ॥१६
तेजसा दुर्निरीक्ष्यो हि राजा भास्करवत्ततः।
लोकप्रसादं[2] गच्छेत दर्शनाच्चन्द्रवत्ततः ॥१७

अदान्त का दमन और अदण्ड्य को दण्डित करने के कारण ही विद्वान् लोग उसे दण्ड कहते हैं। राजा अपने तेज के कारण दुर्निरीक्ष्य होता है। इस-

---

१ क. ख. ग. ड. °णीतकः। २ क. ङ. °सादमिच्छे°।

लिए वह सूर्य के समान हुआ करता है। वह अपने दर्शन से लोगों को आह्लादित करता है, अतः चन्द्रमा के तुल्य हुआ करता है।१६-१७।

जगद्व्याप्नोति वै चारैरतो राजा समीरणः।
दोषनिग्रहकारित्वाद्राजा वैवस्वतः प्रभुः ॥१८
यदा दहति दुर्बुद्धिं तदा भवति पावकः।
यदा दानं द्विजातिभ्यो दद्यात्तस्माद्धनेश्वरः ॥१९
घनधाराप्रवर्षित्वाद्देवादौ वरुणः स्मृतः।
क्षमया धारयँल्लोकान्पार्थिवः पार्थिवो भवेत् ॥
उत्साहमन्त्रशक्त्याद्यै रक्षेद्यस्माद्धरिस्ततः ॥२०

वह सम्पूर्ण संसार में अपने गुप्तचरों से व्याप्त रहता है, अतः वायु है। वह दुष्टों को दण्ड देता है, अतः यमराज है। वह दुर्बुद्धि को जलाता है, अतः अग्नि है। वह द्विजातियों को दान देता है, अतः कुवेर है। देवता आदि के ऊपर धाराप्रवाह (घन) की वृष्टि करता है, अतः वरुण कहा गया है। क्षमा पूर्वक प्रजा को धारण करता है, अतः राजा पार्थिव (पृथ्वी से उत्पन्न) हुआ करता है। वह उत्साह, शक्ति, मन्त्र आदि से (प्रजा) की रक्षा करता है, अतः हरि है।१८-२०।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सामाद्युपायकथनं नाम षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।२२६

अथ सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

दण्डप्रणयनम्

पुष्कर उवाच –
दण्डप्रणयनं वक्ष्ये येन राज्ञः परा गतिः।
[1]त्रियवं कृष्णलं विद्धि माषस्तत्पञ्चकं भवेत् ॥१
कृष्णलानां तथा षष्ट्या कर्षार्धं राम कीर्तितम्।
सुवर्णश्च विनिर्दिष्टो राम षोडशमाषकः ॥२

१ 'त्रियवं····· पञ्चकं भवेत्' क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

निष्कः सुवर्णाश्चत्वारो धरणं दशभिस्तु तैः ।
ताम्ररूप्यसुवर्णानां मानमेतत्प्रकीर्तितम् ॥३

पुष्कर बोले—अब मैं दण्डविधान बतलाता हूँ, जिसके पालन करने से राजा को उत्तम गति मिलती है। तीन यव के बराबर एक कृष्णल (परिमाण) होता है। पाँच कृष्णलों का एक माप (माशा) और साठ कृष्णलों का आधा कर्ष होता है। अये राम ! सोलह मापों का एक सुवर्ण, चार सुवर्णों का एक निष्क और दश निष्कों का एक धरण होता है। यह सोने, चाँदी तथा ताँबे का परिमाण कहा गया है।१-३।

[1]ताम्रिकैः कार्षिको राम प्रोक्तः कार्षापणो बुधैः ।
पणानां द्वे शते सार्धं प्रथमः साहसः स्मृतः ॥४
मध्यमः पञ्च विज्ञेयः सहस्रमपि चोत्तमः ।
चौरैरमूषितो यस्तु मूषितोऽस्मीति भाषते ॥५
तत्प्रदातरि भूपाले स दण्ड्यस्तावदेव तु ।
([2] यो यावद्विपरीतार्थं मिथ्या वा यो वदेत्तु तम् ॥६
तौ नृपेण ह्यधर्मज्ञौ दाप्यौ तद्द्विगुणं दमम्) ॥६½

अये राम ! ताँबे का काम करने वाले कार्षिक को ही कार्षापण कहते है। कार्षापणों का प्रथम साहस, पाँच सौ मध्यम और एक हजार (कार्षापणों) का उत्तम साहस कहा गया है। चोरों के द्वारा चोरी न किये जाने पर भी जो व्यक्ति कहता है कि 'मेरे यहाँ चोरी हो गयी है' और राजा से उतना धन प्राप्त कर लेता है, उसका पता लग जाने पर वह राजा के द्वारा उतने ही दण्ड का भागी होता है जितने की वह माँग करता है। जो (जितने धन के लिये) उलटा-पुलटा या मिथ्या बोलता है, उन दोनों अधर्मियों को राजा द्विगुणित दण्ड देता है।४-६½।

कू (कौ) टसाक्ष्यं तु कुर्वाणां स्त्रीन्वर्णांश्च प्रदापयेत् ॥७
विवासयेद्ब्राह्मणं तु भोज्यो (अन्यो) विधिर्न हीरितः ।

---

१ ताम्रिकैः······स्मृतः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति । २ यो यावद्···दमम् । क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति ।

निक्षेपस्य समं मूल्यं दण्ड्यो निक्षेपभुक्तया ।।८
वस्त्रादिकस्य धर्मज्ञ तथा धर्मो न हीयते ।
यो निक्षेपं घातयति यश्चानिक्षिप्य याचते ।।९
तावुभौ चौरवच्छास्यौ दण्ड्यौ वा द्विगुणं दमम् ।।९½

झूठी गवाही देने वाले तीन वर्णों को तो उक्त दण्ड देना चाहिये और ब्राह्मण को देश से निष्कासित कर देना चाहिये क्योंकि उसके लिये और दूसरा विधान ही नहीं है । वस्त्र आदि के निक्षेप (धरोहर) का उपभोग कर लेने पर निक्षेप के मूल्य के वराबर दण्ड देना चाहिये, क्योंकि इससे धर्म की हानि नहीं होती है । जो निक्षेप को मार देता है और जो बिना निक्षेप किये ही उसकी माँग करता है वे दोनों ही चोर की भाँति द्विगुणित दण्ड के भागी हुआ करते हैं ।७-९½।

अज्ञानाद्यः पुमान्कुर्यान्परद्रव्यस्य विक्रयम् ।।१०
निर्दोषो ज्ञानपूर्वं तु चौरवद्दण्डमर्हति ।
मूल्यमादाय यः शिल्पं न दद्याद्दण्ड्य एव सः ।।११
प्रतिश्रुत्याप्रदातारं सुवर्णं दण्डयेन्नृपः ।
भृतिं गृह्य न कुर्याद्यः कर्माष्टौ कृष्णला दमः ।।१२
अकाले तु त्यजन्भृत्यं दण्ड्यः स्यात्तावदेव तु ।
क्रीत्वा विक्रीय वा किंचिद्यस्येहानुशयो भवेत् ।।१३
सोऽन्तर्दशाहात्तत्स्वामी दद्याच्चैवाऽऽददीत च ।।१३½

जो व्यक्ति अज्ञान से दूसरे के द्रव्य को वेंच देता है वह निर्दोष है, किन्तु जो जानबूझकर ऐसा करता है, वह चोर की भाँति दण्डनीय हुआ करता है । जो मूल्य लेकर (भी) वस्तु नहीं देता है वह भी दण्ड का भागी हुआ करता है। जो किसी वस्तु को देने की प्रतिज्ञा करके भी नहीं देता है उसे सुवर्ण का दण्ड देना चाहिए । जो वेतन लेकर भी काम नहीं करता है उसे आठ कृष्णलों का दण्ड देना चाहिये । (इसी प्रकार) असमय में ही सेवक को छुड़ा देने वाले को भी आठ कृष्णल दण्ड देना चाहिए । जिसे किसी वस्तु को खरीदकर या वेंचकर पश्चात्ताप होता है उसे दश दिनों के अन्दर ही लौटा देना चाहिये या ले लेना चाहिये ।१०-१३½।

परेण तु दशाहस्य नाऽऽदद्यान्नैव दापयेत् ॥१४
आददद्धि ददच्चैव राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट् ।
वरदोषानविख्याप्य यः कन्यां वरयेदिह ॥१५
दत्ताऽप्यदत्ता सा तस्य राज्ञा दण्ड्यः शतद्वयम् ।
प्रदाय कन्यां योऽन्यस्मै पुनस्तां सम्प्रयच्छति ॥१६
दण्डः कार्यो नरेन्द्रेण तस्याप्युत्तमसाहसः ॥१६३

किन्तु, दश दिनों के बाद न तो लिया जा सकता है और न लौटाया जा सकता है। जो वर के दोषों को छिपाकर कन्या का विवाह कर लेता है, वह दो सौ मुद्राओं के दण्ड का भागी हुआ करता है और (कन्या, विवाह में) प्रदत्त होकर भी अदत्त ही रहती है। जो किसी एक को कन्या दे देने के पश्चात् उसे दूसरे को दे देता है उसे भी राजा को एक हजार पण दण्ड रूप में देना चाहिये।१४-१६३।

सत्यंकारेण वाचा च युक्तं पुण्यमसंशयम् ॥१७
लुब्धोऽन्यत्र च विक्रेता षट्शतं दण्डमर्हति ।
दद्याद्धेनुं न यः पालो गृहीत्वा[1] भक्तवेतनम् ॥१८
स तु दण्ड्यः शतं राज्ञा सुवर्णं वाऽप्यरक्षिता ।
धनुः शतं परीणाहो ग्रामस्य तु समन्ततः ॥१९
द्विगुणं त्रिगुणं वाऽपि नगरस्य च कल्पयेत् ।
वृत्तिं तत्र प्रकुर्वीत यामुष्ट्रो नावलोकयेत् ॥२०

जो सत्यता और धर्मपूर्वक किसी एक को (वस्तु बेचने का) वचन देकर लोभवश किसी दूसरे के हाथ उसे बेंच डालता है, वह भी छह सौ (मुद्राओं के) दण्ड का भागी हुआ करता है। जो गौ का पालन करने के लिए वेतन लेकर भी गौ को (उसके स्वामी को) लौटाता नहीं है, उसे राजा को सौ मुद्राओं का दण्ड देना चाहिए, और यदि उसने गाय की रक्षा भी (उचित रीति से) नहीं की हो तो उसके ऊपर राजा सुवर्ण तक दण्ड कर सकता है। गाँव का विस्तार सौ धनुषों के बराबर होना चाहिये, किन्तु नगर का विस्तार उससे दुगुना, तिगुना होना चाहिये। उसकी चहारदीवारी इतनी ऊँची होनी चाहिये जिसके ऊपर से ऊँट भी न झाँक सके।१७-२०।

१ क. 'त्वा भुक्त ।

तत्रापरिवृते धान्ये हिंसिते नैव दण्डनम् ।
गृहं तडागमारामं क्षेत्रं वा भीषया हरन् ॥२१
शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यादज्ञानाद्द्विशतो दमः ।
मर्यादाभेदकाः सर्वे दण्ड्याः प्रथमसाहसम् ॥२२
शतं ब्राह्मणमानस्य क्षत्रियो दण्डमर्हति ।
वैश्यश्च द्विशतं राम शूद्रश्च वन्धमर्हति ॥२३

जिस गाँव में चहारदीवारी नहीं है, वहाँ यदि पशु आदि धान्य को खा ले तो दण्ड नहीं देना चाहिये । जो किसी को डरा-धमका कर उसके घर, तालाब, उपवन तथा खेत का अपहरण कर लेता है उसे पाँच सौ दण्ड देना चाहिये । किन्तु जो अनजान में ऐसा करता है उसे दो सौ दण्ड देना चाहिये । मर्यादा-भंग करने वाले एक हजार दण्ड के भागी हुआ करते हैं । अये राम ! ब्राह्मण का अपमान करने वाला क्षत्रिय सौ मुद्रा दण्ड का भागी होता है, वैश्य दो सौ के दण्ड का भागी होता है और शूद्र कारागार (जेल) के दण्ड का भागी होता है।२१-२३।

पञ्चाशद्ब्राह्मणो दम्यः क्षत्रियस्याभिशंसने ।
वैश्ये वाऽप्यर्धपञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दमः ॥२४
क्षत्रियस्याऽऽप्नुयाद्वैश्यः साहसं पूर्वमेव तु ।
शूद्रः क्षत्रियमाक्रुश्य जिह्वाछेदनमाप्नुयात् ॥२५
धर्मोपदेशं विप्राणां शूद्रः कुर्वश्च दण्डभाक् ॥२५½

इसके विपरीत ब्राह्मण क्षत्रिय का वध करने पर पचास, वैश्य का वध करने पर पचीस और शूद्र का वध करने पर बारह (मुद्राओं के) दण्ड का भागी हुआ करता है । क्षत्रिय का अपमान करने वाला वैश्य ढाई सौ (पण के) दण्ड का भागी होता है और यदि क्षत्रिय के प्रति शूद्र अपशब्दों का प्रयोग करे तो उसकी जिह्वा (ही) काट लेनी चाहिये । यदि शूद्र ब्राह्मणों को धर्मोपदेश करे तो उसे दण्ड देना चाहिये ।२४-२५½।

श्रुतदेशादिवितथी दाप्यो द्विगुणसाहसम् ॥२६
उत्तमः साहसस्तस्य यः पापैरुत्तमान्क्षिपेत् ।
प्रमादाद्यैर्मया प्रोक्तं प्रीत्या दण्डार्धमर्हति ॥२७

मातरं पितरं ज्येष्ठं भ्रातरं श्वशुरं गुरुम् ।
आक्षारयञ्छतं दण्डचः पन्थानं चाददद्गुरोः ॥२८
अन्त्यजातिर्द्विजातिं तु येनाङ्गेनापराध्नुयात् ।
तदेवच्छेदयेत्तस्य क्षिप्रमेवाविचारयन् ॥२९

वेदादि का अनुचित उपदेश करने वाला दुगुने दण्ड का भागी होता है। जो उत्तम पुरुषों के साथ पापाचरण करता है, वह एक हजार पण दण्ड का भागी होता है। यदि यह कार्य प्रमाद-वश हुआ हो तब दण्ड वही है जो मैंने वताया है, किन्तु प्रीतिवश ऐसा अपराध होने पर दण्ड आधा हो जाता है। माता, पिता, ज्येष्ठ भ्राता, श्वशुर तथा गुरु को अनुचित बात कहने वाला और गुरु को मार्ग न देने वाला भी सौ (पण के) दण्ड का भागी हुआ करता है। जिस अंग से शूद्र द्विजों के प्रति अपराध करे उसका वही अंग कटवा देना चाहिये, इसमें किसी विचार की आवश्यकता नही है।२६-२९।

अवनिष्ठीवतो दर्पाद्द्वावोष्ठौ छेदयेन्नृपः ।
अपमूत्रयतो मेढ्मपशब्दयतो गुदम् ॥३०
उत्कृष्टासनसंस्थस्य नीचस्याधो निकृन्तनम् ।
यो यदङ्गं च रुजयेत्तदङ्गं तस्य कर्तयेत् ॥३१
अर्धपादकराः कार्या गोगजाश्वोष्ट्रघातकाः ।
वृक्षं तु विफलं कृत्वा सुवर्णं दण्डमर्हति ॥३२

राजा को दर्प से ब्राह्मण के ऊपर थूक देने वाले के दोनों ओष्ठों को कटवा डालना चाहिये। ब्राह्मण के ऊपर अपान वायु तथा मूत्र का विसर्जन करने वाले की गुदा और लिङ्ग को काट देना चाहिये। (अपने से ऊँचे व्यक्ति के सामने) उत्कृष्ट आसन पर बैठे हुए नीच व्यक्ति का अधोभाग कटवा देना चाहिये। जो जिस अंग से पीडा पहुँचाये उसका वही अंग काट देना चाहिये। गाय, हाथी, घोड़ा तथा ऊँट की हत्या करने वाले का आधा पैर और आधा हाथ कटवा देना चाहिये। सामान्य वृक्ष को काटने वाला एक सुवर्ण दण्ड का भागी होता है।३०-३२।

द्विगुणं दापयेच्छिन्ने पथि सीम्नि जलाशये ।
द्रव्याणि यो हरेद्यस्य ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ॥३३

स तस्योत्पाद्य तुष्टिं तु राज्ञे दद्यात्ततो दमम् ।
यस्तु रज्जुं घटं कूपाद्धरेच्छिन्द्याच्च तां प्रपाम् ॥३४
स दण्डं प्राप्नुयान्मासं दण्ड्यः स्यात्प्राणिताडने ।
धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्यो हरतोऽभ्यधिकं वधः ॥३५

मार्ग, सीमा तथा जलाशय के वृक्ष को काटने वाले को इसका दुगुना दण्ड देना चाहिए। जो जाने-अनजाने दूसरों के द्रव्यों का अपहरण करता है, उसे द्रव्य के स्वामी को सन्तुष्ट करके राजा को दण्ड देना चाहिये। कुयें से रस्सी तथा घड़ा चुराने वाला और प्याऊ को तोड़ने वाला एक मास दण्ड का भागी हुआ करता है। प्राणियों को पीटने वाला भी दण्डनीय हुआ करता है। दश घड़ों से अधिक अन्न चुराने वाले का वध कर देना चाहिए।३३-३५।

शेषेऽप्येकादशगुणं तस्य दण्डं प्रकल्पयेत् ।
सुवर्णरजतादीनां नृस्त्रीणां हरणे वधः ॥३६
येन येन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते ।
तत्तदेव हरेदस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः ॥३७
ब्राह्मणः शाकधान्यादि ह्यल्पं गृह्णन्न दोषभाक् ।
गोदेवार्थं हरंश्चापि हन्याद्दुष्टं वधोद्यतम् ॥३८

(यदि वध न किया जाय तो) जितना अन्न चुराया गया है, उससे ग्यारह गुना अधिक अन्न दण्ड देना चाहिये। सोना, चाँदी, पुरुष, स्त्री आदि का अपहरण करने वाला भी वध्य हुआ करता है। चोर जिस अङ्ग से मनुष्यों का अपकार किया करता है उसके उसी अङ्ग को काट देना चाहिये। ब्राह्मण यदि थोड़ा-सा शाक धान्य आदि चुरा ले तो वह दोष का भागी नहीं हुआ करता है। गौ तथा देवता के लिये थोड़ी सी चोरी करने से दोष नहीं लगता है। वध करने के लिये उद्यत दुष्ट (ही) का वध करवा देना चाहिए।३६-३८।

गृहक्षेत्रापहर्तारं तथा पत्न्यभिगामिनम् ।
अग्निदं गरदं हन्यात्तथा चाभ्युद्यतायुधम् ॥३९
राजा गवाभिचारेभ्यो हन्याच्चैवाऽऽततायिनः ।
परस्त्रियं न भाषेत प्रतिषिद्धो विशेन्न हि ॥४०

अदण्ड्यास्त्री भवेद्राज्ञा वरयन्ती पतिं स्वयम् ।
उत्तमां सेवमानः स्त्रीं जघन्यो वधमर्हति ॥४१

राजा को घर तथा खेत का अपहरण करने वाले, परस्त्रीगमन करने वाले, आग लगाने वाले, विष देने वाले, किसी को मारने के लिए अस्त्र उठाने वाले तथा गोहत्या करने वाले आततायियों को मरवा डालना चाहिये । मना किये जाने पर परस्त्री से न तो बातचीत करना चाहिये और न सहवास करना चाहिये । अपनी इच्छा से पति का वरण करने वाली स्त्री दण्ड की भागी नहीं होती है, किन्तु अपने से उत्तम (कुल की) स्त्री से सम्भोग करने वाला पापी वध के योग्य हुआ करता है ।३९-४१।

भर्तारं लङ्घयेद्यातां श्वभिः संघातयेत्स्त्रियम् ।
सवर्णादूषितां कुर्यात्पिण्डमात्रोपजीविनीम् ॥४२
ज्यायसा दूषिता नारी मुण्डनं समवाप्नुयात् ।
वैश्यागमे तु विप्रस्य क्षत्रियस्यान्त्यजागमे ॥४३
क्षत्रियः प्रथमं वैश्यो दण्ड्यः शूद्रागमो भवेत् ।
गृहीत्वा वेतनं वेश्या लोभादन्यत्र गच्छति ॥४४
वेतनं द्विगुणं दद्याद्दण्डं च द्विगुणं तथा ॥४४½

जो स्त्री अपने पति का उल्लंघन करती है, उसे कुत्तों से कटवा डालना चाहिये । समान वर्ण के पुरुष के द्वारा दूषित की गयी स्त्री को पिण्ड मात्र भोजन पर जीवन यापन करने का दण्ड देना चाहिये । उत्तम वर्ण के पुरुष से दूषित स्त्री के केश कटवा देना चाहिये । वैश्य कुल की स्त्री के साथ समागम करने वाले ब्राह्मण, शूद्रा के साथ समागम करने वाले क्षत्रिय के लिए भी यही दण्ड है । शूद्रा के साथ व्यभिचार करने वाले क्षत्रिय और वैश्य के ऊपर ढाई सौ पण दण्ड करना चाहिये । एक से वेतन लेकर लोभवश दूसरे के पास जाने वाली वेश्या को (वेतन से) दुगुना दण्ड देना चाहिए ।४२-४४½।

भार्या पुत्राश्च दासाश्च शिष्यो भ्राता च सोदरः ॥४५
कृतापराधास्ताड्याः स्युः रज्ज्वा वेणुदलेन वा ।
पृष्ठेन मस्तके हन्याच्चौ(च्चो)रस्याप्नोति किल्बिषम् ॥४६

रक्षार्थाधिकृतैर्यैस्तु प्रजाभ्योऽर्थो विलुप्यते ।
तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात्प्रवासनम् ॥४७
([1] ये नियुक्ता स्वकार्येषु हन्युः कार्याणि कर्मिणाम् ।
निर्घृणाः क्रूरमनसस्तान्निःस्वान्कारयेन्नृपः ॥४८

भार्या, पुत्र, दास, शिष्य, भ्राता तथा सहोदर भाई यदि अपराध करे तो उसे रस्सी या बाँस के फट्टे से पीटना चाहिये परन्तु चाहे चोर ही क्यों न हो पीठ पर (ही) पीटना चाहिये शिर पर नहीं क्योंकि ऐसा करने वाला पाप का भागी होता है। प्रजा की रक्षा के निमित्त नियुक्त किये गये अधिकारियों के द्वारा प्रजा के धन का अपहरण कर लिये जाने पर उनका सबकुछ छीनकर उन्हें देश से निकाल देना चाहिये। किसी कार्य को करने के लिये नियुक्त किये गये मनुष्य यदि उस कार्य को न करके लोगों से घृणा और दुष्टता करने लगें तो राजा को चाहिये कि इन्हें धनहीन कर दे।४५-४८।

अमात्यः प्राड्विवाको वा यः कुर्यात्कार्यमन्यथा ।
तस्य सर्वस्वमादाय तं राजा विप्रवासयेत्) ॥४९
गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः ।
स्तेयेषु श्वपदं विद्याद्ब्रह्महत्या (घाते) शिरः पुमान् ॥५०
शूद्रादीन्घातयेद्राजा पापान्विप्रान्प्रवासयेत् ।
महापातकिनां वित्तं वरुणायोपपादयेत् ॥५१

वह मन्त्री या प्राड्विवाक (न्यायाधीश) जो कार्य को बिगाड़ देता है उसका सर्वस्व छीनकर उसे निर्वासित कर देना चाहिये। गुरुपत्नीगामी के शरीर में योनि का चिह्न बना देना चाहिये, मद्यपान करने वाले के शरीर में मदिरालय की ध्वजा का, चोरी करने वाले की देह में कुत्ते के पैर का और ब्रह्महत्या करने वाले की देह में मनुष्य के शिर का चिह्न बनवा देना चाहिये। राजा को चाहिये कि वह पापकर्म करने वाले शूद्रों को मरवा डाले, ब्राह्मणों को देश से निकाल दे और महापापियों के धन को वरुण देवता की आराधना में लगा दे।४९-५१।

१ ये नियुक्ता…… विप्रवासयेत् च पुस्तके नास्ति ।

ग्रामेष्वपि च ये केचिच्चौराणां भक्तदायकाः ।
भाण्डारकोषदाश्चैव सर्वास्तानपि घातयेत् ॥५२
राष्ट्रेषु राष्ट्राधिकृतान्सामन्तान्पापिनो हरेत् ।
संधिं कृत्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्वन्ति तस्कराः ॥५३
तेषां छित्त्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णे शूले निवेशयेत् ।
तडागदेवतागारभेदकान्घातयेन्नृपः ॥५४

ग्रामों में भी जो लोग चोरों की सहायता करते हैं या उन्हें भाण्डार तथा कोश (आदि) देते हैं, उन सबको भी मरवा डालना चाहिये। राज्याधिकारी तथा सामन्त आदि यदि पापकर्म करें तो उनका भी सर्वस्व छीन लेना चाहिये। जो चोर रात्रि में सेंध काटकर चोरी करते हैं, उनके दोनों हाथों को कटवा कर उन्हें शूली पर चढ़ा देना चाहिये। राजा को चाहिये कि तालाब और देवालय तोड़ने वालों को मृत्यु-दण्ड दे ।५२-५४।

समुत्सृजेद्राजमार्गे यस्त्वमेध्यमनापदि ।
स हि कार्षापणं दण्ड्यस्तममेध्यं च शोधयेत् ॥५५
प्रतिमासंक्रमभिदो दद्युः पञ्चशतानि ते ।
समैश्च विषमं यो वा चरते मूल्यतोऽपि वा ॥५६
समाप्नुयान्नर पूर्वं दमं मध्यममेव वा ।
द्रव्यमादाय वणिजामनर्घेणावरुन्धताम् ॥५७

जो बिना आपत्तिकाल के राजमार्ग में अपवित्र वस्तु डालता है, उसे एक कार्षापण दण्ड देकर उसी से अपवित्र वस्तु की शुद्धि करवानी चाहिये। प्रतिमा तथा पुल (आदि) को भङ्ग करने वाले पर पाँच सौ कार्षापण दण्ड करना चाहिये। ईमानदार लोगों के साथ वस्तु के गुण या मूल्य को अधिक बतलाकर व्यापार करने वालों के ऊपर ढाई सौ या पाँच सौ दण्ड करना चाहिये और (उन) व्यापारियों के द्रव्य को लेकर बिना मूल्य के ही अपने अधिकार में कर लेना चाहिये ।५५-५७।

राजा पृथक्पृथक्कुर्याद्दण्डमुत्तमसाहसम् ।
द्रव्याणां दूषको यश्च प्रतिच्छन्दकविक्रयी ॥५८

मध्यमं प्राप्नुयाद्दण्डं कूटकर्ता तथोत्तमम् ।
कलहापकृतं देयं दण्डश्च द्विगुणस्ततः ।।५६
अभक्ष्यभक्ष्ये विप्रे वा शूद्रे वा कृष्णलो दमः ।
तुलाशासनकर्ता च कूटकृन्नाशकस्य च ।।६०
एभिश्च व्यवहर्ता यः स दण्ड्यो दममुत्तमम् ।।६०½

राजा को (अलग-अलग अपराधों के लिये) पृथक् पृथक् साहस अथवा उत्तम दण्ड देना चाहिये। जो (व्यापारिक दृष्टि से भाव घटाने या बढ़ाने के लिए) चीजों को बिगाड़ देता है या उनकी नकल करता है उसे पाँच सौ पण का दण्ड देना चाहिये। लोगों के साथ छल करने वाले के ऊपर एक सहस्र पण का दण्ड देना चाहिये। झगड़ा करके अपकार करने वाले के ऊपर दुगुना (दो हजार पण) दण्ड होना चाहिये। अभक्ष्य का भक्षण करने वाले ब्राह्मण या शूद्र के ऊपर एक कृष्णल दण्ड करना चाहिये। धूर्त व्यापारी, ठगने वाले तथा हत्या करने वाले के साथ जो व्यवहार करता है, उसे एक उत्तम (सहस्र पण) दण्ड देना चाहिये ।५८-६०½।

विषाग्निदां पतिगुरुविप्रापत्यप्रमापिणीम्[1] ।।६१
विकर्णकरनासौष्ठीं कृत्वा गोभिः प्रवासयेत् ।
क्षेत्रवेश्मग्रामवनविदारकास्तथा नराः ।६२
राजपत्न्यभिगामी च दग्धव्यास्तु कटाग्निना ।
ऊनं वाऽप्यधिकं वाऽपि लिखेद्यो राजशासनम् ।।६३
पारजायिकचौरौ च मुञ्चतो दण्ड उत्तमः ।
राजयानासनारोढुर्दण्ड उत्तम साहसः ।।६४

जो स्त्री किसी को विष दे या अग्नि दे या पति, गुरु, सन्तान तथा ब्राह्मण की हत्या करे, उसके कान, नाक, ओष्ठ और हाथ काटकर देश से निकाल देना चाहिये। राजाज्ञा को घटा बढ़ा कर लिखने वाले तथा लम्पट और चोर को (बिना दण्ड दिये हुये) छोड़ देने वाले के ऊपर एक सहस्र पण दण्ड करना चाहिये। राजा के आसन तथा उसकी सवारी पर बैठने वाला उत्तम साहस (एक हजार पण) के दण्ड का भागी हुआ करता है ।६१-६४।

---

१ क. ङ. °माथिनीम् ।

योमन्येताजितोऽस्मीति न्यायेनापि पराजित:।
तमायान्तं[1] पुनर्जित्वा दण्डयेद्द्विगुणं दमम् ॥६५
आह्वानकारी वध्य: स्यादनाहूतमथाऽऽह्वयन्।
दाण्डिकस्य च यो हस्तादभिमुक्त: पलायते ॥६६
हीन: पुरुषकारेण तं दण्ड्याद्दाण्डिको धनम् ॥६७

जो न्यायत: पराजित हो जाने पर अपनी हार न माने, उसके पराजय की घोषणा करके दुगुना (दो हजार पण) दण्ड देना चाहिये। लड़ाई न चाहने वाले को ललकारने वाले को मृत्युदण्ड देना चाहिये। यदि (कोई अपराधी) दण्ड देने वाले के हाथ से निकल जाये तो उस दण्ड देने वाले को शक्ति से हीन समझना चाहिए और उसके ऊपर धन का दण्ड करना चाहिये।६५-६७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दण्डप्रणयनकथनं नाम सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्याय:।२२७

अथाष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्याय:

युद्धयात्रा

पुष्कर उवाच—

यदा मन्येत नृपतिराक्रन्देन बलीयसा।
पार्ष्णिग्राहोऽभिभूतो मे तदा यात्रां प्रयोजयेत् ॥१

पुष्कर बोले—राजा को युद्ध-यात्रा तब करनी चाहिये जब वह यह समझे कि मेरा मित्र बलवती सेना के द्वारा हार चुका है।१

पुष्टा योधा भृता भृत्या: प्रभूतं च बलं मम।
मूलरक्षासमर्थोऽस्मि तैर्वृत्वा शिविरे व्रजेत् ॥२

१ घ. न्तं पराजित्य द°।

(राजा को यह विचार करना चाहिये कि) 'मेरे योद्धा हृष्ट-पुष्ट, हैं सेवकों का (भलीभाँति) भरण पोषण किया गया है, मेरे पास बहुत सा सैन्य-दल है, अतएव मैं अपनी निधि की रक्षा करने में समर्थ हूँ।' तदनन्तर इस प्रकार के योद्धाओं, सेवकों और सेना से घिरकर उसे शिविर में प्रवेश करना चाहिये ।२

शत्रोर्वा व्यसने यायाद्दैवाद्यैः पीडितं परम्[1] ।
भूकम्पो यां दिशं याति यां च केतुर्व्यदूषयत् ॥३
विद्विष्टनाशकं सैन्यं संभूतान्तः प्रकोपनम् ।
शरीरस्फुरणे धन्ये तथा सुस्वप्नदर्शने ॥४
निमित्ते शकुने धन्ये जाते शत्रुपुरं व्रजेत् ।
पदातिनागबहुलां सेनां प्रावृषि योजयेत् ॥५

(युद्ध के लिये) तभी जाना चाहिये जब शत्रु दुर्व्यसन में फँसा हो या दैव आदि (के प्रकोप) से पीड़ित हो। जिस दिशा में भूकम्प हुआ हो तथा पुच्छल तारा दिखाई पड़ा हो उसी दिशा में यात्रा करनी चाहिये। जब शत्रु को नष्ट करने के लिये सैन्य पर्याप्त हो, उसके ऊपर बड़ा क्रोध आ रहा हो, शरीर में शुभ स्फुरण हो रहा हो, सुन्दर स्वप्न तथा मंगलकारी शकुन हो रहा हो, तब शत्रु के नगर की ओर यात्रा करनी चाहिये ।३-५।

हेमन्ते शिशिरे चैव रथवाजिसमाकुलाम् ।
चतुरङ्गबलोपेतां वसन्ते वा शरन्मुखे ॥६
सेना पदातिबहुला शत्रूञ्जयति सर्वदा ।
अङ्गदक्षिणभागे तु शस्त्रं प्रस्फुरणं भवेत् ॥७

वर्षा ऋतु में (सेना में) पदातियों तथा हाथियों की अधिकता होनी चाहिये। हेमन्त तथा शिशिर ऋतु में (सेना में) रथों और घोड़ों की बहुलता होनी चाहिये। वसन्त अथव शरद् में चतुरङ्गणी (हाथी, गोड़े, रथ, पदाति से युक्त) सेना की प्रचुरता होनी चाहिये। जिसमें पैदल सेना की अधिकता हो वह (सेना) सदैव शत्रुओं के ऊपर विजय प्राप्त कर लेती है। (पुरुष के) अङ्ग के दाहिने भाग का फड़कना शुभ हुआ करता है ।६-७।

---

१ ख. पुरम् ।

न शस्तं तु तथा वामे पृष्ठस्य हृदयस्य च ।
लाञ्छनं पिटकं चैव विज्ञेयं स्फुरणं तथा ।।
विपर्ययेणाभिहितं सव्ये स्त्रीणां शुभं भवेत् ।।८

वाम भाग का फड़कना अशुभ का सूचक हुआ करता है। इसी प्रकार पीठ तथा हृदय के ऊपर तिल का होना तथा फड़कना (भी) अशुभ हुआ करता है। इसके विपरीत स्त्रियों के वाम भाग का फड़कना ही शुभ हुआ करता है।८

इत्यादिमहापुराण आग्नेये युद्धयात्रावर्णनं नामाष्टाविंशत्यधिक-द्विशततमोऽध्यायः।२२८

अथैकोनत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

स्वप्नशुभाशुभदुःस्वप्नहरणकथनम्

पुष्कर उवाच—

स्वप्नं शुभाशुभं वक्ष्ये दुःस्वप्नहरणं तथा ।
नाभिं विनाऽन्यत्र गात्रे तृणवृक्षसमुद्भवः ।।१

पुष्कर बोले—अब मैं शुभाशुभ का विवेचन करूँगा तथा दुःस्वप्न का उपाय भी बतलाऊँगा। नाभि को छोड़कर तृण और वृक्षों का उगना अशुभ-सूचक है।१

चूर्णनं मूर्ध्नि कांस्यानां मुण्डनं नग्नता तथा ।
मलिनाम्बरधारित्वमभ्यङ्गः पङ्कदिग्धता ।।२
उच्चात्प्रपतनं चैव विवाहो गीतमेव च ।
तन्त्रीवाद्यविनोदश्च दोलारोहणमेव च ।।३
अर्जनं पद्मलोहानां सर्पाणामथ मारणम् ।
रक्तपुष्पद्रुमाणां च चण्डालस्य तथैव च ।।४

वराहश्वखरोष्ट्राणां तथा चाऽऽरोहणक्रिया ।
भक्षणं पक्षिमांसानां तैलस्य कृशरस्य च ॥५
मातुः प्रवेशो जठरे चितारोहणमेव च ।
शक्रध्वजाभिपतनं पतनं शशिसूर्ययोः ॥६

मस्तक पर कांस्यपात्रों का टूटना, मुण्डन कराना, नग्न होना, मलिन वस्त्र पहिनना, शरीर में उबटन लगाना, कीचड़ में फँसना, ऊँचाई से गिरना, विवाह देखना या करना, गीत गाना या सुनना, वीणा बजाना, विनोद करना, झूले पर चढ़ना, कमल तथा लोहा प्राप्त करना, साँपों को मारना, लाल पुष्पों के वृक्षों को देखना, चाण्डाल को देखना, शूकर, कुत्ते, गधे तथा ऊँट पर सवारी करना, पक्षियों का मांस, तेल तथा खिचड़ी खाना, माता के उदर में प्रवेश करना, चिता पर चढ़ना, इन्द्रध्वज और सूर्य-चन्द्र का गिरना (स्वप्न अशुभसूचक है) ।२-६।

दिव्यान्तरिक्षभौमानामुत्पातानां च दर्शनम् ।
देवद्विजातिभूपानां[1] गुरूणां कोष एव च ॥७
नर्तनं हसनं चैव विवाहो गीतमेव च ।
तन्त्रीवाद्यविहीनानां वाद्यानामपि वादनम् ॥८
स्रोतोवहाधोगमनं स्नानं गोमयवारिणा ।
पङ्कोदकेन च तथा मशी (षी) तोयेन वाऽप्यथ ॥९
आलिङ्गनं कुमारीणां[2] पुरुषाणां च मैथुनम् ।
हानिश्चैव स्वगात्राणां विरेको वमनक्रिया ॥१०
दक्षिणाशाप्रगमनं व्याधिनाऽभिभवस्तथा ।
फलानामुपहानिश्च धातूनां भेदनं तथा ॥११
गृहाणां चैव पतनं गृहसंमार्जनं तथा ।
क्रीडा पिशाचक्रव्यादवानरान्त्यनरैरपि ॥१२
परादभिभवश्चैव तस्माच्च व्यसनोद्भवः ।
काषायवस्त्रधारित्वं तद्वस्त्रैः क्रीडनं तथा ॥१३
स्नेहपानावगाही च रक्तमाल्यानुलेपनम् ।
इत्यधन्यानि स्वप्नानि तेषामकथनं शुभम् ॥१४

---

१ ख. ग. छ. °भूतानां । २ च. °णां तासामेव च ।

आकाश, अन्तरिक्ष और पृथ्वी पर उत्पातों को देखना, देवता तथा ब्राह्मण, राजा तथा गुरु का क्रोध, नृत्य तथा हास्य करना या देखना, संगीत्त सुनना या गाना, तन्त्रीवाद्यों से रहित अन्य वाजों का वजाना, नीचे की ओर वहती हुई जलधारा को देखना, गोवर या पङ्क या स्याही मिले हुए जल से स्नान करना, कुमारियों का आलिङ्गन करना, पुरुषों के साथ मैथुन करना, अपने अङ्गों की हानि देखना, विरेचन या वमन होना, दक्षिण दिशा में यात्रा करना, रोगग्रस्त होना, फलों की वर्वादी देखना, धातुओं में छिद्र देखना, ग्रहों का पतन देखना, घर में झाड़ू देना, पिशाच, राक्षस, वानर तथा चाण्डालों के साथ क्रीडा करना, शत्रु से पराजित होना, दुर्व्यसन में फँसना, कषाय वस्त्र धारण करना, कषाय वस्त्रों से खेल करना, तेल पीना या उससे स्नान करना, रक्तमाला पहनना, रक्त चन्दन लगाना—ये सब अशुभ स्वप्न हैं। इनका न कहना ही शुभ हुआ करता है।७-१४।

(१भूयश्च स्वपनं तद्वत्कार्यं स्नानं द्विजार्चनं।
तिलैर्होमो हरिब्रह्मशिवार्कगणपूजनम्॥१५
तथा स्तुतिप्रपठनं पुंसूक्तादिजपस्तथा।
स्वप्नास्तु प्रथमे यामे संवत्सरविपाकिनः॥१६
षड्भिर्मासैर्द्वितीये तु त्रिभिर्मासैस्त्रियामिकाः।
चतुर्थे त्वर्धमासेन दशाहादरुणोदये॥१७
एकस्यामथ चेद्रात्रौ शुभं वा यदि वाऽशुभम्।
पश्चाद्दृष्टस्तु यस्तत्र तस्य पाकं विनिर्दिशेत्॥१८

इनका न कहना ही शुभ हुआ करता है। इनके देखने पर पुनः सो जाना चाहिये। पश्चात् स्नान, द्विजपूजन, तिल से हवन, विष्णु, ब्रह्मा, शिव, सूर्य तथा गणपति की पूजा, स्तुतिपाठ तथा पुरुषसूक्त आदि का जप करना चाहिये। रात्रि के पहले प्रहर में स्वप्न देखने से उसका फल एक वर्ष में मिलता है, दूसरे पहर में स्वप्न देखने से छह मास में, तीसरे पहर में स्वप्न देखने से तीन मास में, चौथे पहर में स्वप्न देखने से पन्द्रह दिनों में और अरुणोदय काल में स्वप्न देखने से उसका फल दस दिनों में मिल जाता है। एक ही रात्रि में यदि अच्छा बुरा दोनों प्रकार का स्वप्न दिखाई पड़े तो जो स्वप्न पीछे दिखाई देता है उसी के अनुसार फल मिलता है।१५-१८

१ भूयश्च.........वाऽशुभम् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

तस्मात्तु शोभने स्वप्ने पश्चात्स्वापो न शस्यते ।
शैलप्रासादनागाश्ववृषभारोहणं हितम् ॥१९
द्रुमाणां श्वेतपुष्पाणां गगने च यथा द्विज ।
द्रुमतृणोद्भवो नाभौ तथा च वहुबाहुता ॥२०
तथा च वहुशीर्षत्वं पलितोद्भव एव च ।
सुशुक्लमाल्यधारित्वं सुशुक्लाम्वरधारिता ॥२१
चन्द्रार्कताराग्रहणं परिमार्जनमेव च ।
शक्रध्वजालिङ्गनं च ध्वजोच्छ्राय क्रिया तथा ॥२२
भूम्यम्बुधाराग्रहणं शत्रूणां चैव विक्रिया ।
जयो विवादे द्यूते च संग्रामे च तथा द्विज ॥२३

अतः सुन्दर स्वप्न दिखाई पड़ने पर वाद में सोना नहीं चाहिये । स्वप्न में पर्वत, प्रासाद, हाथी, घोड़ा तथा बैल पर चढ़ना शुभ हुआ करता है । आकाश में श्वेत पुष्प तथा वृक्षों का देखना, नाभि में तृण वृक्षों का उत्पन्न होना, अनेक भुजाओं तथा शिरों का होना, वाल पकना, शुक्लमाला धारण करना, शुक्ल वस्त्र पहनना, सूर्य चन्द्रमा तथा ताराओं को पकड़ना तथा परिमार्जन करना, इन्द्रध्वज का आलिङ्गन करना, ध्वजा फहराना, पृथ्वी पर जलधारा को पकड़ना (रोकना), शत्रुओं को परास्त करना, विवाद, द्यूत तथा संग्राम में विजय प्राप्त करना शुभसूचक स्वप्न है ।१९-२३।

भक्षणं चाऽऽर्द्रमांसानां पायसस्य च भक्षणम् ।
दर्शनं रुधिरस्यापि स्नानं वा रुधिरेण च ॥२४
सुरारुधिरमद्यानां पानं क्षीरस्य वाऽप्यथ ।
अस्त्रैर्विचेष्टनं भूमौ निर्मलं गगनं तथा ।२५
मुखेन दोहनं शस्तं महिषीणां तथा गवाम् ।
सिंहीनां हस्तिनीनां च वडवानां तथैव च ॥२६
[1]प्रसादो देवविप्रेभ्यो गुरुभ्यश्च तथा द्विज ।
अम्भसा चाभिषेकस्तु गवां शृङ्गच्युतेन च ॥२७
[2]चन्द्राद्भ्रष्टेन वा राम ज्ञेयं राज्यप्रदं हि तत् ।
राज्याभिषेकश्च तथा छेदनं शिरसोऽप्यथ ॥२८
[3]मरणं वह्निलाभश्च वह्निदाहो गृहादिषु ।
लब्धिश्च राजलिङ्गानां तन्त्रीवाद्याभिवादनम् ॥२९

१ क. ङ प्रासादे । २ क. ङ. चन्द्रदृष्टे० । ३ ङ. णं च हि लोभं ।

यस्तु पश्यति स्वप्नान्ते राजानं कुञ्जरं हयम् ।
हिरण्यं वृषभं गां च 'कुटुम्वस्तस्य वर्धते ॥३०
वृषेभगृहशैलाग्रवृक्षारोहणरोदनम् ।
घृतविष्ठानुलेपो वा अगम्यागमनं तथा ॥३१

ताजा मांस खाना, खीर खाना, शोणित देखना या शोणित से नहाना, सुरा, रुधिर, दूध और मद्यपान करना पृथ्वी पर अस्त्र चलाना, निर्मल आकाश देखना, गाय, भैस, शेरनी, हस्तिनी तथा घोड़ी को मुँह से दुहना, देव, ब्राह्मण तथा गुरु को प्रसन्न देखना, गौ के सींग या चन्द्रमा से गिरते हुये जल से अभिषेक करना, राज्याभिषेक तथा शिरश्छेदन देखना, मृत्यु, अग्नि-प्रवेश, गृहादि में अग्निदाह तथा राजा के छत्र, चामर आदि चिह्नों को देखना और वीणा वजाकर किसी को अभिवादन करते हुए देखना शुभ माना गया है। चन्द्रमा से गिरे हुए जल से अभिषेक देखने से राज्य की प्राप्ति होती है। स्वप्नान्त में राजा, हाथी, घोड़ा, सोना, वैल तथा गाय को देखने वाले का परिवार बढ़ता है। वैल, हाथी, घर, पर्वत की चोटी तथा वृक्ष पर चढ़ना, रोना, घी, अथवा विष्ठा का लेप लगाना और अगम्या-गमन करना शुभ हुआ करता है।२४-३१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये स्वप्नशुभाशुभदुःस्वप्नहरणकथनं नामैकोनत्रिशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२२९

अथ त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

शकुनानि

पुष्कर उवाच—
सितवस्त्रं प्रसन्नाम्भः फलीवृक्षो नभोऽमलम् ।
औषधानि च युक्तानि धान्यं कृष्णमशोभनम् ॥१
कार्पासं तृणशुष्कं च गोमयं वै धनानि च ।
अङ्गारं 'गृहसर्जौ च मुण्डाभ्यक्तं च नग्नकम् ॥२

पुष्कर बोले—श्वेत वस्त्र, निर्मल जल, फल से युक्त वृक्ष, निर्मल आकाश,

१ क. ङ. °टुम्वं तस्य। २ क. ङ. गुडसर्जौ। घ. गुडसर्पौ।

तथा ओषधियाँ—ये शुभ शकुन हैं। कंपास, सूखा तृण, गोबर, धन, अंगार, गुड़, शालवृक्ष, मुण्डित, तेल लगाये या नंगा मनुष्य का देखना अशोभनीय होता है।१-२।

अयः पङ्कं चर्मकेशावुन्मत्तं च नपुंसकम्।
चण्डालश्वपचाद्याश्च नरा बन्धनपालका:[1]॥३
गर्भिणी स्त्री च विधवाः पिण्याकादीनि वै मृतम्।
तुषभस्मकपालास्थिभिन्नभाण्डमशस्तकम्॥४
अशस्तो वाद्यशब्दश्च भिन्नभैरवझर्झरः[2]।
एहीति पुरतः शब्दः शस्यते न तु पृष्ठतः॥५

लोहा, कीचड़, चमड़ा, केश, उन्मत्त, नपुंसक, चाण्डाल आदि कारागार के रक्षक, गर्भिणी स्त्री, विधवा स्त्री, शव, भूसी, भस्म, कपाल, हड्डी, फूटे बर्तन, खली। इनका देखना अशुभ हुआ करता है। भैरवझल्लरी को छोड़कर (अन्य) बाजों का शब्द—अपशकुन हुआ करता है। 'आइये-आइये' शब्द सामने से सुनाई पड़ना अच्छा है परन्तु पीछे से सुनाई पड़ना अशुभ है।३-५।

गच्छेति पश्चाच्छब्दोऽग्र्यः पुरस्तात्तु विगर्हितः।
क्व यासि तिष्ठ मा गच्छ किं ते तत्र गतस्य च॥६
अनिष्टशब्दा[3] मृत्यर्थं क्रव्यादश्च ध्वजादिगः।
स्खलनं वाहनानां च[4] शस्त्रभङ्गस्तथैव च॥७
शिरोघातश्च हाराद्यैश्छत्रवासादिपातनम्।
हरिमभ्यर्च्य संस्तुत्य स्यादमङ्गल्यनाशनम्॥८

'कहाँ जा रहे हैं', 'खड़े रहिये', 'मत जाइये', 'वहाँ आपके जाने से क्या लाभ'—इस प्रकार के शब्द अनिष्ट और जाने वाले की मृत्यु का सूचक हुआ करते हैं। मांसभक्षी पक्षियों का ध्वजा के ऊपर गिरना, वाहन का लड़खड़ाना, शस्त्रभङ्ग शिर में चोट लगना, हार आदि के साथ छाते और वस्त्र आदि का गिरना—ये सब अपशकुन हैं और इनके अमंगल का नाश भगवान् विष्णु की पूजा और स्तुति से हुआ करता है।६-८।

द्वितीयं तु ततो दृष्ट्वा विरुद्धं प्रविशेद्गृहम्।
श्वेताः सुमनसः श्रेष्ठाः पूर्णकुम्भो महोत्तमः॥९

---

१ क. ख. ग. ङ. च. वधकाः। २ घ. °वभुर्भुरः।३ ङ मृ पूर्वं।
४ ख. ग. च. च वस्त्र॑।

मांसं मत्स्या दूरशब्दा वृद्ध एकः पशुस्त्वजः ।
गावस्तुरङ्गमा नागा देवाश्च ज्वलितोऽनलः ॥१०
[1]दूर्वाऽऽर्द्रगोमयं वेश्या स्वर्ण रूप्यं च रत्नकम् ।
वचासिद्धार्थकौषध्यो [2]मुद्ग आयुधखड्गकम् ॥११
छत्रं पीठं राजलिंगं शवं रुदितवर्जितम् ।
फलं घृतं दधि पयो अ (ह्य) क्षतादर्शमाक्षिकम् ॥१२
शङ्ख इक्षुः शुभं वाक्यं भक्तवादित्रगीतकम् ।
गम्भीरमेघस्तनितं तडित्तुष्टिश्च मानसी ॥
एकतः सर्वलिङ्गानि मनसस्तुष्टिरेकतः ॥१३

दूसरा उपाय यह है कि इस प्रकार के विरुद्ध शकुन को देखकर घर लौट जाय । श्वेत पुष्प श्रेष्ठ हुआ करते हैं, पूर्ण कुम्भ अत्यन्त शुभ है, मांस, मछली, दूर का शब्द, एक वृद्ध, बकरा, गायें, घोड़ें, हाथी, देवप्रतिमायें, प्रज्वलित अग्नि, दूर्वा, ताजा गोबर, वेश्या, सोना, चाँदी, रत्न, वच तथा सिद्धार्थ (श्वेत सरसों) आदि ओषधियाँ, मूँग, तलवार आदि अस्त्र, छत्र, आसन, राजा का चिह्न, रोदनवर्जित शव, फल, घी, दही, जल, अक्षत, दर्पण, मधु, शंख, ईख, शुभवाक्य, स्वामिभक्त, बाजा बजाने वालों का गीत, गम्भीर मेघगर्जन, विद्युत् और मानसिक प्रसन्नता—ये सब शुभ शकुन हुआ करते हैं । एक मानसिक प्रसन्नता ही (सभी) शकुनों से बढ़कर है ।९-१३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शकुनवर्णनं नाम त्रिशदधिक-द्विशततमोऽध्यायः ।२३०

अथैकत्रिशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

शकुनानि

पुष्कर उवाच—

तिष्ठतो गमने प्रश्ने पुरुषस्य शुभाशुभम् ।
निवेदयन्ति शकुना देशस्य नगरस्य च ॥१
सर्वः पापफलोदीप्तो निर्दिष्टो दैवचिन्तकैः ।
शान्तः शुभफलश्चैव दैवज्ञैः समुदाहृतः ॥२

---

१ ग. °र्वाऽऽर्द्रा गो° । २ क. ङ. मूद ।

षट्प्रकारा विनिर्दिष्टाः शकुनानां च दीप्तयः ।
वेलादिग्देशकरणरुतजातिविभेदतः ॥३

पुष्कर बोले—देश तथा नगर में रहने वाले अथवा वहाँ से जाने वाले पुरुष का शुभाशुभ पक्षी बतला दिया करते हैं। दैवज्ञों ने पक्षियों के उच्च स्वर को पापफल वाला और धीमे स्वर को शुभफल वाला कहा है। समय, दिशा, देश, करण, रुत (शब्द) तथा (पक्षियों की) जाति के भेद से पक्षियों का स्वर छह प्रकार का हुआ करता है।१-३।

पूर्वापूर्वा च विज्ञेया सा तेषां बलवत्तरा ।
दिवाचरो रात्रिचरस्तथा रात्रौ (त्रि) दिवाचरः ॥४
क्रूरेषु दीप्ता विज्ञेया ऋक्षलग्नग्रहादिषु ।
धूमिता सा तु विज्ञेया यां गमिष्यति भास्करः ॥५

इनमें पूर्व-पूर्व का स्वर उत्तरोत्तर स्वर की अपेक्षा अधिक बलवान् हुआ करता है। दिन में दिखाई पड़ने वाला पक्षी यदि रात्रि में शब्द करे और रात्रि में दिखाई देने वाला दिन में शब्द करे तो यह समझना चाहिये कि वह क्रूर नक्षत्र, लग्न और ग्रह आदि से प्रभावित है। जिस दिशा में सूर्य जायेगा उसे धूमिता कहते हैं।४-५।

यस्यां स्थितः सा ज्वलिता मुक्ता चाङ्गारिणी मता ।
एतास्तिस्रः स्मृता दीप्ताः पञ्च शान्तास्तथाऽपराः ॥६
दीप्तायां दिशि दिग्दीप्तं शकुनं परिकीर्तितम् ।
ग्रामेऽरण्यावने ग्राम्यास्तथा निन्दितपादपः ॥७
देशे चैवाशु भेज्ञेयो देशदीप्तो द्विजोत्तम ।
क्रियादीप्तो विनिर्दिष्टः स्वजात्यनुचितक्रियः ॥८

जिसमें वह स्थित है उसे ज्वलिता कहते हैं और जिस दिशा को वह छोड़ आया है उसे अंगारिणी कहते हैं। इन तीन दिशाओं को दीप्त और शेष पाँच दिशाओं को शान्त कहते हैं। दीप्त दिशा में शब्द करने वाला पक्षी दिग्दीप्त कहलाता है। जहाँ गाँव में जंगली पशु हों तथा वन में ग्राम्य पशु हों, वह देश निन्दित है। इसी प्रकार जहाँ निन्दित वृक्ष हों वह भी अशुभ है। अये द्विजोत्तम ! अशुभ देश में शब्द करने वाला पक्षी भी

देश फल को प्राप्त करता है। अपने स्वभाव से अनुचित व्यवहार करने वाला पक्षी अशुभ क्रिया वाला कहलाता है।६-८।

रुतदीप्तश्च कथितो भिन्नभैरवनिःस्वनः।
जातिदीप्तस्तथा ज्ञेयः केवलं मांसभोजनः ॥९
दीप्ताच्छान्तो विनिर्दिष्टः सर्वैर्भेदैः प्रयत्नतः।
मिश्रं मिश्रो त्रिनिर्दिष्टस्तस्य वाच्यं फलाफलम् ॥१०
गोश्वोष्ट्रगर्दभश्वानः सारिका गृहगोधिका।
चटका भासकूर्माद्याः कथिता ग्रामवासिनः ॥११

भैरव शब्द करने वाला पक्षी अपने शब्द के कारण अशुभ माना जाता है। केवल मांस का आहार करने वाले पक्षी स्वभाव से अशुभ हुआ करते हैं। सभी प्रकार के भेदों से प्रयत्नपूर्वक उच्च ध्वनि (वाले पक्षी) से शान्त ध्वनि (वाले पक्षी) का निर्देश कर दिया गया है। अब उसके फलाफल को कहना है। गाय, घोड़ा, ऊँट, गधा, कुत्ता, मैना, छिपकली, गौरैया, भास (पक्षी-विशेष) तथा कछुये आदि ग्रामवासी जीव कहलाते हैं।९-११।

अजाविशुकनागेन्द्राः कोलो महिषवायसौ।
ग्राम्यारण्या विनिर्दिष्टाः सर्वेऽन्ये वनगोचराः ॥१२
मार्जारकुक्कुटौ ग्राम्यौ तौ चैव वनगोचरौ।
तयोर्भवति विज्ञानं नित्यं वै रूपभेदतः ॥१३

बकरी, भेंड़ा, तोता, हाथी, सूकर, महिष, कौआ—ये (जीव) ग्राम्य और आरण्य दोनों कहलाते हैं। (इनके अतिरिक्त) अन्य जीव वन्य हैं। बिलाड़ और मुर्गा ग्राम्य होते हुए वन में भी देखे जाते हैं। रूपभेद से उनकी पहचान का निश्चय हो जाता है।१२-१३।

गोकर्णशिखिचक्राह्वखरहारीतवायसाः।
कुलाहकुक्कुभश्येनफेरुखञ्जनवानराः ॥१४
शतघ्नचटकश्यामचास (ष) श्येनकपिञ्जलाः।
तित्तिरिः शतपत्रश्च कपोतश्च तथा त्रयः ॥१५
खञ्जरीटकदात्यूहशुकराजीवकुक्कुटाः।
भारद्वाजश्च सारङ्ग इति ज्ञेया दिवाचराः ॥१६

साँप, मयूर, चक्रवाक, गधा, हारिल, कौआ, कुलाह, जंगली मुर्गा, बाज,

गीदड़, खंजन, वन्दर, (मादा) विच्छू, गौरेया, श्यामा, नीलकण्ठ, चातक, कठफोड़वा, कवूतर, खंजन, जलकाक, तोता, सारस, कुक्कुट, भरदूलपक्षी और सारङ्ग—ये दिवाचर जीव हैं।१४-१६।

वागुर्युलूकशरभक्रौञ्चाः शशककच्छपाः।
लोमासिकाः पिङ्गलिकाः कथिता रात्रिगोचराः ॥१७

वागुरि, उलूक, शरभ, क्रौञ्च, शशक, कच्छप, शृगाली, पिंगरिक—ये रात्रिचर (जीव) हैं।१७।

हंसाश्च मृगमार्जारनकुलर्क्षभुजंगमाः।
वृकारिसिंहव्याघ्रोष्ट्रग्रामशूकरमानुषाः ॥१८
श्वाविद्वृषभगोमायुवृककोकिलसारसाः[1]।
तुरंगकौपीननरा (?) गोधा ह्युभयचारिणः ॥१९

हंस, मृग, विलाड़, नेवला, रीछ, सर्प, कुत्ता, सिंह, वाघ, ऊँट, ग्राम्य-शूकर, मनुष्य, साही, बैल, गीदड़, भेड़िया, कोयल, सारस, घोड़ा, पीननर और गोह—ये उभयचर हैं।१८-१९।

[2]वलप्रस्थानयोः सर्वे पुरस्तात्संघचारिणः।
जयावहा विनिर्दिष्टाः पश्चान्निधनकारिणः ॥२०
गृहाद्गम्य यदा चासो (षो)[3] व्याहरन्पुरतः स्थितः।
नृपावमानं वदति वामः कलहभोजने ॥२१

रण में या यात्राकाल में यदि ये उपर्युक्त जीव आगे झुण्ड वनाकर निकलते हुए दिखाई दें तो विजय प्राप्त होती है और यदि पीछे से निकलते दिखाई पडें तो (मृत्यु) क्षति करने वाला हुआ करते हैं। घर से निकलते ही यदि सामने वोलता हुआ नीलकण्ठ दिखाई दे तो राजा से अपमान होता है। यदि वही वामभाग में बैठकर वोलता हुआ दिखायी पड़े तो भोजन में कलह होता है।२०-२१।

---

१ क. ङ. °साः। कुरङ्गगोपीततरा। २ क. ङ. रणप्रस्थानयोः। ख. ग. रथ-प्रस्थानयोः। ३ छ. °हरेत्पुर°।

यानेतद्दर्शनं शस्तं सव्यमङ्गस्य वाऽग्यथ ।
चौरैर्मोषमथाऽऽख्याति मयूरो भिन्ननिःस्वनः ॥२२
प्रयातस्याग्रतो राम मृगः प्राणहरो भवेत् ।
ऋक्षाखुजम्बुकव्याघ्रसिंहमार्जारगर्दभाः ॥२३
प्रतिलोमास्तथा राम खरश्च विकृतस्वनः ।
वामः कपिञ्जलः श्रेष्ठस्तथा दक्षिणसंस्थितः ॥२४
पृष्ठतो निन्दितफलस्तित्तिरस्तु न शस्यते ।
[1]एणा वराहाः पृषता वामा भूत्वा तु दक्षिणाः ॥२५
भवन्त्यर्थकरा नित्यं विपरीता विगर्हिताः ॥२५½

सवारी पर बैठ चुकने पर यदि बायें या सामने की ओर मोर दिखाई दे तो शुभ हुआ करता है। यात्रा काल में टूटे-फूटे शब्दों वाला मयूर चोरों के आक्रमण को बतलाता है। हे राम! यात्रा करने वाले के आगे की ओर (दिखलाई पड़ने वाला) मृग प्राणों का नाश करने वाला हुआ करता है। रीछ, चूहा, सियार, बाघ, सिंह, बिलाड़ तथा गधा यदि प्रस्थान के समय सामने दिखाई पड़े तो अशुभ फल होता है। गधे का रेंकना भी अशुभ हुआ करता है। बायें और दायें भाग में दिखाई पड़ने वाला कपिञ्जल पक्षी शुभ हुआ करता है परन्तु पीछे की ओर दिखाई पड़ने वाला निन्दित फल प्रदान करता है। तीतर का किसी भाग में दिखलाई पड़ना शुभ नही हुआ करता है। हिरन तथा सुअर आदि बायें भाग से दाहिनी ओर जायें तो धन की प्राप्ति होती है। किन्तु इसके विपरीत होने पर निन्दित फल मिलता है।२२-२५½।

वृषाश्वजम्बुकव्याघ्राः सिंहमार्जारगदभाः ॥२६
वाञ्छितार्थकरा ज्ञेया दक्षिणाद्वामतो गताः ।
शिवा श्यामाननाच्छुच्छूः पिङ्गला गृहगोधिका ॥२७
शूकरी परिपुष्टा च पुंनामानश्च वामतः ।
स्त्रीसंज्ञाभासकारूषकपिश्रीकर्णच्छित्कराः ॥२८
कपिश्रीकर्णपिप्पीका रुरुश्येनाश्च दक्षिणाः ।
जातोक्षाहिशशक्रोडगोधानां कीर्तनं शुभम् ॥२९

बैल, घोड़ा, गीदड़, बाघ, सिंह, बिलाड़, तथा गधा यदि दायें से बायें की ओर जायें तो अभीष्ट फल प्राप्त होता है। शृगाली, मयूरी, छुछुन्दरी, जाति

१ क. ख. शशा।

विशेष का उलूक, छिपकली, शूकरी तथा कोकिला का बायें से दाहिने की ओर जाना—ये सब पुल्लिंग शकुन माने गये हैं। भास, कारुष, कपिश्रीकर्ण, पिप्पीक, रुरु तथा श्येन का दायें से बायें की ओर जाना शुभ हुआ करता है। यात्राकाल में जातिक, सर्प, खरहा, शूकर तथा गोधा का शब्द शुभ माना गया है।२६-२९।

ततः संदर्शनं नेष्टं प्रतीपं वानरर्क्षयोः।
कार्यकृद्वली शकुनः प्रस्थितस्य हि योऽन्वहम् ॥३०
भवेत्तस्य फलं वाच्यं तदेव दिवसं बुधैः।
मत्ता भक्ष्यार्थिनी बाला वैरसक्तास्तथैव च ॥३१
सीमान्तमभ्यन्तरिता विज्ञेया निष्फला द्विज।
एकद्वित्रिचतुर्भिस्तु शिवा धन्या रुतैर्भवेत् ॥३२
पञ्चभिश्च तथा षड्भिरधन्या परिकीर्तिता ॥३२½

वानर और रीछ का विपरीत दिशा में दिखाई पड़ना शुभ नहीं होता है। पशु-पक्षियों के द्वारा निर्दिष्ट शकुन बलवान् हुआ करते हैं और उसी दिन फल प्रदान कर देते हैं जिस दिन वे होते हैं। अये ब्राह्मण! यात्रा-काल में किसी पशु के कंकाल को खाती हुई, शब्द करती हुई या अपने भाग के लिये झगड़ती हुई एक, दो, तीन, चार, शृगालियों का (एक साथ) शब्द करना शुभ माना जाता है। परन्तु पाँच, छह शृगालियों का एक साथ मिलकर शब्द करना अशुभ हुआ करता है।३०-३२½।

सप्तभिश्च तथा धन्या निष्फला परतो भवेत् ॥३३
नृणां रोमांच जननी वाहनानां भयप्रदा।
ज्वालानला सूर्यमुखी विज्ञेया भयवर्धिनी ॥३४
प्रथमं सारंगे दृष्टे शुभे देशे शुभं वदेत्।
संवत्सरं मनुष्यस्य अशुभे च शुभं तथा ॥३५
तथाविधं नरः पश्येत्सारङ्गं प्रथमेऽहनि।
आत्मनश्च तथात्वेन ज्ञातव्यं वत्सरं फलम् ॥३६

सात शृगालियों का एक साथ बोलना शुभ हुआ करता है, परन्तु इससे अधिक शृगालियों का (एक साथ) बोलना मनुष्यों के लिए रोमाञ्चकारी और वाहनों के लिये भयप्रद होता है। ज्वालामुखी (नामक शृगाली-विशेष)

का सूर्याभिमुख होकर शब्द करना भयवर्धक हुआ करता है। शुभ देश में हरिण को देखने से एक ही दिन में शुभ फल मिल जाता है, परन्तु अशुभ देश में देखने से एक वर्ष में शुभ फल मिलता है। इसी प्रकार वर्ष के प्रथम दिन में हरिण देखने से वर्ष भर शुभ फल प्राप्त हुआ करता है।३३-३६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शकुनवर्णनं नामैकत्रिंशदधिक-द्विशततमोऽध्यायः।२३१

अथ द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

शकुनानि

पुष्कर उवाच—

विशन्ति येन मार्गेण वायसा बहवः पुरम्।
तेन मार्गेण रुद्धस्य पुरस्य ग्रहणं भवेत् ॥१

पुष्कर बोले—(शत्रु सेना से अवरुद्ध) नगर में जिस मार्ग से बहुत से कौए प्रवेश करें उसी मार्ग से उस पर आक्रमण करना चाहिये।१

सेनायां यदि वा सार्थे [1]निविष्टो वायसो [2]रुदन्।
वामो भयातुरस्त्रस्तो भयं वदति दुस्तरम् ॥२
छायाङ्गवाहनोपानच्छत्रवस्त्रादिकुट्टने।
मृत्युस्तत्पूजने पूजा तदिष्टकरणे शुभम् ॥३

यदि समूह में बैठा हुआ कौआ भतभीत या त्रस्त होकर रोता हुआ उड़ जाये तो वह सेना की घोर विपत्ति का सूचक हुआ करता है। यदि यात्रा के समय कौआ मनुष्य की छाया, देह, वाहन, जूते तथा वस्त्र आदि में चोंच मार दे तो उसकी मृत्यु समझनी चाहिये। इसका निराकरण कौए की पूजा करने से किया जा सकता है।२-३।

---

१ क. ङ. प्रहृष्टो। २ घ. छ. रुवन्।

प्रोषितागमकृत्काक: कुर्वन्द्वारि गतागतम् ।
रक्तं दग्धं गृहे द्रव्यं क्षिपन्वह्निनिवेदक: ।।४
न्यसेद्रक्तं पुरस्ताच्च निवेदयति बन्धनम् ।
पीतं द्रव्यं तथा रुक्मरूप्यमेव तु भार्गव ।।५
यच्चैवोपनयेद्द्रव्यं तस्य लब्धिं विनिर्दिशेत् ।
द्रव्यं वाऽपनयेद्यत्तु तस्य हानिं विनिर्दिशेत् ।।६

दरवाजे पर कौये का आना-जाना प्रवासी के पुनरागमन का सूचक हुआ करता है। घर में कौए का किसी लाल अथवा जली हुई वस्तु का गिराना घर में आग लगने की सूचना दिया करता है। कौए के द्वारा सामने गिराई हुई लाल वस्तु बन्धन की सूचना दिया करती है। अये भार्गव ! कौए के द्वारा गिराई हुई पीली व श्वेत वस्तु क्रमश: सोने या चांदी की प्राप्ति की सूचना देती है। कौआ (घर में) जो वस्तु ले आता है, उसकी प्राप्ति होती है तथा जिस द्रव्य को अपने यहाँ से उठा ले जाता है, उसकी हानि की ओर संकेत करता है।४-६।

पुरतो धनलब्धि: स्यादाममांसस्य छर्दने ।
भूलब्धि: स्यान्मृद: क्षेपे राज्यं रत्नार्पणे महत् ।।७
यातु: काकोऽनुकूलस्तु क्षेम: कर्मक्षमो भवेत् ।
न त्वर्थसाधको ज्ञेय: प्रतिकूलो भयावह: ।।८
संमुखेऽभ्येति विरुवन्यात्राघातकरो भवेत् ।
वाम: काक: स्मृतो धन्यो दक्षिणोऽर्थविनाशकृत् ।।९

यदि कौआ सामने की ओर कच्चा मांस काट रहा हो तो धन का लाभ होता है। यदि कौआ (घर में) मिट्टी गिरा दे तो भूमि लाभ और यदि रत्न गिरा दे तो बहुत बड़े राज्य की प्राप्ति होती है। यदि कौआ यात्री के अनुकूल दिखाई पड़े तो यात्री का कल्याण हुआ करता है और वह अपने कार्य में समर्थ होता है, किन्तु यदि वह यात्री प्रतिकूल हो तो वह कार्य की असफलता तथा भय का सूचक हुआ करता है। यात्रा के समय शब्द करता हुआ कौआ यदि सामने आ जाये तो वह यात्रा में बाधा पहुँचाता है। वाम भाग में कौए का आना शुभ हुआ करता है और दक्षिण भाग में आने से वह धन का विनाश करने वाला हुआ करता है। ७-९।

वामोऽनुलोमगः श्रेष्ठः मध्यमो दक्षिणः स्मृतः ।
प्रतिलोमगतिर्वामो गमन प्रतिषेधकृत् ॥१०
निवेदयति यात्रार्थमभिप्रेतं गृहे गतः ।
एकाक्षिचरणस्त्वर्कं वीक्षमाणो भयावहः ॥११
कोटरे वासमानश्च[1] महानर्थकरो भवेत् ।
न शुभस्तूषरे काकः पङ्काङ्कः स तु शस्यते ॥१२

यात्रा करने वाले की ही दिशा में वाम भाग में कौए का उड़ना श्रेष्ठ और दक्षिण भाग में उड़ना मध्यम कोटि का माना जाता है। परन्तु (यात्री के) वाम भाग में उलटी दिशा में उड़ने वाला कौआ यात्री का निषेध करने वाला हुआ करता है। (यात्रा के समय) घर में कौए के आ जाने से यात्रा का प्रयोजन सिद्ध हो जाता है। उस समय एक पैर पर खड़ा हुआ और एक आँख से सूर्य की ओर देखता हुआ कौआ भय उत्पन्न करने वाला हुआ करता है। घोंसले में बैठे हुए कौए का देखना महान् अनर्थकारी हुआ करता है। ऊसर में बैठा हुआ कौआ शुभ नहीं हुआ करता है किन्तु कीचड़ में बैठा हुआ कौआ शुभ हुआ करता है ।१०-१२।

अमेध्यपूर्णवदनः काकः सर्वार्थसाधकः ।
ज्ञेया पतत्रिणोऽन्येऽपि काकवद्भृगुनन्दन ॥१३
स्कन्धावारापसव्यस्थाः श्वानो विप्रविनाशकाः ।
इन्द्रस्थाने नरेन्द्रस्य पुरेशस्य तु गोपुरे ॥१४
अन्तर्गृहे गृहेशस्य मरणाय भवेद्भषन् ।
यस्य जिघ्राति वामाङ्गं तस्य स्यादर्थसिद्धये ॥१५

मुँह में अपवित्र वस्तु रखे हुए कौए को देखने से सभी प्रयोजन सिद्ध हो जाते हैं। अये भार्गव ! कौए की भाँति अन्य पक्षियों (के शुभाशुभ शकुनों) को समझना चाहिये। छावनी के दक्षिण की ओर इन्द्रमन्दिर के सम्मुख अथवा राजप्रासाद के मुख्य द्वार पर भौंकता हुआ कुत्ता क्रमशः ब्राह्मणों राजा और प्रासादरक्षक की मृत्यु की सूचना दिया करता है। इसी प्रकार घर के अन्दर भौंकने वाला कुत्ता गृहस्वामी की मृत्यु की सूचना दिया करता है। कुत्ता (यात्रा के लिये उद्यत) जिस मनुष्य के वाम अंग को सूँघ लेता है उसका प्रयोजन सिद्ध हो जाता है ।१३-१५।

१-क. ङ. 'हानन्दक' ।

भयाय दक्षिणं चाङ्गं तथा भुजमदक्षिणम् ।
यात्राघातकरो यातुर्भवेत्प्रतिमुखागतः ॥१६
मार्गावरोधको मार्गे चौरान्वदति भार्गव ।
अलाभोऽस्थिमुखः पापो रज्जुचीरमुखस्तथा १७॥
सोपानत्कमुखो धन्यो मांसपूर्णमुखोऽपि च ।
अमङ्गल्यमुखद्रव्यं केशं चैवाशुभं तथा ॥१८

किन्तु दाहिने अंग और बाँयी भुजा को सूंघने से भय उत्पन्न हुआ करता है । यात्री के सामने से आता हुआ कुत्ता यात्रा में विघ्न उत्पन्न करने वाला हुआ करता है । अये भार्गव ! मार्ग को रोक कर खड़ा हो जाने वाला कुत्ता मार्ग में चोरों की सूचना दिया करता है । (यात्रा के समय) मुँह में हड्डी लिये कुत्ते को देखने से हानि होती है और रस्सी या चिथड़ा लपेटे हुए कुत्ते को देखना शुभ हुआ करता है । मुख में अमांगलिक वस्तुओं तथा केशों को लिए हुए कुत्ते को (यात्रा के समय) देखना अशुभ हुआ करता है ।१६-१८।

अवमूत्र्याग्रतो याति यस्य तस्य भयं भवेत् ।
यस्यावमूत्य व्रजति शुभं देशं तथा द्रुमम् ॥१९
मङ्गल्यं च तथा द्रव्यं तस्य स्यादर्थसिद्धये ।
श्ववच्च राम विज्ञेयास्तथा वै जम्बुकादयः ॥२०
भयाय स्वामिनो ज्ञेयमनिमित्तं रुतं गवाम् ।
निशि चौरभयाय स्याद्विकृतं मृत्यवे तथा ॥२१
शिवाय स्वामिनो रात्रौ वलीवर्दो नदन्भवेत् ।
उत्सृष्टवृषभो राज्ञो विजयं संप्रयच्छति ॥२२

(यात्रा के समय) जिसके आगे-आगे मूत्र को विसर्जित करता हुआ कुत्ता चलता रहता है उसका कल्याण होता है । हे राम ! कुत्ते की भाँति सियार (आदि) का भी उपर्युक्त मांगलिक वस्तुओं और स्थानों के सम्बन्ध से शकुन हुआ करता है । रात्रि में उसका इस प्रकार का शब्द चोरों के भय की सूचना देता है, परन्तु उनका विकृत स्वर (में रंभाना स्वामी की) मृत्यु का सूचक होता है । रात्रि में बैल का जोर से रंभाना स्वामी के कल्याण के लिए होता है । छूटा हुआ बैल राजा को विजय प्रदान करता है ।१९-२२।

'अभक्ष्यं भक्षयन्त्यश्च गावो दत्तास्तथा स्वकाः ।
त्यक्तस्नेहाः स्ववत्सेषु गर्भक्षयकरा मताः ॥२३
भूमिं पादैर्विनिघ्नन्त्यो[2] दीना भीता भयावहाः ।
आर्द्राङ्ग्यो हृष्टरोमाश्च शृङ्गलग्नमृदः शुभाः ॥२४
महिष्यादिषु चाप्येतत्सर्वं वाच्यं विजानता ॥२४½

अभक्ष्य तथा ऐसी वस्तुओं का भक्षण करने वाली जो उन्हें प्रकृति से प्राप्त नहीं है, और अपने बछड़ों से स्नेह रखने वाली गायें (स्वामी के परिवार में) गर्भक्षय की सूचना देती हैं। ऐसी गायें स्वामी के लिए शुभ होती हैं जो पैरों से भूमि खोदती रहती हों, दीन, भयभीत अथवा भयावह हों, जिनके अंग गीले हों, जिनमें रोमाञ्च हो रहा हो, जिनके समीप में मिट्टी लगी हुई हो। बुद्धिमान् मनुष्य को भैंसों के सम्बन्ध में भी इस प्रकार (शुभाशुभ) समझना चाहिये ।२३-२४½।

आरोहणं तथाऽन्येन सपर्याणस्य वाजिनः ॥२५
जलोपवेशनं नेष्टं भूमौ च परिवर्तनम् ।
विपत्करं तुरंगस्य सुप्तं वाऽप्यनिमित्ततः ॥२६
यवमोदकयोर्द्वेषस्त्वकस्माच्च न शस्यते ।
वदनाद्रुधिरोत्पत्तिर्वेपनं न च शस्यते ॥२७

जिसके ऊपर काठी रखी हुई है उस घोड़े के ऊपर (स्वामी के अतिरिक्त) किसी अन्य का सवार होना, घोड़े का जल में बैठ जाना और भूमि पर लोटना अनिष्टकारक हुआ करता है। घोड़े का अकारण सोना भी विपत्तिकारक हुआ करता है। घोड़े का अकस्मात् यव तथा मोदक से द्वेष करने लगना अच्छा नहीं माना जाता है। इसी प्रकार उसके मुंह से (विना किसी कारण के) रक्त बहना और उसका कांपना भी अशुभ हुआ करता है ।२५-२७।

क्रौडन्वकैः कपोतैश्च सारिकाभिर्मृतिं वदेत् ।
साश्रुनेत्रो जिह्वया च पादलेही विनश्यति ॥२८
वामपादेन च तथा विलिखंश्च वसुन्धराम् ।
स्वपेद्वा वामपार्श्वेन दिवा वा न शुभप्रदः ॥२९
भयाय स्यात्सकृन्मूत्री तथा निद्राविलाननः ।
आरोहणं न चेद्दद्यात्प्रतीपं वा गृहं व्रजेत् ॥३०
यात्राविघातमाचष्टे वामपार्श्वं तथा स्पृशन् ॥३०½

---

१ छ. अभय । २ क. ङ॰ न्त्यो दिवामी॰ ।

घोड़े का बगुले कबूतर एवं मैना के साथ खेल करना मृत्यु का सूचक है। (घोड़े का) आँखों में आँसू भर कर अपनी जिह्वा से पैर चाटना (स्वामी के) विनाश का द्योतक है। (घोड़े का) बाँये पैर से भूमि खोदना तथा बायीं करवट होकर दिन में सोना शुभ (फल) का देने वाला नहीं है। (घोड़े का) भय के कारण (दिन में) एक बार मूत्र विसर्जित करना, (अकारण) निद्रालु रहना, (सवार को) अपने ऊपर चढ़ने न देना अथवा उलटे घर को ही भागना और अपने वाम पार्श्व को छूना यात्रा में हानि करने वाला हुआ करता है।२८-३०३।

हेषमाणः शत्रुयोधं पादस्पर्शी जयावहः ॥३१
ग्रामे व्रजति नागश्चेन्मैथुनं देशहा भवेत्।
प्रसूता नागवनिता मत्ता चान्ताय भूपतेः ॥३२
आरोहणं न चेद्दद्यात्प्रतीपं वा गृहं व्रजेत्।
मदं वा वारणो जह्याद्राजघातकरो भवेत् ॥३३

पाद स्पर्श करते ही शत्रु योद्धा के ऊपर (जोर-जोर से) हिनहिनाने लगने वाला हुआ करता है। गाँव में मैथुन करने वाला हाथी देश को नष्ट करने वाला हुआ करता है। नव प्रसूता हथिनी यदि पागल हो जाये तो वह राजा के विनाश के लिए हुआ करती है। यदि हाथी (अपने ऊपर किसी को) चढ़ने न दे, उलटे घर भाग जाय या मद टपकाये तो वह राजा का विनाश करने वाला हुआ करता है।३१-३३।

वामं दक्षिणपादेन पादमाक्रमते शुभः।
दक्षिणं च तथा दन्तं परिमार्ष्टि करेण च ॥३४
वृषोऽश्वः कुञ्जरो वाऽपि रिपुसैन्यगतोऽशुभः।
खण्डमेघातिवृष्ट्या तु सेनानाशमवाप्नुयात् ॥३५

दाहिने पैर से बाँये पैर को बाँधने वाला या सूँड़ से अपने दाहिने दाँत को रगड़ने वाला हाथी शुभ हुआ करता है। बैल, हाथी तथा घोड़े यदि शत्रु की सेना में मिल जाये तो अमंगल समझना चाहिये। बादल के टुकड़े से होने वाली अतिवृष्टि सेना का विनाश कर डालती है।३४-३५।

प्रतिकूलग्रहर्क्षात्तु तथा संमुखमारुतात्।
यात्राकाले रणे वाऽपि च्छत्रादिपतनं भयम् ॥३६

हृष्टा नराश्चानुलोमा ग्रहा वैजयलक्षणम् ।
काकैर्योधाभिभवनं क्रव्याद्भिर्मण्डलक्षयः ॥
प्राचीपश्चिमकैशानी सौम्या प्रेष्ठा शुभा च दिक् ॥३७

यात्राकाल में या रण में यदि ग्रह-नक्षत्र प्रतिकूल हों और सामने की ओर वायु चल रहा हो तथा (राज) छत्र आदि गिर पड़े तो भय समझना चाहिये। प्रसन्न प्रजा और अनुकूल ग्रह विजय के लक्षण हुआ करते हैं। योद्धाओं के ऊपर कौए आक्रमण करें तो पराजय समझना चाहिए। सेना के प्रमाण के लिए पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा पूर्वोत्तर दिशा शुभ हुआ करती है।३६-३७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शकुनवर्णनं नाम द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।२३२

अथ त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

यात्रामण्डलचिन्तादि

पुष्कर उवाच—

सर्वयात्रां प्रवक्ष्यामि राजधर्मसमाश्रयात् ।
अस्तं गते नीचगते विकले रिपुराशिगे ॥१
प्रतिलोमे च विध्वस्ते शुक्रे यात्रां[1]विवर्जयेत् ।
प्रतिलोमे बुधे यात्रां दिक्पतौ च तथा ग्रहे ॥२
वैधृतौ च व्यतीपाते नागे च शकुनौ तथा ।
चतुष्पादे च किंस्तुघ्ने तथा यात्रां विवर्जयेत् ॥३

पुष्कर बोले—(अब मैं) राजधर्म से सम्बद्ध होने के कारण समस्त यात्राओं का वर्णन करूँगा। जब शुक्र अस्त हो, नीचे स्थान में चला गया हो, शत्रु राशि पर स्थित हो या नष्ट हो गया हो तब यात्रा नहीं करनी चाहिये। बुध, दिक्पति और ग्रह की प्रतिकूलता में तथा वैधृति, व्यतीपात, नाग, शकुनि, चतुष्पाद और किंस्तुघ्न योग में (भी) यात्रा का परित्याग कर देना चाहिये।१-३।

---

१ ख. ग. घ. छ. विसर्जयेत् ।

विपत्तारे नैधने च प्रत्यरौ चाथ जन्मनि ।
गण्डे विवर्जयेद्यात्रां रिक्तायां च तिथावपि ॥४
उदीची च तथा प्राची तयोरैक्यं प्रकीर्तितम् ।
पश्चिमा दक्षिणा या दिक्तयोरैक्यं तथैव च ॥५
वाय्वग्निदिक्समुद्भूतं परिधं न तु लङ्घयेत् ।
आदित्यचन्द्रसौरास्तु दिवशाश्च न शोभनाः ॥६

विपत्तार, नैधन, प्रत्यरि, जन्म तथा गण्ड योग में और रिक्ता तिथि में भी यात्रा वर्जनीय हुआ करती है। (यात्रा विचार से) उत्तर तथा पूर्व और पश्चिम तथा दक्षिण दिशाओं को एक माना गया है। पश्चिमोत्तर और दक्षिण पूर्व दिशाओं के दिक्शूल का उल्लंघन नहीं करना चाहिये। (यात्रा के लिए) रविवार, सोमवार और शनिवार शुभ नहीं हुआ करते हैं।४-६।

कृत्तिकाद्यानिपूर्वेण माघाद्यानि च याम्यतः ।
मैत्राद्यान्यपरे चाथ वासवाद्यानि वाऽप्युदक् ॥७
सर्वद्वाराणि शस्तानि च्छायामानं वदामि ते ।
आदित्ये विंशतिर्ज्ञेयाश्चन्द्रे षोडश कीर्तिताः ॥८
भौमे पञ्चदशैवोक्ताश्चतुर्दश तथा बुधे ।
त्रयोदश तथा जीवे शुक्रे द्वादश कीर्तिताः ॥९
एकादश तथा सौरे सर्वकर्मसु कीर्तिताः ।
जन्मलग्ने शक्रचापे संमुखे न व्रजेन्नरः ॥१०
शकुनादौ शुभे यायाज्जयाय हरिमास्मरन् ॥१०½

कृत्तिका से लेकर सात नक्षत्र समूह पूर्व दिशा में रहते हैं। मघा आदि सात नक्षत्र दक्षिण दिशा में रहते हैं, अनुराधा आदि सात नक्षत्र पश्चिम दिशा में रहते हैं तथा धनिष्ठा आदि सात नक्षत्र उत्तर दिशा में रहते हैं। (अग्नि-कोण से वायुकोण तक परिघ दण्ड रहा करता है, अतः इस प्रकार यात्रा करनी चाहिए, जिससे परिघ दण्ड का उल्लंघन न हो) पूर्वोक्त नक्षत्र उन-उन दिशाओं के द्वार हैं, सभी द्वार उन-उन दिशाओं के लिए उत्तम हैं। अब मैं तुम्हें छाया का मान बताता हूँ। रविवार को बीस, सोमवार को सोलह, मंगलवार को पन्द्रह, बुध को चौदह, बृहस्पति को तेरह, शुक्र को बारह, तथा शनिवार को ग्यारह अंगुल 'छायामान' कहा गया है, जो सभी कर्मों के लिए विहित है। जन्म लग्न में तथा सामने इन्द्रधनुष उदित हुआ हो तो

मनुष्य यात्रा न करे। शुभ शकुन आदि होने पर श्रीहरि का स्मरण करते हुए विजय यात्रा करनी चाहिये ।७-१०½।

वक्ष्ये मण्डलचिन्तां ते कर्तव्यं राजरक्षणम् ॥११
स्वाम्यमात्यस्तथा दुर्गः कोषो दण्डस्तथैव च।
मित्रं जनपदश्चैव राज्यं सप्ताङ्गमुच्यते ॥१२

अब मैं तुमसे (राज) मण्डल के विषय में बतलाऊँगा जिससे राजा की रक्षा करनी चाहिए। स्वामी, अमात्य, दुर्ग, कोष, दण्ड, मित्र तथा देश— ये सातों राज्य के अङ्ग हुआ करते हैं ।११-१२।

सप्ताङ्गस्य तु राज्यस्य विघ्नकर्तॄन्विनाशयेत्।
मण्डलेषु च सर्वेषु वृद्धिः कार्या महीक्षिता ॥१३
आत्ममण्डलमेवात्र प्रथमं मण्डलं भवेत्।
सामन्तास्तस्य विज्ञेया रिपवो मण्डलस्य तु ॥१४
उपेतस्तु सुहृज्ज्ञेयः शत्रुमित्रमतः परम्।
मित्रमित्रं ततो ज्ञेयं मित्रमित्ररिपुस्ततः ॥१५
एतत्पुरस्तात्कथितं पश्चादपि निबोध मे।
पार्ष्णिग्राहस्ततः पश्चात्ततस्त्वाक्रन्द उच्यते ॥१६
आसारस्तु ततोऽन्यः स्यादाक्रन्दासार उच्यते ॥१६½

(राजा को) सप्ताङ्ग राज्य मे विघ्न डालने वाले का सर्वनाश कर देना चाहिए। राजा को अपने (मित्रों और हितैषियों) के मण्डल में वृद्धि करना चाहिये। पहला मण्डल तो वह राज्य है, जिसके ऊपर राजा शासन करता है। सामन्तों को शत्रु समझना चाहिये, किन्तु जो सामन्त राजा में आसक्त हों उन्हें मित्र समझना चाहिये। इसी प्रकार शत्रु के मित्र, मित्र के मित्र और मित्र के मित्र शत्रु को भी समझना चाहिये। यह बात मैं पहले भी कह चुका हूँ, अब भी जान लो। तत्पश्चात् उसके पार्ष्णिग्राह, आक्रन्द; आसार और आक्रन्द के आसार हुआ करते है ।१३-१६½।

जिगीषोः शत्रुयुक्तस्य विमुक्तस्य तथा द्विज ॥१७
नात्रापि निश्चयः शक्यो वक्तुं मनुजपुंगव।
निग्रहानुग्रहे शक्तो मध्यस्थः परिकीर्तितः ॥१८
निग्रहानुग्रहेऽशक्तः सर्वेषामपि यो भवेत्[1]।
उदासीनः स कथितो बलवान्पृथिवीपतिः ॥१९

---

१ क. जयेत्।

विजय की इच्छा रखने वाले शत्रुयुक्त राजा के लिये मण्डल आवश्यक है या शत्रुमुक्त के लिये यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। सबका निग्रह और अनुग्रह करने में समर्थ राजा मध्यस्थ कहलाता है और उसमें असमर्थ होता हुआ बलवान् राजा भी उदासीन कहलाता है।१७-१९।

न कस्यचिद्रिपुर्मित्रं कारणाच्छत्रुमित्रके।
मण्डलं तव सम्प्रोक्तमेतद्द्वादशराजकम्॥२०
त्रिविधा रिपवो ज्ञेयाः कुल्यानन्तरकृत्रिमाः।
पूर्वपूर्वो गुरुस्तेषां दुश्चिकित्स्यतमो मतः॥२१
अनन्तरोऽपि यः शत्रुः सोऽपि मे कृत्रिमो मतः।
पार्ष्णिग्राहो भवेच्छत्रोर्मित्राणि रिपवस्तथा॥२२
पार्ष्णिग्राहमुपायैश्च शमयेच्च तथा स्वकम्।
मित्रेण शत्रोरुच्छेदं प्रशंसन्ति पुरातनाः॥२३

यों तो न किसी का कोई मित्र है न शत्रु, परन्तु कारणवश मनुष्य के शत्रु मित्र हुआ करते हैं। मैंने तुम्हें बारह राजाओं का यह मण्डल बतला दिया है। शत्रु तीन प्रकार के होते हैं—कुलक्रमागत, बाद में होने वाले व्यक्तिगत और कृत्रिम। उनमें क्रमशः पूर्व-पूर्व शत्रु (बाद वाले की अपेक्षा) दुर्निवार्य होता है। बाद में होने वाला व्यक्तिगत शत्रु भी कृत्रिम हैं—ऐसा मेरा विचार है। (शत्रु राजा का) पार्ष्णिग्राह और उसके शत्रु (आक्रमणकारी राजा के) मित्र हुआ करते है। पार्ष्णिग्राह को (युद्ध के अतिरिक्त अन्य) उपायों से शान्त करना चाहिये। प्राचीन लोगों का मत है कि मित्र के द्वारा शत्रु का नाश कराना चाहिये।२०-२३।

मित्रं च शत्रुतामेति सामन्तत्वादनन्तरम्।
शत्रुं जिगीषुरुच्छिन्द्यात्स्वयं शक्नोति चेद्यदि॥२४
प्रतापवृद्धौ तेनापि नामित्राज्जायते भयम्।
यथाऽस्य नोद्विजेल्लोको विश्वासश्च यथा भवेत्॥२५
जिगीषुर्धर्मविजयी यथा लोकं वशं नयेत्॥२६

सामन्त होने के कारण मित्र भी कालान्तर में शत्रु बन जाता है। शत्रु को जीतने वाले राजा में यदि सामर्थ्य हो तो शत्रु का उन्मूलन स्वयं

करना चाहिये। राजा का पराक्रम बढ़ने से शत्रु से भय नहीं रह जाता है। विजयाभिलाषी और धर्म से (दूसरों पर) विजय प्राप्त करने वाले राजा को वही करना चाहिये, जिससे प्रजा उद्विग्न न हो और उस पर विश्वास करे। इस प्रकार उसे प्रजाओं को अपने वश में कर लेना चाहिये।२४-२६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये यात्रामण्डलचिन्ताकथनं नाम
त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।२३३

अथ चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

षाड्गुण्यम्

पुष्कार उवाच—

सामभेदौ मया प्रोक्तौ दानदण्डौ तथैव च।
दण्डः स्वदेशे कथितः परदेशे ब्रवीमि ते ॥१
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च द्विविधो दण्ड उच्यते।
[1]लुण्ठनं ग्रामघातश्च सस्यघातोऽग्निदीपनम् ॥२
प्रकाशोऽथ विषं वह्निर्विविधैः पुरुषैर्वधः।
दूषणं चैव साधूनामुदकानां च दूषणम् ॥३

पुष्कर बोले—मैं साम, भेद और दान, दण्ड के विषय में बता चुका हूँ और अपने देश में दिये जाने वाले दण्ड के विषय में भी कह चुका हूँ। अब मैं दूसरे दण्ड के विषय में भी बतलाऊँगा। दण्ड दो प्रकार का कहा गया है—प्रकाश और अप्रकाश। लूट लेना, गाँव नष्ट कर देना तथा आग लगा देना—ये दण्ड प्रकाश दण्ड कहलाते हैं। विष देना, अग्नि देना, अनेक मनुष्यों के द्वारा मिलकर किसी एक का वध करना और शुद्ध जल को दूषित करना ये सब अप्रकाश दण्ड कहलाते हैं।१-३।

दण्डप्रणयनं प्रोक्तमुपेक्षां शृणु भार्गव।
यदा मन्येत नृपती रणे न मम विग्रहः ॥४

---

१ क. ङ. पतनं।

अनर्थायानुवन्धः स्यात्संधिना च तथा भवेत् ।
सामलब्धास्पदं चात्र दानं चार्थक्षयंकरम् ॥५
भेददण्डानुवन्धः स्यात्तदोपेक्षां समाश्रयेत् ।
न चायं मम शक्नोति[1] किंचित्कर्तुमुपद्रवम् ॥६
न चाहमस्य शक्नोमि तत्रोपेक्षां समाश्रयेत् ।
अवज्ञोपहृतस्तत्र राज्ञा कार्यो रिपुर्भवेत् ॥७

अये भृगुनन्दन ! मैं दण्डविधान तो बतला चुका हूँ अब (शत्रु की) उपेक्षा के सम्बन्ध में सुनो । जब राजा यह समझे कि युद्ध करने से भी शत्रु के साथ मेरा विग्रह (मनमुटाव) न बढ़ेगा, अनुबन्ध (जानबूझकर उपद्रव) करने से अनर्थ हो जायेगा, संधि करने से भी वही होगा, साम के प्रयोग से लाभ होगा, दान प्रयोग से अर्थक्षय होगा और फूट डालने से दण्ड का परिणाम निकलेगा तब उसे शत्रु की उपेक्षा का आश्रय लेना चाहिये (राजा जब समझ ले कि) यह शत्रु मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता है और मैं भी इसका कुछ नही बिगाड़ सकता हूँ तब उपेक्षा का आश्रय लेना चाहिये । राजा को चाहिये कि (अपने) शत्रु को अवज्ञा से ही मार डाले ।४-७।

मायोपायं प्रवक्ष्यामि उत्पातैरनृतैश्चरन् ।
शत्रोरुद्वेजनं शत्रोः शिबिरस्थस्य पक्षिणः ॥८
स्थूलस्य तस्य पुच्छस्थां कृत्वोल्कां विपुलां द्विज ।
विसृजेच्च ततश्चैवमुल्कापातं प्रदर्शयेत् ॥९

अब मैं छल के उपायों को बतलाऊँगा । उत्पातों और झूठी बातों से शत्रु को उद्विग्न कर देना चाहिये । अये द्विज ! शिविर में रहने वाले मोटे पक्षी की पूँछ में बड़ी-सी उल्का बाँध कर छोड़ दे । इस प्रकार शत्रुओं को वहुत से उल्कापात तथा अन्य प्रकार के वहुत से उत्पात कर-करके दिखाता रहे ।८-९।

एवमन्ये दर्शनीया उत्पाता वहवोऽपि च ।
उद्वेजनं तथा कुर्यात्कुहकैर्विविधैर्द्विषाम् ॥१०
साम्वत्सरास्तापसाश्च नाशं ब्रूयुः[2] परस्य च ।
जिगीषुः पृथिवीं राजा तेन चोद्वेजयेत्परान् ॥११

इस प्रकार विविध प्रकार की ऐन्द्रजालिक क्रियाओं से शत्रुओं को उद्विग्न करना चाहिये । ज्योतिपियों तथा तपस्वियों से शत्रु के विनाश की घोषणा

१ क. ङ. °ति कश्चित्क° । २ क. ङ. परस्परम् । जि° ।

करवानी चाहिये। पृथ्वी को जीतने की इच्छा करने वाले राजा को (विविध उपायों से) शत्रुओं को उद्विग्न करते रहना चाहिये ।१०-११।

देवतानां प्रसादश्च कीर्तनीयः परस्य तु।
आगतं नो मित्रबलं प्रहरध्वमभीतवत् ॥१२
एवं ब्रूयाद्रणे प्राप्ते भग्नाः सर्वे परे इति।
क्ष्वेडाः किलकिलाः कार्या वाच्यः शत्रुर्हतस्तथा ॥१३
देवाज्ञाबृंहितो राजा संनद्धः समरं प्रति।
इन्द्रजालं प्रवक्ष्यामि[1] इन्द्रं कालेन दर्शयेत् ॥१४

मुझे देवताओं की कृपा प्राप्त है, शत्रु की नहीं—यह संवाद शत्रु तक पहुँचाते रहना चाहिए। (युद्ध मे ऐसी घोषणा करानी चाहिये)—'सैनिकों हमारी मित्र सेना आ पहुँची है, आप लोग निर्भीक होकर (शत्रु के ऊपर) प्रहार कीजिये। रण में इस प्रकार कहना चाहिये कि सारे शत्रु मर चुके है। रण में शत्रुओं को ललकारते रहना चाहिये। किलकारियाँ भरते रहना चाहिये। यह घोषणा भी करते रहना चाहिये कि शत्रु मर गया है। इस प्रकार ज्योतिषियों से आज्ञा लेकर राजा को लड़ाई के लिए संनद्ध हो जाना चाहिये। अब मैं इन्द्रजाल के सम्बन्ध में बतलाऊँगा। राजा समयानुसार इन्द्र की माया का प्रदर्शन करे।१२-१४।

चतुरङ्गं बलं राजा सहायार्थं दिवौकसाम्।
बलं तु दर्शयेत्प्राप्तं रक्तवृष्टिं चरेद्रिपौ ।१५
छिन्नानि रिपुशीर्षाणि प्रासादाग्रेषु[2] दर्शयेत्।
षाड्गुण्यं संप्रवक्ष्यामि तद्वरौ संधिविग्रहौ ॥१६
सन्धिश्च विग्रहश्चैव यानमासनमेव च।
द्वैधीभावः संशयश्च षड्गुणाः परिकीर्तिताः ॥१७

उसमें राजा को यह दिखाना चाहिये कि देवताओं की चतुरङ्गिणी सेना उसकी सहायता के लिए आ गई है। तत्पश्चात् इन्द्रजाल से शत्रु के ऊपर रक्त की वर्षा करनी चाहिये। इसी प्रकार शत्रु के कटे हुए शिरों को महलों के ऊपर लटकते हुए दिखाना चाहिये। अब षाड्गुण्य का वर्णन करूँगा, जिसमें सन्धि और विग्रह सबसे श्रेष्ठ है। षाड्गुण्य में आने वाले हैं—सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव तथा संशय।१५-१७।

१ क. ङ. इन्द्रजाले°। २. क. ङ. °ग्रे प्रद°।

पणबन्धः स्मृतः संधिरपकारस्तु विग्रहः ।
जिगीषोः शत्रुविषये यानं यात्राऽभिधीयते ॥१८
विग्रहेण स्वके देशे स्थितिरासनमुच्यते ।
वलार्धेन प्रयाणं तु द्वैधीभावः स उच्यते ॥१९
उदासीनो मध्यमो वा संश्रयात्संश्रयः स्मृतः ।
समेन संधिरन्वेष्योऽहीनेन च वलीयसा ॥२०
हीनेन विग्रहः कार्यः स्वयं राज्ञा वलीयसा ।
तत्रापि शुद्धपार्ष्णिस्तु वलीयांसं समाश्रयेत् ॥२१

किसी शर्त के अनुसार बँधने को सन्धि कहते है और विग्रह कहते हैं अपकार को । विजय की इच्छा से शत्रु पर चढ़ाई करने को यान कहते हैं । शत्रु से विग्रह करके अपने देश में रहना आसान है । आधी सेना लेकर (युद्ध के लिए) कूच करना द्वैधीभाव है । उदासीन अथवा मध्यम कोटि के शत्रु के आश्रय में रहने को संश्रय (संशय) कहते हैं । सन्धि उससे करनी चाहिए जो समान हो, अपने से हीन न हो अथवा अपने से वलवान् हो । बलवान् राजा को अपने से हीन शत्रु के साथ विग्रह करना चाहिये । यदि राजा के पीछे कोई शत्रु न हो तो उसे बलवान् राजा का आश्रय लेना चाहिए ।१८-२१।

आसीनः कर्मविच्छेदं शक्तः कर्त्तुं रिपोर्यदा ।
अशुद्धपार्ष्णिगश्चाऽऽसीत विगृह्य वसुधाधिपः ॥२२
अशुद्धपार्ष्णिर्बलवान्द्वैधीभावं समाश्रयेत् ।
वलिना विगृहीतस्तु यो ऽसन्देहेन पार्थिवः ॥२३
संश्रयस्तेन वक्तव्यो गुणानामधमो गुणः ।
बहुक्षयव्यायायासं तेषां यानं प्रकीर्तितम् ॥२४
बहुलाभकरं पश्चात्तदा राजा समाश्रयेत् ।
सर्वशक्तिविहीनस्तु तदा कुर्यात्तु संश्रयम् ॥२५

पीछे की ओर पार्ष्णिग्राह शत्रु के रहने पर भी यदि राजा यह समझे कि वह शत्रु की गति में आधी सेना से ही विघ्न डाल सकता है तो उसे उतनी ही सेना भेजनी चाहिए । बलवान् शत्रु के साथ विग्रह में लगे हुए राजा के द्वारा उसका आश्रय ग्रहण कर लेना अधम गुण माना गया है । ऐसी स्थिति में संश्रय, विनाश, व्यय और आयास का कारण हुआ करता है । राजा को

(अपने शत्रु का) आश्रय तभी लेना चाहिये जब वह बाद में लाभकारी हो अथवा जब (राजा की) सारी शक्ति नष्ट हो चुकी हो ।२२-२५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये षाड्गुण्यवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशदधिक-द्विशततमोऽध्यायः ।२३४

अथ पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

प्रात्यहिकराजकर्म

पुष्कर उवाच—

अजस्रं कर्म वक्ष्यामि दिनं प्रति यदा चरेत् ।
द्विमुहूर्तविशेपायां रात्रौ निद्रां त्यजेन्नृपः ।१
वाद्यवन्दिस्वनैर्गीतैः [1]पश्येद्गूढांस्ततो नरान् ।
विज्ञायते न ये लोकास्तदीया इति केनचित् ।।२
आयव्ययस्य श्रवणं ततः कार्यं यथाविधि ।
वेगोत्सर्गं ततः कृत्वा राजा स्नानगृहं व्रजेत् ।।३

पुष्कर बोले—अब मैं राजा की दिनचर्या बतलाऊँगा जो उसे निरन्तर करते रहना चाहिए। दो मुहूर्त्त रात्रि शेष रह जाने पर राजा को बाजों एवं चारणों के (जय) घोषों और गीतों से निद्रा का परित्याग करना चाहिए। तदनन्तर उसे गुप्तचरों से मिलना चाहिए, किन्तु गुप्तचर उसे न देख सकें और कोई भी यह न कह सके कि 'ये आपके मनुष्य हैं।' तत्पश्चात् विधिवत् आय-व्यय के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करनी चाहिये। उसके बाद शौच आदि से निवृत्त होकर स्नानागार में जाना चाहिये ।१-३।

स्नानं कुर्यान्नृपः पश्चाद्दन्तधावनपूर्वकम् ।
कृत्वा सन्ध्यां ततो जप्यं वासुदेवं प्रपूजयेत् ।।४

वहाँ मज्जन करके स्नान करना चाहिये और फिर सन्ध्यावन्दन, जप तथा भगवान् वासुदेव का पूजन करना चाहिए ।४

---

१ क. ङ. 'श्येद्वृद्धांस्त°।

[1]वह्नौ पवित्राञ्जुहुयात्तर्पयेदुदकैः पितॄन् ।
दद्यात्सकाञ्चनीं धेनुं द्विजाशीर्वादसंयुतः ॥५
अनुलिप्तोऽलङ्कृतश्च मुखं पश्येच्च दर्पणे ।
ससुवर्णे घृते राजा शृणुयाद्दिवसादिकम् ॥६
औषधं भिषजोक्तं च मङ्गलालम्भनं चरेत् ।
पश्येद्गुरुं तेन दत्ताऽशीर्वादोऽथ व्रजेत्सभाम् ॥७

तदनन्तर अग्नि में आहुतियाँ डालनी चाहिये, पितरों का तर्पण करना चाहिए, ब्राह्मणों को सोने के साथ गोदान करना चाहिए और उनसे आशीर्वाद प्राप्त करना चाहिए। शरीर में चन्दन लगाकर, आभूषण पहन कर, दर्पण, सुवर्ण तथा घी में मुख देखना चाहिए। तदनन्तर राजा को दिन आदि (के फल) के सम्बन्ध में (ज्योतिषियों से) सुनना चाहिए। राजा को वैद्य की बताई हुई औषधियों का सेवन और मांगलिक कर्मों का आचरण करना चाहिए। उसे पहले गुरु से भेंट करके उनसे आशीर्वाद प्राप्त करना चाहिए और तब सभा में जाना चाहिये।५-७।

तत्रस्थो ब्राह्मणान्पश्येदमात्यान्मन्त्रिणस्तथा ।
प्रकृतीश्च महाभाग प्रतीहारनिवेदिताः ॥८
श्रुत्वेतिहासं कार्याणि कार्याणां[2] कार्यनिर्णयम् ।
व्यवहारं ततः पश्येन्मन्त्रं कुर्यात्तु मन्त्रिभिः ॥९
नैकेन सहितः कुर्यान्न कुर्याद्बहुभिः सह ।
न च मूर्खैर्न चानाप्तैर्गुप्तं न प्रकटं चरेत् ॥१०

वहाँ बैठकर उसे ब्राह्मण, अमात्य मन्त्री तथा उन प्रजाओं से भेंट करना चाहिए जिसके लिए द्वारपाल ने निवेदन किया हो। पहले कार्य-विवरण की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए फिर कार्यों (के पौर्वापर्य) का निर्णय करना चाहिए और तदनन्तर विवादों का निर्णय करना चाहिए और मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा करनी चाहिए। मन्त्रणा न तो केवल एक व्यक्ति के साथ करनी चाहिए और न बहुतों के साथ। मूर्ख तथा अविश्वसनीय मंत्रियों के साथ भी मन्त्रणा नहीं करनी चाहिए। गुप्त बात को (कभी) प्रकट नहीं करना चाहिए।८-१०।

मन्त्रं स्वधिष्ठितं कुर्याद्येन राष्ट्रं न बाधते ।

---

१ क. ङ. वह्नावाज्यं च जुहु° । २ क. ङ. कार्यनिश्चयम् ।

आकारग्रहणे राज्ञो मन्त्ररक्षा परा मता ॥११
आकारैरिङ्गितैः प्राज्ञा मन्त्रं गृह्णन्ति पण्डिताः ।
साम्वत्सराणां वैद्यानां मन्त्रिणां वचने रतः ॥१२
राजा विभूतिमाप्नोति[1] वारयन्ति नृपं हिते ।
मन्त्रं कृत्वाऽथ व्यायामं चक्रे याने च शस्त्रके ॥१३
[2]नियुद्धादौ नृपः स्नातः पश्येद्विष्णुं सुपूजितम् ।
हुतं च पावकं पश्येद्विप्रान्पश्येत्सुपूजितान् ॥१४

मन्त्रणा को सुनियोजित ढंग से कार्यान्वित करना चाहिए जिससे राष्ट्र पर किसी प्रकार की विपत्ति न आ सके। राजा को अपनी चेष्टाओं से भी मन्त्रणा को प्रकट नही होने देना चाहिए, क्योंकि बुद्धिमान् व्यक्ति आकार और चेष्टाओं से भी मन्त्रणा का पता लगा लेते हैं। ज्योतिषियों, वैद्यों तथा मंत्रियों की बात मानने वाला राजा ऐश्वर्य प्राप्त किया करता है क्योंकि ये लोग राजा के कल्याण में ही लगे रहते हैं। मन्त्रणा करने के वाद राजा को चक्र, सवारी, शस्त्र और (अभ्यास आदि के लिये किये गये) युद्ध आदि से व्यायाम करना चाहिए। तदनन्तर पुनः स्नान करके यह देखना चाहिए कि भगवान् विष्णु का पूजन तो हो चुका है, अग्नि में आहुतियाँ तो दी जा चुकी हैं और ब्राह्मणों का आदर-सत्कार तो हो चुका ।११-१४।

भूषितो भोजनं कुर्याद्दानाद्यैः सुपरीक्षितम् ।
भुक्त्वा गृहीतताम्बूलो वामपार्श्वेन संस्थितः ॥१५
शास्त्राणि चिन्तयेद्दृष्ट्वा योधान्कोष्ठायुधंगृहम् ।
अन्वास्य पश्चिमां सन्ध्यां कार्याणि च विचिन्त्य तु ॥१६
चारान्संप्रेष्य भुक्त्वाऽन्नमन्तः पुरचरो भवेत् ।
वाद्यगीतै रक्षितोऽन्यैरेवं नित्यं चरेन्नृपः ॥१७

तदनन्तर (नाना प्रकार के वस्त्राभूषणों से) विभूषित होकर पहले किसी को खिलाकर परीक्षा कर लिए गये भोजन को प्राप्त करना चाहिए। भोजन करके, पान खाकर बायी करवट लेटकर शास्त्र चिन्तन करना चाहिए। तदनन्तर अपने कोश और योद्धाओं का निरीक्षण करके सायंकालीन सन्ध्या की उपासना करनी चाहिए। उसके वाद अपने कर्तव्यों का चिन्तन करते हुए गुप्त-

१ ख. घ. छ. धारयन्ति । २ छ. निःसत्त्वादौ ।

चरों को (इधर-उधर) भेजकर अन्तःपुर में चला जाना चाहिए, जहाँ वह सुरक्षित रहकर वाद्यगीत तथा अन्य (भोगों) का आनन्द प्राप्त कर सके। राजा को नित्य इसी प्रकार का आचरण करना चाहिये।१५-१७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रात्यहिकराजकर्मकथनं नाम
पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।२३५

अथ षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

रणदीक्षा

पुष्कर उवाच—

यात्राविधानपूर्वं तु वक्ष्ये साङ्ग्रामिकं विधिम्।
सप्ताहेन यदा यात्रा भविष्यति महीपतेः॥१
पूजनीयो हरिः शंभुर्मोदकाद्यैर्विनायकः।
द्वितीयेऽहनि दिक्पालान्संपूज्य शयनं चरेत्॥२

पुष्कर बोले—अब मैं (युद्ध के लिये) यात्रा-विधि के साथ-साथ संग्राम की विधि का वर्णन करूँगा। (यात्रा से) सात दिन पूर्व से राजा को यह विधान करना चाहिए। पहले दिन मोदक आदि से भगवान् विष्णु, शङ्कर तथा गणेश की पूजा होनी चाहिए। दूसरे दिन दिक्पालों का पूजन करके शयन करना चाहिए।१-२।

शय्यायां वा तदग्रेऽथ देवान्प्राच्र्य मनुं स्मरेत्।
नमः शम्भो त्रिनेत्राय रुद्राय वरदाय च॥३
वामनाय विरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः।
भगवन्देवदेवेश शूलभृद्वृषवाहन॥४
इष्टानिष्टे मयाऽऽचक्ष्व स्वप्ने सुप्तस्य शाश्वत।
यज्जाग्रतो दूरमिति पुरोधामन्त्रमुच्चरेत्॥५

वहाँ उसी शय्या पर या उसके सामने लेटकर देवताओं की पूजा करके पुरोहित को इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए—शम्भो! आपको नमस्कार

है। त्रिनेत्र, रुद्र, वरदायक, वामन, विरूप तथा स्वप्नाधिपति आपको नमस्कार है। भगवन्! देवदेवेश! शूलधारिन्! वृषवाहन! मुझे नित्य स्वप्न में आप शुभाशुभ घटनाओं को बतला दिया कीजिए और जागृतावस्था में मेरे मन पर होने वाले प्रभावों को दूर कीजिये।३-५।

तृतीयेऽहनि दिक्पालान्रुद्रांस्तान्दिक्पतीन्यजेत्।
ग्रहान्यजेच्चतुर्थेऽह्नि पञ्चमे[1] चाश्विनौ यजेत् ॥६
मार्गे या देवतास्तासां नद्यादीनां च पूजनम्।
दिव्यायान्तरी (रि) क्षभौमस्थ (भूमिष्ठ) देवानां च तथा बलिः ॥७
रात्रौ भूतगणानां च वासुदेवादि पूजनम्।
भद्रकाल्याः श्रियः कुर्यात्प्रार्थयेत्सर्वदेवताः ॥८

तीसरे दिन दिक्पतियों और रुद्रों की पूजा करनी चाहिये। चौथे दिन ग्रहों की और पाँचवें दिन अश्विनीकुमारों की पूजा करनी चाहिए। (यात्रा के) मार्ग में आने वाले देवताओं और नदियों आदि का भी पूजन करनी चाहिए। तदनन्तर आकाश, अन्तरिक्ष और भूमि पर रहने वाले देवताओं को बलि देनी चाहिए। रात्रि में भूतगण, वासुदेव, भद्रकाली और लक्ष्मी आदि का पूजन करके सब देवताओं से प्रार्थना करनी चाहिये।६-८।

वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः।
नारायणोऽब्जजो विष्णुर्नारसिंहो वराहकः ॥९
शिव ईशस्तत्पुरुषो ह्यघोरो राम सत्यजः।
सूर्यः सोमः कुजश्चान्द्रिर्जीवः शुक्रः शनैश्चरः ॥१०
राहुः केतुर्गणपतिः सेनानी च (श्च) ण्डिकाह्युमा।
लक्ष्मीः सरस्वती दुर्गा ब्रह्माणी प्रमुखा गणाः ॥११
रुद्रा इन्द्रादयो वह्निर्नागास्तार्क्ष्योऽपरे सुराः।
दिव्यान्तरी (रि) क्षभूमिष्ठा विजयाय भवन्तु मे ॥१२

'वासुदेव, बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, ब्रह्मा, विष्णु, नारसिंह, वराह, शिव, ईश, तत्पुरुष, अघोर, राम, सत्यज, सूर्य, सोम, मंगल, बुध,

---
१ क. ख. ग. ङ. चाखिलान्यजे°।

बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु, गणपति, कार्तिकेय, चण्डिका, उमा, लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, ब्रह्माणी, रुद्र, इन्द्र, आदि अग्नि, नाग, गरुड़ तथा आकाश, अन्तरिक्ष और भूमि पर रहने वाले (सभी) देवता मुझे विजय प्रदान करें।८-१२।

[1]मर्दयन्तु रणे शत्रून्संप्रगृह्योपहारकम्[2]।
सपुत्रमातृभृत्योऽहं देवा वः शरणं गतः ॥१३
चमूनां पृष्ठतो गत्वा रिपुनाशा नमोऽस्तु वः।
विनिवृत्तः प्रदास्यामि दत्तादप्यधिकं बलिम् ॥१४
षष्ठेऽह्नि विजयस्नानं कर्तव्यं चाभिषेकवत्।
यात्रादिने सप्तमे च पूजयेच्च त्रिविक्रमम् ॥१५

हे देववृन्द! मैं अपने पुत्र, माता, तथा सेवकों के साथ आपकी शरण में आया हूँ; आप मेरे उपहार को स्वीकार करके युद्ध में मेरे शत्रुओं को मसल डालिये। मेरी सेना के पीछे की ओर से शत्रु का नाश कीजिए, आपको नमस्कार है। युद्ध से लौटने पर मैं (पहले) दी हुई बलि से भी अधिकबलि दूंगा। छठे दिन अभिषेक की भाँति विजय-स्नान करना चाहिए। सातवें दिन अर्थात् यात्रा के दिन त्रिविक्रम की पूजा करनी चाहिए।१३-१५।

नीराजनोक्तमन्त्रैश्च ह्यायुधं वाहनं यजेत्।
पुण्याहजयशब्देन मन्त्रमेतन्निशामयेत् ॥१६
दिव्यान्तरी (रि) क्षभूमिष्ठाः सन्त्वायुर्दाः सुराश्च ते।
देवसिद्धिं प्राप्नुहि त्वं देवयात्राऽस्तु सा तव ॥१७
रक्षन्तु देवताः सर्वा इति श्रुत्वा नृपो व्रजेत्।
गृहीत्वा सशरं चापं धनुर्नागेतिमन्त्रतः ॥१८
तद्विष्णोरिति जप्त्वाऽथ दद्याद्रिपुमुखे पदम्।
दक्षिणं [3]पदं द्वात्रिंशद्दिक्षु प्राच्यादिषु क्रमात् ॥१९
नागं रथं हयं चैव धुर्यांश्चैवाऽऽरुहेत्क्रमात्।
आरुह्य वाद्यैर्गच्छेत पृष्ठतो नावलोकयेत् ॥२०

---

१ क. ङ, न्तु च मे श°। २ च. °म्। अवन्तु मां स्वभृ°। ३ ङ. पदमादिश्य दिक्षु।

नीराजनोक्त मन्त्रों से शस्त्रों तथा वाहनों की पूजा करनी चाहिये। फिर पवित्र जय शब्द से युक्त इस मन्त्र को राजा के सामने पढ़ना चाहिये—"आकाश अन्तरिक्ष और भूमि पर रहने वाले देवगण तुम्हें आयु प्रदान करें। तुम्हें देवसिद्धि प्राप्त हो। सभी देवता तुम्हारी रक्षा करें।" यह मन्त्र सुनकर राजा को (युद्ध के लिये) जाना चाहिये। राजा को 'धनुर्नाग' इत्यादि मन्त्र से धनुष बाण उठाना चाहिए और 'तद्विष्णो…' इस मन्त्र से शत्रु के मुख की प्रतिमा पर अपने दाहिने पैर से प्रहार करना चाहिए। तदनन्तर पूर्व आदि दिशाओं में क्रमशः हाथी, रथ, अश्व एवं अन्य सवारियों पर चढ़कर बाजों के साथ बत्तीस पग आगे की ओर बढ़ना चाहिए और पीछे की ओर नहीं देखना चाहिए।१६-२०।

क्रोशमात्रं गतस्तिष्ठेत्पूजयेद्देवता द्विजान्।
परदेशं व्रजेत्पश्चादात्मसैन्यं हि पालयन्॥२१
राजा प्राप्य विदेशं तु देशाचारं[1] हि पालयेत्।
देवानां पूजनं कुर्यान्न च्छिन्द्यादायमत्र तु॥२२
नावमानयेत्तद्देश्यानागत्य स्वपुरं पुनः।
जयं प्राप्यार्चयेद्देवान्दद्याद्दानानि पार्थिवः॥२३

इस प्रकार एक कोश जाकर देव-ब्राह्मणों की पूजा करके रुक जाना चाहिये। तत्पश्चात् अपनी सेनाओं की रक्षा करते हुए परदेश को जाना चाहिये। विदेश में पहुँचने पर उस देश के आचार का पालन करते हुए देवताओं का पूजन करना चाहिए और वहाँ से पुनः अपने देश लौटने पर तद्देशीय मनुष्यों का अपमान नहीं करना चाहिए। विजय प्राप्त करके राजा को देवताओं की पूजा करनी चाहिए और ब्राह्मणों को दान देना चाहिये। २१-२३।

द्वितीयेऽहनि सङ्ग्रामो भविष्यति यदा तदा।
स्नापयेद्गजमश्वादि यजेद्देवं नृसिंहकम्॥२४
छत्रादिराजलिङ्गानि शस्त्राणि निशि वैगुणान्।
प्रातर्नृसिंहकं पूज्य वाहनाद्यमशेषतः॥२५
पुरोधसाहुतं पश्येद्वह्निं हुत्वा द्विजान्यजेत्।
गृहीत्वा सशरं चापं गजाद्यारुह्य वै व्रजेत्॥२६

---

१ ख. ग. घ. छ. देशपालं तु पा°।

दूसरे दिन लड़ाई होने से पूर्व हाथी घोड़ों को नहलाकर भगवान् नृसिंह की पूजा करनी चाहिए। रात्रि में छत्र आदि राजचिह्नों, आयुधों और गणों का पूजन करना चाहिए। प्रातःकाल नृसिंह देव तथा वाहन आदि की पूजा करके पुरोहित के द्वारा जिसमें आहुति दी गयी है उस अग्नि का दर्शन करना चाहिए। तथा स्वयं हवन करके ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए। तदनन्तर धनुष् वाण लेकर हाथी पर चढ़कर चल देना चाहिए।२४-२६।

देशे त्वदृश्यः शत्रूणां कुर्यात्प्रकृतिकल्पनाम्।
संहतान्योधयेदल्पान्कामं विस्तारयेद्वहून् ॥२७
सूचीमुखमनीकं स्यादल्पानां वहुभिः सह।
व्यूहाः प्राण्यङ्गरूपाश्च द्रव्यरूपाश्च कीर्तिताः ॥२८
गरुडो मकरव्यूहश्चक्रः श्येनस्तथैव च।
अर्धचन्द्रश्च वज्रश्च शकटव्यूह एव च ॥२९
मण्डलः सर्वतोभद्रः सूचीव्यूहश्च ते [1]नव (दश)।
व्यूहानामथ सर्वेषां पञ्चधा सैन्यकल्पना[2] ॥३०

शत्रु के देश में कहीं छिपकर सेना का संगठन करना चाहिए। युद्ध के लिए सुसंगठित रूप से थोड़ी ही सेना को भेजना चाहिए किन्तु सेना का विस्तार पर्याप्त रूप से करना चाहिए। सूचीमुख (व्यूह) के रूप में थोड़ी भी सेना वड़ी सेना का सामना कर सकती है। व्यूह दो प्रकार के होते हैं— प्राण्यङ्गरूप और द्रव्यरूप। व्यूह दश होते है—गरुड़व्यूह, मकरव्यूह, चक्रव्यूह, श्येनव्यूह, अर्धचन्द्रव्यूह, वज्रव्यूह, शकटव्यूह, मण्डलव्यूह, सर्वतोभद्रव्यूह और सूचीव्यूह। समस्त व्यूहों में पाँच प्रकार से सेना का विभाग किया जाता है।२७-३०।

द्वौ पक्षावनुपक्षौ द्वाववश्यं पञ्चमं भवेत्।
एकेन यदि वा द्वाभ्यां भागाभ्यां युद्धमाचरेत् ॥३१
भागत्रयं स्थापयेत्तु तेपां रक्षार्थमेव च।
न व्यूहकल्पना कार्या राज्ञो भवति कर्हिचित् ॥३२
मूलच्छेदे विनाशः स्यान्न युध्येच्च स्वयं नृपः।
सैन्यस्य पश्चात्तिष्ठेत्तु क्रोशमात्रे महीपतिः ॥३३

१ क. ग. ङ. च. छ. नराः। २ ङ. °ना। सपक्षौ द्वौ च पक्षौ द्वौ द्वाव- श्य°।

भग्नसंधारणं तत्र योधानां परिकीर्तितम् ।
प्रधानभङ्गे सैन्यस्य नावस्थानं विधीयते ॥३४

इसमें दो भाग पक्ष के रूप में होते हैं, दो भाग पक्षों के पीछे और पाँचवा मुख्य भाग। इनमें से एक या दो भागों से ही युद्ध करना चाहिए और तीन भागों को इनकी रक्षा के लिए रखना चाहिए। राजा को स्वयं व्यूह में नहीं जाना चाहिए क्योंकि मूलनाश होने से सर्वनाश हो जाता है। राजा को स्वयं युद्ध भी नही करना चाहिए अपितु उसे अपनी सेना से एक कोश पीछे रहना चाहिए। जिससे आवश्यकता के समय भग्नसैन्य समूह फिर से उसके द्वारा संगठित किया जा सके। प्रधान सेना के भग्न हो जाने पर वहाँ रुकना नहीं चाहिए।३१-३४।

न संहतान्न विरलान्योधान्व्यूहे प्रकल्पयेत् ।
आयुधानां तु संमर्दो यथा न स्यात्परस्परम् ॥३५
भेत्तुकामः परानीकं संहतैरेव भेदयेत् ।
भेदरक्ष्याः परेणापि कर्तव्याः संहतास्तथा ॥३६
व्यूहं भेदावहं कुर्यात्परव्यूहेषु चेच्छया ।
गजस्य पादरक्षार्थाश्चत्वारस्तु तथा द्विज ॥३७

व्यूह में योद्धाओं को न तो वहुत ही अधिक निकट रखना चाहिए और न वहुत दूर जिससे (योद्धाओं के) शस्त्र परस्पर टकराने न लगें। शत्रु के सैन्य व्यूह को भंग करने वाले (राजा) को एक साथ संघटित योद्धाओं के द्वारा ही वैसा करना चाहिए और शत्रु से अपने सैन्य व्यूह की रक्षा भी संघटित योद्धाओं के द्वारा करनी चाहिए। शत्रुओं के वहुत से सैन्य व्यूहों में से राजा को अपनी इच्छा से किसी ऐसे व्यूह को भङ्ग करना चाहिए (जिसके भंग होने से अन्यव्यूह स्वतः समाप्त हो जायें)।३५-३७।

रथस्य चाश्वाश्चत्वारः समास्तस्य च चर्मिणः ।
धन्विनश्चर्मिभिस्तुल्याः पुरस्ताच्चर्मिणो रणे ॥३८
पृष्ठतो धन्विनः पश्चाद्धन्विनां तुरगा रथाः ।
रथानां कुञ्जराः पश्चाददातव्याः पृथिवीक्षिता ॥३९
पदातिकुञ्जराश्वानां धर्मकार्यं प्रयत्नतः ।
शूराः प्रमुखतो देया[2] नो देया भीरवः क्वचित् ॥४०

---

१ ख. ग. °क्षार्थंचत्वा° । २ ख. ग. घ. छ. देयाः स्क° ।

हे ब्राह्मण ! गजारोही की रक्षा के लिये चार (योद्धाओं) को नियुक्त करना चाहिये, रथारोही के लिए चार अश्वारोहियों को नियुक्त करना चाहिए, अश्वारोही के लिए चार खड्गधारी योद्धाओं को नियुक्त करना चाहिये और एक ढाल वाले योद्धा की रक्षा के लिए चार धनुर्धारियों की नियुक्ति करनी चाहिये। धनुर्धारी, खड्गधारी योद्धा के समान हुआ करते हैं। राजा को रण में सबसे आगे खड्गधारियों को, उनके पीछे धनुर्धारियों को, उनके पीछे अश्वारोहियों को, उनके पीछे रथारोहियों को और रथारोहियों के पीछे गजारोहियों को रखना चाहिए। पैदल, गजारोही और अश्वारोही योद्धाओं में भी जो शूरवीर हों उन्हें सेना के आगे रखना चाहिए, कायरों को नहीं। सेना में कायरों को आगे कभी नहीं रखना चाहिए।३८-४०।

शूरान्प्रमुखतो दत्त्वा स्कन्धमात्रप्रदर्शनम् ।
कर्तव्यं भीरुसंघेन शत्रुविद्रावकारकम् ।।४१
दारयन्ति पुरस्तात्तु न देया भीरवः पुरः ।
प्रोत्साहयन्त्येव रणे भीरुञ्शूराः पुरस्थिताः ।।४२
प्रांशवः शुकनासाश्च ये[1] चाजिह्मेक्षणा नराः ।
संहतभ्रूयुगाश्चैव क्रोधनाः कलहप्रियाः ।।४३
[2]नित्यहृष्टाः प्रहृष्टाश्च शूरा ज्ञेयाश्च कामिनः ।

क्योंकि वे शत्रुओं का ही उत्साह बढ़ाया करते हैं, परन्तु सेना में आगे रहने वाले शूर योद्धा कायरों को भी प्रोत्साहित कर दिया करते हैं। शूरवीर उन्हें समझना चाहिए जिनका कद लम्बा हो, नाक तोते की (चोंच की) तरह हो, क्रोधी स्वभाव के हों, कलहप्रिय हों, सदैव प्रसन्न रहते हों और विजय की कामना करते हों।४१-४३½।

संहतानां हतानां च रणापनयनक्रिया ।।४४
प्रतियुद्धं गजानां च तोयदानादिकं च यत् ।
आयुधानयनं चैव पत्तिकर्म विधीयते ।।४५
रिपूणां भेत्तुकामानां स्वसैन्यस्य तु रक्षणम् ।
भेदनं संहतानां च चर्मिणां कर्म कीर्तितम् ।।४६
विमुखीकरणं युद्धे धन्विनां च तथोच्यते ।
दूरापसरणं यानं सुहृतस्य तथोच्यते ।।४७

---

१ क. ङ. ये च जि° । २ क. ङ. नित्यतृष्णाः ।

त्रासनं रिपुसैन्यानां रथकर्म तथोच्यते ।
भेदनं संहतानां च भेदानामपि संहतिः ॥४८
प्राकारतोरणाट्टालद्रुम भङ्गश्च सद्गजे ।
पत्तिर्भूर्विषमा ज्ञेया रथाश्वानां तथा समा ॥४९
सकर्दमा च नागानां युद्धभूमिरुदाहृता ।

संगठित वीरों में से जो मारे जायें अथवा घायल हों, उनको युद्धभूमि से दूर हटाना, युद्ध के भीतर जाकर हाथियों को पानी पिलाना तथा हथियार पहुँचाना—ये सब पैदल सिपाहियों के कार्य हैं । अपनी सेना का भेदन करने की इच्छा रखने वाले शत्रुओं से उसकी रक्षा करना और संगठित होकर युद्ध करने वाले शत्रुवीरों का व्यूह तोड़ना—यह ढाल लेकर युद्ध करने वाले योद्धाओं का कार्य बताया गया है । युद्ध में विपक्षी योद्धाओं का कार्य बताया गया है । युद्ध में विपक्षी योद्धाओं को मार भगाना धनुर्धर वीरों का काम है । अत्यन्त घायल हुये योद्धा को युद्ध भूमि से दूर ले जाना, फिर युद्ध में आना तथा शत्रु की सेना में त्रास उत्पन्न करना यह सब रथी वीरों का कार्य बतलाया जाता है। संगठित व्यूह को तोड़ना, टूटे हुये को जोड़ना तथा चहारदीवारी, तोरण (सदर दरवाजा), अट्टालिका और वृक्षों को भङ्गकर डालना—यह अच्छे हाथी का पराक्रम है। ऊँची नीची भूमि को पैदल सेना के लिये उपयोगी जानना चाहिए, रथ और घोड़ों के लिए समतल भूमि उत्तम है तथा कीचड़ से भरी हुई युद्ध भूमि हाथियों के लिए उपयोगी बतायी गयी है ।४४-४९½।

एवं विरचितव्यूहः कृतपृष्ठदिवाकरः ॥५०
तथाऽनुलोमशुक्रार्किदिक्पालमृदुमारुताः ।
योधानुत्तेजयेत्सर्वान्नामगोत्रावदानतः ॥५१
भोगप्राप्त्या च विजये स्वर्गप्राप्त्या मृतस्य च ।
जित्वाऽरीन्भोगसम्प्राप्तिर्मृ तस्य च परा गतिः ॥५२

इस प्रकार व्यूह की रचना करके सूर्य को पीछे की ओर और शुक्र, शनि, दिक्पाल तथा मन्द समीरण को अभिमुख करके युद्ध करना चाहिए । (युद्ध के समय) योद्धाओं के नाम गोत्रों तथा उनके वीरकर्मों का उच्चारण करके उन्हें उत्तेजित करना चाहिए । (उनसे यह कहते रहना चाहिए कि) विजय से भोग-प्राप्ति होगी और मरने से स्वर्ग प्राप्त होगा, क्योंकि ऐसा कहा गया है कि युद्ध

में शत्रुओं को जीतने से भोगप्राप्ति और मरने से उत्तम गति प्राप्त होती है ।५०-५२।

निष्कृतिः स्वामिपिण्डस्य नास्तियुद्धसमा गतिः ।
[1]शूराणां रक्तमायाति तेन पापं त्यजन्ति ते ।।५३
घातादिदुःखसहनं रणे तत्परमं तपः ।
वराप्सरः सहस्राणि यान्ति शूरं रणे मृतम् ।।५४
स्वामी सुकृतमादत्ते भग्नानां विनिवर्तिनाम् ।
ब्रह्महत्याफलं तेषां तथा प्रोक्तं पदे पदे ।।५५

स्वामी के ऋण से मुक्ति मिल जाती है अतएव युद्ध के समान कोई उपाय है ही नहीं। वीर योद्धा के शरीर से जो रक्त निकलता है वह मानों उसका पाप निकलता है। रण में आघात आदि दुःखों को सहना ही परम तप है। रण में मरे हुए वीर के समीप हजारों सुन्दरी अप्सरायें जाती हैं। युद्ध से भाग जाने वालों का पुण्य उनके स्वामी को प्राप्त हो जाता है और उन्हें पद-पद पर ब्रह्महत्या का पाप लगता है ।५३-५५।

त्यक्त्वा सहायान्यो गच्छेद्देवास्तस्य विनष्टये ।
अश्वमेधफलं प्रोक्तं शूराणामनिवर्तिनाम् ।।५६
धर्मनिष्ठे जयो राज्ञि योद्धव्याश्च समाः[2] समैः ।
गजाद्यैश्च गजाद्याश्च न हन्तव्याः पलायिनः ।।५७

जो अपने सहायकों को छोड़कर भाग जाता है, देवता उसका विनाश कर डालते हैं और जो वीर रण से भागता नहीं है उसे अश्वमेध का फल प्राप्त होता है। जो राजा धर्म से युक्त होकर युद्ध करता हैं, उसकी विजय होती है। युद्ध अपने बराबर वालों के साथ करना चाहिये, जैसे हाथी आदि पर सवार योद्धाओं के साथ ही युद्ध करना चाहिये। संग्राम से भागने वालों को नहीं मारना चाहिये ।५६-५७।

न प्रेक्षकाः प्रविष्टाश्च अशस्त्राः पतितादयः ।
[3]शान्ते निद्राभिभूते च अर्धोत्तीर्णे नदीवने ।।५८

---

१ क. ङ. °राणामुत्तमा जातिस्तेन । २ क. ङ. °मैः । राजाद्याश्च ।
३ क. ङ. श्रान्ते ।

दुर्दिने कूटयुद्धानि[1] शत्रुनाशार्थमाचरेत् ।
वाहू प्रगृह्य विक्रोशेद्भग्ना भग्नाः परे इति ॥५९
प्राप्तं[2] मैत्रं वलं भूरि नायकोऽत्र निपातितः ।
सेनानी नि (र्नि) हतश्चायं भूपतिश्चापिविप्लुतः ॥६०
विद्रुतानां च योधानां [3]सुखं [4]घातो विधीयते ।

युद्ध देखने वाले, निःशस्त्र होकर युद्ध में प्रवेश करने वाले, गिरे हुए, शान्त तथा निद्रा से अभिभूत पुरुषों को नहीं मारना चाहिये । ऐसी सेना से भी युद्ध नही करना चाहिये जो किसी नदी या वन का आधा भाग ही पार कर चुकी हो । दुर्दिन में भी युद्ध नहीं करना चाहिये । शत्रु को नष्ट करने के लिए कूटयुद्ध किया जा सकता है । भुजाओं को फैलाकर जोर-जोर से चिल्लाना चाहिये कि 'शत्रु नष्ट हो गये हैं" मुझे मित्रों की वहुत सी सेना प्राप्त हो गई है, (सेना) नायक मार गिराया गया है, सेनानी मारा जा चुका है और राजा भी भाग गया है । (ऐसा करने से शत्रु में भगदड़ मच जाती है और) भागते हुए योद्धाओं को सुखपूर्वक नष्ट किया जा सकता है । ।५८-६०½।

धूपाश्च देया धर्मज्ञ तथा च परमोहनाः ॥६१
पताकाश्चैव संभारो वादित्राणां भयावहः ।
संप्राप्य विजयं युद्धे देवान्विप्रांश्च[5] संयजेत् ॥६२
रत्नानि राजगामीनि[6] अमात्येन कृते रणे ।
तस्य स्त्रियो न कस्यापि रक्ष्यास्ताश्च परस्य च ॥६३
शत्रुं प्राप्य रणे मुक्तं[7] पुत्रवत्परिपालयेत् ।
पुनस्तेन न योद्धव्यं देशाचारादि पालयेत् ॥६४

अये धर्मज्ञ ! शत्रु सेना को मोह में डाल देने वाला धुआँ भी करना चाहिये । पताकाओं का फहराना और वाणों का साज-वाज (शत्रुओं के लिये) भय बढ़ाने वाला हुआ करता है । युद्ध में विजय प्राप्त करके राजा को ब्राह्मणों और देवताओं की पूजा करनी चाहिये । अमात्य के द्वारा किये गये युद्ध में प्राप्त रत्न (भी) राजा के हुआ करते हैं, परन्तु शत्रु की स्त्रियाँ किसी

---

१ क. ङ. °न्दादि शत्रूणां संधिमीरयेत् । २ ग. प्तं चित्रवलं । ३ क. ङ. मुखं । ४ क, ङ. खाते । ५ क. ङ. °न्विप्रान्गुरून्यजे° । ६ क. ङ. अनघने । ख. अनयेन । ७ क. ङ. युक्तं ।

की नहीं हो सकतीं हैं, इसलिये उनकी रक्षा करनी चाहिये। युद्ध में पकड़ कर छोड़े गये शत्रु की पुत्र की भाँति रक्षा करनी चाहिये। पुनः उसके साथ युद्ध नहीं करना चाहिये 'अपितु (उसके सम्बन्ध में) उसी के देशाचार आदि का पालन करना चाहिये।६१-६४।

ततश्च स्वपुरं प्राप्य ध्रुवेभे प्रविशेद् गृहम्।
देवादिपूजनं कुर्याद्रक्षेद्योधकुटुम्बकम् ॥६५
संविभागं परात्राप्तैः कुर्माद्भृत्यजनस्य च।
रणदीक्षा मयोक्ता ते जयाय नृपते ध्रुवा ॥६६

(युद्ध में विजय प्राप्त करने के) अनन्तर ध्रुव नक्षत्र में राजभवन में प्रवेश करना चाहिये। तदनन्तर पूजन करना चाहिये और युद्ध में लौटे हुए योद्धाओं के कुटुम्वों का पालन करना चाहिये। शत्रुओं के यहाँ से प्राप्त धन को नौकरों-चाकरों में बाँट देना चाहिये। यह रण-दीक्षा मैंने तुम्हें वता दी है। इसके अनुसार युद्ध करने से राजा को विजय अवश्य प्राप्त होती है।६५-६६।

इत्यादि महापुराण आग्नेये रणदीक्षावर्णनं नाम षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२३६

अथ सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

श्रीस्तोत्रम्

पुष्कर उवाच—

राज्यलक्ष्मीस्थिरत्वाय यथेन्द्रेण पुरा श्रियः।
स्तुतिः कृता तथा राजा जयार्थं स्तुतिमाचरेत् ॥१

पुष्कर बोले—पूर्वकाल में राज्य लक्ष्मी को स्थिर करने के लिये इन्द्र ने जिस प्रकार लक्ष्मी की स्तुति की थी उसी तरह राजा को भी विजय के लिये (उसकी) स्तुति करनी चाहिये।१

इन्द्र उवाच—

नमस्ये सर्वलोकानां जननीमब्धिसंभवाम् ।
श्रियमुन्निद्रपद्माक्षीं विष्णुवक्षःस्थलस्थिताम् ।।२

इन्द्र बोले—मैं सम्पूर्ण लोकों की जननी, सागर से उत्पन्न होने वाली, प्रफुल्लित कमल के समान नेत्रों वाली तथा विष्णु के वक्षःस्थल पर निवास करने वाली लक्ष्मी को नमस्कार कर रहा हूँ ।२

त्वं सिद्धिस्त्वं स्वधा स्वाहा सुधा त्वं लोकपावनि ।
सन्ध्या रात्रिः प्रभा भूतिर्मेधा श्रद्धा सरस्वती ।।३
यज्ञविद्या महाविद्या गुह्यविद्या च शोभने ।
आत्मविद्या च देवि त्वं विमुक्तिफलदायिनी ।।४
आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिस्त्वमेव च ।
सौम्या सौम्यं[1] जगद्रूपं त्वयैतद्देवि पूरितम् ।।५

अयि लोकपावनि ! तुम सिद्धि हो, तुम स्वधा हो, तुम स्वाहा हो । तुम्ही सन्ध्या हो, तुम्ही रात्रि हो, तुम्हीं प्रभा हो, तुम्हीं ऐश्वर्य हो, मेधा हो, श्रद्धा एवं सरस्वती हो । तुम्ही यज्ञविद्या, महाविद्या तथा गुह्यविद्या हो । अयि सुन्दरि ! तुम्हीं आत्मविद्या तथा मोक्ष फल को देने वाली हो । आवीक्षिकी (तर्कशास्त्र) (वेद) त्रयी वार्ता, दण्डनीति तथा सौम्यरूपा हो । अयि देवि ! यह सम्पूर्ण जगत् तुम्हीं से व्याप्त है, अतः यह भी सौम्य है ।३-५।

का त्वन्या त्वामृते देवि सर्वयज्ञमयं वपुः ।
अध्यास्ते देवदेवस्य योगिचिन्त्यं गदाभृतः ।।६
त्वया देवि परित्यक्तं सकलं भुवनत्रयम् ।
विनष्टप्रायमभवत्त्वयेदानीं समेधितम् ।।७

अयि देवि ! तुम्हारे अतिरिक्त है ही कौन ? देवाधिदेव गदाधारी विष्णु के सर्वयज्ञमय और योगियों के द्वारा ध्येय शरीर पर तुम्हीं विराजमान रहती हो । अयि देवि ! तुम्हारे द्वारा परित्यक्त होकर ये तीनों लोक नष्टप्राय हो गये थे । इन्हें इस समय तुम्हीं ने सम्हाल रखा है ।६-७।

दाराः पुत्रास्तथाऽगारं सुहृद्धान्यधनादिकम् ।
भवत्येतन्महाभागे नित्यं त्वद्वीक्षणान्नृणाम् ।।८

---

१ ख. ग. घ. छ. 'सौम्यैर्जगद्रूपैस्त्वयै' ।

शरीरारोग्यमैश्वर्यमरिपक्षक्षयः सुखम् ।
देवि त्वद्दृष्टिदृष्टानां पुरुषाणां न दुर्लभम् ॥९
त्वमम्बा सर्वभूतानां देवदेवो हरिः पिता ।
त्वयैतद्विष्णुना चाम्ब जगद्व्याप्तं चराचरम् ॥१०

अयि महाभागे ! तुम जिस पर कृपादृष्टि डालती हो उसे स्त्री, पुत्र, घर, मित्र, धान्य, आरोग्य, ऐश्वर्य, रिपुक्षय तथा सुख की प्राप्ति हो जाती है । देवि ! तुम्हारी कृपादृष्टि को प्राप्त कर लेने पर पुरुषों के लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता है । तुम सभी प्राणियों की माता हो और भगवान् विष्णु पिता हैं । तुमने और भगवान् विष्णु ने चराचर जगत् को व्याप्त कर रखा है ।८-१०।

मानं कोषं तथा कोष्ठं मा गृहं मा परिच्छदम् ।
मा शरीरं कलत्रं च त्ययेथाः सर्वपानिनि ॥११
मा पुत्रान्मा सुहृद्वर्गान्मा पशून्मा विभूषणम् ।
त्यजेथा मम देवस्य विष्णोर्वक्षःस्थलालये ॥१२
[1]सत्येन समशौचाभ्यां तथा शीलादिभिर्गुणैः ।
त्यज (ज्य) न्ते नराः सद्यः संत्यक्ताः ये त्वयामले ॥१३
त्वयाऽवलोकिताः सद्यः शीलाद्यैरखिलैर्गुणैः ।
कुलैश्वर्यैश्च युज्यन्ते पुरुषा निर्गुणा अपि ॥१४

अयि सबको पवित्र करने वाली ! तुम मेरे मान, कोष, कवच, गृह, साधन, शरीर तथा स्त्री को न छोड़ो । अयि विष्णु के वक्षःस्थल पर रहने वाली । मेरे पुत्र, मित्र, पशु तथा आभूषणों का भी परित्याग न करो । अयि निर्मले ! जिसे तुम छोड़ देती हो, वह तुरन्त सत्य, शौच, सम तथा शील आदि गुणों से वंचित हो जाता है परन्तु तुम जिस गुणहीन पुरुष की ओर भी दृष्टिपात कर देती हो, वह तुरन्त शील आदि समस्त गुणों, (अच्छे) कुल और ऐश्वर्य से सम्पन्न हो जाता है ।११-१४।

स श्लाध्यः स गुणी धन्यः स[2] कुलीनः स बुद्धिमान् ।
स शूरः स च विक्रान्तो[3] यस्त्वया देवि वीक्षितः ॥१५

---

१ छ. सत्त्वेन सत्यशौ° । २ क. ङ. स शूरः स च पण्डितः । गुणवान्स च ।
३ ख. ग. विख्यातो ।

सद्यो वैगुण्यमायान्ति शीलाद्याः सकला गुणाः ।
पराङ्मुखी जगद्धात्री यस्य त्वं विष्णुवल्लभे ॥१६
न ते वर्णयितुं शक्ता गुणाज्जिह्वाऽपि वेधसः ।
प्रसीद देवि पद्माक्षि ना (माऽ) स्मांस्त्याक्षीः कदाचन ॥१७

अयि देवि । तुम जिसकी ओर देख लेती हो, वह श्लाघ्य, गुणी, धन्य, कुलीन, बुद्धिमान्, शूर तथा पराक्रमी हो जाता है । अयि विष्णुप्रिये ! तुम संसार को धारण करने वाली हो अतः तुम जिससे पराङ्मुखी हो जाती हो, उसके शील आदि सम्पूर्ण गुण भी तुरन्त अवगुण बन जाते हैं । अयि देवि ! ब्रह्मा की जिह्वा भी तुम्हारे गुणों का वर्णन नहीं कर सकती है । अयि कमल-नयने ! तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो जाओ और मुझे कभी न छोड़ो ।१५-१७।

पुष्कर उवाच—
एवं स्तुता ददौ श्रीश्च वरमिन्द्राय चेप्सितम् ।
सुस्थिरत्वं च राज्यस्य सङ्ग्रामविजयादिकम् ॥१८
स्वस्तोत्रपाठश्रवणकर्तॄणां भुक्तिमुक्तिदम् ।
श्रीस्तोत्रं सततं तस्मात्पठेच्च शृणुयान्नरः ॥१९

पुष्कर बोले—इस प्रकार स्तुति करने पर लक्ष्मी ने इन्द्र को राज्य की स्थिरता और संग्रामविजय आदि अभीष्ट वर प्रदान किया । जो मनुष्य इस स्तोत्र का पाठ और श्रवण करता है, उसे भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है, इसलिए इसमें श्रीस्तोत्र का सदा पाठ और श्रवण करना चाहिए ।१८-१९।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये श्रीस्तोत्रकथनं नाम सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२३७

अथाष्टत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

रामोक्तनीतिः

अग्निरुवाच—
नीतिस्ते पुष्करोक्ता तु रामोक्ता लक्ष्मणाय या ।
जयाय तां प्रवक्ष्यामि शृणु धर्मादिवर्धिनीम् ॥१

अग्निदेव बोले—राम ने लक्ष्मण को जो नीति बताई थी और पुष्कर ने जिसे परशुराम से कहा था, धर्म आदि को बढ़ाने वाली उस नीति को मैं तुम्हें बतलाऊँगा ।१

राम उवाच—

न्यायेनार्जनमर्थस्य वर्धनं रक्षणं चरेत् ।
सत्पात्रप्रतिपत्तिश्च राजवृत्तं चतुर्विधम् ॥२
नयस्य विनयो मूलं विनयः शास्त्रनिश्चयात् ।
विनयो हीन्द्रियजयस्तैर्युक्तः पालयेन्महीम् ॥३

राम ने कहा—राजा का कर्तव्य चार प्रकार का हुआ करता है—न्यायपूर्वक धनोपार्जन करना, उसे बढ़ाना, उसकी रक्षा करना और उसे सत्पात्र को (दान में) देना । नीति का मूल विनय है । विनय शास्त्र चिन्तन से प्राप्त होता है । विनय ही इन्द्रियों पर विजय (प्राप्त करता) है (अतएव) इनसे युक्त होकर (ही) पृथ्वी का पालन करना चाहिए ।२-३।

शास्त्रं प्रज्ञा धृतिर्दाक्ष्यं प्रागल्भ्यं धारयिष्णुता ।
उत्साहो वाग्मितौदार्यमापत्कालसहिष्णुता ॥४
प्रभावः शुचिता मैत्री त्यागः सत्यं कृतज्ञता ।
कुलं शीलं दमश्चेति गुणाः सम्पत्तिहेतवः ॥५
प्रकीर्णविषयारण्ये धावन्तं विप्रमाथिनम् ।
ज्ञानाङ्कुशेन कुर्वीत वश्यमिन्द्रियदन्तिनम् ॥६

शास्त्र, प्रजा, धैर्य, दक्षता, प्रौढ़ता, धारण करने की शक्ति, उत्साह, वाचालता, उदारता, आपत्ति कालीन सहिष्णुता, प्रभाव, शुचिता, मैत्री, त्याग, सत्य, कृतज्ञता, कुल, शील तथा दम—ये गुण सम्पत्ति के हेतु हुआ करते हैं । विषय रूपी गहन वन में दौड़ने वाले मदमत्त इन्द्रिय रूपी हाथी को ज्ञानरूपी अंकुश के वश में करते रहना चाहिए ।४-६।

कामः क्रोधस्तथा लोभो हर्षो मानो मदस्तथा ।
षड्वर्गमुत्सृजेदेनमस्मिंस्त्यक्ते सुखी नृपः ॥७
आन्वीक्षिकीं त्रयीं वार्तां दण्डनीतिं च पार्थिवः ।
तद्विद्यैस्तत्क्रियोपेतैश्चिन्तयेद्विनयान्वितः ॥८

काम, क्रोध, लोभ, हर्ष, मान, मद—इन छह का परित्याग कर देना चाहिए । क्योंकि इनका परित्याग कर देने पर ही राजा सुखी होता है । राजा

को आन्वीक्षिकी (तर्क शास्त्र) (वेद) त्रयी, वार्ता और दण्डनीति के ज्ञाता तथा उनके अभ्यास करने वाले पुरुषों से विनय पूर्वक उनकी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए ।७-८।

आन्वीक्षिक्याऽर्थविज्ञानं धर्माधर्मों त्रयीस्थितौ ।
अर्थानर्थों तु वार्तायां दण्डनीत्या नयानयौ ॥९
अहिंसा सूनृता वाणी सत्यं शौचं दया क्षमा ।
वर्णिनां लिङ्गिनां चैव सामान्यो धर्म उच्यते ॥१०

आन्वीक्षिकी से अर्थज्ञान, वेद (त्रयी) से धर्म-अधर्म का ज्ञान, वार्ता से अर्थ-अनर्थ का ज्ञान और दण्डनीति से नीति-अनीति का ज्ञान होता है। अहिंसा, प्रिय और सत्यवचन, पवित्रता, इन्द्रिय दमन तथा क्षमा—यह ब्रह्मचारियों और संन्यासियों का सामान्य धर्म कहा गया है ।९-१०।

प्रजाः समनुगृह्णीयात्कुर्यादाचारसंस्थितिम् ।
वाक्सूनृता दयादानं हीनोपगतरक्षणम् ॥११
इतिवृत्तं सतां साधुहितं सत्पुरुषव्रतम् ।
आधिव्याधिपरीताय अद्य श्वो वा विनाशिने ॥१२
को हि राजा शरीराय धर्मापेतं समाचरेत् ।
न हि स्वसुखमन्विच्छन्पीडयेत्कृपणं जनम् ॥१३
कृपणः पीड्यमानो हि मन्युना हन्ति पार्थिवम् ।
क्रियतेऽभ्यर्हणीयाय स्वजनाय यथाऽञ्जलिः ॥१४
ततः साधुतरः कार्यो दुर्जनायशिवार्थिना ।
प्रियमेवाभिधातव्यं सत्सु नित्यं द्विषत्सु च ॥१५
देवास्ते प्रियवक्तारः पशवः क्रूरवादिनः ।
शुचिरास्तिक्यपूतात्मा पूजयेद्देवताः सदा ॥१६

राजा को प्रजा के ऊपर अनुग्रह, (देश के) आचारानुकूल आचरण, सत्य, दया, दान, दीनदुःखियों की रक्षा और सज्जनों का हित करना—ये ही सत्पुरुष का धर्म है। ऐसा कौन सा राजा है जिसे आधिव्याधि से युक्त और आज या कल नष्ट होने वाले शरीर के लिए धर्म के विरुद्ध आचरण करना चाहिए? अपने सुख की इच्छा से किसी दीन जन को सताना नहीं चाहिए क्योंकि सताये हुये दीन (जन) के क्रोध से राजा का सर्वनाश हो जाता है। जिस प्रकार किसी अपने ही पूज्य व्यक्ति के लिए हाथ जोड़कर व्यवहार किया जाता है

उससे भी अधिक विनम्रता से राजा को अपने कल्याण के लिए दुर्जन के साथ व्यवहार करना चाहिए। सज्जनों अथवा दुर्जनों से प्रिय वचन ही बोलना चाहिए क्योंकि देवता तो प्रियभाषी ही हुआ करते हैं और पशु कठोर वचन बोलने वाले। सदैव शुचि और आस्तिकता से पवित्र मन होकर देवपूजन करना चाहिए।११-१६।

देवतावद्गुरुजनमात्मवच्च सुहृज्जनम् ।
प्रणिपातेन हि गुरुं सतोऽमृषानुचेष्टितैः ।।१७
कुर्वीताभिमुखान्भृत्यैर्देवान्सुकृतकर्मणा ।
[1]सद्भावेन हरेन्मित्रं संभ्रमेण च बान्धवान् ।।१८
स्त्रीभृत्यान्प्रेमदानाभ्यां दाक्षिण्येनेतरं जनम् ।
अनिन्दा परकृत्येषु स्वधर्मपरिपालनम् ।।१९
कृपणेषु दयालुत्वं सर्वत्र मधुरा गिरः ।
प्राणैरप्युपकारित्वं मित्रायाव्यभिचारिणे ।।२०
गृहागते परिष्वङ्गः शक्त्या दानं सहिष्णुता ।
स्वसमृद्धिष्वनुत्सेकः परवृद्धिष्वमत्सरः ।।२१
अपरोपतापि वचनं मौनव्रतचरिष्णुता ।
बन्धुभिर्बद्धसंयोगः स्वजने चतुरश्रता ।।
उचितानुविधायित्वमिति वृत्तं महात्मनाम् ।।२२

देवता की तरह गुरुजनों को और अपनी तरह इष्टमित्रों को समझना चाहिए। प्रणाम से गुरु को, सत्य व्यवहार से सज्जनों को, पुण्य कर्मों से देवताओं को, सद्भावना से मित्र को, स्नेह से बन्धुओं, प्रेम और दान से क्रमशः स्त्री और सेवकों को तथा (सबके) अनुकूल व्यवहार से अन्य मनुष्यों को प्रसन्न करना चाहिए। दूसरों के कार्यों की निन्दा न करना, सबके साथ मधुरवाणी का व्यवहार, अव्यभिचारी मित्र का प्राणों से भी उपकार करना, घर में आये हुये का आदरपूर्वक आलिङ्गन करना, यथाशक्ति दान देना, सहिष्णुता, अपनी समृद्धि से ईर्ष्या न करना, दूसरों को उद्विग्न न करने वाली वाणी बोलना, मौन व्रत का आचरण करना, बन्धुओं के साथ मेल-मिलाप रखना, स्वजनों के प्रति उदारता और उचित कार्य करना—ये सब सज्जनों के गुण हुआ करते हैं।१७-२२।

---

१ क. ङ. स्वभावेन।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रामोक्तनीतिकथनं नामाष्ट-
त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२३८

अथैकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः
राजधर्माः

राम उवाच —

स्वाम्यमात्यश्च राष्ट्रं च दुर्गः कोषो वलं सुहृत् ।
परस्परोपकारीदं सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ॥१

राम वोले—राजा, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोष, वल तथा मित्र—ये सातों राज्य के अङ्ग हैं, जो परस्पर उपकारक हुआ करते हैं ।१

राज्याङ्गानां वरं राष्ट्रं साधनं पालयेत्सदा ।
कुलं शीलं वयः सत्त्वं दाक्षिण्यं क्षिप्रकारिता ॥२
अविसंवादिता सत्यं वृद्धसेवा कृतज्ञता ।
दैवसम्पन्नता बुद्धिरक्षुद्रपरिवारता ॥३
शक्यसामन्तता चैव तथाच दृढभक्तिता ।
दीर्घदर्शित्वमुत्साहः शूचिता स्थूललक्षिता ॥४
विनीतत्वं धार्मिकता साधोश्च नृपतेर्गुणाः ।
प्रख्यातवंशमक्रूरं लोकसंग्राहिणं शुचिम् ॥५
कुर्वीताऽऽत्महिताकाङ्क्षी परिचारं महीपतिः ॥५½

राज्य के अङ्गों में राजा और मन्त्री के वाद राष्ट्र प्रधान एवं अर्थ का साधन है, अतः उसका सदा पालन करना चाहिये । (इन अङ्गों में पूर्व-पूर्व अङ्ग पर की अपेक्षा श्रेष्ठ है । कुलीनता, सत्त्व (व्यसन और अभ्युदय में भी निर्विकार रहना), युवावस्था, शील, दाक्षिण्य, शीघ्रकारिता, अविसंवादिता, सत्य, वृद्धसेवा, कृतज्ञता, दैवसम्पन्नता, बुद्धि, अक्षुद्र, परिवारता, शक्य-सामन्तता, दृढभक्तिता, दीर्घदर्शिता, उत्साह, शुद्धचित्तता, स्थूललक्षता, विनीतता और धार्मिकता—ये अच्छे आभिगामिक गुण हैं । जो प्रसिद्ध कुल में उत्पन्न, क्रूरतारहित, गुणवान् पुरुषों का संग्रह करने वाले तथा पवित्र (शुद्ध) हों, राजा का हितचिन्तक परिचारक वनाये ।२-५½।

वाग्मी प्रगल्भः स्मृतिमानुदग्रोबलवान्वशी ॥६
नेता दण्डस्य निपुणः कृतशिल्पपरिग्रहः ।
पराभियोगप्रसहः सर्वदुष्टप्रतिक्रिया ॥७
परवृत्तान्तवेत्ता च संधिविग्रहतत्त्ववित् ।
गूढमन्त्रप्रचारज्ञो देशकालविभागवित् ॥८
आदाता सम्यगर्थानां विन (नि) योक्ता च पात्रवित् ।
क्रोधलोभभयद्रोहदम्भचापलवर्जितः ॥९
परोपतापपैशू (शु) न्यमात्सर्येर्षा (र्ष्या) नृतातिगः ।
वृद्धोपदेशसंपन्नः शक्तो मधुरदर्शनः ॥१०
गुणानुरागस्थितिमानात्मसंपद्गुणाः स्मृताः ॥१०½

वाक्चतुर, प्रगल्भ, स्मरण शक्ति वाला, उत्साही, बलवान्, (इन्द्रियों को) वश में करने वाला, दण्ड देने मे निपुण, शिल्प आदि वेत्ता, दूसरों के लगाये हुये अभियोग को सहन कर सकने वाला, सभी दुष्टों को दण्ड दे सकने वाला, दूसरों के वृत्तान्त को जानने वाला, सन्धि विग्रह के रहस्य को समझने वाला, गूढ़ मन्त्रणा और प्रचार का ज्ञाता, देश काल के विभाग का ज्ञान रखने वाला, सम्यक् प्रकार से धन प्राप्त करने वाला, (दूसरों से) काम लेने वाला पात्र को समझने वाला, क्रोध, लोभ, भय, द्रोह, दम्भ तथा चञ्चलता से रहित, दूसरे को कष्ट न देने वाला, पिशुनता, मात्सर्य, ईर्ष्या तथा असत्य से अलग रहने वाला, वृद्धों के उपदेश से युक्त, मधुरदर्शी, समर्थ, प्रियदर्शी और गुणानुरागी राजा श्रेष्ठ है। इस प्रकार राजा के आत्म-सम्पत्ति-सम्बन्धी गुण बताये गये है।६-१०½ ।

कुलीनाः शुचयः शूराः श्रुतवन्तोऽनुरागिणः ॥११
दण्डनीतेः प्रयोक्तारः सचिवाः स्युर्महीपतेः ।
सुविग्रहो जानपदः कुलशीलकलान्वितः[२] ॥१२
वाग्मी प्रगल्भश्चक्षुष्मानुत्साही प्रतिपत्तिमान् ।
स्तम्भचापलहीनश्च मैत्रः क्लेशसहः शुचिः ॥१३
सत्यसत्त्वधृतिस्थैर्यप्रभावारोग्यसंयुतः ।
कृतशिल्पश्च दक्षश्च प्रज्ञावान्धारणान्वितः ॥१४
दृढभक्तिरकर्ता च वैराणां सचिवो भवेत् ॥१४½

---

१ क. ङ. शूरा गुणव° । २ क. ङ. °लगुणान्वि° ।

राजा के मन्त्रियों को कुलीन, पवित्र, शूर, शास्त्रज्ञ, अनुरागी और दण्ड-नीति में कुशल होना चाहिये। राजा का मन्त्री वह हो सकता है जो सन्धि-विग्रह आदि का ज्ञाता, कुल, शील तथा कला से युक्त, वाक्चतुर, प्रगल्भ, उत्साही, सोच समझकर काम करने वाला, बुद्धिमान्, सत्त्वता, तथा चपलता से वर्जित, मित्रवान्, क्लेश को सहन करने वाला, पवित्र, सत्य, पराक्रम, धैर्य, स्थिरता, प्रभाव और आरोग्य से सम्पन्न, शिल्प-कुशल, कार्यनिपुण, प्रज्ञावान्, धारणाशक्ति से युक्त, राजा के प्रति दृढ़भक्ति रखने वाला और वैरियों को न बढ़ाने वाला हो। ११-१४½।

स्मृतिस्तत्परताऽर्थेषु चित्तज्ञो ज्ञाननिश्चयः ॥१५
दृढता मन्त्रगुप्तिश्च मन्त्रिसंपत्प्रकीर्तिता।
त्रय्यां च दण्डनीत्यां च कुशलः स्यात्पुरोहितः ॥१६
अथर्व वेदविहितं कुर्याच्छान्तिकपौष्टिकम्।

स्मरणशक्ति, अर्थोपार्जन में तत्परता, दूसरे का आशय समझना, दृढ़निश्चय, मन्त्रणा को गुप्त रखना ये सब मन्त्रियों के गुण कहे गये हैं। पुरोहित को (वेद) त्रयी और दण्डनीति में कुशल होना चाहिए। उसे अन्य ब्राह्मणों के साथ, जो विद्या और चरित्र में उसके समान हों, अथर्ववेद में बतायी हुयी विधि से (राजा के कल्याण के लिए) यज्ञ (शान्ति, पौष्टिक) कराना चाहिये। १५-१६½।

साधुतैषाममात्यानां तद्विद्यैः सह बुद्धिमान् ॥१७
चक्षुष्मत्तां च शिल्पं च परीक्षेत गुणद्वयम्।
स्वजनेभ्यो विजानीयात्कुलं स्थानमवग्रहम्।१८
परिकर्मसुदक्षं च विज्ञानं धारयिष्णुताम्।
गुणत्रयं परीक्षेत प्रागल्भ्यं प्रीति (त) तां तथा ॥१९

मन्त्रियों की सूझबूझ और उनकी शिल्प-कुशलता की परीक्षा राजा को स्वयं कर लेनी चाहिये। किन्तु उनके कुल, स्थापना और स्वभाव का पता उन (मन्त्रियों) के स्वजनों से लगाना चाहिये। इसी प्रकार कार्यकुशलता, ज्ञान और सहिष्णुता-इन तीनों गुणों तथा प्रगल्भता और प्रेम की परीक्षा भी कर लेनी चाहिए। १७-१९।

कथायोगेषु बुध्येत वाग्मित्वं सत्यवादिताम्।
उत्साहं च प्रभावं च तथा क्लेशसहिष्णुताम् ॥२०

धृतिं चैवानुरागं च स्थैर्यं चाऽऽपदि लक्षयेत् ।
भक्तिं मैत्रीं च शौचं च जानीयाद् व्यवहारतः ॥२१
संवासिभ्यो बलं सत्त्वमारोग्यं शीलमेव च ।
अस्तब्धतामचापल्यं वैराणां चाप्यकीर्तनम् ॥२२
प्रत्यक्षतो विजानीयाद्भद्रतां क्षुद्रतामपि ।
फलानुमेयाः सर्वत्र परोक्षगुणवृत्तयः ॥२३

उनकी वाक्चतुरता तथा सत्यवादिता की परीक्षा वाग्व्यहार में और उनके उत्साह, प्रभाव, क्लेश-सहिष्णुता, धैर्य, अनुराग और स्थैर्य की परीक्षा आपत्तिकाल में कर लेनी चाहिये। भक्ति, मैत्री तथा पवित्रता की परख व्यवहार से करनी चाहिये तथा उनके बल, सत्त्व, आरोग्य, शील, शठता, चपलता और शत्रु की प्रशंसा न करने के गुण को सहवासियों से जानना चाहिये। उनकी भद्रता और क्षुद्रता को प्रत्यक्ष व्यवहार से और परोक्ष में किये गये व्यवहार की परीक्षा उनके परिणाम से करनी चाहिये।२०-२३।

सस्याकरवती पुण्या खनिद्रव्यसमन्विता ।
गोहिता भूरिसलिला पुण्यैर्जनपदैर्युता ॥२४
रम्या सकुञ्जरबला वारिस्थलपथान्विता ।
अदेवमातृका चेति शस्यते भूरिभूतये ॥२५

राज्यभूमि वही होती है, जहाँ अन्न प्रचुरता से उपजता हो, खानें पर्याप्त हों, गौओं के लिये चरागाह हो, जल पर्याप्त (मात्रा में) हो, सुन्दर देश बसे हुए हों, जो हाथी, घोड़े, मार्ग, जल-स्थल और नदियों से युक्त हों तथा जो (जलवृष्टि आदि) दैवीकार्यों पर निर्भर न हो। २४-२५।

शूद्रकारुवणिक्प्रायो महारम्भः कृषीवलः ।
सानुरागो रिपुद्वेषी पीडासकहरः पृथुः ॥२६
नानादेश्यैः समाकीर्णो धार्मिक पशुमान्बली ।
ईदृग्जनपदः शस्ताऽमूर्खव्यसनिनायकः ॥२७
पृथुसीमं महाखातमुच्चप्राकारतोरणम्[1] ।
पुरं समावसेच्छैलसरिन्मरुवनाश्रयम्[2] ॥२८

१ क. ङ. °रगोपुरम्। २ क. ङ. °रित्सहवलाश्र° ।

जहाँ शूद्र, कारीगर तथा बनिये रहते हों, खेती अच्छी तरह की जाती हो; जहाँ के निवासी परस्पर अनुरक्त, शत्रुओं से द्वेष करने वाले, पीड़ा को सहन करने वाले हों, जो बहुत विस्तृत हो, जहाँ अनेक देशों के लोग रहते हों, प्रजा, धार्मिक, बली तथा पशु आदि से सम्पन्न हो और जहाँ का मुखिया विद्वान् हो किन्तु व्यसनी न हो। नगर ऐसा होना चाहिये जिसकी सीमा लम्बी-चौड़ी हो, चारों तरफ गहरी-गहरी खाइयाँ खुदी हों, ऊँची-ऊँची चहार-दीवारियाँ तथा ऊँचे-ऊँचे फाटक हों और वह नगर, पर्वत पर अथवा नदी, मरुस्थल और वन के समीप बसा हो। २६-२८।

जलवद्धान्यधनवद्दुर्गं कालसहं महत्।
औदकं पार्वतं वार्क्षमैरिणं धन्विनं च षट् ॥२९
ईप्सितद्रव्यसंपूर्णः पितृपैतामहोचितः।
धर्मार्जितो व्ययसहः कोषो धर्मादिवृद्धये ॥३०

जल, पर्वत, वृक्ष, निर्जन स्थान तथा रेगिस्तान में बना हुआ दुर्ग पर्याप्त जल तथा धन-धान्य से युक्त होना चाहिये, जिससे (विपत्तिकाल में) वहाँ बहुत समय व्यतीत किया जा सके। कोष (खजाना) ऐसा होना चाहिये जिसमें न्याय से सञ्चित अभीष्ट धनराशि हो, जो पिता, पितामह आदि के काल से ही चलता आ रहा हो और जिसे व्यय किया जा सके। ऐसा कोष धर्म आदि की वृद्धि के लिये हुआ करता है। २९-३०।

पितृपैतामहो वश्यः संहतो दत्तवेतनः।
विख्यातपौरुषो जन्यः कुशलः शकुनैर्वृतः ॥३१
नानाप्रहरणोपेतो नानायुद्धविशारदः।
नानायोधसमाकीर्णो नीराजितहयद्विपः ॥३२
प्रवासायासदुःखेषु युद्धेषु च कृतश्रमः ॥
अद्वैधक्षत्रियप्रायो दण्डो दण्डवतां मतः ॥३३
योगविज्ञानसत्त्वाढ्यं महापक्षं प्रियंवदम्।
आयतिक्षममद्वैधं मित्रं कुर्वीत सत्कुलम् ॥३४

दण्डशास्त्र के वेत्ताओं के अनुसार दण्ड देने वाला ऐसा होना चाहिये जो पिता-पितामह से चला आ रहा हो, वश में रहने वाला हो, मेलमिलाप वाला

हो, वैतनिक हो, जिसका पौरुष विख्यात हो, सत्कुल में उत्पन्न कुशल और (नाना प्रकार के) पक्षियों से युक्त हो, नाना प्रकार के शस्त्रों को धारण करने वाला हो, विभिन्न युद्धों में निपुण हो, विभिन्न योद्धाओं से घिरा हुआ हो, हाथी-घोड़ों का संग्रह करने वाला हो, जिसने विदेशवास, परिश्रम के कार्यों (विभिन्न) दुःखों और युद्धों में परिश्रम किया हो और जिसमें द्विविधा न हो, उसे प्रायः क्षत्रिय जाति का होना चाहिये। मित्र ऐसा होना चाहिए जो योग, विज्ञान तथा सत्त्व गुण से सम्पन्न, पक्ष लेने वाला हो, प्रियवक्ता, विपत्ति में साथ देने वाला और सत्कुलीन हो।३१-३४।

दूरादेवाभिगमनं स्पष्टार्थहृदयानुगा।
वाक्सत्कृत्य प्रदानं च त्रिविधो मित्रसंग्रहः ॥३५
धर्मकामार्थसंयोगो मित्रात्तु त्रिविधं फलम्।
औरसं तत्र संनद्धं तथा वंशक्रमागतम् ॥३६
रक्षितं व्यसनेभ्यश्च मित्रं ज्ञेयं चतुर्विधम्।
मित्रे गुणाः सत्यताद्याः समानसुखदुःखता ॥३७

दूर से ही अगवानी करना, हृदय खोलकर बात करना और सत्कारपूर्वक (उपहार आदि) प्रदान करना—ये तीन मित्रसंग्रह के उपाय हैं। मित्र से धर्म, अर्थ, काम ये तीन फल मिलते हैं। मित्र चार प्रकार के होते हैं—एक औरस (पुत्र या सगोत्र), दूसरा संनद्ध (सदा साथ रहने वाला) तीसरा वंशक्रमानुगामी और चौथा व्यसनों से छुड़ाने वाला। सुख-दुःख में समान रूप से भाग लेना तथा सत्य व्यवहार करना—ये मित्र के गुण हैं।३५-३७।

वक्ष्येऽनुजीविनां वृत्तं सेवी सेवेत भूपतिम्।
दक्षता भद्रता दार्ढ्यं क्षान्तिः क्लेशसहिष्णुता ॥३८
सन्तोषः शीलमुत्साहो मण्डयत्यनुजीविनम्।
यथाकालमुपासीत राजानं सेवको नयात् ॥३९
परस्थानगमं क्रौर्यमौद्धत्यं मत्सरंत्येजेत्।
विगृह्य कथनं भृत्यो न कुर्याज्ज्यायसा सह ॥४०
गुह्यं मर्म च मन्त्रं च न च भर्तुः प्रकाशयेत्।
रक्ताद्वृत्तिं समीहेत विरक्तं संत्यजेन्नृपम् ॥४१

अब मैं राजा के अनुजीवियों के कर्तव्यों को बताऊँगा। (पहले तो) सेवक को राजा की सेवा करनी चाहिये। दक्षता, भद्रता, दृढ़ता, क्षमाशीलता, क्लेश-

सहिष्णुता, सन्तोष, शील तथा उत्साह—ये गुण सेवक को (और भी) विभूषित करते हैं। सेवक को नीति के अनुसार अवसरानुकूल राजा की सेवा करनी चाहिये। उसे (अपने कार्यकाल में) कहीं अन्यत्र जाना नहीं चाहिये और क्रूरता, औद्धत्य तथा मात्सर्य को छोड़ देना चाहिये। सेवक को अपने से श्रेष्ठ के साथ बढ़-बढ़कर बातचीत नहीं करनी चाहिये। स्वामी की गुप्त, रहस्यपूर्ण और मन्त्रणा की बातों को प्रकट नहीं करना चाहिये। अनुरक्त राजा से ही चाकरी की इच्छा करनी चाहिये और (अपने से) विरक्त राजा का परित्याग कर देना चाहिये।३८-४१।

अकार्ये प्रतिषेधश्च कार्ये चापि प्रवर्तनम्।
संक्षेपादिति सद्वृत्तिं बन्धुमित्रानुजीविनाम्॥४२
आजीव्यः सर्वसत्त्वानां राजा पर्जन्यवद्भवेत्।
आयद्वारेषु चाऽऽप्त्यर्थं धनं चाऽऽददतीति च॥४३
कुर्यादुद्योगसम्पन्नानध्यक्षान्सर्वकर्मसु।
कृषिर्वणिक्पथो दुर्गं सेतुः कुञ्जरबन्धनम्॥४४
खन्याकरबलादानं शून्यानां च निवेशनम्।
अष्टवर्गमिमं राजा साधुवृत्तोऽनुपालयेत्॥४५

उसे अकार्य का परित्याग और कर्तव्य का ग्रहण करना चाहिये। संक्षेप में बन्धु, मित्र और सेवक का यही आचरण होना चाहिये। राजा को समस्त प्राणियों के लिये मेघ के समान जीवन देने वाला होना चाहिये। उसे आय के स्रोतों से धन प्राप्त करके (पुनः प्रजा के कल्याण के लिये प्रजा को ही) दे देना चाहिये। उसे उद्योगी व्यक्तियों को सभी कार्यों का अध्यक्ष बनाना चाहिये। सदाचारी राजा को कृषि, व्यापार, दुर्ग, सेतु (पुल), हाथी फँसाने का वन, खान, सेना तथा सुरंग—इन अष्टवर्गों की रक्षा करनी चाहिये।४२-४५।

आयुक्तिकेभ्यश्चौरेभ्यः पौरेभ्यो राजवल्लभात्।
पृथिवीपतिलोभाच्च प्रजानां पञ्चधा भयम्॥४६
अवेक्ष्यैतद्भयं काल आददीत करं नृपः।
अभ्यन्तरं शरीरं स्वं वा (वा) ह्यं राष्ट्रं च रक्षयेत्॥४७
दण्ड्यांस्तान्दण्डयेद्राजा स्वं रक्षेच्च विषादितः।
स्त्रियः पुत्रांश्च शत्रुभ्यो विश्वसेन्न कदाचन॥४८

प्रजा को इन पाँच से भय रहा करता है—शस्त्र धारण करने वाले, चोर राजकर्मचारी, राजा के प्रियजन और बाहरी राजा का लोभ। इस भय को देखते हुए राजा को कर लेकर उसे अपनी तथा राष्ट्र की आन्तरिक एवं वाह्य रूप से रक्षा करनी चाहिये। राजा को दण्ड के योग्य मनुष्यों को दण्ड देना चाहिये और विष आदि से अपनी, अपनी स्त्रियों और अपने पुत्रों की रक्षा करनी चाहिये। उसे शत्रुओं का विश्वास कभी नहीं करना चाहिये।४६-४८।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये राजधर्मकथनं नामैकोन-चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।२३६

अथ चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

षाड्गुण्यम्

राम उवाच—

मण्डलं चिन्तयेन्मुख्यं राजा द्वादशराजकम्।
अरिर्मित्रमरेर्मित्रं मित्रमित्रमतः परम्॥१
तथाऽरिमित्रमित्रं च विजिगीषोः पुरः स्मृताः।
पार्ष्णिग्राहः स्मृतः पश्चादाक्रन्दस्तदनन्तरम्॥२
आसारावनयोश्चैवं विजिगीषोश्च मण्डलम्।
अरेश्च विजिगीषोश्च मध्यमो भूम्यनन्तरः॥३
अनुग्रहे संहतयोर्निग्रहे व्यस्तयोः प्रभुः।
मण्डलाद्वहिरेतेषामुदासीनो बलाधिकः॥४

राम बोले—राजा को सदैव वारह राजाओं के मण्डल (बलावल) का विचार करते रहना चाहिये। विजयाकांक्षी राजा के सम्मुख परस्पर मिले हुए राज्यों में मित्र-अमित्र का व्यवहार इस क्रम से करना चाहिये—उस राजा को जिसका राज्य विजयाकांक्षी राजा के राज्य की सीमा से मिला हुआ हो, शत्रु समझना चाहिये, उस राज्य से भी दूर रहने वाले राजा को मित्र का मित्र समझना चाहिये और उससे भी अधिक दूर रहने वाले राजा को शत्रु के मित्र का मित्र समझना चाहिये। विजयाकांक्षी राजा के सहित इन छह

राजाओं का अर्ध (राज) मण्डल कहा जाता है। पार्ष्णिग्राह (जिसका राज्य विजयाकांक्षी राजा के पीछे की सीमा से मिला हो) को शत्रु समझना चाहिये, आक्रन्द (जिसका राज्य उससे दूर हो) को मित्र समझना चाहिये और आक्रन्दा-सार (वह राजा जिसका राज्य उससे भी दूर हो) को मित्र आक्रन्द राजा का मित्र समझना चाहिये। असार (उससे भी दूरवर्ती राज्य के स्वामी) को वैरी पार्ष्णिग्राह का मित्र समझना चाहिये और आक्रन्दासार (वह राजा जिसका राज्य उससे भी दूर हो) आक्रन्दराजा का मित्र समझना चाहिये। वह राजा जिसका राज्य विजयाकांक्षी राजा और शत्रु के राज्य के बीच में हो, मध्यम कहलाता है। वह राजा, जो इन द्वादश राजाओं के मण्डल से बाहर रहता है, सबको एक साथ या अलग-अलग हरा सकता है, उदासीन कहलाता है।१-४।

अनुग्रहे संहतानां व्यस्तानां च वधे प्रभुः।
सन्धिं च विग्रहं यानमासनादि वदामि ते ॥५
बलवद्विगृहीतेन संधिं कुर्याच्छिवाय च।
कपाल उपहारश्च संतानः संगतस्तथा ॥६
उपन्यासः प्रतीकारः संयोगः पुरुषान्तरः।
अदृष्टनर आदिष्ट आत्माऽपि स उपग्रहः ॥७
परिक्रमस्तथा छिन्नस्तथा च परदूषणम्।
स्कन्धोपनेयः संधिश्च संधयः षोडशेरिताः ॥८

अब मैं सन्धि विग्रह, यान, आसन आदि के सम्बन्ध में तुमसे बतलाऊँगा। यदि अपने से बलवान् के साथ युद्ध छिड़ गया हो तो उससे सन्धि कर लेने में ही कल्याण है। संधि के सोलह भेद हैं—कपाल, उपहार, संतान, संगत, उपन्यास, प्रतीकार, संयोग, पुरुषान्तर, अदृष्टनर, आदिष्ट, आत्मा, उपग्रह, परिक्रम, छिन्न, परदूषण और स्कन्धोपनेय।५-८।

परस्परोपकारश्च मैत्रः सम्बन्धकस्तथा।
उपहाराश्च चत्वारस्तेषु मुख्याश्च संधयः ॥९
बालो वृद्धो दीर्घरोगस्तथा बन्धुबहिष्कृतः।
भीरुको भीरुकजनो [1]लुब्धो लुब्धजनस्तथा ॥१०
विरक्तप्रकृतिश्चैव विषयेष्वतिशक्तिमान्।
अनेकचित्तमन्त्रश्च देवब्राह्मणनिन्दकः ॥११

---

१ क. ङ. भीरुजनको।

दैवोपहतकश्चैव दैवनिन्दक एव च ।
दुर्भिक्षव्यसनोपेतो बलव्यसनसंकुलः ॥१२
स्वदेशस्थो बहुरिपुर्मुक्तः कालेन यश्च ह ।
सत्यधर्मव्यपेतश्च विंशतिः पुरुषा अमी ॥१३
एतैः सन्धिं न कुर्वीत विगृह्णीयात्तु केवलम् ।

उनमें मुख्य सन्धियाँ चार हैं—परस्पर उपकार, मित्रता, सम्बन्ध तथा उपहार। बालक, वृद्ध, दीर्घरोगी, बन्धुबहिष्कृत, डरपोक, कायरता उत्पन्न करने वाले, लोभी, प्रलोभित, विरक्त स्वभाववाले, विषयासक्त, अस्थिर चित्त से विचार करने वाले, देव ब्राह्मण-निन्दक, अभागे, भाग्य को न मानने वाले, दुर्भिक्ष से पीड़ित, अपने बल का अनुचित प्रयोग करने वाले, अपने देश से न निकलने वाले, शत्रुओं से घिरे रहने वाले, समय के प्रतिकूल कार्य करने वाले और सत्य तथा धर्म का परित्याग कर देने वाले—ये बीस प्रकार के पुरुष ऐसे हैं जिनके साथ सन्धि नहीं करनी चाहिये, केवल विग्रह ही करना चाहिये ।९-१३½।

[1]परस्परापकारेण पुंसां भवति विग्रहः ॥१४
आत्मनोऽभ्युदयाकाङ्क्षी पीड्यमानः परेण वा ।
देशकालबलोपेतः प्रारभेतेह विग्रहम् ॥१५
राज्यस्त्रीस्थानदेशानां ज्ञानस्य च बलस्य च ।
अपहारो मदो मानः पीडा वैषयिकी तथा ॥१६
ज्ञानात्मशक्तिधर्माणां विघातो दैवमेव च ।
मित्रार्थं चापमानश्च तथा बन्धुविनाशनम् ॥१७
भूतानुग्रहविच्छेदस्तथा मण्डलदूषणम् ।
एकार्थाभिनिवेशित्वमिति विग्रहयोनयः ॥१८

परस्पर अपकार करने से मनुष्यों में विग्रह होता है। इस लोक में विग्रह उसे ही करना चाहिये, जो अपना अभ्युदय चाहता हो या दूसरे के द्वारा पीड़ित किया गया हो तथा जो देश काल (के ज्ञान) एवं बल से युक्त हो। राज्य, स्त्री, स्थान, देश, ज्ञान तथा बल का अपहरण, मद, मान, प्रजा को पीड़ा

---

१ क. ङ. °स्परोप° ।

देना, ज्ञान, आत्मशक्ति तथा धर्म का हनन, भाग्य, मित्र के लिये अपमान, बन्धु का विनाश, प्राणियों के ऊपर दया न करना, राजमण्डल को दूषित करना, एक ही चीज के ऊपर अड़े रहना—ये सब झगड़े की जड़ें हैं।१४-१८।

सापत्न्यं वास्तुजं स्त्रीजं वाग्जातमपराधजम्।
वैरं पञ्चविधं प्रोक्तं साधनैः प्रशमं नयेत्॥१९
किञ्चित्फलं निष्फलं वा संदिग्धफलमेव च।
तदात्वे दोषजननमायत्यां चैव निष्फलम्॥२०
आयत्यां च तदात्वे च दोषसंजननं तथा।
अपरिज्ञातवीर्येण परेण स्तोभितोऽपि वा॥२१
परार्थं स्त्रीनिमित्तं च दीर्घकालं द्विजैः सह।
अकालदैवयुक्तेन बलोद्धतसखेन च॥२२
तदात्वे फलसंयुक्तमायत्यां फलवर्जितम्।
आयत्यां फलसंयुक्तं तदात्वे निष्फलं तथा॥२३
इतीमं षोठशविधं न कुर्यादेव विग्रहम्।

वैर पाँच प्रकार का होता है—सापत्न्य भाव से उत्पन्न, द्रव्य के कारण उत्पन्न, वाणी से उत्पन्न तथा अपराध से उत्पन्न। इस वैर को, उपायों से शान्त कर देना चाहिये। जब विग्रह करने से बहुत अल्प फल मिले या कुछ भी फल न मिले, वर्तमान समय में उसे करने से बुरा परिणाम हो, भविष्य में भी वह निस्फल हो, वर्तमान तथा भविष्य दोनों कालों में बुरा ही परिणाम हो, अज्ञात शक्ति वाले शत्रु के द्वारा क्षुब्ध कर दिया गया हो, दूसरे के लिए, स्त्री के निमित्त, दुर्भाग्य के समय, बलाभिमानी मित्र के साथ तत्काल कुछ फल दिखाई दे किन्तु भविष्य में (फल की) सम्भावना न हो या भविष्य में यदि फल हो भी किन्तु तत्काल फल का अत्यन्त अभाव रहे, दीर्घकाल तक चलने वाला तथा द्विजों के साथ होने वाला—इन सोलह प्रकार की स्थितियों में विग्रह नहीं करना चाहिये।१९-२३½।

तदात्वायतिसंशुद्धं कर्म राजा सदाऽऽचरेत्॥२४
हृष्टं पुष्टं बलं मत्वा गृह्णीयाद्विपरीतकम्।
मित्रमाक्रन्द आसारो यदा स्युर्दृढभक्तयः॥२५
परस्य विपरीतं च तदा विग्रहमाचरेत्।
विगृह्य संधाय तथा संभूयाथ प्रसंगतः॥२६

उपेक्षया च निपुणैर्यानं पञ्चविधं स्मृतम् ।
परस्परस्य सामर्थ्यविघातादासनं स्मृतम् ॥२७
अरेश्च विजिगीषोश्च यानवत्पञ्चधा स्मृतम् ॥

राजा को ऐसा ही कर्म करना चाहिये जो वर्तमान तथा भविष्य दोनों में लाभदायक हो। जब सेना हृष्ट-पुष्ट हो तथा मित्र आक्रन्द और आसार राजा के प्रति भक्ति भाव रखते हों और उसके शत्रु इससे विपरीत परिस्थिति में हों तभी विग्रह करना चाहिये। सेना का प्रयाण पाँच परिस्थितियों में हुआ करता है—युद्ध के लिए, सन्धि के लिये, (किसी सेना के साथ मिलकर) प्रसंगवश अथवा (युद्ध में) निपुण लोगों के साथ (युद्ध की) उपेक्षा से। शत्रु और विजिगीषु के परस्पर सामर्थ्य के नष्ट हो जाने पर (सेनाओं के रुक जाने को) आसन कहा गया है। यान के समान आसन भी पाँच प्रकार का कहा गया है।२४-२७½।

वलिनोर्द्विषतोर्मध्ये वाचाऽऽत्मानं समर्पयन् ॥२८
द्वैधीभावेन निष्ठेत काकाक्षिवदलक्षितः ।
उभयोरपि सपाते सेवेत वलवत्तरम् ॥२९
यदा द्वावपि नेच्छेतां संश्लेषं जातसंविदौ ।
तदोपसर्पेत्तच्छत्रुमधिकं वा स्वयं व्रजेत् ॥३०
उच्छिद्यमानो बलिना निरुपायप्रतिक्रियः ।
कुलोद्भतं सत्यमार्यमासेवेत बलोत्कटम् ॥३१
तद्दर्शनोपास्तिकता नित्यं तद्भावभाविता ।
तत्कारितप्रश्रयिता वृत्तं संश्रयिणः श्रुतम् ॥३२

राजा को दो बलवान् शत्रुओं (की सेनाओं) के बीच अपनी उपस्थिति की घोषणा करते हुए आना चाहिए और वहाँ कौए की आँख के समान स्वयं अलक्षित रहते हुए दोनों सेनाओं को देखते रहना चाहिए। दोनों में संघर्ष छिड़ जाने पर दोनों में जो अधिक बलवान् हो, उसी का साथ करना चाहिए, यदि वे दोनों अपने-अपने साथ में न रहने दें तो उनके शत्रु से जा मिले; जो उनसे अधिक बलवान् हों। यदि बलवान् मनुष्य कुछ अपकार करे और उसकी प्रतिक्रिया करने की सामर्थ्य अपने में न हो तो उस व्यक्ति की शरण लेनी चाहिए जो सत्कुलोत्पन्न, प्रभावशाली और आर्य हो। शरणार्थी का यह कर्तव्य है कि उसे अपने आश्रयदाता का परमभक्त, आज्ञाकारी और कृतज्ञ होना चाहिए।२८-३२।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये षाड्गुण्यकथनं नाम चत्वारिंशदधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।२४०

अथैकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

सामादि

राम उवाच—

प्रभावोत्साहशक्तिभ्यां मन्त्रशक्तिः प्रशस्यते ।
प्रभावोत्साहवान्काव्यो जितो देवपुरोधसा ।।१

राम बोले—प्रभाव तथा उत्साह शक्ति से मन्त्र शक्ति श्रेष्ठ हुआ करती है, क्योंकि प्रभाववान् और उत्साहवान् शुक्राचार्य को बृहस्पति ने मन्त्रशक्ति के प्रभाव से जीत लिया था ।१

मन्त्रयेतेह कार्याणि नानाप्तैर्ना विपश्चिता ।
अशक्यारम्भवृत्तीनां कुतः क्लेशादृते फलम् ।।२
अविज्ञातस्य विज्ञानं विज्ञातस्य च निश्चयः ।
अर्थद्वैधस्य संदेहच्छेदनं शेषदर्शनम् ।।३
सहायाः साधनोपाया विभागो देशकालयोः ।
विपत्तेश्च प्रतीकारः पञ्चाङ्गो मन्त्र इष्यते ।।४

इस लोक में कार्यों के सम्बन्ध में अनात्मीय और अविद्वानों के साथ मन्त्रणा नही करनी चाहिए । विना क्लेश उठाये कठिन कार्य में फल की प्राप्ति नहीं हो सकती है । मंत्रणा के पाँच अङ्ग हुआ करते हैं—अविज्ञान का ज्ञान, ज्ञात का निश्चय, जहाँ पर द्विविधा हो वहाँ से सन्देह को हटाकर सहायता और साधनों के उपायों का निश्चय करना, (उचित) देशकाल का विभाग करना और विपत्ति से बचाव ।२-४।

मनः प्रसादं श्रद्धा च तथा कारणपाटवम् ।
सहायोत्थानसंपच्च कर्मणां सिद्धिलक्षणम् ।।५
मदः प्रमादः कामश्च सुप्तप्रलपितानि च ।
भिन्दन्ति मन्त्रं प्रच्छन्नाः कामिन्यो रमता तथा ।।६

प्रगल्भः स्मृतिवान्वाग्मी शस्त्रे शास्त्रे च निष्ठितः ।
अभ्यस्तकर्मा नृपतेर्दूतो भवितुमर्हति ॥७

मानसिक प्रसन्नता, श्रद्धा, साधनपटुता, साहाय्य तथा उत्थान—यह कर्मों की सिद्धि का लक्षण है। मद, प्रमाद, काम, सुप्तप्रलाप तथा रमणकाल में स्त्रियों का विश्वास करना, गुप्त से गुप्त मन्त्रणा को भी प्रकट कर दिया करते हैं। राजा का दूत वही हो सकता है जो प्रगल्भ, स्मृतिशील, वाक्चतुर, शस्त्र तथा शास्त्र में निपुण और कर्मठ हो ।५-७।

निसृष्टार्थो मितार्थश्च तथा शासनहारकः ।
सामर्थ्यात्पादतो हीनो दूतस्तु त्रिविधः स्मृतः ॥८
नाविज्ञातं पुरं शत्रोः प्रविशेच्च न संसदम् ।
कालमीक्षेत कार्यार्थमनुज्ञातश्च निष्पतेत् ॥९
छिद्रं च शत्रोर्जानीयात्कोषमित्रबलानि च ।
रागापरागौ जानीयाद् ृष्टिगात्रविचेष्टितैः ॥१०
कुर्याच्चतुर्विधं स्तोत्रं पक्षयोरुभयोरपि ।
तपस्विव्यञ्जनोपेतैः सुचरैः सह संवसेत् ॥११

दूत तीन प्रकार के हुआ करते हैं- निसृष्टार्थ (अपनी इच्छा से कार्य करने वाला), मितार्थ (राजा के आदेशानुसार कार्य करने वाला) और शासन-हारक जो किसी विशेष समस्या पर राजा का निर्णय सुनाने वाला हो। इनमें पूर्व-पूर्व वाला दूत बाद-बाद वाले दूत की अपेक्षा सामर्थ्य में कम हीन हुआ करता है। उसे शत्रु के अज्ञात नगर अथवा उसकी अज्ञात संसद् में प्रवेश नहीं करना चाहिए। उसे कार्य करने के लिए शत्रु की प्रतीक्षा करनी चाहिए और (राजा की) अनुज्ञा से (कार्य में) जुट पड़ना चाहिए। राजा को शत्रु की दृष्टि और अंगविकार से उसके दोष, कोष, मित्र, मेना, राग और द्वेष का पता लगा लेना चाहिए। उसे (शत्रु-देश में जाकर, अपने और शत्रु) दोनों पक्षों की स्तुति करनी चाहिए और तपस्वियों के वेश में रहने वाले गुप्तचरों के साथ निवास करना चाहिए ।८-११।

चरः प्रकाशो दूतः स्यादप्रकाशश्चरो द्विधा ।
वणिक्कृषीवलो लिङ्गी भिक्षुकाद्यात्मकाश्चराः ॥१२
यायादरिं व्यसनिन निष्फले दूतचेष्टिते ।
प्रकृतिव्यसनं यत्स्यात्तत्समीक्ष्य समुत्पतेत् ॥१३

अनयाद्व्यस्यति श्रेयस्तस्मात्तद्व्यसनं स्मृतम् ।
हुताशनो जलं व्याधिर्दुर्भिक्षं मरकं तथा ॥१४
इति पञ्चविधं दैवं व्यसनं मानुषं परम् ।
दैवं पुरुषकारेण शान्त्या च प्रशमं नयेत् ॥१५

प्रकट रूप से रहने वाले चर को दूत कहते हैं और अप्रकट रूप से भ्रमण करने वाले दूत को गुप्तचर कहते हैं। इस प्रकार दूत दो प्रकार के हुआ करते हैं। गुप्तचरों को व्यापारी, कृपक, संन्यासी और भिक्षुक आदि के रूप में रहना चाहिए। दूतों की चेष्टाओं के निष्फल हो जाने पर (राजा को) विपत्ति में पड़े हुए शत्रु के ऊपर चढ़ाई करनी चाहिए। प्रजाओं में विपत्ति को देखकर (शत्रु राजा के ऊपर) आक्रमण कर देना चाहिए। अनीति से कल्याण का विनाश हो जाता हैं इसलिए इसे व्यसन कहते हैं। दैवव्यसन कहलाने वाले हैं—अग्नि, जल, व्याधि, दुर्भिक्ष तथा महामारी। इनसे भिन्न जितने भी व्यसन हैं वह मनुष्यकृत हुआ करते हैं। दैवव्यसन को पुरुपार्थ और शान्ति (आदि उपायों) से शान्त करना चाहिये।१२-१५।

उत्थतापितेन नीत्या च मानुषं व्यसनं हरेत् ।
मन्त्रो मन्त्रफलावाप्तिः कार्यानुष्ठानमायतिः ॥१६
आयव्ययौ दण्डनीतिरमित्रप्रतिषेधनम् ।
व्यसनस्य प्रतीकारो राज्यराजाभिरक्षणम् ॥१७
इत्यमात्यस्य कर्मेदं हन्ति स व्यसनान्वितः ।
हिरण्यधान्यवस्त्राणि वाहनं प्रजया भवेत् ॥१८

मनुष्य के द्वारा उत्पन्न व्यसन को बल तथा नीति से दूर करना चाहिए। मन्त्रणा करना, मन्त्रणा के फल को प्राप्त करना, कार्यानुष्ठान करना, भविष्य को सोचना, आय-व्यय का निरीक्षण करना, दण्ड देना, शत्रु का प्रतिषेध करना, व्यसन का प्रतीकार करना, राज्य तथा राजा की रक्षा करना—ये सब कर्म अमात्य के कार्य हैं किन्तु यदि वह अमात्य स्वयं व्यसनी होता है तो सब कर्मों को नष्ट कर देता है। सुवर्ण, धान्य, वस्त्र, वाहन तथा अन्य द्रव्यों की प्राप्ति प्रजा से होती है।१६-१८।

तथाऽन्ये द्रव्यनिचया हन्ति सव्यसना प्रजा ।
प्रजानामापदि (दा) स्थानां रक्षणं कोषदण्डयोः ॥१९

पौराद्याश्चोपकुर्वन्ति संश्रयादिह दुर्दिनम् ।
तूष्णीं युद्धं जनत्राणं मित्रामित्रपरिग्रहः ॥२०
सामन्तादिकृते दोषे नश्येत्तद्व्यसनाच्च तत् ॥
भृत्यानां भरणं दानं प्रजामित्रपरिग्रहः ॥२१
धर्मकामादिभेदश्च दुर्गसंस्कारभूषणम् ।
कोषात्तद्व्यसनाद्धन्ति कोषमूलो हि भूपतिः ॥२२

किन्तु यदि प्रजा व्यसनग्रस्त होती है तो वह सबको नष्ट कर देती है। आपत्तिकाल में प्रजा की रक्षा कोप तथा दण्ड से करनी चाहिये। आश्रय में रहने वाले पुरवासी इत्यादि दुर्दिन में राजा का उपकार करते हैं। चुपचाप युद्ध की तैयारी करना, जनता की रक्षा करना, मित्र-शत्रु में भेद करना—ये सामन्तों के कार्य हैं, किन्तु उन (सामन्तों) के दोष से इन सबका नाश हो जाता है और उनके व्यसन से भी यह नष्ट हो जाते हैं। भृत्यों का भरण, दान, प्रजा तथा मित्रों की सहायता, धर्म-कर्म आदि की परिपूर्णता और दुर्ग-संस्कार आदि कार्य कोष ही के बल पर सिद्ध होते हैं किन्तु कोष में दोष उत्पन्न होने से ये सब नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि राजा का मूल तो कोष ही है।१९-२२।

मित्रामित्रवनीहेमसाधनं रिपुमर्दनम् ।
दूरकार्याशुकारित्वं दण्डात्तद्व्यसनाद्धरेत् ॥२३
संस्तम्भयति मित्राणि ह्यमित्रं नाशयत्यपि ।
धनाद्यैरुपकारित्वं मित्रात्तद्व्यसनाद्धरेत् ॥२४
राजा स व्यसनी हन्याद्राजकार्याणि यानि च ।
वाग्दण्डयोश्च पारुष्यमर्थदूषणमेव च ॥२५
पानं स्त्री मृगया द्यूतं व्यसनानि महीपतेः ।
आलस्यं स्तब्धता दर्पः प्रमादो द्वैधकारिता।२६
इति पूर्वोपदिष्टं च सचिवव्यसनं स्मृतम् ।
अनावृष्टिश्च पीडादि राष्ट्रव्यसनमुच्यते ॥२७

मित्र, शत्रु, पृथिवी तथा सुवर्णप्राप्ति का साधन, शत्रु को विनष्ट करने वाला तथा विलम्ब से होने वाले कार्य में शीघ्रता उत्पन्न करने वाला दण्ड ही हुआ करता है। अतएव दण्ड में किसी प्रकार का दोष इन सबको नष्ट कर देता है। मित्र, मित्रों का सञ्चय करता है, शत्रुओं का संहार करता है और धन इत्यादि से (राजा का) उपकार करता है, किन्तु मित्र यदि व्यसनी हो तो इनका विनाश

कर देता है। यदि राजा व्यसनी हो तो वह सभी राजकृत्यों को नष्ट कर दिया करता है। राजा के व्यसन हैं—वाणी और दण्ड की कठोरता, धन का दुरुपयोग, मदिरापान, स्त्रीप्रसंग, मृगया और जुआ। आलस्य, जड़ता, दर्प, प्रमाद, द्विविधा और ऊपर कहे गये दुर्गुण—ये सब मन्त्रियों के व्यसन हैं। अनावृष्टि और पीड़ा आदि राष्ट्र के व्यसन हैं।२३-२७।

विशीर्णयन्त्रप्राकारपरिखात्वमशस्त्रता।
क्षीणया सेनया नद्धं दुर्गव्यसनमुच्यते ॥२८
व्ययीकृतः परिक्षिप्तोऽप्रजितोऽसंजितस्तथा।
दूषितो दूरसंस्थश्च कोपव्यसनमुच्यते ॥२९

मन्त्र, चहारदीवारी तथा खाईं का नष्ट होना, शस्त्रों का अभाव, थोड़ी-सी सेना से दुर्ग का निर्माण करना—यह सब दुर्गव्यसन कहलाते हैं। व्यय कर डालना, उधार में लगा देना, वश में न रहना, ठीक से हिसाब न रखना, दूषित्त कर देना तथा (देश भर में) दूर-दूर स्थापित करना—ये सब कोष के व्यसन हैं।२८-२९।

उपरुद्धं परिक्षिप्तममानितविमानितम्।
अभूतं व्याधितं श्रान्तं दूरायातं नवागतम् ॥३०
परिक्षीणं प्रतिहत प्रहताग्रतरं तथा।
आशानिर्वेदभूयिष्ठमनृतप्राप्तमेव च ॥३१
कलत्रगर्भ निक्षिप्तमन्तःशल्यं तथैव च।
विच्छिन्नविविधासारं शून्यमूलं तथैव च ॥३२
अस्वाम्यसंहतं वाऽपि भिन्नकूटं तथैव च।
दुष्पार्ष्णिग्राहमर्थं च बलव्यसनमुच्यते ॥३३

उपरुद्ध (कहीं घिरी हुई हो), बिखरी हुई, अनादृत, उपेक्षित, थोड़ी, व्याधिग्रस्त, थकी हुई, दूर से आयी, नयी-नयी प्राप्त की गयी, क्षीण, प्रतिहत, जिसका आगे का भाग नष्ट हो चुका है, अत्यन्त निराश, धोखा खायी हुई, स्त्रीबहुल, छिन्न-भिन्न, विभिन्न आसारों से युक्त, निराधार, असंगठित, टूटे हुए व्यूहों वाली और दुष्ट पार्ष्णिग्राह से घिरी हुई—ये सब सेना के व्यसन हैं।३०-३३।

दैवोपपीडितं मित्रं ग्रस्तं शत्रुबलेन च ।
कामक्रोधादिसंयुक्तमुत्साहादरिभिर्भवेत् ॥३४
अर्थस्य दूषणं क्रोधात्पारुष्यं वाक्यदण्डयोः ।
कामजं मृगया द्यूतं व्यसनं [1]पानकं स्त्रियः ॥३५
वाक्पारुष्यं परं लोक उद्वेजनमनर्थकम् ।
असिद्धिसाधनं दण्डस्तं युक्त्याऽवनयेन्नृपः ॥३६

वह मित्र भी शत्रु ही है जो अमात्यग्रस्त हो, शत्रु-सेना से घिरा हुआ हो, कामक्रोधादि से युक्त हो और उत्साह आदि से विहीन हो। क्रोधवश धन को नष्ट कर देना, वाणी और दण्ड की कठोरता, मृगया, द्यूतक्रीडा, मद्यपान और स्त्रियाँ—ये सब काम से उत्पन्न होने वाले व्यसन हैं। वाणी की कठोरता प्रजाओं को उद्विग्न करने वाली और (नाना प्रकार के) अनर्थों को करने वाली हुआ करती है। इसी प्रकार कठोर दण्ड भी हुआ करता है। अतः राजा को चाहिये कि इन दोनों को छोड़ दे।३४-३६।

उद्वेजयति भूतानि दण्डपारुष्यवान्नृपः ।
भूतान्युद्वेज्यमानानि द्विषतां यान्ति संश्रयम् ॥३७
विवृद्धाः शत्रवश्चैव विनाशाय भवन्ति ते ।
दूष्यस्य दूषणार्थं च परित्यागो महीयसः ।३८
अर्थस्य नीतितत्त्वज्ञैरर्थदूषणमुच्यते ।
पानात्कार्यादिनो (ष्व) ज्ञानं मृगयातोऽरितः क्षयः ॥३९
जितश्रमार्थं मृगयां विचरेद्रक्षिते वने ।
धर्मार्थप्राणनाशादि द्युते स्यात्कलहादिकम् ॥४०

जो राजा प्राणियों को कठोर दण्ड देता है उससे प्रजा उद्विग्न हो जाया करती है और उद्विग्न प्रजा उसके शत्रुओं का आश्रय ले लेती है। इस प्रकार बढ़े हुए शत्रु उस राजा के विनाश का कारण बन जाते हैं। दोष निराकरण के लिये महान् धनराशि का परित्याग करना अर्थदोष है। ऐसा अर्थशास्त्रवेत्ताओं का कहना है। मद्यपान से कर्तव्याकर्तव्य का विवेक नष्ट हो जाता है और मृगया (में लगे रहने) से शत्रुसे विनाश होता है। परिश्रम को जीतने के लिए राजा को किसी सुरक्षित वन में मृगया करनी चाहिये। द्यूतक्रीड़ा से धर्म, अर्थ और प्राणों का नाश होता है और कलह आदि बढ़ता है।३७-४०।

---

१ ख. ग. पालनं ।

कालातिपातो धर्मार्थपीडा स्त्रीव्यसनाद्भवेत् ।
पानदोषात्प्राणनाशः कार्याकार्यविनिश्चयः ॥४१
स्कन्धावारनिवेशज्ञो निमित्तज्ञो रिपुं जयेत् ।
स्कन्धावारस्य मध्ये तु सकोषं नृपतेर्गृहम् ॥४२
मौलीभूतं श्रेणिसुहृद्द्विपदाटविकं वलम् ।
राजहर्म्यं समावृत्य क्रमेण विनिवेशयेत् ॥४३

स्त्रीव्यसन से समय का नाश और धर्म तथा अर्थ की हानि होती है। मदिरापान से प्राणों का नाश और कर्तव्याकर्तव्य का अविवेक उत्पन्न होता है। छावनी के निर्माण में कुशल तथा निमित्तों का ज्ञाता राजा शत्रुओं के ऊपर विजय प्राप्त कर लेता है। राजा का कोष तथा निवासगृह छावनी के बीच में होना चाहिये। सेना का मुख्य भाग और उसके अन्य भेद जैसे मित्र सेना और आटविक सेना इत्यादि को राज-प्रासाद के चारों ओर रहना चाहिये।४१-४३।

सैन्यैकदेशः संनद्धः सेनापतिपुरःसरः ।
परिभ्रमेच्चत्वरांश्च मण्डलेन वहिर्निशि ॥४४
वार्ताः स्वका विजानीयाद्दूरसीमान्तचारिणः ।
निर्गच्छेत्प्रविशेच्चैव सर्व एवोपलक्षितः ॥४५
सामं दानं च भेदश्च दण्डोपेक्षेन्द्रजालकम् ।
मायोपायाः सप्त परे निक्षिपेत्साधनाय तान् ॥४६
चतुर्विधं स्मृतं साम उपकारानुकीर्तनात् ।
मिथः सम्वन्धकथनं मृदुपूर्व च भाषणम् ॥४७
आयाते दर्शनं वाचा तवाहमिति चार्पणम् ।
यः सम्प्राप्तधनोत्सर्ग उत्तमाधममध्यमः ॥४८
प्रतिदानं तदा तस्य गृहीतस्यानुमोदनम् ।
द्रव्यदानमपूर्व च स्वयंग्राहप्रवर्तनम् ।४९

सेना के एक भाग को जिसके आगे-आगे सेनापति हो, मण्डल वनाकर रात्रि में चौराहो पर भ्रमण करना चाहिये। उसे दूर-दूर तक राज्य की सीमाओं में अपने सम्वन्ध में होने वाली वातों का पता लगाते रहना चाहिये। विना किसी के देखे हुए कही प्रवेश करना चाहिये और कहीं से निकलना चाहिए। साम, दान, भेद, दण्ड, उपेक्षा, इन्द्रजाल और मायोपाय (षड्यन्त्र) —इन सातों को साधन रूप में प्रयुक्त करना चाहिये। साम चार प्रकार का

कहा गया है—दूसरे के उपकार का वर्णन करना (अर्थात् कृतज्ञता प्रकट करना), परस्पर सम्बन्ध के विषय में बातें करना, मधुर भाषण करना और (शत्रु के) आने पर प्रेमपूर्वक मिलना और 'मैं तुम्हारा ही हूँ' यह कहकर अपने आपको समर्पण कर देना। पहले कभी न दी गयी वस्तुओं को देना, अपनी इच्छा मे किसी वस्तु को ग्रहण करना, अपनी इच्छा से दूसरों को किसी वस्तु को स्वीकार करने के लिये प्रेरित करना, दातव्य ऋण आदि को छोड़ देना या न लेना—इस प्रकार ये दान के पाँच भेद कहे गये हैं।४४-४६।

देयश्च प्रतिमोक्षश्च दानं पञ्चविधं स्मृतम्।
स्नेहरागापनयनसंहर्षोत्पादनं तथा ॥५०
मिथोभेदश्च भेदज्ञैर्भेदश्च त्रिविधः स्मृतः।
वधोऽर्थहरणं चैव परिक्लेशस्त्रिधा दमः ॥५१
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकद्विष्टान्प्रकाशतः।
[1]उद्विजेत हतैर्लोकस्तेषु पिण्डः [2]प्रशस्यते ॥५२

भेदज्ञों ने भेद के तीन भेद बतलाये हैं—परस्पर स्नेह तथा अनुराग को नष्ट कर देना, दो पक्षों में परस्पर संघर्ष उत्पन्न कर देना और भेद डाल देना। दम (भी) तीन प्रकार का हुआ करता है—वध, धन का अपहरण करना और क्लेश देना। दण्ड दो प्रकार का हुआ करता है—प्रकाश और अप्रकाश। समाजद्रोही को प्रकाश रूप में दण्ड देना चाहिये। मृत्युदंड अथवा (अपराधी के) शिरश्छेद की अपेक्षा शारीरिक दंड अधिक उत्तम माना जाता है।५०-५२।

विषेणोपनिषद्योगैर्हन्याच्छस्त्रादिना द्विषः।
जातिमात्रं द्विजं नैव हन्यात्सामोत्तरं वशे ॥५३
प्रलिम्पन्निव चेतांसि दृष्ट्वा साधु पिबन्निव।
ग्रसन्निवामृतं साम प्रयुञ्जीत प्रियं वचः ॥५४
मिथ्याभिशस्तः श्रीकाम आहूयाप्रतिमानितः।
राजद्वेषी चातिकरस्त्वात्मसंभावितस्तथा ॥५५

---

१ क. ङ. उद्वेजित ह°। २ क. ङ. प्रकाश्यते।

विच्छिन्नधर्मकामार्थः क्रुद्धो मानी विमानितः ।
अकारणात्परित्यक्तः कृतवैरोऽपि सान्त्वितः ॥५६
हृतद्रव्यकलत्रश्च पूजार्होऽप्रतिपूजितः ।
एतांस्तु भेदयेच्छत्री स्थितान्नित्यान्सुशङ्कितान् ॥५७
आगतान्पूजयेत्कामैर्निजांश्च प्रशमं नयेत् ।

शत्रु को विष, मन्त्र, तन्त्र और शस्त्र आदि (के प्रयोग से) मारना चाहिये; पर केवल जन्म से भी द्विज कहलाने वाले का वध नहीं करना चाहिये अपितु उसे साम आदि (उपायों) के द्वारा वश में करना चाहिये। जिससे बातचीत की जाये उसके मुख का (नेत्रों से) पान करते हुए साम में ऐसे प्रियवचनों का प्रयोग करना चाहिये जो हृदय का स्पर्श करने वाले हों और अमृत-सा घोल रहे हों। शत्रु मे ऐसे लोगों से भेद करवा देना चाहिये जिनके ऊपर मिथ्या लांछन लगाया गया हो, जिन्हें धन देने के लिए बुलाकर अपमानित किया गया हो, जो राजा से द्वेष करते हों, जिनके साथ दुर्व्यवहार किया गया है, जो आत्माभिमानी हों, धर्म, अर्थ, काम से वंचित हों, क्रोधी हों, अतिमानी हो, अकारण छोड़ दिये गये हों, जिन्हें शत्रुता करके भी सान्त्वना दे दी गयी हो, जिनका धन तथा स्त्री छीन ली गयी हो और जो पूज्य होने पर भी अपमानित किये गये हों—ऐसे लोग यदि अपनी ओर आ जायें तो उनकी इच्छाओं को पूर्ण करके उनका सत्कार करना चाहिये, किन्तु ऐसे लोग यदि अपनी ओर हों तो उन्हें शान्त करना चाहिये।५३-५७½।

सामदृष्टानुसंधानमत्युग्रभयदर्शनम् ॥५८
प्रधानदानमानं च भेदोपायाः प्रकीर्तिताः ।
मित्रं हतं काष्ठमिव घुणजग्धं विशीर्यते ॥५९
त्रिशक्तिर्देशकालज्ञो दण्डेनास्तं नयेदरीन् ।
मैत्रीप्रधानं कल्याणबुद्धि सान्त्वेन साधयेत् ॥६०

शत्रु सेना में भेद उत्पन्न करने के उपाय हैं—साम के प्रयोग, अत्यन्त उग्र भय का प्रदर्शन और (शत्रु के) प्रधान पुरुषों को दान देना तथा उनका सम्मान करना। झूठे मित्रों से घिरा हुआ राजा घुन लगी हुई लकड़ी की भांति नष्ट हो जाया करता है। त्रिशक्ति (प्रभुशक्ति, मन्त्रशक्ति और उत्साह शक्ति) से सम्पन्न तथा देशकाल के ज्ञाता राजा को दंड के द्वारा शत्रुओं को वश में कर लेना चाहिये। जो राजा से मैत्री की भावना रखता हो अथवा

उसके कल्याण की कामना करता हो उसे सान्त्वना के द्वारा वशीभूत करना चाहिये ।५८-६०।

लुब्धं क्षीणं च दानेन मित्रानन्योन्यशङ्कया ।
दण्डस्य दर्शनाद्दुष्टान्पुत्रभ्रातादि सामतः ॥६१
दानभेदैश्चमूमुख्यान्योधाञ्जनपदादिकान् ।
सामन्ताटविकान्भेददण्डाभ्यामपराद्धकान् ॥६२
देवताप्रतिमानां तु पूजयान्तर्गतैर्नरैः ।
पुमान्स्त्रीवस्त्रसंवीतो निशि चाद्भुतदर्शनः ॥६३

लोभी तथा दरिद्र को दान से, मित्रों को परस्पर एक-दूसरे से संशकित रखते हुए, दुष्टों को दण्ड से, पुत्रों और भाइयों को साम से, मुख्य योद्धाओं, देशवासियों, सामन्तों तथा वनसैनिकों को विविध प्रकार के दान से और अपराधियों को दण्डभेद से वश में करना चाहिए। देव-प्रतिमाओं को पूजा से प्रसन्न करना चाहिए। शत्रु को भयभीत करने के लिए विभिन्न प्रकार की माया और इन्द्रजाल आदि का प्रयोग करना चाहिए जैसे रात्रि में पुरुष को स्त्री का वस्त्र पहनकर अद्भुत वेश बनाना चाहिए ।६१-६३।

वेतालोल्कापिशाचानां शिवानां च स्वरूपिका ।
कामतोरूपधारित्वं शस्त्राग्न्यश्माम्बुवर्षणम् ॥६४
तमोऽनिलोऽनलो मेघ इति माया ह्यमानुषी ।
जघान कीचकं भीम आस्थितः स्त्रीस्वरूपताम् ॥६५
अन्याये व्यसने युद्धे प्रवृत्तस्यानिवारणम् ।
उपेक्षेयं स्मृता भ्रातोपेक्षितश्च हिडिम्बया ॥६६

कभी वेताल, उल्का, पिशाच तथा शृगाली का रूप धारण करना चाहिये, कभी शस्त्र, अग्नि, जल तथा पत्थर बरसाना चाहिए, कभी अन्धकार, कभी आँधी, कभी आग तथा कभी बादल से वातावरण को भयावह बना देना चाहिए। इस तरह की माया को अमानुषी माया कहते हैं। इसी माया के प्रभाव से भीम ने स्त्रीरूप धारण करके कीचक का बध किया था। अन्याय, व्यसन तथा युद्ध में लगे हुए को हटाना उपेक्षा कहलाता है। इसी तरह की उपेक्षा हिडिम्बा ने अपने भाई से की थी ।६४-६६।

मेघान्धकारवृष्ट्यग्निपर्वताद्भुतदर्शनम् ।
दूरस्थानां च सैन्यानां दर्शनं ध्वजशालिनाम् ॥६७

छिन्नपाटितभिन्नानां संसृतानां च दर्शनम् ।
इतीन्द्रजालं द्विषतां भीत्यर्थमुपकल्पयेत् ॥६८

वादल, अन्धकार, वृष्टि, अग्नि तथा पर्वत का अद्भुत रूप दिखलाना, ध्वजा पताका सहित दूर रहने वाली सेना को समीप लाकर दिखाना, शत्रु-पक्ष की सेना को छिन्न-भिन्न रूप में दिखलाना—ये सब इन्द्रजाल हैं । शत्रुओं को डराने के लिए इनका प्रयोग करना चाहिए ।६७-६८।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सामादिकथनं नामैकचत्वारिंशदधिक-द्विशततमोऽध्यायः । २४१

अथ द्वाचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजनीतिः

राम उवाच—

षड्विधं तु वलं व्यूह्य देवान्प्राचर्य रिपुं व्रजेत् ।
मौलं भूतं श्रोणिसुहृद्द्विषदाटविकं वलम् ॥१

राम बोले—देवताओं का पूजन करके और छह प्रकार के सैन्य व्यूह की रचना करके शत्रु (से युद्ध) के लिये प्रयास करना चाहिए । मौल, भूत, श्रोणि, सुहृद्, द्विषद् और आटविक—ये सेना के छह अङ्ग हैं ।१

पूर्वं पूर्वं गरीयस्तु वलानां व्यसनं तथा ।
षडङ्गं मन्त्रकोषाभ्यां पदात्यश्वरथद्विपैः ॥२
नद्यद्रिवनदुर्गेषु यत्र तत्र भयं भवेत् ।
सेनापतिस्तत्र तत्र गच्छेद्व्यूहीकृतैर्वलैः ॥३

इनमें पूर्व-पूर्व प्रकार की सेना क्रमशः अपने वाद वाले अङ्ग की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण हुआ करती है। इसी क्रम से इनके व्यसन (संकट) के महत्त्व को भी समझना चाहिए । मंत्र, कोष, पदाति, अश्व रथ और गज—ये छह सेना के अंग हुआ करते हैं । नदी, पर्वत, वन, दुर्ग आदि स्थानों में जहाँ-

भय हो वहाँ-वहाँ सेनापति को सैन्यव्यूह बनाकर प्रयाग करना चाहिए।२-३।

नायकः पुरतो यायात्प्रवीरपुरुषावृतः ।
मध्ये कलत्रं स्वामी च कोषः फल्गु च यद्बलम् ॥४
पार्श्वयोरुभयोरश्वा वाजिनां पार्श्वयो रथाः ।
रथानां पार्श्वयोर्नागा नागानां चाटवीबलम् ॥५
पश्चात्सेनापतिः सर्वं पुरस्कृत्य कृती स्वयम् ।
यायात्संनद्धसैन्यौघः खिन्नानाश्वासयञ्शनैः ॥६

सबसे आगे वीरयोद्धाओं के साथ सेनानायक को चलना चाहिए। मध्य में स्त्री, स्वामी, कोष तथा जो सेना अशक्त हो गयी है उसको आगे रहना चाहिए। उसके दोनों ओर अश्व, अश्वों के दोनों ओर रथ, रथों के दोनों ओर हाथी, हाथियों के दोनों ओर सफरमैना सैनिक और सबसे पीछे सेनापति को रहना चाहिए। उसे सबको आगे करके स्वयं पर्याप्त सैनिकों को साथ लेकर खिन्नसैनिकों को सान्त्वना देते हुए धीरे-धीरे चलना चाहिए।४-६।

यायाद्व्यूहेन महता मकरेण पुरो भये ।
श्येनेनोद्धृतपक्षेण सूच्या वा[1] वीरवक्त्रया ॥७
पश्चाद्भये तु शकटं पार्श्वयोर्वज्रसंज्ञितम् ।
सर्वतः सर्वतोभद्रं भये व्यूहं प्रकल्पयेत् ॥८

सेना को बहुत बड़े मकरव्यूह के रूप में प्रयाण करना चाहिए। आगे किसी भय की शंका होने पर ऊपर पंख उठाये हुए श्येन, सूची अथवा भयंकर मुख के आकार के व्यूह की रचना करनी चाहिए। यदि पीछे से भय उपस्थित हो तो शकटाकार व्यूह की और सब ओर भय हो तो सर्वतोभद्र-व्यूह की रचना करनी चाहिए।७-८।

कन्दरे शैलगहने निम्नगावनसंकटे ।
दीर्घाध्वनिपरिश्रान्तं क्षुत्पिपासाहितक्लमम् ॥९
व्याधिदुर्भिक्षमरकपीडितं दस्युविद्रुतम् ।
पङ्कपांशुजलस्कन्धं व्यस्तं पुञ्जीकृतं पथि ॥१०

---

१ ख. ग. क्रूरवक्त्रया।

प्रसुप्तं भोजनव्यग्रमभूमिष्ठमसुस्थितम् ।
चौराग्निभयवित्रस्तं वृष्टिवातसमाहतम् ॥११
इत्यादौ स्वचमूं रक्षेत्परसैन्यं च घातयेत् ।

गुफा, पर्वतीय दर्रा, नदी, तथा लम्बे मार्ग में भूख प्यास से व्याकुल, परिश्रान्त, व्याधि, दुर्भिक्ष तथा महामारी आदि से पीड़ित, चोरों से लुटी हुई, कीचड़, धूल तथा जल में निमग्न, भोजन के लिए आतुर, रास्ते पर सोयी, अस्थिर, अस्वस्थ, चोर तथा अग्निभय से संत्रस्त, वर्षा और आँधी से पीड़ित अपनी सेना की तो रक्षा करनी चाहिए, किन्तु परकीय सेना का विध्वंस करना चाहिए ।९-११½।

विशिष्टो देशकालाभ्यां भिन्नविप्रकृतिर्बली ॥१२
कुर्यात्प्रकाशयुद्धं हि कूटयुद्धं विपर्यये ।
तेष्ववस्कन्दपालेषु परं हन्यात्समाकुलम् ॥१३
अभूमिष्ठं स्वभूमिष्ठः स्वभूमौ चोपजातयः[1] ।
प्रकृतिप्रग्रहाकृष्टं पाशैर्वनचरादिभिः ॥१४
हन्यात्प्रवीरपुरुषैर्भङ्गदानापकर्षणैः ।
पुरस्ताद्दर्शनं दत्त्वा तल्लक्षकृतनिश्चयान् ॥१५
हन्यात्पश्चात्प्रवीरेण वलेनोपेत्य वेगिना ।
पश्चाद्वा संकुलीकृत्य हन्याच्छूरेण पूर्वतः ॥१६

जब आक्रमण के लक्ष्यभूत शत्रु की अपेक्षा विजिगीषु राजा देश-काल की अनुकूलता की दृष्टि से बढ़ा-चढ़ा हो तथा शत्रु की प्रकृति में फूट डाल दी गयी हो और अपना वल अधिक हो तो शत्रु के साथ प्रकाशयुद्ध (घोषित या प्रकट संग्राम) छेड़ दे। यदि विपरीत स्थिति हो तो कूट-युद्ध (छिपी लड़ाई) करे। जव शत्रु की सेना पूर्वोक्त वलव्यसन (सैन्य-संकट) के अवसरों या स्थानों में फँसकर व्याकुल हो तथा युद्ध के अयोग्य भूमि में स्थित हो और सेना सहित विजिगीषु अपने अनुकूल भूमि पर स्थित हो, तव वह शत्रु पर आक्रमण करके उसे मार गिराये। यदि शत्रु-सैन्य अपने लिए अनुकूल भूमि में स्थित हो तो उसकी प्रकृतियों में भेदनीति द्वारा फूट डलवा कर, अवसर देख शत्रु का विनाश कर डाले। जो युद्ध से भागकर या पीछे हटकर शत्रु को उसकी भूमि

१ घ ।°जायतः. प्र° ।

से बाहर खींच लाते है, ऐसे वनचरों (आटविकों) तथा अमित्र सैनिकों ने पाशभूत होकर जिसे प्रकृति प्रग्रह से (स्वभूमि या मण्डल से) दूर—परकीय भूमि में आकृष्ट कर लिया है, उस शत्रु को प्रकृष्ट वीरयोद्धाओं द्वारा मरवा डाले। कुछ थोड़े से सैनिकों को सामने की ओर युद्ध के लिए उद्यत दिखा दे और जब शत्रु के सैनिक उन्हीं को अपना लक्ष्य बनाने का निश्चय कर लें, तब पीछे से वेगशाली उत्कृष्ट वीरों की सेना के साथ पहुँचकर उन शत्रुओं का विनाश कर दे अथवा पीछे की ओर ही सेना एकत्र करके दिखाये और जब शत्रु सैनिकों का ध्यान उधर ही खिच जाय, तब सामने की ओर से शूरवीर बलवान् सेना द्वारा आक्रमण करके उन्हें नष्ट कर दे।१२-१६।

आभ्यां पार्श्वाभिघाती तु व्याख्यातौ कूटयोधने।
पुरस्ताद्विषमे देशे पश्चाद्धन्यास्तु वेगवान् ॥१७
पुरः पश्चात्तु विषम[1] एवमेव तु पार्श्वयोः।
प्रथमं योधयित्वा तु दूष्यामि त्राटवीबलैः ॥१८
श्रान्तं मन्दं निराक्रन्दं हन्यादश्रान्तवाहनम्।
दूष्यामित्रबलैर्वाऽपि भङ्गं दत्त्वा प्रयत्नवान् ॥१९
जितमित्येव विश्वस्तं हन्यान्मन्त्रव्यपाश्रयः।
स्कन्धावारपुरग्रामसस्यस्वामिप्रजादिषु ॥२०
विश्रम्य (म्भ) न्तं परानीकमप्रमत्तो विनाशयेत्।

सामने तथा पीछे की ओर से किये जाने वाले इन दो आक्रमणों द्वारा अगल-बगल से किये जाने वाले आक्रमणों की भी व्याख्या हो गयी अर्थात् बायीं ओर कुछ सेना दिखाकर दाहिनी ओर से और दाहिनी ओर सेना दिखाकर बायीं ओर से गुप्त रूप से आक्रमण करे। कूटयुद्ध में ऐसा ही करना चाहिए। पहले दूष्यबल, अमित्रबल तथा आटविकबल—इन सबके साथ शत्रु-सेना को लड़ाकर थका दे। जब शत्रुबल श्रान्त, मन्द (हतोत्साह) और निराक्रन्द (मित्ररहित एवं निराश) हो जाय और अपनी सेना के वाहन थके न हों, उस दशा में आक्रमण करके शत्रुवर्ग को मार गिराये। अथवा दूष्य अथवा अमित्र सेना को युद्ध से पीछे हटने या भागने का आदेश दे दे और जब शत्रु को यह विश्वास हो जाय कि मेरी जीत हो गयी, अतः वह ढीला पड़ जाय, तब मन्त्र बल का आश्रय ले प्रयत्नपूर्वक आक्रमण करके उसे मार डाले।

१ ख. ग. विषय।

स्कन्धावार (सेना के पड़ाव), पुर, ग्राम, सस्यसमूह तथा गौओं के व्रज (गोष्ठ)-इन सबको लूटने का लोभ शत्रुसैनिकों के मन में उत्पन्न करा दे और जब उनका ध्यान बँट जाय, तब स्वयं सावधान रहकर उन सबका संहार कर डाले ।१७-२०½।

अथवा गोग्रहाकृष्टं तल्लक्ष्यं मार्गबन्धनात् ॥२१
अवस्कन्दभयाद्रात्रिप्रजागरकृतश्रमम् ।
दिवासुप्तं समाहन्यान्निद्राव्याकुलसैनिकम् ॥२२
निशि विश्रब्धसंसुप्तं नागैर्वा खड्गपाणिभिः ।
प्रयाणे पूर्वयायित्वं वनदुर्गप्रवेशनम् ॥२३
अभिन्नानामनीकानां भेदनं भिन्नसंग्रहः ।
विभीषिकाद्वारघातं कोषरक्षेभकर्म च ॥२४

अथवा शत्रु राजा की गायों का अपहरण करके उन्हें दूसरी ओर (गायों-को छुड़ाने वालों की ओर) खींचे और जब शत्रुसेना उस लक्ष्य की ओर बढ़े, तब उसे मार्ग में ही रोककर मार डाले। अथवा अपने ही ऊपर आक्रमण के भय से रातभर जागने के श्रम से दिन में सोयी हुई शत्रु-सेना के सैनिक जब नींद से व्याकुल हों, उस समय उन पर धावा बोलकर मार डाले। अथवा रात मे ही निश्चिन्त सोये हुए सैनिकों को हाथ में तलवार लिये हुए पुरुषों द्वारा मरवा दे। जब सेना कूच कर चुकी हो तथा शत्रु ने मार्ग में ही घेरा डाल दिया हो तो उसके उस घेरे या अवरोध को नष्ट करने के लिये हाथियों को ही आगे-आगे ले चलना चाहिए। वन-दुर्ग में, जहाँ घोड़े भी प्रवेश न कर सकें, वहाँ हाथियों की सहायता से सेना का प्रवेश होता है—वे आगे के वृक्ष आदि को तोड़कर सैनिकों के प्रवेश के लिए मार्ग बना देते हैं। जहाँ सैनिकों की पंक्ति ठोस हो, वहाँ उसे तोड़ देना हाथियों का ही काम है तथा जहाँ व्यूह टूटने से सैनिक पंक्ति में दरार पड़ गयी हो, वहाँ हाथियों के खड़े होने से छिद्र या दरार बन्द हो जाती है। शत्रुओं में भय उत्पन्न करना, शत्रु-दुर्ग के द्वार को माथे की टक्कर देकर तोड़ गिराना, खजाने को सेना के साथ ले चलना तथा किसी उपस्थित भय से सेना की रक्षा करना—ये सब हाथियों द्वारा सिद्ध होने वाले कर्म हैं।२१-२४।

अभिन्नभेदनं मित्रसंधानं रथकर्म च।
वनदिङ्मार्गविचये वीवधासारलक्षणम् ॥२५
अनुयानापसरणे शीघ्रकार्योपपादनम्।
दीनानुसरणं घातः कोटीनां जघनस्य च ॥२६
अश्वकर्माथ पत्तेश्च सर्वदा शस्त्रधारणम्।
शिविरस्य च मार्गादेः शोधनं बस्तिकर्म च ॥२७

संगठित शत्रुसेना को छिन्न-भिन्न करना और मित्र-सेना को संगठित करना, रथसेना का काम है। अश्वारोही सेना का कर्तव्य है वनों, दिशाओं और मार्गों का पर्यवेक्षण, आवागमन के साधनों और रसद की रक्षा करना, (भागती हुई सेना का) पीछा करना, शीघ्रता के कार्यो का सम्पादन करना, दीनों का अनुसरण करना और श्रेणीबद्ध सेना का वध करना, सदा शस्त्र धारण करना, शिविर और मार्ग आदि को साफ करना, (शत्रु को) मारना। २५-२७।

संस्थूलस्थाणुवल्मीकवृक्षगुल्मापकण्टकम्।
सापसारा पदातीनां भूर्नातिविषमा मता ॥२८
स्वल्पवृक्षोपला क्षिप्रलङ्घनीयनगा स्थिरा।
निःशर्करा विपङ्का च सापसारा च वाजिभूः ॥२९
निस्थाणुवृक्षकेदारा रथभूमिरकर्दमा।
मर्दनीयतरुच्छेद्यव्रततीपङ्कवर्जिता ॥३०
निर्झरागम्यशैला च विषमागजमेदिनी।
उरस्यादीनि भिन्नानि प्रतिगृह्णन्वलानि हि ॥३१

पदातिसेना के लिए वह भूमि उपयुक्त हुआ करती है, जिसमें बड़े-बड़े सूखे वृक्ष, वल्मीक, वृक्ष, झाड़ियाँ और कांटे न हों, जिसमें निकलने का मार्ग हो और जो अत्यन्त ऊँची-नीची न हो। अश्वारोही सेना के लिये वह भूमि उपयुक्त हुआ करती है, जिसमें थोड़े-थोड़े वृक्ष और पत्थर हों, जहाँ के पर्वतों को शीघ्रता से पार किया जा सके, जो स्थिर हो, रेतीली न हो, दलदली न हो और जहाँ निकलने का मार्ग न हो। रथसेना के लिये वह भूमि उपयुक्त हुआ करती है जिसमें ठूँठ वृक्ष और पर्वत न हो तथा जिसमें कीचड़ भी न हो। हस्तिसेना के लिये वह भूमि उपयुक्त मानी गयी है जिसमें ऐसे वृक्ष हों जो तोड़े जा सकें, लतायें ऐसी हों जिन्हें (आसानी से) तोड़ा जा सके, जहाँ कीचड़ न हों, जहाँ निर्झर हो, अगम्य पर्वत हों और जो ऊँची-नीची

हो। सेना को उर (वक्षस्थल) आदि नामों में विभक्त कर देना चाहिये।२८-३१।

प्रतिग्रह इति ख्यातो राजकार्यान्तरक्षमः।
तेन शून्यस्तु यो व्यूहः स भिन्न इव लक्ष्यते ॥३२
जयार्थी न च युध्येत मतिमानप्रतिग्रहः।
यत्र राजा तत्र कोषः कोषाधीना हि राजता ॥३३
योधेभ्यस्तु ततो दद्यात्किंचिद्दातुं न युज्यते।
द्रव्यलक्षं राजघाते तदर्धं तत्सुतार्दने ॥३४
सेनापतिवधे [1]तद्वद्दद्याद्धस्त्यादिमर्दने।

इस प्रकार की सेना का विग्रह करना ही प्रतिग्रह कहलाता है। जो व्यूह इस (प्रतिग्रह) मे शून्य होता है वह छिन्न-भिन्न दिखलायी पड़ता है। विजयाभिलाषी राजा यदि बुद्धिमान् हो तो उसे प्रतिग्रह के विना युद्ध नही करना चाहिये। जहाँ राजा है वहाँ कोष है। कोप के अधीन ही प्रभुता मानी गयी है। (युद्ध में) विजय प्राप्त करने पर) योद्धाओं को (पुरस्कार) देना चाहिये, किन्तु थोड़ा बहुत देना उपयुक्त है। (विरोधी) राजा की मृत्यु पर एक लाख द्रव्य देना चाहिये, उसके पुत्र की मृत्यु पर इसका आधा (पचास हजार) द्रव्य देना चाहिये। सेनापति की मृत्यु पर उसका भी आधा (पचीस हजार) द्रव्य देना चाहिये और हाथी आदि की मृत्यु पर उसका भी आधा (साढ़े बारह हजार) द्रव्य पुरस्कार रूप में देना चाहिये। ३२-३४½।

अथ वा खलु युध्येरन्पत्त्यश्वरथदन्तिनः ॥३५
यथा भवेदसंबाधो व्यायामविनिवर्तने।
असंकरेण युध्येरन्संकरः संकुलावहः ॥३६
महासंकुलयुद्धेषु सश्रयेरन्मतङ्गजम्।
अश्वस्य प्रतियोद्धारो भवेयुः पुरुषास्त्रयः ॥३७

अथवा पदाति, अश्व, रथ और हस्तिसेना के साथ (एक साथ) युद्ध करना चाहिये, किन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि ये सारी सेनायें परस्पर सम्बद्ध न हो जायें। सेनाओं में विना हलचल उत्पन्न किये हुए युद्ध करना चाहिये, क्योंकि हलचल भयावह हुआ करती है। जब युद्ध में हलचल मची हो तब हस्तिसेना

---
1 ख. °द्यादुष्टादि°।

का आश्रय लेना चाहिये। पैदल सेना के तीन योद्धा एक अश्वारोही योद्धा के प्रतिद्वन्दी हो सकते हैं। ३५-३७।

[1]इति कल्प्यास्त्रयश्चाश्वा विधेयाः कुञ्जरस्य तु।
पादगोपा भवेयुश्च पुरुषा दशपञ्च च ॥३८
विधानमिति नागस्य विहितं स्यन्दनस्य च।
अनीकमिति विज्ञेयमिति कल्प्याः नवद्विपाः ॥३९
तथाऽनीकस्य रन्ध्रं तु पञ्चधा संप्रचक्षते।
इत्यनीकविभागेन स्थापयेद्व्यूहसंपदः ॥४०

पदातिसेना के पन्द्रह योद्धाओं को हस्तिसेना के एक योद्धा की रक्षा के लिए नियुक्त करना चाहिए। हस्तिसेना के ऐसे-ऐसे नौ योद्धाओं के बराबर पदातिसेना के योद्धाओं को एक रथारोही योद्धा की रक्षा के लिए नियुक्त करना चाहिये। व्यूह बनाकर खड़ी हुई सेना के पाँच प्रकार के दोष कहे गये हैं। उसे इस प्रकार के व्यूहों में खड़ा करना चाहिये। ३८-४०।

उरस्य कक्षपक्षांस्तु कल्प्यानेतान्प्रचक्षते।
उरः कक्षौ च पक्षौ च मध्यं पृष्ठं प्रतिग्रहः ॥४१
कोटी च व्यूहशास्त्रज्ञैः सप्ताङ्गो व्यूह उच्यते।
उरस्यकक्षपक्षास्तु व्यूहोऽयं सप्रतिग्रहः ॥४२
गुरोरेष च शुक्रस्य कक्षाभ्यां परिवर्जितः।
तिष्ठेयुः सेनापतयः प्रवीरैः पुरुषैर्वृताः ॥४३
अभेदेन च युध्येरन्रक्षेयुश्च परस्परम्।
युद्धमध्ये फल्गुसैन्यं युद्धवस्तु जघन्यतः ॥४४
युद्धं हि नायकप्राणं हन्यते तदनायकम्।

सेना के आवश्यक अङ्ग तीन हुआ करते हैं—उरस्, कक्ष और पक्ष। व्यूह शास्त्र के ज्ञाताओं के अनुसार व्यूह सात अङ्गों वाला हुआ करता है। वे अङ्ग हैं—उर, कक्ष, पक्ष, मध्य, पृष्ठ, प्रतिग्रह और कोटि (अग्रभाग)। गुरुव्यूह उसे कहते हैं जिसमें उर, कक्ष, पक्ष और प्रतिग्रह (अङ्ग) हुआ करते हैं, किन्तु जिसमें कक्ष नही रहते हैं उसे शुक्र-व्यूह कहते हैं। विशिष्ट योद्धाओं से घिरे हुए सेनापतियों को (सेना के आगे रहकर) मिलकर युद्ध करना चाहिये और परस्पर एक-दूसरे की रक्षा करनी चाहिये। दुर्बल सेना को व्यूह के बीच में

---

1 क. °ति कृत्वा त्रय°।

रखना चाहिये। युद्ध का प्राण है (सेना का) नायक। जिस सेना में कोई नायक नहीं रहता है, उसका वध कर दिया जाता है। ४१-४४½।

उरसि स्थापयेन्नागान्प्रचण्डान्कक्षयोः रथान् ॥४५
हयांश्च पक्षयोर्व्यूहो मध्यभेदी प्रकीर्तितः।
मध्यदेशे हयानीकं रथानीकं च कक्षयोः ॥४६
पक्षयोश्च गजानीकं व्यूहोऽन्तर्भेद्ययं स्मृतः।
रथस्थाने हयान्दद्यात्पदातींश्च हयाश्रये ॥४७
रथाभावे तु द्विरदान्व्यूहे सर्वत्र दापयेत्।
यदि स्याद्दण्डवाहुल्यमावाधः संप्रकीर्तितः ॥४८

उर नामक व्यूह में गजारोही सेना को खड़ा करना चाहिये और कक्ष में बलशालिनी रथ सेना को खड़ा करना चाहिये तथा पक्ष भाग में अश्वारोही सेना को स्थापित करना चाहिये। इस प्रकार के व्यूह को मध्यभेदी व्यूह कहते हैं। वह व्यूह अन्तर्भेदी व्यूह कहलाता है जिसमें अश्वसेना बीच में रहती है, रथसेना कक्षों में रहती है और हस्तिसेना पक्षों में रहा करती है। उस व्यूह को आवाध व्यूह कहते हैं। जिसमें रथ के स्थान में अश्वारोही सेना को खड़ा किया जाता है और रथसेना के अभाव में सर्वत्र हस्तिसेना को खड़ा किया जाता है जिसमें दण्ड का वाहुल्य हुआ करता है। ४५-४८।

मण्डलासंहतो[1] भोगो दण्डस्ते वहुधा शृणु।
तिर्यग्वृत्तिस्तु दण्डः स्याद्भोगोऽन्या वृत्तिरेव च ॥४९
मण्डलः सर्वतोवृत्तिः पृथग्वृत्तिरसंहतः।
[2]प्रदरो दृढकोऽसह्यश्चापो वै कुक्षिरेव च ॥५०
[3]प्रतिष्ठः सुप्रतिष्ठश्च श्येनो विजयसंजयौ।
विशालो विजयः सूची स्थूणाकर्णचमूमुखौ ॥५१
सर्पास्यो वलयश्चैव दण्डभेदाश्च[4] दुर्जयाः।
अतिक्रान्तः प्रतिक्रान्तः कक्षाभ्यां चैकपक्षतः ॥५२
अतिक्रान्तस्तु पक्षाभ्यां त्रयोऽन्ये तद्विपर्यये।
पक्षोरस्यैरतिक्रान्तः प्रतिष्ठोऽन्यो विपर्ययः ॥५३

सेना को मण्डलाकार खड़ा करने को भोग-व्यूह कहते हैं। अब मैं तुमसे उन व्हूयों के विषय मे कह रहा हूँ जो तिरछी रेखाओं में अथवा गोलाकार रेखाओं में खड़े किये जाते है, उनके विषय में सुनो। जहाँ पर सेना पूर्ण वृत्ता-

---

१ क. °हतौ भो°। २ ख. ग. प्रवरो। ३ क, ख. ग. च. °तिष्ठश्चाप्र°। ४ ख. °श्चतुर्दश। अ°।

कार खड़ी होती है उसे मण्डल-व्यूह कहते हैं और जिसमें सेनाओं को अलग-अलग वृत्तों में खड़ा किया जाता है उसे असंहर्त व्यूह कहते हैं। सेनाओं को विभिन्न रूपों में खड़ा करने से दण्ड के अनेक भेद बन जाते हैं,—प्रदर, दृढ़क, असह्य, चाप, कुक्षि, प्रतिष्ठ, सुप्रतिष्ठ, श्येन, विजय, सञ्जय, विशाल, वज्र, सूची, स्थाणुकर्ण, चमूमुख, सर्पाक्ष्य और बलय। ये सब भेद दुर्जय माने जाते हैं और ये एक पक्ष से कक्षों को सम्मिलित करने या वहाँ से हटाने से बनते हैं। उपर्युक्त व्यूह में दो कक्षों को जोड़ देने से और ही व्यूह बन जाता है। उरस् में एक पक्ष और उरस् को जोड़ देने से प्रतिष्ठ नामक व्यूह बन जाता है।४६-५३।

स्थूणापक्षो धनुष्पक्षो द्विस्थूणो दण्ड ऊर्ध्वगः।
द्विगुणोऽन्तस्त्वतिक्रान्तपक्षोऽन्यस्य विपर्ययः ॥५४
द्विचतुर्दण्ड इत्येते ज्ञेयः लक्षणतः क्रमात्।
गोमूत्रिकाहि सञ्चारी शकटो मकरस्तथा ॥५५
भोगभेदाः समाख्यातास्तथा पारिप्लवङ्गकः।
दण्डपक्षौ युगोरस्यः शकटस्तद्विपर्यये ॥५६
मकरो व्यतिकीर्णश्च शेषः[1] कुञ्जरराजिभिः।
मण्डलव्यूहभेदौ तु सर्वतोभद्रदुर्जयौ ॥५७

स्थूणपक्ष और धनुष्पक्ष नामक व्यूह दो-चार पङ्क्तियों में खड़े हुए योद्धाओं के व्यूहों का ही परिवर्तित रूप है। इन्हें अपने-अपने लक्षणों से ही पहचाना जा सकता है। गोमूत्रिका, अहिसञ्चारी, शकट, मकर, परिप्लवङ्गक—ये सब भोग नामक व्यूह के ही भेद कहे गये हैं। दण्ड के रूप में दो कक्षवर्तिनी सेनाओं को खड़ा करने से युगोरस्य और इसकी विपरीत स्थिति में शकट नामक व्यूह बनता है। मकर नामक व्यूह में हस्तिसेना के योद्धाओं की पङ्क्तियों को बढ़ा देने से शेष नामक व्यूह बन जाता है। सर्वतोभद्र और दुर्जय नामक व्यूह मण्डलव्यूह के ही परिवर्तित रूप हैं।५४-५७।

अष्टानीको द्वितीयस्तु प्रथमः सर्वतोमुखः।
अर्धचन्द्रक ऊर्ध्वाङ्गो वज्रभेदास्तु संहतेः ॥५८

---

१ क. शेषं कुञ्जरवाजि°।

तथा कर्कटश्रृङ्गी च काकपादी च गोधिका ।
त्रिचतुष्पञ्चसैन्यानां ज्ञेया आकारभेदत: ॥५९
दण्डस्य स्युः युसप्तदश व्यूहा द्वौ मण्डलस्य च ।
असंघातस्य षट्पञ्च भोगस्यैव तु संगरे ॥६०

इनमें से पहला व्यूह सब ओर से खुला रहता है और दूसरा आठ सैन्यदलों का बना होता है। वज्र वर्ग के व्यूह के विभिन्न अङ्गों के संयोग से अर्धचन्द्रक और ऊर्ध्वङ्ग नामक व्यूह बनते है। तीन, चार और पांच योद्धाओं को विभिन्न स्थितियों में खड़ा रहने से क्रमशः कर्कट, श्रृङ्ग, काकपादी और गोधिका नामक व्यूहों का निर्माण होता है। संग्रामदण्ड के सत्रह प्रकार के, मण्डल के दो प्रकार के, असंघात के छह प्रकार के और भोग के पांच प्रकार के व्यूह हुआ करते हैं।५८-६०।

पक्षादीनामथैकेन हत्वा शेषैः परिक्षिपेत् ।
उरसा वा समाहृत्य कोटिभ्यां परिवेष्टयेत् ॥६१
परे कोटी समाक्रम्य पक्षाभ्यामप्रतिग्रहात् ।
कोटिभ्यां जघनं हव्यादुरसा च प्रपीडयेत् ॥६२
यतः फल्गु यतो भिन्नं यतश्चान्यैरधिष्ठितम् ।
ततश्चारिबलं हन्यादात्मनश्चोपवृंहयेत् ॥६३

(सेनापति को) पक्ष की ओर से आक्रमण करना चाहिये। अन्य भागों से (शत्रु-सेना को) छिन्न-भिन्न कर देना चाहिये। अथवा उसेउरस् नामक सेना के अंग से प्रतिपक्षी सेना के साथ युद्ध करना चाहिये और कोटि नामक अङ्ग से उसे घेर लेना चाहिये। तत्पश्चात् पक्ष नामक अङ्गों से (शत्रु-सेना के) कोटि भाग के ऊपर आक्रमण करना चाहिये। कोटिभागों से (शत्रु सेना के) जघन नामक अङ्ग के ऊपर आक्रमण करना चाहिये। जब शत्रु-सेना थोड़ी हो, अलग-अलग हो और शत्रुओं से घिरी हुई हो तब उसके ऊपर आक्रमण करना चाहिये और अपनी सेना को बढ़ाते रहना चाहिये।६१-६३।

सारं द्विगुणसारेण फल्गुसारेण कल्पयेत्[1] ।
संहतं च गजानीकैः प्रचण्डैर्दारयेद्बलम् ॥६४
स्यात्कक्षपक्षोरस्यैश्च वर्तमानस्तु दण्डकः ।
तत्रप्रयोगो दण्डस्य स्थानं [1]तुर्येव [2]दर्शयेत् ॥६५

१ ख. ग. घ. पीडयेत्। २ क. ङ. दृश्यते। स्या⁰ ।

स्याद्दण्डसमपक्षाभ्यामतिक्रान्तः प्रदारकः[1] ।
भवेत्स पक्षकक्षाभ्यामतिक्रान्तो[2] दृढः स्मृतः ॥६६

शत्रु-सेना के मुख्य अङ्ग पर उसके दुगुने सैन्य दल से आक्रमण करना चाहिये अथवा अपनी सेना के सुरक्षित भाग से आक्रमण करना चाहिये। यदि सेना के कक्ष, पक्ष और उर नामक भाग सामने खड़े हों तो अपनी सेना को दण्डक के रूप में खड़ा कर देना चाहिये। दण्ड रूपमें खड़ी हुई सेना में पक्ष और कक्ष नामक अङ्गों को सम्मिलित कर देने से प्रदर नामक (सैन्य) अङ्ग बन जाता है, जिसका सामना करने के लिये दृढ़ व्यूह का निर्माण करना चाहिये ।६४-६६।

कक्षाभ्यां च प्रतिक्रान्तव्यूहोऽसह्यः स्मृतो यथा[3] ।
कक्षपक्षावधः स्थाप्योरस्यैः क्रान्तश्च खातकः[4] ॥६७
द्वौ दण्डौ वलयः प्रोक्तो व्यूहो रिपुविदारणः[5]।
दूर्जयश्चतुर्वलयः शत्रोर्बलविमर्दनः[6] ॥६८
कक्षपक्षोरस्यैर्भोगो विषमं[7] परिवर्जयेत्[8] ।
[9]सर्पचारी गोमूत्रिका शकटः शकटाकृतिः[10] ॥६९
विपर्ययोऽमरः प्रोक्तः [11]शर्वशत्रुविमर्दकः ।
स्यात्कक्षपक्षोरस्यानामेकी भावस्तु मण्डलः[12] ॥७०

असह्य व्यूह में खड़ी हुई सेना का सामना खातक व्यूह से करना चाहिये। शत्रु-सेना के दो दण्डों से वलय नामक व्यूह का निर्माण होता है जो शत्रु को विदीर्ण करने वाला हुआ करता है और शत्रु-सेना का भेदन करने वाली चार दण्डों से बनी हुई सेना को दुर्जय (व्यूह) कहते हैं। भोग नामक सैन्य-दल के उर, पक्ष और कक्ष की स्थिति में परिवर्तन कर देने से क्रमशः सर्पचारी. गोमूत्रिका और शकट की आकार का शकट-व्यूह हुआ करता है। (शकट का) विपरीत (व्यूह) अमरव्यूह कहलाता है जो सभी शत्रुओं का मर्दन करने वाला हुआ करता है। मण्डल व्यूह में कक्ष, पक्ष और उर आदि में योद्धाओं की स्थिति समान रहती है।६७-७०।

---

१ क. ङ. °कः। भ° । २ क. ङ. °न्तो हरःस्मृतः । क° । ३ क. ङ. °था । क° । ४ क. ङ. खादकः । द्वौ । ५ क. ङ. °ण । दु° । ६ क. ङ. नः° । क° । ७ घ. °षयं परिवर्तयन् । स° । ८ क. ङ. °त् । स° ९ क. ङ. सर्वचारी । १० क. ङ. °तिः । वि° । ११ क. ङ. °र्दनः । स्या° । १२ क. ङ. °लः । च° ।

चक्रपद्मादयो भेदा मण्डलस्व प्रभेदकाः ।
एवं च सर्वतोभद्रो वज्राक्षवरकाकवत् ॥७१
अर्धचन्द्रश्च श्रृङ्गारी ह्यचलो नामरूपतः ।
व्यूहा यथासुखं कार्याः शत्रूणां वलवारणाः ॥७२

चक्र और पद्म आदि भेद मण्डल (व्यूह) के ही हैं। इसी प्रकार सर्वतो-भद्र, अर्धचन्द्र, श्रृङ्गार और अचल मण्डल के ही विभिन्न रूप हैं, जो शत्रु-सेना का सामना करने के लिये सुविधानुसार वना लिये जाते हैं।७१-७२।

अग्निरुवाच—

रामस्तु रावणं हत्वा ह्ययोध्यां प्राप्तवान्द्विज ।
रामोक्तनीत्येन्द्रजितं हतवाँल्लक्ष्मणः पुरा ॥७३

अग्निदेव बोले—हे ब्राह्मण देव ! (इसी नीति के अनुसार) राम ने रावण को मारकर अयोध्या को पुनः प्राप्त किया और राम के द्वारा वतायी गयी नीति के अनुसार ही प्राचीन काल में लक्ष्मण ने (भी) इन्द्रजित् (मेघनाद) का वध किया था।७३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये राजनीतिकथनं नाम द्वाचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२४२

अथ त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

पुरुषलक्षणम्

अग्निरुवाच—

[1]रामोक्तोक्ता मया नीतिः स्त्रीणां राजन्नृणां वदे ।
लक्षणं यत्समुद्रेण गर्गायोक्तं यथा पुरा ॥१

अग्निदेव बोले—हे राजन् ! मैंने राम के द्वारा वतलायी गयी नीति को तो कह दिया है, अब मैं स्त्री-पुरुषों के उन लक्षणों को वतलाऊँगा, जिन्हें प्राचीन- काल में समुद्र ने गर्ग से कहा था।१।

---

१ छ. रामायोक्ता ।

समुद्र उवाच —

पुंसां च लक्षणं वक्ष्ये स्त्रीणां चैव शुभाशुभम् ।
एकाधिको द्विशुक्लश्च त्रिगम्भीरस्तथैव च ॥२
त्रित्रिकस्त्रिप्रलम्वश्च त्रिभिर्व्याप्नोति यस्तथा ।
त्रिवलीमांस्त्रिवनतस्त्रिकालज्ञश्च सुव्रत ॥३

समुद्र बोला — (अब मैं) स्त्री-पुरुषों के शुभाशुभ लक्षणों के सम्बन्ध में वतलाऊँगा। अये सुव्रत! वह पुरुष सुलक्षण हुआ करता है जो एकाधिक, द्विशुक्ल, त्रिगम्भीर, त्रित्रिक, त्रिप्रलम्व, त्रिवनत, त्रिवलीवान् और त्रिकालज्ञ हो।२-३।

पुरुषः स्यात्सुलक्षण्यो विपुलश्च तथा त्रिषु ।
चतुर्लेखस्तथा यश्च तथैव च चतुः समः ॥४
[1]चतुष्किष्कुश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुष्कृष्णस्तथैव च ।
चतुर्गन्धश्चतुर्हस्तः सूक्ष्मदीर्घश्च पञ्चसु ॥५
षडुन्नीतोऽष्टवंशश्च सप्तस्नेहो [2]नवामलः ।
दशपद्मो दशव्यूहो न्यग्रोधपरिमण्डलः ॥६
चतुर्दशसमद्वन्द्वः षोडशाक्षश्च शस्यते ।
धर्मार्थकामसंयुक्तो धर्मो ह्येकाधिको मतः ॥७
तारकाभ्यां विना नेत्रे शुक्लदन्ती द्विशुक्लकः ।
गम्भीरस्त्रिश्रवो नाभिः सत्त्वं चैकं त्रिकं स्मृतम् ॥८

इसी प्रकार जिसके शरीर के चार अङ्गों के ऊपर चार लेखायें हों, शरीर के चार अंग विस्तृत और दीर्घ हों, ऊँचाई उपयुक्त हो, आगे के चार दाँत अच्छे हों, जिसके शरीर के चार अङ्ग श्यामवर्ण हों, जिसके शरीर के चार अङ्गों से सुगन्धि आया करती हो, जिसके चार अङ्ग छोटे हों, पाँच अङ्ग लम्बे और पतले हों, छह अङ्ग उठे हुए हों, आठ अङ्गों की अस्थियाँ मजबूत और सीधी हों, जिसके शरीर के सात अङ्ग चिकने हों, नौ अङ्ग निर्मल हों, दश अङ्ग कमल के वर्ण के हों, दश अङ्ग विकार रहित और सुडौल हों,

---

१ घ. °दंष्ट्रः शुक्लः कृष्ण° । २ ग. महाबलः ।

जिसके अङ्ग न्यग्रोधपरिमण्डल के समान हों, शरीर के चौदह अङ्ग युग्म के समान हों अथवा जिसके सोलह नेत्र हों, (चौदह ज्ञानचक्षु, दो कर्मचक्षु), वह मनुष्य अपने जीवन में बड़े-बड़े कार्य कर सकता है। धर्म, अर्थ और काम-पुरुषार्थों का पालन करते हुए अपने कर्तव्य का पालन करना एकधिक कहलाता है। द्विशुक्ल उसे कहते हैं जिसके दाँत और कनीनिकायें शुक्ल हों। धैर्य, कान और नाभि की गम्भीरता ही त्रिगम्भीरत्व है।४-८।

अनसूया दया क्षान्तिर्मङ्गलाचार युक्तता।
शौचंस्पृहात्वकार्पण्यमनायासश्च शौर्य (शूर) ता ॥९
त्रित्रिकस्त्रिप्रलम्ब: स्याद् वृषणे भुजयोर्नर:।
दिग्देशजातिवर्गांश्च तेजसा यशसा श्रिया ॥१०
व्याप्नोति यस्त्रिकव्यापी त्रिवलीमान्नरस्त्वसौ।
उदरे वलयस्तिस्रो नरं त्रिविनतं शृणु ॥११
देवतानां द्विजानां च गुरूणां प्रणतस्तु य:।
धर्मार्थकामकालज्ञस्त्रिकालज्ञोऽभिधीयते ॥१२

नौ गुणों का होना ही 'त्रित्रिक' कहलाता है। वे गुण हैं—अनसूया, दया, क्षमा, मङ्गलाचार, शुचिता, स्पृहा, अकार्पण्य, अनायासता और शूरता। त्रिलम्ब का अभिप्राय है हाथों, अण्डकोषों और शरीर के नीचे वाले भागों का लम्बा होना। जो व्यक्ति अपने तेज, यश और ऐश्वर्य से सभी दिशाओं को, अपने देश को और अपनी जाति को प्रभावित कर लेता है, उसे त्रिव्यापी कहते हैं। जिसके उदर में तीन रेखायें पड़ी हुई होती हैं, उसे त्रिवलीमान् कहते है। त्रिविनत उसे कहते हैं जो देवताओं, ब्राह्मणों और गुरुजनों के प्रति विनम्र रहता है। धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थो की प्राप्ति के अवसर के ज्ञाता पुरुष को त्रिकालज्ञ कहते हैं।९-१२।

उरो ललाटं वक्त्रं च त्रिविस्तीर्णो विलेखवान्।
द्वौ पाणी द्वौ तथा पादौ ध्वजच्छत्रादिभिर्युतौ ॥१३
अङ्गुल्यो हृदयं पृष्ठं कटि: शस्तं चतु:समम्।
षण्णवत्यङ्गुलोत्सेधश्चतुष्किष्कुप्रमाणत: ॥१४
दंष्ट्राश्चतस्रश्चन्द्राभाश्चतुष्कृष्णं वदामि ते।
नेत्रतारौ भ्रुवौ श्मश्रु: कृष्णा: केशास्तथैव च ॥१५

त्रिविस्तीर्ण उसे कहते हैं जिसका वक्षःस्थल, मस्तक और मुख विस्तृत (विशाल) होता है। जिस व्यक्ति के दोनों हाथ और दोनों पैर ध्वज और छत्रादि चिह्नों से युक्त होते हैं, उसे चतुर्लेख कहते हैं। अङ्गुलियों, हृदय, पीठ और कटि का चौड़ा होना शुभ माना गया है। (पुरुष की) छियानवे अङ्गुलि की लम्बाई मानी गयी है। आगे के चार दातों का मोती के समान उज्ज्वल होना चतुर्दंष्ट्र कहलाता है। अब मैं तुम्हें चतुष्कृष्ण बतला रहा हूँ। कनीनिकाओं, भौहों, दाढ़ी और केशों का काला होना चतुष्कृष्ण कहलाता है।१३-१५।

नासायां वदने स्वेदे कक्षयोर्वेदगन्धकः[1] ।
ह्रस्वं लिङ्गं तथा ग्रीवा जङ्घे स्याद्वेदह्रस्वकः ॥१६
सूक्ष्माण्यङ्गुलिपर्वाणि नखकेशद्विजत्वचः ।
हनू नेत्रे ललाटे च नासा दीर्घा स्तनान्तरम् ॥१७
वक्षः कक्षौ नखा नासोन्नतं वक्त्रं कृकाटिका ।
स्निग्धास्त्वक्केशदन्ताश्च लोमदृष्टिर्नखाश्च वाक् ॥१८
जान्वोरूर्वोश्च पृष्ठस्थवंशौ द्वौ करनासयोः ।
नेत्रे नासापुटौ कर्णौ मेढ्रं पायुमुखेऽमलम् ॥१९
जिह्वौष्ठौ तालुनेत्रे तु हस्तपादौ नखास्तथा ।
शिश्नाग्रवक्त्रं शस्यन्ते पद्माभा दश देहिनाम् ॥२०

नासिका, मुख और बगल से दुर्गन्ध न आना चतुर्गन्ध कहलाता है। लिङ्ग, ग्रीवा और दोनों जंघाओं का छोटा होना चतुर्ह्रस्व कहलाता है। लम्बे और पतले अङ्गुलियों के पोरें, नाखून, केश, दाँत और पतली त्वचा (भाग्यशाली पुरुष के लक्षण होते हैं), उठी हुई कनपटियाँ, हनु (जबड़ा), नासिका और स्तनों के बीच का स्थान षडोन्नत कहलाता है। सप्तस्निग्ध उस व्यक्ति को कहते हैं जिसकी त्वचा, केश, शरीर के रोयें, नाखून, दृष्टि और वाणी स्निग्ध हुआ करती है। अष्टवंश का अभिप्राय है नासिका, रीढ़ की हड्डी, (दोनों) जङ्घाओं और दोनों घुटने का सीधा होना। मुख, (दोनों) नासापुट दोनों (पपोटों), मुख (दोनों) गुप्ताङ्ग और दोनों कर्णकुहरों की स्वच्छता है नवामल। दशपद्म का अभिप्राय है—जिह्वा, तालु, नेत्र (के डोरों), गदेलियों, चरणों, नाखूनों, लिङ्गमणि और मुख का कमल के समान रक्तवर्ण होना।१६-२०।

१ छ. 'योविडग'।

पाणिपादं मुखं ग्रीवा श्रवणे हृदयं शिरः ।
ललाटमुदरं पृष्ठं वृहन्तः पूजिता दश ॥२१
प्रसारितभुजस्येह मध्यमाग्रद्वयान्तरम् ।
उच्छ्रायेण समं यस्य न्यग्रोधपरिमण्डलः ॥२२
पादौ गुल्फौ स्फिचौ पार्श्वौ वङ्क्षणौ वृषणौ कुचौ ।
कर्णोष्ठे (ष्ठौ) सक्थिनी जङ्घे हस्तौ वाहू
तथाऽक्षिणी ॥२३
चतुर्दश समद्वन्द्व एतत्सामान्यतो नरः ।
विद्याश्चतुर्दश द्व्यक्षैः पश्येद्यः षोडशाक्षकः ॥२४

जिस व्यक्ति का मुख, ग्रीवा, कान, वक्षःस्थल, सिर, उदर, मस्तक, हाथ और पैर विकाररहित और सुडौल हुआ करता है वह सम्पूर्ण संसार में सम्मानित होता है। दोनों हाथों को फैलाकर खड़े होने पर जिसके दोनों हाथों की लम्बाई और शरीर की लम्बाई बराबर होती है, उसे न्यग्रोध-परिमण्डल कहते हैं। चतुर्दश समद्वन्द्व का अभिप्राय है, पैरों, टखनों, नितम्बों, पार्श्वों, उरुसन्धियों, अण्डकोषों, स्तनों, कानों, ओठों और जङ्घाओं का समान होना। षोडशाक्ष का अभिप्राय है चौदह विद्याओं से उत्पन्न (ज्ञान की) दृष्टि तथा दो स्थूल नेत्र ।२१-२४।

रूक्षं शिराततं गात्रमशुभं मांसवर्जितम् ।
दुर्गन्धिविपरीतं यच्छस्तं दृष्ट्या प्रसन्नया ॥२५
धन्यस्य मधुरा वाणी गतिर्मत्तेभसंनिभा ।
एककूपभवं रोम भये रक्षा सकृत्सकृत् ॥२६

जिस व्यक्ति का मुख रुक्ष, मांसहीन, दुर्गन्धयुक्त और उभरी हुई नसों से युक्त होता है वह अभागा माना जाता है। भाग्यवान् मनुष्य की वाणी मधुर और गति हाथी के समान होती है। मनुष्य के शरीर में एक ही छिद्र से उत्पन्न होने वाले दो रोयें ऐसे भय को सूचित करने वाले होते हैं जिसका प्रतिकार किसी प्रकार नहीं हो सकता है ।२५-२६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पुरुषलक्षणकथनं नाम त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२४३

अथ चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

स्त्रीलक्षणम्

समुद्र उवाच—

शस्ता स्त्री चारुसर्वाङ्गी मत्तमातङ्गगामिनी ।
गुरूरुजघना या च मत्तपारावतेक्षणा ।।१
सुनीलकेशी तन्वङ्गी विलोमाङ्गी मनोहरा ।
समभूमिस्पृशौ पादौ संहतौ च तथा स्तनौ ।।२
नाभिः प्रदक्षिणावर्ता गुह्यमश्वत्थपत्रवत् ।
गुल्फौ निगूढौ मध्येन नाभिरङ्गुष्ठमानिका ।।३
जठरं च प्रलम्बं च रोमरूक्षा न शोभना ।
नर्क्षवृक्षनदीनाम्नी न सदा कलहप्रिया ।।४
न लोलुपा न दुर्भाषा शुभा देवादिपूजिता ।
गण्डैर्मधूकपुष्पाभैर्न शिराला न लोमशा ।।५
न संहतभ्रूकुटिला पतिप्राणा पतिप्रिया ।
अलक्षणाऽपि लक्षण्या यत्राऽऽकारस्ततो गुणाः ।।
भुवं कनिष्ठिका यस्या न स्पृशेन्मृत्युरेव सा ।।६

समुद्र बोला—वह स्त्री अच्छी मानी जाती है, जो सर्वसुन्दरी हो, जिसकी गति मत्त गजराज के समान हो और जिसकी दृष्टि मत्त कबूतर के समान हो। उसके केश अत्यन्त काले, शरीर दुबला और रोमरहित हो। उसे सुन्दर होना चाहिए और उसके दोनों पैरों को समान रूप से पृथ्वी का स्पर्श करना चाहिये तथा उसके दोनों स्तनों को गठा हुआ होना चाहिए। नाभि को दक्षिण की ओर से भँवर के समान और गुप्ताङ्ग को पीपल के पत्ते के समान होना चाहिये। एड़ियों को बीच से झुका हुआ होना चाहिए। नाभि को अंगुष्ठप्रमाण होना चाहिए। रूक्ष रोमावलि वाली स्त्री सुन्दर नहीं हुआ करती है। उसका नाम नक्षत्र, वृक्ष और नदी के नाम पर नहीं होना चाहिए और न उसे झगड़ालू होना चाहिये। उसे न तो लालची होना चाहिये और न कटु बोलने वाली। उसे सुन्दरी तथा देवता आदि की पूजा करनेवाली होना चाहिए। कपोल महुये के पुष्पों के समान होना चाहिए। उसके (शरीर) में न तो

शिरायें उभरी हुई हों और न रोम हों। भृकुटियों को आपस में मिली नहीं होनी चाहिये। वह पति को प्राणों के समान मानने वाली और पति की प्रिय हो। इस प्रकार की स्त्री (अन्य शुभ) लक्षणों से हीन होने पर भी सुलक्षणा होती है। जहाँ आकार है वहीं गुण होते हैं। जिसत्री स्त्री (के पैर) की छोटी उंगली भूमि का स्पर्श नहीं करती है, वह मृत्यु (रूप) ही हुआ करती है।१-६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये स्त्रीलक्षणकथनं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।२४४

अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोध्यायः

चामरादिलक्षणम्

अग्निरुवाच—

चामरो रुक्मदण्डोऽन्यश्छत्रं राज्ञः प्रशस्यते।
हंसपक्षैर्विरचितं मयूरस्य शुकस्य च ॥१
पक्षैर्वाऽथ वलाकाया न कार्यं मिश्रपक्षकैः।
चतुरस्रं ब्राह्मणस्य वृत्तं राज्ञश्च शुक्लकम् ॥२

अग्निदेव बोले—राजा के लिये सोने के दण्ड से युक्त चामर उत्तम होता है। वह हंस, मयूर, शुक तथा बगुली के पंखों से बना हुआ रहता है। किन्तु उसे (कई पक्षियों के) मिले-जुले पंखों का नहीं बना होना चाहिये। ब्राह्मण का छत्र चौकोर तथा राजा का गोलाकार और श्वेत होना चाहिये।१-२।

त्रिचतुष्पञ्चषट्सप्त अ (का) ष्टपर्वश्च दण्डकः।
भद्रासनं क्षीरवृक्षैः पञ्चाशदङ्गुलोच्छ्रयैः ॥३
विस्तारेण त्रिहस्तं स्यात्सुवर्णाद्यैश्च चित्रितम्।
धनुर्द्रव्यत्रयं लोहं शृङ्गं दारु द्विजोत्तम ॥४

उसके दण्ड में तीन, चार, पाँच, छह, सात या आठ पर्व होने चाहिये। भद्रासन (राजा का आसन) गूलर की लकड़ी का बना होना चाहिये, जिसकी

लम्बाई पचास अङ्गुल और चौड़ाई तीन हाथ की होती है। उसे सुवर्ण आदि से मढ़ा होना चाहिये। अये द्विजवर ! धनुष तीन द्रव्यों—लोहा, सींग, लकड़ी का बना हुआ होता है ।३-४।

ज्याद्रव्यत्रितयं चैव वंशभङ्गत्वचस्तथा ।
दारुचापप्रमाण तु श्रेष्ठं हस्तचतुष्टयम् ।।५
तदेव समहीनं तु प्रोक्तं मध्यकनीयसि ।
मुष्टिग्राहनिमित्तानि मध्ये द्रव्याणि कारयेत् ।।६
स्वल्पकोटिस्त्वचाशृङ्गं शाङ्गं लोहमये द्विज ।
कामिनीभ्रूलताकारा कोटिः कार्या सुसंयता ।।७

प्रत्यञ्चा भी तीन चीजों की बनी हुई होती है—बाँस का टुकड़ा, छिलका और डोरी। लकड़ी के धनुष की लम्बाई चार हाथों की उत्तम मानी गयी है। वही तीन हाथों का मध्यम और दो हाथों का अधम होता है। मध्य में जहाँ मुट्ठी से पकड़ते हैं, वहाँ उसे अन्य द्रव्यों से मढ़ देना चाहिए। अये द्विज ! सींग तथा लोहे के बने धनुष का अग्रभाग छोटा होना चाहिये। उसकी आकृति सुडौल तथा कामिनी की भ्रूलता के समान होनी चाहिये ।५-७।

पृथग्वा विप्र मिश्रं वा लौहं शाङ्गं तु कारयेत् ।
शाङ्गं समुचितं कार्यं रुक्मविन्दुविभूषितम् ।।८
कुटिलं स्फुटितं चापं सच्छिद्रं च न शस्यते ।
सुवर्णं रजतं ताम्रं कृष्णायो धनुषि स्मृतम् ।।९
माहिषं शारभं शाङ्गं रौहिषं वा धनुः शुभम् ।
चान्दनं वैतसं सालं धावलं काकुभं [1]तथा ।।१०
सर्वश्रेष्ठं धनुर्वंशैर्गृहीतैः शरदि श्रितैः ।
पूजयेत्तु धनुः खड्गं मन्त्रैस्त्रैलोक्यमोहनैः ।।११

धनुष लोहे तथा सींग को मिलाकर अथवा पृथक् बनाना चाहिये। सींग से बने हुए धनुष को सोने के विन्दुओं से विभूषित होना चाहिये। टेढ़ा-मेढ़ा, टूटा हुआ तथा छिद्र वाला धनुष अच्छा नहीं हुआ करता। धनुष के लिये सोने, चाँदी, ताँबे तथा काले लोहे का व्यवहार करना चाहिये। महिष, शरभ,

---
१ छ. तरुः ।

तथा रोहिष के सींग का बना धनुष अच्छा माना जाता है। चन्दन, बेंत, साखू, अर्जुन तथा धवल वृक्ष का भी धनुष उत्तम होता है। सबसे उत्तम धनुष तो वह होता है, जो शरद् ऋतु में उत्पन्न होने वाले बाँसों का बनाया जाता है। धनुष तथा खड्ग की पूजा त्रैलोक्यमोहन मन्त्रों से करनी चाहिये।८-११।

अयसश्चाथ वंशस्य शरस्याप्यशरस्य च।
ऋजवो हेमवर्णाभाः स्नायुश्लिष्टाः सुपत्रकाः ॥१२
रुक्मपुङ्खाः सुपुङ्खास्ते तैलधौताः सुवर्णकाः।
यात्रायामभिषेकादौ यजेद्बाणधनुर्मुखान् ॥१३
सपताकास्त्रसंग्राहसंवत्सरकरान्नृपः।
ब्रह्मा वै मेरुशिखरे स्वर्गगङ्गातटेऽयजत् ॥१४

बाण लोहे या ऐसे बाँस का बनाना चाहिये जो सीधा तथा स्नायुबद्ध हो, तेल में भिगोया गया हो, जिसका वर्ण सुवर्ण के समान हो, पत्र मनोहर हो और पुङ्ख (बाणमूल) सोने का हो। उनका मूल नुकीला होना चाहिये तथा उन्हें तेल में धुला हुआ और सुन्दर वर्णवाला होना चाहिये। (राजा को) यात्रा तथा अभिषेक आदि के समय धनुष, बाण, पताका और अस्त्र शस्त्रों का पूजन करना चाहिये। (प्राचीन काल में) ब्रह्मा ने सुमेरु पर्वत के शिखर पर स्वर्ग गङ्गा के तट पर धनुष आदि की पूजा की थी।१२-१४।

लोहदैत्यं स ददृशे विघ्नं यज्ञे तु चिन्तयन्।
तस्य चिन्तयतो वह्नेः पुरुषोऽभूद्बली महान् ॥१५
ववन्देऽब्जं च तं देवा अभ्यनन्दन्त हर्षिताः।
तस्मात्स नन्दकः खड्गो देवोक्तो हरिरग्रहीत् ॥१६
तं [1]जग्राह गले देवो विकोषः सोऽभ्यपद्यत।
खड्गो नीलो रत्नमुष्टिस्ततोऽभूच्छतबाहुकः ॥१७
दैत्यः स गदया देवान्द्रावयामास वै रणे।
विष्णुना खड्गच्छिन्नानि दैत्यगात्राणि भूतले ॥१८

उस समय उनको एक ऐसा लोहे का दैत्य दिखलायी पड़ा जिससे वे घबड़ा उठे। उन्होंने सोचा कि यह कोई यज्ञ में विघ्न डालने के लिये आया है। इतने में अग्नि से एक महाबली पुरुष उत्पन्न हो गया। देवताओं ने ब्रह्मा को

---

१ छः ह॰ शनैर्देवो।

प्रणाम किया और वे आनन्दित हो गये। भगवान् विष्णु ने देवताओं के कहने से नन्दक नामक उस खड्ग को उससे ले लिया। भगवान् ने उस म्यान से रहित खड्ग को मूठ से पकड़ लिया। वह खड्ग नीला था और उसकी मूठ सोने की थी। दैत्य ने (भी) अपने आपको सौ भुजाओं से युक्त कर लिया। उस दैत्य ने रण में गदा से देवताओं को भगा दिया। विष्णु ने दैत्य के अङ्गों को खड्ग से काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया।१५-१८।

पतितानि तु संस्पर्शान्नन्दकस्य च तानि हि।
लोहभूतानि सर्वाणि हत्वा तस्मै हरिर्वरम् ॥१९
ददौ पवित्रमङ्गं त आयुधाय भवेद्भुवि।
हरिप्रसादाद्ब्रह्माऽपि विना विघ्नं हरिं प्रभुम् ॥२०
पूजयामास यज्ञेन वक्ष्येऽथो खड्गलक्षणम्।
खटीखट्टर जाता ये दर्शनीयास्तु ते स्मृताः ॥२१
कायच्छिदस्त्वार्षिकाः स्युर्दृढाः सुर्पारकोद्भवाः।
तीक्ष्णाश्छेदसहा वङ्गास्तीक्ष्णाः स्युश्चाङ्गदेशजाः ॥२२

नन्दक (नामक खड्ग) के स्पर्श से वे सभी (कटे हुए शरीरावयव) लौह के बन गये। तत्पश्चात् भगवान् विष्णु ने दैत्य को मारकर यह वर दे दिया कि "तुम्हारे पवित्र अङ्ग पृथ्वी पर शस्त्रों के काम में लाये जायेंगे।" भगवान् विष्णु की कृपा से ब्रह्मा ने भी निर्विघ्न यज्ञ से उनकी पूजा की। अब मैं खड्ग लक्षण बतलाऊँगा। खटीखट्टर देश में बने हुए खड्ग दर्शनीय होते हैं। उसी तरह ऋषिक देश के खड्ग शरीर को काटने वाले, सूर्पारक देश के दृढ़, वंग देश के तीक्ष्ण और चोट सहने वाले तथा अङ्ग देश के वाण तीक्ष्ण होते हैं।१९-२२।

शतार्धमङ्गुलानां च श्रेष्ठं खड्गं प्रकीर्तितम्।
तदर्धं मध्यमं ज्ञेयं ततो हीनं न धारयेत् ॥२३
दीर्घः सुमधुरः शब्दो यस्य खड्गस्य सत्तम।
किङ्किणीसदृशस्तस्य धारणं श्रेष्ठमुच्यते ॥२४
खड्गः पद्मपलाशाग्रो मण्डलाग्रश्च शस्यते।
करवीरदलाग्राभो घृतगन्धः वियत्प्रभः ॥२५
समाङ्गुलस्थाः शस्यन्ते व्रणाः खड्गेषु लिङ्गवत्।
काकोलूकसवर्णाभा विषमास्ते न शोभनाः ॥२६

खड्गे न पश्येद्वदनमुच्छिष्टो न स्पृशेदसिम् ।
मूल्यं जातिं न कथयेन्निशि कुर्यान्न शीर्षके ॥२७

पचास अङ्गुल लम्बा खड्ग उत्तम कहा गया है। उसकी आधी लम्बाई वाला मध्यम होता है और उससे कम लम्बाई के खड्ग को नहीं धारण करना चाहिए। जो खड्ग लम्बा तथा किंकिणी के समान सुमधुर शब्द करने वाला हो, उसका धारण करना अच्छा कहा गया है। जिस खड्ग का अग्रभाग कमलपत्र के समान हो या मण्डलाकार हो, वह प्रशंसनीय होता है। जिसका गन्ध घी के समान, प्रभा आकाश के समान और अग्रभाग करवीर पत्र के समान हो, वह भी उत्तम होता है। दो अंगुलियों की चौड़ाई के बराबर लम्बा खड्ग शुभ माना जाता है। खड्गों में रहने वाले छिद्र आदि के गुण-दोष को लिङ्गवत् समझना चाहिए। कौये और उल्लू के समान वर्ण वाली ऊँची-नीची खड्ग शुभ नहीं होती है। खड्ग में न तो मुख देखना चाहिये और न तो उसे जूठे हाथ छूना ही चाहिये। उसके मूल्य तथा जाति को किसी से नहीं बताना चाहिये और न रात्रि में लटकते हुए खड्ग के नीचे सोना चाहिये।२३-२७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये चामरादिलक्षणकथनं नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।२४५

अथ षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

रत्नपरीक्षा

अग्निरुवाच –

रत्नानां लक्षणं वक्ष्ये रत्नं धार्यमिदं नृपैः ।
वज्रं मरकतं रत्नं पद्मरागं च मौक्तिकम् ॥१
इन्द्रनीलं महानीलं वैदूर्यं गन्धशस्यकम् ।
चन्द्रकान्तं सूर्यकान्तं स्फटिकं पुलकं तथा ॥२
कर्केतनं पुष्परागं तथा ज्योतीरसं द्विज ।
स्फटिकं राजपट्टं च तथा राजमयं शुभम् ॥३

सौगन्धिकं तथा तथा गञ्जं शङ्खब्रह्ममयं तथा ।
गोमेदं रुधिराक्षं च तथा भल्लातकं द्विज ॥४
धूलीं मरकतं चैव तुत्थकं सीसमेव च ।
पीलुं प्रवालकं चैव गिरिवज्रं द्विजोत्तम ॥५
भुजङ्गममणिं चैव तथा वज्रमणिं शुभम् ।
टिट्टिभं च तथा पिण्डं भ्रामरं च तथोत्पलम् ॥६
सुवर्णप्रतिबद्धानि रत्नानि श्रीजयादिके ।

अग्निदेव बोले—मैं रत्नों का लक्षण बतलाता हूँ । राजा को जिन-जिन रत्नों को धारण करना चाहिए वे हैं—वज्र, मरकत, रत्न, पद्मराग, मौक्तिक, इन्द्रनील, महानील, वैदूर्य, गन्धशस्य, चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, स्फटिक, पुलक, कर्केतन, पुष्पराग, ज्योतीरस, राजपट्ट, राजमय, सौगन्धिक, गञ्ज, शंखब्रह्ममय, गोमेद, रुधिराक्ष, भल्लातक, धूली, मरकत, तुत्थक, सीस, पीलु, प्रवालक, गिरिवज्र, भुजङ्गमणि, वज्रमणि, टिट्टिभ, पिण्ड, भ्रामर तथा उत्पल । श्री और विजय आदि की प्राप्ति के लिए स्वर्ण में जड़े हुए रत्न को धारण करना चाहिये ।१-६½।

अन्तःप्रभत्वं वैमल्यं सुसंस्थानत्वमेव च ॥७
सुधार्या नैव धार्यास्तु निष्प्रभा मलिनास्तथा ।
खण्डाः सशर्करा ये च प्रशस्तं वज्रधारणम् ॥८
अम्भस्तरति यद्वज्रमभेद्यं विमलं च यत् ।
षट्कोणं शक्रचापाभं लघुचार्कनिभं शुभम् ॥९
शुकपक्षनिभः स्निग्धः कान्तिमान्विमलस्तथा ।
स्वर्णचूर्णनिभैः सूक्ष्मैर्मरकतैश्च विन्दुभिः ॥१०
स्फटिकाः पद्मरागाः स्यू रागवन्तोऽतिनिर्मलाः ।
[1]जातरङ्गाः भवन्तीह कुरुविन्दसमुद्भवाः ॥११

जो रत्न अन्दर से चमकता हो और अच्छे स्थान से प्राप्त किया गया हो, उसे ही धारण करना चाहिये । प्रभाहीन, मलिन, खण्डित तथा रेतीले रत्न को नहीं धारण करना चाहिये । मणि का धारण करना भी शुभ होता है । जो वज्र पानी में तैर सके, जिसका वर्ण इन्द्रधनुष तथा सूर्य के समान

---

१ छ॰ जातवङ्गाः ।

हो, जिसमें छह कोने हों और जो लघु, अभेद्य और विमल हो, उसे धारण करना चाहिये। मरकत (मणि) वह अच्छा होता है जो तोते के पंख के समान स्निग्ध, कान्तिमान्, विमल तथा सुवर्ण चूर्ण के समान सूक्ष्म बिन्दुओं से युक्त हों। जो स्फटिक तथा पद्मराग अतिनिर्मल तथा लाल हो, जो वज्र या कुरुविन्द देश में उत्पन्न हुआ हो, वह उत्तम होता है।७-११।

सौगन्धिकोत्थाः काषाया मुक्ताफलास्तु शुक्तिजाः।
विमलास्तेभ्य उत्कृष्टा ये च शङ्खोद्भवा मुने ॥१२
नागदन्तभवाश्चाग्र्याः कुम्भसूकरमत्स्यजाः।
वेणुनागभवाः श्रेष्ठा मौक्तिकं मेघजं वरम् ॥१३
वृत्तत्वं शुक्लता स्वाच्छ्यं महत्त्वं मौक्तिके गुणाः।
इन्द्रनीलः शुभं क्षीरे राजते भ्राजतेऽधिकम् ॥१४
रञ्जयेत्स्वप्रभावेण तममूल्यं विनिर्दिशेत् ॥
नीलरक्तं तु वैदूर्यं श्रेष्ठं हारादिकं भजेत् ॥१५

हे मुने! मुक्ताफल (मोती) वे अच्छे होते है जिनका रंग काषाय होता हैं और जो सीपी से या रक्तकमल से उत्पन्न होते हैं। परन्तु शंख से उत्पन्न होने वाले और शुभ्र मोती उनसे भी उत्तम होते हैं। हस्तिदन्त, हस्तिशिर, शूकर, मत्स्य तथा वेणु से उत्पन्न होने वाला मुक्ताफल भी अच्छा होता है। मेघोत्पन्न मौक्तिक को श्रेष्ठ कहा गया है। गोलापन, शुक्लता, स्वच्छता तथा महत्ता— ये मौक्तिक के गुण होते हैं। जो इन्द्रनील (मणि) दूध में डालने से अधिक चमकने लगता है तथा अपने प्रभाव (छवि) से लोगों का अनुरञ्जन करता है, उसे अमूल्य (बहुमूल्यक) समझना चाहिए। नील और रक्तवर्ण वाला वैदूर्य हार आदि के लिए अत्युत्तम होता है। १२-१५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रत्नपरीक्षाकथनं नाम षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।२४६

अथ सप्तचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः
वास्तुलक्षणम्

अग्निरुवाच—

वास्तुलक्ष्यप्रवक्ष्यामि विप्रादीनां च भूरिह ।
श्वेता रक्ता तथा पीता कृष्णा चैव यथाक्रमम् ।।१
घृतरक्तान्नमद्यानां गन्धाढ्या रसतश्च भूः ।
मधुरा च कषाया च अम्लाद्युपरसा क्रमात् ।।२
कुशैः शरैस्तथा काशैर्दूर्वाभिर्या च संश्रिता ।
प्राच्‍र्य विप्रांश्च निःशल्यां खातपूर्वं तु कल्पयेत् ।।३

अग्निदेव बोले—(अब) मैं वास्तुभूमि का लक्षण बतलाऊँगा । ब्राह्मण आदि वर्णों की भूमि क्रमशः श्वेत, रक्त, पीत तथा कृष्ण रंग की होनी चाहिये । उन भूमियों में से क्रमशः घी, शोणित, अम्ल तथा मद्य की-सी गन्ध निकलती रहती है । उसका रस क्रमशः मधुर, कषाय, अम्ल और कटु होता है । वह कुश, सरपत, काश तथा दूर्वा से आच्छादित रहती है । ऐसी भूमि पर विप्रों की पूजा करके शल्योद्धार करे (अर्थात् मिट्टी खोद कर) हड्डी आदि अपवित्र वस्तुओं को निकाल देना चाहिए ।१-३।

चतुःषष्टिपदं कृत्वा मध्ये ब्रह्मा चतुष्पदः ।
प्राक्तेषां वै गृहस्वामी कथितस्तु तथाऽर्यमा ।।४
दक्षिणेन विवस्वांश्च मित्रः पश्चिमतस्तथा ।
उदङ्महीधरश्चैव आपवत्सौ च वह्निगे ।।५
सावित्रश्चैव सविता जयेन्द्रौ नैर्ऋतेऽम्बुधौ ।
रुद्रव्याधी च वायव्ये पूर्वादौ कोणगाद्बहिः ।।६
महेन्द्रश्च रविः सत्यो भृशः पूर्वेऽथ दक्षिणे ।
गृहक्षतोऽर्यमधृती गन्धर्वाश्चाथ वारुणे ।।७
पुष्पदन्तोऽसुराश्चैव वरुणो यक्ष एव च ।
सौम्ये भल्लाटसोमौ च अदितिर्धनदस्तथा ।।८
नागः करग्रहश्चैशे अष्टौ दिशि दिशि स्मृताः ।

फिर चौंसठ पद भूमि को नापकर मध्य में ब्रह्मा की पूजा करनी चाहिये । उनसे चार पग पूर्व की ओर गृहस्वामी तथा अर्यमा की पूजा करनी चाहिये ।

दक्षिण में विवस्वान् की, पश्चिम में मित्र की और उत्तर में महीधर की पूजा करनी चाहिये। दक्षिण-पूर्व दिशा में आप तथा वत्स की, नैर्ऋत में सावित्र की तथा सविता की, ईशान मे जय तथा इन्द्र की और वायव्य में रुद्र और व्याधि (के अधिष्ठाता) देवता की पूजा करनी चाहिये। पुनः पूर्व दिशा में महेन्द्र, रवि, सत्य तथा भृश की, दक्षिण में गृहक्षत, अर्यमा, धृति तथा गन्धर्व की, पश्चिम में पुष्पदन्त, असुर, वरुण तथा यक्ष की और उत्तर में भल्लाट, सोम, अदिति, कुबेर, नाग और करग्रह की पूजा करनी चाहिये।४-८३।

आद्यन्तौ तु तयोर्देवौ प्रोक्तावत्र गृहेश्वरौ ॥९
पर्जन्यः प्रथमो देवो द्वितीयश्च करग्रहः।
महेन्द्ररविसत्याश्च भृशोऽथ गगनं तथा ॥१०
पवनः पूर्वतश्चैव अन्तरिक्षधनेश्वरौ।
आग्नेये चाथ नैर्ऋत्ये मृगसुग्रीवकौ सुरौ ॥११
रोगो मुख्यश्च वायव्ये दक्षिणे पुष्पवित्तदौ।
गृहक्षतो यमभृशौ गन्धर्वो नागपैतृकः ॥१२
आप्ये दौवारिक सुग्रीवौ पुष्पदन्तोऽसुरो जलम्।
यक्ष्मरोगश्च[1] शेषश्च उत्तरे नागराजकः ॥१३
मुख्यो भल्लाटशशिनौ अदितिश्च कुबेरकः।
नागो हुताशः श्रेष्ठो वै शक्रसूर्यौ च पूर्वतः ॥१४
दक्षे गृहक्षतः पुष्प आप्ये सुग्रीव उत्तमः।
पुष्पदन्तो ह्युदग्द्वारि भल्लाटः पुष्पदन्तकः ॥१५

इनकी पूजा करके पूर्व दिशा में महेन्द्र, सूर्य, सत्य, भृश, गगन तथा पवन की, दक्षिण-पूर्व दिशा में अन्तरिक्ष तथा धनेश्वर की; दक्षिण-पश्चिम में मृग तथा सुग्रीव की पश्चिमोत्तर दिशा में रोग के अधिष्ठाता देवता की, दक्षिण में, पुष्पदन्त कुबेर, गृहक्षत, यम, भृश, गन्धर्व तथा नाग-पैतृक की; पश्चिम में सुग्रीव, दौवारिक, पुष्पदन्त, असुरजल, यक्ष्मा तथा शेष रोगों के अधिष्ठाता देवताओं की तथा उत्तर में नागराज, भल्लाट, शशि, अदिति, कुबेर, नाग तथा अग्नि की पूजा करनी चाहिए। पुनः पूर्व में इन्द्र, सूर्य का, दक्षिण में गृहक्षत, पुष्पदन्त का, पश्चिम में सुग्रीव उत्तम का और उत्तर में भल्लाट और पुष्पदन्त का पूजन करना चाहिये।९-१५।

---

१ क. ङ. °श्च शोष°।

शिलेष्टकादिविन्यासं मन्त्रैः प्राच्र्य सुरांश्चरेत् ।
नन्दे नन्दय वाशिष्ठे वसुभिः प्रजया सह ॥१६
जये भार्गवदायादे प्रजानां जयमावह ।
पूर्णेऽङ्गिरसदायादे पूर्णकामं कुरुष्व माम् ॥१७

तदनन्तर मन्त्रपूर्वक शिलान्यास, इष्टकान्यास आदि करके देवतार्चन करना चाहिये। तत्पश्चात् देवियों से इस तरह प्रार्थना करनी चाहिये—"नन्दे ! मुझे आनन्दित करो। वाशिष्ठे ! वसुओं के साथ आकर मेरा कल्याण करो। भार्गव की पत्नी जये ! अपनी प्रजा सहित आकर मेरी पूजा को विजयी बनाइये। अङ्गिरा की पत्नी पूर्णे ! मेरी कामनाओं को पूर्ण कीजिये।१६-१७।

भद्रे काश्यपदायादे कुरु भद्रां मतिं मम ।
सर्वबीजसमायुक्ते सर्वरत्नौषधैर्वृते ॥१८
रुचिरे नन्दने नन्दे वाशिष्ठे रम्यतामिह ।
प्रजापतिसुते देवि चतुरस्रे महीमये ॥१९
सुभगे सुव्रते भद्रे गृहे काश्यपि रम्यताम् ।
पूजिते परमाचार्यैर्गन्धमाल्यैरलङ्कृते ॥२०
भवभूतिकरे देवि गृहे भार्गवि रम्यताम् ।
अव्यङ्ग्ये चाक्षते पूर्णे मुनेरङ्गिरसः सुते ॥२१
इष्टके त्वं प्रयच्छेष्टं प्रतिष्ठां कारयाम्यहम् ।

काश्यप की पत्नी भद्रे ! मुझे शुभ मति प्रदान कीजिये। सब प्रकार के बीजों, रत्नों और ओषधियों से युक्त रुचिरे ! नन्दने ! नन्दे ! वाशिष्ठे ! यहाँ रमण कीजिये। अयि प्रजापति की पुत्रि! देवि ! चतुरस्रे ! महीमये ! सुभगे ! सुव्रते ! भद्रे ! काश्यपि ! मेरे इस घर में रमण कीजिये। अव्यङ्ग्ये ! अक्षते ! पूर्णे ! अङ्गिराकन्ये ! इष्टके ! मुझे इष्टसिद्धि प्रदान कीजिये। मैं तुम्हारी प्रतिष्ठा करूँगा।१८-२१½।

देशस्वामिपुरस्वामिगृहस्वामिपरिग्रहे ॥२२
मनुष्यधनहस्त्यश्वपशुवृद्धिकरी भव ।
गृहप्रवेशेऽपि तथा शिलान्यासं समाचरेत् ॥२३
उत्तरेण शुभः प्लक्षो वटः प्राक्स्याद्गृहादितः ।
उदुम्बरश्च याम्येन पश्चिमेऽश्वत्थ उत्तमः ॥२४

देश, पुर, तथा गृह की स्वामिनि ! मुझे मनुष्य, धन, हाथी, घोड़े और गाय-भैंस अधिक मात्रा में दीजिये ।" गृह-प्रवेश के दिन भी शिलान्यास करना चाहिये । गृह के उत्तर भाग में पाकर, पूर्व में वरगद, दक्षिण में गूलर और पश्चिम में पीपल का वृक्ष लगाना उत्तम होता है ।२२-२४।

वामभागे तथोद्यानं कुर्याद्वासं गृहे शुभम् ।
सायं प्रातस्तु धर्माप्तौ शीतकाले दिनान्तरे ॥२५
[1]वर्षाकाले भुवः शोषे सेक्तव्या रोपितद्रुमाः ।
विडङ्गघृतसंयुक्तान्सेचयेच्छीतवारिणा ॥२६
फलनाशे कुलत्थैश्च माषैर्मुद्गैस्तिलैर्यवैः ।
घृतशीतपयः सेकः फलपुष्पाय सर्वदा ॥२७
मत्स्याम्भसा तु सेकेन वृद्धिर्भवति शाखिनाम् ।
आविकाजशकृच्चूर्णं यवचूर्णं तिलानि च ॥२८
गोमांसमुदकं चेति सप्तरात्रं निधापयेत् ।
उत्सेकं सर्ववृक्षाणां फलपुष्पादि वृद्धिदम् ॥२९

वायें भाग में उद्यान (वगीचा) लगाकर शुभ दिन में गृहवास करना चाहिये । ग्रीष्म ऋतु में सायं-प्रातःकाल, शीतकाल में दोपहर के वाद और वर्षाऋतु में भूमि सूख जाने पर उन रोपे हुए वृक्षों को विडङ्ग (औषध-विशेष) तथा घी मिले हुए जल से सींचना चाहिये । यदि वृक्ष में फल आना समाप्त हो गया हो तो उसके फलने-फूलने के लिये कुलथी, उड़द, मूँग, तिल, यव तथा घी मिले हुए जल से सीचना चाहिए । मछली मिले हुए जल से सींचने पर वृक्षों की वृद्धि होती है । भेड़ें तथा वकरे की लेंड़ी (मल) का चूर्ण, यव का चूर्ण, तिल का चूर्ण, गोमांस तथा जल से सात रात सींचने से वृक्षों में फल, पुष्प आदि की वृद्धि होती है ।२५-२९।

मत्स्योदकेन शीतेन आम्राणां सेक इष्यते ।
प्रशस्तं चाप्यशोकानां कामिनीपादताडनम् ॥३०
खर्जूरनारिकेलादेर्लवणाद्भिर्विवर्धनम् ।
विडङ्गमत्स्यमांसाद्भिः सर्वेषां दोहदं शुभम् ॥३१

मछली वाले ठंडे जल से आमों का सिञ्चन अच्छा होता है । अशोक वृक्ष के ऊपर कामिनी का चरण-प्रहार अच्छा होता है । खजूर तथा नारियल आदि

१ छ. वर्षारात्रे ।

को नमक मिले हुए जल से सींचने पर वृद्धि होती है। विडङ्ग, मत्स्य तथा मांस के जल से सींचना सब प्रकार के वृक्षों के लिए लाभदायक हुआ करता है।३०-३१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वास्तुलक्षणकथनं नाम सप्तचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।२४७

अथाष्टचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

पुष्पादिपूजाफलम्

अग्निरुवाच—

पुष्पैस्तु पूजनाद्विष्णुः सर्वकार्येषु सिद्धिदः।
मालती मल्लिका यूथी पाटलाकरवीरकम्[1] ॥१
पावन्तिरतिमुक्तश्च (?) कर्णिकारः कुरण्टकः।
कुब्जकस्तगरो नीपो वाणो[2] बर्वरमल्लिका ॥२
अशोकस्तिलकः कुन्दः पूजायै स्यात्तमालजम्।
विल्वपत्रं शमीपत्रं पत्रं भृङ्गरजस्य तु ॥३
तुलसीकालतुलसीपत्रं वासकमर्चने।
केतकीपत्रपुष्पं च पद्मं रक्तोत्पलादिकम् ॥४
नाऽऽर्कं नोन्मत्तकं काञ्ची पूजने गिरिमल्लिका।
कौटजं शाल्मलीपुष्पं कण्टकारीभवं न हि ॥५
घृतप्रस्थेन विष्णोश्च स्नानं गोकोटिसत्फलम्।
आढकेन तु राजा स्याद्घृतक्षीरैर्दिवं व्रजेत् ॥६

अग्निदेव बोले—पुष्पों से भगवान् विष्णु का पूजन करने से सब कार्य सिद्ध होते हैं। मालती, मल्लिका, यूथी, पाटला, करबीर, पावन्ती, अतिमुक्त, कर्णिकार, कुरण्टक, कुब्जक, तगर, कदम्ब, वाण, वर्बर, मल्लिका, अशोक, तिलक तथा कुन्द—ये पुष्प और तमाल, विल्व, शमी, भृंगराज तथा तुलसी—ये पत्र पूजा के लिए उत्तम हैं। केतकी के पत्र-पुष्प तथा

---

१. क. ङ. °म्। परेत्तिरतियुक्तश्च। २ क. ङ. बर्वरकेतकी।

रक्तोत्पल आदि कमल भी पूजन के लिये प्रसिद्ध हैं। आक, काञ्ची, गिरिमल्लिका, कुटज, शाल्मलीपुष्प, तथा कण्टकारिपुष्प से पूजा नहीं करनी चाहिये। एक सेर घी से विष्णु का स्नान कराने से एक करोड़ गौ-दान करने का फल होता है। एक अढैया घी से विष्णु को स्नान कराने वाला मनुष्य राजा होता है और घी-दूध से स्नान कराने वाला मनुष्य स्वर्ग को जाता है।१-६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पुष्पादिपूजाकथनं नामाष्टचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः। २४८

अथैकोनपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः
धनुर्वेदः

अग्निरुवाच—

चतुष्पादं धनुर्वेदं वदे पञ्चविधं द्विज।
रथनागाश्वपत्तीनां योधांश्चाऽऽश्रित्य कीर्तितम् ॥१
यन्त्रमुक्तं पाणिमुक्तं मुक्तसंधारितं तथा।
अमुक्तं वाहुयुद्धं च पञ्चधा तत्प्रकीर्तितम् ॥२

अग्निदेव बोले—अये ब्राह्मण ! धनुर्वेद के चार भेद हैं – रथ, गज, अश्व और पैदल। इसमें योद्धाओं को मिलाकर इसके पाँच भेद कहे जाते हैं। यों तो यन्त्रमुक्त, पाणिमुक्त, मुक्तसंधारित, अमुक्त और वाहुयुद्ध—ये पाँचों भी इसी के भेद हैं।१-२।

तत्र शस्त्रास्त्रसम्पत्त्या द्विविधं परिकीर्तितम्।
ऋजुमायाविभेदेन भूयो द्विविधमुच्यते ॥३
क्षेपणीचापयन्त्राद्यैर्यन्त्रमुक्तं प्रकीर्तितम्।
शिलातोमरयन्त्राद्यं पाणिमुक्तं प्रकीर्तितम् ॥४
मुक्तसंधारितं ज्ञेयं प्रासाद्यमपि यद्भवेत्।
खड्गादिकममुक्तं च नियुद्धं विगतायुधम् ॥५
कुर्याद्योग्यानि पात्राणि योद्धुमिच्छुर्जितश्रमः।
धनुः श्रेष्ठानि युद्धानि प्रासमध्यानि तानि च ॥६

तानि खड्गजघन्यानि बाहुप्रत्यवराणि च।
धनुर्वेदे गुरुर्विप्रः प्रोक्तो वर्णद्वयस्य च ॥७

पहले इनके अस्त्र और शस्त्र से दो भेद होते हैं और फिर ऋजु और माया के भेद से भी इन पाँचों के दो-दो भेद हो जाते हैं। (क्षेपणी) डाँड़, धनुष् तथा यन्त्र आदि से जो युद्ध किया जाता है, उसे यन्त्रमुक्त कहते हैं। शिला, तोमर और यन्त्र आदि से किये जाने वाले युद्ध को पाणिमुक्त, भाले आदि से होने वाले युद्ध को मुक्तसंघारित, खड्ग आदि से होने वाले युद्ध को बाहुयुद्ध कहते हैं। युद्धाभिलाषी राजा को कठोर परिश्रमी होना चाहिये तथा उसे युद्ध के निमित्त योग्य पात्रों को चुनना चाहिये। धनुष् से होने वाले युद्ध को मध्यम, खड्ग से होने वाले को अधम और बाहु से होने वाले को अति अधम कहा गया है। धनुर्वेद की शिक्षा देने के लिए ब्राह्मण और क्षत्रिय को नियुक्त करना चाहिये, क्योंकि इसका अधिकार इन्हीं दो वर्णो को हुआ करता है।३-७।

युद्धाधिकारः शूद्रस्य स्वयं[1] चाऽऽपदि शिक्षया।
देशस्थैः शंकरै राज्ञः कार्या युद्धे सहायता ॥८
अङ्गुष्ठगुल्फपाण्यङ्घ्र्यः श्लिष्टाः स्युः सहिता यदि।
दृष्टं समपदं स्थानमेतल्लक्षणतस्तथा ॥९
बाह्याङ्गुलिस्थितौ पादौ स्तब्धजानुबलावुभौ।
त्रिवितस्त्यन्तरास्थानमेतद्वैशाखमुच्यते ॥१०

शूद्र को युद्ध करने का अधिकार केवल आपत्तिकाल में होता है और वह भी उसकी शिक्षा ले लेने के बाद। युद्ध के समय देश में रहने वाले वर्णसङ्कर लोगों को भी राजा की सहायता करनी चाहिये। (अब धनुर्वेद सीखने वालों का आसन—स्थान्भेद बताते हैं) जिस स्थान—आसन में अंगूठा, एड़ी, हाथ और पैर परस्पर मिले हुए हो, वह समपात स्थान कहलाता है। जिस आसन में दोनों चरण तीन बित्ते की दूरी पर अङ्गुलियों और घुटनों के बल स्थित हो, उसे वैशाख आसन कहते हैं।८-१०।

हंसपङ्क्त्याकृतिसमे दृश्येते यत्र जानुनी।
चतुर्वितस्तिविच्छिन्ने तदेतन्मण्डलं स्मृतम् ॥११
हलाकृतिमयं यच्च स्तब्धजानूरुदक्षिणम्।
वितस्त्यः पञ्चविस्तारे तदालीढं प्रकीर्तितम् ॥१२
एतदेव विपर्यस्तं प्रत्यालीढमिति स्मृतम् ॥

१ छ. 'यं व्याप'।

जिसमें दोनों घुटने चार वित्ते की दूरी पर हंसपंक्ति के आकार में स्थित हों, उसे मण्डलस्थान कहते हैं। जिसमें पाँच वित्ते की दूरी पर दाहिना घुटना और जंघायें निश्चल भाव से हल के आकार में स्थित हों उसे आलीढ कहते हैं (अर्थात् वामपाद प्रसारणपूर्वक दक्षिणपाद संकोचयुक्त अवस्थान को आलीढ कहते हैं) और इसके विपरीत स्थिति को प्रत्यालीढ कहते हैं।११-१२½।

तिर्यग्भूतो भवेद्वामो दक्षिणोऽपि भवेदृजुः ॥१३
गुल्फौ पार्ष्णिग्रहौ चैव स्थितौ पञ्चाङ्गुलान्तरौ।
स्थानं जातं भवेदेतद्द्वादशाङ्गुलमायतम् ॥१४
ऋजुजानुर्भवेद्वामो दक्षिणः सुप्रसारितः।
अथवा दक्षिणं जानु कुब्जं भवति निश्चलम् ॥१५
दण्डायतो भवेदेष चरणः सह जानुना।
एवं विकटमुद्दिष्टं द्विहस्तान्तरमायतम् ॥१६

जिस आसन में बायाँ चरण टेढ़ा और दाहिना सीधा रहता है और दोनों के गुल्फ (घुट्ठी) तथा एँड़ी पाँच अंगुलियों की दूरी पर रहती है, उसे जात आसन कहते हैं। जिसमें घुटने सहित बाँया पैर सीधा हो और दाहिना पाँव अच्छी तरह फैला हो अथवा दाहिना घुटना टेढ़ा और निश्चल हो और बायाँ दण्ड के समान सीधा हो, उसे विकट आसन कहते हैं।१३-१६।

जानुनी द्विगुणे स्यातामुत्तानौ चरणावुभौ।
अनेन विधियोगेन संपुटं परिकीर्तितम् ॥१७
किंचिद्विवर्जितौ पादौ समदण्डायतौ स्थिरौ।
दृष्टमेवं यथान्यायं षोडशाङ्गुलमायतम् ॥१८
स्वस्तिकेनात्र कुर्वीत प्रणामं प्रथमं द्विज।
कार्मुकं गृह्य वामेन बाणं दक्षिणकेन तु ॥१९

जिसमें दोनों घुटने मुड़े हुए हों और दोनों चरण ऊपर की ओर हों, उसे संपुट आसन कहते हैं। जिसमें दोनों पाँव कुछ फैले हुए हों और दण्ड के समान सीधे और स्थिर हों तथा उनके बीच में सोलह अंगुलियों की लम्बाई हो, उसे स्वस्तिक आसन कहते हैं। अये ब्राह्मण! अपने गुरु को इसी (स्वस्तिक) आसन से प्रणाम करना चाहिये। शिष्य को बायें हाथ में धनुष् और दाहिने हाथ में वाण लेकर प्रत्यञ्चा चढ़ानी चाहिये।१७-१९।

वैशाखे यदि वा जाते स्थितौ वाऽप्यथ वाऽऽयतौ ।
गुणान्तं तु ततः कृत्वा कार्मुके प्रियकार्मुकः ॥२०
अधःकोटिं तु धनुषः फलदेशं तु पत्रिणः ।
धरण्यां स्थापयित्वा तु तोलयित्वा तथैव च ॥२१
[1]भुजाभ्यामत्र कुब्जाभ्यां प्रकोष्ठाभ्यां शुभव्रत ।
तस्य बाणं धनुःश्रेष्ठं पुङ्खदेशे च पत्त्रिणः ॥२२
विन्यासो धनुषश्चैव द्वादशाङ्गुलमन्तरम् ।
ज्यया विशिष्टः कर्तव्यो नातिहीनो न चाधिकः ॥२३
निवेश्य कार्मुकं नाभ्यां नितम्बे[2] शरसंकरम् ।
उत्क्षिपेदुत्थितं हस्तमन्तरेणाक्षिकर्णयोः ॥२४
पूर्वेण मुष्टिना ग्राह्यः स्तनाग्रे दक्षिणे शरः ।
हरणं तु ततः कृत्वा शीघ्रं पूर्वं प्रसारयेत् ॥२५

उसे अपने धनुष् के प्रति विशेष प्रेम रखना चाहिए। तदनन्तर धनुष् के किनारे और बाण के फलक को पृथ्वी के ऊपर रखकर उसे प्रत्यञ्चा के ऊपर चढ़ाना चाहिये। इस समय धनुष् के दण्ड और प्रत्यञ्चा के बीच में बारह अंगुल की दूरी होनी चाहिये। प्रत्यञ्चा न तो बहुत लम्बी और न ही बहुत छोटी होनी चाहिये। तत्पश्चात् धनुष् को नाभि के समानान्तर उठाकर और तरकस को नितम्ब पर लटका कर योद्धा को चाहिये कि वह धनुष् को अपने नेत्र और कानों के बराबर उठा ले। बाण को दाहिनी मुट्ठी में पकड़कर उसे दाहिने स्तन की ओर उठाना चाहिये। तदनन्तर शीघ्र ही प्रत्यञ्चा को चढ़ाकर उसे पूरी शक्ति से खींचना चाहिये ।२०-२५।

नाऽऽभ्यन्तरा नैव बाह्या नोर्ध्वका नाधरा तथा ।
न च कुब्जा न चोत्ताना न चला नातिवेष्टिता ॥२६
समा स्थैर्यगुणोपेता पूर्वदण्डमिव स्थिता ।
छादयित्वा ततो लक्ष्यं पूर्वेणानेन मुष्टिना ॥२७
उरसा तूत्थितो यन्ता त्रिकोणविनतस्थितः ।
[3]स्रस्तांसो निश्चलग्रीवो मयुराञ्चितमस्तकः ॥२८
ललाटनासावक्त्रांसकूर्परेषु[4] समो भवेत् ॥

---

१ क. ङ. °जाभ्यां मन्त्रगुप्ताभ्यां। २ ख. °म्बे सशरं क°। ३ क. ङ. स्रस्ताङ्गो । छ. स्रस्तांसे। ४ छ. °वक्त्रांसाः कुर्युरश्वसमं भ°।

किन्तु प्रत्यञ्चा को इतना भी नहीं खींचना चाहिये कि बाण (प्रत्यञ्चा और) दण्ड के बीच में आ जाय या उसका बड़ा वाला भाग इतनी दूर निकल जाये कि बाण ही हिल जाय और अपने मार्ग से इधर-उधर हट जाये या फिर धनुष् के दण्ड से ही टकरा जाये। इस प्रकार निशाने को अपनी पकड़ की सीध में लाकर अपने बाण को छोड़ना चाहिये। इस समय गर्दन दृढ़तापूर्वक सधी हुई हो, शिर मोर की भाँति बिलकुल सीधा हो, वक्षःस्थल, उभरा हुआ हो, कन्धे झुके हुए हों, सम्पूर्ण शरीर त्रिभुजाकार झुका हुआ हो और धनुष् चलाने वाले की कनपटी, नासिका, मुख और कन्धे घोड़े के समान हो।२६-२८½।

अन्तरं त्र्यङ्गुलं ज्ञेयं चिबुकस्यांशु (स) कस्य च ॥२९
प्रथमं त्र्यङ्गुलं ज्ञेयं द्वितीये द्व्यङ्गुलं स्मृतम्।
तृतीयेऽङ्गुलमुद्दिष्टमायतं चिबुकांसयोः ॥३०
गृहीत्वा सायकं पुङ्खात्तर्जन्याऽङ्गुष्ठकेन तु।
अनामया पुनर्गृह्य तथा मध्यमयाऽपि च ॥३१
तावदाकर्षयेद्वेगाद्यावद्वाणः सुपूरितः।
एवं विधमुपक्रम्य मोक्तव्यं विधिवत्खगम् ॥३२

उत्तम कोटि के बाण को चलाते समय ठुड्डी और कन्धे के बीच में तीन अङ्गुल, मध्यम कोटि के बाण को चलाते समय एक अंगुल स्थान रहना चाहिये। बाण के उस भाग को जिसमें पङ्ख लगे हुए रहते हैं अंगूठा, तर्जनी, मध्यमा और अनामिका से पकड़कर तबतक वेगपूर्वक खीचता रहे जब तक पूरा बाण धनुष् पर न आ जाय। ऐसा उपक्रम करके विधिपूर्वक बाण को छोड़ना चाहिये।२९-३२।

दृष्टिमुष्टिहतं लक्ष्यं भिन्द्याद्वाणेन सुव्रत।
मुक्त्वा तु पश्चिमं हस्तं क्षिपेद् वेगेन पृष्ठतः ॥३३
एतदुच्छेदमिच्छन्ति ज्ञातव्यं हि त्वया द्विज।
कूर्परं तदधः कार्यमाकृष्य तु धनुष्मता ॥३४
ऊर्ध्वं विमुक्तके कार्यमक्षिश्लिष्टं तु मध्यमम्।
श्रेष्ठं प्रकृष्टं विज्ञेयं धनुःशास्त्रविशारदैः ॥३५
ज्येष्ठस्तु सायको ज्ञेयो भवेद्द्वादश मुष्टयः।
चतुर्हस्तं धनुःश्रेष्ठं त्रयः सार्धं तु मध्यमम् ॥३६

---

१ क. ङ. 'कस्याङ्गकस्य।

कनीयस्तु त्रयः प्रोक्तं नित्यमेव पदातिनः ।
अश्वे रथे गजे श्रेष्ठे तदेव परिकीर्तितम् ॥३७

इस प्रकार से वाण चलाने वाला धनुर्धर अपनी दृष्टि और पकड़ के बीच में आने वाली खड़ी हुई वस्तु को अपने वाण से अवश्य ही बींध देगा । इसके वाद उसे अपना हाथ शीघ्र ही पीठ की ओर मोड़ देना चाहिए । अये सुव्रत ! उत्तम कोटि के वाण का दण्ड बारह मुट्ठी और मध्यम तथा निम्न कोटि के वाणों का दण्ड क्रमशः ग्यारह और बारह अंगुल लम्बा होना चाहिए । पदाति योद्धा का उत्तम कोटि का धनुष् चार हाथ, मध्यम कोटि का साढ़े तीन हाथ और निम्न कोटि का तीन हाथ लम्बा होना चाहिए । धनुष् का प्रयोग अश्वारोही, गजारोही तथा रथारोही योद्धा के द्वारा भी किया जा सकता है ।३३-३७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये धनुर्वेदकथनं नामैकोनपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२४९

अथपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

धनुर्वेदकथनम्

अग्निरुवाच—

पूर्णायतं द्विजः कृत्वा ततो मांसैर्गदायुधान्[1] ।
सुनिर्धौतधनुः कृत्वा यक्षभूमौ विधापयेत् ॥१

अग्निदेव बोले—द्विजाति वर्ण के व्यक्ति को गदा आदि आयुधों को मांस से धोकर यज्ञभूमि में स्थापित कर देना चाहिए ।१

ततो वाणं समागृह्य दंशितः सुसमाहितः ।
तूणमासाद्य वध्नीयाद्दृढां कक्षां च दक्षिणाम् ॥२
विलक्ष्यमपि तद्वाणं तत्र चैव सुसंस्थितम् ।
ततः समुद्धरेद्बाणं तूणाद्दक्षिणपाणिना ॥३

---
१ क. ङ. °र्गतायुषम् । सु° ।

तेनैव सहितं मध्ये शरं संगृह्य धारयेत् ।
वामहस्तेन वै कक्षां धनुस्तस्मात्समुद्धरेत् ॥४
अविषण्णमतिर्भूत्वा गुणे पुङ्खं निवेशयेत् ।
संपीड्य सिंहकर्णेन पुङ्खेनापि समे दृढम् ॥५
वामकर्णोपविष्टं च फलं वामस्य धारयेत् ।
वर्णान्मध्यमया तत्र वामाङ्गुल्या च धारयेत् ॥६

तत्पश्चात् वाणों का संग्रह करके, कवच धारणपूर्वक एकाग्रचित्त हो, तूणीर ले, उसे पीठ की ओर दाहिनी काँख के पास दृढ़ता से बाँधे । ऐसा करने से विलक्ष्य वाण भी उस तूणीर में सुस्थिर रहता है । फिर दाहिने हाथ से तूणीर के भीतर से वाण को निकाले । उसके साथ ही बायें हाथ से धनुष् को वहाँ से उठा ले और उसके मध्य भाग में वाण का संधान करे । चित्त में विषाद न आने दे—उत्साह सम्पन्न हो, धनुष् की डोरी पर वाण का पुङ्खभाग रखे, फिर 'सिंहकर्ण' नामक मुष्टिद्वारा डोरी को पुङ्ख के साथ ही दृढ़तापूर्वक दवाकर समभाव से संधान करे और वाण को लक्ष्य की ओर छोड़े । यदि बायें हाथ से बाण को चलाना हो तो बायें हाथ में वाण ले और दाहिने हाथ से धनुष् की मुट्ठी पकड़े । फिर प्रत्यञ्चा पर वाण इस तरह रक्खे कि खींचने पर उसका फल या पुङ्ख बायें कान के समीप आ जाय । उस समय वाण को बायें हाथ की (तर्जनी और अंगुष्ठ के अतिरिक्त) मध्यमा अंगुली से भी धारण किये रहे ।२-६।

मनो लक्ष्यगतं कृत्वा मुष्टिना च विधानवित् ।
दक्षिणे गात्रभागे तु कृत्वा वर्णं विमोक्षयेत् ॥७
ललाटपुटसंस्थानं दण्डं लक्ष्ये निवेशयेत् ।
आकृष्य ताडयेत्तत्र चन्द्रकं षोडशाङ्गुलम् ॥८
मुक्त्वा वाणं ततः[1] पश्चाद्वर्णाशिक्यं तदा तया ।
निगृह्णीयान्मध्यमया ततोऽङ्गुल्या पुनः पुनः ॥९
अक्षिलक्ष्यं क्षिपेत्तूणाच्चतुरस्रं च दक्षिणम् ।
चतुरस्रगतं वेध्यमभ्यसेच्चाऽऽदितः स्थितः ॥१०
तस्मादनन्तरं तीक्ष्णं परावृत्तं गतं च यत् ।
निम्नमुन्नतवेधं च अभ्यसेत्क्षिप्रकं ततः ॥११

---

१ छ. ˚श्चादुल्काशिक्षस्तदा ।

बाण चलाने की विधि को जानने वाला पुरुष उपर्युक्त मुष्टि के द्वारा धनुष् को दृढ़तापूर्वक पकड़कर, मन को दृष्टि के साथ ही लक्ष्यगत करके, बाण को शरीर के दाहिने भाग की ओर रखते हुए लक्ष्य की ओर छोड़े। धनुष् का दण्ड इतना बड़ा हो कि भूमि पर खड़ा करने पर उसकी ऊँचाई ललाट तक आ जाय। उस पर लक्ष्यवेध के लिए सोलह अंगुल लम्बे चन्द्रक (बाण-विशेष) का संधान करे और उसे भलीभाँति खींचकर लक्ष्य पर प्रहार करे। इस तरह एक बाण का प्रहर करके फिर तत्काल ही तूणीर से अंगुष्ठ एवं तर्जनी अंगुलि द्वारा बारम्बार बाण निकाले। उसे मध्यमा अंगुलि से भी दबाकर काबू में करे और शीघ्र ही दृष्टिगत लक्ष्य की ओर चलावे। चारों ओर तथा दक्षिण ओर लक्ष्यवेध का क्रम जारी रखे। योद्धा पहले से ही चारों ओर बाण मारकर सब ओर के लक्ष्य को वेधने का अभ्यास करे। तदनन्तर वह तीक्ष्ण, परावृत्त, गत, निम्न, उन्नत तथा क्षिप्रवेध का अभ्यास बढ़ावे।७-११।

वेध्यस्थानेष्वथैतेषु सत्त्वस्य पुटकाद्धनुः।
हस्तावापशतैश्चित्रैस्तर्जयेद्दुस्तरैरपि ॥१२
तस्मिन्वेध्यगते विप्र द्वे वेध्ये दृढसंज्ञके।
द्वे वेध्ये दुष्करे वेध्ये द्वे तथा चित्रदुष्करे ॥१३
न तु निम्नं च तीक्ष्णं च दृढवेध्ये प्रकीर्तिते।
निम्नं दुष्करमुद्दिष्टं वेध्यमूर्ध्वगतं च यत् ॥१४
मस्तकायनमध्ये तु चित्रदुष्करसंज्ञके।
एवं वेध्यगणं कृत्वा दक्षिणेनेतरेण च ॥१५
आरोहेत्प्रथमं वीरो जितलक्ष्यस्ततो नरः।
एष एव विधिः प्रोक्तस्तत्र दृष्टः प्रयोक्तृभिः ॥१६

वेध्य लक्ष्य के ये जो उपर्युक्त स्थान हैं, इनमें सत्त्व (बल एवं धैर्य) का पुट देते हुए विचित्र एवं दुस्तर रीति से सैकड़ों बार हाथ से बाणों के निकालने एवं छोड़ने की क्रिया द्वारा धनुष् का तर्जन करे—उस पर टङ्कार दे। विप्रवर! उक्त वेध्य के अनेक भेद हैं। पहले तो दृढ़, दुष्कर तथा चित्रदुष्कर—ये वेध्य के तीन भेद हैं। ये तीनों ही भेद दो-दो प्रकार के होते हैं। 'नतनिम्न' और 'तीक्ष्ण' ये 'दृढ़वेध्य' के दो भेद हैं। 'दुष्करवेध्य' के भी 'निम्न और 'ऊर्ध्वगत'—ये दो भेद कहे गये हैं। 'चित्रदुष्कर वेध्य' के 'मस्तकायन' और 'मध्य' ये दो भेद बताये गये हैं। इस प्रकार इन वेध्यगणों को सिद्ध करके वीरपुरुष

पहले दायें अथवा वायें पार्श्व से शत्रु-सेना पर चढ़ाई करे। इससे मनुष्य को अपने लक्ष्य पर विजय प्राप्त होती है। प्रयोक्ता पुरुषों ने वेध्य के विषय में यही विधि देखी और वतायी है।१२-१६।

अधिकं भ्रमणं तस्य तस्माद्वेध्यात्प्रकीर्तितम्।
लक्ष्यं च योजयेत्तत्र पत्रिपत्रगतं दृढम् ॥१७
भ्रान्तं प्रचलितं चैव स्थिरं यच्च भवेदति।
समन्तात्ताडयेद्भिन्द्याच्छेदयेद् व्यथयेदपि ॥१८
कर्मयोगविधानज्ञो ज्ञात्वैवं विधिमाचरेत्।
मनसा चक्षुषा दृष्ट्या योगशिक्षुर्यमं जयेत् ॥१९

योद्धा के लिये उस वेध्य की अपेक्षा भ्रमण को अधिक उत्तम बताया गया है। वह लक्ष्य को अपने वाण के पुङ्ख भाग से आच्छादित करके उसकी ओर दृढतापूर्वक शर-संधान करे। जो लक्ष्य भ्रमणशील, अत्यन्त चंचल और सुस्थिर हो, उस पर सब ओर से प्रहार करे। उसका भेदन और छेदन करे तथा उसे सर्वथा पीड़ा पहुँचाये। कर्मयोग के विधान का ज्ञाता पुरुष इस प्रकार समझ-बूझकर उचित विवि का आचरण (अनुष्ठान) करे। जिसने मन, नेत्र और दृष्टि के द्वारा लक्ष्य के साथ एकता-स्थापन की कला सीख ली है, वह योद्धा यमराज को भी जीत सकता है। (पाठान्तर के अनुसार वह श्रम को जीत लेता है—युद्ध करते-करते थकता नहीं।) ।१७-१९।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये धनुर्वेदकथनं नाम पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२५०

अथैकपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

धनुर्वेदकथनम्

अग्निरुवाच—

जितहस्तो जितमतिर्जितदृग्लक्ष्यसाधकः।
नियतां सिद्धिमासाद्य ततो वाहनमारुहेत् ॥१

अग्निदेव बोले—अपने हाथ और अपनी बुद्धि तथा दृष्टि को वश में कर

लेने के बाद और लक्ष्य बाँधने का अभ्यास करके (धनुर्विद्या में) निश्चित सिद्धि प्राप्त करके (धनुर्विद्या चलाने वाले) को घोड़े पर सवार होना चाहिये ।१।

दशहस्तो[1] भवेत्पाशो वृत्तः करमुखस्तथा ।
गुणकार्पासमुञ्जानां भङ्गस्नाय्वर्कवर्मिणाम् ॥२
अन्येषां सुदृढानां च सुकृतं परिवेष्टितम् ।
तथा त्रिंशत्समं पाशं बुधः कुर्यात्सुवर्तितुम् ॥३
कर्तव्यं शिक्षकैस्तस्य स्थानं कक्षासु वै तदा ।
वामहस्तेन संगृह्य दक्षिणेनोद्धरेत्ततः ॥४
कुण्डलस्याऽऽकृतिं कृत्वाऽऽभ्राम्यैकं मस्तकोपरि ।
क्षिपेत्तूर्णमये तूर्णं पुरुषे चर्मवेष्टिते ॥५
वल्गिते च प्लुते चैव तथा प्रव्रजितेषु च ।
समयोगविधिं कृत्वा प्रयुञ्जीत सुशिक्षितम् ॥६

पाश की लम्बाई दस फिट की होनी चाहिये । उसके किनारे पर एक छल्ला बना होना चाहिये । उसका एक किनारा हाथ में रहना चाहिये । छल्ले की रस्सियाँ सूत, मूंज, चमड़े या पशुओं की अन्तड़ियों की बनी होनी चाहिये । पाश किसी अन्य वस्तु की डोरी का भी हो सकता है, जिसकी लम्बाई तीस हाथ की हो और जिसे तीन छल्लों के रूप में तह कर लिया गया हो । आचार्य को अपने शिष्य के शरीर के वाम भाग में पड़े हुए पाश को देखना चाहिये । उसके वाद बाँये हाथ से पाश को पकड़कर दायें हाथ में ले लेना चाहिये । फिर सिर के ऊपर से घुमाते हुए उसे चमड़े के वेष्टन में रख लेना चाहिये । आचार्य को अपने शिष्य की परीक्षा दौड़ते हुए, चलते हुए या तेज चाल से चलते हुए घोड़े की पीठ में पाश को फेंकने में करनी चाहिये ।२-६।

विजित्वा (त्य) तु यथान्यायं ततो वन्धं समाचरेत् ।
कट्यां बद्ध्वा ततः खड्गं वामपार्श्वावलम्बितम् ॥७
दृढं विगृह्य वामेन निष्कर्षेद्दक्षिणेन तु ।
षडङ्गुलपरीणाहं सप्तहस्तसमुच्छ्रितम् ॥८
अयोमय्यः शलाकाश्च वर्माणि विविधानि च ।
अर्धहस्ते समे चैव[2] तिर्यगूर्ध्वगतं तथा ॥९

१ क. ङ.° वेद्व्यासोवृ° । २. क. ङ. र्ध्वमधस्तथा ।

योजयेद्विधिना येन तथा त्वं गदतः शृणु ।
तूणचर्मविनद्धाङ्गं स्थापयित्वा नवं दृढम् ॥१०
करेणाऽऽदाय लगुडं दक्षिणाङ्गुलकं नवम् ।
उद्यम्य घातयेद्यस्य नाशस्तेन शिशोर्दृढम् ॥११
उभाभ्यामथ हस्ताभ्यां कुर्यात्तस्य निपातनम् ।
अक्लेशेन ततः कुर्वन्वधे सिद्धिः प्रकीर्तिता ॥
वाहानां श्रमकरणं प्रचारार्थं पुरा तव ॥१२

खड्ग को कमर में बाईं ओर लटकाना चाहिये। बायें हाथ से दृढ़ता के साथ म्यान को पकड़कर दाहिने हाथ से खड्ग निकाल लेना चाहिये। कवच विविध प्रकार के हुआ करते हैं। लौहदण्ड की मोटाई छह अंगुल तथा लम्बाई सात हाथ होनी चाहिये। चमड़े के वेष्ठन से ढके हुए लगुड को दोनों हाथों से उठाकर और घुमाकर उसे शत्रु के सिर पर पटक देना चाहिये, जिससे उसकी मृत्यु हो जाये। या फिर उसे केवल दाहिने हाथ से ही उठाना चाहिये। गदा-युद्ध में एक ही वार में और एक ही प्रहार से शत्रु को मार डालने में विजय हुआ करती है। युद्ध में हाथों और भुजाओं के प्रयोग के विषय में पहले ही बताया जा चुका है।७-१२।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये धनुर्वेदकथनं नामैकपञ्चाशदधिक-द्विशततमोऽध्यायः।२५१

———

अथ द्विपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः
धनुर्वेदकथनम्

अग्नि उवाच—

भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं विप्लुतं प्लुतम् ।
संपातं [1]समुदीशं च श्येनपातमथाऽऽकुलम् ॥१
उद्धूतमवधूतं च सव्यं दक्षिणमेव च ।
अनालक्षितविस्फोटौ करालेन्द्रमहासखौ ॥२

---
१ ख. समुदीर्णं ।

विकरालनिपातौ च विभीषणभयानकौ।
समग्रार्धतृतीयांशपादपादार्धवारिजाः ॥३
प्रत्यालीढमथाऽऽलीढं वराहं लुलितं तथा।
इति द्वात्रिंशतो (त्का) ज्ञेया (:) खड्गचर्मविधौ(धा)रणे ॥४

अग्निदेव बोले—ढाल और तलवार धारण करने वाले योद्धा को वास्तविक युद्ध प्रारम्भ करने के पूर्व बत्तीस प्रकार की पैंतरेबाजी करनी चाहिये। पैंतरेबाजी के बत्तीस प्रकार ये हैं—भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, आप्लुत, विप्लुत, सम्पात, समुदीश, श्येनपात, आकुल, उद्धूत, अवधूत, वाम, दक्षिण, अनालक्षित, विस्फोट, करालेन्द्र, महासख, विकराल, निपात, विभीषण, भयानक, समग्रवारिज, अर्धवारिज, तृतीयांशवारिज, पादवारिज, पादार्धवारिज, प्रत्यालीढ, आलीढ, वराह और लुलित।१-४।

परावृत्तमपावृत्तं गृहीतं लघुसंज्ञितम्।
ऊर्ध्वक्षिप्तमधःक्षिप्तं संधारितविधारितम् ॥५
श्येनपातं गजपातं ग्राहग्राह्यं तथैव च।
एवमेकादश विधा ज्ञेयाः पाशविधारणे ॥६
ऋज्वायतं विशालं च तिर्यग्भ्रामितमेवच।
पञ्चकर्म विनिर्दिष्टं व्यस्ते पाशे महात्मभिः ॥७
छेदनं भेदनं पातो भ्रमणं [1]शमनं तथा।
विकर्तनं कर्तनं च चक्रकर्मेदमेव च ॥८
आस्फोटः क्ष्वेडनं भेदस्त्रासान्दोलितकौ तथा।
शूलकर्माणि जानीहि षष्ठमाघातसंज्ञितम् ॥९

फन्दा डालने की दश विधियाँ हैं—परावृत्त, अपावृत्त, लघु, ऊर्ध्वक्षिप्त, अधःक्षिप्त, संधारित, विधारित, श्येनपात, गजपात और ग्राहग्राह्य। महापुरुषों ने फन्दा डालने की जिन पाँच विधियों को बतलाया है वे हैं—सीधा, आयत, विशाल, तिर्यग् और भ्रामित। चक्र के कर्म हैं—काटना, छेदना, गिराना, घुमाना और अलग कर देना। शूल के प्रयोग हैं—आस्फोट, क्ष्वेडन, भेदन, भास, आन्दोलित और आघात।५-९।

---

१ छ, शयनं।

दृष्टिघातं भुजाघातं पार्श्वघातं द्विजोत्तम ।
ऋजुपक्षेषुणापातं तोमरस्य प्रकीर्तितम् ॥१०
आहतं विप्रगोमूत्रप्रभूतं कमलासनम् ।
ततोर्ध्वगात्रं नमितं वामदक्षिणमेव च ॥११
आवृत्तं च परावृत्तं पादोद्धूतमवप्लुतम् ।
हंसमर्दं विमर्दं च गदाकर्म प्रकीर्तितम् ॥१२

अये द्विजश्रेष्ठ ! तोमर का प्रयोग (शत्रु के) नेत्र, भुजा और पार्श्व काटने में करना चाहिये और उसका प्रतिकार सीधे पंखों से युक्त बाण से करना चाहिये। अये विप्र ! आहत, गोमूत्रप्रभूत, कमलासन, (शरीर के) ऊर्ध्व, वाम और दक्षिण अङ्गों का नमन, आवृत्त, परावृत्त, पादोद्धत, अवप्लुत, हंसमर्द और विमर्द—ये सब गदा के कार्य बतलाये गये हैं ।१०-१२।

करालमवघातं च दंशोपप्लुतमेव च ।
क्षिप्तहस्तं स्थितं शून्यं परशोस्तु विनिर्दिशेत् ।१३
ताडनं छेदनं विप्र तथा चूर्णनमेव च ।
मुद्गरस्य तु कर्माणि तथा प्लवनघातनम् ॥१४
सम्भ्रान्तमथ विश्रान्तं गोविसर्गं सुदुर्धरम् ।
भिन्दिपालस्य कर्माणि लगुडस्य च तान्यपि ॥१५

फरसे का कार्य समझना चाहिये—कराल, अवघात, दंशोपप्लुत, क्षिप्रहस्त, स्थित और शून्य। अये विप्र ! ताडन, छेदन, चूर्णन तथा प्लवनघातन—ये मुद्गर के कर्म हैं। भिन्दिपाल के कर्म है—संभ्रान्त, विश्रान्त, गोविसर्ग और सुदुर्धर। यही सब काम लगुड के भी हैं ।१३-१५।

अन्त्यं मध्यं परावृत्तं निदेशान्तं द्विजोत्तम ।
वज्रस्यैतानि कर्माणि पट्टिशस्य च तान्यपि ॥१६
हरणं छेदनं घातो[1] भेदनं रक्षणं तथा ।
कृपाणकर्म निर्दिष्टं पातनं स्फोटनं तथा ॥१७
त्रासनं रक्षणं घातो बलोद्धरणमायतम् ।
क्षेपणीकर्म निर्दिष्टं यन्त्रकर्मैतदेव तु ॥१८

---

१ छ. °तो बलोद्धरणमायतम् । कृ° ।

सप्ताङ्गमवदंशश्च वराहोद्धतकं तथा ।
हस्तावहस्तमालीनमेकहस्तावहस्तके ॥१९
द्विहस्तबाहुपाशे च कटिरोचितकोद्गते ।
उरोललाटघाते च भुजाविधमनं तथा ॥२०
करोद्धूतं विमानं च पादाहति विपादिकम् ।
गात्रसंश्लेषणं शान्तं तथा गात्रविपर्ययः ॥२१
ऊर्ध्वप्रहारं घातं च गोमूत्रं सव्यदक्षिणे ।
पारकं तारकं दण्डं कवरीबन्धमाकुलम् ॥२२
तिर्यग्बन्धमपामार्गं भीमवेगं सुदर्शनम् ।
सिंहाक्रान्तं गजाक्रान्तं गर्दभाक्रान्तमेव च ॥२३
गदाकर्माणि जानीयान्नियुद्धस्याथ कर्म च ॥

कृपाण के कार्यहरण, छेदन, घात, भेदन, रक्षण, पातन और स्फोटन बताये गये हैं। क्षेपणी (नामक अस्त्र) के यह कार्य बताये गये हैं—भयभीत करना, रक्षण, घात, बलोद्धरण, और (लड़ाई करती हुई सेना को) फैलने में सहायता करना। यन्त्र का भी यही सब कार्य है। गदा के कार्य हैं—सप्तांश, अवदंश, सुअर के समान आक्रमण करना, गुत्थम-गुत्था, चिपटना, हाथ में हाथ डाल देना, दोनों हाथों से भुजापाश बनाना, कटि में चिपट जाना, वक्षःस्थल और मस्तक पर प्रहार करना, भुजा को तोड़ना, हाथ उठाकर विमान की आकृति बनाना, पैरों से प्रहार करना, पादहीन करना, अंगों में लिपट जाना, उन्हें शान्त कर देना, उन्हें मरोड़ देना, ऊपर की ओर प्रहार करना, हनन करना (सेना को) गोमूत्र के रूप में तितर-वितर कर देना, (सेना को) दायें-बायें भगा देना, सेना को पार कर लेना, उसके बीच से निकल जाना, उसे दण्ड देना, उसे वेणी के रूप में कर कर देना, व्याकुल बना देना, तिर्यङ्बन्ध, अपामार्ग, भीमवेग, सुदर्शन, और सिंह, हाथी तथा गर्दभ की भाँति आक्रमण करना ।१९-२३½।

आकर्षणं विकर्षं च बाहूनां मूलमेव च ॥२४
ग्रीवाविपरिवर्तं च पृष्ठभङ्गं सुदारुणम् ।
पर्यासनविपर्यासौ पशुमारमजाविकम् ॥२५
पादप्रहारमास्फोटं कटिरेचितकं तथा ।

गात्राश्लेपं स्कन्धगतं महीव्याजनमेव च ॥२६
उरोललाटघातं चविस्पष्टकरणं तथा ।
उद्धूतमवधूतं च तिर्यङ्मार्गगतं तथा ॥२७
गजस्कन्धमवक्षेपमपराङ्मुखमेव च ।
देवमार्गमधोमार्गममार्गगमनाकुलम् ॥२८
यष्टिघातमवक्षेपो वसुधादारणं तथा ।
जानुवन्धं भुजावन्धं गात्रवन्धं सुदारुणम् ॥२९
विपृष्ठं सोदकं शुभ्रं भुजावेष्टितमेव च ॥

आकर्षण, विकर्षण, वाहुमूल, ग्रीवाविपरिवर्त, सुदारुण, पृष्ठभङ्ग, पर्यासन, विपर्यास, पशुमार, अजाविक, पादप्रहार, आस्फोट, कटिरेचितक, गात्राश्लेप, स्कन्धगत, महीव्याजन, उरोललाटघात, विस्पष्टकरण, उद्धूत, अवधूत, तिर्यङ्मार्गगत, गजस्कन्ध, अवक्षेप, अपराङ्मुख, देवमार्ग, अधोमार्ग, अमार्गगमनाकुल, यष्टिघात, अवक्षेप, अपराङ्मुख, देवमार्ग, अधोमार्ग, अमार्गगमनाकुल, यष्टिघात, अवक्षेप, वसुधादारण, जानुवन्ध, सुदारुण, गात्रवन्ध, भुजावन्ध, विपृष्ठ, सोदक, श्वभ्र तथा भुजावेष्टित ।२४-२९½।

संनद्धैः संयुगे भाव्यं सशस्त्रैस्तैर्गजादिभिः ॥३०
वराङ्कुशधरौ चोभावेको ग्रीवागतोऽपरः ।
स्कन्धगौ द्वौ च धानुष्कौ द्वौ च खड्गधरौ गजे ॥३१
रथे रथे रणे चैव तुरंगाणां त्रयं भवेत् ।
धानुष्काणां त्रयं प्रोक्तं रक्षार्थे तुरगस्य च ॥३२
धन्विनो रक्षणार्थाय चर्मिणं तु नियोजयेत् ।
स्वमन्त्रैः शस्त्रमभ्यर्च्य शास्त्रं त्रैलोक्यमोहनम् ॥
यो युद्धे याति स जयेदरीन्संपालयेद्भुवम्[1] ॥३३

युद्ध में कवच धारण करके, अस्त्र-शस्त्र से सम्पन्न हो, हाथी आदि वाहनों पर चढ़कर उपस्थित होना चाहिये। हाथी पर उत्तम अङ्कुश धारण किये दो महावत या चालक रहने चाहिये। उनमें से एक तो हाथी की गर्दन पर सवार हो और दूसरा उसके कंधे पर। इनके अतिरिक्त सवारों में दो धनुर्धर होने चाहिये और दो खड्गधारी। प्रत्येक रथ और हाथी की रक्षा के लिए तीन-

१ क. ख. ङ. °पातयेद्ध्रुव°।

तीन धनुर्धर पैदल सैनिक रहने चाहिये। धनुर्धर की रक्षा के लिये चर्म या ढाल लिये रहने वाले योद्धा की नियुक्ति करनी चाहिए। जो प्रत्येक शस्त्र का उसके अपने मन्त्रों से पूजन करके 'त्रैलोक्यमोहन कवच' का पाठ करने के अनन्तर युद्ध में जाता है, वह शत्रुओं पर विजय पाता है और भूतल की रक्षा करता है।३०-३३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये धनुर्वेदकथनं नाम द्विपञ्चाशदधिक-द्विशततमोऽध्यायः।२५२

अथ त्रिपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यवहारकथनम्

अग्निरुवाच—
व्यवहारं प्रवक्ष्यामि नयानयविवेकदम्।
स चतुष्पाच्चतुःस्थानश्चतुःसाधन उच्यते ॥१

अग्निदेव बोले—अब मैं व्यवहार का वर्णन करूँगा जिससे नीति-अनीति का विवेक हुआ करता है। व्यवहार को चार पादों वाला, चार स्थानों वाल और चार साधनों वाला कहा जाता है।१

चतुर्हितश्चतुर्व्यापी चतुष्कारी च कीर्त्यते।
[1]अष्टाङ्गोऽष्टादशपदः शतशाखस्तथैव च ॥२
त्रियोनिर्द्व्यभियोगश्च [2]द्विदारो द्विगतिस्तथा।
धर्मश्च व्यवहारश्च चरित्रं राजशासनम् ॥३
चतुष्पाद्व्यवहाराणामुत्तरः पूर्वसाधकः।
[3]तत्र [4]सत्ये स्थितो धर्मो व्यवहारस्तु साक्षिषु ॥४
चरित्रे संग्रहे पुंसां राजाज्ञायां तु शासनम्।
सामा ([5]द्युपायसाध्यत्वाच्चतुःसाधन उच्यते ॥५

---

१ क. °ष्टांशौऽष्टा°। २ छ. द्विहारो। ३ क °त्र संवेष्टितो। ४ च. सभ्योत्थितो। ५ 'द्युपायसाध्यत्वा·····················सभ्या' क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति।

वह चार (वर्गों) का हितकारी, चार (पक्षों) में व्याप्त और चार प्रकार से कल्याणकारी होता है। वह आठ अंगों वाला, अठारह पदों वाला, सौ शाखाओं वाला, तीन उद्‌गमों वाला, दो अभियोगों वाला, दो द्वारों वाला तथा दो गतियों वाला हुआ करता है। व्यवहार के चार पाद होते हैं—धर्म, व्यवहार, चरित्र और राजशासन। इनमें से बाद वाला अपने पूर्ववर्ती का साधक हुआ करता है। धर्म सत्य में स्थित रहता है, व्यवहार साक्षियों में विहित रहता है, चरित्र जन-समुदाय में स्थित रहता है और साधन राजाज्ञा में विद्यमान रहता है।२-५।

चतुर्णामाश्रमाणां च रक्षणात्स चतुर्हितः।
कर्तारं साक्षिणश्चैव सभ्या) न्राजानमेव च ॥६
व्याप्नोति [1]पादशो यस्माच्चतुर्व्यापी ततः स्मृतः।
धर्मस्यार्थस्य यशसो लोकपङ्क्तेस्तथैव च ॥७
चतुर्णा करणादेष चतुष्कारी प्रकीर्तितः॥

व्यवहार को चतुःसाधन इसलिये कहते हैं, क्योंकि वह साम आदि उपायों के द्वारा साध्य हुआ करता है। चार आश्रमों की रक्षा करने के कारण उसे 'चतुर्हित' कहा जाता है। उसे 'चतुर्व्यापी' इसलिये कहा जाता है क्योंकि वह वादी, साक्षी, सभासद् और राजा—इन चारों में व्याप्त रहता है। धर्म, अर्थ, यश और लोकव्यवहार को प्रभावित करने के कारण उसे चतुष्कारी कहा जाता है।६-७½।

राजा सपुरुषः सभ्याः शास्त्रं गणकलेखकौ ॥८
हिरण्यमग्निरुदकमष्टाङ्गः समुदाहृतः।
[2](कामात्क्रोधाच्च लोभाच्च त्रिभ्यो यस्मात्प्रवर्तते ॥९
त्रियोनिः कीर्त्यते तेन त्रयमेतद्विवादकृत्।
द्व्यभियोगस्तु विज्ञेयः शङ्कातत्त्वाभियोगतः ॥१०
शङ्कासद्भिस्तु[3] संसर्गात्तत्त्वं षोडाभिदर्शनात्।
पक्षद्वयाभिसम्बन्धाद्द्विद्वारः समुदाहृतः ॥)११

उसे अष्टज इसलिये कहा जाता है क्योंकि (व्यवहार-निर्णय में) जिन आठ व्यक्तियों की आवश्यकता होती है वे हैं—राजपुरुष के साथ राजा, सभासद,

---

१ कामात्क्रोधात्......समुदाहृतः च पुस्तके नास्ति।

शास्त्र, गणक, लेखक, सोना, अग्नि और जल। उसे 'त्रियोनि' इसलिये कहा जाता है क्योंकि उसकी उत्पत्ति काम, क्रोध, और लोभ से होती है। इन तीनों के विवाद को उत्पन्न करने वाला त्रियोनि कहा जाता है। शङ्कित और वास्तविक अभियोगों के कारण वह 'द्व्यभियोग' कहलाता है। शङ्का और तत्त्व इन दोनों के छह-छह भेद किये गये हैं। उसे 'द्विद्वार' इसलिए कहा गया है कि उसमें दो पक्ष (पक्ष और विपक्ष) हुआ करते हैं।८-११।

पूर्ववादस्तयोः पक्षः प्रतिपक्षस्त्वनन्तरः।
भूतश्छलानुसारित्वाद्द्विगतिः समुदाहृतः ॥१२
ऋणं देयमदेयं च येन यत्र यथा च यत्।
दानग्रहणधर्मश्च ऋणादानमिति स्मृतम् ॥१३
स्वद्रव्यं यत्र विश्रम्भान्निक्षिपत्यविशङ्कितः।
निक्षेपं नाम तत्प्रोक्तं व्यवहारपदं बुधैः ॥१४

(पक्ष और विपक्ष में) जो पहले (राजसभा में) कुछ कहता है उसे वादी और वाद में बोलने वाले को प्रतिवादी कहते हैं। व्यवहार को 'द्विगति' इसलिये कहा जाता है क्योंकि उसमें कुछ बातें सत्य और कुछ असत्य हुआ करती हैं। ऋणादान के अन्तर्गत आने वाला ऋण वह है जो देय हो या अदेय हो, जो दान में दिया गया हो अथवा किसी धार्मिक कृत्य के लिए दिया गया हो। जब कोई व्यक्ति अपने विश्वास के कारण निःशङ्क होकर अपना धन किसी के पास धरोहर के रूप में रख देता है तब उसे बुद्धिमान् लोग 'निक्षेप' कहा करते हैं।१२-१४।

वणिक्प्रभृतयो यत्र कर्म संभूय कुर्वते।
तत्सम्भूय समुत्थानं व्यवहारपदं विदुः ॥१५
दत्त्वा द्रव्यं च सम्यग्यः पुनरादातुमिच्छति।
दत्ताप्रदानिकं नाम तद्विवादपदं स्मृतम् ॥१६
[1]अभ्युपेत्य च शुश्रूषां यस्तां न प्रतिपद्यते।
अशुश्रूषामुपेत्यैतद्विवादपदमुच्यते ॥१७

जब बनिये इत्यादि एक साथ मिलकर कोई (व्यावसायिक) कर्म करते हैं, तब उसे सम्भूयसमुत्थान नामक विवाद कहा जाता है। सम्यक् प्रकार से किसी द्रव्य को दान कर देने के पश्चात् जब दान देने वाला पुनः उसे प्राप्त करने की

---

१. ग समुत्पत्य।

इच्छा करता है तब उसे दत्ताप्रदानिक नामक विवाद कहा जाता है। सेवा करने की प्रतिज्ञा करके भी जो व्यक्ति सेवा नहीं करता है, उसे सेवा न करने का विवाद कहते हैं।१५-१७।

([1]भृत्यानां वेतनस्योक्तो[2] दानादानविधिश्च[3] यः।
वेतनस्यानपाकर्म तद्विवादपदं स्मृतम् ॥१८
निक्षिप्तं वा परद्रव्यं नष्टं लब्ध्वाऽपहृत्य वा।
विक्रीयते परोक्षं यत्स ज्ञेयोऽस्वामिविक्रि (क्र) यः ॥१९
विक्रीय ([4]पण्यं मूल्येन क्रेत्रे यच्च न दीयते।
विक्रीयासम्प्रदानं तद्विवादपदमुच्यते) ॥२०

सेवकों के वेतन को न देने की जो विधि है, उसे वेतनादान नामक विवाद कहते हैं। दूसरे की धरोहर को अथवा दूसरे के खोये हुए धन को प्राप्त करके या उसे चुराकर बेचने वाले को अस्वामिविक्रयी कहते हैं। मूल्य लेकर किसी वस्तु को बेंच देने के बाद भी जब वह वस्तु खरीददार को नहीं दी जाती है तब उसे विक्रीयासम्प्रदान नामक विवाद कहते हैं।१८-२०।

क्रीत्वा मूल्येन यः पण्यं क्रेता न बहु मन्यते।
[5]कृत्वा मूल्यं तु यः पण्यं दुष्क्रीतं मन्यते क्रयी ॥२१
पाषण्डनैगमादीनां स्थितिः समय उच्यते।
समयस्यानपाकर्म तद्विवादपदं[6] स्मृतम् ॥२२
सेतुकेदारमर्यादा-विकृष्टाकृष्टनिश्चयाः।
क्षेत्राधिकारे यत्र स्युर्विवादः क्षेत्रजस्तु सः ॥२३
वैवाहिको विधिः स्त्रीणां यत्र पुंसां च कीर्त्यते।)
स्त्रीपुंसयोगसंज्ञं तु तद्विवादपदं स्मृतम् ॥२४

मूल्य चुराकर किसी वस्तु को बेचने वाला व्यक्ति उसके मूल्य को वस्तु के अनुरूप जब नहीं समझता है, तब भी विवाद उठ खड़ा होता है। पाखण्डी अथवा दुराचारी लोगों के द्वारा सद्व्यवहार के लिये की गयी प्रतिज्ञा को 'समय' कहते हैं। इस 'समय' को तोड़ना भी विवाद का कारण बनता है।

---

१. भृत्यानां..................मुच्यते क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। २ ख. ग. छ. 'स्योक्तं दा'। ३ ख. ग. छ. 'धिक्रिया। वे'। ४ पण्यं...मुच्यते च, पुस्तके नास्ति। ५ छ. क्रीत्वा। ६ क. ङ. 'परं स्मृ'।

खेतों के अधिकार के सम्बन्ध में तथा पुल, चरागाह और सीमा को प्राप्त करने या अपने में मिला लेने के सम्बन्ध में जो विवाद होते हैं, उन्हें 'क्षेत्रज' कहा जाता है। जहाँ पर स्त्रियों तथा पुरुषों के विवाह की विधि बतायी, जाती है उसे स्त्रीपुंसयोग' नामक विवाद कहते है।२१-२४।

[१]विभागोऽर्थस्य पैत्रस्य पुत्रैर्यस्तु प्रकल्प्यते ।
दायभागमिति प्रोक्तं तद्विवादपदं बुधैः ॥२५
सहसा क्रियते कर्म यत्किंचिद्बलदर्पितैः ।
तत्साहसमिति प्रोक्तं विवादपदमुच्यते ॥२६
[२]देशजातिकुलादीनामाक्रोशाद्व्यङ्गसंयुतम्[३] ।
यद्वचः प्रतिकूलार्थं वाक्पारुष्यं तदुच्यते ॥२७

पैतृक सम्पत्ति के विषय में पुत्रों में जो विवाद उत्पन्न हो जाता है, उसे बुद्धिमान् लोग दायभाग-विवाद कहते हैं। बल के दर्प के कारण जो कार्य सहसा (विना विचार किये हुए) कर डाला जाता है, उसे साहस कहते हैं और वह भी विवाद का कारण बन जाता है। आक्रोशवश (किसी के) देश, जाति और कुल आदि के प्रतिकूल जिन बचनों का प्रयोग किया जाता है, उसे 'वाक्-पारुष्य' कहते हैं।२५-२७।

परगात्रेष्वभिद्रोहो [४]हस्तपादायुधादिभिः ।
अग्न्यादिभिश्चोपघातैर्दण्डपारुष्यमुच्यते ॥२८
अक्षवध्रशलाकाद्यैर्देवनं द्यूतमुच्यते ।
पशुक्रीडावयोभिश्च प्राणिद्यूतं[५] समादिशेत् ॥२९
प्रकीर्णकः पुनर्ज्ञेयो व्यवहारो निराश्रयः ।
राज्ञामाज्ञाप्रतीघातस्तत्कर्माकरणं तथा ॥३०
[६]व्यवहारो दशपदस्तेषां भेदोऽथ वै शतम् ।
क्रियाभेदान्मनुष्याणां शतशाखो निगद्यते ॥३१

हाथ, पैर, अस्त्र-शस्त्र अथवा अग्नि आदि घातक साधनों के द्वारा दूसरे के अङ्गों के प्रति जो अपराध किया जाता है, उसे 'दण्डपारुष्यं' कहते हैं। पासे,

---

१. क ङ. °स्य योगस्तु पु° । २ क. ङ. °शकालक्रमादी° । ३ ख. ग. च. छ. °क्रोशत्यङ्ग° । ४ क. ङ. °पादमुखादि° । ५ ख. ग. च. छ. °द्यूतसमाह्वयः । प्र° । ६. ख. ग. छ. °रोऽष्टाद° ।

वज्र और शलाकाओं से जुआ खेलने को द्यूत कहते हैं। पशुक्रीडा या पक्षियों से की जाने वाली क्रीडा 'प्राणिद्यूत' कहलाती है। इसके अतिरिक्त जो विवाद किसी कोटि में नहीं आता है उसे प्रकीर्णक व्यवहार कहते हैं। उसके अन्तर्गत आते हैं—राजाज्ञा का उल्लंघन और उस(राजा)के कर्म को न करना। व्यवहार के दश अङ्ग होते हैं, उसके सौ भेद होते हैं और मनुष्यों के कार्यों के भेद से वह सौ भेदों वाला कहा जाता है।२८-३१।

व्यवहारान्नृपः पश्येज्ज्ञानिविप्रैरकोपनः।
शत्रुमित्रसमाः सभ्या अलोभाः श्रुतिवेदिनः ॥३२
अपश्यता कार्यवशात्सभ्यैर्विप्रं नियोजयेत्।
रागाल्लोभाद्भयाद्वाऽपि[1] श्रुत्यपेतादिकारिणः ॥३३
सभ्याः पृथक्पृथग्दण्ड्या[2] विवादाद्द्विगुणो दमः।
स्मृत्याचारव्यपेतेन[3] मार्गेणाधर्षितः परैः ॥३४

राजा को ज्ञानवान् ब्राह्मणों के साथ मिलकर विना क्रोध किये विवादों का निपटारा करना चाहिये। उसके सभासदों को ऐसा होना चाहिये जो शत्रु मित्र को समान समझते हों, लोभरहित हों, वेदों के ज्ञाता हों। कार्यवश यदि कोई राजा अपने सभासदों के साथ विवादों का निपटारा न कर सके तो उसे इसके लिये किसी ब्राह्मण की नियुक्ति कर देनी चाहिए। राग, लोभ और भय के कारण वेदादि के विरुद्ध कार्य करने वाले सभासद् अलग-अलग दण्ड के भागी हुआ करते हैं। दूसरों के द्वारा विना दवाव डाले हुए ही जो सभासद् स्मृति और आचार के विरुद्ध मार्ग को अपनाता है, उसे विवाद के दुगुने दण्ड का भागी वनना पड़ता है।३२-३४।

आवेदयति यद्राज्ञे व्यवहारपदं हि तत्।
[4]प्रत्यर्थिनोऽग्रतो लेख्यं यथावेदितमर्थिना ॥३५
समामासतदर्धाहर्नामजात्यादिचिह्नितम्।
[5]श्रुतार्थस्योत्तरं लेख्यं पूर्वावेदकसंनिधौ ॥३६

---

१ ख. ग. छ. °पि स्मृत्य°। २ क. ख. ग. ङ °गुणं दमम्। स्मृ°। ३ छ. °र्गेण ध°। ४ क. ख. ग. ङ. च. °र्थितोऽग्र°। ५ ङ. च. °र्थस्यान्तरं।

ततोऽर्थी लेखयेत्सद्यः प्रतिज्ञातार्थसाधनम् ।
तत्सिद्धौ सिद्धिमाप्नोति विपरीतमतोऽन्यथा ॥३७
चतुष्पाद्व्यवहारोऽयं विवादेषूपदर्शितः ।
अभियोगमनिस्तीर्य नैनं प्रत्यभियोजयेत् ॥३८

(अर्थी या वादी) राजा से जो कुछ निवेदन करता है वही व्यवहार का विषय बन जाता है। वादी जो कुछ (मौखिक रूप से) निवेदन करता है उसे प्रत्यर्थी (अथवा प्रतिवादी) के सामने लिखवा लेना चाहिये। उसे लेख में वर्ष, मास, पक्ष, दिन (वादी का) नाम और उसकी जाति का भी उल्लेख होना चाहिए। वादी के लेख का उत्तर उसी के सामने प्रतिवादी से लिखवा लेना चाहिए। तदनन्तर वादी को अपने कथन को सिद्ध करने के लिए (अन्य) साधनों का उल्लेख करवाना चाहिए। उन साधनों की पुष्टि से वाद सिद्ध माना जाता है, अन्यथा असिद्ध हो जाता है। इस प्रकार विवादों में (उपर्युक्त) चार प्रकार का व्यवहार बताया गया है। प्रथम अभियोग का निर्णय किये बिना (प्रतिवादी के द्वारा वादी के विरुद्ध) अभियोग की स्वीकृति नहीं देनी चाहिए।३५-३८।

अभियुक्तं च नान्येन त्यक्तं विप्रकृतिं नयेत् ।
कुर्यात्प्रत्यभियोगं तु कलहे साहसेषु च ॥३९
उभयोः प्रतिभूर्ग्राह्यः समर्थः काम्यनिर्णये ।
[1]निह्नवे भावितो दद्याद्धनं राज्ञे तु तत्समम् ॥४०
मिथ्याभियोगाद्द्विगुणमभियोगाद्धनं हरेत् ।

अन्य (अधिकारी) के द्वारा निर्णीत अभियोग को पुनः (विचारार्थ) नहीं ग्रहण करना चाहिये। किन्तु कलह और साहस (के अभियोगों) में प्रत्यभियोग स्वीकार कर लेना चाहिए। दोनों पक्षों के द्वारा ऐसे प्रतिभू (जमानत करने वाले) को स्वीकार कर लेना चाहिए जो वांछित निर्णय में समर्थ हो। (वादी अथवा प्रतिवादी में) किसी एक के लुप्त हो जाने पर प्रतिभू से (अभियोग के) बराबर धन राजा को दिलवाना चाहिये। मिथ्या अभियोग लगाने वाले को अभियोग के दुगुने दण्ड का भागी बनना पड़ता है।३९-४०½।

---

१ क. ङ. च. भार्गवे।

[1]साहसस्तेयपारुष्येष्वभिशापात्यये स्त्रियाः ॥४१
विचारयेत्सद्य एव कालोऽन्यत्रेच्छया स्मृतः ।
([2]देशाद्देशान्तरं याति सृक्किणी परिलेढि च ॥४२
ललाटं स्विद्यते चास्य मुखवैवर्ण्यमेव च ।
स्वभावाद्विकृतं गच्छेन्मनोवाक्कायकर्मभिः ॥४३
अभियोगेऽथवा साक्ष्ये वाग्दुष्टः परिकीर्तितः ।
संदिग्धार्थं स्वतन्त्रो यः साधयेद्यश्च निष्पतेत् ॥४४
न चाऽऽहूतो वदेत्किञ्चिद्धीनो[3] दण्ड्यश्च स स्मृतः ॥

साहस, चोरी (वाक् अथवा दण्ड), पारुष्य, अभिशाप और स्त्रियों के साथ भागने के अभियोगों पर तुरन्त ही विचार करना चाहिये, अन्य प्रकार के अभियोगों में इच्छानुसार (अभियोगों के निर्णय का) काल निर्धारित किया जा सकता है। वह अभियोग लगाने वाला या साक्षी देने वाला वाग्दुष्ट कहा जा सकता है जो (राजा के द्वारा बुलाये जाने पर) एक स्थान से दूसरे स्थान को भाग जाता है, होठ चाटता है, जिसके मस्तक से पसीना आने लगता है, मुँह पीला पड़ जाता है और जो मन, वचन और कर्म से अस्वाभाविक चेष्टायें करता है, जो अपने आप ही (विना पूछे हुए) कुछ सिद्ध करने लगता हैं, संदिग्ध बातें करता है, (बुलाने पर) भाग जाता है या बुलाये जाने पर (आकर भी) कुछ बोलता नहीं, वह साक्षी दण्डनीय कहा गया है।४१-४४½।

साक्षिषूभयतः सत्सु) साक्षिणः पूर्ववादिनः ।४५
पूर्वपक्षेऽधरीभूते भवन्त्युत्तरवादिनः ।
[4]सपणश्चेद्विवादः स्यात्तत्र हीनं तु दापयेत् ॥४६
[5]दण्डं पणं वसुं चैव धनिनो धनमेव च ।
छलं निरस्य दूतेन व्यवहारान्नयेन्नृपः ॥४७
[6]भूतमप्यनुपन्यस्तं [7]हीयते व्यवहारतः ।
[8]निह्नुते निखिला (ता ?) नेकमेकदेशविभावितम् ॥४८
दाप्यः सर्वो नृपेणार्थो न ग्राह्यस्त्वनिवेदितः ।
स्मृत्योर्विरोधे न्यायस्तु वलवान्व्यवहारतः ॥४९

---

१ क. ख. ग. ङ. चं. °रुष्यगोभि° । २ देशाद्......सत्सु च पुस्तके नास्ति । ३ छ. °चिद्धनी द° ८° । ४ छ. सगण° । ५ छ. दत्तं° । ६ छ. °प्यर्थमप्यस्तं । ७ क. ङ. दीयते । ८ छ. °ते निखि° ।

(वादी और प्रतिवादी) दोनों ओर से साक्षियों को प्रस्तुत किये जाने पर पहले वादी के साक्षियों को सुनना चाहिये। पूर्वपक्ष निश्चित हो जाने के बाद ही उत्तर पक्ष (प्रतिवादी) के साक्षियों को सुनना चाहिये। यदि विवाद धन के सम्बन्ध में हो तो (वादी और प्रतिवादी में) जो हीन हो, उससे धन दिलवाना चाहिये। जुए में दाँव पर लगायी हुई प्रत्येक वस्तु को चाहे वह धन हो, मणियाँ हों या धनिक की सम्पूर्ण सम्पत्ति ही हो, राजा के व्यवहार का विषय बना लेना चाहिये। इस प्रकार व्यवहार का विषय बनायी हुई सम्पूर्ण सम्पत्ति (उसके अधिकारी को) दिलवा देनी चाहिये, किन्तु जब तक वह(वस्तु किसी पक्ष के द्वारा) राजा को दे न दी जाय तब तक राजा को उसे अपने अधिकार में नहीं कर लेना चाहिये। दो स्मृति-ग्रन्थों में परस्पर विरोध होने पर न्याय, व्यवहार से बलवान् माना गया है।४५-४९।

अर्थशास्त्राद्धि बलवद्धर्मशास्त्रमिति स्थितिः।
प्रमाणं लिखितं भुक्तिः साक्षिणश्चेति कीर्तितम् ।।५०
एषामन्यतमाभावे दिव्यान्यतममुच्यते।
सर्वेष्वेव विवादेषु बलवत्युत्तरा क्रिया ।।५१
आधौ प्रतिग्रहे क्रीते पूर्वा तु बलवत्तरा।
पश्यतो ब्रुवतो भूमेर्हानिर्विंशतिवार्षिकी ।।५२
परेण भुज्यमानाया धनस्य दशवार्षिकी।
अधिसीमोपनिःक्षेपजडबालधनैर्विना ।।५३
तथोपनिधिराजस्त्रीश्रोत्रियाणां धनैरपि।
आध्यादीनां विहर्तारं धनिने दापयेद्धनम् ।।५४

स्थिति यह है कि धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र से अधिक बलवान् माना गया है। प्रमाण तीन माने गये हैं—लेख, भोग और साक्षी। इनमें से किसी एक के अभाव में दिव्य प्रमाण (सौगन्ध आदि) को मान्यता दी गयी है। सभी प्रकारों के विवादों में बाद में होने वाले कार्य अधिक बलशाली हुआ करते हैं, किन्तु अधिदान और क्रय-विक्रय में पहले का कार्य अधिक बलवान् हुआ करता है। (स्वामी के) देखते-देखते और बातचीत करते हुए (यदि कोई व्यक्ति उसकी भूमि के ऊपर अधिकार कर ले तो) बीस वर्ष में भूमि से उसके स्वामी का अधिकार समाप्त हो जाता है। दूसरों के द्वारा उपभोग किये जाने वाले धन से दस वर्षों में ही अधिकार समाप्त हो जाता

है। किन्तु सीमा, आधि, धरोहर, मूर्ख, बालक, राजा, स्त्री और श्रोत्रिय, ब्राह्मणों के धन के सम्बन्ध में यह नियम नहीं होता। आधि इत्यादि को हड़प कर लेने वाले से उसके स्वामी को आधि की वस्तु दिलवानी चाहिये।५०-५४।

दण्डं च तत्समं राज्ञे शक्त्यपेक्ष्यमथापि वा।
आगमोऽप्यधिको भुक्तिं विना पूर्वक्रमागताम् ॥५५
आगमोऽपि बलं नैव भुक्तिस्तोकाऽपि यत्र न।
आगमेन विशुद्धेन भोगो याति प्रमाणताम् ॥५६
अविशुद्धागमो भोगः प्रामाण्यं नाधिगच्छति।
('आगमस्तु कृतो येन सोऽभियुक्तस्तमुद्धरेत् ॥५७
न तत्सुतस्तत्सुतो वा भुक्तिस्तत्र गरीयसी।
योऽभियुक्तः परेतः स्यात्तस्य ऋक्थात्तमुद्धरेत् ॥५८

उसके बराबर अथवा (आधि इत्यादि को हड़प करने वाले की) शक्ति के अनुरूप दण्ड (का धन) राजा को दिलवाना चाहिये। पूर्व परम्परा से प्राप्त भोग के बिना भी आगम (अधिकार) मान्य हुआ करता है, किन्तु जहाँ लेशमात्र भी निर्विघ्न भोग न हो वहाँ (केवल) अधिकार में बल नहीं रहता। विशुद्ध अधिकार से भोग भी प्रमाणित हो जाता है, किन्तु अविशुद्ध (विघ्न युक्त) अधिकार से भोग प्रमाणित नहीं हुआ करता है। जिस व्यक्ति ने किसी वस्तु पर (अनुचित) अधिकार कर लिया हो, उसी के अधिकार को समाप्त कर देना चाहिये। (इस प्रकार अनुचित ढंग से अधिकार करने वाले) उसके पुत्र अथवा पौत्र के अधिकार को नहीं छीना जा सकता है क्योंकि वहाँ तो भोग ही बलवान् हो जायेगा। (अनुचित ढंग से अधिकार करने वाले) अभियुक्त की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी से अनुचित अधिकार को समाप्त करवा देना चाहिये।५५-५८।

न तत्र कारणं भुक्तिरागमेन विना कृता।
बलोपाधिविनिर्वृत्तान्व्यवहारान्निवर्तयेत् ॥५९
स्त्रीनक्तमन्तरागारबहिःशत्रुकृतस्तथा।
मत्तोन्मत्तार्तव्यसनिबालभीतप्रयोजितः[2] ॥६०

---

१ आगमस्तु······जनपदाय तु च. पुस्तके नास्ति। २ क. ङ. निबलमन्त्रप्र०

असंवद्धकृतश्चैव व्यवहारो न सिध्यति ।
प्रनष्टाधिशतं देयं नृपेण धनिने धनम् ॥६१
विभावयेन्न चेल्लिङ्गैस्तत्सम[1] दातुमर्हति ।
देयं चौरहृतं द्रव्यं राज्ञा जनपदाय[2] तु) ॥ ६२

ऐसी स्थिति में भोग भी प्रमाणित नहीं हुआ करता है, क्योंकि वह अधिकार से रहित है । वल तथा अधिकार से किये गये व्यवहारों को समाप्त कर देना चाहिये । वह व्यवहार-सिद्ध नहीं हुआ करता है जो स्त्री, शत्रु, मत्त, उन्मत्त, रोगी, दुःखी, बालक और भयभीत व्यक्ति के साथ किया जाता है । रात्रि में, घर के अन्दर और बाहर तथा असम्वद्ध व्यक्तियों से किया गया व्यवहार भी सिद्ध नहीं होता है । आधि के नष्ट हो जाने पर राजा के द्वारा धनिक को सौ गुना धन दिलाना चाहिये । यदि उन्हीं विशेषताओं से युक्त आधि को प्राप्त कर सकना असम्भव हो तो आधि के समान वस्तु (उसके स्वामी को) दिलवाना चाहिये । राजा को चोरों द्वारा चुराया गया धन (सम्पूर्ण) जनपद को दे देना चाहिये ।५९-६२।

अशीतिभागो वृद्धिः स्यान्मासि मासि सम्वन्धके[3] ।
वर्णक्रमाच्छतं द्वित्रिचतुष्पञ्चकमन्यथा ॥६३
सप्ततिस्तु पशुस्त्रीणां रसस्याष्टगुणा परा ।
वस्त्रधान्यहिरण्यानां चतुस्त्रिद्विगुणा तथा ॥६४
ग्रामान्तरात्तु दशकं सामुद्रादपि विंशतिम् ।
दद्युर्वा स्वकृतां वृद्धिं सर्वे सर्वासु जातिषु ॥६५
[4]प्रपन्नं साधयन्नर्थं न वाच्यो नृपतिर्भवेत् ।
साध्यमानो नृपं गच्छेद्दण्ड्यो दाप्यश्च तद्धनम्[5] ॥६६

वन्धक के साथ किये गये ऋण पर (सौ का) अस्सीवाँ भाग प्रतिमास (व्याज के रूप में) वृद्धि होगी, अन्यथा (वन्धक रहित ऋण पर) वर्णक्रम से क्रमशः दो, तीन, चार और पाँच प्रतिशत वृद्धि होगी । पशुओं और स्त्रियों पर सत्तरवाँ भाग वृद्धि होगी । रसों पर आठगुनी और वस्त्र, धान्य तथा सोने पर क्रमशः उसकी चार गुनी, तीन गुनी या दो गुनी वृद्धि होगी । अन्य ग्राम में रहने

---

१ क. ख. ग. ङ. °मं दणुम° । २ क. ङ. °पदस्य तु । ३ च. सवर्णके ।
४ च. प्रसन्नं । ५ अत्र क. ङ पुस्तकयोः श्लोकार्धमधिकं तद्यथा—"अनेन विधिना राज्ञा व्यवहारो न सिध्यति" इति ।

वाले ऋणकर्ता को दिये गये ऋण पर दश प्रतिशत तथा सामुद्रिक यात्रा पर जाने वाले व्यक्ति को दिये गये ऋण पर बीस प्रतिशत वृद्धि होगी। अथवा सभी वर्णों के सभी लोगों को परस्पर निर्धारित ब्याज देना चाहिये। विपत्ति-ग्रस्त को (ऋण रूप में) धन देने वाला राजा निन्दनीय नहीं होता है। (निर्धारित दर से) अधिक ब्याज लेने वाला राजा के द्वारा दण्डनीय हुआ करता है और उसका धन राजा ले लिया करता है।६३-६६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये व्यवहारकथनं नाम त्रिपञ्चाशदधिक-द्विशततमोऽध्यायः।२५३

अथ चतुष्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यवहारकथनम्

अग्निरुवाच—

गृहीतार्थः क्रमाद्दाप्यो धनिनामधमर्णिकः।
दत्त्वा तु ब्राह्मणायाऽऽदौ नृपतेस्तदनन्तरम्॥१
राज्ञाऽधमर्णिको दाप्यः साधिताद्दशकं [1]स्मृतम्।
पञ्चकं तु शतं दाप्यः प्राप्तार्थो ह्युत्तमर्णिकः॥२
हीनजातिं परिक्षीणमृणार्थं कर्म कारयेत्।
ब्राह्मणस्तु परिक्षीणः शनैर्दाप्यो यथोदयम्॥३

अग्निदेव बोले—ऋण लेने वाले व्यक्ति से (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ऋण देने वालों को) क्रमशः ऋण वापस दिलवाना चाहिये। राजा को ऐसे ऋण लेने वाले से दस प्रतिशत ब्याज दिलवाना चाहिये। जो भाग गया हो और जिसे पकड़ लिया गया हो, किन्तु जिस ऋण देने वाले को राजा के सम्मुख ही उसका ऋण प्राप्त हो जाये उसे पाँच प्रतिशत ब्याज दिलवाना चाहिये। यदि हीन जाति का ऋण लेने वाला ऋण चुकाने में असमर्थ हो तो उसे ऋण चुकाने के लिए (ऋण लेने वाले का) कार्य करना चाहिये। किन्तु भाग लेने वाला यदि ब्राह्मण हो तो उससे शनैः-शनैः यथाशक्ति ऋण चुकाना चाहिये।१-३।

---

१ क. ख ङ. शतम्।

दीयमानं न गृह्णाति प्रयुक्तं यः स्वकं धनम् ।
मध्यस्थस्थापितं तत्स्याद्वर्धते न ततः परम् ॥४
ऋक्थग्राह ऋणं दाप्यो योषिद्ग्राहस्तथैव च ।
पुत्रोऽनन्याश्रितद्रव्यः पुत्रहीनस्य ऋक्थिनः ॥५
अविभक्तैः कुटुम्वार्थं यदृणं तु कृतं भवेत् ।
दद्युस्तदृक्थिनः प्रेते प्रोषिते व कुटुम्बिनि ॥६
न योषित्पतिपुत्राभ्यां न पुत्रेण कृतं पिता ।
दद्यादृते कुटुम्वार्थान्न पतिः स्त्रीकृतं तथा ॥७

यदि ऋण देने वाला व्यक्ति ऋण लेने वाले से वापस किये गये धन को स्वीकार न करे तो ऋण लेने वाले को उसे किसी मध्यस्थ के पास रख देना चाहिये। उसके वाद से उस ऋण पर व्याज नहीं लगता है। (ऋण लेने वाले की मृत्यु के अनन्तर मृतक ऋणी के) धन को तथा उसकी स्त्री को ग्रहण करने वाला उसके ऋण को चुकाता है और यदि वह (मृतक ऋणी) पुत्रहीन हो तो उसका ऋण उसकी सम्पत्ति को ग्रहण करने वाले को चुकाना पड़ता है। यदि किसी अविभाजित कुटुम्ब के मुखिया ने कुटुम्व के लिए ऋण लिया हो तो उसकी मृत्यु के वाद अथवा विदेश चले जाने के बाद ऋण चुकाने का दायित्व उसकी सम्पत्ति को ग्रहण करने वालों का हुआ करता है। पति और पुत्र के द्वारा किये गये ऋण को चुकाने का दायित्व स्त्री पर नहीं रहता है और न पुत्र के द्वारा लिया गया ऋण पिता को चुकाना पड़ता है। किन्तु यदि वह ऋण कुटुम्ब के लिये लिया गया हो तो यह नियम मान्य नहीं हुआ करता है।४-७।

गोपशौण्डिशकैलूषरजकव्याधयोषिताम् ।
ऋणं दद्यात्पतिस्त्वासां यस्माद्वृत्तिस्तदाश्रया ॥८
प्रतिपन्नं स्त्रिया देयं पत्या वा सह यत्कृतम् ।
स्वयं कृतं वा यदृणं ([1]नान्यस्त्री (त्स्त्री) दातुमर्हति ॥९
पितरि प्रोषिते प्रेते व्यसनाभिप्लुतेऽथ वा ।
पुत्रपौत्रैर्ऋणं देयं) निह्नवे[2] साक्षिभावितम् ॥१०

---

१ नान्यस्त्री……देयं च पुस्तके नास्ति। २ क. ङ. निह्नुते।

सुराकामद्यूतकृतं दण्डशुल्कावशिष्टकम् ।
वृथाऽऽदानं तथैवेह पुत्रो दद्यान्न पैतृकम् ॥११
भ्रातृणामथ दम्पत्योः पितुः पुत्रस्य चैव हि ।
प्रातिभाव्यमृणं[1] साक्ष्यमविभक्तेन च स्मृतम् ॥१२

(साधारणतया) स्त्री के द्वारा (कुटुम्ब के लिए) लिया गया ऋण पति को नही चुकाना पड़ता है, किन्तु ग्वाले, मदिरा बनाने वाले, नट, धोबियों और बहेलियों की स्त्रियों द्वारा लिये गये ऋण को उनके पतियों को (भी) चुकाना पड़ता है, क्योंकि उन लोगों की जीविका स्त्रियों के अधीन ही हुआ करती है। स्त्री को केवल वही ऋण चुकाना पड़ता है जिसे उसने स्वयं लिया हो या पति के साथ मिलकर लिया हो। इसके अतिरिक्त कोई भी ऋण (साधारण-तया) स्त्री को चुकाना नहीं पड़ता है। पिता की मृत्यु के अनन्तर, उसके प्रवास के बाद और उसके विपत्ति में पड़ जाने पर उसके द्वारा लिया गया ऋण पुत्र-पौत्रों को चुकाना पड़ता है। पुत्र-पौत्रों को वह ऋण भी चुकाना पड़ता है जो पिता के ऊपर अनुचित व्यवहार में साक्षी बनने के लिये आ पड़ा हो। किन्तु पुत्र अपने पिता द्वारा लिये गये उस ऋण को चुकाने के लिये बाध्य नहीं हुआ करता है जो ऋण पिता ने मदिरापान के लिये, कामोपभोग के लिये तथा जुए के लिए लिया हो। पुत्रों को वह धन भी नहीं चुकाना पड़ता है जो पिता के ऊपर किये गये दण्ड में शेष रह गया हो या व्यर्थ में ही लिया गया हो। भाइयों, दम्पत्तियों तथा पिता-पुत्रों के द्वारा संयुक्त रूप से लिये गये ऋण में एक-दूसरे का प्रतिभू (जमानत करने वाला) तथा साक्षी हुआ करता है।८-१२।

दर्शने प्रत्यये दाने प्रातिभाव्यं विधीयते ।
आद्यौ तु वितथे दाप्या वितथस्य सुता अपि ॥१३
दर्शनप्रतिभूर्यत्र मृतः प्रात्ययिकोऽपि वा ।
न तत्पुत्रा धनं[2] दद्युर्दानाय समुपस्थिताः ॥१४
बहवः स्युर्यदि स्वांशैर्दद्युः प्रतिभुवो धनम् ।
एकच्छायाश्रितेष्वेषु धनिकस्य यथारुचि ॥१५
प्रतिभूर्दापितो यत्र प्रकाशं धनिना[3] धनम् ।
द्विगुणं प्रतिदातव्यमृणिकैस्तस्य तद्भवेत् ॥१६

---

१ छ. °णं ग्राह्यम°। २ ख. ग. छ. 'द्युर्दानाय ये स्थि°। ३ ग. छ. धनिने।

प्रतिभू के तीन प्रयोजन होते हैं—दर्शन, प्रत्यय और दान। अनधिकृत वस्तु को आधिरूप में रखने वाले व्यक्ति के पुत्रों को भी ऋण चुकाना पड़ता है। दर्शन और प्रत्यय के लिये जो प्रतिभू होते हैं उनके मरने पर (और ऋण के वापस न होने की स्थिति में) उनके पुत्रों को ऋण चुकाना नहीं पड़ता है, किन्तु जो प्रतिभू ऋण को वापस करने का दायित्व अपने ऊपर लेते हैं, उनके मरने के बाद उनके पुत्रों को ऋण चुकाना पड़ता है। जहाँ एक ऋण लेने वाले के लिये (संयुक्त रूप से) अनेक प्रतिभू होते हैं वहाँ (ऋणकर्ता के द्वारा ऋण वापस न करने पर) सभी प्रतिभू अपने-अपने अंश (के ऋण) को वापस करने के लिए उत्तरदायी हुआ करते हैं। किन्तु जहाँ एक ऋणकर्ता के लिए (अलग-अलग) अनेक प्रतिभू हों वहाँ ऋण देने वाला अपनी इच्छानुसार किसी भी प्रतिभू से अपने धन को वापस ले सकता है। जहाँ पर किसी प्रतिभू को सबके सामने ऋणकर्ता के स्थान में ऋण चुकाना पड़ता है वहाँ ऋण लेने वालों से प्रतिभू को उसके ऊपर दिये गये धन का दुगुना धन दिलवाना चाहिये।१३-१६।

ससंततिस्त्रीपशव्यं धान्यं द्विगुणमेव च।
वस्त्रं चतुर्गुणं प्रोक्तं रसश्चाष्टगुणस्तथा ॥१७
आधिः प्रणश्येद्द्विगुणे धने यदि न मोक्ष्यते।
काले [1]कालकृतो नश्येत्फलभोग्यो न नश्यति ॥१८
गोप्याधिभोगिनो वृद्धिः सोपकारेऽथ भाविते।
नष्टो देयो[2]विनष्टश्च[3] दैवराजकृतादृते ॥१९
आधेः स्वीकरणात्सिद्धी रक्ष्यमाणोऽप्यसारताम्।
यातश्चेदन्य आधेयो धनभाग्वा धनी भवेत् ॥२०
चरित्रं बन्धककृतं सवृद्धं दापयेद्धनम्।
सत्यंकारकृतं द्रव्यं द्विगुणं प्रतिपादयेत् ॥२१

(आधि के रूप में रखी हुई) स्त्रियों अथवा पशुओं की सन्तान को छुड़ाने के लिये दुगुना, वस्त्रों को छुड़ाने के लियेचोगुना और रसों को छुड़ाने के लिये आठ गुना धन देना पड़ता है। ऋण में दिया हुआ मूल धन बढ़ते-बढ़ते यदि दूगुना हो जाये तो आधि पर ऋणकर्ता का अधिकार समाप्तहो जाता है। यदि कोई आधि किसी विशेष अवधि के लिये रखी गयी हो तो उस अवधि की

१ छ. कालकृतं। २ ङ. विशिष्टश्च। ३ क. [3]श्च देशकालो विभाव्यंते।

समाप्ति होते ही आधि पर उसके स्वामी का अधिकार समाप्त हो जाता है; किन्तु यदि कोई आधि ऐसी हो जिसके फल का उपभोग किया जा सके तो उस पर उसके स्वामी का अधिकार कभी भी समाप्त नहीं होता है। ऐसी आधि पर कोई भी व्याज नहीं लगता है जिसका उपयोग किया जाता रहा हो या जिससे ऋण देने वाला कोई लाभ प्राप्त करता रहा हो। दैवयोग से अथवा राजा के किसी से नष्ट हुई अथवा खोयी हुई आधि के अतिरिक्त अन्य किसी आधि के खो जाने पर उसे (उसके स्वामी को) लौटाना पड़ता है। जैसे ही (ऋणदाता के द्वारा) आधि स्वीकार कर ली जाती है वैसे ही व्यवहारपूर्ण हो जाता है। यदि ऋणदाता के द्वारा (सम्यक् प्रकार से) रक्षा करने के वाद भी आधि नष्ट हो जाये तो ऋण लेने वाले को या तो दूसरी वस्तु आधि के रूप में रख देनी चाहिये अन्यथा ऋण देने वाले को उसका धन वापस कर देना चाहिये।१७-२१।

उपस्थितस्य मोक्तव्य आधिर्दण्डोऽन्यथा भवेत्।
प्रयोजके सति धनं कुलेऽन्यस्याऽऽधिमाप्नुयात्॥२२
तत्कालकृतमूल्यो वा तत्र तिष्ठेदवृद्धिकः।
विना धारणकाद्वाऽपि विक्रीणीतेससाक्षिकम्॥२३
यदा तु द्विगुणीभूतमृणमाधौ तदा खलु[1]।
मोच्यश्चाऽऽधिस्तदुत्पाद्यः[2] प्रविष्टे द्विगुणे धने॥२४
व्यसनस्थमनाख्याय हस्तेऽन्यस्य[3] तदर्पयेत्॥

आधि रखने वाले व्यक्ति को चाहिये कि ऋण को वापस करके आधि को वापस करने के लिए आये हुए ऋणकर्त्ता को आधि वापस कर दे, अन्यथा ऋणदाता दण्ड का भागी होता है। यदि आधि रखने वाला (उत्तमर्ण) उपस्थित न हो (अर्थात् मर गया हो) तो ऋण लेने वाला (देय) धन को उस (उत्तमर्ण) के कुल को सौंपकर आधि वापस ले सकता है अथवा आधि का तत्कालीन मूल्य निकाल लिया जाता है और तदनन्तर उसके ऊपर व्याज लगना बन्द हो जाता है। यदि (आधि को छुड़ाने के समय) ऋणकर्ता उपस्थित न हो (अर्थात् मर गया हो या विदेश चला गया हो) तो ऋण देने वाले को साथियों के सामने आधि को वेंच देना चाहिए। यदि आधि रखने के समय इस प्रकार समझौता हो कि (व्याज के सहित) मूलधन के द्विगुणित हो जाने पर ही ऋण

१ क. °लु। मोच्यश्चा°। २ क. °दुत्पन्ने द्वि°। ३ क. ख. ङ. छ. °स्य यद°।

देने वाला आधि का उपभोग कर सकता है तो जैसे ही आधि से इतना लाभ प्राप्त हो जाये जो मूलधन के दुगुने के समान हो तो, आधि को वापस कर देना चाहिए ।२२-२४½।

द्रव्यं तदौपनिधिकं प्रतिदेयं तथैव तत् ॥२५
न दाप्योऽपहृतं तत्तु राजदैवततस्करैः ।
प्रेषश्चेन्मार्गिते दत्ते दाप्यो दण्डश्च तत्समः ॥२६
आजीवन्स्वेच्छया दण्ड्यो दाप्यस्तच्चापि सोदयम् ।
याचितावाहितन्यासे निक्षेपेष्वप्ययं विधिः ॥२७

उस आधिद्रव्य को औपनिधिक कहते हैं जिसमें (चोरी हो जाने इत्यादि का) भय रहता है और जिस(के वास्तविक रूप) को वताये विना ही ऋणदाता को दे दिया जाता है । उस आधि को (ऋण का धन प्राप्त करने पर) उसी रूप में वापस कर देना चाहिए । यदि इस प्रकार की आधि राजा अथवा दैव के द्वारा नष्ट हो जाये या उसे चोर चुरा लें तो उसे वापस नहीं करना पड़ता है; किन्तु यदि ऋण देने वाला ऋणकर्त्ता से (ऋण देने के लिए) इस प्रकार की आधि को माँगकर उसे वापस करते समय ऋणदाता को परेशान करे तो वह आधि के समान दण्ड का भागी हुआ करता है । यदि कोई ऋणदाता इस प्रकार की आधि से जानवूझकर कोई लाभ प्राप्त करे तो वह या उसके उत्तराधिकारी दण्ड के भागी होते है । यही नियम न्यास अथवा निक्षेप के विषय में भी है ।२५-२७।

इत्यादिमहापुराणआग्नेये व्यवहारकथनं नाम चतुष्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः । २५४

अथ पञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

दिव्यप्रमाणकथनम्

अग्निरुवाच—

तपस्विनो दानशीलाः कुलीनाः सत्यवादिनः ।
धर्मप्रधाना ऋजवः पुत्रवन्तो धनान्विताः ॥१

पञ्चयज्ञक्रियायुक्ताः साक्षिणः पञ्च वा भयः ।
यथाजाति यथावर्णं सर्वे सर्वेषु वा स्मृताः ॥२
स्त्रीवृद्धवालकितवमत्तोन्मत्ताभिशस्तकाः[1] ।
रङ्गावतारिपाषण्डिकूटकृद्विकलेन्द्रियाः ॥३
[2]पतिताप्तार्थसंवन्धिसहायरिपुतस्कराः ।
असाक्षिणः[3] सर्वसाक्ष्ये[4] चौर्यपारुष्यसाहसे ॥४
उभयानुमतः साक्षी भवत्येकोऽपि धर्मवित् ।
अब्रुवन्हि नरः साक्ष्यमृणं स दशवन्धकम् ॥५
राज्ञा सर्वं प्रदाप्यः स्यात्षट्चत्वारिंशकेऽहनि ।

अग्निदेव बोले—किसी अभियोग में पाँच या तीन व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। उन साक्षियों की तपस्वी, दानशील, कुलीन, सत्यवादी, धर्मात्मा, सीधासादा, पुत्रवान्, धनी और पंच महायज्ञों का करने वाला होना चाहिये। साक्षियों को (वादी तथा प्रतिवादी को) समान जाति या वर्ण का होना चाहिए अथवा सभी जातियों (के वादी-प्रतिवादी) में सभी जाति के साक्षी रह सकते हैं। स्त्री, वृद्ध, वालक, धूर्त, प्रमत्त, उन्मत्त, व्यभिचारी, नट, पाषण्डी, छली, अंगहीन, पतित, पक्षपाती, लोभी तथा चोर—ये लोग साक्षी नहीं हो सकते हैं, किन्तु चोरी तथा साहस के अपराधों में (ये) सभी लोग साक्षी हो सकते हैं। दोनों पक्षों की सहमति से एक धार्मिक व्यक्ति को ही साक्षी वनाया जा सकता है। साक्ष्य के लिए प्रस्तुत किया गया व्यक्ति यदि साक्षी वनने से इनकार करे तो उससे छियालीस दिनों के अन्दर ही ऋण का वह पूरा धन लेना चाहिए, जिस पर व्याज की दर दश प्रतिशत (तक) हो ।१-५½।

न ददाति हि यः साक्ष्यं जानन्नपि नराधमः ॥६
स कूटसाक्षिणां पापैस्तुल्यो दण्डेन चैव हि ।
साक्षिणः श्रावयेद्वादिप्रतिवादिसमीपगान् ॥७
ये पातककृतां लोका महापातकिनां तथा ।
अग्निदानां च ये लोका ये च स्त्रीवालघातिनाम् ॥८

---

१ क. ङ. °काः । लाक्षाव° । २ ग. °प्ताश्च सं° । छ. °प्तान्नसं° । ३ छ. सर्व-साक्षी । ४ क. ङ. °क्ष्ये धैर्यपा° ।

तान्सर्वान्समवाप्नोति यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ।
सुकृतं यत्त्वया किंचिज्जन्मान्तरशतैः कृतम् ॥६
तत्सर्वं तस्य जानीहि यं पराजयसे मृषा ।
द्वैधे बहूनां वचनं समेषु गुणिनां तथा ॥१०

जो दुष्ट व्यक्ति (वास्तविकता को) जानते हुए भी साक्षी नहीं देता है वह उतने ही दण्ड और पाप का भागी होता है जितने का झूठी गवाही देने वाला। वादी और प्रतिवादी के सम्मुख ही साक्षी को यह कहकर सुना देना चाहिए कि यदि तुम झूठी गवाही दोगे तो तुम्हें उन्हीं लोकों में जाना पड़ेगा जहाँ पातकियों, महापातकियों; आग लगने वालों, स्त्री हत्या तथा बालहत्या करने वालों को जाना पड़ता है। यदि तुम झूठ बोलोगे तो तुम्हारे वे सभी पुण्य नष्ट हो जायेगें जिन्हें तुमने सैकड़ों जन्म-जन्मान्तरों में संचित किया है। साक्षियों की बातों में दुविधा होने पर अधिक साक्षियों की बात को मानना चाहिये।६-१०।

गुणिद्वैधे तु वचनं ग्राह्यं ये गुणवत्तराः ।
यस्योचुः साक्षिणः सत्यां प्रतिज्ञां स जयी भवेत् ॥११
अन्यथा वादिनो यस्य ध्रुवम्तस्य पराजयः ।
उक्तेऽपि साक्षिभिः साक्ष्ये यद्यन्ये गुणवत्तराः ॥१२
द्विगुणा वाऽन्यथा ब्रूयुः कूटाः स्युः पूर्वसाक्षिणः ।
पृथक्पृथग्दण्डनीयाः कूटकृत्साक्षिणस्तथा ॥१३
विवादाद्द्विगुणं [1]दण्डं विवास्यो ब्राह्मणः स्मृतः ।
यः साक्ष्यं श्रावितोऽन्येभ्यो निह्नुते तत्तमोवृतः ॥१४
स दाप्योऽष्टगुणं दण्डं ब्राह्मणं तु विवासयेत् ।
वर्णिनां हि वधो यत्र तत्र साक्ष्येऽनृतं वदेत् ॥१५

यदि दोनों पक्षों की ओर साक्षियों की सख्या समान हो तो उनमें उन लोगों की बात माननी चाहिये जो अधिक गुणवान् हों। जहाँ पर गुणवान् साक्षियों में भी दुविधा हो वहाँ पर जो अधिक गुणवान् हो उसकी बात माननी चाहिए। विजय उसी की होती है जिसके (द्वारा प्रस्तुत) साक्षी सत्य प्रतिज्ञा करने वाले हुआ करते हैं। जिसके साक्षी असत्य भाषण करते हैं, उनकी

---

१ क. ख. ङ. द्रव्यं ।

पराजय निश्चित ही होती है। साक्षियों की गवाही हो चुकने पर विशिष्ट विद्वान् लोग या पूर्व साक्षियों की अपेक्षा दूने अन्य लोग (पूर्व साक्षियों से) भिन्न बात कहें तो पूर्व साक्षियों को झूठी गवाही देने वाला समझना चाहिये और उन झूठी गवाही देने वालों को पृथक्-पृथक् दण्ड देना चाहिए। ऐसी परिस्थिति में यदि कोई साक्षी विवाद करे तो उसे दुगुना दण्ड देना चाहिये। इन्हीं परिस्थितियों में यदि यही कार्य कोई ब्राह्मण जातीय साक्षी करे तो उसे देश से निष्कासित कर देना चाहिये। जो व्यक्ति गवाही देने के लिए बुलाये जाने पर छिप जाता है, वह आठ गुने दण्ड का भागी होता है, किन्तु ऐसा करने वाला ब्राह्मण तो देश से बहिष्कृत ही कर दिया जाता है। (यदि सत्य बोलने से) ब्राह्मणों के वध की शंका हो तो झूठी गवाही भी दी जा सकती है।११-१५।

यः कश्चिदर्थोऽभिमतः स्वरुच्या तु परस्परम्।
लेख्यं तु साक्षिमत्कार्यं तस्मिन्धनिकपूर्वकम्॥१६
समामासतदर्धाहर्नामजातिस्वगोत्रकैः।
सब्रह्मचारिकात्मीयपितृनामादिचिह्नितम्॥१७
समाप्तेऽर्थे ऋणी नाम स्वहस्तेन निवेशयेत्।
मतं मेऽमुकपुत्रस्य यदत्रोपरि लेखितम्॥१८
साक्षिणश्च स्वहस्तेन पितृनामकपूर्वकम्।
अत्राहममुकः साक्षी लिखेयुरिति ते समाः॥१९

(उत्तमर्ण और अधमर्ण में) परस्पर जिस (हिरण्यादि) अर्थ (लेन-देन का) निश्चय स्वेच्छा से किया जाय उसे साक्षियों के सामने लेखबद्ध कर लेना चाहिये। लेख में उत्तमर्ण का नाम पहले आना चाहिये। उस (लेख मे) वर्ष, मास, पक्ष, दिन (दोनों के) नाम, जाति, गोत्र, सतीर्थ तथा पिता के नाम आदि का उल्लेख होना चाहिये। इस प्रकार (लेख) पूर्ण हो जाने पर ऋणी को अपने हाथ से यह लिखना चाहिये कि 'ऊपर जो कुछ लिखाया गया है वह मेरा मत है, जो मैं अमुक का पुत्र हूँ।' साक्षी भी अपने हाथ से अपने-अपने पिता के नाम के सहित इस प्रकार उल्लेख करे कि 'इसमें अमुक नाम वाला मैं साक्षी हूँ।' साक्षियों की संख्या समान होनी चाहिये।१६-१९।

अलिपिज्ञ ऋणी यः स्याल्लेखयेत्स्वमतं तु सः।
साक्षी वा साक्षिणाऽन्येन सर्वसाक्षिसमीपतः॥२०

उभयाभ्यर्थितेनैतन्मया ह्यमुकसूनुना ।
लिखितं ह्यमुकेनाति[1] लेखकोऽन्ते ततो लिखेत्[2] ।।२१
विनापि साक्षिभिर्लेख्यं स्वहस्तलिखितं च यत् ।
तत्प्रमाणं स्मृतं सर्वं[3] बलोपधिकृतादृते ।।२२
ऋणं लेख्यकृतं देयं[4] पुरुषैस्त्रिभिरेव तु ।
आधिस्तु भुज्यतेता वद्यावत्तन्न प्रदीयते ।।२३

यदि ऋण लेने वाला लिखना न जानता हो तो उसे अपना मत (किसी दूसरे से) लिखवा देना चाहिये । (ऋणी अथवा साक्षी के लिए) लिखने वाले को (लेख के) अन्त में यह लिख देना चाहिये कि (उत्तमर्ण और अधमर्ण) दोनों की प्रार्थना से अमुक का पुत्र अमुक नाम वाले मैंने इसे लिखा है । साक्षियों के बिना भी वह लेख प्रमाण माना जायेगा जो अपने हाथ से लिखा गया हो किन्तु जिसमें बल तथा छल आदि का प्रयोग न किया गया हो । लेख के आधार पर लिया गया ऋण भी (ऋणी की) तीन पीढ़ियों के द्वारा ही देय हुआ करता है किन्तु जब तक ऋण समाप्त नहीं हो जाता है तब तक (उत्तमर्ण के द्वारा) आधि का भोग किया जाता है ।२०-२३।

देशान्तरस्थे दुर्लेख्ये नष्टोन्मृष्टे हृते तथा ।
भिन्ने छिन्ने तथा दग्धे लेख्यमन्यत्तु कारयेत् ।।२४
संदिग्धार्थविशुद्ध्यर्थं स्वहस्तलिखितं तु यत् ।
युक्तिप्राप्तिक्रियाचिह्नसंबन्धागमहेतुभिः ।।२५
लेख्यस्य पृष्ठेऽभिलिखेत्प्रविष्टमधमर्णिनः ।
धनी चोपगतं दद्यात्स्वहस्तपरिचिह्नितम् ।।२६
दत्त्वर्णं पाटयेल्लेख्यं शुद्ध्यै चान्यत्तु कारयेत् ।
साक्षिमच्च भवेद्यत्तु तद्दातव्यं ससाक्षिकम् ।।२७

यदि लेख कहीं दूसरे स्थान पर हो, अस्पष्ट हो, नष्ट हो गया हो, मिट गया हो, चोरी चला गया हो, छिन्न-भिन्न हो गया हो या जल गया हो तो उसके स्थान पर दूसरा लेख लिखवाना चाहिये । किसी लेख के सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न हो जाने पर युक्ति, प्राप्ति, क्रिया, चिह्न, सम्बन्ध और आगम के

---

१ क. ख. ङ. लेखितार्थागततो । छ. लेखकोऽर्थास्ततो । २ क. नयेत् । ३ छ. ०लोपाधि० । ४ ख. ज्ञेयं ।

द्वारा सन्देह का निराकरण किया जा सकता है। जितने-जितन ऋण का भुगतान होता रहे उसका उल्लेख ऋणी के द्वारा लेख के पृष्ठ भाग पर होना चाहिये या उत्तमर्ण को ही उस (लेख) के पीछे अपने हाथ से प्राप्त धन का उल्लेख करते रहना चाहिये। ऋण चुका देने पर लेख को फाड़ देना चाहिये या प्रमाण के लिये (धनिक) से दूसरा लेख लिखवा लेना चाहिये साक्षियों के सम्मुख लिया गया ऋण साक्षियों के सम्मुख ही चुकाना चाहिये।२४-२७।

तुलाग्न्यापो विषं कोषो दिव्यानीह विशुद्धये।
महाभियोगेष्वेतानि शीर्षकस्थेऽभियोक्तरि ॥२८
रुच्या वाऽन्यतरः कुर्यादपरो वर्तयेच्छिरः।
विनाऽपि शीर्षकात्कुर्यान्नृपद्रोहेऽथ पातके ॥२९
नाऽऽसहस्राद्धरेत्फालं न तुलां न विषं तथा।
नृपार्थेष्वभियोगेषु वहेयुः शुचयः सदा ॥३०
सहस्रार्थे तुलादीनि कोषमल्पेऽपि दापयेत्।
शतार्धं दापयेच्छुद्धमशुद्धो दण्डभाग्भवेत् ॥३१

(किसी अभियोग की) परिशुद्धि के लिये जो दिव्य प्रमाण माने गये हैं, वे हैं—तुला, अग्नि, जल, विष और कोष। किन्तु इनका प्रयोग तभी होता है जब कोई गम्भीर अभियोग हो, और अभियोक्ता चोटी पर (अर्थात् चतुर्थ पाद में पहुँच गया हो) (वादी और प्रतिवादी में) कोई एक अपनी इच्छा से दिव्य प्रमाण का प्रयोग कर सकता है और दूसरे को इसका परिणाम स्वीकार करना होगा। राजद्रोह तथा (अन्य) पातक में (वादी और प्रतिवादी में) एक के स्वीकार न करने पर भी दूसरा इसका प्रयोग कर सकता है। एक हजार (पण) से कम के अभियोग में हल, तुला तथा विष के दिव्य प्रमाणों को स्वीकार नहीं करना चाहिये। किन्तु राजा से सम्बद्ध अभियोगों में सदैव पवित्र होकर दिव्य प्रमाणों का प्रयोग करना चाहिये। एक सहस्र (पण) के लिये तुला इत्यादि का तथा उससे कम में अर्थात् पचास (पण) तक कोष के प्रमाण का प्रयोग करना चाहिये। इन प्रमाणों की अशुद्धता पर इनका प्रयोग करने वाला दण्ड का भागी होता है।२८-३१।

सचेलस्नातमाहूय सूर्योदय उपोषितम्।
कारयेत्सर्वदिव्यानि नृपब्राह्मणसन्निधौ ॥३२

तुलास्त्रीबालवृद्धान्धपङ्गुब्राह्मणरोगिणाम् ।
अग्निर्जलं वा शूद्रस्य यवाः सप्तविषस्य वा[1] ॥३३
तुलाधारणविद्वद्भिरभियुक्तस्तुलाश्रितः[2] ।
प्रतिमानसमीभूतो रेखां[3] कृत्वाऽवतारितः[4] ॥३४
आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च,
द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च ।
अहश्च रात्रिश्च उभे च संध्ये,
[5]धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम् ॥३५

वस्त्रों से युक्त, स्नान किये हुए तथा उपवास करने वाले व्यक्ति को सूर्योदय के समय बुलाकर राजा तथा ब्राह्मण के सामने ही सभी दिव्य प्रमाणों का प्रयोग करवाना चाहिये । स्त्री, बालक, वृद्ध, अन्धे, लंगड़े, ब्राह्मण तथा रोगी के लिए तुला का, क्षत्रिय के लिये अग्नि का, वैश्य के लिये जल का तथा शूद्र के लिये सात सौ की तौल के विष का दिव्य प्रमाण होता है । तुला धारण में कुशल व्यक्तियों के द्वारा अभियुक्त को तुला पर बिठलाकर, समान भार से उसे तौलकर, वही पर एक रेखा बनाकर उसे तुला से उतार लिया जाता है । सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, द्युलोक, भूमि, जल, हृदय, यम, दिन, रात्रि, दोनों सन्ध्यायें और धर्म—ये सब मनुष्य के चरित्र को जानते हैं ।३२-३५।

त्वं तुले सत्यधामाऽसि पुरा देवैर्विनिर्मिता ।
सत्यं वदस्व कल्याणि संशयान्मा विमोचय ॥३६
यद्यस्मि पापकृन्मातस्ततो मां त्वमधो नय ।
शुद्धश्चेद्गमयोर्ध्वं मां तुलामित्यभिमन्त्रयेत् ॥३७
करौ विमृदितव्रीहेर्लक्षयित्वा ततो न्यसेत् ।
सप्ताश्वत्थस्य पत्राणि तावत्सूत्रेण वेष्टयेत् ॥३८

तदनन्तर तुला को इस प्रकार अभिमन्त्रित करना चाहिये—'अयि तुले ! देवताओं ने प्राचीन काल में तुम्हारा निर्माण किया था, तुम सत्य के निवासस्थान हो । अयि कल्याणि ! सत्य बोलो और मुझे संशय से छुड़ाओ । अयि

---

१ क. च. । २ च. °लास्थितः । ३ क. ङ. लीला° । ख. ग. लेखं । ४ च. °त्वा विभावितः । ५ क. धर्मो हि जा° ।

मातः ! यदि मैं पापकर्म करने वाला हूँ तो तुम मुझे नीचे ले जाओ किन्तु यदि मैं शुद्ध हूँ तो तुम मुझे ऊपर ले चलो। जिस व्यक्ति ने अपने हाथों से धान्यों को मला हो उसके हाथों को चिह्नित करके उनमें पीपल के सात पत्तों को रखकर उतने ही धागों से तुम्हें लपेट देना चाहिये।३६-३८।

त्वमेव सर्वभूतानामन्तश्चरसि पावक।
साक्षिवत्पुण्यपापेभ्यो ब्रूहि सत्यं करे मम ॥३९
तस्येत्युक्तवतो लोहं पञ्चाशत्पलिकं [1]समम्।
अग्निवर्णं न्यसेत्पिण्डं हस्तयोरुभयोरपि ॥४०
स तमादाय सप्तैव मण्डलानि शनैर्व्रजेत्।
षोडशाङ्गुलकं ज्ञेयं मण्डलं तावदन्तरम् ॥४१
मुक्त्वाऽग्निं मृदितव्रीहिरदग्धः शुद्धिमाप्नुयात्।
अन्तरा पतिते पिण्डे संदेहे वा पुनर्हरेत् ॥४२

अये पावक ! आप सभी प्राणियों के अन्तःकरण में विचरण किया करते हैं, इसलिये मेरे हाथ में रहकर साक्षी के समान मेरे पाप-पुण्यों को बतला दीजिये—इस प्रकार अग्नि को अभिमन्त्रित करके दोनों हाथों में पचास, पलिक भार के तथा अग्नि के समान लाल लोहे के गोले को रख लेना चाहिये। दिव्य प्रमाण के प्रयोग करने वाले को इस गोले को लेकर धीरे-धीरे सात मण्डल तक जाना चाहिये। प्रत्येक मण्डल सोलह अंगुल (व्यास) का होता है तथा दो मण्डलों के वीच में उतना ही (सोलह अंगुल) का अन्तर रहता है। तदनन्तर अग्नि को छोड़कर (हाथों से) धान्य मलकर यदि वह व्यक्ति जलता नहीं है तो वह (ऋण आदि से) शुद्धि प्राप्ति कर लेता है। यदि लोहे का गोला बीच में ही गिर जाये या कुछ सन्देह उत्पन्न हो जाये तो उसे (लौह पिण्ड को) फिर से (हाथ में रखकर) ले जाना पड़ता है।३९-४२।

पवित्राणां पवित्र त्वं शोध्यं शोधय पावन।
सत्येन माऽभिरक्षस्व [2]वरुणेत्यभिशस्तकम् ॥४३
नाभिदघ्नोदकस्थस्य [3]गृहीत्वोरू जलं विशेत्।
समकालमिषुं मुक्तमानीयाद्यो [4]जवान्नरः ॥४४
यदि तस्मिन्निमग्नाङ्गं पश्येच्चेच्छुद्धिमाप्नुयात्।
त्वं विष ब्रह्मणः पुत्र सत्यधर्मे व्यवस्थितम् ॥४५

---

१ क. तथा। २ ख. ग. °भिजाप्यक°। ३ क. ख. ग. °त्वोरुज°। ४ क. ङ. च. छ. जवीनरः।

अये पावन ! आप पवित्रों में पवित्र हैं, मैं के शुद्धि योग्य हूँ, अतः आप मुझे शुद्ध कर दीजिये। अये वरुण ! आप सत्य से मेरी रक्षा कीजिये—इस प्रकार जिस जल को अभिमंत्रित किया जा चुका है उस जल में प्रवेश करना चाहिये तथा वहाँ पर नाभि तक गहरे जल में खड़े हुए व्यक्ति की दोनों जङ्घाओं को पकड़ लेना चाहिये। जो व्यक्ति उसी समय छोड़े गये को वेग से जाकर ले आता है और दिव्य प्रमाण का प्रयोग करने वाला जल में निमग्न होते हुए ही उसे देख लेता है तो वह (ऋण आदि से) शुद्धि प्राप्ति कर लेता है। अये विष ! आप ब्रह्म के पुत्र हैं तथा सत्य और धर्म में व्यवस्थित हैं।४३-४५।

त्रायस्वास्मादमीशापात्सत्येन भव मेऽमृतम् ।
एवमुक्त्वा विषं साङ्ग[1] भक्षयेद्धिमशैलजम् ॥४६
यस्य वेगैर्विना जीर्णं शुद्धिं तस्य विनिर्दिशेत् ।
देवानुग्रान्समभ्यर्च्य तत्स्नानोदकमाहरेत् ॥४७
[2]संश्राव्य पाययेत्तस्माज्जलात्तु प्रसृतित्रयम् ।
आ चतुर्दशमादह्नो[3] यस्य नो राजदैविकम् ॥४८
व्यसनं जायते घोरं स शुद्धः स्याद ([4]संशयम् ।
सत्यवाहनशस्त्राणि गोवीजकनकानि च ॥४९
देवतागुरुपादाश्च इष्टापूर्तकृतानि च ।
इत्येते सुकराः प्रोक्ताः शपथाः स्वल्प) संशये ॥५०

"आप इस अभियोग से हमारी रक्षा कीजिये। (मेरे) सत्य के कारण आप मेरे लिये अमृत बन जाइये।" ऐसा कहकर हिमालय पर उत्पन्नहोने वाले साङ्ग नामक विष का भक्षण कर लेना चाहिये। जो व्यक्ति बिना विष के फैलाव के उसे पचाले उसे (ऋण आदि से) शुद्ध समझना चाहिए। (दुर्गा और आदित्य आदि) उग्र देवताओं को पहले जल से स्नान करवाना चाहिये, तत्पश्चात् उस जल को अभिमन्त्रित करके उससे तीन अञ्जलि जल पीना चाहिए। यह जल पीने के चौदह दिनों तक जिसके ऊपर राजा अथवा देवताओं के द्वारा उत्पन्न विपत्ति नही आ पड़ती है तो उसे निश्चय ही (ऋण आदि से) शुद्ध माना जाता है। (किसी अपराध का) थोड़ा-सा संशय उत्पन्न होने पर उस संदिग्ध व्यक्ति

---

१ क. ङ. छ. शाङ्गं। २ क. संस्राव्य। ३ क. ङ. च. °शकाद°। ४ संशयम् ....स्वल्प च° पुस्तके नास्ति।

से शपथ लेकर सत्य कहलाना चाहिए अथवा अपनी शुद्धता को सिद्ध करने के लिए किसी सवारी वाले पशु, गाय, शस्त्र, बीज स्वर्ण, देवता तथा गुरु के चरण और (मन्दिर तथा तालाब आदि) इष्टापूर्तिकर्मों का स्पर्श करवाना चाहिये ।४६-५०।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दिव्यप्रमाणकथनं नाम पञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२५५

अथ षट्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

दायविभागकथनम्

अग्निरुवाच—

विभागं चेत्पिता कुर्यादिच्छया विभजेत्सुतान् ।
ज्येष्ठं वा श्रेष्ठभागेन सर्वे वा स्युः समांशिनः ॥१
यदि दद्यात्समानंशान्कार्याः पत्न्यः समांशिकाः ।
न दत्तं स्त्रीधनं यासां भर्त्रा वा श्वशुरेण वा ॥२
शक्तस्यानीहमानस्य किंचिद्दत्त्वा पृथक् क्रिया ।
न्यूनाधिकविभक्तानां धर्म्यश्च पितृतः कृतः[1] ॥३
विभजेयुः सुताः पित्रोरूर्ध्वमृक्थमृणं समम् ।
मातुर्दुहितरः शेषमृणात्ताभ्य ऋतेऽर्पयेत् ॥४

अग्निदेव बोले—यदि (सम्पत्ति) का विभाजन पिता करे तो वह अपनी इच्छा से पुत्रों का विभाजन कर सकता है। वह यदि चाहे तो ज्येष्ठ पुत्र को श्रेष्ठ भाग दे अथवा सबको समान अंश ही दे। यदि पुत्रों को समान अंश दिया जाय तो उन पत्नियों को भी समान भाग देना चाहिये, जिन्हें अपने पति अथवा श्वशुर को स्त्रीधन प्राप्त न हुआ हो। शक्तिशाली (धनोपार्जन में समर्थ) तथा (पितृधन की) इच्छा न रखने वाले पुत्र को थोड़ा बहुत देकर ही

---

१ क. ङ. च. स्मृतः।

विभाजन हो सकता है। पिता के द्वारा (पुत्रों को) दिया गया न्यूनाधिक अंश भी धर्मसमम्त हुआ करता है। पिता की मृत्यु के अनन्तर पुत्रों को उसकी सम्पत्ति तथा ऋण दोनों को समान रूप से विभाजित कर लेना चाहिये। माता की सम्पत्ति से ऋण को निकालकर शेष धन पुत्रियाँ प्राप्त कर लेती हैं और उनके अभाव में (पुत्रादि) को दे दिया जाता है।१-४।

पितृद्रव्यविनाशेन यदन्यत्स्वयमर्जयेत्।
मैत्रमौद्वाहिकं चैव दायादानां न तद्भवेत्॥५
सामान्यार्थसमुत्थाने विभागस्तु समः स्मृतः।
अनेकपितृकार्याणां[1] पितृतोभागकल्पना॥६
भूर्या पितामहोपात्ता निबन्धो द्रव्यमेव वा।
तत्र स्यात्सदृशं स्वाम्यं पितुः पुत्रस्य चोभयोः॥७
विभक्तेषु सुतो जातः सवर्णायां विभागभाक्।
दृश्याद्वा तद्विभागः स्यादायव्ययविशोधितात्॥८
क्रमादभ्यागतं द्रव्यं हृतमभ्युद्धरेच्च[2] यः।
दायादेभ्यो न तद्दद्याद्विद्यया लब्धमेव च॥९

पितृधन के व्यय किये बिना ही जो धन स्वयं उपार्जित किया जाता है, मित्रों से प्राप्त होता है या विवाह में प्राप्त होता है उसमें दायादों का भाग नहीं होता है। जो धन सामान्य धन की लागत से अर्जित किया जाता है उसमें सबका समान अंश होता है। अनेक पिताओं की सन्तान में (उन) पिताओं (की सम्पत्ति) के अनुसार ही सम्पत्ति का विभाजन होता है। पितामह से प्राप्त भूमि निबन्ध और (सोना, चाँदी आदि) द्रव्य में पिता और पुत्र दोनों का समान अधिकार होता है। पुत्रों में विभाजन हो जाने के बाद सवर्णपत्नी से उत्पन्न होने वाला पुत्र भी विभाग का अधिकारी होता है। यह विभाग उसी धन से होता है जो आय-व्यय की शुद्धि के अनन्तर शेष रह जाता है। परम्परा से प्राप्त किन्तु (अन्य लोगों के द्वारा) अपहृत जो धन किसी पुत्र के द्वारा पुनः प्राप्त कर लिया जाता है तथा जो धन उसे अपनी विद्या के कारण प्राप्त होता है, उसे दायादों को नहीं देना होता है।५-९।

---

१ ख. ग. छ. 'काणां तु पि° । २ क. ङ. °रेत्तु यः।

पितृभ्यां यस्य यद्दत्तं तत्तस्यैव धनं भवेत् ।
पितुरूर्ध्वं विभजतां माताऽप्यंशं समं हरेत् ॥१०
असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः ।
[1]भगिन्यश्च निजादंशाद्दत्वांऽशं तु तुरीयकं ॥११
चतुस्त्रिद्व्येकभागाः स्युर्वर्णशो ब्राह्मणात्मजाः ।
क्षत्रजास्त्रिद्व्येकभागा विड्जास्तु द्व्येकभागिनः ॥१२
[2]अन्योन्यापहृतं द्रव्यं विभक्ते यत्तु दृश्यते ।
तत्पुनस्ते समैरंशैर्विभजेरन्निति स्थितिः ॥१३

माता-पिता के द्वारा जो धन जिसे दे दिया जाता है, वह धन उसी का होता है, किन्तु पिता के मृत्यु के बाद विभाजन होने पर माता भी समान अंश प्राप्त कर लेती है। (पिता के जीवनकाल में) जिन पुत्रों का (यज्ञोपवीत आदि) संस्कार नही हो सका हो उनका संस्कार उन पुत्रों के द्वारा किया जाना चाहिए, जिसका संस्कार हो चुका हो। बहनों (के विवाह आदि) का संस्कार भाइयों को अपना-अपना चतुर्थांश देकर करना चाहिये। ब्राह्मणों (ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि स्त्रियों) से उत्पन्न (ब्राह्मण आदि) पुत्र अपने-अपने वर्ण के अनुसार क्रमशः चार, तीन, दो, एक भाग प्राप्त करते हैं। उसी प्रकार क्षत्रिय के पुत्र वर्ण के अनुसार क्रमशः तीन, दो और एक भाग प्राप्त करते हैं तथा वैश्य के पुत्र वर्णक्रम से दो और एक भाग के अधिकारी होते हैं। विभाजन के समय किसी पुत्र के द्वारा जो धन चुरा लिया गया हो, किन्तु बाद में जिसका पता चल गया हो वह धन भी सभी पुत्रो में समान रूप से विभाजित कर दिया जाता है—यह नियम है।१०-१३।

अपुत्रेण परक्षेत्रे नियोगोत्पादितः सुतः ।
उभयोरप्यसावृक्थी पिण्डदाता च धर्मतः ॥१४
औरसो धर्मपत्नीजस्तत्समः पुत्रिकासुतः ।
क्षेत्रजः क्षेत्रजातस्तु सगोत्रेणेतरेण वा ॥१५
गृहे प्रच्छन्न उत्पन्नो गूढजस्तु सुतः स्मृतः ।
कानीनः कन्यकाजातो मातामहसुतो[3] मतः ॥१६
अक्षतायां क्षतायां वा जातः पौनर्भवः सुतः ।
दद्यान्माता पिता वा[4] यं स पुत्रो दत्तको भवेत् ॥१७

---

१ क. ङ. गिन्याश्च। २ ख. ग °पकृतं। ३ ख. यतः। ४ क. ङ. वाऽपि स।

पुत्रहीन व्यक्ति के द्वारा नियोग (प्रथा) से अन्य की स्त्री में उत्पन्न पुत्र दोनों (व्यक्तियों) की सम्पत्ति का अधिकारी होता है तथा दोनों को पिण्डदान भी कर सकता है। धर्मपत्नी से जो पुत्र उत्पन्न होता है उसे औरस पुत्र कहते हैं। कन्या का पुत्र (दौहित्र) भी उसी (औरस) के तुल्य है। सगोत्री या पर-गोत्री द्वारा दूसरे की स्त्री में जो पुत्र उत्पन्न होता है, 'क्षेत्रज' कहते हैं उसे घर में प्रच्छन्न रूप से उत्पन्न होने वाला पुत्र 'गूढज' कहलाता है। अक्षतयोनि (अविवाहिता) कन्या से उत्पन्न होने वाले पुत्र को कानीन कहते हैं। वह अपने मातामह का पुत्र माना जाता है। क्षतयोनि (विवाहिता) कन्या से उत्पन्न होने वाले पुत्र को पौनर्भव कहते हैं। माता-पिता के द्वारा किसी दूसरे को दे दिया गया पुत्र दत्तक कहलाता है।१४-१७।

क्रीतश्च ताभ्यां विक्रीतः कृत्रिमः स्यात्स्वयं कृतः।
दत्तात्मा तु स्वयं दत्तो [1]गर्भे विन्नः सहोढजः ॥१८
उत्सृष्टो गृह्यते यस्तु सोऽपविद्धो भवेत्सुतः।
पिण्डदोंऽशहरश्चैषां पूर्वाभावे परः परः ॥१९
सजातीयेष्वयं प्रोक्तस्तनयेषु मया विधिः।
जातोऽपि दास्यां शूद्रस्य कामतोंऽशहरो भवेत् ॥२०

माता-पिता के द्वारा खरीदा हुआ पुत्र विक्रीत कहलाता है। स्वयं (किसी प्रकार से) प्राप्त पुत्र कृत्रिम कहलाता है। जो पुत्र स्वयं अपने आपको दे देता है वह 'स्वयं दत्त' होता है। अज्ञातगर्भा स्त्री से विवाह करने के उपरान्त उसके गर्भ से उत्पन्न होने वाला पुत्र सहोढज कहलाता है, अपने माता-पिता के द्वारा परित्यक्त होकर जो पुत्र किसी अन्य के द्वारा पुत्ररूप में स्वीकार कर लिया जाता है, उसे 'अपविद्ध' कहते हैं। इन पुत्रों में पूर्व के अभाव में ही उसके बाद में आनेवाला पिण्डदान करने तथा सम्पत्ति का अधिकारी होता है। यह विधान सजातीय पुत्रों के सम्बन्ध में ही कहा गया है। किसी दासी से उत्पन्न होने वाला शूद्र का पुत्र भी उसकी इच्छानुसार (सम्पत्ति में) भाग का अधिकारी होता है।१८-२०।

मृते पितरि कुर्युस्तं भ्रातरस्त्वर्धभागिकम्।
अभ्रातृको हरेत्सर्वं दुहितॄणां सुतादृते ॥२१

---

१ छ. वित्तः।

पत्नीदुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा ।
तत्सुतो गोत्रजो बन्धुः शिष्यः सब्रह्मचारिणः ॥२२
एषामभावे [1]पूर्वः स्याद्धनभागुत्तरोत्तरः ।
स्वर्यातस्य ह्यपुत्रस्य सर्ववर्णेष्वयं विधिः ॥२३

पिता के मर जाने पर सब भाइयों को दासी पुत्र को भी अपने अंश का आधा भाग देना चाहिए। जिस दासी पुत्र का कोई भाई न हो तथा उसके पिता का दौहित्र भी न हो वह अपने पिता के सम्पूर्ण धन का अधिकारी होता है। सभी वर्णों में पुत्रहीन मृत्यु को प्राप्त होने वाले पिता की सम्पत्ति के विभाजन का क्रम यह है—पत्नी, पुत्रियाँ, माता-पिता, भाई, भतीजा, सगोत्रज, बन्धु, शिष्य और सतीर्थ्य। इसमें पहले के अभाव में ही दूसरा धन का अधिकारी होता है सभी वर्णों में पुत्रहीन के मरने पर यही विधान है। ।२१-२३।

वानप्रस्थयतिब्रह्मचारिणामृक्थाभगिनः ।
क्रमेणाऽऽचार्यसच्छिष्यधर्मभ्रात्रेकतीर्थिनः ॥२४
संसृष्टिनस्तु संसृष्टी सोदरस्य तु सोदरः ।
दद्याच्चापहरेच्चांशं जातस्य च मृतस्य च ॥२५
अन्योदर्यस्तु संसृष्टी नान्योदर्यधनं हरेत् ।
असंसृष्ट्यपि चाऽऽदद्यात्सोदर्यो नान्यमातृजः ॥२६
पतितस्तत्सुनः क्लीबः पङ्गुरुन्मत्तको जडः ।
अन्धोऽचिकित्स्यरोगाद्या भर्तव्यास्तु निरंशकाः ॥२७
औरसाः क्षेत्रजास्त्वेषां निर्दोषा भागहारिणः ।
सुताश्चैषां प्रभर्तव्या यावद्वै भर्तृसात्कृताः ॥२८
अपुत्रा योषितश्चैषां भर्तव्या साधुवृत्तयः ।
निर्वास्या व्यभिचारिण्यः प्रतिकूलास्तथैव च ॥२९
पितृमातृपतिभ्रातृदत्तमध्यग्न्युपागतम् ।
आधिवेदनिकं चैव स्त्रीधनं परिकीर्तितम् ॥३०

वानप्रस्थ, संन्यासी तथा ब्रह्मचारी की सम्पत्ति के अधिकारी क्रमशः आचार्य, सत्शिष्य, धर्मभ्राता और सहपाठी होते हैं। संसृष्टी (दायादी बँटवारा हो जाने के वाद मित्रतावश पुनः अपने-अपने धन में परस्पर सम्पर्क स्थापित करने वाले भाई) का उत्तराधिकारी संसृष्टी और सहोदर भाई का उत्तराधिकारी सहोदर होता है। इसी प्रकार (विभाजन के वाद उत्पन्न होने वाले)

---

१ क. ङ. छ. पूर्वस्य धनं ।

संसृष्टी या सहोदर को अपना अंश देना पड़ता है। असहोदर संसृष्टी असहोदर संसृष्टी के धन का अधिकारी नहीं हो सकता है। सोदर यदि असंसृष्टी भी हो तो भी सम्पत्ति पाने का अधिकारी होता है किन्तु अन्य माता से उत्पन्न होने वाली असंसृष्टी सम्पत्ति का अधिकारी नहीं होता है। पतित, उसका पुत्र, नपुंसक, पशु, उन्मत्त, जड़, अन्ध, असाध्य रोगी ऐसे व्यक्ति दाय के अधिकारी तो नहीं होते हैं, किन्तु उन्हें भरण-पोषण का अधिकार होता है। इन (पतित आदि) के औरस तथा क्षेत्रज पुत्रों में यदि (उपर्युक्त) दोष न हों तो वे भी दाय के अधिकारी होते हैं और उनकी पुत्रियों का तब तक भरण-पोषण करना चाहिए जब तक उनका विवाह न हो जाय। ऐसे (सम्पत्ति के अधिकारी व्यक्तियों) की पुत्रहीन और साध्वी पत्नियाँ भरण-पोषण की अधिकारिणी होती हैं। किन्तु जो पत्नियाँ व्यभिचारिणी तथा (अपने पतियों के) प्रतिकूल हों उन्हें निष्कासित कर देना चाहिए। पिता, पति तथा भाई के द्वारा दिया गया, विवाह के समय प्राप्त या दूसरी स्त्री के साथ पति का विवाह होने पर जो प्राप्त होता है, उसे स्त्रीधन कहते हैं।२४-३०।

बन्धुदत्तं तथा शुल्कमन्वाधेयकमेव च।
अप्रजायामतीतायां बान्धवास्तदवाप्नुयुः ॥३१
अप्रजा (ज) स्त्रीधनं [1]भर्तुर्ब्राह्मयादिषु चतुर्ष्वपि।
दुहितृणां प्रसूता चेच्छेषेषु पितृगामि तत् ॥३२
दत्त्वा कन्यां हरन्दण्ड्यो व्ययं दद्याच्च सोदयम्।
मृतायां दत्तमादद्यात्परिशोध्योभयव्ययम् ॥३३

वन्धुओं के द्वारा दिया गया तथा विवाह के समय शुल्क रूप में प्राप्त स्त्रीधन उस समय उस (स्त्री) के बान्धवों को प्राप्त हो जाता है यदि स्त्री सन्तान रहित ही मृत्यु को प्राप्त हो जाती है। ब्राह्म आदि चार विवाहों से विवाहित तथा सन्तान रहित मरने वाली स्त्री का धन उसके पति को प्राप्त होता है। यदि वह पुत्रीवती हो तो उसका धन पुत्रियों को प्राप्त होगा, किन्तु अन्य प्रकार के विवाहों से विवाहित स्त्री का धन (उसके सन्तान रहित मर जाने पर) उसके माता-पिता को प्राप्त हो जाता है। कन्या को देकर उसे पुनः वापस लेने वाला दण्ड का भागी तो होता ही है, उसे व्याज सहित सम्पूर्ण व्यय किया हुआ धन भी देना पड़ता है। यदि (सगाई हो जाने के बाद) कन्या की

---

१ क. 'र्तुब्रह्मादि°। ख. ग. 'तुर्ब्राह्मादि°।

मृत्यु हो जाये तो दोनों ओर के व्यय किये हुए धन को काटकर शेष धन (जो कि कन्या की सगाई के समय दिया गया हो) वापस ले लेना चाहिए।३१-३३।

दुर्भिक्षे धर्मकार्ये च व्याधौ संप्रतिरोधके।
गृहीतं स्त्रीधनं भर्ता न स्त्रियै दातुमर्हति ॥३४
अधिवित्तस्त्रियै दद्यादाधिवेदनिकं समम्।
न दत्तं स्त्रीधनं यस्यै दत्ते त्वर्धं प्रकीर्तितम् ॥३५
विभागनिह्नवे ज्ञातिबन्धुसाक्ष्यभिलेखितैः।
विभागभावना ज्ञेया गृहक्षेत्रैश्च यौतकैः ॥३६

दुर्भिक्ष में, धर्मकृत्य में, व्याधि में और बन्धन में पड़ जाने पर लिया गया स्त्रीधन पति के द्वारा स्त्री को वापस नही करना पड़ता है। पति के द्वारा दूसरी स्त्री से विवाह कर लेने से जो स्त्री अपदस्थ हो जाती है और जिसे स्त्रीधन प्राप्त नही होता है, उसे (दूसरी स्त्री से विवाह करने में व्यय किये गये धन के) समान धन देना चाहिए। यदि उसे स्त्रीधन मिल चुका हो तो (दूसरी स्त्री से विवाह करने मे व्यय किये गये धन का) आधा धन देना चाहिए। किसी के द्वारा विभाजन छिपाने पर जान-पहचान वाले मनुष्यों, बन्धुओं, लेखों तथा विभाजित किये हुए घरों और खेतों से विभाजन को प्रमाणित किया जा सकता है।३४-३६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दायविभागकथनं नाम षट्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।२५६

अथ सप्तपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

सीमाविवादादिनिर्णयः

अग्निरुवाच—

सीम्नो विवादे क्षेत्रस्य सामन्ताः [1]स्थविरादयः।
गोपाः सीमाकर्षिणो ये सर्वे च वनगोचराः[2] ॥१

---

१ ख. ग. छ. °रा गणाः। गो°। २. छ. °राः। नयेयु°।

प्रणेयुरेते सीमानं[1] स्थूलाङ्गारतुषद्रुमैः।
सेतुवल्मीकनिम्नास्थिचैत्याद्यैरुपलक्षिताम् ॥२
सामन्ता वा समग्रामाश्चत्वारोऽष्टादशापि वा।
रक्तस्रग्वसनाः समां नयेयुः क्षितिचारिणः[2] ॥३
अनृते तु पृथग्दण्ड्या राज्ञा मध्यमसाहसम्।
अभावे ज्ञातृचिह्नानां राजा सीम्नः प्रवर्तकः ॥४

अग्निदेव बोले—खेत की सीमा के लिए विवाद उठ खड़ा होने पर सामन्तगण, वृद्ध गोप और बनेचर मोटे-मोटे कोयले, भूसा, वृक्ष, सेतु (पुल), वल्मीक, ढाल प्रदेश, हड्डी तथा पत्थरों के ढेर आदि से सीमा का निर्णय करें। चार या आठ या दस सामन्त या गाँव के लोग रक्त, वस्त्र और माला पहनकर सीमा का निर्णय करने के लिए पैदल ही वहाँ जाँय। उस विवाद में मिथ्या झूठ बोलने वाला राजा पैदल ही वहाँ जाय। उस विवाद में मिथ्या झूठ बोलने वाला राजा द्वारा मध्यम साहस के दण्ड का भागी होता है। यदि वहाँ कोई (सीमानिर्धारण के लिए) चिह्न न दिखाई दे तो राजा को अपनी इच्छानुसार सीमा का निर्धारण कर देना चाहिए।१-४।

आरामायतनग्रामनिपानोद्यानवेश्मसु।
एष एव विधिर्ज्ञेयो वर्षाम्बुप्रवहेषु च ॥५
मर्यादायाः प्रभे (वा) देषु क्षेत्रस्य हरणे तथा।
मर्यादायाश्च दण्ड्याः स्युरधमोत्तममध्यमाः ॥६
न निषेध्योऽल्पवाधस्तु सेतुः कल्याणकारकः।
परभूमिं हरन्कूपः स्वल्पक्षेत्रो बहूदकः ॥७
स्वामिने योऽनिवेद्यैव क्षेत्रे सेतुं प्रकल्पयेत्।
([3]उत्पन्ने स्वामिनो भोगस्तदभावे महीपतेः[4] ॥८
फालाहतमपि क्षेत्रं योन कुर्यान्न कारयेत्।
स प्रदाप्योऽकृष्टफलं क्षेत्रमन्येन कारयेत्) ॥९

---

१ क. ङ. छ. नं स्थला°। २ ख. ग. छ. °तिघारि°। ३ उत्पन्ने..........° कारयेत् च. पुस्तके नास्ति। ४ क. ख. ङ. °तेः। फला°।

उपवन, देवालय, गाँव, प्याऊ, उद्यान, गृह तथा वर्षा-जल प्रवाह आदि के सम्बन्ध में भी यही विधान है। सीमा को भंग करने पर, खेत का अपहरण करने पर तथा मर्यादा का अपहरण करने पर क्रमशः उत्तम, मध्यम तथा अधम साहस के दण्ड का अधिकारी होता है। (किसी व्यक्ति के लिये) थोड़ी सी बाधा उत्पन्न करके (बहुतों के लिए) कल्याणकारी सेतु (के निर्माण का) निषेध नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार (भूमि को ग्रहण करने वाले कुएँ के निर्माण को भी नही रोकना चाहिये क्योंकि) वह थोड़ा-सा स्थान लेकर अत्यधिक जल देने वाला होता है। क्षेत्र स्वामी की अनुमति प्राप्त किये बिना (किसी दूसरे के) खेत में बाँध बाँधने पर उस बाँध की सहायता से उत्पन्न होने वाले लाभ पर (क्षेत्र) स्वामी का अधिकार होता है और उसके अभाव में उसका लाभ राजा को प्राप्त होता है। जो व्यक्ति हल चले हुए खेत में भी न स्वयं खेती करता है और न दूसरे से ही करवाता है, उससे खेत की उपज ही नही अपितु पूरा खेत ही जोतने वाले को दिलवा देना चाहिये।५-९।

[1]माषानष्टौ तु महिषी सस्यघातस्य कारिणी।
दण्डनीया तदर्धं तु गौस्तदर्धमजाविकम्॥१०
भक्षयित्वोपविष्टानां[2] द्विगुणो वसतां दमः।
सममेषां[3] विधीयेत खरोष्ट्रं महीषीसमम्॥११
[4]यावत्सस्यं विनष्टं तु तावत्क्षेत्री फलं लभेत्।
पालस्ताड्योऽथ गोस्वामी पूर्वोक्तं दण्डमर्हति॥१२
पथि ग्रामविवीतान्तेक्षेत्रे दोषो न विद्यते।
अकामतः कामचारे चौरवद्दण्डमर्हति॥१३

दूसरे की खेती को नष्ट करने वाली भैंस के स्वामी को आठ मास का दण्ड देना चाहिये, गाय के स्वामी को चार तथा भेड़-बकरे के स्वामी को दो मास का दण्ड देना चाहिये। खेत इत्यादि खाकर उसमें इन पशुओं के बैठ जाने पर (उसके स्वामी के ऊपर) दुगुना दण्ड किया जाता है। जहाँ पर घास तथा ईंधन संग्रह किया गया हो वहाँ पर भी (इन पशुओं के द्वारा हानि पहुँचाने पर दण्ड समान हुआ करता है। गधे और ऊँट के द्वारा (खेत आदि को क्षति पहुँचाने पर) दण्ड भैंस के समान ही देना चाहिये। इसके अतिरिक्त पशु के द्वारा

---

१ छ. माषान°। २ छ. नां यथोक्ताद्द्विगुणो द°। ३ छ. विवीतेऽपि ख°।
४ क. ङ. °वत्संख्यं वि°।

जितनी फसल नष्ट हो क्षेत्र स्वामी को उतना ही फल प्राप्त होना चाहिये, ग्वाले को पीटना चाहिए और गाय के स्वामी को उपर्युक्त दण्ड देना चाहिए। पशुओं के स्वामी की इच्छा के बिना यदि पशु मार्ग में, घास ईंधन के भांडार अथवा खेत में चले जायें तो वह दोषी नहीं होता है, किन्तु पशु स्वामी की इच्छा से ऐसा होने पर वह चोर के समान दण्ड का भागी होता है।१०-१३।

महोक्षोत्सृष्टपशवः सूतिकाऽऽगन्तुका च गौः।
पालो येषां तु ते मोच्या दैवराजपरिप्लुताः ॥१४
यथार्पितान् पशून्गोपः सायं प्रत्यर्पयेत्तथा।
प्रमादमृतनष्टांश्च प्रदाप्यः कृतवेतनः ॥१५
पालदोषविनाशे तु पाले दण्डो विधीयते।
अर्धत्रयोदशपणः स्वामिनो द्रव्यमेव च ॥१६
[1]ग्रामेच्छया गोपचारो भूमिराजवशेन वा।
द्विजस्तृणैधः पुष्पाणि [2]सर्वतः सर्वदाऽऽहरेत् ॥१७

साँड़ (देवता आदि के निमित्त) छोड़े हुए पशु, बच्चा देने वाली, अपने यूथ से भटक जाने वाली, रक्षकविहीन तथा दैव और राजा के द्वारा पीड़ित किये गये पशुओं को छोड़ देना चाहिए। प्रातःकाल जिस दशा में पशु ग्वाले को दिये गये हों उन्हें उसी दशा में (पशुस्वामी को) वापस कर देना चाहिये। सवेतन ग्वाले के प्रमाद से पशुओं के मर जाने या (अन्य प्रकार से) नष्ट हो जाने पर पशु-स्वामी को पशुओं का मूल्य दिलाना चाहिए। ग्लाले के (प्रमाद आदि) दोष से पशुओं के नष्ट होने पर ग्वाले के ऊपर साढ़े तेरह पणों का दण्ड लगता है और (पशुओं के) स्वामी को (पशुओं के मूल्य के बराबर) द्रव्य देना पड़ता है। गाँव (वालों की) इच्छा से या राजा की इच्छा से गो-चारण के लिए भूमि का निर्धारण कर देना चाहिए।१४-१७।

धनुःशतं परीणाहो ग्रामक्षेत्रान्तरं भवेत्।
द्वे शते खर्वटस्य स्यान्नगरस्य चतुःशतम् ॥१८
स्वं लभेतान्यविक्रीतं क्रेतुर्दोषोऽप्रकाशिते।
हीनाद्रहो हीनमूल्ये वेलाहीने च तस्करः ॥१९

---

१ ख. ग्रासेच्छ॰। २ छ. ॰तः स्ववदा॰।

नष्टापहृतमासाद्य [1]हर्तारं ग्राहयेन्नरम् ।
देशकालातिपत्तौ वा गृहीत्वा स्वयमर्पयेत् ॥२०

ग्राम और क्षेत्र के बीच में सौ धनुष् का अन्तर होना चाहिए, छोटे नगर और क्षेत्र के बीच दो सौ धनुष् का अन्तर होना चाहिए और नगर तथा क्षेत्र के बीच दो सौ धनुष् का अन्तर होना चाहिए और नगर तथा क्षेत्र के बीच में चार सौ धनुष् का अन्तर होना चाहिए। किसी अन्य के द्वारा (जो वास्तव में सम्पत्ति का स्वामी नहीं है) वेची हुई सम्पत्ति को (धन स्वामी) खरीदार से वापस ले सकता है, क्योंकि दोप उस खरीदार का होता है जो (ऐसी सम्पत्ति को) चुपचाप खरीद लेता है। दीन व्यक्ति से, चुपचाप वहुत कम मूल्य पर और कुसमय पर (किसी वस्तु को) खरीदने वाला चोर (समझा जाता) है। खोई अथवा चोरी गयी हुई वस्तु के खरीददार को चाहिए कि वह चुराने वाले को पकड़वा दे। यदि देश और काल की वाधा के कारण ऐसा सम्भव न हो तो खरीदार को चाहिये कि वह (चोर से खरीदे हुए) इस धन को स्वयं ले जाकर (वास्तविक) धन स्वामी को दे दे।१८-२०।

विक्रेतुर्दर्शनाच्छुद्धिः स्वामी द्रव्यं नृपो दमम् ।
क्रेता मूल्यं समाप्नोति तस्माद्यस्तत्र विक्रयी ॥२१
आगमेनोपभोगेन नष्टं भाव्यमतोऽन्यथा ।
पञ्चवन्धो दमस्तस्य राज्ञस्तेनाप्यभाविते ॥२२
हृतं प्रनष्टं यो द्रव्यं परहस्तादवाप्नुयात् ।
अनिवेद्य नृपे दण्ड्यः स तु षण्णवतिं पणान् ॥२३
शौल्विकैः स्थानपालैर्वा नष्टापहृतमाहृतम् ।
अर्वाक्संवत्सरात्स्वामी लभते परतो नृपः ॥२४

अनधिकृत रूप से वेचने वाले का पता लग जाने पर अपराध की शुद्धि तब हो जाती है जव वेचने वाले से (वास्तविक) धनस्वामी को उसका धन प्राप्त हो जाये, राजा को दण्ड का धन प्राप्त हो जाये और खरीदने वाले को (मूल्य रूप में दिया हुआ) उसका धन उपलब्ध हो जाए। खोयी हुई वस्तु के सम्बन्ध में (अधिकार को) उसके प्राप्ति-स्थान अथवा उपभोग के द्वारा सिद्ध करना चाहिये, अन्यथा उस वस्तु पर अधिकार सिद्ध करने वाले व्यक्ति को

---

१ क. ङ. कर्तारं ।

राजा को (उसके मूल्य का) पञ्चमांश दण्ड रूप में देना पड़ता है। राजा को सूचित किये बिना ही जो व्यक्ति खोई हुई अथवा चोरी गई वस्तु को ले लेता है वह छियानबे पण के दण्ड का भागी होता है। खोई हुई या चोरी गई जो वस्तु शुल्काधिकारियों अथवा स्थानरक्षकों को प्राप्त हो जाती है उसे एक वर्ष तक उसका स्वामी ले सकता है, किन्तु तदनन्तर उसे राजा ले लेता है।२१-२४।

पणानेकशफे दद्याच्चतुरः पञ्च मानुषे।
महिषोष्ट्रगवां द्वौ द्वौ पादं पादमजाविके ।।२५
स्वकुटुम्बाविरोधेन देयं दारसुतादृते।
नान्वये सति सर्वस्वं देयं यच्चान्यसंश्रुतम् ।।२६
प्रतिग्रहः प्रकाशः स्यात्स्थावरस्य विशेषतः।
देयं प्रतिश्रुतं चैव दत्त्वा नापहरेत्पुनः ।।२७

एक खुर वाले (अश्व आदि) के खोकर पुनः मिलने पर उसके स्वामी द्वारा (राजा को उसकी रक्षा के लिये) चार पण देने पड़ते हैं, मनुष्य के लिये पाँच, भैंस, ऊँट और गाय के लिये दो-दो तथा बकरे और भेंड़े के लिये चौथाई-चौथाई पण देना पड़ता है। किसी को उतना ही धन देना चाहिये, जिससे अपने कुटुम्ब (के हित) का विरोध न हो, किन्तु स्त्री-पुत्र का दान नहीं करना चाहिये। जो परिवारहीन हो वह सब कुछ दे सकता है, किन्तु किसी से प्रतिज्ञा किया हुआ धन अवश्य देना चाहिये। दी हुई वस्तु, विशेषतया स्थावर वस्तु को सबके सामने ही स्वीकार करना चाहिये, जिसे देने की प्रतिज्ञा की जाय उसे (अवश्य) देना चाहिये और देकर (पुनः उस वस्तु को) वापस नहीं लेना चाहिये।२५-२७।

दशैकपञ्चसप्ताहमासत्र्यहार्धमासिकम्।
बीजायोवाह्यरत्नस्त्री दोह्यपुंसां प्रतीक्षणम् ।।२८
अग्नौ सुवर्णमक्षीणं द्विपलं रजते शते।
अष्टौ त्रपुषि (णि) सीसे च ताम्रे पञ्चदशायसि ।।२९
शते दशपला वृद्धिरौर्णे कार्पासिके तथा।
मध्ये पञ्चपला ज्ञेया सूक्ष्मे[1] तु त्रिपला मता ।।३०

१ ख. सौम्ये।

कार्मिके रोमवद्धे च त्रिशद्भागः क्षयो मतः ।
न क्षयो न च वृद्धिस्तु कौशेये वल्कलेषु च ॥३१
देशं कालं च भोगं च ज्ञात्वा नष्टे वलावलम् ।
द्रव्याणां कुशला ब्रूयुर्यत्तद्दाप्यमसंशयम् ॥३२

बीज, धातु, सवारी, रत्न, स्त्री, दूध देने वाले पशु और मनुष्य (के खरीदते समय उन) के परीक्षण के लिए क्रमशः दश दिन, एक दिन, पाँच दिन, सात दिन, एक मास, तीन दिन और पन्द्रह दिन का समय रहता है। अग्नि में (डालने से) सोना नहीं घटता है, सौ पल चाँदी में दो पल घट जाते हैं, (सौ पल) टीन तथा सीसे में आठ पल, ताँबे में पाँच पल और लोहे में दश पल घट जाते हैं। (तागे से वस्त्र बनाने पर माँड़ आदि लगाने के कारण) ऊन तथा कपास के सौ पल भार के तागे में दश पल वृद्धि हो जाती है। मध्यम श्रेणी (के वस्त्र) में पञ्च पल तथा सूक्ष्म (वस्त्र) में तीन पल वृद्धि हो जाती है। कामदार (जड़ाऊ) तथा रोम से बने हुए वस्त्र में (कुल भार का) एक तिहाई भाग घट जाता है, किन्तु रेशमी तथा वल्कल वस्त्रों में न तो क्षय होता है और न वृद्धि। किसी वस्तु के नष्ट हो जाने पर देश, काल, भोग और बलाबल को ध्यान में रखते हुए उसके कुशल ज्ञाता जितने क्षय का निश्चय करते हैं उतना देना ही पड़ता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।२८-३२।

वलाद्दासीकृतश्चौरैर्विक्रीतश्चापि मुच्यते ।
स्वामिप्राणप्रदो [1]भक्तत्यागान्निष्क्रयणादपि ॥३३
प्रव्रज्यावसितो राज्ञो दास आमरणान्तिकः ।
वर्णानामानुलोम्येन दास्यं न प्रतिलोमतः ॥३४
कृतशिष्योऽपि[2] निवसेत्कृतकालं गुरोर्गृहे ।
अन्तेवासी गुरुप्राप्तभोजनस्तत्फलप्रदः ॥३५

जिसे वलपूर्वक दास वनाया गया हो, चोरों के द्वारा वेच दिया गया है या जिसने अपने स्वामी के प्राणों की रक्षा की हो वह (दासता में जाने से लेकर स्वामी के) उपयुक्त द्रव्य को चुका कर अथवा (स्वामी से लिये गये) धन को चुकाकर मुक्त कर दिया जाता है। संन्यास को छोड़कर राजा की दासता में आया हुआ व्यक्ति मरण-पर्यन्त राजा का दास बना रहता है। दासता वर्णों के

१ छ. 'गात्तन्निष्क्रयाद' । २ ख. गं. छ. शिल्पोऽपि ।

अनुलोम क्रम से होती है प्रतिलोमक्रम से नहीं। शिल्प (आदि कार्यों) में पारंगत हो जाने पर भी शिष्य को पूर्वनिर्धारित समय तक गुरु के घर में रहना चाहिए और अपने शिल्प आदि का फल अपने गुरु को देते रहना चाहिये ।३३-३५।

राजा कृत्वा पुरे स्थानं ब्राह्मणान्न्यस्य तत्र तु ।
त्रैविद्यं वृत्तिमद्ब्रूयात्स्वधर्मः पाल्यतामिति ।।३६
निजधर्माविरोधेन यस्तु सामयिको भवेत् ।
सोऽपि यत्नेन संरक्ष्यो धर्मो राजकृतश्च यः ।।३७
गणद्रव्यं हरेद्यस्तु संविदं लंघयेच्च यः ।
सर्वस्वहरणं कृत्वा तं राष्ट्राद्विप्रवासयेत् ।।३८
कर्तव्यं वचनं[1] सर्वैः समूहहितवादिनाम्[2] ।
यस्तत्र विपरीतः स्यात्स दाप्यः प्रथमं दमम् ।।३९

राजा को अपने नगर में (गृह आदि) स्थान बनाकर वहाँ ब्राह्मणों को बसा देना चाहिये। फिर उन्हें जीविका से सम्पन्न करके उनसे यह कहना चाहिये कि वे अपने धर्म का पालन करते रहें। अपने धर्म के अनुकूल रहते हुए उस धर्म का यत्नपूर्वक पालन करते रहना चाहिये जो सामयिक अथवा राजा के द्वारा निर्धारित किया गया हो। जो गण के द्रव्य का अपहरण करता है अथवा (राजा तथा समाज के साथ की गयी) सन्धि का उल्लंघन करता है, उसका सर्वस्व हरण करके उसे राष्ट्र से निष्कासित कर देना चाहिये। सब लोगों के हित की बात कहने वालों की बात का पालन सभी को करना चाहिये। जो उसके विपरीत कार्य करता है उसे प्रथम साहस का दण्ड दिया जाता है।३६-३९।

समूहकार्यप्रहितो यल्लभेत्तत्तदर्पयेत् ।
एकादशगुणं दाप्यो यद्यसौ नार्पयेत्स्वयम् ।।४०
([3]वेदज्ञाः शुचयोऽलुब्धाः भवेयुः कार्यचिन्तकाः ।
कर्तव्यं वचनं तेषां समूहहितवादिनाम् ।।) ४१
श्रेणिनैगमपाषण्डिगणानामप्ययं विधिः ।
भेदं चैषां नृपो रक्षेत्पूर्ववृत्तिं च पालयेत् ।।४२

१ ख. तेषां। २ ग. छ °दिभिः। य°। ३. वेदज्ञाः ...समूहहितवादिनाम् ङ पुस्तके नास्ति।

समूह के कार्य के लिये भेजे जाने पर (सेवक को) जो-जो वस्तु प्राप्त हो, उसे अपने स्वामी को दे देना चाहिये। जो स्वामी स्वयं इस प्रकार से प्राप्त वस्तु को नही दे देता है उससे वस्तु का ग्यारह गुना दिलाया जाता है। सामूहिक कार्यकर्ताओं को वेदज्ञ, पवित्र, लालच रहित तथा निर्धारित कार्य का (सतत) चिन्तन करने वाला होना चाहिये। ऐसे सार्वजनिक कार्यकर्ताओं की बात सबको माननी चाहिये। यही नियम श्रेणि, नैगम और पाषण्डियों के लिए भी होता है। राजा को उसके पृथक्-पृथक् भेदों को सुरक्षित रखना चाहिये तथा उनकी परम्परा से चली आने वाली वृत्ति की भी रक्षा करते रहना चाहिये।४०-४२।

गृहीतवेतनः कर्म त्यजन्द्विगुणमावहेत्।
अगृहीते समं दाप्यो भृत्यै रक्ष्य उपस्करः ॥४३
दाप्यस्तु दशमं भागं वाणिज्यपशुसस्यतः।
अनिश्चित्य भृतिं यस्तु कारयेत्स महीक्षिता ॥४४
देशं कालं च योऽतीयात्कर्म कुर्याच्च योऽन्यथा।
तत्र तु स्वामिनश्छन्दोऽधिकं देयं कृतेऽधिके ॥४५

किसी कार्य के लिये वेतन लेकर उस काम को छोड़ देने पर वेतन से दुगुना धन (दण्ड रूप में) देना पड़ता है। बिना वेतन लिये (किन्तु कार्य करना स्वीकार कर लेने पर) कार्य न करने पर वेतन के समान दण्ड दिया जाता है। नौकरों के द्वारा (साधनरूप में प्राप्त होने वाले) उपकरणों की रक्षा करनी चाहिये। जो व्यक्ति बिना पारिश्रमिक निश्चित किये हुए किसी से कुछ कर्म कराता है उसे राजा के द्वारा वाणिज्य, पशु अथवा धान्य का दसवाँ भाग (पारिश्रमिक के रूप में) दिलाना चाहिए। जो सेवक देश और काल का अतिक्रमण करता है तथा जो अन्यथा कार्य करता है (और इस प्रकार अपने स्वामी को हानि पहुँचाता है) उसे स्वामी अपनी इच्छानुसार पारिश्रमिक देता है (न कि पूर्व निर्धारित पारिश्रमिक)। किन्तु स्वामी का अधिक काम होने पर सेवक को अधिक पारिश्रमिक दिया जाना चाहिये।४३-४५।

यो यावत्कुरुते कर्म तावत्तस्य तु वेतनम्।
उभयोरप्यसाध्यं चेत्साध्ये कुर्याद्याथाश्रुतग् ४६॥

अराजदैविकं नष्टं भाण्डं दाप्यस्तु वाहकः ।
प्रस्थानविघ्नकृच्चैव प्रदाप्यो द्विगुणां भृतिम् ॥४७
प्रक्रान्ते सप्तमं भागं चतुर्थं पथि संत्यजन्।
भृतिमर्धपथे सर्वां प्रदाप्यस्त्याजकोऽपि च ॥४८
ग्लहे शतिकवृद्धेस्तु समिकः पञ्चकं शतम् ।
गृह्णीयाद्धूर्तकितवादितराद्दशकं शतम् ॥४९
स सम्यक्पालितो दद्याद्राज्ञे भागं यथाकृतम् ।
जितमुद्ग्राहयेज्जेत्रे दद्यात्सत्यं वचः क्षमी ॥५०

जो जितना काम करता है उसका उतना ही वेतन होता है। यदि कार्य सिद्ध न हो सके तो भी जितना कार्य हो चुका हो, उसे ध्यान में रखकर पूर्व निश्चयानुसार वेतन देना चाहिए। वह वाहक जिससे कोई बर्तन नष्ट हो जाये और जिसमें कि राजा अथवा देव का कोई हाथ न हो तो उससे वर्तन का मूल्य दिलवाना चाहिये। यदि कोई व्यक्ति प्रस्थान में विघ्न उत्पन्न करे तो उससे वेतन का दूना धन दिलाना चाहिये। द्यूत (आदि) में सौ गुनी वृद्धि होने पर (द्यूत) सभा के स्वामी को धूर्त जुआड़ी से पाँच प्रतिशत लेना चाहिए और अन्य से दश प्रतिशत। जुआ खेलने वाले की राजा के द्वारा रक्षा की जाती है इसलिये उसे राजा को उसका अंश देना चाहिये। उसे जीते हुए धन को विजेता से धन देकर निकाल देना चाहिये। और क्षमादान होने के कारण उसे सच बात कहनी चाहिये ।४६-५०।

प्राप्ते नृपतिना भागे प्रसिद्धे धूर्तमण्डले ।
जितं समभिके स्थाने दापयेदन्यथा न तु ॥५१
द्रष्टारो व्यवहाराणां साक्षिणश्च त एव हि ।
राज्ञा सचिह्ना निर्वास्याः कूटाक्षोपधिदेविनः ॥५२
द्यूतमेकमुखं कार्यं तस्करज्ञानकारणात् ।
एष एव विधिर्ज्ञेयः प्राणिद्यूते समाह्वये ॥५३

ऐसे सभामण्डप में जहाँ राजा को उसका अंश प्राप्त हो चुका हो, जो प्रसिद्ध हो तथा जो प्रसिद्ध स्थान में हो वहाँ (अनुचित ढंग से) जीता हुआ धन (हारने वालों को) दिला देना चाहिये अन्यथा नहीं। (द्यूत में उत्पन्न होने वाले विवादों में) निर्णायक तथा साक्षी वे (जुआड़ी) ही होते हैं। जाली पासे से जुआ खेलने वाले राजा के द्वारा चिह्नाङ्कित करके (राज्य से) बहिष्कृत कर

दिये जाने चाहिए। चोर (आदि) का पता लगाने के लिये द्यूत में एक ही प्रधान (निरीक्षक) होना चाहिये। प्राणवानों से खेले जाने वाले जुए के सम्बन्ध में भी यह नियम है।५१-५३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सीमाविवादादिनिर्णयकथनं नाम सप्तपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।२५७

अथाष्टपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वाक्पारुष्यादिप्रकरणम्

अग्निरुवाच—

सत्यासत्यान्यथास्तोत्रैर्न्यूनाङ्गेन्द्रियरोगिणाम्।
क्षेपं करोति चेद्दण्ड्यः पणानर्धत्रयोदश ॥१
अभिगन्तास्मि भगिनीं मातरं वा तवेति च।
शपन्तं दापयेद्राजा पञ्चविंशतिकं दमम् ॥२
अर्धोऽधमेषु द्विगुणः परस्त्रीषूत्तमेषु च।
दण्डप्रणयनं कार्यं वर्णजात्युत्तराधरैः ॥३

अग्निदेव बोले—जो व्यक्ति सत्य, असत्य अथवा व्याजस्तुतियों के द्वारा ऐसे व्यक्ति का तिरस्कार करता है जो विकलांग, विकलेन्द्रिय अथवा रोगी हो तो उसके ऊपर साढ़े तेरह पणों का दण्ड देना चाहिये। उस व्यक्ति से राजा को पच्चीस पणों का दण्ड दिलवाना चाहिये, जो किसी व्यक्ति से यह कहता है कि "मैं तुम्हारी माता अथवा बहन के साथ सहवास करूँगा"। जब यही अपराध अपने से अधम वर्णों के प्रति किया जाता है परस्त्री अथवा अपने से उच्च वर्णों के प्रति किया जाता है तब दण्ड की मात्रा द्विगुनी हो जाती है। (संक्षेपतः) दण्ड का निर्धारण वर्ण की उच्चता अथवा नीचता के आधार पर किया जाता है।१-३।

प्रातिलोम्यापवादेषु द्विगुणत्रिगुणा दमाः।
वर्णानामानुलोम्येन तस्मादेवार्धहानितः ॥४

बाहुग्रीवानेत्रसक्थिविनाशे[1] वाचिके दमः ।
शस्तस्ततोऽधिकः पादनासाकर्णकरादिषु ॥५
अशक्तस्तु वदन्नेवं दण्डनीयः पणान्दश ।
तथा शक्तः प्रतिभुवं दद्यात्क्षेमाय तस्य तु ॥६

अपने से उच्च जाति वाले को अपशब्द कहने पर दण्ड क्रमशः दुगुना और तिगुना होता है, किन्तु अपने से नीची जाति को अपशब्द कहने में दण्ड की मात्रा क्रमशः आधी-आधी होती जाती है । बाहु, ग्रीवा, नेत्र और जंघा को नष्ट करने की धमकी देने पर दण्ड की मात्रा सौ पण होती है किन्तु प्रायः नाक, कान और हाथ काटने की धमकी देने पर दण्ड की मात्रा इसकी आधी अर्थात् पचास पण होती है । यदि इस प्रकार की धमकी देने वाला व्यक्ति बल में कम हो तो उसे दश पणों का दण्ड देना चाहिए किन्तु यदि इस प्रकार की धमकी देने वाला शक्ति में अधिक हो तो उसे धमकी दिये जाने वाले व्यक्ति की रक्षा के लिए एक प्रतिभू प्रस्तुत करना चाहिए ।४-६।

पतनीयकृते क्षेपे दण्डो मध्यमसाहसः ।
उपपातकयुक्ते तु दाप्यः प्रथमसाहसम् ॥७
त्रैविद्यनृपदेवानां क्षेप उत्तमसाहसः ।
मध्यमो ज्ञातिपूगानां प्रथमो ग्रामदेशयोः ॥८
असाक्षिकहते चिह्नैर्युक्तिभिश्चाऽऽगमेन च ।
द्रष्टव्यो व्यवहारस्तु कूटचिह्नकृताद्भयात् ॥९
भस्मपङ्करजःस्पर्शे दण्डो दशपणः स्मृतः ।
अमेध्यपार्ष्णिनिष्ठ्यूतस्पर्शने द्विगुणः स्मृतः ॥१०
समेष्वेवं परस्त्रीषु द्विगुणस्तूत्तमेषु च ।
हीनेष्वर्धं दमो मोहमदादिभिरदण्डनम् ॥११

किसी को पाप लगाने पर मध्यम साहस का दण्ड दिया जाता है और उपपातक का दोष लगाने पर प्रथम साहस के समान दण्ड होता है । (ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद) के विद्वानों के प्रति अपशब्द का प्रयोग करने पर मध्यम साहस का दण्ड दिया जाता है, जातियों के समूहों के प्रति अपशब्दों का प्रयोग करने पर मध्यम तथा ग्राम और देशवासियों के प्रति अपशब्द का प्रयोग करने

---

१ क. ख. ङ. °शे चाधिकोद° ।

पर प्रथम साहस का दण्ड दिया जाता है। विना साक्षी के प्रहार का विवाद उत्पन्न होने पर विवाद का निर्णय चिह्नों से, युक्ति से तथा जनश्रुति से करना चाहिए, क्योंकि केवल चिह्न वनाये भी जा सकते हैं। किसी के ऊपर भस्म, कीचड़ अथवा धूल फेंकने पर दश पण का दण्ड दिया जाता है। किन्तु (अश्र और श्लेष्मा आदि) अमेध्य पदार्थों और धूल आदि फेंकने पर दण्ड की मात्रा उससे दुगुनी हो जाती है। यह नियम वरावर वालों के विरुद्ध किये गये अपराधों के सम्वन्ध में है। किन्तु यदि यही अपराव परस्त्री एवं उत्तम वर्ण वालों के प्रति हो तो दण्ड की मात्रा दूनी हो जाती है। दण्ड की मात्रा आधी रह जाती है यदि अपराव अपने से हीन के प्रति किया गया हो। यदि यह अपराव मोह और मद आदि के कारण किया गया हो तो कोई दण्ड नहीं होता है।७-११।

विप्रपीडाकरं छेद्यमङ्गमब्राह्मणस्य तु।
उद्गूर्णे प्रथमो दण्डः संस्पर्शे तु तदर्धकः ॥१२
उद्गूर्णे हस्तपादे तु दशविंशतिकौ दमौ।
परस्परं तु सर्वेषां शास्त्रे मध्यमसाहसः ॥१३
पादकेशांशुककरोल्लुञ्चनेषु पणान्दश।
पीडाकर्षांशुकावेष्टपादाध्यासे शतं दमः ॥१४
शोणितेन विना दुःखं कुर्वन्काष्ठादिभिर्नरः।
द्वात्रिंशतं पणान्दाप्यो द्विगुणं दर्शनेऽसृजः ॥१५
करपाददतो भङ्गे छेदने कर्णनासयोः।
मध्यो दण्डो व्रणोद्भेदे मृतकल्पहते तथा ॥१६

विप्र को पीड़ित करने वाले ब्राह्मणेतर जाति (के अपराधी) का अङ्ग काट देना चाहिए। यदि हाथ उठाया ही गया हो तो भी प्रथम साहस का दण्ड देना चाहिए। यदि अंग से स्पर्श मात्र किया गया हो तो दण्ड आधा रह जाता है। (प्रहार करने के लिए) हाथ और पैर उठाने पर क्रमशः दस और बीस पणों का दण्ड होता है किन्तु परस्पर शस्त्र को उठाने पर सभी (वर्णों) में मध्यम साहस का दण्ड दिया जाता है। किसी के चरणों, केशों और वस्त्र को घसीटने पर दश पण का दण्ड होता है। किन्तु किसी को वस्त्र से वांधकर उसे दृढ़ता से दवाकर जो कोई चरणों से प्रहार करता है उसके ऊपर सौ पणों का दण्ड किया जाता है। विना रक्त वहाये काष्ठ इत्यादि के द्वारा प्रहार करने

पर बत्तीस पणों का दण्ड होता है किन्तु रक्त आ जाने पर दण्ड की मात्रा दुगुनी हो जाती है। हाथ, पैर और दाँत तोड़ देने पर तथा नाक, कान काट लेने पर मध्यम साहस का दण्ड दिया जाता है। घाव को खोल देने पर तथा मृत्यु तुल्य प्रहार करने पर भी यही दण्ड दिया जाता है।१२-१६।

चेष्टाभोजनवाग्रोधे नेत्रादिप्रतिभेदने।
कन्धराबाहुसक्थ्नां च भङ्गे मध्यमसाहसः ॥१७
एकं घ्नतां बहूना च यथोक्ताद्द्विगुणा दमाः।
कलहापहृतं देयं दण्डस्तु द्विगुणः स्मृतः ॥१८
दुःखमुत्पादयेद्यस्तु स समुत्थानजं व्ययम्।
दाप्यो दण्डं च यो यस्मिन्कलहे समुदाहृतः ॥१९

गति, भोजन और वाणी को अवरुद्ध करने, आँख आदि को फोड़ने और कन्धा, बाहु तथा जंघाओं के तोड़ने पर मध्यम साहस का दण्ड होता है। यदि एक ही व्यक्ति के ऊपर बहुत से व्यक्ति मिलकर प्रहार करें तो उन सबके ऊपर उपर्युक्त दण्ड से दुगुना दण्ड देना चाहिए। कलह में जिस वस्तु का अपहरण कर लिया जाता है उसे तो देना ही पड़ता है, उसका दण्ड भी दूना होता है। कलह आदि में ताडन आदि से दुःख उत्पन्न करने वाला उस (व्रण आदि में होने वाले) व्यय को तो देता ही है। साथ ही उस कलह विशेष के लिए जो दण्ड निर्धारित किया गया है, उसे भी देता है।१७-१९।

तरिकः स्थलजं शुल्कं गृह्णन्दण्ड्यः पणान्दश।
ब्राह्मणप्रातिवेश्यानामेतदेव[1] निमन्त्रणे ॥२०
अभिघाते तथा भेदे छेदे कुड्यावपातने।
पणान्दाप्यः पञ्चदश विंशतिं [2]तद्द्वयं तथा ॥२१
दुःखोत्पादि गृहे द्रव्यं [3]क्षिप्रन्प्राणहरं तथा।
षोडशाऽऽद्यः पणान्दाप्यो[4] द्विगुणो मध्यमं दमम् ॥२२
दुःखे च शोणितोत्पादे शाखाङ्गच्छेदने तथा।
दण्डः क्षुद्रपशूनां स्याद्द्विपणप्रभृतिः क्रमात् ॥२३
लिङ्गस्य च्छेदने मृत्तौ (त्यौ) मध्यमो मूल्यमेव वा।
महापशूनामेतेषु स्थानेषु द्विगुणा दमाः॥२४

---

१ छ. 'देवानि'। २ छ. तत्त्रयं। ३ क. ङ. क्षिप्रप्राण'। ४ ख. ग. च. छ. द्वितीयो।

प्ररोहिशाखिनां शाखास्कन्धसर्वविदारणे ।
उपजीव्यद्रुमाणां तु विंशतेर्द्विगुणा दमाः ॥२५

नाव आदि पर कर लेने का अधिकारी यदि स्थल पर लगने वाले कर को ले लेता है तो उसे दश पण दण्ड देना पड़ता है। यही दण्ड तब दिया जाता है जब (श्राद्ध आदि उपयुक्त अवसरों पर) ब्राह्मणों या पड़ोसियों को निमन्त्रण न दिया जाए । दीवार पर प्रहार करने के लिये, उसमे छेद करने या उसे तोड़ने के लिए और उसे गिरा देने के लिए क्रमशः पांच, दश और बीस पण का दण्ड दिया जाता है। साथ ही, (उसे पुनः बनाने में होने वाला) व्यय भी दिलाया जाता है। (किसी के) घर मे दुःख को उत्पन्न करने वाले तथा प्राणी नाशक द्रव्य को फेंकने पर प्रथम अपराध के लिए षोडश पणों का दण्ड दिया जाता है, किन्तु यदि यही अपराध दूसरी बार किया जाता है तो मध्यम साहस का दण्ड दिया जाता है। रक्त को बहाने वाले (व्रण आदि) दुःख को उत्पन्न करने पर तथा छोटे-छोटे पशुओं की (सींग आदि) शाखाओं या उनके अङ्गों को काटने पर (अपराध के अनुसार) क्रमशः दो पणों से प्रारम्भ करके दण्ड दिया जाता है। (छोटे पशु के) लिङ्ग को काटने पर या उसे मार डालने पर मध्यम साहस का दण्ड या केवल (पशु का) मूल्य ही दिलाना चाहिए किन्तु बड़े-बड़े पशुओं के सम्बन्ध में यही अपराध होने पर दुगुना दण्ड हो जाता है। जिन वृक्षों की शाखाओं से अङ्कुर फूटते हैं उनकी शाखाओं, स्कन्धों या समूल नष्ट करने पर और उपजीव्य वृक्षों का उन्मूलन करने पर बीस पण और उससे दुगुना दण्ड होता है।२०-२५।

यः साहसं कारयति स दाप्यो द्विगुणं दमम् ।
([1]यस्त्वेवमुक्त्वाऽहं दाता कारयेत्स चतुर्गुणम् ॥२६
आर्याक्रोशातिक्रमकृद्भ्रातृभार्याप्रहारकः[2] ।
([3]संदिष्टस्याप्रदाता च [4]समुद्रगृहभेदकः ॥)२७
सामन्तकुलिकादीनामपकारस्य कारकः ।
[5]पञ्चाशत्पणिको दण्ड एषामिति विनिश्चयः ॥२८

---

१ यस्त्वेव.........चतुर्गुणम् च. पुस्तके नास्ति । २ छ. °रदः । सं°।
३ संदिष्ट.........भेदकः क. ङ पुस्तकयोर्नास्ति । ४ ख. °द्रगृह ।
५ पञ्चाशत्.........वावकः च पुस्तके नास्ति ।

स्वच्छन्दविधवागामी विक्रुष्टेनाभिधावकः ।)
अकारेण (रणं ?) च विक्रोष्टा चाण्डालश्चोत्त-
मान्स्पृशन् ।।२६
[1]शूद्र ([2]प्रव्रजितानां च दैवे पै (पि) त्र्ये च भोजकः ।
अयुक्तं शपथं कुर्वन्नयोग्यो योग्यकर्मकृत् ।।३०
वृषशूद्रपशूनां च पुंस्त्वस्य प्रतिघातकृत् ।
साधारणस्यापलापी दासीगर्भविनाशकृत् ।।३१
पितापुत्रस्वसृभ्रातृदंपत्याचार्यशिष्यकाः ।
एषामपतितान्योन्यत्यागी च शतदण्डभाक् ।।३२

जो 'साहस' कराता है उसके ऊपर (साहस करने वाले से) दुगुना दण्ड किया जाता है। जो व्यक्ति "मैं तुम्हें कुछ दूंगा' ऐसा कहकर किसी से 'साहस' कराता है उसे (साहस करने वाले से) चौगुना दण्ड देना चाहिये। आर्यजनों की निन्दा करने वाला, भाई की पत्नी का अपहरण करने वाला प्रतिज्ञा करके (किसी वस्तु को) न देने वाला और सामन्तों तथा कुलीनों आदि का अपहरण करने वाला पचास पणों के दण्ड का भागी होता है—यह नियम है। स्वच्छन्दतापूर्वक विधवागामी, (सहायतार्थ) पुकारे जाने पर (सहायता के लिये) दौड़ न पड़ने वाला, अकारण (सहायतार्थ) पुकारने वाला, उत्तम वर्णों का स्पर्श करने वाला चाण्डाल, दैव और पितृकार्यों में शूद्रों और संन्यासियों को भोजन कराने वाला, असत्य शपथ खाने वाला, अयोग्य होते हुए भी किसी योग्य कर्म को करने वाला, शूद्रों, बैलों तथा अन्य पशुओं के पुंस्त्व को नष्ट करने वाला, सार्वजनिक सम्पत्ति का अपहरण करने वाला, दासी के गर्भ का विनाश करने वाला और पिता, पुत्र, बहन, भाई, दम्पत्ति, आचार्य तथा शिष्यों के अनुपयुक्त अवसर पर एक-दूसरे को छोड़ देने वाला सौ पणों के दण्ड का भागी है।२६-३२।

वसानस्त्रीन्पणान्दण्ड्यो नेजकस्तु परांशुकम् ।
[3]विक्रयापक्रियादानयाचितेषु पणान्दश ।।३३
तुलाशासनमानानां कूटकृन्नाणकस्य च ।
एभिश्च व्यवहर्ता यः स दाप्यो दण्डमुत्तमम् ।।३४

१ क. ख. ग. छ. शूद्रः प्र° । २ प्रव्रजितानां······वृषशूद्र च. पुस्तके नास्ति।
३ छ. °यावक्रयाधान° ।

अकूटं कूटकं ब्रूते कूटं यश्चाप्यकूटकम् ।
स नाणकपरीक्षायां दाप्यः प्रथमसाहसम् ॥३५

दूसरों के वस्त्रों को धारण करने वाला धोबी तीन पणों के दण्ड का भागी होता है, किन्तु यदि वह दूसरों के वस्त्रों को बेंच देता है, बन्धक रख देता है अथवा माँगने पर उधार दे देता है तो वह दश पणों के दण्ड का भागी होता है। जो व्यक्ति नकली तुला, शासन (पत्र), नापने की वस्तुओं और सिक्कों को बनाता है अथवा जो व्यक्ति इनको व्यवहार में लाता है, वे दोनों ही उत्तम साहस के दण्ड के भागी होते हैं। वह सिक्कों की परीक्षा करने वाला जो सच्चे सिक्के को झूठा बतलाता है अथवा झूठे को सच्चा बतलाता है, वह भी उत्तम साहस के दण्ड का भागी होता है।३३-३५।

भिषङ्मिथ्याऽऽचरन्दाप्यस्तिर्यक्षु प्रथमं दमम् ।
मानुषे मध्यमं राजमानुषेषूत्तमं तथा ॥३६
अवध्यं यश्च वध्नाति वध्य यश्च प्रमुञ्चति ।
अप्राप्तव्यवहारं च स दाप्यो दममुत्तमम् ॥३७
मानेन तुलया वाऽपि योंऽशमष्टमकं हरेत् ।
द्वाविंशतिपणा[1](न्दाप्योवृद्धौ हानौ च कल्पितम् ॥३८
भेषजस्नेहलवणगन्धधान्यगुडादिषु ।
पण्येषु प्रक्षिपन्हीनं पणा) न्दाप्यस्तु षोडश ॥३९

वैद्य यदि पक्षियों की चिकित्सा में असावधानी करे तो वह प्रथम साहस के दण्ड का भागी होता है। साधारण मनुष्यों की चिकित्सा में असावधानी करने पर मध्यम साहस के दण्ड का भागी होता है और राजपुरुषों की चिकित्सा में ऐसा करने पर उत्तम साहस के दण्ड का भागी होता है। जो अवध्य पुरुष को बाँधता है, अथवा बध्य पुरुष को निर्णय के पूर्व ही छोड़ देता है, वह उत्तम साहस के दण्ड का भागी होता है। यह दण्ड (वस्तु की) वृद्धि अथवा हानि के अनुपात में न्यूनाधिक हो सकता है। औषधि, तेल, नमक, सुगन्धित पदार्थ, अन्न तथा गुड़ आदि में निकृष्ट वस्तु को मिलाने पर सोलह पणों का दण्ड दिया जाता है।३६-३९।

संभूय कुर्वतामर्घं सबाधं कारुशिल्पिनाम् ।
अर्थस्य ह्रासं वृद्धिं वा सहस्रो दण्ड उच्यते ॥४०

१ न्दाप्यो……पणा क. पुस्तके नास्ति ।

राजनि स्थाप्यते योऽर्थः प्रत्यहं तेन विक्रयः ।
क्रयो वा[1] विक्रयस्तस्माद्वणिजां लाभकृत्स्मृतः ॥४१
स्वदेशपण्ये तु शतं वणिग्गृह्णीत पञ्चकम् ।
दशकं पारदेश्ये तु यः सद्यः क्रयविक्रयी ॥४२
पण्यस्योपरि संस्थाप्य व्ययं पण्यसमुद्भवम् ।
[2]अर्घोऽनुग्रहकृत्कार्यः क्रेतुर्बिक्रेतुरेव च ॥४३

(राजा के द्वारा निर्धारित मूल्य में) वृद्धि अथवा ह्रास को जानते हुए भी जो व्यापारी (लोभवश) शिल्पकारों आदि को पीड़ित करने के लिए वस्तुओं का दूसरा ही मूल्य लेने लगते हैं, वे एक हजार पणों के दण्ड के भागी होते हैं। राजा के द्वारा जो मूल्य निर्धारित कर दिया जाता है उसी के अनुसार (वस्तुओं का) विक्रय होना चाहिये। उसी मूल्य के द्वारा किया गया क्रय-विक्रय वनियों के लिये लाभकारी माना गया है। जो वस्तु तुरन्त ही वेंची जा सके, वह यदि देशी हो तो उस पर पाँच प्रतिशत लाभ लिया जा सकता है। वही वस्तु यदि विदेशी हो तो उस पर दश प्रतिशत लाभ लिया जा सकता है। बेची जाने वाली वस्तु के ऊपर उसमें होने वाले व्यय को जोड़ कर ऐसा मूल्य निर्धारित करना चाहिये जो क्रेता तथा विक्रेता दोनों के अनुकूल हो ।४०-४३।

गृहीतमूल्यं यः पण्यं क्रेतुर्नैव प्रयच्छति ।
सोदयं तस्य दाप्योऽसौ दिग्लाभं वा दिगागते ॥४४
विक्रीतमपि विक्रेयं पूर्वे क्रेतर्यगृह्णति ।
हानिश्चेत्क्रेतृदोषेण क्रेतुरेव हि सा भवेत् ॥४५
राजदैवोपघातेन पण्ये दोष उपागते ।
हानिर्विक्रेतुरेवासौ याचितस्याप्रयच्छतः ॥४६
अन्यहस्ते च विक्रीतं दुष्टं वा दुष्टवद्यदि ।
विक्रीणीते दमस्तत्र तन्मूल्याद्द्विगुणो भवेत् ॥४७
क्षयं वृद्धिं च वणिजा पण्यानामविजानता ।
क्रीत्वा नानुशयः कार्यः कुर्वन्षड्भागदण्डभाक् ॥४८

---

१ क. ङ. च. छ. वा निस्रवस्त०। २ क. ङ च. छ. अथोऽनु०।

किसी वस्तु का मूल्य प्राप्त हो जाने के बाद भी यदि विक्रेता वह वस्तु क्रेता को न दे तो उससे (मूल्य धन पर) व्याज, सहित वह वस्तु दिलवानी चाहिए। यदि क्रेता विदेशी हो तो उसे विदेश में होने वाले लाभ के साथ वह वस्तु दिलवानी चाहिए। किसी क्रेता के हाथ बेची गयी वस्तु यदि उसके द्वारा (मूल्य चुकाकर) ले न ली जाये और इसमें दोष क्रेता का हो तो उसे (पुन:) बेचा जा सकता है, क्योंकि (वस्तु को न लेने से होने वाली) हानि केवल क्रेता की ही होनी चाहिये। क्रेता के द्वारा माँगी जाने पर भी बेची गयी वस्तु यदि विक्रेता उसे न दे और उसमें राजा अथवा दैव के कारण कोई दोष उत्पन्न हो जाये तो उसकी हानि का भागी विक्रेता ही हो सकता है। किसी वस्तु को पहले एक के हाथ बेचकर उसे पुनः दूसरे के हाथ बेचने में अथवा वस्तु के दोष को जानते हुए भी उसे बेचने में दण्ड की मात्रा वस्तु के मूल्य के दुगुने के बराबर होती है। विक्रेय-वस्तु की हानि अथवा वृद्धि को न जानने वाले बनिये को उसे अनुचित मूल्य पर नहीं बेचना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने पर वह (मूल्य के) षष्ठांश दण्ड का भागी होता है।४४-४८।

समवायेन वणिजां लाभार्थं कर्म कुर्वताम्।
लाभालाभौ यथाद्रव्यं यथा वा संविदा कृतौ ॥४९
प्रतिषिद्धमनादिष्टं प्रमादाद्यच्च नाशितम्।
स तद्दद्याद्विप्लवाच्च रक्षिताद्दशमांशभाक् ॥५०
अर्थप्रक्षेपणाद्विंशं भागं शुल्कं नृपो हरेत्।
[1]व्यासिद्धं राजयोग्यं च विक्रीतं राजगामि तत् ॥५१
मिथ्यावदन्परीमाणं शुल्कस्थानादपक्रमन्।
दाप्यस्त्वष्टगुणं यश्च स व्याजक्रयविक्रयी ॥५२

लाभ के लिये एक साथ मिलकर (साझे) में व्यापार करने वाले बनियों में लाभ-हानि (व्यापार में लगाये गये) द्रव्य के अनुपात में अथवा परस्पर के समझौते के अनुसार होती है। यदि कोई वस्तु (भागीदारों में से) किसी के प्रतिषिद्ध अथवा अनादिष्ट कर्म से या उसके प्रमाद से नष्ट हो जाये तो उसे वह वस्तु देनी पड़ती है, यदि कोई व्यक्ति उसे विनाश से बचा लेता है तो वह उसके दशमांश का भागी हो जाता है। किसी वस्तु का मूल्य राजा के द्वारा

१ ख. ससिद्धं। ङ. स्वसिद्धं।

निर्धारित किया जाता है, राजा उसका बीसवाँ भाग ले लेता है। यदि कोई वस्तु राजा के द्वारा विक्रय के लिए निषिद्ध कर दी गयी हो या वह राजा के (ही) योग्य हो, फिर भी उसे बेच दिया गया हो तो वह वस्तु (विक्रय के बाद भी) राजा की हो जाती है। विक्रेय वस्तु के परिमाण को मिथ्या बतलाने वाले अथवा चुंगी से बचकर निकल जाने वाले (व्यापारी) से (वस्तु के मूल्य से) आठ गुना धन लिया जाता है। इतना ही उससे भी लिया जाता है जो छल से (किसी वस्तु को) बेचता है।४६-५२।

देशान्तरगते प्रेते द्रव्यं दायादबान्धवा: ।
ज्ञातयो वा हरेयुस्तदागतास्तैर्विना नृपः ॥५३
जिह्मं व्यजेयुर्निर्लोभमशक्तोऽन्येन कारयेत् ।
अनेन विधिराख्यात ऋत्विक्कर्षककर्मिणाम् ॥५४
ग्राहकैर्गृह्यते चौरो लोप्त्रेणाथ पदेन वा ।
पूर्वकर्मापराधी वा तथैवाशुद्धवासकः ॥५५
अन्येऽपि शङ्कया ग्राह्या जातिनामादिनिह्नवैः ।
द्यूतस्त्रीपानशक्ताश्च शुष्कभिन्नमुखस्वराः ॥५६
परद्रव्यगृहाणां च पृ (प्र) च्छका गूढचारिणः ।
निराया व्ययवन्तश्च विनष्टद्रव्यविक्रयाः ॥५७

किसी (बनिये) के देशान्तर चले जाने पर अथवा उसकी मृत्यु हो जाने पर उसके धन को दामाद, बान्धव, जातिजन, अथवा (उसके लिये) आए हुए अन्य लोग ले लेते हैं। इन सबके अभाव में वह धन राजा ले लिया करता है। (भागीदारों में से) कुटिल भागीदार को अन्य लोग बिना किसी लाभ के ही हटा दें। यदि कोई (भागीदार) ऐसा करने में स्वयं असमर्थ हो तो उसे दूसरे के द्वारा हटवा देना चाहिये। यही नियम ऋत्विजों, कृषकों और शिल्पकारों के सम्बन्ध में भी है। चोर पकड़ने वाले, चोर को चोरी के माल से अथवा उसके पदचिह्नों से पकड़ते हैं, (चोरी के सन्देह में) वही पकड़ा जाता है जिसने पहले अपराध किया हो अथवा अनुचित स्थान में रहने वाला हो। चोरी के सन्देह में अन्य ऐसे लोग पकड़े जा सकते हैं जो अपनी जाति और नाम आदि को छिपाते हैं, द्यूत, स्त्री और मदिरापान में आसक्त रहते हैं, (प्रश्न किये जाने पर) जिनके मुख सूख जाते हैं और वाणी लड़खड़ाने लगती है, दूसरों के धन और घरों के सम्बन्ध में पूछताछ करते हैं, गुप्तरूप से विचरण

करते हैं, विना आय के ही (वहुत सा) व्यय करते-रहते हैं और चुरायी गयी वस्तुओं का विक्रय करते हैं ।५३-५७।

गृहीतः शङ्कया चौर्ये नाऽऽत्मानं चेद्विशोधयेत् ।
दापयित्वा हृतं द्रव्यं चौरदण्डेन दण्डयेत् ॥५८
चौरं प्रदाप्यापहृतं घातयेद्विविधैर्वधैः ।
सचिह्नं ब्राह्मणं कृत्वा स्वराष्ट्राद्विप्रवासयेत् ॥५९
घातितेऽपहृते दोषो ग्रामभर्तुरनिर्गते ।
स्वसीम्नि दद्याद्ग्रामस्तु पदं वा[1] यत्र गच्छति ॥६०
पञ्चग्रामी वहिः क्रोशाद्दशग्राम्योऽथ वा पुनः ।
वन्दिग्राहांस्तथा वाजिकुञ्जराणां च हारिणः ॥६१
प्रसह्यघातिनश्चैव शूलमारोपयेन्नरान् ॥

चोरी के सन्देह में पकड़ा गया व्यक्ति यदि (उचित प्रमाणों के द्वारा) अपने को निर्दोष नहीं सिद्ध कर देता है तो उससे चोरी का माल तो दिलाया ही जाता है, उसे चोर का दण्ड भी दिया जाता है। वास्तविक चोर को पकड़ लेने पर उससे चोरी का धन तो दिलवाना ही चाहिये, उसे नाना प्रकार का शारीरिक दण्ड भी देना चाहिये। यदि चोरी के अपराध में कोई ब्राह्मण पकड़ लिया जाये तो उसके शरीर को चिह्नित करके अपने राष्ट्र से वहिष्कृत कर देना चाहिये। ग्राम में कोई हत्या अथवा चोरी होने पर यदि (हत्या करने वाले अथवा चोर के पदचिह्न) गाँव के वाहर न निकलें तो उसमें ग्रामपति का दोष माना जाता है। यदि कोई अपराध गाँव की सीमा पर हुआ हो तो उसके लिए पूरा गाँव ही दोषी होता है या उसका दोष होता है जहाँ पर अपराधी के पदचिह्न जाते हैं। कई गाँवों के एक कोश की दूरी पर अपराध होने पर आस-पास के पांच या दश गाँवों का दोष माना जाता है। (धन आदि के लोभ से दूसरों को) वन्दी वना लेने वाले और घोड़ों तथा हाथियों की चोरी करने वालों अथवा वलपूर्वक मार डालने वाले मनुष्यों को शूली पर चढ़ा देना चाहिये ।५८-६१½।

उत्क्षेपकग्रन्थिभेदौ करसंदंशहीनकौ ॥६२
कार्यौ द्वितीयापराधे करपादैकहीनकौ[2] ।

१ ख. यदि । २ क. ङ. च. °कौ । रक्षावहासाग्न्यु° । ख. ग.°कौ । रक्षावकाशाग्न्यु° ।

भक्तावदंशाग्न्युदकमन्त्रोपकरणव्ययान् ॥६३
दत्त्वा चौरस्य हन्तुर्वा ज्ञानतो[1] दम[2] उत्तमः ।
शस्त्रावपाते गर्भस्य पातने चोत्तमो[3] दमः ॥६४
उत्तमो वाऽधमो वाऽपि पुरुषस्त्रीप्रमापणे ।
शिलां बद्ध्वा क्षिपेदप्सु नरघ्नीं विषदां स्त्रियम् ॥६५
विषाग्निदां निजगुरुनिजापत्यप्रमापणीम् ।
विकर्णकरनासौष्ठीं कृत्वा गोभिः [4]प्रमापयेत् ॥६६

उत्क्षेपकों (जेबकतरों) और गाँठ को खोलकर धन अपहरण करने वालों को त्रुटकी से हीन कर देना चाहिए, किन्तु इसी अपराध की पुनरावृत्ति होने पर एक हाथ और एक पैर से हीन कर देना चाहिये। जो व्यक्ति जानबूझकर चोर अथवा हत्यारों को भोजन, आवास, अग्नि, जल, मन्त्रणा, उपकरण अथवा व्यय (करने के लिये धन) देता है उसे उत्तम साहस का दण्ड दिया जाता है। शस्त्र से प्रहार करने अथवा गर्भपात करने पर भी उत्तम साहस का दण्ड दिया जाता है। पुरुष अथवा स्त्री का वध करने पर अथवा गर्भपात करने पर भी उत्तम साहस का दण्ड दिया जाता है। पुरुष अथवा स्त्री का वध करने पर उत्तम अथवा अधम कोटि का दण्ड दिया जाता है। पुरुषवध करने वाली और विष देने वाली, स्त्री को पत्थर बाँधकर जल में फेंक देना चाहिए। विष देने वाली, आग लगाने वाली अपने से बड़ों का और अपने पुत्रों का वध करने वाली स्त्री को कान, हाथ, नाक और ओष्ठ काटकर साँड़ों से मरवा देना चाहिये।६२-६६।

क्षेत्रवेश्मवनग्रामविवीतखलदाहकाः ।
राजपत्न्यभिगामी च दग्धव्यास्तु कटाग्निना ।६७
पुमान्संग्रहणे ग्राह्यः केशाकेशि परस्त्रियाः ।
स्वजातावुत्तमो दण्ड अनुलोम्ये तु मध्यमः ॥६८
प्रातिलोम्ये वधः पुंसां नार्याः कर्णावकर्तनम् ।
नीवीस्तनप्रावरणनाभिकेशावमर्दनम् ॥६९

---

१. ङ. साहसे । छ. जानतो। २ ङ. दण्ड। ३ ङ. °त्तमः सदा। ञ.°।
४ ङ. क्षमापयेत् ।

अदेशकालसंभाषं सहावस्थानमेव च ।
स्त्रीनिषेधे शतं दद्याद्द्विशतं तु दमं पुमान् ।।७०
प्रतिषेधे तयोर्दण्डो यथा संग्रहणे तथा ।।

जो खेत, घर, वन, गाँव, चरागाह तथा खलिहान में आग लगाते है और राजपत्नी से सम्भोग करते हैं उन्हें चटाई में लपेटकर जला देना चाहिये। यदि कोई पुरुष अपनी ही जाति की पर स्त्री के बाल पकड़कर घसीटे तो उसे उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिये। परन्तु उससे नीच जाति की स्त्री होने पर मध्यम साहस का दण्ड ही देना चाहिये। यदि नीच जाति का पुरुष उत्तम जाति की स्त्री के साथ ऐसा व्यवहार करें तो उसे मृत्युदण्ड देना चाहिए। नारी के कान काटने, नीवी खोलने, स्तन मलने, आँचल हटाने, नाभि या बाल मसलने, असमय या अस्थान में बातचीत करने तथा सहवास करने पर भी यही दण्ड देना चाहिये। निषिद्ध पुरुष के साथ सम्भाषण आदि करने पर स्त्री को सौ पणों का दण्ड दिया जाता है और निषिद्ध स्त्री के साथ पुरुष के द्वारा ऐसा करने पर उसे दो सौ पणों का दण्ड दिया जाता है। जहां पर स्त्री-पुरुष दोनों का निषेध होता है वहाँ पर परस्पर सम्भाषण आदि करने पर वही दण्ड होता है जो दोनों के सम्भोग में होता है।६७-७०½।

पशून्गच्छञ्शतं दाप्यो हीनां स्त्रीं गाश्च मध्यमम् ।।७१
अवरुद्धासु दासीषु भुजिष्यासु तथैव च ।
गम्यास्वपि पुमान्दाप्यः पञ्चाशत्पणिकं दमम् ।।७२
प्रसह्य दास्यभिगमे दण्डो दशपणः स्मृतः ।
कुबन्धेनाऽऽङ्क्य गमयेदन्त्याप्रव्रजितागमे ।।७३
न्यूनं वाऽप्यधिकं वाऽपि लिखेद्यो राजशासनम् ।
पारदारिकचौरं वा मुञ्चतो दण्ड उत्तमः ।।७४

पशुओं से सम्भोग करने वाला सौ पणों का दण्डभागी होता है, किन्तु हीन जाति की स्त्री तथा गायों से सम्भोग करने वाले को मध्यम साहस का दण्ड दिया जाता है। सम्भोग योग्य होने पर भी पकड़ी हुई दासियों तथा रखैलो के साथ वैसा करने पर पचास पणों का दण्ड दिया जाता है। दासी के साथ बलात्कार करने पर दश पण का दण्ड दिया जाता है। अन्त्यज स्त्री के साथ सम्भोग करने पर कुबन्धनों में बाँधकर (राज्य से) निकाल देना चाहिये। राजाज्ञा को घटा-बढ़ाकर लिखने वाला अथवा परस्त्री की चोरी करने वाले को छोड़ देने वाला उत्तम साहस के दण्ड का भागी होता है।७१-७४।

अभक्ष्यैर्दूषयन्विप्रं दण्ड उत्तमसाहसः ।
[1]कूटवादी स्वर्णहारी विमांसस्य च विक्रयी ॥७५
अंगहीनश्च कर्तव्यो दाप्यश्चोत्तमसाहसम् ।
शक्तो ह्यमोक्षयन्स्वामी दंष्ट्रिणः शृङ्गिणस्तथा ॥७६
प्रथमं साहसं दद्याद्विकुष्टे द्विगुणं तथा ।
[2]अचौर्यं चौर्येऽभिवदन्दाप्यः पञ्चशतं दमम् ॥७७

अभक्ष्य से ब्राह्मण को दूषित कर देने वाला उत्तम साहस के दण्ड का भागी होता है । जो व्यक्ति झूठ बोलता है, सोना चुराता है और कुत्सित मांस को बेंचता है उसे अंगहीन करके उसके ऊपर उत्तम साहस का दण्ड करना चाहिये । दाँतों वाले (हाथी इत्यादि) पशुओं के स्वामी (किसी की रक्षा में) समर्थ होने पर भी यदि उसकी रक्षा नहीं करते हैं तो उन्हें प्रथम साहस का दण्ड दिया जाता है और इस प्रकार के पशु-स्वामी यदि (सताये जाने वाले मनुष्य के द्वारा सहायतार्थ) पुकारने पर भी उनकी रक्षा न करें तो उनके ऊपर इसका दुगुना दण्ड दिया जाता है । जो व्यक्ति चोरी न करने वाले को चोरी लगाता है वह पाँच सौ पणों के दण्ड का भागी होता है ।७५-७७।

राज्ञोऽनिष्टप्रवक्तारं [3]तस्यैवाऽऽक्रोशकं तथा ।
मृताङ्गलग्नविक्रेतुर्गुरोस्ताडयितुस्तथा ॥७८
तन्मन्त्रस्य च भेत्तारं छित्वा जिह्वां प्रवासयेत् ।
राजयानासनारोढुर्दण्डो मध्यमसाहसः ॥७९
द्विनेत्रभेदिनो राजद्विष्टादेशकृतस्तथा ।
विप्रत्वेन च शूद्रस्य जीवतोऽष्टशतो दमः ॥८०
यो मन्येताजितोऽस्मीति [4]न्यायेनाभिपराजितः ।
तमायान्तं पुनर्जित्वा दण्डयेद्द्विगुणं दमम् ॥८१
राज्ञाऽन्यायेन यो दण्डो गृहीतो वरुणाय तम् ।
निवेद्य दद्याद्विप्रेभ्यः स्वय त्रिंशद्गुणीकृतम् ॥८२
धर्मश्चार्थश्च कीर्तिश्च लोकपङ्क्तिरुपग्रहः ।
प्रजाभ्यो वहुमानं च स्वर्गस्थानं च शाश्वतम् ॥
पश्यतो व्यवहारांश्च गुणाः स्युः सप्त भूपतेः ॥८३

१ छ.कूटस्वर्णव्यवहारी । २ छ. 'चौरं चौरेऽभि' । ३ क. ङ. तथैवाऽऽ' ।
४ क. ङ. 'नापि प' ।

जो राजा के अनिष्ट की बात करता है, उसकी निन्दा करता है, मृत-व्यक्ति के शरीर के आभूषण आदि को बेचता है, गुरु को पीटता है और राजा की मन्त्रणा का भेद खोल देता है, उसकी जिह्वा काटकर उसे देश-बहिष्कृत कर देना चाहिये। राजा की सवारी अथवा उसके आसन पर बैठने वाला मध्यम साहस के दण्ड का भागी होता है। जो व्यक्ति (क्रोधवश) किसी के दोनों नेत्रों को नष्ट कर देता है, राजा के अनिष्ट को बतलाता है और शूद्र होकर ब्राह्मण के रूप में अपने आपको दिखलाता है, वह आठ सौ पणों के दण्ड का भागी होता है। न्यायपूर्वक पराजित हो जाने पर भी जो अपने को अपराजित समझकर पुनः (न्यायालय में) आता है तो उसके पुनः हार जाने पर दुगुना दण्ड दिया जाता है। अन्यायपूर्वक दण्ड के रूप में राजा के द्वारा जो धन प्राप्त किया जाता है उसे राजा के द्वारा वरुण देवता को समर्पित करके और उसे तीस गुना बढ़ाकर ब्राह्मणों को दे दिया जाना चाहिये। व्यवहार का निर्वाह करने वाले राजा में ये सात गुण रहा करते हैं—धर्म, अर्थ, कीर्त्ति, लोकप्रतिष्ठा, शान्ति, प्रजाओं में सम्मान और शाश्वत स्वर्ग-निवास। ७८-८३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वाक्पारुष्यादिप्रकरण कथनं नामाष्ट-पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।२५८

अथैकोनषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

ऋग्विधानम्

अग्निरुवाच—

ऋग्यजुः सामाथर्वा[1] (र्व) णविधानं पुष्करोदितम्।
[2]भुक्तिमुक्तिप्रदं जप्याद्धोमाद्रामाय तद्वदे ॥१

अग्निदेव बोले—(अब) मैं ऋग्विधान बतलाऊँगा जो पुष्कर के द्वारा राम को बतलाया गया था। इस जप और हवन के द्वारा (इस संसार में) भोग और (तदनन्तर) मोक्ष प्राप्त होता है।१

---

१ ख. ग. घ. °र्थर्ववि°। २ छ °क्तिकरंज°।

पुष्कर उवाच
प्रतिवेदं तुकर्माणि कार्याणि प्रवदामि ते ।
प्रथममृग्विधानं वै शृणु त्वं भुक्तिमुक्तिदम् ।२
अन्तर्जले तथा होमे[1] जपतो मनसेप्सितम् ।
कामं करोति गायत्री[2] प्राणायामाद्विशेषतः ।।३
गायत्र्या दशसाहस्रो जपो नक्ताशिनो द्विज ।
वहुस्नातस्य तत्रैव सर्वकल्मषनाशनः ।।४
दशायुतानि[3] जप्त्वा यो होम कुर्यात्स मुक्तिभाक् ।
प्रणवो हि[4] परं ब्रह्म तज्जपः सर्वपापहा ।।५

पुष्कर बोले—मैं प्रत्येक वेद के कर्म तथा कार्य तुम्हें बताऊँगा। किन्तु पहले भोग और मोक्ष के देने वाले ऋग्विधान को सुन लो। जल में (खड़े होकर) हवन करते समय गायत्री जप करने से मनोकामनायें पूर्ण होती ही हैं। प्राणायाम करते हुए इसका जप करने से विशेष रूप से इच्छापूर्ति होती है। हे द्विज! जो व्यक्ति वहुत बार स्नान करके (केवल) रात्रि में भोजन करते हुए दश हजार गायत्री मन्त्रों का जप करता है, उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। जो एक लाख गायत्री जप करते हुए हवन करता है, वह मोक्ष का भागी होता है। प्रणव (ओंकार) परब्रह्म है, उसका जप सभी पापों का नाशक है।२-५।

[5]ओंकारशतजप्तं तु नाभिमात्रोदकस्थितः
जलं पिबेत्स सर्वैस्तु पापैर्वै विप्रमुच्यते ।।६
मात्रात्रयं त्रयो वेदास्त्रयो देवास्त्रयोऽग्नयः ।
महाव्याहृतयः सप्त लोका होमोऽखिलाघहा ।।७
गायत्री परमा जप्या महाव्याहृतयस्तथा ।
अन्तर्जले तथा राम प्रोक्तश्चैवाघमर्षणः ।।८
अग्निमीले पुरोहितं सूक्तोऽयं वह्निदैवतः ।
शिरसा धारयन्वह्नि यो जपेत्परिवत्सरम् ।।९
होमं त्रिषवणं भैक्ष्यमनग्निज्वलनञ्चरेत् ।

---

१ क. ङ, च. जप्यते। २. क. ङ. °यामो विशे°। ३. ख. ग. छ. °प्त्वाऽथ हविष्याशी स मु°। ४ क ङ. °रं ज्ञेयः स ब्रह्म सर्वपापनुत्। ओं। ५ क. ङ. ओंकारं तु जपन्नित्यं ना°।

जो नाभि तक गहरे जल में खड़े होकर एक सौ बार गायत्री जप करके जल पीता है, वह समस्त पापों से छुटकारा पा जाता है। तीन, मात्रायें, तीन वेद, तीन देव, तीन अग्नि, (भूः भुवः स्वः) तीन महाव्याहृतियाँ सात और लोक होते हैं। इन सबसे समन्वित होम सकल पापों का नाशक होता है। अये राम! श्रेष्ठ गायत्री मन्त्र तथा (भूः भुवः स्वः) महाव्याहृतियों का जप (तो ऐसे ही) करना चाहिये किन्तु परम मन्त्र गायत्री, महाव्याहृति (भूर्भुवः स्वः) अधमर्षण मन्त्र का जप, जल में (स्थित रहकर) करना चाहिये 'अग्निमीले पुरोहित' इस सूक्त का देवता अग्नि है। जो व्यक्ति अग्नि को शिरोधार्य करके प्रतिवर्ष इस मन्त्र का जप करता है तथा भिक्षान्न पर रहकर 'त्रिषषण' होम करता है वह (विना अग्नि के तेज से) प्रज्वलित रहता है।६-९½।

अतः परमृचः सप्त वाय्वाद्या याः प्रकीर्तिताः ॥१०
ता जपन्प्रयतो नित्यमिष्टान्कामान्समश्नुते।
[1]मेधाकामो जपेन्नित्यं सदसस्पमिति त्यृचम् ॥११
[2]अन्व (म्व) यो यन्नि(न्ती) माः प्रोक्तानवर्चो मृत्युनाशनाः।
शुनःशेपंमृषि वद्धः संनिरुद्धोऽथ वाजपेत् ॥१२
मुच्यते सर्वपापेभ्यो गदी वाऽप्यगदो भवेत्।
यः इच्छेच्छाश्वतं कामं मित्रं [3]प्राज्ञं पुरन्दरम् ॥१३॥
ऋग्भिः षोडशभिः कुर्यादिन्द्रस्येति दिने दिने ॥

इसके अनन्तर वायु देवता से सम्बद्ध जिन सात ऋचाओं को बताया गया है उनका जप करते हुए तथा संयमपूर्वक रहने से मनुष्य नित्य अभीष्ट कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। मेधाकामी को नित्य 'सदसस्पम्' आदि तीन ऋचाओं का जप करना चाहिये। 'अन्वयो यन्निमाः' आदि नौ ऋचायें मृत्युनाशक हैं। बन्धन में पड़े हुए व्यक्ति को 'शुनःशेपमृषिम्' आदि सूक्त का जप करना चाहिये। इसका जप करने से सभी पापों से छुटकारा मिल जाता है और रोगी नीरोग हो जाता है। जो व्यक्ति अनन्त कामनाओं, मित्र, बुद्धि, तथा इन्द्र (की मैत्री) चाहता हो उसे प्रतिदिन 'इन्द्रस्येति' आदि सोलहों ऋचाओं का जप करना चाहिये।१०-१३½।

---

१ क. ङ. वामकामो। २ क. ङ. च. अनुयोजन्ति याः प्रो°। ३ क. ङ. प्राप्तं।

हिरण्यस्तूपमित्येतज्जपञ्शत्रून्प्रवाधते ॥१४
क्षेमी भवति[1] चाध्वनि ये ते पन्था जपन्नरः।
रौद्रीभिः षड्भिरीशानं स्तुयाद्यो वै दिने दिने ॥१५
चरुं वा कल्पयेद्रौद्रं तस्य शान्तिः परा भवेत्।
उदित्युद्यन्तमादित्यमुपतिष्ठन्दिनेदिने ॥१६
क्षिपेज्जलाञ्जलीन्सप्त मनोदुःखविनाशनम्।
द्विषन्तमित्यथार्धर्चं यद्विप्रान्तं जपन्स्मरेत् ॥१७
आगस्कृत्सप्तरात्रेण विद्वेषमधिगच्छति।
आरोग्यकामो रोगी वा[2] पुष्कर्यास्योभयं
(पुरीष्यासोऽग्नयो) जपेत् ॥१८

'हिरण्यस्तूपम्' इत्यादि मन्त्र का जप करने से शत्रुओं की बाधा होती है। 'ये ते पन्था' इत्यादि मन्त्र के जप से मार्ग में सुरक्षा होती है। जो व्यक्ति प्रतिदिन छह रौद्री ऋचाओं से रूद्र की स्तुति करता है अथवा रूद्र के लिये चरु का निर्वाप करता है, उसे परम शान्ति की प्राप्ति होती है। 'उदिति' इत्यादि ऋचा से उदय कालीन सूर्य का नित्यप्रति अनुष्ठान करते हुए जो व्यक्ति सात अञ्जलि जल अर्पण करता है, उसकी मनोव्यथा दूर हो जाती है। अये विप्र ! यदि किसी को किसी से विद्वेष करना हो तो उसे 'द्विषन्तम्' इत्यादि ऋचा के आधे भाग का जप करके सात रातों तक 'आगस्कृत्' इत्यादि ऋचा का स्मरण करना चाहिये। आरोग्य कामी को 'पुष्कर्यास्योभयम्' इत्यादि ऋचा का जप करना चाहिये ।१४-१८।

उत्तमस्तस्य चार्धर्चो[3] जपेद्वैरिविनाशने।
उदयत्यायुरक्षय्यं तेजो मध्यं दिने जपेत् ॥१९
अस्तं प्रति गते सूर्ये द्विषन्तं प्रति बाधते।
न वयश्चे (योने) ति सूक्तानि जपञ्शत्रून्नियच्छति ॥२०

इस ऋचा के अन्तिम अर्धांश का जप करने से शत्रु-नाश होता है। सूर्योदय में उपर्युक्त ऋचा का जप करने से अक्षय आयु तथा मध्याह्न में जप करने से तेज की प्राप्ति होती है और सूर्यास्त हो जाने पर इस ऋचा के जप करने से शत्रु-नाश होता है। 'न वयश्च' इत्यादि सूक्तों का जप करने से (मनुष्य) शत्रुओं को अपने वश में कर लेता है। १९-२०।

---

१ क. ख. ग. ङ. च छ. चाध्वानो ये। २ छ. प्रस्कन्नस्योत्तमं।
३ छ. द्वैविविधासने।

एकादश सुपर्णस्य सर्वकामान्विनिर्दिशेत् ।
आध्यात्मिकीः क इत्येता जपन्मोक्षमवाप्नुयात् ॥२१
आ नो भद्रा इत्यनेन दीर्घमायुरवाप्नुयात् ।
त्वं सोमेति च सूक्तेन नवं पश्येन्निशाकरम् ॥२२
उपतिष्ठेत्समित्पाणिर्वासांस्याप्नोत्यसंशयम् ।
आयुरीप्सन्निममिति[1] कौत्सं सूक्तं सदा जपेत् ॥२३

'एकादश सुपर्णस्य, इत्यादि मन्त्र (का जप) सभी कामनाओं की सिद्धि करता है और 'आध्यात्मिकीः क' इत्यादि ऋचाओं का जप करने से मोक्ष-प्राप्ति होती है। 'आ नो भद्राः' इत्यादि मन्त्र के जप से दीर्घायु की प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति 'त्वं सोमेति' इस सूक्त से द्वितीया के चन्द्रमा का दर्शन करके कुश हाथ में लेकर उपस्थान करता है, उसे निःसन्देह (नवीन) वस्त्रों की प्राप्ति होती है। आयुष्कामी को 'इमम्' इत्यादि कौत्स सूक्त का सदा जप करना चाहिये।२१-२३।

अप नः शोशुचदिति स्तुत्वा मध्ये दिवाकरम् ।
यथा मुञ्चति चेषीकां तथा पापं प्रमुञ्चति ॥२४
जातवेदस इत्येतज्जपेत्स्वस्त्ययनं पथि ।
भयैर्विमुच्यते सर्वैः स्वस्तिमानाप्नुयाद्गृहान् ॥२५
व्युष्टायां च तथा रात्र्यामेतद्दुःस्वप्ननाशनम् ।
प्रमन्दिनेति सूयन्त्या जपेद्गर्भविमोचनम् ॥२६

मध्याह्न मे 'अप नः शोलुचत्' इत्यादि मन्त्र से सूर्य की स्तुति करने से मनुष्य उसी तरह पाप को छोड़ देता है जैसे (धनुर्धर) वाण को। 'जातवेदस' इत्यादि मन्त्र के जप से मार्ग में कल्याण होता है। वह मार्ग के सभी भयों मे छुटकारा पा ही जाता है, कुशलपूर्वक अपने घर से भी लौट आता है। प्रातः-काल इस मन्त्र का जप करने से रात्रि के दुःस्वप्नों का नाश हो जाता है। 'प्रमन्दिन' इत्यादि मन्त्र का जप करने से शीघ्र प्रसव हो जाता है।२४-२६।

जपन्निन्द्रमिति स्नातो वैश्वदेवं तु सप्तकम् ।
मुञ्चत्याज्यं तथा जुह्वत्सकलं किल्विषं नरः ॥२७

[1] ङ. कैश्यं ।

इमामिति जपञ्शश्वत्कामानाप्नोत्यभीप्सितान् ।
मा नस्तोक इति द्वाभ्यां त्रिरात्रोपोषितः शुचिः ॥२८
औदुम्बरीश्च जुहुयात्समिधश्चाऽऽज्यसंस्कृताः ।
छित्त्वा सर्वान्मृत्युपाशाञ्जीवेद्रोगविवर्जितः ॥२९
ऊर्ध्वबाहुरनेनैव स्तुत्वा शंभुं तथैव च ।
मा नस्तोकेति च ऋचा शिखाबन्धे कृते नरः ॥३०
अधृष्यः सर्वभूतानां जायते संशयं विना ॥

'इन्द्रम्' इत्यादि मन्त्र से स्नान करके सात वैश्वदेव मन्त्रों से अग्नि में आहुति डालने से मनुष्य के सभी पाप दूर हो जाते हैं। 'इमाम्' इत्यादि मन्त्र जप करने से सदैव मनोवांछित फल प्राप्त होता रहता है। शुचितापूर्वक तीन रात उपवास करके 'मानस्तोक' इत्यादि दो ऋचाओं को पढ़ते हुए घी में डुबोई हुयी गूलर की समिधाओं से हवन करने से मनुष्य सभी मृत्युपाशों को काटकर नीरोग होकर जीवित रहता है। भुजाओं को ऊपर उठाकर इसी मंत्र से शम्भु की स्तुति करके तथा 'मानस्तोक' इत्यादि मन्त्र से बाँधने पर मनुष्य सभी से अजेय हो जाता है।२७-३०½।

चित्रमित्युपतिष्ठेत ([1]त्रिसन्ध्यं भास्करं तथा ॥३१
समित्पाणिर्नरो नित्यमीप्सितं धनमाप्नुयात् ।
अधः स्वप्ने (पश्ये) ति च जपन्प्रातर्मध्यंदिने दिने ॥३२
[2]दुःस्वप्नं चार्दयेत्कृत्स्नं भोजनं चाऽऽप्नुयाच्छुभम् ।
उभे पुमानिति तथा रक्षोघ्नः परिकीर्तितः ॥३३

'चित्रम्' इत्यादि मन्त्र से तीनों कालों में हाथ में कुश लेकर सूर्य-स्तुति करते हुए अनुष्ठान करने से मनुष्य अभीष्ट धन को प्राप्त कर लेता है। प्रतिदिन प्रातः एवं मध्याह्न में 'अधःस्वप्न' इत्यादि मन्त्र का जप करने से मनुष्य दुःस्वप्न का नाश तो करता ही है, पर्याप्त मात्रा में सुन्दर भोजन भी प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार 'उभे पुमान्' इत्यादि मन्त्र का जप राक्षसों को नष्ट करने वाला कहा गया है।३१-३३।

[3]उभे वासा इति ऋचो जपन्कामानवाप्नुयात् ।
तमागन्निति च जपन्मुच्यते चाऽऽततायिनः ॥३४

---

१ त्रिसन्ध्यं......सर्वान्कामानवाप्नुयात् च. पुस्तके नास्ति। २ ख. ग. °प्नं वदते कृत्स्नं। ३ क. ङ. च. यदि।

कया शुभेति च जपञ्जातिश्रैष्ठ्यमवाप्नुयात् ।
इमं नु सोममित्येतत्सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥३५
[1](पितरित्युपतिष्ठेत) नित्यमर्थमुपस्थितम् ।
अग्ने नयेति सूक्तेन घृतहोमश्च मार्गगः[2] ॥३६
वीरान्नयमवाप्नोति सुश्लोकं यो जपेत्सदा ।
कङ्कतो नेतिसूक्तेन विषान्सर्वान्व्यपोहति ॥३७

'उभे वासा' इत्यादि ऋचा के जप से सभी कामनायें पूर्ण होती है और 'तमागमन्, इत्यादि मन्त्र का जप करने से आततायियो से छुटकारा मिल जाता है। 'कमाशुभ' इत्यादि के जप से मनुष्य स्वजाति मे सबसे श्रेष्ठ हो जाता है और 'इमं नु सोमम्, इत्यादि जप से वह सभी कामनाओं की प्राप्ति कर लेता है। 'पितः' इत्यादि मन्त्र का जप करने से नित्य अर्थ लाभ होता है, यात्रा पर जाने वाले को 'अग्ने नय' इत्यादि सूक्त से घृत का हवन करना चाहिये। जो व्यक्ति सदा 'सुश्लोक' का जप करता है वह सदा पुत्रों को प्राप्त करता है। 'कंकतो न' इत्यादि सूक्त (के जप) से सभी विषों का नाश होता है। ३४-३७।

यो जात इति सूक्तेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।)
गणानामिति सूक्तेन स्निग्धमाप्नोत्यनुत्तमम् ॥३८
यो मे राजन्नितीमां तु दुःस्वप्नशमनीमृचम् ।
अध्वनि प्रस्थितो यस्तु पश्येच्छत्रुं समुत्थितम् ॥३९
अप्रशस्तं प्रशस्तं वा कुविदङ्ग इमं जपेत् ।
द्वाविंशकं जपन्सूक्तमाध्यात्मिकमनुत्तमम् ॥४०
पर्वसु प्रयतो नित्यमिष्टान्कामान्समश्नुते ।
कृणुष्वेति जपन्सूक्तं जुह्वदाज्यं समाहितः ॥४१
अरातीनां हरेत्प्राणान्रक्षांस्यपि विनाशयेत् ।

'यो जात' इत्यादि सूक्त से सभी कामनायें पूर्ण होती हैं। 'गणानाम्' इत्यादि सूक्त (का जप करने) से उत्तम स्नेही-जनों की प्राप्ति होती है।

---

१ पितरित्युपतिष्ठेत क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति । २ इत्य मार्गतः ।

जो व्यक्ति यात्रा पर जा रहा हो और जो शत्रु को आया हुआ देखे उसे 'यो मे राजन्' इत्याहि ऋचा का जप करना चाहिए। अकल्याण देखने वाले व्यक्ति को कल्याणकारी 'कुविदङ्ग इमम्' इत्यादि का जप करना चाहिये। पर्वों के अवसरों पर इन्द्रियों को वश में करके बाइस ऋचाओं वाले श्रेष्ठ आध्यात्मिक सूक्त का जप करने से मनुष्य सदैव अभीष्ट की प्राप्ति कर लेता है। जो मनुष्य समाहित चित्त होकर 'कृणुष्व' इत्यादि सूक्त का जप करते हुये हवन करता है, वह शत्रुओं का प्राण हरण तो करता ही है, राक्षसों का भी नाश कर डालता है। ३८-४१½।

उपतिष्ठेत्स्वयं वह्निं परि (री) त्यृच दिने दिने ॥४२
तं रक्षति स्वयं वह्निर्विश्वतो विश्वतोमुखः।
हंसः शुचिषदित्येतच्छुचिरीक्षेद्दिवाकरम् ॥४३
([1]कृषिं प्रपद्यमानस्तु स्थालीपाकं यथाविधि।
जुहुयात्क्षेत्रमध्ये तु [2]मुनिः स्वाहान्तपञ्चभिः (?)॥४४
इन्द्राय च मरुद्भ्यस्तु पर्जन्याय भगाय च।
यथालिङ्गं तु विहरेल्लाङ्गलं तु कृषीवलः॥४५
युक्तो धान्याय सीतायै शुनासीरमथोत्तरम्।)
गन्धमाल्यैर्नमस्कारैर्यजेदेताश्च देवताः॥४६
प्रवापने प्रलवने खलसीतापहारयोः।
अमोघं कर्म भवति वर्धते सर्वदा कृषिः॥४७

जो मनुष्य प्रतिदिन 'परि' इत्यादि ऋचा से अग्नि की उपस्थापना करता है, उसकी रक्षा विश्वतोमुख अग्नि सम्पूर्ण विश्व में करती है। (स्नान आदि से) शुचि होकर 'हंसः शुचिषत्' इत्यादि मन्त्र से सूर्य का दर्शन करना चाहिये। तदनन्तर विधिपूर्वक चरु बनाकर खेत के मध्य में उक्त ऋचा के अन्त में 'स्वाहा' पद जोड़कर हवन करना चाहिये, तत्पश्चात् इन्द्र, धान्य और हल की रेखा के नाम से आहुतियाँ डालकर सुगन्धित पदार्थों, मालाओं और प्रणाम आदि से देवपूजन करना चाहिये। ऐसा करने से खेत में उपज अधिक होती है, परन्तु यह कर्म बीज बोने, धान्य काटने या खलिहान उठाने के समय ही करना चाहिये। ४२-४७।

१ कृषि⋯⋯शुनासीरमथोत्तरम् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। २ क. ङ. च. छ. स्वनी।

समुद्रादिति सूक्तेन कामानाप्नोति पावकात् ।
[1]विश्वानि न इति द्वाभ्यां य ऋग्भ्यां वह्निमर्हति ॥४८
स तरत्यापदः सर्वा यशः प्राप्नोति चाक्षयम् ।
विपुलां श्रियमाप्नोति जयं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥४९
अग्ने त्वमिति च स्तुत्वा धनमाप्नोति वाञ्छितम् ।
प्रजाकामो जपेन्नित्यं वरुणदैवतत्रयम् ॥५०
स्वस्त्या त्रयं जपेत्प्रातः सदा स्वस्त्ययनं महत्
स्वस्ति पन्था इति प्रोच्य स्वस्तिमान्व्रजतेऽध्वनि[2] ॥५१
[3]विजिहीष्व वनस्पते शत्रूणां [4]व्यापितं भवेत् ।
स्त्रिया गर्भप्रमूढाया गर्भमोक्षणमुत्तमम् ॥५२

'समुद्रात्' इत्यादि सूक्त से अग्नि में आहुतियाँ डालने में मनुष्य अग्नि से सभी कामनाओं को पूर्ण कर लेता है। जो व्यक्ति विश्वानि न' इत्यादि दो ऋचाओं से अग्नि की पूजा करता है वह सभी विपत्तियों से छुटकारा पाकर अक्षय यश, विपुल सम्पत्ति तथा श्रेष्ठ विजय को प्राप्त कर लेता है। 'अग्ने-त्वम्' इत्यादि मन्त्र से अग्नि की स्तुति करने से अभीष्ट धन की प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति सन्तान की कामना करता है उसे नित्य वरुण देवता से सम्बद्ध तीन ऋचाओं का जप करना चाहिये। 'स्वस्त्या' आदि तीन ऋचाओं का प्रातःकाल जप करने से परम कल्याण होता है। 'स्वस्ति पन्था' इत्यादि का जप करके यात्रा करने से मार्ग कुशलपूर्वक समाप्त हो जाता है। विजिहीष्ववनस्पते' इत्यादि मन्त्र का जप करने से शत्रुओं को व्याधि प्राप्ति होती है और गर्भवती स्त्री को सुगमता से प्रसव होता है।४८-५२।

अच्छा वदेति सूक्तं च वृष्टिकामः प्रयोजयेत् ।
निराहारः क्लिन्नवासा न चिरेण प्रवर्षति ॥५३
मनसः काम इ (मि) त्येनां पशुकामो नरो जपेत् ।
कर्दमेन इति स्नायात्प्रजाकामः शुचिव्रतः ॥५४
[5]अश्वपूर्वा इ (र्णामि) ति स्नायाद्राज्यकामस्तु मानवः ।
[6]रोहिते चर्मणि स्नायाद्ब्राह्मणस्तु यथाविधि ॥५५
राजा चर्मणि वैयाघ्रे छागे वैश्यस्तथैव च ।
दशसाहस्त्रिको होमः प्रत्येकं परिकीर्तितः ॥५६

१ छ. ०श्वानर इ० । २ छ. ०मान्प्रव्रजेऽध्व० । ३ छ. ०जिगीषुर्वन० ।
४ छ. व्याधितं० । ५ ख अश्वपूर्णा । ६ क. ङ. हरिते ।

वर्षा की कामना करने वाले व्यक्ति को 'अच्छावद' इत्यादि सूक्त का जप करना चाहिये। यदि वर्षाकामी निराहार रहकर गीले वस्त्रों को धारण करके उपर्युक्त मन्त्र का जप करता है तो शीघ्र ही वृष्टि होने लगती है। जो मनुष्य पशु चाहता हो उसे 'मनसः काम' इत्यादि ऋचा का जप करना चाहिये। जो सन्तान चाहता हो उसे 'कर्दमेन' इत्यादि मन्त्र से पवित्र मन होकर स्नान करना चाहिये। राज्य चाहने वाले मनुष्य को 'अश्वपूर्वा' इत्यादि मन्त्र से स्नान करना चाहिये। ब्राह्मण को मृगचर्म पर, क्षत्रिय को व्याघ्रचर्म पर और वैश्य को बकरे के चर्म पर बैठकर विधिपूर्वक स्नान करना चाहिये। इस विधि को पूर्ण करने के लिए दस हजार आहुतियों से युक्त यज्ञ करना चाहिये।५३-५६।

आगार इति सूक्तेन गोष्ठे[1] गां लोकमातरम्।
उपतिष्ठेद्व्रजेच्चैव यदीच्छेत्ताः सदाऽक्षयाः ॥५७
उपेतितिसृभी राज्ञो दुन्दुभीनभिमन्त्रयेत्।
तेजो बलं च प्राप्नोति शत्रुं चैव नियच्छति ॥५८
तृणपाणिर्जपेत्सूक्तं रक्षोघ्नं दस्युभिर्वृतः।
ये के[2] च ज्मेत्यृचं जप्त्वा दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥५९
जीमूतसूक्तेन तथा सेनाङ्गान्यभिमन्त्रयेत्।
यथालिङ्गं ततो राजा विनिहन्ति रणे रिपून्[3] ॥६०

जो व्यक्ति सदैव अपनी गायों की अक्षयता चाहता है उसे 'आगार इत्यादि' सूक्त से लोकमाता गाय को गोशाला में रखना चाहिये तथा गोचारण स्थान को उनके साथ-साथ जाना चाहिये। 'उपेति' आदि तीन सूक्तों से राजा की दुन्दुभि को अभिमन्त्रित करना चाहिये। इससे मनुष्य तेज और बल की प्राप्ति करता है तथा शत्रु को अपने वश में कर लेता है। चोरों से घिर जाने पर हाथ में तिनके को लेकर 'रक्षोघ्नम्' इत्यादि सूक्त का जप करना चाहिये। 'ये केचज्म' इत्यादि ऋचा का जप करने से दीर्घायु की प्राप्ति होती है। 'जीमूत' सूक्त से अस्त्र-शस्त्रों को अभिमन्त्रित करके रण में जाने वाला राजा शत्रुओं का संहार कर डालता है।५७-६०।

---

१ क. ङ. °ष्ठे गोलो°। २ ख. केचिन्मेत्यृ°। ३ छ. °न्। आग्नेये°।

प्राग्नयेति त्रिभिः सूक्तैर्धनमाप्नोति चाक्षयम् ।
अमीवहेति सूक्तेन भूतानि [1]स्थापयेन्निशि ॥६१
संबाधे विषमे दुर्गे बद्धो[2] वा निर्गतः क्वचित् ।
पलायन्वा गृहीतो वा सूक्तमेतत्तथा जपेत् ॥६२
त्रिरात्रं नियतोपोष्य श्रपयेत्पायसं चरुम् ।
तेनाऽऽहुतिशतं पूर्णं जुहुयात्त्र्यम्बकेत्यृचा ॥६३
समुद्दिश्य महादेवं जीवेदब्दशतं सुखम् ।
तच्चक्षुरित्यृचा स्नात उपतिष्ठेचद्दिवाकरम् ॥६४
उद्यन्तं मध्यगं चैव दीर्घमायुर्जिजीविषुः ।

'प्राग्नय' आदि तीन सूक्तों का जप करने से अक्षय धन की प्राप्ति होती है। 'अमीवह' आदि सूक्त से रात्रि में भूतों की स्थापना करनी चाहिये। विषम परिस्थिति में दुर्ग (किले) के भीतर बाँध दिये जाने पर (भी) इस सूक्त का जप करना चाहिये। तीन रात्रि नियमपूर्वक उपवास करके चरु बनाना चाहिये, तदनन्तर महादेव (शङ्कर) को सम्बोधित करके 'त्र्यम्बक' आदि ऋचा को पढ़कर सौ आहुतियाँ डालने से मनुष्य सुखपूर्वक एवं सौ वर्ष तक जीता है। दीर्घायु तक जीवित रहने की इच्छा करने वाले मनुष्य को स्नानान्तर 'तच्चक्षुः' इत्यादि ऋचा से उदयकालीन एवं मध्याह्नकालीन सूर्य का उपस्थापन करना चाहिये।६१-६४½।

([3]न हीति च चतुष्केण मुच्यते महतो भयात् ॥६५
सूक्ताभ्यां पर एवाऽऽभ्यां हुताभ्यां भूतिमाप्नुयात् ।)
इन्द्रासोमेति सूक्तं तु कथितं शत्रुनाशनम् ॥६६
यस्य लुप्तं व्रतं मोहाद्व्रात्यैर्वा संसृजेत्सह ।
उपोष्याऽऽज्यं स जुहुयात्त्वमग्ने व्रतपा इति ॥६७
आदित्येत्यृक्च (चं) सम्राजं जप्त्वा वादे जयी भवेत् ।
महीति च चतुष्केण मुच्यते महतो भयात् ॥६८

'नहि' इत्यादि चार ऋचाओं के जप करने से महाभय दूर हो जाता है। इन्हीं में से बाद वाली दो ऋचाओं को पढ़कर हवन करने से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। 'इन्द्रासोम' इत्यादि सूक्त शत्रु-नाशक कहा गया है। मोहवश या

१ ङ. °निस्वाप° । २ छ. वन्धो । ३ न हीति.........भूतिमाप्नुयात् छ. पुस्तकेनास्ति ।

व्रात्यों के संसर्ग के कारण जिसका व्रत लुप्त हो गया हो, उसे उपवास करके 'अग्ने व्रतपा' इत्यादि मन्त्र से घी की आहुतियाँ देनी चाहिये। 'आदित्य इत्यादि' ऋचा का जप करने वाला मनुष्य विवाद में विजयी होता है और 'मही' इत्यादि चार सूक्तों के जप से महाभय से मुक्ति होती है।६५-६८।

ऋचं जप्त्वा यदि ह्येतत्सर्वकामानवाप्नुयात्।
द्वाचत्वारिंशतं चैन्द्रं जप्त्वा नाशयते रिपून्॥६९
वाचं महीति जप्त्वा च प्राप्नोत्यारोग्यमेव च।
शं नो भवेति द्वाभ्यां तु भुक्त्वाऽन्नं प्रयतः शुचिः॥७०
हृदयं पाणिना स्पृष्ट्वा व्याधिभिर्नाभिभूयते।
उत्तमेदमिति स्नातो हुत्वा शत्रुं प्रमापयेत्॥७१
शं नोऽग्न इति सूक्तेन [1]हुतेनार्थमवाप्नुयात्।
[2]कन्या वारितिसूक्तेन दिग्दोषाद्विप्रमुच्यते॥७२

बयालीस ऋचाओं वाले इन्द्रसूक्त का जप करने से शत्रुओं का नाश होता है। 'वाचंमही' इत्यादि के जप से आरोग्य लाभ होता है। भोजन करने के उपरान्त इन्द्रियों को वश में करके 'शं नो भव' आदि दो ऋचाओं को पढ़ते हुये हाथ से हृदय का स्पर्श करने वाला रोगग्रस्त नहीं होता है। स्नान कर चुकने के बाद 'उत्तमेदम्' इत्यादि ऋचा से हवन करने से शत्रु की मृत्यु होती है। 'शंनोऽग्ने' सूक्त को पढ़कर हवन करने से धन की प्राप्ति होती है। 'कन्या वाः' सूक्त का जप करने से दिशा दोष नहीं लगता है।६९-७२।

यदद्य कच्चेत्युदिते जप्ते वश्यं जगद्भवेत्।
यद्वागिति च जप्तेन वाणी भवति संस्कृता॥७३
वा (व) चोविदमिति त्वेतां जपन्वाचं समश्नुते।
पवित्राणां पवित्रं तु पावमान्यो ह्यृचो मताः॥७४
वैखानसा ऋचस्त्रिंशत्पवित्राः परमा मताः।
ऋचो द्विषष्टिः प्रोक्ताश्च परस्येत्यृषिसत्तम॥७५
सर्वकल्मषनाशाय पावनाय शिवाय च।
स्वादिष्ठयेति सूक्तानां सप्तषष्टिरुदाहृता॥७६

---

१ छ. °नान्नम°। २ छ. °वारर्षिसू°।

दशोत्तराण्यृचश्चैताः पावमान्यः शतानि षट् ।
एतज्जपंश्च जुह्वच्च घोरं मृत्युभयं जयेत् ॥७७

सूर्योदय होने पर 'यदद्य कच्च' इत्यादि सूक्त का जप करने से जगत् वशीभूत होता है और 'यद्वाक्' इत्यादि के जप से वाणी सुसंस्कृत होती है। 'वाचो विदम्' इत्यादि के जप से वाक्सिद्धि होती है, पवित्रों में पवित्र, पवमान सम्वन्धिनी तीस ऋचायें वैखानस ऋषि से सम्बद्ध हैं । अये ऋषिश्रेष्ठ ! 'परस्य' इत्यादि सूक्त की बासठ ऋचायें सभी पापों का नाश करने वाली, कल्याण देने वाली तथा पवित्र करने वाली हैं । 'स्वादिष्ठय' आदि सूक्त में सड़सठ ऋचायें बतायी गयी हैं । इस सूक्त के बाद छह सौ दश ऋचायें पवमान सोम से सम्बद्ध हैं, जिनके जप से अथवा जिनके द्वारा हवन करने से (अनुष्ठाता) घोर मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है ।७३-७७।

आपो हिष्ठेति वारिस्थो जपेत्पापभयार्दने ।
[1]प्रदेवत्रेति नियतो जपेच्च मरुधन्वसु ॥७८
प्राणान्तिके भये प्राप्ते क्षिप्रमायुस्तु विन्दति ।
प्रावेपामित्यृचमेकां जपेच्च मनसा दिशि ॥७९
व्युष्टायामुदिते सूर्ये द्यूते जयमवाप्नुयात् ।
मा प्रगामेति मूढश्च पन्थानं पथि विन्दति ॥८०
क्षीणायुरिति मन्येत यं कंचित्सुहृदं प्रियम् ।
यत्ते यमामिति[2] स्नातस्तस्य मूर्धानमालभेत् ॥८१
सहस्रकृत्वः यश्चाहं तेनाऽऽयुर्विन्दते महत् ।

जल में खड़े होकर 'आपोहिष्ठा' इत्यादि का जप करने से पाप का भय नहीं रह जाता है। प्राणान्तक भय उपस्थित होने पर अथवा जलशून्य मार्गों में नियमपूर्वक 'प्रदेवन्न' इत्यादि का जप करने से शीघ्र ही (पूर्ण) आयु की प्राप्ति हो जाती है । रात्रि में, उषाकाल में और सूर्योदय काल में 'प्रावेपाम्' इत्यादि ऋचा का मानसिक जप करने से जुयें में विजय प्राप्त होती है। 'मा प्रगाम' इत्यादि के जप से मार्ग में भटके हुये को मार्ग मिल जाता है। अपने जिस किसी इष्ट मित्र को क्षीणायु समझे, उसे मस्तक से स्नान कराकर

१ क. ङ. °वमिति । २ छ. °यमिति° तु स्ना° ।

'यत्ते यमाम्' इत्यादि ऋचा से पाँच दिन तक एक-एक सहस्र बार अभिमन्त्रित करने से उसे दीर्घायु प्राप्त होती है।७८-८१½।

[1]इदमित्थेति जुहुयाद्घृतं प्राज्ञः सहस्रशः ॥८२
पशुकामो गवां गोष्ठे अर्थकामश्चतुष्पथे।
वयः [2]सुपर्णा इत्येतां जपन्वै विन्दते श्रियम् ॥८३
हविष्यन्तीयमभ्यस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते।
तस्य रोगा विनश्यन्ति कायाग्निर्वर्धते तथा ॥८४
या ओषधयः स्वस्त्ययनं सर्वव्याधिविनाशनम्।
वृहस्पते अतीत्येतद्वृष्टिकामः प्रयोजयेत् ॥८५
सर्वत्रेति परा शान्तिर्ज्ञेयाऽप्रतिरथस्तथा।
[3]सूक्तं [4]सांकश्यपं नित्यं प्रजाकामस्य कीर्तितम् ॥८६

जो बुद्धिमान् मनुष्य पशुओं की कामना करता हो उसे गोशाला में 'इदमित्था' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर घी से हजार बार हवन करना चाहिये। धन की इच्छा करने वाला व्यक्ति चौराहे पर 'वयः सुपर्णा' इत्यादि ऋचा का जप करने से ऐश्वर्य को प्राप्त करता है। हविष्य का भक्षण करते हुये उपर्युक्त मन्त्र का जप करने से मनुष्य सभी पापों से छूट जाता है। 'हविष्यन्तीयम्' इसका अभ्यास करने से सकल पाप एवं उसके सभी रोग छूट जाते हैं और उसकी शारीरिक कान्ति वढ़ने लगती है। 'या ओषधयः' इत्यादि मंगलकारी मन्त्र सभी व्याधियों को नष्ट करने वाला है। वृष्टिकामी को 'वृहस्पते अतीत्य' इत्यादि मन्त्र का प्रयोग करना चाहिये। 'अप्रतिरथः' इत्यादि ऋचा सर्वत्र शान्ति प्रदान करने वाली होती है। सन्तानार्थी के लिये सदा 'सांकश्यप' नामक सूक्त (उपयुक्त) बताया गया है।८२-८६।

अहं रुद्रेभिरित्येतद्वाग्ग्मी[5] भवति मानवः।
न योनौ जायते विद्वाञ्जपन्रात्रीति रात्रिषु ॥८७
रात्रिसूक्तं जपन्रात्रौ रात्रिं क्षेमी नयेन्नरः।
कल्पयन्तीति च जपन्नित्यं कृत्वाऽरिनाशनम् ॥८८

---

१ छ, इदं मेध्येति। २ छ. °पर्ण इ°। ३ छ. सूत। ४ ख. ग. सकाश्यपं। ५ छ. °द्रेति इत्ये°।

आयुष्यं चैव वर्चस्यं सूक्तं दाक्षायणं महत् ।
उत देवा इति जपेदामयघ्नं धृतव्रतः ॥८९
अयमग्ने जरीत्येतज्जपेदग्निभये सति ।
अरण्यानीत्यरण्येषु जपेत्तद्भयनाशनम् ॥९०

सांकश्यप सूक्त का नित्य जप करने से सन्तान लाभ होता है। 'अहं रुद्रेभिः' इत्यादि सूक्त का जप करने से मनुष्य वाग्मी होता है। रात्रि में 'रात्रि' इत्यादि इस ऋचा का जप करने वाले विद्वान् पुरुष को पुनः माता के गर्भ में नहीं जाना पड़ता है। रात्रि में रात्रिसूक्त का जप करने से मनुष्य कुशलपूर्वक रात्रि व्यतीत करता है, और प्रतिदिन 'कल्पयन्ति'इत्यदि ऋचा का जप करने से शत्रुओं का नाश होता है। महान् दाक्षायण सूक्त दीर्घायु तथा ब्रह्मवर्चस् को देने वाला होता है। व्रतपूर्वक 'उत देवाः' इत्यादि मन्त्र का जप करने से रोग नाश होता है। अग्नि का भय होने पर 'अयमग्ने जरि' इत्यादि मन्त्र का जप करना चाहिए। वनों में 'अरण्यान्' आदि मन्त्र का जप करने से वहाँ का भय नष्ट हो जाता है।८७-९०।

ब्राह्मीमासाद्य सूक्ते द्वे ऋचं ब्राह्मीं शतावरीम् ।
पृथगद्भिर्घृतैर्वाऽथ मेधां लक्ष्मीं च विन्दति[1] ॥९१
शास इत्था सपत्नघ्नं संग्रामं विजिगीषतः[2] ।
ब्रह्मणाऽग्निः संविदानं गर्भमृत्युनिवारणम् ॥९२
अपेहीति जपेत्सूक्तं शुचिर्दुःस्वप्ननाशनम् ।
येनेदमिति वै जप्त्वा समाधिं विन्दते परम्[3] ॥९३
मयोभूर्वात इत्येतद्गवां स्वस्त्ययनं परम्[4] ।
शाम्वरीमिन्द्रजालं वा मायामेतेन वारयेत् ॥९४

दो ब्राह्मी ऋचाओं का जप करते हुये जल अथवा घृत से ब्राह्मी अथवा शतावरी का पान करने से बुद्धि और लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। 'शास इत्था' इत्यादि मन्त्र शत्रु को मारने वाला है। इससे संग्राम में विजय की प्राप्ति होती है। 'ब्रह्मणाऽग्निः संविदानं' इत्यादि ऋचा गर्भमृत्यु का निवारण करने वाली होती है। पवित्र होकर 'अपेहि' इत्यादि सूक्त का जप करना चाहिये, इससे दुःस्वप्न का नाश होता है। 'येनेदं' इत्यादि के जप से परम शान्ति की प्राप्ति

---

१ छ. °ति। भास इत्यस° । २ छ. °तः। ब्रह्मणोऽग्नि। ३ क. ख. ङ. पराम्। ४ क. ङ. म्° । सावरी° ।

होती है। 'मयोभूर्वात' इत्यादि सूक्त गायों का परम कल्याण करने वाला है। इसके द्वारा जादू, इन्द्रजाल और माया का निवारण करना चाहिये।९१-९४।

महित्रीणामवोऽस्त्विति[1] पथि स्वस्त्ययनं जपेत्।
[2]प्राग्नये विद्विषन्द्वेष्यं[3] जपेच्च रिपुनाशनम्॥९५
वास्तोष्पतेन मन्त्रेण यजेच्च गृहदेवताः।
जपस्यैष विधिः प्रोक्तो हुते ज्ञेयो विशेषतः॥९६
होमान्ते दक्षिणा देया पापशान्तिर्हुतेन तु।
हुतं शाम्यति चान्नेन अन्नं हेमप्रदानतः॥९७
विप्राशिषस्त्वमोघाः स्युर्बहिः स्नानं तु सर्वतः।
सिद्धार्थका यवा धान्यं पयो दधि घृतं तथा॥९८
क्षीरवृक्षास्तथेध्मं तु होमे[4] वै सर्वकामदाः।
समिधः कण्टकिन्यश्च राजिका रुधिरं विषम्॥९९
अभिचारे तथा शैलमशनं सक्तवः पयः।
दधि भैक्ष्यं फलं मूलमृग्विधानमुदाहृतम्॥१००

मार्ग में 'महित्रीणामवोऽस्तु' इत्यादि कल्याणकारी मन्त्र का जप करना चाहिये। 'प्राग्नये विद्विषन्' इत्यादि मन्त्र का जप शत्रुनाश के लिये करना चाहिये। 'वास्तोष्पते' मन्त्र से गृह-देवताओं का यजन करना चाहिये। यह सारी विधि जप के सम्बन्ध में बतायी गयी है। इसे ही यज्ञ में भी विशेष रूप से समझना चाहिये। यज्ञ के अन्त में दक्षिणा देनी चाहिये। पाप-शान्ति तो हवन से ही हो जाती है। हुताग्नि में अन्न और स्वर्ण डालने से उसकी शान्ति होती है। ब्राह्मणों के आशीर्वचन कभी निष्फल नहीं होते हैं। प्रत्येक कार्य के समय बाह्यस्नान (शारीरिक स्नान) भी करना चाहिये। जल, यव, धान्य, दूव, दही, घृत तथा दूध वाले वृक्ष और यज्ञ में डाला हुआ ईंधन सभी कामनाओं को देने वाले होते हैं। यज्ञ में जो समिधायें प्रयुक्त होती हैं वे हैं—कण्टकिनी, राजिका, रुधिर और विष। ऋग्वेद के अनुसार अभिचार में जिन आहुतियों को होमाग्नि में डालना चाहिये वे हैं दही, भैक्ष्य, फल, कन्द, सत्तू, और पर्वतों पर पाया जाने वाला खाद्य।९५-१००।

---

१ छ. °मवरोस्त्वि°। २ छ. अग्नये। ३ छ. °पत्नेवं ज°। ४ क. ख. छ. होमा।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये ऋग्विधानकथनं नामैकोनषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२५९

अथ षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः
यजुर्विधानम्

पुष्कर उवाच—

यजुर्विधानं वक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु ।
ओंकारपूर्विका राम महाव्याहृतयो मताः ।।१

पुष्कर बोले—हे राम ! (अब) मैं भुक्तिमुक्तिदायक यजुर्विधान के सम्बन्ध में बतलाऊँगा, सुनो ! ओंकार पूर्वक महाव्याहृतियाँ (भूः भुवः स्वः) मानी गयी हैं ।१

सर्वकल्मषनाशिन्यः सर्वकामप्रदास्तथा ।
आज्याहुतिसहस्रेण देवानाराधयेद्बुधः ।।२
[1]मनसः काङ्क्षितं राम मनसेप्सितकामदम् ।
शान्तिकामो यवैः कुर्यात्तिलैः पापापनुत्तये ।।३
धान्यैः सिद्धार्थकैश्चैव सर्वकामकरैस्तथा ।
औदुम्वरीभिरिध्माभिः पशुकामस्य शस्यते ।।४

ये सभी पापों का नाश करने वाली तथा सम्पूर्ण कामनाओं को देने वाली हैं । बुद्धिमान् व्यक्ति को एक हजार आज्याहुतियों से देवताओं की आराधना करनी चाहिये । हे राम ! (इस प्रकार से किया हुआ यज्ञ कर्म) मनोभिलषित कामनाओं को प्रदान करने वाला होता है । शान्ति की कामना करने वाले व्यक्ति को (यह यज्ञ कर्म) जौ से करना चाहिये । और पापों का नाश करने के लिए तिलों से इसका अनुष्ठान करना चाहिये । सभी प्रकार की कामनाओं के लिये धान तथा श्वेत सरसों से यज्ञ करना चाहिये । पशुओं की कामना से गूलर की समिधाओं से किया गया यज्ञ श्रेष्ठ माना गया है ।२-४।

---

१ ङ. नमतः ।

दध्ना चैवान्नकामस्य पयसा शान्तिमिच्छतः ।
अपामार्गसमिद्भिस्तु कामयन्कनकं वहु ॥५
कन्याकामो घृताक्तानि युग्मशो ग्रथितानि तु ।
जातीपुष्पाणि जुहुयाद्ग्रामार्थी तिलतण्डुलान् ॥६
वश्यकर्मणि शाखोट ([1]वासापामार्गमेव च ।
विषाश्रृङ्मिश्रसमिधो व्याधिघातस्य भार्गव ॥७
क्रुद्धस्तु जुहुयात्सम्यक्) शत्रूणां वधकाम्यया ।
सर्वव्रीहिमयीं कृत्वा राज्ञः प्रनिकृतिं द्विजः ॥८
सहस्रशस्तु जुहुया ([2]द्राजा वशगतो भवेत् ।

अन्नकामी को दही तथा शान्ति की कामना करने वाले को दूध से यज्ञ करना चाहिये । जो व्यक्ति वहुत से सोने की कामना करता हो उसे अपामार्ग की समिधाओं से यज्ञ करना चाहिये । कन्या की इच्छा करने वाले को घी में भिगोये हुये तथा दो-दो में वंधे हुये जाती पुष्पों की आहुति देनी चाहिये । वशीकरण के लिये शाखोट, वट, और अपामार्ग की आहुति देनी चाहिये । हे परशुराम ! व्याधि नाश करने वाले यज्ञ में विष तथा रक्त से मिली हुयी आहुतियाँ देनी चाहिये । क्रुद्ध व्यक्ति को शत्रुओं के वध की इच्छा से सम्यक् प्रकार से उपर्युक्त आहुति देनी चाहिये । यदि कोई व्राह्मण धान्यों से राजा की मूर्ति वनाकर उससे एक हजार आहुतियाँ देता है तो राजा उसके अधीन हो जाता है ।५-८½।

वस्त्रकामस्य पुष्पाणि दूर्वाव्याधिविनाशिनी ॥९
व्रह्मवर्चसकामस्य वासोऽग्रं च विधीयते ।
प्रत्यङ्गिरेषु जुहुया) त्तुषकण्टकभस्मभिः ॥१०
विद्वेषणे च पक्ष्माणि काककौशिकयोस्तथा ।
कापिलं च घृतं हुत्वा तथा चन्द्रग्रहे द्विज ॥११

वस्त्र की इच्छा करने वाले के लिए फूलों की आहुति वतायी गई है । दूव की आहुति व्याधियोंका विनाश करने वाली हुआ करती है । ब्रह्मवर्चस् कामी को सुगन्धियुक्त आहुतियाँ देनी चाहिये । और प्रत्यङ्गिरों में भूसी, काँटों तथा

---

१ वासापामार्गमेव.........जुहुयात्सम्यक् च. पुस्तके नास्ति ।
२ द्राजा.........जुहुया च. पुस्तके नास्ति ।

भस्म की आहुतियाँ देनी चाहिए। (परस्पर मित्रों में) विद्वेष कराने के लिए चन्द्रग्रहण के दिन कौवे और उल्लू के पंखों तथा कपिला गाय के घृत से आहुति देनी चाहिये।९-११।

वचाचूर्णेन संपातात्समानीय च तां वचाम्।
सहस्रमन्त्रितां भुक्त्वा मेधावी जायते नरः ।।१२
एकादशाङ्गुलं शङ्कुं लौहं खादिरमेव च।
द्विषतो वधोऽसीति जपन्निखनेद्रिपुवेश्मनि ।।१३
उच्चाटनमिदं कर्म शत्रूणां कथितं तव।
चक्षुष्या इति जप्त्वा च विनष्टं चक्षुराप्नुयात् ।।१४

वचा चूर्ण के ढेर से थोड़े से चूर्ण को लेकर उसे एक सहस्र मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके खाने से मनुष्य मेधावी हो जाता है। 'द्विषतो वधोऽसीति' इस मन्त्र का जप करते हुये शत्रु के घर मे ग्यारह अंगुल लम्बा लोहे अथवा खैर का शंकु (काँटा) गाड़ देना चाहिये। हे परशुराम! मैंने इस प्रकार तुमसे शत्रुओं के उच्चाटन कर्म को बतलाया है। 'चक्षुष्या' इत्यादि मन्त्र का जप करके नष्ट हुए नेत्र को प्राप्त किया जा सकता है।१२-१४।

उपयुञ्जत इत्येतदनुवाकं तथाऽन्नदम्।
तनूनपाग्ने सदिति दूर्वां हुत्वार्ऽतिवर्जितः ।।१५
भेषजमसीति दध्याज्यैर्होमः पशूपसर्गनुत्।
त्रियम्बकं यजामहे होमः सौभाग्यवर्धनः ।।१६
कन्यानाम गृहीत्वा तु कन्यालाभकरः परः।
भयेषु तु जपन्नित्यं भयेभ्यो विप्रमुच्यते ।।१७

'उपयुञ्जते' इत्यादि अनुवाक (का जप) अन्न प्रदान करने वाला है। 'तनूनपाग्ने सत्' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर दूर्वा की आहुति देने से दुःखों का नाश होता है। 'भेषजमसि' इत्यादि मन्त्र से दही और आज्य की आहुति पशुओं की पीड़ा को दूर करती है। 'त्रियम्बकं यजामहे' इत्यादि मन्त्र से किया गया हवन सौभाग्यवर्धन करता है। कन्या (विशेष) का नाम लेकर इस मन्त्र का जप करने से (उस) कन्या की प्राप्ति हो जाती है। किसी भय के उपस्थित होने पर नित्य इस मन्त्र का जप करने से (सभी प्रकार के) भयों से छुटकारा प्राप्त हो जाता है।१५-१७।

धुस्तूरपुष्पं सघृतं हुत्वा स्यात्सर्वकामभाक् ।
हुत्वा तु गुग्गुलं राम स्वप्ने पश्यति शंकरम् ॥१८
युञ्जते मनोऽनुवाकं जप्त्वा दीर्घायुराप्नुयात् ।
विष्णो रराटमित्येतत्सर्वबाधाविनाशनम् ॥१९
रक्षोघ्नं च यशस्यं च तथैव विजयप्रदम् ।
अयं नो अग्निरित्येत्संग्रामे विजयप्रदम् ॥२०

(इस मन्त्र को पढ़कर) घी के साथ धतूरे के पुष्पों से हवन करने से मनुष्य सभी कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। अये राम ! (इसी मन्त्र से) गुग्गुल की आहुति देने से स्वप्न में शंकर का दर्शन होता है। 'युञ्जते मनः' इत्यादि अनुवाक् का जप करने से दीर्घायु की प्राप्ति होती है। 'विष्णोररराट' इत्यादि मन्त्र सभी विघ्न-बाधाओं का विनाशक होता है। यह मन्त्र राक्षसों का संहार करने वाला, यश प्रदान करने वाला तथा विजय दिलाने वाला है। 'अयं नो अग्निः' इत्यादि मन्त्र संग्राम में विजय दिलाने वाला है।१८-२०।

इदमापः प्रवहत स्नाने पापापनोदनम् ।
विश्वकर्मन्नु हविषा सूचीं लौहीं दशांगुलम् ॥२१
कन्यायां निखनेद्द्वारि साऽन्यस्मै न प्रदीयते ।
देव सवितरेतेन हुतेनैतेन चान्नवान् ॥२२
अग्नौ स्वाहेति जुहुयाद्बलकामो द्विजोत्तमः ।
तिलैर्यवैश्च धर्मज्ञ तथाऽपामार्गतण्डुलैः ॥२३
सहस्रमन्त्रितां कृत्वा तथा गोरोचनां द्विज ।
तिलकं च तथा कृत्वा जनस्य प्रियतामियात् ॥२४

(स्नान काल में) 'इदमापः प्रवहते' इत्यादि मन्त्र का जप करने से (सभी) पापों का नाश होता है। 'विश्वकर्मन्नु हविषा' इस मन्त्र से (अभीष्ट) कन्या के (घर के) द्वार पर दश अंगुल लम्बी लोहे की सुई गाड़ देने से वह कन्या दूसरे को नहीं दी जा सकती है। 'देव सवितरेतेन' इत्यादि मन्त्र से आहुति देने से अन्न लाभ होता है। अये धर्मज्ञ ! बल चाहने वाले श्रेष्ठ द्विज को 'अग्नौ स्वाहा' इत्यादि मन्त्र से तिल, यव, अपामार्ग और तण्डुल की आहुतियाँ देनी चाहिये। हे द्विज ! इसी प्रकार उक्त मन्त्र के गोरोचन को एक सहस्र बार अभिमन्त्रित करके उसकी तिलक लगाने से मनुष्य लोकप्रिय हो जाता है।२१-२४।

रुद्राणां च तथा जप्यं सर्वाघविनिषूदनम् ।
सर्वकर्मकरो होमस्तथा सर्वत्र शान्तिदः ॥२५
अजाविकानामश्वानां कुञ्जराणां तथा गवाम् ।
मनुष्याणां नरेन्द्राणां बालानां योषितामपि ॥२६
ग्रामाणां नगराणां च देशानामपि भार्गव ।
उपद्रुतानां धर्मज्ञ व्याधितानां तथैव च ॥२७
[1]मरके समनुप्राप्ते रिपुजे च तथा भये ।
रुद्रहोमः परा शान्तिः पायसेन घृतेन च ॥२८

रुद्र मन्त्रों (रुद्राध्याय) का जप समस्त पापों का नाश करने वाला होता है। (रुद्र मन्त्रों से किया गया) हवन सभी कार्यों को सिद्ध करने वाला तथा सर्वत्र शान्ति प्रदान करने वाला है। अये भार्गव ! बकरे, भेड़े, घोड़े, हाथी, बैल, मनुष्य, राजा, बालक, स्त्री, गाँव, नगर तथा देश के ऊपर विपत्ति आने पर अथवा महामारी तथा शत्रु का भय उत्पन्न होने पर रुद्रमन्त्रों से घी और करवीर की आहुतियाँ देने से बिलकुल शान्ति हो जाती है।२५-२८।

कूष्माण्डघृतहोमेन सर्वान्पापान्व्यपोहति ।
सक्तुयावकभैक्षाशी नक्तं मनुजसत्तम ॥२९
बहिः स्नानरतो मासान्मुच्यते ब्रह्महत्यया ।
मधुवातेति मन्त्रेण होमादितोऽखिलं लभेत् ॥३०
दधिक्राव्णेति हुत्वा तु पुत्रान्प्राप्नोत्यसंशयम् ।
तथा घृतवतीत्येतदायुष्यं स्याद्घृतेन तु ॥३१
स्वस्ति न इन्द्र इत्येतत्सर्वबाधाविनाशनम् ।
इह गावः प्रजायध्वमिति पुष्टिविवर्धनम् ॥३२
घृताहुतिसहस्रेण तथाऽलक्ष्मीविनाशनम् ।

अये राजन् ! रात्रि में सत्तू, जौ की काँजी तथा भिक्षान्न को खाकर और (उक्त मन्त्रों को पढ़कर) कुम्हड़े तथा घी की आहुतियाँ देने से सभी पापों का नाश हो जाता है। अये ! एक मास तक 'बहिः स्नान' नामक कर्म करने से मनुष्य ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है। 'मधुवाता' इत्यादि मन्त्र से आहुतियाँ देने पर सभी वस्तुओं की प्राप्ति हो जाती है। 'दधिक्राव्णा' इत्यादि मन्त्र से

---

१ क. ङ. च. मकरे। ख. ग. नरके।

आहुतियाँ देने पर निश्चय ही पुत्रों की प्राप्ति होती है। 'घृतवती' इस मन्त्र को पढ़कर दी गई घी की आहुति (दीर्घ) आयु की प्राप्ति कराने वाली होती है। 'स्वस्ति न इन्द्र' इत्यादि मन्त्र समस्त विघ्न बाधाओं का नाश करने वाला है। 'इह गावः प्रजायध्वम्' यह मन्त्र पुष्टिवर्धक है। इसे पढ़कर एक हजार घी की आहुतियाँ देने से दरिद्रता का नाश हो जाता है। २९-३२½।

स्रुवेण देवस्य त्वेति हुत्वाऽपामार्गतण्डुलम् ॥३३
मुच्यते विकृताच्छीघ्रमभिचारान्न संशयः।
[1]रुद्र [2]यत्ते पलाशस्य समिद्भिः कनकं लभेत् ॥३४
शिवो भवेत्यग्न्युत्पाते व्रीहिभिर्जुहुयान्नरः।
याः सेना इति चैतच्च तस्करेभ्यो भयापहम् ॥३५

'देवस्य त्वा' इस मन्त्र से स्रुवा पर अपामार्ग और तण्डुल चढ़ाकर आहुति देने से शीघ्र ही विकृत अभिचारों (मारण, मोहन आदि उपद्रवों) का नाश हो जाता है इसमें संशय नहीहै। 'रुद्र यत्ते' इत्यादि मंत्र को पढ़कर पलाश की समिधाओं से यज्ञ करने से सुवर्ण लाभ होता है। अग्नि का उत्पात होने पर 'शिवो भव' इत्यादि मंत्र को पढ़कर धान से यज्ञ करना चाहिये। 'याः सेना' इत्यादि मन्त्र चोरों के भय को दूर करने वाला है।३३-३५।

यो [3]अस्मभ्यमरातीयाद्धुत्वा कृष्णतिलान्नरः।
सहस्रशोऽभिचाराच्च मुच्यते विकृताद्द्विज ॥३६
अन्नेनान्नपतेत्येवं हुत्वा चान्नमवाप्नुयात्।
हंसः शुचिषदित्येतज्जप्तं तोयेऽघनाशनम्[4] ॥३७
[5]चत्वारि शृङ्ग इत्येत्सर्वपापहरं जले।
देवा यज्ञेति जप्त्वा तु ब्रह्मलोके महीयते ॥३८
वसन्तेति च हुत्वाऽऽज्यमादित्याद्वरमाप्नुयात्।
सुपर्णोऽसीति चेत्यस्य कर्म व्याहृतिवद्भवेत् ॥३९
नमः स्वाहेति त्रिर्जप्त्वा बन्धनान्मोक्षमाप्नुयात्।
अन्तर्जले त्रिरावर्त्य द्रुपदां सर्वपापमुक् ॥४०

---

१ क. ङ. रुद्र यत्ते। २ छ. °द्र पातु प°। ३ ख. ग. घ. °मयाती°। ४ ख. ग. घ. तोयोघ°। ५ छ. °रि भृङ्गे त्वेतत्तु सर्व°।

अये द्विज ! 'या अस्मभ्यमरातीयात्' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर कृष्णतिल से एक सहस्र आहुतियाँ डालने से मनुष्य विकृत अभिचारों से मुक्त हो जाता है। 'अन्नेनान्नपते' इत्यादि मन्त्र से यज्ञ करने अन्न की प्राप्ति होती है। जल में 'हंसः शुचिषत्' इत्यादि मन्त्र का जप करने से पापों का नाश होता है। जल में 'चत्वारिश्शृङ्गा' इत्यादि मन्त्र का जप सभी पापों का नाश करने वाला है। 'देवा यज्ञ' इत्यादि मन्त्र के जप से मनुष्य ब्रह्मलोक में महत्त्व को प्राप्त कर लेता है। 'वसन्त' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर आज्याहुति देने से सूर्य से वरदान की प्राप्ति होती है। 'सुपर्णोऽसि' इत्यादि मन्त्र का जप करने के कर्म व्याहृतियों की तरह (पवित्र तथा फलदायक) हो जाता है। 'नमः स्वाहा' इत्यादि मन्त्र का तीन वार जप करने से (सभी प्रकार के) वन्धनों से मुक्ति मिल जाती है। जल के भीतर 'द्रुपदाम्' इत्यादि मन्त्र का तीन वार जप सभी पापों का नाशक हुआ करता है ।३६-४०।

इह गावः प्रजायध्वं मन्त्रोऽयं बुद्धिवर्धनः।
हुतं तु सर्पिषा दध्ना पयसा पायसेन वा[1] ॥४१
शं नो देवेति चैतेन हुत्वा पर्णफलानि च।
आरोग्यं श्रियमाप्नोति जीवितं च चिरं तथा ॥४२
ओषधीः प्रतिमो दध्वं वपने लवनेऽर्थकृत्।
अश्वावती पायसेन होमाच्छान्तिमवाप्नुयात्[2] ॥४३
तस्मा इति च मन्त्रेण वन्धनस्थो विमुच्यते।
युवा सुवासा इत्येव वासांस्याप्नोति चोत्तमम् ॥४४
मुञ्चन्तु मा शपथ्या (था)[3]दिसर्वकिल्विषनाशनम्।
मा मा हिंसीस्तिलाज्येन[4] हुतं रिपुविनाशनम् ॥४५

'इह गावः प्रजायध्वम्' इत्यादि मन्त्र पढ़कर घी, दही, दूध, और खीर से हवन करने पर बुद्धि की वृद्धि होती है। 'शं नो देवी' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर पत्रों तथा फलों से हवन करने से मनुष्य आरोग्य, धन तथा दीर्घायु की प्राप्ति होती है। 'ओषधीः प्रतिमोदध्वम्' इत्यादि मन्त्र (अनाज के) वोने तथा काटने में लाभदायक होती है। 'अश्वावती' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर खीर से हवन

---

१ छ. वा। शतं य इति। २ क. ख. ग. ङ. च °त्। उच्छुष्मा इति चैतेन पवनस्थो। ३ छ. सर्वान्त कविना°। ४ क. ङ° सीतिवाह्येन।

करने पर शान्ति प्राप्ति होता है। 'तस्मै' इत्यादि मन्त्र से यज्ञ करने पर बन्धन में पड़ा हुआ मुक्त हो जाता है। 'युवा सुवासाः' इत्यादि मन्त्र से यज्ञ करने पर उत्तम वस्त्रों की प्राप्ति होती है। 'मुञ्चन्तु मा शपथ्या' इत्यादि मन्त्र सभी पापों का नाश करने वाला है। 'मा मा हिंसीः' इत्यादि मन्त्र पढ़कर तिल और घी की आहुति देने से, शत्रुओं का नाश होता है।४१-४५।

नमोऽस्तु[1] सर्पेभ्यो हुत्वा घृतेन पायसेन तु।
[2]कृणुष्व पाज इत्येतदभिचारविनाशनम् ॥४६
दूर्वाकाण्डायुतं हुत्वा काण्डात्काण्डेति मानवः।
ग्रामे जनपदे वाऽपि [3]मरकं तु शमं नयेत् ॥४७
रोगार्त्तो मुच्यते रोगात्तथा दुःखात्तु दुःखितः।
औदुम्वरीश्च समिधो मधुमान्नो वनस्पतिः ॥४८
हुत्वा सहस्रशो राम धनमाप्नोति मानवः।
[4]सौभाग्यं महदाप्नोति व्यवहारे तथा जयम् ॥४९
अपां गर्भमिति हुत्वा देवं वर्षापयेद्ध्रुवम्।
अपः पिबेति च तथा हुत्वा दधि घृतं मधु[5] ॥५०
प्रवर्तयति धर्मज्ञ महावृष्टिमनन्तरम् ॥

'नमोऽस्तु' इत्यादि मन्त्र पढ़कर तथा घी और खीर से यज्ञ करने पर सर्पों का भय नहीं होता। 'कृणुष्व पाजः' इत्यादि मन्त्र अभिचारों का नाश करने वाला है। 'काण्डात्काण्ड' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर दस हजार दूर्वाओं के पोरों से आहुतियाँ डालने से ग्राम तथा जनपद (देश) में महामारी का उपद्रव नहीं होता है। इससे रोगियों के रोग तथा दुःखियों के दुःख का भी नाश होता है। अये परशुराम ! जो मनुष्य 'मधुमान्नो वनस्पतिः' इत्यादि मंत्र पढ़कर गूलर की समिधाओं से एक हजार आहुतियाँ देता है उसे धन तथा महान्, सौभाग्य की प्राप्ति होती है और वह लोकव्यवहार में विजयी होता है। 'अपां-गर्भम्' इत्यादि मन्त्र पढ़कर आहुतियाँ देने से निश्चय ही वर्षा होती है। अये धर्मज्ञ ! उसी प्रकार 'आपः पिब' इत्यादि मन्त्र पढ़कर दही, घी एवं मधु से आहुतियाँ देने पर महावृष्टि होती हैं।४६-५०।

---

१ छ. °स्तु सर्वसर्पेभ्यो घृ°। २ छ. °णुध्वं राज। ३ छ. मकरं। ४ क. ङ °ग्यं धनमाप्नो°। ५ क. ङ. पयः।

नमस्ते रुद्र इत्येतत्सर्वोपद्रवनाशनम् ।५१
सर्वशान्तिकरं प्रोक्तं महापातकनाशनम् ।
अध्यवोचदित्यनेन रक्षणं व्याधितस्य तु ।।५२
रक्षोघ्नं च यशस्यं च[1] चिरायुः पुष्टिवर्धनम् ।
सिद्धार्थकानां क्षेपेण पथि चैतज्जपन्सुखी ।।५३
असौ यस्ताम्र इत्येतत्पठन्नित्यं दिवाकरम् ।
उपतिष्ठेत धर्मज्ञ सायं प्रातरतन्द्रितः ।।५४
[2]अन्नमक्षयमाप्नोति दीर्घमायुश्च विन्दति ।
प्रमुञ्च धन्वन्नित्येतत्षड्भिरायुधमन्त्रणम् ।।५५
रिपूणां भयदं युद्धे नात्र कार्या विचारणा ।

'नमस्ते रुद्र' यह मन्त्र सभी उपद्रवों तथा महापातकों का नाशक और सर्वशान्तिकारक है । 'अध्यवोचत्' इत्यादि मन्त्र से रोग नाश, राक्षसों का नाश और यश, दीर्घायु तथा पुष्टि की वृद्धि होती है । इस मन्त्र को पढ़ते हुए मार्ग में उजले सरसों छींटकाने से मनुष्य सुखी होता है । अये धर्मज्ञ ! जो व्यक्ति नित्य सायं प्रातःकाल आलस्य रहित होकर 'असौ यस्ताम्र' इत्यादि मन्त्र से सूर्य का उपस्थान करता है, उसे अक्षय अन्न तथा दीर्घायु की प्राप्ति होती है । 'प्रमुञ्च धन्वन्' इत्यादि मन्त्र से छह बार अभिमंत्रित किये गये अस्त्र युद्ध में शत्रुओं के लिए भयदायक होते हैं, इसमें (तनिक भी) संशय नहीं है ।५१-५५½।

मा नो महान्त इत्येवं बालानां शान्तिकारकम् ।।५६
नमो हिरण्यबाहव इत्यनुवाकसप्तकम् ।
राजिकां कटुतैलाक्तां जुहुयाच्छत्रुनाशनीम् ।।५७
नमो वः किरिकेभ्यश्च[3] पद्मलक्षकृतैर्नरः ।
राज्यलक्ष्मीमवाप्नोति तथा बिल्वैः सुवर्णकम् ।।५८
इमा रुद्रायेति तिलैर्होमाच्च धनमाप्यते ।
दूर्वाहोमेन [4]चाऽऽज्येन सर्वव्याधिविवर्जितः ।।५९

१ क. ङ. च. पीत्वाऽऽयुः° । २ क. ङ. अर्थम° । ३ क. ङ. च. छ. °लक्षाहुतैः° । ४ ख. चानेन । छ. चान्येन ।

आशुः शिशान इत्येतदायुधानां च रक्षणे ।
(¹संग्रामे कथितं राम सर्वशत्रुनिवर्हणम् ॥६०

'मा नो महान्त' इत्यादि मन्त्र बालकों के लिए शान्तिकारक है। 'नमो हिरण्यबाहवे' इत्यादि सातों अनुवाकों को पढ़कर कड़ुये तेल में भिगोई हुयी राई से हवन करने पर शत्रु का नाश होता है। 'नमो वः करिकेभ्यश्च' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर एक लाख कमलों से आहुति देने वाला मनुष्य राज्य वैभव प्राप्त करता है। (इसी मन्त्र को पढ़कर) विल्वपत्रों से आहुति देने वाले को सुवर्ण की प्राप्ति होती है। 'इमा रुद्राय' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर घी और दूर्वा से आहुति देने पर सभी व्याधियों का नाश हो जाता है। अये परशुराम ! "आशुः शिशानः" इत्यादि मन्त्र से अभिमन्त्रित शस्त्र संग्राम में समस्त शत्रुओं का वध कर देता है।५६-६०।

वाजश्चमेति जुहुयात्सहस्रं पञ्चभिर्द्विज ।
आज्याहुतीनां धर्मज्ञ चक्षूरोगाद्विमुच्यते) ॥६१
शं नो² वनस्पतये गृहे होमः स्याद्वास्तुदोषनुत् ।
अग्न आयूंषि हुत्वाऽऽज्यं द्वेषं नाऽऽप्नोति केनचित् ॥६२
अपां फेनेति लाजाभिर्हु (जैश्च हु) त्वा जयमवाप्नुयात् ।
भद्रा इतीन्द्रियैर्हीनो जपन्स्यात्सकलेन्द्रियः ॥६३
अग्निश्च पृथिवी चेति वशीकरणमुत्तमम् ।
अध्वनेति जपन्मन्त्रं व्यवहारे जयी भवेत् ॥६४

अये द्विज ! 'वाजश्चमेति' इत्यादि मन्त्र से पाँच हजार आज्याहुतियाँ डालने से नेत्र रोगों से मुक्ति मिल जाती है। गृह में 'शं नो वनस्पते' इत्यादि मन्त्र से हवन करने से वास्तुदोष (डीह की बुराइयाँ) दूर हो जाते हैं। अग्ने आयूंषि इत्यादि मन्त्र को पढ़कर आज्याहुतियाँ डालने से किसी से वैर नहीं होने पाता है। 'अपां फेन' इत्यादि मन्त्र से खीलों की आहुतियां डालने वाला मनुष्य विजय प्राप्त करता है। (किसी) इन्द्रिय से हीन मनुष्य 'भद्रा इति इत्यादि' मंत्र का जप करके सर्वाङ्गपूर्ण हो जाता है। 'अग्निश्च पृथिवी च' इत्यादि मन्त्र वशीकरण के लिये उत्तम है। 'अध्वन् इत्यादि मन्त्र का जप करने वाला व्यक्ति लोक-व्यवहार में विजयी (चतुर) होता है।६१-६४।

---

१ संग्रामे.................चक्षूरोगाद्विमुच्यते गः पुस्तके नास्ति। ख. नो भवस्येति गृ॰ ।

ब्रह्मराजन्यमिति च कर्मारम्भे तु सिद्धिकृत् ।
संवत्सरोऽसीति घृतैर्लक्षहोमादरोगवान् ॥६५
केतुं कृण्वन्नितीत्येतत्संग्रामे जयवर्धनम् ।
इन्द्रोऽग्निर्धर्म इत्येतद्रणे धर्मनिवन्धनम् ॥६६
[1]धनुर्नागेति मन्त्रश्च धनुग्रहिणिकः परः ।
यजीतेति (?) तथा मन्त्रो विज्ञेयो ज्याभिमन्त्रणे ॥६७
मन्त्रश्चा[2] हिरिवेत्येतच्छराणां मन्त्रणे भवेत् ।
वह्नीनां पितरित्येतत्तूणमन्त्रः प्रकीर्तितः ॥६८

कार्यारम्भ में 'ब्रह्मराजन्यम्' इत्यादि मंत्र का जप करने से कार्य-सिद्धि होती है। 'संवत्सरोऽसि' यह पढ़कर घी की एक हजार आहुतियाँ देने से मनुष्य नीरोग रहता है। 'केतुं कृण्वन्' यह मन्त्र संग्राम में विजय को वढ़ाता है। 'इन्द्रोऽग्निर्धर्म' यह मन्त्ररण में मनुष्य को (रण के) नियमों के प्रति आस्थावा बनाये रखता है। धनुष धारण के समय 'धनुर्नाग' इत्यादि मन्त्र का जप उत्तम (माना गया) है। उसी तरह धनुष को अभिमन्त्रित करने के लिये 'यजीत' इत्यादि मन्त्र उत्तम माना गया है 'अहिरिव' इत्यादि मन्त्र से वाणों को अभिमन्त्रित करवा चाहिये। 'वह्नीनां पितः' इत्यादि मन्त्र तरकस (को अभिमंत्रित करने) के लिए कहा गया है।६५-६८।

युञ्जतीति तथाऽश्वानां योजने मन्त्र उच्यते ।
आशुः शिशान इत्येतद्योत्रारम्भणमुच्यते ॥६९
विष्णोः क्रमेतिमन्त्रश्च रथारोहणिकः परः ।
[3]आजङ्घतीति चाश्वानां ताडनीयमुदाहृतम् ॥७०
याः सेना अभित्वरीति मरसैन्यमुखे जपेत् ।
दुन्दुभ्य इति चाप्येतद्दुन्दुभीताडनं भवेत् ॥७१
एतैः पूर्वहुतैर्मन्त्रैः कृत्वैवं [4]विजयी भवेत् ।
यमेन दत्तमित्यस्य कोटिहोमाद्विचक्षणः ॥७२
रथमुत्पादयेच्छीघ्रं संग्रामे विजयप्रदम् ।
आ कृष्णेति तथैतस्य कर्म व्याहृतिवद्भवेत् ॥७३

'युञ्जति' यह मंत्र अश्वों को (रथादि में) जोतने के लिये कहा गया है। 'आशुः शिशानः' इत्यादि मन्त्र यात्रारम्भ-काल का है। 'विष्णोः क्रम' इत्यादि

१ छ॰ धन्वा नागे। २ छ॰ °हिरथेत्ये°। ३ छ॰ °जङ्घेती° । ४ क॰ ङ॰ विनियोजयेत्।

मन्त्र रथ पर चढ़ने का है। 'आजङ्घति' इत्यादि मन्त्र से अश्वों का ताडन करना चाहिये। 'याः सेना अभित्वरि' इत्यादि मंत्र सेनाओं को प्रोत्साहित करने का है। 'दुन्दुभ्य' इत्यादि मन्त्र से दुन्दुभी बजाना चाहिये। इस प्रकार इस पूर्वकथित यज्ञ करने वाला मनुष्य विजयी होता है। 'यमेन दत्तम्' इस मन्त्र से एक करोड़ हवन करने वाला बुद्धिमान् व्यक्ति शीघ्र संग्राम में विजयदायक रथ का निर्माण कर लेता है। 'आकृष्ण' इत्यादि मन्त्र का जप करने से कर्म व्याहृतियों की भाँति (पवित्र तथा फलप्रद) हो जाता है।६९-७३।

शिवसंकल्पजापेन समाधिं मनसो लभेत् ।
पञ्चनद्यः (?) पञ्चलक्षं हुत्वा लक्ष्मीमवाप्नुयात् ।।७४
[3]यदा बध्नन्दाक्षायणां मन्त्रेणानेन मन्त्रितम् ।
सहस्रकृत्वः कनकं धारयेद्रिपुवारणम् ।।७५
इमं जीवेभ्य इति च शिलां लोष्टं चतुर्दिशम् ।
क्षिपेद्गृहे तदा तस्य न स्याच्चौरभयं निशि ।।७६
परि मे गामनेनेति वशीकरणमुत्तमम् ।
हन्तुमभ्यागतस्तत्र वशी भवति मानवः ।।७७
भक्ष्यताम्बूलपुष्पाद्यं मन्त्रितं तु प्रयच्छति ।
यस्य धर्मज्ञ वशगः सोऽस्य शीघ्रं भविष्यति ।।७८

'शिव संकल्प' सूक्त का जप करने से मन स्थिर हो जाता है। 'पञ्चनद्यः' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर पाँच लाख आहुतियाँ डालने से लक्ष्मी-प्राप्ति होती है। 'यदा बध्ननदाक्षायणाम्' इस मन्त्र से एक हजार बार सुवर्ण को अभिमंत्रित करके धारण करने से शत्रु का निवारण होता है। 'इमं जीवेभ्यः' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर घर के चारों ओर कंकड़-पत्थर फेंकने से रात्रि में चोरों का भय नहीं होता है। 'परि में गामनेन' इत्यादि मन्त्र वशीकरण के लिये उत्तम है। इसका जप करने से वध करने के लिए आया हुआ बधिक भी वशीभूत हो जाता है। अये धर्मज्ञ ! इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करके भोजन ताम्बूल, तथा पुष्प आदि जिसको दिया जाता है, वह शीघ्र ही वशीभूत हो जाता है।७४-७८।

शं नो मित्र इतीत्येतत्सदा सर्वत्र शान्तिदम् ।
गणानां त्वा गणपतिं कृत्वा होमं चतुष्पथे ।।७९

---

३ छ. ०दा वधूं दाक्षा० ।

वशीकुर्याज्जगत्सर्वं सर्वधान्यैरसंशयम् ।
हिरण्यवर्णाः शुचयो मन्त्रोऽयमभिषेचने ॥८०
शं नो देवीरभिष्टये तथा शान्तिकरः परः ।
एकचक्रेति मन्त्रेण हुतेनाऽऽज्येन भागशः ॥८१
ग्रहेभ्यः शान्तिमाप्नोति प्रसादं न च संशयः ।
गावो भग इति द्वाभ्यां हुत्वाऽऽज्यं गा अवाप्नुयात् ॥८२
प्रवादां षः (?) सोपदिति गृ (ग्र) हयज्ञे विधीयते ।
देवेभ्यो वनस्पत इति द्रुमयज्ञे विधीयते ॥८३
गायत्री वैष्णवी ज्ञेया तद्विष्णोः परमं पदम् ।
सर्वपापप्रशमनं सर्वकामकरं तथा[1] ॥८४

'शं नो मित्र' इत्यादि मन्त्र सदा सर्वत्र शान्ति को देने वाला है। 'गणानां त्वा गणपति' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर चौराहे पर समस्त धान्यों से हवन करने से सम्पूर्ण जगत् वशीभूत हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। 'हिरण्यवर्णाः शुचयः' इत्यादि मन्त्र अभिषेक के लिये माना गया है। 'शं नो देवीरभिष्टय' इत्यादि मन्त्र परम शान्ति को देने वाला है। 'एक चक्र' इत्यादि मन्त्र को पढ़ कर ग्रहों के लिये अलग अलग आज्याहुतियों से शान्ति मिलती है तथा ग्रह अनुकूल हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है। 'गावो भग' इत्यादि मन्त्र से दो आज्याहुतियाँ देने से गायों की प्राप्ति होती है। 'प्रवादां षः (?) सोपत्' इत्यादि मन्त्र का विनियोग गृहयज्ञ में किया जाता है और 'देवेभ्यो वनस्पतये' यह मन्त्र वृक्षयज्ञ में विहित है। गायत्री विष्णु का छन्द है, उसे विष्णु का परम पद समझना चाहिये। यह सभी पापों का नाश करने वाला तथा समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला (हुआ करता) है।७९-८४।

इत्यादि महापुराण आग्नेये यजुर्विधानकथनं नाम
षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२६०

---

१ क. ङ. शुभम् ।

अथैकषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सामविधानम्

पुष्कार उवाच—

यजुर्विधानं कथितं वक्ष्ये साम्नां विधानकम् ।
संहितां वैष्णवीं जप्त्वा हुत्वा स्यात्सर्वकामभाक् ॥१
संहितां छान्दसीं साधु जप्त्वा प्रीणाति शंकरम् ।
स्कान्दीं पैत्र्यां संहितां च जप्त्वास्यात्तु प्रसादवान् ॥२
यत इन्द्र[1]भयामहे हिंसादोषविनाशनम् ।
अवकीर्णी मुच्यते च अग्निस्तिग्मेति वै जपन् ॥३
सर्वपापहरं ज्ञेयं परितोषं च तासु च ।
अविक्रेयं च विक्रीय जपेद्घृतवतीति[2] च ॥४

पुष्कर बोले—मैं यजुर्विधान बतला चुका हूँ अब सामविधान बतलाऊँगा। वैष्णवी संहिता का जप तथा उससे हवन करके मनुष्य समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। छान्दसी संहिता का भली-भाँति जप करने से भगवान् शङ्कर सन्तुष्ट होते हैं स्कन्द संहिता तथा पितृ संहिता का जप करने से प्रसन्नता प्राप्त होती है। 'यत इन्द्र भयामहे' इत्यादि मंत्र का जप करने से हिंसा जन्य दोष नष्ट होता है। 'अग्निस्तिग्म' इत्यादि मंत्र का जप करने से भङ्गव्रती व्यक्ति पाप मुक्त हो जाता है। यह मंत्र समस्त पापों का नाश करने वाला तथा आनन्द देने वाला है। जो न बेचने योग्य वस्तु को बेचता है उसे (उसका प्रायश्चित करने के लिए) 'घृतवती, इत्यादि मंत्र का जप करना चाहिये ।१-४

[3]अद्या नो देव सवितर्ज्ञेयं दुःस्वप्ननाशनम् ।
अबोध्यग्निरिति मंत्रेण घृतं राम यथाविधि ॥५
अभ्युक्ष्य घृतशेषेण मेखलाबन्ध इष्यते ।
स्त्रीणां यासां तु गर्भाणि पतन्ति भृगुसत्तम ॥६

---

१ छ. इन्द्रं भजाम° । २ क. ङ. च । शं नो देवः सवितेति ज्ञेयं ।
३ छ. अया ।

'अद्या नो देव सवितः' यह मंत्र दुःस्वप्न का नाशक है। अये भृगुश्रेष्ठ परशुराम ! जिन स्त्रियों के गर्भ नष्ट हो जाते हैं उनका मेखला वन्धन करने के लिए पहले 'अवोध्यग्निः' इत्यादि मंत्र को पढ़कर विधिपूर्वक घी से हवन करना चाहिये। पश्चात् अवशिष्ट घी को मेखला पर छिड़क कर उसे उन स्त्रियों को बाँध देना चाहिये।५-६।

मणिं जातस्य वालस्य वध्नीयात्तदनन्तरम् ।
सोमं राजानमेतेन व्याधिभिर्विप्रमुच्यते ॥७

तदनन्तर वालक के जन्म होने पर तव उसे भी 'सोमं राजानम्' इत्यादि मंत्र पढ़कर मणि (मेखला) बाँध देनी चाहिए। इससे सभी व्याधियों से मुक्ति हो जाती है।७

सर्पसाम प्रयुञ्जानो नाऽऽप्नुयात्सर्पजं भयम् ।
माऽघ त्वा वाद्यतेत्येतद्धुत्वा (?) विप्रः सहस्रशः ॥८
शतावरि (री) मणिं वद्ध्वा नाऽऽप्नुयाच्छ[1]स्त्रतो भयम् ।
[2]दीर्घतमसोऽर्कं इति हुत्वाऽन्नं प्राप्नुयाद्वहु ॥९

'सर्पसाम' (मंत्र) का प्रयोग करने से सर्पों का भय नही रहता है। माऽघत्वा-वाद्यते' इत्यादि मंत्र से एक हजार वार हवन कर शतावरी (औषध विशेष) की मणि वाँधने से ब्राह्मण को शस्त्र-भय नहीं होता।

'दीर्घ तमसोऽर्क' इत्यादि मंत्र से हवन करने पर प्रचुर अन्न की प्राप्ति होती है।८-९।

समध्यायन्तीति जपन्न म्रियेत पिपासया ।
त्वमिमा ह्योषधीत्येतज्जप्त्वा व्याधिं न चाऽऽप्नुयात् ॥१०

'समध्यायन्ति' इत्यादि मंत्र का जप करने से (कोई भी व्यक्ति) प्यास से नहीं मरता है 'त्वमिमा ह्योषधि' इत्यादि मंत्र का जप करने से व्याधि नही होती है।१०

पथि देवव्रतं जप्त्वा भयेभ्यो विप्रमुच्यते ।
यदिन्द्रो मुनये त्वेति हुतं सौभाग्यवर्धनम् ॥११

मार्ग में देवव्रत मंत्र का जप करने से सभी पापों से छुटकारा मिल जाता है। 'यदिन्द्रो मुनये त्वा' इत्यादि मंत्र सौभाग्य की वृद्धि करने वाला है।११

---

१ क. ङ. °च्छत्रुतो। २ क. ङ. दीर्घ° चमसोऽर्घ इ°।

भगो न चित्र[1] इत्येवं नेत्रयोरञ्जनं हितम् ।
सौभाग्यवर्धनं राम नात्र कार्या विचारणा ॥१२

अये परशुराम ! 'भगो न चित्र' इत्यादि मंत्र से नेत्रों में अञ्जन लगाने से कल्याण होता है। यह मंत्र सौभाग्य को भी बढ़ाने वाला है। इसमें कुछ भी संशय नहीं है।१२

[2]जपेदिन्द्रेति वर्ग च तथा सौभाग्यवर्धनम् ।
परि प्रिया हि वः कारिः (?) काम्यां संस्रावयेत्स्त्रियम् ॥१३

'इन्द्र' इत्यादि मंत्र का जप करने से सौभाग्य की वृद्धि होती है। 'परि प्रिया हि वः कारिः' यह मंत्र किसी प्रतिकूल कामिनी को सुना देने से वह अनुकूल बन जाती है इसमें भी कुछ संशय नहीं है।१३

सा तं कामयते राम नात्र कार्या विचारणा ।
रथंतरं वामदेव्यं ब्रह्मवर्चसवर्धनम् ॥१४
प्राशयेद्बालकं नित्यं वचाचूर्णं घृतप्लुतम् ।
इन्द्रमिद्गाथिनं जप्त्वा भवे[3]च्छ्रुतिधरस्त्वसौ ॥१५

वामदेव ऋषि के द्वारा दृष्ट रथन्तर साम ब्रह्मतेज को बढ़ाने वाला होता है। 'इन्द्रमिद्गाथी' इत्यादि मंत्र का जप करके घृत-मिश्रित बचा चूर्ण बालक को नित्य खिलाने से वह श्रुतिशील हो जाता है।१४-१५।

हुत्वा रथंतरं जप्त्वा पुत्रमाप्नोत्यसंशयम् ।
मयि श्रीरिति मंत्रोऽयं जप्तव्यः श्रीविवर्धनः ॥१६
वैरूप्यस्याष्टकं नित्यं प्रयुञ्जानः श्रियं लभेत् ।
सप्ताष्टकं प्रयुञ्जानः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥१७

रथंतर साम का जप तथा उससे हवन करने से निश्चय ही पुत्र की प्राप्ति होती है। 'मयि श्रीः' इत्यादि मंत्र का जप करना चाहिये क्योंकि इससे श्रीवृद्धि होती है। वैरूप्याष्टक साम का जप करने से धनलाभ होता है। सप्ताष्टक का जप करने से सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।१६-१७।

---

१ ख. ग. मित्र। २ जपेदिन्द्रेति ······विचारणा क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति
३. क. ङ. °वेद्भूति°।

गव्येषुणेति यो नित्यं सायं प्रातरतन्द्रितः।
उपस्थानं गवां कुर्यात्तस्य स्युस्ता सदा गृहे ॥१८

नित्य सायं प्रातःकाल निरालस्य होकर जो मनुष्य 'गव्येषुणा' इत्यादि मंत्र से गायों का उपस्थान करता है उसके घर में गायें सदा निवास किया करती हैं।१८

घृताक्तं तु यव द्रोणं वात आवातु भेषजम्।
अनेन हुत्वा विधिवत्सर्वा मायां व्यपोहति ॥१९

'वात आवातु भेषजम्' इत्यादि मंत्र से घृतमिश्रित यव से विधिपूर्वक हवन करके मनुष्य सभी माया (मोह) से अलग हो जाता है।१९

प्र देवो दासेन तिलान्हुत्वा [1]कार्मणकृन्तनम्।
अभि [2]त्वां शूर नोनुमो वषट्कारसमन्वितम् ॥२०
[3]वामदेव्यसहस्रं तु हुतं युद्धे जयप्रदम्।
हस्त्यश्वपुरुषान्कुर्याद्‍बुधः पिष्टमयाञ्शुभान् ॥२१
परकीयानथोद्दिश्य प्रधानपुरुषांस्तथा।
सुस्विन्नान्पिष्टकवरान्क्षुरेणोत्कृत्य भागशः ॥२२
अभि त्वा शूर नोनुमो मंत्रेणानेन मंत्रवित्।
कृत्वा सर्षपतैलाक्तान्क्रोधेन जुहुयात्ततः ॥२३

'प्रदेवो दासेन' इत्यादि मंत्र पढ़कर तिल से हवन करने से मनुष्य सभी कर्मों में दक्ष हो जाता है। वषट्कार सहित 'अभि त्वा शूर नो नुमः' इत्यादि मंत्र तथा वामदेव ऋषि द्वारा इष्ट सहस्र मंत्रों से हवन करने पर युद्ध में विजय होती है। बुद्धिमान् व्यक्ति को अपने शत्रु के हाथी, घोड़े, सिपाही, मंत्री आदि की प्रतिमायें पिसे हुए चावल से भली-भाँति बनाकर सरसों के तेल में भिगो देना चाहिए। तदनन्तर चाकू से प्रतिमाओं को काट-काट कर 'अभि त्वा शूर नो नुमः' इत्यादि मंत्र से हवन करना चाहिए।२०-२३।

एतत्कृत्वा बुधः कर्म सङ्ग्रामे जयमाप्नुयात्।
गारुडं वामदेव्यं च रथंतरबृहद्रथौ ॥
सर्वपापप्रशमनाः कथिताः संशयं विना ॥२४

---

१ क. ङ. कर्मनिकृन्तनम्। २ छ. त्वा पूर्वपीतये व°। ३ छ. वासकेष्मस°।

ऐसा करने से संग्राम में उसकी विजय अवश्य होती है। गारुड़, वामदेव्य, रथंतर तथा बृहद्रथ-ये साम निश्चय ही पापनाशक कहे गये हैं।२४

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सामविधानं नाम कषष्ट्य-धिकद्विशततमोऽध्यायः।२६१

अथ द्विषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अथर्वविधानम्

पुष्कर उवाच—

साम्नां विधानं कथितं वक्ष्ये चाथर्वणामथ।
[1]शान्तातीयं गणं हुत्वा शान्तिमाप्नोति मानवः।।१

पुष्कर बोले—साम का विधान तो मैं कह ही चुका हूँ अब अथर्वण विधान बताऊँगा। शान्तातीय गण मन्त्रों से आहुति देकर मनुष्य शान्ति प्राप्त करता है।१

भैषज्यं च गणं हुत्वा सर्वान्रोगान्व्यपोहति।
त्रिसप्तीयं गणं हुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते।।२
क्वचिन्नाऽऽप्नोति च भयं हुत्वा चैवाभयं गणम्।
न क्वचिज्जायते राम गणं हुत्वाऽपराजितम्।।३
आयुष्यं च गणं हुत्वा ह्यपमृत्युं व्यपोहति।
स्वस्तिमाप्नोति सर्वत्र हुत्वा स्वस्त्ययनं गणम्।।४

भैषज्य गण मन्त्रों से आहुति देकर मनुष्य रोगों से मुक्त होता है, त्रिसप्तीय गण मन्त्रों से आहुति देकर मनुष्य कहीं भी भय को प्राप्त नहीं करता है। अये परशुराम! अपराजित गण मन्त्रों से आहुतियाँ देने पर कहीं भी पराजय नहीं होती है। आयुष्य गण मन्त्रों से दी गयी आहुति अपमृत्यु का निवारण करती है। स्वस्त्ययन गण मन्त्रों से दी गई आहुति से सर्वत्र कल्याण की प्राप्ति होती है।२-४।

---

१ ख. ग. शातातीयं। ङ. च. शंरातीयं।

श्रेयसा योगमाप्नोति शर्मवर्मगणं तथा ।
वास्तोष्पत्यगणं हुत्वा वास्तुदोषान्व्यपोहति ॥५
तथा रौद्रगणं हुत्वा सर्वान्दोषान्व्यपोहति ।
एतैर्दशगुणैर्होमो ह्यष्टादशसु शान्तिषु ॥६

शर्मवर्मगण मन्त्रों से दी गई आहुति कल्याण करती है। वास्तोष्पत्यगण मन्त्रों से दी गई आहुति वास्तुदोष नष्ट करती है और रौद्र गण मन्त्रों से दी गई आहुति सभी दोषों का नाश करती है। इन दश गणों के साथ अठ्ठारह शान्त्याहुतियाँ देनी चाहिए। ५-६।

वैष्णवी शान्तिरैन्द्री च ब्राह्मी रौद्री तथैव च ।
वायव्या वारुणी चैव कौवेरी भार्गवी तथा ॥७
प्राजापत्या तथा त्वाष्ट्री कौमारी वह्निदेवता ।
मारुद्गणा च [1]गान्धारी शान्तिर्नैर्ऋतकी तथा ॥८
शान्तिराङ्गिरसी याम्या पार्थिवी सर्वकामदा ।
यस्त्वां मृत्युरिति ह्येतज्जप्तं मृत्युविनाशम् ॥९

जो इस प्रकार है—"वैष्णवी, ऐन्द्री, ब्राह्मी, रौद्री, वायव्या, वारुणी, कौवेरी, भार्गवी, प्राजापत्या, त्वाष्ट्री, कौमारी, वह्निदेवता, मारुद्गणा, गान्धारी, नैर्ऋतकी, आंगिरसी, याम्या और सर्वकामदा पार्थिवी। 'यस्त्वा मृत्युः' इत्यादि मन्त्र का जप करने से मृत्यु का नाश होता है।७-९।

सुपर्णस्त्वेति हुत्वा च भुजगैर्नैव वाध्यते ।
इन्द्रेण दत्तमित्येतत्सर्वकामकरं भवेत् ॥१०
[2]इन्द्रेण [3]दण्डमित्येतत्सर्वबाधाविनाशनम् ।
इमा देवीति मंत्रश्च सर्वशान्तिकरः परः ॥११
देवा मरुत इत्येतसर्वकामकरं भवेत् ।
यमस्य लोकादित्येतद्दुःस्वप्नशमनं परम् ॥१२

'सुपर्णस्त्वा' इत्यादि मन्त्र से आहुति देने पर सर्पों से भय नहीं रहता है।'इन्द्रेणदत्तम्' इत्यादि मन्त्र सभी कामनाओं को पूरा करने वाला है। 'इन्द्रेण दण्डम्' इत्यादि मन्त्र सभी बाधाओं का नाशक है; 'इमा देवी'

---

१ ख, ग. गान्धर्वी। २ इन्द्रेण······भवेत् क. ङ. च पुस्तकेषु नास्ति ।
३ छ. दत्तमि°।

इत्यादि मन्त्र सभी प्रकार की शान्ति करने वाला है। और 'देवा मारुतः' इत्यादि सभी कार्यो को सिद्धि करने वाला है। 'यमस्य लोकात्' इत्यादि मन्त्र दुःस्वप्न को शान्त करने वाला है।१०-१२।

[1]इन्द्रश्च पञ्च वणिजः पुण्यलाभकरं परम्।
[2]कामो मे वाजीति हुतं स्त्रीणां सौभाग्यवर्धनम् ॥१३
तुभ्यमेव जपन्नित्यमयुतं तु हुतं भवेत्।
अग्ने गोभिर्न इत्येतन्मेधावृद्धिकरं भवेत् ॥१४

'इन्द्रश्च पञ्च वणिजः' इत्यादि मन्त्र पुण्य लाभ कराने वाला है, 'कामो मे वाजि' इत्यादि मन्त्र से हवन करने से स्त्रियों की सौभाग्य वृद्धि होती है। 'तुभ्यमेव' इत्यादि मन्त्र का नित्य जप करके 'अग्ने गोभिर्न' इत्यादि मन्त्र से दश हजार आहुतियाँ देने से मेधा बढ़ती है।१३-१४।

ध्रुवं ध्रुवेणेति हुतं स्थानलाभकरं भवेत्।
अलुक्तजीवेतिशुना कृषिलाभकरं भवेत् ॥१५
अहं ते भग्न इत्येतद्भवेत्सौभाग्यवर्धनम्।
ये मे[3] पाशास्तथाऽप्येतद्बन्धनान्मोक्षकारणम् ॥१६

'ध्रुवं ध्रुवेण' इत्यादि मन्त्र से हवन करने से स्थान लाभ होता है। 'अलक्त जीव' इत्यादि मन्त्र से यज्ञ करने से खेती में लाभ होता है। 'अहं ते भग्न' इत्यादि मन्त्र सौभाग्य को बढ़ाने वाला है। 'ये मे पाशास्तथाप्येत' इत्यादि मन्त्र बंधन से मोक्ष दिलाता है।१५-१६।

शपत्वहन्निति रिपून्नाशयेद्धोमजाप्यतः।
त्वमुत्तममितीत्येतद्यशोबुद्धिविवर्धनम् ॥१७
यथा मृगमतीत्येत्स्त्रीणां सौभाग्यवर्धनम्।
येन चेह दिशं चैव गर्भलाभकरं भवेत् ॥१८
अयं ते योनिरित्येतत्पुत्रलाभकरं भवेत्।
शिवः शिवाभिरित्येतद्भवेत्सौभाग्यवर्धनम्[4] ॥१९

'शपत्वहन' इत्यादि मन्त्र का जप तथा उससे हवन करने से शत्रुओं का नाश होता है। 'त्वमुत्तमम्' इत्यादि मन्त्र यश और बुद्धि को बढ़ाने वाला

---

१ क. ख. ग. ङ. इन्द्रं च प°। २ क. ङ. च काममेवाज्जति। ३ क. ङ. च. मे प्राणास्त°। ४ क. ङ. °तत्क्रुद्धं भूयः प्रसादयेत्। बृ°।

होता है। 'यथा मृगमती' इत्यादि मन्त्र नारियों के सौभाग्य को बढ़ाने वाला है। 'येन चेह दिशं चैव' इत्यादि मन्त्र गर्भ धारण कराने वाला है। 'अयं ते योनिः' इत्यादि मन्त्र पुत्रलाभदायक है। 'शिवः शिवाभिः' इत्यादि मन्त्र सौभाग्यवर्धक हैं।१७-१९।

बृहस्पतिर्नः परिपातु पथि स्वस्त्ययनं भवेत् ।
मुञ्चामि त्वेति कथितमपमृत्युनिवारणम् ॥२०
अथर्वशिरसोऽध्येता सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
प्राधान्येन तु मंत्राणां [1]किंचित्कर्म तवेरितम् ॥२१

'बृहस्पतिर्नः परिपातु' इत्यादि मन्त्र मार्ग में कल्याण कारक है। 'मुञ्चामि त्वा' इत्यादि मन्त्र अपमृत्यु का निवारक माना गया है। 'अथर्वशिरः' का अध्ययन करने वाला मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। प्रधान रूप से मन्त्रों की कुछ क्रियायें तुम्हें बतला दी गई है।२०-२१।

वृक्षाणां यज्ञियानां तु समिधः प्रथमं हविः ।
आज्यं च व्रीहयश्चैव तथा वै गौरसर्षपाः ॥२२
अक्षतानि तिलाश्चैव दधिक्षीरे च भार्गव ।
दर्भास्तथैव दूर्वाश्च बिल्वानि कमलानि च ।२३

यज्ञिय वृक्षों की समिधाएँ मुख्य हवि हैं। अये भार्गव! घृत, व्रीहि, उजला सरसों, अक्षत, तिल, दही, दूध, कुश, दूर्वा, बिल्वपत्र और कमल—ये द्रव्य शान्ति तथा पुष्टि के कारक हैं।२२-२३।

शान्तिपुष्टिकराण्याहुर्द्रव्याण्येतानि सर्वशः ।
तैलं कणानि धर्मज्ञ राजिका रुधिरं विषम् ॥२४
समिधः कण्टकोपेता अभिचारेषु योजयेत् ।
आर्षं वै दैवतं छन्दो विनियोगज्ञ आचरेत् ॥२५

धर्मज्ञ! तेल, कर्ण, राजसर्षप, शोणित, विष तथा कँटीली समिधाएँ इनका प्रयोग अभिचार (मारण मोहन आदि) कर्म में करना चाहिए। मन्त्रों के ऋषि, देवता, छन्द और विनियोग का ज्ञान रखकर ही प्रयोग करना चाहिए।२४-२५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽथर्वविधानं नाम द्विषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२६२

---

१ ङ. °त्कर्मवितारि°।

अथ त्रिषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

उत्पातशान्तिः

पुष्कर उवाच—

श्रीसूक्तं प्रतिवेदं च ज्ञेयं लक्ष्मीविवर्धनम् ।
हिरण्यवर्णां हरिणीमृचः पञ्चदश श्रियः ॥१
रथेष्वक्षेषु वाजेति चतस्रो यजुषि श्रियः ।
स्रावन्तीयं तथा साम श्रीसूक्तं सामवेदके ॥२
श्रियं धातर्मयि धेहि प्रोक्तमाथर्वणे तथा ।
श्री सूक्तं यो जपेद्भक्त्या हुत्वा श्रीस्तस्य वै भवेत् ॥३

पुष्कर बोले—प्रत्येक वेद का श्रीसूक्त लक्ष्मीवर्धक है। ऋग्वेद में 'हिरण्यवर्णां हरिणीम्' इत्यादि पन्द्रह ऋचाएँ श्रीसूक्त हैं। यजुर्वेद में 'रथेष्वक्षेषु वाजेति' इत्यादि चार मन्त्र श्रीसूक्त हैं। सामवेद में 'स्रावन्तीय' साम श्रीसूक्त है, इसी प्रकार अथर्व वेद में 'श्रियं धातर्मयि धेहि' इत्यादि मन्त्र श्रीसूक्त हैं। जो मनुष्य श्रीसूक्त का भक्तिपूर्वक जप तथा उससे हवन करता है, उसे लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।१-३।

पद्मानि चाथ बिल्वानि हुत्वाऽऽज्यं वा तिलाञ्श्रियः ।
एकं तु पौरुषं सूक्तं प्रतिवेदं तु सर्वदम् ॥४
सूक्तेन दद्यान्निष्पापो ह्येकैकया जलाञ्जलिम् ।
स्नात एकैकया पुण्यं विष्णोर्दत्त्वाऽघहा भवेत् ॥५

कमल, बिल्वपत्र, घी अथवा तिल से यज्ञ करने से श्री प्राप्ति होती है। एक ही पुरुष सूक्त प्रत्येक वेद में पाया जाता है और वह सभी कुछ देने वाला है। इस सूक्त को पढ़कर विष्णु को एक अञ्जलि जल समर्पण करने से मनुष्य निष्पाप हो जाता है। स्नान के बाद (इस सूक्त को पढ़ते हुए) एक अञ्जलि पुष्प समर्पण करने से (सभी) पापों का नाश हो जाता है।४-५।

स्नात एकैकया दत्त्वा फलं स्यात्सर्वकामभाक् ।
महापापोपपापान्तो भवेज्जप्त्वा तु पौरुषम् ॥६
कृच्छ्रै विशुद्धो जप्त्वा च हुत्वा स्नात्वाऽथ सर्वभाक् ।
अष्टादशम्य:शान्तिभ्यस्तिस्रोऽन्या:शान्तयो वराः ॥७
अमृता चाभया सौम्या सर्वोत्पातविमर्दनाः ।

उसी तरह स्नान करने के बाद एक अञ्जलि फल समर्पण करने से सभी कामनाएँ सफल होती हैं। पुरुषसूक्त का जप करने से महापाप तथा उपपाप नष्ट हो जाते है। कृच्छ्रादि व्रतों से शुद्ध होकर स्नान करके (इस पुरुष सूक्त से) जप तथा हवन करने से सभी कुछ प्राप्त हो जाता है। (पूर्वोक्त) अट्ठारह शान्तियों के अतिरिक्त अमृता, अभया और सौम्या नामक तीन अन्य शान्तियाँ श्रेष्ठ तथा सभी उत्पातों का विनाश करने वाली हैं। ।६-७½।

अमृता सर्व दैवत्या अभया ब्रह्मदैवता ॥८
सौम्या च सर्वदेवत्या एका स्यात्सर्वकामदा ।
अभया या मणिः कार्यो वरुणस्य भृगूत्तमम् ॥९
शतकाण्डोऽमृतायाश्च सौम्यायाः शङ्खजो मणिः ।
तद्देवत्यास्तथा मंत्राः सिद्धौ स्यान्मणिबन्धनम् ॥१०

उनमें अमृता तथा सौम्या सभी देवताओं से और अभया ब्रह्मदेवता से सम्बद्ध है। एका नामक शान्ति सभी कामनाओं को पूर्णकरने वाली है। अये भृगुवंशियों में श्रेष्ठ ! मणिबन्ध (संस्कार) मे बनायी गयी मणि को 'अभया वरुणस्य' इत्यादि मन्त्र से शुद्ध करना चाहिए। शङ्ख की बनी हुई मणि को 'शतकाण्डोऽमृतया' और सौम्या आदि मन्त्रों से करना चाहिए। इन्ही मन्त्रों को पढ़कर उक्त संस्कार को समाप्त करना पवित्र चाहिए ।८-१०।

दिव्यान्तरी (रि) क्षभौमादि समुत्पातार्दना इमाः ।
दिव्यान्तरी (रि) क्षभौमं तु अद्भुतं त्रिविधं शृणु ॥११
अहर्क्ष वैकृतं दिव्यामान्तरी (रि) क्षं निवोध मे ।
उल्कापातश्च दिग्दाहः परिवेशस्तथैव च ॥१२

आकाश, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी में होने वाले उत्पातों को उन-उन स्थानों के प्रतिनिधि देवताओं के मन्त्रों से शान्त किया जा सकता है। दिव्य, आन्तरिक्ष तथा भौम इन तीन विचित्र उत्पातों को सुनो। आकाश के उत्पात दिन में नक्षत्रों के विचार से होते हैं। अन्तरिक्ष के उत्पात उल्कापात, दिग्दाह, परिवेश, हैं।११-१२।

गन्धर्वनगरं चैववृष्टिश्च विकृता च या।
चरस्थिरभवं भूमौ भूकम्पमपि भूमिजम् ।१३
सप्ताहाभ्यन्तरे वृष्टावद्भुतं निष्फलं भवेत्।
शान्तिं विना त्रिभिर्वर्षैरद्भुतं भयकृद्भवेत् ।।१४

(मण्डल) गन्धर्वनगर तथा विकृत वृष्टि कहलाते हैं। भूमि जन्य उत्पात उसे कहते हैं जब पृथ्वी पर चलाचल पदार्थों में भूकम्प उत्पात हो जाता है। उत्पात होने के बाद यदि एक सप्ताह के भीतर वर्षा हो जाय तो उत्पात निष्फल हो जाता है। और यदि (इस प्रकार से) उत्पात की शान्ति नहीं की जाती तो तीन वर्ष तक उत्पात अवश्य भय उत्पन्न करने वाला हुआ करता है।१३-१४।

देवतार्चाः प्रनृत्यन्ति वेपन्ते प्रज्वलन्ति च।
आरटन्ति च रोदन्ति प्रस्विद्यन्ते हसन्ति च ।।१५
अर्चाविकारोपशमोऽभ्यर्च्य हुत्वा प्रजापतेः।
अनग्निर्दीप्यते यत्र राष्ट्रे च भृशनिःस्वनम् ।।१६
न दीप्यते चेन्धनवांस्तद्राष्ट्रं पीड्यते नृपैः।
अग्निवैकृत्यशमनमग्निमंत्रैश्च भार्गव ।।१७

(उस समय) देवताओं की प्रतिमाएँ नाचने लगती हैं, हिलने-डुलने लगती हैं, प्रज्वलित हो जाती हैं, शब्द करती हैं, रोती है, पसीने से तर हो जाती हैं, हंसने लगती हैं। प्रतिमाओं का विकार तब शान्त होता है जब ब्रह्मा का पूजन तथा हवन किया जाता है। जिस राष्ट्र में बिना ईंधन के आग जल उठती है और ईंधन होने पर भी वह प्रज्वलित नही होती है उस राष्ट्र को राजा लोग उत्पीड़ित करते हैं।१५-१७।

अकाले फलिता वृक्षाः क्षीरं रक्तं स्रवन्ति च ।
वृक्षोत्पातप्रशमनं शिवं पूज्य च कारयेत् ॥१८
अतिवृष्टिरनावृष्टिर्दुर्भिक्षायोभयं मतम् ।
अनृतौ त्रिदिनारब्धवृष्टिर्ज्ञेया भयाय हि ॥१९

वृक्ष यदि असमय में फलने लगे अथवा उनमें से दूध तथा रक्त टपकने लगे तो उस उत्पात का शमन शिवपूजा से करना चाहिए। अतिवृष्टि और अनावृष्टि दोनों ही दुर्भिक्ष के कारण माने गये हैं, विना ऋतु के यदि तीन दिनों तक वर्षा होती रहे तो उससे भय होता है।१८-१९।

वृष्टिवैकृत्यनाशः स्यात्पर्जन्येन्द्वर्कपूजनात् ।
नगरादपसर्पन्ते समीपमुपयान्ति च ॥२०
नद्यो ह्रद प्रस्रवणा विरसाश्च भवन्ति च ।
सलिलाशयवैकृत्ये जप्तव्यो वारुणो मनुः ॥२१

वर्षा के उत्पात को दूर करने के लिए पर्जन्य, चन्द्रमा तथा सूर्य की पूजा करनी चाहिए। यदि नदियाँ, झीलें आदि नगर से दूर हटने लगें अथवा उनके अत्यन्त समीप आ जायें तो उनके उत्पात को दूर करने के लिए वरुण-मंत्र का जप करना चाहिए।२०-२१।

अकालप्रसवा नार्य· कालतो वाऽप्रजास्तथा ।
विकृतप्रसवाच्चैव युग्मप्रसवनादिकम् ॥२२
स्त्रीणां प्रसववैकृत्ये स्त्रीविप्रादि प्रपूजयेत् ।
वडवा हस्तिनी गौर्वा यदि युग्मं प्रसूयते ॥२३
विजात्यं विकृतं वाऽपि षड्भिर्मासैर्म्रियेत वै ।
विकृतं वा प्रसूयन्ते परचक्रभयं भवेत् ॥२४

स्त्रियों का असमय में प्रसूत होना, समय पर प्रसव न करना अथवा युग्म इत्यादि विकृत प्रसव उत्पन्न करना—इन प्रसव दोषों को दूर करने के लिए स्त्री विप्र आदि का पूजन करना चाहिए। यदि घोड़ी, हथिनी तथा गाय जुड़वे, विजाति के अथवा विकृत बच्चे को जन्म देती है तो वह छः मास में ही मर जाती है।२२-२४।

होमः प्रसूतिवैकृत्ये जपो विप्रादिपूजनम् ।
यानि यानान्ययुक्तानि युक्तानि न वहन्ति च ॥२५
आकाशे तूर्यनादाश्च महद्भयमुपस्थितम् ।
प्रविशन्ति यदा ग्राममारण्या मृगपक्षिणः ॥२६
अरण्यं यान्ति वा ग्राम्या जलं यान्ति स्थलोद्भवाः ।
स्थलं वा जलजा यान्ति राजद्वारादिके शिवाः ॥२७
प्रदोषे कुक्कुटो वासे शिवा चार्कोदये भवेत् ।
गृहं कपोतः प्रविशेत्क्रव्याद्वा मूर्ध्नि लीयते ॥२८

और यह (उत्पात) विदेशी राजा के आक्रमण की भी सूचना देता है। इसे दूर करने के लिए हवन तथा विप्रादि पूजन करना चाहिये। यदि सवारियाँ जुती हुई न हों अथवा जुतने पर भी चलती न हों और आकाश में तुरही का शब्द सुनाई पड़े तो महान् भय आया हुआ समझना चाहिए। यदि गाँव में वन्य पशु-पक्षी आने लगें, ग्रामीण पशु-पक्षी जंगल की ओर जाने लगें, स्थलचारी जीव जल की ओर दौड़ने लगें, जलधारी (जीव-जन्तु) स्थल पर आ जाँय, राजद्वार पर शृगालियाँ दीख पड़ें, संध्या समय मुर्गा बाँग दें, सूर्योदय अथवा दोपहर में गीदड़ियाँ चिल्लाने लगें, कबूतर घर में घुस जाँय, मांस-भक्षी पक्षी शिर पर मंडराने लगे। २५-२८।

[1]मधु वा मक्षिका कुर्यात्काको मैथुनगो दृशि ।
प्रासादतोरणाद्यानद्वारप्राकारवेश्मनाम् ॥२९
अनिमित्तं तु पतनं दृढानां राजमृत्यवे ।
रजसा[2] वाऽथ धूमेन दिशो यत्र समाकुलाः ॥३०
केतूदयोपरागौ च च्छिद्रता शशिसूर्ययोः ।
ग्रहर्क्षविकृतिर्यत्र तत्रापि भयमादिशेत् ॥३१
अग्निर्यत्र न दीप्येत स्रवन्ते चोदकुम्भकाः ।
मृतिर्भयं शून्यतादि ह्युत्पातानां फलं भवेत् ।
द्विजदेवादिपूजाभ्यः शान्तिर्जप्यैस्तु होमतः ॥३२

मक्षिका (घरेलू मक्खी) मधु उत्पन्न करने लगे, मैथुन करता हुआ कौआ दिखाई पड़ जाय, सुदृढ़ महल, तोरण, उद्यान, चहारदिवारी तथा घर यदि

१. छ.° घुरा मक्षिकां कु° । २ छ. °साऽद्धाऽथ ।

अकारण ही गिर पड़े तो राजा की मृत्यु होती है। जहाँ दिशायें धूलि या धुयें से व्याप्त दिखाई दें, राहु-केतु का उदय हो, सूर्य-चन्द्रमा में छिद्र दिखाई पड़े, ग्रह और नक्षत्रों में विकार समुत्पन्न हो वहाँ (भी) भय समझना चाहिए। जहाँ अग्नि न जले और पानी के घड़े टपकने लगें वहाँ उत्पात का फल मृत्यु, भय, उदासी आदि होती है। उसकी शान्ति द्विज, देव आदि की पूजा, जप तथा होम से हुआ करती है। २९-३२।

इत्यादिमहापुराण आग्नेय उत्पातशान्तिकथनं नाम त्रिषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२६३

———

अथ चतुःषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

देवपूजावैश्वदेवबली

पुष्कर उवाच—
देवपूजादिकं कर्म वक्ष्ये चोत्पातमर्दनम्।
आपो हि ष्ठेति तिसृभिः स्नातोऽर्घ्यं विष्णवेऽर्पयेत् ॥१
हिरण्यवर्णामिति च पाद्यं च तिसृभिर्द्विज।
शं न आपो ह्याचमनमिदमापोऽभिषेचनम् ॥२

पुष्कर बोले—अब मैं उत्पातों को नष्ट करने वाले देव पूजा आदि कर्मों को बतलाऊँगा। अये द्विज ! स्नानोपरान्त भगवान् विष्णु को 'आपो हि ष्ठा' इत्यादि तीन ऋचाओं से अर्घ्य तथा 'हिरण्यवर्णाम्' इत्यादि तीन ऋचाओं से पाद्य समर्पित करना चाहिए। 'शं न आपो' मंत्र से आचमन तथा 'इदमापो' मंत्र से स्नान करना चाहिए।१-२।

रथे अक्षे च तिसृभिर्गन्धं युवेति वस्त्रकम्।
पुष्पं पुष्पवतीत्येवं धूपं [1]धूरसि वाऽप्यथ ॥३
तेजोऽसि शुक्रं दीपं स्यान्मधुपर्कं दधीति च।
हिरण्यगर्भ इत्यष्टावृचः प्रोक्ता निवेदने ॥४

---

१. छ. धूपोऽसि चाप्य°।

अन्नस्य मनुजश्रेष्ठ पानस्य च सुगन्धिनः ।

'रथे अक्षे च' इत्यादि तीन मंत्रों से गंध, युव, इत्यादि मंत्र से वस्त्र, 'पुष्पवती' इत्यादि मंत्र से पुष्प, 'धूरसि' इत्यादि मंत्र से धूप 'तेजोऽसि शुक्रं' इत्यादि मंत्र से दीप 'दधि, इत्यादि मंत्र से मधुपर्क और अये मानवेन्दु ! 'हिरण्य गर्भं' इत्यादि आठ ऋचाओं से अन्न, पान तथा सुगन्धित पदार्थों को समर्पित करना चाहिए ।३-४½ ।

चामरव्यजनोपानच्छत्रं यानासने तथा ॥५
यत्किंचिदेवमादि स्यात्सावित्रेण निवेदयेत् ।
पौरुषं तु जपेत्सूक्तं[1] तेनैव जुहुयात्तथा ॥६
अर्चाभावे तथा वेद्यां जले पूर्णघटे तथा ।
नदीतीरेऽथ कमले शान्तिः स्याद्विष्णुपूजनात् ॥७

चामर, व्यजन, उपानत् (जूता) छत्र, यान, आसन आदि सभी पदार्थ सावित्री ऋचा से समर्पित करना चाहिए । तत्पश्चात् पुरुषसूक्त का जप और उसी से हवन करना चाहिए । प्रतिमा के अभाव मे वेदी मे, जल पूर्ण घट पर, नदी तट पर तथा कमल में विष्णु की पूजा करने से उत्पातो की शान्ति होती है ।५-७ ।

ततो होमः प्रकर्तव्यो दीप्यमाने विभावसौ ।
परिसंमृज्य पर्युक्ष्य परिस्तीर्य परिस्तरैः ॥८
सर्वान्नाग्रं समुद्धृत्य जुहुयात्प्रयतस्ततः ।
वासुदेवाय देवाय प्रभवे चाव्ययाय च ॥९
अग्नये चैव सोमाय मित्राय वरुणाय च ।
इन्द्राय च महाभाग इन्द्राग्निभ्यां तथैव च ॥१०
विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यः प्रजानां पतये नमः ।
अनुमत्यै तथा राम धन्वन्तरय एव च ॥११
वास्तोष्पत्यै (तये)[2] ततो देव्यै ततःस्विष्टकृतेऽग्नये ।
स चतुर्थ्यन्तनाम्ना तु हुत्वैतेभ्यो वलिं हरेत् ॥१२

तदनन्तर (विष्णु-पूजा के बाद) प्रज्वलित अग्नि में हवन करना चाहिए । पहले जल में सम्मार्जन तथा सेचन करके कुशास्तरण करना चाहिए, तत्पश्चात् समस्त

1. क. ङ. च. छ. ०क्तं तदेव ।2- च. तथोदीच्यै त० ।

मंत्रों के सारभाग से पवित्रता पूर्वक हवन करना चाहिए। वासुदेव, देव, प्रभु, अव्यय, अग्नि, सोम, मित्र, वरुण, इन्द्राग्नि, विश्वेदेव, प्रजापति, अनुमति, धन्वन्तरि, वास्तोष्पति, देवी, स्विष्टकृत्, अग्नि—इन पदों को चतुर्थ्यन्त बनाकर अन्त में 'नमः' पद जोड़कर (अर्थात् 'वासुदेवाय नमः' आदि कहकर) आहुतियाँ देनी चाहिए। तदनन्तर इन देवी-देवताओं के लिए बलि देनी चाहिए।८-१२।

तक्षोपतक्षमभितः पूर्वेणाग्निमतः परम्।
अश्वानामपि धर्मज्ञ ऊर्णानामानि चाप्यथ ॥१३
[1]निरुन्धी धूम्रिणीका च अस्वपन्ती तथैव च।
मेघपत्नी च नामानि सर्वेषामेव भार्गव ॥१४

उसके बाद वेदी के चारों ओर तक्षा और उपतक्षा को, पूर्व में अग्नि को, उसके बाद अश्वों, ऊर्णाओं, निरुन्धी, धूम्रिणीका, अस्वपन्ती और मेघपत्नी को बलि समर्पण करनी चाहिए।१३-१४।

आग्नेयाद्याः क्रमेणाथ ततः शक्तिषु निक्षिपेत्।
नन्दिन्यै च सुभाग्यै च सुमङ्गल्यै च भार्गव ॥१५
भद्रकाल्यै ततो दत्त्वा स्थूणायां च तथा श्रिये।
हिरण्यकेश्यै च तथा वनस्पतय एव च ॥१६
धर्माधर्ममयौ द्वारे गृहमध्ये ध्रुवाय च।
मृत्यवे च बहिर्दद्याद्वरुणायोदकाशये ॥१७

तत्पश्चात् अये भार्गव! आग्नेय आदि कोणों में क्रमशः नन्दिनी, सुभागी, सुमंगली और भद्रकाली को, स्थूणा (गृहस्तम्भ) पर, श्री, हिरण्यकेशी तथा वनस्पति को, द्वार पर, धर्म अधर्म को, गृहमध्य में ध्रुव को, बाहर मृत्यु तथा भूतों को, जलाशय में वरुण को और गृह में कुबेर को बलि देनी चाहिए।१५-१७।

भूतेभ्यश्च बहिर्दद्याच्छरणे धनदाय च।
इन्द्रायेन्द्रपुरुषेभ्यो दद्यात्पूर्वेण मानवः ॥१८
यमाय तत्पुरुषेभ्यो दद्याद्दक्षिणतस्तथा।
वरुणाय तत्पुरुषेभ्यो दद्यात्पश्चिमतस्तथा ॥१९

---

१. क. ङ. निरुक्षी।

सोमाय सोम पुरुषेभ्य उदग्दद्यादनन्तरम् ।
ब्रह्मणे ब्रह्म पुरुषेभ्यो मध्ये दद्यात्तथैव च ॥२०
आकाशे च तथा चोर्ध्वे स्थण्डिलाय क्षितौ तथा ।
दिवा दिवाचरेभ्यश्च रात्रौ रात्रिचरेषु च ॥२१

पूर्व दिशा में इन्द्र तथा उनके गणों को, दक्षिण दिशा में यम तथा उनके गणों को, पश्चिम दिशा में वरुण तथा उनके गणों को, उत्तर दिशा में सोम तथा उनके गणों को, मध्य ऊपर तथा आकाश में ब्रह्मा तथा उनके गणों को, पृथ्वी पर स्थण्डिल को दिन में दिवाचरों को और रात्रि में रात्रिचरों को बलि देनी चाहिए ।१८-२१ ।

बलिं बहिस्तथा दद्यात्सायं प्रातस्तु प्रत्यहम् ।
पिण्डनिवर्पणं कुर्यात्ततः सायं न कारयेत् ॥२२
पित्रे तु प्रथमं दद्यात्तत्पित्रे तदनन्तरम् ।
प्रपितामहाय तन्मात्रे पित्रमात्रे ततोऽर्पयेत् ॥२३
तन्मात्रे दक्षिणाग्रेषु कुशेष्वेवं यजेत्पितॄन् ।
इन्द्रवारुणवायव्या याम्या वा नैऋताश्च ये ॥२४
ते काकाः प्रतिगृह्णन्तु इमं पिण्डं मयोद्धृतम् ।
काकपिण्डं तु मंत्रेण शुनः पिण्डं प्रदापयेत् ॥२५

प्रति दिन सायं-प्रातःकाल बाहर (अदृष्टजीवों को) बलि देनी चाहिए। किन्तु पिण्ड निर्वपण करने के बाद सायंकाल बलि नहीं देनी चाहिए। सब से पहिले पिता के लिए पिण्ड दान करना चाहिए, तदनन्तर क्रमशः पितामह, प्रपितामह, प्रपितामह की माता और पिता की माता के लिए पिण्डदान करना चाहिए। इस प्रकार दक्षिणाग्र कुशों पर पितरों का पूजन कर, पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशा में 'जो कौएँ हैं, वे मेरे दिये हुए इस पिण्ड को स्वीकार करें' यह कहते हुए कौओं को पिण्ड देना चाहिए। तदनन्तर कुत्ते के लिए पिण्डदान करना चाहिए ।२२-२५ ।

विवस्वतः कुले [1]जातौ द्वौ [2]श्यामशबलौ शुनौ ।
तेषां पिण्डं प्रदास्यामि पथि रक्षतु मे सदा ॥२६

---

१ च. जाता दशम्यां द्वादशारुणाः । ते । २-छ. श्यावश° ।

सौरभेय्यः सर्वहिताः पवित्राः पापनाशनाः ।
प्रतिगृह्णन्तु मे ग्रासं गावस्त्रैलोक्यमातरः ॥२७

और उस समय यह संकल्प करना चाहिए फिर 'सूर्य के कुल में श्याम, शवल नामक दो कुत्ते हुए है। मैं उन्हें पिण्ड दूंगा वे मार्ग में सदा मेरी रक्षा करते रहें। तत्पश्चात् सबका हित करने वाली, पवित्र, पापनाशक, त्रिलोक-जननी गौएँ मेरे दिये हुए ग्रास स्वीकार करें। २६-२७।

गोग्रासं च स्वस्त्ययनं कृत्वा भिक्षां प्रदापयेत्। अतिथी-न्दीनान्पूजयित्वा गृही भुञ्जीत च स्वयम् ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा, ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा। ॐ देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा। ॐ पितृकृतस्यैनसोऽवय-जनमसि स्वाहा। ॐ आत्मकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा। ॐ मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा। ॐ एनस एनसोऽवयजनमसि स्वाहा। यच्चाहमेनो विद्वांश्चकार यच्चाविद्वांस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा। अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा। ॐ प्रजापतये स्वाहा ॥२८
विष्णुपूजावैश्वदेवबलिस्ते कीर्तितो मया ॥२९

यह कहते हुए गायों को ग्रास देना, भिक्षादान करना चाहिए, अतिथियों तथा दीन दुखियों को भोजन करा के स्वयं भोजन करना चाहिए। ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा, ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा, ॐ देवकृतस्यै-नसोऽवयजनमसि स्वाहा। ॐ पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा। ॐ आत्मकृतस्यैनसोऽवय जनमसि स्वाहा। ॐ मनुष्यकृतस्यैनसोऽव यजनमसि स्वाहा। ॐ एनस एनसोऽवयजनमसि स्वाहा। अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा। ॐ प्रजापतये स्वाहा इत्यादि मंत्रों से हवन करना चाहिए। इस प्रकार मैंने विष्णुपूजा तथा वैश्वदेव वलि का वर्णन कर दिया। २८-२९।

इत्याग्नेये महापुराणे आग्नेये देवपूजावैश्वदेवबलिकथनं नाम चतुःषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२६४

अथ पञ्चषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

दिक्पालादिस्नानम्

अग्निरुवाच[1]—

सर्वार्थसाधनं स्नानं वक्ष्ये शान्तिकरं शृणु ।
स्नापयेच्च सरित्तीरे ग्रहान्विष्णुं विचक्षणः ॥१
देवालये ज्वरात्यादौ विनायकग्रहार्दिते ।
विद्यार्थिनो[2] ह्रदे गेहे जयकामस्य तीर्थके ॥२

अग्निदेव बोले—अब मैं सकल प्रयोजनों को सिद्ध करने वाले तथा शान्ति देने वाले स्नान को बतलाऊँगा उसे सुनो । विद्वान व्यक्ति नदी के तट पर ग्रहों एवम् विष्णु का स्नपन करे। (अर्थात् नदी में स्नान कर इनका पूजन करे) यदि विनायक ग्रह जन्य ज्वर आदि की पीड़ा हो तो (उसकी शान्ति के लिए) देवालय में जाकर स्नान करना चाहिए । विद्याभिलाषी जन तालाब तथा गृह में और जयाभिलाषी तीर्थ में स्नान करे ।१-२

पद्मिन्यां स्नापयेन्नारीं गर्भो यस्याः स्रवेत्तथा ।
अशोकसंनिधौ स्मायाज्जातो यस्या विनश्यति ॥३

जिस नारी का गर्भपात हो जाय, उसे कमलिनी नदी में स्नान करना चाहिए, जिसके सन्तान होकर नष्ट हो जाती हो, उसे अशोक वृक्ष के निकट स्नान करना चाहिए ।३

पुष्पार्थिन्याञ्च[3] पुष्पाढ्ये पुत्रार्थिन्याञ्च[4] सागरे ।
गृहे सौभाग्यकामानां सर्वेषां विष्णुसंनिधौ ॥४
वैष्णवे रेवतीपुष्ये सर्वेषां स्नानमुत्तमम् ।
स्नानकामस्य सप्ताहं पूर्वमुत्सादनं स्मृतम् ॥५

---

१. क. ङ० च—नित्यं नैमित्तिकं स्ना० । च. ० च सर्वार्थसाधकं स्ना० ।

२. च.० नो ह्रदङ्गे च ज० । ३. छ. °थिनां च पुण्पाढ्ये । ४. छ. °थिनां च सा° ।

रजस्वला होने की इच्छुक नारी को पुष्पों से युक्त सरोवर में और पुत्राभिलाषिणी स्त्री को सागर में स्नान करना चाहिए। सौभाग्य की कामना करने वाले को घर में तथा सभी वस्तुओं की कामना करने वालों को विष्णु भगवान् (की मूर्ति) के समीप स्नान करना चाहिए। रेवती तथा पुष्य नक्षत्र में वैष्णव पीठ पर स्नान करना सब के लिए उत्तम है। स्नान की इच्छा करने वाले को स्नान से एक सप्ताह पूर्व उबटन लगाना चाहिए।४-५।

पुनर्नवां रोचनां च शताङ्गा[1] गुरुणा त्वचम्।
मधूकं रजनी द्वे च तगरं नागकेशरम् ॥६
अम्बरीं चैव मञ्जिष्ठां मांसीयासकक[2]र्दमैः।
प्रियंगुसर्षपं कुष्ठं बलां ब्राह्मीं च कुङ्कुमम् ॥७
पञ्चगव्यं सक्तुमिश्रमुद्वर्त्य स्नानमाचरेत्।

पुनर्नवा, रोचना, शताङ्ग, अगर, छाल, मधूक, दो रजनी (अर्थात् हरिद्रा और जतुका) तगर, नागकेशर, अम्बरी, मञ्जिष्ठा, जटामांसी, यासक, कर्दम, प्रियंगु, सरसों, कुष्ठ, वला, ब्राह्मी, कुंकुम और सत्तू मिश्रित पञ्चगव्य का बना उबटन लगाकर स्नान करना चाहिए। ६-७½।

मण्डले कर्णिकायां च विष्णुं[3] ब्रह्माणमर्चयेत् ॥८
दक्षे वामे हरं पूर्वं पत्रे पूर्वादिके क्रमात्।
लिखेदिन्द्रादिकान्देवान्सायुधान्सहवान्धवान् ॥९
स्नानमण्डलकान्दिक्षु कुर्याच्चैव विदिक्षु च।
विष्णुब्रह्मेशशक्रादींस्तदस्त्राण्यर्च्य होमयेत् ॥१०

तदनन्तर मण्डलस्थित पुष्पकर्णिका के ऊपर दक्षिण भाग में विष्णु तथा ब्रह्मा की और वामभाग में शिव की अर्चना करनी चाहिए। तत्पश्चात् पूर्व आदि दिशाओं में क्रमशः रखे पत्तों पर अस्त्रों तथा बांधवों सहित इन्द्र आदि देवताओं के चित्तों को चित्रित करना चाहिए। विभिन्न दिशाओं में (इस प्रकार के) स्नान मण्डलों की रचना करनी चाहिए। उसके बाद, विष्णु,

---

१. छ. °ताङ्गं गु°। २. छ. कमर्दनैः। प्रि°। ३. क. ङ. छ. °ष्णुं ब्राह्मणं°।

ब्रह्मा, ईश, शक्र आदि देवताओं और उनके अस्त्रों की पूजा करके हवन करना चाहिए ।८-१०।

एकैकस्य त्वष्टशतं समिधस्तु तिलान्घृतम् ।
भद्रः सुभद्रः सिद्धार्थः कलशाः पुष्टिवर्धनाः ॥११
अमोघश्चित्रभानुश्च पर्जन्योऽथ सुदर्शनः ।
स्थापयेत्तु घटानेतान्साश्विरुद्रमरुद्गणाः[1] ॥१२
विश्वे देवास्तथा दैत्या वसवो मुनयस्तथा ।
आवेशयन्तु सुप्रीतास्तथाऽन्या अपि देवताः ॥१३

एक-एक देवता के लिए एक सौ आठ बार तिल, घी तथा समिधाओं से होम करना चाहिए । तदनन्तर भद्र, सुभद्र, सिद्धार्थ, अमोघ, चित्रभानु, पर्जन्य तथा सुदर्शन नामक पुष्टिवर्धक कलशों की स्थापना करके उनमें 'अश्विनीकुमार' रुद्र, मरुद्गण विश्वेदेव, दैत्य, वसु, मुनि तथा अन्य देवगणों को श्रद्धा पूर्वक प्रवेश कराना चाहिए ।११-१३।

ओषधीर्निक्षिपेत्कुम्भे जयन्तीं विजयां जयाम्[2] ।
शतावरीं शतपुष्पां विष्णुक्रान्ता[3]पराजिताम् ॥१४
ज्योतिष्मतीमतिवलां चन्दनोशीरकेशरम् ।
कस्तूरिकां च कर्पूरं बालकं पत्रकं त्वचम् ॥१५
जातीफलं लवङ्गं च मृत्तिकां पञ्चगव्यकम् ।
भद्रपीठे स्थितं साध्यं स्नापयेयुर्द्विजा बलात् ॥१६

फिर उन कलशों में जयन्ती, विजया, जया, शतावरी, शतपुष्पा विष्णुक्रान्ता अपराजिता, जोतिष्मती, अतिवला, चन्दन, उशीर, केशर, कस्तूरिका, कर्पूर, बालक, पत्रक, त्वच, जातीफल, लवङ्ग आदि ओषधियाँ तथा मृत्तिका और पञ्चगव्य मिलाना चाहिए । पुनः सुन्दर आसन पर स्थित आराध्य देव को द्विजगण बलपूर्वक स्नान करावें ।१४-१६।

राजाभिषेकमंत्रोक्तदेवानां होमकाः पृथक् ।
पूर्णाहुतिं ततो दत्त्वा गुरवे दक्षिणां ददेत् ॥१७

---

१. च. छ. द्गणन् । वि° । २. क. ङ. तथा । ३. क. ङ. °क्रान्तां प° ।

इन्द्रोऽभिषिक्तो गुरुणा पुरा दैत्याञ्जघान ह[1] ।
दिक्पालस्नानं कथितं सङ्ग्रामादौ जयादिदम्[2] ॥१८

तदनन्तर साधक राज्याभिषेक-मंत्रों में कहे देवताओं का पृथक्-पृथक् हवन करें। अन्त में पूर्णाहुति देकर गुरू को दक्षिणा देनी चाहिए। प्राचीन काल में वृहस्पति ने इसी प्रकार स्नान कराया था। तभी वह (इन्द्र) दैत्यों का वध कर सके थे। यही दिक्पाल स्नान है, जिससे संग्राम आदि में विजय इत्यादि की प्राप्ति होती है ।१७-१८।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दिक्पालस्नानविधि कथनं नाम पञ्चषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२६५

अथ षट्षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

विनायकस्नानम्

पुष्कर उवाच

विनायकोपसृष्टानां स्नानं सर्वकरं वदे ।
विनायकः कर्मं (र्मा) विघ्नसिद्ध्यर्थं त्रिनियोजितः ॥१
गणानामाधिपत्ये च केशवेशपितामहैः ।
स्वप्नेऽवगाहतेऽत्यर्थं जलं मुण्डांश्च पश्यति ॥२

पुष्कर बोले—(अब) मैं विनायक द्वारा उपसृष्ट (विघ्न बाधित) व्यक्तियों के लिए शान्ति कारक स्नान को वतला रहा हूँ। ब्रह्मा, विष्णु, महेश ने कार्यों में पड़ने वाले विघ्नों को दूर करने के लिए विनायक (गणेश) को गणों का अधिपति नियुक्त किया है। जिस मनुष्य के ऊपर विनायक का उत्पात होता है, वह स्वप्न में अत्यन्त स्नान (करने का अनुभव) करता है। जल तथा मुण्डों को देखता है । १-२ ।

---

१. ख. ग. च. ह । दीक्षास्नानं तु क° । २. ख. च. छ. जयादिकम् ।

विनायकोपसृष्टांस्तु[1] क्रव्यादानधिरोहति ।
व्रजमानस्तथाऽऽत्मानं मन्यतेऽनुगतं परैः ॥३
विमना विफलारम्भः संसीदत्यनिमित्ततः ।
कन्या वरं न चाऽऽप्नोति न चापत्यं वराङ्गना ॥४
आचार्यत्वं श्रोत्रियश्च न शिष्योऽध्ययनं लभेत् ।
धनी न लाभमाप्नोति न कृषिं च कृषीवलः ॥५

राक्षसों के ऊपर चढ़ता है, चलते हुए अपने को दूसरों के द्वारा अनुगत समझता है, (अर्थात् किसी के न होने पर भी) उसे ऐसा भान होता है कि मेरे पीछे-पीछे बहुत से आदमी आ रहे हैं, सदा अन्यमनस्क रहता है, उद्योग में असफल होता है और अकारण दुःखी रहता है। (विनायक के अप्रसन्न रहने पर) कन्या को वर नहीं मिलता, उत्तम नारी को सन्तान नहीं होती, श्रोत्रिय आचार्यत्व को नहीं प्राप्त करता है, शिष्य को विद्यालाभ नहीं होता है, धनी को धन की प्राप्ति नहीं होती है। किसान खेती (के लाभ) को नहीं प्राप्त करता है।३-५।

राजा राज्यं न चाऽऽप्नोति स्नपनं तस्य कारयेत् ।
हस्तपुष्याश्वयुक्सौम्ये वैष्णवे भद्रपीठके ॥६
गौरसर्षपकल्केन [2]साज्येनोत्सादितस्य च ।
सर्वौषधैः सर्वगन्धैः प्रलिप्तशिरसस्तथा ॥७

और राजा को राज्य प्राप्ति नहीं होती है। अतः विनायकोपद्रवग्रस्त-व्यक्ति को सूर्य के उत्तरायण होने पर हस्त, पुष्य तथा अश्विनी नक्षत्रों में से किसी भी नक्षत्र में वैष्णव भद्रपीठ पर स्नान कराना चाहिए किन्तु उससे पूर्व घृत मिश्रित उजले सरसों के चूर्ण का बना हुआ उबटन शरीर पर लगाना चाहिए। और शिर के ऊपर सुगन्धित द्रव्यों तथा ओषधियों का लेपकरना चाहिए।६-७।

चतुर्भिः कलशैः स्नानं तेषु सर्वौषधीः क्षिपेत् ।
अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात्संगमाद्ध्रदात् ॥८
मृत्तिकां रोचनां गन्धं गुग्गुलं तेषु निक्षिपेत् ।
सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पावनं कृतम् ॥९

---

१ च. °सृष्टस्तु । २ क. ङ.° ज्येनाऽऽच्छादि ° ।

तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः पुनन्तु ते ।
भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः ॥१०
भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः ।

तत्पश्चात् चार कलशों के उस जल से उसे स्नान कराना चाहिए। जिसमें सब प्रकार की औषधियाँ, अश्वस्नान, गजस्नान, वल्मीक, नदियों के संगम तथा तालाब की मृत्तिका, गोरोचन, गंध गुग्गुल डाला गया हो। उस समय यह कहना चाहिए कि ऋषियों ने इन्द्र को जल की सौ धाराओं से नहला कर पवित्र किया था। इसलिए मैं भी तुम्हारा अभिषेक करता हूँ। जल तुम्हें पवित्र करे। राजा वरुण, सूर्य, बृहस्पति इन्द्र, वायु और सप्तर्षिगण तुम्हें सौभाग्य प्रदान करें।८-१०½।

यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्धनि ॥११
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद्घ्नन्तु सर्वदा ।
दर्भपिञ्जलिमादाय[1] वामहस्ते ततो गुरुः ॥१२
स्नातस्य सार्षपं तैलं स्रुवेणौदुम्बरेण च ।
जुहुयान्मूर्धनि कुशान्सव्येन परिगृह्य च ॥१३

तुम्हारे केशों में, सीमन्त में, मस्तक में, ललाट में कानों में, तथा आँखों में जो कुछ दुर्भाग्य है उसे यह जल सदा के लिए नष्ट कर दें। तत्पश्चात् गुरु अपने बायें हाथ में दर्भपिञ्लज लेकर स्नान किए हुए व्यक्ति के शिर पर गूलर की लकड़ी के बने हुए स्रुव से हवन के रूप में सरसों का तेल डाले। ११-१३।

मितश्च संमितश्चैव तथा [2]शालकंकण्टकी ।
कूष्माण्डी राजपुत्रश्च एतैः स्वाहा समन्वितैः ॥१४
नामभिर्बलिमंत्रैश्च नमस्कारसमन्वितैः ।
दद्याच्चतुष्पथे शूर्पे कुशानास्तीर्य सर्वतः ॥१५
कृताकृतांस्तण्डुलांश्च पललौदनमेव च ।
मत्स्यान्पक्वांस्तथैवाऽऽमान्पुष्पं चित्रं सुरां त्रिधा ॥१६

---

१ क. ङ. च. ञ्जलमा°। २. ख. ग. ङ. च. °कंटकटी। कू°।

मूलकं पूरिकापूपांस्तथैवैण्डविकास्रजः ।
दध्यन्नं पायसं पिष्टं मोदकं गुडमर्पयेत् ॥१७

स्वाहा पद अन्त में जोड़कर मित, संमित, शालक, कण्टक, कूष्माण्डी तथा राजपुत्र-इन नामों से और नमस्कार युक्त वलिमन्त्रों से हवन (अर्थात् तेल प्रक्षेप) करना चाहिए। तदनन्तर चौराहे पर सूप में कुशा विछा कर उन पर कच्चा-पक्का तंडुल मांस-भात, मत्स्य, पंक, आम विभिन्नप्रकार के पुष्प तीन प्रकार की सुरा, मूली, पूड़ी, पुआ, ऐण्डविका की माला, दही अन्न, खीर, पिष्ट, मोदक, तथा गुड़ विनायक को समर्पण करना चाहिए ।१४-१७।

विनाकस्य जननीमुपतिष्ठेत्ततोऽम्बिकाम् ।
दूर्वासिर्षपपुष्पाणां दत्त्वाऽर्घ्यं (र्घ्यं) पूर्णमञ्जलिम् ॥१८
रूपं देहि यशो देहि सौभाग्यं सुभगे मम ।
पुत्रं[1] देहि धनं देहि सर्वान्कामांश्च देहि मे ॥१९
भोजयेद्ब्राह्मणान्दद्याद्वस्त्रयुग्मं गुरोरपि ।
विनायक ग्रहान्प्राच्र्य श्रियं[2] कर्मफलं लभेत् ॥२०

तदनन्तर गणेश जननी पार्वती का उपस्थान करके दूर्वा, सरसों और पुष्पों का अर्घ्य देकर करवद्ध प्रार्थना करें कि 'हे सौभाग्यशालिनी! मुझे रूप दो, यश दो, सौभाग्य दो, पुत्र दो, धन दो और सभी कामनाओं को पूर्ण करो। इसके वाद ब्राह्मण को भोजन करा कर गुरु को एक जोड़ा वस्त्र प्रदान करना चाहिए। इस प्रकार ग्रहों के सहित विनायक की आराधना करने से मनुष्य सौभाग्य तथा (सभी) कार्यों में सफलता प्राप्त कर लेता है ।१८-२०।

इत्यादि महापुराण आग्नेये विनायकस्नानकथनं नाम षट्षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२६६

---

१. ख. पुत्रान्देहि । २. क. ङ. च. शेषं ।

अथ सप्तषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

माहेश्वरस्नानलक्षकोटिहोमादयः

पुष्कर उवाच—

स्नानं माहेश्वरं वक्ष्ये राजादेर्जयवर्धनम् ।
दानवेन्द्राय वलये यज्जगादोशनाः पुरा ।
भास्करेऽनुदिते पीठे प्रातः संस्नापयेद्घटैः ॥१
ॐ नमो भगवते रुद्राय च वलाय च ।
पाण्डरोचितभस्मानुलिप्तगात्राय (तद्यथा) जय जय सर्वान्शत्रून्मूकय कलहविग्रहविवादेषु भञ्जय भञ्जय । ॐ मथ मथ [1]सर्वप्रत्यर्थिकान्योऽसौ युगान्तकाले दिधक्षति । इमां पूजां रौद्रमूर्तिः सहस्रांशुः शुक्लः स ते रक्षतु जीवितम् ॥२
संवर्तकाग्नितुल्यश्च त्रिपुरान्तकरः शिवः[2] ॥३
सर्वदेवमयः सोऽपि तव रक्षतु जीवितं[3] ।
लिखि लिखि खिलि स्वाहा ॥४
एवं स्नातस्तु मंत्रेण जुहुयात्तिलतण्डुलम् ।
पञ्चामृतैस्तु संस्नाप्य पूजयेच्छूलपाणिनम् ॥५

पुष्कर बोले—मैं माहेश्वर स्नान को वतलाऊँगा, जो राजाओं आदि के लिए जयवर्धक है और जिसे प्राचीन काल में शुक्राचार्य ने दानवेन्द्र वलि को वताया था। प्रातः काल सूर्योदय से पूर्व पीठ पर 'ओं नमो भगवते रुद्राय च बलाय च पाण्डरोचितभस्मानुलिप्तगात्राय जय जय । सर्वान्शत्रून्मूकय कलह विग्रह विवादेषु भञ्जय भञ्जय । ॐ मथ मथ सर्वप्रत्यर्थिकान्योऽसौ युगान्तकाले दिधक्षति । इमां पूजां रौद्रमूर्तिः सहस्रांशुः शुक्लः स ते रक्षतु जीवितम् । संवर्त-

---

१. च.° वंषथिका° । २. क. ङ. च. परः । ख. शर । ३. क. ङ. च. तं. लिखिनि लिखिनि स्वा° ।

काग्नितुल्यश्च त्रिपुरान्तकरः शिवः। सर्वदेवमयः सोऽपि तव रक्षतु जीवितं लिखि लिखि खिलि स्वाहा, इस मंत्र को पढ़ते हुए घटजल से स्नान कर तिल तण्डुल से हवन करना चाहिए। तदनन्तर पञ्चामृत से स्नान कराकर भगवान् शूलपाणि (शङ्कर) की पूजा करनी चाहिए।१-५।

स्नानान्यन्यानि वक्ष्यामि सर्वदा विजयाय ते।
स्नानं घृतेन कथितमायुषो[1] वर्धनं परम् ॥६
गोमयेन च लक्ष्मीः स्याद्गोमूत्रेणाघमर्दनम्।
क्षीरेण बलवृद्धिः[2] स्याद्दध्ना लक्ष्मीविवर्धनम् ॥७

(अब) मैं सर्वदा विजय को देने वाले अन्य विविध स्नानों को भी तुम्हें बता रहा हूँ। घृतस्नान अत्यन्त आयुवर्धक माना गया है। गोबर से स्नान करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। गोमूत्र स्नान से पापों का नाश होता है। दुग्ध स्नान से बलवृद्धि होती है। दधिस्नान से लक्ष्मी बढ़ती है।६-७।

कुशोदकेन पापान्तः पञ्चगव्येन सर्वभाक्।
शतमूलेन सर्वाप्तिर्गोशृङ्गोदकतोऽघजित् ॥८
पलाशविल्वकमलकुशस्नानं तु सर्वदम्।
वचाहरिद्रे द्वे मुस्तं स्नानं रक्षोहणं परम् ॥९
आयुष्यं च यशस्यं च धर्ममेधाविवर्धनम्।
हैमाद्भिश्चैव माङ्गल्यं रूप्यताम्रोदकैस्तथा ॥१०

कुशोदक स्नान से पापों का नाश होता है। पञ्चगव्य स्नान से सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। शतमूल (मिश्रित जल के) स्नान से सब कुछ प्राप्त हो जाता है। शृङ्गोदक स्नान से पापक्षय होता है। पलाश, विल्व, कमल तथा कुश के जल से स्नान करने से सकल कामनाएँ पूर्ण होती हैं। बच, दो प्रकार की हल्दी तथा मुस्त (नागर मोथा) के जल से स्नान करने से राक्षसों का विनाश होता है और आयु, यश, धर्म तथा मेधा बढ़ती है। स्वर्ण, चांदी तथा तांबे के जल से स्नान करने से मङ्गल होता है।८-१०।

रत्नोदकैस्तु विजयः सौभाग्यं सर्वगन्धकैः।
फलाद्भिश्च तथाऽऽरोग्यं धात्र्यद्भिः परमां श्रियम् ॥११

१. छ.° युष्यव°। २. छ.° लवृद्धि।

तिलसिद्धार्थकैर्लक्ष्मीः सौभाग्यं च प्रियंगुणा ।
पद्मोत्पलकदम्बैः[1] श्रीर्बलं वलाद्रुमोदकैः ॥१२

रत्न मिश्रित जल से स्नान करने से विजय होती है। सब प्रकार के सुगन्धित पदार्थों से स्नान करने से सौभाग्य की प्राप्ति होती है। फलों के जल से स्नान करने से आरोग्य लाभ होता है। और आंवले के जल से स्नान करने से परम श्री की प्राप्ति होती है। तिल तथा उजले सरसों (मिश्रित जल) से स्नान करने से लक्ष्मी और प्रियङ्गु (मिश्रित जल) मे स्नान करने से सौभाग्य की प्राप्ति होती है। पद्म, उत्पल तथा कदम्ब स्नान से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। और वलाद्रुम (मिश्रित) जल के स्नान से वल प्राप्त होता है।११-१२।

विष्णुपादोदकस्नानं सर्वस्नानेभ्य उत्तमम् ।
[2]एकाक्येकैककामो यो ह्येकैकं विधिवच्चरेत्[3] ॥१३
अक्रन्दयतिसूक्तेन प्रवध्नीयान्मणि करे ।
कुष्ठ पाठावचाशुण्ठीशङ्खलोहादिको मणिः ॥१४

विष्णु के चरणोदक से स्नान सभी स्नानों से उतम है। अकेला एक ही व्यक्ति यदि उक्त लाभों में से प्रत्येक लाभ की कामना करे तो उसे प्रत्येक स्नान विधि पूर्वक करना चाहिए। 'अक्रन्दयति' इत्यादि सूक्त से हाथ में कुष्ठ, पाठा बच, शुण्ठी, शङ्ख तथा लोहे आदि मणि वांधनी चाहिए। (क्योंकि उससे कल्याण होता है।१३-१४।

सर्वेषामेव कामानामीश्वरो भगवान्हरिः ।
तस्य संपूजनादेव सर्वान्कामान्समश्नुते ॥१५
स्नापयित्वा घृतक्षीरैः पूजयित्वा च पित्तहा ।
पञ्चमुद्वलिं दत्त्वा ह्यतिसारात्प्रमुच्यते ॥१६

भगवान विष्णु सभी कामनाओं के स्वामी है इस लिए उनकी पूजामात्र से ही सभी वांछित फल मिल जाते हैं। घृत क्षीर से विष्णु का स्नान और उनकी पूजा पित्त दोषों को दूर करती है। (उन्ही को) मूंग की पांच वालियाँ देने से अतिसार रोग से छुटकारा मिल जाता है। १५-१६।

१. छ.° दम्बैश्च श्री०। २. छ.° काकी एककामायेत्येकोऽर्कं वि° ३. क. ङ.° त्। आक्र°।

पञ्चगव्येन संस्नाप्य वातव्याधिं विनाशयेत् ।
द्विस्नेहस्नपनाच्छ्लेष्मरोगहा वाऽतिपूजया ॥१७
घृतं तैलं तथा क्षौद्रं स्नानं तु त्रिरसं परम् ।
स्नानं घृताम्बु द्विस्नेहं समलं[1] घृततैलकम् ॥१८

पञ्चगव्य से स्नान करने से वातव्याधि नष्ट होती है। द्विस्नेह (घी-जल) से स्नान करने से या अत्यधिक (विष्णु की) पूजा करने से कफजन्य रोग दूर हो जाते हैं। घी, तेल तथा मधु का स्नान त्रिरस स्नान कहा गया है। घी और जल का स्नान द्विस्नेह और घी, तेल का स्नान समल स्नान कहलाता है।१७-१८।

क्षौद्रमिक्षुरसं क्षीरं स्नानं त्रिमधुरं स्मृतम् ।
घृतमिक्षुरसं तैलं क्षौद्रं च त्रिरसं श्रिये ॥१९
अनुलेपस्त्रिशुक्लस्तु कर्पूरोशीर चन्दनैः ।
चन्दनागुरुकर्पूरमृगदर्पैः सकुङ्कुमैः ॥२०
पञ्चानुलेपनं विष्णोः सर्वकामफलप्रदम् ।

मधु, इक्षुरस और दूध के स्नान को त्रिमधुर स्नान और घी इक्षुरस, तेल तथा मधु के स्नान को त्रिरस स्नान कहते हैं। ये [सभी] स्नान ऐश्वर्य दायक हुआ करते हैं। कर्पूर, खश तथा चन्दन के अनुलेप को त्रिशुक्क कहते है। चन्दन, अगर, कपूर, कस्तूरी तथा कुंकुम के अनुलेप को पंचानुलेप कहते हैं। ये दोनों प्रकार के अनुलेप विष्णु को लगाने से सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। १९-२०½।

त्रिसुगन्धं च कर्पूरं तथा चन्दनकुङ्कुमैः ॥२१
मृगदर्प सकर्पूरं मलयं सर्वकामदम् ।
जातीफलं सकर्पूरं चन्दनं च त्रिशीतकम् ॥२२
पीतानि [2]शुकवर्णानि तथा [3]शुक्लानि भार्गव ।
कृष्णानि चैव रक्तानि पञ्चवर्णानि निर्दिशेत् ॥२३

कर्पूर, चन्दन तथा कुंकुम और कस्तूरी, कर्पूर तथा चन्दन को त्रिसुगन्ध

१. च.° लंकृतं । २. छ. शुक्लवर्णानि । ३. छ. शुक्लादि ।

कहते हैं। यह त्रिसुगन्ध सर्वकामनादायक है। अये भार्गव! पीत, हरित, कृष्ण तथा रक्त ये पांचो वर्ण विष्णु को प्रिय हैं। २१-२३।

उत्पलं पद्मजाती च त्रिशीतं हरिपूजने।
कुंकुमं रक्तपद्मानि त्रिरक्तं रक्तमुत्पलम् ॥२४
धूपदीपादिभिः प्राच्यं विष्णुं शान्तिर्भवेन्नृणाम्।
चतुरस्रकरे कुण्डे ब्राह्मणाश्चाष्ट षोडश ॥२५
लक्षहोमं कोटिहोमं तिलाज्ययवधान्यकैः।
ग्रहानभ्यर्च्य गायत्र्या सर्वशान्तिः क्रमाद्भवेत् ॥२६

उत्पल, पद्म तथा जाती (चमेली) को भी त्रिशीत कहते हैं। विष्णु-पूजन में यही विहित है। कुंकुम रक्तपद्म तथा रक्त उत्पल—इनको त्रिरक्त कहते हैं। धूप दीप आदि से विष्णु की पूजा करने से मनुष्य को शान्ति मिलती है। चौकोर कुण्ड में आठ या सोलह ब्राह्मणों द्वारा तिल, यव, घी तथा धान से एक लाख तथा एक करोड़ होम कराकर गायत्री मंत्र से ग्रहों की पूजा करने से क्रमशः सभी उत्पात शान्त हो जाते हैं ॥२४-२६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये माहेश्वरस्नानलक्षकोटिहोमादिकथनं नाम सप्तषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।२६७

अथाष्टषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

नीराजनाविधिः

पुष्कर उवाच—
कर्म सांवत्सरं राज्ञां [1]जन्मर्क्षे पूजयेच्च तम्।
मासि मासि च संक्रान्तौ सूर्यसोमादिदेवताः॥१
अगस्त्यस्योदयेऽगस्त्यं [2]चातुर्मास्यं हरिं यजेत्।
शयनोत्थापने पञ्चदिनं कुर्यात्समुत्सवम् ॥२

पुष्कर बोले—(अपने) जन्म के नक्षत्र में विष्णु का पूजन करना राजाओं का सांवत्सर कर्म कहलाता है। राजा को प्रत्येक मास की संक्रान्ति में सूर्य,

१. क. ङ. कर्माख्यं। २. क. ङ. च. छ. चातुर्मास्यं।

चन्द्रमा आदि देवताओं का, अगस्त्योदय होने पर (भादों में) अगस्त्य का और चातुर्मास्य में विष्णु का पूजन करना चाहिए। हरिशयन (आषाढ़ शुक्ल पक्ष की एकादशी) तथा हरिजागरण (कार्तिक शुक्ल पक्ष की एकादशी) के समय पाँच दिन खूब धूम-धाम से उत्सव मनाना चाहिए। १-२।

[1]प्रोष्ठपादे सिते पक्षे प्रतिपत्प्रभृति क्रमात्।
शिविरात्पूर्वदिग्भागे शुक्रार्थं भवनं चरेत्॥३
तत्र शक्रध्वजं स्थाप्य शचीं शक्रं च पूजयेत्।
अष्टम्यां वाद्यघोषेण तां तु यष्टिं प्रवेशयेत्॥४

भादों की शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से लेकर शिबिर (सैनिकालय) के पूर्व भाग में इन्द्र के लिए भवन का निर्माण करना चाहिए। उसमें इन्द्रध्वज की स्थापना करके इन्द्राणी समेत इन्द्र की पूजा करनी चाहिए। अर्थात् अष्टमी के दिन गाने-बजाने के साथ बांस की ध्वजा गाड़नी चाहिए। ३-४।

एकादश्यां सोपवासो द्वादश्यां केतुमुत्थितम्।
यजेद्वस्त्रादिसंवीतं [2]घटस्थं सुरपं शचीम्॥५
वर्धस्वेन्द्र जितामित्र वृत्रहन्पाकशासन।
देवदेव महाभाग त्वं हि भूमिष्ठतां गतः॥६

एकादशी को उपवास करना चाहिए तथा द्वादशी में उस ध्वजा की पूजा करके वस्त्र आदि से आच्छादित घट के ऊपर शची समेत इन्द्र की आराधना करनी चाहिए। अर्चना में इस प्रकार की प्रार्थना करनी चाहिए कि 'हे इन्द्र! आपकी वृद्धि हो। हे शत्रुजित्! वृत्रहन्! पाक नामक दैत्य के ऊपर शासन करने वाले! देवदेव! महाभाग! आप भूमि पृष्ठ पर आये हैं। ५-६।

त्वं प्रभुः शाश्वतश्चैव सर्वभूतहिते रतः।
अनन्ततेजा वैराजो यशोजयविवर्धनः॥७
तेजस्ते वर्धयन्त्वेते देवाः शक्रः सुवृष्टिकृत्।
ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च कार्तिकेयो विनायकः॥८
आदित्या वसवो रुद्राः साध्याश्च भृगवो दिशः।
मरुद्गणा लोकपाला ग्रहा यक्षाद्रिनिम्नगाः॥९

---

१. क. ङ. प्रोष्ठपदे। २. ख. ग. पटस्थं।

समुद्राः श्रीर्मही गौरी चण्डिका च सरस्वती ।
प्रवर्तयन्तु ते तेजो जय शक्र शचीपते ॥१०
तव चापि जयान्नित्यं मम संपद्यतां शुभम् ।
प्रसीद राज्ञां विप्राणां प्रजानामपि सर्वशः ॥११

आप प्रभु हैं, शाश्वत हैं, सकल प्राणियों के हितसाधक हैं, अनन्त तेजस्वी है, विराट पुरुष के पुत्र हैं, और यश तथा जय को बढ़ाने वाले हैं। ये देवगण आपके तेज को बढ़ावें। सुख प्रदान करने वाले शक्र, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, कार्तिकेय, लोकपाल, ग्रह, यक्ष, पर्वत, नदियाँ, समुद्र, श्री, मही, गौरी, चण्डिका तथा सरस्वती आपकी तेजोवृद्धि करें। अये शक्र! शचीपते! आपकी जय हो और आपकी जय से नित्य मेरा कल्याण हो। आप राजाओं, ब्राह्मणों और प्रजाओं के ऊपर प्रसन्न होइये। ७-११।

भवत्प्रसादात्पृथिवी नित्यं सस्यवती भवेत् ।
शिवं भवतु निर्विघ्नं शाम्यन्तामीतयो भृशम् ॥१२
मंत्रेणेन्द्रं समभ्यर्च्य जितभूः स्वर्गमाप्नुयात् ।
भद्रकालीं पटे लिख्य पूजयेदाश्विने जये ॥१३
शुक्लपक्षे तथाऽष्टम्यामायुधं कार्मुकं ध्वजम् ।
छत्रं च राजलिङ्गानि शस्त्राद्यं कुसुमादिभिः ॥१४

आपके प्रसन्न होने पर पृथ्वी नित्य शस्यसम्पन्ना होगी। मेरा निर्विघ्न कल्याण हो। सभी ईतियाँ (अतिवृष्टिरनावृष्टिः, शलभाः, मूषिकाः खगाः, अत्यासन्नाश्च, राजानः) भलीभाँति शान्त हो जांय। इस प्रकार इन्द्र की पूजा करने वाला राजा पृथ्वी-विजयी होकर अन्त में स्वर्ग प्राप्त करता है। आश्विन-शुक्ल-अष्टमी में पट पर भद्रकाली का चित्र चित्रित करके पुष्प आदि से उनकी तथा आयुध, धनुष, पताका, छत्र आदि राजचिह्नों की पूजा करें। १२-१४।

जाग्रन्निशि बलिं दद्याद्द्वितीयेऽह्नि पुनर्यजेत्[1] ।
भद्रकालि महाकालि दुर्गे दुर्गार्तिहारिणि ॥१५
त्रैलोक्यविजये चण्डि मम शान्तौ जये भव ।
नीराजनविधिं वक्ष्य ऐशान्यां मन्दिरं चरेत् ॥१६
तोरणत्रितयं तत्र गृहे देवान्यजेत्सदा ।

---

१. क. ङ. त्। तत्रस्था भद्रकाली च दु॰ ।

चित्रां त्यक्त्वा यदा स्वातिं सविता प्रतिपद्यते ॥१७
ततः प्रभृति कर्तव्यं यावत्स्वातौ [1]रविः स्थितः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च शंभुश्च शक्रश्चैवानलानिलौ ॥१८
विनायकः कुमारश्च वरुणो धनदो यमः ।
विश्वे देवा [2]वैश्रवणो गजाश्चाष्टौ च तान्यजेत् ॥१९
कुमुदैरावणौ[3] पद्मः पुष्पदन्तश्च वामनः ।
सुप्रतीकोऽञ्जनो नीलः पूजा कार्या गृहादिके[4] ॥२०

रात्रि में जागरण करते हुए बलि देना चाहिए। दूसरे दिन 'अयि भद्रकालि ! महाकालि ! दुर्गे ! दुर्गार्तिहारिणि। त्रैलोक्यविजये ! चण्डि ! मुझे शान्ति एवम् विजय प्रदान कीजिए। यह कहकर पुनः पूजन करना चाहिए। अब मैं नीराजना की विधि बतलाऊँगा। (जिसके लिए) उत्तर पूर्व दिशा में तीन वन्दनवारों से युक्त मन्दिर बनाना चाहिए। उस मन्दिर में नित्य देव पूजन करना चाहिए। चित्रा नक्षत्र को छोड़कर जब सूर्य स्वाती नक्षत्र में प्रवेश करे तब से लेकर जब तक सूर्य स्वाती में स्थित रहे तब तक ब्रह्मा, विष्णु शंभु, शक्र, अग्नि, वायु, गणेश, कार्तिकेय, वरुण, कुबेर, यम, विश्वेदेव, कुमुद, ऐरावत, पद्म, पुष्पदन्त, वामन, सुप्रतीक, अञ्जन तथा नील (नामक आठगजों) की पूजा करनी चाहिए।१५-२०।

पुरोधा जुहुयादाज्यं समित्सिद्धार्थकं तिलाः ।
कुम्भा अष्टौ पूजिताश्च तैः स्नाप्याश्च गजोत्तमाः ॥२१
[5]अधः स्वात्यां ददेत्पिण्डांस्ततो हि प्रथमं गजान् ।
निष्क्रामयेत्तोरणैस्तु गोपुरादि च लङ्घयेत्[6] ॥२२

पूजनानन्तर पुरोहित को घी, लकड़ी, उजला सरसों तथा तिल से हवन करके आठ कलशों के जल से उत्तम हाथियों को स्नान कराना चाहिए तदनन्तर स्वाती नक्षत्र में ही भूमि पर पिण्डदान करके सर्वप्रथम हाथियों को प्रासाद के वंदनवारों से होकर निकाले, परन्तु उन्हें गोपुर आदि का लंघन न करने दे। २१-२२।

---

१. क. ङ. कविः। २. क. ङ. छ. वैश्रवसो। ३. क. ख. ङ. च. °वतौ प°। ४. क. ङ. च. के। परो वा जु°। ५. छ. अश्वा- स्नाप्या द°। ६. ख. ° त्। विक्रमे°।

निष्क्रामेयुस्ततः सर्वे राजलिङ्गं गृहे यजेत् ।
वारुणे वरुणं प्राच्यं रात्रौ भूतवलिं ददेत् ।।२३
विशाखायां गते सूर्ये आश्रमे निवसेन्नृपः ।
अलंकुर्याद्दिने तस्मिन्वाहनं तु विशेषतः ।।२४

उसके वाद राजा को जन-समूह के साथ उन वंदनवारों से निकल कर गृह में (अस्त्रादि) राजचिह्नों का पूजन करना चाहिए । फिर जल में वरुण की पूजा करके रात्रि में भूतवलि देनी चाहिए । जब सूर्य विशाखा नक्षत्र में गमन करे उस दिन राजा आश्रम-वास करते हुए वाहनों को विशेष रूप से सुसज्जित करे ।२३-२४ ।

पूजिता राजलिङ्गाश्च कर्तव्या नरहस्तगाः ।
हस्तिनं तुरगं छत्रं खड्गं चापं च दुन्दुभिम् ।।२५
ध्वजं पताकां धर्मज्ञ कालज्ञस्त्वभिमंत्रयेत् ।
अभिमन्त्र्य ततः सर्वान्कुर्यात्कुञ्जरधूर्गतान् ।।२६
कुञ्जरोपरिगौ स्यातां सांवत्सरपुरोहितौ ।
मंत्रितांश्च समारुह्य तोरणेन विनिर्गमेत् ।।२७
निष्क्रम्य नागमारुह्य तोरणेनाथ निर्गमेत् ।
वलिं विभज्य विधिवद्राजा कुञ्जरधूर्गतः ।।२८

तदनन्तर पूजित राजचिह्नों को अपने पुरुषों को देकर हाथी, घोड़े, छत्र खड्ग, धनुष, दुंदुभि तथा ध्वजा पताका का अभिमंत्रण करना चाहिए । इस प्रकार अभिमंत्रित करने के बाद सबको हाथी के पीछे करके हाथी पर ज्योतिषी और पुरोहित के साथ स्वयं जा बैठे । गजारोहण करने के बाद वंदनवार से निकलकर विधिपूर्वक वलि का विभाजन करना चाहिए ।२५-२८।

उल्मुकानां तु निचयमादीपितदिगन्तरम् ।
राजा प्रदक्षिणं कुर्यान्त्रीन्वारान्सुसमाहितः ।।२९
चतुरङ्गवलोपेता सर्वसैन्येन नादयन् ।
एवं कृत्वा गृहं गच्छेद्विसर्जितजनस्ततः[1] ।।३०
शान्तिनीराजनाख्येयं वृद्धये रिपुमर्दनी ।।३१

१. क. ङ.° जनो जयेत् । शा° । छ.° जलाञ्जलिः । शा° ।

तत्पश्चात् दिशाओं को प्रज्वलित करने वाले अंगारों की खूब सावधानी से तीन बार प्रदक्षिणा करके चतुरंगिणी सेना के साथ दिग्दिगन्त को निनादित करते हुए राजमहल में पहुँचाना चाहिए और वहाँ (जाकर) जनसमूह को विदा कर देना चाहिए। इसी को नीराजना शान्ति कहते हैं, जो वृद्धि देने वाली तथा शत्रु का मर्दन करने वाली है। २६-३१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नीराजनाविधिकथनं नामाऽष्टषष्ट्य-धिकद्विशततमोऽध्यायः।२६८

अथैकोनसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

छत्रादिप्रार्थनामंत्राः

पुष्कर उवाच
छत्रादिमंत्रान्वक्ष्यामि यैस्तत्पूज्य [1]जयादिकम्।
ब्रह्मणः सत्यवाक्येन सोमस्य वरुणस्य च ॥१
सूर्यस्य च प्रभावेण वर्धस्व त्वं महामते।
पाण्डराभप्रतीकाश हिमकुन्देन्दुसुप्रभ ॥२
यथाऽम्बुदश्छादयते शिवायैनां वसुंधराम्।
तथाऽऽच्छादय राजानं विजयारोग्यवृद्धये ॥३

पुष्कर बोले—(अब) में छत्र आदि के मंत्र को बतलाता हूँ। जिनसे उनकी पूजा करके राजा जय आदि को प्राप्त कर लेता है। (छत्र की प्रार्थना यह है) 'हे महामते' तुम ब्रह्मा के सत्य वाक्य से और सोम, वरुण तथा सूर्य के प्रभाव से बढ़ते रहो। हे शुक्ल वर्ण वाले! हिम, कुन्द तथा इन्द्र के समान प्रभा वाले! जैसे मेघ कल्याण के लिए वसुधा को आच्छादित करता है वैसे ही तुम भी विजय और आरोग्य वृद्धि लिए के राजा को आच्छादित कर लो।१-३

गन्धर्वकुलजातस्त्वं मा भूयाः कुलदूषकः।
ब्रह्मणः सत्यवाक्येन सोमस्य वरुणस्य च ॥४
प्रभावाच्च हुताशस्य वर्धस्व त्वं तुरंगम।
तेजसा चैव सूर्यस्य मुनीनां तपसा तथा ॥५

---

१. क. ङ. जपादिकम्।

रुद्रस्य ब्रह्मचर्येण पवनस्य वलेन च ।
स्मर त्वं राजपुत्रोऽसि कौस्तुभं तु मणिं स्मर ॥६

(अश्व की प्रार्थना यह है) 'हे अश्व ! तुम गन्धर्व-कुल में उत्पन्न हुए हो, तुम उस कुल को दूषित मत करना । ब्रह्मा के सत्य वाक्य से और सोम, वरुण तथा अग्नि के प्रभाव से तुम बढ़ते रहो । सूर्य के तेज से, मुनियों के तप से, रुद्र के ब्रह्मचर्य से और पवन के वल से तुम स्मरण करो कि मैं राजपुत्र हूँ । अपनी कौस्तुभ मणि का भी स्मरण करो ।४-६।

यां गतिं ब्रह्महा गच्छेत्पितृहा मातृहा तथा ।
भूम्यर्थेऽनृतवादी च क्षत्रियश्च पराङ्मुखः ॥७
व्रजेस्त्वं तां गतिं क्षिप्रं मा तत्पापं भवेत्तव ।
विकृतिं माऽपगच्छेस्त्वं युद्धेऽध्वनि तुरंगम ॥८
रिपून्विनिघ्नन्समरे सह भर्त्रा सुखी भव ।
शक्रकेतो महावीर्य सुवर्णस्त्वामुपाश्रितः ॥९

यदि तुम स्वामि भक्त न होगे तो तुम्हें भी वह गति मिलेगी जो गति ब्रह्मघाती, पितृघाती, मातृघाती, भूमि के लिए झूठ बोलने वाले और रण से भागने वाले क्षत्रिय को प्राप्त होती है । अये तुरंगम ! रण मार्ग मे तुम किसी विकार को प्राप्त न होना । युद्ध में शत्रुओं का नाश करते हुए अपने स्वामी के साथ सुखी रहना । (ध्वजा की प्रार्थना इस प्रकार है-) इन्द्रध्वज ! महा-शक्तिशालिन् ! गरुड़ ने तुम्हारा आश्रय लिया है । ७-९ ।

पतत्रिराड्वैनतेयस्तथा नारायणध्वजः
काश्यपेयोऽमृताहर्ता नागारिर्विष्णुवाहनः ॥१०
अप्रमेयो दुराधर्षो रणे देवारिसूदनः ।
महावलो महावेगो महाकायोऽमृताशनः ॥११
गरुत्मान्मारुतगतिस्त्वयि संनिहितः स्थितः ।
विष्णुना देवदेवेन शक्रार्थं स्थापितो ह्यसि ॥१२

पक्षियों का राजा, विनता का पुत्र, नारायण का वाहन, कश्यप का पुत्र, अमृतहर्ता, नागों का शत्रु, अप्रमेयशक्ति-सम्पन्न, दुर्विजय, रण में देव-शत्रुओं का संहारक महावली, महान वेगवान्, महाकाय, अमृतभोजी, और वायु के समान वेगवाला गरुड़ तुम्हारे समीप रहता है । देवाधिदेव भगवान् विष्णु ने इन्द्र के लिए तुम्हारी स्थापना की है । १०-१२ ।

जयाय भव मे नित्यं वृद्धयेऽथ बलस्य च ।
साश्ववर्मायुधान्योधान्रक्षास्माकं रिपून्दह ।।१३
कुमुदैरावणौ पद्मः पुष्पदन्तोऽथ वामनः ।
सुप्रतीकोऽञ्जनो नील एतेऽष्टौ देवयोनयः ।।१४
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च[1] वनान्यष्टौ समाश्रिताः ।
भद्रो मन्दो मृगश्चैव गजः संकीर्ण एव च ।।१५

तुम मुझे नित्य विजय दो तथा बल वृद्धि करो । हमारे शत्रुओं को भस्म करो और घोड़ों, कवचों, आयुधों तथा योद्धाओं की रक्षा करो । (हाथियों की प्रार्थना का मंत्र यह है–) कुमुद, ऐरावत, पद्म, पुष्पदन्त, वामन, सुप्रतीक, अञ्जन तथा नील—ये आठो गज देवयोनि में उत्पन्न हुए हैं । इनके पुत्र-पौत्र आठ वनों में रहते हैं । भद्र, मन्द, मृग, गज, संकीर्ण आदि उनके नाम हैं । १३-१५ ।

वने वने प्रसूतास्ते स्मरयोनिं महागजाः ।
पान्तु त्वां वसवो रुद्रा आदित्याः समरुद्गणाः ।।१६
भर्तारं रक्ष नागेन्द्र समयः परिपाल्यताम् ।
ऐरावताधिरुढस्तु वज्रहस्तः शतक्रतुः ।।१७
पृष्ठतोऽनुगतस्त्वेष रक्षतु त्वां स देवराट् ।
अवाप्नुहि जयं युद्धे सुस्थश्चैव सदा व्रज ।।१८

वे महागज स्मरयोनि में उत्पन्न हुए है । (यहाँ से प्रार्थना प्रारम्भ होती है–) अये गजेन्द्र ! वसु, रुद्र, आदित्य तथा मरुद्गण तुम्हारी रक्षा करें और तुम अपने स्वामी की रक्षा करना । और अपने कर्तव्य का पालन करना । देवराट् इन्द्र ऐरावत पर चढ़कर वज्र हाथ में लिए पीछे से तुम्हारा अनुगमन करते हुए तुम्हारी रक्षा करें । तुम युद्ध में जय प्राप्त करो और सदा स्वस्थ होकर गमन करो ।१६-१८ ।

अवाप्नुहि बलं चैव [2]ऐरावतसमं युधि ।
श्रीस्ते सोमाद्बलं विष्णोस्तेजः सूर्याज्जवोऽनिलात् ।।१९
स्थैर्यं गिरेर्जयं रुद्राद्यशो देवात्पुरंदरात् ।
युद्धे रक्षन्तु नागास्त्वां दिशश्च सह दैवतैः ।।२०

---

१. ख. ग. छ. ° श्च बलान्य° । २. ख. ख. ङ. ऐरावणसमं ।

अश्विनौ सह गन्धर्वैः पान्तु त्वां सर्वतो दिशः ।
मनवो वसवो रुद्रा वायुः सोमो महर्षयः ।।२१
नागकिंनरगन्धर्वयक्षभूतगणा ग्रहाः ।
प्रमथास्तु सहाऽऽदित्यैर्भूतेशो मातृभिः सह ।।२२
शक्रः सेनापतिः स्कन्दो वरुणश्चाऽऽश्रितस्त्वयि ।
प्रदहन्तु रिपून्सर्वान्राजा विजयमृच्छतु ।।२३

तुम युद्ध में ऐरावत के समान बल प्राप्त करो । तुम्हें सोम से श्री, विष्णु से बल, सूर्य से तेज, वायु से वेग, पर्वत से स्थिरता, रुद्र से जय और इन्द्रदेव से यश प्राप्त हो । युद्ध-स्थल की सब दिशाओं में देवताओं के साथ अश्विनी कुमार तुम्हारी रक्षा करें । मनु, वसु, रुद्र, वायु, सोम, महर्षिगण, नाग, किंनर गन्धर्व, यक्ष, भूत, ग्रह, आदित्यों समेत प्रमथगण, मातृगण सहित भूतेश, इन्द्र, सेनापति स्कन्द और वरुण तुम्हारे ऊपर चढ़कर शत्रुओं को भस्म कर दें । और राजा विजय लाभ करें ।१९-२३।

यानि प्रयुक्तान्यरिभिर्दूषणानि[1] समन्ततः ।
पतन्तु तव शत्रूणां हतानि तव तेजसा ।।२४
कालनेमिवधे यद्वद्युद्धे त्रिपुरघातने ।
हिरण्यकशिपोर्युद्धे वधे सर्वासुरेषु च ।।२५
[2]शोभिताऽसि तथैवाद्य शोभस्व समयं स्मर ।
नीलश्वेतामिमां दृष्ट्वा नश्यन्त्वाशु नृपारयः ।।२६
व्याधिभिर्विविधैर्घोरैः शस्त्रैश्च युधि निर्जिताः ।

चारों ओर शत्रुओं के भेजे हुए जितने दुष्ट हैं, वे तुम्हारे तेज से निहत होकर धराशायी हो जायँ । (पताका की प्रार्थना यह है-) जिस प्रकार तुम कालनेमि, त्रिपुरासुर, हिरण्यकशिपु और समस्त असुरगणों के वध-युद्ध में शोभित हुई थी उसी प्रकार आज भी सुशोभित होती रहो और अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण करो । उस नील-श्वेत रंग की पताका को देखकर राजा के शत्रु विविध भयंकर व्याधियों तथा शस्त्रों से पराजित होकर शीघ्र ही नष्ट हो जांय । २४-२६½ ।

---

१. ख. छ.॰ भिर्भूप॰ । २. क. ख.॰ भितोऽसि ।

पूतना रेवती लेखा कालरात्रीति पठ्यते । २७
दहन्त्वाशु रिपून्सर्वान्पताके त्वामुपाश्रिताः ।
सर्वमेधे महायज्ञे देवदेवेन शूलिना ॥२८
सर्वेण जगतश्चैव सारेण त्वं विनिर्मितः ।
नन्दकस्यापरां मूर्ति स्मर शत्रुनिबर्हण ॥२९
नीलोत्पलदलश्याम कृष्ण दुःस्वप्ननाशन ।
असिर्विशसनः खड्गस्तीक्ष्णधारो[1] दुरासदः ॥३०
श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मपालस्तथैव च ।
इत्यष्टौ तव नामानि पुरोक्तानि स्वयंभुवा ॥३१

अयि पताके ! तुम्हारी आश्रित पूतना, रेवती, लेखा तथा कालरात्रि शीघ्र ही शत्रुओं को जला डालें । (खड्ग की प्रार्थना यह है-) नील कमल के पत्र के समान श्याम वर्ण वाले ! दुःस्वप्न का नाश करने वाले ! शत्रुओं को मारने वाले ! अये खड्ग ! सर्वमेघ नामक महायज्ञ में त्रिशूलधारी देव-देव शङ्कर ने जगत् के सारभाग से तुम्हारी रचना की है। पूर्वकाल में ब्रह्मा ने तुम्हारे यह आठ नाम रखे थे—असि, विशसन, खड्ग, तीक्ष्णधार, दुरासद, श्रीगर्भ, विजय और धर्मपाल ।२७-३१ ।

नक्षत्रं कृत्तिका तुभ्यं गुरुर्देवो महेश्वरः ।
हिरण्यं च शरीरं ते दैवतं ते जनार्दनः ॥३२
राजानं रक्ष निस्त्रिंश सबलं सपुरं तथा ।
पिता पितामहो देवः स त्वं पालय सर्वदा ॥३३
शर्मप्रदस्त्वं समरे वर्म सैन्ये यशोऽद्य मे ।
रक्ष मां रक्षणीयोऽहं तवानघ नमोऽस्तु ते ॥३४
दुन्दभे त्वं सपत्नानां घोषाद्धृदयकम्पनः ।
भव भूमिपसैन्यानां यथा विजयवर्धनः ॥३५
यथा जीमूतघोषेण हृष्यन्ति वरवारणाः ।
तथाऽस्तु तव शब्देन हर्षोऽस्माकं मुदावह ॥३६
यथा जीमूतशब्देन स्त्रीणां त्रासोऽभिजायते ।
तथा तु तव शब्देन त्रस्यन्त्वस्मद्द्विषो रणे ॥३७

१. क. ङ.° क्षणवर्मा दु° । ख. ग.° क्षणचर्मा दु° ।

कृत्तिका तुम्हारा नक्षत्र है, महेश्वर गुरु हैं, हिरण्य शरीर है और जनार्दन देवता हैं। निस्त्रिंश ! तुम सेना तथा नगर समेत राजा की रक्षा करो। तुम्हारे पिता ब्रह्मा है। वे सर्वदा तुम्हारी रक्षा करें। (कवच की प्रार्थना यह है–) अये कवच ! तुम युद्ध में कल्याण करने वाले हो। आज तुम मुझे सैनिक का यश प्रदान करो। मैं रक्षा के योग्य हूँ, तुम मेरी रक्षा करो। अये निष्पाप ! तुम्हें नमस्कार है। (नगाड़े की प्रार्थना यह है—)अयि दुंदुभि ! तुम अपने शब्द से शत्रुओं का हृदय कम्पित कर दो, जिससे तुम्हारे राजा की सेना विजयी हो सके। जैसे बादल के गर्जन से गजराज प्रसन्न होते हैं वैसे ही तुम्हारे शब्द से हम लोगों को प्रसन्नता हो। जैसे मेघ-गर्जन से स्त्रियों को भय होता है, वैसे ही तुम्हारे शब्द से रण में हमारे शत्रु भयभीत हों। ३२-३७।

मंत्रैः सदाऽर्चनीयास्ते योजनीया जयादिषु[1]।
कृतरक्षञ्च विष्ण्वादेस्त्वभिषेकश्च वत्सरे ॥३८
राज्ञोऽभिषेकः कर्तव्यो दैवज्ञेन पुरोधसा ॥३९

इस प्रकार मंत्रों से सदा अस्त्र आदि की पूजा करके रण में उनका उपयोग करना चाहिए। प्रत्येक वर्ष राजा को अपनी प्रजा की रक्षा करने के बाद विष्णु आदि का अभिषेक करना चाहिए। और ज्योतिषी तथा पुरोहित को राजा का अभिषेक करना चाहिए॥ ३८-३९।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये छत्रादिप्रार्थनामंत्रकथनं नामैकोनसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२६९

अथ सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

विष्णुपञ्जरम्

पुष्कर उवाच—

त्रिपुरं जघ्नुषः पूर्वं ब्रह्मणा विष्णुपञ्जरम्।
शंकरस्य द्विजश्रेष्ठ रक्षणाय निरूपितम् ॥१

---

१. छ.° पु। घृतकम्बलवि°।

पुष्कर बोले—अये द्विजश्रेष्ठ ! प्राचीन काल में त्रिपुरा सुर को मारने वाले शंकर के लिए ब्रह्मा ने विष्णुपंजर का निरूपण किया था । १ ।

वागीशेन च शक्रस्य वलं हन्तुं प्रयास्यतः ।
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि तत्त्वं शृण जयादिमत् ।।२
विष्णुः प्राच्यां स्थितश्चक्री हरिर्दक्षिणतो गदी ।
प्रतीच्यां शार्ङ्गधृग्विष्णुर्जिष्णुः खड्गी ममोत्तरे ।।३
हृषीकेशो विकोणेषु तच्छिद्रेषु जनार्दनः ।
क्रोडरूपी हरिर्भूमौ नरसिंहोऽम्बरे मम[1] ।।४

(उसी प्रकार) बल नामक असुर को मारने के लिए जाते हुए इन्द्र को बृहस्पति ने भी इसका उपदेश दिया था । अब मैं इसका स्वरूप बतलाऊँगा, जो विजय आदि को देने वाला है, उसे सुनो । 'मेरे पूर्व ओर चक्रधारी विष्णु हैं, दक्षिण में गदाधारी विष्णु, पश्चिम में धनुर्धारी विष्णु हैं और उत्तर में खड्ग-धारी इन्द्र उपस्थित हैं । कोणों में हृषीकेश, कोण-छिद्रों में जनार्दन, भूमि में वाराह रूपी भगवान् विष्णु और आकाश में भगवान् नरसिंह स्थित रहते हैं । २-४ ।

क्रूरान्तयमलं चक्रं भ्रमत्येतत्सुदर्शनम् ।
अस्यांशुमाला दुष्प्रेक्ष्या हन्तुं प्रेतनिशाचरान् ।।५
गदा चेयं सहस्रार्चिः प्रदीप्तपावकोज्ज्वला ।
रक्षोभूतपिशाचानां डाकिनीनां च नाशनी ।।६
शार्ङ्गं विस्फूर्जितं चैव वासुदेवस्य मद्रिपून् ।
तिर्यङ्मनुष्यकूष्माण्डप्रेतादीन्हन्त्वशेषतः ।।७

यह निर्मल सुदर्शन चक्र, जो क्रूरों का अन्त करने वाला है, घूम रहा है । इसकी दुर्दर्शनीय किरण-माला प्रेत और निशाचरों का संहार करने वाली है । यह गदा सहस्र किरणों से युक्त तथा प्रज्वलित अग्नि के समान उज्वल है । इससे राक्षसों, भूतों, पिशाचों तथा डाकिनियों का नाश होता है । वासुदेव के

---

१. छ.° म । क्षुरा° ।

धनुष का शब्द मेरे सभी शत्रुओं, तिर्यक्, मनुष्य कूष्माण्ड तथा प्रेत आदि का सर्वनाश कर दे ।५-७ ।

खड्गधारोज्ज्वलज्योत्स्नानिर्धूता ये समाहिताः ।
ते यान्तु शाम्यतां सद्यो गरूडेनेव पन्नगाः ।।८
ये कूष्माण्डास्तथा यक्षा ये दैत्या ये निशाचराः ।
प्रेता विनायकाः क्रूरा मनुष्या [1]जम्भगाः खगाः ।।९
सिंहादयश्च पशवो दन्दशूकाश्च पन्नगाः ।
सर्वे भवन्तु ते सौम्याः कृष्णशङ्खरवाहताः ।।१०

जो मेरे उपद्रवी जीव हैं, वे ज्योत्स्ना के समान उज्वल वासुदेव के खड्ग की धार से आहत होकर उसी प्रकार नष्ट हो जांय, जिस प्रकार गरुड़ से सांप नष्ट हो जाते हैं। जितने कूष्माण्ड, यक्ष, दैत्य, निशाचर, प्रेत, विनायक, क्रूर, मनुष्य, हिंसक, पक्षी, सिंह आदि पशु विषैले सांप आदि जीव हैं। वे कृष्ण की शंखध्वनि से आहत होकर शान्त हो जांय ।८-१० ।

चित्तवृत्तिहरा ये मे ये जनाः स्मृतिहारकाः ।
बलौजसां च हर्तारश्छायाविभ्रंशकाश्च ये ।।११
ये चोपभोगहर्तारो ये च लक्षणनाशकाः ।
कूष्माण्डास्ते प्रणश्यन्तु विष्णुचक्ररवाहताः ।।१२

जो कूष्माण्ड गण मेरी चित्तवृत्ति का हरण करने वाले हैं, जो स्मृति के अपहर्ता हैं, जो बल तेज के हर्ता हैं, जो छाया को भ्रष्ट करने वाले हैं, जो उपभोग को छीनने वाले हैं और जो शुभ लक्षणों के नाशक हैं, वे विष्णु के चक्र के शब्द से आहत होकर नष्ट हो जायँ । ११-१२ ।

बुद्धिस्वास्थ्यं मनः स्वास्थ्यं स्वास्थ्यमैन्द्रियकं तथा ।
ममास्तु देवदेवस्य वासुदेवस्य कीर्तनात् ।।१३
पृष्ठे पुरस्तान्मम दक्षिणोत्तरे विकोणतश्चास्तु जनार्दनो हरिः ।
तमीड्यमीशानमनन्तमच्युतं जनार्दनं प्रणिपतितो नसीदति ।।१४

---

१. क. ङ. मञ्जकाः ।

यथा परं ब्रह्म हरिस्तथा परो जगत्स्वरूपश्च स एव केशवः।
सत्येन तेनाच्युतनामकीर्तनात्प्रणाशयेत्तु त्रिविधं ममाशुभम्।१५

देवाधिदेवेश्वर भगवान् वासुदेव के संकीर्तन से मेरी बुद्धि, मन तथा इन्द्रियाँ स्वस्थ रहें। जनार्दन भगवान् विष्णु मेरे पीछे, आगे, दक्षिण, उत्तर तथा समस्त कोणों में अवस्थित हैं। जो मनुष्य उन स्तुत्य, ईशान, अनन्त, अच्युत जनार्दन को प्रणाम करता है, वह विनाश को प्राप्त नहीं होता है। ब्रह्म सब से परे हैं वैसे हरि भी। वही केशव जगत् स्वरूप हैं। इसलिए उन सत्यरूप अच्युत का नाम कीर्तन करने से मेरे तीन प्रकार के अशुभ कर्म नष्ट हो जायें। १३-१५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये विष्णुपञ्जरकथनं नाम सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।२७०

अथैकसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

वेदशाखादिकथनम्

पुष्कर उवाच—

[1]सर्वानुग्राहका मंत्राश्चतुर्वर्गप्रसाधकाः।
ऋगथर्व तथा साम यजुः संख्या तु लक्षकम्॥१

पुष्कर बोले—वेदों के मंत्र सबके ऊपर अनुग्रह करने वाले तथा चतुवर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) को देने वाले हैं। ऋक्, अथर्व, साम तथा यजुर्वेद के मंत्रों की (सम्पूर्ण) संख्या एक लाख है। १।

भेदः सांख्यायनश्चैक आश्वलायनो द्वितीयकः।
शतानि दश मंत्राणां ब्राह्मणा[2] द्विसहस्रकम्॥२
ऋग्वेदो हि प्रमाणेन स्मृतो द्वैपायनादिभिः।
एकोनद्विसहस्रं तु मंत्राणां यजुषस्तथा॥३

---

१. क. ङ. सर्वार्थकाममंत्राश्च चतु॰। २. क. ब्रह्मणा। ख. ब्रह्मणो।

मंत्रों के दो भेद हैं—एक सांख्यायन और दूसरा आश्वलायन। द्वैपायन आदि आचार्यों के अनुसार ब्रह्मा ने ऋग्वेद में तीन हजार मंत्रों को माना है। यजुर्वेद के मंत्रों की संख्या एक हजार नौ सौ निन्यानवे है.।२-३

शतानि दश विप्राणां षडशीतिश्च शाखिकाः।
काण्वमाध्यंदिनी संज्ञा कठी माध्यकठी तथा ।।४
मैत्रायणी च संज्ञा च तैत्तिरीयाभिधानिका।
वैशम्पायनिकेत्याद्याः शाखा यजुषि संस्थिताः ।।५

उसके ब्राह्मणों की शाखायें एक हजार छियासी हैं जो इस प्रकार हैं—काण्व, माध्यंदिनी, कठी, माध्यकठी इत्यादि मैत्रायणी, तैत्तिरीय, वैशम्पायनिक आदि शाखाएँ यजुर्वेद की है। ४-५।

साम्नः कौथुमसंज्ञैका द्वितीयाऽथर्वणायनी[1]।
गानान्यपि च चत्वारि वेद आरण्यकं तथा ।।६
उक्था ऊहश्चतुर्थश्च मंत्रा नवसहस्रकाः।
स चतुःशतकाश्चैव ब्रह्मसंघटकाः स्मृताः ।।७

सामवेद की एक शाखा है कौथुमी और दूसरी है आथर्वणायनी। इसके गान भी चार हैं—वेद, आरण्यक, उक्थ और ऊह। इसमें नौ सहस्र मंत्र हैं। जिनमें चार सौ मंत्र ब्रह्मप्रतिपादक हैं। ६-७।

पञ्चर्विशतिरेवात्र साममानं[2] प्रकीर्तितम्।
सुमन्तुर्जाजलिश्चैव श्लोकायनिरथर्वके ।८
सौनकः पिप्पलादश्च मुञ्जकेशादयोऽपरे।

परन्तु साममान पचीस मंत्रों का ही माना गया है। अथर्व के शाखा-प्रवर्तक सुमन्तु, जाजलि, श्लोकायनि, शौनक, पिप्पलाद और मुञ्जकेश ऋषि हैं। ८-८½।

मंत्राणामयुतं षष्टिशतं चोपनिषच्छतम् ।।९
व्यासरूपी स भगवाञ्शाखाभेदाद्यकारयत्।
शाखाभेदादयो विष्णुरितिहासः पुराणकम् ।।१०
प्राप्य व्यात्सात्पुराणादि सूतो वै लोमहर्षणः।
सुमतिश्चाग्निवर्चाश्च मित्रयुः शिशपायनः ।।११

---

१. क. ङ. °नी कोलान्य°। २. क. ङ. शाखामानं।

कृतव्रतोऽथ सावर्णिः षट्शिष्यास्तस्य चाभवन् ।
शांशपायनादयश्चक्रुः पुराणानां तु संहिताः ।।१२
ब्राह्मादीनि पुराणानि हरिविद्या दशाष्ट च ।
महापुराणे ह्याग्नेये विद्यारूपो हरिः स्थितः ।।१३
सप्रपञ्चो निष्प्रपञ्चो मूर्तामूर्तस्वरूपधृक् ।
तं ज्ञात्वाऽभ्यर्च्य संस्तूय भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ।।१४

इसमें सोलह हजार मंत्र हैं और सौ उपनिषदें हैं। भगवान् ने व्यास का रूप धारण करके वेदों का शाखाभेद किया है । अतएव शाखाभेद, इतिहास, पुराण आदि को विष्णु समझना चाहिए। व्यास से लोमहर्षण सूत ने पुराण आदि को प्राप्त किया। उस सूत के सुमति, अग्निवर्चा, मित्रयु, शांशपायन, कृतव्रत तथा सावर्णि नामक छः शिष्य हुए । उन्होंने पुराणों की संहितायें बनाईं । ब्राह्म आदि अठारहों पुराण भगवान् विष्णु की विद्याएँ हैं। आग्नेय पुराण में सगुण, निर्गुण तथा मूर्त-अमूर्त रूपधारी भगवान् विष्णु ही अवस्थित हैं। ऐसा समझकर उनकी स्तुति-पूजा करने से भुक्ति-मुक्ति की प्राप्ति होती है। ९-१४।

विष्णुर्जिष्णुर्भविष्णुश्च अग्निसूर्यादिरूपवान् ।
अग्निरूपेण देवादेर्मुखं विष्णुः परा गतिः ।।१५
वेदेषु स पुराणेषु यज्ञमूर्तिश्च गीयते ।
आग्नेयाख्यं पुराणं तु रूपं विष्णोर्महत्तरम् ।।१६
आग्नेयाख्यपुराणस्य कर्त्ता श्रोता जनार्दनः ।
तस्मात्पुराणमाग्नेयं सर्ववेदमयं महत् ।।१७
सर्वविद्यामयं पुण्यं सर्वज्ञानमयं वरम् ।
सर्वात्महरिरूपं हि पठतां शृण्वतां नृणाम् ।।१८
विद्यार्थिनां च विद्याद [म] र्थिनां श्रीधनप्रदम् ।
राज्यार्थिनां राज्यदं च धर्मदं धर्मकामिना (णा) म् ।।१९
स्वर्गार्थिनां स्वर्गदं च पुत्रदं पुत्रकामिना (णा) म् ।
गवादिकामिनां गोदं ग्रामदं ग्रामकामिना (णा) म् ।।२०
कामार्थिनां कामदं च सर्वसौभाग्यसंप्रदम् ।
गुणकीर्तिप्रदं नृणां जयदं जयकामिनाम् ।।२१
सर्वेप्सूनां सर्वदं तु मुक्तिदं मुक्तिकामिनाम् ।
पापघ्नं पापकर्तॄणामाग्नेयं हि पुराणकम् ।।२२

विष्णु, जिष्णु, भविष्णु तथा अग्नि और सूर्य आदि के रूप हैं। परमगति रूप भगवान विष्णु अग्निरूप से देव आदि के मुख हैं। वेदों तथा पुराणों में उन्हें यज्ञमूर्ति कहा गया है। आग्नेय पुराण विष्णु का वृहत्तर रूप है। इस पुराण के कर्ता तथा श्रोता जनार्दन भगवान् विष्णु ही हैं, इसलिए यह (अग्नि) पुराण महान सर्ववेदमय, सर्वविद्यामय, सर्वज्ञानमय, पुण्यरूप तथा सर्वश्रेष्ठ है। उस सर्वात्मा विष्णु रूप पुराण को पढ़ने-सुनने वाले मनुष्यों में से विद्यार्थियों को विद्यालय, धनार्थियों को धनलाभ, राज्यार्थियों को राज्य लाभ, धर्मार्थियों को धर्मलाभ, स्वर्गार्थियों को स्वर्गलाभ, पुत्रार्थियों को पुत्रलाभ, गौ आदि के इच्छुकों को गौ आदि का लाभ, गांव चाहने वाले को गांव का लाभ, कामार्थियों को काम प्राप्ति, जयाभिलाषियों को जयलाभ, सर्वाभिलाषियों को सर्वलाभ और मोक्षाभिलाषियों को मोक्षलाभ होता है। यह (अग्निपुराण) मनुष्यों को अखिल सौभाग्य गुण तथा यश प्रदान करता है और उससे पापियों का पाप नष्ट हो जाता है। १५-२२।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वेदशाखादिकथनं नामैक-सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२७१

अथ द्विसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

पुराणदानादिमाहात्म्यम्

पुष्कर उवाच—

ब्रह्मणाऽभिहितं पूर्वं यावन्मात्रं मरीचये।
लक्षार्धार्धं तु तद्ब्राह्मं लिखित्वा संप्रदापयेत् ॥१
वैशाख्यां पौर्णमास्यां च [1]स्वर्गार्थी जलधेनुमत्।
पाद्मं द्वादशसाहस्रं ज्येष्ठे दद्याच्च धेनुमत् ॥२

पुष्कर बोले—प्राचीन काल में ब्रह्मा ने मरीचि से जितने श्लोकों में निबद्ध ब्रह्म पुराण को कहा था तदनुसार पचीस हजार श्लोकों से युक्त ब्रह्म पुराण को

---

१. ख. ग. सहास्रं।

लिखकर वैशाखी पूर्णिमा के दिन जलधेनु सहित उसे दान करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। बारह हजार श्लोकों से युक्त पद्मपुराण को लिखकर ज्येष्ठ में धेनु सहित उसे दान करने से मनुष्य स्वर्ग को जाता है। १-२।

वाराहकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः।
त्रयोविंशतिसाहस्रं वैष्णवं प्राह चार्पयेत् ॥३
जलधेनुमदाषाढ्यां विष्णोः पदमवाप्नुयात्।
चतुर्दश सहस्राणि वायवीयं 'हरिप्रियम् ॥४

विष्णु पुराण में पाराशर ने वाराहकल्प के वृत्तान्त को लेकर तेइस हजार श्लोकों को कहा है। अतः उतने श्लोकों से युक्त विष्णुपुराण को लिखकर आषाढ़ की पूर्णिमा में जलधेनु सहित दान करने से विष्णुलोक की प्राप्ति होती है। चौदह हजार श्लोकों से युक्त वायुपुराण भगवान् विष्णु को प्रिय है। ३-४।

श्वेतकल्पप्रसङ्गेन धर्मान्वायुरिहाब्रवीत्।
दद्याल्लिखित्वा तद्विप्रे श्रावण्यां गुडधेनुमत् ॥५
यत्राधिकृत्य गायत्रीं कीर्त्यते धर्मविस्तरः।
वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमुच्यते ॥६

उस पुराण में वायु ने श्वेतकल्प के प्रसंग को लेकर धर्मो का निरूपण किया है। इसको लिखकर श्रावणी पूर्णिमा के दिन गुडधेनु ब्राह्मण को समर्पित कर देनी चाहिए। जिस पुराण मे गायत्री के प्रसग से सविस्तार धर्म का निरूपण तथा वृत्रासुर-वध का वर्णन किया गया है, उसे भागवत (पुराण) कहते हैं। ५-६।

सारस्वतस्य कल्पस्य प्रौष्ठपद्यां तु तद्ददेत्।
अष्टादश सहस्राणि हेमसिंहसमन्वितम् ॥७
यत्राऽऽह नारदो धर्मान्बृहत्कल्पाश्रितानिह।
पञ्चविंशसहस्राणि नारदीय तदुच्यते ॥८

उसमें सारस्वत कल्प तक अठारह हजार श्लोक है। उसे लिखकर सोने के सिंह के साथ भाद्रपद की पूर्णिमा मे दान करना चाहिए। जिस पुराण में

१. क. ङ. प्रकीर्तितम्। ख. ग. हरप्रियम्।

नारद ने बृहत्कल्प के प्रसंग से धर्मों की व्याख्या की है, वह पचीस हजार श्लोकों वाला नारदीय पुराण है। ७-८।

सधेनुं (नु) चाऽऽश्विने दद्यात्सिद्धिमात्यन्तिकीं लभेत्।
यत्राधिकृत्य शत्रूणां धर्माधर्मविचारणा ॥९
कार्तिक्यां नवसाहस्रं मार्कण्डेयमथार्पयेत्।
अग्निना यद्वसिष्ठाय प्रोक्तं चाऽऽग्नेयमेव तत् ॥१०

उसे लिखकर आश्विनी पूर्णिमा में धेनु सहित दान करने से आत्यन्तिकी सिद्धि प्राप्त होती है। जिस पुराण में शत्रुओं के धर्माधर्म के सम्बन्ध में विचार किया गया है वह नौ हजार श्लोकों से युक्त मार्कण्डेय पुराण है। उसे कार्तिकी पूर्णिमा में दान करना चाहिए। अग्नि ने जिस पुराण को वसिष्ठ को सुनाया है, वह अग्निपुराण है। ९-१०।

लिखित्वा पुस्तकं दद्यान्मार्गशीर्ष्यां स [1]सर्वदः।
द्वादशैव सहस्राणि सर्वविद्यावबोधनम् ॥११
चतुर्दश सहस्राणि भविष्यं सूर्यसंभवम्[2]।
भवस्तु मनवे प्राह दद्यात्पौष्यां गुडादिमत् ॥१२

उसमें बारह हजार श्लोक हैं और उससे समस्त विद्याओं का बोध होता है। उसे लिखकर मार्गशीर्ष की पूर्णिमा में दान करने से सभी वस्तुओं की प्राप्ति हो जाती है। सूर्य से उत्पन्न होने वाले भविष्य पुराण में चौदह हजार श्लोक है। उसे शंकर ने मनु को सुनाया था। उसे गुड आदि के साथ पौष की पूर्णिमा में दान करना चाहिए। ११-१२।

सावर्णिना नारदाय ब्रह्मवैवर्तमीरितम्।
[3]रथन्तरस्य वृत्तान्तमष्टादशसहस्रकम् ॥१३
माघ्यां दद्याद्वराहस्य चरितं ब्रह्मलोकभाक्।
यत्राग्निलिङ्गमध्यस्थो धर्मान्प्राहमहेश्वरः ॥१४

सावर्णि ने नारद को अठारह सहस्र श्लोकों वाले ब्रह्मवैवर्त पुराण को सुनाया था। उसमें रथंतर का वृत्तान्त और वाराह का चरित्र वर्णित है। माघी पूर्णिमा में उसका दान करने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। जिस पुराण में अग्नि लिङ्ग के मध्य में अवस्थित होकर भगवान् शंकर ने धर्मों का निरूपण किया था। १३-१४।

---

१. क. च. °दः। षौडशै°। २. क. ङ. संस्तव°। ३. छ. स्थान्तरस्य।

आग्नेयकल्पे तल्लिङ्गमेकादशसहस्रकम् ।
तद्दत्त्वा शिवमाप्नोति फाल्गुन्यां तिलधेनुमत् ॥१५
[1]चतुर्विंशसहस्राणि वाराहं विष्णुनेरितम् ॥
भूमै (म्यै) वराहचरितं मानवस्य प्रवृत्तितः ॥१६

उस लिङ्ग पुराण में आग्नेय कल्प तक ग्यारह हजार श्लोक हैं। फाल्गुनी पूर्णिमा में तिलधेनु सहित उसे दान करने से शिवलोक की प्राप्ति होती है। वाराह पुराण में चौवीस हजार श्लोक हैं। मानव प्रवृत्ति से लेकर बाराह चरित्र पर्यन्त इस पुराण को भगवान् विष्णु ने भूमि को सुनाया था। १५-१६।

सहेम गारुडं चैत्र्यां पदमाप्नोति वैष्णवम्[2] ।
चतुरशीतिसाहस्रं स्कान्दं स्कन्देरितं महत् ॥१७
अधिकृत्य सधर्मांश्च कल्पे तत्पुरुषेऽर्पयेत् ।
वामनं दशसाहस्रं धौमकल्पे हरेः कथाम् ॥१८

चैत्र की पूर्णिमा में सुवर्ण की गरुड प्रतिमा सहित इसे दान करने से विष्णुलोक की प्राप्ति होती है। स्कन्द के द्वारा कही हुई स्कन्द पुराण में चौरासी हजार श्लोक हैं। इसके तत्पुरुष कल्प में धर्मो की व्याख्या की गई है। इसे लिखकर दान करना चाहिए। वामन पुराण में दश हजार श्लोक हैं। इसके धौम कल्प में भगवान् विष्णू की कथा वर्णित है। १७-१८।

दद्याच्छरदि विषुवे धर्मार्थादिनिबोधनम् ।
कूर्मं चाष्टसहस्रं च कूर्मोक्तं च रसातले ॥१९
इन्द्रद्युम्नप्रसङ्गेन दद्यात्तद्धेमकूर्मवत् ।
त्रयोदश सहस्राणि मात्स्यं कल्पादितोऽब्रवीत् ॥२०

इससे धर्म, अर्थ आदि का बोध होता है। इसे शरद् ऋतु की विषुव संक्रान्ति में लिखकर दान करना चाहिए। कूर्म भगवान् द्वारा सुनाये गये कूर्म पुराण में आठ हजार श्लोक हैं। इसके रसातल कल्प में इन्द्रद्युम्न का प्रसंग आता है। इसका दान सुवर्ण के कच्छप के साथ करना चाहिए। कल्पादि से लेकर मत्स्य पुराण में तेरह हजार श्लोक हैं। १९-२०।

---

१. छ.° तुर्दश° । २. क. °म् । एकाशी° ।

मत्स्यो हि मनवे दद्याद्विषुवे हेममत्स्यवत् ।
गारुडं चाष्टसाहस्रं विष्णूक्तं तार्क्ष्यकल्पके ॥२१
विश्वाण्डाद्गरुडोत्पत्तिं तद्दद्याद्धेमहंसवत् ।
ब्रह्मा ब्रह्माण्डमाहात्म्यमधिकृत्याब्रवीत्तु यत् ॥२२

इसे मत्स्य भगवान् ने मनु को सुनाया था । इसे विषुव की संक्रान्ति में सोने के मत्स्य के साथ दान करना चाहिए । गरुड़ पुराण में आठ हजार श्लोक हैं । इसे विष्णु ने सुनाया था । इसके तार्क्ष्यकल्प में विश्वाण्ड से लेकर गरुड़ की उत्पत्ति तक का वर्णन है । इसे सोने के हंस के साथ दान करना चाहिए । ब्रह्मा ने ब्रह्माण्ड माहात्म्य को अपना वर्णनीय विषय बनाकर जिस पुराण को कहा था, वह ब्रह्माण्डपुराण है । २१-२२ ।

तच्च द्वादशसाहस्रं ब्रह्माण्डं तद्द्विजेऽर्पयेत् ।
भारते पर्वसमाप्तौ वस्त्रगन्धस्रगादिभिः ॥२३
वाचकं पूजयेदादौ भोजयेत्पायसैर्द्विजान् ।
गोभूग्रामसुवर्णादि दद्यात्पर्वणि पर्वणि ॥२४

उसमें बारह हजार श्लोक हैं । उसे ब्राह्मण को दान करना चाहिए । महाभारत का प्रथम पर्व समाप्त होने पर वस्त्र, गन्ध, पुष्पमाला आदि से कथावाचक की पूजा करके ब्राह्मणों को खीर खिलाना चाहिए । तदन्तर प्रत्येक पर्व की समाप्ति पर उन्हें गो, भूमि, गाँव, सुवर्ण आदि की दक्षिणा देनी चाहिए । २३-२४ ।

समाप्ते भारते विप्रं संहितापुस्तकं यजेत् ।
शुभे देशे निवेश्याथ क्षौमवस्त्रादिनाऽऽवृतम् ॥२५
नरनारायणौ पूज्यौ पुस्तकं कुसुमादिभिः ।
गोऽन्नभूहेम दत्त्वाऽथ भोजयित्वा क्षमापयेत् ॥२६

इस तरह सम्पूर्ण महाभारत लिख जाने पर ब्राह्मण और (महाभारत) संहिता पुस्तक की पूजा करनी चाहिए । पुस्तक को पवित्र स्थान पर रखकर उसे रेशमी वस्त्र आदि से ढक देना चाहिए । तत्पश्चात् पुष्प आदि से नर नारायण तथा पुस्तक की पूजा करके ब्राह्मण को गाय, अन्न, भूमि तथा सुवर्ण देकर भोजन कराके उनसे क्षमा प्रार्थना करनी चाहिए । २५-२६ ।

महादानानि देयानि रत्नानि विविधानि च ।
मासको द्वौ त्रयश्चैव मासे मासे प्रदापयेत् ।।२७
अयनादौ श्रावकस्य दानमादौ विधीयते ।
श्रोतृभिः सकलैः कार्यं श्रावके पूजनं द्विज ।।२८
इतिहासपुराणानां पुस्तकानि प्रयच्छति ।
पूजयित्वाऽऽयुरारोग्यं स्वर्गमोक्षमवाप्नुयात् ।।२९

तीन मास तक निरन्तर प्रत्येक मास में ब्राह्मण को महादान तथा अन्य विविध प्रकार के रत्नों को प्रदान करना चाहिए । सूर्य (के उत्तर तथा दक्षिण) अयन के प्रारम्भ में कथावाचक को दान देना चाहिए । अये द्विज ! वाचक की पूजा सभी श्रोताओं के द्वारा होनी चाहिए, जो व्यक्ति इतिहास पुराणों की पूजा करके दान देता है, उसे आयु, आरोग्य, स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है ।२७-२९।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पुराणदानादिमाहात्म्यकथनं नाम द्विसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।।२७२

अथ त्रिसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूर्यवंशकीर्तनम्

अग्निरुवाच[1]—

सूर्यवंशं सोमवंशं राज्ञां वंशं वदामि ते ।
हरेर्ब्रह्मा पद्मगोऽभून्मरीचिर्ब्रह्मणः सुतः ।।१
मरीचेः कश्यपस्तस्माद्विवस्वांस्तस्य पत्न्यपि ।
संज्ञा राज्ञी प्रभा तिस्रो राज्ञी रैवतपुत्रिका ।।२

अग्निदेव बोले—मैं तुम्हें सूर्यवंश, चन्द्रवंश तथा राजवंश के सम्बन्ध में बतला रहा हूँ । भगवान् विष्णु से कमलासन ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई । ब्रह्मा से मरीचि, मरीचि से कश्यप और कश्यप से सूर्य उत्पन्न हुए ।

---

१ ख. ग. पुष्कर उवाच ।

सूर्य की तीन पत्नियाँ थी, जिनके नाम थे—संज्ञा, राज्ञी और प्रभा। राज्ञी रैवत की पुत्री थी।१-२।

रैवतं[1] सुषुवे पुत्रं प्रभातं च प्रभा रवेः।
त्वाष्ट्री संज्ञा मनुं पुत्रं यमलौ यमुनां यमम् ॥३
छाया संज्ञा च सावर्णि मनुं वैवस्वतं सुतम्।
शनिं च तपतीं विष्टिं संज्ञायां चाश्विनौ पुनः ॥४

उसने रैवत नामक पुत्र को उत्पन्न किया। सूर्य से प्रभा के प्रभात नामक पुत्र हुआ और त्वष्टा की पुत्री संज्ञा ने मनु तथा यम नामक पुत्रों को और यमुना नामक पुत्री को जन्म दिया। छाया तथा संज्ञा ने सावर्णि मनु, वैवस्वत यम, शनि, तपती, तथा विष्टि को उत्पन्न किया। संज्ञा से पुनः अश्विनी कुमारों की उत्पत्ति हुई।३-४।

मनोर्वैवस्वतस्याऽऽसन्पुत्रा वै न च तत्समाः।
इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो धृष्टः शर्यातिरेव च ॥५
नरिष्यन्तस्तथा प्रांशुर्नाभागाद्यष्ट सत्तमाः।
करुषश्च पृषध्रश्च अयोध्यायां महाबलाः ॥६

वैवस्वत मनु के आठ पुत्र हुए जिनके समान कोई दूसरा हुआ ही नहीं उन आठों श्रेष्ठ पुत्र के नाम थे—इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, करुष और पृषध्र जो अयोध्या के राजा थे।५-६।

कन्येला च मनोराशीद्बुधात्तस्यां पुरूरवाः।
पुरूरवसमुत्पाद्य सेला सुद्युम्नतां गता ॥७
सुद्युम्नादुत्कलगयौ [2]विनताश्वस्त्रयो नृपाः।
उत्कलस्योत्कलं राष्ट्रं विनताश्वस्य पश्चिमा ॥८

मनु की पुत्री का नाम था इला। उससे बुध ने पुरुरवा को जन्म दिया। पुरुरवा को उत्पन्न करके इला ने सुद्युम्न से विवाह कर लिया। (इला और) सुद्युम्न से उत्कल गय तथा विनताश्व नामक तीन राजाओं की उत्पत्ति हुई। उत्कल का राज्य उत्कल (उड़ीसा) में और विनताश्व का राज्य पश्चिम में था।७-८।

---

१ छ. रेवन्तं। २ छ. वितता°।

[1]दिक्पूर्वा राजवर्यस्य[2] गयस्य च गया पुरी ।
वशि (सि) ष्ठवाक्यात्सुद्युम्नः प्रतिष्ठानमवाप ह ॥९
तत्पुरूरवसे प्रादात्सुद्युम्नो राज्यमाप्य तु ।
नरिष्यतः शकाः पुत्रा नाभागस्य च वैष्णवः ॥१०
अम्बरीषः प्रजापालो धार्ष्टकं धृष्टतः कुलम् ।
सुकन्यानर्तौ शर्यातेर्वैरोह्यानर्ततो नृपः ॥११

राजाओं में श्रेष्ठ गय का राष्ट्र पूर्व दिशा में था। उसकी राजधानी गया-पुरी थी। बशिष्ठ के वचन से सुद्युम्न ने प्रतिष्ठानपुर को प्राप्त कर लिया था। परन्तु उसने प्रतिष्ठानपुर के राजा पुरूरवा को दे दिया था। नरिष्यन्त के पुत्र शक और नाभाग के बिष्णु भक्त राजा अम्बरीष हुए। धृष्ट का कुल धार्ष्टक नाम से प्रसिद्ध हुआ। शर्याति से सुकन्या एवम् आनर्त की उत्पत्ति हुई। आनर्त से वैरोह्य नामक राजा उत्पन्न हुआ।९-११।

आनर्तविषयश्चाऽऽसीत्पुरी चाऽऽसीत्कुशस्थली ।
रेवस्य रैवतः पुत्रः ककुद्मी नाम धार्मिकः ॥१२
ज्येष्ठः पुत्रशतस्याऽऽसीद्राज्यं प्राप्य कुशस्थलीम् ।
स कन्या सहितः श्रुत्वा गान्धर्वं ब्रह्मणोऽन्तिके ॥१३
मुहूर्तभूतं देवस्य मर्त्ये बहुयुगं गतम् ।
आजगाम जवेनाथ स्वां पुरीं यादवैर्वृताम् ॥१४
कृतां द्वारवतीं नाम बहुद्वारां मनोरमाम् ।
भोजवृष्ण्यधकैर्गुप्तां वासुदेवपुरो गमैः ॥१५

आनर्त की राजधानी कुशस्थली (द्वारका) थी। रेव का पुत्र रैवत था। उसका दूसरा नाम ककुद्मी था। वह सौ भाइयों में सबसे ज्येष्ठ था। वह अपनी पुत्री का वर ढूढ़ने के लिए ब्रह्मलोक तक गया था। इतने में कई युग बीत गये, परन्तु उसे एक ही क्षण प्रतीत हुआ। जब वह शीघ्रता से अपनी राजधानी को लौटा तो अपने नगर को यादवों से आक्रान्त पाया। अनेक द्वार वाली मनोहर द्वारका को वासुदेव के नेतृत्व में भोज, वृष्णि तथा अन्धक वंशवालों ने व्याप्त कर रखा था।१२-१५।

---

१ छ. दिक्सर्वा। २ क. ङ. राजपुत्रस्य।

रेवतीं बलदेवाय ददौ ज्ञात्वा [1]ह्यनित्यताम् ।
तपः सुमेरुशिखरे तप्त्वा विष्णवालयं गतः ॥१६
नाभागस्य च पुत्रौ द्वौ वैश्यो ब्राह्मणतां गतौ ।
करूषस्य तु कारूषाः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ॥१७
शूद्रत्वं च पृषध्रोऽगाद्धिंसयित्वा गुरोश्च गाम् ।
मनुपुत्रादथेक्ष्वाकोर्विकुक्षिर्देवराडभूत् ॥१८

वहाँ पर रैवत अपनी पुत्री बलदेव जी को देकर संसार को अनित्य समझ कर सुमेरु पर्वत के शिखर पर तपस्या करने के लिए चले गये । और तपस्या करके उन्होंने विष्णुलोक को प्राप्त कर लिया । नाभाग के दो वैश्य पुत्र ब्राह्मण हो गये । करूष के कारूष नामक क्षत्रिय पुत्र बड़े ही पराक्रमी योद्धा थे । गुरु की गाय की हत्या करने के कारण पृषध्र शूद्र हो गया । मनुपुत्र इक्ष्वाकु से देवराज विकुक्षि उत्पन्न हुए ।१६-१८।

विकुक्षेस्तु ककुत्स्थोऽभूत्तस्य पुत्रः सुयोधनः ।
तस्य पुत्रः पृथुर्नाम विश्वगाश्वः पृथोः सुतः ॥१९
आयुस्तस्य च पुत्रोऽभूद्युवनाश्वस्तथा सुतः ।
युवनाश्वाच्च श्रावन्तः पूर्वे श्रावन्तिका पुरी ॥२०
श्रावन्ताद्बृहदश्वोऽभूत्कुवलाश्वस्ततो नृपः ।
धुन्धुमारत्वमगमद्धुन्धोर्नाम्ना च वै पुरा ॥२१
धुन्धुमारात्त्रयो भूपा दृढाश्वो दण्ड एव च ।
कपिलोऽथ दृढाश्वात्तु हर्यश्वश्च प्रमोदकः ॥२२

विकुक्षि के ककुत्स्थ और उनसे सुयोधन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । सुयोधन के पृथु नामक पुत्र हुआ । पृथु का पुत्र विश्वगाश्व और उसका पुत्र आयु हुआ । आयु का पुत्र हुआ युवनाश्व और युवनाश्व का श्रावन्त । उसी की राजधानी श्रावन्तिका पुरी थी । श्रावन्त से वृहदश्व और उससे कुवलाश्व नामक राजा की उत्पत्ति हुई । धुन्धु नामक दैत्य को मारने के कारण कुवलाश्व का नाम धुन्धुमार पड़ गया । धुन्धुमार से तीन राजा हुए—दृढाश्व, दण्ड तथा कपिल । दृढाश्व से परम विनोदी हर्यश्व की उत्पत्ति हुई ।१९-२२।

---

१ छ. 'निन्दिता' ।

हर्यश्वाच्च निकुम्भोऽभूत्संहताश्वो निकुम्भतः ।
अकृशाश्वो रणाश्वश्च संहताश्वसुतावुभौ ॥२३
युवनाश्वो रणाश्वस्य मांधाता युवनाश्वतः ।
मांधातुः पुरुकुत्सोऽभून्मुचुकु (कु) न्दो द्वितीयकः ॥२४
पुरुकुत्सात्त्रसद्दस्युः संभूतो नर्मदाभव ।
संभूतस्य सुधन्वाऽभूत्त्रिधन्वाऽथ सुधन्वनः ॥२५
त्रिधन्वनस्तु तरुणस्तस्य सत्यव्रतः सुतः ।
सत्यव्रतात्सत्यरथो हरिश्चन्द्रश्च तत्सुतः ॥२६

हर्यश्व से निकुम्भ और निकुम्भ से संहताश्व की उत्पत्ति हुई । संहताश्व के पुत्र अकृशाश्व तथा रणाश्व हुए । रथाश्व का पुत्र युवनाश्व और युवनाश्व का मान्धाता हुआ । मान्धाता को पुरुकुत्स तथा मुचुकुन्द नामक दो पुत्र हुए । पुरुकुत्स से नर्मदा (नाम की स्त्री) से त्रसद्दस्यु नामक पुत्र हुआ । संभूत से सुधन्वा और उससे त्रिधन्वा नामक पुत्र हुआ । त्रिधन्वा से तरुण और उससे सत्यव्रत की उत्पत्ति हुई । सत्यव्रत का पुत्र सत्यरथ और उसका पुत्र हरिश्चन्द्र हुआ ।२३-२६।

हरिश्चन्द्राद्रोहिताश्वो रोहिताश्वाद्वृकोऽभवत् ।
वृकाद्बाहुश्च वाहोश्च सगरस्तस्य च प्रिया ॥२७
प्रभा षष्टिसहस्राणां सुतानां जननी ह्यभूत् ।
तुष्टादौर्वान्नृपादेकं भानुमत्यसमञ्जसम् ॥२८
खनन्तः पृथिवीं दग्धाः[1] कपिलेनाथ सागराः ।
असमञ्जसोंऽशुमांश्च दिलीपोंऽशुमतोऽभवत् ॥२९
भगीरथो दिलीपात्तु येन गङ्गाऽवतारिता ।
भगीरथात्तु नाभागो नाभागादम्बरीषकः ॥३०

हरिश्चन्द्र से रोहिताश्व और उससे वृक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । वृक से वाहु और बाहु से सगर की उत्पत्ति हुई । सगर की पत्नी का नाम प्रभा था । वह साठ हजार पुत्रों की जननी थी । सगर की दूसरी पत्नी भानुमती ने और्व मुनि को संतुष्ट करके राजा से एक ही असमंजस नामक पुत्र को उत्पन्न किया ।

---

१. छ. ... ग° ।

सगर के वे साठ हजार पुत्र पृथ्वी को खोदते हुए कपिल मुनि के द्वारा भस्म कर डाले गये। असमंजस से अंशुमान् और अंशुमान् से दिलीप की उत्पत्ति हुई, दिलीप का पुत्र भगीरथ हुआ, जिसने गंगा को पृथ्वी पर अवतरित किया भगीरथ से नाभाग और नाभाग से अम्बरीष की उत्पत्ति हुई।२७-३०।

सिन्धुद्वीपोऽम्बरीषात्तु श्रुतायुस्तत्सुतः स्मृतः।
श्रुतायोर्ऋतुपर्णोऽभूत्तस्य[1] कल्माषपादकः ॥३१
कल्माषाङ्घ्रेः सर्वकर्मा ह्यनरण्यस्ततोऽभवत्।
अनरण्यात्तु निघ्नोऽथ ([2]दिलीपस्तत्सुतोऽभवत् ॥३२

अम्बरीष से सिन्धुद्वीप और उससे श्रुतायु उत्पन्न हुआ। श्रुतायु का पुत्र ऋतुपर्ण और उसका कल्माषपाद हुआ। कल्माषपाद का एक सर्वकर्मा और उसका पुत्र अनरण्य हुआ। अनरण्य से निघ्न और उसका पुत्र दिलीप हुआ।३१-३२।

तस्य राज्ञो रघुर्जज्ञे तत्सुतोऽपि ह्यजोऽभवत्।
तस्माद्दशरथो जातस्तस्य पुत्रचतुष्टयम् ॥३३
नारायणात्मकाः सर्वे रामस्तस्याग्रजोऽभवत्।
रावणान्तकरो राजा ह्ययोध्यायां रघूत्तमः ॥३४

उस राजा दिलीप का पुत्र रघु और रघु का पुत्र अज हुआ। अज से दशरथ की उत्पत्ति हुई। दशरथ के चार पुत्र हुए, जो सबके सब नारायण के अंश थे। उनमें सबसे ज्येष्ठ थे राम। उन्होंने रावण को मारा था। वे अयोध्या के रघुवंशी राजाओं में सर्वश्रेष्ठ हुए।३३-३४।

वाल्मीकिर्यस्य चरितं चक्रे[3] तन्नारदश्रवात्।
रामपुत्रौ कुशलवौ सीतायां कुलवर्धनौ ॥३५
अतिथिश्च कुशाज्जज्ञे निषधस्तस्य चाऽऽत्मजः।
निषधात्तु नलो जज्ञे नभोऽजायत वै नलात् ॥३६
नभसः पुण्डरीकोऽभूत्सुधन्वा च ततोऽभवत्।
सुधन्वनो देवानीको ह्यहीनाश्वश्च तत्सुतः ॥३७

---

१. क. ख. ङ. च. °र्ऋतप°। २. दिलीपस्त······भवत् ख. ग. छ. पुस्तकयोर्नास्ति। ३. क. ङ.° क्रे लोकमनोहरम्।

नारद के मुख से सुनकर वाल्मीकि ने उनका वर्णन किया था। राम से सीता के कुश और लव नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। कुश से अतिथि का जन्म हुआ। अतिथि का पुत्र निषध हुआ। निषध से नल की उत्पत्ति हुई। नल से नभ का जन्म हुआ। नभ से पुण्डरीक हुआ और उससे सुधन्वा। सुधन्वा से देवानीक और उससे अहीनाश्व की उत्पत्ति हुई।३५-३७।

अहीनाश्वात्सहस्राश्वश्चन्द्रालोकस्ततोऽभवत्।
चन्द्रावलोकतस्तारापीडोऽस्माच्चन्द्रपर्वतः ॥३८
चन्द्रगिरेर्भानुरथः श्रुतायुस्तस्य चाऽत्मजः।
इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः सूर्यवंशधराः स्मृताः ॥३९

अहीनाश्व से सहस्राश्व और उससे चन्द्रालोक का जन्म हुआ। चन्द्रावलोक से तारापीड़ और उससे चन्द्रपर्वत की उत्पत्ति हुई। चन्द्रपर्वत से भानुरथ और उससे श्रुतायु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न होने वाले ये राजागण सूर्यवंशी कहे गये हैं।३८-३९।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सूर्यवंशकथनं नाम त्रिसप्तत्यधिक-द्विशततमोऽध्यायः।२७३

———

अथ चतुःसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः
सोमवंशवर्णनम्

अग्निरुवाच—

सोमवंशं प्रवक्ष्यामि पठितं पापनाशनम्।
विष्णुनाभ्यञ्ज (ब्ज) जो ब्रह्मा ब्रह्मपुत्रोऽत्रिरत्रितः ॥१

अग्निदेव बोले—अब मैं चन्द्रवंश का वर्णन करूँगा। जिसका पाठ करने से (सभी) पापों का नाश हो जाता है। विष्णु के नाभि-कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्मा से अत्रि और अत्रि से सोम की उत्पत्ति हुई।१

सोमश्चक्रे राजसूयं त्रैलोक्यं दक्षिणां ददौ।
समाप्तेऽवभृथे सोमं तद्रूपालोकनेच्छवः ॥२

कामबाणाभितप्ताङ्ग्यो नव¹ देव्यः सिषेविरे ।
लक्ष्मीर्नारायणं त्यक्त्वा सिनीवाली च कर्दमम् ॥३
द्युतिर्विभावसुं त्यक्त्वा पुष्टिर्धातारमव्ययम् ।
प्रभा प्रभाकरं त्यक्त्वा हविष्मन्तं कुहुः (हूः) स्वयम् ॥४
कीर्तिर्जयन्तं भर्तारं वसुर्मारी च कश्यपम् ।
धृतिस्त्यक्त्वा पतिं नन्दीं सोममेवाभजत्तदा ॥५
स्वकीया इव सोमोऽपि कामयामास तास्तदा ।
एवं कृतापचारस्य तासां भर्तृगणस्तदा ॥६

सोम ने राजसूय यज्ञ किया और उसकी दक्षिणा में तीनों लोकों को दान कर दिया । यज्ञान्त में अवभृथ स्नान समाप्त होने के बाद सोम रूप को देखने की उत्कण्ठा से कामबाण विह्वल होकर नौ देवियाँ उसकी सेवा में उपस्थित हुईं । लक्ष्मी, सिनीवाली, द्युति, पुष्टि, प्रभा, कुहू, कीर्ति, वसु, धृति क्रमशः नारायण, कर्दम, विभावसु अविनाशी विधाता प्रभाकर, हविष्मान्, जयन्त, मरीचि पुत्र, कश्यप और नन्दी को छोड़कर सोम की ही परिचर्या करने लगीं। तब सोम भी उन सबको अपनी भार्या की तरह मानने लगा । परन्तु उन देवियों के पति चन्द्रमा के उस अपराध को सहन न कर सके।२-६।

न शशाकापचाराय शापैः शस्त्रादिभिः पुनः ।
सप्तलोकैकनाथत्वमवाप्तस्तपसा ह्युत ॥७
विवभ्राम मतिस्तस्य विनयादनयाहृता ।
बृहस्पतेः स वै भार्या तारां नाम यशस्विनीम् ॥८

उन्होंने उसे शाप देकर शस्त्रादि से पराजित कर दिया तब उसने फिर तपस्या करके सात लोगों के स्वामित्व को प्राप्त कर लिया । परन्तु अन्याय से अभिभूत उसकी बुद्धि भ्रान्त ही रही । इसलिए उसने बृहस्पति का अपमान करके उनकी पत्नी यशस्विनी तारा का बलपूर्वक हरण कर लिया ।७-८।

जहार तरसा सोमो ह्यवमन्याङ्गिरः सुतम् ।
ततस्तद्युद्धमभवत्प्रख्यातं तारकामयम् ॥९
देवानां दानवानां च लोकक्षयकरं महत् ।
ब्रह्मा निवार्योशनसं तारामाङ्गिरसे ददौ ॥१०।

---

१ छ. नरदे० ।

उन दोनों (गुरु और सोम) के बीच तारकामय नाम से प्रख्यात संग्राम छिड़ गया। वह महान् संग्राम देवों और दानवों के बीच हुआ। उसमें लोगों का भारी सर्वनाश हुआ। तब ब्रह्मा ने (दैत्यगुरु) शुक्र को लड़ाई से हटाकर तारा को अङ्गिरस को दे डाला।९-१०।

तामन्तः प्रसवां दृष्ट्वा गर्भं त्यजावब्रीद्गुरुः।
गर्भस्त्यक्तः प्रदीप्तोऽथ प्राहाहं सोमसंभवः॥११
एवं सोमाद्बुधः पुत्रः पुत्रस्तस्य पुरूरवाः।
स्वर्गं त्यक्त्वोर्वशी सा तं वरयामास चाप्सराः॥१२
तथा सहावसद्राजा दश वर्षाणि पञ्च च।
पञ्च षट्सप्त चाष्टौ च दश चाष्टौ महामुने।१३
एकोऽग्निरभवत्पूर्वं तेन त्रेता प्रवर्तिता।
पुरूरवा योगशीलो गान्धर्वलोकमीयिवान्॥१४

तारा को गर्भिणी देखकर बृहस्पति ने उससे कहा—'गर्भ को गिरा दो।' उस गर्भ से कान्तिमान् बालक का जन्म हुआ जन्म लेते ही वह बोल उठा—मैं चन्द्रमा का पुत्र हूँ। इस प्रकार चन्द्रमा का पुत्र बुध और उसका पुत्र पुरूरवा हुआ। उर्वशी अप्सरा ने स्वर्ग को छोड़कर उस राजा पुरूरवा का वरण किया। हे महामुने! राजा पुरूरवा ने उर्वशी के साथ उनसठ वर्ष व्यतीत किये। पहिले एक अग्नि की उपासना की जाती थी। परन्तु पुरूरवा ने तीन अग्नियों की उपासना की पद्धति चलाई। वह योगशील राजा था। उसने गन्धर्वलोक को प्राप्त कर लिया था।११-१४।

आयुर्दृढायुरश्वायुर्धनायुर्धृतिमान्वसुः।
दिविजातः शतायुश्च सुषुवे चोर्वशी नृपात्॥१५
आयुषो नहुषः पुत्रो वृद्धशर्मा रजिस्तथा।
दम्भो विपाप्मा पञ्चाद्यं रजेः पुत्रशतं ह्यभूत्॥१६
राजेया इति विख्याता विष्णुदत्तवरो रजिः।
देवासुरे रणे दैत्यानवधीत्सुरयाचितः[1]॥१७

उससे उर्वशी ने आयु दृढायु, अश्वायु, धनायु, धृतिमान्, वसु, दिविजात और शतायु नामक पुत्रों को जन्म दिया था। आयु के नहुष, वृद्धशर्मा, रजि,

---

१ छ.° तः। गतायेन्द्रा°।

दम्भ तथा विपाप्मा नामक पाँच पुत्र हुए। रजि के सौ पुत्र हुए जो राजेय नाम से विख्यात थे। रजि को विष्णु का वरदान प्राप्त था। उसने देवासुर संग्राम में देवताओं के द्वारा प्रार्थना करने पर दैत्यों का वध किया था।१५-१७।

शताश्वेन्द्राय पुत्रत्वं दत्त्वा राज्यं दिवं गतः।
रजेः पुत्रैर्हृतं राज्यं शक्रस्याथ सुदुर्मनाः ॥१८
ग्रहशान्त्यादिविधिना गुरुरिन्द्राय तद्ददौ।
मोहयित्वा रजिसुतानासंस्ते[1] निजधर्मतः ॥१९
नहुषस्य सुताः सप्त यतिर्ययातिरुत्तमः।
उद्भवः पञ्चकश्चैव शर्यातिमेघपालकौ ॥२०

तदनन्तर वह शताश्वेन्द्र को राज्य सौंप कर स्वयं स्वर्ग को चला गया। उस रजि के पुत्रों ने इन्द्र का राज्य छीन लिया। इससे बृहस्पति को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने ग्रह-शान्ति आदि उपायों से रजि-पुत्रों को मोहित करके उन्हें अपने धर्म से च्युत करके तथा उनसे राज्य लेकर इन्द्र को वापस कर दिया। नहुष के सात पुत्र हुए—यति, ययाति, उत्तम, उद्भव, पञ्चक, शर्याति तथा मेघपालक हुए।१८-२०।

यतिः कुमारभावेऽपि विष्णुं ध्यात्वा हरिं गतः।
देवयानी शुक्रकन्या ययातेः पत्न्यभूत्तदा ॥२१
वृषपर्वजा शर्मिष्ठा ययातेः पञ्च तत्सुताः।
यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत ॥२२
द्रुह्यं चानुं पुरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी।
यदुः पुरुश्चाभवतां तेषां वंशविवर्धनौ ॥२३

यति ने कौमार्यावस्था में ही विष्णु का ध्यान कर उनको प्राप्त कर लिया। शुक्र की कन्या देवयानी तथा वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ययाति की पत्नियाँ थीं। ययाति के पाँच पुत्र हुए, जिनमें से यदु तथा तुर्वसु को देवयानी ने उत्पन्न किया था। और द्रुह्य, अनु और पुरु को शर्मिष्ठा ने। यदु और पुरु उनके वंश को आगे बढ़ाने वाले हुए।२१-२३।

इत्याग्नेये महापुराणे आग्नेये सोमवंशकथनं नाम चतुः-सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।२७४

---

१ क. ङ. जिनधर्मतः।

अथ पञ्चसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

यदुवंशवर्णनम्

अग्निरुवाच—

यदोरासन्पञ्च पुत्रा ज्येष्ठस्तेषु सहस्रजित् ।
नीलाञ्जिको रघुः क्रोष्टुः शतजिच्च सहस्रजित् ॥१

अग्निदेव बोले—यदु के पाँच पुत्र थे, जिनमें सबसे ज्येष्ठ पुत्र का नाम सहस्रजित् और शेष चारों के नाम थे—नीलाञ्जिक, रघु, क्रोष्टु तथा शतजित् ।१।

शतजिद्धैहयो रेणुहयो हय इति त्रयः ।
धर्मनेत्रो हैहयस्य धर्मनेत्रस्य संहतः ॥२
महिमा संहतस्याऽऽसीन्महिम्नो भद्रसेनकः ।
भद्रसेनाद्दुर्गमोऽभूद्दुर्गमात्कनकोऽभवत् ॥३

शतजित् के हैहय, रेणुहय तथा हय नाम के तीन पुत्र हुए। हैहय का पुत्र धर्मनेत्र और धर्मनेत्र का संहत था। संहत का पुत्र महिमा और महिमा का भद्रसेनक था। भद्रसेन से दुर्गम की उत्पत्ति हुई और दुर्गम से कनक की २-३।

कनकात्कृतवीर्यस्तु कृताग्निः करवीरकः ।
कृतौजाश्च चतुर्थोऽभूत्कृतवीर्यात्तु सोऽर्जुनः ॥४
दत्तोऽर्जुनाय तपते सप्त द्वीपमहीशताम् ।
ददौ बाहुसहस्रं च ह्यजेयत्वं रणे[1] तथा ॥५

कनक से चार पुत्र उत्पन्न हुए—कृतवीर्य, कृताग्नि, करवीरक, तथा कृतौजा। कृतवीर्य से अर्जुन उत्पन्न हुए, जिसने तपस्या के बल से सातों द्वीपों के साथ सम्पूर्ण पृथ्वी का शासकत्व, सहस्र भुजाएँ तथा रण में अजेयत्व प्राप्त कर लिया था।४-५।

---

१ छ. °णेऽरिणा। अ°।

अधर्मे वर्तमानस्य विष्णुहस्तान्मृतिर्ध्रुवा ।
दश यज्ञसहस्राणि सोऽर्जुनः कृतवान्नृपः ॥६
अनष्टद्रव्यता राष्ट्रे तस्य संस्मरणादभूत् ।
न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति वै नृपाः ॥७
यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च विक्रमेण श्रुतेन च ।
कार्तवीर्यस्य च शतं पुत्राणां पञ्च वै परम् ॥८

उसे यह भी वरदान प्राप्त था कि जब वह अधर्माचरण करने लगेगा तब विष्णु के हाथ से निश्चय ही उसकी मृत्यु होगी। उस राजा अर्जुन ने दश हजार यज्ञ किये थे। उनके राष्ट्र में उनके स्मरण मात्र से खोई हुई वस्तु मिल जाती थी। यह निश्चित समझना चाहिए कि कोई भी राजा यज्ञ, दान, तप, विक्रम और शास्त्र में कार्तवीर्यार्जुन की समता नहीं कर सकता था। कार्तवीर्य के सौ पुत्र में से ज्येष्ठ पांच पुत्रों के नाम क्रमशः हैं ।६-८।

शूरसेनश्च शूरश्च धृष्टोक्तः कृष्ण एव च ।
जयध्वजश्च नामाऽऽसीदावन्त्यो नृपतिर्महान् ॥९
जयध्वजात्तालजङ्घस्तालजङ्घात्ततः सुताः ।
हैहयानां कुलाः पञ्च भोजाश्चाऽऽवन्तयस्तथा ॥१०
वीतिहोत्राः स्वयं जाताः शौण्डिकेयास्तथैव च ।
वीतिहोत्रादनन्तोऽभूदनन्ताद्दुर्जयो नृपः ॥११

क्रमशः शूरसेन, शूर, घष्टोक्त, कृष्ण तथा जयध्वज थे। जयध्वज के तालजंघ और तालजंघ के अन्य पुत्र उत्पन्न हुए। हैहयों के भोज, अवन्ति वीतिहोत्र, स्वयंजात तथा शौण्डिकेय नाम से पाँच कुल प्रसिद्ध हैं, वीतिहोत्र से अनन्त और अनन्त से दुर्जय नामक राजा हुआ ।९-११।

क्रोष्टोर्वंशं प्रवक्ष्यामि यत्र जातो हरिः स्वयम् ।
क्रोष्टोस्तु वृजिनीवांश्च स्वाहाऽभूद्वृजिनीवतः ॥१२
स्वाहापुत्रो रुषद्गुश्च[1] तस्य चित्ररथः सुतः ।
शशविन्दुश्चित्ररथाच्चक्रवर्ती हरौ रतः ॥१३

अब मैं क्रोष्टु के वंश का वर्णन करूँगा। जिसमें साक्षात् भगवान विष्णु ने अवतार लिया था। क्रोष्टु का पुत्र वृजिनीवान, वृजिनीवान का स्वाहा,

१ क. ङ. रुमङ्गुश्च ।

स्वाहा का रुषद्गु, और उसका पुत्र चित्ररथ हुआ। चित्ररथ से चक्रवर्ती तथा हरिभक्त राजा शशविन्दु की उत्पत्ति हुई।१२-१३।

शशविन्दोश्च पुत्राणां शतानामभवच्छतम् ।
धीमतां चारुरूपाणां भूरिद्रविणतेजसाम् ॥१४
पृथुश्रवाः प्रधानोऽभूत्तस्य पुत्रः सुयज्ञकः ।
सुयज्ञस्योशनाः पुत्रस्तितिक्षुरुशनः सुतः ।१५

शशविन्दु के सौ पुत्र-पौत्र हुए, जो सबके सब बुद्धिमान्, सुन्दर तथा महान् तेजस्वी थे। उनमें पृथुश्रवा सबसे ज्येष्ठ था। उसका पुत्र सुयज्ञक हुआ। सुयज्ञक का पुत्र उशना और उसका पुत्र हुआ तितिक्षु।१४-१५।

तितिक्षोस्तु मरुत्तोऽभूत्तस्मात्कंबलवर्हिषः ।
पञ्चाशद्रुक्मकवचाद्रुक्मेषुः पृथुरुक्मकः ॥१६
हविर्ज्यामिघः पापघ्नो ज्यामघः स्त्रीजितोऽभवत् ।
शैब्यायां[1] ज्यामघादासीद्विदर्भस्तस्य कौशिकः ॥१७
लोमपादः क्रथः श्रेष्ठात्कृतिः स्याल्लोमपादतः ।
कौशिकस्य चिदिः पुत्रस्तस्माच्चैद्या नृपाः स्मृताः ॥१८

तितिक्षु का पुत्र मरुत्त और उसका पुत्र कंवलवर्हिष हुआ। कंबलवर्हिष का पुत्र रुक्मकवच और उसके रुक्मेषु, पृथुरुक्मक, हविर्ज्यामघ, पापघ्न, ज्यामघ तथा स्त्रीजित आदि पचास पुत्र हुए। ज्यामघ ने शैब्या से विदर्भ को जन्म दिया। विदर्भ से कौशिक, लोमपाद तथा क्रथ की उत्पत्ति हुई, लोमपाद से कृति और कौशिक से चिदि उत्पन्न हुआ। चिदि के चैद्य नाम से प्रसिद्ध अनेक पुत्र हुए।१६-१८।

क्रथाद्विदर्भपुत्राश्च कुन्तिः कुन्तेस्तु धृष्टकः ।
धृष्टकस्य धृतिस्तस्य उदर्काख्यो विदूरथः ॥१९
दशार्हपुत्रो व्योमस्तु व्योमाज्जीमूत उच्यते ।
जीमूतपुत्रो विकलस्तस्य भीमरथः सुतः ॥२०

क्रथ से कुन्ति, कुन्ति से धृष्टक, धृष्टक से धृति और धृति से उदर्क नामक विदूरथ हुआ। विदूरथ का पुत्र व्योम और व्योम से जीमूत उत्पन्न हुआ। जीमूत का पुत्र विकल और उसका पुत्र भीमरथ हुआ।१९-२०।

---

१ छ. सेब्यायां।

भीमरथान्नवरथस्ततो दृढरथोऽभवत् ।
शकुन्तिश्च दृढरथाच्छकुन्तेश्च करम्भकः ॥२१
करम्भाद्देवरातोऽभूद्देवक्षेत्रश्च तत्सुतः ।
देवक्षेत्रान्मधुर्नाम मधोर्द्रवरसोऽभवत् ॥२२
द्रवरसात्पुरुहूतोऽभूज्जन्तुरासीत्तु तत्सुतः ।
गुणी तु यादवो राजा जन्तुपुत्रस्तु सात्वतः ॥२३
सात्वताद्भजमानस्तु वृष्णिरन्धक एव च ।
देवावृधश्च चत्वारस्तेषां वंशास्तु विश्रुताः ॥२४

भीमरथ से नवरथ और उससे दृढरथ की उत्पत्ति हुई । दृढ़रथ से शकुन्ति और शकुन्ति से करम्भक उत्पन्न हुआ। करम्भक से देवरात और उससे देवक्षेत्र की उत्पत्ति हुई । देवक्षेत्र से मधु और उससे द्रवरस उत्पन्न हुआ । द्रवरस से पुरुहूत और उससे जन्तु की उत्पत्ति हुई जो यदुवंश में अत्यंत गुणवान् राजा था। उसका पुत्र था सात्वत । सात्वत से भजमान, वृष्णि, अन्धक तथा देवावृध नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए ।२१-२४।

भजमानस्य बाह्योऽभूद्वृष्टिः कृमिर्निमिस्तथा ।
देवावृधाद्बभ्रुरासीत्तस्य श्लोकोऽत्र गीयते ॥२५
यथैव शृणुमो दूराद्गुणांस्तद्वत्समन्तिकात् ।
बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ॥२६

भजमान के बाह्य, वृष्टि, कृमि तथा निमि पुत्र हुए । देवावृध से बभ्रु की उत्पत्ति हुई । उसके विषय में श्लोक कहा जाता है—जैसे हम बभ्रु के गुणों को दूर से सुनते हैं वैसे समीप से । बभ्रु मनुष्यों में श्रेष्ठ है और उसका पिता देवावृध देवताओं के समान है ।२५-२६।

चत्वारश्च सुता बभ्रोर्वासुदेवपरा नृपाः ।
[1]कुकुरो भजमानस्तु शिनिः कम्बलबर्हिषः ॥२७
[2]कुकुरस्य सुतो धृष्णुर्धृष्णोस्तु तनयो धृतिः ।
धृतेः कपोतरोमाऽभूत्तस्य पुत्रस्तु तित्तिरिः ॥२८

बभ्रु के चार पुत्र हुए जो कृष्णभक्त राजा थे। उनके नाम कुकुर भजमान, शिनि तथा कम्बलबर्हिष थे । कुकुर का पुत्र धृष्णु, धृष्णु का धृति, धृति का कपोतरोमा और उसका पुत्र तित्तिरि था ।२७-२८।

१ छ. कुहुरो । २ कुहुरस्य ।

तित्तिरेस्तु नरः पुत्रस्तस्य[1] चाऽऽनकदुन्दुभिः ।
पुनर्वसुस्तस्य पुत्र आहुकश्चाऽऽहुकीसुतः ॥२९
आहुकाद्देवको जज्ञ उग्रसेनस्ततोऽभवत् ।
देववानुपदेवश्च देवकस्य सुताः स्मृताः ॥३०
तेषां स्वसारः सप्ताऽऽसन्वसुदेवाय ता ददौ ।
देवकी श्रुतदेवी च मित्रदेवी यशोधरा ॥३१
श्रीदेवी सत्यदेवी च सुरापी चेति सप्तमी ।

तित्तिरि का पुत्र नर और उसका पुत्र आनकदुन्दुभि था । आनकदुन्दुभि का पुत्र पुनर्वसु और उसका पुत्र आहुक हुआ । आहुक के देवक और उग्रसेन नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए । इनमें से देवक के देववान् तथा उपदेव नामक पुत्र और देवकी, श्रुतदेवी, मित्रदेवी, यशोधरा, श्रीदेवी, सत्यदेवी तथा सुरापी नामक सात पुत्रियाँ हुईं । इन सातों का विवाह वसुदेव से हो गया ।२९-३१½।

नवोग्रसेनस्य सुताः कंसस्तासां[2] च पूर्वजः ॥३२
न्यग्रोधश्च सुनामा च कङ्कः शङ्कुश्च भूमिपः ।
सुतनू राष्ट्रपालश्च युद्धमुष्टिः सुमुष्टिकः ॥३३
भजमानस्य पुत्रोऽथ रथमुख्यो विदूरथः ।
राजाधिदेवः शूरश्च विदूरथसुतोऽभवत् ॥३४
राजाधिदेवपुत्रौ द्वौ शोणाश्वः श्वेतवाहनः ।
शोणाश्वस्य सुताः पञ्च शमीशत्रुजिदादयः ॥३५

उग्रसेन के नौ पुत्र हुए जिनमें सबसे ज्येष्ठ का नाम कंस और अन्य आठों का नाम न्यग्रोध, सुनामा, कङ्क, शंकु, राजा सुतनु, राष्टपाल, युद्धमुष्टि तथा सुमुष्टिक था । भजमान का पुत्र महारथी विदूरथ हुआ । विदूरथ का राजाधिराज शूर हुआ । शूर के दो पुत्र हुए—शोणाश्व और श्वेतवाहन । शोणाश्व के शमी, शत्रुजित् आदि पाँच पुत्र हुए । ३२-३५ ।

शमीपुत्रः प्रतिक्षेत्रः प्रतिक्षेत्रस्य भोजकः ।
भोजस्य हृदिकः पुत्रो हृदिकस्य दशाऽऽत्मजाः ॥३६
कृतवर्मा शतधन्वा देवार्हो भीषणादयः ।
देवार्हात्कम्बलबर्हिरसमौजास्ततोऽभवत् ॥३७

---

१ छ. ०स्थ चन्दनदु । २ ख. ग. ०सस्तेषां च ।

शमी का पुत्र प्रतिक्षेत्र और प्रतिक्षेत्र का पुत्र भोजक हुआ। भोजक का पुत्र हृदिक और उसके कृतवर्मा, शतधन्वा, देवार्ह, भीषण आदि दश पुत्र हुए। देवार्ह से कम्वलवर्हि और उससे असमौजा नामक पुत्र हुआ।३६-३७।

सुदंष्ट्रश्च सुवासश्च धृष्टोऽभूदसमौजसः।
गान्धारी चैव माद्री च धृष्टभार्ये वभूवतुः ॥३८
सुमित्रोऽभूच्च गान्धार्या माद्री जज्ञे युधाजितम्।
अनमित्रः शिनिर्धृष्टात्ततो वै देवमीढुषः ॥३९
अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नस्यापि प्रसेनकः।
सत्राजितः प्रसेनोऽथ मणिं सूर्यात्स्यमन्तकम् ॥४०

असमौजा से सुदंष्ट्र, सुवास तथा धृष्ट नामक पुत्रों की उत्पत्ति हुई। धृष्ट की दो पत्नियाँ थीं—गान्धारी और माद्री जिनमें गान्धारी ने सुमित्र को और माद्री ने युधाजित को उत्पन्न किया। धृष्ट के और भी तीन पुत्र हुए—अनमित्र, शिनि तथा देवमीढुष। अनमित्र से निघ्न और निघ्न से प्रसेनक तथा शत्राजित की उत्पत्ति हुई। सत्राजित ने सूर्य से स्यमन्तक मणि प्राप्त करके प्रसेन को दे दी। ३८-४०।

प्राप्यारण्ये चरन्तं तु सिंहो हत्वाऽग्रहीन्मणिम्।
हतो जाम्बवता सिंहो जाम्बवान्हरिणा जितः ॥४१
तस्मान्मणिं जाम्बवतीं प्राप्यागाद्द्वारकां पुरीम्।
सत्राजिताय प्रददौ शतधन्वा जघान तम् ॥४२
हत्वा शतधनुं कृष्णो मणिमादाय कीर्तिभाक्।
बलयादवमुख्याग्रेऽक्रूराय मणिमार्पयत् ॥४३

उसे लेकर प्रसेन वन में विचरण कर रहा था, वहाँ उसे एक सिंह ने मारकर मणि ले ली। उस सिंह को भी मार कर जाम्बवान् ने उससे मणि छीन ली। तत्पश्चात जाम्बवान् को जीत कर उससे मणि तथा जाम्बवती को प्राप्त करके कृष्ण द्वारका चले आये और मणि सत्राजित को लौटा दी। परन्तु शतधन्वा ने सत्राजित को मार डाला। अतः कृष्ण ने शतधन्वा को भी मारकर वह मणि वलदेव आदि प्रमुख यादवों के सामने अक्रूर को दे दी। ४१-४३।

मिथ्याभिशस्तिं कृष्णस्य त्यक्त्वा स्वर्गी च संपठन्।
सत्राजितो भङ्गकारः सत्यभामा हरेः प्रिया ॥४४

अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे सत्यकस्तु शिनेः सुतः ।
सत्यकात्सात्यकिर्जज्ञे युयुधानाद्धनिर्ह्यभूत् ॥४५

इससे कृष्ण के उपर लगाई गई लाञ्छना दूर हो गयी। इसलिए जो मनुष्य इस प्रकरण का पाठ करता है उसका भी मिथ्यापवाद नष्ट हो जाता है। सत्राजित का पुत्र भंगकार था। उसने उस घटना के बाद अपनी बहन सत्यभामा का विवाह कृष्ण के साथ कर दिया। अनिमित्र से शिनि की उत्पत्ति हुई, शिनि का पुत्र सत्यक और सत्यक का सात्यकि हुआ। सात्यकि से युयुधान और उससे धुनि की उत्पत्ति हुई। ४४-४५।

धनेर्युगंधरः पुत्रः स्वाह्योऽभूत्स युधाजितः ।
ऋषभक्षेत्रकौ तस्य ह्यृषभाच्च स्व (श्व) फल्ककः ॥४६
स्व (श्व) फल्कपुत्रो ह्यक्रूरो ह्यक्रूराच्च सुधन्वकः ।
शूरात्तु वसुदेवाद्याः पृथा पाण्डोः प्रियाऽभवत् ॥४७
धर्माद्युधिष्ठिरः पाण्डोर्वायोः कुन्त्यां वृकोदरः ।
इन्द्राद्धनंजयो माद्र्यां नकुलः सहदेवकः ॥४८

धुनि से युगंधर उत्पन्न हुआ। युगंधर का पुत्र युधाजित और युधाजित के ऋषभ तथा क्षेत्रक नामक पुत्र उत्पन्न हुए। ऋषभ से श्वफलकक, श्वफलकक से अक्रूर और अक्रूर से सुधन्वा की उत्पत्ति हुई। शूर से वसुदेव आदि उत्पन्न हुए। पाण्डु की पत्नी थी पृथा। पाण्डु की भार्या कुन्ती ने धर्मराज से युधिष्ठिर की, वायु से भीम की और इन्द्र से अर्जुन की उत्पत्ति की। उनकी दूसरी पत्नी माद्री से नकुल और सहदेव का जन्म हुआ। ४६-४८।

वसुदेवाच्च [1]रोहिण्यां रामः सारणदुर्गमौ ।
वसुदेवाच्च देवक्यामादौ जातःसुषेणकः ॥४९
कीर्तिमान्भद्रसेनश्च जारुख्यो विष्णुदासकः ।
भद्रदेहः कंस एतान्षड्गर्भान्निजघान ह ॥५०
ततो वलस्ततः कृष्णः सुभद्रा भद्रभाषिणी ।
चारुदेष्णश्च शा (सा) म्वाद्याः कृष्णाज्जाम्ववतीसुताः ॥५१

---

१. क. ङ. °हिण्यामादौ जा ।

रोहिणी ने वसुदेव से राम, सारण तथा दुर्गम को जन्म दिया। वसुदेव से देवकी के उत्पन्न होने वाले पहिले सुषेण, कीर्तिमान, भद्रसेन, जारुख्य, विष्णु, दासक और भद्रदेह नामक छः पुत्रों को कंस ने मार डाला था तदनन्तर उनसे बलराम, कृष्ण तथा शुभभाषिणी सुभद्रा की उत्पत्ति हुई। कृष्ण से जाम्बवती ने चरुदेष्ण तथा साम्ब आदि पुत्रों को जन्म दिया। ४६-५१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये यदुवंशकथनं नाम पञ्चसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।२७५

अथ षट्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

द्वादश सङ्ग्रामाः

अग्निरुवाच—

कश्यपो वसुदेवोऽभूद्देवकी चादितिर्वरा।
देवक्यां वसुदेवात्तु कृष्णोऽभूत्तपसाऽन्वितः ॥१
धर्मसंरक्षणार्थाय ह्यधर्महरणाय च।
सुरादेः पालनार्थं च दैत्यादेर्मथनाय च ॥२

अग्निदेव बोले—(जन्मान्तर में) कश्यप वसुदेव हुए और उत्तमा अदिति देवकी हुई। धर्म की रक्षा, अधर्म का नाश, देवताओं इत्यादि का पालन और दैत्यों का विध्वंस करने के लिए देवकी ने वसुदेव से कृष्ण को जन्म दिया। १-२।

रुक्मिणी सत्यभामा च सत्या नाग्नजिती प्रिया।
सत्यभामा हरेः सेव्या गान्धारी लक्ष्मणा तथा ॥३
मित्रविन्दा च कालिन्दी देवी जाम्बवती तथा।
सुशीला च तथा माद्री कौशल्या विजया जया ॥४
एवमादीनि देवीनां सहस्राणि तु षोडश ॥

रुक्मिणी, सत्यभामा, सत्या, प्रिया, नाग्नजिती, सेविका, सत्यभामा, गान्धारी, लक्ष्मणा, मित्रविन्दा, कालिन्दी, देवी जाम्बवती, सुशीला, माद्री, कौशल्या, विजया, जया आदि सोलह हजार उनकी पत्नियां थी। ३-४½

प्रद्युम्नाद्याश्च रुक्मिण्यां भीमाद्याः सत्यभामया ॥५
जाम्ववत्यां च साम्वाद्याः कृष्णस्याऽऽसंस्तथा परे ।
शतं शतसहस्राणां पुत्राणां तस्य धीमतः ॥६
अशीतिश्च सहस्राणि यादवाः कृष्णरक्षिताः ।
प्रद्युम्नस्य तु वैदर्भ्यामनिरुद्धो रणप्रियः ॥७

कृष्ण ने रुक्मिणी से प्रद्युम्न आदि, सत्यभामा से भीम आदि और जाम्बवती से साम्ब आदि पुत्र उत्पन्न किये। इस प्रकार उन बुद्धिमान कृष्ण के एक करोड़ पुत्र थे, जिनके संरक्षण में अस्सी हजार यादव रहा करते थे। प्रद्युम्न से वैदर्भी ने रणप्रिय अनिरुद्ध को जन्म दिया। ५-७।

अनिरुद्धस्य वज्राद्या यादवाः सुमहाबलाः ।
तिस्रः कोट्यो यादवानां षष्टिर्लक्षाणि दानवाः ॥८
मनुष्ये बाधका ये तु तन्नाशाय बभूव सः ।
कर्तुं[1] धर्मव्यवस्थानं मनुष्यो जायते हरिः ॥९

अनिरुद्ध से वज्र आदि अत्यन्त महाबली यादव उत्पन्न हुए। यादवों की संख्या तीस करोड़ थी दानवों की संख्या थी साठ लाख। मनुष्यों को बाधित करने वाले जीवों का नाश और धर्म की व्यवस्था करने के लिए भगवान् हरि मनुष्य-तन धारण किया करते हैं। ८-९।

देवासुराणां सङ्ग्रामा दायार्थं द्वादशाभवन् ।
प्रथमो नारसिंहस्तु द्वितीयो वामनो रणः ॥१०
सङ्ग्रामस्त्वथ वाराहश्चतुर्थोऽमृतमन्थनः ।
तारकामयसङ्ग्रामः षष्ठो ह्याजीवको रणः ॥११
त्रैपुरश्चान्धकवधो नवमो वृत्रघातकः ।
जितो हालाहलश्चाथ घोरः कोलाहलो रणः ॥१२

पैतृक सम्पत्ति को प्राप्त करने के लिए देवों और असुरों के बीच बारह बार युद्ध हुए। इनमें से प्रथम संग्राम का नाम नरसिंह, दूसरे का वामन, तीसरे का बाराह, चौथे का अमृत-मथन, पाचवें का तारकामय, छठे का आजीवक, सातवें का त्रैपुर, आठवें का अधंकवध, नवें का वृत्रघातक, दशवें का जित, ग्यारहवें का हालाहल, और बारहवें का नाम कोलाहल था। १०-१२।

१. ख. ग. छ. कर्मण्यवस्थान।

हिरण्यकशिपोश्चोरो विदार्य च नखैः पुरा ।
नारसिंहो देवपालः प्रह्लादं कृतवान्नृपम् ।।१३
देवासुरे वामनश्च च्छलित्वा बलमूर्जितम् ।
महेन्द्राय ददौ राज्यं काश्यपोऽदितिसंभवः ।।१४
वराहस्तु हिरण्याक्षं हत्वा देवानपालयत् ।
उज्जहार भुवं मग्नां देवदेवैरभिष्टुतः ।।१५

प्राचीन काल में देवताओं के रक्षक नृसिंह ने हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल को नख से फाड़ कर प्रह्लाद को राजा बनाया था। देवासुर संग्राम में अदिति से उत्पन्न कश्यप-पुत्र वामन ने बलि को छल कर इन्द्र को राज्य दे दिया था। वाराह ने हिरण्याक्ष को मारकर देवताओं की रक्षा की थी और देवाधिदेव (इन्द्र) के द्वारा स्तुति करने पर जलमग्न पृथ्वी का उद्धार किया था।१३-१५।

मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम् ।
सुरासुरैश्च मथितं देवेभ्यश्चामृतं ददौ ।।१६
तारकामयसङ्ग्रामे तदा देवाश्च पालिताः ।
निवार्येन्द्रं गुरून्देवान्दानवान्सोमवंशकृत् ।।१७
विश्वामित्रवशिष्ठात्रिकवयश्च रणे सुरान् ।
अपालयंस्ते निवार्य रागद्वेषादिदानवान् ।।१८

देवताओं और दैत्यों ने मिलकर समुद्र मंथन किया था। जिसमें मंदराचल को मथानी और वासुकि को रस्सी बनाया गया था। मंथन से जो अमृत निकला उसे भगवान विष्णु ने देवताओं में बांट दिया। तारकामय संग्राम में हरि ने इन्द्र और बृहस्पति आदि देवों तथा दानवों को युद्ध में हराकर देवताओं की रक्षा की थी। उस रण में विश्वामित्र, वशिष्ठ, अत्रि तथा शुक्र ने राग, द्वेष आदि दानवों का निवारण करके देवताओं की रक्षा की थी। १६-१८।

पृथ्वीरथे ब्रह्मयन्तुरीशस्य शरणो हरिः ।
ददाह त्रिपुरं देवपालको दैत्यमर्दनः ।।१९
गौरीं जिहीर्षुणा रुद्रमन्धकेनार्दितं हरिः ।
अनुरक्तश्च रेवत्यां चक्रे चान्धासुरार्दनम् ।।२०

अपां फेनमयो भूत्वा देवासुररणे हरन् ।
वृत्रं देववरं[1] विष्णुर्देवधर्मानपालयत् ॥२१

पृथ्वी पर त्रिपुरासुर का महान अत्याचार होने पर देवपालक, दैत्यनाशक और ब्रह्मा तथा शङ्कर के भी रक्षक भगवान विष्णु ने उस राक्षस को भस्म-सात् कर दिया था। गौरी का हरण करने की इच्छा करने वाले अन्धकासुर द्वारा पीड़ित शंकर के ऊपर कृपा करके भगवान विष्णु ने रेवती नक्षत्र में उस राक्षस को मार डाला। देवों और असुरों के युद्ध में भगवान विष्णु ने जल का फेन बनकर वृत्रासुर का वध किया और इस प्रकार देवताओं के धर्म की रक्षा की। १९-२१।

शाल्वादीन्दानवाञ्जित्वा हरिः परशुरामकः ।
अपालयत्सुरादींश्च दुष्टक्षत्रं निहत्य च ॥२२
हालाहलं विषं दैत्यं निराकृत्य महेश्वरात् ।
भयं निर्णाशयामास देवानां मधुसूदनः ॥२३

परशुराम अवतार में भगवान् विष्णु ने शाल्व आदि दानवों को जीतकर और दुष्ट क्षत्रियों का वध करके देवताओं की रक्षा की। मधुसूदन ने शङ्कर से हालाहल विष लेकर दैत्यों के ऊपर प्रयोग किया जिससे देवता अभय हो गये ॥२२-२३।

देवासुरे रणे[2] यश्च दैत्यः कोलाहलो जितः ।
पालिताश्च सुराः सर्वे विष्णुना धर्मपालनात् ॥२४
राजानो राजपुत्राश्च मुनयो देवता हरिः ।
यदुक्तं यच्च नैवोक्तमवतारा हरेरिमे ॥२५

देवासुर संग्राम में कोलाहल नामक दैत्य को मारकर भगवान विष्णु ने धर्म की रक्षा की। जिससे देववृन्द, राजवृन्द, राजपुत्र-समूह और मुनिगण की रक्षा हुई। ये भगवान् विष्णु के अवतार हैं। इनके सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है और जो कुछ नहीं भी कहा गया है वह सब सत्य समझना चाहिए ।२४-२५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये द्वादशसंख्याकसंङ्ग्रामकथनं नाम षट्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२७६

---

१. छ. देवहरं। २. क, ङ. °णे दैत्यं पञ्चजनं जघान ह। पा°।

अथ सप्तसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजवंशवर्णनम्

अग्निरुवाच—

तुर्वसोश्च सुतो [1]वर्गो गोभानुस्तस्य चाऽऽत्मजः ।
गोभानोरासीत्त्रैशानिस्त्रैशानेस्तु करंधमः ॥१

अग्निदेव बोले—तुर्वसु का पुत्र वर्ग हुआ और उसका पुत्र हुआ गोभानु । गोभानु से त्रैशानि और त्रैशानि से करंधम उत्पन्न हुआ ।१।

करंधमान्मरुत्तोऽभूद्दुष्यन्तस्तस्य चाऽऽत्मजः ।
दुष्यन्तस्य वरूथोऽभूद्गाण्डीरस्तु वरूथतः ॥२

करंधम से मरुत्त और उससे दुष्यन्त की उत्पत्ति हुई । दुष्यन्त से वरूथ और वरूथ से गाण्डीर उत्पन्न हुआ ।२।

गाण्डीराच्चैव गान्धारः पञ्च जानपदास्ततः ।
गान्धाराः केरलाश्चोलाः पाण्ड्याः कोला महाबलाः ॥३
द्रुह्यस्तु[2] बभ्रुसेतुश्च बभ्रुसेतोः पुरोवसुः ।
ततो गान्धारा गान्धारैर्धर्मो धर्माद्घृतोऽभवत् ॥४
घृतात्तु विदुषस्तस्मात्प्रचेतास्तस्य वै शतम् ।
अनडुश्च सुभानुश्च चाक्षुषः परमेषुकः ॥५

गाण्डीर से गान्धार की उत्पत्ति हुई । गान्धार के नाम से पांच सबल देश प्रख्यात हुए—गान्धार, केरल, चोल, पाण्ड्य तथा कोल । द्रुह्य से बभ्रुसेतु और बभ्रुसेतु से पुरोवसु की उत्पत्ति हुई । गान्धारो के पुत्र गान्धार ही कहलाए । धर्म से घृत, घृत से विदुष और उससे प्रचेता की उत्पत्ति हुई । प्रचेता के अनडु, सुभानु, चाक्षुष, परमेषुक आदि सौ पुत्र हुए ।३-५।

---

१. क. ङ. वंशो । २. क. ङ. द्रुह्योस्तु ।

सुभानोश्च कालानल: कालानलज: सृञ्जय: ।
पुरंजय: सृञ्जयस्य तत्पुत्रो जनमेजय: ॥६
तत्पुत्रस्तु महाशालस्तत्पुत्रोऽभून्महामना: ।
तस्मादुशीनरो ब्रह्मन्नृगायां तु नृगस्तत: ॥७
नरायां तु नरश्चाऽऽसीत्कृमिस्तु कृमित: सुत: ।
दशायां सुव्रतो जज्ञे दृषद्वत्यां शिविस्तथा ॥८

सुभानु का पुत्र कालानल और कालानल का पुत्र सृञ्जय हुआ । सृञ्जय का पुत्र पुरञ्जय और उसका पुत्र जनमेजय हुआ । जनमेजय का पुत्र महाशाल और उसका पुत्र महामना हुआ । महामना का पुत्र उशीनर हुआ । अये ब्रह्मन् ! नृगा से नृग, नरा से नर और कृमि से कृमि की उत्पत्ति हुई । दशा से सुव्रत और दृषद्वती से शिवि की उत्पत्ति हुई ।६-८।

शिवे: पुत्रास्तु चत्वार: पृथुदर्भश्च वीरक: ।
([१]कैकेयो भद्रकस्तेषां नाम्ना जनपदा: शुभा: ॥९
तितिक्षुरुशीनरजस्तितिक्षोश्च रुषद्रथ: ।
रुषद्रथादभूत्पैल: पैलाच्च सुतपा: सुत: ॥१०

शिवि के चार पुत्र हुए—पृथुदर्भ, वीरक, कैकेय और भद्रक । उनके नामों से चार पवित्र देश प्रसिद्ध हुए । उशीनर का पुत्र तितिक्षु, तितिक्षु का रुषद्रथ, रुषद्रथ का पैल और पैल का पुत्र सुतपा हुआ ।९-१०।

महायोगी बलिस्तस्मादङ्गो वङ्गश्च मुख्यक: ।)
पुण्ड्र: कलिङ्गो बालेयो बलिर्योगी बलान्वित: ॥११
अङ्गाद्दधिवाहनोऽभूत्तस्माद्दिविरथो नृप: ।
दिविरथाद्धर्मरथस्तस्य चित्ररथ: सुत: ॥१२
चित्ररथात्सत्यरथो लोमपादश्च तत्सुत: ।
लोमपादाच्चतुरङ्ग: पृथुलाक्षश्च तत्सुत: ॥१३
पृथुलाक्षाच्च चम्पोऽभूच्चम्पाद्धर्यङ्कोऽभवत् ।
हर्यङ्गाच्च भद्ररथो बृहत्कर्मा च तत्सुत: ॥१४
तस्मादभूद्बृहद्भानुर्बृहद्भानोर्बृहात्मवान् ।

---

१. कैकेयो……मुख्यक: क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति ।

तस्माज्जयद्रथो ह्यासीज्जयद्रथाद्वृहद्रथः ॥१५
बृहद्रथाद्विश्वजिच्च कर्णो विश्वजितोऽभवत् ।
कर्णस्य वृषसेनस्तु पृथुसेनस्तदात्मजः ॥१६
एतेऽङ्गवंशजा भूपाः पुरोर्वंशं निबोध मे ॥१७

सुतपा से महायोगी बलि, बलि से अंग, वंग, पुण्ड्र, कलिंग तथा बालेय की उत्पत्ति हुई। अंग से दधिवाहन और उससे राजा दिविरथ, दिविरथ से सत्परथ और सत्परथ से लोमपाद की उत्पत्ति हुई। लोमपाद का पुत्र चतुरंग, चतुरंग से पृथुलाक्ष, पृथुलाक्ष का चम्प, चम्प का हर्यङ्ग, हर्यङ्ग का भद्ररथ, भद्ररथ का बृहत्कर्मा, बृहत्कर्मा का बृहद्भानु, बृहद्भानु का बृहात्मवान, बृहात्मवान् का जयद्रथ, जयद्रथ का कर्ण, कर्ण का विषसेन और विषसेन का पुत्र पृथुसेन हुआ। यह सभी राजा अंग वंश में हुए थे। अब पुरुवंश का वर्णन सुनो।११-१७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये राजवंशवर्णनं नाम सप्तसप्तत्यधिक-द्विशततमोऽध्यायः।२७७।

अथाष्टसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

पुरुवंशवर्णनम्

पुरोर्जनमेजयोऽभूत्प्राचीवान्नाम तत्सुतः ।
प्राचीवतो मनस्युस्तु तस्माद्वीतमयो नृपः ॥१

पुरु का पुत्र जनमेजय हुआ और उसका पुत्र प्राचीवान्। प्राचीवान् का पुत्र मनस्यु और उसका पुत्र वीतचय नामक राजा हुआ।१

शुन्धुर्वीतमयाच्चाभूच्छुन्धोर्बहुविधः सुतः ।
बहुविधाच्च संयाती रहोवादी च तत्सुतः ॥२
तस्य पुत्रोऽथ भद्राश्वो भद्राश्वस्य दशाऽऽत्मजाः ।
ऋचेयुश्च कृषेयुश्च संतनेयुस्तथाऽऽत्मजः ॥३
घृतेयुश्च चितेयुश्च स्थण्डिलेयुश्च सत्तमः ।
धर्मेयुः संतनेयुश्च कृतेयुर्मतिनारकः ॥४

वीतमय से शुन्धु, शुन्धु से बहुविध, बहुविध से संयाती, संयाती से रहोवादी और रहोवादी से भद्राश्व की उत्पत्ति हुई। भद्राश्व के दश पुत्र हुए—ऋचेयु, कृषेयु, संनतेयु, घृतेयु, चितेयु, स्यण्डिलेषु, धर्मेयु संनतेषु, कृतेयु तथा मतिनारक है। २-४।

तंसुरोधः प्रतिरथः पुरस्तो मतिमारजाः।
आसीत्प्रतिरथात्कण्वः कण्वान्मेधातिथिस्त्वभूत् ॥५
तंसुरोधाच्च चत्वारो दुष्यन्तोऽथ प्रवीरकः।
सुमन्तश्चानयो वीरो दुष्यन्ताद्भरतोऽभवत् ॥६

मतिमारक के तंसुरोध, प्रतिरक्ष तथा पुरस्त नामक पुत्र हुए। प्रतिरथ से कण्व और कण्व से मेधातिथि का जन्म हुआ। तंसुरोध के दुष्यन्त, प्रवीरक, सुमन्त तथा वीरअनय नामक चार पुत्र हुए। दुष्यन्त से भारत उत्पन्न हुए। ५-६

शकुन्तलायां तु बली यस्य नाम्ना तु भारताः।
सुतेषु मातृकोपेन (ण) नष्टेषु भरतस्य च ॥७
ततो मरुद्भिरानीय पुत्रः स तु बृहस्पतेः।
संक्रामितो भरद्वाजः क्रतुभिर्वितथोऽभवत् ॥८

दुष्यन्त और शकुन्तला से बलवान् भरत उत्पन्न हुए, जिनके नाम से भारत वंश (देश) प्रसिद्ध है। माता के कोप के कारण भरत के पुत्रों के नष्ट हो जाने पर मरुतों ने उसे बृहस्पति का पुत्र लाकर दे दिया। जिसका नाम था भरद्वाज। भरद्वाज ने यज्ञों के द्वारा वितथ को उत्पन्न किया। ७-८।

स चापि वितथः पुत्राञ्जनयामास पञ्च वै।
सुहोत्रं च सुहोतारं गयं गर्भं[1] तथैव च ॥९
कपिलं च महात्मानं सुकेतुं च सुतद्वयम्।
कौशिकं च गृत्सपतिं तथा गृत्सपतेः सुताः ॥१०
ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः[2] काशा दीर्घतमाः सुताः।
ततो धन्वन्तरिश्चाऽऽसीत्तत्सुतोऽभूच्च केतुमान् ॥११

वितथ से पाँच पुत्रों की उत्पत्ति हुई, जिनके नाम थे—सुहोत्र, सुहोता, गय, गर्भ, तथा महात्मा कपिल। सुहोत्र ने कौशिक तथा गृत्सपति नामक दो

१. क. ख. ङ. गर्ग। २. ङ. काशे।

पुत्रों को उत्पन्न किया। गृत्सपति के ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य पुत्र हुए, जिनकी संज्ञा दीर्घतमा है। दीर्घतमा से धन्वन्तरि की उत्पत्ति हुई। धन्वन्तरि का पुत्र केतुमान् हुआ। ९-११।

केतुमतो हेमरथो दिवोदास इति श्रुतः।
प्रतर्दनो दिवोदासाद्भर्गवत्सौ प्रतर्दनात् ॥१२
वत्सादनर्क आसीच्च अनर्कात्क्षेमकोऽभवत्।
क्षेमकाद्वर्षकेतुश्च वर्षकेतोर्विभुः स्मृतः ॥१३
विभोरानर्तः पुत्रोऽभूद्विभोश्च सुकुमारकः।
सुकुमारात्सत्यकेतुर्वत्सभूमिस्तु वत्सकात् ॥१४

केतुमान् से हेमरथ और उससे दिवोदास का जन्म हुआ। दिवोदास से प्रतदर्न और प्रतदर्न से भर्ग तथा वत्स की उत्पत्ति हुई। वत्स से अनर्क, अनर्क से क्षेमक, क्षेमक से वर्ष केतु, वर्षकेतु से विभु, विभु से आनर्त, आनर्त से सुकुमारक और सुकुमारक से सत्यकेतु उत्पन्न हुआ। वत्सक ने वत्सभूमि को उत्पन्न किया। १२-१४।

सुहोत्रस्य बृहत्पुत्रो बृहतस्तनयास्त्रयः।
अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च वीर्यवान् ॥१५
अजमीढस्य केशिन्यां जज्ञे जह्नुः प्रतापवान्।
जह्नोरभूदजकाश्वो बलाकाश्वस्तदात्मजः ॥१६
बलाकाश्वस्य कुशिकः कुशिकाद्गाधिरिन्द्रकः।
गाधेः सत्यवती कन्या विश्वामित्रः सुतोत्तमः ॥१७

सुहोत्र का पुत्र बृहत् हुआ। बृहत् के तीन पुत्र हुए अजमीढ, द्विमीढ़ और पराक्रमी पुरुमीड। अजमीढ से केशिनी के प्रतापी जह्नु उत्पन्न हुआ। जह्नु से अजकाश्व और उससे बलाकाश्व नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। बलाकाश्व से कुशिक और कुशिक से गाधि की उत्पत्ति हुई। गाधि की कन्या सत्यवती और पुत्र विश्वामित्र हुए। १५-१७।

देवरातः कतिमुखा विश्वामित्रस्य ते सुताः।
शुनः शेपोऽष्टकश्चान्यो ह्यजमीढात्सुतोऽभवत् ॥१८
नीलिन्यां शान्तिरपरः पुरुजातिः सुशान्तितः।
पुरुजातेस्तु बाह्याश्वो वाह्याश्वात्पञ्च पार्थिवाः ॥१९

मुकुलः सृञ्जयश्चैव राजा बृहदिषुस्तथा ।
यवीनरश्च क्रमिलः पाञ्चाला इति विश्रुताः ॥२०

विश्वामित्र के पुत्र देवरात, कतिमुख तथा शुनः शेप हुए । अजमीढ के आठ पुत्र और थे । उसने अपनी नलिनी नामक स्त्री से शान्ति को जन्म दिया । शान्ति से पुरुजाति और पुरुजाति से वाह्याश्व की उत्पत्ति हुई, वाह्याश्व के पांच पुत्र हुए—मुकुल, सृञ्जय, बृहदिषु, यवीनर और क्रमिल । ये पांचों पाञ्चाल नाम से प्रख्यात हैं । १८-२० ।

मुकुलस्य तु [1]मौकुल्याः [2]क्षात्रोपेता द्विजातयः ।
चञ्चाश्वो मुकुल्ला (ला) ज्जज्ञे चञ्चाश्वान्मिथुनं ह्यभूत् ॥२१
दिवोदासो ह्यहल्या च अहल्यायां शरद्वतात् ।
शतानन्दः शतानन्दात्सत्यधृङ्मिथुनं ततः ॥२२
कृपः कृपी दिवोदासान्मैत्रेयः सोमपस्ततः ।
सृञ्जयात्पञ्चधनुषः सोमदत्तश्च तत्सुतः ॥२३

मुकुल के क्षात्र धर्म से युक्त द्विजाति पुत्र मौकुल्य कहलाए । मुकुल से चञ्चाश्व उत्पन्न हुआ । चञ्चाश्व से दिवोदास तथा अहल्या की उत्पत्ति हुई । अहल्या ने शरद्वान् से शतानन्द को जन्म दिया । शतानन्द से सत्यधृक् उत्पन्न हुआ । सत्यधृक् के कृप और कृपी नामक दो सन्तानें हुईं । दिवोदास से मैत्रेय और मैत्रेय से सोमप की उत्पत्ति हुई । सृञ्जय से पञ्चधनुष और उससे सोमदत्त का जन्म हुआ । २१-२३ ।

सहदेवः सोमदत्तात्सहदेवात्तु सोमकः ।
आसीच्च सोमकाज्जन्तुर्जन्तोश्च पृषतः सुतः ॥२४
पृषताद्द्रुपदस्तस्माद्धृष्टद्युम्नोऽथ तत्सुतः ।
धृष्टकेतुश्च धूमिन्यामृक्षोऽभूदजमीढतः ॥२५
ऋक्षात्संवरणो जज्ञे कुरुः संवरणात्ततः ।
यः प्रयागादपाक्रम्य कुरुक्षेत्रं चकार ह ॥२६

१. ख. च. मौद्गल्याः । २. छ. क्षेत्रोपेता ।

सोमदत्त से सहदेव, सहदेव से सोमक, सोमक से जन्तु, जन्तु से पृषत, पृषत से द्रुपद और द्रुपद से धृष्टद्युम्न की उत्पत्ति हुई। धूमिनी से धृष्टकेतु का जन्म हुआ। अजमीढ का पुत्र ऋक्ष हुआ। ऋक्ष से संवरण और संवरण से कुरु उत्पन्न हुआ, जिसने प्रयाग से आकर कुरुक्षेत्र का निर्माण किया।२४-२६।

कुरोः सुधन्वा सुधनुः परीक्षिच्च रिपुंजयः।
सुधन्वनः सुहोत्रोऽभूत्सुहोत्राच्च्यवनो ह्यभूत् ॥२७
[1]वसुश्रेष्ठोपरिचाराः सप्ताऽऽसन्गिरिकासुताः।
बृहद्रथः कुशो वीरो यदुः प्रत्यग्रहो वलः ॥२८
मत्स्यकाली कुशाग्रोऽतो ह्यासीद्राज्ञो वृहद्रथात्।
कुशाग्राद्वृषभो जज्ञे तस्य सत्यहितः सुतः ॥२९

कुरु से सुधन्वा, सुधनु, से परीक्षित् तथा रिपुंजय की उत्पत्ति हुई। सुधन्वा से सुहोत्र और सुहोत्र से च्यवन उत्पन्न हुआ। गिरिका के सात पुत्र हुए—वृहद्रथ, कुश, वीर, यदु, प्रत्यग्रह, वल तथा मत्स्यकाली। राजा बृहद्रथ से कुशाग्र का जन्म हुआ। कुशाग्र से वृषभ और उससे सत्यहित की उत्पत्ति हुई।२७-२९।

सुधन्वा तत्सुतश्चोर्ज ऊर्जादासीच्च संभवः।
संभवाच्च जरासंधः सहदेवश्च तत्सुतः ॥३०
सहदेवादुदापिश्च उदापेः श्रुतकर्मकः।
परीक्षितस्य दायादो धार्मिको जनमेजयः ॥३१

सत्यहित से सुधन्वा, सुधन्वा से ऊर्ज, ऊर्ज से संभव, संभव से जरासंध, जरासंध से सहदेव, सहदेव से उदापि और उदापि से श्रुतकर्मक का जन्म हुआ। परीक्षित का पुत्र धर्मात्मा जनमेजय हुआ। ३०-३१।

जनमेजयात्त्रसद्दस्युर्जह्नोस्तु सुरथः सुतः।
श्रुतसेनोग्रसेनौ च भीमसेनश्च नामतः ॥३२
जनमेजयस्य पुत्रौ तु सुरथो महिमांस्तथा।
सुरथाद्विदूरथोऽभूदृक्ष आसीद्विदूरथात् ॥३३
ऋक्षस्य तु द्वितीयस्य भीमसेनोऽभवत्सुतः।
प्रतीपो भीमसेनात्तु प्रतीपस्य तु शंतनुः ॥३४

---

१. छ. वशिष्ठपरिचाराभ्यां स°।

देवापिर्बाह्लिकश्चैव सोमदत्तस्तु शंतनोः ।
वाह्लिकात्सोमदत्तोऽभूद्भूरिर्भूरिश्रवाः शलः ॥३५

जनमेजय से त्रसद्दस्यु की उत्पत्ति हुई । जह्नु के पुत्र थे—सुरथ, श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन । जनमेजय के दो पुत्र हुए सुरथ और महिमान् । सुरथ से विदूरथ और विदूरथ से ऋक्ष की उत्पत्ति हुई । ऋक्ष का पुत्र भीमसेन, भीमसेन का प्रतीप, प्रतीप का शंतनु और शंतनु के पुत्र देवापि, वाह्लिक तथा सोमदत्त । वाह्लिक से सोमदत्त, भूरि, भूरिश्रवा तथा शल की उत्पत्ति हुई । ३२-३५ ।

गङ्गायां शंतनोर्भीष्मः काल्यायां [1]चित्रवीर्यकः ।
कृष्णाद्द्वैपायनश्चैव क्षेत्रे[2] वै चैत्रवीर्यके ॥३६
धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत् ।
पाण्डोर्युधिष्ठिरः कुन्त्यां भीमश्चैवार्जुनस्त्रयः ॥३७
नकुलः सहदेवश्च पाण्डोर्माद्र्यां च दैवतः[3] ।
अर्जुनस्य च सौभद्रः परीक्षिदभिमन्युतः ॥३८

शंतनु ने गंगा से भीष्म और काल्या से चित्रवीर्य को जन्म दिया । चित्रवीर्य की पत्नी से कृष्णद्वैपायन ने धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा विदुर को उत्पन्न किया । पाण्डु की पत्नी कुन्ती से युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुन की उत्पत्ति हुई और माद्री से नकुल तथा सहदेव की । अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु और अभिमन्यु का परीक्षित् हुआ । ३६-३८ ।

द्रौपदी पाण्डवानां च प्रिया तस्यां युधिष्ठिरात् ।
प्रतिविन्ध्यो भीमसेनाच्छ्रुतकीर्तिर्धनंजयात् ॥३९
सहदेवाच्छ्रुतसोमः[4] शतानीकस्तु नाकुलिः ।
भीमसेनाद्धिडम्बायामन्य आसीद्घटोत्कचः ॥४०
एते भूता भविष्याश्च नृपाः संख्या न विद्यते ।
गताः कालेन कालो हि हरिस्तं पूजयेद्द्विज ।
होममग्नौ समुद्दिश्य कुरु [5]सर्वप्रदो यतः ॥४१

१. छ. विचित्रवीर्यकः । २. छ. °त्रे वै चित्र° । ३. ख. देवतः । ४. क. ङ. तशर्मा श° । ख. ग. छ. °तकर्माः श° । ५. ख. ग. ङ. छ. सर्वप्रदं । * मूल में भीमसेन के पुत्र का नामोल्लेख नहीं है, परन्तु महाभारत के अनुसार उसे यहाँ दे दिया गया ।*

द्रौपदी पाण्डवों की प्रियतमा थी। उसमें युधिष्ठिर से प्रतिविन्ध्य, भीमसेन से (सुतसोम) अर्जुन से श्रुतकीर्ति, सहदेव से श्रुतसोम और नकुल से शतानीक की उत्पत्ति हुई। भीमसेन ने हिडम्बा से घटोत्कच नामक अन्य पुत्र को भी उत्पन्न किया। अये द्विज! ये सब राजा हो गये हैं और होते रहेंगे। इनकी कोई संख्या नहीं है। इनको काल ने कवलित कर लिया है। काल ही हरि हैं। उनकी पूजा करके और उनके निमित्त अग्नि में आहुतियाँ डालनी चाहिए, क्योंकि वे सब कुछ देने वाले हैं। ३९-४१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पुरुवंशवर्णनं नामाष्टसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।२७८

अथैकोनाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सिद्धौषधानि

अग्निरुवाच—

आयुर्वेदं प्रवक्ष्यामि सुश्रुताय यमब्रवीत्।
देवो धन्वन्तरिः सारं मृतसंजीवनीकरम् ॥१

अग्निदेव बोले—देव धन्वन्तरि ने मृतकों को जीवित करने वाले जिस आयुर्वेद को सुश्रुत के लिए कहा था उस आयुर्वेद को सार रूप में कहूँगा। १।

(सुश्रुत उवाच—
आयुर्वेदं मम ब्रूहि नराश्वेभरुगर्दनम्।
सिद्धयोगान्सिद्धमन्त्रान्मृतसंजीवनीकरान्) ॥२

सुश्रुत बोले—मृतकों को जीवित करने वाले सिद्ध योगों एवं सिद्धमंत्रों तथा मनुष्य, अश्व एवं हस्ती के रोगों को नष्ट करने वाले आयुर्वेद को आप मुझसे कहिये।२।

धन्वन्तरिरुवाच—

रक्षन्बलं हि ज्वरितं [1]लङ्घितं योजयेद्भिषक्।
सविश्वं लाजमण्डं तु तृड्ज्वरान्तं शृतं जलम् ॥३

---

१. क ङ. च. छ. ॰तं भोज॰।

मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः ।
षडहे च व्यतिक्रान्ते तिक्तकं पाययेद्ध्रुवम् ॥४

धन्वन्तरि बोले—ज्वर से पीड़ित व्यक्ति के बल की रक्षा करने के लिए धान का लावा, सोंठ और मांड़ के साथ देवे । नागर मोथा, चित्तपापड़ा, खश, लालचन्दन, सुगन्धवाला एवं सोंठ से पका हुआ जल तृषा तथा ज्वर-नाश के हेतु पीने को दे । छः दिन बीत जाने पर चिरायता का काढ़ा पिलावे ।३-४ ।

स्नेहयेत्त्यक्तदोषं तु ततस्तं च विरेचयेत् ।
जीर्णाः षष्टिकनीवाररक्तशालिप्रमोदकाः ॥५
तद्विधास्ते ज्वरेष्विष्टा यवानां विकृतिस्तथा ।
मुद्गा मसूराश्चणकाः कुलत्थाश्च सकुष्ठकाः ॥६
[1]आढक्यो लावकाद्याश्च [2]कर्कोटककटोलकम्[3] ।
पटोलं सुफलं निम्बं पर्पटं दाडिमं ज्वरे ॥७

निर्दोष ज्वरांश न स्पर्श होने पर स्नेह (ज्वरनाशक ओषधियों से सिद्ध) स्नेह घृत या तेल पान करावे । इसके पश्चात् विरेचन करावे । (भोजन के लिए) पुराना साठी का चावल, नीवार (एक प्रकार का धान जो जल में स्वयं उत्पन्न होता है) लाल चावल, शालि चावल, (उत्तम कोटि का वासमती जैसा) प्रमोदक (चावल का एक भेद) एवं इसी प्रकार का अन्य चावल ज्वर में खिलाने के लिए हितकर हैं । यव की रोटी, मांड़, सत्तू आदि भी हितकर हैं । मूंग, मसूर, चना, कुलथी, मोथी (मोट) अरहर, लावा आदि पक्षियों के मांस का रस, करेला, खेकशा, परवल, कुन्दरू, निम्बपत्र का साग, चित्तपापड़ा और अनार ज्वर में दे । ५-७ ।

अधोगे वमनं शस्तमूर्ध्वगे च विरेचनम् ।
रक्तपित्ते तथा पानं षडङ्गं शुण्ठिवर्जितम् ॥८

रक्त पित्त के अधः मार्ग (गुदा, लिंग, योनि) से उद्भूत होने पर वमन करावे और ऊर्ध्वमार्ग (मुख, नासिका, अक्षि एवं कर्ण) से उद्भूत होने पर रोगी को विरेचन दे और नागरमोथा चित्तपापड़ा, खश, लालचन्दन और सुगन्धवाला का काढ़ा पिलावे ।८।

१. छ. °क्यो नारका । २. क. ङ. कठिलक । ३. छ. टोल्वकम् ।

सक्तुगोधूमलाजाश्च यवशालिमसूरकाः ।
सकुष्ठचणका मुद्गा भक्ष्या गोधूमका हिताः ॥९
साधिता घृतदुग्धाभ्यां क्षौद्रं वृषरसो मधु ॥

सत्तू, गेहूँ धान का लावा, यव,—शालि (उत्तम प्रकार का चावल) मसूर मोथी, चना, मूँग और गेहूँ का भोजन हितकर है। घृत एवं दुग्ध में अड़ूसे का स्वरस पकाकर (और उसे ठंढा करके) उसमें मधु मिलाकर पीने को दे। ९-९½।

अतीसारे पुराणानां शालीनां भक्षणं हितम् ॥१०
अनभिष्यन्दि यच्चान्नं लोध्रवल्कलसंयुतम् ।
मारुतं वर्जयेद्यत्नः कार्यो गुल्मेषु सर्वथा ॥११
वाट्यं क्षीरेण चाश्नीयाद्वास्तुकं घृतसाधितम् ।
गोधूमशालयस्तिक्ता हिता जठरिणामथ ॥१२

अतीसार में पुराना चावल खाने के लिए दे। एवं जो भी अन्न अनभिष्यन्दि (कब्जियत) करने वाले न हों वह खाने को दे। इसमें लोधवृक्ष के छाल का काढ़ा दे। गुल्म रोग (वायुगोला) में वायु से रक्षा करें (अर्थात् वातकारक आहार-विहार न करे) उदर रोग में—दूध एवं फुलका (जवे की बहुत ही पतली रोटी) घृत में वथुई का साग पका कर खाये। गेहूँ तथा चावल भोजन में दे और कुटकी (सदा विरेचन के लिये) का काढ़ा दे। १०-१२।

गोधूमशालयो मुद्गा ब्रह्मर्क्षखदिरोऽभया ।
पञ्चकोलं जाङ्गलाश्च निम्बधात्र्यः पटोलकाः ॥१३
[1]मातुलुङ्गरसाजाजिशुष्कमूलकसैन्धवाः ।
कुष्ठिनां च तथा शस्तं पानार्थे खदिरोदकम् ॥१४
मसूरमुद्गौ [2]सूपार्थे भोज्या जीर्णाश्च शालयः ।
निम्बपर्पटकौ शाकौ जाङ्गलानां तथा रसः ॥१५
विडङ्गं मरिचं मुस्तं कुष्ठं लोध्रं सुवर्चिका ।
मनःशिला[3] वचा लेपः कुष्ठहा मूत्रपेषितः ॥१६

---

१ छ. °जातिशु° । २ क. ङ. छ. पेयार्थ । ३ छ. °ला च वालेयः कु° ।

कुष्ठ रोग में गेहूँ, चावल, मूंग, आंवला खैर और हरड़ पंचकोल (पिप्पली, पिपरामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ) जंगली पशुओं का मांस, निम्ब (नीम का पाँचो अंग । जैसे त्वचा, पत्र, पुष्प, फल और सार) तीनों आंवले (पहाड़ी, जमीन का और कलमी) परवल के पत्र, बिजौरे नीम्बू का रस, काला जीरा, सूखी मूली (जड़) सैन्धव नमक खदिरोदक (खैर) का काढ़ा अथवा खदिरारिष्ट देना चाहिए। भोजन में मसूर और मूँग का जूस, बासमती चावल का भात, निम्ब पत्र पटोल-पत्र का शाक, जंगली पशु-पक्षियों का रस देना चाहिए। लेपन के लिए—वायविडंग, मरिच, नागर मोथा, कूठ, लोध्र, हुरहुर, मैनशिल और वच को गोमूत्र का प्रयोग करे।१३-१६।

अपूपकुष्ठकुल्माषयवाद्य मेहिनां हिताः ।
यवान्नविकृतिर्मुद्गाः कुलत्था जीर्णशालयः ॥१७
तिक्तरूक्षाणि शाकानि तिक्तानि हरितानि च ।
तैलानि तिलशिग्रुकविभीतकेङ्गुदानि च ॥१८
मुद्गाः सयवगोधूमा धान्यं वर्षस्थितं च यत् ।
जाङ्गलस्य रसः शस्तो भोजने राजयक्ष्मिणाम् ॥१९

प्रमेही को यव का अपूप पूआ बनाकर खिलावे एवं यव के अन्य पदार्थ बनाकर खाने को दे। कूठ, कुलथी का भी अनेक प्रकार से अपूप आदि बनाकर दे। भोजन में मूंग एवं कुलथी की दाल, पुराना शाली चावल का भात दे। हरे, तिक्त एवं रूक्ष शाक खाने को दे। (जैसे करेला) तिल, सहिजन, बहेड़ा एवं इंगुदी के तेल का प्रयोग करे। राजयक्ष्मा के रोगी को भोजन के लिए एक वर्ष का पुराना यव एवं गेहूँ की रोटी तथा मूँग की दाल दे। जंगली पशु एवं पक्षियों का मांस का रस भी दे।१७-१९।

कुलत्थमुद्गकोलाद्यैः शुष्कमूलकजाङ्गलैः ।
पूपैर्वा विष्किरैः सिद्धैर्दधिदाडिमसाधितैः ॥२०
मातुलुङ्गरसक्षौद्रद्राक्षाव्योषादिसंस्कृतैः ।
यवगोधूमशाल्यन्नैर्भोजयेच्छ्वासकासिनम् ॥२१
दशमूलबलारास्नाकुलत्थैरूपसाधिताः ।
पेया[1] घृतरसक्वाथाः श्वासहिक्कनिवारणाः ॥२२

१ छ. पेयाः पूपरसाः क्वा° ।

श्वास कास रोग में रोगी को भोजन के लिए कुलथी, मूंग, सूखा बेर, सूखी-मूली और जंगली पशु-पक्षियों के मांस से पूआ बना ले उसे दधि में भिगो दे और उसमें अनार का रस, बिजौरे नीबू का रस, मधु, मुनक्का, सोंठ, मिर्च, पीपरि मात्रा के अनुसार मिलाकर दे। जवा, गेहूँ तथा वासमती चावल भी खाने को दे। श्वास एवं हिक्का रोग में रोगी को जो पेया मण्डभेद बनाकर या घृत पकाकर या काढ़ा बनाकर दे उसे दशमूल (शालपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कटेरी-भटकैया, बड़ी कटेरी-वनभांटा, गोखरु, आलू, अरणी, पाढ़, खंभारी और बेल का गूदा) बला (बरिअरा) रास्ना एवं कुलथी ओषधियों से सिद्ध करके दे।२०-२२।

शुष्कमूलककौलत्थमूलजाङ्गलजै रसैः।
यवगोधूमशाल्यन्नं जीर्णं सोशीरमाचरेत् ॥२३
शोथवान्सगुडां पथ्यां खादेद्वा गुडनागरम्।
तक्रं च चित्रकश्चोभौ ग्रहणीरोगनाशनौ ॥२४

शोथ रोग वाले को भोजन के लिए पुराना जवा, गेहूँ और वासमती चावल को सूखी मूली, कुलथी पुनर्नवा की जड़ तथा जंगली पशु-पक्षियों के मांस रस से पका कर दे अथवा गुड़-हरड़ या गुड़ सोंठ को खिलावे। ग्रहणी रोग का नाश करने वाला मट्ठा एवं चित्रक दोनों ही है।२३-२४।

पुराणयवगोधूमशालयो जाङ्गलो रसः।
मुद्गामलकखर्जूरमृद्वीका वदराणि च ॥२५
मधु सर्पिः पयस्तक्रं निम्बपर्यटकौ वृषम्।
तक्रारिष्टाश्च शस्यन्ते सततं वातरोगिणाम् ॥२६
हृद्रोगिणो विरेच्यास्तु पिप्पल्या (ल्यो) हिक्किनां हिताः।
तक्रारनालसीधूनि युक्तानि शिशिराम्भसा ॥२७

वातरोगी के लिए पुराना जवा, गेहूँ तथा वासमती चावल का भात और जंगली पशु-पक्षियों का मांस रस भोजन के लिए दे। मूँग की दाल पकाकर उसमें आंवला, खजूर, मुनक्का और बेर डाल कर दे। मधु, घृत, मट्ठा, तक्रारिष्ट दुग्ध एवं नीम, पित्त पापड़ा और अड़ूसा का निरन्तर सेवन करावे। हृदय रोग वाले को रोचक ओषधि (जुलाव) दे। हिक्का के रोगी को तीनों प्रकार की पीपरि, मट्ठा, काजी और आसव में ठण्डा जल मिलाकर दे।२५-२७।

[1]मुस्ता सौवर्चलाऽजाजी[2] मद्यं शस्तं मदात्यये ।
सक्षौद्रपयसा लाक्षां पिबेच्च क्षतवान्नरः ॥२८
क्षयं मांसरसाहारो वह्निसंरक्षणाज्जयेत् ।
शालयो भोजने रक्ता नीवारकमलादयः ॥२९

मदात्यय (मद्य अत्यधिक पीने से होने वाले) रोग में नागरमोथा, सोंचर और कालाजीरा मिलाकर मद्य ही दे। (रूक्ष मद्य के पीने से उत्पन्न मदात्यय में स्निग्ध मद्य तथा स्निग्ध मद्य के पीने से उत्पन्न मदात्यय में रूक्ष मद्य उपर्युक्त तीनों औषधि मिलाकर पीने को दे) उरःक्षत (राजयक्ष्मा का एक भेद) में दुग्ध में लाख और मधु मिलाकर दे। क्षय (राजयक्ष्मा) रोग को जठराग्नि की रक्षा करते हुए मांस रस के आहार से शान्त करे। क्षय रोगी को भोजन में वासमती चावल, लाल चावल, कलमी चावल आदि लघु आहार पका कर दे।२८-२९।

यवान्नविकृतिर्मांसं शाकं सौवर्चलं शटी ।
पथ्या तथैवार्शसां यन्मण्डस्तक्रं च वारिणा ॥३०
मुस्ताभ्यासस्तथा लोपश्चित्रकेण हरिद्रया ।
यवान्नविकृतिः शालिवास्तूकं ससुवर्चलम् ॥३१
त्रपुषैर्वारु (?) गोधूमाः क्षीरेक्षुघृतसंयुताः ।
मूत्रकृच्छ्रे च शस्ताः स्युः पाने मण्डसुरादयः ॥३२

अर्श (बवासीर) के रोगी को जवा के बने विविध प्रकार के आहार मांस रस के साथ दे। हुरहुर के पत्ते का शाक खिलावे। कचूर एवं हरड़ का चूर्ण मंड से या मट्ठे से जल के साथ दे। नागरमोथा के काढ़े को निरन्तर पिलावे चित्रक एवं हलदी एक में पीस कर बवासीर के मस्से पर लेप करे। मूत्रकृच्छ्र (जिसे पेशाब कठिनाई से उतरे तथा पीड़ा हो. ऐसे) रोग में खीरा, पपीता खाने को दे। गेहूँ की रोटी दे इनके साथ ही दूध पीने को दे, गन्ना चूसने को दे, आहार में घृत दे। पीने के लिए मंड एवं सुरा आदि दे।३०-३२।

लाजाः सक्तुस्तथा क्षौद्रं शून्यं मांसं परूषकम् ।
वार्ताकुलावशिखिनश्छर्दिघ्नाः पानकानि च ॥३३
शाल्यन्नं तोयपयसी केवलोष्णे शृतेऽपि वा ।
तृष्णाघ्ने मुस्तगुडयोर्गुटिका वा मुखे धृता ॥३४

---

१ छ. मुक्ताः । २ छ. 'जादिम' ।

यवान्नविकृतिः पूपं शुष्कमूलकजं तथा ।
शाकं पटोलवेत्राग्रमूरुस्तम्भविनाशनम् ।।३५

धान का लावा, सतुआ, मधु, हलका मांस, फालसा, मोटा लावा पक्षी का मांस, मयूर का मांस और पना ये सब वमन रोग के नाशक है। तृषा (जिससे बार-बार अधिक जल पीने पर भी प्यास शान्त नहीं होती है) ऐसे रोग में भोजन के लिए वासमती का चावल दे, दूध और पानी बराबर हिस्से में मिलाकर पका ले जब थोड़ा-थोड़ा गरम रहे तब पीने को दे या नागरमोथा और गुड़ को पीसकर गोली बनाकर मुख में धारण करे। उरुस्तम्भ (जिसमें दोनों शून्य हो जाते हैं ऐसे) रोग का नाश करने के लिए जवे के बने अनेक प्रकार के भोजन और सूखी मूली का पूआ, पटोल एवं वेल के पत्ते का साग दे ।३३-३५।

मुद्गाढकमसूराणां सतिलैर्जाङ्गलै रसैः ।
ससैन्धवघृतद्राक्षाशुण्ठ्याम (ल) ककोलजैः ।।३६
यूषैः पुराणगोधूमयवशाल्यन्नमभ्यसेत् ।
विसर्पी ससिताक्षौद्रमृद्वीकादाडिमोदकम् ।।३७

विसर्प रोग वाले को चाहिए कि पुराने गेहूँ तथा जवा की रोटी वासमती चावल का भात, मूंग, अरहर और मसूर की दाल में सेंधा नमक, घृत, सोंठ, मुनक्का, आमला और वेर को डालकर भोजन करे या सेंधा नमक से लेकर ये सब चीजें तथा तिल जंगली पशु-पक्षियों के मांस रस में डालकर आहार भोजन करे ।३६-३७।

रक्तषष्टिकगोधूमयवमुद्गादिकं लघु ।
[1]काकमाची च वेत्राग्रं वास्तुकं च सुवर्चला ।।३८
वातशोणितनाशाय तोयं शस्तं सितं मधु ।
नासारोगेषु च हितं घृतं दूर्वाप्रसाधितम् ।।३९

वात रक्त को नाश करने के लिए, मिश्री, मधु, मुनक्का, अनार को जल में घोलकर पीये। लाल चावल, साठी का चावल, गेहूँ और जव की रोटी भोजन करे, मूंग की दाल दे, जो भी लघु आहार हो उसे दे। मकोप, वेंत के अग्रभाग

१ छ. काकमारी ।

के पत्ते, बथुआ और हुरहुर के पत्ते का साग दे। जल में मधु मिश्री मिलाकर दे। नासा रोग में दूर्वादि घृत का नस्य ले।३८-३९।

भृङ्गराजरसे सिद्धं तैलं धात्रीरसेऽपि वा।
नस्यं सर्वामयेष्विष्टं मूर्धजन्तूद्भवेषु च ॥४०
शीततोयान्नपानं च तिलानां विप्र भक्षणम्।
द्विजदार्ढ्यकरं प्रोक्तं तथा तुष्टिकरं परम् ॥४१
गण्डूषं तिलतैलेन द्विजदार्ढ्यकरं परम्।
विडङ्गचूर्णं गोमूत्रं सर्वत्र क्रिमिनाशने ॥४२

भंगरैया के रस में अथवा आँवले के रस में पकाया हुआ तैल सम्पूर्ण मस्तिष्क के रोगों में तथा कृमि जन्य रोगों में लाभकारी होता है। ठण्डे जल के पीने से ठंडे ही अन्न पान करने से एवं तिलों के विशेष भक्षण से दाँत दृढ हो जाते हैं। एवं सन्तुष्टि अधिक मिलती है। तिल के तैल का गंडूष, (कुल्ला) लेने से दाँत अत्यन्त दृढ़ हो जाते हैं। जहाँ कृमिनाश करना हो वहाँ विडङ्ग चूर्ण तथा गोमूत्र का प्रयोग खाने-पीने के लिए तथा लेप के लिए भी प्रयोग करना चाहिए।४०-४२।

धात्रीफलान्यथाऽऽज्यं च शिरोलेपनमुत्तमम्।
शिरोरोगविनाशाय स्निग्धमुष्णं च भोजनम् ॥४३
तैलं वा वस्तमूत्रं च कर्णपूरणमुत्तमम्।
कर्णशूलविनाशाय सर्वशुक्तानि वा[1] द्विज ॥४४
गिरिमृच्चन्दनं लाक्षा मालतीकलिका तथा।
संयोज्य या कृता वर्तिः क्षतश्वित्रहरी[2] तु सा ॥४५

शिरोरोग के विनाश के लिए स्निग्ध एवं उष्ण भोजन करे। सिर पर आँवला का लेप अथवा घृत का लेप उत्तम होता है। कर्णशूल में तैल या वकरे का मूत्र कान में डाले अथवा शुक्त (सिरका) कान में डाले। श्वित्र (सफेद कोढ़) को दूर करने के लिए गेरू, लाल चन्दन, लाही और मालती के पुष्प की कली इन सबको पीस कर वत्ती वना ले उसे समय पर घिस कर लगाने से सम्पूर्ण श्वित्र नष्ट हो जाते हैं।४३-४५।

---

१ क. ङ. च. °शुक्लानि। २ छ. °तशुक्रह°।

व्योषं त्रिफलया युक्तं तुत्थकं च तथा जलम् ।
सर्वाक्षिरोगशमनं तथा चैव रसाञ्जनम् ॥४६
आज्यभृष्टं शिलापिष्टं लोध्रकाञ्जिकसैन्धवैः ।
[1]आश्च्योतनविनाशाय सर्वनेत्रामये हितम् ॥४७
गिरिमृच्चन्दनैर्लेपो वहिर्नेत्रस्य शस्यते ।
नेत्रामयविघातार्थं त्रिफलां शीलयेत्सदा ॥४८

व्योष (सोंठ, मिर्च और पीपरि) त्रिफला, (आँवला, हरड़ और वहेड़ा) तुतिया और रंसाजन को जल से वारीक पीसकर आँख में अंजन लगाने से नेत्र के सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं। लोध को घी में भूनकर कांजी और सेंधा नमक के साथ पीसकर आँख में लगाने से नेत्र के सभी रोग दूर हो जाते हैं। गेरू तथा चन्दन को घिस कर नेत्र के ऊपर लेप करने से नेत्र रोग में अधिक लाभ होता है। तथा निरन्तर त्रिफला के सेवन से नेत्र रोग दूर हो जाता है।४६-४८।

रात्रौ तु मधुसर्पिभ्या दीर्घमायुर्जिजीविषुः ।
शतावरीरसे सिद्धौ वृष्यौ क्षीरघृतौ स्मृतौ ॥४९
[2]कलविङ्कानि माषाश्च वृष्यौ क्षीरघृतौ तथा ।
आयुष्या त्रिफला ज्ञेया पूर्ववन्मधुकान्विता ॥५०
मधुकादिरसोपेता वलीपलितनाशिनी ।
वचासिद्धघृतं विप्र भूतदोषविनाशनम् ॥५१
कव्यं वुद्धिप्रदं चैव तथा सर्वार्थसाधनम् ।
वलाकल्ककषायेण सिद्धमभ्यञ्जने हितम् ॥५२

जीने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति रात्रि में मधु और घृत को (असमान मात्रा में) खावें तो आयु लम्बी हो जाती है। इसी तरह शतावरी के रस में घृत या दुग्ध पका कर पीने से वह दुग्ध घृत वृष्य हो जाता है। (मैथुन की शक्ति बढ़ जाती है)। केवांच का वीज, उड़द, दूध और घृत वृष्य कहे जाते है। मुलहठी मिलाकर त्रिफला का निरन्तर सेवन पूर्व के कहे की भाँति आयुवर्धक है। मुलहठी के रस के साथ त्रिफला का सेबन करने से चमड़े पर की झुर्रियाँ और बाल का सफेद होना दूर हो जाता है। वच ओषधि से घृत पकाकर सेवन

---

१ क. आमवात वि°। २ छ. °लम्बिकानि।

करने से विशेष तथा अनेक दोषों का नाश हो जाता है। घृत बुद्धिप्रद है और अनेक अर्थों का साधक है। वला के कल्क और काढ़े से सिद्ध घृत आँख में अभ्यंजन के लिए हितकारी है।४९-५२।

रास्नासहचरैर्वाऽपि तैलं वातविकारिणाम्।
अनभिष्यन्दि यच्चान्नं तद्व्रणेषु प्रशस्यते ॥५३
सक्तुपिण्डी तथैवाऽऽम्ला पाचनाय प्रशस्यते।
पक्वस्य च तथा भेदे निम्बचूर्णं च रोपणे ॥५४

रास्ना और कटसरैया द्वारा सिद्ध किया हुआ तेल सम्पूर्ण बात-व्याधियों को दूर करने वाला है। जो अन्न कब्जियत लाने वाला न हो उसे फोड़े वाले रोगी को देना चाहिए। व्रण फोड़ा को पकाने के लिए सत्तू का पिण्ड जो कांजी से सान कर बना हो वह हितकर है। पके हुए फोड़े के भेदन के लिए और घाव को भरने के लिए नीम का चूर्ण (नीम के वल्कल का चूर्ण) हितकारी है।५३-५४।

तथा सूच्युपचारश्च बलिकर्म विशेषतः।
सूतिका च तथा रक्षा प्राणिनां तु सदा हिता ॥५५

उसी तरह सूई के द्वारा उपचार करे (सूची बेध करे) विशेष रूप में (वलिकर्म का अर्थ है कि भोजन का) कुछ भाग देवों तथा पितरों आदि के नाम पर निकाल कर बाहर रख दे जिसे कौए, कुत्ते आदि खा जाते हैं। इसी प्रकार सूतिका स्त्री (बच्चा पैदा होने १ मास तक के प्रायः वच्चों की माँ को सूतिका कहते हैं) का भी जीवाणुओं से सदा रक्षा करनी चाहिए। यह रक्षा हितकारी होती है।५५।

भक्षणं निम्बपत्राणां सर्पदष्टस्य भेषजम्।
तालनिम्बदलं केश्यं जीर्णं तैलं यवा घृतम् ॥५६
धूपो वृश्चिकदष्टस्य शिखिपत्रघृतेन वा।
अर्कक्षीरेण संपिष्टं [1]लेपो वीजं पलाशजम् ॥५७

नीम के पत्रों का चवाना साँप की काटे की दवा है। बाल को काला करने के लिए, झड़ने से बचाने के लिए नीम के पत्रों को एक में महीन

१ छ. लोपा।

पीस कर लेप करे। इसी तरह पुराना तेल और घृत तथा जवा भी केश के लिए हितकारी है। विच्छू के काटने पर मयूरपत्री और घृत का धूप देना चाहिए। तथा मदार के दूध से पलाश का बीआ पीस कर लेप करे।५६-५७।

वृश्चिकार्तस्य कृष्णा वा शिवा च फलसंयुता।
अर्कक्षीरं तिलं तैलं पललं च गुडं समम् ॥५८
पानाज्जयति दुर्वारं श्वविषं शीघ्रमेव च।
पीत्वा मूलं त्रिवृत्तुल्यं तण्डुलीयस्य सर्पिषा ॥५९
सर्पकीटविषाण्याशु जयत्यतिबलान्यपि।

और जिसे विच्छू ने काटा है, विष चढ़ गया है, उसे पीपरि या हरडामैनफल के साथ चूर्ण बनाकर पीने को पानी के साथ दे। जिसे विषैले कुत्ते ने काट लिया है उसे मदार का दूध, तिल का तेल, मांस का रस एवं गुड़ सबको बराबर मिलाकर पीने को देने से कुत्ते, सियार आदि कुत्ते के जाति वाले जानवरों का विष दूर हो जाता है। निसोथ और चौराई की जड़ पीस कर घृत के साथ पीने को देने से दुर्निवार सर्प एवं विच्छू आदि के विष नष्ट हो जाते हैं।५८-५९½।

चन्दनं पद्मकं कुष्ठं [1]लताम्बूशीरपाटलाः ॥६०
निर्गुण्डी सारिवा सेलुर्लूताविषहरोऽगदः।
शिरोविरेचनं शस्तं गुडनागरकं द्विज ॥६१
स्नेहपाने तथा वस्तौ तैलं घृतमनुत्तमम्।
स्वेदनीयः परो वह्निः शीताम्भःस्तम्भनं परम ॥६२

चन्दन, पद्माख, कूठ, लता, सुगन्धवाला, खश, पाढ़ा मेउड़ी (निर्गुंड़ी) अनन्तमूल और एलुआ (घी कुमार की मज्जा) ये सब ओषधि मकड़ी के विष की दवा है। गुड़ एवं शुंठी को मिलाकर नस्य देना शिर का रेचक है (अर्थात् शिर में स्थित कफ पित्त को बाहर निकाल देता है) स्नेहपान कराने के लिए तथा वस्ति में प्रयोग करने के लिए घृत तथा तेल उत्तम है। स्वेदन के लिए अग्नि उत्तम है तथा स्तंभन के लिए जल उत्तम है।६०-६२।

त्रिवृद्धि रेचने श्रेष्ठा वमने मदनं तथा।
वस्तिर्विरेको वमनं तैलं सर्पिस्तथा मधु।
वातपित्तबलाशानां क्रमेण परमौषधम् ॥६३

---

१ च. °ताश्चोशी°।

निसोथ विरेचन (दस्त लाने की दवा) के लिए और मैनफर वमन के लिए श्रेयस्कर है। वायु शमन के लिए वस्ति, पित्तशमन के लिए विरेचन और श्लेष्मा शमन के लिए वमन हितकारी है। इसी तरह वायु शान्त करने के लिए तेल, पित्त शान्त करने के लिए घृत और श्लेष्मा शान्त करने के लिए मधु सर्वोत्तम ओषधि है।६३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सिद्धौषधकथनं नामैकोनाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।२७९

अथाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सर्वरोगहराण्यौषधानि

धन्वन्तरिरुवाच—

शारीरमानसागन्तुसहजा व्याधयो मताः।
शारीरा ज्वरकुष्ठाद्याः क्रोधाद्या मानसा मताः॥१
आगन्तवो विधातोत्थाः सहजाः क्षुज्जरादयः॥

धन्वन्तरि बोले—शारीरिक, मानसिक, आगन्तुक तथा सहज व्याधियाँ होती हैं। ज्वर, कुष्ठ आदि शारीरिक और क्रोध आदि मानस व्याधि कही जाती हैं। चोट, प्रहार या अन्य किसी प्रकार के वाह्य अभिघात के कारण जो व्याधि होती है उसे आगन्तुज व्याधि कहते हैं। भूख, जरा (बुढ़ापा) आदि व्याधियाँ स्वाभाविक व्याधि कही जाती हैं।१-१½।

शारीरागन्तुनाशाय सूर्यवारे घृतं गुडम्॥२
लवणं सहिरण्यं च [1]विप्रायाऽऽर्च्य समर्पयेत्।
चन्द्रे चाभ्यङ्गदो विप्रे सर्वरोगैः प्रमुच्यते॥३
तैलं शनैश्चरे दद्यादाश्विने गोरसान्नदः।
घृतेन पयसा लिङ्गं संस्नाप्य[2] स्याद्रुगुज्झितः॥४

शारीर एवं आगन्तुक व्याधियों के नाश के लिए रविवार के दिन घृत, गुड़, नमक और सोना (सुवर्ण) को ब्राह्मण की पूजा करके उसे दान दे।

---

१ छ. °यापूपमर्चये°। २ ख. °प्य च गुडेन तु। ग°।

सोमवार को शरीर पर मालिश करने की वस्तु तैल उवटन आदि दे। शनैश्चर को तिल का दान करे। कुआर महीने में दूध, दधि और अन्न का दान दे। शिवलिंग की स्थापना करके घृत एवं दुग्ध से स्नान कराये तो रोग से मुक्त हो जाय।२-४।

गायत्र्या[१] हावयेद्वह्नौ दूर्वां त्रिमधुराप्लुताम्।
यस्मिन्भे व्याधिमाप्नोति तस्मिन्स्थाने वलिः शुभे ॥५
मानसानां रुजादीनां विष्णोः स्तोत्रं हरं भवेत्।
वातपित्तकफा दोषा धातवश्च तथा शृणु ॥६
भुक्तं पक्वाशयादन्नं द्विधा याति च [२]सुश्रुत।
अंशेनैकेन किट्टत्वं रसतां चापरेण च ॥७

अग्नि में गायत्री मंत्र से घृत, मधु और गुड़ को दूर्वा में मिलाकर उसी से हवन करे। जिस नक्षत्र में व्याधि उत्पन्न हुई है उस नक्षत्र में शुभ स्थान पर बलि चढ़ावे। मानस रोगों को विष्णु सहस्र नाम के पाठ से दूर करना चाहिए। वायु, पित्त, कफ और धातुओं का वर्णन सुनो–हे सुश्रुत! भुक्त (खाया हुआ) अन्न आमाशय (पेट) से नीचे जाता है तो उसके दो भाग हो जाते हैं रस और किट्ट बनता है और दूसरे भाग से रस बनता है।५-७।

किट्टभागो मलस्तत्र विण्मूत्रस्वेदरूपवान्[३]।
नासामलः कर्णमलस्तथा देहमलः स्मृतः ॥८
रसभागाद्रसस्तत्र समाच्छोणिततां व्रजेत्।
मांसं रक्तात्ततो मेदो मेदसोऽस्थ्नश्च संभवः ॥९
अस्थ्नो मज्जा ततः शुक्रं शुक्राद्रागस्तथौजसः ॥

जो किट्ट भाग बनता है वही मल टट्टी, मूत्र और पसीना है तथा नासिका, कान एवं देहमल भी मल ही है। रस भाग से रस, रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से हड्डी, हड्डी से मज्जा, मज्जा से वीर्य, वीर्य से ओज का राग (प्रेम) होता है।८-९½।

देशमार्तिं बलं शक्तिं कालं प्रकृतिमेव च ॥१०
ज्ञात्वा चिकित्सितं कुर्याद्भेषजस्य तथा बलम्।
तिथिं रिक्तां त्यजेद्भौमं मन्दभं दारुणोग्रकम् ॥११

---

१ क. ख. ग. ङ. °त्र्या होमये°। २. ख. शुश्रुम। ३. छ. °दद्दूषिकाः। ना°।

हरिगोद्विजचन्द्रार्कसुरादीन्प्रतिपूज्य च ।
शृणु मंत्रमिमं विद्वन्भेषजारम्भमाचरेत् ।।१२

रोग, देश, काल एवं रोगी के बल, उसकी प्रकृति और उसकी शक्ति का ज्ञान करके और ओषधि के बल का ज्ञान करके चिकित्सा करे। रिक्ता तिथि मंगलवार मंद संज्ञक नक्षत्र, दारुण और उग्र नक्षत्र को त्याग कर अन्य तिथि वार और नक्षत्र में चिकित्सा करे। विष्णु, गौ, ब्राह्मण, चन्द्र, सूर्य तथा देवताओं का पूजन करके और इस मंत्र को पढ़कर चिकित्सा प्रारम्भ करे।१०-१२।

ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्कानिलानलाः ।
ऋषयश्चौषधिग्रामा भूतसंघाश्च पान्तु ते ।।१३
रसायनमिवर्षीणां देवानाममृतं यथा ।
सुधेवोत्तमनागानां भैषज्यमिदमस्तु ते ।।१४

ब्रह्मा, दक्षप्रजापति, अश्विनीकुमार, रुद्र, इन्द्र, पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य, वायु, अग्नि, ऋषि, ओषधि-समूह और भूतसंघ तेरी रक्षा करें। ऋषियों को जिस प्रकार रसायन लाभकारी हुआ, देवों को अमृत लाभदायक हुआ, उत्तम नागों को जिस प्रकार सुधा लाभदायक हुई उसी तरह यह ओषधि तुम्हारे लिए हो।१३-१४।

[1]वातश्लेष्मकरो देशो बहुवृक्षो बहूदकः ।
अनूप इति विख्यातो जाङ्गलस्तद्विवर्जितः ।।१५
किञ्चिद्वृक्षोदको देशस्तथा साधारणः स्मृतः ।
जाङ्गलः पित्तबहुलो मध्यः साधारणः स्मृतः ।।१६
रूक्षः शीतश्चलो वायुः पित्तमुष्णं कटुत्रयम् ।
स्थिराम्लस्निग्धमधुरं [2]वलासं च प्रचक्षते ।।१७

वायु और श्लेष्मा को उत्पन्न करने वाला अधिक वृक्ष और जल वाला देश अनूप देश कहा जाता है। वृक्षों और जलों से रहित देश जांगल देश कहा जाता है। जिस देश में थोड़े वृक्ष एवं थोड़ा जल हो वह देश साधारण कहा जाता है। जांगल देश में पित्त की अधिकता होती है और साधारण देश में वायु पित्त श्लेष्मा समान रहते हैं। रूक्ष, शीत और चल गुण वाला वायु है।

---

१ ख. छ. 'श्लेष्मातको दे॰' । च. 'श्लेष्मान्तको दे॰' । २ ख. ग. रसालं ।

पित्त उष्ण एवं त्रिकटु है (इसमें तिक्त एवं कड़ुवा स्वाद होता है) कफ में स्थिर, अम्ल, स्निग्ध एवं मधुर गुण है ।१५-१७

वृद्धिः समानैरेतेषां विपरीतैर्विपर्ययः ।
रसाः स्वाद्वम्ललवणाः श्लेष्मला वायुनाशनाः ॥१८
कटुतिक्तकषायाश्च वातलाः श्लेष्मनाशनाः ।
कट्वम्ललवणा ज्ञेयास्तथा पित्तविवर्धनाः ॥१९
तिक्तस्वादुकषायाश्च तथा पित्तविनाशनाः ।
रसस्यैष[1] गुणो नास्ति विपाकस्यैष इष्यते ॥२०

अपने-अपने गुणों के समान गुण वाले आहार से वायु, पित्त और श्लेष्मा की वृद्धि होती है एवं विपरीत गुण वाले आहार से हानि होती है। मधुर अम्ल और नमकीन रस श्लेष्मा को बढ़ाने वाला एवम् वायु को नष्ट करने वाला है। कटु तिक्त एवं कषाय रस वायु को बढ़ाने वाला तथा कफ का विनाश करने वाला है। कटु, अम्ल एवं लवण (नमकीन) पित्त को बढ़ाने वाला है। तिक्त, मधुर एवं कषाय रस पित्तविनाशक है। रस का यह गुण नहीं है। इनके विपाक का यह गुण है ।१८-२०।

वीर्योष्णाः कफवातघ्नाः शीताः पित्तविनाशनाः ।
प्रभावतस्तथा कर्म ते कुर्वन्ति च सुश्रुत ॥२१
शिशिरे च वसन्ते च निदाघे च तथा क्रमात् ।
चयप्रकोपप्रशमाः कफस्य तु प्रकीर्तिताः ॥२२
निदाघवर्षारात्रौ च तथा शरदि सुश्रुत ।
चयप्रकोपप्रशमाः पवनस्य प्रकीर्तिताः ॥२३
मेघकाले च शरदि हेमन्ते च तथा क्रमात् ।
चयप्रकोपप्रशमास्तथा पित्तस्य कीर्तिताः ॥२४

उष्ण वीर्य पित्त वर्धक और शीत वीर्य कफ वात वर्धक हैं। सुश्रुत ! ओषधियाँ प्रभाव से भी अपने-अपने कर्मों को करती है। शिशिर, वसंत और निदाघ गर्मी में क्रमशः श्लेष्मा का संचय, प्रकोप और प्रशमन होता है। गर्मी में, वर्षा में एवं शरद् तथा रात्रि में वायु का क्रमशः संचय, प्रकोप और शमन

१ क. ख. ग. छ. 'स्यैतद्गुणं ना'।

होता है। वर्षा, शरद् और हेमन्त में क्रमशः पित्त का संचय, प्रकोप तथा प्रशन होता है।२१-२४।

वर्षादयो विसर्गास्तु हेमन्ताद्यास्तथा त्रयः।
शिशिराद्यास्तथाऽऽदाने[1] ग्रीष्मान्ता ऋतवस्त्रयः ॥२५
सौम्यो विसर्गस्त्वादानमाग्नेयं परिकीर्तितम्।
वर्षादींस्त्रीनृतून्सोमश्चरन्पर्यायशो रसान् ॥२६
जनयत्यम्ललवणमधुरांस्त्रीन्यथाक्रमम्।
शिशिरादीनृतून्नर्कश्चरन्पर्यायशो रसान् ॥२७
विवर्धयेत्तथा तिक्तकषायकटुकान्क्रमात्।
यथा रजन्यो वर्धन्ते बलमेवं हि वर्धते ॥२८

वर्षा, शरद् और हेमन्त ये तीनों ऋतुयें विसर्ग काल कही जाती हैं। एवं हेमन्त, वसन्त तथा ग्रीष्म ये तीन ऋतुयें आदान काल कही जाती हैं। विसर्ग काल सौम्य एवं आदान काल आग्नेय कहा जाता है। वर्षा, शरद् और हेमन्त ऋतुओं में सोम (चन्द्र) क्रमशः रसों में चरता है। (इस में अपना अंश देता है) अतः अम्ल, लवण और मधुर रसों को यथाक्रम बढ़ाता है। शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म ऋतुओं में पर्याय से सूर्य रसों में चरता है। तिक्त कषाय और कटु रसों को क्रमशः बढ़ाता है। जैसे-जैसे रात्रि बढ़ती जाती है वैसे वैसे मनुष्यों का बल बढ़ता जाता है।२५-२८।

क्रमशोऽथ मनुष्याणां हीयमानासु हीयते।
रात्रिभुक्तदिनानां च वयसश्च तथैव च ॥२९
आदिमध्यावसानेषु कफपित्तसमीरणाः।
प्रकोपं यान्ति कोपादौ काले तेषां चयः स्मृतः ॥३०

ज्यों-ज्यों रात्रि छोटी होती जाती है त्यों-त्यों मनुष्यों का बल क्रमशः कम होता जाता है। रात्रि, भोजन, दिन और वय के आदि में कफ की वृद्धि मध्य में पित्त की तथा अन्त में वायु की वृद्धि होती है। और प्रकोप के पूर्व उन दोषों का संचय होता है।२९-३०।

प्रकोपोत्तरके काले शमस्तेषां प्रकीर्तितः।
अतिभोजनतो विप्र तथा चाभोजनेन च ॥३१

---

१ छ. ०दानं ग्री०।

रोगा हि सर्वे जायन्ते वेगोदीरणधारणैः ।
अन्नेन कुक्षेर्द्वावंशावेकं पानेन पूरयेत् ॥३२
आश्रयं पवनादीनां तथैकमवशेषयेत् ।
व्याधेर्निदानस्य तथा विपरीतमथौषधम् ॥३३

प्रकोप के उत्तर काल में उन दोषों का शमन हो जाता है । हे विप्र ! अति भोजन तथा अति अभोजन और मल, मूत्र तथा अपान वायु के आये हुए वेगों के रोकने से एवं न आये हुए वेगों के उदीरण से समस्त रोग उत्पन्न होते हैं । अन्न से पेट के दो भाग को और जल से एक भाग को भर ले । वायु आदि के आश्रय के लिये एक भाग खाली छोड़े । रोग के और रोग के कारण के विपरीत चिकित्सा करें ।३१-३३।

कर्तव्यमेतदेवात्र मया सारं प्रकीर्तितम् ।
नाभेरूर्ध्वमधश्चैव गुदश्रोण्योस्तथैव च ॥३४
वलासपित्तवातानां देहे स्थानं प्रकीर्तितम् ।
तथाऽपि सर्वगाश्चैते देहे वायुर्विशेषतः ॥३५

यही नीरोग रहने के लिए कर्तव्य है जिसका सारभूत मैंने कहा । यद्यपि शरीर में नाभि के ऊपर (आमाशय) कफ का स्थान है । नाभि के नीचे (अग्न्याशय तथा पार्श्व में यकृत) पित्त का स्थान है । गुदा तथा श्रोणि के मध्य (पक्वाशय) वायु का स्थान है । तथापि ये तीनों दोष शरीर में व्यापक (सर्वग) हैं । इन्हीं में वायु विशेष रूप से शरीर में सर्वचर है ।३४-३५।

देहस्य मध्ये हृदयं स्थानं तन्मनसः स्मृतम् ।
कृशोऽल्पकेशश्चपलो वहुवाग्विषमानलः ॥३६
व्योमगश्च तथा स्वप्ने वातप्रकृतिरुच्यते ।
अकालपलितः क्रोधी प्रस्वेदी मधुरप्रियः ॥३७
स्वप्ने च दीप्तिमत्प्रेक्षी पित्तप्रकृतिरुच्यते ।
दृढाङ्गः स्थिरचित्तश्च सुप्रभः स्निग्धमूर्धजः ॥३८
शुद्धाम्बुदर्शी स्वप्ने च कफप्रकृतिको नरः ।
तामसा राजसाश्चैव सात्त्विकाश्च तथा स्मृताः ॥३९

शरीर के मध्य में हृदय है वही मन का निवासस्थान है । जो व्यक्ति दुर्बल हो, बाल बहुत कम हो, चञ्चल एवं बहुत बोलने वाला हो, जिसकी जाठर

अग्नि विषम हो और स्वप्न में आकाश में उड़ने वाला हो उसे वात प्रकृति वाला कहते हैं। जिसके असमय में ही बाल पक जाय क्रोधी हो, पसीना बहुत आवे और मधुर आहार का प्रेमी हो, स्वप्न में प्रकाश की वस्तुएँ दीख पड़े उसे पित्त प्रकृति वाला कहा जाता है। जिसके अंग, मजबूत (दृढ़) हों, स्थिर चित्त वाला हो, मुख पर तेज टपकता है—चिकने शिर के बाल हों एवं स्वप्न में शुद्ध जल को देखता हो वह कफ प्रकृति वाला मनुष्य है। ऊपर कहे गये वात प्रकृति वाले को तामस, पित्त प्रकृति वाले को राजस एवं कफ प्रकृति वाले को सात्त्विक कहा जाता है।३६-३९।

मनुष्या मुनिशार्दूल वातपित्तकफात्मकाः।
रक्तपित्तं व्यवायाच्च गुरुकर्मप्रवर्तनैः ॥४०
कदन्नभोजनाद्वायुर्देहे शोकाच्च कुप्यति।
विदाहिनां तथोल्कानामुष्णान्नाध्वनिषेविणाम् ॥४१
पित्तं प्रकोपमायाति भयेन च तथा द्विज।
अत्यम्बुपानगुर्वन्नभोजिनां भुक्तशायिनाम् ॥४२
श्लेष्मा प्रकोपमायाति तथा ये चालसा जनाः।
वाताद्युत्थानि रोगाणि ज्ञात्वा शाम्यानि लक्षणैः ॥४३

हे मुनिशार्दूल ! मनुष्य वात पित्त एवं कफात्मक हैं। अत्यधिक मैथुन से तथा बहुत बड़ा कार्य (सामर्थ्य के बाहर का) करने से रक्त पित्त होता है। शरीर में रूक्ष अन्न के सेवन से एवं शोक से वायु कुपित होती है। उष्ण पदार्थों (मिर्च मसाला आदि) के सेवन से अग्नि के सेवन से और अध्वगमन से और भय से पित्त का प्रकोप होता है। अधिक जल पीने से, गुरु आहार के सेवन से, भोजन के बाद तुरन्त सो जाने से श्लेष्मा का प्रकोप होता है। जो आलसी व्यक्ति होते हैं उन्हें भी श्लेष्मा का प्रकोप होता है। वातादि से उत्पन्न रोगों को लक्षणों द्वारा समझ कर रोगों को शान्त करें।४०-४३।

अस्थिभङ्गः कषायत्वमास्ये शुष्कास्यता तथा।
जृम्भणं रोमहर्षश्च वातिकव्याधिलक्षणम् ॥४४
नखनेत्रशिराणां तु पीतत्वं कटुता मुखे।
तृष्णा दाहोष्णता चैव पित्तव्याधिनिदर्शनम् ॥४५

आलस्यं च प्रसेकश्च गुरुता मधुरास्यता ।
उष्णाभिलाषिता चेति श्लैष्मिकव्याधिलक्षणम् ॥४६

हड्डी का टेढ़ा हो जाना, मुख का स्वाद कषाय होना, मुख सूख जाना, जंभाई आना, रोमांच हो जाना वातिक व्याधि का लक्षण है। नख, नयन और शिराओं का पीला होना, मुख का स्वाद कटु होना, प्यास अधिक लगना, शरीर में दाह एवं गर्मी पैदा होना पित्तजन्य व्याधि का लक्षण है। शरीर में आलस्य बना रहना, मुख में पानी भर आना, शरीर में भारीपन, मुख का मीठापन और उष्ण पदार्थ के सेवन की इच्छा होना, श्लेष्मिक व्याधि का लक्षण है।४४.४६।

स्निग्धोष्णमन्नमभ्यङ्गस्तैलं पानादि वातनुत् ।
आज्यं क्षीरं सिताद्यं च चन्द्ररश्म्यादि पित्तनुत् ॥४७
सक्षौद्रं त्रिफला तैलं व्यायामादि कफापहम् ।
सर्वरोगप्रशान्त्यै स्याद्विष्णोर्ध्यानं च पूजनम् ॥४८

स्निग्ध तथा उष्ण भोजन, तैल की मालिस एवं तैल का पान वायु को नष्ट करता है। घृत दुग्ध मिश्री आदि तथा चन्द्रमा की किरणें पित्तनाशक हैं। मधु के साथ त्रिफला का सेवन, तैल का सेवन और व्यायाम आदि श्लेष्मानाशक है सब रोगों की शान्ति के लिए विष्णु का ध्यान और पूजन हितकर है।४७-४८।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सर्वरोगहरौषधादिकथनं नामाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः । २८०

अथैकाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

रसादिलक्षणम्

धन्वन्तरिरुवाच —

रसादिलक्षणं वक्ष्ये भेषजानां गुणं शृणु ।
रसवीर्यविपाकज्ञो नृपादीन्रक्षयेन्नरः ॥१

रसाः स्वाद्वम्ललवणाः सोमजाः परिकीर्तिताः ।
कटुतिक्तकषायाश्च तथाऽऽग्नेया[1] महाभुज ।।२

धन्वन्तरि बोले—रस आदि का लक्षण कहूँगा। ओषधियों के गुणों को सुनो। रस, वीर्य और विपाक का जानने वाला राजा आदि की रक्षा कर सकता है। हे महाभुज, मधुर अम्ल और लवण रस सोम से उत्पन्न (सोमज-सौम्य) कहे जाते हैं और कटु तिक्त एवं कषाय रस आग्नेय (अग्नि से उत्पन्न) कहे जाते हैं।१-२।

त्रिधा विपाको द्रव्यस्य कट्वम्ललवणात्मकः ।
द्विधा वीर्यं समुद्दिष्टमुष्णं शीतं तथैव च ।।३
अनिर्देश्यप्रभावश्च ओषधीनां द्विजोत्तम ।
मधुरश्च कषायश्च तिक्तश्चैव तथा रसः ।।४
शीतवीर्याः समुद्दिष्टाः शेषास्तूष्णाः प्रकीर्तिताः ।
गुडूची तत्र तिक्ताऽपि भवत्युष्णाऽतिवीर्यतः ।।५

द्रव्य का तीन प्रकार का विपाक होता है—कटु, अम्ल और लवण। दो वीर्य होता है—उष्ण एवं शीत। ओषधियों का प्रभाव अनिर्देश्य-रसादि द्वारा दोषों को शान्त करने के नियम से रहित होता है। मधुर कषाय एवं तिक्त रस शीत वीर्य होता है। शेष रस—कटु लवण और अम्ल उष्ण वीर्य होते है। किन्तु गुर्च तिक्त होने पर भी वीर्य का अतिक्रमण करके उष्ण होती है।४-५।

उष्णा कषायाऽपि तथा पथ्या भवति मानद ।
मधुरोऽपि तथा मांस उष्ण एव प्रकीर्तितः ।।६
लवणो मधुरश्चैव विपाकमधुरौ स्मृतौ ।
अम्लोष्णश्च तथा प्रोक्तः शेषाः कटुविपाकिनः ।।७

हरड़ कषाय होने पर भी उष्ण होती है। हे मानद ! मांस मधुर होने पर भी उष्ण होता है। लवण और मधुर का विपाक मधुर होता है, अम्ल का उष्ण शेष रस का कटु विपाक होता है।६-७।

वीर्यपाके विपर्यस्तप्रभावात्तत्र निश्चयः ।
मधुरोऽपि कटुःपाके यच्च क्षौद्रं प्रकीर्तितम् ।।८

---

१ क. ङ. °ग्नेयाः प्रकीर्तिताः । त्रि° ।

क्वाथयेत्षोडशगुणं पिबेद्द्रव्याच्चतुर्गुणम् ।
कल्पनैषा कषायस्य यत्र नोक्तो विधिर्भवेत् ॥९

वीर्य एवं विपाक के विपरीत प्रभाव अपना कार्य करता है। मधुर रस भी पाक में कटु हो जाता है इसका दृष्टान्त मधु है। काढ़ा बनाने की विधि जिस स्थान पर न कही गई हो वहाँ पर द्रव्य की मात्रा से १६ गुने जल में द्रव्य पकावे और चतुर्गुण के शेष रहने पर काढ़े को छान लें।८-९।

कषायं तु भवेत्तोयं स्नेहपाके चतुर्गुणम् ।
द्रव्यतुल्यं समुद्धृत्य द्रव्ये स्नेहं[1] क्षिपेद्बुधः ॥१०
तावत्प्रमाणं द्रव्यस्य स्नेहपादं ततः क्षिपेत् ।
तोयवर्ज तु यद्द्रव्यं स्नेहद्रव्यं तथा भवेत् ॥११

घृत तैल को पकाने के लिए जो काढ़ा घृत या तैल में डाला जाता है वह स्नेह (घृत या तैल) का चतुर्गुण रहे। काढ़े में से द्रव्य निकाल कर जितना द्रव्य काढ़े में डाला गया हो उतना ही स्नेह की मात्रा होनी चाहिये। उस स्नेह (घृत या तैल) में पकते समय द्रव्य की मात्रा स्नेह से ¼वाँ भाग (कल्क के रूप में) छोड़ दे। जल के सिवा या जो द्रव्य स्नेह में पकने के लिए छोड़ा जायेगा उसे स्नेह द्रव्य कहते हैं।१०-११।

संवर्तितौषधः पाकः स्नेहानां परिकीर्तितः ।
तत्तुल्यता तु लेह्यस्य तथा भवति सुश्रुत ॥१२

स्नेह के पकते समय उसे चलाते रहे जिससे ओषधि का रस स्नेह में मिल जाय इसे स्नेहों का पाक कहते हैं। जिस प्रकार स्नेह पाक किया जाता है उसी तरह अवलेह भी पकाया जाता है। अवलेह में स्नेह की मात्रा जितनी होती है उतनी ही चीनी आदि डालना चाहिए (अवलेह बनाते समय कुछ द्रव्य पकते समय ओर कुछ द्रव्य पकने और ठंडा होने पर छोड़े जाते हैं)।१२।

स्वच्छमल्पौषधं क्वाथं कषायं चोक्तवद्भवेत् ।
अक्षं चूर्णस्य निर्दिष्टं कषायस्य चतुष्पलम् ॥१३
मध्यमैषा स्मृता मात्रा नास्ति मात्राविकल्पना ।
वयः कालं बलं वह्निं देशं द्रव्यं रुजं तथा ॥१४

---

१ छः° हं पिबेद्बु° ।

समवेक्ष्य महाभाग मात्राया: कल्पना भवेत्।
सौम्यास्तत्र रसा: प्रायो विज्ञेया धातुवर्धना: ॥१५

स्वच्छ और थोड़ी ओषधि का क्वाथ बनता है और कषाय पूर्व में कहे हुये की भाँति बनता है। ओषधि के चूर्ण की मात्रा एक तोला ले और कषाय के लिये ४ पल (१६ तोला)। हे महाभाग ! यह मात्रा जो ओषधियों की कही गई है वह मध्यम मात्रा है। मात्रा का निश्चय (विकल्पना) नहीं है। रोगी की उम्र, वल, काल (समय) देश जठराग्नि द्रव्य और रोग का विचार करके मात्रा निश्चय करे। इनमें सौम्य रस प्राय: धातुवर्धक होता है।१३-१५।

मधुरास्तु विशेषेण विज्ञेया धातुवर्धना: ।
दोषाणां चैव धातूनां द्रव्यं समगुणं तु यत् ॥१६
तदेव वृद्धये ज्ञेयं विपरीतं क्षयावहम्।[1]
उपक्रमत्रयं प्रोक्तं देहेऽस्मिन्मनुजोत्तम ॥१७
आहारो मैथुनं निद्रा तेषु यत्न: सदा भवेत्।
असेवनात्सेवनाच्च अत्यन्तं नाशमाप्नुयात् ॥१८

मधुर रस तो विशेष रूप से धातुवर्धक है। दोष एवं धातुओं के जो द्रव्य समगुण होता है वही वृद्धि करता है और जो समगुण नही होता वह हानि करता है। हे मनुजों में उत्तम ! इस देश में ३ उपक्रम कहे गये हैं—आहार, मैथुन और निद्रा। अत: इन तीनों में सदा प्रयत्नशील रहे। इनके असेवन से और सेवन से मनुष्य नाश को प्राप्त होता है।१६-१८।

क्षयस्य बृंहणं कार्यं स्थूलदेहस्य कर्षणम्।
रक्षणं मध्यकायस्य[2] देहभेदास्त्रयो मता: ॥१९
उपक्रमद्वयं प्रोक्तं तर्पणं वाऽप्यतर्पणम्।
हिताशी च मिताशी च जीर्णाशी च तथा भवेत् ॥२०

क्षीण शरीर को वढ़ाने का यत्न (बृंहण) करे और स्थूल शरीर को क्षीण (कर्षण) करने का यत्न करे और मध्यम शरीर (जो न अत्यन्त दुबला हो न अत्यन्त मोटा ही हो) को उसी अवस्था में रखने का यत्न करे। इस प्रकार शरीर के तीन भेद हैं। दो उपक्रम कहा गया है—शरीर को बढ़ाना (तर्पण) तथा शरीर को घटाना (अपतर्पण)। मनुष्य को चाहिये कि वह हित-

१ क. ङ. भयावहम्। २ क. ख. शुष्ककायस्य।

कारक आहार करे एवं आहार को मात्रा से करे तथा पूर्व आहार के जीर्ण होने पर ही आहार करे ।१९-२०।

ओषधीनां पञ्चविधा तथा भवति कल्पना ।
रसः कल्कः शृतः शीतः फाण्टश्च मनुजोत्तम ॥२१
रसश्च पोडको ज्ञेयः कल्क आलोडितादभवेत् ।
क्वथितश्च शृतो ज्ञेयः शीतः पर्युषितो निशि[1] ॥२२
सद्योभिशृतपूतं यत्तत्फाण्टमभिधीयते ।
करणानां शतं चैव षष्टिश्चैवाधिका स्मृता ॥२३

हे मनुजोत्तम ! ओषधियों की कल्पना पाँच प्रकार की होती है—रस, कल्क, शृत, शीत और फाण्ट ओषधियों के दवाने से जो रस निकलता है उसे रस कहते हैं। कल्क उसे कहते हैं—जो द्रव्य चटनी की भाँति पीसकर रख दिया जाय। ओषधियों का जो काढ़ा बनता है उसे शृत कहा है। जिस द्रव्य को सायं भिगोकर रख दे और उसे प्रातः मसल कर छान ले एवं जो जल शेष रह जाता है उसे शृत कहते हैं। जिस द्रव्य को खौलते पानी में उबाल कर तुरन्त छान ले उसे फाण्ट कहते है। ओषधियों को खिलाने के लिये १६० कारण (सहायक-अनुमान) कहे गये है ।२१-२३।

यो वेत्ति स ह्यजेयः स्यात्संबन्धे बाहुशौण्डिकः ।
आहारशुद्धिरग्न्यर्थमग्निमूलं बलं नृणाम् ॥२४
ससिन्धुत्रिफलां चाद्यात्सुष्ठु राज्ञ्यभिवर्णदाम् ।
जाङ्गलं च रसं सिन्धुयुक्तं दधि पयः कणाम् ॥२५
रसाधिकं समं कुर्यान्नरो वाताधिकोऽपि वा ।
निदाघे मर्दनं प्रोक्तं शिशिरे च समं बहु ॥२६

जो व्यक्ति ऊपर लिखी गई बातों को जानता है वह अजेय है इस सम्बन्ध में वह जितहस्त (वाहुशौण्डिक) कहा जाता है। आहार की शुद्धि जठराग्नि की रक्षा के लिए है और मनुष्यों का बल अग्निमूलक ही है। सैंधव नमक के साथ त्रिफला (आंवला, हरड़ और बहेड़ा) को खाने से रानी के समान शरीर का वर्ण खिल जाता है। इसी तरह सैंधव नमक के साथ जंगली पशु-पक्षियों के मांस का रस भी लेने से त्वचा का वर्ण बढ़ जाता है। दधि, दूध

१ छ. निशाम् ।

और मांसरस को एक में मिलावें किन्तु मांसरस अधिक रहे इसमें पीपरि (कणा) का चूर्ण मिलाकर लेने से कितना ही शरीर में वायु अधिक बढ़ा हो लाभ होता है। गर्मी में शरीर पर तेल की थोड़ी मालिश करावे, शिशिर ऋतु में अत्यधिक मालिश करावे।२४-२६।

वसन्ते मध्यमं ज्ञेयं निदाघे मर्दनोल्वणम्।
त्वचं तु प्रथमं मर्द्य मज्जां च तदनन्तरम्॥२७
स्नायूरुधिरदेहेषु अस्थि चातीव मांसलम्।
स्कन्धौ बाहू तथैवेह तथा जङ्घे सजानुनी॥२८
अरिवन्मर्दयेत्प्राज्ञो जत्रु वक्षश्च पूर्ववत्।
अङ्गसंधिषु सर्वेषु निष्पीड्य बहुलं तथा॥२९

और वसन्त में मध्यम रूप (अधिक न कम) से मालिश करावे। गर्मी में मर्दन केवल ऊपर-ऊपर करावे। त्वचा का मर्दन पहले करावे पश्चात् मज्जा का मर्दन करावे। स्नायु रुधिर (रक्त बहाने वाली सिरा एवं धमनियाँ) मांसल हड्डियां, कन्धा, बांह, जांघ और घुटने को शत्रु की भाँति मर्दन करे या करावे। सम्पूर्ण शरीर की संधियों पर मालिश खूब मर्दन करावे।२७-२९।

प्रसारयेदङ्गसंधीन्न च क्षेपेण चाक्रमात्।
नाजीर्णे तु श्रमं कुर्यान्न भुक्त्वा पीतवान्नरः॥३०
दिनस्य तु चतुर्भाग उर्ध्व तु प्रहरार्धके।
व्यायामं (मो) नैव कर्तव्यं (व्यः) स्नायाच्छीताम्बुना
सकृत्॥३१

अंग-संधियों को फैलावे और सिकोड़े किन्तु धीरे-धीरे झटके के साथ नहीं फैलावे और न एकाएक फैलावे किन्तु धीरे ही धीरे समस्त अंग-संधियों का संकोच और प्रसार करे। भोजन के पश्चात् एवं पेय पदार्थ के पीने के पश्चात् व्यायाम न करे एवं अजीर्ण रहने पर भी व्यायाम न करे। दिन के चार भाग के पश्चात् और आधे प्रहर के पूर्व व्यायाम नहीं करना चाहिये। व्यायाम के पश्चात् ठंडे जल से एक वार स्नान करना चाहिये।३०-३१।

वायुर्ष्णं च श्रमं जह्याद्धृदा श्वासं न धारयेत्।
व्यायामश्च कफं हन्याद्वातं हन्याच्च मर्दनम्॥३२

स्नानं पित्ताधिकं हन्यात्तस्यान्ते चाऽऽतपाः प्रियाः ।
आतपक्लेशकर्माऽऽदौ क्षेमव्यायाम[1] उत्तरः ॥३३

उष्ण जल से स्नान करने पर शरीर की थकावट दूर हो जाती है। हृदय से श्वास के वेग को न धारण करे। व्यायाम से कफ तथा मर्दन से वायु का नाश होता है। स्नान से पित्त शान्त होता है। स्नान के बाद धूप प्रिय लगती है। धूप सेवन, कठिन श्रम आदि के पूर्व में ही व्यायाम करना श्रेष्ठ होता है।३२-३३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रसादिलक्षणकथनं नामैकाशीत्यधिक-द्विशततमोऽध्यायः ॥२८१॥

———

अथ द्व्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

वृक्षायुर्वेदः

धन्वन्तरिरुवाच—

वृक्षायुर्वेदमाख्यास्ये प्लक्षश्चोत्तरतः शुभः ।
प्राग्वटो याम्यतस्त्वाम्र आप्येऽश्वत्थः क्रमेण तु ॥१

धन्वन्तरि बोले—वृक्षायुर्वेद को कहूँगा। पाखरि (पाकरि) उत्तर दिशा में, पूर्व में बरगद, दक्षिण में आम्र और पश्चिम में पीपर शुभ है।१।

दक्षिणां दिशमुत्पन्नाः समीपे कण्टकद्रुमाः ।
उद्यानं गृहवासे स्यात्तिलान्वाऽप्यथ पुष्पितान् ॥२
गृह्णीयाद्रोपयेद्वृक्षान्द्विजं चन्द्रं प्रपूज्य च ।
ध्रुवाणि पञ्च वायव्यं हस्तं प्राजेशवैष्णवम् ॥३
नक्षत्राणि तथा मूलं शस्यन्ते द्रुमरोपणे ।
प्रवेशयेन्नदीवाहान्पुष्करिण्यां तु कारयेत् ॥४

दक्षिण दिशा में कांटे वाले वृक्ष (बबूर, बेर आदि) समीप में शुभ हैं। गृह के पास उद्यान होना चाहिये। उद्यान में तिल या फूल वाले वृक्षों का

---

१ छ. °आमितो नराः इ° ।

रोपण करना चाहिये। रोपण के पूर्व ब्राह्मण और चन्द्रमा की पूजा कर ले। वृक्षों के आरोपण, ध्रुव (तीनों उत्तरा रोहणी और रेवती) अभिजित् (यह मुहूर्त का नाम है दोपहर को नित्य आता है) हस्त, पूर्वाषाढ़ा, शतभिष और मूल नक्षत्रों में करना चाहिए। उद्यान में नदी नदी के प्रवाह का प्रवेश करावे अथवा एक बावली बनवा दे।२-४।

हस्तो मघा तथा मैत्रमाद्यं पुष्पं सवासवम्।
जलाशयसमारम्भे वारुणं चोत्तरात्रयम् ॥५
सम्पूज्य वरुणं विष्णुं पर्जन्यं तत्समाचरेत्।
अरिष्टाशोकपुंनागशिरीषाः सप्रियंगवः ॥६
अशोकः कदली जम्बुस्तथा बकुलदाडिमाः।
सायं प्रातस्तु[1] घर्मान्ते शीतकाले दिनान्तरे ॥७
वर्षारात्रौ भुवः शोषे सेक्तव्या रोपिता द्रुमाः ॥

पुष्करणी (जलाशय) बनवाने के लिए हस्त, मघा, अनुराधा, अश्विनी, पुष्य, घनिष्ठा, शतभिषा और तीनों उत्तरा उत्तम माने जाते हैं। जलाशय बनवाने से पूर्व वरुण, विष्णु और पर्जन्य की पूजा करे तब कार्य प्रारम्भ करे। नीम, अशोक, सोपारी, शिरीष, प्रियंगु, कदली (केरा), जामुन, वकुल और अनार के वृक्ष लगावे। वर्षा के प्रारम्भ में सायंकाल और प्रातःकाल वृक्षों का आरोपण करे और शीतकाल में दिन के अन्त में वृक्षारोपण उत्तम होता है। वर्षाकाल में रात्रि में वृक्ष लगाना उत्तम है। पृथ्वी के सूख जाने पर वृक्षों को सीचना चाहिये।५-७½।

उत्तमा विंशतिर्हस्ता मध्यमाः षोडशान्तराः ॥८
स्थानात्स्थानान्तरं कार्यं वृक्षाणां द्वादशावरम्।
विफलाः स्युर्घना वृक्षाः शस्त्रेणाऽऽदौ हि शोधनम् ॥९

वृक्षों का एक से दूसरे से अन्तर बीस हाथ पर उत्तम माना जाता है, सोलह हाथ का अन्तर मध्यम है एवं बारह हाथ का अन्तर अधम माना जाता है। क्योंकि घने वृक्षों में फल नहीं लगते। वृक्षों के आरोपण के पहिले शस्त्र से जमीन पर गड्ढा बनाकर उसकी शुद्धि कर लें।८-९।

---

१ छ. घर्मार्तौ।

विडङ्गघृतपङ्काक्तान्सेचयेच्छीतवारिणा ।
फलनाशे कुलत्थैश्च माषैर्मुग्दैर्यवैस्तिलैः ॥१०
घृतशीतपयः सेकः फलपुष्पाय सर्वदा ।
आविकाजशकृच्चूर्णं यवचूर्णं तिलानि च ॥११

जिस गड्ढे में वृक्ष लगाया जाय उसे जल से भर दे और उसमें वायविडंग का चूर्ण घृत से लपेट कर छोड़ दे इससे भूमि शुद्ध हो जाती है। जिस वृक्ष का फल लगकर झड़ जाता हो उसकी जड़ में कुलथी, उड़द, मूंग, तिल और यव के चूर्ण मे मिश्रित शीतलजल से सिंचन करे तो सदा पुष्प और फल लदा रहेगा। इसी तरह भेडें एवं बकरी की लेंड़ी (गोबर) का चूर्ण, जवा का चूर्ण और तिल का चूर्ण घृत से सान कर शीतल जल में मिला दे और उसमे वृक्ष को सींचने से फल लगते हैं।१०-११।

गोमांसमुदकं चैव सप्तरात्रं निधापयेत् ।
उत्सेकः सर्ववृक्षाणां फलपुष्पादिवृद्धिदः ॥१२
मत्स्याम्भसा तु सेकेन वृद्धिर्भवति शाखिनः ।
विडङ्गतण्डुलोपेतं [1]मात्स्यं मांसं हि दोहदम् ॥१३
सर्वेषामविशेषेण वृक्षाणां रोगमर्दनम् ॥१४

सात रात्रि तक जल में गोमांस रख दे और उससे वृक्ष को सींचने से सभी वृक्ष फल पुष्प से लदे रहते हैं। मछली के धोवन (जल) से सींचने पर वृक्षों की वृद्धि होती है और बायविडंग के चावल तथा मछली का मांस वृक्षों का दोहद है (गर्भित होते है) और सामान्य रूप से सभी वृक्षों के रोगों को नष्ट करने वाला है।१२-१४।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वृक्षायुर्वेदकथनं नाम द्वाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२८२॥

———

१ छ. मत्स्य ।

अथ त्र्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

नानारोगहराण्यौषधानि

धन्वन्तरिरुवाच—

सिंही शटी निशायुग्मं वत्सकं क्वाथसेवनम् ।
शिशोः सर्वातिसारेषु स्तन्यदोषेषु शस्यते ॥१

धन्वन्तरि बोले—व्याघ्री, कचूर, हरदी, दारुहरदी तथा इन्द्रजव का काढ़ा माता के दूध के दोष से उत्पन्न बच्चों के सब प्रकार के अतिसार को दूर करता है ।१।

शृङ्गी सकृष्णातिविषां चूर्णितां मधुना लिहेत् ।
एका चातिविषा काशच्छर्दिज्वरहरी शिशोः ॥२

काकड़ासिंगी, पीपरि, और अतीस को बराबर की मात्रा में लेकर चूर्ण बना ले, उसमें से मात्रा के अनुसार चूर्ण को मधु से बालक को चटाने पर सभी अतिसार दूर हो जाते हैं । (इसकी मात्रा १-६ माशे तक बल के अनुसार है) केवल अतीस ही अकेला बच्चों के कास वमन और ज्वर का नाशक है ।२

बालैः सेव्या वचा साज्या सदुग्धा वाऽथ तैलयुक् ।
यष्टिकां शंखपुष्पीं वा बालः क्षीरान्वितां पिबेत् ॥३
वाग्रूपसंपद्युक्तायुर्मेधा श्रीर्वर्धते शिशोः ।
वचा ह्यग्निशिखावासाशुण्ठीकृष्णानिशागदम् ॥४
सयष्टिसैन्धवं बालः प्रातर्मेधाकरं पिबेत् ।
देवदारुसहाशिग्रुफलत्रयपयोमुचाम् ॥५
क्वाथः सकृष्णामृद्वीकाकल्कः सर्वान्क्रिमीन्हरेत् ।

बच्चों को चाहिये कि बच का सेवन घृत और दुग्ध के साथ करें या कड़वे तेल के साथ सेवन करें । अथवा मुलहठी या शंखपुष्पी दुग्ध के साथ लें तो बच्चे की वाणी, स्वरूप, आयुवृद्धि और श्री की वृद्धि हो जाती है । वच, अग्निशिखा, अड़ूस, सोंठ, पीपरि, हरदी ओषधि को मुलहठी और सैंधवचूर्ण के साथ बालक प्रातःकाल जल से ले तो बुद्धि की वृद्धि होती है । देवदारु,

पृश्निपर्णी, सहिजन, त्रिफला और नागरमोथा का काढा बनाकर उसमें मुनक्का एवं पीपरि का कल्क छोड़कर बालक पीवे तो सब प्रकार की कृमियाँ नष्ट हो जाती हैं।३-५१/२।

त्रिफलाभृङ्गाविश्वानां रसेषु मधुसर्पिषोः ॥६
मेषीक्षीरे च गोमूत्रे सिक्तं रोगे हितं शिशोः।
नासारक्तहरो नस्याद्दूर्वारस इहोत्तमः ॥७
लशुनार्द्रकशिग्रूणां रसः कर्णस्य पूरणम्।
तैलमार्द्रकजात्यं वा शूलनुच्चौष्ठरोगनुत् ॥८
जातीपत्रं फलं व्योषं कवलं मूत्रकं निशा।
दुग्धक्वाथेऽभयाकल्के सिद्धं तैलं द्विजार्तिनुत् ॥९
धान्याम्बुनारिकेलं गोमूत्रं क्रमुकविश्वयुक्।
क्वाथितं कवलं कार्यं जिह्वाव्याधिप्रशान्तये ॥१०

बचों के कृमिरोग में त्रिफला, भंगरैया और सोंठ के काढ़े में मधु एवं घृत मिलाकर देवे तो हितकर होता है। बच्चों का रोग होने पर उसे गोमूत्र में भेड़ का दूध मिलाकर सिचन करने से बच्चों के रोग दूर हो जाते हैं। नासिका से रक्त हो तो दूब के रस का नस्य लेने से बन्द हो जाता है। लहसुन, अदरख और सहिजन का रस कान की पीड़ा में कान में डालने से लाभ होता है। अदरख रस में तैल पकाकर कुल्ला लेने से ओष्ठ रोग नष्ट होता है तथा मर्दन करने से शूल रोग नष्ट होता है। जायफल, मैनफर, सोंठ, मिर्च, पीपरि और हरदी का काढ़ा बनाकर हरड़ का कल्क बनाकर तैल को पका लेवे। उसको मुख में धारण करने से दाँत की पीड़ा दूर होती है। धनिया, सुगन्धवाला, नारियल, गोमूत्र, सुपारी और सोंठ का क्वाथ बनाकर केवल मुख में कुछ देर धारण करने से जिह्वा की समस्त व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं।९-१०।

साधितं लाङ्गलीकल्के तैलं निर्गुण्डिकारसैः।
गण्डमालागलगण्डौ नासयेन्नस्यकर्मणा ॥११
पल्लवैरर्कपूतीकस्नुहीरुग्घातजातिकैः।
उद्वर्तयेत्सगोमूत्रैः सर्वत्वग्दोषनाशनः ॥१२
वाकुची सतिला भुक्ता वत्सरात्कुष्ठनाशिनी।
पथ्या भल्लातकी तैलगुडपिण्डी तु कुष्ठजित् ॥१३

निर्गुण्डी (मेउड़ी) के क्वाथ में करिहारी का कल्क बनाकर सिद्ध किया हुआ तैल के नश्य लेने से गण्डमाला और गलगण्ड नष्ट हो जाता है। त्वचा के रोगों में मदार डिठोहरी और सेंहुड़ के अनेक जाति के पत्रों को गोमूत्र में पीसकर उबटन की तरह मालिस करने से सब प्रकार के (खसरा फोड़ा, फुंसी अपरस आदि) त्वचा के रोग दूर हो जाते हैं। ककुची को तिल के साथ मात्रा से एक वर्ष तक सेवन करने पर कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं। हरड़, भिलावाँ, तेल और गुड़ मिलाकर पिण्डी बना ले। उसकी मात्रा से सेवन करने पर कुष्ठ अच्छे हो जाते हैं।११-१३।

यूथिका वह्निरजनी त्रिफलाव्योषचूर्णयुक्।
तक्रं गुदाङ्कुरे पेयं भक्ष्या वा सगुडाऽभया ॥१४
फलदार्वीविशालाजः क्वाथो धात्रीरसोऽथवा।
पातव्यो रजनीकल्कः क्षौद्राक्षौद्रप्रमेहिणा ॥१५

जूही, चित्रक, हरदी, सोंठ, मिर्च, पीपरि, आंवला, हरड़ और वहेड़े का चूर्ण बनाकर मट्ठे के साथ सेवन करने से बवासीर (अर्श) रोग नष्ट हो जाता है। अथवा हरड़ और गुड़ एक साथ निरंतर लेने से भी अर्शरोग नष्ट हो जाता है। मधुमेह (डाइबिटीज) में मैनफर, दारुहरदी और इन्द्रायण का क्वाथ बनाकर उसमें अथवा आंवले के रस में हरदी का कल्क एवं मधु डालकर पीने से सभी प्रमेह नष्ट हो जाते हैं।१४-१५।

वासागर्भो व्याधिघातः क्वाथ एरण्डतैलयुक्।
वातशोणितहृत्पानात्पिप्पली स्यात्प्लीहाहरी ॥१६
सेव्या जठरिणा कृष्णास्नुक्क्षीरवहुभाविता।
पयो[1] वाऽरुचिहृन्त्यग्निविडङ्गव्योषकल्कयुक् ॥१७

अड़ूसे के काढ़े में एरण्ड तैल मिलाकर पीने से व्याधियाँ नष्ट होती है तथा वातरक्त नष्ट होता है। पीपरि का सेवन करने से प्लीहावृद्धि दूर होती है। उदर रोग में सेंहुड़ के दूध की अनेक भावना देकर पीपरि के सेवन से लाभ होता है। अरुचि रोग में चित्रक, वायविडङ्ग, सोंठ, मिर्च एवं पीपरि का कल्क दूध में मिलाकर पीने से अरुचि दूर हो जाती है।१६-१७।

---

१ छ. वा रुच्यदन्त्याग्नि।

पृश्निपर्णी, सहिजन, त्रिफला और नागरमोथा का काढा बनाकर उसमें मुनक्का एवं पीपरि का कल्क छोड़कर बालक पीवे तो सब प्रकार की कृमियाँ नष्ट हो जाती हैं ।३-५½।

त्रिफलाभृङ्गाविश्वानां रसेषु मधुसर्पिषोः ॥६
मेषीक्षीरे च गोमूत्रे सिक्तं रोगे हितं शिशोः ।
नासारक्तहरो नस्याद्दूर्वारस इहोत्तमः ॥७
लशुनार्द्रकशिग्रूणां रसः कर्णस्य पूरणम् ।
तैलमार्द्रकजात्यं वा शूलनुच्चौष्ठरोगनुत् ॥८
जातीपत्रं फलं व्योषं कवलं मूत्रकं निशा ।
दुग्धक्वाथेऽभयाकल्के सिद्धं तैलं द्विजातिनुत् ॥९
धान्याम्बुनारिकेलं गोमूत्रं क्रमुकविश्वयुक् ।
क्वाथितं कवलं कार्यं जिह्वाव्याधिप्रशान्तये ॥१०

बच्चों के कृमिरोग में त्रिफला, भंगरैया और सोंठ के काढ़े में मधु एवं घृत मिलाकर देवे तो हितकर होता है। बच्चों का रोग होने पर उसे गोमूत्र में भेड़ का दूध मिलाकर सिंचन करने से बच्चों के रोग दूर हो जाते हैं। नासिका से रक्त हो तो दूब के रस का नस्य लेने से बन्द हो जाता है। लहसुन, अदरख और सहिजन का रस कान की पीड़ा में कान में डालने से लाभ होता है। अदरख रस में तैल पकाकर कुल्ला लेने से ओष्ठ रोग नष्ट होता है तथा मर्दन करने से शूल रोग नष्ट होता है। जायफल, मैनफर, सोंठ, मिर्च, पीपरि और हरदी का काढ़ा बनाकर हरड़ का कल्क बनाकर तैल को पका लेवे। उसको मुख में धारण करने से दाँत की पीड़ा दूर होती है। धनिया, सुगन्धवाला, नारियल, गोमूत्र, सुपारी और सोंठ का क्वाथ बनाकर केवल मुख में कुछ देर धारण करने से जिह्वा की समस्त व्याधियाँ नष्ट हो जाती है ।६-१०।

साधितं लाङ्गलीकल्के तैलं निर्गुण्डिकारसैः ।
गण्डमालागलगण्डौ नासयेन्नस्यकर्मणा ॥११
पल्लवैरर्कपूतीकस्नुहीरुग्घातजातिकैः ।
उद्वर्तयेत्सगोमूत्रैः सर्वत्वग्दोषनाशनः ॥१२
वाकुची सतिला भुक्ता वत्सरात्कुष्ठनाशिनी ।
पथ्या भल्लातकी तैलगुडपिण्डी तु कुष्ठजित् ॥१३

निर्गुण्डी (मेउड़ी) के क्वाथ में करिहारी का कल्क बनाकर सिद्ध किया हुआ तैल के नश्य लेने से गण्डमाला और गलगण्ड नष्ट हो जाता है। त्वचा के रोगों में मदार डिठोहरी और सेंहुड़ के अनेक जाति के पत्रों को गोमूत्र में पीसकर उवटन की तरह मालिस करने से सब प्रकार के (खसरा फोड़ा, फुंसी अपरस आदि) त्वचा के रोग दूर हो जाते हैं। ककुची को तिल के साथ मात्रा से एक वर्ष तक सेवन करने पर कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं। हरड़, भिलावाँ, तेल और गुड़ मिलाकर पिण्डी बना ले। उसकी मात्रा से सेवन करने पर कुष्ठ अच्छे हो जाते हैं।११-१३।

यूथिका वह्निरजनी त्रिफलाव्योषचूर्णयुक्।
तक्रं गुदाङ्कुरे पेयं भक्ष्या वा सगुडाऽभया ॥१४
फलदार्वीविशालाजः क्वाथो धात्रीरसोऽथवा।
पातव्यो रजनीकल्कः क्षौद्राक्षौद्रप्रमेहिणा ॥१५

जूही, चित्रक, हरदी, सोंठ, मिर्च, पीपरि, आंवला, हरड़ और वहेड़े का चूर्ण वनाकर मट्ठे के साथ सेवन करने से बवासीर (अर्श) रोग नष्ट हो जाता है। अथवा हरड़ और गुड़ एक साथ निरंतर लेने से भी अर्शरोग नष्ट हो जाता है। मधुमेह (डाइविटीज) में मैनफर, दारुहरदी और इन्द्रायण का क्वाथ बनाकर उसमें अथवा आंवले के रस में हरदी का कल्क एवं मधु डालकर पीने से सभी प्रमेह नष्ट हो जाते हैं।१४-१५।

वासागर्भो व्याधिघातः क्वाथ एरण्डतैलयुक्।
वातशोणितहृत्पानात्पिप्पली स्यात्प्लीहाहरी ॥१६
सेव्या जठरिणा कृष्णास्नुक्क्षीरवहुभाविता।
पयो[1] वाऽरुचिहन्त्यग्निविडङ्गव्योषकल्कयुक् ॥१७

अड़ूसे के काढ़े में एरण्ड तैल मिलाकर पीने से व्याधियाँ नष्ट होती है तथा वातरक्त नष्ट होता है। पीपरि का सेवन करने से प्लीहावृद्धि दूर होती है। उदर रोग में सेंहुड़ के दूध की अनेक भावना देकर पीपरि के सेवन से लाभ होता है। अरुचि रोग में चित्रक, वायविडङ्ग, सोंठ, मिर्च एवं पीपरि का कल्क दूध में मिलाकर पीने से अरुचि दूर हो जाती है।१६-१७।

---

१ छ. वा रुच्यदन्त्याग्नि।

ग्रन्थिकोग्राऽभया कृष्णा विडङ्गाक्ता घृतं[1] तथा[2] ।
मांसं तक्रं ग्रहण्यर्शः पाण्डुगुल्मकृमीन्हरेत् ॥१८
फलत्रयामृतावासातिक्तभूनिम्बजस्तथा ।
क्वाथः समाक्षिको हन्यात्पाण्डुरोगं सकामलम् ॥१६
रक्तपित्ती पिबेद्वासास्वरसं ससितं मधु ।
वरीद्राक्षाबलाशुण्ठीसाधितं वा पयः पृथक् ॥२०

भटेसू की जड़ (ग्रन्थिपर्णी), हरड़, पीपरि और वायविडङ्ग से युक्त घृत, माँस या मट्ठे के सेवन से ग्रहणी, बवासीर, पाण्डुरोग, गुल्म और कृमि रोग नष्ट हो जाता है। त्रिकला, गुर्च, अडूसा, कुटकी तथा चिरायता के क्वाथ में मधु मिलाकर सेवन करने से कामला के सहित पांडु रोग नष्ट हो जाता है। रक्त पित्त का रोगी अडूसे के स्वरस में मधु एवं मिश्री मिलाकर पीवे। या शतावरी, मुनक्का, करिअरा और सोंठ को दूध में पकाकर दूध पीवे।१८-२०।

वरी विदारी पथ्या च बलात्रयं सवासकम् ।
श्वदंष्ट्रामधुसर्पिर्भ्यामालिहेत्क्षयरोगवान् ॥२१
पथ्याशिग्रुकरञ्जार्कत्वक्सारं मधुसिन्धुमत् ।
समूत्रं विद्रधिं हन्ति परिपाकाय तन्त्रजित् ॥२२
त्रिवृता जीवती दन्ती मञ्जिष्ठा शर्वरीद्वयम् ।
तार्क्षजं निम्बपत्रं च लेपः शस्तो भगंदरे ॥२३

क्षय रोग में सतावरी, विदारीकंद, हरड़, बरियरा, गुलशकरी, कंघी की जड़, अड़ूसा तथा गोखरू का चूर्ण बनाकर मधु एवं घृत (जो कि समान मात्रा में रहे) के साथ लेह की तरह चाटे तो क्षय रोग नष्ट हो जाता है। हरड़, सहिजन, डिठोहरी और मदार की त्वचा के चूर्ण में मधु तथा सेंधानमक मिलाकर गोमूत्र में पीसकर लेप करने से फोडा पक जाता है। निसोथ, जीवन्ती, जमालगोटे की जड़, मजीठ, हरदी, दारुहरदी, गारुडी तथा नीम के पत्ते को लेप करने से भगंदर ठीक हो जाता है।२१-२३।

रुग्घातरजनीलाक्षातूर्णाजक्षौद्रसंयुता ।
वासोवर्तिर्व्रणे योज्या शोधनी गतिनाशनी ॥२४

१छ. घृते । २ छ. स्थिता ।

श्यामायष्टिनिशालोध्रपद्मकोत्पलचन्दनैः ।
समरोचैः शृतं तैलं क्षीरे स्याद्व्रणरोहणम् ॥२५
श्रीकार्पासदलैर्भस्म फलोपलवणा निशा ।
तत्पिण्डीस्वेदनं ताम्रे तत्तैलं स्यात्क्षतौषधम् ॥२६

सेहुँड़, हरदी, लाख और मोम में मधु मिलाकर वत्ती बना लें, उस बत्ती का उपयोग व्रण शोधन के लिए व्रण में डालने के लिए होता है। काला निशोथ, मुलहठी, हरदी, लोध, पद्मख, कमल लालचन्दन और काली मिर्च के क्वाथ एवं कल्क से पकाया हुआ तैल घाव (व्रण) पर लगाने से घाव भर जाता है। कपास के पत्तों की राख, मैनफर, सैंधव नमक, हरदी का पिण्ड बनाकर (आग में गर्म करके) स्वेदन करने से कटा हुआ घाव ठीक हो जाता है या इन्हीं ओषधियों के काढ़े और कल्क से ताम्र के पात्र में तैल पकाकर रख लेवे। उसके लगाने से कटा हुआ व्रण ठीक हो जाता है।२४-२६।

कुम्भीसारं पयोयुक्तं वह्निदग्धं व्रणे लिपेत् (?)।
तदेव नाशयेत्सेकान्नारिकेलरजोघृतम् ॥२७
विश्वाजमोदसिन्धूत्थचिञ्चात्वग्भिः समाऽभया।
तक्रेणोष्णाम्बुना वाऽथ पीताऽतीसारनाशनी ॥२८
वत्सकातिविषाविश्वाबिल्वमुस्तशृतं जलम्।
सामे पुराणेऽतीसारे सासृक्शूले च पाययेत् ॥२९

जलकुम्भी के क्षार को दूध में मिलाकर जले हुए घाव में लेप करे तो व्रण ठीक हो जाता है। वही व्रण नारियर की जटा की राख और घृत मिलाकर गर्म-गर्म रखने से भी ठीक हो जाता है। सोंठ, अजमोद, सेंधा नमक और इमली की त्वचा का चूर्ण बनाकर उसी चूर्ण के बराबर हरड़ का चूर्ण मिला ले। उस चूर्ण को मट्ठे या गर्म जल से पीने पर अतिसार रोग नष्ट हो जाता है। इन्द्र जौ, अतीस, सोंठ, बेल की गुद्दी और नागरमोथा डालकर पकाया हुआ जल पान करने से आमयुक्त पुराने अतिसार को विनष्ट कर देता है।२७-२९।

अहंकारदग्धं [1]सुगतं सिन्धुमुष्णाम्बुना पिबेत्।
शूलवानथ वा तद्धि सिन्धुहिङ्गुकणाभया ॥३०

---

१ ख. स्वगत°।

कटुरोहात्कणातङ्कलाजचूर्णं मधुप्लुतम् ।
वस्त्रच्छिद्रगतं वक्त्रे न्यस्तं तृष्णां विनाशयेत् ॥३१
पाठादर्वीजातिदलं द्राक्षामूलवलात्रयैः ।
साधितं समधु क्वाथं कवलं मुखपाकहृत्[1] ॥३२

वरगद की जटा को अंगार पर जलाकर राख वना लें उसमें सेंधा नमक वरावर मिला ले और गर्म जल से पीने पर शूल का नाश होता है अथवा सेंधा नमक, हीग (भून कर ले) पीपरि तथा हरड़ का चूर्ण गर्म जल से पीने पर शूल नष्ट होता है। कुटकी, पीपरि, धान के लावे के चूर्ण को मधु से मिलाकर मुख में धारण करने से तृष्णा रोग शान्त हो जाता है। पाढ़, दारु-हरदी, चमेली के पत्ते, मुनक्का, वरिअरा, गंगेरन, (गुलशकरी) एवं कंघी के जड़ से क्वाथ वना ले उसमें मधु मिलाकर पीने से अथवा ऊपर कही हुई ओषधियों को पीसकर मधु मिलावे। इसकी गोली वनाकर मुख में धारण करने से मुखपाक अच्छा हो जाता है।३०-३२।

कृष्णातिविषतिक्तेन्द्रदारुपाठापयोमुचाम् ।
क्वाथो मूत्रे शृता क्षौद्री[2] सर्वकण्ठगदापहा ॥३३
पथ्यागोक्षुरदुःस्पर्शराजवृक्ष[3] शिलाकृतः ।
कषायः समधुः पीतो मूत्रकृच्छ्रं व्यपोहति ॥३४
वंशत्वग्वरुणक्वाथः शर्कराश्मविघातनः ।
शाखोटक्वाथसक्षौद्रक्षीराशी श्लीपदी[4] भवेत् ॥३५

पीपरि, अतीस, कुटकी, देवदारु, पाढ़ और नागरमोथा का काढ़ा तैयार कर ले उसमें गोमूत्र गर्म करके डाल देवे और ठंडा होने पर मधु डालकर उस काढ़े को पीने से गले के सभी रोग दूर हो जाते हैं। हरड़, गोखरू, जवासा, अमलतास और शिलाजीत के काढ़े को मधु मिलाकर पीने से मूत्रकृच्छ्र दूर हो जाता है (पेशाब होने की कठिनाई नष्ट हो जाती है)। वाँस के छाल और वरुण ओषधि का काढ़ा शर्करा तथा पथरी रोग को दूर करता है। सिहोंड़ के

---

१ क. ङ. °कक्रत् । २ ङ.° । द्री वार्चकश्च ग° । ३ छ. °लाभधाम् । क° । ४ क. ङ. पिवेत् ।

वृक्ष का काढ़ा मधु के साथ पीवे और केवल दुग्धाहार पर रहे तो हाथी पाँव (श्लीपद) दूर हो जाता है।३३-३५।

माषार्कत्वक्पयस्तैलं मधुसिक्तं च सैन्धवम्।
पादरोगं हरेत्सर्पिर्जलकुक्कुटजं तथा ॥३६
शुण्ठीसौवर्चलाहिङ्गुचूर्णं शुण्ठीरसैर्घृतम्।
रुजं हरेदथ क्वाथो विद्धि बद्धाग्निसाधने ॥३७
सौवर्चलाग्निहिङ्गूनां सदीप्यानां रसैर्युतम्।
विड्दीप्यक (सु) युक्तं वा तक्रं गुल्मातुरः पिबेत् ॥३८

उड़द, मदार का पत्ता और दूध, तेल, सेंधा नमक में मधु मिलाकर लगाने से पैर के रोग नष्ट हो जाते हैं। इसी तरह जल में चलने वाली मुर्गी, (बत्तख) के अण्डे से संयुक्त कर घृत पकाकर पैर में लेप करने से पैर के रोग दूर हो जाते हैं। सोंठ, सोंचर तथा हींग का चूर्ण, अजीर्ण जन्य पीड़ा को दूर करता है। सोंठ के काढ़े में घृत मिलाकर पीने से भी मंदाग्नि दूर हो जाती है। गुल्म रोग से पीड़ित रोगी चित्रक तथा अजवायन का क्वाथ बनाकर उसमें मट्ठे के साथ सोंचर, विड्नमक, सेंधा नमक और भूनी हींग का प्रक्षेप डालकर पीवे।३६-३८।

धात्रीपटोलमुद्गानां क्वाथः साज्यो विसर्पहा।
शुण्ठीदारुनवाक्षीरक्वाथो मूत्रान्वितोऽपरः ॥३९
सव्योषायोरजः क्षारः फलक्वाथश्च शोथहृत्।
गुडशिग्रुत्रिवृद्धिश्च सैन्धवानां रजोयुतः ॥४०
त्रिवृताफलजः क्वाथः सगुडः स्याद्विरेचनः।
वचाफलकषायोत्थं पयो वमनकृद्भवेत् ॥४१

आँवला, परवल का पत्ता और मूंग का काढ़ा बनाकर उसमें घी मिलाकर पीने से विसर्प (खुजली) रोग दूर हो जाता है। दूसरा योग यह है कि सोंठ, देवदारु, पथरी और दुधिया के काढ़े में गोमूत्र मिलाकर पीवे। सोंठ, मिर्च, पीपरि, लोहभस्म और यवक्षार को मैनफर के काढ़े में मिलाकर पीने से शोथ रोग नष्ट होता है। तीसरा योग यह है कि सहिजन और निसोथ का काढ़ा बनाकर उसमें गुड़ तथा सेंधा नमक मिलाकर पीवे। निशोथ और मैनफर के काढ़े को गुड़ के साथ पीने से दस्त आते हैं। वच और मैनफर के काढ़े को दूध के साथ पीने से वमन होता है।३९-४१।

त्रिफलायाः पलशतं[1] पृथग्भृङ्गरजोन्वितम् ।
विडङ्गं लोहचूर्णं च दशभागसमन्वितम् ॥४२
शतावरी गुडूच्यग्निपलानां[2] पञ्चविंशतिः ।
मध्वाज्यतिलजैर्लिह्याद्वलीपलितवर्जितः ॥४३
शतमब्दं हि जीवेत सर्वरोगविवर्जितः ।
त्रिफला सर्वरोगघ्नी समधुः शर्करान्विता ॥४४

चार सौ तोला त्रिफला और उतना ही भंगरैया लेकर उसमें (४०) चालीस तोला वायविडंग का चूर्ण और चालीस तोला लोहभस्म, शतावरी, गुड़ूच और चित्रक सौ-सौ तोला मिलाकर उसका काढ़ा वना ले पश्चात् चीनी की चासनी देकर अवलेह वना ले उसमे घृत और तिल का तैल खूब पकाकर सम भाग में मिला दे ठंडा होने पर मधु मिलाकर चाटे तो उस मनुष्य का न तो अंग शिथिल होता है और न बाल ही पकता है। सौ वर्ष तक वह जीवित रहता है उसे कोई रोग नहीं होता है। मधु एवं शर्करा मिलाकर त्रिफला के सेवन से सभी रोग नष्ट हो जाते हैं।४२-४४।

सितामधुघृतैर्युक्ता सकृष्णा त्रिफला तथा ।
पथ्या चित्रकशुण्ठचश्च गुडूची मुशलीरजः ॥४५
सगुडं भक्षितं रोगहरं त्रिशतवर्षकृत् ।

त्रिफला और पीपरि को घृत, मधु और मिश्री के साथ सेवन करने से, इसी प्रकार हरड़, चिते की जड़, सोंठ, गुर्च, मुसली के चूर्ण को गुड़ के साथ सेवन करने से तीन सौ वर्ष की आयु हो जाती है तथा सब रोग नष्ट हो जाते हैं।४५-४५½।

किञ्चिच्चूर्णं जपापुष्पं पीडितं[3] विसृजेज्जले ॥४६
तैलं भवेद्घृताकारे किञ्चिच्चूर्णा जलान्वितम् ।
धूपार्थं दृश्यते चित्रं वृषदंशजरायुना ॥४७
पुनर्माक्षिकधूपेन दृश्यते तद्यथा पुरा ।
कर्पूरजलूकाभेकतैलं पाटलिमूलयुक् ॥४८

१ छ॰ ॰ङ्गजभावित॰ । २ छ॰ ॰ना शतवि॰ । ३ छ॰ पिण्डितं ।

पिष्ट्वाऽऽलिप्य पदे द्वे च चरेदङ्गारके नरः ।
तृणोत्थानादिकं व्यूह्य दर्शयन्वै कुतूहलम् ।।४६
विषग्रहरुजध्वंसक्षुद्रं कर्म च कामिकम् ।
तत्ते षट्कर्मकं प्रोक्तं सिद्धिद्वयसमाश्रयम् ।।५०
मन्त्रध्यानौषधिकथामुद्रेज्या यत्र मुष्टयः ।
चतुर्वर्गफलं प्रोक्तं यः पठेत्सदिवं व्रजेत् ।।५१

देवीफूल के चूर्ण को मर्दित करके जल में छोड़े और उस जल तथा चूर्ण को तेल में छोड़े तो तेल घृत के समान हो जाता है। वृषदंश के वायु के साथ धूप देने से कुछ चित्र सा दीखता है। पुनः मधु के धूप से सब वस्तुयें पूर्व की तरह दीख पड़ने लगती है। कपूर, जोंक, मेढक का तैल और पाढ़ वृक्ष के मूल की छाल को पीसकर पैरों में लेपकर यदि अंगारे पर भी चले तो उसके पैर आग से नहीं जलते। तृण का उठाना आदि कुतूहल को दिखाता हुआ विष को पी जाना रोग को नष्ट करना छोटे बड़े इच्छित कार्यों को करना आदि षट् कर्म कहा जाता है। यह दो प्रकार की सिद्धि के अधीन है। (सिद्धि आठ होती है जिनमें दो प्रकार की सिद्धियों से इस प्रकार का चमत्कार दिखाया जा सकता है। अणिमा, महिमा, गरिमा आदि आठ सिद्धियों का वर्णन सांख्य में पूर्णरूप से है)। मन्त्र, ध्यान ओषधि और कथा का व्यवहार जहाँ पर होता है वहाँ चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) फल मिलता है। जो इन वातों को पढ़ता है वह स्वर्ग जाता है।४६-५१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानारोगहरौषधकथनं नाम त्र्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।२८३

———

अथ चतुरशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मन्त्ररूपौषधकथनम्

धन्वन्तरिरुवाच—

आयुरारोग्यकर्तार ओंकाराद्याश्च नाकदाः ।
ओंकारः परमो मन्त्रस्तं जप्त्वा चामरो भवेत् ।।१

धन्वन्तरि बोले—आयु और आरोग्य प्रदान करने वाले तथा स्वर्ग देने वाले ओंकार आदि हैं। इसमें ओंकार प्रथम मन्त्र है जिसे जपकर मनुष्य अमर हो जाता है।१

गायत्री परमो मन्त्रस्तं जप्त्वा भुक्तिमुक्तिभाक्।
ॐ नमो नारायणाय मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥२
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय सर्वदः।
ॐ हरूं नमो विष्णवे मन्त्रोऽयं चौषधं परम् ॥३

गायत्री परम मन्त्र है, उसे जपकर मनुष्य भोग और मोक्ष दोनों को प्राप्त करता है। 'ॐ नमो नारायणाय' यह मन्त्र सभी प्रयोजनों का साधक है। 'ॐ' नमो भगवते वासुदेवाय' यह मन्त्र सब कुछ देने वाला है। 'ॐ' हरूँ नमो विष्णवे' यह मन्त्र परम ओषधि है।२-३।

अनेन देवा ह्यसुराः सश्रियो नीरुजोऽभवन्।
भूतानामुपकारश्च तथा धर्मो महौषधम् ॥४
धर्मःसद्धर्मकृद्धर्मी ह्येतैर्धर्मैश्च निर्मलः।
श्रीदः श्रीशः श्रीनिवासः श्रीधरः श्रीनिकेतनः ॥५
श्रियः पतिः श्रीपरमो ह्येतैः श्रियमवाप्नुयात्।

इससे देवता और असुर नीरोग एवं श्रीयुक्त हुये। इससे प्राणियों का उपकार होता है और धर्म होता है। यह महौषध है। धर्म तथा सद्धर्म करने वाला धर्मी इन धर्मो से निर्मल होता है—'श्रीदः श्रीशः श्रीनिवासः श्रीधरः श्रीनिकेतनः श्रियः पतिः श्रीपरमः, इनसे लक्ष्मी प्राप्त होती हैं।४-५½।

कामी कामप्रदः कामः कामपालस्तथा हरिः ॥६
आनन्दो माधवश्चैव नाम कामाय वै हरेः।
समः परशुरामश्च नृसिंहो विष्णुरेव च ॥७
त्रिविक्रमश्च नामानि जप्तव्यानि जिगीषुभिः।
विद्यामभ्यस्यतां नित्यं जप्तव्यः पुरुषोत्तमः ॥८

"कामी कामप्रदः, कामः कामपालः और हरिः आनन्दः माधवः' इस हरि के नाम के जपने से कामनाओं की सिद्धि होती है। युद्ध में जय का

इच्छुक इस मन्त्र को जपे—'रामः परशुरामः, नृसिंहः, विष्णुः त्रिविक्रमः'। विद्या प्राप्त करने का इच्छुक पुरुषोत्तम को जपे।६-८।

दामोदरो वन्धहरः पुष्कराक्षोऽक्षिरोगनुत्।
हृषीकेशो भयहरो जपेदौषधकर्मणि ॥९
अच्युतं चामृतं मन्त्रं सङ्ग्रामे चापराजितः।
जलतारे नारसिंहं पूर्वादौ क्षेमकामवान् ॥१०
चक्रिणं गदिनं चैव शार्ङ्गिणं खड्गिनं स्मरेत्।
[1]सर्वेशमजितं भक्त्या व्यवहारेषु संस्मरेत् ॥११

वँधा हुआ पुरुष दामोदर के नाम का जप करें, आंख का रोगी 'पुष्कराक्ष' को जपे। हृषीकेश को भय दूर करने के लिए जपे। संग्राम में अपराजित मन्त्र को जपे। जल के तैरने में नारसिंह को जपे। तथा कल्याण चाहने वाला चक्री गदी शार्ङ्गी और खड्गी का स्मरण करे। व्यवहार में सर्वेश अजित का स्मरण करे।९-११।

नारायणं सर्वकाले नृसिंहोऽखिलभीतिनुत्।
गरुडध्वजश्च विषहृद्वासुदेवं सदा जपेत् ॥१२
धान्यादिस्थापने स्वप्ने ह्यनन्ताच्युतमीरयेत्।
नारायणं च दुःस्वप्ने दाहादौ जलशायिनम् ॥१३
हयग्रीवं च विद्यार्थी जगत्सूतिं सुताप्तये।
बलभद्रं शौर्यकाम एकं नामार्थसाधकम् ॥१४

सदा नारायण का स्मरण करे। सर्व प्रकार के भयों के उपस्थित होने पर नृसिंह का स्मरण करे। गरुडध्वज विष हरने के लिये स्मरण किये जाते हैं। हमेशा वासुदेव का जप करे। धान्य आदि के रखने में, स्वप्न में अनन्त और अच्युत का नाम जपे। दुःस्वप्न में नारायण का, दाह आदि में जलशायी का नाम जपे। विद्यार्थी हयग्रीव का जाप करे तथा पुत्रार्थी जगत्सूति का जाप करे। शौर्य काम के लिए बलभद्र का नाम अर्थसाधक है।१२-१४।

इत्यादि महापुराण आग्नेये मन्त्ररूपौषधकथनं नाम चतुरशीत्यधिक-द्विशततमोऽध्यायः २८४

---

१ सर्वेश......संस्मरेत् छ. पुस्तके नास्ति।

अथ पञ्चाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मृतसंजीवनकरसिद्धयोगः

धन्वन्तरिरुवाच—

सिद्धयोगान्पुनर्वक्ष्ये मृतसंजीवनीकरान् ।
आत्रेयभाषितान्दिव्यान्सर्वव्याधिविमर्दनान् ॥१

धन्वन्तरि बोले—मरे हुए को जीवित करने वाले सिद्ध योगों को पुनः कहूँगा जो कि आत्रेय द्वारा कहे हुये सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करने वाले दिव्ययोग है ।१।

आत्रेय उवाच—

विल्वादिपञ्चमूलस्य क्वाथः स्याद्वातिके ज्वरे ।
पावनं पिप्पलीमूलं गुडूची विश्वजोऽथ वा ॥२

आत्रेय बोले—वायु से उत्पन्न ज्वर में बेल की गुद्दी, आलू, अरणी, पाठ और गम्भारी के छाल का काढ़ा देना चाहिए । या पिपरामूल, गुर्च तथा सोंठ का काढ़ा दोषपाचनार्थ देना उचित है ।२

आमलक्यभया कृष्णा वह्निः सर्वज्वरान्तकः ।
विल्वाग्निमन्थस्योनाककाश्मर्यः पाटला स्थिरा ॥३
त्रिकण्टकं पृश्निपर्णीबृहतीकण्टकारिका ।
ज्वराविपाकपार्श्वार्तिकाशनुत्कुशमूलकम् ॥४
गुडूची पर्पटी मुस्तं किरातं विश्वभेषजम् ।
वातपित्तज्वरे देयं पञ्चभद्रमिदं स्मृतम् ॥५

आँवला, हरड़, पीपरि और चित्रक सर्वज्वरनाशक है । बेल की गुद्दी अरणी, अरलू, गंभारी, पाठ, शालपर्णी, गोखरू, पृश्निपर्णी, भटकटैया और वनभाँठा (ये दश ओषधि दशमूल कहलाती हैं) इन दशों ओषधियों को तथा कुश की जड़ को समान मात्रा में लेकर काढ़ा बनावे, उस काढ़े को ज्वर अरुचि, अजीर्ण, पसलियों का शूल एवं कास में पिलावे तो सब रोग दूर हो जाते हैं । गुर्च, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, चिरायता और सोंथ पंचभद्र कहा जाता है । इससे बने काढ़े को वातपित्त ज्वर में पिलाना चाहिये ।३-५।

त्रिविद्विशालाकटुकात्रिफलारग्वधैः कृतः ।
'सक्षारो भेदनः क्वाथः पेयः सर्वज्वरायतः ॥६
देवदारुबलावासात्रिफलाव्योषपद्मकैः ।
सविडङ्गैः सितातुल्यं तच्चूर्णं पञ्चकाम (स) जित् ॥७
दशमूलीशटीरास्नापिप्पलीबिल्वपौष्करैः ।
शृङ्गीतामलकीभार्गीगुडूचीनागवल्लिभिः ॥८
यवागूं विधिना सिद्धं कषायं वा पिबेन्नरः ।
काशहृद्ग्रहणीपार्श्वहिक्काश्वासप्रशान्तये ॥९

निशोथ, इन्द्रायण, कुटकी, त्रिफला (सोंठ मिर्च पीपरि) और अमलतास से बने काढ़े में यवक्षार मिलाकर देने से वह दोषों का भेदन करता है और सम्पूर्ण ज्वर नाशक है। देवदारु, वरियरा, अडूसा, त्रिफला (आँवला हरड़ बहेड़ा) व्योष (सोंठ मिर्च पीपरि) पद्माख और वायविडङ्ग के काढ़े में मिश्री मिलाकर पिलाने से पाँच प्रकार के कास अच्छे हो जाते है। दशमूल, कचूर, रास्ना, पीपरि, वेल की छाल, पुष्करमूल, काकड़ासिंगी, भूमि आँवला, भारंगी, गुर्च और पान की जड़ का काढ़ा या उसी काढ़े से लपसी बनाकर लेने से कास रोग, हृदय का रोग, ग्रहणी रोग पसली का शूल (प्लूरसी) हिक्का एवं श्वास रोग शान्त हो जाता है।६-९।

मधुकं मधुना युक्तं पिप्पलीं शर्करान्विताम् ।
नागरं गुडसंयुक्तं हिक्काघ्नं लवणत्रयम् ॥१०
कारव्यजाजी मरिचं द्राक्षा वृक्षाम्लदाडिमम् ।
सौवर्चलं गुडं क्षौद्रं सर्वारोचकनाशनम् ॥११

मुलहठी (जेठी मधु) को मधु से पीपरि को मिश्री से, सोंठ को गुड़ से मिलाकर लेने से हिक्का नष्ट हो जाती है। सेंधा नमक, समुद्री नमक और सोंचर तथा सौंफ काला जीरा, कालीमिर्च, मुनक्का, कोंकम (दाक्षिणात्यों की खटाई होती है) अनार का दाना, काला नमक, गुड़ और मधु मिलाकर चाटने से सब प्रकार का अरोचक दूर हो जाता है।१०-११।

---

१ छ.° संस्कारो ।

शृंगवेररसं चैव मधुना सह पाययेत् ।
अरुचिश्वासकासघ्नं प्रतिश्यायकफान्तकम् ॥१२
वटं शृङ्गीशिलालोध्रदाडिमं मधुकं मधु ।
पिबेत्तण्डुलतोयेन च्छर्दितृष्णानिवारणम् ॥१३
गुडूची वासकं लोध्रं पिप्पलीक्षौद्रसंयुतम् ।
कफान्वितं जयेद्रक्तं तृष्णाकासज्वरापहम् ॥१४

अदरख के स्वरस को उष्ण करके जब ठण्डा हो जाय तो उसे मधु के साथ लेने से अरुचि, श्वास, कास और बिगड़ा हुआ जुकाम ठीक हो जाता है। वट का अंकुर, काकड़ासिंगी, इलायची, लोध, अनार और मुलहठी के चूर्ण को चावल के पानी में मधु मिलाकर पिलाने से उलटी का आना और प्यास का लगना दूर हो जाता है। गुर्च, अडूस, लोध और पीपरि के चूर्ण को मधु से लेने पर कफ युक्त रक्त आता हो तो उसकी शान्ति हो जाती है और तृषा (प्यास) कास एवं ज्वर नष्ट हो जाता है।१२-१४।

वासकस्य रसस्तद्वत्समधुस्ताम्रजो[1] रसः ।
शिरीषपुष्पसुरसभावितं मरिचं हितम् ॥१५
सर्वार्तिनुन्मसूरोऽथ पित्तामुक्तण्डुलीयकम् ।
निर्गुण्डीसारिवाशेलुरङ्कोलश्च विषापहः ॥१६
महौषधामृताक्षुद्रापुष्करग्रन्थिकोद्भवम् ।
पिबेत्कणायुतं क्वाथं मूर्च्छायां च मदेषु च ॥१७

अडूस का स्वरस या ताम्र भस्म को मधु से लेने पर पूर्ववत् लाभदायक हैं। सिरसा के फूल के स्वरस से भावित मिर्च भी वही कार्य करती है। मसूर सब रोगों का नाशक है। चौलाई पित्तनाशक है। मेउड़ी, अनन्तमूल, शेलु और ढेरा सब विषों का नाशक है। सोंठ, गुर्च, भटकैया, पुष्करमूल और भटेसू के काढ़े में पीपरि का चूर्ण मिलाकर पीने से मूर्च्छा तथा मद रोग नष्ट हो जाता है।१५-१७।

हिङ्गुसौवर्चलव्योषैर्द्विपलांशैर्घृ ताढकम् ।
चतुर्गुणे गवां मूत्रे सिद्धमुन्मादनाशनम् ॥१८
शङ्खपुष्पीवचाकुष्ठैः सिद्धं ब्राह्मीरसैर्युतम् ।
पुराणं हन्त्यपस्मारं सोन्मादं मेध्यमुत्तमम् ॥१९
पञ्चगव्यं घृतं तद्वत्कुष्ठनुच्चाभयायुतम् ।

१ ङ °रस्तारजो ।

पटोलत्रिफलानिम्वगुडूचीधावनीवृषैः ॥ २०
सकरञ्जैर्घृतं सिद्धं कुष्ठनुद्वज्रकं स्मृतम् ।

हींग, कालानमक और सोंठ मिर्च तथा पीपरि को आठ तोला ले चौगुना गोमूत्र ले तथा चौथाइया घृत लेकर पका ले उसे पागल रोगी को पिलाने से पागलपन नष्ट हो जाता है। शंखपुष्पी, वच और कूठ के कल्क से एवं ब्राह्मी के स्वरस में पकाया घृत पुरानी मृगी रोग तथा पागलपन को नष्ट करता है यह उत्तम बुद्धिवर्धक है। पञ्चगव्य (गोवर; गोमूत्र, दूध, दधि और घृत) एवं घृत का हरड़ के साथ सेवन करने से कुष्ठ नष्ट हो जाता है। परवर का पत्ता, आँवला, हरड़, बहेड़ा, नीम की छाल, गुरुचि शालपर्णी, अड़ूस और करंज (लता करंज के फल) के काढ़े एवं कल्क से सिद्ध हुआ घृत कुष्ठ नाशक है। इसे वज्रक घृत की संज्ञा दी गई है।१८-२०१/२।

निम्बं पटोलं व्याघ्री च गुडूची वासकं तथा ॥२१
कुर्याद्दशपलान्भागानेकैकस्य स (सु) कुट्टितान् ।
जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत्पादावशेषितम् ॥२२
घृतप्रस्थं प्रचेत्तेन त्रिफलागर्भसंयुतम् ।
पञ्चतिक्तमितिख्यातं सर्पिः कुष्ठविनाशनम् ॥२३

नीम की छाल, परवर का पत्ता, भटकैया, गुरुचि तथा अड़ूसा को बरावर बराबर मिलाकर चालीस तोला लेकर अच्छी तरह कूट ले और उस ओपधि को सोलह सेर पानी में पका ले जब चार सेर जल शेष रह जाय तो छान ले। इस काढ़े में त्रिफला (आँवला हरड़ बहेड़ा) का कल्क (पानी में चटनी के समान पिसी ओषधि की संज्ञा कल्क है) देकर और एक सेर घृत डालकर पका ले उस घृत को कुष्ठी को खिलाने से कुष्ठ का विनाश हो जाता है। इस घृत का नाम पञ्चतिक्त है।२१-२३।

अशीतिं वातजान्रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ।
विंशतिं श्लैष्मिकान्कासपीनसार्शोव्रणादिकान् ॥२४
हन्त्यन्यान्योगराजोऽयं यथाऽर्कस्तिमिरं खलु ।

अस्सी वात रोगों को चालीस पित्त रोगों को और कास, पीनस, अर्श, व्रण आदि चालीस कफ जन्य रोगों का नाश करता है। यह योगराज अन्य

रोगों को भी नष्ट करता है। जिस प्रकार सूर्य अन्धकार का नाश करता है वैसे ही यह रोगों का नाश करता है।२४-२४½।

त्रिफलायाः कषायेण भृङ्गराजरसेन च ॥२५
व्रणप्रक्षालनं कुर्यादुपदंशप्रशान्तये।
पटोलदलचूर्णेन दाडिमत्वग्रजोऽथवा ॥२६
गुण्डयेच्च गजेनापि त्रिफलाचूर्णकेन च।
त्रिफलायोरजोयष्टिमार्कवोत्पलमाग्चैः ॥२७
ससैन्धवैः पचेत्तैलमभ्यङ्गाच्छर्दिकापहम्।
सक्षीरान्मार्कवरसान्द्विप्रस्थमधुकोत्पलैः ॥२८
पचेत्तु तैलकुडवं तन्नस्यं पलितापहम्।
निम्बं पटोलं त्रिफला गुडूची खदिरं वृषम् ॥२९
भूनिम्बपाठात्रिफलागुडूचीरक्तचन्दनम्।
योगद्वयं ज्वरं हन्ति कुष्ठ (व्रणमसूरिकाः[1] ॥३०

त्रिफला के काढ़े से तथा भंगरैया के रस से घाव को धोना चाहिये। इससे गर्मी (सिफलिस) का घाव अच्छा हो जाता है। अथवा गर्मी के घाव पर परवल के पत्ते के बारीक चूर्ण अथवा अनार के छिलके का चूर्ण घाव पर गज पीपरि और त्रिफला के चूर्ण का घाव पर छिड़कन करे। त्रिफला, लोहभस्म, मुलहठी, केंवाच, कमल, काली मिर्च और सेंधा नमक के काढ़ा तथा कल्क से पके हुये तेल की मालिश से वमन शान्त हो जाता है। दो सेर केंवाच का रस तथा दूध में मुलहठी तथा कमल का कल्क बना के एक पाव तेल को पकावे। उस तेल का नस्य लेने से बाल का पकना रुक जाता है और पका हुआ काला हो जाता है। दो निम्नलिखित योग कुष्ठ तथा बड़ी माता या छोटी माता के ज्वर तथा व्रण को नष्ट कर देता है—

(१) नीम के भीतर की छाल, परवल का पत्ता, त्रिफला (हरड़, वहेड़ा, आँवला) गुरुचि, खैर की लकड़ी और अड़सा।

(२) चिरायता, पाढ़, त्रिफला, गुरुचि और लाल चन्दन।२५-३०।

पटोलं त्रिफला चैव गुडूचीमुस्तचन्दनैः।
सदूर्वा रोहिणी पाठा रजना सदुरालभा ॥३१
कषायोऽयं ज्वरं हन्ति कुष्ठ) विस्फोटकादिजम्।
पटोल मृतभूनिम्बवासारिष्टकपर्पटैः ॥३२

---

१ व्रणमसूरिकाः.......हन्ति कुष्ठ छ. पुस्तके नास्ति।

खदिराब्जयुतैः क्वाथो विस्फोटज्वरशान्तिकृत् ।
दशमूली छिन्नरुहा पथ्या दारु पुनर्नवा ॥३३
ज्वरविद्रधिशोथेषु शिग्रुविश्वजिता हिताः ।
मधूकनिम्बपत्राणां लेपः स्याद्व्रणशोधनः ॥३४

परवल का पत्ता, त्रिफला, गुरुचि, नागरमोथा और चन्दन अथवा दूर्वा, रोहिणी, पाठा, हरदी, जवासा का काढ़ा ज्वर, कुष्ठ एवं ज्वर के स्फोट (माता) को दूर करता है। परवल का पत्ता, गुरुची, चिरायता, अडूस, नीम की छाल, पित्तपापड़ा, खैर की लकड़ी और नागरमोथा का काढ़ा विस्फोट (माता के ज्वर) को शान्त करता है। दशमूल, गुरुचि, हरड़, देवदारु, पुनर्नवा का क्वाथ ज्वर और विद्रधि को शान्त करता है। सहिजन की छाल एवं सोंठ भी माता के ज्वर में हितकर है मुलहठी तथा नीम के पत्ते का व्रण पर लेप हितकर होता है। इससे व्रण शुद्ध हो जाता है।३१-३४।

त्रिफला खदिरो दार्वी न्यग्रोधातिबलाकुशाः ।
निम्बमूलकपत्राणां कषायाः शोधने हिताः ॥३५
करञ्जारिष्टनिर्गुण्डीरसो हन्याद्व्रणकृमीन् ।
धातकीचन्दनवलासमङ्गामधुकोत्पलैः ॥३६
दार्वीमेदोन्वितैर्लेपः ससर्पिर्व्रणरोपणः ।
गुग्गुलत्रिफलाव्योषसमांशैर्घृतयोगतः ॥३७
नाडीदुष्टव्रणं शूलं भगंदरमुखं हरेत् ।

व्रणशोधन के लिये त्रिफला, खैर की लकड़ी, दारुहरदी, वरगद की छाल, कंघी, कुश, नीम और मूली के पत्रों का काढ़ा हितकर है। डिढोहरी, नीम और मेउड़ी के पत्तों का रस व्रण के कृमियों को नष्ट करते है। धव का फूल, लाल चन्दन, वरिअरा, लज्जालु, मुलहठी, कमल, दारुहरदी, मेदा लकड़ी को घिस कर उसमें घृत, मिलाकर व्रण पर लेप करने से घाव भर जाताहै। गुग्गुल, त्रिफला और व्योष (सोंठ मिर्च, पीपरि) को बरावर की मात्रा में लेकर पीस ले उसमें घृत मिलाकर लेप करने से नाडी व्रण-नासूर, दुष्ट व्रण, शूल तथा भगंदर को नष्ट करता है।३५-३७½।

हरीतकीं मूत्रसिद्धां सतैललवणान्विताम् ॥३८
प्रातः प्रातश्च सेवेत कफवातामयापहाम् ।
त्रिकटुत्रिफलाक्वाथं सक्षारलवणं पिबेत् ॥३९
कफवातात्मकेष्वेव विरेकः कफवृद्धिनुत् ।
पिप्पलीपिप्पलीमूलवचाचित्रकनागरैः ॥४०
क्वथितं वा पिबेत्पेयमामवातविनाशनम् ।

हरड़ को गोमूत्र में भिगोकर शुद्ध कर ले उसमें तेल और नमक मिलाकर प्रायः एक हरड़ खाने से कफज और वातज रोग नष्ट हो जाते हैं । त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपरि) और त्रिफला के काढ़े मे सज्जीखार तथा नमक मिलाकर पीने से कफज और वातज व्याधियों में ही विरेचन (मल त्याग) होता है । इससे कफ की वृद्धि नष्ट हो जाती है । पीपरि, पिपरा मूल, वच, चित्रक एवं सोंठ का काढ़ा पीने से आमवात नष्ट हो जाता है ।३८-४०½।

रास्नां गुडूचीमेरण्डदेवदारुमहौषधम् ॥४१
पिबेत्सर्वाङ्गिके वाते सामे सन्ध्यस्थिमज्जगे ।
दशमूलकषायं वा पिवेद्वा नागराम्भसा ॥४२
शुण्ठीगोक्षुरकक्वाथः प्रातः प्रातर्निषेवितः ।
सामवातकटीशूलपाण्डुरोगप्रणाशनः[1] ॥४३

रास्ना, गुरुचि, रेंड़ की जड़, देवदारु और सोंठ के काढ़े को सर्वाङ्गवात में, सामवात में, संधि अस्थि और मज्जागत वात में पीने से लाभ होता है । अथवा दशमूल के काढ़े को सोंठ के जल से पीवे तो पूर्वोक्त प्रकार से लाभ होता है । सोंठ तथा गोखरू का काढ़ा सवेरे-सवेरे पीने से आमवात, कमर की पीड़ा और पाण्डुरोग नष्ट हो जाता है ।४१-४३।

समूलपत्रशाखायाः प्रसारण्याश्च तैलकम् ।
गुडूच्याः स्वरसः कल्कश्चूर्णं वाक्वाथमेव च ॥४४
प्रभूतकालमासेव्य मुच्यते वातशोणितात् ।
पिप्पली वर्धमानं वा सेव्यं पथ्या गुडेन वा ॥४५

गन्धप्रसारणी की जड़, शाखा तथा पत्ते के काढ़े और कल्क से पकाया हुआ तैल वातरक्त का नाश करता है तथा गुरुचि का स्वरस, काढ़ा, कल्क या चूर्ण

१ छ. °पाचनो रुक्प्रणा° ।

को अधिक दिन सेवन करने से वातरक्त दूर हो सकता है अथवा वर्धमान तथा [1]पिप्पली के सेवन से वही लाभ होता है अथवा गुड़ और हरड़ के सेवन से भी वातरक्त दूर हो जाता है ।४४-४५।

पटोलत्रिफलातीव्रकटुकामृतसाधितम् ।
पङ्कं पीत्वा जयत्याशु सदाहं वातशोणितम् ।।४६
गुग्गुलं कोष्णशीतेन गुडूचीत्रिफलाम्भसा ।
बलापुनर्नवैरण्डबृहतीद्वयगोक्षुरैः ।।४७
सहिङ्गुलवणैः पीतं सद्यो वातरुजापहम् ।
[1]कार्षिकं पिप्पलीमूलं पञ्चैव लवणानि च ।।४८
पिप्पली चित्रकं शुण्ठी त्रिफला त्रिवृता वचा ।
द्वौ क्षारौ [2]शीतला दन्ती स्वर्णक्षीरी विषाणिका ।।४९
कोलप्रमाणां गुटिकां पिबेत्सौवीरकायुताम् ।
शोथावपाके[3] त्रिवृता प्रवृद्धे चोदरादिके ।।५०

परवल का पत्ता, त्रिफला, कुटकी और गुरुचि के काढ़े को पीने से दाह से युक्त वातरक्त शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। गुरुचि और त्रिफले के थोड़ा थोड़ा काढ़े के साथ गुग्गुल को खाने से या बरियरा, पथरी (पुनर्नवा) रेंड़ की जड़, भटकैया, वनभांटा, और गोखरू के काढ़े में हींग तथा सेंधा नमक का प्रक्षेप (काढ़े के पक जाने पर उतार कर छान लेने पर) डाल कर पीने से तत्काल वातरक्त की पीड़ा शान्त हो जाती है। गुग्गुल, पिपरामूल, पाँचों नमक (सेंधा, समुद्री, विड, सोंचर और रेह (मिट्टी का) पीपरि, चित्रक, सोंठ, त्रिफला, निसोत, वच, सज्जीक्षार, यवक्षार, दूर्वा, जमालगोटे की जड़, भड़भड़वा (स्वर्णक्षीरी) और काकड़ासिंगी की छोटी बेर के समान गोली बनाकर उसे काँजी के साथ लेने से शोथ एवं व्रणशोथ में लाभ करता है। बढ़े हुये उदर रोग में निशोथ लाभ करता है ।४६-५०।

क्षीरं शोथहरं दारुवर्षाभूर्नागरैः शुभम् ।
सेकस्तथाऽर्कवर्षाभूनिम्बक्वाथेन शोफजित् ।।५१
व्योषगर्भं पलाशस्य त्रिगुणे भस्मवारिणी ।
साधितं पिबतः सर्पिः पतत्यर्शो न संशयः ।।५२

---

१ क. ङ. क्वाथितं । २ छ. शाद्वला । ३ क. ङ. विहिता ।

देवदारु, पुनर्नवा और सोंठ में दूध पकाकर पिलाने से सूजन दूर हो जाती है। शोथ की शान्ति के लिये मदार का पत्ता पथरी (पुनर्नवा) और नीम का काढ़ा उपयोगी है। पलाश की लकड़ी की राख को पानी में डालकर और उस जल को (फिलटर पेपर से) छान ले उसमें तृतीयांश घृत तथा सोंठ मिर्च पीपरि का कल्क डालकर पका ले। इसके पश्चात् उस घृत के पीने से बवासीर (अर्श) के मस्से गिर जाते हैं।५१-५२।

विष्वक्सेनाब्जनिर्गुण्डीसाधितं चापि लावणम्[1]।
विडङ्गानलसिन्धूत्थरास्नाग्रक्षीरदारुभिः ॥५३
तैलं चतुर्गुणं सिद्धं कटुद्रव्यं जलेन वा।
गण्डमालापहं तैलमभ्यङ्गाद्गलगण्डनुत् ॥५४

विष्णुक्रान्ता, नागरमोथा, समुद्रीनमक, वायविडंग, चित्रक, सेंधा नमक, रास्ना, दुधिया और देवदारु के चौगुने काढ़े में सोंठ, मिर्च, पीपरि (कटुद्रव्य) का कल्क डालकर तैल पका ले। उस तेल का लेप करने से गंडमाला एवं गलगण्ड नष्ट हो जाते हैं।५३-५४।

शठीकुनागवलयक्वाथः क्षीररसे युतम्।
पयस्यापिप्पलीवासाकल्कं सिद्धं क्षये हितम्[2] ॥५५
वचाविडभयाशुण्ठी हिङ्गुकुष्ठाग्निदीप्यकान्।
द्वित्रिषट्चतुरेकांशसप्तपञ्चा (ञ्चां) शिकाः क्रमात् ॥५६
चूर्णं पीतं हन्ति गुल्ममुदरं शूलकासनुत्।

कचूर और गुलशकरी का काढ़ा और इन्हीं का स्वरस और दूध में क्षीर-काकोली, पीपरि तथा अड़ूस का कल्क डालकर घृत पकावे। सिद्ध होने पर उस घृत को क्षय रोग में देने से लाभ होता है। वच, विडनमक, हरड़, सोंठ, हींग, कूठ, चित्ता, अजवायन, को क्रमशः दो, तीन, छह, चार, एक, सात और पाँचवाँ अंश लेकर चूर्ण बना ले। इसके पीने से गुल्म रोग, शूल रोग, कास रोग नष्ट हो जाते हैं।५५-५६½।

---

१ छ. लावणम्। क. °म्। वासावि°

पाठानिकुम्भत्रिकटुत्रिफलाग्निसुसाधिताः ।।५७
मूत्रेण चूर्णगुटिकागुल्मप्लीहादिमर्दनी ।
वासानिम्बपटोलानि त्रिफला वातपित्तनुत् ।।५८
लिह्यात्क्षौद्रेण विडङ्गचूर्णं कृमिविनाशनम् ।
विडङ्गसैन्धवक्षारमूत्रेणापि हरीतकी ।।५९
शल्लकीबदरी जम्बुपियालाम्रार्जुनत्वचः ।
पीताः क्षीरेण मध्वक्ताः पृथक्शोणितवारणाः ।।६०

पाढ़, जलकुम्भी, त्रिकटु, त्रिफला और चित्ता की गोमूत्र से पीसकर गोली बना ले, इस गोली के सेवन से गुल्म, प्लीहा, आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। अड़ूस, नीम एवं परवल के पत्ते और त्रिफला के सेवन से वात पित्त से उत्पन्न कष्ट दूर हो जाते हैं। मधु से वायविडंग का चूर्ण चाटने से कृमिरोग दूर हो जाता है। वायविडंग, सेंधानमक, यवक्षार, गोमूत्र से शुद्ध हरड़, सलई की लकड़ी, वेर, जामुन, पियाल, आम और अर्जुन वृक्ष की छाल का चूर्ण मधु के साथ चाटकर दूध पीने से रक्त का कहीं से भी बहना रुक जाता है।५७-६०।

बिल्वाम्रधातकीपाठाशुण्ठीमोचरसाः समाः ।
पीता रुन्धत्यतीसारं गुडतक्रेण दुर्जयम् ।।६१
चाङ्गेरीकोलदध्यम्बुनागरक्षारसंयुतम् ।
घृतयुक्क्वाथितं पेयं गुदभ्रंशरुजापहम् ।।६२
विडङ्गातिविषामुस्तदारुपाठाकलिङ्गकम् ।
मरीचेन समायुक्तं शोथातीसारनाशनम् ।।६३
शर्करासिन्धुशुण्ठीभिः कृष्णा मधुगुडेन वा ।
द्वे द्वे खादेद्धरातक्यौ जीवेद्वर्षशतं सुखी ।।६४

वेल, आम (की गुठली की मज्जा) धव का फूल, पाढ़, सोंठ, सेमर के गोंद को समभाग (लेकर चूर्ण बना ले) गुड़ एवं मट्ठे के साथ लेने से दुर्जेय अतीसार नष्ट हो जाता है। नोनियाघास, वेर, दधि, नागरमोथा, सोंठ और सज्जीक्षार का काढ़ा बनाकर उसमें घृत डालकर पीने से काँच (गुदभ्रंश) में होने वाली पीड़ा का विनाश होता है। वायविडंग, अतीस, नागरमोथा, देवदारु. पाढ़ और इन्द्रयव, और मरिच के चूर्ण को लेने से अतिसार से उत्पन्न शोथ नष्ट होता है। प्रत्येक दिन शर्करा, सेंधानमक

तथा सोंठ के साथ अथवा पीपल, मधु और गुड़ के साथ दो-दोहरड़ खाने से सुखपूर्वक सौ वर्ष जीता है।६१-६४।

त्रिफला पिप्पलीयुक्ता समध्वाज्या तथैव सा।
चूर्णमामलकं तेन सुरसेन तु भावितम् ॥६५
मध्वाज्यशर्करायुक्तं लिड्वा स्त्रीशः पयः पिबेत्।
माषपिप्पलिशालीनां यवगोधूमयोस्तथा ॥६६
चूर्णभागैः समांशैश्च पचेत्पिप्पलिकां शुभाम्।
तां भक्षयित्वा च पिबेच्छर्करामधुरं पयः ॥६७
नवश्चटकवद्गच्छेद्दश[1] वारान्स्त्रियं ध्रुवम्।

त्रिफला, पीपरि को घृत और मधु से लेने पर सौ वर्ष तक जीता है। आमला के स्वरस से भावित आँवले के चूर्ण को मधु, घृत और शर्करा मिलाकर चाटने से और ऊपर से दूध पीने से मनुष्य स्त्रियों का प्रिय हो जाता है। उड़द, चावल और पीपरि के चूर्ण का और समभाग गेहूँ और यव के चूर्ण का मालपूआ पकाकर खाने के पश्चात् चीनी मिलाकर दूध पीवे तो नये चटक पक्षी की भाँति दस वार स्त्री से सम्भोग करने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है।६५-६७½।

समङ्गाधातकीपुष्पलोध्रनीलोत्पलानि च ॥६८
एतत्क्षीरेण दातव्यं [2]स्त्रीणां प्रदरनाशनम्।
वीजं कौरण्टकं चापि मधुकं श्वेतचन्दनम् ॥६९
पद्मोत्पलस्य मूलानि मधुकं शर्करातिलान्।
द्रवमाणेषु गर्भेषु गर्भस्थापनमुत्तमम् ॥७०
देवदारुनभः कुण्ठं नलदं विश्वभेषजम्।
लेपः काञ्जिकसंपिष्टस्तैलयुक्तः शिरोर्तिनुत् ॥७१

लजाधुर विरई, धव का फूल, लोध और नीले कमल का चूर्ण दूध के साथ देने से स्त्रियों का प्रदर रोग नष्ट हो जाता है। घुंघुची का वीज, जेठी मधु, सफेद चन्दन, कमल की जड़, जेठीमधु (यह ओषधि इस योग में दो-बार आई है अतः सब ओषधियों से द्विगुण ले) मिश्री और तिल के चूर्ण जल से देने पर

---

1 "दशवारस्त्रियो ध्रुवम्" इत्यपि कदाचित्स्यात्। २ क. ख. ङ. °णां प्रसवना°।

गिरता हुआ गर्भ रुक जाता है। देवदारु, नागरमोथा, कूठ, खस, सोंठ को कांजी में पीसकर शिर पर लेप करे तो सिर की पीड़ा दूर हो जाती है।६८-७१।

वस्त्रपूतं क्षिपेत्कोष्णं सिन्धूत्थं कर्णशूलनुत्।
लसुनार्द्रकशिग्रूणां कदल्या वा रसः पृथक् ॥७२
वलाशतावरीरास्नामृताः सैरीयकैः पिबेत्।
त्रिफलासहितं सर्पिस्तिमिरघ्नमनुत्तमम् ॥७३
त्रिफलाव्योषसिन्धूत्थैर्धृतं सिद्धं पिबेन्नरः।
चक्षुष्यं भेदनं हृद्यं दीपनं कफरोगनुत् ॥७४
नीलोत्पलस्य किञ्जल्कं गोशकृद्रससंयुतम्।
गुटिकाञ्जनमेतत्स्याद्दिनरात्र्यन्धयोर्हितम् ॥७५
यष्टीमधुवचाकृष्णावीजानां कुटजस्य च।
कल्केनाऽऽलोड्य निम्बस्य कषायो वमनाय सः ॥७६

सेंधा नमक जल में पकाकर वस्त्र से छान ले और उस जल को गरम-गरम कान में डालने से कान की पीड़ा नष्ट हो जाती है अथवा लहसुन का स्वरस या अदरक का स्वरस या सहिजन का स्वरस या केरे का स्वरस गरम-गरम कान में डालने से कान की पीड़ा दूर हो जाती है। बरिअरा, सतावरि, रास्ना, और गुरुचि का चूर्ण सिरके के साथ ले अथवा त्रिफला में घृत पकाकर पीने से नेत्र का रोग दूर हो जाता है। यह नेत्र को हितकारी, दस्तावर, हृद्य (हृदय) का हितकारी और अग्निदीपन है, कफ रोग को दूर करता है। नीले कमल के पराग को गोवर के रस में घोंटकर गोली वनाकर अंजन करने से दिन तथा रात्रि के अन्धेपन को दूर करता है। नीम के पत्ते के काढ़े में मुलहठी, मधु, वच, पीपरि और इन्द्रजौ का कल्क डालकर पीने को देने से उत्तम वमन होता है।७२-७६।

स्निग्धस्विन्नयवं तोयं प्रदातव्यं विरेचनम्।
अन्यथा योजितं कुर्यान्मन्दाग्निं गौरवारुची ॥७७
पथ्यासैन्धवकृष्णानां चूर्णमुष्णाम्बुना पिबेत्।
विरेकः सर्वरोगघ्नः श्रेष्ठो नाराचसंज्ञकः ॥७८
सिद्धयोगा मुनिभ्यो य आत्रेयेण प्रदर्शिताः।
सर्वरोगहराः सर्वयोगाग्र्याः सुश्रुतेन हि ॥७९

जौ को उबालकर उसी का पानी देने से उत्तम विरेचन (टट्टी) आता है। दूसरे प्रकार देने से मन्दाग्नि, शरीर में भारीपन और अरुचि होती है। हरड़, सैंधा नमक और पीपरि का चूर्ण गर्म जल से लेने पर उत्तम जुलाब होता है। यह विरेचन सम्पूर्ण रोगों को दूर करता है। इसका नाम नाराच है। आत्रेय ने मुनियों के लिए जिन सिद्ध योगों को बताया था, वे सब रोगहर हैं, सम्पूर्ण योगों में श्रेष्ठ हैं, ऐसा सुश्रुत ने कहा है।७७-७९।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मृतसंजीवनकरसिद्धयोगकथनं नाम पञ्चाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।२८५

अथ षडशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मृत्युञ्जयकल्पाः

धन्वन्तरिरुवाच—

कल्पान्मृत्युञ्जयान्वक्ष्ये ह्यायुर्दान्रोगमर्दनान्।
त्रिशतीरोगहा सेव्या मध्वाज्यत्रिफलामृता ॥१

धन्वन्तरि बोले—आयु को देने वाले, रोगों के मर्दन करने वाले और मृत्यु को जीतने वाले कल्पों को कहूँगा—मधु, घृत, त्रिफला तथा गुरुचि का सेवन रोगनाशक तथा तीन सौ वर्ष आयु प्रदायक है।१।

पलं पलार्धं कर्षं वा त्रिफलां सकलां तथा।
बिल्वतैलस्य नस्यं च मासं पञ्चशती कविः ॥२
रोगापमृत्युवलिजित्तिलं भल्लातकं तथा।
पञ्चाङ्गं वाकुचीचूर्णं षण्मासं खदिरोदकैः ॥३
क्वाथैः कुष्ठं जयेत्सेव्यं चूर्णं नीलकुरुण्टजम्।
क्षीरेण मधुना वाऽपि शतायुःखण्डदुग्धभुक् ॥४
मध्वाज्यशुण्ठीं संसेव्य पलं प्रातः स मृत्युजित्।
वलीपलितजिज्जीवेन्माण्डूकीचूर्णदुग्धपाः ॥५

चार तोला, दो तोला या एक तोला त्रिफला को या एक एक आँवला हरड़ और बहेड़ा (सकला) को मधु घृत से लेने से तथा विल्व के बीज के तेल का एक मास नस्य लेने से पाँच सौ वर्ष मनुष्य जीता है। इसी तरह भिलावाँ का तैल सेवन करने से रोग का नाश, अपमृत्यु का नाश होता है और पेट पर की वलियाँ नष्ट हो जाती हैं। छह मास वाकुची के पञ्चाङ्ग का चूर्ण खैर के काढ़े से सेवन करने से कुष्ट नष्ट हो जाता है। नीली कटसरैया के चूर्ण को दूध और मधु से सेवन करने से तथा दूध और चीनी पीने से सौ वर्ष तक मनुष्य जीता है। जो प्रातःकाल मधु, घृत और सोंठ बराबर लेकर ४ तोला प्रतिदिन लेता है वह मृत्यु को जीत लेता है। जो मंडूकपर्णी के चूर्ण को दूध के साथ प्रतिदिन लेता है वह बाल पकने और झुर्रियाँ पड़ने आदि बुढ़ापे के चिह्न से रहित होकर जीता है।२-५।

उच्चटा मधुनाकर्षं [1]पयसा मृत्युजिन्नरः।
मध्वाज्यैः पयसा वाऽपि निर्गुण्डी मृत्युरोगजित् ॥६
पलाशतैलं कर्षैकं षण्मासं मधुना पिबेत्।
दुग्धभोजी पञ्चशती सहस्रायुर्भवेन्नरः ॥७

घुमुची की एक तोला जड़ के चूर्ण को मधु से सेवन करके दूध पीबे तो मृत्यु को जीत लेता है। पलाश बीज के एक तोले तेल को छः मास तक मधु से लेने पर जब जब भूख लगे केवल दूध का ही सेवन करे तो पाँच सौ वर्ष या एक हजार वर्ष तक जीवित रह सकता है।६-७।

ज्योतिष्मतीपत्ररसं पयसा त्रिफलां पिबेत्।
मधुनाऽऽज्यं ततस्तद्वच्छतावर्या रजः पलम् ॥८
क्षौद्राज्यैः पयसा वाऽपि निर्गुण्डी रोगमृत्युजित्।
पञ्चाङ्गं निम्बचूर्णस्य खदिरक्वाथभावितम् ॥६
कर्षं भृङ्गरसेनापि रोगजिच्चामरो भवेत्।
रुदन्तिकाज्यमधुभुग्दुग्धभोजी च मृत्युजित् ॥१०

मालकाकुन के पत्तो के स्वरस को तथा त्रिफला को दूध से पीने से, और सतावरी के चूर्ण को मधु और घृत चाटकर दूध पीने से अथवा निर्गुण्डी के

१ छ. पयः पा मृ°।

पत्तों के स्वरस को मधु और घृत से सेवन करने से अथवा दूध से लेने पर रोग तथा मृत्यु को जीत लेता है। नीम के पञ्चांग (पत्र, पुष्प, फल, जड़ और तने की छाल) के चूर्ण को जो कि खैर की लकड़ी के काढ़े से भावनायें देकर सुखा लिया गया हो उसका १ तोला चूर्ण भंगरैया के स्वरस से पीने पर मनुष्य रोगों को जीत लेता है और अमर हो जाता है। रुद्रवन्ती के चूर्ण को घृत मधु से ले और केवल दुग्धाहार करे तो मृत्यु को जीत लेता है।८-१०।

कर्षंचूर्णं हरीतक्या भावितं भृङ्गराड्रसैः।
घृतेन मधुनाऽऽसेव्य त्रिशतायुश्च रोगजित् ॥११
वाराहिका भृंगरसं लोहचूर्णं शतावरी।
साज्यं कर्षं पञ्चशती कार्तपूर्णं शतावरी ॥१२
भावितं भृङ्गराजेन मध्वाज्यं (त्रिं) त्रि शती[1] भवेत्।
आम्रामृतात्रिवृत्तुल्यं गन्धकं च कुमारिका ॥१३
रसैर्विमृज्य द्वे[2] गुञ्जे[3] साज्यं पञ्चशताब्दवान्।
अश्वगन्धाफलं[4] तैलं साज्यं खण्डं शताब्दवान् ॥१४
पलं पुनर्नवाचूर्णं मध्वाज्यपयसा पिबन्।
अशोकचूर्णस्य फलं मध्वाज्यं पयसाऽर्तिनुत् ॥१५

हरड़ का चूर्ण एक तोला जो कि भंगरैया के स्वरस से भावित हो उसे घृत और मधु से सेवन करने से मनुष्य तीन सौ वर्ष जीवित रहता है तथा रोगों को जीत लेता है। वाराहीकन्द के चूर्ण को भंगरैया के रस से भावित कर रख ले पश्चात् उस चूर्ण को लौह भस्म और शतावरी के चूर्ण को मिला कर मात्रा से एक तोला घृत के साथ सेवन करे तो पांच सौ वर्ष जीता है। अथवा भंगरैया रस से भावित शतावरी चूर्ण से सोने का भस्म मधु, घृत मिला कर सेवन करे तो तीन सौ वर्ष जीता है। आम की गुठली की मज्जा, गुरुचि, निशोथ और गंधक बराबर बराबर लेकर घृतकुमारी के रस की भावना देकर सुखा ले उसमें से दो रत्ती घृत के साथ सेवन करने से पाँच सौ वर्ष की आयु हो जाती है। असगन्ध चार तोले को तेल (तिल का) और घृत और चीनी के साथ लेने से रोग (आर्ति) दूर हो जाते हैं।११-१५।

---

१ छ. °त्। ताम्रं मृतं मततुल्यं। २ क ङ ते। ३ क. ङ. मुस्ते। ४ छ. °न्धापल°।

[1]निम्बस्य तैलं समधु नस्यात्कृष्णकचः शती ।
कर्षमक्षं समध्वाज्यं शतायुः पयसा पिबन् ॥१६
अभयां सगुडां जग्ध्वा घृतेन मधुरादिभिः ।
दुग्धान्नभुक्कृष्णकेशोऽरोगी पञ्चशताब्दवान् ॥१७
पलं कूष्माण्डिकाचूर्णं मध्वाज्यपयसा पिबन् ।
मासं दुग्धान्नभोजी च सहस्रायुर्विरोगवान् ॥१८

नीम का तेल और मधु मिलाकर नस्य लेने से बाल काले हो जाते हैं और वह सौ वर्ष तक जीता है । बहेड़े के एक तोले चूर्ण को मधु घृत के साथ चाट कर दूध पी लेवे तो सौ वर्ष आयु होती है । गुड़ और हरड़ खाकर मधुर भोजन या दुग्ध के साथ भोजन करने से रोग रहित होता है तथा काला केश हो जाता है और पाँच सौ वर्ष जीता है । चार तोला रेक्सना (सफेद) कोंहड़ा के मज्जा का चूर्ण मधु, घृत दूव से ले तथा एक मास तक दूध के साथ अन्नग्रहण करे तो वह रोग रहित हो सौ वर्ष तक जीता है ।१६–१८।

शालूकचूर्णं भृङ्गाज्यं समध्वाज्यं शताब्दकृत् ।
कटुतुम्बीतैलनस्यं कर्षं शतद्वयाब्दवान् ॥१९
त्रिफला पिप्पली शुण्ठी सेविता त्रिशताब्दकृत् ।
शतावर्याः पूर्णयोगः सहस्रायुर्बलातिकृत् ॥२०

कमल के जड़ का चूर्ण भंगरैया के रस और घृत के साथ पीवे अथवा मधु एवं घृत के साथ लेने पर मनुष्य एक सौ वर्ष जीता है । कड़ुई लौकी के बीज के एक तोले तेल का नस्य दो सौ वर्ष तक जिलाता है । त्रिफला, सोंठ और पीपरि का चूर्ण बनाकर सेवन करने से तीन सौ वर्ष की आयु हो जाती है और शतावरी का भी चूर्ण मिलाकर लेने से अति बलवान् होता है और हजार वर्ष की आयु मिलती है ।१९–२०।

चित्रकेण तथा पूर्वं तथा शुण्ठीविडङ्गतः ।
लोहेन भृङ्गराजेन बलया निम्बपञ्चकैः ॥२१
खदिरेण च निर्गुण्ड्या कण्टकार्याऽथ वासकात् ।
वर्षाभुवा तद्रसैर्वा भावितो वटिकाकृतः ॥२२

---

१. छ. तिलस्य ।

चूर्णं घृतैर्वा मधुना गुडाद्यैर्वारिणा तथा ।
ॐ हूं स इति मन्त्रेण मन्त्रितो योगराजकः ॥२३
मृतसंजीवनीकल्पो रोगमृत्युञ्जयो भवेत् ।
सुरासुरैश्च मुनिभिः सेविता कल्पसागराः ॥
गजायुर्वेदं प्रोवाच पालकाप्योऽङ्गराजकम् ॥२४

शतावरीचूर्ण को चित्रक के काढ़े से, वायविडङ्ग के काढ़े से, लाल भंगरैया के स्वरस से, वरियरा के स्वरस से नीम के पञ्चाङ्ग के काढ़े से, खदिर क्वाथ से तथा मेउड़ी, भटकैया, अड़ूसा और पथरी के रस से भावना देकर वटी वना ले या चूर्ण ही रहने दे। उस वटी या चूर्ण को घृत, मधु या गुड़ के रस से लेने से हजार वर्ष की आयु होती है। उस योगराज को वनाते समय 'ओं हूं सः' इस मंत्र को पढ़े। यह मृत्युञ्जय कल्प रोग तथा मृत्यु को जीतने वाला है। उस कल्प सिन्धु को देव तथा राक्षस तथा मुनियों ने सेवन किया है। गजायुर्वेद को पालकाप्य जी ने अंगराज से कहा। २१-२४।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मृत्युञ्जयकल्पकथनं नाम
षडशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२६३

अथ सप्ताशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

गजचिकित्सा

पालकाप्य उवाच—

गजलक्ष्मचिकित्सां च लोमपाद वदामि ते ।
दीर्घहस्ता महोच्छ्वासाः प्रशस्तास्ते सहिष्णवः ।१
विंशत्यष्टादशनखाः शीतकालमदाश्च ये ।
दक्षिणश्चोन्नतो दन्तो बृंहितं जलदोपमम् ॥२
कर्णौ च विपुलौ येषां सूक्ष्मविन्द्वन्वितास्त्वचि[1] ।
ते धार्या न तथा धार्या वामना ये त्वलक्षणाः ॥३

---

१ छ. 'न्वितत्वचौ । ते ।

पालकाप्य बोले—हे लोमपाद ! हाथी का लक्षण तथा चिकित्सा तुमसे कहता हूँ। जिसकी सूँड़ लम्बी हो, अतिबलवान् हो एवं सहनशील हो वह हस्ती प्रशंसनीय माना जाता है। बीस या अठारह नख हों, शीतकाल में जिसके मद वह रहा हो, दाहिना दाँत ऊँचा हो, बादल के समान शरीर बड़ा हो। जिसके कान बड़े-बड़े हों, त्वचा पर छोटे-छोटे बिन्दु चिह्नित हों, ऐसे हाथी को रखना चाहिये और जो छोटे हों तथा जिनके अच्छे लक्षण न हों उन्हें नहीं रखना चाहिये। १-३।

[१]हस्तिन्यः पार्श्वगर्भिण्यो ये च मूढा[२] मतङ्गजाः।
वर्णं सत्त्वं बलं रूपं कान्तिः संहननं जवः ॥४
सप्तस्थितो गजश्चेद्दक्सङ्ग्रामेऽरीञ्जयेत्सदा।
कुञ्जराः परमा शोभा शिबिरस्य बलस्य च ॥५
आहृतः कुञ्जरैश्चैव विजयः पृथिवीक्षिता।
[३]पाकलेषु च सर्वेषु कर्तव्यमनुवासनम् ॥६

हथिनियाँ वह अच्छी होती हैं जिनके पेट भारी हों। मतवाले हाथी वे अच्छे होते हैं जिनमें वर्ण, मन (प्रसन्न मन) बल, रूप, कान्ति, शरीर का संघटन और वेग ये सातों बातें हों। वह संग्राम में शत्रुओं को सदा जीत लेता है। शिविर तथा सेना की हाथी परम शोभा है। राजा द्वारा इस प्रकार के हाथियों के आदर करने से उसकी सदा विजय होती है। सम्पूर्ण हाथियों में अनुवासन (तैल लगाना) करते रहना चाहिये। ४-६।

[४]घृततैलाभ्यङ्गयुक्तं स्नानं वातविवर्जितम्।
स्कन्धेषु च क्रिया कार्या तथा [५]पालकवन्नृपैः ॥७
गोमूत्रं पाण्डुरोगेषु रजनीभ्यां घृतं द्विज।
आनाहे तैलसिक्तस्य निषेकस्तस्य शस्यते ॥८
लवणैः पञ्चभिर्मिश्रा प्रतिपानाय वारुणी।
विडङ्गत्रिफलाव्योषसैन्धवैः कवलान्कृतान् ॥९
मूर्च्छासु भोजयेन्नागं क्षौद्रं तोयं च पाययेत्।

---

१ क. ख. ङ. °स्तिन्यो याश्च ग.°। २ क. ङ. मत्ता। ३ क. ङ. पातालेषु तु स°। ४ छ. तैलपरीपाकं स्थानं। ५ ख. ग. पाकवलेर्नृपः। गो°।

अभ्यङ्गः शिरसः शूले नस्यं चैव प्रशस्यते ॥१०
नागानां स्नेहपुटकैः पादरोगानुपक्रमेत् ।
पश्चात्कल्ककषायेण शोधनं च विधीयते ॥११

घृत, तैल का अभ्यङ्ग करा कर निर्वात-स्थान में स्नान करावे। राजा को चाहिये कि पीलवान की तरह अपने हाथों से कंधे थपथपावे। हे द्विज! हाथी को पाण्डुरोग हो जाय तो हरदी और दारुहरदी के साथ गोमूत्र और घृत पिलावे। कब्जियत होने पर तेल से पेट की सफाई करके तेल की बस्ति दे। पाँचों नमक को शराब में मिलाकर पिलावे। मूर्च्छा होने पर वायबिंग त्रिफला त्रिकटु और सेंधा नमक से युक्त आहार दे तथा मधु शर्बत पिलावे। शिर के शूल में शिर पर तैल रक्खे तथा तेल का नस्य दे। हाथियों के पैर के रोग में (फोड़े आदि) तेल का पुट दे। बाद में ओषधियों के कल्क तथा काढ़े से शोधन करे। ७-११।

शिखितित्तिरलावानां पिप्पलीमरिचान्वितैः।
रसैः सम्भोजयन्नागं वेपथुर्यस्य जायते ॥१२
बालविल्वं तथा लोध्रं धातकी सितया सह।
अतिसारविनाशाय पिण्डीं भुञ्जीत कुञ्जरः ॥१३
नस्यं करग्रहे देयं घृतं लवणसंयुतम्।
मागधी नागराजाजी यवागूर्मुस्तसाधिता ॥१४
उत्कर्णके तु दातव्या वाराहं च तथा रसम्।
दशमूलकुलत्थाम्लकाकमाचीविपाचितम् ॥१५
[1]तैलं शृंखलसंयुक्तं गलग्रहगदापहम्।
अष्टभिर्लवणैः पिष्टैः [2]प्रसन्नं पाययेद्घृतम् ॥१६

हाथियों के कम्परोग में मयूर, तित्तिर और लाव पक्षी के मांस के रस में पीपरि तथा काली मिर्च डालकर खिलावे। हाथियों के अतिसार में कच्चे तेल की मज्जा, लोध, धव का फूल और मिश्री मिलाकर खिलावे तथा प्याज खाने को दे। हाथियों के शुण्ड में स्तब्धता होने पर नमक मिलाकर घृत का नस्य दे। उत्कर्णक रोग में पीपरि, सोंठ, अजवाइन और नागरमोथा के क्वाथ से यवागू (हलुवा) बनाकर खाने को दे तथा सूअर के मांस का रस दे। दशमूल,

१ च. °लं पानदस° । छ. °लं भूषण सं° । २ छ. प्रसन्नाः ।

कुलथी, कांजी और मकोय के रस में पकाया हुआ तेल पीने को देने से गलग्रह नष्ट हो जाता है। आठों नमक के साथ घृत पिलाने से भी गलग्रह नष्ट हो जाता है। १२-१६।

मूत्रभङ्गेऽथ वा बीजं क्वथितं त्रपुषस्य च।
त्वग्दोषेषु पिबेन्निम्बं वृषं वा क्वथितं द्विपः ॥१७
गवां मूत्रं विडङ्गानि कृमिकोष्ठेषु शस्यते।
शृङ्गवेरकणाद्राक्षाशर्कराभिः शृतं पयः ॥१८
क्षतक्षयकरं पानं तथा मांसरसः शुभः।
मुद्गौदनं व्योषयुतमरुचौ तु प्रशस्यते ॥१९
त्रिवृद्व्योषाग्निदन्त्यर्कश्यामा क्षीरेभपिप्पली।
एतैर्गुल्महरः स्नेहः कृतश्चैव तथा परः ॥२०
भेदनद्रावणाभ्यङ्गस्नेहपानानुवासनैः।
सर्वानेव समुत्पन्नान्विद्रधीन्समुपाहरेत् ॥२१

हाथी को जब पेशाब में अवरोध हो तो खीरे के बीज का काढ़ा बनाकर पिलावे। त्वचा के रोग में नीम या अड़ूसे का क्वाथ बनाकर पिलावे। कृमि रोग में गोमूत्र में वायविडंग का चूर्ण डालकर पिलावे। अदरख, पीपरि, मुनक्का और मिश्री मिलाकर गर्माया हुआ दूध पिलाने से क्षतक्षय रोग नष्ट हो जाता है। इस रोग में मांस-रस भी दे। अरुचि रोग में मूँग की दाल, और चावल में सोंठ, मिर्च और पीपरि डाल कर दे। निशोथ, त्रिकटु, चित्रक, जमालगोटे की जड़, मदार, काली निशोथ, दुधिया गजपीपरि के क्वाथ से सिद्धतेल से हाथियों का वायु गोला (गुल्म) ठीक हो जाता है। भेदन तथा द्रावण ओषधि से तेल की मालिस, स्नेहपान और अनुवासन वस्ति से हाथियों की सभी (बाह्य और आभ्यन्तर की) विद्रधि (फोड़े) नष्ट हो जाते हैं।१७-२१।

यष्टिकं मुद्गसूपेन शारदेन तथा पिबेत्।
वालबिल्वैस्तथा लेपः [1]कटरोगेषु शस्यते ॥२२
विडङ्गेन्द्रयवौ हिङ्गु [2]सरलं रजनीद्वयम्।
[3]पूर्वाह्णे दापयेत्पिण्डान्सर्वशूलोपशान्तये ॥२३

१ क. ङ. कुष्ठरोगेषु। ङ. कटुरोगेषु। २ ख. सबलं। ३ क° ह्णो पायसे पिण्डा°। छ. °ह्णे पायये°।

अभ्यङ्गः शिरसः शूले नस्यं चैव प्रशस्यते ॥१०
नागानां स्नेहपुटकैः पादरोगानुपक्रमेत् ।
पश्चात्कल्ककषायेण शोधनं च विधीयते ॥११

घृत, तैल का अभ्यङ्ग करा कर निर्वात-स्थान में स्नान करावे। राजा को चाहिये कि पीलवान की तरह अपने हाथों से कंधे थपथपावे। हे द्विज! हाथी को पाण्डुरोग हो जाय तो हरदी और दारुहरदी के साथ गोमूत्र और घृत पिलावे। कब्जियत होने पर तेल से पेट की सफाई करके तेल की बस्ति दे। पाँचों नमक को शराब में मिलाकर पिलावे। मूर्च्छा होने पर वायविडंग त्रिफला त्रिकटु और सेंधा नमक से युक्त आहार दे तथा मधु शर्बत पिलावे। शिर के शूल में शिर पर तैल रक्खे तथा तेल का नस्य दे। हाथियों के पैर के रोग में (फोड़े आदि) तेल का पुट दे। बाद में ओषधियों के कल्क तथा काढ़े से शोधन करे। ७-११।

शिखितित्तिरलावानां पिप्पलीमरिचान्वितैः ।
रसैः सम्भोजयन्नागं वेपथुर्यस्य जायते ॥१२
बालबिल्वं तथा लोध्रं धातकी सितया सह ।
अतिसारविनाशाय पिण्डीं भुञ्जीत कुञ्जरः ॥१३
नस्यं करग्रहे देयं घृतं लवणसंयुतम् ।
मागधी नागराजाजी यवागूर्मुस्तसाधिता ॥१४
उत्कर्णके तु दातव्या वाराहं च तथा रसम् ।
दशमूलकुलत्थाम्लकाकमाचीविपाचितम् ॥१५
[1]तैलं शृंखलसंयुक्तं गलग्रहगदापहम् ।
अष्टभिर्लवणैः पिष्टैः [2]प्रसन्नं पाययेद्घृतम् ॥१६

हाथियों के कम्परोग में मयूर, तित्तिर और लाव पक्षी के मांस के रस में पीपरि तथा काली मिर्च डालकर खिलावे। हाथियों के अतिसार में कच्चे तेल की मज्जा, लोध, धव का फूल और मिश्री मिलाकर खिलावे तथा प्याज खाने को दे। हाथियों के शुण्ड में स्तब्धता होने पर नमक मिलाकर घृत का नस्य दे। उत्कर्णक रोग में पीपरि, सोंठ, अजवाइन और नागरमोथा के क्वाथ से यवागू (हलुवा) बनाकर खाने को दे तथा सूअर के मांस का रस दे। दशमूल,

१ च. °लं पानदसं°। छ. °लं भूषण सं°। २ छ. प्रसन्नाः।

कुलथी, कांजी और मकोय के रस में पकाया हुआ तेल पीने को देने से गलग्रह नष्ट हो जाता है। आठों नमक के साथ घृत पिलाने से भी गलग्रह नष्ट हो जाता है। १२-१६।

मूत्रभङ्गेऽथ वा बीजं क्वथितं त्रपुषस्य च।
त्वग्दोषेषु पिबेन्निम्बं वृषं वा क्वथितं द्विपः ॥१७
गवां मूत्रं विडङ्गानि कृमिकोष्ठेषु शस्यते।
शृङ्गवेरकणाद्राक्षाशर्कराभिः शृतं पयः ॥१८
क्षतक्षयकरं पानं तथा मांसरसः शुभः।
मुद्गौदनं व्योषयुतमरुचौ तु प्रशस्यते ॥१९
त्रिवृद्व्योषाग्निदन्त्यर्कश्यामा क्षीरेभपिप्पली।
एतैर्गुल्महरः स्नेहः कृतश्चैव तथा परः ॥२०
भेदनद्रावणाभ्यङ्गस्नेहपानानुवासनैः।
सर्वानेव समुत्पन्नान्विद्रधीन्समुपाहरेत् ॥२१

हाथी को जब पेशाब में अवरोध हो तो खीरे के बीज का काढ़ा बनाकर पिलावे। त्वचा के रोग में नीम या अड़ूसे का क्वाथ बनाकर पिलावे। कृमि रोग में गोमूत्र में वायविडंग का चूर्ण डालकर पिलावे। अदरख, पीपरि, मुनक्का और मिश्री मिलाकर गर्माया हुआ दूध पिलाने से क्षतक्षय रोग नष्ट हो जाता है। इस रोग में मांस-रस भी दे। अरुचि रोग में मूँग की दाल, और चावल में सोंठ, मिर्च और पीपरि डाल कर दे। निशोथ, त्रिकटु, चित्रक, जमालगोटे की जड़, मदार, काली निशोथ, दुधिया गजपीपरि के क्वाथ से सिद्धतेल से हाथियों का वायु गोला (गुल्म) ठीक हो जाता है। भेदन तथा द्रावण औषधि से तेल की मालिस, स्नेहपान और अनुवासन वस्ति से हाथियों की सभी (वाह्य और आभ्यन्तर की) विद्रधि (फोड़े) नष्ट हो जाते हैं। १७-२१।

यष्टिकं मुद्गसूपेन शारदेन तथा पिबेत्।
वालबिल्वैस्तथा लेपः [1]कटरोगेषु शस्यते ॥२२
विडङ्गेन्द्रयवौ हिङ्गु [2]सरलं रजनीद्वयम्।
[3]पूर्वाह्णे दापयेत्पिण्डान्सर्वशूलोपशान्तये ॥२३

१ क. ङ. कुण्ठरोगेषु। ङ. कटुरोगेषु। २ ख. सबलं। ३ क° ह्णो पायसे पिण्डा°। छ. °ह्णे पायये°।

प्रधानभोजने तेषां षष्टिकव्रीहिशालयः ।
मध्यमौ यवगोधूमौ शेषा दन्तिनि चाधमाः ॥२४
यवश्चैव तथैवेक्षुर्नागानां बलवर्धनः ।
नागानां यवसं शुष्कं तथा धातुप्रकोपणः ॥२५
मदक्षीणस्य नागस्य पयःपानं प्रशस्यते ।
दीपनीयैस्तथा द्रव्यैः शृतो मांसरसः शुभः ॥२६

कार्तिक के मूंग के यूस के साथ साथ साठी चावल का भात खिलाने से तथा कच्चे तेल की मज्जा के लेप से कुष्ठ रोग में लाभ होता है । हाथियों के सभी प्रकार के शूल रोग में वायविडंग, इन्द्रजौ, हींग, वरिआरा, हरदी तथा आम हरदी का पिंड वनाकर खिलावे तो शूल शान्त हो जाता है । हाथियों का मुख्य भोजन साठी या अन्य चावल का भात है और मध्यम भोजन जवा तथा गेहूँ है और अन्य भोजन अधम माने गये हैं । जौ और गन्ना हाथियों के वल को वढ़ाता है । हाथियों को सूखी जई (जव का भेद अन्न) खिलाने से धातुओं का प्रकोप होता है । मद से क्षीण हाथी को दूध पिलाना चाहिये तथा दीपनीय द्रव्यों के रस से मांस रस पकाकर देना चाहिये ।२२-२६।

वायसः कुक्कुरश्चोभौ काकोलूककुलं हरिः ।
भवेत्क्षौद्रेण संयुक्तः पिण्डोद्रेकगदापहः ॥२७
कटुमत्स्यविडङ्गानि क्षारः कोषातकीपयः ।
हरिद्रा चेति धूपोऽयं कुन्जरस्य जयावहः ॥२८
पिप्पलीतण्डुलीतैलं माध्वीकं माक्षिकं तथा ।
नेत्रयोः परिषेकोऽयं दीपनीयः प्रशस्यते ॥२९

कौआ और कुत्ता, कौआ और उल्लू और वन्दर के मांस का रस मधु मिलाकर देने से हाथियों का पिंडोद्रेक रोग दूर हो जाता है । कड़ुई मछली, वायविडंग, यवक्षार, तरोई का रस और हरदी का धुआँ देने से हाथियों की जीत होती है । नेत्रों के सींचने के लिये पीपरि के दाने मुलहठी और मधु का प्रयोग करे, इससे दीप्ति वढ़ती है ।२७-२९।

---

१ छः °ण्डो युद्धे महापदि । क° ।

पुरीषं चटकायाश्च तथा पारावतस्य च ।
क्षीरवृक्षः करीषश्च प्रसन्ना चेष्टमञ्जनम् ॥३०
अनेनाञ्जितनेत्रस्तु करोति कदनं रणे ।
उत्पलानि च नीलानि मुस्तं तगरमेव च ॥३१
तण्डुलोदकपिष्टानि नेत्रनिर्वापणं परम् ।
नखवृद्धौ नखच्छेदस्तैलसेकश्च मास्यपि ॥३२
शय्यास्थानं भवेच्चास्य करीषैः पांसुभिस्तथा ।
शरन्निदाघयोः सेकः सर्पिषा च तथेष्यते ॥३३

चटका पक्षी और कबूतर की टट्टी, बरगद आदि का दूध और करसा गोबर का (करीष) को मदिरा में अंजन बनाकर हाथियों के आँख में अञ्जित कर दिया जाय तो रण में बहुतों को मार देता है। नीलकमल, नागरमोथा और तगर को चावल के पानी में पीस कर नेत्र पर लगाने से नेत्र को शान्ति मिलती है। नख बढ़ने पर माह-माह पर नख कटवा दें तथा तेल से सेंक दे। हाथियों के सोने का स्थान करसा और धूल से युक्त होना चाहिये। शरद् और ग्रीष्म में घी का सेंक उत्तम है।३०-३३।

इत्यादि महापुराण आग्नेये गजचिकित्साकथनं नाम
सप्ताशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।२८७

अथाष्टाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अश्ववाहनसारः

[1]धन्वन्तरिरुवाच—

अश्ववाहनसारं च वक्ष्ये चाश्वचिकित्सनम् ।
वाजिनां संग्रहः कार्यो धर्मकर्मार्थसिद्धये ॥१
अश्विनी श्रवणं हस्तमुत्तरात्रितयं तथा ।
नक्षत्राणि प्रशस्तानि हयानामादिवाहने ॥२

1 क. ङ. अग्निरुवाच ।

हेमन्तः शिशिरश्चैव वसन्तश्चाश्ववाहने ।
ग्रीष्मे शरदि वर्षासु निषिद्धं वाहनं हये ॥३

धन्वन्तरि बोले—घोड़ों की सवारी का तत्त्व तथा घोड़ों की चिकित्सा कहूँगा। घोड़ों का संग्रह धर्म, अर्थ और कार्य के लिये करना चाहिये। अश्विनी, श्रवण, हस्त और तीनों उत्तरा घोड़ों की प्रथम सवारी करने के लिये उत्तम माने गये है। इसी तरह हेमन्त, शिशिर और वसन्त ऋतुयें घोड़ों की सवारी के लिए उत्तम हैं। ग्रीष्म, शरद् और वर्षा घोड़ों पर सवारी के लिये निषिद्ध कहा है। १-३।

तीव्रैर्नचपलैर्दण्डैर्वदने न च ताडयेत् ।
कीलास्थिसंकुले चैव विषमे कटकान्विते ॥४
वालुकापङ्कसंछन्ने गर्तागर्तप्रदूषिते ।
अचित्तज्ञो विनोपायैर्वाहनं कुरुते तु यः ॥५
स वाह्यते हयेनैव पृष्ठस्थः कटिकां विना ।
छन्दं विज्ञापयेत्कोऽपि सुकृती धीमतां वरः ॥६
अभ्यासादभियोगाच्च विना शास्त्रं स्ववाहकः ।
स्नातस्य प्राङ्मुखस्याथ[1] देवान्वपुषि योजयेत् ॥७

तीव्र और चोखे दण्डों से घोड़ों के मुख पर न मारे। जहाँ पर कील हड्डी और कांटे अधिक हों वहाँ पर तथा बालू, कीचड़ से युक्त एवं ऊँची नीची जमीन पर जो सवारी करता है एवं जो घोड़े के मन को नहीं जानता है एवं साजसज्जा से रहित घोड़ा होता है, उस पर सवारी करता है तो वह घोड़े पर अपना अधिकार नही रख सकता अपितु वह घोड़े के वश में ही रहता है अर्थात् घोड़े से वह वाहित होता है। इसी तरह जीन के विना जो सवारी करता है वह भी घोड़े द्वारा वाहित होता है। घोड़ों की इच्छा को कोई ही सुकृती धीमान् व्यक्ति जानता है। शास्त्रज्ञान के विना भी अभ्यास और मनोयोग से घोड़ों के चित्त को जानता है। घोड़े को स्नान कराकर पूर्व मुख करके देवों की योजना अश्व के शरीर में करे।५-७।

प्रणवादिनमोन्तेन स्वबीजेन यथाक्रमम् ।
ब्रह्मा चित्ते बले विष्णुर्वैनतेयः पराक्रमे ॥८

---

१ क.ङ °वान्विधिषु यो०° ।

पार्श्वे रुद्रा गुरुर्बुद्धौ विश्वेदेवाश्च मर्मसु ।
[1]दृगावर्ते दृशीन्द्वकौ कर्णयोरश्विनौ तथा ॥९
जठरेऽग्निः स्वधा स्वेदे वाग्जिह्वायां जवेऽनिलः ।
पृष्ठतो नाकपृष्ठस्तु ([2]खुराग्रे सर्वपर्वताः ॥१०
ताराश्च रोमकूपेषु हृदि चान्द्रमसी कला ।
तेजस्यग्नी रतिः श्रोण्यां ललाटे च जगत्पतिः ॥११
ग्रहाश्च हेषिते चैव तथैवोरसि वासुकिः ।
उपोषितोऽर्चयेत्सादी हयं दक्षश्रुतौ जपेत् ॥१२

घोड़े के चित्त में ब्रह्मा को लगावे 'ओं ब्रह्मणे नमः' चित्ते बल में विष्णु को, पराक्रम में गरुड़ को, पार्श्व में इन्द्र को, बुद्धि में बृहस्पति को, मर्म स्थानों में विश्वेदेवों को, शरीर के भंवरी (आवर्त) मे दश दिक्पालों को, दृष्टि में चन्द्र और सूर्य को, कानों में अश्विनीकुमारों को, उदर में अग्नि को, पसीने में स्वधा को, जिह्वा में वाग्देवता को, वेग में वायु को, पृष्ठ पर स्वर्गपृष्ठ को, खुरों के अग्रभाग में सभी पर्वतों को, रोमकूपों में तारागणों को, हृदय में चन्द्रमा की कला को, तेज में अग्नि को, चूतड़ों में रति को, ललाट में जगत् के स्वामी परमात्मा को, घोड़े के हिनहिनाने में ग्रहों को, उर में वासुकि को, दाहिने कान में उपवासी होकर सवारी करने वाला जपे ।८-१२।

हय गन्धर्वराजस्त्वं) शृणुष्व वचनं मम ।
गन्धर्वकुलजातस्त्वं मा भूस्त्वं कुलदूषकः ॥१३
द्विजानां सत्यवाक्येन सोमस्य गरुडस्य च ।
रुद्रस्य वरुणस्यैव पवनस्य बलेन च ॥१४
हुताशनस्य दीप्त्या च स्मर जातिं तुरंगम ।
स्मर राजेन्द्रपुत्रस्त्वं सत्यवाक्यमनुस्मर ॥१५
स्मर त्वं वारुणीं कन्यां स्मर त्वं कौस्तुभं मणिम् ।
क्षीरोदसागरे चैव मथ्यमाने सुरासुरैः ॥१६
तत्र देवकुले जातः स्ववाक्यं परिपालय ।
कुले जातस्त्वमश्वानां मित्रं मे भव शाश्वतम् ॥१७

---

१ क. ङ. च. दशावर्ते । २ खुराग्रे..... .....गन्धर्व-राजस्त्वं. च. पुस्तके नास्ति ।

हे घोड़े ! तुम गन्धर्वराज हो मेरे वचन को सुनो। तुम गन्धर्व कुल में उत्पन्न हुए हो अतः कुल दूषक मत बनो। ब्राह्मणों के सत्य वचन से तथा सोम, गरुड़, रुद्र, वरुण और वायु के बल से, अग्नि के तेज से हे घोड़े ! तुम अपने पूर्व-जन्म का स्मरण करो। तुम राजेन्द्र पुत्र हो यह स्मरण करो तथा सप्तवाक्य का स्मरण करो। तुम वरुणदेव से उत्पन्न कन्या का स्मरण करो, कौस्तुभ मणि का स्मरण करो। जब क्षीरसमुद्र को देव और दानव मथ रहे थे तब तुम उस देव कुल (समुद्र) से उत्पन्न हुए। अपने वचनों का प्रतिपालन करो। तुम घोड़ों के कुल में उत्पन्न हुए हो मेरा शाश्वत मित्र बनो।१३-१७।

शृणु मित्र त्वमेतच्च सिद्धो मे भव वाहन।
विजयं रक्ष मां चैव समरे सिद्धिमावह ॥१८
तव पृष्ठं समारुह्य हता दैत्याः सुरैः पुरा।
अधुना त्वां समारुह्य जेष्यामि रिपुवाहिनीम् ॥१९
कर्णजापं तपः कृत्वा विमुह्य च तथाऽप्यरीन्।
पर्यानयेद्धयं सादी वाहयेद्युद्धगो जयम् ॥२०

हे मित्र ! तुम इस बात को सुनो। हे वाहन ! तुम सिद्ध होवो, तुम मेरी और मेरे विजय की रक्षा करो और समर में सिद्धि प्राप्त करो। तुम्हारे पीठ पर बैठकर देवताओं ने पूर्वकाल में असुरों का संहार किया। इस समय तुम्हारे पीठ पर बैठकर शत्रु की सेना पर विजय प्राप्त करूँगा। इस प्रकार घोड़े के कान में कहकर घुड़सवार शत्रुओं को मोहित करके घोड़े को ले आवे और युद्ध में जाकर जय प्राप्त करे। १८-२०।

संजाताः स्वशरीरेण दोषाः प्रायेण वाजिनाम्।
हन्यन्तेऽतिप्रयत्नेन गुणाः सादिवरैः पुनः ॥२१
सहजा इव दृश्यन्ते गुणाः सादिवरोद्भवाः।
नाशयन्ति गुणानन्ये सादिनः सहजानपि ॥२२
गुणानेको विजानाति वेत्ति दोषांस्तथाऽपरः।
धन्यो धीमान्द्वयं वेत्ति नोभयं वेत्ति मन्दधीः ॥२३

प्रायः घोड़ों में उनके शरीर पर दोष उत्पन्न होते हैं। किन्तु घुड़सवारों द्वारा अति प्रयत्न से वे दोष नष्ट किये जाते हैं और गुण हो जाते हैं। घुड़-सवारों द्वारा घोड़े में उत्पन्न किये गये गुण सहज गुण की भाँति दीख पड़ते

हैं। बहुत से घुड़सवार ऐसे भी होते हैं जो घोड़ों के उत्पन्न सहज गुणों को भी नष्ट कर देते हैं। कोई घुड़सवार घोड़े के गुणों को जानता है और कोई दोषों को। वह बुद्धिमान् धन्य है जो दोनों बातों को जानकर घोड़े को जानता है। मन्द बुद्धि वाला तो न गुण जानता है न दोष ही। २१-२३।

अकर्मज्ञोऽनुपायज्ञो वेगासक्तोऽपि कोपनः[1]।
[2]जयदण्डरतिश्चित्रो यः शस्तोऽपि न शस्यते ॥२४
उपायज्ञोऽथ चित्तज्ञो विशुद्धो दोषनाशनः।
गुणार्जनपरो नित्यं सर्वकर्मविशारदः ॥२५
प्रग्रहेण गृहीत्वाऽथ प्रविष्टो वाहभूतलम्।
सव्यापसव्यभेदेन वाहनीयः सुसादिना ॥२६
आरुह्य सहसा नैव ताडनीयो हयोत्तमः।
ताडनाद्भयमाप्नोति भयान्मोहश्च जायते ॥२७

जो घुड़सवार कर्म और उपाय को नहीं जानता, वेग में आसक्त है, क्रोधी है। जय में और दण्ड देने में ही अनुरागी है ऐसा विचित्र घुड़सवार घोड़ों के गुण-दोष को जानने वाला भी प्रशस्त नहीं माना जाता। जो उपाय को जानता है, घोड़े की चित्तवृत्ति को पहचानता है, किसी प्रकार का उसमें अवगुण नहीं है और वह दोषों को नष्ट करने वाला है। नित्य ही गुणों को प्राप्त करने में तत्पर रहता है, सम्पूर्ण अश्व के कर्मों का पण्डित है, वही अच्छा घोड़े का सवार माना जाता है। घुड़शाला में जाकर घोड़े के पगहे (रस्सी) को पकड़कर, दाहिने और बांयें के भेद को जानता हुआ अच्छा घुड़सवार घोड़े पर बैठकर एकाएक घोड़े को कोड़ा न मारे क्योंकि ताड़न करने से घोड़ा डर जाता है और डर जाने से घवड़ा जाता है।२४-२७।

प्रातः सादी प्लुतेनैव वल्गामुद्धृत्य चालयेत्।
मन्दं मन्दं विना नालं धृतवल्गो दिनान्तरे ॥२८
प्रोक्तमाश्वासनं सामभेदोऽश्वेन नियोज्यते।
कशादिताडनं दण्डो दानं कालसहिष्णुता ॥२९

---

१ छ. °नः। घनद°। २ छ. °तिच्छिद्रे यः समोऽपि।

पूर्वपूर्वविशुद्धौ तु विदध्यादुत्तरोत्तरम् ॥
जिह्वातले विना[1] योगं विदध्याद्वाहने हये ॥३०

घुड़सवार को चाहिये कि घोड़े को प्रातःकाल लगाम को ढीला कर दे और घोड़े को कदम (प्लुत) की चाल से टहलावे। सायंकाल तथा घोड़े को जब नाल न लगाया हुआ हो तो लगाम को पकड़कर मन्दगति से टहलावे। घोड़े को पुचकार कर आश्वासन दिया जाता है, उसे साम कहते हैं। भेद-नीति घोड़े में नहीं प्रयुक्त की जाती है। कोड़ा जो घोड़े को मारा जाता है उसे दण्ड कहते हैं और समय-समय पर सेवा विश्राम तथा भोजन दिया जाता है उसे दान कहते हैं। पूर्व पूर्व प्रयोग के असफल होने पर उतरोत्तर का विधान करे (जैसे पुचकारने से कार्य न चलने पर कोड़ा मारे और इससे भी काम न चलने पर कुछ काल विश्राम दे) घोड़े की सवारी में उसकी पीठ पर जीन (वितान इस पाठ भेद से अर्थ निकलता है) और जिह्वा तल में लगाम लगावे। २८-३०।

[2]गुणोत्तरशतां वल्गां सृक्कण्या सह गाहयेत्।
विस्मार्य वाहनं कुर्याच्छिथिलानां शनैः शनैः ॥३१
हयजिह्वाङ्गमाहीने जिह्वाग्रन्थिं विमोचयेत्।
गाढतां मोचयेत्तावद्यावत्स्तोभं न मुञ्चति ॥३२
कुर्याच्छतमुरस्त्राणमविलालं च मुञ्चति।
ऊर्ध्वाननः स्वभावाद्यस्तस्योरस्त्राणमश्लथम् ॥३३

दोनों तरफ डोरी में बँधी हुई (गुणोत्तरशतां) लगाम को जीभ के नीचे लगा दे और शिथिल अश्वों को भुलावा दे देकर धीरे-धीरे सवारी करे। लगाम से घोड़े की जिह्वा का भाग कस उठे तो लगाम की गाँठ को ढीला कर दे। गाढ़ेपन को तब तक ढीला करे जब तक घोड़े का क्षोभ दूर न हो जाय। सौ उरस्त्राण (छाती की रक्षा करने वाला कवच) घोड़े को लगावे पीठ पर रेकाब रखे। जो घोड़ा स्वभाव से शिर ऊँचा रखता है उसका उरस्त्राण कस कर लगा होना चाहिये। ३१-३३।

---

१ क. ङ. वितानं यो वि°। २ क. ङ. गुणेन रसतावृद्धिः सृ°।

विधाय वाहयेद्दृष्ट्या लीलया सादिसत्तमः ।
तस्य सव्येन पूर्वेण संयुक्तं सव्यवल्गया ॥३४
यः कुर्यात्पश्चिमं पादं गृहीतस्तेन दक्षिणः ।
क्रमेणानेन यो वामे कुरुते वामवल्गया ॥३५
पादौ तेनापि पादः स्याद्गृहीतो वाम एव हि ।
अग्रे चेच्चरणे त्यक्ते जायते सुदृढासनम् ॥३६
यौ हृतौ दुष्करे चैव मोटके नाटकायनम् ।
सव्यहीनं खलीकारो हनने गुणने तथा ॥३७
स्वभावं हि तुरंगस्य मुखव्यावर्तनं पुनः ।
न चैवेत्थं तुरंगाणां पादग्रहणहेतवः ॥३८

उत्तम घोड़सवार को चाहिये कि लीलापूर्वक दृष्टि के संकेत मात्र से घोड़े को चलावे। जो घोड़े की पीठ पर पहिले दाहिना पैर रखता है वह घोड़े की लगाम बायें तरफ खींचकर चलावे। जो घोड़े की पीठ पर बाँया पैर पहिले रखता है, उसे चाहिये कि पहिले दाहिने तरफ लगाम खींचे इस क्रम से जो बांयें तरफ की लगाम से घोड़े को बांयें तरफ मोड़ता है उसको दोनों तरफ से पैरों को घोड़े पर रखने का अभ्यास होता है। वह वाम पैर को ही पहले घोड़े पर रखता है। घोड़े पर पहिले पैर उछाल कर घोड़सवार सुदृढ़ आसन बना लेता है। कठिन पायदान में जो पैर रखा जाता है वह ठीक है किन्तु घोड़े को यदि दण्ड देना हो तो दाहिने तरफ से दे और यदि कोई गुण सिखाना हो तो भी दाहिने ही तरफ से दे। घोड़े का स्वभाव है कि मुख फैलाते हैं किन्तु वे पैर पकड़ने के लिए नहीं। ३४-३८।

विश्वस्तं हयमालोक्य गाढमापीड्य चाऽऽसनम् ।
[1]रोधयित्वा मुखे पादं ग्राह्यतो लोकनं हितम् ॥३९
गाढमापीड्य राणाभ्यां वल्गामाकृष्य गृह्यते ।
तद्बन्धनाद्युग्मपादं [2]तद्वद्वल्गनमुच्यते ॥४०

---

१ छ. रोकयि॰। २ छ. ॰द्वक्कन॰।

विश्वस्त अश्व को देखकर तथा उसकी पीठ पर आसन (जीन) को खूब कसकर बाँध दे इसके बाद मुख में लगाम (पाद) को लगावे इस प्रकार जो घोड़े को ग्रहण किया जाता है उसे लोकन कहते हैं। रस्सी से अच्छी तरह कसकर और लगाम पकड़कर जो घोड़े के दोनों पैर बांधे जाते हैं उसे वलगन कहते हैं। ३९-४०।

संयोज्यं वल्गया पादान्वल्गामालोच्य वाञ्छितम्।
वाह्यपार्ष्णिप्रयोगात्तु यत्र तन्मोटनं मतम्॥४१
प्रलयाविप्लवे ज्ञात्वा क्रमेणानेन बुद्धिमान्।
मोटनेन चतुर्थेन विधिरेष विधीयते॥४२
नाऽऽधत्तेऽधश्च यः पादं योऽश्वो [1]लङ्घनमण्डले।
मोटनोद्वक्कनाभ्यां तु ग्राहयेत्पादमीदृशम्॥४३
वण्टयित्वाऽऽसने गाढं मन्दमादाय यो व्रजेत्।
ग्राह्यते संगहाद्यत्र तत्संग्रहणमुच्यते॥४४

लगाम की रस्सी से लगाम को जोड़कर इच्छानुसार जो लगाम को घोड़े के मुख में लगाते हैं और उसे चलाने में एड़ी से चलाते हैं उस स्थिति का नाम मोटन है। चंचलतावश घोड़े को सरपट भागने को तैयार देखकर बुद्धिमान् सवार को चाहिये कि उसे मोटन विधि से ही चलावे (इस गति को कदम कहते हैं)। जो अश्व तेजी से दौड़ते समय पैरों को भूमि पर न रक्खे (पैर जमीन पर रखता दीख न पड़े) उसे मोड़ते और लगाम को खींचने से वश में लाये और पैर को जमीन पर रखवा कर कदम ले चले। जो सवार आसन पर बैठकर और अपने पैरों से अश्व के पीठ को मन्दरूप से कस लेता है तथा उसे कदम के रूप में चलने के लिए ग्रहण करता है उस क्रिया को संग्रहण कहते हैं।४१-४४।

हत्वा पार्श्वप्रहारेण स्थानस्थो व्यग्रमानसम्।
वल्गामाकृष्य पादेन ग्राह्यकण्टकपायनम् (?)॥४५
उल्केणा (ना) योऽङ्घ्रिणाऽनेन पार्ष्णिघातांस्तुरंगमः।
गृह्यते यत्खलीकृत्य खलीकारः स चेष्यते॥४६

---

१ छ. लवुनि म'।

गतित्रये प्रियः पादमादत्ते नैव वाञ्छितः ।
हत्वा तु यत्र दण्डेन गृह्यते हननं हि तत् ॥४७
खलीकृत्य चतुष्केण तुरङ्गो वलगयाऽन्यया ।
उच्छ्वास्य ग्राह्यतेऽन्यत्र तत्स्यादुच्छा (च्छ्वा) सनं पुनः ॥४८
स्वभावाद्बहिरस्यन्तं तस्यां दिशि तदाननम् ।
नियोज्य ग्राहयेत्तत्तु मुखव्यावर्तनं मतम् ॥४९

पीठ पर बैठकर जो सवार घोड़े के पार्श्व में कोड़े से ताड़ना देकर चलाता है और इस बीच आसन तितर-बितर हो जाता है तो लगाम की रस्सी से लगाम को खींचकर जो वश में किया जाता है उसे कंटकपायन कहते हैं। उत्कट रूप से रेकाव में पैर डालकर एड़ी से जो ताड़न किया जाता है उस ताड़न को जो अश्व सहन करता है उसे खलीकार कहते हैं। तीनों गतियों में से अभीप्सित और प्रिय गति को जो अश्व नहीं ग्रहण करता और लगाम को धारण करता है इस स्थिति में जो चाबुक से घोड़े को ताड़न प्रदान करता है उसे हनन कहते हैं। चौकड़ी मारता हुआ अश्व जब अन्य रस्सी से वश में किया जाता है तथा जब अश्व उच्छ्वास लेकर पकड़ा जाता है, उसे उच्छ्वासन कहते हैं। अश्व अपने स्वभाव से बाहर उसी दिशा में जब खिचाव करता है तब उसे बन्धन में करके उसके मुख को खींचा जाता है उसे मुखव्यावर्तन कहते हैं।४५-४९।

ग्राहयित्वा ततः पादं त्रिविधासु यथाक्रमम् ।
साधयेत्पञ्चधारासु क्रमशो मण्डलादिषु ॥५०
('आजानूर्ध्वाननं वाहं शिथिलं वाहयेत्सुधीः ।
अंगेषु लाघवं यावत्तावत्तं वाहयेद्धयम् ॥५१
मृदुःस्कन्धे लघुर्वक्त्रे शिथिलः सर्वसन्धिषु ।
यदा स सादिनो वश्यः संगृह्णीयत्तदा हयम्) ॥५२

घोड़ों की तीन प्रकार की गतियों में पैर स्थिर करने के पश्चात् क्रमशः मंडनादि पञ्चधारा में घोड़े की गति बढ़ावे। घुटने से लेकर ऊपर मुख पर्यन्त जब घोड़ा शिथिल अवस्था में रहे तब उस पर सवारी करनी चाहिये। बुद्धि-

१ 'आजानूर्ध्वाननं····· हयम्' च. पुस्तके नास्ति ।

मान् व्यक्ति को चाहिये कि जब तक घोड़े में हल्कापन रहे तभी तक उस पर चढ़कर दौड़ावे। जब अश्व स्कन्ध को मृदु बना लेता है मुख को हल्का कर लेता है एवं सम्पूर्ण सन्धियों में शिथिलता आ जाती है तब वह अश्व सवार के वश में हो जाता है, उस समय घोड़े को ग्रहण करे।५०-५२।

न त्यजेत्पश्चिमं पादं यदा साधु भवेत्तदा।
तदाऽऽकृष्टिर्विधातव्या पाणिभ्यामिह वल्गया[1] ॥५३
एकाङ्घ्रिको यथा तिष्ठेदुद्ग्रीवोऽश्वः समाननः।
धरायां पश्चिमौ पादावन्तरी (रि) क्षे यदाश्रयौ ॥५४
तदा संधारणं कुर्याद्गाढवाहं च मुष्टिना।
सहसैवं समाकृष्टो यस्तुरंगो न तिष्ठति ॥५५
शरीरं विक्षिपन्तं च साधयेन्मण्डलभ्रमैः।
क्षिपेत्स्कन्धं च यो वाहः स च स्थाप्यो हि वल्गया ॥५६

जब तक घोडा ठीक स्थिति में रहे तब सवार को चाहिये—कि अपने लगाम के पिछले भाग को न छोड़े, आवश्यकतानुसार लगाम की डोरी से घोड़े को खींचा करे। जिस समय अश्व ऊपर गर्दन करके एक पैर से खड़ा हो जाय अर्थात् आगे के दोनों पैर उठा ले। पिछले दोनों पैर पृथिवी पर रह जाय तब सवार अपनी मूँठी से घोड़े की गरदन पकड़कर चिपक जाय। इस प्रकार रोकने पर भी जो अश्व एकाएक न रुके और शरीर को फेंकता हो तो उसे सरपट की दौड़ से दौड़ाना चाहिए। जो अश्व बार-बार अपने स्कन्ध को नीचे की तरफ बारबार झटका देता हो उसे लगाम के द्वारा स्थिर करे। ५३-५६।

गोमयं लवणं मूत्रं क्वथितं मृत्समन्वितम्।
अङ्गलेपो मक्षिकादिदंशश्रमविनाशनः ॥५७
मध्ये भद्रादिजातीनां मण्डो देयो हि सादिना।
दंशनं सूक्ष्मकीटस्य निरुत्साहः क्षुधा हयः ॥५८
यथा वश्यस्तथा शिक्षा विनश्यन्त्यतिवाहिताः।
अवाहिता न सिध्यन्ति तुङ्गवक्त्रांश्च वाहयेत् ॥५९

अश्व को जब मक्खी आदि काटे तथा थक गया हो तो उसे दूर करने के लिये गोवर, नमक, मिट्टी और मूत्र का काढ़ा करके उसका घोड़े के शरीर

१ छ °या। तत्र त्रिको।

पर लेप करे। बीच-बीच में हरसिंगार के जाति के वृक्षों के पत्तों के काढ़े में चावल आदि का मंड बनाकर देना चाहिये, इससे छोटे कृमि आदि के काटने से तथा भूख से अश्व निरुत्साह न हो जाय। जितना घोड़ा वश में होता जाय उतनी ही शिक्षा देता जाय। घोड़े को अधिक चलाने से वे नष्ट हो जाते हैं इसी प्रकार न चलाने से भी खराब हो जाते हैं, सिद्ध नहीं होते उन्हें ऊपर मुख करके चलावे।५७-५९।

संपीड्य जानुयुग्मेन स्थिरमुष्टिस्तुरंगमम्।
गोमूत्राः कुटिला वेणी पद्ममण्डलमालिका: ॥६०
([1]पञ्चोलूखलिका: कार्ये गर्वितास्तेऽतिकीर्तिता:।
संक्षिप्तं चैव विक्षिप्तं कुञ्चितं च यथाचितम् ॥६१
वलिगतावलिगतौ चैव षोढा चेत्थमुदाहृतम्।
वीथौ धनुः शतं यावदशीतिर्नवतिस्तथा ॥६२
भद्रः सुसाध्यो वाजी स्यान्मन्दो दण्डैकमानस:।
मृगजङ्घो मृगो वाजी संकीर्णस्तत्समन्वयात् ॥६३

घोड़े की दोनों जानु पर्यन्त मालिश करे एवं हल्की-हल्की मुट्ठी को पीठ पर थपकी देकर मालिश करे और गोमूत्राकार टेढ़ी वेणी शिर पर संवारे या कमल के आकार की वेणी संवारे। घोड़े के सिखाने के कार्य में पांच उलूखलिक नामक (ओखरी के समान) क्रियायें होती हैं, वे अति गर्वित कही जाती हैं। उनके छह भेद है। संक्षिप्त, विक्षिप्त, कुञ्चित, यथाचित, वल्गित और अवल्गित। एक सौ या नव्वे या अस्सी धनुष पर्यन्त दूरी तक भद्र अश्व को खेलावे यह सुख साध्य अश्व होता है। मन्द अश्व केवल दण्डसाध्य होता है। मृग-जंघ और मृग अश्व मन्द के समान दण्ड साध्य होता है। ६०-६३।

शर्करामधुलाजाद: सुगन्धोऽश्वः शुचिर्द्विजः।)
तेजस्वी क्षत्रियश्चाश्वो विनीतो बुद्धिमांश्च यः ॥६४
शूद्रोऽशुचिश्चलो मन्दो विरूपो विमतिः खलः।
वल्गया धार्यमाणोऽश्वो[2] लालकं यश्च[3] दर्शयेत् ॥६५
[4]भारेषु योजनीयोऽसौ प्रग्रहग्रहमोक्षणैः।
अश्वादिलक्षणं वक्ष्ये शालिहोत्रो यथाऽवदत् ॥६६

---

१ पञ्चोलूखलिका:....शुचिर्द्विजः। च. पुस्तके नास्ति। २ क. ङ. तालकं। ३ क. ङ. दापयेत्। ४. छ. धारासु।

धान का लावा मिश्री और मधु खाने वाला सुगन्वित और पवित्र अश्व द्विज कहा जाता है। तेजस्वी अश्व क्षत्रिय तथा विनीत एवं बुद्धिमान् अश्व को वैश्य कहते है। अपवित्र, चंचल, मन्द, रूपरहित और बुद्धिहीन अश्व को खल कहते हैं। लगाम लगाने पर जो अश्व फेन को अधिक मुख से छोड़े उसे भार ढोने में लगावे। इस पगहे से घोड़ा बांधा जा सकता है। इस प्रकार शालिहोत्र के अनुसार अश्वादि का लक्षण कहूँगा ६४-६६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये ऽश्ववाहनसारवर्णनं नामाष्टाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।२८८

अथैकोननवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अश्वचिकित्सा

शालिहोत्र उवाच—

अश्वानां लक्षणं वक्ष्ये चिकित्सां चैव सुश्रुत[1]।
हीरदन्तो विदन्तश्च करालः कृष्णतालुकः ॥१
कृष्णजिह्वश्च यमजोऽजातमुष्कश्च यस्तथा।
द्विशफश्च तथा शृङ्गी त्रिवर्णो व्याघ्रवर्णकः ॥२
खरवर्णो भस्मवर्णो जातवर्णश्च काकुदी।
श्वित्री च काकसादी च खरसारस्तथैव च ॥३
वानराक्षः कृष्णसटः कृष्णगुह्यस्तथैव च।
कृष्णप्रोथश्च शूकश्च यश्च तित्तिरिसंनिभः ॥४
विषमः श्वेतपादश्च ध्रुवावर्तविवर्जितः।
अशुभावर्तसंयुक्तो वर्जनीयस्तुरंगमः ॥५

शालिहोत्र बोले—हे सुश्रुत ! अश्वों के लक्षण तथा चिकित्सा कहूँगा। हीरे के समान दाँत वाला, विना दाँत वाला, भयानक दाँत वाला, काले तालु वाला, काली जीभ वाला, जुड़वा उत्पन्न हुआ, अंडकोष न आया हुआ, दो खुर वाला, सींग वाला, तीन वर्ण वाला, वाघ्र के वर्ण वाला, गदहे के वर्ण वाला,

---

१—च० सुश्रुतात।

राख के समान वर्ण वाला, सोने के वर्ण वाला, डील वाला, सफेद दाग वाला, काकसादी, गदहे के समान बल वाला, वानर के समान आँख वाला, काली जटा वाला, काले लिंग वाला, काले ओठ वाला, काले शूक वाला, तिमिर के वर्ण वाला, विषम एवं सफेद पैर वाला लक्षण और भँवर से रहित अशुभ भँवर से युक्त अश्व वर्जनीय है।१–५।

रन्ध्रोपरन्ध्रयोर्द्वौ द्वौ द्वौ द्वौ मस्तकवक्षसोः।
प्रायेण च ललाटस्थकण्ठावर्ताः शुभा दश ॥६
सृक्कण्यां च ललाटे च कर्णमूले निगालके।
बाहुमूले गले श्रेष्ठा आवर्तास्त्वशुभाः परे ॥७
शुकेन्द्रगोपचन्द्राभा ये च वायससंनिभाः।
सुवर्णवर्णाः स्निग्धाश्च प्रशस्तास्तु सदैव हि ॥८

दोनों नासिका के छिद्र में और नासिका के पार्श्व में दो-दो भंवरी, मस्तक और छाती में दो दो भँवरी और प्रायः मस्तक और कंठ में दश दश भंवरी शुभ मानी गयी है। जितना, मस्तक, कान की जड़ में; निगलने के स्थान में, बाहू की जड़ में और गले में भँवरी अशुभ मानी गयी है। जो अश्व सुग्गे की आकृति के समान वर्ण वाला हो, इन्द्र वधूटी के समान लाल वर्ण का हो और जो कौए के समान काले वर्ण का हो एवं जो सुवर्ण के वर्ण का हो तथा चिकना हो वह प्रशस्त माना गया है।६–८।

दीर्घग्रीवाक्षिकूटाश्च ह्रस्वकर्णाश्च शोभनाः।
राज्ञां तुरंगमा यत्र विजयं वर्जयेत्ततः ॥९
पातितस्तु हयो दन्ती शुभदो दुःखदोऽन्यथा।
श्रियः पुत्रास्तु गन्धर्वा वाजिनो रत्नमुत्तमम् ॥१०

जो लम्बी गर्दन वाला हो, लम्बे आंख के कोटरे हों और छोटे कान वाला हो वह उत्तम अश्व है। इस प्रकार के अश्व जहां पर राजाओं के होते हैं वहाँ उनसे विजय की आशा छोड़ दे। जो अश्व संग्राम में अन्य अश्वों और हाथी को गिरा दे वह सुखदाता है एवं अन्य प्रकार का दुःखदाता है। उत्तम अश्वरत्न जो गन्धर्व अश्व कहा जाता है उससे लक्ष्मी और पुत्र होते हैं।९–१०।

अश्वमेधे तु तुरगः पवित्रत्वात्तु हूयते ।
वृषो निम्बबृहत्यौ च गुडूची च समाक्षिका ॥११
[1]सिङ्घाणकहरी पिण्डी स्वेदश्च शिरसस्तथा ।
हिङ्गु पुष्करमूल च नागरं साम्लवेतसम् ॥१२
पिप्पलीसैन्धवयुतं शूलघ्नं चोष्णवारिणा ॥

अश्वमेध यज्ञ में पवित्र होने के कारण उसका हवन होता है। अडूसा, नीम, भटकैया, वनभाटा, गुरुचि और मधु कफ नाशक है। (घोड़े के शीत लगने पर इन्ही का काढ़ा पिलावे। काढ़ा में मधु न डाले काढ़ा के ठंडा होने पर मधु डाल कर पिलावे) घोड़े के सिर पर बालू आदि की पोटरी बनाकर स्वेद दे। हींग, पोहकर मूल, सोंठ, अम्लवेत, पीपरि, सेंधानमक के चूर्ण को उष्ण जल से देने पर घोड़े का उदर शूल शान्त हो जाता है।११-१२½।

नागरातिविषा मुस्ता सानन्ता बिल्वमालिका ॥१३
क्वाथमेषां पिबेद्वाजी सर्वातीसारनाशनम् ।
प्रियंगुसारिवाभ्यां च युक्तमाजं शृतं पयः ॥१४
पर्याप्तशर्करं पीत्वा श्रमाद्वाजी विमुच्यते ।

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, अनन्तमूल, कच्चे वेल के काढ़ा घोड़ों को पिलाने से उसका अतीसार ठीक हो जाता है। लता प्रियंगु और अनन्त मूल के साथ बकरी का दूध पकाकर उसमें पर्याप्त चीनी मिलाकर पिलाने से घोड़े की थकावट दूर हो जाती है।१३-१४½।

द्रोणिकायां तु दातव्या तैलवस्तिस्तुरंगमे ॥१५
कोष्ठजा वा शिरा वेध्यास्तेन तस्य सुखं भवेत् ।
दाडिमं त्रिफला व्योषं गुडश्च समभावितः ॥१६
पिण्डमेतत्प्रदातव्यमश्वानां कार्श्यनाशनम्[2] ।
प्रियंगुलोध्रमधुभिः पिबेद्वृषरसं हयः ॥१७
क्षीरं वा पञ्चकोलाद्यं कासनाद्धि प्रमुच्यते ।

घोड़े को वस्ति देनी हो तो बड़े पात्र (द्रोणी) में तैल रखकर उससे नली को युक्त कर वस्ति दे अथवा कोष्ठ में जाने वाली सिरा को वेध करे। उससे

१—छ सिंहा गन्धकरी। २ क. ख. ङ. छ. कासना°।

घोड़े को सुख होता है। अनार, त्रिफला, त्रिकटु और गुड़ को सम भाग में पिण्ड बनाकर देने से घोड़े की दुर्बलता दूर होती है। अडूसे के स्वरस या काढ़े को लता प्रियंगु, लोध्र और मधु के साथ देने से या पञ्चकोल से सिद्ध दुग्ध पिलाने से कासना ठीक हो जाता है।१५–१७½।

प्रस्कन्धेषु च सर्वेषु श्रेय आदौ विशोधनम् ।।१८
अभ्यङ्गोद्वर्तनस्नेहस्यवर्तिक्रमः स्मृतः ।
ज्वरितानां तुरंगाणां पयसैव क्रियाक्रमः ।।१९

पेट के सभी प्रकार के रोगों में पहिले शोधन दे उसके पश्चात् अभ्यंग उपटन, स्नेह, नस्य और वर्ती लगावें। घोड़े के ज्वर होने पर दूध से ही उपचार करें।१८–१९।

लोध्रकरञ्जयोर्मूलं मातुलुङ्गाग्निनागराः।
कुष्ठं हिङ्गु वचा रास्ना लेपोऽयं शोथनाशनः ।।२०
मञ्जिष्ठा मधुकं द्राक्षा बृहत्यौ रक्तचन्दनम् ।।
त्रपुषीवीजमूलानि शृङ्गाटककशेरुकम् ।।२१
अजापयः शृतमिदं सुशीतं शर्करान्वितम् ।
पीत्वा निरशनो वाजी रक्तमेहात्प्रमुच्यते ।।२२

लोध्र, कंजे की जड़, विजौरा नीबू, चित्रक, सोंठ, कूट, हींग, वच और रस्ना को पीस कर लेप करने से शोथ नष्ट हो जाता है। मजीठ, मुलहठी, मुनक्का, वनभांटा और भटकैया, लाल चन्दन, खीरे का बीया और जड़, सिंगाड़ा तथा कसेरू को बकरी के दूध में पका कर और उपवास रखें तो घोड़े के पेशाब से रक्त जाना बन्द हो जाता है।२०–२२।

मन्याहनुनिगालस्थशिराशोथो गलग्रहः ।
अभ्यङ्गः कटुतैलेन तत्र तेष्वेव शस्यते ।।२३
गलग्रहगदः शोथः प्रायशो गलदेशके ।
प्रत्यक्पुष्पी तथा वह्निः सैन्धवं सौरसो रसः ।।२४
कृष्णाहिङ्गुयुतैरेभिः कृत्वा नस्यं न सीदति ।।

मन्या, हनु और कवल लीलने के स्थान की सिरा का शोथ एवं गलग्रह में कड़ुवे तेल की मालिश ठीक होती है। गलग्रह का रोग प्रायः गले प्रदेश में

शोथ कहा जाता है। चिचिडी (अपामार्ग) चित्रक तुलसी के पत्ते का रस सेंधव पीपरि और हींग मिलाकर नस्य देने से गलग्रह ठीक हो जाता है।२३-२४½।

निशे ज्योतिष्मती पाठा कृष्णा कुष्ठं वचा मधु ॥२५
जिह्वास्तम्भे च लेपोऽयं गुडमूत्रयुतो हितः।
तिलैर्यष्ट्या रजन्या च निम्बपत्रैश्च योजिता ॥२६
क्षौद्रेण शोधनी पिण्डी सर्पिषा व्रणरोपणी।
अभिघातेन खञ्जन्ति ये ह्यश्वास्तीव्रवेदनाः॥२७
परिषेकक्रिया तेषां तैलेनाऽऽशु रुजापहा ॥

हरदी, दारुहरदी, मालकीगुन, पाठ, पीपरि, कूट, वच और मधु में गुड़ और गोमूत्र मिलाकर उसका जिह्वास्तंभ में लेप करना लाभकर होता है। तिल, मुलहठी, हरदी, नीम की पत्ती और मधु से बनाई हुई पिण्डी व्रण का शोधन एवं रोपण करने वाली है। चोट लगने से जो घोड़े लंगड़ाते हैं और उनमें तीव्र वेदना होती है, उनकी तेल से सेंकाई करनी चाहिए जिससे पीड़ा शान्त हो जाती है।२५-२७½।

दोषो कोपाभिघाताभ्यां तलजे लिङ्गिते तथा ॥२८
शान्तिर्मत्स्यण्डिवृद्धाभ्यां पक्वभिन्ने व्रणक्रमः।
अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षमधूकवटबिल्वकैः ॥२९
प्रभूतसलिलक्वाथः सुखोष्णो व्रणशोधनः।
शताह्वानागरं रास्नामञ्जिष्ठाकुष्ठसैन्धवैः ॥३०
देवदारुवचायुग्मरजनीरक्तचन्दनैः।
तैलं सिद्धं कषायेण गुडूच्याः पयसा सह ॥३१
म्रक्षणे वस्तिनस्ये च योज्यं सर्वत्र लिङ्गिते।
रक्तस्रावो जलौकाभिर्नेत्रान्ते नेत्ररोगिणः ॥३२
खदिरोदुम्बराश्वत्थकषायेण च साधनम्।

दोषों के कोप से या चोट लगने से पैर के नीचे फोड़ा हो जाय तो विधारा और चीनी को पकाकर बांधे जब पककर फूट जाय तो व्रण के समान चिकित्सा करनी चाहिए। पीपर, गूलरि, पाकरि, मुलहठी, वट, विल्व का अधिक जल मे बनाया हुआ काढ़ा व्रण का शोधन करने वाला है। सौंफ, सोंठ, रास्ना, मजीठ कूठ, सेंधानमक, देवदारु, वच (कड़ुआ और मीठा) हरदी एवं लाल-

चन्दन (अर्थात् इन द्रव्यों का कल्क बनावें) तथा गुरुचि का काढ़ा और दूव मिलाकर पकावे। इस प्रकार सिद्ध किया हुआ तेल फोड़े में वस्ति में नस्य में और पट्टी बांधने, में उपयुक्त होता है नेत्र के रोगी को जोंक से नेत्र के अन्त में रक्त स्राव करावे। और खैर, गूलर और पीपरि के काढ़े से धोवे।२८-३२½।

धात्रीदुरालभातिक्ताप्रियंगुकुङ्कु मैः समैः ॥३३
गुडूच्या च कृतः कल्को हितो युक्तावलम्बिने।
उत्पाते च शिले श्राव्ये शुष्कशोफे तथैव च ॥३४

आँवला, धमासा, कुटकी, लताप्रियंगु, कुंकुम तथा गुरुचि का कल्क, अंडकोष के लटकने, उसमें पीड़ा होने से उसमैं पत्थर के समान कड़ा होने पर, या फौड़ा हो जाय तो उसका स्राव कराने में तथा अंडकोष के सूख जाने पर लेप करने के लिए उत्तम होता है।३३-३४।

क्षिप्रकारिणि दोषे च सद्योवेधनमिष्यते।
गोशकृन्मञ्जिकाकुष्ठरजनीतिलसर्षपैः ॥३५
गवां मूत्रेण पिष्टैश्च मर्दनं कण्डुनाशनम्।
शीतो मधुयुतः क्वाथो नासिकायां सशर्करः ॥३६
रक्तपित्तहरः पानादश्वकर्णे[1] तथैव च।
सप्तमे सप्तमे देयमश्वानां लवणं दिने ॥३७

दोष यदि शीघ्रकारी हों तो, उसका वेध कर देना चाहिए। गौ का गोबर, मजीठ, कूठ, हरदी, तिल तथा सर्षप को गोमूत्र से पीसकर मर्दन करने से घोड़े की खुजली शान्त हो जाती है। घोड़े के रक्त पित्त में काढ़े को ठंडा करके उसमें मधु तथा शर्करा मिलाकर पिलाने से रक्त पित्त शान्त होता है। काढ़ा नासिका या कान में छोड़ना चाहिए। सातवें-सातवें दिन घोड़े को नमक देना चाहिए।३५-३७।

तथा भुक्तवतां देया प्रतिपाने च वारुणी।
जीवनीयैः समधुरैर्मृद्वीकाशर्करायुतैः ॥३८
सपिप्पलीकैः शरदि प्रतिपानं सपद्मकैः।
विडङ्गापिप्पलीधान्यशताह्वालोध्रसैन्धवैः ॥३९

१—छ.° कर्णैस्तथै°।

[1]सचित्रकैस्तुरंगाणां प्रतिपानं हिमागमे ।
लोध्रप्रियंगुकामुस्तापिप्पलीविश्वभेषजैः ॥४०
सक्षौद्रैः प्रतिपानं स्याद्वसन्ते कफनाशनम् ।
प्रियंगुपिप्पलीलोध्रयष्ट्याह्वैः समहौषधैः ॥४१

घोड़े को भोजन कराने के पश्चात् पुनः पीने के लिए शराव पिलावें । शरद् में जीवनीय वर्ग की ओषधियों तथा पीपरि और मधुर ओषधियों में मुनक्का चीनी और पद्माख मिलाकर प्रतिपान के लिए संधान करे । वायविडंग, पीपरि, धनियां, सौफ, लोध्र एवं सेंधानमक और चित्रक का संधान प्रतिपान के लिए ठंडी के दिनों में करे । वसन्त में कफनाशक प्रियंगु, पीपरि, लोध्र, मुलहठी और सोंठ का प्रतिपान के लिए संधान करके मधु के साथ प्रतिपान के लिए दे ।३८-४१।

निदाघे सगुडा देया मदिरा प्रतिपानके ।
लोध्रकाष्ठं सलवणं पिप्पल्यो विश्वभेषजम् ॥४२
भवेत्तैलयुतैरेभिः प्रतिपानं घनागमे ।
निदाघोद्धृतपित्ता ये शरत्सु पुष्टशोणिताः ॥४३
प्रावृड्भिन्नपुरीषाश्च पिबेयुर्वाजिनो घृतम् ।
पिबेयुर्वाजिनस्तैलं कफवाय्वधिकास्तु ये ॥४४
[2]स्नेहात्तापोद्भवो येषां कार्यं तेषां विरूक्षणम् ।
त्र्यहं यवागू रूक्षा स्याद्भोजनं तक्रसंयुतम् ॥४५

गर्मी के दिनों में मदिरा में गुड़ मिलाकर प्रतिपान के लिए दे । लोध्र की लकड़ी, नमक, तीनों पीपरि और सोंठ का संधान कर तैल मिलाकर वर्षा में दे । जिन अश्वों का गर्मी में पित्त निकल गया हो एवं शरत् ऋतु में रक्त की पुष्टि हो गई हो और वर्षा में पतली टट्टी आ रही हो उन घोड़ों को घृत पिलाना चाहिए । जो अश्व कफ दोष या वायु दोष की अधिकता वाला हो उसे तैल पिलाना चाहिए । स्नेह पिलाने से जिन अश्वों में गर्मी उत्पन्न हो गई हो उसे रूक्ष पदार्थ देना चाहिए । तीन दिनों तक रूक्ष यवागू पिलाना चाहिए और भोजन मट्ठा के साथ दे ।४२-४५।

---

१ ख. सवेत्रकै° । २ छ. स्नेहव्यापद्भ° ।

शरन्निदाघयोः सर्पिस्तैलं शीतवसन्तयोः ।
वर्षासु शिशिरे चैव बस्तौ यमकमिष्यते ॥४६
गुर्वभिष्यन्दिभक्तानि व्यायामः स्नानमातपम् ।
वायुवर्जं च वाहस्य स्नेहपीतस्य वर्जितम् ॥४७

शरत् और गर्मी में घृत, शीत एवं वसन्त में तेल, वर्षा और शिशिर ऋतु में तथा बस्ति में तेल और घृत मिलाकर देना चाहिए । जिस अश्व को स्नेह पान कराया गया हो उसे गरिष्ठ तथा कब्ज कारक भोजन, व्यायाम, स्नान, धूप और तेज हवा से बचा कर रखना चाहिए ।४६-४७।

स्नानं पानं सकृत्कुर्यादश्वानां[1] सलिलागमे ।
अत्यर्थं दुर्दिने काले पानमेकं प्रशस्यते ॥४८
युक्त (क्तं) शीतातपे काले द्विः पानं स्नपनं सकृत् ।
ग्रीष्मे त्रिस्नानं पानं स्याच्चिरं तस्यावगाहनम् ॥४९
निस्तुषाणां प्रदातव्या यवानां चतुराढकी ।
चणकव्रीहिमौद्गानि कलायं वाऽपि दापयेत् ॥५०

वर्षा काल में एक बार ही स्नान और प्रतिपान (शराब का) कराना हितकर है । दुर्दिन (जिस दिन मेघ से आच्छादित आकाश हो) में केवल एक पान ही अधिक कराना चाहिये । शीत और धूप के समय एक बार स्नान और दो बार प्रतिपान करावे । ग्रीष्म ऋतु में तीन बार स्नान और पान करावे देर तक जल में तैरावे । भूसी निकाल कर चार सेर यव खाने को दे । इसी तरह चना, व्रीहि, मूंग और छोटी काली मटर भी दे ॥ ४८-५० ॥

अहोरात्रेण चार्धस्य यवसस्य तुला दश ।
अष्टौ शुष्कस्य दातव्याश्चतस्रोऽथ वपुष्मतः ॥५१
दूर्वाः पित्तं यवः कासं बुसश्च श्लेष्मसंचयम् ।
नाशयत्यर्जुनः श्वासं तथा वालो बलक्षयम् ॥५२
वातिकाः पैत्तिकाश्चैव श्लेष्मजाः सांनिपातिकाः ।
न रोगाः पीडयिष्यन्ति दूर्वाहारं तुरंगमम् ॥५३

१—क. ख. ङ. समुद्दिष्टमश्वा° ।

२४ घन्टे में अच्छे शरीर वाले घोड़े को यवस के दश तुला का आधा (पाँच तुला) एवं शुष्क खाद्य पदार्थ आठ तुला या चार तुला देनी चाहिए। दूब पित्त को, जौ कास को, भूसा श्लेष्म के संचय को, अर्जुन श्वास को और वाल वलक्षय को नष्ट करता है। जिस घोड़े को केवल दूब खिलाया जाता है उसे वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और सान्निपातिक रोग नही होते ॥ ५१-५३ ॥

द्वौ रज्जुबन्धौ दुष्टानां पक्षयोरुभयोरपि ।
[1]पश्चाद्धनुश्च कर्तव्यो दूरकीलव्यपाश्रयः ॥५४
वा (व) सेयुस्त्वास्तृते स्थाने कृतधूपनभूमयः ।
यत्नोपन्यस्तयवसाः सप्रदीपाः सुरक्षिताः ॥५५
कृकवाक्वजकपयो धार्याश्चाश्वगृहे मृगाः ॥५६

दुष्ट अश्व के बगलों में दो खूंटी गाड़ कर रस्सी से बांध दे और बहुत दूर पर खूंटी गाड़ कर एक पिछाड़ी लगावे। घोड़े को फैले हुए स्थान में धूप करके यत्न पूर्वक यवस (आहार) रखकर और दीप रखकर सुरक्षित रखे। घुड़साल में मुर्गा, बकरा, वानर और मृगों को रखना चाहिए॥ ५४-५६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये अश्वचिकित्साकथनं नामैकोन-
नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२८९

अथ नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अश्वशान्तिः

शालिहोत्र उवाच—

अश्वशान्ति प्रवक्ष्यामि वाजिरोगविमर्दनीम् ।
नित्यां नैमित्तिकीं काम्यां विविधां शृणु सुश्रुत ॥१
शुभे दिने श्रीधरं च श्रियमुच्चैःश्रवः सुतम् ।
हयराजं समभ्यर्च्य सावित्रैर्जुहुयाद्घृतम् ॥२

१—क॰ ङ० श्चाद्रुन्धश्च ।

शालिहोत्र बोले—हे सुश्रुत ! अब मैं नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य अनेक प्रकार की अश्व शान्ति बतलाऊंगा, जो कि घोड़ों के रोगों को दूर करने वाली है। शुभ दिन में श्री विष्णु, लक्ष्मी तथा उच्चैःश्रवा के पुत्र हयराज की अर्चना करके गायत्री-मन्त्र से घृत की आहुति दे ॥ १-२ ॥

द्विजेभ्यो दक्षिणां दद्यादश्ववृद्धिस्ततो भवेत् ।
अश्वयुक्शुक्लपक्षस्य पञ्चदश्यां च शान्तिकम् ॥३
वहिः कुर्याद्विशेषेण नासत्यौ वरुणं यजेत् ।
समुल्लिख्य ततो देवीं शाखाभिः परिवारयेत् ॥४
घटान्सर्वरसैः पूर्णान्दिक्षु दद्यात्सवस्त्रकान् ।
यवाज्यं जुहुयात्प्राच्र्य यजेदश्वांश्च साश्विनान् ॥५

तत्पश्चात् ब्राह्मणों को दक्षिणा देनी चाहिए। इससे अश्वों की वृद्धि होती है। आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को (घोड़ों की) वाह्य शान्ति के लिए विशेष रूप से अश्वनीकुमार और वरुण की पूजा करनी चाहिए। तदनन्तर देवी का चित्र बनाकर उसे शाखाओं से ढक देना चाहिये। सभी प्रकार के रसों से परिपूर्ण, वस्त्रों से ढके हुए घड़ों को दसों दिशाओं में रखकर पूजा करनी चाहिए। और तदनन्तर यव यथा घृत की आहुति देनी चाहिए। उसके बाद अश्विनीकुमार के साथ घोड़ों के लिए भी यजन करके, ब्राह्मणों को दक्षिणा देनी चाहिए ॥ ३-५ ॥

विप्रेभ्यो दक्षिणां दद्यान्नैमित्तिकमतः शृण ।
मकरादौ हयानां च पद्मै विष्णं श्रियं यजेत् ॥६
ब्रह्माणं शंकरं सोममादित्यं च तथाऽश्विनौ ।
रेवन्तमुच्चैः श्रवसं दिक्पालांश्च दलेष्वपि ॥७
प्रत्येकं पूर्णकुम्भेषु वेद्यां तत्सौम्यता (या) [1]हुनेत् ।
तिलाक्षताज्यसिद्धार्थान्देवतानां शतं शतम् ।
उपोषितेन कर्तव्यं कर्म चाश्वरुजापहम् ॥८

अब घोड़ों की नैमित्तिक शान्ति के सम्बन्ध में सुनो। मकर संक्रान्ति आदि शुभ पर्वो में कमलों से श्री विष्णु और लक्ष्मी का पूजन करना

१—छ. स्यले ।

चाहिए। कमलों के दलों में ब्रह्मा, शंकर; सोम, सूर्य, अश्विनीकुमार, रेवन्त, उच्चैःश्रवा तथा दिक्पालों की पूजा करनी चाहिए। वेदी के ऊपर रखे हुए प्रत्येक जल पूरित घड़े में तिल, अक्षत घी और सरसों से देवताओं की प्रसन्नता के लिए सौ-सौ आहुतियां देनी चाहिये। इससे अश्व में सौम्य गुण बढ़ता है। अश्वपालक को उपवास करके घोड़े के रोगों को दूर करने के लिए अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ६-८ ॥

इत्यादिमहापुराण आग्नेये अश्वशान्तिकथनं नाम
नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२९०

अथैकनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

गजशान्तिः

शालिहोत्र उवाच—

गजशान्तिं प्रवक्ष्यामि गजरोगविमर्दनीम् ।
विष्णुं श्रियं च पञ्चम्यां नागमैरावतं यजेत् ॥१
ब्रह्माणं शंकरं विष्णुं शक्रं वैश्रवणं यमम् ।
चन्द्रार्कौ वरुणं वायुमग्निं पृथ्वीं तथा च खम् ॥२
शेषं शैलान्कुञ्जरांश्च ये तेऽष्टौ देवयोनयः ।
विरूपाक्षं महापद्मं भद्रं सुमनसं तथा ॥३
कुमुदैरावणः पद्मः पुष्पदन्तोऽथ वामनः ।
सुप्रतीकोऽञ्जनो नागा अष्टौ होमोऽथ दक्षिणाम् ॥४

शालिहोत्र बोले—(अब) मैं हाथियों के रोगों को दूर करने वाली (गज) शान्ति बतलाऊंगा। पञ्चमी तिथि को विष्णु, लक्ष्मी तथा ऐरावत गज की अर्चना करनी चाहिये। (गजों की शान्ति हेतु) ब्रह्मा, शंकर, विष्णु, इन्द्र, कुबेर, यम, चन्द्र, सूर्य, वरुण, वायु, अग्नि, आकाश, शेषनाग, आठों हाथियों, देवयोनियां, विरूपाक्ष (शंकर), महापद्म (विधि विशेष) भद्र, सुमनस् और कुमुद, ऐरावण, पद्म, पुष्पदन्त, वामन, सुप्रतीक, अञ्जन, सर्वभौम नामक

आठों दिग्गजों की पूजा करनी चाहिए। इसी शान्ति के लिए हवन करके दक्षिणा भी देनी चाहिये ॥ १-४ ॥

गजाः शान्त्युदकैः सिक्ता वृद्धौ नैमित्तिकं शृणु ।
गजानां मकरादौ च ऐशान्यां नगराद्वहिः ॥५
स्थण्डिले कमले मध्ये विष्णुं लक्ष्मीं च केसरे ।
ब्रह्माणं भास्करं पृथ्वीं यजेत्स्कन्दं ह्यनन्तकम् ॥६

अब हाथियों की वृद्धि के हेतु नैमित्तिक शान्ति के विषय में सुनो। माङ्गलिक मन्त्रों से अभिमन्त्रित जल से हाथियों को स्नान कराना चाहिए। शुभ मुहूर्त में नगर के वाहर ईशान कोण में गजों की शान्ति करानी चाहिये। पृथ्वी पर एक कमल की स्थापना करके उसके मध्य में विष्णु और लक्ष्मी का पूजन करना चाहिये। स्थण्डिल के ऊपर बने हुये कमल के बीच में विष्णु और लक्ष्मी का तथा केसर पर ब्रह्मा, सूर्य, पृथ्वी, स्कन्द और (षडानन) अनन्तक का पूजन करना चाहिये ॥ ५-६ ॥

खं शिवं सोममिन्द्रादींस्तदस्त्राणि दले क्रमात् ।
वज्रं शक्तिं च दण्डं च तोमरं पाशकं गदाम् ॥७
शूलं पद्मं बहिर्वृन्ते (त्ते) चक्रे सूर्य तथाऽश्विनौ ।
वसूनष्टौ तथा साध्यान्याम्येऽथ नैर्ऋते दले ॥८

आकाश, शिव, चन्द्रमा, इन्द्र आदि देवताओं तथा क्रमशः उनके वज्र शक्ति, दण्ड, तोमर, पाश, गदा, शूल, पद्म आदि आयुधों का पूजन (उस कमल के) दलपर करना चाहिए। दक्षिणाभिमुख होकर कमल के वृन्त के बाहर चक्र में सूर्य, अश्विनीकुमार, आठो वसु, तथा (अन्य) साध्य (देवताओं) की पूजा करनी चाहिए ॥ ७-८ ॥

देवानाङ्गिरसश्चान्यान्भृगू (गूं) श्च मरुतोऽनिले ।
विश्वे (श्व) देवांस्तथा दक्षे रुद्रानरौद्रेऽथ मण्डले ॥९
वृत्तया रेखया तत्र देवान्वै बाह्यतो यजेत् ।
सूत्रकारानृषीन्वाणीं पूर्वादौ सरितो गिरीन् १०

नैर्ऋत कोण में स्थित (उस) कमल दल पर देवताओं तथा अङ्गिरा, भृगु आदि ऋषियों की अर्चना करनी चाहिये। वायव्य कोण में रखे हुए

कमल दल पर पवन देव की दक्षिण दिशा में विश्वदेवों की रौद्र मण्डल (अर्थात् ईशानकोण) में (रखे हुये कमल दल पर) एकादश रुद्रों की अर्चना करनी चाहिये। बाहर गोलाकृति रेखा के ऊपर देवताओं का आवाहन तथा पूजन करना चाहिये। पूर्व आदि दिशाओं में सूत्रकार ऋषियों, वाग्देवता, सरिताओं तथा पर्वतों का पूजन करना चाहिये ॥ ९-१० ॥

महाभूतानि कोणेषु ऐशान्यादिषु संयजेत्।
पद्मं चक्रं गदां शङ्खं चतुरश्रं तु मण्डलम् ॥११
चतुर्द्वारं ततः कुम्भानग्न्यादौ च पताकिकाः।
चत्वा (तु) रस्तोरणान्द्वारि (?) नागानैरावतादिकान् ॥१२

ईशान आदि कोणों में महाभूतों की अर्चना करनी चाहिए। पद्म, चक्र, गदा, शङ्ख, चौकोर मण्डल, चतुर्द्वार अग्न्यादि कोणों में संस्थापित घड़ों, छोटी-छोटी पताकाओं, चार तोरण (जो द्वार पर बंधे हों) तथा ऐरावत आदि गजों की भी पूजा करनी चाहिये ॥ ११-१२ ।

पूर्वादौ चौषधीभिश्च देवानां भाजनं पृथक्।
पृथक्शताहुतीश्चाऽऽज्यैर्गजानर्च्य प्रदक्षिणम् ॥१३
नागं वह्निं देवतादीन्वाद्यैर्जग्मुः स्वकं गृहम्।
द्विजेभ्यो दक्षिणां दद्याद्धस्तिवैद्यादिकांस्तथा ॥१४

पूर्वादि दिशाओं में ओषधियों से देवताओं के पात्रों तथा गजों का पृथक् पूजन करके और घृत की सौ आहुतियाँ देकर तदनन्तर प्रदक्षिणा करनी चाहिए। उसके बाद हाथी, वह्नि तथा अन्यान्य देवताओं की परिक्रमा करके गाजे-बाजे के साथ अपने घर को आना चाहिए। ब्राह्मणों तथा हस्ति-चिकित्सा-निपुण वैद्यों को दक्षिणा भी देनी चाहिए ॥ १३-१४ ॥

करिणं तु समारुह्य वदेत्कर्णे तु कालवित्।
नागराजे मृते शान्तिं कृत्वाऽन्यस्मिञ्जपेन्मनुम् ॥१५
श्रीगजस्त्वं कृतो राज्ञा भवानस्य गजाग्रणीः।
गन्धमाल्याग्रभक्तैस्त्वां पूजयिष्यति पार्थिवः ॥१६

देशकाल के ज्ञाता व्यक्ति को (युद्ध यात्रा आदि में) हाथी पर चढ़कर उसके कान में अपने मनोरथ की सिद्धि के लिये कुछ कहना चाहिये।

गजराज की मृत्यु हो जाने पर उसके शरीर को शान्त करके इस मन्त्र का जप करना चाहिये—'हे गजदेव ! राजा ने तुम्हें श्रीगज वाला महत्व प्रदान किया है। तुम इस राजा के अग्रणी हो। यह राजा, चन्दन, माल्य तथा श्रेष्ठ भोजनों से तुम्हारी पूजा करेगा ॥ १५–१६ ॥

लोकस्तदाज्ञया पूजां करिष्यति तदा तव ।
पालनीयस्त्वया राजा युद्धेऽध्वनि तथा गृहे ॥१७
तिर्यग्भावं समुत्सृज्य दिव्यं भावमनुस्मर ।
देवासुरे पुरा युद्धे श्रीगजस्त्रिदशैः कृतः ॥१८
ऐरावतसुतः श्रीमानरिष्टो नाम वारणः ।
श्रीगजानां तु तत्तेजः सर्वमेवोपतिष्ठिते ॥१९

तदनन्तर उस (राजा) की ही आज्ञा से सभी मनुष्य भी तुम्हारी पूजा किया करेंगे। तुम्हें युद्ध, मार्ग तथा घर में राजा की रक्षा करनी चाहिए। तुम तिर्यग्भाव (पशुत्व भाव) को छोड़कर दिव्य भाव का स्मरण करो। प्राचीन काल में देवासुर संग्राम में देवताओं ने ऐरावत के पुत्र श्रीमान् अरिष्ट नामक हाथी को श्रीगज के रूप में बनाया था। जिसमें (अन्य) समस्त श्री-गजों का तेज भी व्याप्त हो गया था ॥ १७-१९ ॥

तत्तेजस्तव नागेन्द्र दिव्यभावसमन्वितम् ।
उपतिष्ठतु भद्रं ते रक्ष राजानमाहवे ॥२०
इत्येवमभिषिक्तं तमारोहेत शुभे नृपः ।
तस्यानुगमनं कुर्युः सशस्त्रा नरपुंगवाः ॥२१

हे गजेन्द्र ! दिव्य भाव से परिपूर्ण वह समस्त तेज तुम्हारे अन्दर आ जावे। तुम युद्ध में राजा की रक्षा करो। राजा को इस प्रकार से अभिषिक्त हुये हाथी के ऊपर शुभ मुहूर्त में सवारी करनी चाहिये। उसके पीछे-पीछे शस्त्रधारी श्रेष्ठ पुरुषों को चलना चाहिये ॥ २०-२१ ॥

शालास्वसौ स्थण्डिलेऽब्जे दिक्पालादीन्यजेद्बहिः ।
केसरेषु बलं नागं भुवं चैव सरस्वतीम् ॥२२
[1]मध्ये तु डिण्डिमं[2] प्राच्यं गन्धमाल्यानुलेपनैः ।
हुत्वा देयस्तु कलशो रसपूर्णो द्विजाय च ॥२३

---

१. छ. मध्येषु डि। २ क. ङ च. दण्डिनं ।

गजाध्यक्षं हस्तिपं च गणितज्ञं च पूजयेत् ।
गजाध्यक्षाय तं दद्याड्डिण्डिमं सोऽपि वादयेत् ।
शुभगम्भीरशब्दैः स्याज्जघनस्थोऽभिवादयेत् ॥२४

गजशाला के बाहर भूमि पर चित्रित कमल में दिक्पालों का यजन करना चाहिये । कमल के केसरों पर सेना, गज, पृथ्वी तथा सरस्वती जी की पूजा करनी चाहिये । कमल के मध्य भाग में डिण्डिम का गन्ध, माल्य तथा अनुलेपन के द्वारा पूजन करना चाहिए । गजाध्यक्ष, हस्तिप (पीलवान) तथा गणितज्ञ (ज्योतषी) की पूजा भी करनी चाहिये । गजाध्यक्ष को डिण्डिम नामक वाजा देना चाहिए जिसे उस गजाध्यक्ष को बजाना चाहिए । तदनन्तर गजराज के जघन-प्रदेश पर अवस्थित होकर अच्छे-अच्छे गम्भीर शब्दों से उसका अवभिादन करना चाहिए ॥ २२-२४ ॥

**इत्यादिमहापुराण आग्नेये गजशान्तिकथनं नामैक-
नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२६१**

अथ द्विनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः
गवायुर्वेदः

धन्वन्तरिरुवाच—
गोविप्रपालनं कार्यं राज्ञा गोशान्तिमावदे ।
गावः पवित्रा माङ्गल्या गोषु लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥१

धन्वन्तरि बोले—गो और ब्राह्मण का पालन करना राजा का कर्त्तव्य है । गो-शान्ति को कहता हूँ । गो पवित्र और मंगलकारी है, गो पर लोक प्रतिष्ठित है ॥ १

शकृन्मूत्रं परं तासामलक्ष्मीनाशनं परम् ।
गवां कण्डूयनं वारिदानं शृङ्गस्य मर्दनम् ॥२
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि [1]सर्पिः कुशोदकम् ।
([2]षडङ्गं परमं पाने दुःस्वप्नादिनिवारणम् ॥३

---

१. छ. सर्पिश्च रोचना । ष° । २ षडङ्ग... ..कुशोदकम् ग्रन्थोऽयं च. पुस्तके नास्ति ।

रोचना विषरक्षोघ्नी ग्रासदः स्वर्गगो गवाम् ।
यद्गृहे दुःखिता गावः स याति नरकं नरः ॥४
परगोग्रासदः स्वर्गी गोहितो ब्रह्मलोकभाक् ।
गोदानात्कीर्तनाद्रक्षां कृत्वा चोद्धरते कुलम् ॥५

गौ का गोबर और मूत्र दरिद्रता-नाश का परम उपाय है। गौ को खुजलाना, जल देना और सींग मल देना चाहिये। गोमूत्र, गोबर, गो का दूध, दही, घृत और कुश का पानी ये छ वस्तुएं पीने से दुःस्वप्न आदि निवारण में अति उत्तम है। गोरोचन के विष एवं राक्षसों का नाश होता है। गौओं को ग्रास देना स्वर्ग प्राप्त कराता है। जिस घर में गौ दुःखित रहती है वह घर नरक हो जाता है। दूसरे के गो को अग्रासन देना स्वर्ग प्राप्त करना है। गो का हित करने वाला ब्रह्म लोक प्राप्त करना है। गोदान से गोओं के कीर्तन से रक्षा करने से कुल का उद्धार होता है ॥ २-५ ॥

गवां श्वासात्पवित्रा भूः स्पर्शनात्किल्विषक्षयः ।
गोमूत्रं गोमयं सर्पिः क्षीरं दधि कुशोदकम्) ॥६
एकरात्रोपवासश्च श्वपाकमपि शोधयेत् ।
सर्वाशुभविनाशाय पुराऽऽचरितमीश्वरैः ॥७

गौ के श्वास से भूमि पवित्र हो जाती है। स्पर्शन से पाप क्षीण हो जाता है। गोमूत्र, गोमय, दूध, दही, घृत और कुशोदक का पान करके एक रात्रि उपवास करने से श्वपाकता से भी शुद्धि हो जाती है। संपूर्ण अशुभों के नाश के लिये ईश्वर ने पूर्व काल में गौ की रचना की थी ॥ ६-७ ॥

प्रत्येकं च त्र्यहाभ्यस्तं महासांतपनं स्मृतम् ।
सर्वकामप्रदं चैतत्सर्वाशुभविमर्दनम् ॥८
कृच्छ्रातिकृच्छ्रं पयसा दिवसानेकविंशतिम् ।
निर्मलाः सर्वकामाप्त्या स्वर्गगाः स्युर्नरोत्तमाः ॥९
त्र्यहमुष्णं पिबेन्मूत्रं त्र्यहमुष्णं घृतं पिबेत् ।
त्र्यहमुष्णं पयः पीत्वा वायुभक्षः परं त्र्यहम् ॥१०

पञ्च गव्य में से किसी एक का भी तीन दिन तक सेवन करने से महासंतापन कर्म कहा जाता है। यह सम्पूर्ण कामनाओं को देने वाला तथा सम्पूर्ण अशुभों का नाशक है। इक्कीस दिन तक गौ के दूध मात्र पर रहने से कृच्छ्र से

कृच्छ्र व्रत कहा जाता है जो सम्पूर्ण पाप नष्ट करता है। वह नरोत्तम पवित्र होकर सब कामनाओं को प्राप्त करके स्वर्ग जाता है तीन दिन तक गर्म-गर्म मूत्र पीवे, तीन दिन तक गर्म घृत पीवे, तीन दिन तक गर्म दूध पीवे और वाद के तीन दिन वायु पीवे ॥८-१०॥

तप्तकृच्छ्रव्रतं सर्वपापघ्नं ब्रह्मलोकदम् ।
शीतैस्तु शीतकृच्छ्रं स्याद्ब्रह्मोक्तं ब्रह्मलोकदम् ॥११
गोमूत्रेणाऽऽचरेत्स्नानं वृत्ति कुर्याच्च गोरसैः ।
गोभिर्व्रजेच्च भुक्तासु भुञ्जीताथ च गोव्रती ॥१२
मासेनैकेन निष्पापो गोलोकी [1]सगणो भवेत् ।
विद्यां च गोमतीं जप्त्वा गोलोकं परमं व्रजेत् ॥१३

इसे तप्तकृच्छ्रव्रत कहते हैं। यह व्रत सर्व पापों का नाश करने वाला तथा ब्रह्मलोक देने वाला है। ऊपर की ही वस्तुओं का ठंडा सेवन करे तो शीत कृच्छ्र कहा जाता है। यह ब्रह्मा का कथन है। यह व्रत ब्रह्मलोक देने वाला है। गोमूत्र से स्नान कर गोरस का ही भोजन करे। गौओं के भोजन कर लेने के वाद भोजन करे और गौओं के साथ टहले। इस प्रकार गो व्रत धारण करे। एक मास ऐसा व्रत कर लेने से निष्पाप होकर स्वर्ग को जाता है और गोमती विद्या का जाप करके गोलोक को जाता है ॥११-१३॥

गीतैर्नृत्यैरप्सरोभिर्विमाने तत्र मोदते ।
गावः सुरभयो नित्यं गावो गुग्गुलुगन्धिकाः ॥१४
गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावः स्वस्त्ययनं परम् ।
अन्नमेव परं गावो देवानां हविरुत्तमम् ॥१५
पावनं सर्वभूतानां क्षरन्ति च वहन्ति च ।
हविषा मंत्रपूतेन तर्पयन्त्यमरान्दिवि ॥१६

स्वर्ग में विमानों से टहलता है, अप्सराओं के गीत एवं नृत्य सुनने व देखने को मिलता है। गौएं नित्य सुगन्धित रहती हैं। उनके गन्ध गुग्गुल के गन्ध के समान होता है। प्राणियों की प्रतिष्ठा गौएं है। गौएं ही परम स्वस्त्ययन है। देवों की हवि के लिए अन्न गोरस ही है। समस्त प्राणियों को पवित्र करने वाली गौएं हैं। सबकी रक्षा और वहन करने वाली हैं। मंत्र से पवित्र करके

---

१ छ. स्वर्गगो ।

हवन सामग्री से गोधन आदि के द्वारा देवताओं को भी स्वर्ग में तृप्त करने वाली हैं।१४-१६।

ऋषीणामग्निहोत्रेषु गावो होमेषु योजिताः।
सर्वेषामेव भूतानां गावः शरणमुत्तमम् ॥१७
गावः पवित्रं परमं गावो माङ्गल्यमुत्तमम्।
गावः स्वर्गस्य सोपानं गावो धन्याः सनातनाः ।१८

ऋषियों के अग्निहोत्र तथा हवन के लिए गौ ही नियुक्त है। सम्पूर्ण प्राणियों का शरण गौ ही हैं। गौ परम पवित्र हैं। गौ उत्तम मांगल्य वस्तु हैं। गौ ही स्वर्ग की सीढ़ी हैं। और गौ ही धन्य एवं सनातन हैं।१७-१८।

नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च।
नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः ॥१९
ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम्।
एकत्र मंत्रास्तिष्ठन्ति हविरेकत्र तिष्ठति ॥२०

गौओं के लिए नमस्कार है, श्रीमती के लिए नमस्कार है। कामधेनु के लिए नमस्कार है। ब्रह्मसुता के लिए नमस्कार है। पवित्रा के लिए नमस्कार है। गौ और ब्राह्मण इन दोनों का कुल एक था किन्तु प्रायोजन की दृष्टि से वह पृथक्-पृथक् कर दिया गया। गौओं के ऊपर हवि आधारित की गई तथा ब्राह्मणों के ऊपर मंत्र आधारित किये गये।१९-२०।

देवब्राह्मणगोसाधुसाध्वीभिः सकलं जगत्।
धार्यते वै सदा तस्मात्सर्वे पूज्यतमा मताः ॥२१
पिबन्ति यत्र तत्तीर्थं गङ्गाद्या गाव एव हि।
गवां माहात्म्यमुक्तं हि चिकित्सां च तथा शृणु ॥२२
शृङ्गामयेषु धेनूनां तैलं दद्यात्ससैन्धवम्।
शृङ्गवेरबलामांसीकल्कसिद्धं समाक्षिकम् ॥२३

देवता, ब्राह्मण, गौ, साधु और साधुनी पवित्र हैं। ये सम्पूर्ण जगत् को धारण करते हैं। इसलिए ये सब सदा पूज्यतम हैं। जहाँ पर गौएं पानी पीती हों वहाँ तीर्थ है और गौएँ गंगा आदि नदियाँ भी मानी जाती हैं। इस प्रकार गौ का महात्म्य कहा अब चिकित्सा सुनो। जब गौ को सींग सम्बन्धी कोई रोग

हो जाय तब सेंधानमक मिलाकर तेल पिलावें अदरख, वरिअरा, जटामांसी का कल्क बनाकर उसमें मधु मिलाकर पिलावे ।२१-२३।

कर्णशूलेषु सर्वेषु मञ्जिष्ठाहिङ्गुसैन्धवैः ।
सिद्धं तैलं प्रदातव्यं रसोनेनाथ वा पुनः ॥२४
बिल्वमूलमपामार्गं धातकी च सपाटला ।
कुटजं दन्तशूलेषु[1] लेपात्तच्छूलनाशनम् ॥२५
दन्तशूलहरैर्द्रव्यैर्घृतं[2] रामविपाचितम् ।
(मुखरोगहरं[3] ज्ञेयं जिह्वारोगेषु सैन्धवम् ॥२६

सब प्रकार के कर्णशूल में मजीठ, हीग तथा सेंधा नमक मिलाकर तेल पकावे अथवा लहसुन के कल्क डालकर तेल पकावे उस तेल को कान में डाले । वेल की जड़, चिचड़ी, धव का फूल, पाठा और इन्द्र जौ को पीसकर दन्तशूल में लेप करने से वह ठीक होता है । दन्तशूल का नाशक द्रव्यों के क्वाथ और कल्क से पकाया हुआ घृत गौओं के सम्पूर्ण मुखरोग तथा दन्तरोग में मालिस करना उत्तम है । जिह्वा रोग हो तो उसमें सैंधव मिलाकर मालिश कर दे ।२४-२६।

शृङ्गवेरं हरिद्रे द्वे त्रिफला च गलग्रहे ।
हृच्छूले बस्तिशूले च वातरोगे क्षये तथा ॥२७
त्रिफला घृतमिश्रा च गवां पाने प्रशस्यते ।
अतीसारे हरिद्रे द्वे पाठां चैव प्रदापयेत् ॥२८
सर्वेषु कोष्ठरोगेषु[4] तथा शाखागदेषु च ।
शृङ्गवेरं च भार्ङ्गीं च कासे श्वासे प्रदापयेत् ॥२९

अदरख, हरदी, दारुहरदी, त्रिफला का गलग्रह रोग (गलघोंटू) में काढ़ा बनाकर देना चाहिए । तथा हृदयशूल, वस्तिशूल, वातरोग और क्षयरोग में भी देना चाहिए । घृत और त्रिफला गौ को पिलाना चाहिए । अतीसार रोग में दोनों हरदी तथा पाठा को काढ़े के रूप में देना उचित है । सम्पूर्ण कोष्ठ के रोगों में श्वास कास में और शाखा के रोग में अदरख और भारंगी को काढ़े के रूप में देना चाहिए ।२७-२९।

---

१. छ. दन्तमूलेषु । २. च.° तं वाम° । ३. क. ङ. मुखरोगहरं…नमोन्ताश्च पुस्तकयोर्नास्ति । ४. च रोमरागेषु ।

दातव्या भग्नसंधाने प्रियंगुर्लवणान्विता ।
तैलं वातहरं पित्ते मधुयष्टीविपाचितम् ॥३०
कफे व्योषं च समधु सपुष्टकरजोऽस्रजे ।
तैलाज्यं हरितालं च भग्नक्षतिशृतं ददेत् ॥३१
माषास्तिलाः सगोधूमाः पयः[1] क्षीरं घृतं तथा ।
एषां पिण्डी सलवणा वत्सानां पुष्टिदा त्वियम् ॥३२

गौ की कहीं हड्डी टूट जाय तो उसे जोड़ने के लिए लता प्रियंगु में सेंधा-नमक मिलाकर दे । तेल वात हर है । जेठी मधु से पकाया गया तेल पित्त-हर है । कफज रोग में सोंठ मिर्च पीपरि का काढ़ा बनाकर उसमें मधु मिलाकर दे । यह रक्तस्राव में भी पुष्टिकारक है । कहीं पर कट फट गया हो तो गर्म करके तैलघृत में हरताल देवे । उड़द, तिल, गेहूँ, दूध, घृत, खीर की पिण्डी में नमक मिलाकर बछड़े को देने से पुष्टि होती है ।३०-३२।

बलप्रदा विषाणां स्याद्गृहे नाशाय धूपकः ।
देवदारु वचा मांसी गुग्गुलुर्हिङ्गुसर्षपा· ॥३३
ग्रहादिगदनाशाय एष धूपो गवां हितः ।
घण्टा चैव गवां कार्या धूपेनानेन धूपिता ॥३४
अश्वगन्धातिलैः शुक्लं तेन गौः क्षीरिणी भवेत् ।
रसायनं च पिण्याकं [2]मूर्तौं यो धार्यते (?) गृहे ॥३५

गोशाला में विष, ग्रह, रोग आदि को नाश करने के लिए देवदारु, वच, जठामांसी, गुग्गुल, हींग और सर्षप की धूनी दें । इससे धूपितकर गौओं को घंटा बाँधे । असगंध तथा सफेद तिल मिलाकर देने से गौ में दूध बढ़ जाता है । जो घर पर रसायन तथा खली रखता है, वह भी उचित है । तिल की खली रसायन है जो कि पिंड रूप में घर में रक्खी जाती है ।३३-३५।

गवां पुरीषे पञ्चम्यां नित्यं शान्त्यै श्रियं यजेत् ।
वासुदेवं च गन्धाद्यैरपरा शान्तिरुच्यते ॥३६
अश्वयुक्शुक्लपक्षस्य पञ्चदश्यां यजेद्धरिम् ।
हरिं रुद्रमजं सूर्यं श्रियमग्निं घृतेन च ॥३७
दधि संप्राश्य गाः पूज्य कार्या वह्निप्रदक्षिणाः ।
वृषाणां योजयेद्युद्धं गीतवाद्यरवैर्बहिः ॥३८

---

१. छ. पशक्षीं । २. ख. मत्तो ।

शान्ति कर्म के लिए गोवर में पञ्चमी तिथि को सदा श्री का यज्ञ करे। गन्ध, पुष्प आदि से वासुदेव की पूजा को दूसरी शान्ति कहते हैं। आश्विन मास की शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा के दिन हरि की पूजा करे। हरि रुद्र, ब्रह्मा, सूर्य, लक्ष्मी और अग्नि की घृत से पूजा करे। युद्ध यात्रा करने के पूर्व दही का प्राशन कर गौ की पूजा कर और अग्नि की प्रदक्षिणा करके तब वैलों को रथ में युद्ध यात्रा के लिए जोड़े। और वाहर में गीत-वाजा आदि की ध्वनि करावे।३६-३८।

गवां तु लवणं देयं ब्राह्मणानां च दक्षिणा।
नैमित्तिके माकरादौ यजेद्विष्णुं सह श्रिया ॥३९
स्थण्डिलेऽब्जे मध्यगते दिक्षु केसरगान्सुरान्।
[1]सुभद्राय रविः पूज्यो वहुरूपो वलिर्वहिः ॥४०
खं विश्वरूपा सिद्धिश्च ऋद्धिः शान्तिश्च रोहिणी।
दिग्धेनवो हि पूर्वाद्याः कृशरैश्चन्द्र ईश्वरः ॥४१

गौ को नमक और ब्राह्मणों को दक्षिणा दे। नैमित्तिक मकर आदि संक्रान्ति के पर्व में लक्ष्मी के साथ विष्णु का याग करे। वेदी पर मध्य में कमल बना कर और केसर से दिशाओं में देवताओं को वनाकर कल्याण के लिए बहु-रूप वाले सूर्य की पूजा करे और बाहर वलि दे। आकाश में विश्वरूप (परमात्मा) की और पूर्वादि दिशाक्रम से सिद्धि ऋद्धि, शान्ति, रोहिणी दिशाओं की गोमातायें, चन्द्र और ईश्वर की कृशर (खिचड़ी) से पूजा करे।३९-४१।

दिक्पालाः पद्मपत्रेषु कुम्भेष्वग्नौ च होमयेत्।
क्षीरवृक्षस्य समिधः सर्षपाक्षततण्डुलान् ॥४२
शतं शतं सुवर्णं च कांस्यादिकं द्विजे ददेत्।
गावः पूज्या विमोक्तव्याः शान्त्यै क्षीरादिसंयुताः ॥४३

दिक्पालों को कमल के पत्ते पर तथा घड़ों में और अग्नि में हवन करे। पीपल की लकड़ी की समिधा, सरसों अक्षत (चावल) का हवन करे सौ-सौ सुवर्ण की मुद्रा और कांस्य आदि का वर्तन ब्राह्मणों को दे। दूधवाली गौएँ ब्राह्मण को शान्ति कर्म के लिए देनी चाहिए।४२-४३।

---

१ छ. सुमद्राजो।

अग्निरुवाच—

शालिहोत्रः सुश्रुताय हयायुर्वेदमुक्तवान् ।
पालकाप्योऽङ्गराजाय गजायुर्वेदमब्रवीत् ॥४४

अग्निदेव बोले—शालिहोत्र ने सुश्रुत के लिए हयायुर्वेद को कहा और पाल काप्य ने अंगराज के लिए गजायुर्वेद को कहा ।४४।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गवायुर्वेदकथनं नाम द्विनवत्यधिक-द्विशततमोऽध्यायः ।२९२

अथ त्रिनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मंत्रपरिभाषा

अग्निरुवाच—

[1]मंत्रविद्यामहं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदां शृणु ।
विंशत्यर्णाधिका मंत्रा मालामंत्राः स्मृता द्विज ॥१
दशाक्षराधिका मंत्रास्तदर्वाग्वीजसंज्ञिताः ।
वार्धक्ये सिद्धिदा ह्येते मालामंत्रास्तु यौवने ॥२
पञ्चाक्षराधिका मंत्रा सिद्धिदाः सर्वदा परम् ।
स्त्रीपुंनपुंसकत्वेन त्रिधा स्युर्मन्त्रजातयः ॥३

अग्निदेव बोले—अये द्विज ! (अब) मैं सांसारिक आनन्द और मुक्ति प्रदान करने वाली मंत्र विद्या वतलाऊँगा । वीस अक्षरों से अधिक अक्षरों वाले मंत्र मालामंत्र के नाम से प्रसिद्ध हैं । एक साथ दश अक्षरों से अधिक अक्षरों वाले मंत्र वीज मंत्र के नाम से प्रसिद्ध है । वीज मंत्र वृद्धावस्था में सिद्धिदायक होते हैं । और माला-मंत्रों से युवावस्था में सिद्धि प्राप्त होती है । पाँच अक्षरों से अधिक अक्षरों वाले मंत्र सदा विशेष सिद्धि देने वाले होते हैं । पुंल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग तथा नपुंसक लिङ्ग के भेद से मंत्रों के तीन भेद किये जाते हैं ।१-३।

---

१ छ. 'द्या हर्रि व' ।

स्त्रीमंत्रा वह्निजायान्ता नमोन्ताश्च) नपुंसकाः ।
शेषाः पुमांसस्ते शस्ता वश्योच्चाटनकेषु[1] च ।।४
क्षुद्रक्रियामयध्वंसे स्त्रियोऽन्यत्र नपुंसकाः ।
मंत्रावाग्नेयसौम्याख्यौ ताराद्यन्तार्धयोर्जपेत् ।।५
तारान्त्याग्निवियत्प्रायो मंत्र आग्नेय इष्यते ।
शिष्टाः सौम्याः प्रशस्तौ तौ कर्मणोःक्रूरसौम्ययोः ।।६

जिन मंत्रों के अन्त में वह्नि, जाया आदि शब्द हों वे स्त्रीमंत्र तथा जिनके अन्त में 'नमः' शब्द का प्रयोग हो वे नपुंसक मंत्र कहलाते हैं। इनसे अतिरिक्त मंत्र पुंलिङ्ग होते हैं। ये पुंलिङ्ग मंत्र वशीकरण तथा उच्चाटन में प्रशस्त बतलाए गये हैं। क्षुद्र कार्यों में, रोग उत्पन्न करने में तथा किसी के विनाश करने में स्त्रीलिङ्ग वाले मन्त्र प्रशस्त बताए गये हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कार्यों में नपुंसकलिङ्ग वाले मंत्रों को उचित कहा गया है। क्रूर और सौम्य कार्यों में क्रमशः आग्नेय और सौम्य नामक मंत्रों का प्रयोग करना चाहिए। जिन मंत्रों के अन्त में तारा, अग्नि, वियत् (आकाश) शब्द होते हैं वे मंत्र आग्नेय कहलाते हैं। इनसे भिन्न मंत्र सौम्य मत्र कहलाते है। यह दोनों प्रकार के मंत्र क्रमशः क्रूर ओर सौम्य कार्यों के लिए प्रशस्त बताए गये हैं।४-६।

आग्नेयमंत्रः सौम्यः स्यात्प्रायशोऽन्ते नमोऽन्वितः ।
सौम्यमंत्रस्तथाऽऽग्नेयः फट्कारेणान्ततो युतः ।।७
सुप्तः प्रबुद्धमात्रो वा मंत्रः सिद्धिं न यच्छति ।
[2]स्वापकालो महाबाहो जागरो दक्षिणावहः ।।८
आग्नेयस्य मनोः ([3]सौम्यमंत्रस्यैतद्विपर्ययात् ।
प्रबोधकालं जानीयादुभयोरुभयोरहः ।।९

आग्नेय मन्त्रों के अन्त में प्रायः 'नमः' शब्द जोड़ देने से वे सौम्य मंत्र बन जाते हैं। (इसी प्रकार) सौम्य मन्त्रों के अन्त में 'फट्' शब्द जोड़ देने से वे आग्नेय बन जाते हैं। सोया तथा तुरन्त का जगाया हुआ मंत्र सिद्धदायक नहीं होता है। हे महाबाहो ! आग्नेय मंत्र का फलदायक जागरण काल सायङ्काल है और सौम्य मन्त्रों का जागरण काल इनसे भिन्न समझना चाहिए। वैसे इन दोनों मन्त्रों का प्रबोध काल दिन ही हुआ करता है।७-९

१. छ. 'टविषेषु। २. क. ङ. सायंकाले। ३. सौम्यमंत्र''''''दुर्गा गुरु क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति।

दुष्टर्क्षराशिविद्वेषिवर्णादीन्वर्जयेन्मनून् ।
राज्यलाभोपकाराय प्रारभ्यारिः स्वरः कुरून् ॥१०

दुष्ट नक्षत्र राशि और शत्रु (के नाम आदि) के अक्षरों से युक्त मन्त्रों का वर्णन करते रहना चाहिए। राज्य प्राप्ति तथा परोपकार के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले मन्त्रों में स्वर युक्त अक्षरों के विरोधी स्वरों को एक क्रम से रखना चाहिए ।१०।

गोपालककुटीं प्रायात्पूर्णामित्युदिता लिपिः ।
[1]नक्षत्रेषु क्रमाद्योज्यौ स्वरान्त्यौ रेवतीयुजौ ॥११
वेला गुरुः स्वराः (रः) शोणः कर्मणैवेति भेदिताः ।
लिप्यर्णा वशिषु ज्ञेया [:] षष्ठेशादींश्च योजयेत् ॥१२
लिपौ चतुष्पथस्थायामाख्यावर्णपदान्तराः ।
सिद्धाः साध्या द्वितीयस्थाः सुसिद्धा वैरिणः परे ॥१३
सिद्धादीन्कल्पयेदेवं सिद्धोऽत्यन्तगुणैरपि ।
सिद्धे सिद्धो जपात्साध्यो जपपूजाहुतादिना ॥१४
सुसिद्धो ध्यानमात्रेण साधकं नाशयेदरिः ।
दुष्टार्णप्रचुरो यः स्यान्मंत्रः सर्वविनिन्दितः ॥१५

गोपाल मन्त्रों की गणना के अनुसार ही अन्य मन्त्रों की गणना करनी चाहिए अथवा उन मन्त्रों को नक्षत्र चक्रों से भी जाना जा सकता है। (ऋ ॠ और ऌ ॡ को छोड़कर) अ से लेकर अः अक्षरों को अश्विनी से रोहिणी तक भिन्न-भिन्न नक्षत्रों में प्रयुक्त करना चाहिए। नक्षत्र चक्र के विभिन्न कोष्ठकों को सिद्ध (फलित जैसे नवम, प्रथम और पञ्चम कोष्ठक), साध्य (फल देने योग्य, जैसे षष्ठ, दशम, द्वितीय कोष्ठक), सुसिद्ध (भलीभांति फलित, जैसे तृतीय, सप्तम और एकादश कोष्ठक) और अरि (जैसे चतुर्थ, अष्टम और द्वादश कोष्ठक) समझना चाहिए। जिस व्यक्ति को मन्त्र देना हो उसे नाम के अनुसार ही इन मन्त्रों के स्वभाव का पता लगाना चाहिए। सिद्ध मन्त्र का जप करने मात्र से मुक्ति प्रप्ति हो जाती है, किन्तु साध्य मन्त्र तब फलप्रद होता है जब उसके साथ हवन और पूजन भी किया जाता है। सुसिद्ध मन्त्र

१—ग. छ. 'त्रेक्षक्र' ।

का ध्यान मात्र ही अपने उपासक को मोक्ष प्रदान कर देता है। किन्तु अरिष्ट मन्त्र अपने जप करने वाले को निश्चय ही नष्ट कर देता है। जिस मन्त्र में वर्जित स्वर और वर्ण हों, उन्हें छोड़ ही देना चाहिए।११-१५।

प्रविश्य विधिवद्दीक्षामभिषेकावसानिकाम्।
श्रुत्वा तन्त्रं गुरोर्लब्धं साधयेदीप्सितं मनुम् ॥१६
धीरो दक्षः शुचिर्भक्तो जपध्यानादितत्परः।
सिद्धस्तपस्वी कुशलस्तन्त्रज्ञः सत्यभाषणः ॥१७
निग्रहानुग्रहे शक्तो गुरुरित्यभिधीयते।
शान्तो दान्तः पटुश्चीर्णब्रह्मचर्यो हविष्यभुक् ॥१८
कुर्वन्नाचार्यशुश्रूषां सिद्धोत्साही स शिष्यकः।
स तूपदेश्यः पुत्रश्च[1] विनयी वसुदस्तथा ॥१९

विधि पूर्वक अभिषेक पर्यन्त दीक्षा प्राप्त करके और विषय विशेष के आचार्य से तन्त्र का श्रवण करके उसकी साधना करनी चाहिए। धैर्यशाली, दक्ष, पविन्नान्तःकरण, भक्त, जप और ध्यानादि में विरत, सिद्ध, तपस्वी, क्रियाकुशल तन्त्रों के मर्मज्ञ सत्यभाषी, इन्द्रियजित्, अनुग्रहकर्ता, सर्वसमर्थ पुरुष ही गुरु कहे जाते हैं और शान्त स्वभाव, जितेन्द्रिय, दक्ष, ब्रह्मचर्य-परायण, हविष्यान्नभोजी, गुरुशुश्रूषा करने वाला, कार्य में अटल तथा उत्साही व्यक्ति ही शिष्य कहला सकता है। गुरु को सुयोग्य शिष्य, पुत्र और विनयशील तथा दक्षिणा देने वाले को ही मन्त्रों का उपदेश करना चाहिए ॥१६-१९

मन्त्रं दद्यात्सुसिद्धौ तु सहस्रं देशिको जपेत्।
यदृच्छया श्रुतं मन्त्रं छलेनाथ बलेन वा ॥२०
पत्रे स्थितं च गाथां च जनयेद्यद्यनर्थकम्।
मन्त्रं यः साधयेदेकं जपहोमार्चनादिभिः ॥२१
क्रियाभिर्भूरिभिस्तस्य सिध्यन्ते स्वल्पसाधनात्।
सम्यक्सिद्धैकमन्त्रस्य नासाध्यमिह किंचन ॥२२

गुरु को शिष्य को तभी मन्त्र देना चाहिए जब वह यह समझ ले कि शिष्य ने कुछ सिद्धि प्राप्त कर ली है। शिष्य को एक मन्त्र का एक सहस्र

१—ख. ग.° श्च ह्यभ्यासी व°।

बार जप करना चाहिए बिना गुरु मुख से सुने हुए केवल अपनी इच्छा से, छल-बल से अथवा किसी यंत्रादि में लिखे हुए मन्त्र का ज्ञान प्राप्त कर लेने पर भी वह निरर्थक होता है। जो साधक जप, होम और विविध प्रकार की अर्चना से युक्त बहुत सी क्रियाओं से एक मन्त्र को सिद्ध कर लेता है वह साधक बाद में थोड़े से साधन से भी मन्त्रों को सिद्ध कर लेता है। जिस पुरुष ने एक मन्त्र को भी भलीभाँति सिद्ध कर लिया है उसके लिए इस संसार में कोई भी कार्य असाध्य नहीं रहता है।२०-२२।

बहुमन्त्रवतः पुंसः का कथा शिव[1] एव सः।
दशलक्षजपादेकवर्णो मन्त्रः प्रसिध्यति ।।२३
वर्णवृद्धया जपह्रासस्तेनान्येषां समूहयेत्।
बीजाद्द्वित्रिगुणान्मन्त्रान्मालामन्त्रे जपक्रिया ।।२४
संख्यानुक्तौ शतं साष्टं सहस्रं वा जपादिषु।
जपाद्दशांशं सर्वत्र साभिषेकं हुतं विदुः ।।२५

फिर जिसने बहुत से मन्त्रों को सिद्ध कर लिया है उसके विषय में तो कहना ही क्या? वह साक्षात् शङ्कर रूप ही हो जाता है। स्ववर्ण वाला मन्त्र का दश लाख बार जप करने से सिद्धि होती है। वर्णों की वृद्धि के ही क्रम से जप में न्यूनता होती जाती है। इसी प्रकार अन्य मन्त्रों के विषय में भी समझ लेना चाहिए। माला मन्त्रों की अपेक्षा बीज मन्त्रों का जप द्विगुणित और त्रिगुणित तक होना चाहिए। मन्त्रों मे जहाँ उनके जप की संख्या न दी गयी हो वहाँ एक सौ आठ या एक हजार आठ संख्या समझ लेनी चाहिए। सभी मन्त्रों के जप की संख्या का दशांश संख्या अभिषेक और हवन के लिए बतायी गई है।२३-२५।

द्रव्यानुक्तौ घृतं होमे जपोऽशक्तस्य सर्वतः।
मूलमन्त्राद्दशांशः स्यादङ्गादीनां जपादिकम् ।।२६
जपात्सशक्तिमन्त्रस्य कामदा मन्त्रदेवताः।
साधकस्य भवेत्तृप्ता ध्यानहोमार्चनादिना ।।२७
उच्चैर्जपाद्विशिष्टः स्यादुपांशुर्दशभिर्गुणैः।
जिह्वाजपे शतगुणः सहस्रो मानसः स्मृतः ।।२८

१—ख. ग. देव।

जप के अनन्तर होम के लिये किसी द्रव्य विशेष का उल्लेख होने पर घृत की ही आहुति देनी चाहिए। यदि कोई घृत की आहुति देने में असमर्थ हो तो उसे (मूल मन्त्रों के अक्षरों की संख्या के) दशांश संख्या में अधिक मन्त्रों का जप और कर लेना चाहिए। मूल मन्त्र (की संख्या की) दशांश (संख्या में) अङ्ग मन्त्रों का जप करना चाहिये। अङ्गों के सहित मन्त्र का जप करने से तथा ध्यान, हवन और अर्चना आदि के द्वारा तृप्त किए गये मन्त्र के देवता साधक के ऊपर प्रसन्न होते हैं और उसकी मनोकामना को पूर्ण करते है। जोर-जोर से किये जाने वाले जप की अपेक्षा मन्त्र का मूक जप दशगुना विशिष्ट है, जिह्वा जप (जिस जप मे केवल जीभ ही हिलती है) सौ गुना श्रेष्ठ है तथा मानस जप हजार गुना श्रेष्ठ है॥ २६-२८ ॥

प्राङ्मुखोऽवाङ्मुखो वाऽपि मंत्रकर्म समारभेत्।
प्रणवाद्याः सर्वमंत्रा वाग्यतो विहिताशनः ॥२९
आसीनस्तु जपेन्मन्त्रान्देवताचार्यतुल्यदृक्।
कुटी विविक्ता देशाः स्युर्देवालयनदीह्लदाः ॥३०

मन्त्र का आरम्भ पूर्वाभिमुख अथवा अधोमुख होकर करना चाहिए। समस्त मन्त्रों के आदि में प्रणव (ओंकार) का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। साधक को मौन रहकर भोजन करना चाहिये। उसे देवता और आचार्य को तुल्य समझते हुये स्थिर चित्त होकर मन्त्र का जप करना चाहिये। साधक की कुटी एकान्त स्थान में होनी चाहिये। देवालय, नदी और तालाब ही मन्त्र साधना के लिए उपयुक्त स्थान माने गये हैं॥ २९-३० ।

सिद्धौ यवागूपूपैर्वा पयो भक्ष्यं हविष्यकम्।
मन्त्रस्य देवता [1]तावत्तिथिवारेषु वै यजेत्[2] ॥३१
कृष्णाष्टमीचतुर्दश्योर्ग्रहणादौ च साधकः।
दस्रो यमोऽनलो धाता शशी रुद्रो गुरुर्दितिः ॥३२
सर्पाः पितरोऽथ भगोऽर्यमा शीतेतरद्युतिः।
त्वष्टा मरुत इन्द्राग्नी मित्रेन्द्रौ निर्ऋतिर्जलम् ॥३३
विश्वे देवा हृषीकेशो [3]वासवः सलिलाधिपः।
अजैकपादहिर्बुध्न्यः पूषाऽश्विन्यादिदेवताः ॥३४

१. ख. ग. तारा तिथि°। २. छ. जपेत्। ३. छ. वायसः।

अग्निर्दस्त्रावुमानिघ्नौ नागश्चन्द्रो दिवाकरः।
मातृदुर्गा दिशामीशः कृष्णो वैवस्वतः शिवः ॥३५
पञ्चदश्याः शशाङ्कस्तु पितरस्तिथिदेवताः।
हरो दुर्गा गुरु) विष्णुब्रह्मा लक्ष्मीर्धनेश्वरः ॥३६

साधक को सिद्धि प्राप्त हो जाने पर यवागू (लप्सी) और पुए के साथ दूध और हविष्यान खाना चाहिए। मंत्र के देवताओं की अर्चना निश्चित तिथियों और दिनों में ही करनी चाहिए। साधक को देवताओं की अर्चना कृष्ण पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी तथा ग्रहण आदि के समय करनी चाहिए। अश्विनीकुमार, यम (यमराज), अनल (अग्नि), ब्रह्मा, चन्द्र, रुद्र, बृहस्पति, दिति (दैत्यों की माता), सर्प, पितृगण, भग, अर्यमा, शीतेतर द्युति (सूर्य), त्वष्टा, मरुत, इन्द्र, वरुण, अज, एकपाद्, अहिर्बुन्ध्य, उमा, नाग, चन्द्रमा, सूर्य, दुर्गादि माताएँ दिशाओं के स्वामी, कृष्ण, यम, शिव, पूर्णिमा का चन्द्रमा, पितृगण—ये विभिन्न तिथियों के देवता हैं। शङ्कर, दुर्गा, बृहस्पति, विष्णु, ब्रह्मा, लक्ष्मी, कुबेर ये ही रविवार आदि दिनों के देवता हैं।३१-३६।

एते सूर्यादिवारेशा लिपिन्यासोऽथ कथ्यते।
केशान्तेषु च वृत्तेषु चक्षुषोः श्रवणद्वये ॥३७
नासागण्डौष्ठदन्तेषु द्वे द्वे मूर्धास्ययोः क्रमात्।
वर्णान्पञ्चसु वर्गाणां वाहुचरणसंधिषु ॥३८
पार्श्वयोः पृष्ठतो नाभौ हृदये च क्रमान्न्यसेत्।
यादींश्च हृदये न्यस्येदेषां स्युः सप्त धातवः ॥३९
त्वगसृङ्मांसमेदोस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः।

अब लिपिन्यास बताया जाता है। केशान्तों में, वृत्तों में, दोनों नेत्रों, में, दोनों कानों में, नासा, गण्डस्थल, ओष्ठ और दाँतो में, मूर्धा और मुख में दो-दो वर्णों का न्यास करना चाहिए। बाहु और चरण आदि की पाँचों सन्धियों में भी वर्णो का न्यास करना चाहिए। पार्श्वभाग में, पृष्ठभाग में, नाभि तथा हृदय में भी वर्णो का न्यास करना चाहिए। इन वर्णों की सात धातुएँ होती हैं। त्वक् (चर्म) असृक् (खून) मांस, मेदा, अस्थि (हड्डी) मज्जा और शुक्र (वीर्य) ये ही सात धातुएँ है।३७-३९।

रसाद्यैश्च पयोन्तैश्च लिख्यन्ते च लिपीश्वरैः ॥४०
श्रीकण्ठोऽनन्तसूक्ष्मौ च त्रिमूर्तिरमरेश्वरः ।
अग्नीशो [1]भारभूतिश्च तिथीशः स्थाणुको हरः ॥४१
दण्डीशो भौतिकः सद्योजातश्चानुग्रहेश्वरः ।
अक्रूरश्च महासेनः शरण्या देवता अमूः ॥४२

मंत्र बनाने वाले रस से प्रारम्भ करके जल से समाप्त करते हैं। श्रीकण्ठ, अनन्त, सूक्ष्म, त्रिमूर्ति, अमरेश्वर (इन्द्र), अग्नि, ईश, भारभूति, तिथीश, स्थाणु, हर, दण्डी, ईश, भूताधिपति, सद्योजात, अनुग्रहेश्वर, अक्रूर, महासेन-ये देवता शरणागत रक्षक हैं।४०-४२।

[2]ततः सूचीशचण्डौ च पञ्चान्तकशिवोत्तमौ ।
तथैव रुद्रकूर्मौ च त्रिनेत्रश्चतुराननः ॥४३
अजेशः शर्मसोमेशौ तथा लाङ्गलिदारुकौ ।
अर्धनारीश्वरश्चोमाकान्तश्चाऽऽषाढिदण्डिनौ ॥४४
अत्रिर्मीनश्च मेषश्च लोहितश्च शिखी तथा ।
शूलगण्डद्विगण्डौ द्वौ समहाकालवालिनौ[3] ॥४५
भुजंगश्च पिनाकी च खड्गीशश्च बकः पुनः ।
श्वेतो भृगुर्गुडाकाक्षः क्षयः संवर्तकः स्मृतः ॥४६
रुद्रान्सशक्ता (क्ती) न्विलिखेन्नमोन्तान्विन्यसेत्क्रमात् ।
अङ्गानि विन्यसेत्सर्वे मन्त्राः साङ्गास्तु सिद्धिदाः ॥४७

सूचीश, चण्ड, पञ्चान्तक, शिवोत्तम, रुद्र, कूर्म, त्रिनेत्र, चतुरानन, अज, ईश, कल्याणकर, सोम, ईश, लाङ्गली (बलभद्र) दारुक, अर्धनारीश्वर, उमाकान्त, आषाढ़ी, दण्डी, अत्रि, मीन, मेष, लोहित, शिखी, शूलगण्ड, द्विगण्ड, महाकाल, बाली, भुजङ्ग, पिनाकी, खड्गी, ईश बक, श्वेत, भृगु, गुडाकाक्ष, क्षय, संवर्तक और शक्तियों के सहित रुद्रों को लिखकर उनके अन्त में 'नमो' शब्द का प्रयोग करना चाहिए। अङ्ग मंत्रों से भी न्यास करना चाहिए क्योंकि साङ्ग मन्त्र ही सिद्धिदायक हुआ करते हैं।४३-४७।

---

१ छ. भावभू॰। २ च. छ. ॰तः क्रोधीश॰। ३ छ. ॰लवासिनौ

हृल्लेखाव्योमसंपूर्णान्येतान्यङ्गानि विन्यसेत् ।
हृदादीन्यङ्गमन्त्रान्तैर्योजयेद्धृदये नमः ॥४८
स्वाहा शिरस्यथ वषट् शिखायां कवचे च हूम् ।
वौषण्नेत्रेऽस्त्राय फट्स्यात्पञ्चाङ्गं नेत्रवर्जितम् ॥४९
निरङ्गस्याऽऽत्मना चाङ्गं न्यस्य तं नियुतं जपेत् ।
क्रमेण देवीं वागीशां यथोक्तांस्तु तिलान्हुनेत् ॥५०
लिपिदेवी साक्षसूत्रकुम्भपुस्तकपद्मधृक् ।
कवित्वादि प्रयच्छेत कर्मादौ सिद्धये न्यसेत्[1] ।
निष्कविर्निर्मलः सर्वे मन्त्राः सिध्यन्ति मातृभिः ॥५१

न्यास, हृदयादि सम्पूर्ण अंगों का करना चाहिए। अङ्ग न्यास के मंत्रों से हृदयादि की योजना इस प्रकार करनी चाहिए। 'हृदये नमः' 'शिरसि स्वाहा' 'शिखायां वषट्' 'कवचे हुम्' 'नेत्रे वौषट्'। नेत्र को छोड़कर शेष पञ्चाङ्ग के लिए 'अस्त्राय फट्' का उच्चारण करना चाहिए। यद्यपि मन्त्र निरङ्ग है तथापि उनके अङ्गों की कल्पना स्वयं करके उनका न्यास करना चाहिए और उनका दशलाख वार जप (भी) करना चाहिए। क्रम से वागीश्वरी देवी तथा यथोक्त देवताओं को क्रमशः तिल की आहुति देनी चाहिए। अक्ष (रथ चक्र,) सूत्र, कुम्भ, पुस्तक तथा पद्म को धारण करने वाली लिपि देवी कवित्व शक्ति प्रदान करती है अतः कार्य की सिद्धि के लिए उसका न्यास करना चाहिए। मातृकाओं से सभी मन्त्रों की सिद्धि होती है।४८-५१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मन्त्रपरिभाषाकथनं नाम त्रिनवत्यधिक-द्विशततमोऽध्यायः ।२९३

अथ चतुर्नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

नागलक्षणानि

अग्निरुवाच—
नागादयोऽथ भावादिदशस्थानानि कर्म च ।
सूतकं दष्टचेष्टेति सुप्त [2]लक्षणसंयुता (?) ॥

---

१ क. ङ. °त् । विधाधिनिर्म° । २ च. छ. °णमुच्यते । शे° ।

शेषवासुकितक्षाख्याः कर्कटाब्जौ महाम्बुजः ।
शङ्खपालश्च कुलिक इत्यष्टौ नागवर्यकाः ॥२

अग्निदेव बोले—अब मैं नागों की उत्पत्ति, सर्पदंश के अशुभ नक्षत्र आदि सर्पदंश के विविध भेद, दंश के स्थान, मर्मस्थल, सूतक, और सर्पदष्ट मनुष्य की चेष्टा-इन सात लक्षणों का वर्णन करता हूँ। शेष, वासुकि, तक्षक, कर्कट, अब्ज, महाम्बुज, शङ्खपाल और कुलिक-ये आठ नाग श्रेष्ठ बतलाये गये हैं।१-२।

दशाष्टपञ्चत्रिगुणशतमूर्धान्वितौ क्रमात् ।
विप्रौ नृपौ विशौ शूद्रौ द्वौ द्वौ नागेषु कीर्तितौ ॥३
तदन्वयाः पञ्चशतं तेभ्यो जाता असंख्यकाः ।
फणिमण्डलिराजीलवातपित्तकफात्मकाः ॥४
व्यन्तरा दोषमिश्रास्ते सर्पा दर्वीकराः स्मृताः ।
रथाङ्गलाङ्गलच्छत्रस्वस्तिकाङ्कुशधारिणः ॥५
गोनसा मन्दगा दीर्घा मण्डलैर्विविधैश्चिताः[1] ।
राजिलाश्चित्रिताः स्निग्धास्तिर्यगूर्ध्वविराजिभिः ॥६

इन नागों में से क्रमशः दो नाग ब्राह्मण, दो क्षत्रिय, दो वैश्य और दो शूद्र कहे गये हैं। ये चार वर्णों के नाम क्रमशः दस सौ, आठ सौ, पांच सौ और फणों से युक्त होते हैं। उपर्युक्त उन्हीं नागों के वंश में पांच सौ नाग हुए, जिनसे वे असंख्य हो गये। फणी (फणधारी) मण्डली (मण्डलाकृति), राजील (जल-सर्प) तथा वात, पित्त, कफात्मक सर्प व्यन्तर कहलाते हैं। दोष-मिश्रित सर्प दर्वीकर नाम से प्रसिद्ध हैं। रथ के अंग चक्रादि, लाङ्गल (हल) छत्र, स्वस्तिक तथा अंकुश धारण करने वाले सर्प गोनस नाम से प्रसिद्ध हैं। मन्द-गति से चलने वाले, दीर्घ, विविध मण्डलों से परिपूर्ण, स्निग्ध, तिर्यक् और उर्ध्व रेखाओं से युक्त सर्प 'राजिल' कहलाते हैं।३-६।

व्यन्तरा मिश्रचिह्नाश्च भूवर्षाग्नेयवायवः ।
चतुर्विधास्ते षड्विंशभेदाः षोडश गोनसाः ॥७
त्रयोदश च राजीला व्यन्तरा एकविंशतिः ।
येऽनुक्तकाले जायन्ते सर्पास्ते व्यन्तराः स्मृताः ॥८

---

१ क. ङ. °विधैः स्मृताः । ग. °विधैः स्थिताः ।

आषाढादित्रिमासैः स्याद्गर्भो मासचतुष्टये ।
अण्डकानां शते द्वे च चत्वारिंशत्प्रसूयते ॥९

व्यन्तर तथा मिश्र-चिह्न वाले सर्प, पृथ्वी, अग्नि तथा वायु के भेदों से चार प्रकार के हुआ करते हैं। उन चार प्रकार के सर्पों के पुनः छब्बीस भेद हो जाते हैं। गोनस के सोलह भेद होते हैं। राजील तेरह प्रकार का होता है और व्यन्तर नामक सर्प के इक्कीस भेद होते हैं। अनिश्चित समय में पैदा होने वाले सर्प व्यन्तर कहलाते हैं। सर्पिणियाँ आषाढ़, श्रावण तथा भाद्रपद मासों में चार मास के लिए गर्भ धारण करती है। वे चार मास की अवधि के अनन्तर दो सौ चालीस अण्डे पैदा करती हैं।७-९।

सर्पा ग्रसन्ति सूतौघान्विना स्त्रीपुंनपुंसकान्।
उन्मीलितेऽक्षिण सप्ताहात्कृष्णो मासाद्भवेद्बहिः ॥१०

यह भी प्रसिद्ध है कि सर्पिणियाँ बिना पुलिंग, स्त्रीलिङ्ग तथा नपुंसक का विचार किये प्रसूत अण्डों को खा जाती हैं। साधारण सर्प सात दिनों के अनन्तर अण्डे ही में नेत्र खोल देते हैं और तब बाहर आते हैं। कृष्ण सर्प एक मास बाद अण्डों से बाहर आता है।१०।

द्वादशाहात्सुबोधः स्याद्दन्ताः स्युः सूर्यदर्शनात् ।
द्वात्रिंशद्दिनविंशत्या चतस्रस्तेषु दंष्ट्रिकाः ॥११
कराली मकरी कालरात्रिश्च यमदूतिका ।
एतास्ताः सविषा दंष्ट्रा वामदक्षिणपार्श्वगाः ॥१२
षण्मासान्मुच्यते कृत्तिं जीवेत्षष्टिसमाद्वयम् ।
नागाः सूर्यादिवारेशाः सप्त उक्ता दिवा निशि ॥१३

सर्पों में बारह दिनों के बाद चेतना आ जाती है। सूर्य के दर्शन के बीस दिन बाद सर्पों के दाँत निकलते हैं। ये बत्तीस होते हैं। इनमें चार दाढ़े (विषैले दाँत) निकलते है। ये विषैले दाँत हैं—कराली, मकरी, कालरात्रि और यमदूतिका जो कि मुख में बायें तथा दायें भाग में होते हैं। छः मास के अनन्तर सर्प केंचुल छोड़ते हैं तथा एक सौ बीस वर्ष तक जीवित रहते हैं। सात नाग रविवार इत्यादि दिनों के स्वामी कहे गये हैं।११-१३।

स्वेषां षट्प्रतिवारेषु कुलिकः सर्वसंधिषु ।
शङ्खेन वा महाब्जेन सह तस्योदयोऽथ वा ॥१४
द्वयोर्वा नाडिकामात्रमन्तरं कुलिकोदयः ।
दुष्टः स कालः सर्वत्र सर्पदंशे विशेषतः ॥१५

शेष आदि सात नाग अपने-अपने वारों में उदित होते हैं, किन्तु कुलिक का उदय सब के अन्त मे होता है। अथवा शङ्ख और महापद्म के साथ उसका उदय होता है। मतान्तर से शंख और महापद्म के मध्य की दो घड़ियों में कुलिक का उदय होता है। कुलिक योग का समय सभी कार्यों में वर्जनीय और अशुभ फलदायक है। इस समय सर्प के काटने पर यह विशेष रूप से दुष्ट फल देने वाला होता है।१४-१५।

कृत्तिका भरणी स्वाती मूलं पूर्वत्रयाश्विनी ।
विशाखाऽऽर्द्रा मघाऽऽश्लेषा चित्रा श्रवणरोहिणी ॥१६
हस्तौ मन्दकुजौ वारौ पञ्चमी चाष्टमी तिथिः ।
षष्ठी रिक्ता शिवा निन्द्या पञ्चमी च चतुर्दशी ॥१७

कृत्तिका, भरणी, स्वाती, मूल, तीनों पूर्वा (पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा पूर्वाभाद्रपद) अश्विनी, विशाखा, आर्द्रा, मघा, आश्लेषा, चित्रा, श्रवण, रोहिणी, हस्त ये नक्षत्र शनैश्चर और मंगलवार-ये दो दिन पञ्चमी, अष्टमी, षष्ठी और रिक्ता (चतुर्थी, चतुर्दशी, नवमी) ये तिथियां कल्याणकारिणी हैं तथा पञ्चमी एवम् चतुर्दशी तिथियाँ निन्द्य है।१६-१७।

संध्याचतुष्टयं दुष्टं दु (द) ग्धयोगाश्च राशयः ।
एकद्विवहवो दंशा दष्टं विद्धं च खण्डितम् ॥१८
अदंशमवगुप्तं स्याद्दंशमेवं चतुर्विधम् ।
त्रयो द्व्येकक्षता दंशा वेदना रुधिरोल्वणा ॥१९
नक्तं त्वेकाङ्घ्रिकूर्माभा दंशाश्च यमचोदिताः ।
दाही पिपीलिकास्पर्शी कण्ठशोथरुजान्वितः ॥२०
सतोदो ग्रन्थितो दंशः सविषोऽन्यस्तु निर्विषः ।

चारों संध्यायें, दग्धयोगवाली राशियाँ भी अनिष्टकारिणी हैं। सर्प एक, दो अथवा बहुत से दाँतों से काटते हैं। ये क्रमशः दष्ट विद्ध खण्डित कहलाते हैं। अदंश अवगुप्त कहलाता है। इस प्रकार सर्प-दंशन के चार भेद हैं। तीन दो

अथवा एक दांत से काटने पर महती वेदना होती है और रक्त की धारा बहने लगती है। रात्रि में एक चरण तथा कूर्म के सदृश दिखाई पड़ने वाला सर्पदंश (का चिह्न) महाभयानक होता है। दाहोत्पादक पिपीलिकास्पर्शी (मानों चीटियाँ लिपटी हों) कण्ठ में शोथ उत्पन्न कर देने वाला, पीडादायक तथा गाँठ-युक्त दंश को विषयुक्त समझना चाहिए और अन्य दंशों को विष रहित ।१८-२०३।

देवालये [1]शून्यगृहे वल्मीकोद्यानकोटरे ।।२१
रथ्यासंधौ श्मशाने च नद्यां च सिन्धुसंगमे ।
द्वीपे चतुष्पथे सौधे गृहेऽब्जे पर्वताग्रतः ।।२२
बिलद्वारे जीर्णकूपे जीर्णवेश्मनि कुडचके ।
शिग्रुश्लेष्मातकाक्षेषु जम्बूदुम्बरवेणुषु ।।२३
वटे च जीर्णप्राकारे खास्यहृत्कक्षजत्रुणि ।
तालौ शङ्खे गले मूर्ध्नि चिबुके नाभिपादयोः ।।२४

देवालय, शून्यगृह, वल्मीक, उद्यान, गली, श्मशान, नदी, नदियों का संगम द्वीप, चौराहा, भवन, कमल, पर्वताग्रभाग, विलद्वार, प्राचीन, कूप, जीर्णगृह, दीवार, शिग्रु (वृक्षविशेष) श्लेष्मान्तक (लसूड़े का वृक्ष) जामुन, गूलर, बाँस, बरगद, पुरानी खाइँ इत्यादि स्थानों में और कान, मुख, हृदय, पार्श्वभाग, जत्रु (गले के नीचे की दो हड्डियाँ) तालु, शंख, ग्रीवा, मस्तक, चिबुक (ठुड्ढी) नाभि और चरण आदि शरीर के अंगों में होने वाला सर्पदंश अशुभ होता है ।२१-२४।

दंशोऽशुभः शुभो दूतः पुष्पहस्तः सुवाक्सुधीः ।
लिङ्गवर्णसमानश्च शुक्लवस्त्रोऽमलः शुचिः ।।२५
अपद्वारगतः शस्त्री प्रमादी भूगतेक्षणः ।
विवर्णवासाः पाशादिहस्तो गद्गदवर्णभाक् ।।२६
शुष्ककाष्ठाश्रितः खिन्नस्तिलालक्तकरांशुकः ।
आर्द्रवासाः कृष्णरक्तपुष्पयुक्तशिरोरुहः ।।२७
कुचमर्दी नखच्छेदी गुदस्पृक्पादलेखकः ।
केशालुञ्ची तृणच्छेदी दुष्टा दूतास्तथैकशः ।।२८

१ — छ. शूद्रगृ° ।

हाथ में पुष्प धारण करने वाला, मधुरभाषी, बुद्धिमान्, सुन्दरवर्ण और चिह्नयुक्त, शुक्लवस्त्र धारण करने वाला निर्मल और पवित्र (सर्प-विष-वैद्य को बुलाने के लिए भेजे गये) दूत शुभ बताये गये हैं। बुरे मार्ग से आने वाले, शस्त्रधारी, आलसी, नीचे की ओर देखने वाले, कुरूप, कुवस्त्रधारी, पाश आदि को हाथ मे लेने वाले, गद्गद वाणी से बोलने वाले, सूखी लकड़ियाँ लिए हुए, खिन्न आकृति वाले, तिल तथा लाल वस्त्रों को लिए हुए, भीगे वस्त्रों वाले, काले और लाल पुष्पों को शिर पर धारण करने वाले कुचमर्दन करने वाले, नखच्छेदन करने वाले, गुदा का स्पर्श करने वाले, पैर से भूमि खरोचने वाले, बालों को उखाड़ने वाले और तिनकों को तोड़ने वाले दूत अनिष्टसूचक बतायें गये हैं।२५-२८

इडाऽन्या वा वहेद्द्वेधा यदि दूतस्य चाऽऽत्मनः।
आभ्यां द्वाभ्यां पुष्ट्यास्मान्विद्यास्त्रीपुंनपुंसकान् ॥२९
दूतः स्पृशति यद्गात्रं तस्मिन्दंशमुदाहरेत्।
दूताङ्घ्रिचलनं दुष्टमुत्थितिर्निश्चला शुभा ॥३०

जिस सर्प ने काटा हो उसका लिङ्ग-ज्ञान विष वैद्य तथा दूत के वाम, दक्षिण अथवा दोनों नासापुटों से निकलने वाले श्वास के आधार पर हो सकता है। यदि विष-वैद्य के बायें नासापुट से श्वास वेग से निकल रहा हो तो सर्प को स्त्री समझना चाहिए। किन्तु यदि श्वास दूत के दाहिने नासापुट से आ रहा हो तो पुरुष समझना चाहिए। यदि विषवैद्य और दूत दोनों ही नासापुटों से श्वास ले रहे हों तो सर्प को नपुंसक समझना चाहिए। जिस अंग को (विषवैद्य के सम्मुख) दूत सहसा अनजान में ही अपने हाथ से छू ले रोगी के उसी स्थान पर सर्पदंश समझना चाहिए। विषवैद्य के पास आकर दूत का अपने पैरों को हिलाना अशुभ माना जाता है, किन्तु दूत का स्थिर होकर बैठना शुभ माना गया है।२९-३०।

जीवपार्श्वे शुभो दूतो दुष्टोऽन्यत्र समागतः।
जीवो गतागतैर्दुष्टः शुभो दूतनिवेदने ॥३१
दूतस्य वाक्प्रदुष्टा सा पूर्वामजार्धनिन्दिता।
विभक्तैस्तस्य वाक्यान्तैर्विपनिर्विषकालता ॥३२
आद्यैः स्वरैश्च काद्यैश्च वर्णैर्भिन्नलिर्पिद्विधा।
स्वरजो वसुमान्वर्गी इति ज्ञेया च मातृका ॥३३

वाताग्नीन्द्रजलात्मानो वर्गेषु च चतुष्टयम् ।
नपुंसकाः पञ्चमाः स्युः स्वराः शक्राम्बुयोनयः ॥३४

दूत के साथ-साथ विषवैद्य के समीप किसी पशु का आ जाना शकुन माना जाता है, किन्तु किसी पशु का वहाँ पर इधर-उधर घूमना अपशकुन सूचक होता है। दूत की वाणी में जिस प्रकार के कारकों का प्रयोग होता है, वे इस वात के सूचक हैं कि रोगी में विष कितनी देर तक रहेगा। वर्णमाला के अक्षरों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है, इनमें से स्वरों को शुभ तथा वसुमान वर्ग के अन्तर्गत वताया गया है। व्यञ्जनों के पाँचों वर्गों के प्रथम चार-चार अक्षर क्रमशः वायु, अग्नि, इन्द्र और वरुण देवता से सम्बद्ध हैं। जबकि प्रत्येक वर्ग का पाँचवाँ अक्षर अशुभ तथा नपुंसक लिङ्ग वाला होता है और उनके अधिष्ठाता देवता इन्द्र और वरुण कहे गये हैं।३१-३४।

दुष्टौ दूतस्य वाक्पादौ वाताग्नी मध्यमो हरिः ।
प्रशस्ता वारुणा वर्णा अतिदुष्टा नपुंसकाः ॥३५
प्रस्थाने मङ्गलं वाक्यं गर्जितं मेघहस्तिनोः ।
प्रदक्षिणं फले वृक्षे वामस्य च रुतं जितम् ॥३६
शुभा गीतादिशब्दाः स्युरीदृशं स्याद्धि सिद्धये ।
अनर्थगी रथाक्रन्दो दक्षिणे विरुतं क्षुतम् ॥३७

वायु तथा अग्नि देवता से सम्बद्ध अक्षरों का दूत की वाणी में आना अशुभसूचक है किन्तु इन्द्र से सम्वद्ध अक्षर मध्यम फल वाले होते हैं। दूत की वाणी में नपुंसक लिङ्ग माने जाने वाले अक्षर सबसे अधिक घातक तथा वरुण से सम्वद्ध अक्षर सबसे अधिक शुभ हुआ करते हैं। रोगी के घर जाते हुए मार्ग में दूत और विष वैद्य की वातचीत शुभ सूचक है। दूत और विष वैद्य के प्रस्थान काल में होने वाला हाथी अथवा मेघ का गर्जन अत्यन्त शुभ समझना चाहिए। विषवैद्य के प्रस्थान से पूर्व फलदार वृक्ष की परिक्रमा कर लेनी चाहिए। प्रस्थान काल में वाम भाग में होने वाले गीतादि शब्द सिद्धि-सूचक होते हैं। दाहिनी ओर विलाप, असत्य वार्तालाप और रथ का शब्द अनिष्टकारी होता है।३५-३७।

[1]वेश्या [2]विप्रो नृपः कन्या गौर्दन्ती मुरजध्वजौ ।
क्षीराज्यदधिशङ्खाम्बुच्छत्रं भेरी फलं सुराः[3] ॥३८

१ छ. वैश्यो। २ छ. क्षुतो। ३ ख. ग. सुरा।

तण्डुला हेम रूप्यं च सिद्धयेऽभिमुखा अमी ।
सकाष्ठः सानलः कारुर्मलिनाम्बरवासभृत् ॥३९
गलस्थटङ्को गोमायुगृध्रोलूककपर्दिकाः ।
तैलं कपालकार्पासे निषिद्धे भस्मनष्टये ॥४०
विषरोगाश्च सप्त स्युर्धातोर्धात्विन्तराप्तितः ।
विषदंशो ललाटं यात्यतो नेत्रं ततो मुखम् ॥
आस्याच्च वचनीनाड्यौ(?)धातून्प्राप्नोति हि क्रमात् ॥४१

(विष वैद्य के प्रस्थान काल में) वेश्या, विप्र, नृप, कन्या, गौ, गज, मुरज, पताका, दूध, घृत, दधि, शंख, जल, छत्र, भेरी, फल, देवता, चावल, सुवर्ण, और चाँदी, आदि का सम्मुख दिखाई देना शुभ होता है। मलिन वस्त्र वाला, काष्ठधारी, वह्नियुक्त, गले में टङ्क को लिये हुए शिल्पी, शृगाल, गृध्र, उलूक, कौड़ी, तेल, कपाल और कपास इन सबका दर्शन निषिद्ध बताया गया है। भस्म का दर्शन होना (रोगी के) नाश की सूचना देता है। सात धातुओं के परस्पर सम्पर्क से विष रोग भी सात प्रकार के होते हैं। विष का प्रकोप क्रमशः पहले ललाट तब नेत्र, मुख और समस्त धातुओं में व्याप्त हो जाता है।३८-४१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नागलक्षणकथनं नाम चतुर्नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२९४

अथ पञ्चनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

दष्टचिकित्सा

अग्निरुवाच—

मंत्रध्यानौषधैर्दष्टचिकित्सां प्रवदामि ते ॥१
ॐ नमो भगवते नीलकण्ठायेति ॥२
जपनाद्विषहानिः स्यादौषधं जीवरक्षणम् ।
साज्यं सकृद्रसं पेयं द्विविधं विषमुच्यते ॥
जङ्गमं सर्पमूषादि शृङ्गादि स्थावरं विषम् ॥

शान्तस्वरान्वितो ब्रह्मा लोहितस्तारकः शिवः ॥३
वियतेर्नाममंत्रोऽयं तार्क्ष्यः शब्दमयः स्मृतः ॥४

अग्निदेव बोले—अब मैं मन्त्रों के ध्यान तथा ओषधियों के प्रयोग से सर्प के द्वारा काटे हुए की चिकित्सा बतला रहा हूँ। 'ॐ नमो भगवते नीलकण्ठाय' इस मंत्र के जप करने से विष दूर हो जाता है। जीव रक्षा करने वाली ओषधि यह है, कि (सर्पदंश में) घृत के साथ गोबर के रस का पान करना चाहिए। विष दो प्रकार का होता है, सर्प और मूषक आदि का विष जंगम (विष) कहलाता है और सींग आदि (के लग जाने से उत्पन्न) विष स्थावर कहलाता है वियति नामक (सर्प दंश को दूर करने वाले) मंत्र में शान्त स्वर से युक्त ब्रह्मा लोहित, तारक और शिव इन चार देवताओं के बीजाक्षर से वियति सम्बन्धी नाम मन्त्र बनता है। यह मन्त्र शब्दमय गरुड़ शिरसे स्वाहा कहा गया है।१-४।

ओं ज्वल महामते हृदयाय, गरुडविरालशिरसे,
गरुडशिखायै, गरुड विषभञ्जन प्रभेदन
प्रभेदन वित्रासय वित्रासय विमर्दय विमर्दय
कवचाय, अप्रतिहतशासनं हूँ फट्, अस्त्राय, उग्र
रूपधारक सर्वभयंकर भीषय भीषय सर्वं
दह दह भस्मीकुरु कुरु स्वाहा नेत्राय
सप्तवर्गान्तयुग्माष्टदिग्दलस्वर केशरादि—
वर्णरुद्धं वह्निराभूतकर्णिकं मातृकाम्बुजम् ॥५
कृत्वा हृदिस्थं तन्मन्त्री वामहस्ततले स्मरेत्।
अङ्गुष्टादौ न्यसेद्वर्णान्वियतेर्भेदिताः कलाः ॥६

ॐ ज्वल महामते हृदयाय नमः से हृदय का, 'गरुड विराल से शिर का, 'गरुड शिखायै वषट्' से शिखा का गरुड विषभञ्जन प्रभेदन प्रभेदन वित्रासय वित्रासय विमर्दय कवचाय हुम् इस मंत्र से कवच का उग्ररूप धारक सर्वभयङ्कर भीषय भीषय सर्व दह दह भस्मीकुरु कुरु स्वाहा इस मंत्र से नेत्रों का और 'अप्रतिहतशासनं हूं फट् अस्त्राय फट्' इसमे करतल का स्पर्श करना चाहिए। (यह विधि तन्त्र शास्त्र में षडङ्गन्यास के नाम से प्रसिद्ध है। मातृका-मय पद्म में वर्णमाला के विभिन्न वर्ण हुआ करते हैं और आठो दिशाओं की

ओर फैले हुये उसके दल स्वर रूप देवताओं से युक्त रहा करते हैं। इसके पूर्वादि दलों में दो-दो के क्रम से समस्त स्वर वर्णों को लिखे। उस (मातृका पद्म) का पराग सप्तवर्ग (सुख की सात अवस्थाओं) से युक्त रहा करता है। उस कमल के केसर भाग को वर्ग के आदि अक्षरों से संयोजित करे तथा कर्णिका में अग्निबीज (रं) लिखे। मंत्रज्ञ को यह कमल अपने हृदय में स्थापित करके अपने बाँये हाथ की हथेली में इसका चिन्तन करना चाहिए। उसे वियति नामक मंत्र के विभिन्न अक्षरों का जो उसकी विभिन्न कलाएँ हैं, अपने दाहिने हाथ के अंगूठे आदि के ऊपर न्यास करना चाहिए।५-६।

पीतं वज्रचतुष्कोणं पार्थिवं शक्रदैवतम्।
वृत्तार्धमाप्यपद्मार्ध शुक्लं वरुणदैवतम्॥७
त्र्यस्त्रं (स्त्रं ?) स्वस्तिकयुक्तं च तैजसं वह्निदैवतम्।
वृत्तं विन्दुवृतं वायुदैवतं कृष्णमालिनम्॥८

चतुष्कोण के रूप में फैली हुयी किरणें पीतवर्ण की होती हैं और उनके देवता इन्द्र कहे गये है। दो भागों में कटे हुए कमल के सदृश अर्धवृत्त का वर्ण श्वेत तथा देवता वरुण होता है। त्रिकोण में स्वस्तिकाकार बना हुआ प्रकाश-पुञ्ज अग्नि देवता से सम्बद्ध तथा उसके तेज से युक्त होता है। अन्तिम (बाह्य) विन्दु युक्त वृत्ताकार मण्डल कृष्णवर्ण तथा वायु देवता से सम्बद्ध होता है।७-८।

अङ्गुष्टाद्यङ्गुलीमध्यपर्यस्तेषु स्ववेश्मसु।
सुवर्णनागवाहेन वेष्टितेषु न्यसेत्क्रमात्॥९
वियतेश्चतुरो वर्णान्सुमण्डलसमत्विषः।
अरूपे रवतन्मात्रे आकाशे शिवदैवते॥१०
कनिष्ठामध्यपर्वस्थे न्यसेत्तस्याऽऽद्यमक्षरम्।
नागानामादिवर्णांश्च स्वमण्डलगतान्न्यसेत्॥११

तत्पश्चात् वियति मंत्र के मुख्य अक्षरो का न्यास अंगूठे इत्यादि अंगुलियों के मध्यवर्ती स्थानों में करना चाहिए जो सुनहले सर्प से आवेष्ठित माने जाते है। इस मंत्र के चार वर्णों की कान्ति उनके सुन्दर मंडलों के समान है। इस प्रकार न्यास करने के पश्चात् रूप रहित शब्दतन्मात्रमय शिव देवता के आकाश तत्त्व में इस मंत्र के प्रथम अक्षर को कनिष्ठिका के मध्यपर्व पर स्थित समझना चाहिए। इसी प्रकार नाग शब्द के आदि और अन्तिम अक्षरों का भी उनके मंडलों में न्यास करना चाहिए।९-११।

भूतादिवर्णान्विन्यसेदङ्गुष्ठाद्यन्तपर्वसु ।
तन्मात्रादिगुणाभ्यर्णानङ्गुलीषु न्यसेद्बुधः ॥१२
स्पर्शनादेव तार्क्ष्येण हस्ते हन्याद्विषद्वयम् ।
मण्डलादिषु तान्वर्णान्वियतेः कवयो जितान् ॥१३
श्रेष्ठद्व्यङ्गुलिभिर्देहनाभिस्थानेषु पर्वसु ।
आ जानुतः सुवर्णाभमा नाभेस्तुहिनप्रभम् ॥१४
कुङ्कुमारुणमा कण्ठादा केशान्तात्सितेतरम् ।
ब्रह्माण्डव्यापिनं तार्क्ष्यं चन्द्राख्यं नागभूषणम् ॥१५
नीलोग्रनाशमात्मानं महापक्षं स्मरेद्बुधः ।
एवं तार्क्ष्यात्मनो वाक्यान्मंत्रः स्यान्मंत्रिणो विषे ॥१६

पृथ्वी आदि भूतों से सम्बद्ध अक्षरों का न्यास अंगूठे आदि अंगुलियों के अन्तिम पर्वो पर करना चाहिए। (पञ्च) तन्मात्राओं से सम्बद्ध अक्षरों का न्यास अंगुलियों पर करना चाहिए। इस प्रकार गरुड़ मंत्र की शक्ति से समन्वित हाथ के एक स्पर्श से ही सभी प्रकार का स्थावर-जंगम विष दूर हो जाता है। तदनन्तर मंत्रज्ञ को पृथ्वीमंडल आदि में विन्यस्त वियति मंत्र के चारों अक्षरों का अपनी श्रेष्ठ दो अंगुलियों के द्वारा शरीर के नाभिस्थानों और पर्वो में न्यास करे उस (गरुड़ देवता) को घुटनों से नाभि तक स्वर्ण वर्ण का, नाभि से ऊपर हिम धवल, कण्ठ तक केसरिया और केश पर्यन्त श्याम वर्ण वाला समझना चाहिए। वह गरुड़ देवता समूचे ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं। उनका चन्द्र नाम का नागमय आभूषण है। उनकी नासिका का अग्रभाग नीले रंग का है और उनके पंख बड़े विशाल हैं। सर्प दंश की चिकित्सा करने वाले विष-वैद्य के मंत्र में इस अलौकिक गरुड़ का वर्णन प्रधान हुआ करता है।१२-१६।

मुष्टिस्तार्क्ष्यकरस्यान्तः स्थिताऽङ्गुष्ठविषापहा ।
तार्क्ष्ये हस्तं समुद्यम्य तत्पश्चाङ्गुलिचालनात् ॥१७
कुर्याद्विषस्य स्तम्भादींस्तदुक्तमदवीक्षया ।
आकाशादेष भूवीजः पञ्चार्णाधिपतिर्मनुः ॥१८
संस्तम्भयेऽतिविषतो भाषया स्तम्भयेद्विषम् ।
व्यत्यस्तभूषणो वीजमंत्रोऽयं साधुसाधितः ॥१९

संप्लवप्लावयय मशब्दाद्यः संहरेद्विषम् ।
दण्डमुत्थापयेदेष सुजप्ताम्भोऽभिषेकतः ॥२०

इस प्रकार गरुड़ मंत्र से अभिमंत्रित हाथ की मुट्ठी का प्रहार सभी प्रकार के सर्प-विषों को दूर करने वाला होता है। उपर्युक्त मंत्र से अभिमंत्रित पांचों उंगलियों को सर्प-दंश के ऊपर हिलाने से आगे विष का प्रसार रुक जाता है। हस्तचालन के समय जिस मंत्र का प्रयोग करना चाहिए, वह इस प्रकार है— आकाश से लेकर पृथ्वी पर्यन्त जो पाँच वीज हैं उन्हें पंचाक्षर मंत्रराज कहा गया है। उसका स्वरूप है—हूं यं रं वं लं। मंत्रज्ञ पुरुष इस मंत्र के उच्चारण मात्र से भीषणतम विष को भी रोक देता है। यह व्यत्यस्तभूपण वीजमंत्र है। इसको अच्छी तरह साध लिया जाय और इसके आदि में संप्लव प्लावय प्लावय-यह वाक्य जोड़ दिया जाय तो यह और भी अधिक प्रभा श्री हो जाता है। जिस रोगी के ऊपर उपर्युक्त मंत्र से अभिमंत्रित जल छिड़क दिया जाता है वह निश्चय ही उठकर विस्तर पर बैठ जाता है।१७-२०।

सुजप्तशङ्खभेर्यादिनिस्वनश्रवणेन वा ।
संदहत्येव संयुक्तो भूतेजोव्यत्ययात्स्थितः ॥२१
भूवायुव्यत्ययान्मंत्रो विषं संक्रामयत्यसौ ।
अन्तस्थो निजवेश्मस्थो वीजाग्नीन्दुजलाम्बुभिः ॥२२
एतत्कर्म नयेन्मंत्री गरुडाकृतिविग्रहः ।
तार्क्ष्यवरुणगेहस्थस्तज्जपान्नाशयेद्विषम् ॥२३
जानुदण्डीमुदितं स्वधाश्रीवीजलाञ्छितम् (?) ।
स्नानपानात्सर्वविषं ज्वरा (र) रोगापमृत्युजित् ॥२४

अच्छी तरह साधित मंत्र से अभिमंत्रित तुरही अथवा शंख का शब्द ही मरणासन्न रोगी को ठीक कर देता है क्योंकि शक्तिशाली वियति मंत्र में भू बीज तथा तेजोबीज मंत्र की शक्ति समन्वित रहती है। तदनन्तर अपने मूल तत्त्वों पृथ्वी, वायु से अलग होकर यह मंत्र विष के ऊपर आक्रमण करता है तथा तेज अग्नि और जल इन अशेष तत्त्वों से उसे नष्ट कर देता है। विष वैद्य के इस मंत्र का सावधानी पूर्वक गरुड़ और वरुण के मन्दिर में जप करना चाहिए। इस अवसर पर उसे अपने आपको अलौकिक गरुड़ की शक्ति से समन्वित समझकर अपना ध्यान एक भयंकर सर्पद्वेषी गरुड़ के रूप में करना चाहिए। स्वधा और श्री के वीजों से युक्त करके यदि इस मंत्र को बोला

जाय तो इसे जानुदण्डिमंत्र कहते हैं। इससे जपपूर्वक स्नान और जलपान करने से साधक सब प्रकार के विष, ज्वर, रोग और अपमृत्यु पर विजय पा लेता है।२१-२४।

पक्षि पक्षि महापक्षि महापक्षि वि वि स्वाहा।
पक्षि पक्षि महापक्षि महापक्षि क्षि क्षि स्वाहा ॥२५
द्वावेतौ पक्षिराण्मंत्रौ विषघ्नावभिमंत्रणात् ॥२६
पक्षिराजाय विद्महे पक्षिदेवाय धीमहि
तन्नो गरुड [:] प्रचोदयात् ॥२७
वह्निस्थौ पार्श्वतत्पूर्वौ दन्तश्रीकौ च दण्डिनौ।
सकाली लाङ्गली चेति नीलकण्ठाद्यमीरितम् ॥
वक्ष कण्ठशिखाश्वेतं न्यसेत्स्तम्भे सुसंस्कृतौ ॥२८
हर हर हृदयाय नमः कपर्दिने च शिरसि।
नीलकण्ठाय वै शिखां कालकूटविषभक्षणाय स्वाहा ॥२९
अथ वर्म च कण्ठे नेत्रं कृत्तिवासास्त्रिनेत्रम्।
पूर्वाद्यैराननैर्युक्तं श्वेतपीतारुणासितैः ॥३०
अभयं वरदं चापं वासुकिं च दधद्भुजैः।
यस्योपवीतपार्श्वस्था गौरी रुद्रोऽस्य देवता ॥३१

"पक्षि पक्षि महापक्षि महापक्षि वि वि स्वाहा" और 'पक्षि पक्षि महापक्षि महापक्षि क्षि क्षि स्वाहा' यह दोनों गरुड़ मन्त्र कहलाते हैं। इनके अभिमन्त्रण से सब प्रकार का विष नष्ट हो जाता है। गरुड़ के लिए गायत्री मन्त्र इस प्रकार- है—'पक्षिराजाय विद्महे पक्षिदेवाय धीमहि। तन्नो गरुड़ः प्रचोदयात्, उपर्युक्त दोनों पक्षिराज-मंत्रों को 'रं' बीज से आवृत करके उनके पार्श्व भाग में भी 'रं' बीज जोड़ दे। तदनन्तर दन्त, श्री, दण्डी, काली और लाङ्गली से उन्हें युक्त कर दे और आदि में पूर्वोक्त नीलकण्ठ मंत्र जोड़ दे। इस प्रकार बताये गये मंत्र का वक्षःस्थल, कण्ठ और शिखा में न्यास करे। उक्त दोनों मंत्रों का संदर्भ करके उन्हें स्तम्भ में अंकित करे। इसके पश्चात् निम्नाङ्कित रूप से न्यास करे—'हर हर हृदयाय नमः कपर्दिने शिरसे स्वाहा नीलकण्ठाय शिखायै वषट् कालकूट विष भक्षणाय स्वाहा हुँ फट् कवचाय हुम्, कृत्तिवासो नेत्र-

त्रयाय वौषट् नीलकण्ठाय स्वाहा अस्त्राय फट्। जिनके पूर्व आदि मुख क्रमशः श्वेत, पीत, अरुण, श्याम हैं, जो अपने चारों हाथों में क्रमशः अभय, वरद धनुष तथा वासुकि नाग को धारण करते हैं, जिनके गले में यज्ञोपवीत शोभा पाता है और पार्श्व भाग में गौरी देवी विराजमान है, वे भगवान् रुद्र इस मन्त्र के देवता हैं।२५-३१।

पादजानुगुहानाभिहृत्कण्ठाननमूर्धसु।
मंत्राणान्न्यस्य करयोरङ्गुष्ठाद्यङ्गुलीषु च ॥३२
तर्जन्यादितदन्तासु सर्वमङ्गुष्ठयोर्न्यसेत्।
ध्यात्वैवं संहरेत्क्षिप्रं वद्धया शूलमुद्रया ॥३३
कनिष्ठा ज्येष्ठया वद्धा तिस्रोऽन्याः प्रसृतेर्जवाः (?)।
विषनाशे वामहस्तमन्यस्मिन्दक्षिणं करम् ॥३४
ॐ नमो भगवते नीलकण्ठाय[1] चिः अमलकण्ठाय चिः।
सर्वज्ञकण्ठाय चिः क्षिप क्षिप, ॐ स्वाहा।
अमलनीलकण्ठाय नैकसर्वविषापहाय।
नमस्ते रुद्र मन्यव इति संमार्जनाद्विषं विनश्य-
ति न संदेहः। कर्णजाप्या [2]उपानहा वा ॥३५
यजेद्रुद्रविधानेन नीलग्रीवं महेश्वरम्।
विषव्याधिविनाशः स्यात्कृत्वा रुद्रविधानकम् ॥३६

पैरों, घुटनों, भुजाओं, नाभि, हृदय, ग्रीवा, मुख और शिर में मन्त्र के अक्षरों का न्यास करना चाहिए। तदनन्तर दोनों हाथों की अंगुष्ठ से आदि अंगुलियों में मंत्राक्षरों का न्यास करके सम्पूर्ण मंत्र का अंगुष्ठों में न्यास करना चाहिए। इस प्रकार ध्यान और न्यास करके शीघ्र ही बांधी गई शूल-मुद्रा के द्वारा विष का संहार करे। कनिष्ठा अंगुली ज्येष्ठा से बंध जाये और तीन अंगुलियां फैल जांय तो शूलमुद्रा होती है विष के प्रभाव को मन्द करने के लिए बायें हाथ का प्रयोग करना चाहिए किन्तु अन्य अवसरों पर दाहिने हाथ से ही काम लेना चाहिए। ओं नमो भगवते नीलकण्ठाय चिः अमल—कण्ठाय चिः, सर्वज्ञकण्ठाय चिः 'क्षिप क्षिप' ओं स्वाहा अमलनीलकण्ठाय नैक-सर्पविषापहाय। नमस्ते रुद्र मन्यवे" इस मन्त्र से (रोगी के शरीर का) सम्मार्जन करने से विष नष्ट हो जाता है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। इस मन्त्र का रोगी के कान में जप करने से अथवा मन्त्र पढ़ते हुए जूते से रोगी के पास

१ ङ. °य टि, अ°। च °य, इति। अ°। २ ङ. उपलता।

की भूमि को पीटने से भी विष उतर जाता है। (विष दूर करने के लिए) रुद्र-विधान से नीलकण्ठ महेश्वर का पूजन करना चाहिए। क्योंकि रुद्र विधान विष से उत्पन्न होने वाली सभी व्याधियों का विनाश कर देता है। ३२-३६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दष्टचिकित्साकथनं नाम
पञ्चनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।२९५

अथ षण्णवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

पञ्चाङ्गरुद्रविधानम्

अग्निरुवाच—
वक्ष्ये रुद्रविधानं तु पञ्चाङ्गं सर्वदं परम्।
हृदयं शिवसंकल्पः शिरः सूक्तं तु पौरुषम्॥१
शिखाऽद्भ्यः संभृतं सूक्तमाशुः कवचमेव च।
[1]शतरुद्रीयसंज्ञस्य रुद्रस्याङ्गानि पञ्च हि॥२
पञ्चाङ्गान्यस्य तं ध्यात्वा जपेद्रुद्रांस्ततः क्रमात्।
यज्जाग्रत इति सूक्तं [2]षडृचं मानसं विदुः॥३

अग्निदेव बोले—अब मैं पाँच अङ्गों से युक्त रुद्र विधान का वर्णन कर रहा हूँ। यह सब कुछ देने वाला और अत्यन्त श्रेष्ठ है। शिव संकल्प नामक मन्त्र से हृदय, पुरुषसूक्त से शिर, 'अदभ्यः संभृतं, सूक्त से शिखा और 'आशुः' मन्त्र से कवच का न्यास करना चाहिये। शतरुद्रीय मन्त्र के साथ उपर्युक्त चारों मन्त्र रुद्रविधान के पाँच अङ्ग कहे जाते हैं। पञ्चांगों का ध्यान करके क्रमशः (विभिन्न) रुद्र मन्त्रों का जप करना चाहिये। उसका प्रथम मन्त्रसमूह छह ऋचाओं से युक्त 'यज्जाग्रत' नामक मानस-सूक्त है।१-३।

ऋषिः स्याच्छिवसंकल्पश्छन्दस्त्रिष्टुबुदाहृतम्।
शिरः सहस्रशीर्षेति तस्य नारायणोऽप्यृषिः॥४

---

१ छ °यमस्त्रं च रु°। ४ छ. यदृच°।

देवता पुरुषोऽनुष्टुप्छन्दो ज्ञेयं च त्रैष्टुभम् ।
अद्भ्यः संभृतसूक्तस्य ऋषिरुत्तरगो नरः ॥५
आद्यानां तिसृणां त्रिष्टुप्छन्दोऽनुष्टुब्द्वयोरपि ।
छन्दस्त्रैष्टुभमन्त्यायाः पुरुषोऽस्यास्ति देवता ।६

इसका ऋषि शिवसंकल्प तथा छन्द त्रिष्टुप् कहा गया है । शिर के न्यास करने के लिये प्रयुक्त 'सहस्रशीर्षा. इत्यादि पुरुषसूक्त के ऋषि नारायण, पुरुष देवता और छन्द अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् हैं । 'अद्भ्यः सम्भृतम्:' सूक्त के ऋषि उत्तरग नामक व्यक्ति है । प्रथम तीन ऋचाओं का छन्द त्रिष्टुप् है तथा बाद की दो ऋचाओं का छन्द अनुष्टुप् कहा गया है । अन्तिम मन्त्र त्रिष्टुप् छन्द में है । इसका देवता पुरुष कहा गया है ।४-६।

आशुरिन्द्रो द्वादशानां छन्दस्त्रिष्टुबुदाहृतम् ।
ऋषिः प्रोक्तः प्रतिरथः सूक्ते सप्तदशर्चके ॥७
पृथक्पृथग्देवताः स्युः पुरुविदङ्गदेवता ।
अवशिष्टदैवतेषु च्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ॥८
असौ यस्ताम्रो भवति पुरुलिङ्गोक्तदेवता ।
पंक्तिश्छन्दोऽथ मर्माणि त्रिष्टुल्लिङ्गोक्तदेवताः ॥९

'आशुः' इत्यादि बारह मन्त्रों का देवता इन्द्र तथा छन्द त्रिष्टुप् कहा गया है । सत्रह ऋचाओं से युक्त इस सूक्त का ऋषि प्रतिरथ है । (इस सूक्त के) विभिन्न मन्त्रों के देवता (भी) भिन्न-भिन्न हैं और पुरुविद् इसका अङ्गदेवता है । अन्य देवताओं से सम्बद्ध मन्त्रों का छन्द 'अनुष्टुप्' है । 'असौ यस्ताम्रो' आदि सूक्त में बहुत से देवता है । उसमें पङ्क्ति छन्द है । 'मर्माणि ते' मन्त्र का त्रिष्टुप् छन्द है और लिङ्गोक्त देवता है ।७-९।

रौद्राध्याये च सर्वस्मिन्नृषिः स्यात्परमेष्ठ्यथ ।
प्रजापतिर्वा देवानां कुत्सश्च तिसृणां पुनः ॥१०
मनोद्वयो रुगेका स्याद्रुद्रो रुद्राश्च देवताः ।
आद्योऽनुवाकोऽथ पूर्व एकरुद्राख्यदैवतः ॥११
छन्दो गायत्रमाद्याया अनुष्टुप्तिसृणामृचाम् ।
तिसृणां च तथा पंक्तिरनुष्टुबथ संस्मृतम् ॥१२

सम्पूर्ण रौद्राध्याय में ऋषि परमेष्ठि अथवा प्रजापति हैं किन्तु तीन देवताओं से सम्बद्ध मन्त्रों के ऋषि कुत्स हैं। 'मगस्' इत्यादि से प्रारम्भ होने वाले दो मन्त्रों का देवता रुद्र है किन्तु प्रथम अनुवाक् का देवता एक रुद्र कहा गया है। पहली ऋचा का छन्द गायत्री तथा शेष अन्य ऋचाओं का छन्द अनुष्टुप् है। उससे आगे वाले तीन मन्त्रों का छन्द पङ्क्ति तथा शेष मन्त्रों का छन्द अनुष्टुप् है।१०-१२।

द्वयोश्च जगतीछन्दो रुद्राणामप्यशीतयः।
हिरण्यबाहवस्तिस्रो नमो वः किरिकाय च ॥१३
पञ्चर्चो रुद्रदेवाः स्युर्मन्त्रे रुद्रानुवाकक:।
विंशके रुद्रदेवास्ताः प्रथमा बृहती स्मृता ॥१४
ऋग्द्वितीया त्रिजगती तृतीया त्रिष्टुबेव च।
अनुष्टभो यजुस्तिस्र आर्योऽभिज्ञः सुसुद्धिभाक् ॥

इस अनुवाक के दो-दो मन्त्र जगती छन्द में हैं। इनमें परिगणित ८० (अस्सी) रुद्र इनके देवता हैं। 'हिरण्य-बाहवः' आदि पाँच ऋचाओं के देवता रुद्र हैं। इन ऋचाओं में से पहली ऋचा का छन्द 'बृहती' है। बाद की तीन ऋचाओं का छन्द जगती है और उनके बाद की ऋचा का छन्द त्रिष्टुप् है। उसके बाद चार यजुष् मन्त्र हैं, जिनका छन्द अनुष्टुप् है। इन मन्त्रों को सम्यक प्रकार से जानने वाला व्यक्ति आर्य है, वह सभी सिद्धियों का भागी भी है।१३-१४½।

त्रैलोक्यमोहनेनापि विषव्याध्यादिमर्दनम् ॥१५
इं श्रीं ह्रीं हुं त्रैलोक्यमोहनाय विष्णवे नमः ॥१६
अनुष्टुभनृसिंहेन विषव्याधिविनाशनम् ॥१७
ॐ हम्, इम्, उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् ॥१८
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्।
अयमेव तु पञ्चांगो मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥१९

'त्रैलोक्यमोहन' नामक मन्त्र से भी विषव्याधि का विनाश हो जाता है। यह मन्त्र हैं 'इं श्रीं ह्रीं हुँ त्रैलोक्यमोहनाय विष्णवे नमः।' अनुष्टुप् नामक छन्द में निबद्ध नृसिंह मन्त्र भी विषव्याधि का विनाशक है। यह मन्त्र है—

'ॐ' हृम् हृम् इम् उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तम् सर्वतो मुखम् । नृसिहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ।, 'यह पञ्चांग मन्त्र है जो सभी मनोरथों को सिद्ध करने वाला है ।१५-१६।

द्वादशाष्टाक्षरौ मन्त्रौ विषव्याधिविमर्दनौ ।
कुब्जिका त्रिपुरा गौरी [1]चन्द्रिका विषहारिणी ।।२०
प्रसादमन्त्रो विषहृदायुरारोग्यवर्धनः ।
सौरो विनायकस्तद्वद्रुद्रमन्त्राः सदाऽखिलाः ।।२१

बारह और आठ अक्षरों वाले विष्णु के मन्त्र भी विषव्याधि दूर करने वाले हैं । कुब्जिका, त्रिपुरा, गौरी और चन्द्रिका देवियाँ विषापहारिणी हैं । 'प्रसाद मन्त्र' विष का अपहरण करने वाला तथा आरोग्य वर्धक है । सूर्य और विनायक तथा रुद्र के सभी मन्त्र सदा उसी प्रकार (विषापहारक तथा आरोग्यवर्धक) हुआ करते हैं ।२०-२१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पञ्चाङ्गरुद्रविधानं नाम षण्णवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२९६

अथ सप्तनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

विषहृन्मन्त्रौषधम्

अग्निरुवाच—

ॐ नमो भगवते रुद्राय च्छिन्द च्छिन्द विषं
ज्वलितपरशुपाणये च ।
नमो भगवते पक्षिरुद्राय दष्टकमुत्थापयोत्थापय दष्टकं कम्पय
कम्पय जल्पय जल्पय सर्पदष्टमुत्थापयोत्थापय लल लल
बन्ध बन्ध मोचय मोचय वररुद्र गच्छ गच्छ वध वध त्रुट
त्रुट वुक वुक भीषय भीषय मुष्टिना विषं संहर संहर ठ ठ ।१
पक्षिरुद्रेण ह विषं नाशमायाति मन्त्रणात् ।।२

1 छ. चण्डिका ।

अग्निदेव बोले—"ॐ नमो भगवते रुद्राय' · · · · 'संहर ठ ठ" इस पक्षि रुद्र नामक मंत्र से मंत्रित करने पर निश्चय ही (सर्प) विष का नाश होता है।१-२।

ॐ नमो भगवते रुद्र नाशय विषं स्थावरजङ्गमं कृत्रिमा-
कृत्रिममुपविषं नाशय नानाविषं दष्टकविषं नाशय
धम धम दम दम वम वम मेघान्धकारधारावर्ष निर्विषी
भव संहर संहर गच्छ गच्छाऽऽवेशयाऽऽवेशय विषोत्थापन-
रूपं मन्त्राद्विविषधारणम् । ॐ क्षिप, ॐ क्षिप स्वाहा
ॐ ह्रां ह्रीं खीं सः, ठं द्रौं ह्रीं ठः ॥३
जपादिना साधितस्तु सर्पान्बध्नाति नित्यशः ।
एकद्वित्रिचतुर्बीजः कृष्णचक्राङ्गपञ्चकः ॥
गोपीजनवल्लभाय स्वाहा सर्वार्थसाधकः ॥४

'ॐ नमो भगवते रुद्रनाशय' · · · · 'द्रौं ह्रीं ठः' इस मन्त्र के जपादि से सिद्ध किया हुआ मन्त्र नित्य सर्पों को बन्धन में डाल देता है। एक द्वि त्रि चतुर्बीजात्मक तथा कृष्णचक्र जिसका पाँचवाँ अङ्ग है। ऐसा 'गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' यह मन्त्र समस्त मनोरथों को सिद्ध करने वाला है।३-४।

ॐ नमो भगवते रुद्राय [1]प्रेताधिपतये शृणु शृणु गर्ज गर्ज
भ्रामय भ्रामय मुञ्च मुञ्च मुह्य मुह्य कट्ट कट्ट,
आविश आविश सुवर्णपतङ्ग [2]रुद्रो ज्ञापयति ठ ठ ॥५
पातालक्षोभमन्त्रोऽयं मन्त्रणाद्विषनाशनः ।
दंशकाहिदंशे सद्यो दष्टः काष्ठशिलादिना ॥६
विषशान्त्यै दहेद्दंशज्वालकोकनदादिना ।
शिरीषबीजपुष्पार्कक्षीरबीजकटुत्रयम् ॥७
विषं विनाशयेत्पानलेपनेनाञ्जनादिना ।
शिरीषपुष्पस्य रसभावितं मरिचं सितम् ॥८
[3]पाननस्याञ्जनाद्यैश्च विषं हन्यान्न संशयः ॥

"ॐ नमो भगवते रुद्राय' · · · · 'ज्ञापयति ठ ठ" इस पाताल क्षोभ नामक मंत्र के जप से (सर्प) विष का नाश होता है। दंशक सर्प के काट लेने

---

१ छ. 'ये गुत्व गुत्व ग' । २ क. ङ. गरुड़ो । ३ ख.° नलेपाञ्ज° ।

पर काटे हुये भाग को जलते हुए काष्ठ, गरम पत्थर अथवा कोकनद आदि से जला देना चाहिये। इससे विष शान्त हो जाता है। शिरीष वृक्ष का वीज तथा पुष्प, मदार का दूध और बीज कटुत्रय (सोंठ, मिर्च, पीपरि), इन ओषधियों के पान, लेपन तथा अञ्जनादि से सर्प-विष का नाश होता है। शिरीषपुष्प के रस से सोंधी हुयी सफेद मिर्च के पीने तथा नस्य अञ्जनादि रूप में उसका प्रयोग करने से निश्चित ही विष दूर हो जाता है।५-८½।

कोषातकीवचाहिङ्गुशिरीषार्कपयोयुतम् ॥९
कटुत्रयं समेषाम्भो हरेन्नस्यादिना विषम्।
रामठेक्ष्वाकुसर्वाङ्गचूर्णं नस्याद्विषापहम् ॥१०
इन्द्रबलाग्निकं द्रोणं तुलसी देविका सहा।
तद्रसाक्तं त्रिकटुकं चूर्णं भक्ष्यं विषापहम् ॥११
पञ्चाङ्गं कृष्णपञ्चम्यां शिरीषस्य विषापहम् ॥१२

कोषातकी, बच, हींग, शिरीष, मदार का दूध, सोंठ, मिर्च, और पीपरि— इस सबसे तैयार किये गये जल के न्यास लेने से सर्प-विष दूर हो जाता है। अंकोल और कड़वी तुम्बी के सर्वाङ्ग चूर्ण से नस्य लेने पर विष का अपहरण हो जाता है। इन्द्र (कुटक), बल (वरुण वृक्ष), अग्नि (भेलावाँ), द्रोण, तुलसी और देविका (धत्तूर) के रस में सोंठ, मिर्च और पीपरि के चूर्ण को मिलाकर खाने से सर्पविष दूर होता है। कृष्णपक्ष की पञ्चमी तिथि को लाये गये शिरीष पुष्प के (मूल, छाल, पत्ते, पुष्प और फल) इन पाँचों अङ्गों के सेवन से भी सर्प विष दूर हो जाता है।९-१२।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये विषहृन्मन्त्रौषधकथनं नाम-
सप्तनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।२९७

———

अथाष्टनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

गोनसादिचिकित्सा

अग्निरुवाच—

गोनसादिचिकित्सां च वशिष्ठ शृणु वच्मि ते ।।१

अग्निदेव बोले—हे वशिष्ठ ! गोनस आदि (सर्पो) के काटे हुये रोगी की चिकित्सा तुमसे बतलाता हूँ, उसे सुनो ।१।

ॐ ह्रां ह्रीम्, [1]अमलपक्षि [2]स्वाहा ।।२
ताम्बूलखादनान्मन्त्री हरेन्मण्डलिनो विषम् ।
लशुनं रामठफलं कुष्ठोग्रा व्योषकं विषे ।।३
स्नुहीक्षीरं गव्यघृतं पक्वं पीत्वाऽहिजे विषे ।
अथ राजिलदष्टे च पेया कृष्णा ससैन्धवा ।।४

'ॐ ह्रां ह्रीम् अमलपक्षि स्वाहा' इस मंत्र से अभिमंत्रित ताम्बूल के खाने से सर्पमंत्र का ज्ञाता मण्डली सर्प के विष को दूर कर देता है। लहसुन, हींग, कुष्ठ, उग्रा, सोंठ, मिर्च और पीपरि का चूर्ण विष दूर करने वाला होता है। गाय के घी में सेंहुड़ के दूध को पकाकर पीने से सर्प-विष में लाभ होता है। राजिल नामक सर्प के काटने पर सेंधा नमक के साथ कृष्णा (गजपीपरि) का पान करना चाहिये ।२-४।

आज्यं क्षौद्रं शकृत्तोयं [3]पुरीतत्या विषापहम् ।
सकृष्णाखण्डदुग्धाज्यं पातव्यं तेन माक्षिकम् ।।५
व्योषं पिच्छं विडालास्थिनकुलाङ्गरुहैः समैः ।
चूर्णितैर्मेषदुग्धाक्तैर्धूपः सर्वविषापहः ।।६
रोमनिर्गुण्डिकाकोलवर्णैर्वा लशुनं समम्
मुनिपत्रैः कृतस्वेदं दष्टं काञ्जिकपाचितैः ।।७

घृत मधु और शकृत्तोय (पशु विष्ठा का जल) नाड़ियों में फैले हुये विष को भी दूर कर देते हैं। गजपीपरि के समस्त अङ्ग, दुग्ध और घी के सहित मधु को पीने से सर्प विष दूर होता है। सोंठ, मिर्च, पीपरि, मयूरपिच्छ, विडाल की हड्डी, नेवले के रोयें इन सबके सम भाग को पीसकर भेंड़ के दूध

---

१ क. ङ. °पक्षे स्वा° । २ क. ङ. ° हा । पञ्चाङ्गस्वा° । ३ क. ङ. ° रीद्वारा वि° ।

में मिलाकर धूप देने से सब प्रकार का विष दूर हो जाता है। सिन्धुवार, अश्वगन्धा तथा लहसुन भी विषनाशक है। काञ्जी के रस में पकाये हुये अगस्त्य (वृक्ष) के पत्तों से धूनी देने से भी विष सर्प दूर हो जाता है।५-७।

मूषिकाः षोडश प्रोक्ता रसं कार्पासजं पिबेत्।
सतैलं मूषिकार्तिघ्नं फलिनीकुसुमं तथा ॥८
सनागरगुडं भक्ष्यं तद्विषारोचकापहम्।
चिकित्सा विंशतिः प्रोक्ता लूता [1]विषहरो गणः ॥९

मूषकों के सोलह भेद बताये गये हैं। उनके काटने पर कपास के पत्तों का रस पीना चाहिये। फलिनी लता के फूलों के रस को तेल के साथ पीने से भी मूषकों का विष शान्त हो जाता है। मूषक के काटने पर उसके विष से उत्पन्न पीड़ा को दूर करने के लिए गुड़ के साथ नागरमोथा का सेवन करना चाहिए। लूता (रोग-विशेष जिसमें शरीर में फुंसियाँ निकल आती हैं अथवा मकड़ी के मूत्रोत्सर्ग से उत्पन्न होने वाली फुंसियाँ) आदि के विषों की चिकित्सा बीस प्रकार से बताई गई है।८-९।

पद्मकं पाटली कुष्ठं नतमुशीरचन्दनम्।
निर्गुण्डी सारिवा शेलु लूतार्तं सेचयेज्जलैः ॥१०
गुञ्जानिर्गुण्डिकङ्कोलपर्णं शुण्ठी निशाद्वयम्।
करञ्जास्थि च तत्पङ्कैर्वृश्चिकार्तिहरं शृणु ॥११

लूता के रोगी के लिये पद्मक, पाटली, अश्वगन्धा, तगर की जड़, खस, चन्दन, म्योड़ी, सारिवा, शेलु ओषधियाँ लाभदायक हुआ करती हैं। लूता के रोगी का उक्त ओषधियों के जल से सेचन करना चाहिये। घुंघुंची, म्योड़ी, कंकोल के पत्र, सोंठ, दोनों हल्दी, करञ्जा की छाल तथा उसके लेप से लूता विष से पीड़ित रोगी की पीड़ा दूर होती है। अब विच्छू के विष को दूर करने वाली ओषधियों को सुनो।१०-११।

मञ्जिष्ठा चन्दनं व्योषपुष्पाशिरीषकौमुदम्।
संयोज्याश्चतुरो योगा लेपादौ वृश्चिकापहाः ॥१२

---

१ 'चिकित्सा विंशतिः प्रोक्ता' इत आरभ्य "त्वरिताज्ञानमाख्यास्ये" इत्यस्मात्प्रागध्यायदशकपरिमितोः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

ॐ नमो भगवते रुद्राय चिवि चिवि च्छिन्द च्छिन्द
किरि किरि भिन्द भिन्द खड्गेन च्छेदय च्छेदय शूलेन
भेदय भेदय चक्रेण दारय दारय ॐ हूं फट् ॥१३
मंत्रेण मंत्रितो देयो गर्दभादीन्निकृन्तति ।
त्रिफलोशीरमुस्ताम्बुमांसीपद्मकचन्दनम् ॥१४
अजाक्षीरेण पानादौ गर्दभादेर्विषं हरेत् ॥

मञ्जिष्ठ, चन्दन, व्योष (सोंठ, मिर्च, पीपरि) कोकाबेली और शिरीष पुष्प के लेप से बिच्छू की पीड़ा शान्त होती है। "ॐ नमो भगवते······ॐ हूं फट्"—मंत्र से अभिमंत्रित त्रिफला (आँवला, हर्रा, बहेड़ा), खश, नागरमोथा, रास्नालता, जटामासी, पद्मक और चन्दन को बकरी के दूध में पीने से गर्दभादि के काटने का विष शान्त हो जाता है।१२-१४½।

हरेच्छिरीषपञ्चांगव्योषं शतपदोविषम् ॥१५
सकन्धरं शिरीषास्थि हरेदुन्दूरजं विषम् ।
व्योषं ससर्पिः पिण्डीतमूलमस्य विषं हरेत् ॥१६
क्षारव्योषवचाहिङ्गुविडङ्गं सैन्धवं नतम् ।
अम्बष्ठाऽतिबला कुष्ठं सर्वकीटविषं हरेत् ॥

शतपदी (गोजर) नामक कीट के काटने का विष शिरीष पुष्प के पञ्चांग (मूल, छाल, पत्ते, पुष्प और फल) के साथ सोंठ मिर्च, और पीपरि के सेवन से शान्त हो जाता है। शाखा सहित शिरीष पुष्प की छाल छछुन्दर के विष को शान्त करती है। व्योष (सोंठ, मिर्च और पीपरि, बच, हींग, विडङ्ग, सेंघा नमक, नत (तगर की जड़) ब्राह्मी लता, अतिबला तथा कुष्ठ का लेप सभी कीड़ों के विष को दूर करता है।१५-१६½।

यष्टिव्योषगुडक्षीरयोगः[1] शुनो विषापहः ॥१७
ॐ सुभद्रायै नमः, ॐ सुप्रभायै नमः ॥१८
यान्यौषधानि गृह्यन्ते विधानेन विना जनैः ।
तेषां वीजं त्वया ग्राह्यमिति ब्रह्माऽब्रवीच्च ताम् ॥१९
तां प्रणम्यौषधीम् पश्चाद्यवान्प्रक्षिप्य मुष्टिना ।
दश जप्त्वा मन्त्रमिमं नमस्कुर्यात्तदौषधम् ॥२०

१ ख. ग. °गः खिलवि° । च. °गः स्यात्तु वि०° ।

यष्टि, व्योष (सोंठ, मिर्च, पीपरि गुड़ तथा दूध) के मिश्रण से कुत्ते का विष दूर हो जाता है। ब्रह्मा ने सुभद्रा और सुप्रभा से कहा कि जिन ओषधियों को मनुष्य बिना किसी विधान के ग्रहण करते हैं उन ओषधियों की शक्ति तुमको ले लेना चाहिये। अतः मनुष्य को योग्य है कि किसी भी ओषधि का ग्रहण करते समय वह "ॐ सुभद्रायै नमः" "ॐ सुप्रभायै नमः"—इस मंत्र का उच्चारण करे। इस मंत्र से ओषधि को प्रणाम करके तत्पश्चात् मुट्ठी भर यव (इधर-उधर) फेंकना चाहिये। उपर्युक्त मंत्र का दश बार पुनः जप करके उस ओषधि को प्रणाम करना चाहिये।१७-२०।

त्वामुद्धराम्यूर्ध्वनेत्रामनेनैव च भक्षयेत्।
नमः पुरुषसिंहाय नमो गोपालकाय च ॥२१
आत्मनैवाभिजानाति रणे कृष्ण पराजयम्।
अनेन सत्यवाक्येन अगदो मेऽस्तु सिध्यतु ॥२२
नमो वैदूर्यमात्रे [1]तत्र रक्ष रक्ष मां सर्वविषेभ्यो गौरि
गान्धारि चाण्डालि मातङ्गिनि स्वाहा हरिमाये ॥२३
ओषधादौ प्रयोक्तव्यो मन्त्रोऽयं स्थाविरे विषे।
मुक्तमात्रे स्थिते ज्वाले पद्मशीताम्बुसेवितम् ॥
पाययेत्सघृतं क्षौद्रं विषिञ्चेत्तदनन्तरम् ॥२४

'अयि ओषधि! मै तुम्हें प्रबुद्ध कर रहा हूँ, 'नेत्र को ऊपर करो', ऐसा कहते हुये ओषधि को उखाड़ना चाहिये और निम्नांकित मंत्र से उसका भक्षण करना चाहिये। 'भगवन् नृसिंह को नमस्कार है, गोपालक (भगवान् कृष्ण) को नमस्कार है। अयि कृष्ण! आप युद्ध में अपने से ही पराजित होते हैं। (किसी अन्य से नहीं), इस सत्य वाक्य से मुझमें नीरोगता हो और औषध मेरे लिये सिद्ध हो।' स्थावर विष (को दूर करने) में औषध प्रयोग के पूर्व "नमो वैदूर्य मात्रे......स्वाहा हरिमाये" मंत्र का प्रयोग कर लेना चाहिये। यदि विष केवल खाया ही गया हो तो कमल और शीतल जल का प्रयोग करना चाहिये। (शरीर में) विष शेष रह जाने पर घी और मधु मिलाकर पिलाना चाहिये और (विष से उत्पन्न) जलन का अनुभव होने पर रोगी को स्नान कराना चाहिये।२१-२४।

---

१ छ. तन्नर°।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गोनसादिचिकित्साकथनं नामाष्टनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२९८

———

अथ नवनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

बालादिग्रहहरबालतन्त्रम्

अग्निवाच—
बालतन्त्रं प्रवक्ष्यामि बालादिग्रहमर्दनम् ।
अथ जातदिने वत्सं ग्रही गृह्णाति पापिनी ॥१
गात्रोद्वेगो निराहारो नानाग्रीवाविवर्तनम् ।
तच्चेष्टितमिदं तत्स्यान्मातृणां च बलं हरेत् ॥२

अग्निदेव बोले—(अब) मैं बालक आदि के ग्रह-जन्य दोषों को दूर करने वाले बालतन्त्र का वर्णन कर रहा हूँ। पापिनी नाम की ग्रही (स्त्री ग्रह) बालक के जन्म के दिन से ही बच्चे को पकड़ लेती है। उसके आक्रमण करते ही बच्चे के अंगों में पीड़ा होती है, वह भोजन छोड़ देता है तथा उसकी गर्दन में मरोड़ उत्पन्न हो जाता है, यह तो बच्चे की दशा हो जाती है उधर माता का भी बल क्षीण हो जाता है।१-२।

मत्स्यमांससुराभक्ष्यगन्धस्रग्धूपदीपकैः ।
लिम्पेच्च धातकीलोध्रमञ्जिष्ठातालचन्दनैः ॥३
महिषाक्षेण धूपश्च द्विरात्रे भीषणी ग्रही ।
तच्चेष्टा कासनिःश्वासौ गात्रसकोचनं मुहुः ॥४
अजामूत्रयुतैः कृष्णा सेव्याऽपामार्गचन्दनैः ।
गोशृङ्गदन्तकेशैश्च धूपयेत्पूर्ववद्बलिः ॥५

ग्रही की शान्ति के लिये मछली, मांस, मद्य, आदि भक्ष्य पदार्थों की बलि देकर तथा माल्य और धूप, दीप आदि से उसे प्रसन्न करना चाहिए। और बच्चे के शरीर के ऊपर धातकी, लोध्र, मंजीठ, ताल, चन्दन आदि का लेप करना चाहिए। और गुग्गुल से धूप देना चाहिये। रात्रि में भीषणी नाम की

ग्रही वालक को पकड़ लेती है। उसके द्वारा अभिभूत होने पर बच्चे को खांसी आती है। श्वास चलने लगती है तथा शरीर में वार-बार सिकुड़न उत्पन्न हो जाती है। उसकी शान्ति के लिए लटजीरा, चन्दन और वकरी के मूत्र के साथ गजपीपरि का सेवन कराना चाहिए। साथ ही गोश्रृङ्ग, ववूल, गोदन्त (हड़ताल) और गोकेश की धूप देनी चाहिये तथा उसे भी पूर्ववत् मछली और मांसादि की वलि देनी चाहिये।३—५।

ग्रही त्रिरात्रे घण्टाली तच्चेष्टा क्रन्दनं मुहुः।
जृम्भणं स्वनितं त्रासो गात्रोद्वेगमरोचनम् ॥६
केशराञ्जनगोहस्तिदन्तं साजपयो लिपेत्।
नखराजीविल्वदलैर्धूपयेच्च वलि हरेत् ॥७
ग्रही चतुर्थी काकोली गात्रोद्वेगः प्ररोचनम्।
फेनोद्गारो दिशो दृष्टिः कुल्माषैः सासवैर्वलिः ॥८

तीसरी रात्रि में वालक को घण्टाली नाम की ग्रही पीड़ित करती है. इससे वच्चा वारम्वार रोता है, वार वार जम्हाई लेता है, चिल्लाता है, भय की मुद्रा दिखलाता है, अंगों में उद्विग्नता होने लगती है तथा उसे कोई भी वस्तु अच्छी नहीं लगती। इस ग्रही के द्वारा गृहीत वालक के ऊपर वकरी के दूध में केशर, अञ्जन, गोदन्त (हड़ताल) तथा हस्तिदन्त को मिलाकर लेप करना चाहिये और नख, श्वेत सरसों तथा वेल के पत्तों की धूप देकर (ग्रही के लिए) वलि देनी चाहिये। चतुर्थ रात्रि में (वालक को पीड़ित करने वाली) ग्रही का नाम काकोली है। उसके द्वारा पीड़ित वालक के शरीर में पीड़ा होती है, वह चिल्लाता है उसके मुख से फेन (झाग) गिरता है। और वह भौचक्का सा इधर-उधर देखता रहता है। इसकी शान्ति के लिए मदिरा के साथ कुल्थी की वलि देनी चाहिये।६-८।

गजदन्ताहिनिर्मोकवाजिमूत्रप्रलेपनम्।
सराजीनिम्वपत्रेण [1]वृककेशेन धूपयेत् ॥९
हंसाधिका पञ्चमी स्याज्जृम्भाश्वासोर्ध्वधारिणी।
मुष्टिवन्धश्च तच्चेष्टा वलिं मत्स्यादिना हरेत् ॥१०

वालक के ऊपर गजदन्त, सर्प की केंचुल तथा घोड़े के मूत्र का लेप करना चाहिये। नीम के पत्ते, सरसों तथा भेड़िये के वालों से धूप देना चाहिए।

---

१ ख. घृतकेशेन। छ. धूतकेशेन।

पञ्चमी रात्रि में बालक को पीड़ित करने वाली ग्रही का नाम हंसाधिका है। इसके द्वारा आक्रान्त बालक (बार-बार) जम्हाई लेता है। उसकी श्वास ऊपर की ओर चलने लगती है और वह बारम्बार मुट्ठी बाँधता है। इसकी शान्ति के लिए मछली, मांस, सुरा आदि की बलि देनी चाहिये।९-१०।

मेषशृंगबलालोध्रशिलातालैः शिशुं लिपेत्।
फट्कारी तु ग्रही षष्ठी भयमोहप्ररोदनम् ॥११
निराहारोऽङ्गविक्षेपो हरेन्मत्स्यादिना बलिम्।
राजी गुग्गुलुकुष्ठेभदन्ताद्यैर्धूपलेपनैः ॥१२

इसमें बच्चे के ऊपर भेंड़ की सींग, बलालता लोध्र तथा शिलाताल से लेप करना चाहिये। छठी ग्रही का नाम फट्कारी है। इसके द्वारा पीड़ित शिशु भयभीत रहता है, मूर्च्छित हो जाता है, रोता है, आहार त्याग देता है और अंगों को इधर-उधर फेंकने लगता है। उसकी शान्ति के लिए मछली एवं मांस आदि की बलि देनी चाहिये तथा सरसों, गुग्गुलु, कुष्ठ और गजदन्त आदि की धूप देकर इन्हीं का लेप करना चाहिए।११-१२।

सप्तमे मुक्तकेश्यार्तः पूतिगन्धो विजृम्भणम्।
नादः प्ररोदनं कासो धूपो व्याघ्रनखैर्लिपेत् ॥१३
वचागोमयगोमूत्रैः श्रीदण्डी चाष्टमे ग्रही।
दिशो निरीक्षणं जिह्वाचालनं कासरोदनम् ॥१४

सातवें दिन की ग्रही का नाम मुक्तकेशी है। इसके द्वारा पीड़ित शिशु के शरीर से दुर्गन्ध आने लगती है। वह जम्हाई लेता है, जोर-जोर से शब्द करता है, रोता है और खाँसता है। उसकी शान्ति के लिये व्याघ्रनख से धूप देनी चाहिये। बच तथा गाय के गोबर एवं मूत्र से शिशु के ऊपर लेप करना (भी) लाभदायक है। आठवें दिन बालक को पीड़ित करने वाली ग्रही का नाम श्रीदण्डी है। उसके द्वारा आक्रान्त शिशु इधर-उधर भौचक्का सा देखता है, बार-बार जीभ हिलाता है, खाँसता है और रोता है।१३-१४।

बलिः पूर्वैश्च मत्स्याद्यैर्धूपलेपे च हिङ्गुना।
वचासिद्धार्थलशुनैश्चोर्ध्वग्राही महाग्रही ॥१५

उद्वेजनोर्ध्वनिःश्वासः स्वमुष्टिद्वयखादनम् ।
रक्तचन्दनकुष्ठाद्यैर्धूपयेल्लेपयेच्छिशुम् ॥१६
कपिरोमनखैर्धूपो दशमी रोदनी ग्रही ।

उसकी शान्ति के लिए पहले कहे हुए मछली और मांस आदि से वलि देनी चाहिये। हींग की धूप देकर बच्चे के शरीर में हींग, वच, सरसों तथा लहसुन का लेप करना चाहिये। नवें दिन बालक को पीड़ित करने वाली ग्रही का नाम है ऊर्ध्वग्राही। इसके द्वारा पीड़ित बालक सदा विह्वल रहता है, उल्टी श्वास लेता है और अपनी दोनों मुट्ठियों को मुख में डालता है। इस ग्रही के द्वारा अभिभूत बालक को, नीरोग करने के लिए रक्तचन्दन, कुष्ठ तथा वानर के नख एवं रोम आदि का धूप देना चाहिए और (बालक के ऊपर) लालचन्दन आदि इन्हीं वस्तुओं का लेप करना चाहिये। दशवें दिन बालक को आक्रान्त करने वाली ग्रही का नाम रोदनी है।१५-१६½।

तच्चेष्टा रोदनं शश्वत्सुगन्धो नीलवर्णता ॥१७
धूपो निम्बेन भूतोग्रराजीसर्जरसैर्लिपेत् ।
बलिं बहिर्हरेल्लाजकुल्माषकरकौदनम् ॥१८

इस ग्रही के प्रभाव से शिशु रोता है, उसके शरीर से कुछ सुगन्धि निकलती है और उसका वर्ण कुछ नीला हो जाता है। इसकी शान्ति के लिए नीम की धूप करनी चाहिये और वत्सनाभ, श्वेतसरसों तथा सर्जवृक्ष के रस को मिलाकर (उसके शरीर पर) लेप करना चाहिये। खील, कुल्थी, नारियल तथा चावल आदि की वलि भी (घर के) बाहर देनी चाहिए।१७-१८।

यावत्त्रयोदशाहं स्यादेवं धूपादिका क्रिया ।
गृह्णाति मासिकं वत्सं पूतना [1]शकुनी ग्रही ॥१९
काकवद्रोदनं श्वासो मूत्रगन्धोऽक्षिमीलनम् ।
गोमूत्रस्नपनं तस्य गोदन्तेन च धूपनम् ॥२०

इसी प्रकार तेरहवें दिन तक धूपादि करते रहना चाहिये। एक मास के बच्चे के ऊपर दुष्टा पक्षी का रूप धारण करने वाली पूतना ग्रही का आक्रमण होता है। उसके द्वारा आक्रान्त बच्चा कौये के समान रोता है, लम्बी लम्बी श्वास

१ ख. शकुली। छ. संकुली।

छोड़ता है, उसके मूत्र में विशेष प्रकार की गन्ध उत्पन्न हो जाती है और बच्चा बार-बार नेत्र मूँदता है। उसकी शान्ति के लिए बच्चे को गोमूत्र में स्नान कराना चाहिये तथा गोदन्त (हड़ताल) से धूप देनी चाहिये।१९-२०।

पीतवस्त्रं ददेद्रक्तस्रग्गन्धैस्तैलदीपकः।
त्रिविधं पायसं मद्यं तिलं मांसं चतुर्विधम्॥२१
करञ्जाधो यमदिशि सप्ताहं तैर्बलिं हरेत्।
द्विमासिकं च मुकुटा वपुः पीतं च शीतलम्॥२२

रक्तमाल्य और रक्तचन्दन के साथ पीले वस्त्र का दान देना चाहिये, तेल का दीपक जलाना चाहिये तथा तीन प्रकार की खीर, मदिरा, तिल और चार प्रकार के उड़द की बलि देनी चाहिये। यह बलि दक्षिण दिशा में करञ्जवृक्ष के नीचे सात दिनों तक देते रहना चाहिये। दो मास के शिशु को 'मुकुटा' नाम की ग्रही पकड़ती है। इससे बच्चे का शरीर पीला और ठंडा पड़ जाता है।२१-२२।

छर्दिः स्यान्मुखशोषादि पुष्पगन्धांशुकानि च।
अपूपमोदनं दीपः [1]कृष्णानीरादिधूपकम्॥२३
तृतीये गोमुखी निद्रा सविण्मूत्रप्ररोदनम्।
यवाः प्रियङ्गुः [2]पललं कुल्माषं शाकमोदनम्॥२४
क्षीरं पूर्वे ददेन्मध्येऽह्नि धूपश्च सर्पिषा।
पञ्चभङ्गेन तत्स्नानं चतुर्थे पिङ्गलाऽऽर्तिकृत्॥२५

बार-बार वमन करता है तथा उसके मुख में खुश्की आती है। इसकी शान्ति हेतु पुष्प, गन्ध और वस्त्रादि का दान करना चाहिये। अपूप (पुआ), चावल आदि की बलि देनी चाहिये तथा कालागुरु आदि से धूप, दीप देना चाहिये। तृतीय मास की ग्रही का नाम गोमुखी है। इसके द्वारा आक्रान्त शिशु को निद्रा अधिक सताती है। वह मल, मूत्र अधिक विसर्जित करता है तथा रोता भी अधिक है। इसकी शान्ति के लिए दिन के पूर्व भाग में यव प्रियंगुलता, मांस, कुलथी, शाक, चावल तथा दूध की बलि देनी चाहिये। मध्याह्न काल में घृत से धूप देकर पञ्चभङ्ग से स्नान कराना चाहिये। चतुर्थ मास की ग्रही का नाम पिङ्गला है जो कि अत्यन्त पीड़ादायिनी होती है।२३-२५।

---

१ छ. कृष्णं नी°। २ च. छ. पलनं।

तनुः शीता पूतिगन्धः शोषः स म्रियते ध्रुवम् ।
पञ्चमी ललना गात्रसादः स्यान्मुखशोषणम् ॥२६
अपानः पीतवर्णश्च मत्स्याद्यैर्दक्षिणे वलिः ।
षण्मासे पङ्कजा चेष्टा रोदनं विकृतस्वरः ॥२७
मत्स्यमांससुराभक्तपुष्पगन्धादिभिर्बलिः ।
सप्तमे तु निराहारा पूतिगन्धादिदन्तरुक् ॥२८
पिष्टमांससुरामांसैर्बलिः स्याद्यमुनाऽष्टमे ।
विस्फोटशोषणाद्यं स्यात्तच्चिकित्सां न कारयेत् ॥२९

उसके द्वारा आक्रान्त शिशु का शरीर अत्यधिक शीतल रहता है और शरीर से दुर्गन्ध निकलती है और गला सूख जाता है। वह बालक निश्चय ही मर जाता है। पञ्चम मास की ग्रही का नाम ललना है। उससे आक्रान्त शिशु का शरीर दुर्बल हो जाता है, मुख में खुश्की आ जाती है, अपान वायु का प्रकोप पक्ष अधिक हो जाता है और उसका वर्ण पीला पड़ जाता है। इसकी शान्ति के लिए मछली और मांसादि से दक्षिण दिशा में बलि देनी चाहिये। छठे मास की ग्रही का नाम पङ्कजा है। उसके द्वारा आक्रान्त बालक रोता अधिक है और उसके शरीर में विकार उत्पन्न हो जाता है। उसकी शान्ति के लिये मछली, मांस, सुरा, भात, पुष्प, गन्ध आदि की बलि देनी चाहिये। सातवें मास की ग्रही का नाम निराहारा है, इसके द्वारा पीड़ित बालक के शरीर से तीव्र गन्ध निकलती है और बालक के दांत उगने की पीड़ा होती है। इसकी शान्ति के लिए पिसे हुये उड़द की पीठी, सुरा तथा मांस की बलि देनी चाहिए। आठवें मास की ग्रही का नाम यमुना है। इसके द्वारा पीड़ित बालक के बहुत से फोड़े निकल आते हैं तथा उसका शरीर सूखकर कांटा हो जाता है। इसकी चिकित्सा नही करनी चाहिये। २६-२९।

नवमे कुम्भकर्ण्यार्तो ज्वरी छर्दति पालके ।
रोदनं मांसकुल्माषमद्याद्यैरैशके वलिः ॥३०
दशमे तापसी चेष्टा निराहारोऽक्षिमीलनम् ।
घण्टा पताका [1]पिष्टाक्ता सुरामांसवलिः समे ॥३१

---

१ ख. च. छ. पिष्टोक्ता ।

राक्षस्येकादशी पीडा [1]नेत्रादौ न चिकित्सतम् ।
[2]चञ्चला द्वादशे श्वासस्त्रासादिकविचेष्टितम् ।३२

नवम मास की ग्रही कुम्भकर्णी है। इससे आक्रान्त शिशु ज्वर-पीड़ित रहता है, व्याकुलतावश रक्षक के ऊपर ही वमन कर देता है और अत्यधिक रोता-चिल्लाता है। इसकी शान्ति के लिए ईशान कोण में उड़द, कुल्थी, मद्य आदि की वलि देनी चाहिये। दशवें मास की ग्रही का नाम तापसी है। इसके द्वारा आक्रान्त शिशु कुछ खाता नहीं है और रह-रहकर नेत्र वन्द करता रहता है। इसकी शान्ति के लिए घण्टा पताका तथा पिष्टान्न आदि का दान करना चाहिये तथा सुरा मांस आदि की बलि देनी चाहिये। ग्यारहवीं ग्रही का नाम राक्षसी है। यह शिशु के नेत्रों में पीड़ा उत्पन्न करती है। इसकी कोई ओषधि नहीं है। वारहवें मास की ग्रही का नाम चञ्चला है। इसके द्वारा आक्रान्त होने पर बच्चे की श्वास वेग गति से चलने लगती है और वच्चा भयभीत सा होकर चेष्टायें करने लगता है।३०–३२।

वलिः पूर्वेऽथ मध्याह्ने कुल्माषाद्यैस्तिलादिभिः।
यातना तु द्वितीयेऽब्दे यातनं रोदनादिकम् ॥३३
तिलमांसमद्यमांसैर्बलिः स्नानादि पूर्ववत् ।
तृतीये रोदनी कम्पो रोदनं रक्तमूत्रकम् ॥३४
गुडौदनं तिलापूपः प्रतिमा तिलपिष्टजा ।
तिलस्नानं पञ्चपत्रैर्धूपो राजफलत्वचा ॥३५

इसकी शान्ति के लिए मध्याह्न में पूर्व दिशा में कुल्थी तथा तिल आदि से वलि देनी चाहिये। द्वितीय वर्ष में बालक को पीड़ित करने वाली ग्रही का नाम 'यातना' है। वह बच्चों को अनेक प्रकार की यातनायें दिया करती है तथा वच्चे को अत्यधिक रुलाती है। इसकी शान्ति के लिये तिल, उड़द, मदिरा और मांस आदि की बलि देनी चाहिये। तथा बालक को पूर्ववत् स्नान कराना चाहिए। तृतीय वर्ष की ग्रही का नाम रोदनी है जिसके आक्रमण से बच्चा रोता तथा कांपता है और उसका मूत्र लाल हो जाता है। इसकी शांति के लिये गुड़, चावल, तिल, अपूप (पुआ) और तिल के चूर्ण से बनी हुयी प्रतिमा का दान करना चाहिये। वालक को तिलमिश्रित जल से स्नान कराकर पंचपल्लव तथा राजफल (परवल) के छिलके से धूप देनी चाहिये।३३–३५।

---

१ छ. नेत्राद्यं। २ चञ्चलता ... विचेष्टितम्' ग. पुस्तके नास्ति।

चतुर्थे चटकाशोफो ज्वरः सर्वाङ्गसादनम् ।
मत्स्यमांसतिलाद्यैश्च वलिः स्नानं च धूपनम् ॥३६
चञ्चला पञ्चमेऽब्दे तु ज्वरस्त्रासोऽङ्गसादनम् ।
मांसौदनाद्यैश्च वलिर्मेषशृङ्गेण धूपनम् ॥३७
पलाशोदुम्बुराश्वत्थवटविल्वदलाम्बुधृक् ।
षष्ठेऽब्दे धावनी शोषो वैरस्यं गात्रसादनम् । ॥३८

चतुर्थ वर्ष की ग्रही का नाम चटका है। इससे आक्रान्त वालक ज्वरग्रस्त हो जाता है और उसके समस्त अङ्गों में क्षीणता तथा सूजन उत्पन्न हो जाती है। इसकी शान्ति के लिए मछली, मांस तथा तिल आदि की बलि देनी चाहिये। बालक को स्नान कराना चाहिये, उसे धूप भी देनी चाहिये। पञ्चम वर्ष वाली ग्रही का नाम चञ्चला है। इसका आक्रमण होने पर शिशु को ज्वर आता है, वह भयभीत वना रहता है, उसके अङ्गों में दुर्वलता आ जाती है। इसके प्रशमनार्थ मांस और चावल की वलि देकर भेंड़ के सींग, पलाश, गूलर, पीपल, बरगद, वेलपत्र तथा रासना नामक ओषधि के चूर्ण को मिलाकर धूप देना चाहिए। छठें वर्ष की ग्रही का नाम 'धावनी' है। इससे आक्रान्त शिशु के शरीर में शोष उत्पन्न हो जाता है, वह सूख जाता है और उसमें दुर्वलता आ जाती है।३६–३८।

सप्ताहोभिर्बलिः पूर्वैर्धूपः स्नानं च भृङ्गकैः ।
सप्तमे यमुना [1]छर्दिरवचोहासरोदनम् ॥३६
मांसपायसमद्याद्यैर्बलिः स्नानं च धूपनम् ।
अष्टमे वा जातवेदा निराहारं प्ररोदनम् ॥४०
कृशरापूपदध्याद्यैर्बलिः स्नानं च धूपनम् ।
कालाब्दे नवमे वाह्वोरास्फोटो गर्जनं भयम् ॥४१
वलिः स्यात्कृशरापूपसक्तुकुल्माषपायसैः ।

इसकी शान्ति के लिए प्रति सप्ताह धूप तथा वलि देनी चाहिये और भृङ्ग नामक औषध मिश्रित जल से बालक को स्नान कराना चाहिये। सप्तम वर्ष की ग्रही का नाम यमुना है। इससे आक्रान्त बालक वमन अधिक करता है, जीभ लड़खड़ाने लगती है। खूब हँसता है और रोता है। इसके दोष के

१. ख. ग. दिनं रावो हास° ।

प्रशमन के लिए मांस, खीर तथा मदिरा आदि की बलि देनी चाहिये तथा बालक को स्नान कराकर उसे धूप देनी चाहिये। आठवें वर्ष की ग्रही का नाम 'जातवेदा' है। इसके द्वारा अभिभूत बालक आहार छोड़ देता है और रोता रहता है। इसकी शान्ति के लिए खिचड़ी, अपूप (पुआ) तथा दधि आदि की बलि देनी चाहिये, शिशु को स्नान कराना चाहिये और धूप देनी चाहिये। नवें वर्ष की ग्रही का नाम काला है। इसके द्वारा आक्रान्त बालक बाहु के जोड़ों को फोड़ता है, घोर शब्द करता है तथा भयभीत रहता है। इसकी शान्ति के लिए खिचड़ी, अपूप, सत्तू, कुल्थी और खीर की बलि देनी चाहिये ।३९-४१½।

दशमेऽब्दे कलहंसी दाहोऽङ्गकृशता ज्वरः ॥४२
पोलिकापूपदध्यन्नैः पञ्चरात्रं बलिं हरेत् ।
निम्बधूपकुष्ठलेपावेकादशमके ग्रही ॥४३
देवदूती निष्ठुरवाग्बलिर्लेपादि पूर्ववत् ।
बलिका द्वादशे श्वासो बलिलेपादि पूर्वबत् ॥४४
त्रयोदशे वायवी च [1]मुखरोगोऽङ्गसादनम् ।
रक्तान्नगन्धमाल्याद्यैर्बलिः पञ्चदलैः स्नपेत् ॥४५

दशवें वर्ष की ग्रही का नाम कलहंसी है। यह बच्चे के शरीर में दाह, अंगों में कृशता तथा ज्वर पैदा करती है। इसकी शान्ति के लिए पञ्चरात्रि तक गेहूँ की रोटी, अपूप (पुआ) तथा दहीबड़े की बलि देनी चाहिये। नीम के पत्र आदि की धूप करनी चाहिये और शरीर में कुष्ठ नामक ओषधि का लेप करना चाहिये। ग्यारहवें वर्ष की ग्रही का नाम देवदूती है। उसके द्वारा अभिभूत बालक कठोर वाणी बोलता है। उसकी शान्ति के लिये पूर्ववत् बलि देकर उसके शरीर पर लेप करना चाहिये। बारहवें वर्ष की ग्रही का नाम वलिका है। इसके द्वारा आक्रान्त बालक जल्दी-जल्दी श्वास लेने लगता है। उसकी शान्ति के लिए पूर्ववत् बलि और लेप आदि होनी चाहिए। तेरहवें वर्ष की ग्रही का नाम वायवी है। इसके द्वारा आक्रान्त बालक के मुख में (नाना प्रकार के) रोग पैदा हो जाते हैं तथा वह शरीर से क्षीण हो जाता है। उसकी शान्ति के लिये रक्त, अन्न, गन्ध, माल्य आदि की बलि देनी चाहिए तथा आम, वरगद, पीपल, पाकड़ तथा गूलर आदि के पत्तों (के जल) से स्नान कराना चाहिए ।४२-४५।

---

१६ छ.° खवाह्याङ्ग° ।

राजीनिम्बदलैर्धूपो यक्षिणी च चतुर्दशे ।
चेष्टा शूलो ज्वरो दाहो [1]मांसभक्ष्यादिकैर्बलिः ॥४६
स्नानादि पूर्ववच्छान्त्यै मुण्डिकार्तिस्त्रिपञ्चके ।
तच्चेष्टाऽसृक्स्रवः शश्वत्कुर्यान्मातृचिकित्सनम् ॥४७
वानरी षोडशी भूमौ पतेन्निद्रा सदा ज्वरः ।
पायसाद्यैस्त्रिरात्रं च बलिः स्नानादि पूर्ववत् ॥४८

श्वेत सरसों तथा नीम के पत्तों से धूप देना भी लाभदायक है। चौदहवें वर्ष की ग्रही का नाम यक्षिणी है। उसके द्वारा गृहीत बालक शरीर में शूल का अनुभव करता है, ज्वर से पीड़ित रहता है और उसके शरीर में जलन होती रहती है। इसकी शान्ति के लिये मांस और मछली आदि की बलि देनी चाहिये तथा पूर्ववत् स्नान, धूप आदि भी होना चाहिये। पन्द्रहवें वर्ष की ग्रही का नाम मुण्डिका है। इसके द्वारा पीड़ित बालक के निरन्तर रक्त प्रवाहित होता रहता है। इसकी चिकित्सा शीघ्र ही करनी चाहिए। सोलहवें वर्ष की ग्रही का नाम वानरी है। इसके द्वारा गृहीत बालक बारम्बार भूमि पर गिरता है, उसे नींद अधिक आती है और उसके शरीर में सदा ही ज्वर बना रहता है। उसकी शान्ति के लिये तीन रात तक खीर आदि की बलि देनी चाहिये तथा बालक को पूर्ववत् स्नान आदि कराना चाहिये।४६-४८।

गन्धवती सप्तदशे गात्रोद्वेगः प्ररोदनम् ।
कुल्माषाद्यैर्बलिः स्नानधूपलेपादि पूर्ववत् ॥४९
दिनेशाः पूतना नाम वर्षेशाः [2]सुकुमारिकाः ॥५०

सत्रहवें वर्ष की ग्रही का नाम गन्धवती होता है। इसके द्वारा पीड़ित बालक शारीरिक उद्वेग का अनुभव करता है और रोता अधिक है। इसकी शान्ति लिए कुलथी आदि की बलि देकर उसे पूर्ववत् स्नान कराना और धूप देना चाहिये। ये ग्रहियाँ दिनों की स्वामिनी 'पूतना' के नाम से तथा वर्षों की स्वामिनी 'सुकुमारी' के नामों से भी प्रसिद्ध है।४९-५०।

ॐ नमः सर्वमातृभ्यो बालपीडासंयोगं भुञ्ज भुञ्ज चुट चुट-
स्फोटय स्फोटय स्फुर स्फुर गृह्ण [3]गृह्णाऽऽक्रन्दयाऽऽक्रन्दय,
एवं सिद्धरूपो ज्ञापयति॥५१

१ ख. छ. मक्षादि°। २ ख. ग. स्वर्गमारिका:। ३ छ. ह्लाकट्टयाऽऽकट्टय।

हर हर निर्दोषं कुरु कुरु वालिकां वालं स्त्रियं पुरुषं वा,
सर्वग्रहाणामुपक्रमात्। चामुण्डे नमो देव्यै ह्लूँ ह्लूँ ह्लीमपसरा-
पसर दुष्टग्रहान्ह्लूँ तद्यथा गच्छन्तु गृह्यकाः, अन्यत्र पन्थानं
रुद्रो ज्ञापयति ॥५२
सर्ववालग्रहेषु स्यान्मन्त्रोऽयं [1]सर्वकामदः ॥५३
ॐ नमो भगवति चामुण्डे मुञ्च मुञ्च [2]वालं वालिकां वा
वलिं गृह्ण गृह्ण जय जय वस वस ॥५४
सर्वत्र वलिदानेऽयं रक्षाकृत्पठ्यते मनुः।
ब्रह्मा विष्णुः शिवः स्कन्दो गौरी लक्ष्मीर्गणादयः॥
रक्षन्तु ज्वरदाहार्तं मुञ्चन्तु च कुमारकम् ॥५५

'ओं नमः सर्वमातृभ्यो······ वस वस' यह रक्षा करने वाला मंत्र सर्वत्र वलिदान के समय पढ़ा जाता है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, स्कन्द, गौरी, लक्ष्मी तथा सभी गण ज्वर-दाह पीड़ित कुमार की रक्षा करें और उसे सब प्रकार के कष्टों से छुटकारा दिला दें।५१-५५।

इत्यादि महापुराण आग्नेये बालग्रहहरबालतन्त्रकथनं नाम नवनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।२९९

अथ त्रिशततमोऽध्यायः

ग्रहहृन्मन्त्रादिकथनम्

अग्निरुवाच—

[3]ग्रहोपहारमन्त्रादीन्वक्ष्ये ग्रहविमर्दनान्।
हर्षेच्छाभयशोकादिविरुद्धा[4]शुचिभोजनात्॥१
गुरुदेवादिकोपाच्च पञ्चोन्मादा भवन्त्यथ।
त्रिदोषजाः संनिपाता [5]आगन्तव इति स्मृताः॥२

१ छ. सर्वकामिकः। २ छ. वलि°। ३ छ. ग्रहाप°। ४ ख. ग. °द्धान्नविभो°।
५ ख. छ. °गन्तुरिति ते स्मृ°।

अग्निदेव बोले—अब मैं ग्रहों के द्वारा पीड़ित होने पर उनसे छुटकारा दिलाने वाले उपचार और मन्त्रों को बतलाऊंगा। हर्ष, इच्छा, भय, शोक आदि से, स्वभाव विरुद्ध और अपवित्र भोजन करने से तथा श्रेष्ठ पुरुषों और देवता इत्यादि को क्रुद्ध करने से पांच प्रकार के उन्माद होते हैं। त्रिदोष (वात पित्त-कफ) से उत्पन्न तीन प्रकार के तथा सन्निपातज और आगन्तुक ये पांच प्रकार के उन्माद कहलाते हैं।१-२।

देवादयो ग्रहा जाता रुद्रक्रोधादनेकधा।
सरित्सरस्तडागादौ शैलोपवनसेतुषु ॥३
नदीसङ्गे शून्यगृहे विलद्वार्येकवृक्षके।
ग्रहा गृह्णन्ति पुंसश्च [1]श्रियं सुप्तां च गर्भिणीम् ॥४
आसन्नपुष्पां नग्नां च ऋतुस्नानं करोति या ॥

भगवान् रुद्र के भीषण क्रोध करने पर देवादिक ग्रह अनेक रूप धारण कर लेते हैं। ग्रह पुरुषों को नदी, सरोवर, तालाव, पर्वत, उपवन, सेतु, नदियों के संगम, शून्यगृह 'विलद्वार' अकेले वृक्ष आदि स्थानों में पकड़ लेते हैं। ग्रहों का आक्रमण सोती हुई, गर्भिणी, आसन्न ऋतुकालवाली, नग्न और ऋतुस्नाता स्त्री पर भी हो जाता है।३-४½।

अवमानं नृणां वैरं विघ्नं भाग्यविपर्ययम्[2] ॥५
देवतागुरुधर्मादिसदाचारादिलङ्घनम्।
पतनं शैलवृक्षादेर्विधुन्वन्मूर्धजान्मुहुः[3] ॥६
रुदन्नृत्यति रक्ताक्षो [4]ह्रूरूपोऽनुग्रही नरः।
उद्विग्नः शूलदाहार्तः क्षुत्तृष्णार्तः शिरोऽर्तिमान् ॥७

ग्रहों के द्वारा गृहीत व्यक्ति दूसरों का अपमान करने लगता है, सबके साथ वैर-भाव रखने लगता है, सुन्दर कार्यों में विघ्न डालता है, अपने क्रूर कर्मों द्वारा अपने भाग्य को भी बदल देता है, देवाराधन नहीं करता, गुरुजनों की आज्ञा का पालन नहीं करता, धर्म तथा सदाचार आदि का उल्लंघन

---

१ ख. ग. स्त्रियं। २ ख. छ.° र्ययः। दे°। ३ छ.° र्धजं मुहुः। ४ ख. ग. °पान्नेग्र°।

करता है। पर्वतों तथा वृक्षों पर चढ़कर वहाँ से कूदता है, बारम्बार सिर के बालों को घसीटता है, रोता है, नृत्य करता है, उसके नेत्र लाल हो जाते हैं, ये 'रूप' ग्रह विशेष से पीड़ित व्यक्ति के लक्षण हैं। जो उद्विग्न हो जाता है, शूल और दाह से पीड़ित होता है, उसे भूख और प्यास (विशेष) लगती है और वह मस्तक-पीड़ा का अनुभव करने लगता है।५-७।

देहि देहीति याचेत बालिकामग्रही नरः।
स्त्रीमालाभोगस्नानेच्छुरतिकामग्रही नरः ॥८
महासुदर्शनो व्योमव्यापी विटपनासिकः।
पातालनारसिंहाद्या (!) चण्डीमन्त्रा ग्रहार्दनाः ॥९

बलि चाहने वाले ग्रह के द्वारा अभिभूत मनुष्य उक्त लक्षणों के साथ 'कुछ दो कुछ दो' कहकर याचना करने लगता है। रत्यभिलाषी ग्रह के द्वारा आक्रान्त मनुष्य, स्त्री, माला, भोग तथा स्नान की इच्छा प्रकट करता है। 'महासुदर्शन' व्योमव्यापी' 'विटपनासिक' तथा पातालनारसिंह मन्त्र एवं चण्डिका के मन्त्र ग्रहपीडा से मुक्ति दिलाने वाले हैं।८-९।

([1]पृश्नीहिङ्गुबचाचक्रशिरीषदयितं परम्।
पाशाङ्कुशधरं देवमक्षमालाकपालिनम् ॥१०
[2]खट्वाङ्गाब्जादिशक्तिं च दधानं चतुराननम् ॥
अन्तर्बाह्यादिखट्वाङ्ग[3]पद्मस्थं रविमण्डले ॥११
आदित्यादियुतं प्राच्यं उदितेऽर्केऽर्घ्यकं ददेत्।

सूर्यदेव पृश्निपर्णी, बच, चक्र (तगर पुष्प) तथा शिरीष पुष्प के प्रेमी हैं। दाहिने हाथों में पाश, अंकुश, अक्षमाला और कपाल को धारण करने वाले हैं और दायें चार हाथों में खट्वाङ्ग नामक अस्त्र, कमल, शक्ति आदि को धारण करते हैं। ये चार मुंह वाले हैं। रवि-मण्डल के अन्दर बाहर खट्वाङ्ग और पद्म पर स्थित भगवान् सूर्य का आदित्यों के साथ पूजन करना चाहिए। इस प्रकार सूर्य भगवान् की पूजा करके सूर्योदय काल में अर्घ्य देना चाहिये।१०-११½।

---

१. 'पृश्नीहिङ्गुवचा......चन्द्रज्ञगुरुभार्गवाः केवलं छः पुस्तक एव।
२ छ. खट्टाङ्गा° । ३ छ.° °खट्टाङ्गाप°।

श्वासविषाग्निविप्रकुण्डी हृल्लेखासकलो भृगुः (?) ॥१२
अकार्य भूर्भुवः स्वश्च जालिनीं कुलमुद्गरम् (?) ।
पद्मासनोऽरुणो रक्तवस्त्रः सद्युतिविश्वकः (कृत्) ॥१३
उदारः पद्मधृग्दोर्भ्यां [1]सोमः सर्वाङ्गभूषितः ।
[2]रव्यादयो ग्रहाः सौम्याः वरदाः पद्मधारिणः ॥१४

श्वास (य्) विष (ओं), अग्नि (र्) विप्रकुण्डी (ओं) हृल्लेखा (ह्रीं) इनको जोड़ देने पर मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार बनता है 'यों रों ह्रीं अर्काय भूर्भुवः स्वरों ज्वालिनी कुलमुद्धर ।" इस मन्त्र से सूर्य को अर्घ्य देना चाहिये। भगवान् सूर्य अरुण कान्ति वाले पद्मासन पर आसीन, रक्तवस्त्रधारी, विश्व को प्रकाशित करने वाले, उदार तथा भुजाओं पर कमलों को धारण करने वाले हैं। भगवान् चन्द्रदेव समस्त अंगों से विभूषित हैं। सूर्यादि सभी ग्रह सौम्यरूप वाले वरदायक तथा पद्मधारण करने वाले हैं।१२-१४।

विद्युत्पुञ्जनिभं वस्त्रं श्वेतः[3] सोमोऽरुणः कुजः ।
बुधस्तद्वद्गुरुः पीतः शुक्लः शुक्रः[4] शनैश्चरः ॥१५
कृष्णाङ्गारनिभो राहुधूम्रः केतुरुदाहृतः ।
वामोरुवामहस्तान्तदक्ष[5]हस्तोरुजानुषु ॥१६
स्वनामाद्यैस्तु वीजान्तैर्हस्तौ संशोध्य चास्त्रतः ।
अङ्गुष्ठादौ तले नेत्रहृदाद्यं व्यापकं न्यसेत् ॥१७

वे सब विद्युत्पुञ्ज के समान वस्त्र धारण करने वाले है। चन्द्रमा का वर्ण श्वेत है, मंगल (ग्रह) का वर्ण रक्त वताया गया है। वुध भी लाल वर्ण वाले कहे गये हैं, वृहस्पति का वर्ण पीला है शुक्र का वर्ण शुक्ल प्रसिद्ध है, शनैश्चर काले कोयले वर्ण के समान वर्ण के हैं। राहु और केतु घूम्रवर्ण वाले कहे गये हैं। वीजमन्त्र के साथ ग्रहों के नामों के आदि अक्षरों से हाथों को शुद्ध करके बाईं जांघ, वायें हाथ, दायें हाथ, घुटनों, अंगुष्ठादि (उँगलियों) नेत्रों एवम् हृदय का न्यास करना चाहिये।१५-१७।

मूलवीजैस्त्रिभिः प्राणध्यायकं (?) न्यस्य साङ्गकम् ।
प्रक्षाल्य पात्रमस्त्रेण मूलेनाऽऽपूर्य वारिणा ॥१८

---

१ छ. सौम्यः। २ छ. रक्ताहृदाद॰। ३ छ. ॰तः सौम्योऽरु॰। ४ छ. शुक्लः। ५ छ. ॰हस्ताभयप्रदा। स्व॰।

गन्धपुष्पाक्षतं न्यस्य दूर्वामर्घ्यं च मन्त्रयेत् ।
आत्मानं तेन सम्प्रोक्ष्य पूजाद्रव्यं च वै ध्रुवम् ॥१९
प्रभूतं विमलं सारमाराध्यं परमं सुखम् ।
पीठाद्यान्कल्पयेदेतान्हृदा मध्ये विदिक्षु च ॥२०

अङ्गन्यास के बाद अंगमन्त्रों से युक्त तीन बीजमन्त्रों से पात्र का प्रक्षालन करना चाहिये। ऐसा करने में अस्त्रमंत्रों का जप करते हुये मूलमन्त्र से उस (पात्र) को जल से भरना चाहिये। उस जल में गन्ध, पुष्प, अक्षत तथा दूब छोड़कर उसे मन्त्रों से अभिमंत्रित करके उसी को अपने ऊपर तथा पूजन-सामग्रियों के ऊपर छिड़कना चाहिये। तत्पश्चात् आग्नेयादि कोणों एवं मध्यभाग में प्रभूत, विमल, सार, आराध्य और परमसुख नाम से पादपीठों की कल्पना करनी चाहिये।१८-२०।

पीठोपरि हृदो मध्ये दिक्षु चैव विदिक्षु च ।
पीठोपरि हृदाब्जं च केसरेत्वष्ट शक्तयः ॥२१
वां दीप्तां वीं तथा सूक्ष्मां वुं जयां वूं च भद्रिकाम् ।
वें विभूतिं वैं विमलां वोमसिघातविद्युताम् ॥२२
वौं सर्वतोमुखीं वं पीठं वः प्राच्यं रविं यजेत् ।
आवाह्य दद्यात्पाद्यादि हृत्षडङ्गेन सुव्रत ॥२३

पीठ के ऊपर हृदय के मध्य भाग में, दिशाओं और विदिशाओं में, हृदय-कमल का तथा हृदय कमल के केसरों में आठों शक्तियों का आवाहन करना चाहिये। 'वाँ' बीज मन्त्र से 'दीप्ता शक्ति की, 'वी' बीजमन्त्र से 'सूक्ष्मा' शक्ति की, 'वुं' बीजमन्त्र से जया शक्ति की, 'वूं' बीज मन्त्र से 'भद्रिका' शक्ति की 'वें' बीजमन्त्र से 'विभूति' शक्ति की, वै' बीजमन्त्र से 'विमला' शक्ति की, 'वोम्' बीज मन्त्र से 'असिघातविद्युता' शक्ति की 'वौं' बीज मत्र से 'सर्वतोमुखी' शक्ति की और 'वं' बीजमन्त्र से पीठ की अर्चना करके सूर्योपासना करनी चाहिये। हे सुव्रत! तत्पश्चात् रवि आदि मूर्तियों का आवाहन करके उन्हें पाद्यादि समर्पित करे और क्रमशः हृदयादि षडङ्गन्यास पूर्वक पूजन करे।२१-२३।

खकारौ दण्डिनौ चण्डौ मज्जादशनसंयुता ।
मांसदीर्घा जरद्वायुहृदैतत्सर्वदं रवेः (?) ॥२४

वह्नीशरक्षोमरुतो दिक्षु पूज्या हृदादयः ।
स्वमन्त्रैः कर्णिकान्तस्था दिक्ष्वस्त्रं पुरतः सदृक् ॥२५

'खकारौ' इत्यादि श्लोक में 'खं खखोल्काय नमः' इस सूर्य मन्त्र का उद्धार किया गया है । सूर्य का यह मन्त्र मनुष्य की सब कामनाओं को पूरा करने वाला है । अग्नि, ईशान, नैऋ्त्य और वायव्य कोणों में तथा मध्य में हृदादि पाँच अङ्गों की उनके नाम मन्त्रों से पूजा करनी चाहिये । वे कर्णिका के भीतर ही पूजनीय हैं । अस्त्र की पूजा अपने सामने की दिशा में करनी चाहिये ।२४-२५।

पूर्वादिदिक्षु संपूज्याश्चन्द्रज्ञगुरुभार्गवाः ।)
'पृश्निहिङ्गुवचाचक्रशिरोषलशुनामयैः ॥२६
नस्याञ्जनादि कुर्वीत साजमूत्रैर्ग्रहापहैः ।
पाठापथ्यावचाशिग्रुसिन्धुव्योषैः पृथक्पलैः ॥२७
अजाक्षीराढके पक्वं सर्पिः सर्वग्रहान्हरेत् ।
वृश्चिकाली फला कुष्ठं लवणानि च शार्ङ्गकम् ॥२८
अपस्मारविनाशाय तज्जलं त्वभियोजयेत् ।

पूर्वादि दिशाओं में चन्द्रमा, बुध, गुरु और शुक्र की पूजा करनी चाहिये । ग्रहों के दोष को दूर करने वाले पृश्निपर्णी हींग, वच, चक्र, (तगर का पुष्प) शिरीष और लहसुन के चूर्ण को बकरी के मूत्र में मिलाकर नास, अंजन आदि देना चाहिये । पाठा, हरीतकी, वच, शिग्रु (सहिन), सेंधा नमक, सोंठ, मिर्च, और पीपरि को एक-एक पल लेकर एक आढक (अढैया) बकरी के दूध में पकाकर घृत बना लेना चाहिये, वह घृत समस्त ग्रहों की पीड़ा का निवारण करने वाला होता है । वृश्चिकाली, कला (नागकेशर), कुष्ठ (ओषधि विशेष) पाँचों नमक तथा शार्ङ्गक (ओषधि) के मिश्रण से बनाये गये जल का उपयोग अपस्मार (मृगी) के निवारण में करना चाहिये । २६-२८½।

विदारिकुशकाशेक्षुक्वाथजं पाययेत्पयः ॥२९
द्रोणे सयष्टिकूष्माडरसे सर्पिश्च संस्कृतम् ।
पञ्चगव्यं घृतं तद्वद्योगं ज्वरहरं शृणु ॥३०
ॐ भस्मास्त्राय विद्महे । एकदंष्ट्राय धीमहि । तन्नो ज्वरः प्रचोदयात् ॥३१

१ पृश्नि शब्द स्थाने ख. ग. पुस्तकयोः षष्ठीशब्दो विद्यते ।

विदारीकन्द, कुश, काश और ईख का क्वाथ पिलाना चाहिये। यष्टि (जीववृक्ष) और कूष्माण्ड के द्रोण परिमाण रस के मिश्रण से बना हुआ घृत ज्वर को दूर करता है। पञ्चगव्य और घृत को मिलाकर देने से (भी) ज्वर शान्त हो जाता है। 'ॐ भस्मास्त्राय...प्रचोदयात्' यह मन्त्र भी ज्वरनाशक है।२९-३१।

कृष्णोषणनिशाराश्नाद्राक्षातैलं गुडं लिहेत्।
श्वासवानथ वा भार्गीं सयष्टिमधुसर्पिषा ॥३२
पाठातिक्ताकणाभार्गीमथ वा मधुना लिहेत्।
धात्री विश्वा सिता कृष्णा मुस्ता खर्जूरमागधी ॥३३
पीवरा चेति हिक्काघ्नं तत्त्रयं मधुना लिहेत्।
कामलीजीरमाण्डूकीनिशाधात्रीरसं पिबेत् ॥३४
व्योषपद्मकत्रिफलाविडङ्गदेवदारवः।
रास्नाचूर्णं समं खण्डैर्जग्ध्वा कासहरं ध्रुवम् ॥३५

गजपीपरि, मिर्च, हल्दी, रास्ना, द्राक्षा, तेल और गुड़ से बने हुये अवलेह के चाटने से श्वास-रोग दूर होता है। अथवा पाठा, कटुका, पीपरि और भंगरैया के रस को मधु के साथ मिलाकर चाटने से भी श्वास रोग दूर हो जाता है। हिचकी दूर करने के लिए आंवला, अतीस, शक्कर, गजपीपरि मुस्ता, खजूर, छोटी इलायची और शतावरि के चूर्ण को मधु के साथ चाटना चाहिये। कामली, जीरा, माण्डूकी, हल्दी और आंवला का रस पीने से हिचकी दूर हो जाती है। सोंठ, मिर्च, पीपरि, पद्मक, आँवला, हरड़, बहेड़ा, विडङ्ग, और देवदारु का चूर्ण कास को दूर करता है। शक्कर के साथ रास्ना का प्रयोग करने से भी खाँसी निश्चय ही दूर हो जाती है।३२-३५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये ग्रहहृन्मन्त्रादिकथनं नाम
त्रिशततमोऽध्यायः।३००

अथैकाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

सूर्यार्चनम्

अग्निरुवाच—

शय्या तु दण्डी साजेशपावकश्चतुराननः
सर्वार्थसाधकमिदं वीजं पिण्डार्थमुच्यते ॥१

अग्निदेव बोले—शार्ङ्गी (गकार), दण्डी (अनुस्वार युक्त) हो। उसके साथ पद्मेश (विष्णु) (ईकार) और पावक (रकार) हो तो इन चार वर्णों के मेल से पिण्डीभूत वीज (ग्रीं) प्रकट होता है। यह गणपति का वीज मन्त्र सभी प्रकार के फलों को देने में समर्थ है।१

स्वयं दीर्घस्वराद्यं च वीजेष्वङ्गानि सर्वशः।
खातं साधु विपं चैव सविन्दुं सकलं तथा ॥२
गणस्य पश्च वीजानि पृथग्दृष्टफलं महत् ॥३

इस वीज के आदि में क्रमशः दीर्घ स्वरों (आ, ई, ऊ, ऐ, औ, अः) को जोड़कर उनसे अंगन्यास करे। 'खातम्' आदि श्लोकार्व से गणपति—के पांच अन्य वीजमन्त्रों का उद्धार किया गया है। ये वीज पृथक् पृथक् महान् फल देते हैं। २-३।

गणंजयाय नम एकदंष्ट्राय चलकर्णिने गजवक्त्राय
महोदरहस्ताय ॥४
पञ्चाङ्गं सर्वसामान्यं सिद्धिः स्याल्लक्षजाप्यतः ॥५

'गणंजयाय........महोदरहस्ताय' यह गणपति सामान्य पञ्चांग न्यास है। इस मन्त्र का एक लाख जप करने से सिद्धि की प्राप्ति होती है। ४-५:

गणाधिपतये गणेश्वराय गणनायकाय गणक्रीडाय ॥६
दिग्दले पूजयेन्मूर्तीः पुरातच्चाङ्गपञ्चकम् ॥७
वक्रतुण्डायैकदंष्ट्राय महोदराय गजवक्त्राय विकटाय
विघ्नराजाय धूम्रवर्णाय ॥८
दिग्विदिक्षु यजेदेताँल्लोकां (के) शांश्चैव मुद्रया।
मध्यमातर्जनीमध्यगताङ्गुष्ठौ समुष्टिकौ ॥९

'गणाधिपतये......गणक्रीडाय' इन मन्त्रों का उच्चारण करते हुए पूर्वादि चार दिशाओ के कमल दलों में गणेश जी के चार विग्रहों का पूजन करे।

अंग पंचक का पूजन पूर्व अध्याय में प्रदर्शित क्रम से विदिशाओं और मध्य में करे। (वक्रतुण्डायैकदंष्ट्राय......धूम्रवर्णाय' गणपति की इन मूर्तियों की कमलचक्र के दिग्वर्ती तथा कोणवर्ती दलों में पूजा करे। फिर इन्द्र आदि लोकपालों तथा उनके अस्त्रों की अर्चना करे। मध्यमा और तर्जनी के मध्य में अंगूठे को डालकर मुठ्ठी बन्द कर लेने पर गणेश मुद्रा बनती है।
पूजन के समय इस मुद्रा का प्रदर्शन होना चाहिए। ६-९।

चतुर्भुजं मोदकाढ्यं दण्डपाशाङ्कुशान्वितम्।
दन्तभक्ष्यधरं रक्तं साब्जपाशांकुशैर्वृतम् ॥१०
पूजयेत्तं चतुर्थ्यां च विशेषेणाथ नित्यशः।
श्वेतार्कमूलेन कृतं सर्वाप्तिः स्यात्तिलैर्हुतैः ॥११

गणपति की उस मूर्ति का ध्यान करना चाहिए जिसके चार हाथ हैं, जो मोदक, दण्ड, पाश और अंकुश से युक्त हैं। दाँतों में उन्होंने भक्ष्य पदार्थ (लड्डू) को दबा रखा है। उनकी अंगकान्ति लाल है। वे कमल, पाश और अंकुश से घिरे हुये हैं। वैसे तो गणपति का पूजन नित्य ही करना चाहिये, चतुर्थी के दिन उनकी पूजा विशेष विधानपूर्वक करनी चाहिये। मदार की जड़ से उनकी मूर्ति बनाकर पूजा करने वाला और उनके लिए तिल की आहुति देने वाला व्यक्ति इस जीवन में सभी सुखों को प्राप्त कर लेता है। १०-११।

तण्डुलैर्दधिमध्वाज्यैः सौभाग्यं वश्यतामियात्।
[1]घोषासृक्प्राणधात्वर्दी दण्डी मार्तण्डभैरवः ॥१२
धर्मार्थकाममोक्षाणां [2]कर्ता विश्वपुटीवृतः।
ह्रस्वाः स्युर्मूर्तयः पञ्च दीर्घाण्यङ्गानि तस्य च ॥१३

दही, मधु तथा आज्य में मिले हुए तण्डुलों की आहुति सौभाग्यदायिनी और प्राणियों को वश में करने वाली होती है। घोष (ह), असृक् (र), प्राण (य), धातु (औ) अर्दी (ओं) तथा दण्डी (अनुस्वार)—यह सब मिलकर सूर्यदेवता का मार्तण्ड वैभव नामक बीज (ह्यौं ओं) बनता है। इसको विस्व

१ ख. ग. घोषसृक्प्रणधात्ववर्दि°। २ घ °र्ताबिम्बपुटावृ°।

बीज से संपुटित कर दिया जाय तो यह साधकों को चारों पुरुषार्थों को देने वाला होता है। पाँच ह्रस्व स्वरों से मूर्तियों का तथा छह दीर्घस्वरों से अंगों का न्यास करे। १२-१३।

सेन्द्रवारुणमीशानञामार्धदयितं रविम्।
पाशांकुशधरं देवं ह्यक्षमालाकपालिनम् ॥१४
खट्वाङ्गादिकशक्तिं च दधानं चतुराननम्।
अन्तर्बाह्ये विषद्धक्तं(?) पद्मस्थं रविमण्डलम् ॥१५
आदित्यादियुतं प्राच्र्य [1]उदितेऽर्केऽर्घकं ददेत्।
श्वासं विषाग्निविपदण्डीन्दुलेखासकलो भृगुः ॥१६
अर्काय भूर्भुवः स्वरेज्वालिकुरस्त्र्यसङ्गकम् (?)।
पद्मासनोऽरुणो रक्त वस्तुसद्युतिविम्वगः ॥१७
उदानः पद्मदृग्दोर्भ्यां धूम्रकेतुरुदाहृतः।
([2]रक्ता हृदादयः सौम्या वरदाः पद्मधारिणः ॥१८

सूर्य मण्डल का वर्ण लाल होता है उसका दक्षिणार्ध पुरुष तथा वामार्ध स्त्री देवता के रूप में होता है। इस देवता का पूजन ईशान कोण में होना चाहिये तथा सूर्य और मंगल आदि ग्रहों का पूजन आग्नेयी दिशाओं में होना चाहिये। सूर्य की अर्चना करने वाले को पहले स्नान करना चाहिए और तदनन्तर अर्घ्य आदि से सूर्य का पूजन करना चाहिये। आग्नेयी कोण में सूर्य के रूप को पुष्पों की माला का अर्पण करना चाहिए और उनकी काल्पनिकमूर्ति के सम्मुख जलता हुआ दीपक दिखाना चाहिये। सूर्य के लिये रोली, केसर, शीतल जल, रक्तचन्दन, दूर्वा, वांस के वीज, यव, शालि, श्यामाक, तिल, राजिक और यव, पुष्पों से पूर्ण घट सूर्य को अर्पण करना चाहिये। सूर्योपासक को वही घट अपने सिर के ऊपर धारण करना चाहिये। उसे चारों दिशाओं में जाकर सूर्य को अर्घ्य देना चाहिये। ब्रह्मा अरुण वर्ण के हैं। धूमकेतु भुजाओं से युक्त कहे गये हैं। हृदय इत्यादि रक्तवर्ण के सौम्य वर प्रदान करने वाले और पद्म धारण करने वाले हैं। १४–१८।

विद्युत्पुञ्जनिभः स्वर्कः श्वेतः सोमोऽरुणः कुजः।
बुधस्तद्वद्गुरुः पीतः शुक्रिः(?) शुक्रः शनैश्चरः ॥१६

---

१ ख. ग. तेऽर्के उर्घ्वकं। २ रक्ता——केतुरुदाहृतः ग. पुस्तके नास्ति।

कृष्णाङ्गारनिभो राहुर्धूम्रकेतुरुदाहृतः ।)
वामोरुवामहस्तास्ते दक्षहस्ताभयप्रदाः ॥२०
स्वनामाद्यन्तवीजास्ते हस्तौ संशोध्य चास्त्रतः ।
अङ्गुष्ठादौ तले नेत्रे हृदाद्यं व्यापकं न्यसेत् ॥२१
मूलवीजैस्त्रिभिः प्राणव्यापकं न्यस्य साङ्गकम् ।
प्रक्षाल्य पात्रमस्त्रेण मूलेनाऽऽपूर्य वारिणा ॥२२
गन्धपुष्पाक्षतं न्यस्य दूवामर्घ्यं च मन्त्रयेत् ।
आत्मानं तेन संप्रोक्ष्य पूजाद्रव्यं च वैभवम् ॥२३
प्रभूतं विमलं सारमाराध्यं परमं सुखम् ॥

सूर्य विद्युत्पुञ्ज के समान, सोम श्वेत और मंगल अरुण वर्ण के होते हैं। बुद्ध और गुरु पीले, शुक्र शुक्ल, शनैश्चर कृष्ण, राहु अंगार के समान और केतु धूम्रवर्ण का कहा गया है। उन (देवताओं) के बायें और दाहिने हाथ अभय प्रदान करने वाले हैं। हाथों को शुद्ध करके उन देवताओं के नामों के अन्तिम भाग को बीज मन्त्र मानकर अंगूठा इत्यादि नेत्र तथा हृदय का न्यास करना चाहिए। तीन मूल मन्त्रों से प्राणों और अङ्गों का न्यास करना चाहिए। तदनन्तर एक पात्र को धोकर और उसे जल से भरकर उसमें गन्ध, पुष्प और अक्षत डालकर उस अर्घ्य को अभिमंत्रित कर लेना चाहिये। तत्पश्चात् उस जल का अपने आप तथा पूजन सामग्री के ऊपर छिड़कना चाहिये। इससे परमसुख की प्राप्ति होती है। १९-२३½।

पीठाद्यान्कल्पयेदेतान्हृदा मध्ये विदिक्षु च ॥२४
पीठोपरि हृदाद्यं च केसरेष्वस्त्रशक्तयः ।
रां दीप्तां रीं तथा सूक्ष्मां रं[1] (रुं) जयां रूं च भद्रया ॥२५
रें विभूतिं रैं विमलां [2]रोमयोद्याथ विद्युतम् ।
रौंसर्वतोमुखी रं च पीठं प्राच्यं रविं यजेत् ॥२६
आवाह्य दद्यात्पाद्यादि हृत्षडङ्गेन सुव्रतः ।
खकारौ दण्डिनौ चण्डौ मज्जादशनसंयुता ॥२७
[3]मांसादीर्घा जवद्वायुहृदैतत्सर्वदं रवेः ॥

---

१ ग. रू। २ ग.° ममोघाऽथ। ३ ग. °सादार्घ्यीज°।

'रीं, रूं, रें, रैं, रों, रौं तथा रं—इन बीज मन्त्रों से क्रमशः सूर्य की दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, विभूति, विमला, विद्युत् सर्वतोमुखी मूर्तियों और पीठ की अर्चना करनी चाहिये। व्रती को (उपर्युक्त मन्त्रों से) सूर्य का आवाहन करके हृदय इत्यादि षडङ्गों से उसे पाद्य देना चाहिये। सूर्य के लिये खकार, दण्डी, चण्ड, मज्जा और दशन से युक्त मांसा दीर्घा तथा हृदय—यह सब कुछ देने वाले होते हैं २४-२७½।

वह्नीशरक्षोमरुतां दिक्षु पूज्या हृदादयः ॥२८
स्वमन्त्रैः कर्णिकान्तस्था दिक्षु तं पुरतश्च धृक् (?)।
पूर्वादिदिक्षु संपूज्याश्चन्द्रज्ञगुरुभार्गवाः ॥२९
आग्नेयादिषु कोणेषु कुजमन्दाहिकेतवः।
स्नात्वा विधिवदादित्यमाराध्यार्घ्यपुरःसरम्[1] ॥३०
[2]कृतान्तमैशे निर्माल्यं तेजश्चण्डाय दीपितम्।
रोचनं कुंकुमं वारि रक्तगन्धाक्षताङ्कुराः ॥३१
वेणुबीजयवाः शालिश्यामाकतिलराजिकाः।
जपापुष्पान्वितां दत्वा पात्रैःशिरसि धार्यं तत् ॥३२

हृदय इत्यादि के लिये अग्नि इत्यादि दिशाओं में पूजन करना चाहिये। पूर्वादि दिशाओं में चन्द्रमा, गुरु और शुक्र का पूजन करना चाहिए। आग्नेयी इत्यादि कोणों में मंगल, शनि, राहु और केतु के लिए अर्घ्य देना चाहिए। स्नान के बाद विधिपूर्वक अर्घ्य देकर सूर्य की आराधना करनी चाहिए। यमराज के लिये ईशान कोण में निर्माल्य अर्पण करना चाहिये। रोली, केसर, जल, रक्तचन्दन, चन्दन, अक्षत, दूर्वांकुर, बांस के बीज, यव धान, श्यामाक, तिल तथा राई को पात्रों में रखकर उन्हें अपने सिर के ऊपर धारण करना चाहिए। २८-३२।

[3]जानुभ्यामवनीं गत्वा सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत्।
स्वविद्यामन्त्रितैः कुम्भैर्नवभिः प्राच्यं वै ग्रहान् ॥३३
ग्रहादिशान्तये स्नानं जप्त्वाऽर्कं सर्वमाप्नुयात्।
सङ्ग्रामविजयं साग्निं बीजदोषं सबिन्दुकम् ॥३४

---

१ ख. °मू। क्रता°। २ ग. °मैष नि°। 'जानुभ्यामवनीं......निवेदयेत्' ग. पुस्तके नास्ति।

न्यस्य मूर्धादिपादान्तं मूलं पूज्यं च मुद्रया ।
स्वाङ्गानि च यथान्यासमात्मानं भावयेद्रविम् ।।३५

तदनन्तर दोनों घुटनों के सहारे पृथ्वी पर चलकर सूर्य देवता को अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। ग्रहादि शान्ति के लिए अपने सम्प्रदाय के मंत्रों से अभिमंत्रित किये हुये नौ कलशों से ग्रहों की अर्चना करनी चाहिये। स्नानान्तर सूर्य-मंत्रों का जप करने से सब कुछ प्राप्त हो जाता है। इससे संग्राम में विजय-भी होती है। सिर से लेकर पाद पर्यन्त अङ्गन्यास करके सूर्यार्चन करना चाहिये ।३३-३५।

ध्यानं च मारणस्तम्भे पीतमाप्यायने सितम्[1] ।
रिपुघातविधौ कृष्णं मोहयेच्छक्रचापवत् ।।३६
योऽभिषेकजपध्यानपूजाहोमपरः सदा ।
तेजस्वी ह्यजयः श्रीमान्स युद्धादौ जयं लभेत् ।।३७
ताम्बूलादाविदं न्यस्य जप्त्वा [2]दद्यादुशीरकम् ।
न्यस्तवीजेन हस्तेन स्पर्शनं तद्वशे स्मृतम् ।।३८

मारण और स्तम्भन में सूर्य को पीतवर्णयुक्त, किसी को सन्तुष्ट करने में उसे श्वेतवर्णयुक्त, शत्रु का विनाश करने में कृष्ण वर्ण-युक्त तथा मोहन करने में उसको इन्द्रधनुष के समान वर्ण से युक्त चिन्तन करना चाहिये। जो व्यक्ति सदा सूर्य के अभिषेक, जप, ध्यान, पूजन और हवन में निरत रहता है, वह तेजस्वी, अजेय, ऐश्वर्य-सम्पन्न तथा युद्धादि में विजय प्राप्त करने वाला होता है। किसी को वश में करने के लिए सूर्यमंत्र द्वारा अभिमंत्रित करके ताम्बूल आदि में खस को रखकर देना के चाहिये ।३६-३८।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सूर्यार्चनविधानकथनं नामैकाधिक-त्रिशततमोऽध्यायः ।।३०१

अथ द्व्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नानामंत्रौषधकथनम्

---

१ ख. ग. °म् । विद्युत्पात° । २ ग. द्याद्वशीकरम् ।

अग्निरुवाच—

वाक्कर्मपार्श्वयुक्शु[1]क्लतोकक्ते[2] मतो प्लवः ।
हुतान्ता देशवर्णेयं विद्या मुख्या सरस्वती (?) ॥१
अक्षाराशी वर्णलक्षं जपेत्स मतिमान्भवेत् ।
अत्रिः सवह्निर्नामाक्षिविन्दुविद्रावकृत्परः ॥२
वज्रपद्मधरं शक्रं पीतमावाह्य पूजयेत् ॥

अग्निदेव बोले—वाक् शक्ति को उद्भावित करने वाला सुसन्तिति प्रदाता 'वाक्कर्म' इत्यादि श्लोक में उद्धृत 'ऐं कुलजे ऐं सरस्वति स्वाहा' यह ग्यारह अक्षरों का श्री सरस्वती जी का मुख्य मन्त्र संसार-सागर के लिए नौका स्वरूप है। बिना लवण खाये सरस्वती जी के मंत्राक्षरों का एक लक्ष बार जप करके मूढ़ व्यक्ति भी बुद्धिमान् हो सकता है। अत्रि (द), अग्नि (र्) वामनेत्र (ई), तथा विन्दु से वना 'द्रीं' इन्द्र का यह वीज मन्त्र महान् विद्रावणकारी (शत्रु को मार भगाने वाला) है। पहले वज्र और पद्म धारण करने वाले, पीतवर्ण इन्द्र का आवाहन करके उनका पूजन करना चाहिये।१-२½।

नियुतं होमयेदाज्यतिलांस्तेनाभिषेचयेत् ॥३
नृपादिर्भ्रष्टराज्यादीन्राज्यपुत्रादिमाप्नुयात् ।
हृल्लेखा शक्तिदेवाख्या घोषोऽग्निर्दण्डिदण्डवान् ॥४
शिवमिष्ट्वा[3] जयेच्छक्तिमष्टम्यादिचतुर्दशीम् ।
चक्रपाशाङ्कुशधरां सभायां वरदायिकाम् ॥
होमादिना च सौभाग्यं कवित्वं पुत्रवान्भवेत् ॥५
ॐ ह्रीम् ॐ नमः कामाय सर्वजनहिताय सर्वजनमोहनाय प्रज्वलिताय ।
सर्वजनहृदयं ममाऽऽत्मगतं कुरु कुरु २ ओम् ॥६
एतज्जपादिना मन्त्रो वशयेत्सकलं जगत् ॥७

तदनन्तर घृत और तिल की एक लाख आहुतियां देकर (इन्द्र देवता) का तिल मिश्रित जल से अभिषेक करना चाहिये। इस विधि से राजा इत्यादि अपने खोये हुये राज्य को तथा पुत्र आदि को प्राप्त कर लेते हैं। अष्टमी तथा

---

१ ख. °क्लत्तोक्तितेमरक्तो । २ ग. क्ततोनतेप्लवम् । ह° । ३ ख. °ष्टायजेच्छ° ।

चतुर्दशी तिथियों में घोष (ह) अग्नि (र) और दण्डी (ई) बीजों से युक्त शक्ति मंत्र का (हृल्लेखा ह्री) का जप करना चाहिये। वह (शक्ति नाम की) देवी अपने हाथों में चक्र, पाश और अंकुश को धारण किये रहती है तथा उसका चतुर्थ हाथ अभय प्रदान करने वाला हुआ करता है। इस शक्ति का पूजन भगवान् शिव की अर्चना के बाद ही करना चाहिये। इस प्रकार पूजन-हवन करने से मनुष्य, सौभाग्य, कवित्व और पुत्रों को प्राप्त कर लेता है। ओं 'ह्रीम्' .... 'कुरु ओम्' इस मंत्र का जप करने से समस्त जगत् को वश में किया जा सकता है।३-७।

ॐ, ह्रीं, चामण्डेऽमुकं दह दह पच पच
मम वशमानयाऽऽनय ठ ठ उ (ओम्) ।।८
वशीकरणकृन्मन्त्रश्चामुण्डाया: प्रकीर्तितः ।
फलत्रयकषायेण वराङ्गं क्षालयेद्वशे ।।९

"ओं ह्रीं चामुण्डे' .... 'ठ ठ उ (ओम्" यह चामुण्डा देवी का वशीकरण मन्त्र है। इस मन्त्र के द्वारा अभिमंत्रित त्रिफला के कषाय युक्त जल से योनि का क्षालन करने वाली स्त्री सब को वश में कर लेती है।८-९।

[1]अश्वगन्धायवैः स्त्री तु निशा कर्पूरकादिना ।
पिप्पलीतण्डुलान्यष्टौ मरिचानि च विंशतिः ।।१०
बृहतीरसलेपश्च वशे स्यान्मरणान्तिकम् ।
[2]कटीरमूलत्रिकटुक्षौद्रलेपस्तथा भवेत् ।।११
हिमं कपित्थकरसं मागधी मधुकं मधु ।
तेषां लेपः प्रयुक्तस्तु दंपत्योः स्वस्तिमावहेत् ।।१२

अश्वगन्धा, यव, हल्दी, कपूर, पीपरि, आठ दाना चावल, और बीस दाना मिर्च के सेवन से तथा भटकैया के रस का योनि पर लेप करने से वश में लोग जीवन-पर्यन्त रहा करते हैं। कटीर, पिप्पलीमूल, सोंठ, मिर्च, पीपरि तथा मधु के लेप से भी ऐसा ही फल होता है। चन्दन, कपूर, कपित्थ का रस, छोटी इलायची, मधु और अशोक वृक्ष के पत्तों के रस से बना हुआ लेप दम्पति के लिये कल्याणकारण होता है।१०-१२।

---

१ ख. ग. 'यवस्त्री। २ ख. ग. कटी च मू'।

सशर्करो योनिलेपात्कदम्बरसको मधु ।
सहदेवी महालक्ष्मीः पुत्रंजीवी कृताजञ्लिः ॥१३
एतच्चूर्णं शिरःक्षिप्तं लोकस्य वशमुत्तमम् ।
त्रिफलाचन्दनक्वाथप्रस्था द्विकुडवं पृथक् ॥१४
भृङ्गहेमरसं दोषा तावती छम्बुकं मधु ।
घृतैः पक्वा निशाछायाशुष्का लेप्या तु रञ्जनी ॥१५
विदारी सजटामांसचूर्णीभूतां सशर्कराम् ।
मथितां यः पिबेत्क्षीरैर्नित्यं स्त्रीशतकं व्रजेत् ॥१६

कदम्बरस तथा मधु को शक्कर के साथ मिलाकर योनि में लेप करने से दम्पति का कल्याण होता है। सहदेवी (शाखि), महालक्ष्मी और पुत्रंजीवी के चूर्ण को सिर के ऊपर लगाने से सभी लोग वश में हो जाते हैं। त्रिफला और चन्दन का क्वाथ एक प्रस्थ, भृंगहेम का रस दो कुडव, उतनी ही दोषा, मधु घृत में पकाई गयी हल्दी और शेकालिका के चूर्ण का लेप करने से पुरुष में शक्ति विशेष का सञ्चय होता है। जो पुरुष विदारीकन्द और जटामासी के चूर्ण के साथ शक्कर मिलाकर दूध के साथ पीता है, वह सौ स्त्रियों के साथ सम्भोग कर सकता है।१३-१६।

गुप्तामाषतिलव्रीहिचूर्णं क्षीरसितान्वितम् ।
अश्वत्थवंशदर्भाणां मूलं वै वैष्णवीश्रियोः ॥१७
मूलं दूर्वाश्वगन्धोत्थं पिबेत्क्षीरैः सुतार्थिनी ।
कौन्तीलक्ष्म्योः शिवाधात्रीबीजं लोध्रवटाङ्कुरम् ॥१८
[1](आज्यक्षीरमृतौ पेयं पुत्रार्थं त्रिदिवं स्त्रिया ।
पुत्रार्थिनी पिबेत्क्षीरं श्रीमूलं सवटाङ्कुरम्) ॥१९
श्रीवटाङ्कुरदेवीनां रस नस्ये पिबेच्च सा ।
श्रीपद्ममूलमुत्क्षीरमश्वत्थोत्तरमूलयुक् ॥२०
[2]तरणं पयसा युक्तं कार्पासफलपल्लवम् ।
अपामार्गस्य पुष्पाग्रं नवं समहिषीपयः ॥२१

---

१ 'आज्यक्षीरमृतौ......सवटाङ्करम् ग. पुस्तके नास्ति । २ ख. तरुणं । घ. तरलं ।

पुत्रार्थिनी स्त्री को गुप्ता, उड़द तथा तिल के चूर्ण को दूध में मिलाकर पीना चाहिए। पुत्राभिलाषी स्त्री को, भस्म-गन्धी फलिनी, हड़, आँवला लोध्र तथा बरगद के अंकुर के चूर्ण को दूध और घी में मिलाकर तीन दिनों तक पीना चाहिये। बेल और बरगद के अंकुर के रस को पीना चहिए और उसका नस्य भी लेना चाहिये। बेल, कमल की जड़, दूध, पीपल की जड़, कपास के फूल और पत्ते और लटजीरा के पुष्प के अग्रभाग को तुरन्त दुहे गए भैंस के दूध के साथ पीने से भी पुत्रार्थिनी स्त्री को लाभ होता है। १७-२१।

पुत्रार्थं चार्धषट्श्लोकैर्योगाश्चत्वार ईरिताः।
शर्करोत्पलपुष्पाक्षे लोध्रचन्दन[1]सारिवाः ॥२२
स्रवमाणे स्त्रिया गर्भे दातव्यास्तण्डुलाम्भसा।
लाजा यष्टिसिताद्राक्षाक्षौद्रसर्पिषि वा लिहेत् ॥२३
आटरूष कलाङ्गल्योः काकमाच्याः शिफा पृथक्।
नाभेरधः समालिप्य प्रसूते प्रमदा सुखम् ॥२४

उपर्युक्त साढ़े छह श्लोकों में पुत्र-प्राप्ति के चार योग बताये गये हैं। जिस स्त्री के बार-बार गर्भपात हो जाया करता हो उसे चावल के पानी में मिलाकर शक्कर, कमलपुष्प, कमलनेत्र, लोध्र चन्दन और सारिवा देना चाहिये। वह (स्त्री) खील, यष्टि, शक्कर, द्राक्षा, मधु तथा घृत को भी चाट सकती है। प्रसव-काल में जिस स्त्री को कुछ कष्ट होता हो उसे आटरूष, कलाङ्गली, काकमाची (मुद्गपर्णी) की जड़ को अलग-अलग कूटकर उसके लेप को नाभि के नीचे लगाना चाहिये। इससे स्त्री का प्रसव सुखपूर्वक होता है।२२-२४

रक्तं शुक्लं जपापुष्पं रक्तशुक्रस्रुतौ पिबेत्।
केशर बृहतीमूलं गोपीषष्टीतृणोत्पलम् ॥२५
साजक्षीरं सतैलं तद्भक्षणं रोमजन्मकृत्।
शीर्यमाणेषु केशेषु स्थापनं च भवेदिदम् ॥२६
धात्रीभृङ्गरसप्रस्थं तैलं च क्षीरमाढकम्।
षष्ट्यञ्जनपलं तैलं तत्केशाक्षिशिरोहितम् ॥२७

---

१ ग. °नमारिवा।

जिस स्त्री के रक्त तथा शुक्र गिरता हो उसे श्वेत और रक्त गुड़हल के फूलों को पिलाने से उक्त रोग शान्त हो जाता है। शरीर के किसी भी अङ्ग में रोयें पैदा करने के लिये केशर, वृहती की जड़, श्यामलता, षण्टी और और वल्वज नामक तृण को वकरी के दूध में तथा तेल के साथ मिलाकर खाना चाहिये। यह ओषधि गिरते हुये केशों को (भी) रोकती है। एक-एक प्रस्थ आंवला और भृङ्गराज का रस, एक आढक दूध, एक-एक पल षष्ठी और अञ्जन—इन वस्तुओं के द्वारा निर्मित तेल केश, नेत्र तथा शिर के लिये हितकारी होता है। २५-२७।

हरिद्राराजवृक्षत्वक्चिञ्चा 'लवणलोध्रकौ।
पीता खारी हरेदाशु गवामुदरबृंहणम् ॥२८
ॐ नमो भगवते त्र्यम्वकायोपशमयोपशमय चुलु-चुलु मिलि
मिलि भिदि भिदि गोमानिनि चक्रिणि ह्रूं फट् ॥२९
अस्मिन्ग्रामे गोकुलस्य रक्षां कुरु शान्ति
कुरु कुरु कुरु ठ ठ ठ ॥३०
घण्टाकर्णो महासेनो वीरःप्रोक्तो महाबलः।
मारीनिर्ना (र्णा) शनकरः स मां पातु जगत्पतिः ॥
श्लोकौ चैव न्यसेदेतौ मन्त्रौ गोरक्षकौ पृथक् ॥३१

हल्दी और प्रियाल की छाल, इमली, नमक और लोध्रक को एक-एक खारी की मात्रा में गायों को पिलाना उनके पेट फूलने के रोग में लाभ-दायक होता है। (ओं नमो... .....स मां पातु जगत्पतिः' गोरक्षा करने वाले इन दो श्लोकों तथा मंत्रों की भी स्थापना करनी चाहिये।२८-३१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानाविधमन्त्रौषधादिकथनं नाम
द्व्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः।३०२

———

१ ग. लपणलोलभौ।

अथ त्र्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अङ्गाक्षरार्चनम्

अग्निरुवाच—

यदा जन्मर्क्षगश्चन्द्रो भानुः सप्तमराशिगः ।
पौष्णः कालः स विज्ञेयस्तदा [1]श्वासं परिक्षयेत् ॥१

अग्निदेव बोले—जिस काल में चन्द्रमा (किसी के) जन्म के नक्षत्र में होता है तथा सूर्य उसकी राशि से सातवीं राशि पर होता है, वह पौष्ण काल कहलाता है। इस समय (मनुष्य की) श्वास में क्षीणता उत्पन्न हो जाती है। १।

कण्ठोष्ठौ चलतः स्थानाद्यस्य वक्रा च नासिका ।
कृष्णा जिह्वा च सप्ताहं जीवितं तस्य वै भवेत् ॥२

जिस व्यक्ति के कण्ठ और ओष्ठ अपने-अपने स्थान से हिलने लगते हैं, जिसकी नासिका टेढ़ी और जीभ काली पड़ जाती है उस पुरुष का जीवन एक सप्ताह तक ही जानना चाहिये ।२

तारो मेषो विषं [2]दन्ती नरो दीर्घो घनारसः ।
क्रुद्धोल्काय महोल्काय वीरोल्काय शिखा भवेत् ॥३
द्युल्काय सहस्रोल्काय वैष्णवोऽष्टाक्षरो मनुः ।
कनिष्ठादितदष्टानामङ्गुलीनां च पर्वसु ॥४
ज्येष्ठाग्रेण क्रमात्तारं मूर्धन्यष्टाक्षरं न्यसेत् ।
तर्जन्यां तारमङ्गुष्ठे लग्ने मध्यमया च तत् ॥५
तलेऽङ्गुष्ठे तदुत्तारं बीजोत्तारं ततो न्यसेत् ।

ऐसे व्यक्ति को निष्ठापूर्वक नारायण का पूजन करना चाहिये क्योंकि वही इसे सभी प्रकार के भय से बचा सकते हैं। आठ अक्षर वाला वैष्णव मन्त्र यह है—'ओं नमोनारायणाय'। इसमें कराङ्गन्यास का विधान इस प्रकार

---

१ घ. ग्रासं। २ ख. दण्डी।

है—'क्रुद्धोल्काय नमः' से अंगुष्ठ, 'वीरोल्काय नमः' से मध्यमा का, 'अत्युल्काय नमः, से अनामिका का न्यास करना चाहिए। 'महोल्काय नमः' से तर्जनी का और 'सहस्रोल्काय नमः, से कनिष्ठिका का न्यास करना चाहिये। कनिष्ठा से लेकर कनिष्ठा तक आठ अंगुलियों के तीनों पर्वों में अष्टाक्षर मन्त्र के पृथक्-पृथक् आठ अक्षरों को 'प्रणव' तथा 'नमः से संपुटित करके बोलते हुये अंगुष्ठ के अग्रभाग से उनका क्रमशः न्यास करे। तर्जनी में मध्यमा से युक्त अंगुष्ठ में, करतल में तथा पुनः अगुष्ठ में प्रणव का न्यास 'उत्तार' कहलाता है। इस न्यास के वाद 'बीजोत्तार' न्यास करे। ३-५½।

रक्तगौरधूम्रहरिज्जातरूपाः सितास्त्रयः ॥६
एवंरूपानिमान्वर्णास्ता[1]वद्वुद्ध्वा न्यसेत्क्रमात्।
हृदास्यनेत्रमूर्धाङ्घ्रितालुगुह्यकरादिषु ॥७
अङ्गानि च न्यसेद्वीजान्न्यस्याथ करदेहयोः।
यथाऽऽत्मनि तथा देवे न्यासः कार्यः करं विना ॥८
हृदादिस्थानगान्वर्णान्गन्धपुष्पैः समर्चयेत्।
धर्माद्यन्याद्यधर्मादि गात्रे पीठेऽम्बुजं न्यसेत् ॥९

रक्त, गौर, धूम्र, हरित्, सुनहले तथा श्वेत वर्ण वाले अक्षरों का न्यास भी विचारपूर्वक करना चाहिये। मन्त्राक्षरों से हृदय, मुख, नेत्र, मूर्धा पाद, तालु, गुह्य, हस्त आदि अवयवों का न्यास करना चाहिए। हाथों में और अंगों में बीजन्यास करके फिर अङ्गन्यास करे। जैसे अपने शरीर में न्यास किया जाता है, उसी तरह देव विग्रह में भी करना चाहिए, किन्तु देव शरीर में करन्यास नही किया जाता है। देव विग्रह में हृदयादि अंगों में विन्यास वर्णों का गन्ध, पुष्प द्वारा पूजन करे। देवी पीठ पर धर्म आदि, अग्नि आदि तथा अधर्म आदि का भी यथास्थान न्यास करे। फिर उस पर कमल का भी न्यास करना चाहिये। ६-९।

पत्रकेसरकिञ्जल्कव्यापिसूर्येन्दुदाहिनाम्।
मण्डलं (ल) त्रितयं तावद्भेदैस्तत्र न्यसेत्क्रमात् ॥१०
गुणाश्च तत्र सत्त्वाद्याः केसरस्थाश्च शक्तयः।
विमलोत्कर्षणाज्ञानक्रियायोगाश्च वै क्रमात् ॥११
प्रह्वी सत्या तथेशानाऽनुग्रहा मध्यतस्ततः।
योगपीठं समभ्यर्च्य समावाह्य हरिं यजेत् ॥१२

१ ग. न्वर्णान्मावबुद्धान्न्यसे॰।

कमल के दल (पत्र) केसर तथा किञ्जल्क में सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि इन तीनों देवताओं के तीन मण्डलों का भी न्यास करना चाहिए। उनमें सतोगुण, रजोगुण, तथा तमोगुण का और विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना क्रिया योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना आदि आठ शक्तियों का न्यास करना चाहिये। ये आठ शक्तियाँ आठ दिशाओं में और नवीं अनुग्रहा शक्ति मध्य में विराजमान है। उस योगपीठ की अर्चना करके उसी के ऊपर श्री हरि का आह्वान करके-पूजन कार्य सम्पन्न करना चाहिये। १०-१२।

पाद्यार्घ्याचमनीयं च पीतवस्त्रविभूषणम्।
एतत्पञ्चोपचारं च सर्वं मूलेन दीयते ॥१३
वासुदेवादयः पूज्याश्चत्वारो दिक्षु मूर्तयः।
विदिक्षु श्रीसरस्वत्यौ रतिशान्ती च पूजयेत्[1] ॥१४
शंखं चक्रं गदां पद्मं मुसलं खड्गशार्ङ्गके।
वनमालान्वितं दिक्षु विदिक्षु च यजेत्क्रमात् ॥१५

पाद्य, अर्घ्य, आचमन, पीतवस्त्र धारण तथा भूषणाधान पञ्चोपचार को मूल मन्त्र (अष्टाक्षर मन्त्र) से ही करना चाहिये। चारों दिशाओं में वासुदेव आदि चार देवताओं की पूजा करनी चाहिये। विदिशाओं में लक्ष्मी, सरस्वती, रति और शान्ति की अर्चना करनी चाहिए। शंख, चक्र, गदा, पद्म, और मुसल, खड्ग, धनुष, वनमाला की पूजा दिशाओं तथा विदिशाओं में क्रम से करनी चाहिये। १३-१५।

अभ्यर्च्य च वहिस्तार्क्ष्यं देवस्य पुरतोऽर्चयेत्।
विष्वक्सेनं च सोमेशं मध्ये आवरणाद्वहिः ॥१६
इन्द्रादिपरिचारेण संपूज्य समवाप्नुयात् ॥१७

मण्डल के बाहर गरुड़ का, भगवान् नारायण के समक्ष विष्वक्सेन का तथा मध्य में सोमेश का पूजन कर आवरण के बाहर इन्द्र आदि देवताओं की अर्चना करके मनोवांछित फल प्राप्त किया जा सकता है। १६-१७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽङ्गाक्षरपूजाविधिवर्णनं नाम त्र्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।३०३

---

१ च. विन्यसेत्

अथ चतुरधिकत्रिशततमोऽध्यायः

पञ्चाक्षरादिपूजामन्त्राः

अग्निरुवाच—

मेषः संज्ञा विषं साज्यमस्ति दीर्घोदकं रसः।
एतत्पञ्चारक्षरं मन्त्रं शिवदं च शिवात्मकम् ॥१
([1]तारकादि [2]समभ्यर्च्य देवत्वादि समाप्नुयात्।
ज्ञानात्मकं परं ब्रह्म परं बुद्धिः शिवो हृदि) ॥२
तच्छक्तिभूतः सर्वेशो भिन्नो ब्रह्मादिमूर्तिभिः।
मन्त्रार्णाः पञ्च भूतानि [3]तन्मन्त्रा विपयारतथा ॥३
प्राणादिवायवः पञ्च ज्ञानकर्मेन्द्रियाणि च।
सर्वं पञ्चाक्षरं ब्रह्म तद्वदष्टाक्षरात्मकम् ॥४

अग्निदेव बोले—शिव मन्त्र में पांच अक्षर हैं और वह मन्त्र है, 'नमः शिवाय' यह मन्त्र कल्याणप्रद और कल्याणस्वरूप माना गया है। इस मन्त्र के आदि में तारक (ओं) लगा देने से यह षडक्षर मंत्र हो जाता है। इसकी अर्चना करने से देवत्व आदि की प्राप्ति होती है। शिव का ध्यान ज्ञानस्वरूप परब्रह्म और बुद्धिरूप में करना चाहिये। सर्वेश शिव इन्हीं की शक्तियों से उत्पन्न तथा ब्रह्मादि की मूर्तियों से भिन्न है। शिव मन्त्र के पांच अक्षरों से पञ्चमहाभारत, पञ्चतन्मात्रायें, पांच विषय, प्राणादि पांच वायु, पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां उत्पन्न हुयी हैं। यह मन्त्र तथा आठ अक्षरों से युक्त (ओं नमो नारायणाय) मन्त्र साक्षात् ब्रह्म ही है। १-४।

गव्येन प्रोक्षयेद्दीक्षास्थानं मन्त्रेण चोदितम्।
तत्र संभूतसंभारः शिवमिष्ट्वा विधानतः ॥५

(शिवार्चन के लिये) दीक्षा-स्थान को गोबर इत्यादि से लीपकर उसे शिवमन्त्र से पवित्र करना चाहिये। तत्पश्चात् समस्त (पूजन) सामग्री को एकत्र करके विधिपूर्वक शिवार्चन करना चाहिये।५

---

१ 'तारकादि......हृदि' ग० पुस्तके नास्ति। २ ख. °भ्यस्य दे°। ३ ख. च. तन्मात्रा।

मूलमूर्त्यङ्गविद्याभिस्तण्डुलक्षेपणादिकम् ।
कृत्वा [1]चरुं च यत्क्षीरे पुनस्तद्विभजेत्त्रिधा ।।६
निवेद्यैकं परं हुत्वा सशिष्योऽन्यद्भुजेद्गुरुः ।
आचम्य सकलीकृत्य दद्याच्छिष्याय देशिकः ।।७
दन्तकाष्ठं हृदा जप्तं क्षीरवृक्षादिसंभवम् ।
संशोध्य दन्तान्संक्षिप्त्वा (प्य) प्रक्षाल्यैतत्क्षिपेद्भुवि ।।८

पूजा करने वाले को मूल-मन्त्र, मूर्तिमन्त्र और अङ्गमन्त्रपूर्वक अक्षतों को वहाँ डालना चाहिये। तदनन्तर दूध में चरु तैयार करके उसे तीन भागों में विभाजित कर देना चाहिये। इसमें से एक भाग शिव को अर्पित कर देना चाहिये, दूसरे से हवन करना चाहिए और तीसरे भाग को गुरु शिष्य दोनों को खाना चाहिए। उसके बाद आचमन एवं सकलीकरण करके शिष्य को गुरु के द्वारा बरगद आदि दूध वाले वृक्षों की एक दातून दी जानी चाहिये जो हृदयमन्त्रों के द्वारा अभिमन्त्रित हो। इस प्रकार दाँतों को साफ करके दातून को चीरकर उसके द्वारा जीभ साफ करके बाद में धोकर पृथ्वी पर फेंक दे। ६-८।

पूर्वेण सौम्यवारीशगतं शुभमतोऽशुभम् ।
पुनस्तं शिष्यमायान्तं शिखाबन्धादिरक्षितम् ।।६
कृत्वा वेद्यां सहानेन स्वपेद्दर्भास्तरे बुधः ।
स्वस्वप्नं वीक्ष्य तं शिष्यः प्रभाते श्रावयेद्गुरुम् ।।१०
शुभैः सिद्धिपदैर्भक्तिस्तैः पुनर्मण्डलार्चनम् ।
मण्डलं भद्रकायुक्तं पूजोयत्सर्वसिद्धिदम् ।।११

यदि पूर्व दिशा में फेंकने पर वह दातून उत्तर पश्चिम दिशा की ओर जाकर गिरे तो शुभ होता है, अन्यथा अशुभ। पुनः अपने पास आते हुए शिष्य को शिखाबन्धादि से सुरक्षित करके उसके साथ वेदी के ऊपर बिछे हुए कुशास्तरण के ऊपर शयन करना चाहिए। शिष्य को चहिए कि (शयन काल में) देखे हुये अपने स्वप्न को प्रभातकाल में अपने गुरु से बताये। यदि स्वप्न शुभ एवं सिद्धि सूचक हुए तो उनसे मन्त्र तथा इष्टदेव के प्रति भक्ति बढ़ती है। तदनन्तर सर्वतोभद्र नामक मण्डल की अर्चना करनी चाहिए, क्योंकि इससे सभी प्रकार की सिद्धियां प्राप्त होती हैं। ९-११

---

१ ख. °रूं पचेत्क्षी° ।

स्नात्वाऽऽचम्य मृदा देहं मन्त्रैरालिप्य कल्पते।
शिवतीर्थे नरः स्नायादघमर्षणपूर्वकम् ॥१२
हस्ताभिषेकं कृत्वाऽथ प्रायात्पूजागृहं बुधः।
मूलेनाब्जासनं कुर्यात्तेन पूरककुम्भकान् ॥१३
आत्मानं योजयित्वोर्ध्वं शिखान्ते द्वादशाङ्गुले।
संशोध्य दग्ध्वा स्वतनुं प्लावयेदमृतेन च ॥१४

स्नान और आचमन करने के बाद शरीर के ऊपर मन्त्रों से अभिमंत्रित की हुयी मिट्टी का लेप करना चाहिये। इस प्रकार (शरीर में बने हुए) शिव-तीर्थ में अघमर्षण मन्त्रों से स्नान करना चाहिए। बुद्धिमान् व्यक्ति को हाथ धोकर पूजागृह में जाना चाहिये और मूल मन्त्र का जप करते हुये पद्मासन लगाकर उसी मंत्र से पूरक और कुम्भक प्राणायाम की क्रियाओं को करना चाहिये। तदनन्तर सुषुम्णा नाडी के मार्ग से जीवात्मा को ऊपर ब्रह्मरन्ध्र-स्थित सहस्रारचक्र में ले जाकर परमात्मा में योजित कर दे। सिर ले लेकर शिखा पर्यन्त जो बारह अंगुल विस्तृत स्थान है, वही ब्रह्मरन्ध्र है। उसी में स्थित परमात्मा के भीतर जीव को संयोजित करके वायुवीज (यकार) के द्वारा वायु को प्रकट करके उसके द्वारा अपने शरीर को सुखा दे, अग्नि वीज (रकार) से अग्नि प्रकट करके शुष्क शरीर को जला दे और जले हुये शरीर से पापपुरुष को अलग कर अमृतबीज (वकार) से उस भस्म को अमृत की धारा से आप्लावित कर दे।१२-१४।

ध्यात्वा दिव्यं वपुस्तस्मिन्नात्मानं च पुनर्नयेत्।
कृत्वैवं चाऽऽत्मशुद्धिः स्याद्विन्यस्यार्चनमारभेत् ॥१५
क्रमात्कृष्णसितश्यामरक्तपीता [1]नगादयः।
[2]मन्त्रार्णा दण्डिनाङ्गानि तेषु सर्वास्तु मूर्तयः ॥१६
([3]अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं विन्यस्याङ्गानि सर्वतः।
न्यसेन्मन्त्राक्षरं पादगुह्यहृद्वक्त्रमूर्धसु ॥१७

---

१ च. नमाद°। २ "मन्त्रार्णा......मूर्तयः" इत्यत्र "मन्त्राणां दण्डभागानां मूलमङ्गानि विन्यसेत्" इति च. पुस्तके वर्तते। ३ "अंगुष्ठादि..... विन्यसेत्" नास्ति च. पुस्तके।

व्यापकं न्यस्य मूर्धादि मूलमङ्गानि विन्यसेत् ।)
रक्तपीतश्यामसितान्पीठपादान्स्वकोणजान् ॥१८
साध्यान्मन्त्रान्न्यसेद्गात्राण्यधर्मादीनि दिक्षु च ।

तदनन्तर अपने अन्दर दिव्य आत्मा का ध्यान करते हुए मूल मन्त्र के कृष्ण, श्वेत, श्याम, रक्त और पीतवर्णो वाले नकारादि अक्षरों से अङ्गन्यास करना चाहिये । इन्हीं अंगों में तत्पुरुष आदि पांच मूर्तियों का भी न्यास करना चाहिए। मंत्राक्षरों से अंगूठे से लेकर कनिष्ठिका तक तथा पाद, गुह्याङ्गों, मुख और मस्तक इत्यादि सभी अंगों का न्यास करना चाहिये । साथ ही अपने-अपने कोणों में रक्त, पीत, श्याम और श्वेत पाद-पीठों तथा साध्य मंत्रों का तथा दिशाओं में अधर्मादि का न्यास करना चाहिये ।१५-१८½।

तत्र पद्मं च सूर्यादिमण्डलत्रितयं गुणान् ॥१९
पूर्वादिपत्रे वामाद्या नवमी कर्णिकोपरि ।
वामा ज्येष्ठा क्रमाद्रौद्री काली कलविकारिणी ॥२०
बलविकारिणी चाथ बलप्रमथिनी तथा ।
सर्वभूतदमनी च नवमी च मनोन्मनी ॥२१
श्वेता रक्ता सिता पीता श्यामा वह्निनिभाऽसिता ।
कृष्णारुणाश्च ताः शक्तीर्ज्वालारूपाः स्मरेत्क्रमात् ॥२२

इस प्रकार योगपीठ का चिन्तन करके उसके ऊपर अष्टदल कमल का और सूर्यमण्डल तथा अग्नि मण्डल—इन तीन मण्डलों का एवं सत्त्वादि गुणों का चिन्तन करे। अष्टदल कमल के पूर्वादिपत्र के ऊपर वामा आदि आठ शक्तियों का तथा कर्णिका के ऊपर नवमी (मनोन्मनी) शक्ति का न्यास या चिन्तन करे। इन शक्तियों के नाम इस प्रकार हैं—वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलविकारिणी, बलविकारिणी, बलप्रमथिनी, सर्वभूतदमनी तथा नवमी मनोन्मनी। श्वेता, रक्ता, सिता, पीता, श्यामा, वह्निनिभा, असिता, कृष्णा, अरुणा वर्ण की ज्वाला रूप इन शक्तियों का स्मरण करना चाहिए।१९-२२।

अनन्तयोगपीठाय आवाह्याथ हृदब्जतः ।
स्फटिकाभ चतुर्बाहुं फलशूलधरं शिवम् ॥२३
साभयं वरदं पञ्चवदनं च त्रिलोचनम् ।
पत्रेषु मूर्तयःपञ्च स्थाप्यास्तत्पुरुषादयः ॥२४

पूर्वे तत्पुरुषः श्वेतो अ(तोऽप्य) घोरोऽष्टभुजोऽसितः ।
चतुर्बाहुमुखः पीतः सद्योजातश्च पश्चिमे ॥२५
([1] वामदेवः स्त्रीविलासी चतुर्वक्त्रभुजोऽरुणः ।
सौम्ये पञ्चास्य ईशान ईशानः सर्वदः सितः ॥२६
इष्टा (ष्ट्वाऽ) ङ्गानि यथान्यायमनन्तं सूक्ष्ममर्चयेत् ।)
[2]सिद्धेश्वरं त्वेकनेत्रं पूर्वादौ दिशि पूजयेत् ॥२७

तदन्तर 'अनन्तयोगपीठायनमः' से योगपीठ की पूजा करके हृदय-कमल में स्फटिक मणि के समान चतुर्भुज फलशूलधारी अभययुक्त, वरप्रदान करने वाले, पञ्चमुख और त्रिलोचन शंकर का आवाहन करना चाहिये । (हृदय-कमल के) पत्रो में तत्पुरुष इत्यादि पाँच मूर्तियों की स्थापना करनी चाहिए । पूर्व की ओर श्वेतवर्ण तत्पुरुष की तथा दक्षिण में कृष्णवर्ण के अष्टभुज अघोर देवता की स्थापना करनी चाहिए । पश्चिम की ओर पीतवर्ण के चतुर्भुज और चतुरानन सद्योजात की तथा उत्तर दिशा में स्त्रीविलासी चतुर्मुख चतुरानन अरुणवर्ण के वामदेव की तथा ईशान कोण में पांच मुँह वाले, गौरवर्ण, सब कुछ देने वाले ईशानदेव की स्थापना करनी चाहिए । तदनन्तर नियमानुसार अंग देवताओं की भी यथाविधि अर्चना करनी चाहिए । पूर्व इत्यादि दिशाओं में अनन्त, सूक्ष्म, सिद्धेश्वर (शिवोत्तम) और एकनेत्र की पूजा करनी चाहिये ।२३-२७।

एकरुद्रं त्रिनेत्रं च श्रीकण्ठं च शिखण्डिनम् ।
ऐशान्यादिविदिक्ष्वेते विघ्नेशाः कमलासनाः ॥२८
श्वेतः पीतः सितो रक्तो धूम्रो रक्तोऽरुणः सितः ।
शूलाशनिशरेष्वासवाहवश्चतुराननाः ॥२९
उमा चण्डीशनन्दीशौ महाकालो गणेश्वरः ।
वृषो भृङ्गिरिटिस्कन्दानुत्तरादौ प्रपूजयेत् ॥३०
कुलिशं शक्तिदण्डौ च खड्गं पाशध्वजौ गदाम् ।
शूलं चक्रं यजेत्पद्मं पूर्वादौ देवमर्च्य च ॥३१

ऐशानी आदि कोणों में एकरुद्र, त्रिनेत्र, श्रीकण्ठ और शिखण्डी का पूजन करे । ये आठ विघ्नेश्वर कहलाते हैं । इनका आसन कमल का है । इनकी

---

१ 'वामदेवः......सूक्ष्ममर्चयेत्' ख. पुस्तके नास्ति । २ ख. ग. ०रं द्व्येक० ।

अङ्गकान्ति क्रमशः श्वेत, पीत, सित, रक्त, धूम्र, रक्त, अरुण और सित वर्ण की है। ये सभी चतुर्भुज हैं। इनकी चारों भुजाओं में त्रिशूल, वज्र, वाण और धनुष् रहते हैं। इनके मुँह भी चार-चार ही हैं। इसके वाद उत्तरादि दलों में प्रदक्षिण क्रम से उमा, चण्डेश, नन्दीश्वर, महाकाल, गणेश्वर, वृष, भृङ्गी और स्कन्द का पूजन करना चाहिए। उसके बाद पूर्वादि दिशाओं में इन्द्रादि दिक्पालों की पूजा करके वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, ध्वज, गदा, त्रिशूल, चक्र और पद्म का भी पूजन करना चाहिए। २८-३१।

ततोऽधिवासितं शिष्यं [1]पाययेद्गव्यपञ्चकम्।
आचान्तं प्रोक्ष्य नेत्रान्तैर्नेत्रे नेत्रेण बन्धयेत् ॥३२
द्वारे प्रवेशयेच्छिष्यं मण्डपस्याथ दक्षिणे।
सासनादिकुशासीनं तत्र संशोधयेद्गुरुः[2] ॥३३
आदितत्त्वानि संहृत्य परमार्थे लयः क्रमात्।
पुनरुत्पादयेच्छिष्यं सृष्टिमार्गेण देशिकः ॥३४
न्यासं शिष्ये ततः कृत्वा तं प्रदक्षिणमानयेत्।
पश्चिमद्वारमानीय क्षेपयेत्कुसुमाञ्जलिम् ॥३५

तदनन्तर अधिवासित शिष्य को पञ्चगव्य का पान कराना चाहिये। उसके वाद आचमन कर लेने पर उसका प्रोक्षण करे। इसके बाद नेत्रान्त अर्थात् नूतन शुक्ल वस्त्र की पट्टी से नेत्र मन्त्र (वौषट्) का उच्चारण करते हुए ग्रह शिष्य के नेत्रों को बाँध दे। उसके बाद शिष्य को मण्डप के दक्षिण द्वार से प्रवेश कराकर उसे अपने दाहिनी ओर विछे हुए पवित्र कुशासन ऊपर बैठाना चाहिए। तत्पश्चात् पूर्वोक्त क्रम से पञ्च-तत्त्वों का आह्वान करके शिष्य के अन्त:करण को पवित्र करके उन्हें न्यास द्वारा आहूत परब्रह्म में लीन करा देना चाहिए। फिर सृष्टिमार्ग से देशिक शिष्य के दिव्य शरीर का उत्पादन करे। इसके बाद उस शिष्य के दिव्य शरीर में न्यास करके शिष्य के द्वारा यज्ञ-मण्डप की परिक्रमा करनी चाहिए। तदनन्तर शिष्य को मण्डप के पश्चिमद्वार से प्रवेश कराके उसके द्वारा पृथ्वी के ऊपर पुष्पाञ्जलि दिलानी चाहिए।३२-३५।

---

१ ख. च. 'येद्द्रव्य' । २ ख. ग. °रुः । खादि° ।

यस्मिन्पतन्ति पुष्पाणि तन्नामाद्यं विनिर्दिशेत् ।
पार्श्वे यागभुवः खाते कुण्डे सन्नाभिमेखले ॥३६
शिवाग्निं जनयित्वेष्ट्वा पुनः शिष्येण चार्चयेत् ।
ध्यानेनाऽऽत्मनि तं शिष्यं संहृत्य प्रलयः क्रमात् ॥३७
पुनरुत्पाद्य तत्पाणौ दद्याद्दर्भांश्च मन्त्रितान् ।
पृथिव्यादीनि तत्त्वानि जुहुयाद्धृदयादिभिः ॥३८
एकैकस्य शतं हुत्वा व्योममूलेन होमयेत् ।
हुत्वा पूर्णाहुतिं कुर्यादस्त्रेणाष्टाऽऽहुतीर्हुनेत् ॥३९

जिस वस्तु के ऊपर पहला पहला फूल गिरे उसके आदि अक्षर से शिष्य का नामकरण करना चाहिये। यज्ञभूमि के पार्श्व में नाभि और मेखला से युक्त कुण्ड में शिवाग्नि को उत्पन्न करके उनमें यज्ञ करके शिष्य के द्वारा भी यजन कराना चाहिए। तदनन्तर ध्यान-पूर्वक अपने में आत्मसदृश शिष्य की संहार-क्रम से स्थापना करनी चाहिए और पुनः सृष्टिक्रम से उसका उत्पादन करे। तदनन्तर शिष्य के हाथ में अभिमंत्रित कुशाओं को देकर हृदय इत्यादि मन्त्रों से पृथ्वी इत्यादि तत्त्वों को सौ-सौ आहुतियाँ देनी चाहिये फिर आकाश-तत्त्व को मूल मन्त्र से सौ आहुतियाँ देकर अस्त्र मन्त्र से आठ आहुतियाँ देने के उपरान्त पूर्णाहुति देनी चाहिए।३६-३९।

प्रायश्चित्तं विशुद्ध्यर्थं ततः शेषं समापयेत् ।
कुम्भं समन्त्रितं प्राच्यं शिशुं पीठेऽभिषेचयेत् ॥४०
शिष्ये तु समयं दत्त्वा स्वर्णाद्यैः स्वगुरुं यजेत् ।
दीक्षा पञ्चाक्षरस्योक्ता विष्ण्वादेरेवमेव हि ॥४१

तदनन्तर शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त करके शेप कर्म पूरा करना चाहिए। अभिमंत्रित घट की अर्चना करके एक पीठासन पर विठाकर शिष्य का अभिषेक करना चाहिए। शिष्य को समयाचार का उपदेश देकर निवृत्त हुए गुरु को स्वर्ण इत्यादि की दक्षिणा द्वारा सन्तुष्ट करना चाहिए। यह पञ्चाक्षर दीक्षा विष्णु इत्यादि के मन्त्रों मे भी उपयुक्त हुआ करती है। ४०-४१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पञ्चाक्षरदीक्षाविधानकथनं नाम
चतुरधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।३०४

———

अथ पञ्चाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

पञ्चपञ्चाशद्विष्णुनामानि

अग्निरुवाच—

जपन्वै पञ्चपञ्चाशद्विष्णुनामानि यो नरः ।
मन्त्रजप्यादिफलभाक्तीर्थेष्वर्चादि[1] चाक्षयम् ॥१
पुष्करे पुण्डरीकाक्षं गयायां च गदाधरम् ।
राघवं चित्रकूटे तु प्रभासे दैत्यसूदनम् ॥२
जयं जयन्त्यां तद्वच्च जयन्तं हस्तिनापुरे ।
([2]वाराहं [3]वर्धमाने च काश्मीरे चक्रपाणिनम् ॥३
जनार्दनं च कुब्जास्रे मथुरायां च केशवम् ।
[4]कुब्जाम्रके हृषीकेशं गङ्गाद्वारे जटाधरम् ॥)४
शालग्रामे महायोगं हरिं गोवर्धनाचले[5] ।
पिण्डारके चतुर्बाहुं शङ्खोद्धारे च शङ्खिनम् ॥५

अग्निदेव बोले—विष्णु जी के पचपन नामों का जप करने वाला मनुष्य मन्त्रादि के जप-फल को तथा तीर्थ आदि में की गयी अर्चना के अक्षयफल को प्राप्त कर लेता है। पुष्कर क्षेत्र में पुण्डरीकाक्ष का, गया में गदाधर का, चित्रकूट में श्रीरामचन्द्र का, प्रभास क्षेत्र में दैत्यसूदन का, जयन्ती नगरी में जय का, हस्तिनापुर में जयन्त का, वर्धमान नगर में वाराह का, काश्मीर में चक्रपाणि का, कुब्जास्ननगर में जनार्दन का, मथुरा में केशव का, कुब्जाम्रक में हृषीकेश का, गंगाद्वार में जटाधर का, शालिग्राम में महायोग का, गोवर्धन पर्वत में हरि का, पिण्डारक में चतुर्बाहु का, शङ्खोद्धार में शङ्खी का (जप करने से भोग और मोक्ष प्राप्त होता है) ।१-५)

वामनं च कुरुक्षेत्रे यमुनायां त्रिविक्रमम् ।
विश्वेश्वरं तथा शोणे कपिलं पूर्वसागरे ॥६
विष्णुं महोदधौ विद्याद्गङ्गासागरसंगमे ।
वनमाल्यं च किष्किन्ध्यां देवं रैवतकं[6] विदुः ॥७

---

१ ख. ग. ॅक्तीर्थ पूर्वादि २ 'वाराहं···जटाधरम्' च. पुस्तके नास्ति । ३ ख. ग. कूर्ममाले । ४ ख. ग. कुब्जाव्रते । ५ च. र्धने वने । पि॰ । ६ च. विजुनकं ।

काशीतटे महायोगं विरजायां रिपुंजयम् ॥
[1]विशाखयूपे ह्यजितं नेपाले लोकभावनम् ॥८
द्वारकायां विद्धि कृष्णं मन्दरे मधुसूदनम् ।
[2]लोकाकुले [3]रिपुहरं शालग्रामे हरिं स्मरेत् ॥९

कुरुक्षेत्र में वामन का, यमुना में त्रिविक्रम का, शोण में विश्वेश्वर का, पूर्व सागर में कपिल का, महोदधि में विष्णु का, गंगासागर में वनमाल का, किष्किन्धा नगरी में रैवतक का, काशी तट पर महायोग का, विरजा नगरी में रिपुंजय का, विशाखयूप में अजित का, नेपाल में लोकभावना का, द्वारका में श्रीकृष्ण का, मन्दराचल पर मधुसूदन का, लोकाकुल पर्वत पर रिपुदमन का, शालिग्राम स्थान में हरि का स्मरण करना चाहिये ।६-९।

पुरुषं पूरुषवटे विमले च जगत्प्रभुम् ।
अनन्तं सैन्धवारण्ये दण्डके शार्ङ्गधारिणम् ॥१०
उत्पलावर्तके सौरिं नर्मदायां श्रियः पतिम् ।
दामोदरं रैवतके नन्दायां जलशायिनम् ॥११
गोपीश्वरं च सिन्ध्वब्धौ[4] माहेन्द्रे चाच्युतं विदुः ।
सह्याद्रौ देवदेवेशं वैकुण्ठं मागधे वने ॥१२
सर्वपापहरं विन्ध्य औण्ड्रे तु पुरुषोत्तमम् ।
आत्मानं हृदये विद्धि जपतां भुक्तिमुक्तिदम् ॥१३

पुरुष वट पर विराट्पुरुष का, लोकाकुल पर्वत पर रिपुदमन का, शालिग्राम स्थान में हरि का, पुरुषतट पर विराट्पुरुष का, विमल नामक स्थान में जगत्प्रभु का, सैन्धवारण्य में अनन्त का, दण्डकारण्य में शार्ङ्गधारी का, उत्पलावर्तक में शौरिं का, नर्मदा में श्रीपति का, रैवतक पर्वत पर अच्युत का, सह्यपर्वत पर देवदेवेश का, मागध वन में वैकुण्ठ का, विन्ध्यपर्वत पर सर्वपापहर का, औण्ड्रनगर में पुरुषोत्तम का तथा हृदय में आत्मा का जप करने से ऐहलौकिक तथा पारलौकिक उभयविध सुख प्राप्त होता है ।१०-१३।

वटे वटे वैश्रवणं चत्वरे चत्वरे शिवम् ।
पर्वते पर्वते रामं सर्वत्र मधुसूदनम् ॥१४

---

१. ग. 'शालयू' २ ख. लोहार्गले । ३ च, प्रतरणं । ४ ख. सिद्धाद्रौ ।

नरं भूमौ तथा व्योम्नि वशिष्ठे गरुड़ध्वजम् ।
वासुदेवं च सर्वत्र संस्मरन्भुक्तिमुक्तिभाक् ॥१५

जो मनुष्य प्रत्येक वटवृक्ष में कुबेर का, प्रत्येक चत्वर में शिव का, प्रत्येक पर्वत पर राम का, सभी स्थानों में मधुसूदन का, पृथ्वी तथा आकाश में परमात्मा का, जितेन्द्रिय पुरुषों में गरुड़ध्वज और सर्वत्र वासुदेव का स्मरण करता है वह भुक्ति-मुक्ति दोनों को प्राप्त कर लेता है ।१४-१५।

नामान्येतानि विष्णोश्च जप्त्वा सर्वमवाप्नुयात् ।
क्षेत्रेष्वेतेषु यच्छ्राद्धं दानं जप्यं च तर्पणम् ॥१६
तत्सर्वं कोटिगुणितं मृतो ब्रह्ममयो भवेत् ।
यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात् ॥१७

श्री विष्णु के इन नामों का जप करके मनुष्य सभी अभीष्ट प्राप्त कर सकता है । इन उपर्युक्त क्षेत्रों में किये गये श्राद्ध, दान, जप, तर्पण आदि करोड़ों गुना फल देने वाले होते हैं । इन क्षेत्रों में दानादि करने वाला मनुष्य मरणानन्तर ब्रह्ममय हो जाता है । जो विष्णु जी के इन नामों को पढ़ता और सुनता है, वह भी पापरहित होकर स्वर्गलोक को प्राप्त करता है ।१६-१७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पञ्चपञ्चाशद्विष्णुकथनं नाम पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।३०५

अथ षडधिकद्विशततमोऽध्यायः

नारसिंहादिमन्त्राः

अग्निरुवाच—

स्तम्भो विद्वेषणोच्चाट उत्सादो भ्रममारणे ।
व्याधिश्चेति स्मृतं क्षुद्रं तन्मोक्षो वक्ष्यते शृणु ॥१
ॐ नमो भगवते, उन्मत्तरुद्राय भ्रम भ्रम भ्रामय भ्रामय, अमुकं ।
वित्रासय वित्रासय; उद्भ्रामय; उद्भ्रामय रुद्रारौद्ररूपेण हूं फट् ॥२

श्मशाने निशि जप्तेन त्रिलक्षं मधुना हुनेत् ।
चिताग्नौ धूर्तसमिद्भिर्भ्राम्यते सततं रिपुः ॥३

अग्निदेव बोले—स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन, उत्सादन (निकालना) भ्रम, मारण और व्याधि—ये समस्त क्षुद्र उपद्रव मन्त्रों द्वारा किये जा सकते हैं। अतएव मैं उन उपद्रवों से मुक्ति पाने का उपाय बतला रहा हूँ, उसे सुनिये। 'ॐ नमो भगवते······ह्रूं फट्'—रात्रि के समय इस मन्त्र का श्मशान में तीन लाख जप करके और चिता की अग्नि में धतूरे की लकड़ी से मधु का हवन करने से शत्रु सदा भ्रान्त सा रहता है और उसे कहीं भी स्थिरता प्राप्त नहीं होती ।१-३।

हेमगैरिकया कृष्णा प्रतिमा हेमसूचिभिः ।
जप्त्वा विध्येच्च तत्कण्ठे हृदि वा म्रियते रिपुः ॥४
'खरवालं चिताभस्म ब्रह्मदण्डी च मर्कटी ।
गृहे वा मूर्ध्नि तच्चूर्णं जप्तमुत्सादकृत्क्षिपेत् ॥
भृग्वाकाशौ सदीप्ताग्निर्भृगुवह्निश्च[2] [3]वह्नि फट् ॥५
एवं सहस्रारे ॥६
ह्रूं फट्, आचक्राय स्वाहा हृदयं विचक्राय शिवः ।
शिखाचक्रायाथ कवचं विचक्रायाथ नेत्रकम् ॥७
सचक्रायास्त्रमुद्दिष्टं ज्वालाचक्राय पूर्ववत् ।
साङ्गं सुदर्शनं क्षुद्रग्रहहृत्सर्वसाधनम् ॥८

सुनहरे गेरू से शत्रु की कृष्ण प्रतिमा का निर्माण करके उसके सम्मुख उपर्युक्त मन्त्र का जप करते हुए प्रतिमा के कण्ठ अथवा हृदय में सोने की सुई से वेधन करनें से शत्रु का नाश होता है। खरबाल, चिताभस्म, ब्रह्मदण्डी, मर्कटी इत्यादि के चूर्ण को उक्त मन्त्र से अभिमंत्रित कर किसी के घर में रख देनें से अथवा उसके मस्तक पर डाल देने से उसका उत्पादन हो जाता है। 'भृग्वाकाशौ' इत्यादि श्लोकार्ध से 'सहस्रारे ह्रूँ फट्' इस मन्त्र का उद्धार होता है। इसका अंगन्यास इस तरह है—'आचक्राय······अस्त्राय फट्'। इसा अंगन्यास के साथ जपा हुआ सुदर्शन चक्र का उक्त मन्त्र क्षुद्र अभिचारों तथ

---

१ ख. ग. °रलालं । २ छ. °गुर्वह्नि° । ३ छ. वर्म ।

ग्रह-बाधाओं को दूर करने वाला और समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाला है। ४-८।

मूर्धाक्षिमुखहृद्गुह्यपादे ह्यस्याक्षरान्न्यसेत्।
चक्राब्जासनमग्न्याभं दंष्ट्रिणं च चतुर्भुजम्॥९
शङ्खचक्रगदापद्मशलाकाङ्कुशपाणिनम्।
चापिनं पिङ्गकेशाक्षमरव्याप्तत्रिविष्टपम्॥१०
नाभिस्तेनाग्निना विद्धा नश्यन्ते व्याधयो ग्रहाः।
पीतं चक्रधरं रक्ता अराः श्याममवान्तरम्॥११
नेमिः श्वेता वहिः कृष्णवर्णरेखा च पार्थिवी।
मध्ये तारमये वर्णानेवं चक्रद्वयं लिखेत्॥१२

मस्तक, नेत्र, मुख, हृदय, गुह्य तथा चरण में क्रमशः इस मन्त्र के छह अक्षरों का न्यास करके तदनन्तर चक्रधारी, कमलासन, अग्निप्रभ, दंष्ट्री, चतुर्भुज तथा शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, शलाका और अंकुश को हाथ में लिए हुये, धनुर्धारी, पीतकेशनेत्रधारी, चक्र के अरों से त्रैलोक्य को व्याप्त कर लेने वाले देवता का स्मरण करना चाहिये। उस चक्र की नाभि अग्नि से विद्ध है। उसका चिन्तन करने से समस्त ग्रहजन्य उत्पात एवं व्याधियाँ समाप्त हो जाती हैं। सम्पूर्ण चक्र पीत वर्ण का है। उसके सुन्दर अरे रक्तवर्ण के हैं। उन अरो का अवान्तर भाग श्याम वर्ण का है। चक्र की नेमि श्वेतवर्ण की है। उसमें वाहर की ओर से कृष्ण वर्ण की पार्थिवी रेखा है। अरों से युक्त जो तारमय (ओंकार से युक्त) मध्यभाग है, उसमें समस्त अकारादि वर्ण हैं। इस प्रकार के दो चक्र अंकित करने चाहिये।९-१२।

आदावानीय कुम्भोदं गोचरे संनिधाय च।
इष्ट्वा सुदर्शनं तत्र याम्ये चक्रे हुनेत्क्रमात्॥१३
आज्यापामार्गसमिधो ह्यक्षतं तिलसर्षपौ।
पायसं गव्यमाज्यं च सहस्राष्टकसंख्यया॥१४

प्रथम चक्र में जल से भरे घट को सामने रख कर सुदर्शन की अर्चना करके दक्षिण-चक्र में घृत, अपामार्ग की टहनी, अक्षत, तिल, सरसों, खीर और दूध इन समस्त वस्तुओ की एक हजार आठ आहुतियाँ देनी चाहिए।१३-१४।

हुतशेषं क्षिपेत्कुम्भे प्रतिद्रव्यं विधानवित् ।
प्रस्थानेन कृतं पिण्डं कुम्भे तस्मिन्निवेशयेत् ॥
विष्ण्वादि सर्व तत्रैव न्यसेत्तत्रैव दक्षिणे ॥१५
नमो विष्णुजनेभ्यः सर्वशान्तिकरेभ्यः प्रतिगृह्णन्तु
शान्तये नमः ॥१६
दद्यादनेन मन्त्रेण हुतशेपाम्भसा वलिम् ।
फलके कल्पिते पात्रे पलाशक्षीरशाखिनः ॥१७
गव्यपूर्णे निवेश्यैव दिक्ष्वेवं होमयेद्द्विजैः ।
सदक्षिणमिदं होमद्वयं भूतादिनाशनम् ॥१८

यज्ञ के विधा को जानने वाले को हवन से शेप वचे हुए प्रत्येकद्रव्य को उसी घट में छोड़ देना चाहिए। तदनन्तर एक प्रस्थ (सेर) अन्न से रचित पिण्ड को भी उसी घट में रख देना चाहिए। विष्णु आदि के लिए देय सामग्री को दक्षिण चक्र में रखना चाहिए। 'नमो विष्णुजनेभ्यः..... .....शान्तये नमः'—मन्त्र को पढ़कर हवन से शेप जल से वलि देनी चाहिए। किसी काष्ठफलक पर अथवा पलाश या किसी दूध वाले वृक्ष की लकड़ी से वने गव्य से भरे पात्र में वलि की वस्तु रखकर प्रत्येक दिशा में अर्पित करने के वाद ब्राह्मणों द्वारा हवन कराना चाहिए। दक्षिणा से युक्त ये दोनों होम भूतादि पीड़ा का नाश कर देते हैं। १५-१८।

गव्याक्तपत्रलिखितैर्लिप्यर्णैः क्षुद्रहृद्घृतम् ।
दूर्वाभिरायुषे पद्मैः श्रिये पुत्रा (त्र) उदुम्वरैः ॥१९
गोसिद्ध्यै सर्पिषा गोष्ठे मेधायै सर्वशाखिना ॥२०
ॐ क्षौं नमो भगवते नारसिंहाय ज्वालामालिने दीप्तदंष्ट्राग्निनेत्राय सर्वरक्षोघ्नाय सर्वभूतविनाशाय सर्वज्वरविनाशाय—दह दह पच पच रक्ष रक्ष ह्रूं फट् ॥२१
मन्त्रोऽयं नारसिंहस्य सकलाघनिवारणः ।
जप्यादिना हरेत्क्षुद्रग्रहमारीविषामयान् ।
चूर्णमण्डूकवयसा जलाग्निस्तम्भकृद्भवेत् ॥२२

गव्य से भीगे हुए पत्र पर लिखित मन्त्राक्षरों से अभिमंत्रित घृत का हवन करने से क्षुद्र ग्रहों द्वारा आयी हुई वाधाएं दूर हो जाती हैं। अभिमंत्रित दूर्वा से आहुति देने पर आयु की वृद्धि होती है। कमलों से आहुति करने

पर लक्ष्मी की बहुलता होती है। गूलर की लकड़ियों से आहुति देने पर पुत्रोत्पत्ति होती है। घृत से हवन करने पर गायों की वृद्धि होती है। समस्त वृक्षों की लकड़ियों से आहुति करने पर मेधा में विलक्षणता आती है। 'ॐ क्षौं......ह्रूँ फट्,—नृसिंह भगवान् का मन्त्र समस्त पापों का निवारण करने वाला है। इसका जप करने से क्षुद्रग्रह, महामारी, विष, रोग, आदि सम्पूर्ण बाधायें नष्ट हो जाती हैं। उपर्युक्त मन्त्र से अभिमंत्रित मण्डूकवयस् का चूर्ण जल और अग्नि का स्तम्भन करने वाला होता है। १९२२।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नारसिंहादिमन्त्रकथनं नाम षडधिकत्रिशततमोऽध्यायः।३०६

अथ सप्ताधिकत्रिशततमोऽध्यायः
त्रैलोक्यमोहनमन्त्रः

अग्निरुवाच—

वक्ष्ये मन्त्रं चतुर्वर्गसिद्ध्यै त्रैलोक्यमोहनम् ॥१
ॐ श्रीं ह्रीं ह्रूँ, ॐ नमः पुरुषोत्तमः पुरुषोत्तमप्रतिरूप—लक्ष्मीनिवास सकलजगत्क्षोभण सर्वस्त्रीहृदयदारण-त्रिभुवनमदोन्मादकर[1] सुरमनुजसुन्दरीजनमनांसि तापय तापय दीपय दीपय शोषय शोषय मारय मारय स्तम्भय स्तम्भय द्रावय द्रावयाऽऽकर्षयाऽऽकर्षय परमसुभग सर्वसौभाग्यकर कामप्रदामुकं हन हन चक्रेण गदया खड्गेन सर्वबाणैर्भिद भिद पाशेन कट कट अङ्कुशेन ताडय ताडय त्वर त्वर किं तिष्ठसि यावत्तावत्समीहितं मे सिद्धं भवति ह्रूँ फट्, नमः ॥२
ॐ पुरुषोत्तम त्रिभुवनमनोन्मादकर ह्रूँ फट्, हृदयाय नमः कर्षय महाबल ह्रूँ फट्, अस्त्राय त्रिभुवनेश्वर सर्वजनमनांसि हन हन दारय दारय मम वशमानयाऽऽनय ह्रूँ फट्, नेत्रत्रयाय त्रैलोक्यमोहन हृषीकेशाप्रतिरूप सर्वस्त्रीहृदयापकर्षण, आगच्छ, आगच्छ नमः ॥३

---

१ ख. च. °र सुरासु°।

सङ्गाक्षिव्यापकेनैव न्यासं मूलवदीरितम् ।
इष्ट्वा संजप्य पञ्चाशत्सहस्रमभिषिच्य च ॥४

अग्निदेव बोले—(अब मैं) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिए त्रैलोक्यमोहन मन्त्र का वर्णन करूँगा। ॐ श्री ह्रीं........आगच्छ आगच्छ नमः' इस प्रकार मूल मन्त्र युक्त व्यापक न्यास बताया गया है। फिर पूजन तथा पचास हजार की संख्या में जप करके अभिषेक करे।१-४।

कुण्डेऽग्नौ दैविके वह्नौ चरुं कृत्वा शतं हुनेत् ।
पृथग्दधि घृतं क्षीरं चरुं साज्यं पयः शृतम् ॥५
द्वादशाऽऽहुतिमू (तीर्मू) लेन सहस्रं चाक्षतांस्तिलान् ।
यवं मधुत्रयं पुष्पं फलं दधि समिच्छतम् ॥६
हुत्वा पूर्णाहुतिं शिष्टं प्राशयेत्सघृतं चरुम् ।
संभोज्य विप्रानाचार्यं तोषयेत्सिद्ध्यते मनुः ॥७

चरु का निर्माण करके कुण्ड की अग्नि तथा दैविक अग्नि में सौ आहुतियां देनी चाहिये। दधि, घृत, दूध, चरु और गर्म दूध-इन द्रव्यों की मूल मन्त्र से बारह-बारह आहुतियाँ तथा अक्षत और तिल की एक सहस्र आहुतियाँ देनी चाहिये। यव, मधुत्रय, पुष्प, फल, दधि और समिधाओं की सौ-सौ बार आहुतियाँ दे। तदनन्तर पूर्णाहुति होम करके हुतावशिष्ट घृत के साथ चरु का प्राशन करे। तदनन्तर ब्राह्मणों को भोजन कराकर और आचार्य को सन्तुष्ट करने पर मन्त्र की सिद्धि होती है। ५-७।

स्नात्वा यथावदाचम्य वाग्यतो यागमन्दिरम् ।
गत्वा पद्मासनं बद्ध्वा शोषयेद्विधिना वपुः ॥८
रक्षोघ्नविघ्नकृद्दिक्षु न्यसेदादौ सुदर्शनम् ।
([1]पञ्चबीजं नाभिमध्यस्थं धूम्रं चण्डानिलात्मकम् ॥९
अशेषं कल्मषं देहाद्विश्लेषयदनुस्मरेत् ।
रंबीजं हृदयाब्जस्थं स्मृत्वा ज्वालाभिरादहेत् ॥१०

विधिवत् स्नान तथा आचमन करके मौन होकर यज्ञशाला में जाकर वहाँ पद्मासन लगाकर नियमानुकूल शरीर को सुखाना चाहिये। सर्व प्रथम

---

१ 'पञ्चबीजं...चण्डानिलात्मकम् च. पुस्तके नास्ति।

राक्षसों तथा विघ्नों के विनाशक सुदर्शन का सब दिशाओं में न्यास करना चाहिये। साथ ही यह भावना करे कि वह सुदर्शन अस्त्र पाँच क्लेशों के बीजभूत, धूम्रवर्ण एवं पचण्ड अनिल रूप मेरे सम्पूर्ण पाप को, जो नाभि में स्थित है, शरीर से अलग कर रहा है। फिर हृदयकमल में स्थित 'रं' बीज का स्मरण करके ऊपर, नीचे तथा अगल-बगल में फैली हुई अग्नि की ज्वालाओं से उस पाप-पुंज को जलाकर भस्म कर दे।९-१०।

ऊर्ध्वाधस्तिर्यगाभिस्तु मूर्ध्नि संप्लावयेद्वपुः।
ध्यात्व ऽमृतैर्बहिश्चान्तः सुषुम्नामार्गगामिभिः ॥११
एवं शुद्धवपुः प्राणानायम्य मनुना त्रिधा।
विन्यसेन्न्यस्तहस्तान्तः शक्तिं मस्तकवक्त्रयोः ॥१२
गुह्ये गले दिक्षु हृदि कुक्षौ देहे च सर्वतः।
आवाह्य ब्रह्मरन्ध्रेण हृत्पद्मे सूर्यमण्डलात् ॥१३
तारेण संपरात्मानं स्मरेत्तं सर्वलक्षणम् ॥१४
त्रैलोक्यमोहनाय विद्महे स्मराय धीमहि।
तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ॥१५
आत्मार्चनात्क्रतुद्रव्यं प्रोक्षयेच्छुद्धपात्रकम्।
कृत्वाऽऽत्मपूजां विधिना स्थण्डिले तं समर्चयेत् ॥१६

फिर मूर्धा अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र में अमृत का चिन्तन करके सुषुम्णा नाडी के मार्ग से आती हुई अमृत चिन्तन करके सुषुम्णा नाडी के मार्ग से आती हुई अमृत की धाराओं से अपने शरीर को बाहर और भीतर से आप्लावित करे। इस प्रकार शुद्ध होकर मूलमन्त्र से तीन बार प्राणायाम करके मस्तक तथा मुख में गुह्य-स्थानों में, गले में दिशाओं में हृदय तथा उदर में, समस्त देह में हाथ रखकर और हृत्कमल में ब्रह्मरन्ध्र द्वारा सूर्यमण्डल से समस्त लक्षण युक्त ब्रह्म का ओंकार से अह्वान करके सर्वतोभावेन उसका स्मरण करना चाहिए। 'त्रैलोक्यमोहनाय.......प्रचोदयात्' इस मन्त्र से परमात्मा की अर्चना के पश्चात् यज्ञ सम्बन्धी द्रव्यों तथा पात्रों का मार्जन करना चाहिए। विधिपूर्वक आत्मपूजा करने के बाद वेदी पर उस ब्रह्म की अर्चना करे।११-१६।

कूर्मादिकल्पिते पीठे पद्मस्थं गरुडोपरि।
सर्वाङ्गसुन्दरं प्राप्तवयोलावण्ययौवनम् ॥१७

मदाघूर्णिततताम्राक्षमुदारं स्मरविह्वलम् ।
दिव्यमाल्याम्बरालेपभूषितं सस्मिताननम् ॥१८
विष्णुं नानाविधानेकपरिवारपरिच्छदम् ।
लोकानुग्रहणं सौम्यं सहस्रादित्यतेजसम् ॥१९
पञ्चवाणधरं प्राप्तकामं (मा) क्षं द्विचतुर्भुजम् ।
देवीस्त्रोभिर्वृतं देवीमुखासक्तेक्षणं जपेत् ॥२०
चक्रं शङ्खं धनुः खड्गं गदां मुसलमङ्कुशम् ।
पाशं च बिभ्रतं चार्चेदावाहादिविसर्गतः ॥२१

कच्छप आदि के रूप में कल्पित पीठ पर पद्मासन पर अथवा गरुड़ के ऊपर स्थित सर्वाङ्ग सुन्दर, वयस्क, सुन्दर युवा, मद्यपान से लाल नेत्रों वाले, उदार, स्मर, पीडित, दिव्यमालाओ, वस्त्रों तथा आलेपों से सुशोभित, मुस्कराते हुए, अनेक परिवारों और सामग्रियों से शोभित, लोकानुग्रहकारी, सौम्य, सहस्रों सूर्य के समान तेजस्वी, पञ्चवाणधारी, समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले, आठ भुजाओ वाले, देवियों से आवृत, उनके मुख की ओर देखते हुए, चक्र, शङ्ख, धनुष, खड्ग, गदा, मुसल, अंकुश तथा पाश को धारण करने वाले त्रैलोक्य-मोहन विष्णु का आवाहन आदि विसर्जन पर्यन्त करे ।१७-२१।

श्रियं वामोरुजङ्घास्थां श्लिष्यन्तीं पाणिना पतिम् ।
साब्जवामकरां पीनां श्रीवत्सकौस्तुभान्विताम् ॥२२
मालिनं पीतवस्त्रं च चक्राद्याढ्यं हरिं यजेत् ॥२३

साथ ही भगवान् की बांयी जांघ पर बैठी हुई अपने हाथ से पति का आलिंगन करने वाली, वाये हाथ मे कमल को धारण करने वाली, हृष्ट-पुष्ट शरीर वाली, श्रीवत्स और कौस्तुभ चिह्न से सुशोभित लक्ष्मी का पूजन करना चाहिये । वनमाला से विभूषित पीताम्बरधारी और चक्रादि से युक्त भगवान् विष्णु का भी पूजन करना चाहिये ।२२-२३।

ॐ सुदर्शन महाचक्रराज धर्मशान्त दुष्टभयङ्कर च्छिद
च्छिद विदारय विदारय परभमन्त्रान्ग्रस ग्रस भक्षय
भक्षय भूतानि [1]चाऽऽशय चाऽऽशय हूं फट्, ॐ जलचराय
स्वाहा खड्गतीक्ष्ण च्छिन्द च्छिन्द खड्गाय नमः
शारङ्गाय सशराय हूं फट् ॥२४

१ ख. त्रासय ।

ॐ भूतग्रामाय विद्महे चतुर्विधाय धीमहि।
तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात् ॥२५
संवर्तक श्वसन पोथय पोथय ह्लूँ फट्, स्वाहा पाश[1]
धम धमाऽऽकर्षयाऽऽकर्षय ह्लूँ फट्, फट्। अंकुशेन कट्ट
ह्लूँ फट् ॥२६
क्रमाद्भुजेषु मन्त्रैः स्वैरेभिरस्त्राणि पूजयेत् ॥२७

'ॐ सुदर्शन......कट्ट हूं फट्' इन मन्त्रों से भगवान की भुजाओं में स्थित आठ अस्त्रों की पूजा करनी चाहिये।२४ २७।

ॐ पक्षिराजाय ह्लूँ फट् ॥२८
तार्क्ष्यं यजेत्कर्णिकायामङ्गदेवान्यथाविधि।
शक्तिरिन्द्रादियन्त्रेषु तार्क्ष्याद्या धृतचामराः ॥२९
शक्तयोऽन्ते प्रयोज्याऽऽदौ सुरेशाद्याश्च दण्डिना।
पीते लक्ष्मीसरस्वत्यौ ([2]रतिप्रीतिजयासिताः ॥३०
कीर्तिकान्त्यौ सिते श्यामे) तुष्टिपुष्ट्यौ स्मरोदिते।
लोके शान्तं यजेद्देवं विष्णुमिष्टार्थसिद्धये ॥३१
ध्यायेन्मन्त्रं जपेद्वैनं जुहुयात्त्वभिषेचयेत् ॥३२

ॐ पक्षिराज ह्लूँ फट्—इस मन्त्र से विधिपूर्वक कर्णिका में गरुड़ तथा अन्यान्य अङ्गदेवताओं की भी पूजा करनी चाहिए। यन्त्रों में शक्ति तथा इन्द्रादि की और चामरादि धारण किये हुए तार्क्ष्य आदि की भी पूजा करनी चाहिए। शक्तियों की पूजा का प्रयोग अन्त में करना चाहिए। पहले देवेश्वर इन्द्र आदि दण्डी सहित पूजनीय हैं। लक्ष्मी और सरस्वती पीतवर्ण की हैं। रति, प्रीति और जया श्वेतवर्ण की हैं। कीर्ति और कान्ति श्वेत वर्ण की हैं। तुष्टि और पुष्टि श्यामवर्ण की हैं। इनमें स्मर-भाव उदित होता है। लोकपाल पर्यन्त देवताओं का पूजन करके अभीष्ट अर्थ की सिद्धि के लिए भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिये। निम्नांकित मन्त्र का ध्यान और जप करके हवन तथा अभिषेक करना चाहिए। २८-३२।

---

१ छ. °श वन्ध वन्धाऽऽक°। २. 'रति प्रीति......श्यामे' ग. पुस्तके नास्ति।

ॐ श्री क्लीं ह्रूँ ह्रूँ त्रैलोक्यमोहनाय विष्णवे नमः ॥३३
एतत्पूजादिना सर्वान्कामानाप्नोति पूर्ववत् ।
तोयैः सम्मोहनीपुष्पैर्नित्यं तेन च तर्पयेत् ॥३४
ब्रह्मा सशक्रश्रीदण्डी वीजं त्रैलोक्यमोहनम् ।
जप्त्वा त्रिलक्षं हुत्वाऽब्जैर्लक्षं विल्वैश्च साज्यके ॥३५
तण्डुलैः फलगन्धाद्यैर्दूर्वाभिस्त्वायुराप्नुयात् ।
जपाभिषेकहोमादिक्रियातुष्टो ह्यभीष्टदः ॥३६

'ॐ श्रीं......विष्णवे नमः'—इस मन्त्र से पूजन करने से मनुष्य समस्त मनोरथों को प्राप्त कर लेता है। उपर्युक्त मन्त्र से अभिमंत्रित धतूरे के पुष्प से युक्त जल से तर्पण करना चाहिये। ब्रह्मा, इन्द्र, लक्ष्मी, दण्डी इन पदों से त्रैलोक्य मोहन बीज का उद्धार होता है। यह बीज मन्त्र तीनों लोकों को मोहित करने वाला है। उपर्युक्त बीज मन्त्र का तीन लक्ष वार जप करके कमल, बेल, घृत, तण्डुल, फल, गन्ध और दूर्वा आदि से हवन करने से दीर्घायु की प्राप्ति होतो है। जप अभिषेक तथा होमादि क्रियाओं द्वारा प्रसन्न हो यह मन्त्र अभीष्ट फल देता है।३३-३६।

ॐ ह्रूं नमो भगवते वराहाय भूर्भुवः स्वः पतये
भूपतित्वं मे देहि [1]दापय स्वाहा ॥३७
पञ्चाङ्गं नित्यमयुतं जप्त्वाऽऽयू राज्यमाप्नुयात् ॥३८

'ॐ ह्रूं ' 'दापय स्वाहा'-इस मन्त्र का पञ्चाङ्ग न्यास पूर्वक नित्य दस हजार जप करने से दीर्घायु और राज्य की प्राप्ति होती है।३७-३८।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये त्रैलोक्यमोहनमन्त्रकथनं नाम
सप्ताधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।३०७

———

१. घ. हृदयाय ।

अथाष्टाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

त्रैलोक्यमोहनीलक्ष्म्यादिपूजा

अग्निरुवाच—

[1]वक्षः सवह्निर्वामाक्षौ दण्डी श्रीः सर्वसिद्धिदा ।
महाश्रिये महासिद्धे महाविद्युत्प्रभे नमः ॥१
([2]श्रिये देवि विजये नमः । गौरि [3]महाबले वन्ध बन्ध नमः ।
हूं महाकाये पद्महस्ते ह्रूं फट्, श्रिये नमः । ह्रूं श्रिये फट्,
श्रिये नमः[4], श्रिये श्रीद नमः) स्वाहा श्री फट् ॥२
अस्याङ्गानि नवोक्तानि तेष्वेकं च समाश्रयेत् ।
त्रिलक्षमेकलक्षं वा जप्त्वाऽक्षाब्जैश्च भूतिदः ॥३
श्रीगेहे विष्णुगेहे वा श्रियं पूज्य धनं लभेत् ।]

वक्ष, वह्नि, वामाक्ष और दण्डी शब्दों से 'श्रीं' वीज का उद्धार होता है । भगवती लक्ष्मी का यह बीजमन्त्र सब सिद्धियों को देने वाला है । 'महाश्रिये' • श्रीफट्' इस मंत्र के नौ अङ्ग वताए गए हैं । उनमें से किसी एक का आश्रय लेना चाहिए । उपर्युक्त मन्त्र का कमलाक्ष से तीन लक्ष अथवा एक लक्ष जप करके बहुविध ऐश्वर्य प्राप्त किया जा सकता है । श्रीभवन अथवा विष्णुभवन में श्री की पूजा करके धन की प्राप्ति की जा सकती है ।१-३½।

आज्याक्तैस्तण्डुलैर्लक्षं जुहुयात्खादिरानले ॥४
राजा वश्यो भवेद्वृद्धिः श्रीश्च स्यादुत्तरोत्तरम् ।
सर्षपाम्भोभिषेकेण नश्यन्ते सकला ग्रहाः ॥५

घृत युक्त चावल से खैर की अग्नि में एक लक्ष आहुतियाँ देने से राजा वश में किया जा सकता है । सर्व-विध वृद्धि होती है तथा उत्तरोत्तर अधिकाधिक लक्ष्मी की प्राप्ति होती है । श्री बीज से अभिमन्त्रित सरसों एवं जल के द्वारा अभिषेक करने से समस्त ग्रह-जन्य पीडा का विनाश हो जाता है ।४-५।

---

१ ग. वलः । २ 'श्रिये' ' 'श्रीद नमः' ग. पुस्तके नास्ति । ३ ख. महावने ।
४ छ. °मः, श्रिये फट् श्रीं नमः, श्रि° ।

बिल्वलक्षहुता लक्ष्मीर्वित्तवृद्धिश्च जायते।
शक्रवेश्म चतुर्द्वारं हृदये चिन्तयेदथ ॥६
वलाकीं वामनां श्यामां श्वेतपंकजधारिणीम्।
ऊर्ध्वबाहुद्वयं (यां) ध्यायेत्क्रीडन्तीं द्वारि पूर्ववत् ॥७
ऊर्ध्वीकृतेन हस्तेन रक्तपंकजधारिणीम्।
श्वेताङ्गीं दक्षिणे द्वारि चिन्तयेद्वनमालिनीम् ॥८
हरितां दोर्द्वयेनोर्ध्वमुद्वहन्तीं सिताम्बुजम्।
ध्यायेद्विभीषिकां नाम श्रीदूतीं द्वारि पश्चिमे ॥६

वेल के द्वारा एक लाख आहुतियाँ देने से सकल ऐश्वर्य की वृद्धि होती है। हृदय में चार द्वार वाले इन्द्रभवन का स्मरण करना चाहिए। उस इन्द्र-भवन के पूर्व द्वार पर ह्रस्व अंगों वाली, श्यामा, श्वेत कमल से सुशोभित, ऊपर की ओर दोनों हाथों को उठाए हुए क्रीडापरायण वलाकी देवी का ध्यान करना चाहिए। दक्षिण द्वार पर ऊपर उठाये हुए हाथ में रक्तकमल को धारण करने वाली श्वेताङ्गी वनमालिनी का चिन्तन एवं ध्यान करना चाहिए। पश्चिम द्वार पर हरितवर्णवाली दोनों हाथों में श्वेत कमल को धारण किए हुए विभीषिका नाम की श्रीदूती का ध्यान करना चाहिए।६-६।

शांकरीमुत्तरे द्वारि तन्मध्येऽष्टदलं कजम्।
वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः ॥१०
ध्येयास्ते पद्मपत्रेषु शङ्खचक्रगदाधराः।
अञ्जनक्षीरकाश्मीरहेमाभास्ते सुवाससः ॥११

उत्तरीय द्वार पर शांकरी देवी का ध्यान करना चाहिए। उस इन्द्र भवन के मध्य में अष्टदल कमल की स्थापना होनी चाहिए। कमल के पत्तों में शङ्ख, चक्र, गदा आदि के धारण करने वाले क्रमशः अञ्जन, दुग्ध, काश्मीर, हेम सदृश कान्तिवाले, सुवस्त्रधारी, वासुदेव, बलभद्र, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध का ध्यान करना चाहिए।१०-११।

आग्नेयादिषु पत्रेषु गुग्गुलुश्च कुरण्टकः।
दमकः सलिलं चेति हस्तिनो रजतप्रभाः ॥१२

---

१ ग. चतुर्वारं।

हेमकुम्भधराश्चैते कर्णिकायां श्रियं स्मरेत् ।
चतुर्भुजां सुवर्णाभां सपद्मोर्ध्वभुजद्वयाम् ॥१३
[1]दक्षिणाभयहस्ताभां वामहस्तवरप्रदाम् ।
श्वेतगन्धांशुकामेकरौप्यमालास्त्रधारिणीम् ॥१४
ध्यात्वा सपरिवारां तामभ्यर्च्य सकलं लभेत् ।
द्रोणाब्जपुष्पं श्रीवृक्षपर्णं मूर्ध्नि न धारयेत् ॥१५

उस अष्टदल कमल के आग्नेय आदि दलों पर क्रमशः गुग्गुलु, कुरण्टक, दमक और सलिल नामक दिग्गजों की भावना करे । रजत के समान श्वेत वर्ण के ये हाथी अपनी सूंड़ में स्वर्ण कलश लिए हुए हैं । कमल की कर्णिका में चतुर्भुजधारिणी, सुवर्णकान्ति, पद्मसहित दो ऊर्ध्वभुजावाली, दक्षिणहस्त से अभयप्रदात्री, वामहस्त से वरदायिनी श्वेत एवं सुगन्धित वस्त्रों से सुसज्जिता, रजतवर्ण की माला तथा अस्त्रों से सुशोभित सपरिवार लक्ष्मी का ध्यान तथा पूजन करने से सभी अभीष्ट प्राप्त किया जा सकता है । द्रोण तथा कमल का पुष्प और श्रीवृक्ष (बेल) का पत्र मस्तक पर नहीं रखना चाहिए ।१२-१५।

लवणामलकं वर्ज्यं नागादित्यतिथौ क्रमात् ।
पायसाशी जपेत्सूक्तं श्रियस्तेनाभिषेचयेत् ॥१६
आवाहादिविसर्गान्तां मूर्ध्नि ध्यात्वार्च्चयेच्छ्रियम् ।
बिल्वाज्याब्जैः पायसेन पृथग्योगः श्रिये भवेत् ॥१७
विषं न हन्ति कालाग्निरर्द्रिज्योतिरिति द्वयम् ॥१८

पञ्चमी और सप्तमी तिथियों को क्रम से नमक और आमला का परित्याग करना चाहिये । खीर का भोजन कर सूक्त का जप करके उसी के द्वारा अभिमन्त्रित जल से लक्ष्मी का अभिषेक करना चाहिए । मस्तक में श्री का ध्यान करके उसकी आवाहन से विसर्जन तक अर्चना करनी चाहिए । बेल, घृत, कमल और खीर के द्वारा एक साथ या अलग-अलग हवन करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है । 'विषम्' इत्यादि श्लोकार्ध से भगवती लक्ष्मी के अष्टाक्षर मन्त्र का उद्धार किया गया है ।१६-१८।

---

१ च. 'क्षिणेऽभयदात्रीं तां वा' ।

ॐ ह्रीं [1]महामहिषमर्दनि ठं ठः, मूलमन्त्रं महिषहिंसिके नमः। महिषशत्रुं भ्रामय, ॐ फ ठ ठं महिषं हेपय हेषय, ॐ ह्रूँ महिषं ह्रेषय ह्रेषय ह्रूँ महिषं हन हन देवि ह्रूँ महिषनिषूदनि फट् दुर्गाहृदयमित्युक्तं साङ्गं सर्वार्थसाधकम्।
यजेद्यथोक्तं तां देवीं पीठे चैवाङ्गमध्यग (गा) म् ॥१९-२०
ॐ ह्रीं दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा चेति दुर्गायै नमः। वरवर्ण्यै नमः। आर्यायै कनकप्रभायै कृत्तिकायै, अभयप्रदायै कन्यकायै स्वरूपायै ॥२१
पत्रस्थाः पूजयेदेता मूर्तीराद्यैः स्वरैः क्रमात् ॥२२
चक्राय शङ्खाय गदायै खड्गाय धनुषे वाणाय ॥२३
अष्टम्याद्यैरिमां दुर्गां लोकेशां तां यजेदिति।
दुर्गायोगः समायुः श्रीस्वामिरक्ताजपादिकृत् ॥२४

'ॐ ह्रीं ... महिषनिषूदनि फट्'—यह मन्त्र दुर्गाहृदय कहा गया है। इस मंत्र का सांग जप करने से समस्त मनोरथों की सिद्धि होती है। दुर्गा देवी का निम्नांकित प्रकार से पीठ एवं अष्टदल कमल पर पूजा करे। 'ॐ ह्रीं दुर्गे ... स्वाहा' दुर्गा के इस मन्त्र से दुर्गा, वरवर्णिनी, आर्या, कनकप्रभा, कृत्तिका, अभयप्रदा, कन्यका और सुरूपा—कमल पत्रों पर स्थित इन सभी देवियों की पूजा क्रमशः इनके आद्य स्वरों से करनी चाहिए। जैसे 'दुं दुर्गायै नमः, वं वरवर्णिन्यै नमः, इत्यादि। इनके साथ चक्र, शंख, गदा, खड्ग, धनुष, बाण, अंकुश और खेट इन अस्त्रों का भी पूजन करे। अष्टमी आदि तिथियों में दुर्गा की लोकपाल पर्यन्त आवरण देवताओं के साथ पूजा होनी चाहिए। दुर्गा की यह उपासना पूर्णआयु, लक्ष्मीप्राप्ति, स्वामी की प्रसन्नता एवं युद्ध में विजय देने वाली है।१९-२४।

संसाध्येशानमन्त्रेण तिलहोमो वशीकरः।
जयः पद्मैस्तु दूर्वाभिः शान्तिकामः पलाशजैः ॥२५
पुष्टिः स्यात्काकपक्षेण मृतिर्द्वेषादिकं भवेत्।
ग्रहक्षुद्रभयापत्तिं सर्वमेव मनुर्हरेत् ॥२६
ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा ॥२७
रक्षाकरीयमुदिता जयदुर्गाङ्गसंयुता।

१ ख. °हाविप°।

श्यामां त्रिलोचनां देवीं ध्यात्वाऽऽत्मानं चतुर्भुजम् ॥२८
शङ्खचक्राब्जशूलासित्रिशूलां रौद्ररूपिणीम् ।

ईशान मंत्र से तिल की आहुति देने से लोग वश में हो सकते हैं। कमलों से हवन करने पर विजय, दूर्वाओं से हवन करने से शान्ति, पलाश के हवन करने से पुष्टि, काकपक्ष से हवन करने से मृत्यु तथा द्वेषादि प्राप्त होते हैं। यह मन्त्र सब प्रकार की ग्रहपीडा तथा क्षुद्रभयों को दूर करने वाला है। 'ॐ'दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा'—इस जयदुर्गा नामक मन्त्र का साङ्ग जप करने से दुर्गा सदा रक्षा किया करती हैं। युद्धादि के समय 'मैं श्यामा, त्रिनेत्रधारिणी, चतुर्भुजा, शङ्ख, चक्र, कमल, शूल, खड्ग तथा त्रिशूल को धारण करने वाली और भयंकर आकृतिवाली देवी हूँ" ऐसा ध्यान करना चाहिए।२५-२८½।

युद्धादौ संजयेदेतां यजेत्खड्गादिके जये ॥२९
ॐ नमो भगवति ज्वालामालिनि गृध्रगणपरिवृते च
[2]रक्षणि स्वाहा ॥३०
युद्धार्थे च जपेन्मन्त्रं शत्रूं जयति योधकः ॥३१

युद्ध के आरम्भ में इस जय दुर्गा मन्त्र का जप करे। विजय के लिए खड्ग आदि पर दुर्गा का पूजन करना चाहिए। 'ॐ' नमो भगवति · · 'स्वाहा'—इस मन्त्र का जप करने से युद्धाभिलाषी योद्धा युद्ध में शत्रुओं को जीत लेता है।२९-३१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये लक्ष्म्यादिपूजावर्णनं नामाष्टाधिक-त्रिशततमोऽध्यायः।३०८

अथ नवाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

त्वरितापूजा

अग्निरुवाच—
त्वरिताज्ञानमाख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥१

अग्निदेव बोले—अब मैं त्वरिता देवी के इस ज्ञान के सम्बन्ध में बतलाऊँगा, जो (इस लोक में) भोग तथा (परलोक में) मोक्ष देने वाला है।१।

---

१ 'ॐ ह्रीं · · 'कवचाय नमः' च. पुस्तके नास्ति। २ ख. 'हे तृष्णावि°।

ओमाधारशक्त्यै नमः । ॐ प्रों पुरु पुरु महासिंहाय नमः, ॐ
पद्माय नमः, (१ॐ ह्रीं ह्लूं खे च च्छे क्षः स्त्रीं ह्लूं क्षें ह्रीं
फट् त्वरितायै नमः । खे च हृदयाय नमः । च च्छे शिरसे
नमः । छे क्षः शिखायै नमः । क्षः स्त्रीं कवचाय नमः,)
स्त्रीं ह्लूं नेत्राय नमः । ह्लूं क्षेमस्त्राय फट्, नमः ॥२
ॐ त्वरिताविद्यां विद्महे२ तूर्णविद्यां च धीमहि ।
तन्नो देवी प्रचोदयात् ॥३
श्री प्रणीतायै नमः. ह्लूं वामायै नमः । ओंकारायै नमः,
ॐ खे च हृदयाय नमः, खेचर्यै नमः, चण्डायै नमः, क्षस्त्री
कवचाय नमः । छेदन्यै नमः क्षेपण्यै नमः स्त्रियै ह्लूंकार्यै
नमः । क्षैमंकर्यै जयायै विजयायै किंकराय रक्ष ।
ॐ त्वरिताज्ञया स्थिरो भव वषट् ॥४

पहले 'ओमाधारशक्त्यै नमः' इस मन्त्र से आधारशक्ति का स्मरण और वन्दन करे । फिर सिंहासन की 'ॐ प्रों पुरु पुरु महासिंहाय नमः' इस मन्त्र से तथा आसन की 'ॐ पद्माय नमः' इस मन्त्र से पूजा करे । तदनन्तर 'ॐ ह्रीं ह्लूं ... त्वरितायै नमः'—इस मूल मन्त्र का उच्चारण करे । इसका अंगन्यास यह है—खे च हृदयाय नमः, च च्छे शिरसे नमः, छे क्षः शिखायै नमः, क्षः स्त्रीं कवचाय नमः, स्त्री ह्लूं नेत्राय नमः, ह्लूं क्षेमस्त्राय फट् नमः । अंगन्यास के बाद इस गायत्री का जप करे । 'ॐ त्वरिताविद्यां विद्महे तूर्णविद्यां च धीमहि । तन्नो देवी प्रचोदयात्' । तदनन्तर 'श्री प्रणीतायै नमः' ... 'स्थिरो भव वषट्' —इत्यादि से प्रणीता आदि देवियों का पूजन करे ।२-४।

तोतला त्वरिता तूर्णेत्येवं विद्येयमीरिता ।
शिरोभ्रूमस्तके कण्ठे हृदि नाभौ च गुह्यके ॥५
ऊर्वोश्च जानुजङ्घोरुद्वये चरणयोः क्रमात् ।
न्यस्ताङ्गो न्यस्तमन्त्रस्तु समस्तं व्यापकं न्यसेत् ॥६

यह विद्या तोतला, त्वरिता, तूर्णा इत्यादि नामों से प्रसिद्ध है । इसके अक्षरों का शिर, भ्रू, मस्तक, कण्ठ, हृदय, नाभि, गुह्य, उरुओं, घुटना, जङ्घा दोनों चरण आदि अवयवों में न्यास करके समस्त विद्या द्वारा व्यापक न्यास करना चाहिए ।५-६।

---

१ 'ओं ह्रीं......कवचाय नमः' च° पुस्तके नास्ति । २. °हे तृष्णावि° ।

पार्वती शबरी चेशा वरदाभयहस्तिका ।
मयूरबलया पिच्छमौलिः किसलयांशुका ॥७
सिंहासनस्था मायूरवर्हच्छत्रसमन्विता ।
त्रिनेत्रा श्यामला देवी वनमालाविभूषणा ॥८
विप्राहिकर्णाभरणा क्षत्रकेयूरभूषणा ।
वैश्यनागकटीबन्धा वृषाहिकृतनूपुरा ॥९
एवं रूपात्मिका भूत्वा तन्मन्त्रं नियुतं जपेत् ।

पार्वती, शबरी, ईशा, वरदा, अभयहस्तिका, मयूरबलया, पिच्छमौलि, किसलयांशुका, सिंहासनस्था, मयूरबर्हच्छत्रसमन्विता त्रिनेत्रा, श्यामला, वनमाला-विभूषणा, विप्राहिकर्णाभरणा, क्षत्रकेयूरभूषणा, वैश्यनागकटीबन्धा, वृषाहि-कृतनूपुरा, नामों से त्वरिता देवी का ध्यान करते हुए साधक स्वयं भी देवी-स्वरूप होकर (उपर्युक्त) मंत्रों का एकलक्ष बार जप करना चाहिए ।७-९$\frac{1}{2}$।

ईशः किरातरूपोऽभूत्पुरा गौरी च तादृशी ॥१०
जपेद्ध्यायेत्पूजयेत्तां सर्वसिद्ध्ये विषादिहृत् ।
अष्टसिंहासने पूज्या दले पूर्वादिके क्रमात् ॥११
अङ्गगायत्री प्रणीता हूंकाराद्या दलाग्रके ।
फट्कारी चाग्रतो देव्याः श्रीबीजेनार्चयेदिमाः ॥१२
लोकेशायुधवर्णास्ताः [1]फट्कारी तु धनुर्धरा ।
जया च विजया द्वाःस्थे पूज्ये [2]सौवर्णपुष्टिके ॥१३
किंकरा बर्वरी मुण्डी लगुडी च तयोर्बहिः ।
इष्ट्वैवं सिद्धये द्रव्यैः कुण्डे योन्याकृतौ हुनेत् ॥१४

प्राचीन काल में श्री शंकर भगवान् ने किरात का तथा गौरी ने भी उसी प्रकार का रूप धारण किया था । सर्वविद्यासिद्धि के हेतु और विष इत्यादि के

---

१ ख. ग. फलकारा ध° । २ च. °र्णयष्टि° । × विप्राहिकर्णभरणा आदि चार विशेषणों का यह अभिप्राय है कि त्वरिता देवी के कानों के आभूषण ब्राह्मण जातीय दो नाग (अनन्त और कुलिक) हैं, क्षत्रिय जातीय दो नाग (वासुकि और शंखपाल) उनके बाजूबन्द हैं । वैश्य जातीय दो नाग (तक्षक और महापद्म) कटि प्रदेश की किंकिणी बने हैं और शूद्रजातीय दो सर्प पद्म तथा कर्कोटक) देवी के चरणों के नूपुर बने हैं ।

निवारणार्थ गौरी का जप, ध्यान और पूजन करना चाहिए। अष्टसिंहासन पर पूर्वादिक दल में निम्नांकित देवियों की पूजा करनी चाहिए। हृदयादि छह अंगों सहित प्रणीता और गायत्री का पूजन करे। पूर्वादि दलों में हूंकारी आदि की पूजा करे। दलाग्रभाग में देवी त्वरिता के सम्मुख फट्कारी की पूजा करे। इन सब देवियों के नाम मन्त्र के साथ 'श्री' वीज लगाकर उसी से इनकी पूजा करनी चाहिए। हूंकारी आदि के आयुव और वर्ण उस उस दिशा के दिक्कालों के ही समान है परन्तु फट्कारी धनुर्धरा है। द्वार पर सोने की छड़ी हाथ में लिये जया और विजया देवियों की पूजा करनी चाहिए। किंकरा, वर्वरी, मुण्डी, लगुडी इन देवियों की पूजा वाहर करनी चाहिए। इस प्रकार सिद्धि के लिए पूजा करके योनि के सदृश वने हुए कुण्ड में द्रव्यों से आहुति करनी चाहिए।१०-१४।

हेमलाभोऽर्जुनैर्धान्यैर्गोधूमैः पुष्टिसंपदः ।
यवैर्धान्यैस्तिलैः सर्वसिद्धिरीतिविनाशनम् ॥१५
अक्षैरुन्मत्तता शत्रोः शालमलीभिश्च मारणम् ।
जम्बूभिर्धनधान्याप्तिस्तुष्टिर्नीलोत्पलैरपि ॥१६
रक्तोत्पलैर्महापुष्टिः कन्दपुष्पैर्महोदयः ।
मल्लिकाभिः पुरक्षोभः कुमुदैर्जनवल्लभः ॥१७
अशोकैः पुत्रलाभः स्यात्पाटलाभिः शुभाङ्गना ।
आम्रैरायुस्तिलैर्लक्ष्मीर्विल्वैः श्रीश्चम्पकैर्धनम् ॥१८
इष्टं मधुकपुष्पैश्च विल्वैः सर्वज्ञतां लभेत् ॥

अर्जुन पुष्पों से आहुति करने से सुवर्ण की प्राप्ति होती है, गोधूमादि धान्य की आहुति करने से शारीरिक पुष्टि होती है। यव धान्य (चावल) तथा तिल की आहुति करने से सर्वसिद्धि की प्राप्ति तथा ईतियों (अतिवृष्टि आदि) का विनाश होता है। अक्षों (वहेड़ों) की आहुति से शत्रु उन्मत्त हो जाता है। शालमली की लकड़ियों से आहुति करने से शत्रु की मृत्यु हो जाती है। जामुन के द्वारा आहुति से संतोष की प्राप्ति होती है। रक्त कमल की आहुति से महापुष्टि और कुन्दपुष्प की आहुति से महान् अभ्युदय होता है। मल्लिका पुष्प की आहुति से नगर में क्षोभ तथा कुमुद पुष्पों के द्वारा आहुति करने पर जनप्रियता प्राप्त होती है। अशोक पत्रों से आहुति करने पर इष्टवस्तु और वेल की आहुति से सर्वज्ञता की प्राप्ति होती है। १५-१८½

त्रिलक्षजप्यात्सर्वाप्तिर्होमाद्ध्यानात्तथेज्यया ॥१९
मण्डलेऽभ्यर्च्य गायत्र्या आहुतीः पञ्चविंशतिम् ।
दद्याच्छतत्रयं [1]मूलात्पल्लवैर्दीक्षितो भवेत् ॥
पञ्चगव्यं पुरा पीत्वा चरुकं प्राशयेत्सदा ॥२०

(उपर्युक्त मन्त्र का) तीन लाख बार जप, होम, ध्यान तथा पूजन से सब प्रकार की प्राप्ति होती है। मण्डल में अर्चना करके त्वरिता गायत्री की पचीस आहुतियाँ देनी चाहिए। तत्पश्चात् मूलमन्त्र से पल्लवों की तीन सौ आहुतियाँ देनी चाहिए। इससे व्यक्ति दीक्षित हो जाता है। पहले पञ्चगव्य का प्राशन करके तत्पश्चात् चरु का भक्षण करना चाहिए। १९-२०।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये त्वरितापूजाविधिकथनं नाम नवाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३०९

अथ दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

त्वरितामन्त्रादि

अग्निरुवाच—

अपरां त्वरिताविद्यां वक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्तिदाम् ।
पुरे वज्राकुले देवीं राजोभिर्लिखिते यजेत् ॥१
पद्मगर्भे दिग्विदिक्षु चाष्टौ वज्राणि वीथिकाम् ।
द्वारशोभोपशोभां च लिखेच्छीघ्रां स्मरेन्नरः ॥२
अष्टादशभुजां सिंहे वामजङ्घा प्रतिष्ठिता ।
दक्षिणा द्विगुणा तस्याः पादपीठे समीप्सिता ॥३

अग्निदेव बोले - अब मैं भुक्ति मुक्ति को देने वाली दूसरी त्वरिता विद्या (अर्थात् त्वरिता के मन्त्र आदि) के सम्बन्ध में बताऊँगा। धूलि-से निर्मित वज्रचिह्न से आवृत, चौकोर मण्डल में त्वरिता देवी की पूजा करे। उस मण्डल के भीतर योग पीठ पर कमल-निर्माण होना चाहिये। इस मण्डल की

---

१ क. ख. ग. °लात्पूर्णावै ।

दिशाओं और विदिशाओं में आठ वज्र, वीथिका (गली), द्वारशोभा तथा उपशोभा का उल्लेख करके मनुष्य को त्वरिता देवी का ध्यान इस प्रकार से करना चाहिये कि—'देवी की अट्ठारह भुजाएं हैं उनकी वांयी जङ्घा सिंह के ऊपर स्थित है। उनकी दाहिनी जङ्घा उससे दूनी वड़ी आकृति में पादपीठ पर अवस्थित है। १-३।

नागभूषां वज्रदण्डे खड्गं चक्रं गदां क्रमात्।
शूलं शरं तथा शक्तिं वरदं दक्षिणैः करैः ॥४
धनुः पाशं शरं घण्टां तर्जनीं शङ्खमंकुशम्।
अभयं च तथा वज्रं वामपार्श्वे धृतायुधम् ॥५
पूजनाच्छत्रुनाशः स्याद्राष्ट्रं जयति लीलया।
[1]दीर्घायू राष्ट्रभूतिः स्याद्दिव्यादिव्यादिसिद्धिभाक् ॥६

वे नागमय आभूषणों से सुशोभित हैं। वे दायें भाग के हाथों में क्रमशः वज्र, दण्ड, खड्ग, चक्र, गदा, शूल, बाण, शक्ति तथा वरद मुद्रा धारण करती है और अपने वांयें हाथों में धनुष, पाश, शर, घण्टा, तर्जनी, शङ्ख, अंकुश, अभय मुद्रा तथा वज्र नामक आयुध धारण किये हुई है। उनकी पूजा करने से शत्रुओं का नाश होता है। तथा दूसरे राष्ट्र पर सरलता से अधिकार हो जाता है। (इतना ही नहीं) दीर्घ आयु, राष्ट्र विभूति और दिव्यादिव्य सब प्रकार की सिद्धियाँ भी प्राप्त हो जाती हैं।४-६।

तलेतिसप्तपातालाः कालाग्निभुवनान्तकाः।
ओंकारादीश्वरा (शमा (?) रभ्य यावद्ब्रह्माण्डवाचकम्[2] ॥७
तकाराद्भ्रामयेत्तोयं तोतला त्वरिता ततः।
[3]प्रस्तावं संप्रवक्ष्यामि स्वरवर्गं लिखेद्भुवि ॥८

तल शब्द से कालाग्निभुवन पर्यन्त सात पाताल अभिप्रेत है। ओंकार शब्द ईश्वर से लेकर पूरे ब्रह्माण्ड का वाचक है। इस प्रकार शिव से लेकर कालाग्निरुद्र पर्यन्त सभी भुवनों की त्वरिता आद्य कारण है। यही देवी सृष्टि के प्रारम्भ में जल में तीव्र गति पैदा करती है। अतएव त्वरिता देवी को तोतला कहा गया है। अब मैं उनके पूजन के लिए वर्णो का प्रस्तार बतला रहा हूँ। पहले भूमि पर स्वर वर्ग का उल्लेख करना चाहिए ।७-८।

---

१ ख. °र्घायुराप्तभू°। २ घ. ङ. °मओ° का°। ३ ख. ग. ङ. प्रस्तार°

तालुवर्गः कवर्गः स्यात्तृतीयो जिह्वतालुकः ।
चतुर्थस्तालुजिह्वाग्रो जिह्वादन्तस्तु पञ्चमः ॥९
षष्ठोऽष्टपुटसम्पन्नो मिश्रवर्गस्तु सप्तमः ।
ऊष्माणः स्याच्छवर्गस्तु उद्धरेच्च मनुं ततः ॥१०
षष्ठस्वरसमारूढमूष्मणान्तं सबिन्दुकम् ।
तालुवर्गं द्वितीयं तु स्वरैकादशयोजितम् ॥११
जिह्वातालुसमायोगे प्रथमं केवलं भवेत् ।
तदेव च द्वितीयं तु अधस्तात्पुनरेव तु ॥१२

तदनन्तर तालु वर्ग क वर्ग का, ततः तीसरे जिह्वा तथा तालु से सम्बन्ध रखने वाले च वर्ग का, चौथा तालु एवं जिह्वा के अग्रभाग से सम्बन्ध रखने वाला ट वर्ग, पाँचवाँ जिह्वा तथा दाँतों से सम्बन्ध रखने वाला त वर्ग, छठा ओष्ठपुट से सम्बद्ध प वर्ग, सातवां मिश्र वर्ग तथा आठवाँ सोष्म श वर्ग— इनका क्रमशः उल्लेख करना चाहिए। इसके बाद त्वरिता मन्त्र का उद्धार करना चाहिए। मन्त्र का उद्धार इस प्रकार होता है कि षष्ठ स्वर अकार पर आरूढ, बिन्दु सहित ऊष्म वर्ग का अन्तिम अक्षर होना चाहिये (हूँ)। तदनन्तर एकादश स्वर से युक्त तालु वर्ग का द्वितीय अक्षर (खे) और जिह्वा तथा तालु के संयोग से उत्पन्न प्रथम वर्ण [1](च) और उसके बाद उसी के द्वितीय वर्ण (छ) का प्रयोग करना चाहिए।९ १२।

([1]एकादशस्वरैर्युक्तं प्रथमं तालुवर्गतः ।
ऊष्मणश्च द्वितीयं तु अधस्ताद्दृश्य (?) योजयेत् ॥१३
षोडशस्वरसंयुक्तमूष्मणश्च द्वितीयकम् ।
जिह्वादन्तसमायोगे प्रथमं योजयेदधः ॥१४
मिश्रवर्गाद्द्वितीयं तु अधस्तात्पुनरेव तु ।
चतुर्थस्वरसंभिन्नं तालुवर्गादिसंयुतम् ॥)१५

वह एकादश स्वर से युक्त हो (च्छे) तालु वर्ग के प्रथम तथा द्वितीय सोष्मवर्ण को बाद में प्रयुक्त करना चाहिये और उसे सोलहवें स्वर से युक्त कर दे (क्षः) द्वितीय ऊष्मा और जिह्वा तथा दन्त के संयोग से उत्पन्न होने वाले प्रथम अक्षर (त) का प्रयोग करना चाहिए। मिश्रवर्ग के द्वितीय वर्ण

1 एकादशस्वरैर्युक्तं······संयुतम् च. छ. पुस्तकातिरिक्तपुस्तकेषु नास्ति ।

(र) तथा चतुर्थ स्वर (ई) से युक्त हो। तालु वर्ग के आदि अक्षर (क) का भी प्रयोग करना चाहिये। १३-१५।

ऊष्मगणश्च द्वितीयं तु अधस्ताद्विनियोजयेत्।
स्वरैकादशभिन्नं तु ऊष्मणान्तं सबिन्दुकम् ॥१६
पञ्चस्वरसमारूढं षष्ठं सम्पुटयोगतः।
द्वितीयमक्षरं चान्यजिह्वाग्रे तालुयोगतः ॥१७
प्रथमं पञ्चमे योज्यं स्वरार्धेनोद्धृता इमे।
ओंकाराद्या नमोन्ताश्च जपेत्स्वाहाग्निकार्यके ॥१८

इसको द्वितीय ऊष्मा के साथ आदि एकादश स्वर से युक्त करे (क्षे)। इसके बाद बिन्दु और ऊष्मा वर्ग के अन्तिम अक्षर (ह) का प्रयोग करना चाहिए। जो कि पाँचवें अक्षर (उ) पर आरूढ़ हो (हुं)। ओष्ठ पुट संयोग से दूसरा अक्षर (फ्) और जिह्वाग्र में तालु के योग से उत्पन्न होने वाले द्वितीय वर्ण (ठ) में पाँचवें वर्ण (ण) और छठे स्वरों का संयोग करना चाहिये। स्वरार्ध के साथ प्रथम वर्ण की योजना करनी चाहिए। इनके आदि में ओंकार और अन्त में नमः जोड़ने पर जो मन्त्र बने, उसका तो जप करे, किन्तु अग्नि कार्य (हवन) में नमः को हटाकर 'स्वाहा, जोड़ देना चाहिए। पूरे सन्दर्भ का तात्पर्य यह है कि 'ॐ हूं खे च्छे क्षः स्त्री क्षे हुँ फट् नमः यह मन्त्र जप कहा है और ॐ हूं खे च्छे क्षः स्त्री क्षे हुँ फट् स्वाहा यह हवनोपयोगी मन्त्र है। १६-१८

ॐ ह्ली ह्लूं ह्रुः, हृदयं हां हश्चेति शिरः।
शिखां ह्रीं ज्वल ज्वल शिखा स्यात्कवचं हुलु हुलु द्वयम् ॥१९
ह्ली श्रीं क्षूं नेत्रत्रयाय विद्यानेत्रं प्रकीर्तितम्।
क्षौं हः खौं ह्लूं फडस्त्राय गुह्याङ्गानि पुरा न्यसेत् ॥२०
त्वरिताङ्गानि वक्ष्यामि विद्याङ्गानि शृणुष्व मे।
आदिद्विहृदयं प्रोक्तं त्रिचतुः शिर इष्यते ॥२१
पञ्चषष्ठः शिला प्रोक्तं कवचं सप्तमाष्टमात्।
तारकं तु भवेन्नेत्रं नवार्धाक्षरलक्षणम् ॥२२

इसका अंगन्यास इस प्रकार है—'ॐह्ली ह्लूँ ह्लः हृदयाय नमः, हां हः शिरसे स्वाहा, ह्ली ज्वलज्वल शिखायै वषट् हनु हनु (अथवा हुलु हुलु) कवचाय हुम्, ह्लीं श्री क्षूं नेत्रत्रयाय वौषट्। न वां (फ) और आधा अक्षर (ट्) रूप जो तोतला

त्वरिता विद्या है, उसी को देवी का नेत्र कहा गया है। 'क्षौं हः खौं ह्लूं फट् अस्त्राय फट्,' ये गुह्य अंग मन्त्र हैं। इनका पहले न्यास करना चाहिए। त्वरिता के अंगों का वर्णन आगे चलकर करूँगा। अभी त्वरिता विद्या के अंगों का वर्णन मुझसे सुनो। प्रथम दो बीजाक्षर हृदय हैं। तीसरा और चौथा ये दो अक्षर शिर हैं, पाँचवा अथवा छठा शिखा के लिए प्रयुक्त है, सातवाँ और आठवाँ कवच मन्त्र है और नवाँ तथा आधा अक्षर (फट्) नेत्र मन्त्र कहा गया है (प्रयोग—ॐ हूं हृदयाय नमः, खे च्छे शिरसे स्वाहा, क्षःस्त्री शिखायै वषट्, क्षे हुम् कवचाय हुम्, फट् नेत्रत्रयाय वौषट् ।१६-२२।

तोतलेति समाख्याता वज्रतुण्डे ततो भवेत् ।
ख ख ह्लूं दशवीजा स्याद्वज्रतुण्डेन्द्रदूतिका ।।२३
खेचरी ज्वालिनी ज्वाले खखेति ज्वालिनी दश ।
वर्धशबरी भीषणी खखेति च शबर्यपि ।।२४
छे छेदनि करालिनि खखेति ह कराल्यपि ।
क्षः श्रवज्रवप्लवङ्गी ख ख दूती प्लवङ्ग्यपि ।।२५

'तोतले वज्रतुण्डे ख ख ह्लूं', इन दस अक्षरों से युक्त 'वज्रतुण्डिका' नामक 'इन्द्रदूतिका विद्या है। 'खेचरि ज्वालिनि ज्वाले ख ख' इन दस अक्षरों से युक्त 'ज्वालिनी विद्या' है। 'वर्चे शरविभीषणी ख ख' यह दशाक्षरा 'शबरी विद्या' है। 'छे छेदनि करालिनि ख ख' यह दशाक्षरा 'कराली' विद्या है। 'क्षः श्रव द्रव प्लवङ्गि ख ख' यह दशाक्षरा 'प्लवंगदूती विद्या' है ।२३-२५।

([1] स्त्रीवले कलिधुनिनि शासी श्वसनवेगिका ।
क्षेपक्षो कपिले हंस कपिला नाम दूतिका) ।।२६
ह्लूं तेजोवती रौद्री च मातङ्गी रौद्रिदूतिका ।
पुटे पुटे ख ख खड्गे फड्ब्रह्मकदूतिका (?) ।।२७
वैतालिनि दशार्णाः स्युस्त्यजान्यहिपलालवत् ।
हृदादिकल्पसादौ स्यान्मध्ये नेत्रं न्यसेत्सुधीः ।।२८

'स्त्रीवलं कलिधुननि शासी' यह दशाक्षरा 'श्वसनवेगिका' विद्या है।

---

१ 'स्त्रीवले.......दूतिका' ग. पुस्तके नास्ति ।

'क्षे पक्षे कपिले हस हस' यह दशाक्षरा कपिलदूतिका विद्या है। 'हूं तेजोवलि रौद्रि मातङ्गि' यह दशाक्षरा रौद्री दूतिका विद्या है। 'पुटे पुटे ख ख खड्गे फट्' यह दशाक्षरा ब्रह्मदूतिका विद्या है। वैतालिनि विद्या भी दशावर्ण की होती है। अन्य विस्तार की सारहीन बातों को पुआल की भाँति छोड़ देना चाहिए। हृदयादि न्यास में नेत्रन्यास का स्थान मध्य में है। २६-२८।

पादादारभ्य मूर्धान्तं शिर आरभ्य पादयोः।
अङ्घ्रिजानूरुगुह्ये च नाभिहृत्कण्ठदेशतः[1] ।।२९
वक्त्रमण्डलमूर्ध्वं च अधोर्ध्वं चाऽऽदिवीजतः।
सोमरूपं ततोऽकारं धारामूलसुवासिनम्[2] ।।३०
विशन्तं ब्रह्मरन्ध्रेण साधकस्तु विचिन्तयेत्।
मूर्धास्यकण्ठहृन्नाभौ गुह्योरुजानुपादयोः ।।३१
आदिबीजं न्यसेन्मन्त्री तर्जन्यादि पुनः पुनः।
ऊर्ध्वं सोममधः पद्मं शरीरं बीजविग्रहम् ।।३२
यो जानाति न मृत्युः स्यात्तस्य न व्याधयो जपात्।
यजेज्जपेत्तां विन्यस्य ध्यायेद्देवीं शताष्टकम् ।।३३

चरणों से लेकर शिर तक और शिर से लेकर चरणों तक—पाद, जानु, उरु, गुह्य, नाभि, हृदय, कण्ठ, मुख मण्डल पर्यन्त ऊपर नीचे सब स्थानों में आदि बीज मंत्र से निर्गत 'अकार' का ध्यान करना चाहिए। साधक को सोचना चाहिए कि यह अकार अमृत की धारा एवं सुवास से परिपूर्ण है, ब्रह्मरन्ध्र से मुझमें प्रवेश कर रहा है। तत्पश्चात् मस्तक, मुख, कण्ठ, हृदय नाभि, गुह्याङ्ग, उरु, जानु तथा चरणों में तथा तर्जनी आदि मे बार-बार आदि बीज मन्त्र का न्यास करना चाहिए। बीजविग्रह शरीर के ऊर्ध्वभाग में सोम है और अधोभाग में पद्म है—जिसे ऐसा ज्ञान हो जाता है, उसकी मृत्यु नहीं होती तथा न्यास एवम् देवी का ध्यान करके इस मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करने से सभी व्याधियाँ दूर हो जाती हैं।२९-३३।

मुद्रा वक्ष्ये प्रणीताद्याः प्रणीताः पञ्चधा स्मृताः।
ग्रथितौ तु करौ कृत्वा मध्येऽङ्गुष्ठौ निपातयेत् ।।३४

---

१ ख 'दि देशतः। २ ङ. 'सुकर्षिणाम्।

तर्जनीं मूर्ध्नि संलग्नां विन्यसेत्तां शिरोपरि ।
प्रणीतेयं समाख्याता हृद्देशे तां समानयेत् ।।३५
ऊर्ध्वं तु कन्यसामध्ये सबीजां तां विदुर्द्विजाः ।
नियोज्य तर्जनीमध्येऽनेकलग्नां परस्परम् ।।३६
ज्येष्ठाग्रं निक्षिपेन्मध्ये भेदनी सा प्रकीर्तिता ।।

अब मैं प्रणीता आदि मुद्राओं को बतलाऊँगा । प्रणीता पाँच प्रकार की कही गई है । प्रणीता, सबीजा, भेदनी, कराली और वज्रतुण्डा । हाथों को जोड़कर बीच में अंगूठे को रखकर फिर तर्जनी को ऊपर से लगाकर शिर पर उसका न्यास करे । इस मुद्रा को 'प्रणीता' कहा जाता है । उसे हृदयदेश में लगाना चाहिए । तर्जनी को ऊपर उठाकर कनिष्ठा को मध्य में रखने से 'सबीजा' मुद्रा होती है, ऐसा द्विजगण मानते हैं । मध्य में अनेक अंगुलियों के साथ मिली हुई तर्जनी को रखकर अंगूठे के स्पर्श से बनी हुयी मुद्रा 'भेदनी' कहलाती है ।३४-३६३।

नाभिदेशे तु तां बद्ध्वा अङ्गुष्ठाम्बु क्षिपेत्ततः ।।
कराली तु महामुद्रा हृदये योज्य मन्त्रिणः ।
पुनस्तु पूर्ववद्ब्रह्मलग्नां ज्येष्ठां समुत्क्षिपेत् ।।३८
वज्रतुण्डा समाख्याता वज्रदेशे तु वन्धयेत् ।
उभाभ्यां चैव हस्ताभ्यां मणिबन्धंतु बन्धयेत् ।।३९
त्रीणि त्रीणि प्रसार्येति वज्रमुद्रा प्रकीर्तिता ।
दण्डः खड्गं चक्रगदा मुद्रा चाऽऽकारतः स्मृता ।।४०

नाभिदेश में उस मुद्रा को बाँधकर वहाँ से अंगूठे के द्वारा जल निक्षेप करने से 'कराली' नामक महामुद्रा बन जाती है । उसको हृदय से लगाकर फिर पहिले की तरह ब्रह्मलग्न अंगूठे को ऊपर की ओर उठाना चाहिए । इसका नाम 'वज्रतुण्डा, मुद्रा है । इसे वज्रदेश में बाँधना चाहिए । तीन-तीन अंगुलियों को फैलाकर दोनों हाथों से मणिबन्ध को बाँधने से 'वज्रमुद्रा' बनती है । दण्ड, खड्ग गदा तथा मुद्रा—ये सब मुद्रायें अपने अपने आकार की कही गई हैं ।३७-४०।

अङ्गुष्ठेनाऽऽक्रामेत्त्रीणि त्रिशूलं चोर्ध्वतो भवेत् ।
एका तु मध्यमोर्ध्वा तु शक्तिरेव विधीयते ।।४१

शरं च वरदं चापं पाशं भारं च घण्टया ।
शङ्खमङ्कुशमभयं पद्‌ममष्ट च विंशतिः ।।४२ ।
ग्रहणी मोक्षणी चैव ज्वालिनी चामृताऽभया ।
प्रणीताः पञ्च मुद्रास्तु पूजाहोमे च योजयेत् ।।४३

अंगूठे मे तीन अंगुलियों को आक्रान्त करके उनको ऊपर उठावे तो यह त्रिशूल मुद्रा कहलाती है । एक मात्र मध्यमा ऊपर उठी हो तो शक्ति मुद्रा होती है । शर, वरद, चाप, पाश, भार, घण्टा, शंख, अंकुश, अभय तथा पद्म को मिलाकर अट्ठाइस मुद्रायें होती हैं । ग्रहणी, मोक्षणी, ज्वालिनी अमृता तथा अभया नामक पाँच प्रणीता मुद्राओं का प्रयोग पूजन और हवन काल में करना जाहिए ।४१-४३।

इत्यादि महापुराण आग्नेये त्वरितमन्त्रादिकथनं नाम दशाधिक-त्रिशततमोऽध्यायः ।३१०

अथैकादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

त्वरितामूलमन्त्रादि

अग्निरुवाच—

दीक्षादि वक्ष्ये विन्यस्य सिंहवज्राकुलेऽब्जके ।।१
त्तु त्तु हेति वज्रदेति पुरु पुरु लुलु लुलु गर्ज गर्ज-
ह ह सिंहाय नमः ।।२
तिर्यगूर्ध्वगता रेखाश्चत्वारश्चतुरो भवेत् ।
नवभागविभागेन कोष्ठकान्कारयेद्‌बुधः ।।३
ग्राह्या दिशागताः कोष्ठा विदिशासु विनाशयेत् ।
वाह्या वै कोष्ठकोणेषु बाह्यरेखाष्टकं स्मृतम् ।। ४

अग्निदेव बोले—अब मैं त्वरिता की दीक्षा आदि के विषय में बतलाऊँगा । सिंह वज्र, तथा पद्म के रेखाचित्रों से पूर्ण स्थान में 'त्तु त्तु हेति वज्रदेति पुरु.......सिंहाय नमः'—इस मन्त्र से अंगन्यास करके विद्वान् साधक को तिरछी तथा ऊपर की ओर गई हुई चार-चार रेखायें खीचनी चाहिए । उसके बाद

नव भागों में विभक्त कोणों का निर्माण करना चाहिए। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि दिशाओं में बनाये गये कोष्ठ शुभकारक होते हैं और विदिशाओं के नाशकारक, फिर कोष्ठ के कोणों से बाहर—आठ बाह्य रेखायें खींचनी चाहिए।१-४।

बाह्यकोष्ठस्य बाह्ये तु मध्ये यावत्समानयेत्।
वज्रस्य मध्यमं शृङ्गं बाह्यरेखा द्विधार्धतः ॥५
बाह्यरेखा भवेद्वक्रा द्विभंगा कारयेद्बुधः।
मध्यकोष्ठं भवेत्पद्मं पीतकर्णिकमुज्ज्वलम् ॥६
कृष्णेन रजसाऽऽलिख्य कुलिशाशिस (सिश) रार्धता[1]
बाह्यतश्चतुरस्रं तु[2] वज्रसंपुटलाञ्छितम् ॥७
द्वारे प्रदापयेन्मन्त्री चतुरो वज्रसंपुटान्।
([3]पद्मनाभ भवेद्वामवीथी चैव समा भवेत्।
गर्भं रक्तं केसराणि मण्डले दीक्षिताः स्त्रियः।
यजेच्च परराष्ट्राणि क्षिप्रं राज्यमवाप्नुयात् ॥९

ये रेखायें बाह्य कोष्ठ के बाहर तथा मध्य पर्यन्त आनी चाहिए। वज्र के चित्रों के मध्य में शृंग का चित्र बनाना चाहिए। बाह्य रेखा को मध्य भाग से दो खण्ड कर देना चाहिए। बाह्य रेखा टेढ़ी होनी चाहिए। उसे विद्वान् साधक को दो स्थानों पर काट देना चाहिए। कोष्ठ के मध्य में पीली कर्णिका वाले श्वेत कमल की रचना करनी चाहिए। फिर कृष्णरज से वज्र, खड्ग तथा शर का चित्र बनाकर बाहर की ओर वज्र के चिह्न से चिह्नित चतुरस्र का निर्माण करना चाहिए। द्वार पर चार वज्र सम्पुटों का निर्माण करना चाहिए। उपर्युक्त प्रकार से बने हुए मण्डल के केन्द्र बिन्दु को रक्त-वर्ण के पराग से चिह्नित करना चाहिए। इस प्रकार के बने हुए मण्डल से स्त्रियों को भी दीक्षित किया जा सकता है। यदि कोई राजा इस प्रकार से दीक्षा लेता है तो वह दूसरों के राज्यों पर विजय प्राप्त कर लेता है और अपने भी खोये हुए राज्य पुनः प्राप्त कर लेता है।५-९।

---

१ ग. °तवर्णीवसज्जव°। २ ग. तु °चन्द्रसं°। ३ 'पद्मनाभ……राज्य-मवाप्नुयात्' च. पुस्तके नास्ति।

मूर्तिं प्रणवसंदीप्तां हूंकारेण नियोजयेत् ।
मूलविद्यां समुच्चार्य मरुद्व्योमगतां द्विज ॥१०
प्रथमेन पुनश्चैव कर्णिकायां प्रपूजयेत् ।
एवं प्रदक्षिणं पूज्य एकैकं बीजमादितः ॥११
दलमध्ये तु विद्यां गामाग्नेय्यां पञ्च नैर्ऋतम् ।
मध्ये नेत्रं दिशास्त्रं च गुह्यकाङ्गे तु रक्षणम् ॥१२
हुतयः केशरस्थास्तु वामदक्षिणपार्श्वतः ।
पञ्च पञ्च प्रपूज्यास्तु स्वैः स्वैर्मन्त्रैः प्रपूजयेत् ॥१३

अये द्विज ! तत्पश्चात् साधक को वायु और आकाश के बीज (यं हं) से व्याप्त मूल विद्या का उच्चारण करते हुए उसकी प्रणव (ओंकार) से प्रकाशित मूर्ति को 'हूं'कार के साथ स्थापित करना चाहिए । फिर कर्णिका के ऊपर प्रथम मंत्र से पूजा करके प्रदक्षिणा करनी चाहिए । इस प्रकार आदि से एक-एक बीजमंत्र से दल के बीच में विद्या तथा गौ की पूजा करके आग्नेय एवं नैर्ऋत्य कोणों मे पांच अङ्ग देवताओं का पूजन करना चाहिए उसके बाद मध्य में नेत्र की तथा सम्पूर्ण दिशाओं में अस्त्र की पूजा करनी चाहिए । गुह्याङ्ग में रक्षा की तथा वाम-दक्षिण पार्श्व में केसरों के ऊपर विद्यमान पाँच-पाँच हुतियों की अपने-अपने मन्त्रों से अर्चना करनी चाहिए ।१०-१३।

लोकपालान्न्यसेदष्टौ बाह्यतो गर्भमण्डले ।
वर्णान्तमग्निमारूढं षष्ठस्वरविभेदितम् ।१४
पञ्चदशेन चाऽऽक्रान्तं स्वैः स्वैर्नामभियोजयेत् ।
शीघ्रं सिंहे कर्णिकायां यजेद्गन्धादिभिः श्रिये ॥१५
अष्टाभिर्वेष्टयेत्कुम्भैर्मन्त्राष्टशतमन्त्रितैः ।
मन्त्रमष्टसहस्रं तु जप्त्वाऽङ्गानां दशांशकम् ॥१६
होमं कुर्यादग्निकुण्डे वह्निमन्त्रेण चालयेत् ।
निक्षिपेद्धृदयेनाग्निं शक्तिं मध्येऽग्निगां स्मरेत् ॥१७

गर्भमण्डल से बाहर आठ लोकपालों की स्थापना करनी चाहिए । वर्णान्त (क्ष) को अग्नि (र) के ऊपर चढ़ाकर उसे छठे स्वर (ऊ) से विभेदित करे और पन्द्रहवें स्वर' (अनुस्वार) को उसके शिर पर चढ़ाकर बनें 'क्ष्रूं' बीज को आदि में रखकर अपने अपने नाम मन्त्रों से लोकपालों का पूजन करना चाहिए । श्री प्राप्ति के लिए गन्ध पुष्पादि से कर्णिका के ऊपर शीघ्र ही सिंह

की पूजा करनी चाहिए। फिर उस कमल को एक सौ आठ मन्त्रों से अभिमन्त्रित आठ कलशों से वेष्टित कर आठ हजार मन्त्र का जप करना चाहिए और उसके दशमांश (अर्थात् आठ सौ मन्त्रों से) अग्निकुण्ड में हवन करना चाहिए। पहले वह्निमन्त्र (रं) से कुण्ड में अग्नि को ले जाय और उठाकर हृदय मन्त्र से अग्नि की स्थापना करे तथा अग्निगामिनी शक्ति का ध्यान करना चाहिए।१४-१७।

गर्भाधानं पुंसवनं जातकर्म च होमयेत्।
हृदयेन शतं ह्येकं गुह्याङ्गे जनयेच्छिखिम् ॥१८
पूर्णाहुतिं तु विद्यायाः शिवाग्निर्जनितो भवेत्।
होमयेन्मूलमन्त्रेण शतं चाङ्गं दशांशतः ॥१९
निवेदयेत्ततो देव्यास्ततः शिष्यं प्रवेशयेत्।
अस्त्रेण ताडनं कृत्वा गुह्याङ्गानि ततो न्यसेत् ॥२०

फिर गर्भाधान, पुंसवन तथा जातकर्म के लिए हृदय मन्त्र से एक सौ बार हवन करना चाहिए। इसके लिए गुह्याङ्ग मन्त्रों के जप से अग्नि उत्पन्न करना चाहिए। (देवी के मन्त्रों की) विद्या से पूर्णाहुति देनी चाहिए। इससे शिवाग्नि का जन्म सम्पादित होता है। तदनन्तर मूल मन्त्र से सौ बार हवन करके अंग देवता के लिए उसके दशांश की आहुति देनी चाहिए। उसके बाद देवी की स्तुति करके शिष्य का प्रवेश कराना चाहिए। उसे अस्त्रमन्त्र से ताडन करके गुह्याङ्गन्यास करना चाहिए।१८-२०।

विद्याङ्गैश्चैव संनद्धं विद्याङ्गेषु नियोजयेत्।
[1]पुष्पं[2] क्षिपाययेच्छिष्यमानयेदग्निकुण्डकम् ॥२१
यवैर्धान्यैस्तिलैराज्यैर्मूलविद्याशतं हुनेत्।
स्थावरत्वं पुरा होमं सरीसृपमतः परम् ॥२२
[3]पक्षिमृगपशुत्वं च मानुषं ब्रह्ममेव च।
विष्णुत्वं चैव रुद्रत्वमन्ते पूर्णाहुतिर्भवेत् ॥२३

१ ग. पुष्पाक्षिपायसेच्छि° । २ क. °ष्पं विपाचये° । ख. °ष्पं क्षिपापये° ।
३ ख. ग. क्षिमूलप° ।

एकया चैव[1] ह्याहुत्या शिष्यः स्याद्दी (ष्योऽस्य दी) क्षितो-
भवेत्।
अधिकारी भवेदेवं शृणु मोक्षमतः परम्[2] ॥२४

विद्याङ्गों में विद्याङ्ग मन्त्रों से कवच की स्थापना करनी चाहिए। उस पर शिष्य से पुष्पार्पण कराके उसको अग्निकुण्ड के समीप ले जाना चाहिए। उसमें मूलमन्त्र से यव, धान्य, तिल तथा घी की सौ आहुतियाँ देनी चाहिए। पहिले स्थावर को और तदनन्तर जंगम पक्षी, मृग, पशु, मनुष्य, ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश को आहुतियां देकर पूर्णाहुति देनी चाहिए। इस प्रकार एक ही आहुति देने से शिष्य दीक्षित हो जाता है और उसको सभी (धर्म) कर्म करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।२१-२४।

सुमेरुस्थो यदा मन्त्री सदाशिवपदे स्थितः[3]।
परे च होमयेत्स्वस्थोऽकर्मकर्मशतान्दश (?) ॥२५
पूर्णाहुत्या तु तद्योगी धर्माधर्मैर्न लिप्यते।
मोक्षं याति परं स्थानं यद्गत्वा न निवर्तते ॥२६
यथा जले जलं क्षिप्तं जलं देही शिवस्तथा।
कुम्भैः कुर्याच्चाभिषेकं जयराज्यादिसर्वभाक् ॥२७

अब शिष्य को मोक्ष की प्राप्ति किस प्रकार होती है? इस सम्बन्ध में सुनो। जब मंत्र-साधक सुमेरु स्थित होकर सदाशिवपद पर अवस्थित हो जाय तब कर्माकर्म की पूर्णता के लिए इस परम पद में एक सौ दस बार एकाग्र चित्त से होम करना चाहिए। जब पूर्णाहुति हो जाय तब वह धर्माधर्म से अलिप्त होकर परम पद मोक्ष को प्राप्त हो जायेगा। जहाँ से फिर कहीं लौटना नहीं होता है। जैसे जल में फेंकने से वह जल ही हो जाता है उसी तरह जीव (शिव से मिलकर) शिव हो जाता है। कलशों के जल से अभिषेक करने वाले को विजय तथा राज्य की प्राप्ति होती है।२५-२७।

[4]कुमारी ब्राह्मणी पूज्या गुर्वादिर्दक्षिणां ददेत्।
यजेत्सहस्रमेकं तु [5]पूजां कृत्वा दिने दिने ॥२८

---

१ ख. चैवाऽऽज्याहु॰। २ क. ॰म्। खमे॰। ख. ग. ॰म्। खमेकस्तोय॰।
३ ख. ग. ॰पदास्थि॰। ४ कुमारी.......ददेत् ग. पुस्तके नास्ति।
५ ख. ग. पूर्णां।

तिलाज्यपूरहोमेन देवी श्रीः कामदा भवेत् ।
ददाति विपुलान्भोगान्यदन्यच्च समीहते ॥२६
जप्त्वा ह्यक्षरलक्षं तु निधानाधिपतिर्भवेत् ।
द्विगुणेन भवेद्राज्यं त्रिगुणेन च यक्षिणी ॥३०
चतुर्गुणेन ब्रह्मत्वं ततो विष्णुपदं भवेत् ।
षड्गुणेन महासिद्धिर्लक्षेणैकेन पापहा ॥३१

अनन्तर कुमारी ब्राह्मणी की पूजा करके गुरु आदि को दक्षिणा देनी चाहिए । इस तरह प्रतिदिन पूजा करके एक सहस्र बार तिल और घी से हवन करने से लक्ष्मी देवी कामनाओं को पूर्ण करती हैं और उन विपुल अभीष्ट भोगों को प्रदान करती हैं, जो जो भी साधक उनसे चाहता है । मन्त्र में जितने अक्षर हैं, उतने लाख बार जप करने से मनुष्य निधियों का अधिपति हो जाता है । उसका दूना जप करने से राज्य की प्राप्ति होती है । तिगुना जप करने से यक्षिणी सिद्ध हो जाती है, चौगुना जप करने से ब्रह्मपद तथा पांच गुना जप से विष्णुपद की प्राप्ति होती है । एक लाख बार इस मन्त्र का जप करने से पापों का नाश होता है ।२८-३१।

दश जप्त्वा देहशुद्ध्यै तीर्थस्नानफलं शतात् ।
पटे वा प्रतिमायां वा शीघ्रं वै स्थण्डिले यजेत् ॥३२
शतं सहस्रमयुतं जपे होमे प्रकीर्तितम् ।
एवं विधानतो जप्त्वा लक्षमेकं तु होमयेत् ॥३३
महिषाजमेधमांसेन[1] नरजेन पुरेण वा ।
तिलैर्यवैस्तथा लाजैर्व्रीहिगोधूमकाम्बुजैः ॥३४
श्रीफलैराज्यसंयुक्तैर्होमयित्वा व्रतं चरेत् ।

दश बार जप करने से देहशुद्धि होती है और सौ बार जप करने से तीर्थ-स्नान के फल की प्राप्ति होती है । स्थण्डिल (एक हाथ का बनाया हुआ रेत का चबूतरा) पर पट (पटलिखित चित्र) या प्रतिमा रखकर देवी का पूजन, जप तथा होम एक सौ बार, एक हजार बार अथवा दस हजार बार करना चाहिए । इस प्रकार विधिपूर्वक जप करके एक लाख आहुतियाँ देनी चाहिए । भैंसा, बकरा, तथा भेंड़े के मांस से या नर के मांस से अथवा गुग्गुलु, तिल,

---

१ क. ङ. ०न मेरजेण परे० ।

यव, लावा, व्रीहि, गेहूँ, कमल, श्रीफल एवं घी से हवन करके व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए ।३२-३४½।

अर्धरात्रेषु संनद्धः खड्गचापशरादिमान् ॥३५
एकवासाविचित्रेण रक्तपीतासितेन वा ।
नीलेन वाऽथ वस्त्रेण देवीं तैरेव चार्चयेत् ॥३६
व्रजेद्दक्षिणदिग्भागं द्वारे दद्याद्वलिं बुधः ।
दूतीमन्त्रेण द्वारादावेकवृक्षे[1] श्मशानके ॥
एवं च सर्वकामाप्तिं भुङ्क्ते सर्वां महीं नृपः ॥३७

आधीरात को कवच, खड्ग, धनुष, वाण, तथा केवल एक वस्त्र धारण करके रंगे-विरंगे, लाल-पीले, काले अथवा नीले वस्त्र से देवी का पूजन करना चाहिए । फिर दक्षिण दिशा की ओर कुछ दूर चलकर दूती मन्त्र से द्वार पर वलि चढ़ानी चाहिए । यह वलि द्वार आदि में अथवा एक वृक्ष वाले श्मशान में भी दी जा सकती है । ऐसा करने वाला राजा सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त करके भूमण्डल का उपभोग करता है ।३५-३७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये त्वरितामूलमन्त्रादिकथनं नामैकादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।३११

अथ द्वादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

त्वरिताविद्या

अग्निरुवाच —

विद्याप्रस्तावमाख्यास्ये[2] धर्मकामादिसिद्धिदम् ।
नवकोष्ठविभागेन [3]विद्याभेदं च विन्दति ॥१

---

१ क. ङ. °क्षेण शौन° । २ क. ग. ङ. °स्तारमा° । ३ क. ङ. °भेदश्च विद्यते । अ° ।

अनुलोमविलोमेन समस्तव्यस्तयोगतः ।
[1]कर्णाविकर्णयोगेन अत ऊर्ध्वं विभागशः ॥२

अग्निदेव बोले—अब मैं धर्म और काम आदि की सिद्धि देने वाले विद्या-प्रस्तार का वर्णन करूँगा । नव कोष्ठों के विभाग से अनुलोम-विलोम भाव से, समस्त व्यस्त योग से, कर्ण और अविकर्ण योग से और अध ऊर्ध्व विभाग से विद्या के अनेक भेद हो जाते हैं ।१-२।

[2]त्रित्रिकेण च योगेन देव्या संनद्धविग्रहः ।
जानाति सिद्धिदान्मन्त्रान्प्रस्तावान्निर्गतान्बहून् ॥
शास्त्रे शास्त्रे स्मृता मन्त्राः प्रयोगास्तत्र दुर्लभाः ।
गुरुः स्यात्प्रथमो [3]वर्णः फुल्लपल्लववर्णवत् ॥४
प्रस्तावे तत्र चैकार्णा वर्णा द्व्यर्णादयोऽभवन् ।
([4]तिर्यगूर्ध्वगता रेखाश्चतुरश्चतुरो (?) भजेत् ॥५
नव कोष्ठा भवन्त्येवं मध्यदेशे तथाऽऽदिमान् ।
प्रदक्षिणेन संस्थाप्य प्रस्तावं भेदयेत्ततः ॥६

कवच धारण करने वाले साधक त्रित्रिक योग के बल से देवी के सिद्धि-दायक मन्त्रों तथा प्रस्तारों को जान लेते हैं । अनेक शास्त्रों में, अनेक मन्त्र बतलाये गये हैं । किन्तु उन मन्त्रों का प्रयोग करना कठिन है । 'फुल्ल' 'पल्लव' अथवा 'वर्ण' (पदों) के समान मन्त्र का प्रथम अक्षर गुरु होता है । प्रस्तार में एकाक्षर वर्ण द्व्यक्षर माने गये हैं । चार पड़ी रेखाओं के ऊपर चार समानान्तर खड़ी रेखायें खींचकर नौ कोष्ठक बन जाते हैं । इनमें से बीच के कोष्ठक के ऊपर एक वृत्त बनाकर मंत्र के विभिन्न अक्षरों को एक-एक कोष्ठक में लिखकर प्रस्तार का भेदन कर देना चाहिए ।३-६।

प्रस्तावक्रमयोगेन (ण) प्रस्तावं यस्तु विन्दति ।
करमुष्टिस्थितास्तस्य साधकस्य हि सिद्धयः ॥७
त्रैलोक्यं पादमूले स्यान्नवखण्डां भुवं लभेत् ।
कपाले तु समालिख्य शिवतत्त्वं समन्ततः ॥८

---

१ क. ङ. °र्णाधिक° । च. °र्णाविवर्ण° । २ क. ङ. °के शिवयो° । ३ ख. ग. °र्णः पहृत्युन्नव° । ४ तिर्यगूर्ध्वगता•••मंत्रवित् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति ।

श्मशानकर्पटे वाऽथ वाह्ये निष्क्रम्य मन्त्रवित्।
तस्य मध्ये लिखेन्नाम कर्णिकोपरि संस्थितम् ॥९
तापयेत्खादिराङ्गारैर्भूर्जमाक्रम्य पादयोः।
सप्ताहादानयेत्सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥१०

जो साधक इस मन्त्र प्रस्तार तथा इसके विभिन्न कोष्ठकों में लिखे हुए मन्त्र को जानता है वह सभी सिद्धियों को करतलगत कर लेता है। तीनों लोक उसके चरण पर लोटते हैं और वह पृथ्वी के नवद्वीपों का लाभ कर लेता है। मन्त्रवेत्ता साधक को कपाल (खप्पर) पर शिवमन्त्र लिखकर श्मशान भूमि में जाकर मुर्दे के वस्त्र को उठा लाना चाहिए। इस वस्त्र के ऊपर उपर्युक्त देवी चन्द्र बनाकर उसके प्रत्येक दल पर शत्रु का नाम लिखना चाहिए। तदनन्तर खैर की लकड़ी से भोजपत्र को तपाकर उसे अपने पैरों के नीचे दवाना चाहिए। ऐसा करने से एक सप्ताह के भीतर चराचर सहित तीनों लोक उसके वशीभूत हो जायेंगे।७-१०।

वज्रसंपुटगर्भे तु द्वादशारे तु लेखयेत्।
मध्ये तु गर्भगं नाम सदाशिवविदर्भितम् ॥११
कुड्ये फलकके वाऽथ शिलापट्टे हरिद्रया।
मुखस्तम्भं गतिस्तम्भं सैन्यस्तम्भं तु जायते ॥१२

वज्र की रेखा से अङ्कित और सदाशिव मन्त्र के अक्षरों से विदर्भित द्वादश दल कमल के मध्य में अपने शत्रु का नाम लिखना चाहिए। दीवार, तख्ते या शिलापट्ट पर हल्दी से इस प्रकार लिखकर किसी (शत्रु) का वाक्स्तम्भ, गतिस्तम्भ तथा सैन्यस्तम्भ किया जा सकता है।११-१२।

विषरक्तेन संलिख्य श्मशाने कर्पटे बुधः[1]।
षट्कोणं दण्डमाक्रान्तं समन्ताच्छक्तियोजितम् ॥१३
मारयेदचिरादेष श्मशाने निहतं रिपुम्।
छेदं करोति राष्ट्रस्य चक्रमध्ये न्यसेद्रिपुम् ॥१४

विद्वान् साधक को श्मशान के कपड़े पर विष मिश्रित रक्त से षट्कोण बनाना चाहिए, जो कि दण्ड से आक्रान्त तथा चारों ओर से शक्ति से वेष्टित

१ क. ङ. सुधीः।

हो। उस दण्ड मे श्मशान में शत्रु के चित्र को मारने से शत्रु शीघ्र ही मर जाता है। चक्र के मध्य में शत्रु की प्रतिमा को रख देने से उसका राष्ट्र छिन्न-भिन्न हो जाता है।१३-१४।

चक्रधारां गतां शक्तिं रिपुनाम्ना रिपुं हरेत्।
तार्क्ष्येणैव तु बीजेन खड्गमध्ये तु लेखयेत्॥१५
विदर्भरिपुनामाथ श्मशानाङ्गारलेखितम्।
सप्ताहात्साधयेद्देशं ताडयेत्प्रेतभस्मना॥१६
भेदने छेदने चैव मारणेषु शिवो भवेत्।
[1]तारकं नेत्रमुद्दिष्टं शान्तिपुष्टौ नियोजयेत्[2]॥१७

चक्र की धारा पर स्थित शक्ति से शत्रु का नाम लेकर प्रहार करने से शत्रु का नाश हो जाता है। गरुड़ के वीज मन्त्र से खड्ग के मध्य में श्मशान के कोयले से शत्रु का नाम विदर्भ विधि से लिखना चाहिए। फिर सात दिन उसके ऊपर प्रेतभस्म छिड़ककर श्मशान की साधना करनी चाहिए। ऐसा करने से साधक भेदन, छेदन तथा मारण कर्मों में शिव के समान सिद्धहस्त हो जाता है। तारक तथा नेत्रमन्त्रों का विनियोग शान्ति तथा पुष्टि कर्म के लिए करना चाहिए।१५-१७।

दहनादि प्रयोगोऽयं [3]शाकिनीं चैव कर्षयेत्।
मेध्यादिवारुणीं [4]यावद्वक्रतुण्डसमन्वितः॥१८
कुष्ठाद्या (द्य) व्याधिरोगं तु नाशयेन्नात्र संशयः।
मध्यादि उत्तरान्तं तु करालीबन्धनाज्जपेत्॥१९
रक्षयेदात्मनो[5]विद्यां प्रतिवादी सदाशिवः।
वारुण्यादि ततो न्यस्य [6]ज्वरक्लेशविनाशनम्[7]॥२०
सौम्यादि मध्यमान्तं तु गुरुत्वं जायते वटे।
पूर्वादिमध्यमान्तं तु लघुत्वं कुरुते क्षणात्॥२१

यह कर्म दहनादि प्रयोग कहलाता है। इससे शाकिनी भी आकृष्ट हो जाती है। पूर्वोक्त नौ चक्रों में मध्यगत मन्त्राक्षर से लेकर पश्चिम दिशावर्ती

---

१ ख. कं °तत्त्वमु°। २ क. ङ. °त्। देहानां रिपुयो°। ३ शाकिनी कर्ष—येत्क्षणात्" इति क. ङ. पुस्तकयोः पाठः। ४ क. ङ. °द्वज्रतु°। ५ क. ङ. दीप्त्या। ६ क. ङ. °रशोकवि° ७ क. ङ. °म्। सोश्वादिमध्यमान्तस्तु गु°।

कोष्ठक तक के अक्षरों को वक्रतुण्डा मन्त्र के साथ जपने से यह कुष्ठ आदि व्याधियों का नाश करता है, इसमें संशय नहीं है। उसी चक्र के मध्य से लेकर उत्तर पर्यन्त अक्षरों का करालो मन्त्र के साथ जप करने से अपनी विद्या की रक्षा वह सदाशिव के समान प्रतिवादी से भी कर लेता है। पश्चिम आदि दिशाओं मे न्यास करने से ज्वर का क्लेश मिट जाता है। उत्तर से लेकर मध्यम तक न्यास करने से साधक की इच्छा के अनुसार वट का बीज भी भारी हो जाता है और पूर्व से लेकर मध्यम तक न्यास करने से वह तुरन्त हल्का हो जाता है। १८-२१।

भूर्जे रोचनयाऽऽलिख्य एतद्वज्राकुलं परम ।
क्रमस्थैर्मन्त्रबीजैस्तु रक्षां देहेषु कारयेत् ॥२२
वेष्टितां[1] भावहेम्ना च रक्षेयं मृत्युनाशिनी ।
विघ्नपापारिदमनी सौभाग्यायुः प्रदा धृता ॥२३
द्यूते रणे च जयदा शक्रसैन्ये न संशयः ।
वन्ध्यानां पुत्रदा ह्येषा चिन्तामणिरिवापरा ॥ २४
[2]साधयेत्परराष्ट्राणि राज्यं च पृथिवीं जयेत् ।
फट् स्त्रीं क्षें हरूं लक्षजप्याद्यक्षादिर्वशगो भवेत् ॥२५

भोजपत्र के ऊपर गोरोचन से वज्रयुक्त उपर्युक्त चक्र को बनाकर सोने के तावीज में रखकर भुजा पर बाँध लेने से शरीर की रक्षा हो जाती है। इससे मृत्यु का नाश होता है। इससे विघ्न पापरूपी शत्रु का दमन होता है और सौभाग्य तथा आयु की प्राप्ति होती है। यह विद्या द्यूत में तथा रण में इन्द्र-सेना से भी विजय दिलाती है। इसमें संदेह नही है। यह वन्ध्याओं को पुत्र देती है। इसे दूसरा चिन्तामणि-मन्त्र समझना चाहिये। इसके बल से मनुष्य दूसरे के राष्ट्र को जीत सकता है और राज्य तथा पृथिवी प्राप्त कर सकता है। फट् स्त्री क्षें ह्रूं—इस मन्त्र को एक लाख बार जपने से यक्ष आदि वशीभूत हो जाते हैं। २२-२५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये त्वरिताविद्यासिद्धिकथनं नाम
द्वादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३१२

———

१ ख. 'तां-तारहे। २ साधयेत्परराष्ट्राणि...—भवेत् नास्ति च. पुस्तके।

अथ त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नानामन्त्राः

अग्निरुवाच—

ॐ विनायकार्चनं वक्ष्ये यजेदाधारशक्तिकम् ।
धर्माद्यष्टककन्दं [1]च नालं पद्मं च कर्णिकाम् ।।१
[2]केसरं त्रिगुणं पद्मं तीव्रं च ज्वलिनीं यजेत्[3] ।
नन्दां च सुयशां चोग्रां [4]जीवन्तीं विन्ध्यवासिनीम् ।।२
गणमूर्तिं गणपतिं हृदयं स्याद्गणंजयः ।
एकदन्तोत्कटशिरः शिखायाचलकर्णिने ।।३
गजवक्त्राय कवचं हरूं फडन्तं [5]तथाऽष्टकम् ।
महोदरो दण्डहस्तः पूर्वादौ मध्यतो यजेत् ।।४

अग्निदेव बोले—अब मैं विनायक की पूजा बतला रहा हूँ । पहले योग-पीठ पर आधार शक्ति की पूजा करनी चाहिए । तदन्दतर पूर्व आदि दिशाओं में धर्म आदि आठ तत्त्वों की तथा कन्द, नाल, पद्म, कर्णिका, केशर, त्रिगुण पद्म की तथा तीव्रा, ज्वलिनी, नन्दा, सुयशा, उग्रा, जीवन्ती, विन्ध्यवासिनी आदि नौ शक्तियों की पूजा करे । तत्पश्चात् गणेश की मूर्ति का पूजन-ध्यान करे । अंगन्यास का प्रकार यह है—गणंजयाय हृदयाय नमः एकदन्ताय उत्कटाय शिरसे स्वाहा, अचलाकर्णिने शिखायै वषट्, गजवक्त्राय हुं फट् कवचाय हुम्, महोदराय दण्डहस्ताय अस्त्राय फट् । इन पांच अंगों में से चार की तो पूर्वादि चार दिशाओं में और पाँचवें की मध्य भाग में पूजा करे । १-४ ।

जयो गणाधिपो गणनायकोऽथ गणेश्वरः ।
वक्रतुण्ड एकदन्तोत्कटलम्बोदरो गजः ।।५

---

१ क. ङ. च. सनालं पञ्चक° । २ ख. ग. केशव° । ३ ख. ग. जपेत् । ४ ख. ग. तेजोवती° । ५ क. ङ. 'थास्त्रक°' ।

वक्त्रो विकटनामाऽथ ह्लूं पूर्वो विघ्ननाशिने ।
धूम्रवर्णो महेन्द्राद्यो बाह्ये विघ्नेशपूजनम् ॥६

तदन्तर गणंजय, गणाधिप, गणनायक, गणेश्वर, वक्रतुण्ड, एकदन्त, उत्कट, लम्दोदर, गजवक्त्र, विकटनामा (विकटानन) इन सब की पदमदलों मे पूजा करे। फिर मध्य भाग में 'ह्लूं विघ्नाशनाय नमः" 'महेन्द्राय धूम्रवर्णाय नमः" यों बोलकर विघ्ननाशन और धूम्रवर्ण की पूजा करे। फिर बाहर की ओर विघ्नेश की अर्चना करनी चाहिए। ५-६।

त्रिपुरायजनं वक्ष्ये असिताङ्गो रुरुस्तथा ।
चण्डः क्रोधस्तथोन्मत्तः कपाली भीषणः क्रमात् ॥७
([१]संहारो भैरवो ब्राह्मी मुख्या ह्रस्वास्तु भैरवाः ।
ब्रह्माणी षण्मुखा दीर्घा अग्न्यादौ वटुकाः क्रमात्) ॥८
समयपुत्रो व (ब) टुको योगिनीपुत्रकस्तथा ।
सिद्धपुत्रश्च वटकः कुलपुत्रश्चतुर्थकः ॥९
हेतुकः क्षेत्रपालश्च त्रिपुरान्तो द्वितीयकः ।
अग्निवेतालोऽग्निजिह्वः करालीकाललोचनः ॥१०
[२]एकपादश्च भीमाक्ष ऐं क्ष्रों प्रेतस्तथाऽऽसनम् ।
[ॐ] ऐं ह्लीं ध्यौश्च त्रिपुरा पद्मासनसमास्थिता ॥११
बिभ्रत्यभयपुस्तं च वामे वरदमालिकाम् ।
मूलेन हृदयादि स्याज्जालपूर्णं च [३]कार्मुकम् ॥१२
गोमध्ये नाम संलिख्य चाष्टपत्रे च मध्यतः ।
श्मशानादिपटे श्मशानाङ्गारेण विलेखयेत् ॥१३

अब मै त्रिपुरा का पूजन बतला रहा हूँ। असिताङ्ग, रुरु, चण्ड, क्रोध उन्मत्त, कपाली, भीषण, संहार इन आठ भरवों की आठ ह्रस्व स्वरों से तथा ब्राह्मी आदि आठ मातृकाओं की आठ दीर्घ स्वरों से पूजा करके आग्नेयी आदि दिशाओं मे क्रमशः चार वटुकों की पूजा करनी चाहिए। समयपुत्र, योगिनीपुत्र, सिद्धपुत्र तथा कुलपुत्र में चार बटुक हैं। इनके बाद आठ क्षेत्रपाल पूजनीय हैं। इनके नाम-त्रिपुरान्त, अग्निवेताल, अग्निजिह्व, कराल,

---

१ 'संहारो....क्रमात्' क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। २ क. ङ. °पार्श्वश्च भीमाख्य ऐं। ३ ख. ग. कामकम्।

काललोचन, एकपाद तथा भीमाक्ष है। इन सबका पूजन करके त्रिपुरा देवी के प्रेत रूप पद्मासन की पूजा करे। जैसे ऐं क्षें प्रेतपद्मासनाय नमः। 'ओं ऐं ह्रीं ह्रौः त्रिपुरायै प्रेतपद्मासनमास्थितायै नमः, इस मन्त्र से प्रेत पद्मासन पर विराजमान त्रिपुरा भैरवी की पूजा करे। उनका ध्यान इस प्रकार है—उनके दायें हाथ में अभयास्त्र तथा पुस्तक विद्यमान हैं। और बायें हाथ में वरदमुद्रा एवं माला। देवी बाणसमूह से भरा तरकस और धनुष् भी लिये रहती है। इस प्रकार ध्यान करके मूल मन्त्र से हृदयादि न्यास करे। गायों के बीच में अष्टदल कमल के मध्य भाग में शत्रु का नाम श्मशान के कपड़े पर श्मशान के ही कोयले से लिखना चाहिए। ७-१३।

चिताङ्गारपिष्टकेन मूर्तिं ध्यात्वा तु तस्य च।
क्षिप्त्वोदरे नीलसूत्रैर्वेष्ट्य चोच्चाटनं भवेत् ॥१४

तत्पश्चात् चिता के कोयलों के चूर्ण से बनी (शत्रु) मूर्ति का ध्यान करके कमर में नीला धागा लपेट देना चाहिये। १४

ॐ नमो भगवति जा (ज्वा) लामानि (लि) नि गृध्रगण-
परिवृते स्वाहा ॥१५
युद्धे गच्छञ्जपन्मन्त्रं पुमान्साक्षाज्जयो भवेत् ॥१६
ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं श्रियै नमः ॥१७
उत्तरादौ च घृणिनी सूर्या पूज्या चतुर्दले।
आदित्या प्रभावती च सोमात्रिमधुराच्छ्रियः (?) १८
ॐ ह्रीं गौर्यै नमः ॥१९
गौरीमन्त्रः सर्वकरो होमाद्ध्यानाज्जपार्चनात्।
रक्ता चतुर्भुजा पाशवरदा दक्षिणे परे ॥२०
अङ्कुशाभययुक्तां तां प्रार्थ्य सिद्धात्मना पुमान्।
जीवेद्वर्षशतं धीमान्न चौरारिभयं भवेत् ॥२१

'ओं नमो भगवति ज्वालामालिनि गृध्रगणपरिवृते स्वाहा,—इस मन्त्र का जप करते हुए, युद्ध में जाने से मनुष्य निश्चय ही विजय प्राप्त कर लेता है। 'ॐ श्रीं ह्रीं क्ली श्रियै नमः'—इस मन्त्र से उत्तर आदि दिशाओं में चतुर्दल कमल में घृणिनी, सूर्या, आदित्या तथा प्रभावती की पूजा करने से लक्ष्मी प्राप्त होती है। ये सभी देवियां सुवर्ण गिरि के समान सुन्दर कान्ति वाली हैं।

"ॐ ह्री गौर्ये नमः— इत्यादि गौरी मन्त्र से हवन, उसका ध्यान जप तथा पूजन करने से सभी इच्छायें पूरी हो जाती हैं। भगवती का वर्ण लाल है, भुजायें चार हैं, दाहिने हाथों में पाश तथा वरद मुद्रा है और बायें हाथों में अंकुश तथा अभय मुद्रा है—ऐसा ध्यान करते हुये प्रार्थना करने वाला सिद्धात्मा पुरुष सौ वर्ष तक जीवित रहता है और उसे चोर तथा शत्रु का भय नही रहता। १५-२१।

क्रुद्धः प्रसादी भवति युधि मन्त्राम्बुपानतः।
[1]अञ्जनं तिलकं वश्यो जिह्वाग्रे कविता भवेत् ॥२२
तज्जपान्मैन्थुनं वश्ये[2] तज्जपा[3]द्योनिवीक्षणम्।
स्पर्शाद्वशी तिलहोमात्सर्वं चैव तु सिध्यति ॥२३

युद्ध में इस मन्त्र को पढ़कर जल पीने से क्रुद्ध व्यक्ति प्रसन्न हो जाता है। इसको पढ़कर तिलक या अंजन लगाकर जिसकी ओर देखा जायगा वही वशीभूत हो जायगा। इसका जप करने से कविता जिह्वाग्रवर्तिनी होती है वशीभूत होता है तथा योनिवीक्षण करने का सामर्थ्य प्राप्त होता का स्पर्श कर देने से वह वशीभूत हो जाता है और इस मन्त्र को पढ़कर तिल से हवन करने से सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। २२-२३।

सप्ताभिमन्त्रितं चान्नं भुञ्जंस्तस्य श्रियः सदा
अर्धनारीशरूपोऽयं लक्ष्म्यादिवैष्णवादिकः ॥२४
अनङ्गरूपा शक्तिश्च द्वितीया मदनातुरा।
पवनवेगा भुवनपाला वै सर्वसिद्धिदा ॥२५
अनङ्गमदनानङ्गमेखलां तां जपेच्छ्रिये।
[4]पद्ममध्यदलेषु ह्री स्वरान्कादींस्ततः स्त्रियाः।
षट्कोणे वा [5]घटे वाऽथ लिखित्वा स्याद्वशीकरम् ॥२६
ॐ ह्रीं छूं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे। ओम् ओम् ॥२७
मूलमन्त्रः षडङ्गोऽयं रक्तवर्णे त्रिकोणके।
द्रावणी ह्लादकारिणी क्षोभिणी गुरुशक्तिका ॥

---

१ ख. ङ. अर्जुनं। २ चः वश्यं। ३ ख. ग. निरीक्ष°। ४ ख. ग.° ले वह्निं स्वं। ५ ख. पटे।

इस मन्त्र से सात बार अन्न को अभिमन्त्रित करके भोजन करने से सदैव के लिए श्री की प्राप्ति हो जाती है। इसके आदि में लक्ष्मी बीज (श्रीं) और वैष्णव बीज क्लीं जोड़ दिया जाय तो यह अर्धनारीश्वर मन्त्र हो जाता है। रूपा, अनङ्गमदनातुरा, पवनवेगा, भुवनपाला, सर्वसिद्धिदा, अनङ्गमदना तथा अनङ्ग-मेखला का पूजन करके इस मन्त्र का जप करने से लक्ष्मी प्राप्त होती है। षट्-कोण या घट के ऊपर कमलदल के मध्य में ह्रीं, स्वर, क आदि वर्ण तथा स्त्री का चित्रण करके मन्त्र का जप करने से वशीकरण सिद्ध होता है। 'ओं ह्रीं छूं (ऐं) नित्यक्लिन्ने महद्रवे। ओम्, ओम। यह षडङ्ग मूलमन्त्र कहलाता है। इसे रक्त वर्ण के त्रिकोणात्मक यन्त्र के ऊपर लिखना चाहिए।२४-२८

ईशानादौ च मध्ये तां नित्यां पाशाङ्कुशौ तथा ॥
कपालकल्पकतरुं वीणा रक्ता च तद्वती ॥२९
नित्याऽभया मङ्गला च नववीरा च मंगला।
दुर्भगा मनोन्मनी पूज्या द्रावा पूर्वादितः स्थिता।३०
ॐ ह्रीम् अनङ्गाय नमः। ॐ ह्रीं स्मराय नमः॥ ३१
मन्मथाय च माराय कामायैवं च पञ्चधा।
कामाः पाशाङ्कुशौ चापवाणा ध्येयाश्च बिभ्रतः ॥३२

ईशान आदि विदिशाओं में द्रावणी, ह्लादकारिणी, क्षोभिणी और गुरुशक्ति का तथा मध्य में नित्या का पूजन करना चाहिए। यह नित्या अपने हाथों में पाश, अंकुश, कपाल कल्पतरु लिये हुये है। यह रक्त वर्ण तथा रक्तवस्त्र और वीणा धारण किये हुये है। नित्या, अभया, मंगला, नववीरा, सुमंगला, दुर्भगा मनोन्मनी तथा द्रावा की पूजा क्रमशः पूर्वादि दिशाओं में करनी चाहिए। पाश, अंकुश, धनुष तथा बाण धारण किये हुए पाँच कामदेवों का ध्यान करके इस मन्त्र का जप करना चाहिए 'ओं ह्री. 'अनङ्गाय नमः। ओं ह्री स्मराय नमः ओं ह्रीं मन्मथाय नमः, ओं ह्रीं माराय नमः, ॐ ह्रीं कामाय नमः, ये ही पांच कामदेव हैं। २९-३२।

रतिश्च विरतिः प्रीतिर्विप्रीतिश्च मतिर्धृतिः।
विधृतिः पुष्टिरेभिश्च क्रमात्कामादिकैर्युताः ॥३३
ॐ छं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे ओम् अ आ इ ई
उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः क ख
ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न
प फ ब भ म य र ल व श ष स ह क्षः ॐ छं

नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा[1] ।।३४
[2]आधारशक्तिं पद्मं च सिंहे देवीं हृदादिषु ।।३५
ॐ ह्रीं गौरि रुद्रदयिते योगेश्वरि हरूं फट् स्वाहा ।।३६

इनके साथ रति-विरति, प्रीति-विप्रीति, मति-विमति, धृति-विधृति तथा तुष्टि-पुष्टि इन युगल कामवल्लभाओं का क्रमशः पूजन करके 'ओं छं (ऐं) नित्यक्लिन्ने....—मदद्रवे स्वाहा यह नित्यक्लिन्ना विद्या है। सिंहासन पर आधारशक्ति तथा पद्म का पूजन करके उसके दलों में हृदय आदि अंगों की स्थापना एवं पूजन करने के बाद मध्यकर्णिका में देवी की पूजा करनी चाहिये। उसका मन्त्र यह है—ऊं ह्री गौरि रुद्रदयिते योगेश्वरि ह्रूं फट् स्वाहा'। ३३-३६।

इत्यादि महापुराण आग्नेये नानामन्त्रकथनं नाम त्रयोदशाधिक त्रिशततमोऽध्यायः।३१३

अथ चतुर्दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

त्वरिताज्ञानम्

अग्नि रुवाच

ॐ ह्रीं हरूं खे छे क्षः स्त्रीं[3] हरूं क्षें ह्रीं फट् त्वरितायै नमः ।।१
त्वरितां पूजयेन्न्यस्य द्विभुजां चाष्टबाहुकाम्।।
आधारशक्तिं पद्मं च सिंहे देवीहृदादिकम् ।२
पूर्वादौ गायत्रीं यजेन्मण्डले वै प्रणीतया।
[4]ह्रूंकारां खेचरीं चण्डां छेदनीं क्षेपणीं स्त्रियाः[x] ।।३

---

१ एतस्मात्पुरतः—'हरीम्, ओं ह्रीं नित्यशक्तिन्ने मदद्रवे स्वाहा' इत्यधिकं क. ख. पुस्तके। २ आधारशक्तिं........हृदादिषु नास्ति क. ख. ग. ङ. पुस्तकेषु। ३ ग. ह्रीं। ४ ग 'ह्रूं छावां खे°।

[1]ह्लूंकारीं क्षेमकारीं च फट्कारीं मध्यतो यजेत् ।
जयां च विजयां द्वारि किंकरं च तदग्रतः ॥४
[2]तिलैर्होमश्च सर्वाप्त्यै नामव्याहृतिभिस्तथा ।
अनन्ताय नमः स्वाहा कुलिकाय नमः स्वाहा ॥५
स्वाहा वासुकिराजाय शङ्खपालाय वौषट् (?) ।
[3]तक्षकाय [4]वषण्नित्यं महापद्माय वै नमः ॥६
स्वाहा कर्कोटनागाय षट्पद्माय च वै नमः ।

अग्निदेव बोले--'ॐ ह्रीं......त्वरितायै नमः'—इस मन्त्र से अंग न्यास करके दो भुजाओं वाली अथवा आठ भुजाओं वाली त्वरिता देवी की आधार शक्ति तथा अष्टदल कमल की तथा सिंहासन पर विराजित त्वरिता देवी की तथा उनके चारों तरफ हृदयादि अंगों की पूजा करनी चाहिए। पूर्व आदि दिशाओं में मण्डल के ऊपर प्रणीता मुद्रा से गायत्री, ह्लूंकारा, खेचरी, चण्डा, छेदनी, क्षेपणी, ह्लूंकारी तथा क्षेमकारी का यजन करना चाहिए। मध्य में फट्कारी की, द्वार पर जया, विजया की और उसके आगे किंकर की पूजा करनी चाहिए। नाम त्वरिता मन्त्र तथा (ॐ भूर्भुवः स्वः) व्याहृतियों का उच्चारण करके 'अनन्ताय नमः स्वाहा' 'कुलिकाय नमः स्वाहा' 'वासुकिराजाय स्वाहा' 'शङ्खपालाय' वौषट्, तक्षकाय वषट्, 'महापद्माय नमः' 'कर्कोट-'नागाय स्वाहा' 'पद्माय नमः' मन्त्रों का पाठ करके तिल से आहुति देने से सभी वस्तुओं की प्राप्ति होती है। १-६½ ।

लिखेन्निग्रहचक्रं तु एकाशीतिपदैर्नरः ॥७
वस्त्रे पदे तनौ[5] भूर्जे शिलायां यष्टिकासु च ।
मध्ये कोष्ठे साध्यनाम पूर्वादौ पट्टिकासु च ॥८
ॐ ह्लूं क्षूं छन्द च्छन्द चतुरः कण्ठकां कालरात्रिकाम्[6] ।
[7]ऐशादावशुपादौ[8] च यमराज्मं च बाह्यतः ॥९

१ ग. ह्लूंकारं । २ ख. ग. °र्होमैश्च । ३ ग. य जपान्नित्यं ।४ ख. °षट् तुभ्यं म° । ५ क. ङ. घने । ६ क. ग. ङ. °म् । एशाः । ७ ख. दावथ पाः । ८ क ङ. °शुपदौ° ।

अब मन्त्रों का विधान बताया जा रहा है। वस्त्र, पद, शरीर, भोजपत्र, शिला और यष्टिका के ऊपर, 'ओं ह्लूं क्षूं छन्द च्छन्द' इन चार बीजों को लिखे। फिर ईशान आदि कोणों में भीतर की ओर 'कालरात्रि मन्त्र' लिखे तथा बाहर की ओर यमराज मन्त्र का उल्लेख करे।७-९।

[1]कराली नारवमालीकालीलमोक्षमोनली[2] ।
मामोदेतत्तदेमोना रक्षत स्व स्व भक्ष या[3] ॥१०
[4](पमयाटटयाटमोटमा मोटमा ।
मोमोद्‌गाभूचिरिभूपाटटवीश्वरीश्चाटट ।११
यमराजाद्‌वाह्यतो रं तं तोयं मारणात्मकम् ।
[5]कज्जलं निम्बनिर्यासमज्जासृग्विषसंयुतम् ॥१२
[6]अङ्गारेण सभायुक्तं पिङ्गलाधारसंयुतम् ।
काकपक्षस्य लेखन्या श्मशाने वा चतुष्पथे ॥१३
निधापयेत्कुण्डाधस्ताद्वल्मीके वाऽथ निक्षिपेत्) ।
विभीतद्रुमशाखाधो यन्त्रं सर्वारिमर्दनम् ।।१४

"करालीनारवमालीकालीलमोक्षक्षमोनली। मामोदेतत्तदेमोना रक्षत स्व-स्वभयार' यह कालरात्रि मन्त्र है और 'यमावाटटमवाय माटमोटटमोटमा। वामाभूरिरिभूमावा टटरीत्वत्वरीटट' यह यमराज मन्त्र है। इस मन्त्र के बाह्य-भाग में चारों ओर 'र' बीज को लिखे फिर उस (र) के नीचे 'य' लिखे। इस प्रकार मारणात्मक निग्रह यन्त्र संपादित होता है। इसको काजल, नीम के गोंद, मज्जा, रक्त, विष, कोयले के चूर्ण से बनी हुई तथा लाल दावात में रखी हुई स्याही और काकपक्ष की बनी हुई लेखनी से लिखना चाहिये। इस यन्त्र को श्मशान में, चौराहे पर, गाड़ दे, कुण्ड अथवा गड्ढे में फेंक दे या बहेड़े के पेड़ के नीचे गाड़ देना चाहिये। इस प्रकार विधिवत् बनाया हुआ यन्त्र सभी शत्रुओं का नाशक होता है। १०-१४।

लिखेच्चानुग्रहं चक्रं शुक्लपक्षेऽथ भूर्जके ।
लाक्षया कुङ्कुमेनाथ खटिकाचन्दनेन वा ।१५
भुवि भित्तौ च पूर्वादि नाम मध्यमकोष्ठके ।

---

१ कराली....मोक्षमोनली' इत्यत्र काली मारणमाली च काली त्रैलोक्य-मोहनीति च. पुस्तके। २ ग. ०लगोक्ष० ३ ख.:०व० ४ पमयाटट...... निक्षिपेत् ग. पुस्तके नास्ति। ५ ख. तज्जलं। ६ 'अंगारेण......संयुतम्।' नास्ति ख. पुस्तके।

खण्डेन्दुवारिमध्यस्थमों जं सोवाऽपि घट्टिगम्[1] ॥१६
लक्ष्मी श्लोकं शिवादौ च[2] राक्षसादिक्रमाल्लिखेत् ।
श्रीः सा[3] मा[4] मा[5] मा[6] सा[7] श्रीः सा नौ[8] या ज्ञे ज्ञेया[9] नौ सा ॥१७
माया लीला ला[10] ली या[11] मा ज्ञेया[12] नौ सा माया ।
लीला यत्र षडुक्ता बहिः शीघ्रां दिक्षु च कलशं वह्निः ॥१८
पद्मस्थं पद्मचक्रं च मृत्युजित्स्वर्गगं धृतिम् ।
शान्तीनां परमा शान्तिः सौभाग्यादिप्रदायकम् ॥१९

(अब अनुग्रह चक्र बतलाया जा रहा है) शुक्लपक्ष में भोजपत्र के ऊपर भूमि पर या दीवाल पर लाख, कुङ्कुम, खड़िया अथवा चन्दन से अनुग्रह चक्र बनाना चाहिये । चक्र के मध्य वृत्त में 'ओं जं सोवाऽपि घट्टिगम्' मन्त्र लिखना चाहिये । पूर्व की ओर से गणना करने पर बाँयी ओर के वृत्त में तथा उसकी परिधि के ऊपर और उसके पश्चिम की ओर भी यही मन्त्र लिखना चाहिये । चक्र के चारों ओर उसके दक्षिण पूर्व और दक्षिण—पश्चिम की ओर लक्ष्मी श्लोक पढ़ना चाहिये—'श्रीः सा मा या मा सा श्रीः सा नौ या ज्ञे ज्ञेया नौ सा । मा या ली ला ला ली या मा या ला ली ली ला या । उपर्युक्त पद्म-चन्द्र का पूजन एक कमल के मध्य में होना चहिये । यह चक्र मृत्यु को जीतने वाला, स्वर्ग ले जाने वाला, और धैर्य को देने वाला है । यही शक्तियों में परमाशान्ति हैं । और सौभाग्यादि को प्रदान करने वाला है ।१५-१९ ।

रुद्रे रुद्रसमाः कार्याः कोष्ठकास्तत्र तां लिखेत् ।
ओं माद्यां ह्रूँ फडन्ता च आदिवर्णमथान्ततः ॥ २०
विद्यावर्णक्रमेणैव संज्ञा[13] च वषडन्तिकाम् ।
अधस्तात्प्रत्यङ्गिरैषा सर्वकामार्थसाधिका ॥२१
[14](एकाशीतिपदे सर्वामादिवर्णक्रमेण तु ।
आदिमं यावदन्ते स्याद्वषडन्तं च नाम वै ॥२२

---

१ क. ङ. यद्दिशम् । २ क. ङ. च. रक्षरादि । ३ ग. स । ४ ग. मो । ५ ख. या । ६ ख. या । ७ ख. मा । ८ क. ङ. तौ । ९ ग. ज्ञेयां । १० क. ना । ११ क. ङ. या । १२ क. ख. °या लानोलालीमानायाज्ञे वपडंताब° । १३ क. संज्ञा संज्ञा च मध्यमम् । १४ 'एकाशीतिपदे—सर्वकार्यादिसाधनी' क ङ. पुस्तकयोर्नास्ति ।

एषा प्रत्यङ्गिरा चान्या 'सर्वकार्यादिसधानी[1])
निग्रहानुग्रहं चक्रं चतुःषष्टिपदैर्लिखेत्[3] ॥२३

भीतिदायक यन्त्रों में यन्त्र को एक सौ ग्यारह कोष्ठकों में विभाजित करना चाहिये। इस चक्र के दोनों किनारे के कोष्ठकों में 'ओं' से आदि होने वाले और 'हूं फट्' पर समाप्त होने वाले बीजमन्त्र को लिखना चाहिये और आदि के वर्णों को (कोष्टकों) के बीच में लिख देना चाहिये। उपर्युक्त मन्त्रों के नीचे 'वषट्' बीज से समाप्त होने वाले मन्त्र वर्णों को लिखना चाहिए। यह 'प्रत्यङ्गिरा विद्या' कहलाती है। यह सभी कामनाओं की पूर्ति कराने वाली हुआ करती है। इक्यासी कोष्ठ वाले चक्र में आदि से ही वर्णक्रम के अनुसार सम्पूर्ण चक्रों में त्वरिता विद्या के अक्षर लिखे। शेष कोष्ठकों में साध्य का नाम तथा उसके अन्त में 'वषट्' लिखे। यह दूसरी 'प्रत्यङ्गिरा विद्या है। जो समस्त कार्य आदि की सिद्धि करने वाली है। चौंसठ कोष्ठ के पद में निग्रहानुग्रह चक्रों को बनाना चाहिये। २०-२३।

अमृती सा विद्या[4] चक्रं सः ह्लींनामाथ मध्यतः।
फट्काराद्याऽन्यत्रगतां त्रिह्लींकारेण वेष्टयेत् ॥२४
कुम्भवद्धारिता सर्वशत्रुहृत्सर्वदायिका।
विषं नश्येत्कर्णजपादक्षराद्यैश्च दण्डकैः ॥२५

अमृतिविद्या नामक इस चक्र में 'क्रों सः—हुं फट्' मन्त्र को 'ह्लूं' बीजमन्त्रों से तीन बार आवेष्टित कर देना चाहिए। कलश के ऊपर इस चक्र को रखकर मन्त्र का पाठ करने से साधक के सभी शत्रुओं का नाश हो जाता है, और सभी अभीष्टों को प्राप्त कर लेता है। सर्प से दष्ट अथवा विष के चिह्नों को प्रकट करने वाले व्यक्ति के कान में इस मन्त्र का जप करने से तथा मन्त्राक्षरों से अंकित दण्ड से शरीर को छूने से सम्पूर्ण विष नष्ट हो जाता है। २४ २५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये त्वरितामन्त्रकथनं नाम
चतुर्दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३१४

---

१ क. ङ. °कामार्थसा°। २ ग. °र्यार्थसा°। ३ क. ङ. °पदे लिखं। ४ क. ङ. च. द्या वज्र° सं ह्लीं।

अथ पञ्चदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

स्तम्भनादिमन्त्राः

अग्निरुवाच

स्तम्भनं मोहनं वश्यं विद्वेषोच्चाटनं वदे ।
विषव्याधिमरोगं च मारणं [1]शमनं पुनः ॥1
भूर्जे कूर्मं समालिख्य[2] ताडनेन षडङ्गुलम् ।
मुखपादचतुष्केषु[3] ततो मन्त्रं न्यसेद्द्विजः ॥२

अग्निदेव बोले—अब मैं स्तभन, मोहन, वशीकरण विद्वेषण औद उच्चाटन करने वाले मन्त्रों को बतला रहा हूँ। साथ ही उन मन्त्रों को भी बताऊँगा जो विष, व्याधि और रोगों को दूर करने वाले तथा (शत्रुओं का) वध और शमन कराने वाले हैं। ताड़ की कलम से भोजपत्र के ऊपर कछुये का छह अंगुल लम्बा चित्र बनाना चाहिये। तदनन्तर उसके अन्दर की ओर के विभिन्न कोष्ठकों में उसके मुंह तथा चारों पैरों में न्यास-क्रिया के अनन्तर द्विज को मन्त्रों को लिखना चाहिये। १-२।

चतुष्पादेषु ह्लींकारं [4]ह्लींकारं मुखमध्यतः ।
गर्भे विद्यां ततो लिख्य साधकं पृष्ठतो लिखेत् ॥३
मालामन्त्रैस्तु [5]संवेष्ट्य इष्टकोपरि संन्यसेत् ।
पिधाय कूर्मपृष्ठेन करालेनाभिसंपठेत्[6] ॥४

उस (कच्छप) के पादप-प्रवेश में बने हुये चतुष्क में 'क्रींकार' मन्त्रों तथा मुख प्रदेश में 'ह्लीकार' को लिखना चाहिये। उस (कच्छप) के उत्तर प्रदेश में त्वरिता विद्या तथा उसकी पीठ पर शत्रु अथवा उस व्यक्ति का नाम लिखना चाहिये जिसके विरुद्ध अभिचार किया जा रहा हो। इस चित्र को माला मन्त्रों से आवेष्टित करके एक ईंट के ऊपर रख देना चाहिए। तदनन्तर सम्पूर्ण चित्र को ढककर अभिचार के अनुकूल करालमन्त्रों का पाठ करना चाहिये। ३-४।

---

१ क. ख. पासनं। २ क. ख. च. ताडकेन। ३ क. ङ. ष्के तु त°। ४ ख. ह्लांकारं। ५ क. ख. संन्यस्य। ६ क. ख. ङ. °भिवेष्टयेत्।

महाकूर्मं पूजयित्वा पादप्रोक्षं तु निक्षिपेत् ।
ताडयेद्वामपादेन स्मृत्वा [1]शत्रुं च सप्तधा ॥५
ततः संजायते शत्रोः स्तम्भनं मुखरागतः ।
[2]कृत्वा तु भैरवं रूपं मालामन्त्रं समालिखेत् ॥६
ॐ शत्रमुखस्तम्भनी [3]कामरूपा[4] आलीडिर्करोम् ।
ह्लीं फं फत्कारिणी मम शत्रूणां देवदत्तानां मुखं
स्तम्भय [5]स्तम्भय ([6]मम सर्वविद्वेषिणां मुखस्तम्भनं
कुरु कुरु, ॐ ह्रूं फं फत्कारिणी स्वाहा ॥७
पटहेतुं समालिख्य तज्जपन्तं महाबलम् ।
वामेनैव नगं शूलं संलिखेद्दक्षिणे करे ॥८
लिखेन्मन्त्रमघोरस्य संग्रामे स्तम्भयेदरीन् ॥९

इसके बाद महाकूर्म (के चित्र) का पूजन करके उसके ऊपर अपने पैरों को धोने के लिये लाये गये जल को छिड़क कर शत्रु का स्मरण करते हुये बायें पैर से सात बार प्रहार करना चाहिये । ऐसा करने से शत्रु का स्तम्भन हो जाता है और उसकी सारी बुद्धि नष्ट हो जाती है । साधक को अपना मुंह रंगकर भैरव रूप बनाकर इस प्रकार मालामन्त्र का उल्लेख करना चाहिए—'ओं' शत्रुमुखस्तम्भनी....फें फत्कारिणी स्वाहा' । इसके बाद फट् और हेतु (प्रयोग का उद्देश्य) लिखकर उक्तमन्त्र का जप करते हुए उस महाबली भैरव के बांयें हाथ में पर्वत और दाहिने हाथ में शूल बनाना चाहिये । अघोर मन्त्र का उल्लेख करने से संग्राम में शत्रुओं का स्तम्भन कर दिया जाता है । ५-९।

ॐ नमो भगवत्यै [7]भगमालिनि [8]निर स्फुर[9]
निर स्फुर स्पन्द स्पन्द नित्यक्लिन्ने द्रव द्रव)
([10] ह्रूं सः ह्लींकाराक्षरे स्वाहा ॥१०
एतेन रोचनाद्यैस्तु [11]तिलकान्मोहयेज्जगत् ॥११

---

१ क. ङ. °त्रु त्रीस° । २ क. ङ. नत्वा । ३ ख. ग. कामरं । ४ क. ङ. °रूपायनी निकरी ह्री हरें फट्कारि° । ५. स्तम्भयेति पदं नास्ति ख. ग. च. पुस्तकेषु । ६ मम....... द्रव द्रव क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति ।
७ ख. ग. मालिन्यै । ८ च. वि । ९ ग. च. स्पुर । १० ह्रूं सः...... ज्वल ज्वल, च. पुस्तके नास्ति । ११ ख. °लकैर्मोह° ।

ॐ फं ह्रूँ फटफटत्कारिणी ह्रीं ज्वल ज्वल) त्रैलोक्यं
मोहय मोहय । ॐ गुह्यकालिके स्वाहा ।।१२

'ओं नमो भगवत्यै......ह्रीकाराक्षरे स्वाहा' इस मन्त्र को पढ़कर गोरोचन आदि से लगाया हुआ तिलक लगाने से जगत् मोहित होता है। 'ॐ फं ह्रूं...... गुह्यकालिके स्वाहा' इस मन्त्र से तिलक करके मनुष्य राजा आदि को भी अपने वश में कर लेता है। १०-१२।

अनेन तिलकं कृत्वा राजादीनां वशीकरम् ।
गर्दभस्य रजो गृह्य कुसुमं मृतकस्य[1] च ।।१३
नारीरजः क्षिपेद्रात्रौ शय्यादौ द्वेषकृद्भवेत् ।
गोखुरं च तथा शृङ्गमश्वस्य च खुरं तथा ।।१४
शिरः सर्पस्य संक्षिप्तं गृहेषूच्चाटनं भवेत् ।
[2]करवीरशिफा पीता संसिद्धार्था च मारणे ।।१५
व्यालच्छुच्छुन्दरीरक्तं करवीरं तदर्थकृत् ।
सरटं षट्पदं चापि तथा कर्कटवृश्चिकम् ।
चूर्णीकृत्य क्षिपेत्तैले तदभ्यङ्गं च कुष्ठकृत् ।।१६

गदहे के बैठने के स्थान की धूलि, शव के ऊपर चढ़ा हुआ फूल और स्त्री के रज को एक में मिलाकर (उपर्युक्त मन्त्र से अभिमंत्रित करके) किसी की शय्या के ऊपर डालने से उसमें द्वेष उत्पन्न कर देता है। गाय के खुर और सींग को, घोड़े के खुर को, तथा सर्प के शिर को (उपर्युक्त मन्त्र से अभिमंत्रित करके) किसी के घर में फेंकने से उच्चाटन हो जाता है। करवीर के पीले पुष्प की शिफा (जड़) को उपर्युक्त रीति से अभिमंत्रित करके किसी के ऊपर प्रयोग करने से उसकी मृत्यु हो जाती है। इसी प्रकार सर्प और छुछुन्दर का रक्त और करवीर के फूलों का प्रयोग करने से भी वैसा ही फल होता है। गिरगिट, भ्रमर, केकड़ा और विच्छू को पीसकर तेल में मिलाकर शरीर में लगाने से कुष्ठ हो जाता है। १३-१६।

ॐ नवग्रहाय सर्वशत्रून्मम साधय साधय मारय मारय,
आं सों[3] मं बुं[4] चुं शुं शं शं को अं स्वाहा ।।१७

---

१ ख. रजकस्य । २ ख. ग. °शिखा पी° । ३ ख. सौ । ४ ग. मं वृं शृं स फं स्वा० ।

अनेनार्कशतैरर्च्य श्मशाने तु निधापयेत् ।
भूर्जे वा प्रतिमायां वा मारणाय रिपोर्ग्रहाः ॥१८
ॐ कुञ्जरी ब्रह्माणी, ॐ मञ्जरी माहेश्वरी, ॐ वैताली
कौमारी, ॐ काली वैष्णवी, ॐ घोरा वाराही,
ॐ वेतालीन्द्राणी, ॐ उर्वशी चामुण्डा, ॐ वेताली चण्डिका,
ॐ जयाली यक्षिणी, नव मातरो हे मम
शत्रुं गृह्णत, गृह्णत, भूर्जे नाम रिपोर्लिख्य श्मशाने पूजिते
म्रियेत् ॥१९

"ॐ नवग्रहाय......अं स्वाहा" इस मन्त्र के द्वारा श्मशान में मन्दार के सौ फूलों से ग्रहों का पूजन करना चाहिए। ग्रहों का चित्र या तो भूर्जपत्र के ऊपर बनाना चाहिए या उनकी प्रतिमा का निर्माण करना चाहिए। इस प्रकार पूजन करने से निश्चय ही ग्रहों के द्वारा शत्रु का नाश होता है। "ॐ कुञ्जरी ब्राह्माणी"....गृह्णत गृह्णत' भोज-पत्र के ऊपर शत्रु का नाम लिखकर इस मन्त्र से श्मशान में पूजा करने पर निश्चय ही उसकी मृत्यु हो जाती है ।१७-१९।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये स्तम्भनादिमन्त्रकथनं नाम पञ्चदशा-धिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३१५

अथ षोडशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नानामन्त्राः

अग्निरुवाच—

आदौ हुंकारसंयुक्ता [1]खेचच्छेपदभूपिता ।
वर्गातीतविसर्गेण स्त्रीह्रू[2] क्षेपफडन्तिका ॥१
[3]सर्वकर्मकरी विद्या विषसर्वादिमर्दनी ।
([4]ह्रूंकरच्छेति प्रयोगश्च कालदष्टस्य जीवने ॥२

---

१ ख. 'चक्षैप' । २ क. ङ. 'क्षेक्षेफ' । ३ ख. ग. 'वंकारीसर्वहरीविषर्स-र्षादि' । ४ "ह्रूंकरच्छेति"....विषदष्टप्रमर्दनः" क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति ।

ॐ ह्लूं [1]केक्षः प्रयोगोऽयं विषदष्टप्रमर्दनः ।)
स्त्रीं ह्लूं फडिति योगोऽयं पापरोगादिकं जयेत्[2] ॥३

अग्निदेव बोले—हुंकार से युक्त तथा हुँ खी क्षं स्त्रीं हुं क्षी फट् आदिमन्त्र सभी कामनाओं की सिद्धि करने वाला तथा विष और सर्प इत्यादि का नाशक होता है। ह्लूं करच्छ इत्यादि मन्त्र का प्रयोग काल (रूप सर्प) से काटे हुए व्यक्ति को जीवित करने वाला होता है। इसी प्रकार 'ॐ ह्लूं केक्षः' मन्त्र का प्रयोग विष तथा दंशनात्मक हुआ करता है। 'स्त्री ह्लूं फट् इत्यादि मन्त्र का प्रयोग शत्रु और दुष्ट आदि का निवारण करने वाला होता है।१-३।

[3]खेचेति च प्रयोगोऽयं रिपुदुष्टादि वारयेत् ।
[4]ह्लूं [5]स्त्राभूमिति योगोऽयं योषिदादिवशीकरः ।।४
खे स्त्रीं खे च प्रयोगोऽयं कालदष्टरिपुं जयेत् ।
क्षः स्त्री क्षः संप्रयोगोऽयं वशाय विजयाय च ।।५
ऐं ह्रीं श्रीं[6] स्फ्र्यैं स्फ्र्यैं भगवति ([7]अम्बिके[8] ।
कुब्जिके । स्फ्र्यें स्फं स्फम्, ऊम् उम्, उं रण नमो
घोरामुखि च्छां छीं किणि किणि विच्छ्रस्फों ह्रौं
श्रीं ह्रीम् । ऐं श्रीमति कुब्जिकाविद्या सर्वकरा) स्मृता ।।६

'खे च' इस मन्त्र का प्रयोग शत्रु और दुष्टों का निवारण करता है। 'ह्लूं स्त्राभूम्' इत्यादि मन्त्र का प्रयोग स्त्रियों आदि को वश में करने वाला है। 'खे स्त्री खे च' इत्यादि मंत्र का प्रयोग मृत्यु (सर्प) दंश और शत्रु के ऊपर विजय प्राप्त कराता है 'क्षः स्त्री क्षः' इत्यादि मन्त्र का प्रयोग वशीकरण तथा विजयकारक माना गया है। 'ऐं ह्रीं·····ऐं श्रीमति' यह कुब्जिका विद्या है जो सब कुछ देने वाली कही गई है। ४-६।

---

१ ग. कक्षः । २ ख. ग. °त् । खेती च । ३ 'खेचेति···वारयेत्' नास्ति ख. ग. पुस्तकयोः । ४ क. ङ. ह्लूं स्त्रीं हूँ हूमि° । ५ क. ङ. स्त्रीं हूरूँ ह्लूमि° । ६ ख. ग. श्रीं स्कैं क्षैं स्म्यैं भ° छ. श्रीं स्फें कैं क्षौं भ° । ७ अम्विके······सर्वकरा' ख. पुस्तके नास्ति । क. ङ. आम्ब । ८ ग. ० के । रक्रां स्त्र स्कुं ॐ नडं रणनमे अरां अखि छं शं छी किल किल बिछे छज्मोप्स्रु श्रं श्रैं. श्रीं । छ. °के स्फेम्, ओं भं तं वश नमो अघोराय मुखे व्रां° व्रीं किलि किलि विच्चा स्फों हें स्फं फौं ह्रीं मैं श्रीमिति कु° ।

भूयः स्कन्दाय यानाह मन्त्रानीशश्च तान्वदे ॥७

अब मैं उन मन्त्रों को बतलाऊँगा जिन्हें भगवान् शंकर ने स्कन्द को बतलाया था ।७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानामन्त्रकथनं नाम षोडशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।३१६

अथ सप्तदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

सकलादिमन्त्रोद्धारः

ईश्वर उवाच—

सकलं निष्कलं शून्य कलाढ्यं [1]स्वमलंकृतम् ।
[2]क्षपणं क्षयमन्तस्थं कठोष्ठं चाष्टमं शिवम् ॥१
[3]प्रासादस्य पराख्यस्य स्मृतरूपं गुहाष्टधा ।
सदाशिवस्य[4] शब्दस्य रूपस्याखिलसिद्धये ॥२

महेश्वर बोले—अये गुह ! प्रसाद नामक शिवमन्त्र आठ प्रकार का होता है—सकल, निष्कल, शून्य, स्वमलङ्कृत, क्षपरण, क्षय अन्तस्थ और कठोष्ठ। सदा शिव शब्द में जितने अक्षर हैं वे सभी प्रकार की सिद्धि प्रदान करने वाले हैं ।१-२।

अमृतश्चांशुमांश्चेन्द्रश्चेश्वरश्चोग्र ऊहकः ।
एकपादैल ओजाख्य ओषधश्चांशुमान्वशी[5] ॥३
अकारादेर्वाचकाश्च ककारादेः क्रमादिमे ।
कामदेवः शिखण्डी च गणेशः कालशंकरौ ॥४
एकनेत्रो द्विनेत्रश्च त्रिशिखो दीर्घवाहुकः ।
एकपादर्धचन्द्रश्च वलपो योगिनीप्रियः ॥५
शक्तीश्वरो महाग्रन्थिस्तर्पकः स्थाणुदन्तुरौ ।
[6]निधीशो नन्दिपद्मश्च तथाऽन्यः शाकिनीप्रियः ॥६

---

१ च. ⁰लंहतम् । २ क. ङ. क्षमणं । ३ क. ङ. च. प्रसादस्य । ४ क. ङ. च. ⁰स्य सच्छन्दरू⁰ । ५ क. ङ. च. ⁰मान्शशी । ६ क. ङ. ⁰शोऽनन्तप⁰ ।

मुखबिम्बो भीषणश्च कृतान्तः प्राणसंज्ञकः ।
तेजस्वी शक्र उदधिः श्रीकण्ठः सिंह एव च ॥७
शशाङ्को[1]विश्वरूपश्च क्षश्च स्यान्नरसिंहकः ।

इस मंत्र के साथ जो न्यास किया जाता है उसमें 'अ' से लेकर 'क्ष' तक सभी वर्णों के चित्रों की कल्पना शरीर के विभिन्न अंगों में की जाती है । साथ ही शिव के विभिन्न रूपों की भी कल्पना की जाती है जो उनके प्रतिनिधि देवता हैं । वे रूप हैं—कामदेव, शिखण्डी, गणेश, काल, शंकर, एकनेत्र, द्विनेत्र, त्रिशिख, दीर्घबाहुक, एकपाद, अर्धचन्द्र, बलप, योगिनीप्रिय शक्तीश्वर, महाग्रन्थि, तर्पक, स्थाणुदन्तुर, निधीश, नन्दि, पद्म, शामिनीप्रिय, मुखबिम्ब, भीषण कृतान्त, प्राण, तेजस्वी, शक्र, उदधि, श्रीकण्ठ, सिंह, शशांक, विश्वरूप, क्ष और नरसिंहक ।३-८।

सूर्यमात्रासमाक्रान्तं विश्वरूपं तु कारयेत्[2] ॥८
अंशुमत्संयुतं कृत्वा शशनोजं [3]विना युतम् ।
ईशानमोजसाऽऽक्रान्तं प्रथमं तु समुद्धरेत् ॥९
[4]तृतीयं पुरुषं विद्धि दक्षिणं पञ्चमं तथा ।
सप्तमं वामदेव तु सद्योजातं ततः परम् ॥१०
रसयुक्तं तु नवमं ब्रह्मपञ्चकमीरितम् ।
ओंकाराद्याश्चतुर्थ्यन्ता नमोन्ताः सर्वमन्त्रकाः ॥११

विश्वरूप (ठ) को अंशुमान् (अनुस्वार) तथा ओज (ओकार) से युक्त करके रक्खा जाय, उसमें शशि बीज (स) का योग न किया जाय तो 'हों'। यह प्रथम बीज उद्धृत होता है, जो ईशान से सम्बद्ध है।

तदनन्तर पञ्चमूर्ति न्यास करना चाहिए जिसका विधान इस प्रकार है—मेरे मस्तिष्क में निवास करने वाले ईशान को नमस्कार, हें तत्पुरुषाय नमः, हुँ मेरे हृदय में निवास करने वाले अघोर को नमस्कार है, हें मेरी भुजाओं में रहने वाले वामदेव को नमस्कार, हं मेरे पैरों में रहने वाले सद्यो जात को नमस्कार । प्रणव से प्रारम्भ करके चतुर्थी विभक्ति में देवता का नाम लेकर अन्त में 'नमः' कहकर सभी मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिए ।९-११।

सद्योदेवा द्वितीयं तु [5]हृदयं चाङ्गसंयुतम् ।
चतुर्थं तु शिरो विद्धि ईश्वरं नाम नामतः ॥१२

१ ख. °श्च क्षुश्व° । २ क. ङ. °त् । अङ्गम° । ३ क. ङ. °नासुत° । ४ ख. ग. द्वितीयं । ५ क. छ. °यं चांशसं ।

(१उहकर्णशिखा ज्ञेया विश्वरूपसमन्विता ।
तन्मन्त्रमष्टसंख्यातं नेत्रं तु दशमं मतम्) ॥१३

अस्त्रं शशी समाख्यातं शिवसंज्ञं शिखिध्वजः ।
नमः स्वाहा तथा वौषड् हरूं च षट्कक्रमेण तु ॥१४

जातिषट्कं हृदादीनां प्रासादं मन्त्रमावदे ।
ईशानाद्रुद्रसंख्यातं प्रोद्धरेच्चांशुरञ्जितम् ॥१५

औषधाक्रान्तशिरसमूहकस्योपरि स्थितम् ।
अर्धचन्द्रोर्ध्वनादश्च बिन्दुद्वितयमध्यगम् ॥१६

तदन्ते विश्वरूपं तु कुटिलं तु त्रिधा ततः ।
एवं प्रासादमन्त्रश्च सर्वकर्मकरो मनुः ॥१७

शिखाबीजं समुद्धृत्य फट्कारान्त तु चैव फट् ।
अर्धचन्द्रासनं ज्ञेयं कामदेवससर्पकम् ॥१८

इसी प्रकार 'ॐ हं सद्योजाताय नमः' । यह सद्योजात देवता का मन्त्र है । द्वितीय, चतुर्थ आदि मात्रायें दीर्घ हैं, अतः उनका हृदयादि अंगों में न्यास किया जाता है । द्वितीय बीज को बोलकर हृदय में और अङ्गमन्त्र (नमः) बोलकर भी हृदय में न्यास करे । यथा-हां हृदयाय नमः, हृदि ।' चतुर्थ बीज 'शिरोमन्त्र' है, जो हकार में ईश्वर तथा अंशुमान् (ं) जोड़ने से सम्पन्न होता है । यथा—'ह्रीं शिरसे स्वाहा, शिरसि ।' विश्वरूप (ह) में ऊहक (ऊ) तथा अनुस्वार जोड़ने पर छठा बीज हं बनता है । उसे शिखामन्त्र जानना चाहिए । यथा--'हूं शिखायै वषट्, शिखायाम् हुम् ।' अर्थात् कवच का मन्त्र आठवाँ बीज (हैं) है । यथा—'हैं कवचाय हुम्-बाहुमूलयोः ।' दसवाँ बीज 'हौ' नेत्र-मन्त्र कहा गया है । यथा-हौ नेत्रत्रयाय वौषट्, नेत्रयोः ।' अस्त्र-मन्त्र वशी (विसर्गयुक्त) है । शिखिध्वज ! इसे शिव संज्ञक माना गया है । यथा—'हिः अस्त्राय फट् ।' (इससे चारों ओर तर्जनी और अङ्गुष्ठ द्वारा ताली बजाये ।) हृदयादि अंगों की छह जातियाँ क्रमशः इस प्रकार हैं—नमः, स्वाहा, वषट्, हुम्, वौषट् तथा तथा फट् । अब मैं 'प्रासादमन्त्र' बताता हूँ । 'हीं हौं हूं' ये प्रासादमन्त्र के तीन बीज हैं । इसे 'कुटिल' संज्ञा दी गई है । इस प्रकार यह प्रासादमन्त्र समस्त कार्यों को सिद्ध करने वाला है ।१२-१७।

१उहकर्णशिखा······मतम् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति ।

महापाशुपतास्त्रं तु सर्वदुष्टप्रमर्दनम् ।
प्रासादः सकलः प्रोक्तो निष्कलः प्रोच्यतेऽधुना ॥१६
सौषधं विश्वरूपं तु रुद्राख्यं सूर्यमण्डलम् ।
चन्द्रार्धनादसंयोगं [1]विसर्ज कुटिलं ततः ॥२०
निष्कलो भुक्तिमुक्तौ स्यात्पञ्चाङ्गोऽयं सदाशिवः ।
[2]अंशुमान्विश्वरूपं च आवृतं शून्यरञ्जितम् ॥२१
ब्रह्माङ्गरहितः शून्यस्तस्य मूर्तिरसस्तरुः[3] ।
विघ्ननाशाय भवति पूजितो [4]वालवालशैः ॥२२

'शिखा' नामक वीज मन्त्र अर्धचन्द्र के चिह्न से युक्त होकर तथा 'फट्कार' से समाप्त होकर शिव के पाशुपतास्त्र से कम शक्तिशाली नहीं होते हैं। वे सभी दुष्टों का मर्दन करने वाले भी हुआ करते हैं। यहाँ तक मैं सकल नामक प्रसाद मन्त्रों के सम्बन्ध में बतला चुका हूँ। अब निष्कल के सम्बन्ध में बतला रहा हूँ। निष्कल अथवा पञ्चाङ्ग-मन्त्र नामक शिवमन्त्र औषध, विश्वरूप, रुद्र, सूर्य, अर्धचन्द्र आदि बीजों और (ओं नामक) नाद मन्त्र से युक्त रहते हैं। इस मन्त्र का जप करने से मनुष्य इस लोक में भी सभी सुखों तथा परलोक में मोक्ष प्राप्त कर लेता है। शून्य नामक मन्त्र अंशुमान् नामक बीजों से युक्त रहते हैं। और उनके पूर्व और परे विश्वरूप नामक बीज रहा करते हैं। किन्तु ब्रह्माङ्ग नामक मन्त्रों से रहित होते हैं। इस मन्त्र का प्रयोग साधारणतया बालकों तथा मूर्खों द्वारा किया जाता है जिससे उनके ज्ञानार्जन के सभी विघ्न समाप्त हो जाते हैं।१८-२२।

अंशुमान्विश्वरूपाख्यमूषकस्योपरि स्थितम् ।
कलाद्यं सकलस्यैव पूजाङ्गादि च सर्वदा ॥२३
नरसिंहं कृतान्तस्थं तेजस्वी प्राणमूर्ध्वगम्[5] ।
अंशुमानूहकाक्रान्तमधोर्ध्वं खमलंकृतम् ॥२४
चन्द्रार्धनादनादान्तं ब्रह्मविष्णुविभूषितम् ।
उदधिं नरसिंहं च सूर्यमात्राविभेदितम् ॥२५

---

१ क. ङ. निःसङ्गं । २ 'अंशुमान्विश्वरूपमित्यत्र "अङ्गुलानि स्वरूपश्च सोऽमृतं शून्यसञ्जितम्' इति क. ङ. पुस्तकयोः । ३ ख. ग. °रसंभरम् । वि । ४ छ. बालाबालिशैः । ५ क. ग. ङ. च. °मूर्धगं° ।

यदा कृतं तदा तस्य ब्रह्माण्यङ्गानि पूर्ववत् ।
ओजाख्यमंशुमद्युक्तं प्रथमं वर्णमुद्धरेत् ॥२६
अंशुमच्चांशुनाऽऽक्रान्तं द्वितीयं वर्णनायकम् ।

'कलाद्य' नामक मन्त्र में अंशुमान् नामक वीज होता है । उसमें 'विश्वरूपम्' और 'ऊहक' नामक बीज भी रहा करते हैं । पूजन के सभी संस्कारों को उसी विधि से करना चाहिए जो विधि सकल मन्त्रों से पूजन के लिए बताई गई है । स्वमलङ्कृत नामक मन्त्रों में नरसिंह और कृतान्त नामक वीज होते हैं । इन मन्त्रों के बाद में अंशुमान तथा ऊहक वर्ग का एक मन्त्र भी आता है। इस मंत्र से सम्बद्ध न्यास में जिन मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है उसमें अर्धचन्द्र, प्रणव, ब्रह्मा, विष्णु, उदधि और नरसिंह वीज रहते हैं । शेष सभी कर्म पूर्ववत् किये जाते हैं । पहले ओज नामक वीजमन्त्र को अंशुमत् नामक वीज के साथ संयुक्त करना चाहिए तदनन्तर अंशुमत् नामक वीज मन्त्र को अंशु नामक वीज मन्त्र से युक्त करना चाहिए ।२३-२६३।

अंशुमानीश्वरं तद्वत्तृतीयं मुक्तिदायकम् ॥२७
ऊहकश्चांशुनाऽऽक्रान्तं वरुणं प्राणतैजसम् ।
पञ्चमं तु समाख्यातं कृतान्तं तु ततः परम् ॥२८
अंशुमानुदकप्राणः सप्तमं वर्णमुद्धृतम् ।
पद्ममिन्दुसमाक्रान्तं नन्दीशमेकपादधृक् ॥२६
[1]प्रथमं चान्ततो योज्यं क्षपणं दशवीजकम् ।
अस्याऽऽद्यं च तृतीयं च पञ्चमं सप्तमं तथा ॥३०
सद्योजातं तु नवमं द्वितीयं हृदयादिकम् ।
दश तु प्रणवं यत्तु फडन्तं चास्त्रमुद्धरेत् ॥३१

तीसरा वीज अशुमान् और ईश्वर शब्दों से बनता है । इस प्रकार से बना हुआ मन्त्र साधक को मोक्ष प्रदान करने वाला है । अगला मन्त्र इस प्रकार से बनता है कि पहले ऊहक नामक प्रथम बीज को लिखना चाहिए । उसके साथ ही अंशुबीज और फिर क्रमशः वरुण, प्राग् तेजस, और कृतान्त बीज लिखना चाहिए । सातवें वर्ण मे अशुमान् ऊहक, प्राण, पद्म, इन्दु और नन्दीश बीज रहते हैं जिनके बाद में एकपादधृक् बीज रहता है । क्षपण नामक मन्त्रोंमें आदि

१ ख. ॅमं वा ततो ।

से दश बीज रहते है। मन्त्र के तृतीय, पञ्चम, और सप्तम पादों में क्रमशः इनके आधे-आधे अर्थात् पाँच बीज रहते हैं। नवें पाद में सद्योजात देवता का बीज रहता है और दूसरे पाद में हृदादि मन्त्र रहते हैं। उपर्युक्त दश बीजों से युक्त फट् से अन्त होता है। इस मन्त्र को अस्त्र मन्त्र कहते हैं।२७-३१।

[1]नमस्कारयुतान्यत्र ब्रह्माङ्गानि (णि) [2]तु नान्यथा।
द्वितीयादष्टमं यावदष्टौ विद्येश्वरा मताः ॥३२
अनन्तेशश्च सूक्ष्मश्च तृतीयश्च शिवोत्तमः।
[3]एकमूर्त्येकरूपस्तु [4]त्रिमूर्तिरपरस्तथा ॥३३
[5]श्रीकण्ठश्च शिखण्डी च अष्टौ विद्येश्वराः स्मृताः।
शिखण्डिनोऽप्यनन्तान्तं मन्त्रान्तं मूर्तिरीरिता।३४

उपर्युक्त मन्त्रों से सम्बद्ध अङ्गन्यास में अनन्त, ईश, सूक्ष्म, शिवोत्तम, एकमूर्ति, एकरूप या त्रिमूर्ति, श्रीकण्ठ और शिखण्डी नामक आठ विघ्नेश्वरों के नामों के साथ 'नमः' शब्द का प्रयोग करना चाहिए। शिखण्डी से लेकर अनन्त तक की मूर्तियाँ इस मन्त्र की मूर्तियाँ कही गयी हैं।३२-३४।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सकलादिमन्त्रोद्धारवर्णनं नाम सप्तदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३१७

अथाष्टादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

गणपूजा

ईश्वर उवाच—

विश्वरूपं समुद्धृत्य तेजस्युपरि संस्थितम्।
नरसिंहं ततोऽधस्तात्कृतान्तस्तदधो न्यसेत् ॥१

---

१ क. ङ. °रमुदाहृत्य ब्र° । २ क. ङ. तु वाऽन्य° । ३ क. ङ. च. °करुद्रस्तु । ४ क. ङ. °था । शिखण्डश्च । ५ ख. ग. श्रीखण्डश्च ।

प्रणवं तदधः कृत्वा [1]ऊरुकं तदधः पुनः ।
अंशुमान्विश्वमूर्तिस्थं कण्ठोष्ठे प्रणवादिकः ॥२
नमोन्तः स्याच्चतुर्वर्णो विश्वरूपं च कारणम् ।
सूर्यमात्राहतं ब्रह्मण्यङ्गानीह तु पूर्ववत् ॥३

महेश्वर बोले—पहले विश्वरूप बीज को तेजस् बीज के ऊपर रखना चाहिए। उसके नीचे नरसिंह बीज, उसके नीचे प्रणव मन्त्र उसके नीचे ऊहक बीज, उसके नीचे अंशुमान् बीज और उसके नीचे हकार तथा प्रणव को रखना चाहिए। प्रथम चारवर्णो के अन्त में 'नमः' का प्रयोग करना चाहिए और पूर्वोक्त रीति से ब्रह्माङ्गों की रचना करनी चाहिए।१-३।

[2]उद्धरेत्प्रणवं पूर्वं प्रस्फुरद्वयमुच्चरेत् ।
घोरघोरतरं पश्चादनुरूपमतः स्मरेत् ॥४
[3]चटशब्दं द्विधा कृत्वा ततः [4]प्रणवमुच्चरेत् ।
दहेति च द्विधा कार्यं [5]धमेति च द्विधा मतम् ॥५
घातयेति द्विधा कृत्वा हूंफडन्तं समुच्चरेत् ।
अघोरास्त्रं तु नेत्रं स्याद्गायत्री चोच्यतेऽधुना ॥६
तन्महेशाय विद्महे महादेवाय धीमहि ।
[6]तन्नः शिवः प्रचोदयाद्गायत्री सर्वसाधनी ॥७

पहले प्रणव बीज को अलग करके तदनन्तर उसके घोर घोरतर रूप का स्मरण करना चाहिए। पहले 'चट' शब्द को दो भागों में करके प्रणव का उच्चारण करना चाहिए। इसी प्रकार 'दह', 'धम', और घातम शब्दों को भी दो-दो भागों में विभक्त कर देना चाहिए। और उसके बाद में 'हुं' तथा 'फट्' का उच्चारण करना चाहिए यह अघोर मन्त्र कहलाता है। अब मैं (उसी देवता से सम्बद्ध गायत्री के सम्बन्ध में बतलाऊँगा। 'तन्महेशाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नः शिवः प्रचोदयात्—यह गायत्री सब कुछ प्रदान करने वाली है।४-७।

---

१ ख. ग. उदकं। च. ऊहूकं। २ क. ङ. °णवात्पूर्वं स्फुरद्वयमम्°। ३ क. ङ. वहुशब्दं। ४ ग. प्रवरमु°। ५ छ. वमेति। ६ क. ङ. तन्नो रुद्रः प्र°।

यात्रायां विजयादौ च यजेत्पूर्वं गणं श्रिये ।
[1]तुर्यास्रे तु पुरा क्षेत्रे समन्तादर्कभाजिते ॥८
चतुष्पदं त्रिकोणे तु त्रिदलं कमलं लिखेत् ।
तत्पृष्ठे पदिकावीथिभागि त्रिदलमश्वयुक् ॥९
वसुदेवसुतैः साब्जैस्त्रिदलैः पादपट्टिका ।
तदूर्ध्वे वेदिका देया भागमात्रप्रमाणतः ॥१०

यात्रा और विजयादि (कार्यों में) श्री प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम बारह कोष्ठकों से बने हुए चक्र के पूर्व की ओर उसके चतुर्थांश में 'गण' का यजन करना चाहिए। चतुष्पद चक्र के बीच में एक त्रिकोण बनाकर उसके ऊपर त्रिदल कमल का चित्रण करना चाहिए। उसके पृष्ठ के ऊपर पदिका भाग में सात त्रिदल कमलों का चित्रण करना चाहिए। उसके ऊपर भागमात्र प्रमाण की वेदिका बनानी चाहिए।८-१०।

द्वारं पद्ममितं काष्ठादुपद्वारं विवर्णितम् ।
द्वारोपद्वाररचितं मण्डलं विघ्नसूदनम् ॥११
आरक्तं कमलं मध्ये वाह्यपद्मानि तद्बहिः ।
सिता तु वीथिका कार्या द्वाराणि तु यथेच्छया ॥१२
कर्णिका पीतवर्णा स्यात्केशराणि तथा पुनः ।
मण्डलं विघ्नमर्दाख्यं मध्ये गणपतिं यजेत् ॥१३

इस प्रकार से बने हुए मण्डल में कमल के समान द्वार तथा उपद्वार (खिड़की) का निर्माण करना चाहिए। इस प्रकार से बनाया गया मण्डल सभी विघ्नों का नाश करने वाला होता है। मध्यवर्ती कमल रक्तवर्ण का होना चाहिए जिसके बाहर अन्य कमल रहते हैं, वीथिका श्वेत वर्ण की होती है किन्तु द्वारों को इच्छानुसार वर्णों का बनाया जा सकता है। कमल की कर्णिका तथा पराग पीला होना चाहिए। इसे 'विघ्नमर्द' नामक मण्डल कहते हैं। इसके बीच में गणपति का यजन करना चाहिए।११-१३।

नामाद्यं सवराकं स्याद्देवाच्छक्रसमन्वितम् ।
शिरोहतं तत्पुरुषेण[2] उमाद्यं च नमोन्तकम् ॥१४

१ क. ङ. तुर्याग्ने २ क. ङ. °ण गण्डमाद्यं वमो° ।

गजाख्यं गजशीर्षं च गाङ्गेयं गणनायकम् ।
त्रिरावर्तं गगनगं गोपतिं पूर्वपङ्क्तिगम् ॥१५
विचित्रांसं महाकाव्यं लम्वोष्ठं लम्वकर्णकम् ।
लम्वोदरं महाभागं विकृतं पार्वतीप्रियम् ॥१६
भयावहं च भद्रं च भगणं भयसूदनम् ।
द्वादशैते दशपङ्क्तौ देवत्रासं च पश्चिमे ॥१७

तदनन्तर इन्द्र इत्यादि देवताओं के नामों के आदि में 'ओम्' और अन्त में 'नमः' लगाकर उनकी पूजा करनी चाहिए। मण्डल की पूर्व पंक्ति में गज, गजशीर्ष, गांगेय, गणनायक, त्रिरावर्त, गगनग और गोपति नामक देवताओं का पूजन करना चाहिए। मण्डल की दश पंक्तियों में जिन वारह देवताओं का यजन करना चाहिए उनके नाम हैं—विचित्रांश, महाकाय, लम्वोष्ठ, लम्व-कर्णक, लम्वोदर, महाभाग, विकृत, पार्वतीप्रिय, भयावह भद्र, भगण, और भयसूदन। (मण्डल के) पश्चिम की ओर देवत्रास नामक देवता की पूजा करनी चाहिए।१४-१७।

महानादं भासुरं च विघ्नराजं गणाधिपम् ।
उद्भटस्वनशुण्डौ च महाशुण्डं च भीमकम् ॥१८
मन्मथं मधुसूदं च [1]सुन्दरं भावमुष्टकम् ।
सौम्ये ब्रह्मेश्वरं ब्राह्मं मनोवृत्तिं च संलयम् ॥१९
लयं [2]नृत्यप्रियं लौल्यं विकर्णं वत्सलं तथा ।
कृतान्तं कालदण्डं च यजेत्कुम्भं च पूर्ववत् ॥२०
अयुतं च जपेन्मन्त्रं होमयेत्तु दशांशतः ।
शेषाणां तु दशाहुत्या जपाद्धोमं तु कारयेत् ॥२१
पूर्णां दत्त्वाऽभिषेकं तु कुर्यात्सर्वं तु सिध्यति ।
भूगोश्वगजवस्त्राद्यैर्गुरुपूजां चरेन्नरः ॥२२

इसके वाद क्रमशः महानाद, भासुर, विघ्नराज, गणाधिप, उद्भट, स्ववशुण्ड, भीमक, मन्मथ, मधुशूद, सुन्दर और भावमुण्टक नामक देवताओं की अर्चना करनी चाहिए। उत्तर की ओर पूर्वोक्त रीति से ब्रह्मेश्वर, ब्राह्म, मनोवृत्ति,

१ ख. ग. °रं तारपुष्ट° । २ ख. ग. भृत्यप्रियं ।

संलय, लय, नृत्यप्रिय, लौल्य, विकर्ण, वत्सल, कृतान्त, कालदण्ड और कुम्भ का यजन करना चाहिए। देवता के मन्त्र का दस हजार वार जप करना चाहिए और उसके दशांश (अर्थात् एक हजार मन्त्रों) से हवन करना चाहिए। पूर्णाहुति देकर अभिषेक करने से सब कुछ सिद्ध हो जाता है। तदनन्तर पृथ्वी, गो, अश्व, गज और वस्त्रादि से गुरु-पूजन करना चाहिए।१८-२२।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गणपूजादि-विधानकथनं नाम नामाष्टादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः।३१८

—

अथैकोनविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

वागीश्वरीपूजा

ईश्वर उवाच—

वागीश्वरीपूजनं च प्रवदामि समण्डलम्।
ईश्वरं कालसंयुक्तं मनुं वर्णसमायुतम् ॥१
निषाद ईश्वरं कार्यं मनुना चन्द्रसूर्यवत्।
अक्षरं न हि देयं स्याद्ध्यायेत्कुन्देन्दुसन्निभाम् ॥२
पञ्चाशद्वर्णमालां तु मुक्तास्रग्दामभूषिताम्।
वरदाभयाक्षसूत्रपुस्तकाढ्यां त्रिलोचनाम् ॥३
लक्षं जपेन्मन्त्रकांस्तु[1] कादान्तं वर्णमालिकाम्।
अकारादिक्षकारान्तां [2]विशन्तीं मालवत्स्मरेत् ॥४
कुर्याद्गुरुश्च दीक्षार्थं मन्त्रग्राहे तु मण्डलम्।
तुर्याग्रमिन्दुभक्तं तु भागाभ्यां कमलं हितम् ॥५

ईश्वर बोले—अव मैं मण्डल के सहित वागीश्वरी-पूजन का वर्णन करूँगा, साथ ही कालयुक्त ईश्वर और वर्णों से युक्त मन्त्र का भी वर्णन करूँगा। अये निषाद! चन्द्र और सूर्य के समान मन्त्र से ईश्वर का ध्यान करना चाहिए

---

१ ग. °न्मस्तकान्तु स्कन्दान्तं। २ क. ङ. °न्तीं मणिव°। छ. °न्ती° मातृव°।

किन्तु उस मन्त्र के किसी भी अक्षर को छोड़ना नहीं चाहिए। (वागीश्वरी) देवी का ध्यान इस प्रकार से करना चाहिए कि वह कुन्द पुष्प और चन्द्रमा के समान कान्ति वाली है, वर्णमाला के पचास अक्षरों से समन्वित है; मोतियों की माला की लड़ी से विभूषित है, वर और अभय प्रदान करने वाली है, रुद्राक्ष यज्ञोपवीत और पुस्तकों से सुशोभित हो रही है, और तीन नेत्रों वाली है। 'क' से प्रारम्भ कर वर्णमाला के अन्तिम अक्षर से बने हुए मन्त्र का एकलाख जप करमा चाहिए। अकार से लेकर क्षकार तक वर्णों में निवास करने वाली (वागीश्वरी) देवी का स्मरण माला के समान करना चाहिए। दीक्षा के लिए मन्त्र लेने में गुरु को एकमण्डल का निर्माण करना चाहिए। मण्डल में एक वर्ग के ऊपर दो भागों से युक्त कमल रहना चाहिए।१-५।

वीथिका पदिका कार्या पद्मान्यष्टौ चतुष्पदे।
वीथिका पट्टिका वाह्ये द्वाराणि द्विपदानि तु ॥६
उपद्वाराणि तद्वच्च कोणवाह्यं द्विपट्टिकम्।
सितानि नवपद्मानि कर्णिका कनकप्रभा ॥७
केशराणि विचित्राणि कोणान्रक्तेन पूरयेत्।
व्योमरेखान्तरं कृष्णं द्वाराणीन्द्रेभमानतः ॥८
मध्ये सरस्वतीं पद्मे वागीशी पूर्वपद्मके ॥

वर्ग के अन्दर वीथिका, पदिका और आठ पद्मों का निर्माण करना चाहिए। बाहर की ओर भी वीथिका, पदिका और आठ पद्मों का निर्माण करना चाहिए। बाहर की ओर भी वीथिका पट्टिका द्वार और द्विपदों का निर्माण करना चाहिए। उसी प्रकार से वाह्यकोण में द्विपट्टिका और उपहारों (खिड़कियों) का चित्रण करना चाहिए। नो कमल श्वेतवर्ण और कर्णिका सुनहरी होती है। इसी प्रकार केशर को नाना प्रकार के रंगों से और कोणों को रक्तवर्ण से रंगना चाहिए। व्योमरेखा के अतिरिक्त अन्यसभी रेखायें कृष्ण वर्ण की और द्वारों को ऐरावत के मान के अनुसार या श्वेत होना चाहिये। मध्य पद्म पर सरस्वती और पूर्व की ओर के पद्म के ऊपर वागीश्वरी देवी का चित्रण करना चाहिए।५-८½।

हृल्लेखा चित्रवागीशी गायत्री विश्वरूपया ॥९
[1]शांकरी मतिर्धृतिश्च पूर्वाद्या ह्रीं स्वबीजकाः ।
[2]ध्येया सरस्वतीवच्च कपिलान्येन होमकः ॥१०
संस्कृतप्राकृतकविः काव्यशास्त्रादिविद्भवेत् ॥११

इनके अतिरिक्त हृल्लेखा, चित्रवागीश्वरी, गायत्री, विश्वरूपा, शांकरी, मति और धृति का भी पूजन करना चाहिए। उनके (पूजन के मन्त्रों में) 'ह्रीं' बीज का प्रयोग करके सरस्वती के समान उनका भी ध्यान करना चाहिए। तदनन्तर कपिला गाय के आज्य से हवन करना चाहिए। ऐसा करने से साधक संस्कृत और प्राकृत का कवि हो जाता है तथा काव्यशास्त्रादि का ज्ञाता भी हो जाता है।९-११।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वागीश्वरीपूजाविधानकथनं नामैकोनविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः।३१९

अथ विंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

मण्डलानि

ईश्वर उवाच—

सर्वतोभद्रकान्यष्ट मण्डलानि वदे गुह[3]।
शङ्कुना साधयेत्प्राचीमिष्टायां विषुवे सुधीः ॥१
चित्रास्वात्यन्तरेणाथ दृष्टसूत्रेण वा पुनः ।
पूर्वापरायतं सूत्रमास्फाल्य मध्यतोऽङ्कयेत् ॥२

महेश्वर बोले—अये गुह! अब मैं सर्वतोभद्र नामक आठ मण्डलों का वर्णन कर रहा हूँ। विद्वान् साधक को इष्ट समय में अथवा जब सूर्य विषुवत् रेखा पर हो, पूर्व दिशा में शङ्कु से (इस मण्डल की) साधना करनी चाहिए। किन्तु इस कार्य के लिए चित्रा और स्वाती नक्षत्रों को वर्जित समझा जाता है। इसके लिए एक सूत्र का प्रयोग किया जाता है। पहले सूत्र को पूर्व और पश्चिम की ओर फैलाकर उसके बीच में चिह्न बना देना चाहिए।१-२।

---

१ ग. शाकम्बरी। २ क. ङ. 'मात्सर°। ३ क. ङ. च. गृहे।

कोटिद्वयं तु तन्मध्यादङ्कयेद्दक्षिणोत्तरम् ।
[1]मत्स्यद्वयं प्रकर्तव्यं स्फालयेद्दक्षिणोत्तरम्[2] ॥३
शतक्षेत्रार्धमानेन कोणसंपातमादिशेत् ।
एवं सूत्रचतुष्कस्य स्फालनाच्चतुरस्रकम् ॥४

उसके बीच से उत्तर और दक्षिण की ओर दो अन्य रेखायें अङ्कित कर दी जानी चाहिए। वहीं पर दो मछलियों को बनाकर उन्हें उत्तर और दक्षिण की ओर रख देना चाहिए। पचास क्षेत्रों के परिमाण के बराबर कोण-सम्पात का निर्माण करना चाहिए। इस प्रकार से बने चौखट में चार कोण बन जाते हैं।३-४।

जायते तत्र कर्तव्यं भद्रं वेदकरं शुभम् ।
वसुभक्तेन्दुद्विपदे क्षेत्रे वीथी च भागिका ॥५
द्वारं द्विपदिकं पद्ममानाद्वै सकपोलकम् ।
कोणबन्धविचित्रं तु द्विपदं तत्र [3]वर्तयेत् ॥६
शुक्लं पद्मं कर्णिका तु पीता चित्रं तु केसरम् ।
रक्ता वीथी तत्र कल्प्या द्वारं लोकेशरूपकम् ॥७

इस प्रकार से सभी शुभ-कर्मों को करने वाला सर्वतोभद्र बन जाता है। इस चक्र की वीथियाँ मण्डल की बाह्य सीमा से दूर पर बनी हुयी दो रेखाओं तक विस्तृत रहती है। यह मण्डल सम्पूर्ण क्षेत्र के अनुपात से दो पद स्थान में बना रहता है। इस चक्र के ऊपर बना हुआ कमल, शुक्ल, उसकी कर्णिका पीत और उसके केसर विभिन्न रंगों में होते हैं। वहाँ पर जो वीथी बनायी जाती है उसे काल और उसके द्वार को लोकेश (विष्णु) के रूप का (श्याम वर्ण) होना चाहिए।५-७।

[4]रक्तकोणं विधौ नित्ये नैमित्तिकेऽब्जकं शृणु ।
असंसक्तं तु संसक्तं द्विधाऽब्जं भुक्तिमुक्तिकृत् ॥८
असंसक्तं मुमुक्षूणां संसक्तं तत्त्रिधा पृथक् ।
बालो युवा च वृद्धश्च नामतः फलसिद्धिदाः ॥९

---

१ क. ङ. च. वात्स्यद्वयं । २ क. ङ. °म् । क्षात° । ख. ग. °म् । गत° ।
३ क. ङ. नर्तयेत् । ४ ख. ग. रक्तकोशं ।

नित्य और नैमित्तिक दोनों विधियों में मण्डल का कोण रक्तवर्ण हुआ करता है। अब (मध्यवर्ती) कमल के सम्बन्ध में सुनिये। यह कमल दो प्रकार का होता है—असंसक्त (जिसके दल मण्डल का स्पर्श कर रहे हों) और संसक्त (जिसके दल मण्डल का स्पर्श कर रहे का स्पर्श न कर रहे हों) ये दोनों कमल भोग और मोक्ष को देने वाले होते हैं। मुमुक्षुओं के लिए असंसक्त और बाल, युवा, वृद्ध इन तीन प्रकार के साधकों के लिए संसक्त कमल का विधान है। ये सभी कमल अपने नाम से ही फल और सिद्धि प्रदान करने वाले हैं।८-६।

पद्मक्षेत्रे तु [1]सूत्राणि दिग्विदिक्षु विनिक्षिपेत् ।
वृत्तानि पञ्चकल्पानि पद्मक्षेत्रसमानि तु ॥१०

पद्मक्षेत्र में दिशाओं और अवान्तर दिशाओं में सूत्रों को फैला देना चाहिए। तदनन्तर पद्मक्षेत्र के समान पाँच वृत्तों का निर्माण करना चाहिए।१०।

प्रथमे कर्णिका तत्र पुष्करैर्नवभिर्युता ।
केसराणि चतुर्विंशद्वितीयेऽथ तृतीयके ॥११
दलसंधिर्गजकुम्भनिभान्तर्यद्दलाग्रकम् ।
पञ्चमे व्योमरूपं तु संसक्तं कमलं स्मृतम् ॥१२
असंसक्ते दलाग्रे तु दिग्भागैर्विस्तराद्भजेत्[2] ।
भागद्वयपरित्यागाद्वस्त्वंशैर्वर्तयेद्दलम् ॥१३
संधिविस्तारसूत्रेण [3]तन्मानान्नाञ्जयेद्दलम्[4] ।
सव्यासव्यक्रमेणैव[5] वर्धयेत्तद्भ्रवेत्तथा ॥१४
अथ वा संधिमध्यात्तु भ्रामयेदर्धचन्द्रवत् ।
संधिद्वयाग्रसूत्रं वा वालपद्मं तदा भवेत् ॥१५

प्रथम पद्मक्षेत्र की कर्णिका नवपुष्करों से युक्त होती है और दूसरे तथा तीसरे पद्मक्षेत्र में चौवीस-चौवीस केसर हुआ करते हैं। संसक्त कमल उसे कहते हैं जो पञ्चम क्षेत्र में वना हुआ और विस्तृत रहता है तथा जिसमें दलों की सन्धि गजकुम्भ के समान दलाग्र के बीच में रहा करती है। असंसक्त कमल

---

१ ख. ग. सूक्ष्माणि। २ क. ख. ग. °द्भ्रवेत्। ३ ख. °न्मात्रात्क्षालये°। ४ ग. च. °येत्कुल°। ५ क. ङ. च. °व वृद्धये तद्भ।

में दलाग्र दिशाओं में फैले हुए रहते है। दो भागों को छोड़कर (अन्य) वस्तुओं के अंशों से दल को संयुक्त कर दिया जाता है। संधि विस्तार सूत्र से कमल के दल को आवेष्टित कर देना चाहिए किन्तु उसका अभ्यञ्जन नही करना चाहिए। बायी ओर और दक्षिण ओर से परिक्रमा करने से वह (मंडल) और वढ़ जाता है। अथवा उसके बीच से चारों ओर एक अर्धवृत्त वना देना चाहिए अथवा दो संधियों के अग्रवर्ती सूत्र को अधिवृत्त वना देना चाहिए। इस प्रकार से वना हुआ पद्म बालपद्म कहलाता है।११-१५।

संधिसूत्रार्धमानेन पृष्ठतः परिवर्तयेत्।
तीक्ष्णाग्रं तन्तुवातेन कमलं भुक्तिमुक्तिदम्॥१६
मुक्तौ वृद्धं च वश्यादौ बालं पद्मं समानकम्।
नवनाभं नवहस्तं भागैर्मन्त्रात्मकैश्च तत्॥१७
मध्येऽब्जं पट्टिकावीथीद्वारेणाब्जस्य मानतः।
कण्ठोपकण्ठमुक्तानि तद्बाह्ये वीथिका मता॥१८

संधि-सूत्र के अर्ध परिमाण से पीछे की ओर घूम जाना जाहिए। तीक्ष्ण अग्रभाग वाला कमल भुक्ति और मुक्ति प्रदान करने वाला कहा गया है। मुक्ति प्राप्ति के लिए वृद्ध कमल तथा वशीकरण आदि के लिए बालपद्म उपयुक्त होता है। 'नवनाभ' कमलचक्र नौ हाथों का होता है और इसके भाग मन्त्र के रूप में रहा करते है। कमल के वीच में कमल के परिमाण के अनुसार पट्टिका वीथी और द्वार रहा करते हैं साथ ही कण्ठ और उपकण्ठ और उसके बाहर वीथिका रहा करती है।१६-१८।

पञ्चभागान्विता सा तु समन्ताद्दशभागिका।
दिग्विदिक्ष्वष्ट पद्मानि द्वारपद्मं सवीथिकम्॥१९
तद्बाह्ये पञ्चपदिका वीथिका यत्र भूषिता।
पद्मवद्द्वारकण्ठस्तु पदिकं चाष्टकण्ठकम्॥२०
कपोलं पदिकं कार्यं दिक्षु द्वारत्रयं स्फुटम्।
[1]कोणवन्धं त्रिपट्टं तु द्विपदं वज्रवद्भवेत्॥२१

१ क. ङ. °बन्धे त्रिपादं तु त्रिप°।

उसके पाँच और दश भाग हुआ करते हैं। दिशाओं और अन्तर्दिशाओं में आठ कमल रहते हैं। द्वार पद्म वीथी से युक्त हुआ करता है। उसके बाहर जहां पञ्चपदिका वीथिका सुशोभित होती है वहाँ पद्म के समान द्वार-कण्ठ तथा अष्ट कण्टक पदिक बनाया जाता है। (विभिन्न) दिशाओं में तीन द्वारों से युक्त एक पदिक का निर्माण करना चाहिए। त्रिपट्ट कोणयुक्त और द्विपद वज्रवत् होना चाहिए।१६-२१।

मध्यं तु कमलं शुक्लं पीतं रक्तं च नीलकम्।
पीतं शुक्लं च धूम्रं च रक्तं पीतं च मुक्तिदम् ॥२२
पूर्वादौ कमलान्यष्ट शिवविष्ण्वादिकं यजेत्।
प्रासादमध्यतोऽभ्यर्च्य शक्रादीनब्जकादिषु ॥२३
अस्त्राणि वाह्यवीथ्यां तु बिष्णवादीनश्वमेधभाक्।
पवित्रारोहणादौ च महामण्डलमालिखेत् ॥२४

मध्यकमल शुक्लवर्ण का होता है तथा शेष दिशाओं के कमल पूर्वादिक्रम से पीत, रक्त, नील, पीत, शुक्ल, धूम्र, रक्त तथा पीत-वर्ण के होते हैं। यह कमलचक्र, मुक्तिदायक है। पूर्वादि दिशाओं में आठ कमलों तथा शिव और विष्णु आदि का यजन करना चाहिए। प्रसाद के बीच मे अर्चना करके पद्म आदि में इन्द्रादि का यजन करने वाला अश्वमेध का भागी होता है। पवित्रारोहण आदि (संस्कारों) के समय महामण्डल (नामक चक्र) का निर्माण करना चाहिए।२२-२४।

अष्टहस्तं पुरा क्षेत्रं रसपक्षैर्विवर्तयेत्।
द्विपदं कमलं मध्ये वीथिका पदिका ततः ॥२५
दिग्विदिक्षु ततोऽष्टौ च नीलाब्जानि विवर्तयेत्।
मध्यपद्मप्रमाणेन विशत्पद्मानि तानि तु ॥२६
दलसंधिविहीनानि नीलेन्दीवरकाणि च।
तत्पृष्ठे पदिका वीथी [1]स्वस्तिकानि तदूर्ध्वतः ॥२७

आठ हाथ लम्बी भूमि को वारह चौकोर भागों में विभक्त करना चाहिए। उसके बीच में बनाये जाने वाले कमल सम्पूर्ण चित्र के दो पदों के बराबर

१ 'स्वस्तिकानि...पीतवीथी' क. पुस्तके नास्ति।

होने चाहिए और वीथिका को एक पद परिमाण का होना चाहिए। आठों दिशाओं तथा अवान्तर दिशाओं में आठ नील कमलों की रचना करनी चाहिए। मध्यवर्ती कमल के परिमाण में अन्य बीस कमलों का निर्माण करना चाहिए। इनमें जो नील कमल होते हैं उन्हें दल की संधियों से रहित चित्रित करना चाहिए। उनके ऊपर स्वस्तिक की रचना करनी चाहिए।२५-२७।

द्विपदानि तथा चाष्टौ कृतभागकृतानि तु।
वर्तयेत्स्वस्तिकांस्तत्र वीथिका पूर्ववद्वहिः ॥२८
द्वाराणि कमलं यद्वदुपकण्ठयुतानि तु।
रक्तं कोणं पीतवीथी) नीलं पद्मं च मण्डले ॥२९
स्वस्तिकादि विचित्रं च सर्वकामप्रदं गुह।
पञ्चाब्जं पञ्चहस्तं स्यात्समन्ताद्दशभाजितम् ॥३०

वहाँ आठ भागों में विभक्त द्विपदों का निर्माण करके स्वस्तिक की रचना करनी चाहिए और वाहर की ओर पहले के समान वीथिका वना दी जाती है। कमल के समान द्वारो को भी उपकण्ठयुक्त होना चाहिए। इस मण्डल में कोण वीथी पीली और पद्म नील वर्ण का होता है। हे गुह! यह स्वस्तिकादि (मण्डल) विचित्र और सब कुछ देने वाला होता है। पञ्चाब्ज (नामक मण्डल) पांच हाथ विस्तृत तथा चारों ओर से दश भागों नें विभक्त रहता है।२८-३०।

द्विपदं कमलं वीथी पट्टिका दिक्षु पङ्कजम्।
चतुष्कं पृष्ठतो वीथी पदिका द्विपदाऽन्यथा ॥३१
कण्ठोपकण्ठयुक्तानि द्वाराण्यब्जं तु मध्यतः।
पञ्चाब्जमण्डले ह्यस्मिन्सितं पीतं च पूर्ववत् ॥३२
वैडू (दू) र्याभं दक्षिणाब्जं कुन्दाभं वारुणं कजम्।
उत्तराब्जं तु शङ्खाभमन्यत्सर्वं विचित्रकम् ॥३३

द्विपद कमल में पट्टिका, वीथी तथा चतुष्क पद्म में पदिका वीथी अन्यथा (सर्वत्र) द्विपदा वीथी हुआ करती है। (इस मण्डल के) द्वार कण्ठोपकण्ठ युक्त होते है। बीच में कमल वना रहता है। इस पञ्चाब्ज मण्डल में पूर्व की ओर का कमल श्वेत और पीत, दक्षिण की ओर का कमल वैदूर्य के समान, पश्चिम की ओर का कमल कुन्द के समान, उत्तर की ओर का कमल शंख के समान और अन्य कमल विचित्र वर्ण का होता है। ३१-३३।

सर्वकामप्रदं वक्ष्ये दशहस्तं तु मण्डलम् ।
विकारभक्तं तुर्यास्रं द्वारं तु द्विपदं भवेत् ॥३४
मध्ये पद्मं पूर्ववच्च विघ्नध्वंसं वदाम्यथ ।
चतुर्हस्तं पुरं कृत्वा वृत्तं चैव करद्वयम् ॥३५
वीथिका हस्तमात्रा तु स्वस्तिकैर्बहुभिर्वृता ।
हस्तमात्राणि द्वाराणि दिक्षु वृत्तं सपद्मकम् ॥३६

अब मैं दश हाथ वाले उस मण्डल के सम्वन्ध में बतलाऊँगा जो सभी इच्छाओं को पूरा करने वाला है। उसमें एक चतुष्कोण आकार बनाया जाता है जो समान भागों में विभक्त रहता है। इस मण्डल के द्वार सम्पूर्ण क्षेत्र के दो पदों में विस्तृत रहा करते हैं अब मैं विघ्नध्वंस नामक पक्ष (मण्डल) के सम्बन्ध में बता रहा हूँ। यह चार हाथ विस्तृत होता है और उसके बीच में एक-दो हाथ का मण्डल बना रहता है। उसकी वीथिका एक हाथ की रहती है और यह बहुत से स्वस्तिक चिह्नों से आवृत रहता है। ३४-३६।

पद्मानि पञ्च शुक्लानि मध्ये पूज्यश्च निष्कलः ।
हृदयादीनि पूर्वादौ विदिक्ष्वस्त्राणि वै यजेत् ॥३७
[१]प्राग्वच्च पञ्च पद्मानि बुद्ध्याधारमतो वदे ।
शतभागे [२]तिथिभागे पद्मं लिंगाष्टकं दिशि ।३८
मेखलाभागसंयुक्तं कण्ठं द्विपदिकं भवेत् ।
आचार्यो बुद्धिमाश्रित्य कल्पयेच्च लतादिकम् ॥३९

बीच में पाँच श्वेतकमल बने होते हैं और इसमें निष्कल की पूजा की जाती है। पूर्वादि दिशाओं में हृदय इत्यादि तथा विदिशाओं में अस्त्रों का पूजन होता है और ब्रह्मा का पूजन पूर्वोक्त रीति से पाँचों में होता है। अब मैं बुध्याधार (मण्डल) बतला रहा हूँ। सम्पूर्ण मण्डल को एक सौ इकतीस भागों में विभक्त करके प्रत्येक दिशा में कमल और आठलिंग का पूजन होता है। मेखला भाग से युक्त कण्ठ दो पदों के बराबर होता है। आचार्य को चाहिए कि वह अपनी बुद्धि के अनुसार लतादि का निर्माण करे। ३७-३९।

चतुः षट् [३]पञ्चमाष्टादि खाच्छिखाग्न्यादि मण्डलम् ।
[४]खाक्षीन्दुसूर्यगं सर्वं [५]खाच्छिवैवेन्दुवर्णनात् ॥४०

१ क. ङ. ॰च्च मध्यब्रह्माणि मध्याधराम॰ । २ ख. तिथेर्भागे । ३ ख. ग. षाड् लक्षमष्टा॰ ४ क. ङ. खादीन्दुसूर्यगन्धर्व खाक्षिवै वेन्द्रव॰ । ५ छ. खाक्षिचैवे॰ ।

चत्वारिंशदधिकानि चतुर्दशशतानि हि ।
मण्डलानि हरेः शंभोर्देव्याः सूर्यस्य सन्ति च ॥४१
[1]दश सप्त विभक्ते तु लतालिङ्गोद्भवं शृणु ।
दिक्षु पञ्च त्रयं चैकं त्रयं पञ्च च लोपयेत् ॥४२

चार, छह, पाँच और आठ आदि कमलों से युक्त मण्डल होता है। वीस-तीस आदि कमलों वाला भी मण्डल होता है। बारह हजार एक सौ वीसकमलों से युक्त भी सम्पूर्ण मण्डल हुआ करता है। एक सौ वीस कमलों के मण्डल का भी वर्णन दृष्टिगोचर होता है। श्रीहरि, शिव, देवी तथा सूर्यदेव के चौदह सौ चालीस मण्डल हैं। सत्रह पदों द्वारा सत्रह पदों का विभाग करने पर दो सौ नवासी पद होते हैं। उक्त पदो के मण्डल में लतालिङ्ग का उद्भव कैसे होता है, उसे सुनो। प्रत्येक दिशा में पाँच, तीन, एक, तीन और पाँच पदों को मिटा दे। ४०-४२।

ऊर्ध्वगे द्विपदे लिङ्गं मन्दिरं पार्श्वकोष्ठयोः ।
मध्ये न[2] द्विपदं पद्ममथ चैकं च पङ्कजम् ॥४३
लिङ्गस्य पार्श्वयोर्भद्रे पदद्वारमलोपनात् ।
[3]तत्पार्श्वशोभाः षड्लोप्य लताः शेषास्तथा हरेः ॥४४
ऊर्ध्वं द्विपदिकं लोप्य[4] हरेर्भद्राष्टकं स्मृतम् ।
रश्मिमालासमायुक्तं [5]वेदलोपाच्च [6]शोभिकम् ॥४५

अब मुख से उस लतादि मण्डप का वर्णन सुनिये जो लिङ्गादि को विभूषित करता है। दिशाओं में पन्द्रह रेखाओं में से आठ रेखाओं को मिटा देना चाहिए। लिङ्ग मन्दिर मण्डल के ऊर्ध्व की ओर होता है जिसका परिमाण दो पद होता है। पार्श्व के कोष्ठकों के बीच में जो पद्म होता है वह द्विपद नही माना गया है। लतामण्डप की छह रेखाओं को पूर्वोक्त रीति से मिटाकर

---

१ क. ङ. °प्त च दिक्तेषु ल° । २ क. ङ. न च पदं पद्ममथ चैकायदञ्जलिम् । लि° । ३ क. ङ. °र्श्वयोर्वार्यिगोथल । ४ ख. ग. °प्यखेर्भ° । ५ क. ङ. °लोभाच्च । ६ क. ङ. शोभिका । ख. ग. शोभिकाम् ।

ऐसा मण्डप बनाना चाहिए जहाँ पर भगवान् विष्णु का पूजन हो सकता है। विष्णु के लिए भद्राष्टक बनाने में मण्डल के ऊपरी भाग को केवल दो पद ही मिटाना चाहिए। रश्मियों की माला को चार भागों में विभक्त करके शोभिक मण्डप बनता है। ४३-४५।

पञ्चविंशतिभिः [1]पद्मं ततः पीठमपीठकम्।
द्वयं द्वयं रक्षयित्वा उशोभास्तथाऽष्ट च ॥४६
देव्यादिरव्यापकं भद्रं बृहन्मध्ये परं लघु।
मध्ये नवपदं पद्मं [2]कोणे भद्रचतुष्टयम् ॥४७
त्रयोदशपदं शेषं बुद्ध्याधारस्तु मण्डलम्।
[3]शतपत्रं षष्ट्यधिकं बुद्ध्याधारं हरादिषु ॥४८

इस मण्डल को सुशोभित करने के लिए भीतर बाहर और देवपीठ पर पचीस कमलों को बनाना चाहिए। प्रत्येक ओर दो-दो कोष्ठ बनाकर आठ उपशोभाओं का निर्माण होता है। देवी इत्यादि के मण्डल के बीच में चार भद्रों का निर्माण किया जाता है। मध्य में नव पद पद्म और कोण में चार भद्रों की रचना होती है। शेष भाग तेरह पद का बताया गया है जिसमें एक सौ साठ कमल रहते हैं। शङ्कर इत्यादि देवताओं के निमित्त ही बुध्याधार मण्डल है। ४६-४८।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मण्डलविधानकथनं नाम विंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः।३२०

अथैकत्रिंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अघोरास्त्रादिशान्तिकल्पः

ईश्वर उवाच
[4]अस्त्रयागः पुरा कार्यः सर्वकर्मसु सिद्धिदः।
मध्ये पूज्यं शिवाद्यस्त्रं वज्रादीन्पूर्वतः क्रमात् ॥१

---

१ क. ङ. पीठ°। २ क. ङ. °णे मध्यच°। ३ क. ङ. च. शतत्रयं। ४ क. ङ. °स्त्रयोगः।

महेश्वर बोले—सभी कर्मो के पहिले अस्त्रयाग करना चाहिए। यह याग सभी सिद्धियों को प्रदान करने वाला होता है। मण्डल के बीच में शिव आदि के अस्त्र का तथा पूर्व की ओर से क्रमशः वज्र आदि का पूजन किया जाता है।१।

पञ्चवक्त्रं दशकरं रणादौ पूजितं [1]जये।
([2]ग्रहपूजा रविर्मध्ये पूर्वाद्याः सोमकादयः ॥२
सर्व एकादशस्थास्तु ग्रहाः स्युर्ग्रहपूजनात्।
अस्त्रशान्तिं प्रवक्ष्यामि सर्वोत्पातविनाशिनीम् ॥)३

युद्ध आदि में विजय के लिए पाँच मुख और दश हाथों वाले देवता का पूजन किया जाता है, इस अवसर पर नक्षत्रों की पूजा का विधान यह है कि मध्य में सूर्य तथा चन्द्रादि ग्रहों का पूजन पूर्वादि दिशाओं में किया जाता है। इस ग्रह पूजन से सभी ग्रह अपने ग्यारहवें स्थान में आ जाते हैं। अब मैं सभी उत्पातों को नष्ट करने वाली अस्त्र शान्ति के सम्बन्ध में बतलाऊँगा।२-३।

ग्रहरोगादिशमनी मारीशत्रुविमर्दनीम्)।
विनायकोपतापघ्नीमघोरास्त्रं जपेन्नरः ॥४
लक्षं ग्रहादिनाशः स्यादुत्पातं तिलहोमतः।
[3]दिव्ये लक्षं तदर्धेन व्योमजोत्पातनाशनम् ॥५

यह अस्त्रशान्ति अनिष्ट ग्रहों और रोग आदि (व्याधियों) को शान्त करने वाली तथा महामारी और शत्रुनाशिनी है। विनायक के द्वारा उत्पन्न किये गये रोगों को नष्ट करने वाले अघोरास्त्र का एक लाख जप करना चाहिए। इससे (अनिष्ट) ग्रह आदि का नाश हो जाता है और तिल का हवन करने से उत्पात शान्त हो जाता है। दैवी व्याधियाँ उक्त मंत्र का एक लाख वार जप करने से नष्ट होती हैं किन्तु आकाश से उत्पन्न होने वाले उत्पात उक्त मन्त्र के पचास हजार वार जप करने से नष्ट हो जाते हैं।४-५।

घृतेन लक्षपातेन उत्पाते भूमिजे हितम्।
घृतगुग्गुलहोमे च सर्वोत्पातादिमर्दनम् ॥६

---

१ क. ङ. खयेत्। 'ग्रहपूजा……विमर्दनीम्' पुस्तके नास्ति। क. ङ. दिव्यं।

दूर्वाक्षताज्यहोमेन व्याधयोऽथ घृतेन च।
सहस्रेण तु दुःस्वप्ना विनश्यन्ति न संशयः ॥७

भूमि से उत्पन्न होने वाले उत्पातों में घृत की एक लाख आहुतियाँ हितकारिणी होती हैं और घृत तथा गुग्गुलु का हवन सभी उत्पातों का नाशक होता है। दूर्वा, अक्षत और आज्य के हवम से व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं और घी की हजार आहुतियाँ देने से दुःस्वप्नों का विनाश हो जाता है, इसमें कुछ संशय नहीं है।६-७।

अयुताद्ग्रहदोषघ्नो यवाद्घृतविमिश्रितात्।
विनायकार्तिशमनमयुतेन घृतस्य च ॥८
भूतवेतालशान्तिस्तु [1]गुग्गुलैरयुतेन च।
महावृक्षस्य भङ्गे तु [2]व्यालकङ्के गृहे स्थिते ॥९
अरण्यानां प्रवेशे[3] च दूर्वाज्याक्षतहावनात्[4]।
उल्कापाते भूमिकम्पे [5]तिलाज्येनाऽऽहुताच्छिवम् ॥१०

घृत मिश्रित जौ की दश हजार आहुतियों से विनायक के द्वारा उत्पन्न विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। भूतवेताल की शान्ति के लिए गुग्गुल की दश हजार आहुतियाँ देनी चाहिए। महावृक्ष के भंग होने पर और वन प्रदेश में दूर्वा, आज्य और अक्षत की आहुतियां देनी चाहिए। उल्कापात और भूकम्प में तिल और आज्य के हवन से कल्याण होता है।८-१०।

[6]रक्तस्रावे तु वृक्षाणामयुताद्गुग्गुलोः शिवम्।
अकाले फलपुष्पाणां राष्ट्रभङ्गे च मारणे ॥११
द्विपदादेर्यदा मारी लक्षार्धाच्च तिलाज्यतः।
हस्तिमारीप्रशान्त्यर्थं करिणीदन्तवर्धने ॥१२
हस्तिन्यां मददृष्टौ च अयुताच्छान्तिरिष्यते।
अकाले गर्भपाते तु जातं यत्र विनश्यति ॥१३

---

१ क. ङ °ग्गुलेनायु°। २ क, ङ, °लकाके गृ०। ३ क. ङ. प्रदेशे। ४ क. ङ. °र्वाज्यघृतहोमवान्। ङ°। ५ क. ङ. लाज्यहवनाच्छि°। ६ 'रक्तस्रावे' · 'शिवम्' नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः।

विकृता यत्र जायन्ते यात्राकालेऽयुतं हुनेत्[1]।
[2]तिलाज्यलक्षहोमस्तु उत्तमा (मः) सिद्धिसाधने ॥१४
मध्यमायां तदर्धेन[3] तत्पादादधमासु च।
यथा जपस्तथा होमः संग्रामे विजयो भवेत् ॥१५
अघोरास्त्रं जपेन्न्यस्य ध्यात्वा पञ्चास्यमूर्जितम् ॥१६

रक्तस्राव तथा वृक्षों के उत्पातों में गुग्गुल की दश हजार आहुतियाँ कल्याण-कारिणी होती हैं। असमय मे वृक्षों में फल और फूल आने पर राष्ट्र-भङ्ग होने पर और महामारी तिल और आज्य की पचास हजार आहुतियों से शान्त होती है। हाथियों की महामारी, हथिनियों का दन्तवर्धन और हथिनियों में मद दृष्टिगत होने पर ऐसी दश हजार आहुतियों से शान्ति होती है। असमय में गर्भपात होने पर उत्पन्न शिशु की मृत्यु हो जाने पर अथवा असमय में विकृत स्नान के उत्पन्न होने पर भी ऐसे दश हजार आहुतियाँ देनी चाहिए। तिल और आज्य की एक लाख आहुतियां सभी सिद्धियों के लिए पचास हजार तथा नीच जनों के लिए पचीस हजार आहुतियाँ ही सभी सिद्धियों को प्रदान करती हैं। युद्ध में विजयप्राप्ति के लिए जप और आहुतियों की संख्या समान होती है। अघोरास्त्र मन्त्र का जप अंगन्यास करके तथा पञ्चमुख मूर्ति का ध्यान करके करना चाहिए।११-१६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽघोरास्त्रादिशान्तिविधानकथनं नामैकविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३२१

अथ द्वाविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

पाशुपतशान्तिः

ईश्वर उवाच—

वक्ष्ये पाशुपतास्त्रेण शान्तिजापादि पूर्वतः।
पादतः पूर्वनाशो हि फडन्तं चाऽऽपदादिनुत् ॥१

---

१ क. ङ. यजेत्। २ क. ङ. °लाष्टल°। ३ ख.-ग. °न उत्पा°।

महेश्वर बोले—अब मैं पहले पाशुपतास्त्र के द्वारा शान्ति और जाप आदि का वर्णन करूँगा। मन्त्र का एक-एक पाद पूर्व (जन्म के कर्मों) का नाश करने वाला होता है और अन्त में आने वाला 'फट्' विपत्तियों का विनाशक है१।

ॐ नमो भगवते महापाशुपतायातुलबलवीर्यपराक्रमाय [1]त्रिपञ्चनयनाय नानारूपाय नानाप्रहरणोद्यताय सर्वाङ्गरक्ताय भिन्नाञ्जनचयप्रख्याय श्मशानवेतालप्रियाय सर्वविघ्ननिकृन्तनरताय सर्वसिद्धिप्रदाय भक्तानुकम्पिनेऽसंख्यवक्त्रभुजपादाय तस्मिन्सिद्धाय वेतालवित्रासिने शाकिनीक्षोभजनकाय व्याधिनिग्रहकारिणे ([2]पापभञ्जनाय सूर्यसोमाग्निनेत्राय विष्णुकवचाय खड्गवज्रहस्ताय यमदण्डवरुणपाशाय रुद्रशूलाय ज्वलज्जिह्वाय सर्वरोगविद्रावणाय ग्रहनिग्रहकारिणे) दुष्टनागक्षयकारिणे, ॐ कृष्णपिङ्गलाय फट्, क्रूराय फट्, वज्रहस्ताय फट्, शक्तये फट्, दण्डाय फट्, ([3]यमाय फट्, खड्गाय फट्, नैर्ऋताय फट्, वरुणाय फट्, वज्राय फट्, पाशाय फट्, ध्वजाय फट्, अङ्कुशाय फट्, गदायै फट्, कुबेराय फट्, त्रिशूलाय फट्,) मुद्गराय फट्, चक्राय फट्, पद्माय फट्, नागास्त्राय फट्, ईशानाय फट्, खेटकास्त्राय फट्, मुण्डाय फट्, मुण्डास्त्राय फट्, कङ्कालास्त्राय फट्, पिच्छिकस्त्राय फट्, क्षुरिकास्त्राय फट्, ब्रह्मास्त्राय फट्, शक्त्यस्त्राय फट्, गणास्त्राय फट्, सिद्धास्त्राय फट्, पिलिपिच्छास्त्राय फट्, गन्धर्वास्त्राय फट्, पूर्वास्त्राय फट्, दक्षिणास्त्राय फट्, वामास्त्राय फट्, पश्चिमास्त्राय फट्, मन्त्रास्त्राय फट्, शाकिन्यस्त्राय फट्, योगिन्यस्त्राय फट्, दण्डास्त्राय फट्, नमोस्त्राय फट्, शिवास्त्राय फट्, ईशानास्त्राय फट्, महादण्डास्त्राय फट्, नागास्त्राय फट्, पुरुषास्त्राय फट्, अघोरास्त्राय फट्, वामदेवास्त्राय फट्, सद्योजातास्त्राय फट्,

---

१ क. ङ. त्रिनग्रनाय'। २ 'पापभञ्जनाय' · · 'ग्रहनिग्रहकारिणे' क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ३ 'यमाय फट्' · 'त्रिशूलाय फट्' ख. पुस्तके नास्ति।

हृदयास्त्राय फट्, ([1]महास्त्राय फट्, गरुडास्त्राय फट्, राक्षसास्त्राय फट्। दानवास्त्राय फट्, क्षौं नरसिंहास्त्राय फट्, त्वष्ट्रस्त्राय फट्, सर्वास्त्राय फट्[2])[3]लः फट्, नः फट्, ([4]भः फट्, पः फट्, मः फट्, स्त्रा फट्, ह्लं फट्, भूः फट्, भुवः फट्, स्वः फट्, महः फट्, जनः फट्, तपः फट्, सत्यं फट्, सर्वलोक फट्, सर्वपाताल फट्, सर्वसत्त्व फट्, सर्वप्राण फट्, सर्वनाडी फट्, सर्वकारण फट्, सर्वदेव फट्, ह्रीं फट्, श्रीं फट्, ह्लूं फट्, [5]स्तूं फट्, आं फट्, लां फट्, वैराग्याय फट्,[6]) मायास्त्राय फट्, कामास्त्राय फट्, क्षेत्रपालास्त्राय फट्,[7] हुंकारास्त्राय फट्,भास्करास्त्राय फट्,चन्द्रास्त्राय फट्, विघ्नेश्वरास्त्राय फट्, गौः, गां फट्,ख्रौं खौं फट्, ह्रौं ह्रों[8]फट्, भ्रामय भ्रामय फट्, संतापय संतापय फट्, छादय च्छादय फट्, उन्मूलयोन्मूलय फट्, त्रासय त्रासय फट्, संजीवय संजीवय फट्, विद्रावय विद्रावय फट्, सर्वदुरितं नाशय नाशय फट्।

[9]सकृदावर्तनादेव सर्वविघ्नान्विनाशयेत्।
[10]शतावर्तेन चोत्पातान्रणादौ विजयो भवेत् ॥२
घृतगुग्गुलुहोमाच्च असाध्यानपि साधयेत्।
पठनात्सर्वशान्तिःस्यादाशु[11] पाशुपतस्य च ॥३

"ॐ नमो भगवते ... नाशय नाशय फट्" इस मन्त्र की एक बार ही आवृत्ति करने पर सभी विघ्नों का नाश हो जाता है, एक सौ बार आवृत्ति करने पर सभी उत्पातों का नाश होकर युद्ध आदि में विजय होती है तथा

---

१ 'महास्त्राय' ... 'सर्वास्त्राय फट्' ख. पुस्तके नास्ति। २ छ. °ट्, नः फट्, वः फट्, पः। ३ 'लः' एतदादि भुवः फडित्यन्तग्रन्थस्थाने क. ङ. पुस्तकयोरेवं वर्तते—"नः फट्, या फट्, मः फट्, भां फट्, भ्रं फट्" इति। ४ भः फट् ... 'वैराग्याय फट्' ग. पुस्तके नास्ति। ५ छ. स्त्रुं। ६ 'वैराग्याय फट्' एतत्पुरतः "नः फट् यः फट्, इत्यधिकं ख. पुस्तके। ७ ख. ट्। ॐ का°। ८ छ. ह्रीं°। ९ ख. ग. सहस्राव°। १० ख. ङ °र्तै महोत्पा°। ११ ख. ङ. स्यदास्त्रपा°।

घृत और गुग्गुल के हवन से असाध्य काम भी साध्य हो जाता है। इस पाशुपतास्त्र मन्त्र के पाठमात्र से समस्त क्लेशों की शान्ति हो जाती है।२-३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पाशुपतशान्तिकथनं नाम द्वाविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३२२

अथ त्रयोविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

षडङ्गान्यघोरास्त्राणि

ईश्वर उवाच—

'ॐ हूं[1] [2] स इति मन्त्रेण [3]मृत्युरोगादि शाम्यति ।
लक्षाहुतिभिर्दूर्वाभिः शान्तिं पुष्टिं प्रसाधयेत् ।।१
अथवा प्रणवेनैव मायया वा षडानन ।
दिव्यान्तरिक्षभौमानां शान्तिरुत्पातवृक्षके ।।२
ॐ नमो भगवति गङ्गे कालि कालि महाकालि महाकालि मांसशोणितभोजने रक्तकृष्णमुखि वशमानय [4]मानुषान् स्वाहा ।।३
ॐ लक्षं जप्त्वा दशांशेन हुत्वा स्यात्सर्वकर्मकृत् ।
वशं नयति शक्रादीन्मानुषेष्वेषु का कथा ।।४

महेश्वर बोले—"ॐ हूं सः" मन्त्र से मृत्यु और रोगादि की शान्ति होती है। इसी मन्त्र से दूर्वा की एक लाख आहुतियां शान्ति और पुष्टि की सिद्धि किया करती हैं। हे षडानन, यही मन्त्र जब प्रणव अथवा माया के साथ प्रयुक्त किया जाता है तो दिव्य अन्तरिक्ष, पृथ्वी तथा वृक्षों के उत्पात शान्त हो जाते हैं। "ॐ नमो भगवति' · · 'मानुषान् स्वाहा ॐ" इस मन्त्र का एक लाख

---

१ क. ङ. ओं सः, इ° । ग. ओं हं हूं स. इ° च. ओं जुं स ई° । २ छ. हूं हं स । ३ ग. °त्युलोकादि । ४ क. ङ. °षाय स्वाहा ।

जप तथा उस मन्त्र से दी गयी दस हजार आहुतियों से सभी कार्य पूरे हो जाते हैं। इससे जब इन्द्र आदि भी वशीभूत हो जाते हैं तो मनुष्य का कहना ही क्या ।१-४।

अन्तर्धानकरी विद्या मोहनी जम्भनी तथा।
वशं नयति शत्रूणां शत्रुबुद्धिप्रमोहिनी ॥५
कामधेनुरियं विद्या सप्तधा परिकीर्तिता।
मन्त्रराजं प्रवक्ष्यामि शत्रुचौरादिमोहनम् ॥६
महाभयेषु सर्वेषु स्मर्तव्यं [1]हरपूजितम्।
लक्षं जप्त्वा तिलैर्होमः सिध्येदुद्धारकं शृणु ॥७

अन्तर्धानकरी, मोहनी तथा जन्मनी विद्या सबको वशीभूत करने वाली तथा शत्रुओं की वृद्धि को मोह में डाल देती है। यह कामधेनु विद्या सात प्रकार की कही गई है। अब मैं उस मन्त्रराज के सम्बन्ध में बताऊँगा जो शत्रु और चोर आदि को मोहित करने वाला है। सभी प्रकार के महाभयों में शंकर का स्मरण करते रहना चाहिए। इस मन्त्र का एक लाख जप करके तिलों से हवन करने से सभी कुछ सिद्ध हो जाता है। अब आगे उद्धारक मन्त्र सुनो ।५-७।

ॐ हले शूले एहि ब्रह्मसत्येन ([2]विष्णुसत्येन
रुद्रसत्येन) रक्ष मां वाचेश्वराय स्वाहा ॥८
दुर्गात्तारयते यस्मात्तेन दुर्गा शिवा मता ॥९

'ॐ हले शूले···वाचेश्वराय स्वाहा' यह उद्धारक मन्त्र है। पार्वती दुर्गम कार्यों (विपत्ति) से उद्धार करती है, इसलिए उसे दुर्गा कहा गया है ।८-९।

ॐ ह्रीं [3]चण्डकपालिनि दन्तान्किट[4] किट क्षिट
क्षिट गुह्ये प्राम् ॥१०
अनेन मन्त्रराजेन क्षालयित्वा तु तण्डुलान्।
त्रिशद्वाराणि जप्तानि तच्चौरेषु प्रदापयेत् ॥११

---

१ क. ङ. हरिपूजनम्। ख. हरपूजनम्। २ 'विष्णुसत्येन रुद्रसत्येन' नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः। विष्णुरुद्रसत्येनेति ख. ग. पुस्तकयोः। ३ क. ङ. च. चण्डिक॰। ४ छ. न्किटि किटि क्षिटि क्षिटि गुह्ये फट्, ह्रीम्।

दन्तैश्चूर्णानि शुक्लानि पतितानि हि शुद्धये ॥१२
ॐ ज्वलल्लोचन कपिलजटाभारभास्वर विद्रावण त्रैलोक्य डामर डामर दर दर[1] भ्रम भ्रमाऽऽकट्टाऽऽकट्ट[2] तोटय तोटय मोटय मोटय[3] दह दह पच पच, एवं सिद्धिरुद्रो ज्ञापयति यदि ग्रहोपगतः स्वर्गलोकं देवलोकं वाऽऽराम-विहाराचलं तथाऽपि तमावर्तयिष्यामि बलिं गृह्ण गृह्ण ददामि ते स्वाहेति ॥१३
क्षेत्रपालबलिं दत्त्वा ग्रहो[4] न्यासाद्रुदन्व्रजेत् ।
शत्रवो नाशमायान्ति रणे [5]वैरगणक्षयः ॥१४

'ॐ ह्रीं' ' ' गुह्ये प्राम्' इस मन्त्रराज से चावलों को धोकर तीस बार इस मन्त्र का जप करके चोरों को खिलाने से चोरों के दाँतों से टूटकर सफेद चूर्ण के रूप में गिरने से (चोर की) शुद्धि हो जाती है। 'ॐ ज्वलल्लोचन' ' ' ददामि ते स्वाहा'। क्षेत्रपाल देवता को बलि देकर ग्रहन्यास करके चिल्लाते हुए (शत्रु की ओर) जाने से शत्रुओं का नाश हो जाता है। १०-१४।

हंसबीजं तु विन्यस्य विषं तु त्रिविधं हरेत् ।
अगरुं चन्दनं कुष्ठं कुङ्कुमं नागकेसरम् ॥१५
नखं वै देवदारुं च समं कृत्वाऽथ धूपकः ।
माक्षिकेण समायुक्तो [6]देववस्त्रादिधूपनात् ॥१६
विवादे मोहने स्त्रीणां मण्डने कलहे शुभः ।
कन्याया वरणे भाग्ये मायामात्रेण मन्त्रितः ॥१७

इस बीज का न्यास करके (उपर्युक्त मन्त्र का जप करने से) तीन प्रकार के विष दूर हो जाते हैं। अगुरु, चन्दन, कुष्ठ, कुंकुम, नागकेसर, नाखून और देवदारु, इन सबको समान मात्रा में लेकर शहद के साथ मिलाकर देव वस्त्र आदि को धूप देने से साधक के विवाद, मोहन, मण्डन और कलह में शुभ फल प्राप्त होता है। माया मन्त्र के द्वारा इसी प्रकार से अभिमन्त्रित करने में कन्या के वरण तथा भाग्य में सफलता प्राप्त होती है।१५-१७।

---

१ क. ङ. °रभ्राम भ्रामाऽऽ° । २ क. ङ. °ट्टत्रोटय त्रोटय मो० । ३ क. ङ. °य हन हन प° । ४ च. °साद्हृदं व्रजे° ५ । क. ङ. वै सग° । ख वैरिग° । ६ क. ख. देहव°

ह्रीं रोचना नागपुष्पाणि कुङ्कुमं च मनःशिला ।
ललाटे तिलकं कृत्वा यं पश्येत्स वशी भवेत् ॥१८
शतावर्यास्तु चूर्णं तु दुग्धपीतं च पुत्रकृत्[१] ।
नागकेशरचूर्णं तु [२]घृतपक्वं तु पुत्रकृत् ॥१६
पालाशबीजपानेन लभते पुत्रकं तथा ॥२०
ओमुत्तिष्ठ चामुण्डे जम्भय जम्भय मोहय मोहयामुकं
वशमानय वशमानय स्वाहा ॥२१
षड्विंशा सिद्धविद्या सा नदीतीरमृदा स्त्रियम् ।
[३]कृत्वोन्मत्तरसेनैव नामाऽऽलिख्यार्कपत्रके ॥२२
मूत्रोत्सर्गं ततः कृत्वा जपेत्तामानयेत्स्त्रियम् ॥२३

'ह्रीं' बीज के उच्चारण के साथ मस्तक पर रोली, नागपुष्प, कुंकुम और मैनसिल का तिलक लगाकर जिसकी ओर भी देखा जाता है वह वशीभूत हो जाता है । दूध में शतावरी का चूर्ण मिलाकर पीने से पुत्रोत्पत्ति होती है । इसी प्रकार घी में पकाकर नागकेसर का चूर्ण खाने से भी पुत्रोत्पत्ति होती है और पलास के बीज को पीने से भी पुत्र-लाभ होता है । 'ओमुत्तिष्ठ' ' ' 'वशमानय स्वाहा' यह छब्बीस अक्षरों वाला सिद्ध मन्त्र है । नदी के किनारे की मिट्टी लेकर उससे (अभीष्ट) स्त्री (की आकृति) का निर्माण करके मदार के पत्ते पर धतूरे के रस से उसका नाम लिखकर तत्पश्चात् मूत्रोत्सर्ग करके उस स्त्री के नाम का जप करना चाहिए ।१८-२३।

ॐ क्षुं सः वषट् ॥२४
महामृत्युञ्जयो मन्त्रो जप्याद्धोमाच्च पुष्टिकृत् ॥२५
[४]ॐ हं सः, ह्लूं, [५]ह्लूं मः, ह्लः, सौं स्कैः ॥२६
मृतसंजीविनी विद्या अष्टार्णा जयकृद्रणे ।

'ॐ क्षुं सः वषट् ।—यह महामृत्युञ्जय मन्त्र है । इसका जप और होम पुष्टिकारक होता है । 'ॐ हं सः ह्लूं, हूं मः, ह्लः 'सौ स्कैः'—यह मृतसंजीवनी विद्या है । इसमें आठ अक्षर हैं । यह रण में विजय दिलाने वाली है ।२४-२६½।

१ क. ङ. पुत्रछत् । २ क, ङ. घृतपीतं । ३ क. ङ. °त्वोन्मन्त्र° ।
४ ख. ग. ओ° हूं सः सौ खौः, मृ° । च. ओं स हू ह क्षः सौ खौः मृ° ।
५ छ. हूं सः, हः, ।

मन्त्रा ईशानमुख्याश्च धर्मकामादिदायकाः ॥२७
ईशानः [1]सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम् ।
ब्रह्मणश्चाधिपतिर्ब्रह्म शिवो मेऽस्तु सदाशिवः ॥२८
ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि । तन्नो रुद्रः
प्रचोदयात् ॥२९
ओमघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरतरेभ्यस्तु सर्वतः ।
सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥३०
ॐ वामदेबाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः
कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो
वलाय नमो वलप्रमथनाय नमः । सर्वभूतदमनाय नमो
मनोन्मनाय नमः ॥३१
ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः ।
भवे भवे नातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः ॥३२
पञ्चब्रह्माङ्गषट्कं च वक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्तिदम् ॥३३

ईशान आदि देवताओं के मन्त्र धर्म और कामादि प्रदान करने वाले हुआ करते हैं—वे मन्त्र इस प्रकार हैं—'ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः' ··· 'भवोद्भवाय नमः'। अब मैं 'पञ्चब्रह्म' के छह अङ्गों का वर्णन करूँगा, जो भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है।२७-३३।

ॐ नमः परमात्मने पराय कामदाय परमेश्वराय योगाय
योगसंभवाय [2]सर्वकराय कुरु कुरु [3]सद्य सद्य भव भव भवोद्भव वामदेव सर्वकार्यकर पापप्रशमन सदाशिव प्रसन्न
नमोऽस्तु ते स्वाहा ॥३४
हृदयं सर्वार्थदं तु सप्तत्यक्षरसंयुतम् ॥३५
ॐ शिव शिवाय नमः शिरः, 'ॐ शिव हृदये ज्वालिनि
स्वाहा शिखा, ॐ शिवात्मक महातेजः सर्वज्ञ प्रभु
[4]संवर्तय महाघोरकवच पिंगल,[5] नमः । महाकवच

---

१ क. ङ. °र्वमन्त्राणामी° २ क. ङ. सर्वकाराय । ख. ग. सर्वशंकराय । ३ सद्य सद्येति नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः । ४ क. ङ. व्यावर्तय । ख. आवर्तय । ५ 'पिंगल' इत्येतत्परतः "आयाहि पिंगलः" इत्यधिकं वर्त्तते क. ङ. पुस्तकयोः ।

शिवाज्ञया हृदयं बन्ध [1]बन्ध, ([2]पूर्णय पूर्णय चूर्णय चूर्णय
सूक्ष्मासूक्ष्मवज्रधर [3]वज्रपाशधर वज्रशरीर [4]मच्छरीर-
मनुप्रविश्य सर्वदुष्टान्स्तम्भय स्तम्भय [5]हरुम् ॥
[6]अक्षराणां तु कवचं शतं पञ्चाक्षराधिकम् ॥३७

'ॐ नमः परमात्मने ''' नमोऽस्तु ते स्वाहा' यह सत्तर अक्षर वाला मन्त्र सब कुछ प्रदान करने वाला है। 'ॐ शिव शिवाय नमः' ' 'दुष्टान्स्तम्भय स्तम्भय ह्रूम्' यह एक सौ पांच अक्षरों का कवच है।३५-३७।

ओमोजसे नेत्रम्, ॐ पुस्फुर पुस्फुर तनुरूप तनुरूप)
चट चट प्रचट प्रचट कट कट वम वम घातय घातय
[7]ह्रूं फट्, अघोरास्त्रम् ॥३८

इत्यादिमहापुराण आग्नेये षडङ्गाघोरास्त्रकथनं नाम त्रयोविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।३२३

अथ चतुर्विंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

रुद्रशान्तिः

ईश्वर उवाच—
शिवशान्तिं प्रवक्ष्यामि कल्पाघोरप्रपूर्वकम् ।
सप्तकोट्यधिपो घोरा (रो) ब्रह्महत्याद्यघार्दनः ॥१
उत्तमाधमसिद्धीनामालयोऽखिलरोगनुत् ।
दिव्यान्तरी (रि) क्ष भौमानामुत्पातानां विमर्दनः ॥२
विषग्रहपिशाचानां ग्रसनः सर्वकामकृत् ।
प्रायश्चित्तमघो (घौ) घार्तौ दौर्भाग्यार्तिविनाशनम् ॥३

---

१ क. ङ. च. °न्ध अवट् अवट् प्रवट् प्रवट् कर्त्तुं °घ°। २ °न्ध घूर्णय घूर्णय चू°। "पूर्णय ... तनुरूप" क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ३ छ. °शध-नुर्वज्राशनिव° ४ छ.। ममशरी°। ५ छ. हुम्। ६ ख. ग. अरणार्थक°। ७ क. ङ. च. हुम्।

महेश्वर बोले--अब मैं अघोर कल्प के साथ शिव-शान्ति का वर्णन करूँगा। यह घोर (अथवा अघोर) कल्प सात अस्त्रों का स्वामी ब्रह्म-हत्यादि पापों का नाशक उत्तम और अधम नामक सिद्धियों का आगार, सम्पूर्ण रोगों को दूर करने वाला द्युलोक, अन्तरिक्ष और भूलोक के उत्पातों का संहारक, विष, ग्रह और पिशाचों का भक्षक, सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला, पाप-पुञ्ज का प्रायश्चित्त और दुर्भाग्य रूप दुःखों का विनाशक है।१-३।

एकवीरं तु विन्यस्य ध्येयः पञ्चमुखः सदा।
शान्तिके पौष्टिके शुक्लो रक्तो वश्येऽथ पीतकः ॥४
स्तम्भने धूम्र उच्चाटमारणे कृष्णवर्णकः।
कर्षणे कपिलो मोहे द्वात्रिंशद्वर्णमर्चयेत् ॥५
त्रिंशल्लक्षं जपेन्मन्त्रं होमं कुर्याद्दशांशतः।
[1]गुग्गुलघृतयुक्तेन [2]सिद्धे सिद्धार्थसर्वकृत् ॥६
अघोरान्नापरो मन्त्रो विद्यते भुक्तिमुक्तिकृत्।
अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी अस्नातः स्नातको भवेत् ॥७
अघोरास्त्रमघोरस्तु द्वाविमौ मंत्रराजकौ।
जपहोमार्चनाद्युद्धे शत्रुसैन्यं विमर्दयेत् ॥८

एकवीर का न्यास करके सदा पञ्चमुख (देवता) का ध्यान करना चाहिये। शान्ति और पुष्टिकर्मों में क्रमशः उसके शुक्ल और रक्तवर्णों का, वशीकरण में पीत वर्ण का, स्तम्भन में धूम्रवर्ण का, उच्चाटन और मारण में कृष्णवर्ण का, (किसी को अपनी ओर) आकृष्ट करने में कपिलवर्ण का और मोहन में बत्तीस वर्णों का पूजन करना चाहिए। इस मन्त्र का तीस लाख बार जप करना चाहिए और तीन लाख मन्त्रों से आहुतियाँ देनी चाहिए। गुग्गुल और घृत से इस मन्त्र की सिद्धि करने से सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। अघोर मन्त्र से बढ़कर भोग और मोक्ष प्रदान करने वाला कोई ऐसा मन्त्र है ही नहीं। इससे अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी और अस्नातक स्नातक हो जाता है। अघोरास्त्र और अघोर ये दोनों मन्त्र मन्त्रराज हैं। इनके जप, हवन और पूजन से शत्रु की सेना का विनाश हो जाता है।४-८।

---

१ क. ङ. गुग्गुलं घृतसंयुक्तं सि°। २ छ. सिद्धोऽसिद्धोऽर्थं°।

रुद्रशान्ति प्रवक्ष्यामि शिवां सर्वार्थसाधनीम् ।
पुत्रार्थं ग्रहनाशार्थं विषव्याधिविनष्टये ॥६
दुर्भिक्षमारीशान्त्यर्थं दुःस्वप्नं हरणाय च ।
बलादिराज्यप्राप्त्यर्थं[१] रिपूणां नाशनाय च ॥१०
अकाले फलिते वृक्षे सर्वग्रहविमर्दने ।
पूजने तु नमस्कारः [२]स्वाहान्ते हवनं तथा ॥११
आप्यायने वषट्कारं पुष्टौ वौषण्नियोजयेत्[३] ।
चकारद्वितयस्थाने [४]जातियोगं तु कारयेत् ॥१२

अब मैं रुद्रशान्ति का वर्णन करूँगा जो कि कल्याणकारिणी और सभी अभीष्टों को सिद्ध कराने वाली है। यह मन्त्र पुत्र-प्राप्ति, ग्रह-शान्ति, विष-व्याधिविनाश, दुर्भिक्ष और महामारी की शान्ति, दुःस्वप्नहरण, बल तथा राज्य आदि की प्राप्ति, शत्रुओं के नाश, असमय में फले हुए वृक्ष और सभी ग्रहों के नाश के लिए होता है। इसके पूजन में नमस्कार तथा हवन में स्वाहा का प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार आप्यायन में वषट्कार और पुष्टि (के लिए किये गये कर्म) में वौषट् का प्रयोग करना चाहिए। चकार का प्रयोग द्वितीय स्थान में करना चाहिए।६-१२।

ॐ रुद्राय[५] ठ, ॐ वृषभाय नमोऽविमुक्तायासंभवाय[६]
[७]पुरुषाय पञ्चपूज्याय ईशपुत्रे[८] [९]पौरुषे [१०]पञ्चपञ्चोत्तरे
विश्वरूपाय करालाय विकृतरूपाय,([११]अविकृतरूपाय) ॥१३
[१२]निकृतौ चापरे काले अप्सु माया च नैर्ऋते ॥१४
एकपिङ्गलाय श्वेतपिङ्गलाय [१३]कृष्णपिङ्गलाय [१४]नमः ॥१५

१ क. ङ. °ज्यसिद्ध्यर्थं । २ क. ङ. °हान्तो हवने मनुः । आ° । छ. हान्तो हवने तथा । आ० । ३ ख. °त् । ओंका° । क. ङ° त् । दका° । ४ ग. यातियोगं । ५ क. ङ. °य नमः, ॐ । छ. °य च चे ॐ । ६ क. ङ. °क्ताय सं° । ७ क. ङ. °य च सूर्याय । छ. °य च पू° । ८ ख. ईशपत्रे । छ. ईशानाय । ९ छ. पौरुषाय । १० °ञ्च चोत्त° । ११ 'अविकृतरूपाय' नास्ति क. ख. ग. ङ. पुस्तकेषु । १२ क. ङ. च. नियतौ । १३ क. ङ. हृष्टपिङ्गलाय । १४ छ °मः । मधुपिङ्गलाय नमः, म° ।

मधुपिङ्गलाय [1]नियतावनन्तायाऽऽर्द्राय शुष्काय पयोगणाय
कालतत्त्वे करालाय विकरालाय द्रौं मायातत्त्वे सहस्रशीर्षाय
सहस्रवक्त्राय सहस्रकरचरणाय[2] सहस्रलिङ्गाय ॥१६
विद्यातत्त्वे सहस्राक्षाद्विन्यसेद्दक्षिणे दले ॥१७

"ॐ रुद्राय ठ,···—···सहस्रलिङ्गाय"—इस मन्त्र से विद्यातत्त्व (रूप कमल के) दक्षिण दल पर सूर्य का आवाहन करना चाहिए। १६-१७।

एकजटाय द्विजटाय त्रिजटाय स्वाहाकाराय स्वधाकाराय
वषट्काराय षड्रुद्राय ॥१८
ईशतत्त्वे तु वह्निपत्रे स्थिता गुह ॥१९
[3]भूपतये[4] [5]पशुपतय उमापतये कालाधिपतये ॥२०
सदाशिवाख्यतत्त्वे षट् पूज्याः पूर्वदले स्थिताः ॥२१

"एवजटाय··· ·····षड्रुद्राय' अये गुह। ये सात विशेषण आकाश में रहने वाले शिव के हैं। इन नामों को सम्बोधित करते हुए मन्त्र के साथ सदाशिव देवता से युक्त कमल के पूर्वी दल के ऊपर इन मन्त्रों से आहुतियां देनी चाहिए। 'भूपतये···कालाधिपतये' ।१८-२१।

[6]उमायैकरूपधारिणि, ॐ[7] 'कुरु कुरु रुहिणि रुहिणि रुद्रोऽसि
देबानां देव देव विशाख हन हन दह दह पच पच मथ मथ[8]
तुरु तुरु, अरु, अरु[9] मुरु मुरु रुद्रशान्तिमनुस्मर कृष्ण—
पिङ्गल[10] अकालपिशाचाधिपतिविश्वेश्वराय नमः ॥२२
शिवतत्त्वे कर्णिकायां पूज्यौ ह्युमामहेश्वरौ ॥२३
ॐ व्योव्यापिने व्योमरूपाय सर्वव्यापिने [11]शिवायानन्ताय
[12]नाथायानाश्रिताय शिवाय शिवतत्त्वे [13]नव पदानि व्योम—
व्याप्यभिधास्य हि ॥२४

---

१ ख. ग. निपतिताय। २ क. ङ. सहस्रकिरणाय। ३ क. ङ. भूतपतये। ४ ख. °ये भूतपतये महाभूतपतये प°। ५ 'पशुपतय···कालाधिपतये' नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। ६ छ. °यै कुरू°। ७ ख. ग. च. ॐ तुरु तुरु ८ ख. ग. °थ तुर तुर, अ°। ९ ख. ग. °रु स्वरु स्वरु रु°। १० क. ख. ङ. च. °ल का°। ११ छ. °न्तायाना°। १२ 'नाथायानाश्रिताय' इदं पदं नास्ति ख. ग. पुस्तकयोः। १३ ख. ग. °न तव।

शिवतत्त्व रूप कर्णिका के ऊपर उमा और महेश्वर का पूजन इस मन्त्र से करना चाहिए—"उमायैकरूपधारिणी, ॐ कुरु कुरु.........विश्वेश्वराय नमः"। शिवतत्त्व रूपी कमल के आकाशवर्ती दल के ऊपर नव पदों का उच्चारण करना चाहिए। उसका मन्त्र यह है - "ओं व्योमव्यापिने......शिवाय।२२-२४।

शाश्वताय योगपीठसंस्थिताय नित्ययोगिने ध्यानाहाराय
[1]नमः। ॐ नमः शिवाय [2]सर्वप्रभवे शिवाय, ईशानमूर्धाय
[3]तत्पुरुषाय[4] पञ्चवक्त्राय ॥२५
नवपदं पूर्वदले सदाख्ये पूजयेद्गुह ॥२६

अये गुह ! सद नामक पूर्वदल के ऊपर नवपदों वाले इस मन्त्र से पूजन करना चाहिए—'शाश्वताय......पंचवक्त्राय।२५-२६।

अघोरहृदयाय वामदेवगुह्याय सद्योजातमूर्तये।
[5]ॐ नमो नमः। गुह्यातिगुह्याय गोप्त्रेऽनिधनाय सर्वयोगाधि-
कृताय [6]ज्योतीरूपायाग्निपत्रे[7] ह्रीशतत्त्वे [8]विद्यतत्त्वे तु[9]
गम्यते परमेश्वराय[10] अचेतनाचेतन [11]व्योमन-
व्यापिन (न्) [12]अरूपिन्। [13]प्रमथ तेजस्तेजः ॥२७

मायातत्त्व दक्षिण-पश्चिम और कालतत्त्व पश्चिम दल के ऊपर इस मन्त्र से पूजन करना चाहिए, 'अघोरहृदयाय वामदेवगुह्याय सद्योजातमूर्तये। ॐ नमोनमः......प्रथम तेजस्तेज।२७।

---

१ 'नमः' इतिपदं नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। २ ख. ग. °र्वभावशि°। ३ ख. ग. °रुषव°। ४ छ. °षादिग°। ५ ख. ग. ॐ नमः। ६ क. ङ. °ज्योतिरू°। ७ छ. °त्रे ह्रीमत°। ८ छ, °धात्वे ह्वे याम्यने प°। ९ ख. ग. तु यास्यगोप। १० छ. °य चे°। ११ क. ङ. व्योमन्। १२ क. ङ. व्यापिन्। छ. व्यापिने। १३ छ. प्रथम।

मायातत्त्वे नैर्ऋते तु कालतत्त्वेऽथ वारुणे ॥२८
ॐ धृ धृ[1] नाना वां वामनिधन[2] निधनोद्भव शिव सर्व परमात्मन् । महादेव सद्भावेश्वर महातेजयोगाधिपते मुञ्च मुञ्च[3]प्रथम प्रथम, ॐ सर्व सर्व, ॐ भव भव, ॐ भवोद्भव सर्वभूतसुखप्रद वायुपुत्रेऽथ नियतौ पुरुषे चोत्तरे नव ॥२९
सर्वसांनिध्यकर ब्रह्मविष्णुरुद्रप[4]रानर्चितास्तुत[5] स्तुत साक्षिण साक्षिण[6]तुरु तुरु पतङ्ग पतङ्ग[7]पिङ्ग पिङ्ग[8]ज्ञान ज्ञान शब्द शब्द सूक्ष्म सूक्ष्म शिव शिव[9]सर्वप्रद सर्वप्रद, ॐ नमः शिवाय, ॐ नमो नमः शिवाय, ॐ नमो नमः ॥३०
ईशाने प्राकृते तत्त्वे पूजयेज्जुहुयाज्जपेत् ।
[10]ग्रहरोगादिमायार्तिशमनी सर्वसिद्धिकृत् ॥३१

उत्तर-पश्चिम कोण के दल के ऊपर नियति के लिए और उत्तरवर्ती दल के ऊपर पुरुष के लिए नव बार इस मन्त्र से पूजन करना चाहिए—'ओं धृ धृ नाना······सर्वभूतसुखप्रद' । उत्तर-पूर्व की ओर स्थित प्राकृत तत्त्व नामक दल के ऊपर पूजन, यजन और जप करना चाहिए । इसके लिए यह मन्त्र है—'सर्वसान्निध्यकर······ॐ नमो नमः' । यह विद्या ग्रह, रोग, माया और दुःख का विनाश करने वाली तथा सिद्धियों को देने वाली है ।२८-३१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रुद्रशांतिविधानकथनं नाम चतुर्विंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।३२४

---

१ क. ङ. घ. ओं नाना ओं वा° । २ क. ङ. छ. °निधान । ३ छ. प्रमथ, प्रमथ, ओं । ४ ख. ग. °पदान° । ५ ख. ग. °त सा° ६ ख. ग. तरु । ७ क. ङ. पिंग पिंग' इति पदद्वयं नास्ति ख. ग. च पुस्तकेषु ८ 'ज्ञान ज्ञान' इति पदद्वयं नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः । ९ क. ङ. सर्वद । ख. ग. पद । १० क. ङ. च. गारिमा° ।

अथ पञ्चविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अंशकादिः

ईश्वर उवाच—

रुद्राक्षकटकं धार्यं विषमं सुसमं दृढम् ।
एकत्रिपञ्चवदनं यथालाभं तु धारयेत् ॥१

द्विचतुःषण्मुखं शस्तमव्रणं तीव्रकण्टकम् ।
दक्षबाहौ शिखादौ च [1]धारयेच्चतुराननम् ॥२

अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी अस्नातः स्नातको भवेत् ।
([2]हैमी वा मुद्रिका धार्या शिवमन्त्रेण चाऽऽर्च्य तु ॥३

महेश्वर बोले—विषम संख्या वाले समतल और दृढ़ रुद्राक्षों के कङ्कण को धारण करना चाहिए। रुद्राक्ष एक तीन और पाँच मुख वाले होने चाहिए। अथवा जिस प्रकार के रुद्राक्ष प्राप्त हो सकें उन्हें ही धारण करना चाहिए। दो, चार और छह मुख वाले, व्रणरहित और तीव्र कण्टकों से युक्त रुद्राक्ष श्रेष्ठ माना गया है। चार मुखों वाले रुद्राक्ष को दाहिनी भुजा में और शिखा आदि के ऊपर धारण करना चाहिए। ऐसा करने से अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी और अस्नातक स्नातक बन जाता है अथवा शिव मन्त्र से अभिमन्त्रित की हुई स्वर्णमुद्रिका भी धारण की जा सकती है।१-३।

शिवः शिखा तथा ज्योतिः सावित्रश्चेति गोचराः) ।
गोचरं तु कुलं ज्ञेयं तेन लक्ष्यस्तु दीक्षितः ॥४

प्राजापत्यो महीपालः कापोतो ग्रन्थिकः शिवे ।
कुटिकाश्चैव वेतालाः पद्महंसाः [3]शिखाकुले ॥५

धृतराष्ट्रा वकाः कांका गोपाला ज्योतिसंज्ञके ।

---

१ क. ङ. 'येदनुवासरम् । २ "हैमी वा०' इत्यत्र पाठोऽयं दृश्यते क. ङ. पुस्तकयोः— "हैमी धार्याऽसिमन्त्रेण वाच्यं तु शिरसः शिखा । तथा ज्योति समावित्रः सावित्रश्चेति गोचरा इति । ३ क. ङ. शिवाकु° ।

कुटिका [1]साठराश्चैव गुटिका [2]दण्डिनोऽपरे ॥६
सावित्री गोचरे चैवमेकैकस्तु चतुर्विधः ।
सिद्धाद्यंशकमाख्यास्ये येन मन्त्रः सुसिद्धिदः ॥७

रुद्राक्ष के चार गोचर होते हैं—शिव, शिखा, ज्योति और सावित्र । गोचर का अभिप्राय है कुल । उसके एक लाख जप से मनुष्य दीक्षित हो जाता है । शिव कुल में आने वाले रुद्राक्ष के भेद हैं—प्राजापत्य, महीपाल, कापोत और ग्रन्थिक । शिखाकुल के रुद्राक्ष हैं—कुटिका, वेताल और पद्महंस । ज्योति नामक कुल के अन्तर्गत हैं—धृतराष्ट्र, वक, काक और गोपाल । सावित्र कुल के रुद्राक्षों के नाम हैं—कुटिका, साठर, गुटिका और दण्डिन् । इनमें से एक-एक रुद्राक्ष के चार-चार भेद हो जाते हैं । अब मैं सिद्धि आदि अंशक का वर्णन करूँगा, जिससे मंत्र शुभ सिद्धि प्रदान करने वाला हो जाता है । ४-७ ।

भूमौ तु मातृका लेख्याः [3]कूटयन्त्रविवर्जिताः ।
मंत्राक्षराणि विश्लिष्य अनुस्वारं नयेत्पृथक् ॥८
साधकस्य तु या संज्ञा तस्या विश्लेषणं चरेत् ।
मंत्रस्याऽऽदौ तथा चान्ते साधकार्णानि [4]योजयेत् ॥९
सिद्धः साध्यः सुसिद्धोऽरिः संज्ञातो गणयेत्क्रमात् ।
मंत्रस्याऽऽदौ तथा चान्ते सिद्धिदः स्याच्छतांशतः ॥१०

कूटमन्त्रों को छोड़कर अन्य सभी मातृक वर्णों को भूमि के ऊपर लिखना चाहिए । मन्त्राक्षरों को अलग-अलग करके अनुस्वारों को भी उनसे अलग-अलग कर देना चाहिए । उसी प्रकार साधक के नाम के अक्षरों को भी अलग-अलग करके मन्त्र के आदि और अन्त में इन नामाक्षरों का प्रयोग करना चाहिए । मन्त्राक्षरों और (साधक के) नामाक्षरों को सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध और अरि-इस क्रम से गिनना चाहिए । इनमें से एक भी अपने शतांश से मन्त्र के आदि और अन्त में प्रयुक्त होने से सिद्धिदायक हुआ करता है । ८-१० ।

सिद्धादिश्चान्तसिद्धिश्च तत्क्षणादेव सिध्यति ।
सुसिद्धादिः सुसिद्धान्तः सिद्धवत्परिकल्पयेत् ॥११

---

१ छ. सागरश्चै° । २ ख ग. °ण्डिनो प° । ३ छ. °टषण्डवि° । ४ छ. याजयेत् ।

अरिमादौ तथाऽन्ते च दूरतः परिवर्जयेत् ।
[1]सिद्धः सुसिद्धश्चैकार्थे अरिः साध्यस्तथैव च ॥१२
आदौ सिद्धः स्थितो मन्त्रस्तदन्ते [2]तद्वदेव हि ।
मध्ये रिपुसहस्राणि न दोषाय भवन्ति हि ॥१३
मायाप्रसादप्रणवेनां[3]शकाख्यातमंत्रके ।
ब्रह्मांशको ब्रह्मविद्या विष्णवङ्गो[4] वैष्णवः स्मृतः ॥१४
रुद्रांशको[5] [6]वली वीर इन्द्रांशश्चेश्वरप्रियः ।
[7]नागांशो [8]नागस्तत्त्वाक्षो [9]यक्षांशो भूषणप्रियः ॥१५

सिद्धादि और सिद्धान्त मन्त्र तत्काल सिद्धि प्रदान करता है। सुसिद्धादि और सुसिद्धान्त भी सिद्धवत् ही समझना चाहिये। मन्त्र के आदि और अन्त में 'अरि' का वर्जन करना चाहिए। सिद्ध और सुसिद्ध मन्त्रों को समान फल के लिए प्रयुक्त करना चाहिए। मन्त्रादि और मन्त्रान्त में सिद्धमन्त्र रहने से तथा बीच में हजारों अरि मन्त्र रहने से (भी) कोई दोष नहीं होता है। माया, प्रसाद और प्रणव नामक मन्त्र भी अंशक मन्त्रों के अन्तर्गत आते हैं। ब्रह्मविद्या, ब्रह्मांश और वैष्णव मन्त्र विष्णु अङ्गवाला कहा गया है। रुद्र मन्त्रों को वीर कहते हैं। इन्द्रांश मन्त्र ईश्वर को प्रिय होते हैं। नागांश मन्त्र सर्पों को प्रभावित करते हैं और यक्षांश मन्त्र आभूषण-प्रिय होते हैं। ११-१५।

गन्धर्वांशोऽतिगीतादिभीमांशो राक्षसांशकः ।
दैत्यांशः स्याद्युद्धकश्रीर्मानी विद्याधरांशकः ॥१६
पिशाचांशो मलाक्रान्तो मंत्रं दद्यान्निरीक्ष्य च ।
मंत्र एकात्फडन्तः स्याद्विद्या पञ्चशतावधि ॥१७
वाला विंशाक्षरान्ता च[10] रुद्रा द्वाविंशगायुधा ।
तत ऊर्ध्वं तु ये मन्त्रा वृद्धा यावच्छतत्रयम् ॥१८

---

१ ख. ग. °द्धः स्वसि° । २ क. ङ. °देद्वहिः । म° । ३ क. ङ. नाङ्गकस्याङ्गम° ४ क. ङ. विष्णवंशो । ५ छ. °को भवेद्वीर । ६ क. ङ. च. व्रती । ७ क. ङ. नागाङ्गो । ८ क. ङ. °गस्तद्वक्षो । ९ क. ङ. °क्षाङ्गो भू° । १० क. ङ. च. च रन्ध्राद्द्वात्रिंशतायु° । ख. च. च वर्णा द्वा° ।

गन्धर्वांश मन्त्रों से गीत आदि में कटुता आती है और राक्षसांशक मन्त्र भय को उत्पन्न करने वाला है। दैत्यांश मन्त्र युद्ध में ऐश्वर्य प्रदान करने वाला और विद्याधरांशक मन्त्र मान बढ़ाने वाला है। पिशाचांश नामक मन्त्र मलाक्रान्त हुआ करता है अतः यह मन्त्र देखभाल करके देना चाहिए। फट् से अन्त होने वाले मन्त्र से पचास प्रकार की विद्यायें उत्पन्न होती हैं। बाला विद्या में बीस अक्षर और रुद्र मन्त्र में इक्कीस अक्षर होते हैं। उनके बाद के मन्त्रों में अक्षरों की संख्या बढ़ती ही जाती है और वे तीन सौ तक हो जाते है। १६-१८।

अकारादिहकारान्ताः क्रमात्पक्षौ सितासितौ।
अनुस्वारविसर्गेण विना चैव स्वरा दश ॥१९
ह्रस्वा शुक्ला दीर्घाः श्यामास्तिथयः प्रतिपन्मुखाः।
उदिते शान्तिकादीनि भ्रमिते [1]वश्यकादिकम् ॥२०
[2]भ्रामिते [3]सन्ध्यया द्वेषोच्चाटने स्तम्भनेऽस्तकम्।
इडावाहे शान्तिकाद्यं पिङ्गले कर्षणादिकम् ॥२१
मरणोच्चाटनादीनि विषुवे पञ्चधा पृथक्।
अधरस्य गृहे पृथ्वी ऊर्ध्वं तेजोऽन्तरा द्रवः ॥२२
रन्ध्रपार्श्वे बहिर्वायुः सर्वं व्याप्य महेश्वरः।
स्तम्भनं पार्थिवे शान्तिर्जले वश्यादि तेजसे।
वायौ स्याद्भ्रमणं शून्ये पुण्यं कालं समभ्यसेत् ॥२३

अकार से लेकर हकार तक (सभी वर्ण) क्रमशः शुक्ल और कृष्ण पक्षों के प्रतीक हैं। अनुस्वार और विसर्ग को छोड़कर दस स्वर होते है। इनमें से ह्रस्व स्वर प्रतिपदा से प्रारम्भ होने वाली शुक्ल पक्ष की तिथियों के और दीर्घ स्वर कृष्ण पक्ष की तिथियों के प्रतीक हैं। शान्ति आदि के लिए किये जाने वाले कर्म उदित वर्णो से करना चाहिए। शान्ति आदि कर्मों को उस समय करना चाहिए जब साधक की इडा नाडी में रक्त प्रवाह हो रहा हो, आकर्षण आदि कर्म तब करना चाहिए जब रक्त प्रवाह पृथक्-पृथक् पाँच प्रकार से विषुव नाडी में हो रहा हो। अधो भाग से श्वास चलने पर पृथ्वी तत्त्व (नासिका के) ऊर्ध्व भाग से श्वास चलने पर तेजस् तत्त्व और इन दोनों

१ क. ङ. वशका°। २ ख. ग. त्रासिते। ३ क. ङ. मध्यया।

के श्वास चलने पर द्रव तत्त्व की प्रधानता समझनी चाहिए। बाहर निकलते समय वायु (नासा) रन्ध्र के पार्श्व भाग से जिस प्रकार स्पर्श करती है उसी से उसकी गति समझी जाती है। महेश्वर सभी प्रकार की वायु में व्याप्त रहता है। पार्थिव तत्त्व की प्रधानता के समय स्तम्भन, जल-तत्त्व की प्रधानता के समय शान्ति और तेजस्तत्त्व की प्रधानता होने पर वशीकरण आदि कर्मों को करना चाहिए। इसी प्रकार वायु तत्त्व की प्रधानता होने पर (शत्रु के लिए) भ्रमण कर्म और शून्यावस्था में पुण्यकर्मो का अभ्यास करना चाहिए। १९-२३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेंऽशकादिकथनं नाम पञ्चविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः।३२५

अथ षड्विंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

गौर्यादिपूजा

ईश्वर उवाच—

सौभाग्यादेरुमापूजां वक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्तिदाम्।
मंत्रध्यानं मण्डलं च मुद्रां होमादिसाधनम्॥१
चित्रभानुं शिव कालं महाशक्तिसमन्वितम्।
इडाद्यं परतोद्धृत्य सदेवं सविकारणम्॥२
द्वितीयं द्वारकाक्रान्तं[1] गौरीगतिपदान्वितम्।
चतुर्थ्यन्तं प्रकर्तव्यं गौर्या वै मूलवाचकम्॥३
ॐ ह्रीं सः शौ[2] गौर्यै नमः॥४
तत्रार्णत्रितयेनैव जातियुक्तं[3]षडङ्गकम्।
आसनं प्रणवेनैव मूर्तिं वै हृदयेन तु॥५

---

१. छ. °रीप्रीति°। २ "गौर्यै नमः" इतिपद° नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु।
३ छ. °डङ्गुलम्।

महेश्वर बोले—अब मैं उमा की पूजा का वर्णन करूँगा, जिससे सौभाग्य इत्यादि की प्राप्ति होती है और जो भोग प्रदान करने वाली है। इसके लिए मैं मन्त्र, ध्यान, मण्डल, मुद्रा और होम आदि का साधन का वर्णन करूँगा। इस मन्त्र के बीज हैं चित्रभानु, शिव, काल और महाशक्ति। इसे इडा से आरम्भ करना चाहिए। द्वितीय मन्त्र द्वारकनाम बीज तथा गौरी नाम से युक्त रहता है। इसमें गौरी के नामों का चतुर्थी विभक्ति में प्रयोग करना चाहिए। मूल मन्त्र यह है—'ॐ ह्रीं सः शौं गौर्यै नमः'। तीन अक्षरों से युक्त न्यास तथा प्रणव मन्त्र के द्वारा (गौरी के लिए) आसन और हृदय मन्त्र से मूर्ति की उपकल्पना करनी चाहिए। १-५।

ऊहकं च तथा कालं शिववीजं समुद्धरेत्।
प्राणं[1] दीर्घस्वराक्रान्तं षडङ्गं [2]जातिसंयुतम् ॥६
आसनं प्रणवेनात्र मूर्तिन्यासं हृदाऽऽचरेत्।
यामलं कथितं वत्स एकवीरं वदाम्यथ ॥७
व्यापकं सृष्टिसंयुक्तं वह्निमायाकृशानुभिः।
शिवशक्तिमयं वीजं हृदयादिविवर्जितम् ॥८
गौरीं यजेद्धेमरूप्यां काष्ठजां[3] शैलजादिकाम्।
पञ्चपिण्डां तथाऽव्यक्तां कोणे मध्ये तु पञ्चमम् ॥९
ललिता सुभगा गौरी क्षोभनी (णी) चाग्नितः क्रमात्।
वामा ज्येष्ठा क्रिया ज्ञाना वृत्ते पूर्वादितो यजेत् ॥१०

'ऊ' काल बीज तथा शिव बीज का उद्धार करे। दीर्घस्वर से आक्रान्त प्राण—'यां यीं इत्यादि से जातियुक्त षडङ्गन्यास करे। प्रणव से आसन तथा हृदय मन्त्र से मूर्ति न्यास करे। यह मैने 'यामल मन्त्र' कहा है। अब 'एकवीर' का वर्णन करता हूँ। सृष्टिन्यास से युक्त व्यापक न्यास अग्नि, माया तथा कृशानु द्वारा करे। शिव शक्तिमय बीज हृदयादि से वर्जित है। गौरी की सोने, चाँदी, लकड़ी अथवा पत्थर आदि की प्रतिमा बनाकर उसकी पूजा करे। अथवा पाँच पिण्डीवाली मृण्मयी प्रतिमा बनाये। चारों कोणो में अव्यक्त प्रतिमा रहे और मध्य भाग में पाँचवीं व्यक्त प्रतिमा स्थापित करे। आवरण-

---

१ क. ख. ग. ङ. °र्घसुरा°। २ क. ङ. जातसंयुगम्। ३ ख. ग. कांस्यजां। क. ङ. कोष्ठजां।

देवताओं के रूप में क्रमशः ललिता आदि शक्तियों की पूजा करनी चाहिए। पहले वृत्ताकार अष्टदल कमल बनाकर आग्नेय आदि कोणवर्ती दलों में क्रमशः ललिता, सुभगा, गौरी और क्षोभणी की पूजा करे। फिर पूर्वादि दलों में वामा, ज्येष्ठा, क्रिया और ज्ञाना का यजन करे। ६-१०।

सपीठे वामभागे तु शिवस्याव्यक्तरूपकम्।
व्यक्ता द्विनेत्रा त्र्यक्षा वा शुद्धा वा शंकरान्विता ॥११
[1]पीठपद्मद्वयस्था वा द्विभुजा वा चतुर्भुजा।
सिंहस्था वा वृकस्था वा अष्टाष्टादशसत्करा: ॥१२
[2]स्रगक्षसूत्रकलिका गलकोत्पलपिण्डिका।
शरं धनुर्वा सव्येन पाणिनाऽन्यतम् महत् ॥१३
वामेन पुस्तताम्बूलदण्डाभयकमडलुम्।
गणेशं दर्पणेष्वासान्दद्यादेकैकशः क्रमात् ॥१४

शिव के अव्यक्त रूप का पूजन देवी के पीठासन के वाम भाग में करना चाहिए। देवी की कल्पना दो अथवा तीन नेत्रों से युक्त शुद्ध अथवा शंकर के साथ दो पद्मों के पीठ के ऊपर दो या चार भुजाओं वाली सिंहस्थ अथवा वृकस्थ, आठ अथवा अट्ठारह हाथों वाली माला रुद्राक्ष यज्ञोपवीत मणिविशेष से युक्त एक बाँयें हाथ में धनुष अथवा बाण से' युक्त, दूसरे बाँयें हाथ में पुस्तक, ताम्बूल दण्ड, अभय मुद्रा और कमण्डलु से युक्त करनी चाहिए। क्रमशः दर्पणो में गणेश की कल्पना करनी चाहिए। ११-१४।

व्यक्ताव्यक्ताऽथ वा कार्या[3] पद्ममुद्रा स्मृताऽऽसने।
लिङ्गमुद्रा शिवस्योक्ता [4]मुद्रा चाऽऽवाहिनी द्वयोः ॥१५
शक्तिमुद्रा तु योन्याख्या चतुरस्रं तु मण्डलम्।
चतुर्हस्तं त्रिपत्राब्जं मध्यकोष्ठचतुष्टये[5] ॥१६
त्र्यस्रार्धे चार्धचन्द्रं तु द्विपदं द्विगुणं क्रमात्।
द्विपदं द्वारकण्ठं तु द्विगुणादुपकण्ठतः ॥१७

---

१ ख. ग. °यस्तारा द्वि°। २ क. ख. ङ °का शलाको°। ३. क. ङ. °द्रा स्थिताऽऽ°। ४ "मुद्रयाऽऽवाहनं" तयोः इत्यपि क्वचित्पाठः। ५ ख. °ष्टयम्। त्र्य°।

द्वारत्रयं त्रयं दिक्षु अथ वा भद्रके यजेत् ।
स्थण्डिले वाऽथ संस्थाप्य पञ्चगव्यामृतादिना ॥१८
रक्तपुष्पाणि देयानि पूजयित्वा ह्युदङ्मुखः ।
शतं हुत्वा घृताद्यं च पूर्णादः सर्वसिद्धिभाक् ॥१९

आसन के ऊपर पद्ममुद्रा वाली व्यक्त अथवा अव्यक्त देवी का स्मरण करना चाहिए। शिव की मुद्रा लिङ्गमुद्रा कही गयी है और दोनों की मुद्रा आहवनीय मुद्रा कही गयी है। शक्ति मुद्रा योनि मुद्रा है। गौरी पूजन के लिए बनाया गया मण्डल चौकोर होता है वह चार हाथ का होता है जिसके मध्य के चौखाने में त्रिदल कमल रहा करता है। तीन हाथों के आधे भाग में अर्ध चन्द्र की स्थापना करके क्रमशः उसे दुगुना करना चाहिए। उपकण्ठ से दूना द्वारकण्ठ होता है। तीन द्वारों पर तीन दिशाओं में, भद्रासन के ऊपर अथवा स्थण्डिल के ऊपर देवी की स्थापना करके पञ्चगव्यामृतादि से देवी की पूजा करनी चाहिए। घृत इत्यादि से सौ आहुतियाँ देकर पूर्णाहुति देने से सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।१५-१६।

वलिं दत्त्वा कुमारीश्च [1]तिस्रो वा चाष्ट भोजयेत् ।
नैवेद्यं शिवभक्तेषु दद्यान्न स्वयमाचरेत् ॥२०
कन्यार्थी लभते कन्यामपुत्रः पुत्रमाप्नुयात् ।
दुर्भगा चैव सौभाग्यं राजा राज्यं जयं रणे ॥२१
अष्टलक्षैश्च वाक्सिद्धिर्देवाद्या वशमाप्नुयुः ।
अनिवेद्य न चाश्नीयाद्वामहस्तेन[2] चार्चयेत् ॥२२
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां तृतीयायां विशेषतः ।
मृत्युंजयार्चनं वक्ष्ये पूजयेत्कलशोदरे ॥२३
[3]हूयमानं च प्रणवो मूर्तिरौजूंस ईदृशम् ।
मूलं च वौषडन्तेन कुम्भमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥२४

तदनन्तर देवी को वलि देकर तीन अथवा आठ कुमारियों को भोजन कराना चाहिए और शिव भक्तों में नैवेद्य बाँटकर स्वयं उसका उपभोग नहीं

१. ख. ग. स्त्रियो। २ क. ङ. °न वाऽर्च्चं°। ३ ख. ग. जूमासनं। क. ङ. युग्मासनं।

करना चाहिए। (इस पूजन में) कन्याभिलाषी को कन्या तथा पुत्रहीन को पुत्र की प्राप्ति होती है। भाग्यहीन को भाग्य प्राप्त होता है और राजा को राज्य तथा युद्ध में विजय होती है। इस मन्त्र का आठ लाख वार जप करने से वाक्-सिद्धि होती है और देवादि वश में हो जाते है। विना देनता को दिए हुए भोजन नही करना चाहिए और बाँयें हाथ से पूजन नही करना चाहिए। यह पूजन अष्टमी, चतुर्दशी और तृतीया में विशेष रूप से होता है। अब मैं मृत्युञ्जय पूजन के विषय मे बतलाऊँगा जिसे कलश के अन्दर करना चाहिए। मूर्ति का आवाहन करके प्रणव के साथ 'ॐ जूं सः' मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए। मूल मन्त्र के अन्त में 'वौषट्' का प्रयोग करना चाहिए और कुम्भमुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिए। २०-२४।

होमयेत्क्षीरदूर्वाज्यममृतां च पुनर्नवाम्।
पायसं च पुरोडाशमयुतं तु जपेन्मनुम् ॥२५
चतुर्मुखं चतुर्बाहुं द्वाभ्यां च कलशं दधत्।
वरदाभयकं द्वाभ्यां स्नायाद्वै कुम्भमुद्रया ॥२६
आरोग्यैश्वर्यदीर्घायुरौषधं मन्त्रितं शुभम्।
अपमृत्युहरो ध्यातः पूजितो 'ह्यत एव सः ॥२७

दूत्र, दूर्वा, आज्य, अमृत, पुनर्नवा और खीर का हवन करके दस हजार मन्त्रो का जप करना चाहिए। देवता का ध्यान इस प्रकार करना चाहिए कि उसके चार मुख और चार भुजायें हैं, उसने अपनी दो भुजाओ में कलश को धारण कर रखा है और दो भुजाओं को अभय वरदान देने के लिए उठा रखा है। कुम्भमुद्रा में ही स्नान करना चाहिए। इस देवता का मन्त्र आरोग्य, ऐश्वर्य और दीर्घायु के लिए औषधरूप और शुभ हुआ करता है। वह अपमृत्यु का अपहरण करने वाला है। इसीलिए इस देवता का ध्यान और पूजन किया जाता है। २५-२७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गौर्यादिपूजावर्णनं नाम षड्विंशत्यधिक-त्रिशततमोऽध्यायः ।३२६

---

१ क. ङ. भुवि।

अथ सप्तविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

देवालयमाहात्म्यम्

ईश्वर उवाच—

व्रतेश्वरांश्च सत्यादीनिष्ट्वा व्रतसमर्पणम् ।
अरिष्टशमने शस्तमरिष्टं सूत्रनायकम् ॥१
हेमरत्नमयं भूत्यै महाशङ्खं च मारणे ।
[1]आप्यायने शंखसूत्रं मौक्तिकं पुत्रवर्धनम् ॥२
स्फाटिकं भूतिदं कौशं मुक्तिदं रुद्रनेत्रजम् ।
धात्रीफलप्रमाणेन रुद्राक्षं चोत्तमं ततः ॥३
समेरुं मेरुहीनं वा सूत्रं जप्यं तु मानसम् ।
अनामाङ्गुष्ठमाक्रम्य जपं भाष्यं तु कारयेत् ॥४

महेश्वर बोले—सत्य इत्यादि व्रतेश्वरों का यजन करके व्रत समर्पण करना चाहिए। यह अनिष्टों को शान्त करने में श्रेष्ठ माना गया है। सोने और रत्नों की बनी हुयी माला कल्याण के लिए। (मरे हुए चाण्डाल के दाँतों से बनी हुयी) महाशंख नाम की माला मारण में, शंखों की बनी हुयी माला पुष्टि करने में और मोतियों की माला पुत्रों की वृद्धि करने वाली होती है। स्फटिक की बनी हुयी माला कल्याणप्रद, रुद्राक्ष की माला मुक्तिप्रद और आँवले के बराबर रुद्राक्षों से बनी माला उससे उत्तम मानी गयी है। मानसिक जप में मेरु से युक्त अथवा मेरु से हीन माले का प्रयोग करना चाहिए। माले को अनामिका और अंगूठे से पकड़ना चाहिए। १-४।

[2]तर्जन्यङ्गुष्ठमाक्रम्य न मेरुं लङ्घयेज्जपे ।
प्रमादात्पतिते सूत्रे जप्तव्यं तु शतद्वयम् ॥५
सर्ववाद्यमयी घण्टा तस्या वादनमर्थकृत् ।
गोशकृन्मूत्रवल्मीकमृत्तिकाभस्मवारिभिः ॥६
वेश्मायतनलिङ्गादेः कार्यमेवं विशोधनम् ।
स्कन्दो नमः शिवायेति मंत्रः सर्वार्थसाधकः ॥७

---

१. क. ङ. अघापने । २. क. ङ. मात्रेण न ।

जप में तर्जनी और अंगुष्ठ से माले को पकड़ना चाहिए किन्तु जप में मेरु का उल्लंघन नही करना चाहिए। यदि प्रमाद वश माला (हाथ से) गिर जाय तो मन्त्र को दो सौ बार जपना चाहिए। घण्टा सभी वाद्यों से युक्त होता है और उसका बजाना सभी मनोरथों को पूर्ण करता है। घण्टे का शोधन गोवर गोमूत्र, वल्मीक की मिट्टी, भस्म और घर इत्यादि की मिट्टी से करना चाहिए। हे स्कन्द ! 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाला हैं। ५-७।

गोतः पञ्चाक्षरो वेदे लोके गीतः षडक्षरः।
ओमित्यन्ते स्थितः शंभुर्महार्णे[1] वटवीजवत् ॥८
क्रमान्नमः शिवायेति ईशानाद्यानि वै विदुः।
षडक्षरस्य सूत्रस्य भाष्यं विद्याकदम्वकम् ॥९
यदों नमः शिनायेति एतावत्परमं पदम्।
अनेन पूजयेल्लिङ्गं लिङ्गे यस्मात्स्थितः शिवः ॥१०
अनुग्रहाय लोकानां धर्मकामार्थमुक्तिदः।
यो न पूजयते लिङ्गं न स धर्मादिभाजनम् ॥११

वेद में यह मन्त्र पांच अक्षरों में गाया जाता है और लौकिक संस्कृत मे उसे छह अक्षरों से युक्त गाना चाहिए। 'ॐ शम्भु' इत्यादि अक्षर बट बीज के समान होता है। 'नमः शिवाय' इत्यादि से ही ईशान इत्यादि देवताओं के मन्त्रों का ज्ञान होता है। यह षडक्षर सूत्र सभी विद्याओं का समूह है। 'ॐ नमः शिवाय' इत्यादि मन्त्र उत्कृष्टतम है इसी के द्वारा (शिव) लिङ्ग का पूजन करना चाहिए क्योंकि लिङ्ग में ही शिव स्थित रहा करते हैं। सभी लोकों में अनुग्रह करने वाला और धर्म, काम और मोक्ष को देने वाला लिङ्ग ही है। जो लिङ्ग का पूजन नहीं करता है, वह धर्म इत्यादि का पात्र नही होता है।८-११।

लिङ्गार्चनाद् भुक्तिमुक्तिर्यावज्जीवमतो यजेत्।
वरं प्राणपरित्यागो भुञ्जीतापूज्य नैव तम् ॥१२
रुद्रस्य पूजनाद्रुद्रो विष्णुः स्याद्विष्णुपूजनात्।
सूर्यः स्यात्सूर्यपूजातः शक्त्यादिः शक्तिपूजनात् ॥१३

---

१ क. ङ. °हार्थे वहुवी° । ख. °हार्थं व° ।

सर्वयज्ञतपोदाने तीर्थे वेदेषु यत्फलम् ।
तत्फलं कोटिगुणितं स्थाप्य लिङ्गं लभेन्नरः ॥१४
त्रिसंध्यं योऽर्चयेल्लिङ्गं कृत्वा विल्वेन पार्थिवम् ।
शतैकादशिकं यावत्कुलमुद्धृत्य नाकभाक् ॥१५

शिवलिंगार्चन से ही भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है अतः जीवन-पर्यन्त उसी का पूजन करना चाहिए। प्राणों का परित्याग श्रेष्ठ है किन्तु विना शिवलिंग के पूजन के भोजन करना उचित नहीं है। रुद्र का पूजन करने से (साधक) रुद्र मय हो जाता है। विष्णु का पूजन करने से वह विष्णु हो जाता है, सूर्यार्चन से सूर्य और शक्ति का पूजन करने से शक्त्यादिमय हो जाता है। सभी प्रकार के यज्ञों, तपों, दानों, तीर्थों और वेदों का जो फल होता है वही फल करोड़ों गुना होकर शिवलिङ्ग की स्थापना करने वाले मनुष्य को प्राप्त हो जाता है। पार्थिव लिंग की स्थापना करके त्रिकाल सन्ध्याओं में बिल्वपत्र से पूजन करने से (साधक) अपने एक सौ ग्यारह पीढ़ियों के साथ स्वर्ग का भागी होता है। १२-१५।

भक्त्या वित्तानुसारेण कुर्यात्प्रासादसंचयम् ।
अल्पे महति वा तुल्यं फलमाढ्यदरिद्रयोः ॥१६
भागद्वयं च धर्मार्थं कल्पयेज्जीवनाय च ।
धनस्य भागमेकं तु अनित्यं जीवित यतः ॥१७
त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य देवागारकृदर्थभाक् ।
मृत्काष्ठेष्टकशैलाद्यैः क्रमात्कोटिगुणं फलम् ॥१८
अष्टेष्टकसुरागारकारी स्वर्गमवाप्नुयात् ।
पांशुना क्रीडमानोऽपि देवागारकृदर्थभाक् ॥१९

अपने धनसंचय के अनुसार भक्तिपूर्वक देवमन्दिर निर्माण कराना चाहिए। दरिद्र और धनिक को मन्दिर-निर्माण में यथाशक्ति अल्प या अधिक व्यय करने के समान फल मिलता है। संचित धन के दो भाग धर्म कार्य में व्यय करके जीवन-निर्वाह के लिए समभाग रखें, क्योंकि जीवन अनित्य है। देवमन्दिर बनवाने वाला अपनी इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार करके अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति करता है। मिट्टी, लकड़ी, ईंट और पत्थर से मन्दिर निर्माण का क्रमशः करोड़ गुना फल है। आठ ईंटों से भी मन्दिर का निर्माण करने

वाला स्वर्गलोक को प्राप्त हो जाता है। क्रीडा में धूलि का मन्दिर बनाने वाला भी अभीष्ट मनोरथ को प्राप्त करता है।१६-१९।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये देवालयमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः।३२७

अथाष्टाविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

छन्दःसारः

अग्निरुवाच—

[1]छन्दो वक्ष्ये [2]मूलजैस्तैः पिङ्गलोक्तं यथाक्रमम्।
सर्वादिमध्यान्तगणौ [3]म्लौ भ्यो ज्रौ[4] स्तौ त्रिका गणाः ॥१
[5]ह्रस्वो गुरुर्वा पादान्ते पूर्वयोगाद्विसर्गतः।
अनुस्वाराद्व्यञ्जनात्स्याज्जिह्वामूलीयतस्तथा ।२
उपध्मानीयतो दीर्घो [6]गुरुग्लौं नौ गणाविह।
वसवोऽष्टौ च चत्वारो [7]वेदादीन्यादिलोकतः[8] ॥३

अग्निदेव बोले—अब मैं वेद के मूलमन्त्रों के अनुसार पिङ्गलोक्त छन्दों का क्रमशः वर्णन करूँगा। मगण, नगण, भगण, यगण, जगण, रगण, सगण, और तगण—ये आठ गण होते हैं। सभी गण तीन-तीन अक्षरों के हैं। इनमें मगण के सभी अक्षर गुरु और नगण के सब अक्षर लघु होते हैं। आदि गुरु होने से 'भगण' तथा आदि लघु होने से 'यगण' होता है। इसी प्रकार अन्त्य गुरु होने से 'सगण' तथा अन्त्य लघु होने से 'तगण' होता है। पाद के अन्त में वर्तमान ह्रस्व अक्षर विकल्प से गुरु माना जाता है। विसर्ग, अनुस्वार, संयुक्त अक्षर (व्यञ्जन), जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय से अव्यवहित पूर्व में स्थित होने पर 'ह्रस्व' भी गुरु माना जाता है, दीर्घ तो गुरु है ही। गुरु का संकेत

---

१ क. ङ. छन्दान्वक्ष्ये। २ ख. ग. °लशब्दैःपि। ३ क. ङ. म्नौ। ख. ग. म्रौ। ४ क.ङ. ज्मौ। ५ ख. ग. °स्वो लघुर्वा। ६ ख. ग. °रुलौ सगलावि°। ७ ख. ग. °दा इत्यादि। ८ छ. °लोपतः।

'ग' और लघु का संकेत 'ल' है। ये 'ग' और 'ल' गण नहीं हैं। वसु शब्द आठ की और वेद चार की संज्ञा है, इत्यादि बातें लोक के अनुसार जाननी चाहिए ।१-३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये छन्दःसारकथनं नामाष्टविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।३२८

अथैकोनत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

छन्दःसारः

अग्निरुवाच—
छन्दोधिकारे गायत्री देवी चैकाक्षरा भवेत् ।
[1]पञ्चदशाक्षरा सा स्यात्प्राजापत्याऽष्टवर्णिका ॥१
यजुषां षडर्णा गायत्री साम्नां स्याद्द्वादशाक्षरा ।
ऋचामष्टादशार्णा स्यात्साम्नां [2]वर्धेत च द्वयम् ॥२
ऋचां त्रयं च वर्धेत प्राजापत्याचतुष्टयम् ।
वर्धेदेकैककं शेषे आसुर्या एकमुत्सृजेत् ॥३
उष्णिगनुष्टुब्बृहती पङ्क्तिस्त्रिष्टुब्जगत्यपि ।
तानि ज्ञेयानि क्रमशो गायत्र्यो [3]ब्राह्म्य एव ताः ॥४
तिस्रस्तिस्रः सनाम्न्य स्युरेकैका [4]आर्ष्य एव च[5] ।
प्राग्यजुषां च संज्ञाः स्युश्चतुःषष्टिपदे लिखेत् ॥५

अग्निदेव बोले—(गायत्री छन्द के आठ भेद हैं—आर्षी, दैवी, आसुरी, प्राजापत्या, याजुषी, साम्नी, आर्ची तथा ब्राह्मी) 'छन्द' शब्द अधिकार में प्रयुक्त हुआ है, अर्थात् इस पूरे प्रकरण में छन्द शब्द की अनुवृत्ति होती है। 'दैवी गायत्री एक अक्षर की, 'आसुरी' पन्द्रह अक्षरों की, 'प्राजापत्या' आठ अक्षरों की, 'याजुषी' छह अक्षरों की, 'साम्नी' गायत्री बारह अक्षरों की तथा

---

१ क. ङ. 'दश्यासुरी रम्या प्राजा' २ क. ङ. 'र्धेद्द्वयं द्व' । ३ क. ङ. ह्म्य देव' । ४ छ. आर्य । ५ छ. च. । ऋग्य' ।

आर्चो' अठारह अक्षरों की है। यदि साम्नी गायत्री में क्रमशः दो-दो अक्षर बढ़ाते हुए उन्हें छह कोष्ठों में लिखा जाय, इसी प्रकार आर्ची गायत्री में तीन-तीन, 'प्राजापत्या' में चार—चार तथा अन्य गायत्रियों में अर्थात् दैवी और याजुषी मे क्रमशः एक—एक अक्षर बढ़ जाय एवं आसुरी गायत्री का एक-एक अक्षर क्रमशः छह कोष्ठों में घटता जाय तो उन्हें 'साम्नी' आदि भेदसहित क्रमशः उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप् और जगती छन्द जानना चाहिए। याजुषी, साम्नी तथा आर्ची-इन तीन भेदों वाले गायत्री आदि प्रत्येक छन्द के अक्षरों को पृथक्-पृथक् जोड़ने पर उन सबको 'ब्राह्मी गायत्री', 'ब्राह्मी—उष्णिक्' आदि छन्द समझना चाहिए। इसी प्रकार याजुषी पहले जो दैवी, आसुरी और प्राजापत्या नामक तीन भेद हैं, उनके अक्षरों को पृथक् पृथक् छह कोष्टों में जोड़ने पर जितने अक्षर होते हैं वे, 'आर्षी गायत्री, 'आर्षी उष्णिक्' आदि कहलाते हैं। इनमे दो को स्पष्ट रूप से समझने के लिए चौसठ कोष्ठों को लिखना चाहिए।१—५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये छन्दःसारकथनं नामैकोन-त्रिशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः।३२९

अथ त्रिशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

छन्दःसारः

अग्निरुवाच—

पाद आपादपूरणे[1] गायत्र्यो वसवः स्मृताः।
जगत्या आदित्याः पादो विराजो दिश ईरिताः॥१
[2]त्रिष्टुभो रुद्राः पादः स्याच्छन्द एकादिपादकम्।
आद्यं चतुष्पादृतुभिस्त्रिपात्सप्ताक्षरैः क्वचित्॥२

अग्निदेव बोले—पादपूर्ति तक 'पाद' का अधिकार है। गायत्री के एक पाद में आठ अक्षर बताये गये हैं। जगती के एक पाद में बारह अक्षर, विराट् के एक पाद में दश अक्षर, त्रिष्टुप् के एक पाद में ग्यारह अक्षर होते हैं।

---

१ ख. °पूरेण गा°। २ छ. विष्णुतो।

छन्दों में एक और उससे अधिक पाद हो सकते हैं। प्रथम (गायत्री) छन्द छह-छह अक्षर वाले चार पदों से युक्त होता है। कहीं-कहीं इसमें सात-सात अक्षरों के तीन पाद भी होते हैं।१-२।

([1]सा गायत्री [2]पादनिचृत्प्रतिष्ठाप्टाद्रिषट्त्रिपात्।
वर्धमाना षडष्टाष्टा त्रिपात्ष[3]डष्टभूधरैः॥३
[4]गायत्र्यतिपादनिचृन्नागो नवनवर्तुभिः।
वाराही [5]रसद्विरन्धैश्छन्दश्चाथ तृतीयकम्॥४

ये गायत्री पाद निचृत् कहलाती है। यदि गायत्री के प्रथम पाद में आठ अक्षर, दूसरे में सात अक्षर और तीसरे में छह अक्षर हों तो उसे 'विपरीता' गायत्री कहते हैं। इसमें तीन पाद होते हैं। 'वर्धमाना गायत्री' उसे कहते हैं जिसके प्रथम पाद में छह अक्षर और शेष दो में आठ-आठ अक्षर होते हैं। जिस गायत्री के प्रथम पाद में छह दूसरे में आठ और तीसरे में सात अक्षर होते हैं उसे 'अतिपादनिचृत्' गायत्री कहते हैं। जिस गायत्री के प्रथम दो पादों में नौ-नौ अक्षर और तीसरे में छह अक्षर होते हैं उसे 'नागी कहते हैं। किन्तु जिसके प्रथम पाद में छह अक्षर तथा दूसरे और तीसरे पाद में नौ-नौ अक्षर होते हैं उसे 'वाराही' गायत्री कहते हैं।३-४।

द्विपाद्द्वादशवस्वर्णैस्त्रिपात्तु [6]त्रैष्टुभैः स्मृतम्।
उष्णिक्छन्दोऽष्टवस्वर्कैः पादैर्वेदे प्रकीर्तितः॥५
[7]ककुबुष्णिगष्टसूर्यवस्वर्णै [8]स्त्रिभिरेव सः।
पुर उष्णिक्सूर्यवसुवस्वर्णैश्च त्रिपाद्भवेत्)॥६
परोष्णिक्परतस्तु स्याच्चतुष्पादृषिभिर्भवेत्[9]।
साष्टाक्षरैरनुष्टुप्स्याच्चतुष्पाच्च त्रिपात्क्वचित्॥७
अष्टार्कसूर्यवर्णैः स्यान्मध्येऽन्ते च क्वचिद्भवेत्।

---

१ 'सा···त्रिपाद्भवेत्' च. पुस्तके नास्ति। २ छ. °त्री पदे नीवृत्तत्प्रतिष्ठाद्रि° ३ छ. 'त्षड्वसुभू°। ४ छ. °यत्रीतिपदलीवृन्ना°। ५ क. °द्विनवर्कं वर्धमानत्वंगष्टभिः। वस्वश्वषट्कवर्णैश्च प्रतिष्ठा तु प्रकीर्तिता॥ द्वि°। ६ क. ङ. °पात्वर्णेर्जुनैः स्मृ°। ७ ख. °मनुष्टुप्सूर्य°। ८ ख. ग. °स्वर्णाङ्त्रिभि°। छ. °स्वर्णात्रिभि°। ९ क. ङ. °ष्पान्मुनिभिर्भ°। छ.° °ष्पादात्रिभिः°।

[1]बृहती [2]जगतस्त्रयो गायत्र्याः पूर्वको यदि ॥८
तृतीयः पथ्या भवति द्वितीया न्यङ्कुसारिणी ।
[3]स्कन्धो ग्रीवा क्रौष्टुके [4]स्याद्यास्कस्योरो[5] बृहत्यपि ॥९
उपरिष्टाद्बृहत्यन्ते पुरस्ताद्बृहती पुनः ।
क्वचिन्नवकाश्चत्वारो[6] दिग्विदिक्ष्वष्टवर्णिका ॥१०
महाबृहती जागतैः स्यात्त्रिभिः सतो बृहत्यपि ॥

जब दो चरण आठ-आठ अक्षरों के और एक चरण बारह अक्षरों का हो तो वेद में उसे 'उष्णिक्' नाम दिया गया है। प्रथम और तृतीय चरण आठ अक्षरों के हों और बीच का द्वितीय चरण बारह अक्षरों का हो तो वह तीन पादों का 'ककुप् उष्णिक्' नामक छन्द होता है। जब प्रथम चरण बारह अक्षरों का और द्वितीय-तृतीय चरण आठ-आठ अक्षरों के हों तो 'पुर उष्णिक्' नामक तीन पादों वाला छन्द होता है। जब प्रथम और द्वितीय चरण आठ-आठ अक्षरों के हों और तृतीय चरण बारह अक्षरों का हो तो 'परोष्णिक्' छन्द होता है। सात-सात अक्षरों के चार चरण होने पर भी 'उष्णिक्' नामक छन्द होता है। आठ-आठ अक्षर के चार चरणों का 'अनुष्टुप्' नामक छन्द होता है। 'अनुष्टुप्' छन्द कहीं-कही तीन चरणों का भी होता है। 'त्रिपाद अनुष्टुप्' दो तरह के होते हैं। एक तो वह है, जिसके प्रथम चरण में आठ तथा द्वितीय और तृतीय चरणों में बारह-बारह अक्षर होते हैं दूसरा वह है, जिसका मध्यम अथवा अन्तिम पद आठ अक्षर का हो तथा शेष दो चरण बारह-बारह अक्षर के हों। यदि एक चरण 'जगती' का (अर्थात् बारह अक्षर का) हो और शेष तीन चरण गायत्री के (अर्थात् आठ-आठ अक्षरों के) हों तो यह चार चरणों का 'बृहती छन्द' होता है। इसमे भी जब पहले का स्थान तीसरा चरण ले ले अर्थात् वही जगती का पाद हो और शेष तीन चरण गायत्री के हों तो उसे 'पथ्याबृहती' कहते है। जब पहले वाला 'जगती का चरण द्वितीय पाद हो जाय और शेष तीन गायत्री के चरण हों तो 'न्यङ्कुसारिणी बृहती' नामक छन्द होता है। आचार्य क्रोष्टुकि के मत में यह (न्यङ्कुसारिणी)' स्कन्ध' या 'ग्रीवा' नामक छन्द है। यास्काचार्य ने इसे ही 'उरो बृहती' नाम दिया है। जब अंतिम

१ क. 'तीजागतस्त्र' । २ छ. गत्यस्त्र° । ३ छ. स्कन्धी । ४ छ. स्याद्यक्षे स्याद्वोबृ° । ५ क. ङ. °स्योबृ° । ६ ख. ग. दिग्दिगष्टाप्ट° ।

(चतुर्थी) चरण 'जगती' का हो और आरम्भ के तीन चरण गायत्री के हों तो 'उपरिष्टाद् बृहती' नामक छन्द होता है। वही 'जगती' का चरण जब पहले हो और शेष तीन चरण गायत्री छन्द के हों तो उसे 'पुरस्ताद् बृहती' छन्द कहते हैं। वेद में कहीं कहीं नौ-नौ अक्षरों के चार चरण दिखाई देते हैं। वे भी 'बृहती' छन्द के अन्तर्गत हैं। जहाँ पहले दस अक्षर के दो चरण हों, फिर आठ अक्षरों के दो चरण हों, उसे भी 'बृहती छन्द' कहते हैं। केवल 'जगती' छन्द के तीन चरण हों तो उसे 'महाबृहती' कहते हैं। ताण्डी नामक आचार्य के मत में यही 'सतो बृहती' नामक छन्द है।५-१०½।

[1]ताण्डिनः पङ्क्तिश्छन्दः स्यात्सूर्यार्काष्टाष्टवर्णकैः ॥११
[2]पूर्वौ चेदयुजौ सतः पङ्क्तिश्च विपरीतकौ।
प्रस्तारपङ्क्तिः पुरतः [3]परादा[4]स्तारपङ्क्तिकः ॥१२
[5]विस्तारपङ्क्तिरन्तश्चेद्वहिः संस्तारपङ्क्तिका।
अक्षरपङ्क्तिः पञ्चकाश्च चत्वारश्चाल्पशो द्वयम् ॥१३
पदपङ्क्तिः पञ्च भवेच्चतुष्कं षट्ककत्रयम्।
षट्कपञ्चीभिर्गायत्रैः षड्भिश्च जगती भवेत् ॥१४

जहाँ दो पाद बारह-बारह अक्षरों के और दो आठ-आठ अक्षरों के हों, वहाँ 'पङ्क्ति' नामक छन्द होता है। यदि विषम पाद, अर्थात् प्रथम और तृतीय चरण पूर्वकथनानुसार बारह-बारह अक्षरों के हों और शेष दोनों आठ-आठ अक्षरों के हों तो उसे 'सतः पङ्क्ति। नामक छन्द कहते हैं। यदि वे ही चरण विपरीत अवस्था में हों, अर्थात्' प्रथम-तृतीय चरण आठ-आठ अक्षरों के और द्वितीय चतुर्थ बारह-बारह अक्षरों के होंतो भी वह छन्द 'सतः पङ्क्ति' ही कहलाता है। जब पहले के दोनों चरण बारह-बारह अक्षरों के हों और शेष दोनों आठ-आठ अक्षरों के हों तो उसे 'प्रस्तारपङ्क्ति' कहते हैं। जब अन्तिम दो चरण बारह-बारह अक्षरों के हों और आरम्भ के दोनों आठ-आठ अक्षरों के हों तो 'आस्तारपङ्क्ति' नामक छन्द होता है। यदि बारह अक्षरों वाले दो चरण बीच में हों और प्रथम और चतुर्थ चरण आठ-आठ अक्षरों के हों तो उसे विस्तार-

१ छ. मण्डिलः। २ घ. ङ. च. °वौ वेदयु° । घ. °वौ देवयु°। ३ ख. ङ. पश्चादा°। ४ कः ङ. °दास्वासप। ५ विस्तारपङ्क्ति......संस्तारपङ्क्तिका' नास्ति क. घ. ङ० पुस्तकेषु।

पङ्क्ति' कहते हैं। यदि बारह अक्षरों वाले दो चरण बाहर हों, अर्थात् प्रथम एवं चतुर्थ चरण के रूप में हों और बीच के द्वितीय तृतीय चरण आठ-आठ अक्षरों के हों तो वह संस्तार-पङ्क्ति' नामक छन्द होता है। पाँच-पाँच अक्षरो के चार पाद होने पर 'अक्षरपङ्क्ति' नामक छन्द होता है। पाँच अक्षरों के दो ही चरण होने पर 'अल्पशः पङ्क्ति' नामक छन्द कहलाता है। जहाँ पाँच पाँच अक्षरों के पाँच पाद हों, वहाँ 'पदपङ्क्ति' नामक छन्द जानना चाहिए। जब पहला चरण चार अक्षरों का, दूसरा छह अक्षरों का तथा शेष तीन पाद पाँच पाँच अक्षरों के हों तो भी 'पदपङ्क्ति' छन्द ही होता है। आठ-आठ अक्षरों के पाँच पादों का 'पथ्यापङ्क्ति' नामक छन्द कहा गया है। आठ-आठ अक्षरों के छह चरण होने पर 'जगतीपङ्क्ति' नामक छन्द होता है।११-१४।

एकेन त्रिष्टुब्ज्योतिष्मती तथैव जगतीरिता।
पुरस्ताज्ज्योतिः प्रथमे मध्येज्योतिश्च मध्यतः ॥१५
उपरिष्टाज्ज्योतिरन्त्यादेकस्मिन्पञ्चके तथा।
भवेच्छन्दः शङ्कुमती षट्के छन्दः ककुद्मती ॥१६
त्रिपादशिशुमध्या स्यात्सा पिपीलिकमध्यमा।
विपरीता यवमध्या [1]त्रिवृदेकेन वर्जिता ॥१७
[2]भूरिजैकेनाधिकेन [3]विहीना च चिराद्भवेत्।
स्वराट्स्याद्द्वाभ्यामधिकं संदिग्धे दैवतादितः ॥१८

'त्रिष्टुप्' अर्थात् ग्यारह अक्षरों का एक पाद हो और आठ-आठ अक्षरों के चार पाद हों तो पाँच पादों का 'त्रिष्टुब्ज्योतिष्मती' नामक छन्द होता है। इसी प्रकार जब एक चरण 'जगती' का अर्थात् बारह अक्षरों का हो और चार चरण 'गायत्री' के (आठ-आठ अक्षरों के) हों तो उस छन्द का नाम 'जगतीज्योतिष्मती' होता है। यदि पहला ही चरण ग्यारह अक्षरों का हो और शेष चार चरण आठ-आठ अक्षरों के हों तो 'पुरस्ताज्ज्योति' नामक त्रिष्टुप् छन्द होता है और यदि पहला ही चरण बारह अक्षरों का तथा शेष चार चरण आठ-आठ के हों तो 'पुरस्ताज्ज्योति' नामक जगती छन्द होता है। जब मध्यम चरण ग्यारह अक्षरों ओर आगे पीछे के दो-दो चरण आठ-आठ के हों तो 'मध्ये ज्योति' नामक त्रिष्टुप् छन्द होता है, इसी प्रकार जब मध्यम

---

१ क. ङ. निछेदेकेन। ख. ग. निवृदेकेन। २ छ. 'भूमिजै'। ३ छ द्विहीना।

चरण बारह का तथा आदि अन्त के दो-दो चरण आठ-आठ के हों तो 'मध्ये ज्योति' नामक जगती छन्द होता है। जब आरम्भ के चार चरण आठ-आठ अक्षरों के हों तथा अन्तिम चरण ग्यारह अक्षरों का हो तो उसे 'उपरिष्टाज्ज्योति' त्रिष्टुप् कहते हैं। इसी प्रकार जब आदि के चार चरण पूर्ववत् आठ-आठ के हों और अन्तिम पाद बारह अक्षरों का हो तो उसका नाम 'उपरिष्टाज्ज्योति' जगती छन्द होता है। गायत्री आदि सभी छन्दों के एक पाद में यदि पाँच अक्षर हों तथा अन्य पादों में पहले के अनुसार नियत अक्षर ही हों तो उस छन्द का नाम 'शङ्कुमती' होता है। जब एक चरण छह अक्षरों का हो और अन्य चरणों में पहले बताये अनुसार नियत अक्षर ही हों तो उसका नाम 'ककुद्मती' होगा। जहाँ तीन पाद वाले छन्द के पहले और दूसरे चरण में अधिक अक्षर हों और बीच वाले में बहुत ही कम हों, वहाँ उस छन्द का नाम 'पिपीलिकमध्या' होगा। इसके विपरीत जब आदि और अन्त वाले पादों के अक्षर कम हों और बीच वाला पाद अधिक अक्षरों का हो तो उस 'त्रिपादगायत्री' आदि छन्द को 'यवमध्या' कहते हैं। यदि 'गायत्री' या 'उष्णिक्' आदि छन्दों में केवल एक अक्षर की कमी हो उसकी 'निचृत्' यह विशेष संज्ञा होती है। एक अक्षर की अधिकता होने पर वह छन्द 'भूरिक्' नाम धारण करता है। इस प्रकार दो अक्षरों की कमी के कारण 'विराट्' और दो अक्षर अधिक होने पर 'स्वराट्' संज्ञा होती है। संदिग्ध अवस्था में आदि पाद के अनुसार छन्द का निर्णय करना चाहिए।१५-१८।

आदिपादान्निश्चयः स्याच्छन्दसां देवताः क्रमात्।
([1]अग्निः सूर्यः शशी जीवो वरुणश्चन्द्र एव च ।।१९
विश्वेदेवाश्च [2]षड्जगत्याः स्वराः षड्जो वृषः क्रमात्)।
गान्धारो मध्यमश्चैव पञ्चमो धैवतस्तथा ।।२०
निषादो वर्णाः श्वेतश्च सारङ्गश्च पिशङ्गकः।
कृष्णो नीलो लोहितश्च गौरो गायत्रिमुख्यके[3] ।।२१
गोरोचनाभाः कृतयो[4] ह्यतिपूछ (च्छ) न्दो हि श्यामलम्।
अग्निर्वेश्यः काश्यपश्च गौतमाङ्गिरसौ क्रमात् ।।२२
भार्गवः कौशिकश्चैव वासिष्ठो गोत्रमीरितम् ।।२३

१ 'अग्निः....क्रमात्' नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः।
२ छ. षड्जाद्याः। ३ क. ङ. °यत्र्यमुच्यते। गो° ४ ज्योतिश्छन्दो।

इसी प्रकार देवता, स्वर, वर्ण तथा गोत्र आदि के द्वारा संदिग्ध स्थल में छन्द का निर्णय हो सकता है। गायत्री आदि छन्दों के देवता क्रमशः इस प्रकार हैं—अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, बृहस्पति, मित्रावरुण, इन्द्र तथा विश्वेदेव। उक्त छन्दों के स्वर हैं—'षड्ज' आदि। उनके नाम क्रमशः ये हैं—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद। श्वेत, सारंग, पिशङ्ग, कृष्ण, नील, लोहित (लाल) तथा गौर—ये क्रमशः गायत्री आदि छन्दों के वर्ण हैं। 'कृति' नाम वाले छन्दों का वर्ण गोरोचन के समान हैं और अतिच्छन्दों का वर्ण श्यामल है। अग्निवेश्य, काश्यप, गौतम, अङ्गिरा, भार्गव, कौशिक तथा वशिष्ठ—ये क्रमशः उक्त सात छन्दों के गोत्र बताये गये हैं।१९-२३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये छन्दःसारकथनं नाम
त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः।३३०

अथैकत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

छन्दोजातिनिरूपणम्

अग्निरुवाच—
चतुःशतमुत्कृतिः स्यादुत्कृतेश्चतुरस्त्यजेत्।
अभिसंख्या प्रत्यकृतिस्तानि च्छन्दांसि वै पृथक्॥१
[1]कृतिश्चातिधृतिर्धात्री [2]अत्यष्टिश्चाष्टिरित्यतः।
[3]अतिशक्वरी [4]शक्वरीति अतिजगती जगत्यपि॥२
छन्दोऽत्र लौकिकं स्याच्च [5]आर्षमात्रैष्टुभात्स्मृतम्।
त्रिष्टुप्पङ्क्तिबृहती अनुष्टुबुष्णिगीरितम्॥३
गायत्री स्यात्सुप्रतिष्ठा प्रतिष्ठा मध्यया सह।
अत्युक्तात्युक्त आदिश्च [6]एकैकाक्षरवर्जितम्[7]॥४

---

१ क. ङ. 'तिबृंहती अ°। छ. तिवृत्ती अ°। २ क. ङ. अष्टिप्रत्यष्टि°। ३ क. ङ. छ. अतिशकरी। ४ क. ङ. छ. शर्करी। ५ क. ङ. आर्यामात्रैष्टतान्स्मृत°। ख. ग. आर्यामात्रैस्थमस्मृत°। ६ क. ङ. °कैकोत्तर°। ७ ख. ग. °र्धित°।

अग्निदेव बोले—एक सौ चार अक्षरों का 'उत्कृति' छन्द होता है। 'उत्कृति' छन्द में से चार-चार घटाते जायँ तो क्रमशः निम्नाङ्कित छन्द होते हैं—सौ अक्षरों की 'अभिकृति' छानवे अक्षरों की 'संस्कृति', बानवे अक्षरों की 'विकृति', अठासी अक्षरों की 'आकृति' चौरासी अक्षरों की 'प्रकृति', अस्सी अक्षरों की 'कृति', छिहत्तर अक्षरों की 'अधिकृति', बहत्तर अक्षरों की 'धृति', अड़सठ अक्षरों की 'अत्यष्टि', चौंसठ अक्षरों की 'अष्टि', साठ अक्षरों की 'अतिशक्वरी', छप्पन अक्षरों की 'शक्वरी', बावन अक्षरों की अतिजगती तथा अड़तालीस अक्षरों की जगती होती है। यहाँ तक केवल वैदिक छन्द हैं। यहाँ से आगे लौकिक छन्द का अधिकार है। 'गायत्री' से लेकर 'त्रिष्टुप्' तक जो आर्षछन्द वैदिक छन्दों में गिनाये गये हैं, वे लौकिक छन्द भी हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—त्रिष्टुप्, पङ्क्ति, बृहती, अनुष्टुप्, उष्णिक् और गायत्री। गायत्री छन्द में क्रमशः एक-एक अक्षर की कमी होने पर सुप्रतिष्ठा,' 'प्रतिष्ठा' 'मध्या', अत्युक्तात्युक्त' तथा 'आदि' नामक छन्द होते हैं।१-४।

चतुर्भागो भवेत्पादो [1]गणच्छन्दः [2]प्रदर्श्यते[3]।
तावन्तः समुद्रा गणा ह्यादिमध्यान्तसर्वगाः ॥५
चतुर्वर्णाः पञ्च गणा आर्यालक्षणमुच्यते।
स्वरार्धं च आर्यार्धं स्यादार्यायां [4]विषमेण जः ॥६
षष्ठो जो न लघुर्वा स्याद्द्वितोयादिपदं नले।
सप्तमेऽन्ते प्रथमा च द्वितीये पञ्चमे नले ॥७
अर्धे पदं प्रथमादि षष्ठ एको लघुर्भवेत्।
त्रिषु गणेषु पादः स्यादार्या[5]पञ्चार्धके स्मृता ॥८

छन्द के चौथाई भाग को 'पाद' या 'चरण कहते हैं पहले 'गणच्छन्द' दिखलाया जाता है। चार लघु अक्षरों की गण संज्ञा होती है। ये गण पाँच हैं। कहीं आदि गुरु, कहीं मध्यगुरु, कहीं अन्त्य गुरु, कहीं सर्वगुरु और कहीं चारों अक्षर लघु होते हैं। अब आर्या का लक्षण बताया जाता है। साढ़े सात गणों की अर्थात् तीस मात्राओं की या तीस लघु अक्षरों की आधी 'आर्या' होती है। आर्या छन्द के विषम गणों में जगण, का प्रयोग नहीं होता। किन्तु छठा गण अवश्य जगण होना चाहिए अथवा वह नगण और लघु

१ क. ङ. गणछन्दं। २ क. ङ. प्रशस्यते। ३ ख. ग. °ते। भवेन्तः।
४ ख. ङ. °मे नरः। ष°। ५ ख ग. °ञ्चाद्यके।

यानी सब का सब लघु भी हो सकता है। जब छठा गण सब का सब लघु हो तो उस गण के द्वितीय अक्षर से सुबन्त या तिङन्त लक्षण पद संज्ञा की प्रवृत्ति होती है। यदि छठा गण मध्य गुरु अथवा सर्व लघु हो तो सातवाँ गण भी सर्व लघु ही हो, तो सातवें गण के प्रथम अक्षर से 'पद' संज्ञा की प्रवृत्ति होती है। इसी प्रकार जब आर्या के उत्तरार्ध भाग में पाँचवाँ गण सर्व लघु हो तो उसके प्रथम अक्षर से ही पद का आरम्भ होता है। आर्या के उत्तरार्ध भाग में छठा गण एकमात्र लघु अक्षर का होता है। जिस आर्या के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध में तीन-तीन गणों के बाद पहले पाद का विराम होता है, उसे 'पथ्या' माना गया है।५-८।

विपुलान्यथ त्रपला गुरुमध्यगतौ च जौ।
द्वितीयचतुर्थौ पूर्वे च चपला मुखपूर्विका ॥९
द्वितीये जघनपूर्वा चपलार्या प्रकीर्तिता।
[1]उभयोर्महाचपला गीतवाद्यार्धतुल्यका[2] ॥१०
[3]अन्त्येनार्धेनोपगीतिरुद्गीतिश्चोत्क्रमात्स्मृता।
[4]अर्धे रक्षगणा आर्यागीतिच्छन्दोऽथ मात्रया ॥११
[5]वैतालीयं [6]द्विशस्ता स्याच्चतुष्पादे समे नलः।
वसवोऽन्ते[7] वनगाश्च गोपुच्छं दशकं भवेत् ॥१२

जिस आर्या के पूर्वार्ध में या उत्तरार्ध में अथवा दोनों में तीनगणों पर पाद विराम नही होता, उसका नाम 'विपुला' होता है। जिस आर्या छन्द में द्वितीय तथा चतुर्थ गण गुरु अक्षरों के बीच में होने के साथ ही जगण अर्थात् मध्यगुरु हों, उसका नाम 'चपला' है। तात्पर्य यह है कि 'चपला' नामक आर्या में प्रथम गण अन्त्यगुरु, तृतीय गण दो गुरु तथा पञ्चम गण आदि गुरु होता है। शेष गण पूर्ववत् रहते है। पूर्वार्ध में 'चपला' का लक्षण हो तो उम आर्या का नाम 'मुखचपला' होता है। परार्ध में चपना का लक्षण होने पर उसे जघनचपला कहते हैं। पूर्वार्ध और परार्ध—दोनों में चपला का लक्षण संघटित होता हो तो उसका नाम 'महाचपला' है। जहाँ आर्या के पूर्वार्ध के समान ही उत्तरार्ध भी

---

१ क. ङ. °ला शीतवार्यर्घ। २ ख. ग. °का। आद्येना°। ३ क. ङ. अनन्तेनो°। ४ क. ङ. °र्वे च. ख. गणमार्या°। ख. ग. र्धे वसुगण आ°। ५ ख. ग. °ली पङ्क्ति सुरास्या°। ६ छ. द्विस्वरा स्यादयुष्पा°। ७ °क. ङ. °वो तेन नागा°।

हो, उसे 'गीति' नाम दिया गया है। तात्पर्य यह कि उसके उत्तरार्ध में भी छठा गण मध्यगुरु अथवा सर्वलघु करना चाहिए। उसी प्रकार जहाँ आर्या के उत्तरार्ध के समान ही पूर्वार्ध भी हो, उसे 'उपगीति' कहते हैं। आर्या के पूर्वोक्त क्रम को विपरीत कर देने पर 'उद्गीति' नाम पड़ता है। सारांश यह है कि उसमें पूर्वार्ध को उत्तरार्ध में और उत्तरार्ध को पूर्वार्ध में रखा जाता है। यदि पूर्वार्ध में आठ गण हों तो 'आर्यागीति' नामक छन्द होता है। कोई विशेषता न होने से इसका उत्तरार्ध भी ऐसा ही समझना चाहिए। यहाँ भी छठे गण में मध्यगुरु और सर्वलघु—इन दोनों की प्राप्ति थी, उसके स्थान में केवल एक 'लघु' का विधान है। अब 'मात्रा छन्द' बतलाया जाता है जहाँ विषम, अर्थात् प्रथम और द्वितीय चरण में चौदह लघु (मात्रायें) हों और सम द्वितीय चतुर्थ चरणों में सोलह लघु हों तथा इनमें से प्रत्येक चरण के अन्त में रगण, एक लघु और एक गुरु हो तो 'वैतालीय, नामक छन्द होता है। वैतालीय छन्द के अन्त में एक गुरु और बढ़ जाय तो उसका नाम 'औपच्छन्दसक' होता है।९-१२।

भगणान्ता [1]पातलिका शेषे परे च पूर्ववत्।
साकं षड्वा मिश्रयुजि प्राच्यवृत्तिः प्रदर्श्यते ॥१३
पञ्चमेन पूर्वासकं तृतीयेन सहस्रयुक्।
उदीच्यवृत्तिराद्या स्याद्युगपच्च प्रवर्तकम् ॥१४
[2]अयुक्[3]चारुहासिनी स्याद्युगपच्चान्तिका भवेत्[4]।
सप्तार्चिवसवश्चैव मात्रासमकमीरितम् ॥१५
[5]भवेन्नलरमौ लश्च द्वादशो वानवासिका।
[6]विश्लोकः पञ्चमाष्टौ मो चित्रा नवमकश्च लः ॥१६
परमुक्ते नोपचित्रा[7] पादाकुलकमित्यतः।
[8]गीत्यार्यालोपश्चेत्सौम्या लपूर्वा ज्योतिरीरिता ॥१७
स्याच्छिखा [9]विपर्यस्तार्धा [10]तूलिका समुदाहृता।

---

१ छ. पाटलिका। २ ख. ग. अमुकचारहा॰। ३ क. ङ.॰ युग्मारु॰। ४ क. ङ. ॰त्। गताद्विर्व॰। ख. ग. ॰त्। गतादिर्व॰। ५ क. ङ. ॰वेत्तु नवमो नश्च द्वास्योवामन। ६ क ङ. विष्णोः कपञ्चमाष्टौमोचित्रनवमकश्चनः। प॰। ७ क. ख. ङ. ॰पवित्रा। ८ क. ङ. ॰लोगश्वेत्सौम्या नः पूर्वो ज्यो॰। ९ क. ङ. विस्तरार्धा। १० क. ङ. गुप्तिका। ख. ग. सूलिका।

[1]एकोनत्रिंशदन्ते गः स्याज्ज्ञेन[2] न समावला[3] ॥१८
[4]गु इत्येकगुरुं संख्या [5]वर्णादेश्च[6] विपर्ययात् ॥१९

पूर्वोक्त वैतालीय छन्द के प्रत्येक चरण के अन्त में जो रगण; लघु और गुरु की व्यवस्था की गई है, उसकी जगह यदि भगण और दो गुरु हो जायें तो उस छन्द का नाम 'आपातलिका' होता है। उपर्युक्त वैतालीय छन्द के अधिकारों में जो रगण आदि के द्वारा प्रत्येक चरण के अन्त में आठ लकारों (मात्राओं) का नियम किया गया है, उनको छोड़कर प्रत्येक चरण में जो 'लकार' शेष रहते हैं उनमें से समलकार विषमलकार के साथ मिल नहीं सकता। अर्थात् दूसरा तीसरे के और चौथा पांचवें के साथ संयुक्त नहीं हो सकता; उसे पृथक् ही रखना चाहिए। इससे विषम लकारों का सम लकारों के साथ मेल अनुमोदित होता है। द्वितीय और चतुर्थ चरणों में लगातार छह लकार पृथक्-पृथक् नहीं प्रयुक्त होने चाहिए। प्रथम और तृतीय चरणों में रुचि के अनुसार किया जा सकता है। अब 'प्राच्यवृत्ति' नामक वैतालीय छन्द का दिग्दर्शन कराया जाता है। जब दूसरे को चौथे चरण में चतुर्थ लकार (मात्रा) पञ्चम लकार के साथ संयुक्त हो तो उसका नाम 'प्राच्यवृत्ति' होता है। शेष लकार पूर्वोक्त प्रकार से ही रहेंगे। जब प्रथम और तृतीय चरण मे दूसरा लकार तीसरे के साथ मिश्रित होता है, तब 'उदीच्यवृत्ति' नामक वैतालीय कहलाता है। शेष लकार पूर्वोक्त रूप में ही रहते हैं। जब दोनों लक्षणों की एक साथ ही प्रवृत्ति हो, अर्थात् द्वितीय और चतुर्थपादों में पञ्चम लकार के साथ चौथा मिल जाय और प्रथम एवं तृतीय चरणों में तृतीय के साथ द्वितीय लकार संयुक्त हो जाय तो 'प्रवृत्तिक' नामक छन्द होता है। जिस वैतालीय छन्द के चारों चरण विषम पादों के ही अनुस्वार हों, अर्थात् प्रत्येक पाद चौदह लकारों से युक्त हो तथा द्वितीय लकार तृतीय से मिला हो, उसे 'चारुहासिनी' कहते हैं। जब चारों चरण सम पादों के लक्षण से युक्त हों, अर्थात् सब में सोलह लकार (मात्रायें) हों और चतुर्थलकार पञ्चम से मिला हो तो उसका नाम 'अपरान्तिका' है। जिसके प्रत्येक पाद में सोलह लकार हों, किन्तु पाद के अन्तिम अक्षर गुरु ही हों, उसे 'मात्रासमक' नामक

१ क. ङ. एकेन विंशदन्ते शः स्याजननसमहावलाः। गु° २ ग° °ज्ज्ञेजन। ३ क. ङ °ला। लई इत्येवं गुरुसं। ४ ख. ग. ग.। ५ °र्णाद्दिशवि°। ६ छ. °देशवि°।

छन्द कहा गया है। साथ ही इसी छन्द में नवम लकार किसी से मिला नहीं रहता। जिस 'मात्रासमक' के चरण में बारहवाँ लकार अपने स्वरूप में ही स्थित रहता है; किसी में मिलता नहीं, उसका नाम 'वानवासिका' है। जिसके चारों चरणों में पाँचवाँ और आठवाँ लकार लघुरूप में ही स्थित रहता है, उसका नाम 'विश्लोक' है। जहाँ नवाँ भी लघु हो, वह 'चित्रा' नामक छन्द कहलाता है। जहाँ नवाँ लकार दसवें के साथ मिलकर गुरु हो गया हो, वहाँ 'उपचित्रा' नामक छन्द होता है। मात्रासमक, विश्लोक, वानवासिका, चित्रा और उपचित्रा, इन पाँचों में जिस किसी भी छन्द के एक-एक पाद को लेकर जब चार चरणों का छन्द बनाया जाय, तब उसे 'पादाकुलक' कहते हैं। जिसके प्रत्येक चरण में सोलह लघु स्वरूप ही स्थित हों किसी से मिलकर गुरु न हो गये हों, उस छन्द का नाम 'गीत्यार्या' है। इसी 'गीत्यार्या' में जब आधे भाग की सभी मात्रायें गुरुरूप में हों और आधे भाग की मात्राएँ लघुरूप में तो उसका नाम 'शिखा' होता है। इसी के दो भेद हैं - पूर्वार्ध भाग में लघु ही लघ और उत्तरार्ध में गुरु ही गुरु हों तो उसका नाम 'ज्योति' बताया गया है। इसके विपरीत पूर्वार्ध भाग में सब गुरु और उत्तरार्ध में सब लघु हों तो 'सौम्या' नामक छन्द होता है। जब पूर्वार्ध भाग में उन्तीस लकार और उत्तरार्ध में इकतीस लकार हों एवं अन्तिम दो लकारों के स्थान में एक-एक गुरु हो तो उसका नाम 'तूलिका' होता है। छन्द की मात्राओं से उसके अक्षरों में जितनी कमी हो, उतनी गुरु की संख्या और अक्षरों से जितनी कमी गुरु की संख्या में हो, उतनी लघु संख्या मानी गयी है। तात्पर्य यह है कि यदि कोई पूछे तो उस आर्या को लिखकर उसकी सभी मात्राओं की गणना करके कहीं लिख ले, फिर अक्षरों की संख्या लिख ले। मात्रा के अकों में अक्षरों के अंक घटा दे, जितना बचे वह गुरु की संख्या हुई। इसी प्रकार अक्षर संख्या में गुरु की संख्या घटा देने पर जो बचे, वह लघु अक्षरों की संख्या होगी। इस प्रकार वर्ण आदि के अन्तर से गुरु-लघु आदि का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।१३-१८।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये छन्दोजातिनिरूपणं नामैकत्रिंशदधिक-त्रिशततमोऽध्यायः।३३१

अथ द्वात्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

विषमकथनम्

वृत्तं समं चार्धसमं विषमं च त्रिधा वदे।
समं [1]तावत्कृत्वकृतमर्ध[2] समं च कारयेत् ॥१
विषमं चैव वा स्यूनमतिवृत्तं समान्यपि[3]।
लग्नौ चतुष्प्रमाणी स्यादाभ्यामन्यद्वितानकम् ॥२

अग्निदेव बोले—वृत्त के तीन भेद बतलाये गये है—सम, अर्धसम और विषम। सम (वृत्त की संख्या) को उतने से गुणित करके अर्धसम (की संख्या) को उतने से ही गुणन करके विषम वृत्त की संख्या निकल आती है। विषम वृत्त अथवा अर्धसमवृत्त को एक राशि से कम करना चाहिए। जो वृत्त गकार और लकार से समाप्त होता है उसे 'समानी' कहते है और जो लकार और गकार से समाप्त होता है उसे प्रमाणी कहते है। इन (समानी और प्रमाणी नामक वृत्तों) से भिन्न वृत्त वितान कहलाता है।१-२।

[4]पादस्याऽऽद्यं तु वक्त्रं स्यात्सनौ न प्रथमा स्मृतौ।
वान्यमुश्चतुर्थाद्वर्णात्पथ्यावक्त्रं स्वयोजतः ॥३
विपरीतपथ्या न्यासाच्चपला वायुजस्वनः।
[5]विपुला[6] युग्मसप्तमः सर्वे तस्यै तस्य च[7] ॥४
भीतो वा विपुलानेका वक्त्रजातिः समीरिता।
भवेत्पदं चतुरूर्ध्वं चतुर्वृद्ध्या पदेषु च ॥५

---

१ ख. ग. °वद् हृदुहृतमर्वस°। च.° वद् हृदुरकृतधर्मस°। २ क. ङ. °त्कृद्वहृदमर्घस°। ३ ख. ग. °पि। गलौच°। च. °पि। नगौ च°। ४ 'पादस्याऽऽद्य°' इत्यत्र पाठोऽयं क. ख. पुस्तकयोः "यादप्टं नष्टवक्त्रं स्यात्मनौ तत्प्रथमा स्मृतौ। वान्यद्यश्वयथा वर्णापख्यावक्त्रं युयोज न इति।' ५ विपुला ' इत्यत्र क. ङ. पुस्तकयोः" विपुलायुग्मसयूमीः सर्वतः सैवतस्य च' इति। ६ ख. ग. °लाप्रश्नस°। ७ ख. ग. च. डौ तौ वा।

[1]गुरुद्वयात्तु आपीड: [2]प्रत्यापीडो [3]गणादिक: ।
प्रथमस्य विपर्यासे मञ्जरी [4]लवणी क्रमात् ॥६
भवेदमृतधाराख्या [5]उद्धतेत्युच्यतेऽधुना ।
[6]एकत: ससजसा न: स्युर्नसौ जो गोऽथ भौ न जौ ॥७

'वक्त्र' नामक छन्द के प्रत्येक पाद में आठ अक्षर होते हैं। वक्त्र में किसी भी पाद के प्रथम अक्षर के वाद सगण और नगण का प्रयोग नहीं करना चाहिए। पथ्यावक्त्र पूर्वोक्त (वृत्त) का ही परिवर्तित रूप है जिसके प्रत्येक पाद में आठ अक्षर होते हैं। जिस वक्त्र में (द्वितीय और चतुर्थ) युग्म पाद के चतुर्थ अक्षर के वाद जगण का प्रयोग किया जाता है उसे पथ्यावक्त्र कहते हैं। कुछ आचार्यों के मत से उक्त लक्षण की विपरीतता में भी 'पथ्या' नामक छन्द होता है। जिस छन्द में अयुग्म (प्रथम, तृतीय) पाद में चतुर्थ अक्षर के वाद नगण होता है और युग्म पाद में यगण होता है उसे 'चपला' कहते हैं। जव युग्म (द्वितीय और चतुर्थ) पादों में सप्तम वर्ण लघु होता है तब 'विपुला' नामक छन्द वनता है। कुछ आचार्यों के मत में अयुग्म (प्रथम, तृतीय) और युग्म (द्वितीय, चतुर्थ) सर्वत्र सप्तम वर्ण लघु होना चाहिए। विपुला के अयुग्म पादों में कभी-कभी चतुर्थ अक्षर के वाद भगण अथवा तगण भी आ सकते हैं। इस प्रकार वक्त्र जाति की 'विपुला' अनेक प्रकार की कही गयी है। (अनुष्टुप्) पाद के बाद मे प्रत्येक पाद में जहाँ पर चार-चार अक्षरों की वृद्धि हो जाती है उसे 'पदचतुरूर्ध्व' नामक छन्द कहते हैं। चारों पादों के अन्त में दो गुरु अक्षर आने पर 'आपीड' नामक छन्द वनता है, किन्तु जहाँ पर दो गुरु चारों पादों के आदि में आते हैं वहाँ पर 'प्रत्यापीड' नामक छन्द होता है। प्रथम पाद का दूसरे तथा तीसरे पादों के साथ क्रमश: विपर्यास होने पर 'मञ्जरी' 'लवणी' और 'अमृतधारा' इत्यादि छन्द वनते हैं। अव 'उद्धता' के सम्वन्ध में वताया जा रहा है। 'उद्धता' छन्द उसे कहते हैं जिसके प्रथम पाद में सगण, जगण, सगण और लकार होते हैं'; द्वितीय पाद में नगण

---

१ ख ग. रुत्वेऽस्य तु आ॰ । २ क. ङ. ॰पीडीगकादि॰ । ३ ख. ग. ॰णाधिक: । ४ क. ङ. च. नवल्ली । ख. ग. लवनी । ५ ख. ग. उद्गतेत्यु॰ । ६ क. ङ॰ त: शजसा नस्युर्नसो जोग गो जोऽर्थ भोजमौ । नागो । ख. ग. ॰त:सजसा नस्युर्नसौ ज्यौ गोऽ॰ ।

सगण, जगण और गुरु होते हैं, तृतीय पाद में भगण, नगण, जगण, लघु और गुरु होते हैं और चतुर्थ पाद में सगण, जगण सगण, जगण और गुरु होते हैं ।३-७।

नो[1] गोऽथ सजसा गोगस्तृतीयचरणस्य च ।
[2]सौरभे[3] केचन[4] भगा ललितं च नमौ जसौ ।।८
उपस्थितं प्रचुपितं प्रथमाद्यौ समौ जसौ[5] ।
गोगथो मलजा रो गः समौ च रजयाः पदे ।।९
[6]वर्धमानं [7]मलौ [8]स्वोन सौ अथो तोजोर ईरिता ।
शुद्धविराडार्षभाख्यं वक्ष्ये चार्धसमं ततः ।।१०

'उद्धता' के तृतीय पाद में रगण, नगण, भगण और गुरु रहने पर सौरभ नामक छन्द बनता है । उस (उद्धता) के तृतीय पाद में नगण, मगण, जगण और सगण रहने पर ललित नामक छन्द बनता है । 'उपस्थित प्रचुपित' नामक छन्द उसे कहते है जिसके प्रथम पाद में मगण, सगण, जगण, भगण और दो गुरु होते है, द्वितीय पाद में सगण, नगण, जगण, रगण गुरु होते हैं, तृतीय पाद में तगण, नगण, और सगण होते हैं । चतुर्थ पाद में नगण, तगण, नगण जगण और यगण होते हैं । इस 'उपस्थित प्रचुपित छन्द के तृतीय पाद के स्थान पर नगण, नगण सगण, नगण नगण, और सगण होते हैं । तब वह 'वर्द्धमान' नामक छन्द कहलाता है । उसी (उपस्थित प्रचूपित नामक छन्द) के तृतीय पाद के स्थान पर तगण , जगण और रगण होने पर 'शुद्ध विराडार्षभ' नामक छन्द होता है । अब मैं अर्धसमवृत्त के सम्बन्ध में बतलाऊँगा ।८-१०।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये विषमकथनं नाम द्वात्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।३३२

———

१ ख, ग. लो । २ क. ङ. सौरभं । ३ ख. ग. °भे रनभागाललडितौ च नलौ च सौ । ४ क. ङ. केचन भयानलितं तत्वशौदशौ । उ° । ५ ख. ग. जभौ । ६ क. ङ. °मानौस्तौ च नसौ अथोभ्येयो नद्रीरितम् । शु° । ७ ख. ग. तनौ । ८ छ. °लौ स्वौ न अथो भो जोव ई° ।

अथ त्रयस्त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अर्धसमनिरूपणम्

अग्निरुवाच—

[1]उपवित्रकं [2]ससमनामथभोज भगामथ ।
[3]द्रुतमध्या ततभगा गथोननजयाः स्मृताः ॥१
वेगवती [4]ससमगा भभभ गोगथो स्मृता ।
रुद्रविस्तारस्तो सभगासमजा गोगथा स्मृता[5] ॥२
रजसा गोगथो[6] द्रोणी गोगौ वै केतुमत्यपि ।
आख्यानिकी ततजगा गथो[7] जगतजगागथ ॥३

अग्निदेव बोले – उपवित्रक (अथवा उपचित्रक ?) नामक छन्द उसे कहते हैं जिसके प्रथम और तृतीय पादों में तीन सगण, लघु और गुरु होते हैं तथा द्वितीय और चतुर्थ पादों में तीन भगण और दो गुरु होते है। 'द्रुतमध्या' उसे कहते हैं जिसके प्रथम और तृतीय पादों में दो तगण, भगण और दो गुरु होते हैं। द्वितीय और चतुर्थ पादों में दो नगण, जगण और यगण होते हैं। जिसके प्रथम और तृतीय पादों में दो सगण, यगण और गुरु तथा द्वितीय और चतुर्थ पादों में तीन भगण और दो गुरु होते हैं उसे वेगवती कहा गया है। जिसके प्रथम और तृतीय पादों में तगण, सगण, भगण और गुरु तथा द्वितीय और चतुर्थपादों में सगण, भगण, जगण और दो गुरु होते हैं उसे 'केतुमती' नामक छन्द कहते हैं। 'आख्यानिकी' नामक छन्द वह है जिसके प्रथम और तृतीय पादों में दो तगण, जगण और दो गुरु तथा तृतीय और चतुर्थ पादों में जगण, गुरु, तगण, जगण और दो गुरु होते हैं। १-३।

विपरीताख[8]यानकीर्तिर्जयागा[9] तौ जगोगथ ।
सीमलौगथ [10]लभभारो भवेद्धरिण[11]वल्लभा ॥४

---

१ ख. ग. °पचित्रं समसनागथभोऽभगागथो। छ. °पचित्र°। २ क. ङ. समसनाभासश्वमभौमद्रथ। ३ ख. ग. °ध्या भभभ°। ४ ख. ग. समसगाभ भोभगो। ५ क. ङ. °ता। सजगागोगथोभौ वोगोगवेके°। ६ ख. ग. °थो त्रो नौ गो°। ७ ख. ग. थोथ जजगागथ। छ. °थो तत°। ८. छ. °ख्यानिको तौ जया°। ९ ख. ग. °तिर्जमगोतौ। १०. छ. °भात्वौभ°। ११. ख. ग. °णप्लुता। नौषणौगथ।

लौ वनौ गाथ नजजा यः स्यादपराक्रमम् (?) ।
पुष्पिताग्रा [1]नलवया नजजा[2] रो गथो [3]रजौ ॥५
वोजथो जवजवागो मूले पनमती शिखा ।
[4]अष्टाविंशतिनागाभा त्रिंशन्नागं ततो युजि ॥
खञ्जा तद्विपरीता स्यात्समवृत्तं [5]प्रदर्श्यते ॥६

जिसके प्रथम और तृतीय पादों मे जगण, तगण, जगण और दो गुरु तथा द्वितीय और चतुर्थ पादों मे दो तगण, जगण और दो गुरु होते हैं उसे 'विपरीताख्यानकी' कहते हैं। 'हरिणवल्लभा' नामक छन्द उसे कहते है जिसके प्रथम और तृतीय पादों में तीन सगण, लघु और गुरु तथा द्वितीय और चतुर्थ पादों में लघु दो भगण और रगण होते है। अपराक्रम (अथवा अपरवक्त्र) नामक छन्द उसे कहते है जिसके प्रथम और तृतीय पादों में दो नगण, रगण, लघु और गुरु तथा द्वितीय और चतुर्थ पादों में नगण जगण, जगण और रगण होते हैं। 'पुष्पिताग्रा' उसे कहते है जिसके प्रथम और तृतीय पादों में दो नगण, रगण और भगण तथा द्वितीय और चतुर्थ पादों मे नगण, जगण, जगण, रगण और गुरु होते हैं। 'पनमती' (अथवा परावती या यवमती ?) नामक छन्द वहाँ पर होता है जहाँ पर प्रथम और तृतीय पादों में रगण, जगण, रगण, जगण तथा द्वितीय और चतुर्थ पादो में जगण, रगण, जगण, रगण और गुरु होते हैं। जिसके प्रथम तथा तृतीय पादों में अट्ठाइस, अट्ठाइस तथा द्वितीय और चतुर्थ पादों में तीस-तीस अक्षर होते हैं तथा पदान्त में गुरु होता है उसे 'शिखा' कहते हैं। इसके विपरीत यदि प्रथम और तृतीय पादों में तीस-तीस अक्षर और द्वितीय तथा चतुर्थ पादों में अट्ठाइस-अट्ठाइस अक्षर होते हैं उसे 'खञ्जा' कहते हैं। अब 'समवृत्त' के सम्बन्ध में बतलाया जा रहा है। ४-६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽर्धसमनिरूपणं नाम
त्रयस्त्रिशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।३३३

---

१. क. ङ. ननरजारोजोगथौवसौ । रजथोरजगः जोरोमूलेजवयती । २. छ. ननव॰ छ. ॰जावोग॰ । ३ ख. ग. ॰जौ । रोजथो जरजारो गोमूलयेवम॰ । ४ ख. ग. ॰तिलागन्तात्रि॰ । ५ ख. ग. प्रदर्शये ।

अथ चतुस्त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

समवृत्तनिरूपणम्

अग्निरुवाच—

यतिर्विच्छेद इत्युक्तस्तत्तन्मध्यान्तयौ गणौ ।
यौ सः कुमार ललिता तौ गौ चित्रपदा स्मृता ॥१
विद्युन्माला[1] सभागस्य गणौ रतलगैर्भवेत् ।
माणवका क्रीडितकं [2]वनौ हलमुखौ [3]वसः ॥२
स्याद्भुजङ्गशिशुसृता[4] नौ मोहं सरुतं [5]ननौ ।
[6]भवेच्छुद्ध [7]विराड्वृत्तं प्रतिपादं समौ जगौ[8] ॥३

अग्निदेव बोले—(पद पाठ के) विच्छेद को यति कहते हैं। जिस (छन्द) के एक पाद में तगण और यगण होते हैं उसे 'तन्मध्या' अथवा (तनुमध्या) कहते हैं। जिसमें दो यगण तथा सगण होता है उसे 'कुमारललिता' कहते हैं। दो तगण और दो गुरु के मिलने से चित्रपदा नामक छन्द कहा गया है। दो भगण और दो गुरु से 'विद्युन्माला' छन्द बनता है। जिस छन्द के प्रत्येक पाद में 'मगण, तगण, लघु तथा गुरु होते हैं उसे 'माणवकाक्रीडितक' कहते हैं। दो नगण तथा मगण से युक्त प्रत्येक पाद वाला छन्द 'भुजङ्गशिशुसृता' कहलाता है। दो नगण से बने हुये दो पाद वाला छन्द 'हंसरुत' होता है। जिसके प्रत्येक पाद में सगण, भगण, जगण और गुरु होता है। उसे 'शुद्ध विराड्' कहते है। १-३।

[9]प्रणवो नतयामः स्याज्जौ गौ मयूरसारिणी[10] ।
[11]सत्तामभसगा वृत्तं भजताद्युपरि स्थिता ॥४

---

१ क. ङ. °लाममगणाङ्गणैर्भत° । छ. °मममा गणैर्भूतगणैर्भ° । २ ख. रनौ । ३ ख. च. रसः । ४ च. °शुभृता रौ मोहं मरु° । छ. °शुसुतानौमेहं नमरु° । ५ च. ततौ । ६ ख. °वेच्छन्दद्विरावृत्तं । ७ ख. ग. °द्वचिरा- द्वृत्तं । ८ छ. °गौ । पणवो मलयो मः । ९ क. ङ. °वोमनजागः स्यादष्टी- गोम° । १० ख. ग. °णी । संतान भस° । ११ क. ङ. सताभव समावृ° ।

रुक्मवन्ती भससगाविन्द्रवज्रा [1]तजौ [2]जगौ ।
जतौ जगौ [3]तूपपूर्वा वाद्यन्ताद्युपजातयः ॥५

प्रणव (अथवा पणव ?) नामक छन्द उसे कहते हैं जिसके प्रत्येक पाद में नगण, तगण, भगण तथा भगण रहा करते हैं । 'मयूरसारिणी' वह छन्द है जिसके प्रत्येक पाद में मगण, भगण, सगण और गकार होता है वह 'सत्ता' नामक छन्द कहलाता है । उपरिस्थिता (अथवा उपस्थिता ?) नामक छन्द उसे कहते हैं जिसके प्रत्येक पाद में भगण, जगण और तगण रहते हैं । 'रुक्मवन्ती' नामक छन्द उसे कहा गया है जिसके प्रत्येक पाद में भगण दो सगण तथा गुरु रहा करते हैं । इन्द्रवज्रा के प्रत्येक पाद में तगण, जगण जगण और गुरु रहते हैं । उपेन्द्रवज्रा उसे कहते हैं जिसके प्रत्येक पाद में जगण, तगण, जगण और गुरु होते हैं । (इन्द्रवज्रा) और अन्तिम (उपेन्द्रवज्रा) के (पादों को) मिलाने से उपजाति नामक छन्द वनता है । ४-५ ।

दोधकं भग (भ) भागौ स्याच्छालिनी[4] मतभागगौ[5] ।
यतिः समुद्रा ऋषयो वातोर्मी [6]मभतागगौ ॥६
चतुःस्वरा स्याद्भ्रमरी विलसिता मभौ नलौ ।
समुद्रा अथ ऋषयो वनौ लौ गौ रथोद्धता ॥७

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में तीन भगण और दो गुरु होते है उसे 'दोधक' कहते हैं । 'शालिनी' छन्द उसे कहते हैं जिसके प्रत्येक पाद में मगण, तगण, भगण और दो गुरु होवे है और उसमें चार तथा सात पर यति होती है । जिसके प्रत्येक पाद में मगण, भगण, तगण और दो गुरु होते हैं उसे 'वातोर्मी' कहा जाता है और इसमें चार और सात पर यति होती है । भ्रमरी विलसिता (अथवा भ्रमर-विलसित) उस छन्द को कहते है जिसके प्रत्येक पाद में मगण, भगण, नगण और लघु रहते हैं । इसमें चार सौ सात पर यति होती है । रगण, नगण, रगण, लघु और गुरु से बने हुये चार पादों वाला छन्द रथोद्धता कहलाता है । ६-७ ।

---

१ क. ङ. ननौ । २ क. ङ. सगौ । ३ छ भूपपूर्वा । ४ क. ङ. ०नी यतनाग० । ५ ख. ०भाभगौ । ६ क. ०मभाग० ।

[1]स्वागता[2] धनभा गो गो वृत्ताननसमाश्च सः ।
[3]श्येनीव जवना गः स्याद्रम्या नपरगा गगः ॥८
जगती वंशस्था वृत्तं जतौ जावथ तौ [4]जवौ ।
इन्द्रवंशा तोटकं सैश्चतुर्भिः प्रतिपादितम् ॥६

'स्वागता उसे कहते है जिसके प्रत्येक पाद में रगण, नगण, भगण और दो गुरु होते हैं। जिमके प्रत्येक पाद में दो नगण, सगण और दो गुरु होते हैं उसे 'वृत्ता' (अथवा वृन्ता ?) नामक छन्द कहते हैं। श्येनी नामक छन्द वह है जिसके प्रत्येक पाद में रगण, जगण, रगण, लघु और गुरु होते हैं। जिसके प्रत्येक पाद में नगण, मगण, रगण और तीन गुरु होते हैं वह रम्भा नामक छन्द कहलाता है। (यहाँ से जिन छन्दों का वर्णन किया जायेगा वे वैदिक) जगती (के ही भेद) हैं। जिसके प्रत्येक पाद में जगण, तगण, जगण और रगण होते हैं वह वंशस्थ कहलाता है। 'इन्द्रवंशा' नामक छन्द वह है जिसके प्रत्येक पाद में दो तगण, जगण और रगण होते हैं। जिसके प्रत्येक पाद में चार सगण होते हैं उसे 'तोटक' कहा गया है। ८-६।

भवेद्द्रुतविलम्बिता नभौ भरावथो नलौ।
स्यौ श्रीपरो[5] वसुवेदाञ्जलोद्धतगतिर्जलौजसौ ॥१०
[6]जसौ वसर्ववश्चाथ ततं ननमराः [7]स्मृतम् ।
[8]कुसुमविचित्रा द्यौनौ च नौ रम्याचलाक्षिका ॥११
भुजङ्गप्रयातं यैः स्याच्चतुर्भिः स्रग्विणी तु रैः ।
प्रमिताक्षरा गजौ सौ [9]कान्तोत्पीडा[10] मतौ समौ ॥१२

जिसके प्रत्येक पाद में नगण, भगण, भगण और रगण होते है वह 'द्रुत-विलम्बित' छन्द होता है। श्रीपरो (अथवा श्रीपुरो ?) नामक छन्द वह है जिसके प्रत्येक पाद में दो नगण, मगण और यगण होते हैं और जिसमें आठ और नव पर यति होती है। 'जलोद्धतगति' नामक छन्द उसे कहते हैं जिसके

---

१ छ. सामता। २ क. ङ. °ता रणभा। ३ ख. घ. °नीरजरदागः स्याद्रस्यानपरगागनः। ज°। ४ ख. ग. जरौ। ५ छ. श्रीपुटो वसुवेदा जलोद्गतिजलौ जमौ ज°। ६ ख. ग. °सौ सर्तव°। ७ क. ङ. म °वास्मृ°। ८ छ. °त्रा न्यौ द्यौं नौ नौ रो स्याच्चलाम्बिका। ६ क. ङ. कालोत्पीनामभौस°। १० ख. ग. °त्पीला म°।

प्रत्येक पाद में जगण, सगण, जगण और सगण होते हैं तथा जिसमें छह-छह पर यति होती है। 'तत' नामक छन्द वह है जिसके प्रत्येक पाद में दो नगण, मगण और रगण होते हैं। इसमें भी छह, छह पर यति होती है। 'कुसुम-विचित्रा' नामक छन्द वह है जिसके प्रत्येक पाद में नगण, यगण नगण और यगण होते हैं। 'रम्याचलाक्षिका' उसे कहते हैं जिसके प्रत्येक पाद में दो नगण तथा दो रगण होते हैं। जिस छन्द के प्रत्येक पाद में चार यगण होते हैं उसे 'भुजङ्गप्रयात' कहते हैं। 'स्रग्विणी' उसे कहते हैं जिसके प्रत्येक पाद में चार रगण होते हैं। 'प्रमिताक्षरा' नामक छन्द वह है जिसके प्रत्येक पाद में सगण, जगण और दो सगण होते हैं। 'कान्तोत्पीडा' उसे कहते है जिसके प्रत्येक पाद मे मगण, तगण, सगण और भगण रहते हैं।१०-१२।

वैश्वदेवी ममयया: पञ्चाङ्गा नवमालिनी।
नजौ भयौ प्रतिपादं गणा यदि जगत्यपि ॥१३
प्रहर्षिणी [1]मवजवा गोपतिर्वह्निदिक्षु च।
[2]रुचिरा [3]जभसजगा छिन्ना वेदैर्ग्रहैः स्मृता ॥१४
मत्तमयूरं मतया [4]सतौ वेदग्रहैर्यतिः।
गौरी [5]नलनसा गः स्यादसंवाधा नतौ नगौ[6] ॥१५

'वैश्वदेवी' नामक छन्द उसे कहते हैं जिसके प्रत्येक पाद में दो भगण और दो यगण होते हैं। इसमें पांच और सात पर यति होती है। जिस छन्द के प्रत्येक पाद में नगण, जगण, भगण और यगण होते हैं उसे 'नवमालिनी' कहते हैं। अब 'अतिजगती' नामक छन्दों के अन्तर्गत आने वाले छन्दों के प्रत्येक पाद का वर्णन किया जायेगा। 'प्रहर्षिणी' नामक छन्द उसे कहते है जिसके प्रत्येक पाद में मगण रगण और गुरु होते हैं तथा जिसमें तीन और दस पर यति होती है। 'रुचिरा' नामक छन्द उसे कहते हैं जिसमें जगण, भगण, सगण, जगण और गुरु होते हैं तथा जिसमें चार और नव पर यति होती है। 'मत्तमयूर' उसे कहते हैं जिसके प्रत्येक पाद में मगण, तगण, यगण, सगण और गुरु रहते हैं तथा जिसमें चार और नव पर यति होती है। 'गौरी' नामक छन्द उसे कहते हैं जिसके प्रत्येक पाद में तीन नगण, सगण और गुरु

१ ख. ग. मरजरा गो॰। २ क. ङ. ॰रा ग भ॰। ३ ख. ग. जभजसगा। ४ सगौ। ५ ख. ग. ननसा मः स्या॰। ६ ख. नसौ।

रहते हैं। 'असंबाधा' नामक छन्द के प्रत्येक पाद में मगण, तगण, नगण, सगण और दो गुरु होते हैं और इसमें पाँच तथा नौ पर यति होती है। १३-१५।

गो ग इन्द्रियनवकौ ननौ रसलगाः स्वराः।
स्वराश्चापराजिता स्यान्ननभा नलगाः स्वराः ॥१६
द्विः प्रहरणकलिता वसन्ततिलका नभौ।
जौ गौ सिंहोन्नता सा स्यान्मुनेरुद्धर्षिणी च सा ॥१७
चन्द्रावर्ता ननौ [1]सोमावर्तर्तुनवकः स्मृतः।
मणिगुणनिकराऽसौ मालिनी नौ मयौ [2]यसः ॥१८

'अपराजिता' छन्द के प्रत्येक पाद में दो नगण, रगण, सगण, लघु और गुरु होते हैं और जिसमें सात-सात पर यति होती है। 'प्रहरणकलिता' के प्रत्येक पाद में दो नगण, भगण, नगण, लघु और गुरु होते हैं। इसमें भी सात-सात की यति होती है। 'वसन्ततिलका' के प्रत्येक पाद में तगण, भगण दो जगण और दो गुरु होते हैं। इसी को एक आचार्य ने 'सिंहोन्नता' और दूसरे ने 'उद्धर्षिणी' कहा है। 'चन्द्रावर्त' के प्रत्येक पाद में चार नगण और सगण होते हैं। यदि इस छन्द में छठें तथा नवें वर्णों पर यति होती है तो इमे 'माला' कहते हैं, किन्तु यदि यति आठवें तथा सातवें वर्णों पर होती है तो इसे 'मणिगुणनिकरा' कहते हैं। मालिनी के प्रत्येक पाद में दो नगण, मगण; और दो यगण होते हैं। आठवें और सातवें पर यति होती है।१६-१८।

यतिर्वसुस्वरा भौ वौ [3]नतलमित्रसग्रहाः।
[4]ऋषभगजविलसितं ज्ञेया शिखरिणी [5]जगौ[6] ॥१६
रसभालभृगुरुद्राः [7]पृथ्वीजसजसा [8]जनौ।
गावसुग्रहविच्छिन्ना पिङ्गलेनेरिता पुरा ॥२०

१ ख. ग. °तन्नव° । २ छ. ययः । ३ ख. ग. °लमद्रिस° । ४ ख. ग. °भजगजवि° । ५ ख. ग. यसौ । ६ क. ङ. °गौ । नसभानगृहं तु रु° । ७ क. ङ. °थ्वी सजयसापरौ । गा° । ८ ख. ग. °नौ । गोव° ।

[1]वंशपत्रपतितं [2]स्याद्भवना[3] भौ नगौ सदिक् ।
हरिणी नसमा रः सो नगौ[4] रसचतुःस्वराः ॥२१
[5]मन्दाक्रान्ता समभतं नगौ राब्धिवसुः स्वराः ।
कुसुमितलता वेल्लिता [6]मतना ययया: शराः ॥२२

'ऋषभगजविलसित' के प्रत्येक पाद में भगण, रगण, तीन नगण और गुरु होते हैं । और सातवें तथा नवें वर्णों पर यति होती है। 'शिखरिणी' के प्रत्येक पाद में यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, लघु और गुरु होते हैं। छठें और ग्यारहवें पर यति होती है। पृथ्वी के प्रत्येक पाद में जगण, सगण, यगण, लघु और गुरु होते हैं तथा आठ और नौ पर यति होती है— ऐसा पिंगलाचार्य ने कहा है। 'वंशपत्रपतित' नामक छन्द उसे कहते हैं जिसके प्रत्येक पाद में भगण, रगण, नगण, भगण, नगण, लघु और गुरु होते हैं तथा दस और सात पर यति होती है। हरिणी के प्रत्येक पाद में नगण, सगण, मगण, रगण, सगण, लघु और गुरु होते हैं तथा छठें, चौथे और सातवें वर्ण पर यति होती है। 'मन्दाक्रान्ता' के प्रत्येक पाद में सगण, मगण, मगण, तगण, नगण और दो गुरु होते हैं तथा इसमें चौथे, छठें और सातवें पर यति होती है। 'कुसुमलतावेल्लिता' के प्रत्येक पाद में मगण, तगण, नगण और तीन यगण होते हैं तथा पाँचवें, छठें और सातवें पर यति होती है ।१६-२२।

[7]रथाः स्वराः प्रतिरथससजाः सतताश्च गः ।
शार्दूलविक्रीडितं स्यादादित्यमुनयो यतिः ॥२३
कृतिः सुवदना मो रो भनया भनगाः सुराः ।
यतिर्मुनिरसाश्चाथ[8] इतिवृत्तं क्रमात्स्मृतम् ॥२४
स्रग्धरा [9]मरता नो मो यपौ त्रिःसप्तका यतिः ।
[10]समुद्रकं [11]भरजा नो वनगा दश भास्कराः ॥२५
अश्वललितं नजभा [12]जभजा भनमीशतः ।
मत्तक्रीड़ा [13]ममनना नौ नग्नौ गोष्टमातिथिः ॥२६

---

१ क. ङ. °पत्रप° । २ क. ङ. स्याद्रचनाद्वौ म° । ३ ख. ग. °द्भरतो भौ लगोस° । ४ ख. ग. लभौ । ५ ख. ग. °न्ता नभननं न° । छ. °न्ता मभमत । ६ ख. ग. मतोयमयया: पराः । ७ क. ङ. रसासुराप्रतिरथ-मशताः शतजास्वगः । ८ ख. ग. °श्चाथाग्निभिर्वृत्तं° । ९ क. ङ. °रभा-रोयो ययौ त्रिः । १० क. ग. सद्रकण्ठवनीरोनोरामगा । ११ ख. ग. °रनागौतोनोन° । १२ ख ग. °भजलभमी° । १३ ख. ग. °नवा नौ मग्नौ शोष्ट° ।

'शार्दूलविक्रीडित' के प्रथम पाद में दो सगण, जगण, सगण, दो तगण और गुरु रहते हैं। इसमें बारहवें तथा सातवें वर्णों पर यति होती है। 'सुवदना' के प्रत्येक पाद में भगण, रगण, भगण, नगण, यगण, भगण लघु और गुरु होते हैं तथा सात-सात और छह पर यति होती है। इस प्रकार क्रमशः वृत्तों के सम्बन्ध में बतलाया जा रहा है। 'स्रग्धरा' के प्रत्येक पाद में मगण, रगण, तगण, नगण, भगण और दो यगण होते हैं और प्रत्येक सातवें वर्ण पर यति होती है। 'समुद्रक' के प्रत्येक पाद में भगण; रगण, जगण, नगण, रगण, नगण और गुरु होते हैं। इसमें दसवें और बारहवें वर्णों पर यति होती है। 'अश्वललित' के प्रत्येक पाद में नगण, जगण, भगण; जगण, भगण; जगण, भगण, लघु और गुरु होते हैं। तथा इसमें आठवें और पन्द्रहवें पर यति होती है ।२३-२६।

तन्वी भनतसा भो भो लयो बाणसुरार्कका:।
क्रौञ्चपदा भमतता नौ नौ[1] बाणशराष्टत: ॥२७
भुजंगविजृम्भितं ममतना [2]ननवासनौ।
गष्टेशमुनिभिश्छेदो ह्युपहावाख्यमीदृशम् ॥२८
मनना ननता न: सो गणैर्ग्रहरसो रसात्।
नौ सप्त रो दण्डद: स्याच्चण्डवृष्टिप्रघातकम्[4] ॥२९
[5]रेफवृद्ध्या ननवा: स्युर्व्यालजीमूतमुख्यका:।
शेषे वै प्रतितो ज्ञेयो गाथा प्रस्तार उच्यते ॥३०

'तन्वी' के प्रत्येक पाद में भगण, तगण, नगण, सगण, भगण, भगण, नगण और यगण होते हैं। इसमें पाँचवें, सातवें और बारहवें वर्णों पर यति होती है। 'क्रौञ्चपदा' के प्रत्येक पाद में भगण, भगण, दो तगण और चार नगण और गुरु रहते हैं। इसमें पांच, पाँच, आठ और सात पर यति होती है। 'भुजङ्गविजृम्भित' के प्रत्येक पाद में दो मगण, तगण, तीन नगण, रगण, सगण, लघु और गुरु होते हैं। इसमें आठवें, ग्यारहवे और सातवें वर्णों पर यति होती है। 'उपवाहक' के प्रत्येक पाद में मगण, चार नगण, तगण, नगण, सगण और दो गुरु रहते हैं। इसमें नौ, छह, छह, और पांच पर यति होती है।

---

१ ख. ग. नौ यानश°। २ क. ङ. °तं सोसमतना नरसा लगौ। ग°। ३ क. ङ. °नौ। द्व्यष्टास्रमु°। ख. ग. नौ। अष्टेशमुनिभिरश्छे°। ४ ख. ग. °प्रपात°। ५ क. ङ. °फवत्याभ्रववर्णा वास्यु°।

जिसके प्रत्येक पाद में दो नगण और सात रगण होते हैं उसे दण्डद (अथवा 'दण्डक') कहते हैं। इसे ही 'चण्डवृष्टि प्रघातक' कहते हैं। उसी में एक-एक रगण की वृद्धि करते रहने से व्याल और जीमूत इत्यादि छन्द बन जाते हैं। शेष प्रतित (अथवा प्रचित) है। अब गाथा और प्रस्तार का वर्णन किया जा रहा है।२७-३०।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये समवृत्तनिरूपणं नाम
चतुस्त्रिशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः।३३४

अथ पञ्चत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

प्रस्तारनिरूपणम्

[1]अग्निरुवाच—

छन्दोऽत्र सिद्धं गाथा स्यात्पादे सर्वगुरौ तथा।
प्रस्तार [2]आद्यगाथो[3] नः परतुल्योऽथ पूर्वगः ॥१
नष्टमध्ये समेऽङ्के नः समेऽर्धं विषमे गुरुः।
[4]प्रतिलोमगुणं नाद्यं द्विरुद्दिष्टग एकनुत् ॥२
संख्याद्विरर्धे रूपे तु शून्यं शून्ये द्विरीरितम्।
तावदर्धे तद्गुणितं द्विद्व्यूनं च तदन्ततः ॥३
परे पूर्णं परे पूर्णं मेरुप्रस्तारतो भवेत्।
नगसंख्या वृत्तसंख्या चार्धाङ्गुलमधोर्धतः[5] ॥४
संख्यैव द्विगुणैकोना छन्दःसारोऽयमीरितः ॥५

अग्निदेव बोले—यहाँ पर जिन छन्दों का वर्णन नहीं किया गया है; वे सब 'गाथा' (के अन्तर्गत आ जाते) हैं। इसके प्रत्येक पाद में वर्णों की संख्या भिन्न-भिन्न होती है। इन छन्दों में पादों की मात्रा चार से अधिक हो सकती है। ये छन्द अर्धसमवृत्त तथा विषमवृत्त गणों के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं।

---

१ अयमध्यायो नास्ति ख. पुस्तके। २ क. ङ. आद्यो गो धो नः। ३ ग °द्यगाथो लः प°। ४ क. ङ. °गुणामाद्यं। ५ क. ङ. °लतदार्धः°।

(जिस वृत्त की संख्या की जिज्ञासा हो उसे भूमि पर अलग-अलग अक्षरों में लिख लेना चाहिए। तदनन्तर) लकार को आदि में रखकर प्रतिलोम्य से उसकी दो बार आवृत्ति करनी चाहिए। ऐसा करने पर यदि वह संख्या गुरु हो जाये तो उसे द्विगुणित करके उससे एक कम कर देना चाहिए। छन्द के अक्षरों की संख्या (को भूमि पर रखकर उस) से आधा निकाल देना चाहिए। विषम संख्या से पूर्वोक्त रूप को निकाल देने पर शून्य प्राप्त होता है। शून्य स्थान की दो बार आवृत्ति करनी चाहिए। अर्ध स्थान की संख्या को दिगुणित कर देना चाहिए। (गायत्री आदि वृत्तों की संख्या को) द्विगुणित करके उसमें से दो कम कर देना चाहिए। इस प्रकार से द्विगुणित संख्या को पूर्णरूप में ही रखना चाहिए, दो कम करके नहीं। एक चौखाना बनाकर उसके ऊपर नीचे से दो कोष्ठक वना देना चाहिए, उसके नीचे तीन या चार जितने भी कोष्ठक अभीष्ट हों, वना देना चाहिए। इसे 'मेरुप्रस्तार' कहते हैं। गायत्री वृत्तों की संख्या को दुगुना करके उसमें से दो घटा देना चाहिए। इस प्रकार द्विगुणित की हुई वृत्त की संख्या एक से कम होने पर प्रस्तार-लेखन का अधिकरण होती है। गुरु और लघु अक्षरों का विस्तार अङ्गुलि परिमाण होता है। नीचे की ओर अंगुलि विस्तार स्थान को छोड़कर वृत्त प्रस्तार भेदों को लिखना चाहिए। इस प्रकार छन्दःसार वताया गया है।१-५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रस्तारनिरूपणं नाम पञ्च-त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः।३३५

षट्त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

शिक्षानिरूपणम्

अग्निरुवाच—

वक्ष्ये शिक्षां त्रिषष्टिः स्युर्वर्णा वा चतुरा (र) धिकाः।
स्वरा विंशतिरेकश्च स्पर्शानां पञ्चविंशतिः॥१
यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश्च यमाः स्मृताः।
अनुस्वारो विसर्गश्च ≍क≍पौ चापि पराश्रितौ॥२

दुस्पृष्टश्चेति विज्ञेयो [1]लृकारः प्लुत एव च[2]।
रङ्गश्च खे अरं [3]प्रोक्तं हकारः पञ्चमैर्युतः ॥३
अन्तस्थाभिः समायुक्त औरस्यः [4]कण्ठ्य एव सः।
आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान्मनो युङ्क्ते विवक्षया ॥४

अग्निदेव बोले—अव मैं शिक्षा का वर्णन करता हूँ। वर्णों की संख्या तिरसठ अथवा चौंसठ भी मानी गयी है। इनमें इक्कीस स्वर, पचीस स्पर्श, आठ यादि और चार यम माने गये हैं। अनुस्वार, विसर्ग, दो पराश्रितवर्ण-जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय (ᳵक और ᳵप) और दुःस्पृष्ट लकार—ये तिरसठ वर्ण हैं। इनमें प्लुत लृकार को और गिन लिया जाय तो वर्णों की संख्या चौंसठ हो जाती। रङ्ग (अनुनासिक) का उच्चारण 'खे अराँ' की तरह बताया गया है। हंकार 'ङ' आदि पञ्चमाक्षरों और 'य र ल व—इन अन्तःस्थ वर्णों से संयुक्त होने पर 'उरस्य' हो जाता है। इनसे संयुक्त न होने पर वह 'कण्ठस्थानीय' ही रहता है। आत्मा (अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य) संस्कार रूप से अपने भीतर विद्यमान घटपटादि पदार्थों को अपनी बुद्धिवृत्ति से संयुक्त करके अर्थात् उन्हें एक ही बुद्धि का विषय बनाकर बोलने या दूसरों पर प्रकट करने की इच्छा से मन को उनसे संयुक्त करता है।१-४।

मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्।
मारुतस्तूरसि चरन्मन्द्रं जनयति स्वरम् ॥५
प्रातः सवनयोगं तु च्छन्दो गायत्रमाश्रितम्।
कण्ठे माध्यंदिनयुतं मध्यमं त्रैष्टुभानुगम् ॥६
तारं तार्तीयसवनं शीर्षण्यं जागतानुगम्।
सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रमापद्य मारुतः ॥७
वर्णाञ्जनयते तेषां विभागः पञ्चधा स्मृतः।
स्वरतः कालतः स्थानात्प्रयत्नार्थप्रदानतः ॥८

संयुक्त हुआ मन कायाग्नि—जठराग्नि को आहत करता है। फिर वह जठरानल प्राणवायु को प्रेरित करता है। वह प्राणवायु हृदयदेश में विचरता

१ ख. ग. एकारः। २ क. ङ. च.। वक्ष्ये मुखेऽक्षरं प्रो०। ३ ख. ग. प्रोक्तमका०। ४ ख. ग. कण्ठ एकलः। आ०।

हुआ धीमी ध्वनि में उस प्रसिद्ध स्वर को उत्पन्न करता है, जो प्रातःसवन कर्म के साधनभूत मन्त्र के लिए उपयोगी हैं तथा जो 'गायत्री' नामक छन्द के आश्रित है। तदनन्तर वह प्राणवायु कण्ठदेश में भ्रमण करता हुआ 'त्रिष्टुप्' छन्द से युक्त माध्यंदिन-सवन-कर्मसाधन मन्त्रोपयोगी मध्यम स्वर को उत्पन्न करता है। इसके बाद उक्त प्राणवायु शिरोदेश में पहुँचकर उच्चध्वनि से युक्त एवं 'जगती' छन्द के आश्रित सायं-सवन-कर्मसाधन मन्त्रोपयोगी स्वर को प्रकट करता है। इस प्रकार ऊपर की ओर प्रेरित वह प्राण, मूर्धा में टकराकर अभिघात नामक संयोग का आश्रय बनकर, मुखवर्ती कण्ठादि स्थानों में पहुँचकर वर्णों को उत्पन्न करता है। उन वर्णों के पाँच प्रकार से विभाग माने गये हैं। स्वर से, काल से, स्थान से, आभ्यन्तर प्रयत्न से तथा बाह्य प्रयत्न से उन वर्णों में भेद होता है।५-८।

अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा।
जिह्वामूलं च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च ॥९
अनुस्वारो विसर्गश्च शषसा रेफ एव च।
जिह्वामूलमुपध्मा च गतिरष्टविधोष्मणः ॥१०
यद्यो भावप्रसंधानमुकारादि परं पदम्।
स्वरान्तं तादृशं विद्याद्यदन्यद्व्यक्तमूष्मणः ॥११
कुतीर्थादागतं दग्धमपवर्णं च भक्षितम्।
एवमुच्चारणं पापमेवमुच्चारणं शुभम् ॥१२

वर्णों के उच्चारण स्थान आठ हैं—हृदय, कण्ठ, मूर्धा, जिह्वामूल, दन्त, नासिका, ओष्ठद्वय तथा तालु। विसर्ग का अभाव, विवर्तन, संधि का अभाव, शकारादेश, षकारादेश, सकारादेश, रेफादेश, जिह्वामूलीयत्व और उपध्मानीयत्व-ये ऊष्मा वर्णों की आठ प्रकार की गतियाँ हैं। जिस उत्तरवर्ती पद में आदि अक्षर 'उकार' हो, वहाँ गुण आदि के द्वारा यदि 'ओ'—भाव का प्रसंधान (परिज्ञान) हो रहा हो, तो उस 'ओकार' को स्वरान्त अर्थात् स्वरस्थानीय जानना चाहिए। जैसे 'गङ्गोदकम्'। इस पद में जो 'ओ' भाव का प्रसंधान है, वह स्वरस्थानीय है। इससे भिन्न संधिस्थल में जो 'ओभाव' का परिज्ञान होता है, वह 'ओ' भाव ऊष्मा का ही गति विशेष है, यह बात स्पष्ट रूप से जान लेनी चाहिए। जैसे 'शिवो वन्द्यः' इसमें जो 'ओकार' का श्रवण होता है, वह ऊष्मस्थानीय ही है। जो वेदाध्ययन कुतीर्थ से प्राप्त हुआ है, अर्थात्

और स्वरित। इनके उच्चारण काल में भी तीन नियम हैं। ह्रस्व, दीर्घ, तथा प्लुत। अकार एवं हकार कण्ठस्थानीय हैं। इकार, चवर्ग, यकार एवं शकार—ये तालुस्थान से उच्चारित होते हैं। उकार और पवर्ग—ये दोनों ओष्ठस्थान से उच्चारित होने वाले हैं। ऋकार, टवर्ग, रेफ एवं षकार—ये मूर्धन्य तथा लृकार, तवर्ग, लकार और सकार—ये दन्तस्थानीय होते हैं। क वर्ग का स्थान जिह्वामूल है। वकार को विद्वज्जन दन्त और ओष्ठों से उच्चारित होने वाला वताते है। १३-१८।

ए ऐ तु कण्ठतालव्या ओ औ कण्ठ्यौ (ष्ठो) ठजौ स्मृतौ।
अर्धमात्रा तु कण्ठस्य एकारैकारयोर्भवेत् ।।१६
अयोगवाहा विज्ञेया आश्रयस्थानभागिनः।
अचोऽस्पृष्टा यणस्त्वीषन्नेमाः (म) स्पृष्टाः शलःस्मृताः ।।२०
शेषाः स्पृष्टा हलः प्रोक्ता निवोधात्र प्रधानतः।
अमोऽनुनासिका नह्लौ (ह्लौ) नादिनो हझषः स्मृताः ।।२१
ईषन्नादो (दा) यणश्चैव श्वासिनश्च खफादयः।
ईषच्छ्वासं शरं विद्याद्गोर्धामैतत्प्रचक्षते ।।२२

एकार और ऐकार कण्ठ-तालव्य तथा ओकार एवं औकार कण्ठोष्ठज माने गये हैं। एकार, ऐकार तथा ओकार और औकार में कण्ठस्थानीय वर्ण अकार की आधी मात्रा या एक मात्रा होती है। 'अयोगवाह' आश्रयस्थान के भागी होते हैं, ऐसा जानना चाहिए। (अच् अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ)—ये स्वर स्पर्शाभाव रूप 'विवृत' प्रयत्नवाले हैं। यण् (य, व, र, ल) 'ईषत्स्पृष्ट' एवं शल् (श, ष, स, ह) 'अर्धस्पृष्ट' अर्थात् 'ईषद्विवृत' प्रयत्नवाले हैं। शेष 'हल्' अर्थात् क से लेकर म तक के अक्षर 'स्पृष्ट प्रयत्न वाले' माने गये हैं। इनमें बाह्य प्रयत्न के कारण वर्णभेद जानना चाहिए। 'अम्' प्रत्याहार में स्थित वर्ण (स, म, ङ, ण, न) अनुनासिक होते हैं। हकार और रेफ अनुनासिक नहीं होते। 'हकार, झकार तथा षकार' के 'संवार', 'घोष' और 'नाद' प्रयत्न हैं। यण्' और 'जश्'—इनके 'ईषन्नाद' अर्थात् अल्पप्राण प्रयत्न हैं। ख, फ आदि का 'विवार', अघोष और 'श्वास' प्रयत्न हैं। चर् (च, ट, त, क, प, श, ष, स) का 'ईषच्छ्वास' प्रयत्न जानना चाहिए। यह व्याकरण शास्त्र वाणी का धाम कहा जाता है।१६-२२।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शिक्षानिरूपणं नाम
षट्त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः।३३६

और स्वरित। इनके उच्चारण काल में भी तीन नियम हैं। ह्रस्व, दीर्घ तथा आचारहीन गुरु से ग्रहण किया गया है, वह दग्ध-नीरस सा होता है। उसमें अक्षरों को खींचतान कर हठात् किसी अर्थ तक पहुँचाया गया है। वह भक्षित सा हो गया है, अर्थात् सम्प्रदाय सिद्ध गुरु से अध्ययन न करने के कारण वह अभक्ष्य-भक्षण के समान निस्तेज है। इस तरह का उच्चारण या पठन पाप माना गया है। इसके विपरीत जो सम्प्रदाय-सिद्ध गुरु से अध्ययन किया जाता है, तदनुसार पठन-पाठन शुभ होता है।९-१२।

सुतीर्थादागतं व्यक्तं स्वाम्नायं सुव्यवस्थितम्।
सुस्वरेण सुवक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्म राजते ॥१३
न करालो न लम्बोष्ठो नाव्यक्तो नानुनासिकः।
गद्गदो बद्धजिह्वश्च न वर्णान्वक्तुमर्हति ॥१४
('यथा व्याघ्री हरेत्पुत्रान्दंष्ट्राभ्यां न च पीडयेत्।
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या नाव्यक्ता न च पीडिताः ॥१५
सम्यग्वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते)।
उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः ॥१६
ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति कालतो नियमा अपि (चि)।
कण्ठ्या कु (व) हाविचुयशास्तालव्या ओष्ठजावुपू ॥१७
स्युर्मूर्धन्या ऋटुरषा दन्त्या लृतुलसाः स्मृताः।
जिह्वामूले तु कुः प्रोक्तो दन्त्योष्ठ्यो वःस्मृतो बुधैः ॥१८

जो उत्तम तीर्थ—सदाचारी गुरु से पढ़ा गया है, सुस्पष्ट उच्चारण से युक्त है, सम्प्रदाय शुद्ध है, सुव्यवस्थित है, उदात्त आदि शुद्ध स्वर से तथा कण्ठतालवादि शुद्ध स्थान से प्रयुक्त हुआ है, वह वेदाध्ययन शोभित होता है। न तो विकराल आकृतिवाला, न लम्बे ओठों वाला, न अव्यक्त उच्चारण करने वाला, न नाक से बोलनेवाला एवं गद्गद् कण्ठ या जिह्वाबन्ध से युक्त मनुष्य ही वर्णोच्चारण मे समर्थ होता है। जैसे व्याघ्री अपने बच्चों को दाँतों से पकड़कर एक स्थान से दूसरी जगह पर ले जाती है, किन्तु उन्हें पीड़ा नही देती, वर्णों का ठीक इसी तरह प्रयोग करे, जिससे वे वर्ण न तो अव्यक्त (अस्पष्ट) हों और न पीडित ही हों। वर्णों के सम्यक् प्रयोग से मानव ब्रह्म-लोक में पूजित होता है। स्वर तीन प्रकार के माने गये हैं—उदात्त, अनुदात्त

१ 'यथा······महीयते' क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

अथ सप्तत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

काव्यादिलक्षणम

अग्निरुवाच—

काव्यस्य नाटकादेश्च अलंकारान्वदाम्यथ।
[1]ध्वनिर्वर्णाः पदं वाक्यमित्येतद्वाङ्मयं[2] मतम् ॥१

अग्निदेव बोले—अब मैं काव्य, नाटक आदि के अलङ्कारों का वर्णन करता हूँ। ध्वनि, वर्ण, पद और वाक्य वाङ्मय कहलाता है।१

शास्त्रेतिहासवाक्यानां त्रयं यत्र समाप्यते।
शास्त्रे शब्दप्रधानत्वमितिहासेषु निष्ठता[3] ॥२
अभिधायाः प्रधानत्वात्काव्यं ताभ्यां विभिद्यते।

शास्त्र, इतिहास और काव्य ये तीनों वाङ्मय के अन्तर्गत आते हैं। शास्त्र में शब्द प्रधान होता है, इतिहास और कथा ग्रन्थों में इतिवृत्तात्मकता का महत्त्व होता है, तथा काव्य में अभिधा शक्ति की प्रधानता के कारण, काव्यशास्त्र और इतिहास से पृथक् हो जाता है।२-२½।

नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा ॥३
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र च दुर्लभा।
व्युत्पत्तिर्दुर्लभा तत्र विवेकस्तत्र दुर्लभः ॥४
सर्वं शास्त्रमविद्वद्भिर्मृग्यमाणं न सिध्यति।

संसार में मनुष्य जन्म की प्राप्ति बड़ी कठिनता से होती है। मनुष्य जन्म प्राप्त करके भी उसमें विद्या की उपलब्धि और भी कठिन है तथा कविता करने की शक्ति तो और भी दुष्प्राप्य है, ये सब मिल जाने पर भी लोक, शास्त्र, काव्य, इतिहासादि के अध्ययन द्वारा प्राप्त होने वाली निपुणता और दुर्लभ है। (यह सब तत्त्ववेत्ताओं द्वारा ही सम्भव है, क्योंकि) अतत्त्ववेत्ताओं के द्वारा अन्वेषित शास्त्र किसी भी प्रकार से सफल सिद्ध नही होता।३-४½।

आदिवर्णा द्वितीय श्च महाप्राणास्तुरीयकाः[4] ॥५

---

१ ख. ग. °निवर्णप°। २ ख. ग. °तदाश्रयं°। ३ क. ङ. तिष्ठता। ४ च. °प्राणाः स्वरूपकाः। कङ °प्राणाः शकारकाः।

वर्गेषु वर्णवृन्दं स्यात्पदं सुप्तिङ्प्रभेदतः ।
संक्षेपाद्वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली ॥६
काव्यं स्फुरदलंकारं गुणवद्दोषवर्जितम् ।
योनिर्वेदश्च लोकश्च सिद्धमर्थादयोनिजम्[1] ॥७

वर्ण वर्गों में बद्ध हैं । इनमें वर्ग के प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ वर्ण महाप्राण कहलाते हैं । वर्ण-समुदाय का नाम पद है । पद के दो भेद हैं सुबन्त और तिङन्त । निष्कर्ष यह है कि इष्ट अर्थ से युक्त पदों के समूह का नाम वाक्य है । जिस वाक्य-समूह में अलंकार स्पष्ट रूप से दिखाई दें तथा जो गुणों से युक्त और दोषों से मुक्त हो उसे काव्य कहते है । काव्य का आधार वेद है अथवा लोक, परन्तु अर्थ की दृष्टि से काव्य अयोनिज है अर्थात् स्वतः सिद्ध है । ५-७ ।

[2]देवादीनां संस्कृतं स्यात्प्राकृतं त्रिविधं नृणाम् ।
गद्यं पद्यं च मिश्रं च काव्यादि त्रिविधं स्मृतम् ॥८

काव्य या नाटक में संस्कृत भाषा का प्रयोग देवताओं के मुख से कराना चाहिए, जब कि मनुष्यों के मुख से तीन प्रकार की प्राकृत (महाराष्ट्री, शौर-सेनी, मागधी) का प्रयोग कराना चाहिए । काव्य तीन प्रकार का कहा गया है । गद्य, पद्य और चम्पू ।८।

अपदः पदसन्तानो गद्यं तदपि गद्यते ।
चूर्णकोत्कलिकावृत्तसंधिभेदात् त्रिरूपकम् ॥९
[3]अल्पाल्पविग्रहं नातिमृदुसंदर्भनिर्भरम् ।
चूर्णकं नामतो दीर्घसमासोत्कलिका भवेत् ॥१०
भवेन्मध्यमसन्दर्भं नातिकुत्सितविग्रहम् ।
वृत्तच्छायाहरं [4]वृत्तसंधिर्नैतत्किलोत्कटम् ॥११

पद (चरण) रहित पद समूह गद्य कहलाता है । चूर्णक, उत्कलिका और वृत्त सन्धि ये तीन इसके रूप कहे गये हैं । जो गद्य अल्पाल्प समास से संयुक्त हो और जिसमें कर्कश शब्दावली का प्रयोग हो उसे चूर्णक गद्य कहते हैं । और

---

१ ख. ग. वेदादीनां । २ क ङ ०ल्पान्यविग्रहं जाति० । ३ क. ख. ग. छ. ०त्तगन्धिनै० ।

जिस गद्य में लम्बे-लम्बे समास हों, उसे उत्कलिका गद्य कहते हैं। जिस गद्य में शब्दावली न तो अतिकर्कश हो, न ही अति कोमल हो और न ही समास प्रौढ़ स्तर का हो तथा जिसमें वृत्त की छाया अत्यन्त ही क्षीण हो वह वृत्तसंवि गद्य है। ९-११।

आख्यायिका कथा खण्डकथा परिकथा तथा।
कथानिकेति मन्यन्ते गद्यकाव्यं च पञ्चधा ॥१२

आख्यायिका, कथा, खण्डकथा, परिकथा, कथानिका गद्यकाव्य के ये पांच प्रकार हैं।१२।

कर्तृवंशप्रशंसा स्याद्यत्र गद्येन विस्तरात्।
कन्याहरण-संग्राम-विप्रलम्भविपत्तयः ॥१३
भवन्ति यत्र दीप्ताश्च रीतिवृत्तिप्रवृत्तयः।
उच्छ्वासैश्च परिच्छेदो यत्र या चूर्णकोत्तरा ॥१४
वक्त्रं वाऽपरवक्त्रं वा यत्र साऽऽख्यायिका स्मृता।

जिस गद्य काव्य में ग्रन्थकर्ता के वंश की प्रशस्ति विस्तारपूर्वक दी हुयी हो, कन्याहरण, संग्राम, विप्रलम्भजन्य विपत्तियाँ हों, जहाँ रीति, वृत्ति, प्रवृत्ति अपने चमत्कृत रूप मे प्रस्तुत की जाए, जिसके कथा भागों का नाम उच्छ्वास हो और जिसमें चूर्णक नामक गद्य का प्रयोग हो तथा जहाँ कथा नायक के मुख से कही गई हो अथवा किसी अन्य पात्र के मुख से उसे 'आख्यायिका' नामक गद्य-काव्य कहा जाता है। १३-१४½।

श्लोकैः स्ववंशं संक्षेपात्कविर्यत्र प्रशंसति ॥१५
मुख्यस्यार्थावताराय भवेद्यत्र कथान्तरम्।
परिच्छेदो न यत्र स्याद्भवेद्वा [1]लम्बकैः क्वचित् ॥१६
सा कथा नाम तद्गर्भे निबध्नीयाच्चतुष्पदीम्।
भवेत्खण्डकथा याऽसौ कथा परिकथा तयोः ॥१७
अमात्यं सार्थकं वाऽपि द्विजं वा नायकं विदुः।
स्यात्तयोः करुणं विद्धि विप्रलम्भश्चतुर्विधः ॥१८

---

१. ख. ग. लम्भकैः।

जिस गद्यकाव्य में ग्रन्थकार संक्षेप से श्लोकों द्वारा अपने वंश की प्रशंसा करता है। जहाँ मुख्य कथा को लाने के लिए अवान्तर कथा की सृष्टि की जाती है और जिसमें परिच्छेद नहीं होते अथवा कहीं-कहीं (ग्रन्थ के अन्त में) समस्त वर्ण्य विषय प्रबन्ध में अनुस्यूत रहता है उसे 'कथा' नाम का गद्य-काव्य कहा गया है। यदि कवि कथा-काव्य में चतुष्पदी का प्रयोग करता है तो उसे 'खण्ड-कथा' कहते हैं। कथा और परिकथा नामक गद्यकाव्यों में राज्य का मन्त्री, व्यापारी अथवा ब्राह्मण नायक होता है। इनमें करुण रस और चार प्रकार का विप्रलम्भ शृङ्गार होता है। १५-१८।

समाप्यते तयोर्नाऽद्या सा कथामनुधावति।
कथाख्यायिकयोर्मिश्रभावात्परिकथा स्मृता ॥१९
भयानकं सुखपरं गर्भे च करुणो रसः।
अद्भुतोऽन्ते सुक्लृप्तार्थो नोदात्ता सा कथानिका ॥२०

इन दो गद्यकाव्य भेदों में से 'कथा' में घटना समाप्त नहीं की जाती है, अपितु अधूरी छोड़ दी जाती है। कथा और आख्यायिका के मिश्रित रूप को परिकथा कहते हैं। कथानिका नामक गद्य काव्य में, सुखपरक भयानक रस, मध्य में करुण रस और अन्त में अद्भुत रस का परिपाक होता है। इस गद्य काव्य का केन्द्रीभूत विषय उदात्त न होते हुए भी सुनियोजित अवश्य होना चाहिए।१९-२०।

पद्यं चतुष्पदी तच्च वृत्तं जातिरिति द्विधा[1]।
[2]वृत्तमक्षरसंख्येयमुक्थं तत्कृतिशेषजम् ॥२१
मात्राभिर्गणना यत्र सा जातिरिति काश्यप।
सममर्धसमं वृत्तं विषमं पैङ्गलं त्रिधा ॥२२
सा विद्या नौस्तितीर्षूणां गभीरं काव्यसागरम् ॥

पद्य में भी चार पाद होते हैं। वृत्त और जाति इसके दो भेद हैं। जहाँ नियमानुसार अक्षरों की संख्या की जाती है उसे वृत्त, जहाँ मात्राओं की गणना की जाती है उसे जाति छन्द कहते हैं। छन्दःशास्त्र के अनुसार सम, अर्धसम, और विषम, छन्द के ये तीन भेद माने गये हैं। छन्दःशास्त्र का ज्ञान काव्यरूपी गम्भीर सागर को पार करने के लिए नाव की तरह सहायक है। २१-२२½।

---

१ छ. त्रिधा। २ क. ङ. °रसंक्षेप° युज्यते तद्विशेषणम्।

महाकाव्यं कलापश्च पर्याबन्धो विशेषकम् ॥२३½
कुलकं मुक्तकं कोष इति पद्यकुटुम्बकम् ।

महाकाव्य, कलाप, पर्याबन्ध, विशेषक, कुलक, मुक्तक और कोष ये पद्य के भेद हैं। २३

सर्गबन्धो महाकाव्यमारब्धं संस्कृतेन यत् ॥२४
तादात्म्यमजहत्तत्र तत्समं नातिदुष्यति ।
इतिहासकथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम् ॥२५
मंत्रदूतप्रयाणाजिनियतं नातिविस्तरम् ।
शक्वर्याऽतिजगत्याऽतिशक्वर्या त्रिष्टुभा तथा ॥२६
पुष्पिताग्रादिभिर्वक्त्राभिजनैश्चारुभिः समैः ।
[1]मुक्ता तु भिन्नवृत्तान्ता नातिसंक्षिप्तसर्गकम् ॥२७
[2]अतिशक्वरिकाष्टम्यामेकसंकीर्णकैः परः ।
मात्रयाऽप्यपरः सर्गः प्राशस्त्येषु च पश्चिमः ॥२८
कल्पोऽतिनिन्दितस्तस्मिन्विशेषानादरः सताम् ।

महाकाव्यों का विभाजन सर्गों में होता है और आरम्भ संस्कृत से होता है। स्वरूप को छोड़ते हुए, अन्य भाषा प्राकृत आदि से आरम्भ करना भी दोष नहीं। इसका इतिवृत्त इतिहास की कथा से सम्बन्धित हो अथवा सज्जनों में प्रचलित हो। मंत्रणा, दूत प्रेषण, युद्धादि का अतिविस्तार न हो। शक्वरी, अतिजगती, अतिशक्वरी, त्रिष्टुप्, पुष्पिताग्रा, वक्त्रादि छन्दों से समन्वित हो। सर्गान्त में छन्द बदला हुआ हो और सर्ग अति संक्षिप्त न हो। अतिशक्वरी आदि छन्दों के साथ-साथ कोई सर्ग मात्रा छन्दों से भी रचित होना चाहिए। जिस पद्धति में सज्जनों का अनादर होता है वह निन्दित है अतः यहां वह त्याज्य है। २४-२८½ ।

[3]नगरार्णवशैलर्तुचन्द्रार्काश्रमपादपैः ॥२९
उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवैः[4] ।
दूतीवचनविन्यासैरसतीचरिताद्भुतैः ॥३०

---

१ "मुक्ता······सर्गकम्" इत्यत्र "युक्ता तु भिन्नवृत्ताख्या नातिसंक्षिप्तसङ्गकम् ॥" इति क. ङ. पुस्तकयोः। २ ख. ङ. °काद्याम्यामे°। ३ ख. ग. °गरान्तरशै°। ४ ख. ग. °वैः। कृतीव°।

तमसा मरताऽप्यन्यैर्विभावैरतिनिर्भरैः ।
सर्ववृत्तिप्रवृत्तं च सर्वभाव[1]प्रभावितम् ।।३१
सर्वरीतिरसैः स्पृष्टं [2]पुष्टं गुणविभूषणैः ।
अत एव महाकाव्यं तत्कर्ता च महाकविः ।।३२
वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस [3]एवात्र जीवितम् ।
[4]पृथक्प्रयत्नं निर्वर्त्यं वाग्विक्रमणि (?) रसाद्वपुः ।। ३३
[5]चतुर्वर्गफलं विश्वग्व्याख्यातं[6] नायकाख्यया ।

नगर-वर्णन, समुद्र, पर्वत, ऋतु, चन्द्र, सूर्य, आश्रम, पादप, उद्यान, जल-क्रीड़ा, मद्यपानादि उत्सवों तथा दूती वचन, कुलटाओं के विस्मय जनक चरित्रों के साथ-साथ गाढान्धकार, प्रचण्ड पवन आदि आदि लोकातिशायी तत्त्वों की चर्चा से महाकाव्य संयुक्त होना चाहिए। इसका कथानक सब प्रकार की वृत्तियों से समन्वित हो, सब प्रकार के भावों से संकलित हो, रीति तथा रस से संयुक्त हो, तथा अलङ्कारों से पुष्ट हो। इस प्रकार के गुणों से संयुक्त महाकाव्य का रचयिता महाकवि कहाता है। इस महाकाव्य में विविध-वाक् कौशलों की प्रधानता होते हुये भी इसकी आत्मा तो रस ही है अतः कवि व्यर्थ के वाग्-विक्रम को छोड़कर इसका कलेवर रससिक्त बनाये और नायक की कथा से चतुर्वग की फल-प्राप्ति को दर्शाये। २९-३३½।

[7]समानवृत्तिर्निव्यूढः कौशिकीवृत्तिकोमलः ।।३४
कलापोऽत्र प्रवासः प्रागनुरागाह्वयो रसः ।
सविशेषकं प्राप्त्यादि संस्कृतेनेतरेण च ।।३५
([8]श्लोकैरनेकैः कुलकं [9]स्यात्संदानितकानि तत् ।
मुक्तकं श्लोक एकैकश्चमत्कारक्षमः सताम्) ।।३६

---

१ क. ङ. °वविभाववित् । शर्वरीतिरजैर्जुष्टं पुणिर्गुण° । २ ख. ग. °ष्टं गण° । ३ क. ङ. °वानुजीवनम् । ४ क. ङ. °यत्ननिवृत्त्यै वासुकिन्निर° । ५ ख. ग. °र्तुर्वक्त्रं च संधिश्च व्याख्या° । ६ ख. ग. °श्वव्या° ७ ख. ग. °वृत्तनि° । ८ "श्लोकैरनेकैः......सताम्" च. पुस्तके नास्ति । ९ क. ङ. स्याच्छन्दानितकादि त° ।

जिसमें केवल एक ही छन्द का प्रयोग हो, जो कौशिकी वृत्ति के प्रयोग द्वारा कोमल बनाया गया हो, उसे 'कलापक' कहते हैं। इसमें प्रवास और पूर्वराग का समावेश होना चाहिए। 'सविशेपक' उसे कहते हैं जिसमें संस्कृत भाषा अथवा किसी अन्य भाषा में काव्य सामग्री की प्राप्ति हो। 'कुलक' नामक काव्य में विभिन्न छह छन्दों का प्रयोग होता है इसे 'संदानितक' भी कहते हैं। 'मुक्तक' रचना वह होती है, जिसका प्रत्येक श्लोक सहृदयों को प्रभावित करने में समर्थ होता है। ३४-३६।

सूक्तिभिः कविसिंहानां सुन्दरीभिः समन्वितः।
कोषो ब्रह्मापरिच्छिन्नः स विदग्धाय रोचते ॥३७
आभासोपमशक्तिश्च सर्गे यद्भिन्नवृत्तता।
मिश्रं वपुरिति ख्यातं प्रकीर्णमिति च द्विधा ॥३८
('श्रव्यं चैवाभिनेयं च प्रकीर्णं सकलोक्तिभिः ॥३९

'कोष' नामक काव्य, शिरोमणि कवियों की प्रभावशाली सूक्तियों का संग्रह होता है। इसमें रस का प्रवाह सतत प्रवहमान होता है। चतुर सहृदयों को यह अति प्रिय होता है। इसमें रसाभास और उपशम की शक्ति होती है और एक ही सर्ग में भिन्न-भिन्न छन्दों का प्रयोग रहता है। इसके दो भेद हैं—'मिश्रित और प्रकीर्णक'। प्रथम तो श्रव्य भी होता है और अभिनेय भी। 'प्रकीर्ण' में एक प्रकार की उक्तियाँ होती हैं। ३७-३९।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये काव्यादिलक्षणकथनं नाम सप्तत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः।३३७

———

४ "श्रव्य'''' '''नाटिका" क. ङ' पुस्तकयोर्नास्ति।

अथाष्टात्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नाटकनिरूपणम्

अग्निरुवाच—

नाटकं सप्रकरणं डिम ईहामृगोऽपि वा ।
ज्ञेयः [1]समवकारश्च भवेत्प्रहसनं तथा ॥१
व्यायोगभाणवीथ्यङ्कत्रोटकान्यथ[2] नाटिका ।
सट्टकं शिल्पकः कर्णा एको [3]दुर्मल्लिका तथा ॥२
प्रस्थानं भाणिका भाणी गोष्ठी[4] हल्लीशकानि च ।
काव्यं श्रीगदितं नाट्यरासकं रासकं तथा ॥३
उल्लाप्यकं प्रेङ्क्षणं च सप्तविंशतिधैव तत् ।

अग्निदेव बोले—दृश्यकाव्य सत्ताईस प्रकार का होता है । नाटक, प्रकरण, डिम, ईहामृग, समवकार, प्रहसन, व्यायोग, भाण, वीथी, अङ्क, त्रोटक, नाटिका, सट्टक, शिल्पक, कर्ण, दुर्मल्लिका, प्रस्थान, भाणिका, भाणी, गोष्ठी, हल्लीशक, श्रीगदित, नाट्यरासक, रासक, उल्लाप्यक, प्रेङ्क्षण । १-३½ ।

सामान्यं च विशेषश्च लक्षणस्य द्वयी गतिः ॥४
सामान्यं सर्वविषयं विशेषः क्वापि वर्तते ।
पूर्वरङ्गे निवृत्ते द्वौ देशकालावुभावपि ॥५
रसभावविभावानुभावा अभिनयास्तथा ।
अङ्कः स्थितश्च सामान्यं सर्वत्रैवोपसर्पणात् ॥६
विशेषोऽवसरे वाच्यः सामान्यं पूर्वमुच्यते ।

नाटक लक्षण की दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ हैं, सामान्य और विशेष । प्रथम प्रकार की प्रवृत्तियाँ सब नाटकों में होती हैं और द्वितीय प्रकार की कहीं-कहीं । पूर्व रंग के पश्चात्, देश और काल का संकलन, रस, भाव,

---

१ ख. ग. समरकारश्च. । २ ख. ग. °ङ्कतोट° । ३ ख. ग. दुर्मणिका ।
४ ख. ग. हन्दीसकानि ।

अनुभाव, अभिनय तथा अंक-विभाजन, कार्यावस्थाओं का प्रतिपादन, ये सभी नाटक की सामान्य प्रवृत्तियाँ हैं क्योंकि इनकी उपस्थिति सर्वत्र रहती है। विशेष प्रवृत्तियों का प्रयोग अवसर विशेष पर होना चाहिए, जब कि सामान्य के विषय में कह दिया है। ४-६३।

त्रिवर्गसाधनं नाट्यमित्याहुः करणं च यत् ॥७
इतिकर्तव्यता तस्य पूर्वरङ्गो यथाविधि।
नान्दीमुखानि द्वात्रिंशदङ्गानि पूर्वरङ्गके ॥८
देवतानां नमस्कारो गुरूणामपि च स्तुतिः।
गोब्राह्मणनृपादीनामाशीर्वादादि गीयते ॥९

नाटक त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम की प्राप्ति) का हेतुभूत साधन है। पूर्व रग में विधिपूर्वक नान्दी आदि बत्तीस अङ्गों का निर्वाह करना चाहिए। इस स्थल पर देवताओं को नमस्कार, गुरुजनों की प्रशंसा, गो, ब्राह्मण और राजा के आशीष का गायन किया जाता है। ७-९।

नान्द्य (न्द्य)न्ते सूत्रधारोऽसौ रूपकेषु निवध्यते।
गुरुपूर्वक्रमं वंशप्रशंसा पौरुषं कवेः ॥१०
सम्बन्धार्थौ च काव्यस्य पञ्चैतानेष निर्दिशेत्।
नटी विदूषको वाऽपि पारिपार्श्वक एव च ॥११
सहिताः सूत्रधारेण संलापं यत्र कुर्वते।
चित्रैर्वाक्यैः [1]स्वकार्यार्थे (र्थैः) प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ॥१२
आमुख्यं तत्तु विज्ञेयं बुधैः प्रस्तावनाऽपि सा।
प्रवृत्तकं कथोद्घातः प्रयोगातिशयस्तथा ॥१३
आमुख्यस्य त्रयो भेदा बीजांशेषूपजायते।

रूपकों में नान्दी के पश्चात् सूत्रधार का समावेश किया जाता है। वह सूत्रधार इन पाँच बातों का निर्देश करे—कवि (रूपककार) की गुरुपरम्परा, वंशोल्लेख तथा पौरुष (काव्यशक्ति), काव्य (रूपक) की पूर्वकथा का सम्बन्ध और प्रयोजन। जहाँ सूत्रधार के साथ नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्विक स्वकार्यसिध्यर्थ चमत्कृत वाक्यों से परस्पर चर्चा करते हैं,

---

१ क. ख. ग. °र्थे वीथ्यङ्गैरन्यकाऽपि वा। आ°।

नाटक के उसी स्थल को आमुख्य कहते हैं। विद्वानों ने इसे प्रस्तावना भी कहा है। इसके तीन भेद हैं—प्रवृत्तक, कथोद्घात और प्रयोगातिशय। ये तीनों नाटक के बीजांश से ही (यथा विधि) उत्पन्न होते हैं। १०-१३½।

कालं प्रवृत्तमाश्रित्य सूत्रधृग्यत्र वर्णयेत्[1] ।।१४
तदाश्रयस्य पात्रस्य प्रवेशस्तत्प्रवृत्तकम्।
सूत्रधारस्य वाक्यं वा यत्र वाक्यार्थमेव वा ।।१५
गृहीत्वा प्रविशेत्पात्रं कथोद्घातः स उच्यते ।।

जहाँ सूत्रधार किसी तत्कालीन चरित्र का आश्रय लेकर वर्णन करे और इस वर्णन के साथ ही तत्सम्बद्ध पात्र का प्रवेश हो तो वह प्रस्तावना प्रवृत्तक कहलाती है। जहाँ पर सूत्रधार के वाक्य को अथवा उसके वाक्यार्थ को दोहराता हुआ कोई पात्र प्रवेश करे तो उसको कथोद्घात प्रस्तावना कहा जाता है। १४-१५½।

प्रयोगेषु प्रयोगं तु सूत्रधृग्यत्र वर्णयेत् ।।१६
ततश्च प्रविशेत्पात्रं प्रयोगातिशयो हि सः।
शरीरं नाटकादीनामितिवृत्तं प्रचक्षते ।।१७
सिद्धमुत्प्रेक्षितं चेति तस्य भेदावुभौ स्मृतौ।
सिद्धमागमदृष्टं च सृष्टमुत्प्रेक्षितं कवेः ।।१८

नाटकों (की प्रस्तावना) में जब सूत्रधार अपने अभीष्ट कर्तव्य सम्पादन कर चुके और तब पात्र का प्रवेश हो तो वह प्रयोगातिशय नाम की प्रस्तावना कहाती है। नाटक के इतिवृत्त (कथानक) को शरीर कहा जाता है। इतिवृत्त के दो भेद है—सिद्ध और उत्प्रेक्षित आगम (शास्त्र) से प्राप्त कथानक सिद्ध कहाता है और कवि-कल्पना-प्रसूत कथानक उत्प्रेक्षित। १६-१८।

बीजं बिन्दुः[2] पताका च [3]प्रकरी कार्यमेव च।
अर्थप्रकृतयः पञ्च पञ्च चेष्टा अपि क्रमात् ।।१९
प्रारम्भश्च प्रयत्नश्च प्राप्तिः सद्भाव एव च।
नियता च फलप्राप्तिः फलयोगश्च पञ्चमः ।।२०

१ क. ङ. वर्तयेत्। २ क. ख. ग. बिन्दु। ३ क. ङ. प्राकरी।

नाटक की अर्थप्रकृतियां पांच हैं—बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी, कार्य, और इनकी चेष्टायें (कार्यावस्थायें) भी पांच हैं—प्रारंभ, प्रयत्न, सद्भाव, फलप्राप्ति, फलयोग। १६-२०।

मुखं प्रतिमुखं गर्भो विमर्शश्च तथैव च।
तथा [1]निहरणं चेति क्रमात्पञ्चैव संधयः ॥२१
अल्पमात्रं समुद्दिष्टं वहुधा यत्प्रसर्पति।
फलावसानं यच्चैव बीजं तदभिधीयते ॥२२

नाटक में क्रमशः पांच सन्धियां होती हैं—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निहरण। जहां संकेत मात्र से ही फल प्राप्ति तक की समस्त कथावस्तु ज्ञात सी हो जाये, उस कार्यावस्था को बीज कहते हैं। २१-२२।

यत्र बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससंभवा।
काव्ये शरीरानुगतं[2] तन्मुखं परिकीर्तितम् ॥२३
इष्टस्यार्थस्य रचना वृत्तान्तस्यानुपक्षयः।
रागप्राप्तिः प्रयोगस्य गुह्यानां चैव गूहनम् ॥२४
आश्चर्यवदभिख्यातं प्रकाशानां प्रकाशनम्।
अङ्गहीनो नरो यद्वन्न[3] श्रेष्ठं काव्यमेव च ॥२५

जहां चमत्कृत अर्थ, रस आदि से युक्त उपर्युक्त 'बीज' नामक कार्यावस्था होती है वहां नाटकीय कथावस्तु का अनुकारक स्थल मुखसंधि कहाता है। मुख-संधि में ही अभीष्ट कथावस्तु की रचना, वृत्त (कथा) का अनुपक्षय अर्थात् अक्षीयमाणस्वरूप, प्रयोग (नाटक) की आनन्दमयी स्थिति, गोपनीय बातों का गोपन, ख्यात (घटना सूत्र) का आश्चर्यमयी पद्धति से कथन, प्रकाशनीय तथ्यों का प्रकाशन, इन नाटकीय गुणों का उल्लेख होना चाहिए। इन उपर्युक्त गुणों से रहित काव्य अंगहीन मनुष्य की भांति श्रेष्ठ नहीं बन सकता। २३-२५।

देशकालैर्विना किंचिन्नेतिवृत्तं प्रवर्तते।
[4]अतस्तयोरुपादानं नियमात्पदमुच्यते॥२६

---

१ छ. निर्वहणं। २ क. ख. ग. °गता तन्मु° ३ क. ङ. श्रेयः। ४ क. ख. ग. °दाननि°।

देशेषु भारतं वर्षं काले कृतयुगत्रयम् ।
[1]नर्ते ताभ्यां प्राणभृतां सुखदुःखोदयः क्वचित् ॥
सर्गे सर्गादिवार्त्ता च [2]प्रसञ्जन्ती न दुष्यति ॥२७

देश काल के विना किसी भी कथानक की रचना नहीं होती, इसलिए नियम पूर्वक उन दोनों का उपादान करना 'पद' कहलाता है।

नाटक के दृश्य सदा भारत के ही होने चाहिए और कालों में सत्ययुग, त्रेता और द्वापर इन तीन का उल्लेख होना चाहिए। देश और काल के सम्यक् उल्लेख के बिना दर्शकों में सुख और दुःख की अनुभूति ठीक प्रकार से नहीं कराई जा सकती। अंक में सृष्टि की आरम्भिक कथा का दिखाना भी दोष नहीं है। २६-२७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नाटकनिरूपणं नामाष्टात्रिंशदधिक त्रिशततमोऽध्यायः ।३३८

अथैकोनचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

शृङ्गारादिरसनिरूपणम्

अग्निरुवाच—
अक्षरं परमं ब्रह्म सनातनमजं विभुम् ।
वेदान्तेषु वदन्त्येकं चैतन्यं ज्योतिरीश्वरम् ॥१

अग्निदेव बोले—वह परब्रह्म परमेश्वर अक्षय है। वह शाश्वत, अजन्मा और (समस्त सृष्टि में) परिव्याप्त है। वेदान्त ग्रन्थों में उसे अद्वितीय ज्योतिर्मान् और सामर्थ्यवान् कहा गया है। १।

आनन्दः [3]सहजस्तस्य [4]व्यज्यते स कदाचन ।
व्यक्तिः सा तस्य चैतन्यचमत्काररसाह्वया ॥२
आद्यस्तस्य विकारो यः सोऽहङ्कार इति स्मृतः ।
ततोऽभिमानस्तत्रेदं समाप्तं भुवनत्रयम् ॥३

---

१ ख. च. नर्तिताभ्यां। ग. वर्तिताभ्यां। २ ख. ग. प्रमज्जन्ती। ३ क. ङ. °हजं ह्येष वाधते स। ४ ख. ज. युज्यते।

[1]अभिमानाद्रतिः[2] सा च [3]परिपोषमुपेयुषी ।
[4]व्यभिचार्यादिसामान्याच्छृङ्गार इति गीयते ॥४

उसका आनन्द स्वाभाविक है पर उसकी अभिव्यक्ति कभी-कभी होती है। उसकी अभिव्यक्ति का नाम चैतन्य चमत्कार अथवा रस है। उप पर-ब्रह्म का आदिम विकार अहंकार कहाता है। उस अहंकार से अभिमान की उत्पत्ति हुयी और उसी अभिमान में तीन (पृथ्वीलोक, पाताललोक, स्वर्गलोक) परिव्याप्त हैं। अभिमान से रति का जन्म होता है, और जब रति व्यभिचारी आदि भावों से परिपुष्ट होती है तब उसे शृङ्गार कहते हैं। २-४।

तद्भेदाः काममितरे हास्याद्या अप्यनेकशः[5] ।
([6]स्वस्वस्थायिविशेषोऽथ परिघोषस्वलक्षणाः ॥५
सत्त्वादिगुणसंतानाज्जायन्ते परमात्मनः ।
रागाद्भवति शृङ्गारो रौद्रस्तैक्ष्ण्यात्प्रजायते ॥६
वीरोऽवष्टम्भजः संकोचभूर्बीभत्स इष्यते ।
शृङ्गाराज्जायते हासो रौद्रात्तु करुणो रसः) ॥७

रति अथवा शृङ्गार के अनेक भेद हैं काम। (शृङ्गार) हास्यादि। प्रत्येक रस का अपना-अपना स्थायीभाव है और उनके स्वरूप स्वनाम से ही स्पष्ट है। ये स्थायीभाव परब्रह्म के सत्त्वादिगुणों के प्रसार से ही समुत्पन्न होते हैं। राग (प्रणय) से शृङ्गार की उत्पत्ति होती है। असहिष्णुता से रौद्र रस की, उत्साह से वीर रस की, संकोच अथवा ग्लानि से बीभत्स रस की उत्पत्ति होती है। शृङ्गार रस से हास रस उत्पन्न होता है, रौद्र रस से करुण रस।५-७।

वीराच्चाद्भुतनिष्पत्तिः स्याद्[7]वीभत्साद्भयानकः ।
शृङ्गारहास्यकरुणा रौद्रवीरभयानकाः ॥८
वीभत्साद्भुतशान्ताख्याः[7] स्वभावाच्चतुरो रसाः ।
लक्ष्मीरिव विना त्यागान्न वाणी भाति नीरसा ॥९

---

१ ख. ग. °मानावृतिः । २ क. ङ. °नात्स्मृतिः । ३ क. ख. °रितोष° । ४ क. ङ. °चारादि° ५ ख. ग. °शः । सुषुम्नादिविशेषोरसप° । ६ 'स्वस्वस्थायि..................करुणोरसः' क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति । ७ क. °ख्याः स्वपुष्टाश्चतु° । ख. ग. °ख्याः सुषुप्ताश्चतु° ।

अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः ।
यथा वै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते ॥१०

वीर से अद्भुत रस की निष्पत्ति होती है और बीभत्स से भयानक रस की निष्पत्ति होती है। शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत, शान्त—ये नौ रस हैं। इनमें से रौद्र, वीर, बीभत्स ये चार रस स्वाधीन (स्वाभाविक) है (और शेष परजन्य)। जिस प्रकार बिना दान के लक्ष्मी शोभित नहीं होती, इसी प्रकार कविता (वाग्देवी) भी रसों के बिना शोभित नहीं होती। कवि इस अपार काव्य जगत् का निर्माता है। इसे जो वस्तु जिस प्रकार अच्छी लगती है यह उसे वैसे ही वनाता है।८-१०।

शृङ्गारी चेत्कविः काव्ये जातं रसमयं जगत् ।
स चेत्कविर्वीतरागो नीरसं व्यक्तमेव तत् ॥११
न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्जितः ।
भावयन्ति रसानेभिर्भाव्यन्ते च रसा इति ॥१२
स्थायिनोऽष्टौ रतिमुखाः स्तम्भाद्या व्यभिचारिणः ।
[1]मनोनुकूलेऽनुभवः सुखस्य रतिरिष्यते ॥१३

यदि कवि शृंगारी प्रकृति का अर्थात् सहृदय होगा तो उसकी सृष्टि अर्थात् रचना भी सरस होगी। पर यदि वह वह नीरस होगा तो उसका काव्य भी नीरस ही होगा। न तो रस के बिना कोई भाव होता है और नहीं भाव के विना रस। इन भावों से रसों का भावन किया जाता है और रसों के द्वारा भावों का। रत्यादि आठ स्थायी भाव कहाते हैं और स्तम्भादि (आठ) व्यभिचारी भाव सुख के मनोनुकूल अनुभव का नाम रति है।११-१३।

हर्षादिभिश्च मनसो विकासो हास उच्यते ।
मनोवैक्लव्यमिच्छन्ति शोकमिष्टक्षयादिभिः ॥१४
क्रोधस्तैक्ष्ण्यं प्रबोधश्च प्रतिकूलानुकारिणी ।
पुरुषानुसमोऽप्यर्थो यः स उत्साह उच्यते ॥१५

हर्षादि से मन का जो विकास होता है उसे हास कहते हैं। प्रियवस्तु के विनाशादि से मन में होने वाली विकलता का नाम शोक है। किसी प्रतिकूल

---

१ ख. ग. 'कूलोऽनु॰'।

परिस्थिति में समुत्पन्न तीक्ष्णता का नाम क्रोध है। हृदय में उत्पन्न पौरुष को 'उत्साह' कहते हैं।१४-१५।

चित्रादिदर्शनाच्चेतोवैक्लव्यं ब्रुवते भयम्।
जुगुप्सा च पदार्थानां निन्दा दौर्भाग्यवाहिनाम् ॥१६
विस्मयोऽतिशयेनार्थदर्शनाच्चित्तविस्मृतिः।
अष्टौ स्तम्भादयः सत्त्वाद्रजसस्तमसः परम् ॥१७
स्तम्भश्चेष्टा प्रतीघातो भयरागाद्युपाहितः।
श्रमरागाद्युपेतान्तः क्षोभजन्म वपुर्जलम् ॥१८
स्वेदो हर्षादिभिर्देहोच्छ्वासोऽन्तः पुलकोद्गमः।
हर्षादिजन्मवान्सङ्गः स्वरभेदो भयादिभिः ॥१९

किसी चित्र अथवा भयंकर दृश्य को देखने से चित्त को जो व्याकुलता होती है उसे भय कहते है। गन्दी वस्तुओं के निन्दात्मक भाव का नाम जुगुप्सा कहाता है। आठ स्तम्भादिभाव त्रिगुणातीत माने गये हैं, भय या रति की अधिकता के कारण निश्चेष्ट होने का नाम स्तम्भ है। श्रम, प्रणय, भय के आधिक्य के कारण अन्तर्मंथन द्वारा शरीर पर आने वाली आर्द्रता को स्वेद कहते हैं। हर्ष, भय आदि के कारण होने वाले शारीरिक उच्छ्वास को पुलक कहते हैं। हर्ष भयादि के कारण होने वाले कण्ठावरोध को स्वरभेद कहते हैं। १६-१९।

'चित्तक्षोभभवस्तम्भो वेपथुः परिकीर्तितः।
वैवर्ण्यं च विषादादिजन्मा कान्तिविपर्ययः ॥२०
दुःखानन्दादिजं नेत्रजलमश्रु च विश्रुतम्।
इन्द्रियाणामस्तमयः प्रलयो लङ्घनादिभिः ॥२१
वैराग्यादेर्मनःखेदो निर्वेद इति कथ्यते।
मनः पीडादिजन्मा च सादो ग्लानिः शरीरगा ॥२२

हृदय के विक्षोभ स्वरूप होने वाले स्तम्भ को वेपथु कहा गया है। विषादि भयादि के कारण होने वाली रूप या कवि की म्लानता को वैवर्ण्य कहते हैं। दुःख, आनन्दादि से नेत्रों में उत्पन्न या दृश्यमान जल को अश्रु कहा जाता है। अशनादि के कारण इन्द्रियों की विकलता प्रलय कहलाती है।

---

१ क. ङ. °भपरिस्तम्भो। ख. ग. °भतरस्तम्भो।

वैराग्य या दुःख के कारण मन में उत्पन्न खेद को निर्वेद कहते हैं। मानसिक पीड़ादि से प्रसूत अवसाद जब अभिव्यक्त होता है तो उसे ग्लानि कहते हैं।२०-२२।

शङ्काऽनिष्टागमोत्प्रेक्षा स्यादसूया च मत्सरः ।
मदिराद्युपयोगोत्थं मनःसंमोहनं मदः ॥२३
क्रियातिशयजन्माऽन्तःशरीरोत्थक्लमः श्रमः ।
शृङ्गारादिक्रियाद्वेषश्चित्तस्याऽऽलस्यमुच्यते ॥२४
दैन्यं सत्त्वादपभ्रंशश्चिन्तार्थपरिभावनम् ।
इतिकर्तव्यतोपायादर्शनं मोह उच्यते ॥२५

अनिष्ट आगमन की कल्पना को आशंका कहते हैं। मात्सर्य को ही असूया कहते हैं। मदिरा आदि के सेवन से जो मानसिक शिथिलता होती है उसे मद कहते हैं। कार्याधिक्य के फलस्वरूप उद्भूत शारीरिक क्लान्ति को श्रम कहते है। शृङ्गारादि क्रियाओं से चित्त की उदासी आलस्य कही जाती है। स्व-अपमान का चिन्तन करते हुये सत्त्व से अपभ्रंश होने का नाम दैन्य है। करणीय उपाय के न सूझने की अवस्था को मोह कहते हैं।२३-२५।

स्मृतिः स्यादनुभूतस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्[1] ।
मतिरर्थपरिच्छेदस्तत्त्वज्ञानोपनायितः ॥२६
व्रीडानुरागादिभवः संकोचः कोऽपि चेतसः ।
भवेच्चपलताऽस्थैर्यं हर्षचि (श्च) त्तप्रसन्नता ॥२७
आवेशश्च प्रतीकाराशया वैधुर्यमात्मनः ।
कर्त्तव्ये प्रतिभाभ्रंशो जडतेत्यभिधीयते ॥२८

किसी पूर्वानुभूत वस्तु के प्रत्यभिज्ञान को स्मृति कहते हैं। तत्त्वज्ञान की सहायता से अर्थ धारण का नाम मति है। अनुरागादि के कारण चित्त में होने वाले संकोच को व्रीड़ा कहते हैं। चित्त की अस्थिरता ही चपलता होती है और चित्त की प्रसन्नता को हर्ष कहते हैं। प्रतीकार की भावना से व्यक्ति में आने वाले उद्वेग को आवेग कहते है। कर्तव्य में प्रतिभा के कुण्ठित होने को 'जड़ता' कहा गया है।२६-२८।

---

१ ख. °तिवेशनन् ।

इष्टप्राप्तेरुपचितः संपदाभ्युदयो धृतिः ।
गर्वः परेष्ववज्ञानमात्मन्युत्कर्षभावना ॥२६
भवेद्विषादो दैवादेर्विघातोऽभीष्टवस्तुनि ।
औत्सुक्यमीप्सिताप्राप्तेर्वाञ्छया तरला स्थितिः ॥३०
चित्तेन्द्रियाणां स्तैमित्यमपस्मारो ऽनवस्थितिः ।
[1]युद्धे व्याधादिभिस्त्रासो वीप्सा चित्रचमत्कृतिः ॥३१

लक्ष्यप्राप्ति से प्राप्त आत्मसंशय की भावना को धृति कहते हैं। आत्मोत्कर्ष की भावना से दूसरों के तिरस्कार करने या अनादर करने को गर्व कहते हैं। किसी दैवी कारण से प्रियवस्तु के विनाश से जो आघात पहुँचता है उसे विषाद कहते हैं। ईप्सित वस्तु की प्राप्त्यर्थ जो मन की चंचल अवस्था होती है उसे औत्सुक्य कहते हैं। चित्त की जड़ता और इन्द्रियों की विक्षुब्धावस्था को अपस्मार कहते हैं। युद्ध में अथवा व्याघ्रादि से होने वाले भय में जो आश्चर्य होता है उसे वीप्सा कहते है ।२६-३१।

क्रोधस्याप्रशमोऽमर्षः प्रबोधश्चेतनोदयः ।
अवहित्थं भवेद्गुप्तिरिङ्गिताकारगोचरा ॥३२
रोषतो गुरुवाग्दण्डपारुष्यं विदुरुग्रताम् ।
ऊहो वितर्कः स्याद्व्याधिर्मनोवपुरवग्रहः ॥३३
अनिबद्धप्रलापादिरुन्मादो मदनादिभिः ।
तत्त्वज्ञानादिना चेतःकषायोपरमः शमः ३४

क्रोध के शान्त न होने को 'अमर्ष' कहते है। चेतना के उदय का नाम 'प्रबोध' है। जब रहस्य इङ्गित और आकार के द्वारा स्पष्ट होता है तो उसे अवहित्था कहते हैं। क्रोध से परुष असंगत शब्दावली के प्रयोग को उग्रता कहते हैं। किसी प्रस्तुत समस्या के आधार पर तर्क-वितर्क की सम्भावना 'ऊहा' है। मन और शरीर की जड़ता को व्याधि कहते हैं। कामादि दशा के कारण जो अन्तर्गत प्रलाप किया जाता है उसे 'उन्माद कहते हैं। तत्त्वज्ञानादि के कारण चित्त की संसार से उदासीनता को शम कहते हैं।३२-३४।

कविभिर्योजनीया वै भावाः काव्यादिके रसाः ।
विभाव्यते हि रत्यादिर्यत्र येन विभाव्यते ॥३५

---

१ क. ङ. °द्वेज्यावादि°।

कवियों को चाहिये कि वे काव्य आदि में भावों को सम्बन्धी रसों के साथ संयोजित करें। रत्यादिभावों (स्थायी) के कारण रस उत्कर्ष को पहुँचकर अनुभूति का विषय बनता है।

विभावो नाम स द्वेधाऽऽलम्बनोद्दीपनात्मकः।
रत्यादिभाववर्गोऽयं यमाजीव्योपजायते ॥३६
आलम्बनविभावोऽसौ 'नायकादिभवस्तथा[2]।
धीरोदात्तो [3]धीरोद्धतः स्याद्धीरललितस्तथा ॥३७
धीरप्रशान्त इत्येवं चतुर्धा नायकः स्मृतः।
अनुकूलो दक्षिणश्च शठो धृष्टः प्रवर्तितः ॥३८

विभाव के आलम्बन और उद्दीपन दो भेद होते हैं। रत्यादि स्थायी भावों का वर्ग इस आलम्बन का ही उपजीवी होता है। यह आलम्बन विभाव नायकादि में ही होता है अथवा नायकादि को आलम्बन विभाव कहते हैं। धीरोदात्त धीरोद्धत, धीरललित, धीरप्रशान्त—ये नायक के चार भेद किये गये हैं। प्रत्येक भेद के अनुकूल, दक्षिण शठ, धृष्ट—ये चार उपभेद होते हैं।३६-३८।

पीठमर्दो विटश्चैव विदूषक इति त्रयः।
शृंगारे नर्मसचिवा नायकस्यानुनायकाः ॥३९

श्रृङ्गार रस में नायक को नायिका से मिलाने में तीन सहायक कहे गये हैं। पीठमर्द, विट और विदूषक।३९।

पीठमर्दस्तु कलशः श्रीमांस्तद्देशजो विटः।
विदूषको वैहसिक अ(स्त्व)ष्ट नायकनायिकाः ॥४०

पीठमर्द नायक का कुशल सहायक होता है, विट उसका तद्देशज (अन्तरंग) मित्र होता है और विदूषक विनोदी सहायक। नायक और नायिका के प्रमुख आठ-आठ भेद हैं। ४०।

स्वकीया परकीया च पुनर्भूरिति कौशिकाः।
सामान्या न पुनर्भूरि[4] इत्याद्या बहुभेदतः ॥४१

---

१ ख. ग. 'काविभ'। २ क. ङ. °दिरसस्त'। ३ क. ङ. धीरवृत्तः। ४ ख. ग. °भूंव इत्या°।

उद्दीपनविभावास्ते संस्कारैर्विविधैः [1]स्थिताः ।
आलम्बनविभावेषु भावानुद्दीपयन्ति ये ॥४२

कौशिक के मत में नायिकायें तीन प्रकार की हैं—स्वकीया, परकीया और पुनर्भू । कई विद्वानों के विचार में सामान्या नायिका होती है, पुनर्भू नहीं होती । इस प्रकार नायिका के अनेक भेद हैं । इन विविध नायिकाओं में उद्दीप्त करने वाले संस्कार रहते हैं । जो आलम्बन विभावों में विविध भावों को उद्दीप्त कर देते हैं । ४१-४२ ।

चतुः षष्टिकला द्वेधा[2] कर्माद्यैर्गीतिकादिभिः ।
कुहकं स्मृतिरप्येषा प्रायो हासोपहारकः ॥४३

चौंसठ कलाओं के दो भाग हैं कर्मादि (अभिनय) और गीतादि । इनकी छलपूर्वक की गई स्मृति भी प्रायः हास्य लाने वाली होती है ।४३।

आलम्बनविभावस्य भावैरुद्बुद्धसंस्कृतैः ।
मनोवाग्बुद्धिवपुषां स्मृतीच्छाद्वेषयत्नतः ॥४४
आरम्भ एव विदुषामनुभाव इति स्मृतः ।
स चानुभूयते चात्र भवत्युत निरुच्यते ॥४५

मन की स्मृति से, वाणी की इच्छा से, बुद्धि की प्रेरणा से, एवं शरीर के यत्न से आलम्बन विभाव के उद्बुद्ध एवं परिष्कृत भावों के आरम्भ को विद्वानों ने अनुभाव कहा है । क्योंकि इसका अनुभव किया जाता है । इसीलिये इसे अनुभाव कहा जाता है । ४४-४५।

मनोव्यापारभूयिष्ठो मनआरम्भ उच्यते ।
द्विविधः पौरुषः स्त्रैण ईदृशोऽपि प्रसिध्यति ॥४६

मानसिक व्यापारों के आधिक्य को ही 'मन आरम्भ' कहा जाता है । वे दो प्रकार के होते हैं पुरुष के और स्त्री के ।४६।

शोभा विलासो माधुर्यं स्थैर्यं गाम्भीर्यमेव च ।
ललितं च तथौदार्यं तेजोऽष्टाविति पौरुषाः ॥४७

---

१ ख. ग. स्मृताः । २ ख. ग. ०धा प्रवाद्यैर्गीतका० ।

पुरुष में रहने वाले भाव आठ प्रकार के होते हैं। शोभा, विलास, माधुर्य, गाम्भीर्य, ललित, औदार्य, तेज।४७।

नीचनिन्दोत्तमस्पर्धा शौर्यं दाक्षा (क्ष्या) दिकारणम्।
मनोधर्मे भवेच्छोभा शोभते भवनं यथा ॥४८
भावो हारश्च हेला च शोभा कान्तिस्तथैव च।
दीप्तिर्माधुर्यशौर्ये च प्रागल्भ्यं स्यादुदारता ॥४९
स्थैर्यं गम्भीरता स्त्रीणां विभावा द्वादशेरिताः।

शूरता और दक्षता (चतुरता) आदि के कारण नीचों की निन्दा, उत्तम जनों के प्रति स्पर्धा की शोभा (मनो व्यापार) कहते हैं। इससे व्यक्ति की शोभा इस प्रकार होती है जैसे प्रसाधनों से भवन की। भाव, हेला, हार, शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, शौर्य, प्रागल्भ्य या प्रगल्भता, उदारता, स्थिरता, गम्भीरता—ये बारह प्रकार के विभाव स्त्रियों के माने गये हैं। ४८-४९½।

भावो विलासो हावः स्याद्भावः किंचिच्च हर्षजः ॥५०
वाचो युक्तिर्भवेद्वागारम्भो द्वादश एव सः।

भाव के विलास को ही हाव कहते हैं। इसमें हर्ष रहता है। वचनवक्रता को ही वागारम्भ कहते हैं और वह बारह प्रकार का होता है।५०½।

तत्र भाषणमालापः प्रलापो वचनं वहु ॥५१
विलापो दुःखवचनमनुलापोऽसकृद्वचः।
संलाप उक्तप्रत्युक्तमपलापोऽन्यथा वचः ५२

पारस्परिक भाषण को आलाप कहा गया है। वचनाधिकता या अधिक बोलने को प्रलाप कहते हैं। दुख में कथित वचन विलाप होते हैं। अनुलाप किसी बात को बार-बार कहने को कहते हैं। संलाप आपस में उक्तिप्रत्युक्ति पूर्वक कथित वचनों को कहते हैं जबकि अपलाप में रहस्य को छिपाकर इधर-उधर या व्यर्थ की बातें की जायें। ५१-५२।

वार्ता प्रमाणं संदेशो निर्देशः प्रतिपादनम्।
[1]तत्त्वदेशोऽतिदेशोऽयमपदेशोऽन्यवर्णनम् ॥५३

---

१ क. ङ. °त्त्वदोषोऽतिदोषोऽयम°।

परस्पर ज्ञात किसी बात को दूसरों तक पहुँचाने का नाम सन्देश है, जब कि किसी एक को क्रियात्मक रूप देने का नाम निर्देश है। अन्य वस्तु के वर्णन को तत्त्वदेश, अतिदेश और अपदेश कहते हैं।५३।

उपदेशश्च शिक्षावाग्व्याजोक्तिर्व्यपदेशकः[1]।
बोधाय एष व्यापारः सुबुद्ध्यारम्भ इष्यते।
तस्य भेदास्त्रयस्ते च रीतिवृत्तिप्रवृत्तयः ॥५४

किसी बात का वाणी द्वारा कथन उपदेश कहलाता है जबकि व्याजोक्ति को व्यपदेश कहते हैं। इस वाग्विद्या के सम्यग्ज्ञान के लिए विद्वान् इसके, रीति, वृत्ति, प्रवृत्ति ये तीन भेद करते हैं।५४।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शृङ्गारादिरसनिरूपणं नामैकोन-चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३३९

अथ चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

रीतिनिरूपणम्

अग्निरुवाच—

वाग्विद्यासंप्रतिज्ञाने रीतिः साऽपि चतुर्विधा।
पाञ्चाली गौडदेशीया वैदर्भी लाटजा तथा ॥१

अग्निदेव बोले—वाग्विद्या का पूर्ण ज्ञान कराने में रीति का स्थान निर्विवाद है। इसके पाञ्चाली, गौड़ी, वैदर्भी और लाटी (लाटजा) चार भेद हैं।१

उपचारयुता मृद्वी पाञ्चाली ह्रस्वविग्रहा।
अनवस्थितसंदर्भा [2]गौडीया दीर्घविग्रहा ॥२

पाञ्चाल रीति में छोटे-छोटे विग्रह (समास) होने चाहिए और वह

१ क. ग. °कः। वाचोऽपदेशोव्या°। २ ख. ग. °डीस्थाद्दीर्घ°।

कोमल तथा अलंकृत भाषा से संयुक्त हो। गौड़ी रीति में लम्बे-लम्बे समास हों और सन्दर्भ अनवस्थित (क्षीण सम्बन्ध) हों।२।

उपचारैर्न [1]बहुभिरुपचारैर्विवर्जिता।
नातिकोमलसंदर्भा वैदर्भी मुक्तविग्रहा ॥३

वैदर्भी रीति में न तो अधिक अलंकृत भाषा का प्रयोग हो और न अलंकृत प्रयोग से वह सर्वथा हीन ही हो। इसमें अति कोमल शब्दावली का प्रयोग न न हो और यह समास से भी रहित होनी चाहिए।३।

लाटीया स्फुटसंदर्भा [2]नातिविस्फुरविग्रहा।
परित्यक्ताऽभिभूयोऽपि रुपचारैरुदाहृता (?) ॥४

लाटी रीति में वाक्य सीधे और सरल होने चाहिए जबकि समास अत्यन्त स्फुट न हो। भाषा का अनावश्यक अलंकरण इसमें नहीं होना चाहिए। यह अधिक लाक्षणिक तत्त्वों से रहित हो।४।

[3]क्रियास्वविषमा वृत्तिभारत्यारभटी तथा।
[4](कौशिकी सात्त्वती चेति सा चतुर्धा प्रतिष्ठिता ॥५

क्रियाओं (नायकादि के कार्यों) में नियमपूर्वक व्यवहार को वृत्ति कहते हैं। इसके भारती, आरभटी, कौशिकी (केशिकी) सात्त्वती ये चार भेद हैं।५।

वाक्प्रधाना नरप्राया स्त्रीयुक्ता प्राकृतोक्तिता।
भरतेन प्रणीतत्वाद्भारती रीतिरुच्यते ॥६
[5](चत्वार्यङ्गानि भारत्या वीथी प्रहसनं तथा।
प्रस्तावना नाटकादेर्वीथ्यङ्गाश्च त्रयोदश ॥७
उद्घातकं तथैव [6]स्याल्लपितं स्याद्द्वितीयकम्।)
असत्प्रलापो वाक्श्रेणी नालिका विपणं तथा ॥८
व्याहारस्त्रिमतं चैव [7]च्छलावस्कन्दिते तथा।)
गण्डोऽथ मृदवश्चैव त्रयोदशमथोचितम् ॥९

---

१ क. ङ. च °चारविव°। २ च. °स्फुटवि°। ३ क. ङ. °यासु नियमो वृ०। ४ 'कौशिकी····स्याद्वितीयकम्' च. पुस्तके नास्ति। ५ 'चत्वार्यङ्गानि···तथा' क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ६ ख. ग. °ल्लगितं। ७ ख. ग. च. °वश्यंदिते।

भारती वृत्ति में शब्दों के महत्त्व पर अधिक ध्यान दिया जाता है। और स्त्री पात्रों द्वारा प्राकृत का प्रयोग कराया जाता है। भरतमुनि द्वारा प्रवर्तित या प्रणीत होने के कारण ही इसका नाम भारती वृत्ति है। भारती वृत्ति के चार अंग हैं—वीथी, प्रहसन, नाटक की प्रस्तावना। वीथी के निम्नलिखित तेरह अंग हैं—उद्घातक, लपित, असत्प्रलाप, वाक्श्रेणी, नाटिका, विपण, व्यवहार, त्रिमत, छल, अवस्कन्दित, गंड, मृदु, अथोचित।८-९।

तापसादेः प्रहसनं परिहासपरं वचः।
मायेन्द्रजालयुद्धादिबहुलाऽऽरभटी स्मृता ॥१०
संक्षिप्तकारपातौ च वस्तूत्थापनमेव च ॥११

प्रहसन नामक एकांकी में तपस्वी आदि के लिये हास्य परक वचन प्रयुक्त किये जाते हैं। आरभटी वृत्ति में मायावी और अद्भुत दृश्य रहते हैं और युद्ध आदि की बहुलता रहती है। सक्षिप्तक, अवपात और वस्तूत्थापन ये इसके तीन भेद माने गये हैं।१०-११।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रीतिनिरूपणं नाम चत्वारिंशदधिक-त्रिशततमोऽध्यायः।३४०

——

अथैकचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नृत्यादावङ्गकर्म निरूपणम्

अग्निरुवाच—

चेष्टाविशेषमप्यङ्गप्रत्यङ्गे कर्म चानयोः।
शरीरारम्भमिच्छन्ति प्रायः पूर्वोऽबलाश्रयः ॥१

अग्निदेव बोले—नाटक में नायक-नायिका की विशेष चेष्टायें और अङ्ग-प्रत्यङ्ग का कर्म ही शरीराम्भ (आङ्गिक अभिनय) कहाता है। इनमें चेष्टायें प्रायः नारी पात्रों में ही होती हैं।१।

लीला विलासो विच्छित्तिविभ्रमं किलकिंचितम् ।
('मोट्टायतं कुट्टमितं विव्वोको ललितं तथा ॥२
विकृतं क्रीडितं केलिरिति द्वादशधैव सः ।

ये चेष्टायें बारह प्रकार की हैं, लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, विव्वोक, ललित, विकृत, क्रीडित और केलि ।२-२½।

लीलेष्टजनचेष्टानुकरणं संवृतक्षये ॥३
[2]विशेषान्दर्शयन्किञ्चिद्विलासः सद्भिरिष्यते ।
हसितक्रन्दितादीनां संकरः किलकिञ्चितम् ॥४
विकारः कोऽपि विव्वोको ललित सौकुमार्यतः ।
शिरः पाणिरुरः पार्श्वं कटिरङ्घ्रिरिति क्रमात् ॥५
अङ्गानि भ्रूलतादीनि प्रत्यङ्गान्यभिजायते ।
अङ्गप्रत्यङ्गयोः कर्म प्रयत्नजनितं विना ॥६
न प्रयोगः क्वचिन्मुख्यं तिरश्चीनं च तत्क्वचित् ।

(वियोगावस्था) क्षीणस्मृति में प्रिय जन की चेष्टाओं के अनुकरण को लीला कहते हैं । भावों के विशेष प्रदर्शन को विद्वान् विलास कहते हैं । हास्य और क्रन्दन आदि का मिश्रित रूप किलकिञ्चित कहाता है । किसी के प्रिय का विकृत रूप प्रस्तुत करने को विव्वोक और (गत्यादि की) सुकुमारता को ललित कहते हैं । शिर, हाथ, वक्ष, पार्श्व, कटि, पाद, इन्हें अंग कहते हैं । भ्रू आदि को प्रत्यङ्ग कहते हैं । अंग और प्रत्यङ्ग के ये अप्रयत्नज अर्थात् स्वाभाविक रूप में ही होने चाहिए । नृत्य में कोई विशिष्ट नियम मुख्य नहीं होता । कहीं-कही पर नृत्य का तिरश्चीन प्रयोग भी किया जाता है ।३-६½।

आकम्पितं कम्पितं च धुतं विधुतमेव च ॥७
परिवाहितमाधूतमवधूतमथाऽऽचितम् ।
निकुञ्चितं परावृत्तमुत्क्षिप्तं चाप्यधोगतम् ॥८
ललितं चेति विज्ञेयं त्रयोदशविधं शिरः ।

---

१ "मोट्टायितं···चाष्टधा" च पुस्तके नास्ति । २ क. ङ °षानुशनं किंचि° । ख. ग. °षाद्व्यसनं किंचि° ।

नृत्य में सिर से सम्बन्धित अभिनय तेरह प्रकार का माना गया है। आकम्पित, कम्पित, धुत, विधुत, परिवाहित, आधूत, अवधूत, अंचित, निकुंचित, परावृत्त, उक्षिप्त, अधोगत तथा ललित।७-८३।

भ्रूकर्म सप्तधा ज्ञेयं पातनं भृकुटीमुखम्॥९
दृष्टिस्त्रिधा रसस्थायिसंचारिप्रतिवन्धना[1]।
[2]षट्त्रिंशद्भेदविधुरा रसजा तत्र चाष्टधा॥)१०
नवधा तारकाकर्म भ्रमणं चलनादिकम्।
षोढा च नासिका ज्ञेया निःश्वासो नवधा मतः॥११

भ्रूकर्म–भृकुटिपात सात प्रकार का होता है। रस, स्थायीभाव तथा संचारीभावों से सम्बद्ध दृष्टि तीन प्रकार की हैं। रस, स्थायी और संचारी के भेद से इस दृष्टि के छत्तीस भेद हैं। इसमें रसजा दृष्टि के भेद आठ हैं। तारिका का कार्य (आँख चलाना) नौ प्रकार का है। नासिका की गति सोलह प्रकार की मानी गयी है और निःश्वास की गति नौ प्रकार की। ९-११।

षोढौष्ठकर्मकं पाद्यं सप्तधा चिवुकक्रिया।
[3]कलुषादिमुखं षोढा ग्रीवा नवविधा स्मृता॥१२

नृत्य में ओष्ठ के कर्म सोलह प्रकार के कहे गये हैं, और चिवुक की क्रियायें सात प्रकार की मानी गई हैं। मुख का प्रदर्शन कलुष आदि के भेद से सोलह प्रकार का है और ग्रीवा की नौ गतियाँ मानी गई हैं।१२

असंयुतः संयुक्तश्च भूम्ना हस्तः प्रयुज्यते।
पताकस्त्रिपताकश्च तथा वै कर्तरीमुखः॥१३
अर्धचन्द्रोत्करालश्च शुकतुण्डस्तथैव च।
मुष्टिश्च शिखरश्चैव कपित्थः [4]कटकामुखः॥१४
सूच्यास्यः पद्मकोषोहि शिराः[5] समृगशीर्षकः।[6]
कामूलकालपद्मौ च चतुरभ्रमरौ तथा॥१५
हंसास्यहंसपक्षौ च संदंशमुकुलौ तथा।
ऊर्णनाभस्ताम्रचूडश्चतुर्विंशतिरित्यमी॥१६

---

१ क. ङ. °सस्तासां चरित्रप्र° २ क. ङ. षड्विंशद्भेदभिदुरा वसुधा तं। ३. क. ङ. °लुखादि°। ४ क. ङ. कटुका°। ५ ख. ग. शिवाः। ६ क. ङ. च. °कः। काङ्गुल°। ७ क. ङ. संदर्शमु°।

असंयुतकराः प्रोक्ताः संयुतास्तु त्रयोदश ।
अञ्जलिश्चकपोतश्च कर्कटः स्वस्तिकस्तथा ॥१७
कटको वर्धमानश्चाप्यसङ्गो निषधस्तथा ।
[1]दोलः पुष्पपुटश्चैव तथा [2]मकर एव च ॥१८
गजदन्तो बहिःस्तम्भो[3] वर्धमानोऽपरे कराः ।

नृत्य में भूमि पर हाथों का प्रयोग दो प्रकार का है—संयुत और असंयुत । पताका, त्रिपताका, कर्तरीमुख, अर्धचन्द्र, उत्कराल, शुकतुण्ड, मुष्टि, शिखर, कपित्थ, कटकामुख, सूच्यास्य, पद्मकोष, अहिशिर, मृगशीर्षक, कामूल कालपद्म, चतुर, भ्रमर, हंसास्य, हंसपक्ष, संदर्श, मुकुल, ऊर्णनाभ, ताम्रचूड—ये चौबीस असंयुत कर कहे गये हैं । अर्थात् नृत्य में इन चौबीस प्रकारों से असंयुतकरों का प्रयोग किया जाता है । संयुक्त करों का प्रयोग तेरह प्रकार से किया जाता है । अंजलि, कपोत, कर्कट, स्वस्तिक, कटक, वर्धमान, अप्यसंग, निषध, दोल, कमठ, बहिःस्तम्भ इत्यादि इत्यादि ।१३-१८३

उरः पञ्चविधं स्यात्तु आभुग्ननर्तकादिकम्[4] ॥१९
उदरं त्वनतिक्षामं खण्डं[5] पूर्णमिति त्रिधा ।
पार्श्वयोः पञ्चकर्माणि जङ्घाकर्म च पञ्चधा ॥२०
अनेकधा पादकर्म नृत्यादौ नाटके स्मृतम् ॥२१

नृत्य आदि में वक्ष संचालन पाँच प्रकार से किया जाता है । जैसे आभुग्न नर्तकादि । उदर प्रदर्शन तीन प्रकार मे किया जाता है—अनतिक्षाम, खण्ड और पूर्ण । पार्श्व भाग के पाँच कर्म हैं । जंघाओं के कर्म भी पाँचप्रकार के होते हैं । नाटक में नृत्यादि में पादकर्म भी अनेक प्रकार का कहा गया है । १९-२१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नृत्यादावङ्गकर्मनिरूपणंनामैक-चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।३४१

———

१. क. ङ. दोलं पुष्पपट° । २ क. ङ. कमठ । ३ क. ख. बहिस्थश्च व° । ४ क. ङ. मुग्न।निर्गुणादि° । ५ क. ङ, खलं ।

अथ द्वाचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

अभिनयादिनिरूपणम्।

अग्निरुवाच--

[1]आभिमुख्यं नयन्नर्थान्विज्ञेयोऽभिनयो बुधैः।
चतुर्धा संभवः [2]सत्त्ववागङ्गाहरणाश्रयः ॥१
स्तम्भादिः[3] सात्त्विको वागारम्भो वाचिक आङ्गिकः।
शरीरारम्भ आहार्यो बुद्ध्यारम्भप्रवृत्तयः ॥२

अग्निदेव बोले—नाटक की वर्ण्य वस्तु को दर्शकों के समक्ष लाने वाला अभिनय ही होता है। वह अभिनय चार प्रकार का होता है। सत्त्वाश्रय, वागाश्रम, अंगाश्रय, आहरणाश्रय। स्तम्भादि सात्त्विक भावों का प्रदर्शन सात्त्विक अभिनय कहलाता है। शरीर से सम्बद्ध आंगिक अभिनय तथा बुद्धि से सम्बद्ध आहार्य अभिनय। १-२।

रसादिविनियोगोऽथ कथ्यते [4]ह्यतिमानतः।
तमन्तरेण सर्वेषामपार्थैव स्वतन्त्रता ॥३
सम्भोगो विप्रलम्भश्च शृङ्गारो द्विविधः स्मृतः।
प्रच्छन्नश्च प्रकाशश्च तावपि द्विविधौ पुनः ॥४
विप्रलम्भाभिधानो यः शृङ्गारः स चतुर्विधः।
पूर्वानुरागमानाख्यः [5]प्रवासकरुणात्मकः ॥५
एतेभ्योऽन्यतरं जायमानं संभोगलक्षणम्।
विवर्तते चतुर्धैव न च प्रागतिवर्तते ॥६
[6]स्त्रीपुंसयोस्तद्वदयं तस्य निर्वर्तिका रतिः।
निखिलाः सात्त्विकास्तत्र [7]वैवर्ण्यप्रलयौ विना ॥७
धर्मार्थकाममोक्षैश्च शृङ्गार उपचीयते।
आलम्बनविशेषैश्च तद्विशेषैर्निरन्तरः ॥८
शृङ्गारं द्विविधं विद्याद्वाङ्नेपथ्यक्रियात्मकम्।

---

१ ख. ग. °ख्यं त्वयत्नाथान्वि°। २ क. ख. ङ. सत्त्वो वा°। ३ ख. ग. °को रागारम्भो वाऽधिक। ४ छ. ह्यभिमा°। ५ क. ङ. प्रस्तारकरुणामयः। ए°। ६ छ. °स्तदुहयस्तस्य। ७ क. ङ. °वर्त्यप्रलयोऽपि वा। घ°।

अब विस्तारपूर्वक रस आदि का प्रकरण निर्दिष्ट किया जाता है। इसके बिना सब (कवियों एवं सहृदयों) की सार्थकता ही व्यर्थ है। संभोग और विप्रलम्भ ये शृंगार के दो भेद हैं। पुनः इसके दो भेद होते हैं—प्रच्छन्न और प्रकाश। विप्रलम्भ शृंगार के चार भेद हैं—पूर्व राग, मान, प्रवास और करुण। इन चारों से भिन्न रूप से उत्पन्न होने वाला संभोग शृंगार है। यह इन चारों में विद्यमान रहता है परन्तु इनका अतिक्रमण नहीं करता। इसका सम्बन्ध स्त्री पुरुष से है। इसका निर्वाह रति स्थायी भाव के द्वारा होता है। इस रस में समस्त सात्त्विकों का समावेश रहता है और वैवर्ण्य तथा प्रलय का अभाव रहता है। धर्मार्थ, काम, मोक्ष तथा आलम्बनादि के द्वारा शृंगार निरन्तर बढ़ता रहता है। शृंगार के मुख्य रूप से दो भेद होते हैं—साहित्यिक रूप (काव्यादि में,), अभिनेय रूप (नाटकादि में)।३-८½।

हासश्चतुर्विधोऽलक्ष्यदन्तः स्मित इतीरितः ॥९
किंचिल्लक्षितदन्ताग्रं हसितं फुल्ललोचनम्[1]।
विहसितं सस्वनं स्याज्जिह्मोपहसितं तु तत् ॥१०
सशब्दं पापहसितमशब्दमतिहासितम्।

हास चार प्रकार का होता है। अलक्ष्यदन्त अर्थात् जिसमें दाँत दिखाई न दें, ऐसा हास्य 'स्मित' कहाता है। जिस हास्य में दाँतों का अग्रभाग थोड़ा-थोड़ा दिखाई दे और नेत्रों में भी उल्लास हो उसे 'हसित' कहते हैं। जिस हास्य में मधुर-मधुर शब्द भी हो उसे विहसित और जहाँ मुख भी खुल जाय और शब्द भी हो उसे अपहसित कहते हैं। इस अपहसित हास्य में पाप हँसी रहती है अर्थात् इसमें हास्य का विकृत रूप रहता है। ९-१०½।

यश्चासौ करुणो नाम स रसस्त्रिविधो भवेत् ॥११
धर्मोपघातजश्चित्तविलासजनितस्तथा।
शोकः शोकाद्भवेत्स्थायी[2] कः स्थायी पूर्वजो मतः ॥१२

करुण रस के तीन भेद है—धर्महानिद्वारा उद्भूत शोक, चित्तग्लानिजन्य शोक तथा वियोग से उत्पन्न शोक। इनका स्थायी भाव पूर्वज अर्थात् प्रथम का धर्म, द्वितीय का विलास तथा तृतीय का शोक है। ११-१२।

---

१ क. ङ. °म्। बिन्दु° सि°। २ क. ङ. °यी कुत्सापूर्वः पुनः पुनः। अ°।

अङ्गनेपथ्यवाक्यैश्च रौद्रोऽपि त्रिविधो रसः ।
तस्य निर्वर्तकः क्रोधः स्वेदो रोमाञ्चवेपथुः ॥१३
दानवीरो धर्मवीरो युद्धवीर इति त्रयम् ।
वीरस्तस्य च निष्पत्तिर्हेतुरुत्साह इष्यते ॥१४
आरम्भेषु भवेद्यत्र वीरमेवानुवर्तते ।
भयानको नाम रसस्तस्य निर्वर्तकं भयम् ॥१५

रौद्र रस के तीन भेद हैं—अङ्ग रौद्र, नेपथ्य रौद्र तथा वाक्य रौद्र। इसका निर्वर्तक स्थायी भाव क्रोध है तथा स्वेद, रोमांच, कम्प इसके संचारी भाव हैं। वीर रस के तीन भेद हैं—दानवीर, धर्मवीर तथा युद्धवीर। इस रस की अभिव्यक्ति उत्साह द्वारा होती है। भयानक रस का स्थायीभाव भय है, यह रस वीररस की पूर्वावस्था है। अर्थात् भय के उपरान्त ही वीर रस की स्थिति सम्भव होती है। १३-१५।

उद्वेजनः क्षोभन (ण)श्च वीभत्सो द्विविधः स्मृतः ।
उद्वेजनः स्यात्प्लुत्याद्यैः क्षोभनो (णो) रुधिरादिभिः ॥१६
[1]जुगुप्साऽऽरम्भिका तस्य सात्त्विकांशो निवर्तते ।

वीभत्स रस के दो भेद है—उद्वेजन और क्षोभन। उद्वेजन का प्रदर्शन उछल-कूद द्वारा तथा क्षोभन का प्रदर्शन रुधिरपातादि के द्वारा किया जाता है। इसका स्थायी भाव जुगुप्सा है तथा इसमें सात्त्विक अंश नहीं रहने पाता। १६-१६½।

काव्यशोभाकरान्धर्मानलंकारान्प्रचक्षते ॥१७
अलंका (क) रिष्णवस्ते च शब्दमर्थमुभौ त्रिधा ।
ये व्युत्पत्त्यादिना शब्दमलंकर्तुमिह क्षमाः ॥१८
[2]शब्दालङ्कारमाहुस्तान्काव्यमीमांसका [3]विदः ।
छाया मुद्रा तथोक्तिश्च मुक्तिगुम्फनया सह ।१९
वाको वाक्यमनुप्रासश्चित्रं दुष्करमेव च ।
ज्ञेया नवाल्ंकृतयः शब्दानामित्यसंकरात् ॥२०

काव्य की शोभा वढाने वाले धर्मों को अलंकार कहा जाता है। ये अलंकार तीन प्रकार के होते हैं—शब्दालंकार, अर्थालंकार, शब्दार्थालंकार। जो अलं-

१. ख. ग. °गुप्सर°। २ क. च. °रनाम्नस्तान्का°। ३ क. च. विदुः।

कार व्युत्पत्ति अर्थात् शब्दों की विशिष्ट संयोजन-शैली द्वारा शब्द अलङ्कृत करते हैं उन्हें काव्यशास्त्र के ज्ञाता शब्दालंकार कहते है। ये अलंकार संख्या में नौ हैं—छाया, मुद्रा, उक्ति युक्ति, गुम्फन, वाकोवाक्य, अनुप्रास, चित्र, दुष्कर।१८-२०।

तन्त्रान्योक्तेरनुकृतिश्छाया साऽपि चतुर्विधा।
लोकच्छेकार्भकोक्तीनामत्तोक्तेरनुकारतः॥२१
आभाणको हि लोकोक्तिः सर्वसामान्य एव ताः।
याऽनुधावति लोकोक्तिश्छायामिच्छन्ति तां बुधाः।२२

अन्य के कथन की अनुकृति (तद्वत् अनुकरण) छाया कहाती है। इसके चार भेद हैं—लोकोक्ति, छेकोक्ति, अर्भकोक्ति तथा मत्तोक्ति। लोक प्रसिद्ध कथन को लोकोक्ति कहते हैं। यह सर्वमान्य होती है। जब यह लोकोक्ति प्रचलित होती है तो इसे विद्वान् छाया नाम देते हैं।२१-२२।

छेका विदग्धा वैदग्ध्यं कलासु कुशला मतिः।
तामुल्लिखन्ती छेकोक्तिश्छाया कविभिरिष्यते॥२३
अव्युत्पन्नोक्तिरखिलैरर्भकोक्त्योपलक्ष्यते।
तेनार्भकोक्तिश्छाया तन्मात्रोक्तिमनुकुर्वती॥२४

छेक विदग्ध को कहते हैं। कलाओं में प्रदर्शित बुद्धि कौशल वैदग्ध्य कहलाता है। इस विदग्धता का उल्लेख करने वाली उक्ति को कवियों ने छेकोक्ति छाया कहा है। अव्युत्पन्न अर्थात् अपरिपक्व मष्तिष्क व्यक्ति की उक्ति अर्भकोक्ति कहाती है, इस अर्भकोक्ति मात्र की अनुकर्त्री उक्ति को अर्भकोक्ति छाया कहा जाता है। २३-२४।

विप्लुताक्षरमश्लीलवचो मत्तस्य तादृशी।
या सा [1]भवति मत्तोक्तिश्छायोक्ताऽप्यतिशोभते॥२५
अभिप्रायविशेषेण कविशक्तिं विवृण्वती[2]।
मुत्प्रदायिनीति सा मुद्रा सैव[3] शय्याऽपि नो मते॥२६

१ क. ङ. °ति मन्त्रोक्ति°। २ क. ङ. °ती। उद्धरोतीति। ख. °ती।उदरोभीति।
३ क. ङ. °वसिज्यासिनो।

शब्दाडम्बर तथा अश्लील वचनों से संवलित तथा प्रमत्त व्यक्ति के समान कही गई उक्ति मत्तोक्ति छाया कहाती है, कही जाने पर यह उक्ति अति सुन्दर लगती है। किसी विशेष अभिप्राय से कवि के बुद्धि-वैभव को प्रदर्शित करने वाली उक्ति, जो कि पाठकों का मनोरंजन करती है, मुद्रा कहलाती है। हमारे मत से उसे शय्या भी कहना चाहिए।२५-२६।

उक्तिः सा[1] कथ्यते यस्यामर्थः कोऽप्युपपत्तिमान्।
लोकायात्रार्थविधिना धिनोति हृदयं सताम् ॥२७
उभौ विधिनिषेधौ च नियमानियमावपि।
विकल्पपरिसंख्ये च [2]तदीयाः षडथोक्तयः २८

जहाँ पर किसी विशिष्ट बात को लोकव्यवहारानुकूल बना कर कहा जाता है जिससे वह सहृदयों के हृदय को स्पर्श कर सकती है ऐसे कथन को 'उक्ति' कहा गया है। इसके छः भेद होते है—विधि, निषेध, नियम, अनियम, विकल्प तथा परिसंख्या। २७-२८।

अयुक्तयोरिव मिथो वाच्यवाचकयोर्द्वयोः।
योजनार्यै कल्पमाना युक्तिरुक्ता मनीषिभिः ॥२९
पदं चैव पदार्थश्च वाक्यं वाक्यार्थमेव च।
विषयोऽस्याः प्रकरणं प्रपञ्चश्चेति षड्विधः ॥३०

किन्हीं दो अयुक्त, वाच्य और वाचक के परस्पर मिलाने वाली कल्पना को मनीषियों ने युक्ति कहा है। पद, पदार्थ, वाक्य, वाक्यार्थ, विषय प्रपञ्च, इसके प्रकरणानुसार ये छः भेद होते है।२९-३०।

गुम्फना रचना [3]चार्था (?) शब्दार्थक्रमगोचरा।
शब्दानुकारादर्थानुपूर्वार्थ्येयं [4]क्रमात्त्रिधा ॥३१

शब्दार्थ क्रम को दृष्टि में रखकर जो संयोजन किया जाता है उसे 'गुम्फना' कहते हैं। इस गुम्फना के तीन भेद हैं—शब्दसाम्य को लेकर, अर्थसाम्य को लेकर तथा शब्दों के स्वाभाविक क्रम को समक्ष रखकर।३१

---

१ क. ङ. °ते कस्मात्सर्वार्थाभ्युप°। २ क. ङ. °याः स तथो°। ख. ग. °याः षोडशोक्त°। ३ छ. चर्या। ४ ख. °र्थयस्तु क्र°।

उक्तिप्रत्युक्तिमद्वाक्यं वाको वाक्यं[1] द्विधैव तत् ।
ऋजुवक्रोक्तिभेदेन तत्राऽऽद्यं सहजं वचः ॥३२
साऽपूर्वप्रश्निका प्रश्नपूर्विकेति द्विधा भवेत् ।
वक्रोक्तिस्तु भवेद्भङ्ग्या काकुस्तेन कृता द्विधा ॥३३

उक्ति-प्रत्युक्ति वाला वाक्य ही वाकोवाक्य कहाता है । उसके दो भेद होते हैं—ऋजु और वक्रोक्ति । स्वाभाविक वचन को ऋजु वाकोवाक्य कहते हैं । इसके भी दो प्रकार हैं—अप्रश्न ऋजु और प्रश्नपूर्वक ऋजु । वक्रोक्ति के भी दो भेद होते हैं—प्रथम भङ्गिमा के द्वारा तथा द्वितीय काकु के द्वारा । ३२-३३ ।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽभिनयादिनिरूपणं नाम द्वाचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।३४२

अथ त्रिचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

शब्दालंकाराः

अग्निरुवाच—
स्यादावृत्तिरनुप्रासो वर्णानां पदवाक्ययोः ।
एकवर्णोऽनेकवर्णो वृत्तेर्वर्णगणो द्विधा ॥१
एकवर्णगता वृत्तेर्जायन्ते पञ्च वृत्तयः ।
मधुरा ललिता प्रौढा भद्रा परुषया सह ॥२

अग्निदेव बोले—कि पद और वाक्य में वर्णो की आवृत्ति का नाम अनुप्रास है । इसके दो भेद हैं—एकवर्णगतावृत्ति तथा अनेकवर्णगतावृत्ति । एकवर्णगतावृत्ति की पाँच वृत्तियाँ हैं—मधुरा, ललिता, प्रौढ़ा, भद्रा और परुषा ।१-२।

मधुरायाश्च वर्गान्तादधो[2] वर्ग्याऽरणौ स्वनौ[3] ।
ह्रस्वस्वरेणान्तरितौ संयुक्तत्वं नकारयोः ॥३

---

१ क. ख. वाक्यविधैव । २ क. ङ. °धोवक्षावशौधनौ । ३ ख. घनौ ।

न कार्या[1] वर्ग्यवर्णानामावृत्तिः [2]पञ्चमाधिका ।
महाप्राणोष्मसंयोगप्रविमुक्तलघूत्तरौ ॥४

मधुरावृत्ति में वर्गों के अन्तिम वर्णों से पूर्ववर्त्ती दो कोमल स्वरों (वर्णों) अर्थात् वर्गों के तीसरे और चौथे वर्णों की आवृत्ति होती है। ये वर्ण ह्रस्व 'अ' से पृथग्भूत हों अर्थात् असंयुक्त होने चाहिए, और यदि संयुक्त भी हों तो केवल नकार के ही साथ हों। यहाँ वर्ग्य वर्णों की आवृत्ति पाँच बार से अधिक नहीं होना चाहिए। इसमें महाप्राण ऊष्मवर्णों का संयोग न हो और लघु अक्षर उत्तर में हो।३-४।

ललिता बलभूयिष्ठा प्रौढा या पणवर्गजा।
ऊर्ध्वं रेफेण युज्यन्ते नटवर्गो न पञ्चमाः ॥५

ललिता वृत्ति में अधिक बल वाले कठोर शब्दों का प्रयोग होता है। प्रौढ़ा में 'प' तथा 'ण' वर्ग के शब्दों का प्रयोग होता है। यहाँ 'ट' वर्ग और वर्गों के पंचमाक्षर उर्ध्व रेफ से संयुक्त नही होते।५

भद्रायां परिशिष्टाः स्युः परुषा साऽभिधीयते।
भवति यस्यामूष्माणः संयुक्तास्तत्तदक्षरैः ॥६
अकारवर्जमावृत्तिः स्वराणामतिभूयसी।
अनुस्वारविसर्गौ च पारुष्याय निरन्तरौ ॥७
शषसा रेफसंयुक्ताश्चाकारश्चापि भूयसा।
अन्तस्था भिन्नमाभ्यां च हः पारुष्याय संयुतः ॥८
अन्यथाऽपि गुरुर्वर्णः संयुक्ते परिपन्थिनि।
पारुष्यायाऽऽदिमांस्तत्र पूजिता न तु पञ्चमी ॥९
[3]क्षेपे शब्दानुकारे च परुषाऽपि प्रयुज्यते[4]।
कर्णाटी कौन्तली कौन्ती कौङ्कणी वामनासिका ॥१०
द्रावणी माधवी पञ्चवर्णान्तस्थोष्मभिः क्रमात्।

परुषा वृत्ति उसे कहते हैं जिसमें स्वरसम्बन्धी अक्षरों के साथ ऊष्म वर्णों का संयोग रहता है। इसमें अकार को छोड़कर शेष स्वरों की आवृत्ति प्रचुर मात्रा

---

१ क. ङ. °र्यावृक्षत्र°। २ क. ङ. °ञ्चधा स्मृताः। म°। ३ क. ङ. क्षेपशब्दानुकारेण प°। ४ क. ङ. प्रपूज्यते।

में होती है, अनुस्वार तथा विसर्ग के द्वारा निरन्तर पारुष्य लाया जाता है। इसमें रेफ तथा अकार से संयुक्त श, ष, स, का प्रयोग होता है। अन्तस्थवर्णों से संयुक्त रकार और हकार परुषता लाने में समर्थ होता है। इनके अतिरिक्त गुरुवर्ण तथा संयुक्त अक्षर परिपन्थि अर्थात् परुषता के उपयुक्त हैं। वर्गों के आदिम वर्ण तो परुषता लाने में समर्थ हैं पर पंचम वर्ण नहीं। निन्दा में तथा शब्दानुवृत्ति में परुषा वृत्ति का प्रयोग होता है। कर्णाटी, कौन्तली, कौन्ती, कौङ्कणी, वामनासिका, द्रावणी और माधवी नामक (परुषा) वृत्तियों में क्रमशः कवर्ग आदि पंच वर्गो, अन्तस्थवर्णो तथा ऊष्मवर्णों की आवृत्ति (अधिकतया) होती है। ६-१०।१/२

अनेकवर्णा वृत्तिर्या भिन्नार्थप्रतिपादिका ॥११
यमकं साऽव्यपेतं च व्यपेतं चेति तद्द्विधा।
आनन्तर्यादव्यपेतं व्यपेतं व्यवधानतः ॥१२
द्वैविध्येनानयोः स्थानपादभेदाच्चतुर्विधम्।
आदिपादादिमध्यान्तेष्वेकद्वित्रिनियोगतः ॥१३
सप्तधा[1] सप्तपूर्वेण चेत्पादेनोत्तरोत्तरः।
एकद्वित्रिपदारम्भस्तुल्यः[2] षोढा तदा परम् ॥१४

अनेकवर्णावृत्ति में आवृत्तवर्णों के अर्थ भिन्न-भिन्न होते हैं और ऐसी आवृत्ति यमक कहाती है। इसके दो भेद हैं—अव्यपेत और व्यपेत। अव्यपेत यमक वह कहाता है जहाँ वर्णों की आवृत्ति लगातार होती है। व्यपेत यमक में आवृत्ति व्यवधान के साथ होती है। इन दो भेदों के पुनः स्थान और पाद के क्रम से चार भेद होते हैं। स्थान यमक के तीन भेद होते हैं :—आदि, पाद-मध्य तथा पादान्त। ये यमक के सात भेद हुए। इसी प्रकार पाद यमक के भी एकपाद, द्विपाद तथा त्रिपाद के क्रम से उत्तरोत्तर सोलह प्रकार बन जाते हैं।११-१४।

तृतीयं त्रिविधं पादस्याऽऽदिमध्यान्तगोचरम्।
पादान्तयमकं चैव काञ्चीयमकमेव च[3] ॥१५

---

१ क. ङ. °धा पूर्वपूर्वे च नोन्यादे°। २ क. ङ. °ल्यः सोऽर्थस्तदा। ३ क. ङ. च.। सत्वहूयमकं°। ख. ग. च.। सामुद्रय°।

संसर्गयमकं चैव विक्रान्तयमकं तथा ।
[1]पादादि यमकं चैव तथाऽऽम्रेडितमेव च ॥१६
चतुर्व्यवसितं चैव मालायमकमेव च ।
दशधा यमकं श्रेष्ठं तद्भेदा बहवोऽपरे ॥१७

तीन प्रकार का तीसरा यमक पादादि, पादमध्य, पादान्त, कांची यमक, संसर्ग यमक, विक्रान्त यमक, पादादि यमक, आम्रेडित, चतुर्व्यवसित तथा माला यमक यह दस प्रकार का यमक श्रेष्ठ माना गया है। इस यमक के अन्य भी बहुत से भेद हैं।१५-१७।

स्वतन्त्रस्यान्यतन्त्रस्य पदस्याऽऽवर्तनाद्द्विधा ।
भिन्नप्रयोजनपदस्याऽऽवृत्तिं मनुजा विदुः ॥१८
द्वयोरावृत्तपदयोः समस्ताः स्यात्समासतः ।
असमासात्तयोर्व्यस्ता पादे त्वेकत्र विग्रहात् ॥१९

भिन्न प्रयोजन से आवृत्त पद के दो भेद जानने चाहिए—स्वतन्त्र पदावृत्ति. अस्वतन्त्र पदावृत्ति। इसके भी पुनः दो भेद हैं—समस्त पदावृत्ति तथा असमस्त पदावृत्ति। १८-१९।

वाक्यस्याऽऽवृत्तिरप्येवं यथासंभवमिष्यते ।
अलंकाराद्यनुप्रासो लघुमप्येवमर्हणात् ॥२०
यया कयाचिद्वृत्त्या यत्समानमनुभूयते ।
तद्रूपादिपदासत्तिः[2] सानुप्रासा रसावहा ॥२१

यमक में यथासंभव वाक्य की आवृत्ति भी होती है। जिस किसी भी वृत्ति से जो समानता अनुभव की जाती है यह रूप विन्यास की हो या पदविन्यास की वह रसावह वृत्ति अनुप्रास के अंतर्गत आती है।२०-२१।

गोष्ठ्यां [3]कुतूहलाध्यायी वाग्बन्धश्चित्रमुच्यते ।
प्रश्नः प्रहेलिका [4]गुप्त युतं दत्ते तथोभयम् ॥२२
[5]समस्या सप्त तद्भेदा नानार्थस्यानुयोगतः ।

---

१ पादादि इत्यत्र "यमकं वक्रवालश्च संदष्टयमकं तथा" इति क. ङ. पुस्तकयोरधिकं वर्तते। २ ख. °दि वक्रयदा सद्भिः सा°। ३ ख. °लाहासौ वा°। ४ ख. °प्तं तद्वृत्तान्तमथो°। ५ क. ङ. यमस्या।

कवियों की गोष्ठी में पढ़ने मात्र से कुतूहल उत्पन्न करने वाला कवि का वाग्बन्ध (शब्द-गुम्फन) चित्र कहाता है। नाना अर्थों के अनुयोग से इसके सात भेद होते हैं – प्रश्न, प्रहेलिका, गुप्तपद, च्युतपद, दत्तपद, च्युतदत्तपद और समस्या।२२½।

यत्र प्रदीयते तुल्यवर्णविन्यासमुत्तरम् ॥२३
स प्रश्नः स्यादेकपृष्टद्विपृष्टोत्तरभेदतः।
द्विधैकपृष्टो द्विविधः समस्तो व्यस्त एव च ॥२४

जहाँ समान वर्णों के विन्यास द्वारा उत्तर दिया जाता है, उसे 'प्रश्न' कहते हैं। इसके दो भेद हैं—एकपृष्ट प्रश्नोत्तर तथा द्विपृष्ट प्रश्नोत्तर। एकपृष्ट प्रश्नोत्तर के भी दो भेद हैं—समस्त और व्यस्त।२३-२४।

द्वयोरप्यर्थयोर्गुह्यमानशब्दा[1] प्रहेलिका।
सा द्विधाऽऽर्थी च शाब्दी च तत्राऽऽर्थी चार्थबोधतः ॥२५
शब्दावबोधतः शाब्दी प्राहुः षोढा प्रहेलिकाम्।

जहाँ द्व्यर्थक गुह्य शब्दों का प्रयोग हो उसे प्रहेलिका कहते हैं, इसके दो भेद हैं—शाब्दी और आर्थी। अर्थ द्वारा जिसका ज्ञान हो उसे आर्थी और शब्द द्वारा जिसका ज्ञान हो वह शाब्दी कहाती है। उसके छः प्रकार होते हैं।२५½।

यस्मिन्गुप्तेऽपि वाक्याङ्गे भाव्यर्थोऽप[2] (पा) रमार्थिकः ॥२६
तदङ्गे विहिनाकाङ्क्षस्तद्गुप्तं गूढमप्यदः।

जिस किसी वाक्य में वाक्याङ्ग गुप्त होते हुए भी भावी अर्थ (संभावित अर्थ) को सिद्ध करने वाला हो, उस अङ्ग की आकांक्षा से जब इसका समावेश गूढ़ होते हुए भी किया जाता है तो उसे गुप्त कहते हैं।२६½।

यत्रार्थान्तरनिर्भासो [3]वाक्याङ्गच्यवनादिभिः ॥२७
तदङ्गाविहिताकाङ्क्षस्तच्चु (च्च्यु) तं स्याच्चतुर्विधम्।
स्वरव्यञ्जनबिन्दूनां विसर्गस्य च विच्युतेः ॥२८

---

१ क. ङ. 'मानं श'। २ ख. °र्थोपरिसाधकः। ३ क. ङ. °क्यार्थच्यवनादपि। त०।

जहाँ किसी वाक्याङ्ग के स्खलन से अन्य अर्थ की प्रतीति हो, उस स्खलित अंग की आकांक्षा से सम्बन्ध निर्वाह हो जाय उसे 'च्युत' कहते हैं। यह चार प्रकार का है—स्वरच्युत, व्यञ्जनच्युत, अनुस्वारच्युत तथा विसर्गच्युत ।२७-२८।

दत्तेऽपि यत्र वाक्याङ्गे द्वितीयोऽर्थः प्रतीयते ।
[1]दण्डं तदाहुस्तद्भेदाः स्वराद्यैः पूर्ववन्मताः ॥२९

जहाँ किसी वाक्याङ्ग में किसी वाक्यांश के देने मात्र से द्वितीय अर्थ की प्रतीति होती है उसे 'दत्त' कहते हैं। इसके भी पूर्ववत् स्वर, व्यंजन, अनुस्वार और विसर्ग गत चार भेद माने गये हैं। २९।

अपनीताक्षरस्थाने न्यस्ते वर्णान्तरेऽपि च ।
भासतेऽर्थान्तरं यत्र च्युतदत्तं तदुच्यते ॥३०

जहां हटाये हुए अक्षर के स्थान पर किसी अन्य वर्ण के रखने से अर्थान्तर की प्रतीति होती है उसे च्युतदत्त कहते हैं। ३०।

सुश्लिष्टपद्यमेकं यन्नानाश्लोकांशनिर्मितम् ।
सा समस्या परस्याऽऽत्मपरयोः कृतिसंकरात् ॥३१

विभिन्न श्लोकांशों से सुनियोजित पद्य समस्या कहाता है। इसके दो भेद हैं—आत्म-संकर अर्थात् पद्य के अंशों का संकर तथा पर-संकर अर्थात् अन्य पदों का मिश्रण या संकर। ३१।

दुःखेन कृतमत्यर्थं कविसामर्थ्यसूचकम् ।
दुष्करं नीरसत्वेऽपि विदग्धानां महोत्सवः ॥३२
नियमाच्च विदर्भाच्च वन्धाच्च भवति त्रिधा ।

'दुष्कर' अलंकार में अर्थज्ञान क्लिष्टता साध्य होता है और इससे कवि की शब्दादिगुम्फन में सामर्थ्य का ही परिचय मिलता है। यद्यपि यह अलंकार नीरस होता है तो भी विदग्धों (पण्डितों) को रुचिकर लगता है। इसके तीन भेद है : नियम, विदर्भ और वन्ध।॥३२½

१—छ० दत्तं ।

कवेः प्रतिज्ञा निर्माणरम्यस्य[1] नियमः स्मृतः ॥३३
स्थानेनापि स्वरेणापि व्यञ्जनेनापि स त्रिधा ।

कवि-प्रतिज्ञानुसार शब्दों द्वारा रमणीयता की कल्पना नियम कहाती है। यह रमणीयता तीन प्रकार से होती है—(१) यथास्थान शब्द विन्यास द्वारा (२) स्वर द्वारा (३) व्यंजन द्वारा। ३३½

विकल्पः प्रातिलोम्यानुलोम्यादेवाभिधीयते ॥३४
प्रातिलोम्यानुलोम्यं च शब्देनार्थेन जायते ।

प्रातिलोम्य अर्थात् प्रतिकूल शब्दों अथवा अर्थों की रचना आनुलोम्य अर्थात् अनुकूल शब्दों अथवा अर्थों की रचना विकल्प कहलाती है। यह प्रतिकूलता अथवा अनुकूलता शब्द और अर्थ दोनों के द्वारा होती है। ३४½

अनेकधावृत्तवर्णविन्यासैः शिल्पकल्पना ॥३५
तत्तत्प्रसिद्धवस्तूनां बन्ध इत्यभिधीयते ।
गोमूत्रिकार्धभ्रमणे[2] सर्वतोभद्रमम्बुजम्[3] ॥३६
चक्रं चक्राब्जकं दण्डो मुरजाश्चेति चाष्टधा ।

अनेक प्रकार से आवृत्त होने वाले वर्णों के विन्यास से प्रसिद्ध वस्तुओं (कमल, मुरज, खड्ग आदि) की शिल्प-कल्पना अर्थात् शब्द चित्र को 'बन्ध' कहा गया है। यह बन्ध आठ प्रकार का होता है गोमूत्रिका, अर्धभ्रमण, सर्वतोभद्र, अंबुज, चक्र, चक्राब्ज, दण्ड और मुरज।३५—३६½

प्रत्यर्धं प्रतिपादं स्यादेकान्तरसमाक्षरा ॥३७
द्विधा गोमूत्रिकां पूर्वामाहुरश्वपदां परे ।
अन्त्यां गोमूत्रिकां धेनुं जालबन्धं वदन्ति हि ॥३८

जिसमें श्लोक के दोनों-दोनों अर्धभागों तथा प्रत्येक पाद में एक-एक अक्षर के व्यवधान से अक्षरसाम्य प्रयुक्त हो, उसको 'गोमूत्रिका-बन्ध' कहते हैं। 'गोमूत्रिका-बन्ध' के दो भेद कहे जाते हैं—'पूर्वा गोमूत्रिका' जिसको कुछ काव्यवेत्ता 'अश्वपदा' भी कहते हैं, वह प्रति अर्धभाग में एक-एक अक्षर के बाद में अक्षरसाम्य से युक्त होती है। 'अन्यथा गोमूत्रिका' जिसे धेनुजालबन्ध

१—ख. रसस्य। २—क. ङ. मरसर्वं। ३—क. ङ. °मच्युतम्।

भी कहते हैं, वह प्रत्येक पद में एक-एक अक्षर के अन्तर से अक्षरसाम्यसमन्वित होती है। ३७-३८।

अर्धाम्यामर्धपादैश्च कुर्याद्विन्यासमेतयोः।
न्यस्तानामिह वर्णानामधोधःक्रमभागिना
(णा) म् ॥३९
अधोधः स्थितवर्णानां यावत्तुर्यपदं नयेत्।
[1]तुर्यपादान्नयेदूर्ध्वं पादार्धं प्र (प्रा) तिलोम्यतः ॥४०
तदेव सर्वतोभद्रं त्रिविधं सरसीरुहम्।
चतुष्पत्रं ततो विघ्नं चतुष्पत्रे उभे अपि ॥४१
अथ प्रथमपादस्य मूर्धन्यं त्रिपदाक्षरम्।
सर्वेषामेव पादानामन्ते तदुपजायते ॥४२
प्राक्पदस्यान्तिमं [2]प्रत्यक्पादादौ [3]प्रातिलोम्यतः।
अन्त्यपादान्तिमं चाऽऽद्यपादादावक्षरद्वयम् ॥४३
[4]चतुश्छेदे [5]भवेदष्टच्छदे वर्णत्रयं पुनः।
स्यात्षोडशच्छदे द्वयेकान्तरं चेदेकमक्षरम् ॥४४
[6]कर्णिकान्ते लिखेदूर्ध्वं पत्राकाराक्षरावलिम्।
प्रवेशयेत्कर्णिकायां चतुष्पत्रसरोरुहे ॥४५

गोमूत्रिका बन्ध के पूर्वोक्त दोनों भेदों का क्रमशः अर्धभागों और अर्धपादों से विन्यास करना चाहिए। यहां क्रमशः नीचे-नीचे विन्यस्त वर्णों का, नीचे नीचे स्थित वर्णों का जब तक चतुर्थ पाद पूर्ण न हो जाय, तब तक नयन करे। चतुर्थ पाद पूर्ण हो जाने पर प्रतिलोम-क्रम से अक्षरों को पादार्ध-पर्यन्त ऊपर ले जाय। इस तरह तीन प्रकार का सर्वतोभद्रमण्डल' बनता है। कमल-बन्ध के तीन प्रकार से चतुर्दल, अष्टदल और षोडशदल। चतुर्दल कमल को इस प्रकार से आवद्ध किया जाता है—प्रथम पाद के ऊपरी तीन पदों वाले-अक्षर सभी पादों के अन्त में रक्खे जाते हैं। पूर्वपाद के अन्तिम वर्ण को पिछले पाद के आदि में प्रातिलोम्यक्रम से रक्खा जाय। अन्तिम पाद के अन्तिम दो अक्षरों को प्रथम पाद के आदि में निविष्ट किया जाय। यह स्थिति चतुर्दल

---

१ ख. 'पादान्तिमं प्रत्यक्पादादौ प्र°। २ क. ङः 'त्यक्पदा'। ३ क. ङ. 'तः। अनुपादान्तिमं वाद्यपदादाव°। ४. क. ङ. चतुष्पदे। ५ क. ङ. °वेच्छब्दच्छेदने च त्र°। ६. क. ङ. 'णिकातोभयेद्'।

कमल में होती है। अष्टदल कमल में अन्त्यपाद के अन्तिम तीन अक्षरों को प्रथम पाद के आदि में विन्यस्त किया जाता है। षोडश दल कमल में दो अक्षरों के बीच में कर्णिका-मध्यवर्ती एक अक्षर का उच्चारण होता है। कर्णिका के अन्त में ऊपर पत्राकार अक्षरों की पंक्ति लिखें और उसे कर्णिका में प्रविष्ट कराये। यह बात चतुर्दल कमल के विषय में कही गयी है। ३९-४५।

कर्णिकायां लिखेदेकं द्वे द्वे दिक्षु विदिक्षु च।
प्रवेशनिर्गमौ दिक्षु कुर्यादष्टच्छदेऽम्बुजे ॥४६
विष्वग्विषमवर्णानां तावत्पत्रावलीजुषाम्।
मध्ये समाक्षरन्यासः सरोजे षोडशच्छदे ॥४७
द्विधा चक्रं चतुररं षडरं तत्र चाऽऽदिमम्।
पूर्वार्धे सदृशा वर्णाः पादप्रथमपञ्चमाः ॥४८
अयुजोऽश्वयुजश्चैव तुर्यावप्यष्टमावपि।
[1]तस्योदक्प्रागवाक्प्रत्यगरेषु च यथाक्रमम् ॥४९

कर्णिका में एक अक्षर लिखे और दिशाओं तथा विदिशाओं में दो-दो अक्षर लिखें, प्रवेश और निर्गम का मार्ग प्रत्येक दिशा में रक्खे। यह बात 'अष्टदल कमल' के विषय में कही गयी है। चारों ओर विषम वर्णों का उतनी ही पत्रावली बनाकर न्यास करे और मध्यकर्णिका में सम अक्षरों का एक अक्षर के रूप में न्यास करे। यह बात 'षोडशदल कमल' के विषय में बतायी गयी है। 'चक्रबन्ध' दो प्रकार का होता है—एक चार अरों का और दूसरा छह अरों का। उनमें जो आदिम, अर्थात् चार अरोंवाला चक्र है, उसके पूर्वार्द्ध में समवर्णों की स्थापना करे और प्रत्येक पाद के जो प्रथम, पञ्चम आदि विषम वर्ण हैं, उनको एवं चौथे और आठवें, दोनों समवर्णों को क्रमशः उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम के अरों में रक्खें। ४६-४९।

स्यात्पादार्धचतुष्कं तु नाभौ तस्याऽऽद्यमक्षरम्।
पश्चिमारावधि नयेन्नेमौ शेषे पदद्वयी ॥५०
तृतीयं तुर्यपादान्ते प्रथमौ सदृशावुभौ।
वर्णौ पादत्रयस्यापि दशमः सदृशो यदि ॥५१

---

१ छ. [0]स्योपपादप्राक्प्र[0]।

प्रथमे चरमे तस्य षड्वर्णाः पश्चिमे यदि ।
भवन्ति द्व्यन्तरं तर्हि बृहच्चक्रमुदाहृतम्[1] ॥५२
समुखारद्वये पादमेकैकं क्रमशो लिखेत् ।
नाभौ तु वर्णं दशमं नेमौ तुर्यपदं नयेत् ॥५३

उत्तर पादार्ध के चार अक्षरों को नाभि में रक्खे और उसके आदि अक्षर को पिछले दो अरों में ले जाय । शेष दो पदों को नेमि में स्थापित करे । तृतीय अक्षर को चतुर्थ पाद के अन्त में तथा प्रथम दो समवर्णों को तीन पादों के अन्त में रखे । यदि दसवाँ अक्षर सम हो तो उसे प्रथम अरे पर रखे और छह अक्षरों को पश्चिम अरे पर स्थापित करे । वे दो-दो के अन्तर से स्थापित होंगे । इस प्रकार 'बृहच्चक्र' का निर्माण होगा । यह बहच्चक्र बताया गया । सामने के दो अरों में क्रमशः एक-एक पाद लिखे । नाभि में दशम अक्षर अंकित करे और नेमि में चतुर्थ चरण को ले जाय ।५०-५३।

श्लोकस्याऽऽद्यं तु दशमाः समा आद्यन्तिमौ युजो ।
आदौ वर्णः समौ तुर्यपञ्चमावाद्यतुर्ययोः ॥५४
द्वितीयप्रातिलोम्येन तृतीयं जायते यदि ।
पदं विदध्यात्पत्रस्य दण्डश्चक्राब्जकं कृतेः[2] ॥५५
द्वितीयौ प्राग्दले तुल्यौ सप्तमौ च तथाऽऽपरौ ।
सदृशावुत्तरदलौ [3]द्वितीयाभ्यामथार्धयोः ॥५६
द्वितीयषष्ठाः सदृशाश्चतुर्थौ पञ्चमावपि ।
आद्यन्तपादयोस्तुल्यौ परार्धसप्तमावपि ॥५७
समं तुर्यं पञ्चमं तु क्रमेण विनियोजयेत् ।
तुर्यौ योज्यौ तु तद्वच्च दलान्ताः क्रमपादयोः ॥५८

श्लोक के आदि, अन्त और दशम अक्षर समान हों तथा दूसरे और चौथे चरणो के आदि और अन्तिम अक्षर भी समान हों । प्रथम और चौथे चरण के प्रथम, चतुर्थ और पञ्चम वर्ण भी समान हों । द्वितीय चरण को विलोम क्रम से पढ़ने पर यदि तृतीय चरण बन जाता हो तो उसे पत्र के स्थान में स्थापित करे तो उस रचना का नाम 'दण्डचक्राब्जबन्ध' समझना चाहिए । पूर्वदल (पूर्वार्द्ध) में दोनों चरणों के द्वितीय अक्षर एक समान हों और उत्तरार्द्ध में

---

१ क. ङ. °म् । सुमुखर° । ख. °म् । संमुखाच्च द्वयोः पा° ।
२ क. ङ. कृतम् । ३ क. ङ. °यायामथ द्वयोः ।

दोनों चरणों के सातवें अक्षर समान हों। साथ ही द्वितीय अक्षरों की दृष्टि से पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध परस्पर समता रखते हों। दूसरे, छठे, तथा चौथे, पाँचवों भी एक दूसरे के तुल्य हों। उत्तरार्ध भाग के सातवें अक्षर प्रथम और चतुर्थ चरणों के उन्हीं अक्षरों के समान हों तो उन तुल्य रूप वाले चतुर्थ और पञ्चम अक्षर की क्रमशः योजना करनी चाहिए।५४-५८।

अर्धयोरन्तिमाद्यौ तु मुरजे सदृशावुभौ[1]।
पादार्धपतितो वर्णः प्रातिलोम्यानुलोमतः ॥५९
अन्तिमं परिवध्नीयाद्यावत्तुर्यमिहाऽऽदिमत्।
[2]पादात्तुर्याद्यदेवाऽऽद्यं[3] नवमात्षोडशादपि ॥६०
अक्षरात्पुटकौ मध्ये मध्येऽक्षरचतुष्टयम्।
कृत्वा कुर्याद्यथैतस्य मुरजाकारता भवेत् ॥६१
द्वितीयं चक्रशार्दूलविक्रीडितकसंपदम्।
गोमूत्रिका सर्ववृत्तैरन्ये बन्धास्त्वनुष्टुभा ॥६२
नामधेयं यदि न चेदमीषु[4] कविकाव्ययोः।
[5]मित्रधेयानि तुष्यन्ति नामित्रः खिद्यते तथा ॥६३
वाणवाणासनव्योमखड्गमुद्गरशक्तयः।
द्विचतुर्थत्रिशृङ्गाटा दम्भोलिमुशलाङ्कुशाः ॥६४
पदं रथस्य नागस्य पुष्करिण्यसिपुत्रिका।
एते वन्धास्तथा चान्ये एवं ज्ञेयाः स्वयं बुधैः ॥६५

'मुरजवन्ध' में पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दोनों के अन्तिम और आदि अक्षर समान होते हैं। पादार्द्ध भाग में स्थित जो वर्ण हैं, उसे प्रातिलोम्यानुलोम्य-क्रम से स्थापित करे। अन्तिम अक्षर को इस प्रकार निबद्ध करे कि वह चौथे चरण का आदि अक्षर बन जाय। चौथे चरण में जो आदि अक्षर हों, उससे नवें तथा सोलहवें अक्षर पुटक के बीच-बीच में चार-चार अक्षरों का निवेश करे। ऐसा करने से उस श्लोक बन्ध द्वारा मुरज (ढोल) की आकृति स्पष्ट हो जाती है। द्वितीय चक्र 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द से सम्पादित होता है। 'गोमूत्रिका-वन्ध' सभी छन्दों से निर्मित हो सकता है। अन्य सब वन्ध अनुष्टुप् छन्द से निर्मित होते हैं। यदि इन वन्धों में कवि और काव्य का नाम न हो तो मित्र

---

१ क. ङ. °भौ। पदे द्विप°। २ ख. °तुर्यात्पदे वाक्यं न°। ३ क. ङ. °वार्वं न°। ४ ख. °षु ध्वानिका°। ५ क. ङ. मितिध्येयाभिस्तुष्य°।

भाव रखने वाले लोग संतुष्ट होते हैं तथा शत्रु भी खिन्न नहीं होता। वाण, धनुष, व्योम, खड्ग, मुद्गर, शक्ति, द्विश्रृङ्गार, त्रिशृङ्गार चतुःश्रृङ्गार, वज्र, मुसल, अंकुश, रथपद, नागपद, पुष्करिणी, असिपुत्रिका (कटारी या छुरी)—इन सबकी आकृतियो मे चित्रबन्ध लिखे जाते है। ये तथा और भी बहुत से 'चित्रबन्ध' हो सकते हैं, जिन्हें विद्वान् पुरुषों को स्वयं जानना चाहिए।५९-६५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शब्दालंकारकथनं नाम
त्रिचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोध्यायः।३४३

अथ चतुश्चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अर्थालङ्काराः

[1]अग्निरुवाच—

अलङ्करणमर्थानामर्थालङ्कार इष्यते।
[2]तं विना शब्दसौन्दर्यमपि नास्ति मनोहरम्॥१
अर्थालङ्कार रहिता विधवेव सरस्वती।
स्वरूपमथ सादृश्यमुत्प्रेक्षातिशयावपि॥२
विभावना विरोधश्च हेतुश्च सममष्टधा।

अग्निदेव बोले—अर्थों के चमत्कार को 'अर्थालङ्कार' कहते हैं। इसके विना काव्य, शब्दसौन्दर्यसमन्वित होते हुये भी हृदयस्पर्शी नहीं होता। अर्थालङ्कार विहीन काव्यकृति विधवा के समान होती है। ये अलंकार आठ है—स्वरूप, सादृश्य, उत्प्रेक्षा, अतिशय, विभावना, विरोध, हेतु और सम।१-२½।

स्वभाव एव भावानां स्वरूपमभिधीयते॥३
निजमागन्तुकं चेति द्विविधं तदुदाहृतम्।
सांसिद्धिकं निजं नैमित्तिकमागन्तुकं तथा॥४

---

१ क. ङ. °च—षड्वङ्करणोऽर्था°। ख. °च—सुभगीकरणोऽर्था°।
२ ख. यं।

वस्तुओं के स्वभाव का तद्वत् उल्लेख ही 'स्वरूप' कहाता है। इसके दो भेद हैं—निज और आगन्तुक। स्वाभाविक वर्णन निज कहाता है तथा कारण-वश वर्णन आगन्तुक ।३-४।

सादृश्यं धर्मसामान्यमुपमा रूपकं तथा।
सहोक्त्यर्थान्तरन्यासाविति स्यात्तु चतुर्विधम् ॥५

जहां साधारण धर्म की समानता दिखाई जाए वहां सादृश्य अलंकार होता है। इसके चार प्रकार-है उपमा, रूपक, सहोक्ति और अर्थान्तरन्यास ।५।

उपमा नाम सा यस्यामुपमानोपमेययोः।
सत्ता चान्तरसामान्ययोगित्वेऽपि विवक्षितम् ॥६
किंचिदादाय सारूप्यं लोकयात्रा प्रवर्तते।

उपमा नामक अलंकार वहाँ होता है जहाँ उपमान और उपमेय की समानता में अन्तर होते हुये भी उनकी सदृशता का उल्लेख होता है। इन दिनों में किंचित् सादृश्य दिखाने पर ही लोकव्यवहार का प्रवर्तन किया जाता है ।६-६½।

समासेनासमासेन सा द्विधा प्रतियोगिनः ॥७
विग्रहादभिधानस्य ससमासाऽन्यथोत्तरा।
उपमा द्योतकपदेनोपमेयपदेन च ॥८
ताभ्यां च विग्रहात्त्रेधा ससमासाऽन्तिमा त्रिधा।
विशिष्यमाणा उपमा भवन्त्यष्टादश स्फुटाः ॥९

उपमा के दो भेद हैं, समासोपमा और असमासोपमा। समासोपसा में पद संश्लिष्ट होते हैं, जबकि असमासोपमा में उपमा वाचक पद का अथवा उपमेय पद का उल्लेख होता है। इसमें पुनः तीन-तीन भेद होते हैं। इस प्रकार उपमा के कुल अठारह भेद हो जाते हैं ।७-९।

यत्र साधारणो धर्मः कथ्यते गम्यतेऽपि वा।
ते धर्मवस्तुप्राधान्याद्धर्मवस्तूपमे उभे ॥१०

जहाँ साधारण धर्म का कथन होता है अथवा (कथन के अभाव में) उसकी प्रतीति होती है, वहाँ क्रमशः धर्म की प्रधानता के कारण 'धर्मोपमा' अलंकार

होता है। और वस्तु (विषय) की प्रधानता के कारण 'वस्तूपमा' अलंकार होता है।१०।

तुल्यमेवोपमीयेते यत्रान्योन्येन [1]धर्मिणौ।
परस्परोपमा[2]सा स्यात्प्रसिद्धेरन्यथा तयोः ११
विपरीतोपमा[3]सा स्याद्‌व्यावृत्तेर्नियमोपमा।
अन्यत्राप्यनुवृत्तस्तु भवेदनियमोपमा ॥१२

जहां पर उपमेय और उपमान के साधारण धर्मों की परस्पर तुलना प्रचलित रीति से की जाती है वहां 'परस्परोपमा' अलंकार होता है। यदि उपमान और उपमेय के साधारण धर्मों की तुलना लोक-प्रचलित रीति के विरुद्ध की जावे तो 'विपरीतोपमा' अलंकार कहाता है। जहां पर उपमेय का ही पृथक् महत्त्व स्थापन किया गया हो वहां नियमोपमा अलंकार होता है। जहां उपमेय की वैशिष्ट्य स्थापना नियमित रूप से न हो वहां अनियमोपमा अलंकार होता है।११-१२।

समुच्चयोपमाऽतोऽन्यधर्मबाहुल्यकीर्तनात्।
बहोर्धर्मस्य साम्येऽपि वैलक्षण्यं विवक्षितम्[4] ॥१३
यदुच्यतेऽतिरिक्तत्वं व्यतिरेकोपमा तु सा।
यत्रोपमा स्याद्‌बहुभिः सदृशैः सा बहूपमा ॥१४

जहां उपमान-उपमेय से भिन्न किसी वस्तु के धर्म की बहुलता का वर्णन हो वहाँ समुच्चयोपमा होती है। यहां बहुधर्मों का उल्लेख होते हुये वैचित्र्य अवश्य हो। जहां उपमान अथवा उपमेय का उत्कर्ष बताया जावे वहां व्यतिरेकोपमा अलंकार होता है। अथवा जहां उपमेय का उत्कर्ष बताया जावे वहाँ व्यतिरेकोपमा अलंकार होता है। जहां पर उपमेय की अनेक उपमानों के साथ उपमा दी जाती है वहाँ बहूपमा अलंकार होता है।१३-१४।

धर्माः प्रत्युपमानं चेदन्या मालोपमैव सा।
उपमानविकारेण तुलना विक्रियोपमा ॥१५

---

१ छ. धर्मिणा। २ क. ङ. °पसामान्यात्प्रसिद्धेवान्य°। ३ क. ङ. °मा न स्याद्विच्छित्तिर्नि। ४ क. ङ. प्रकीर्तितम्।

जहाँ उपमेय की उपमा विभिन्न उपमानों के साधारण धर्म से की जाती है, वहाँ मालोपमा अलंकार होता है। जहाँ उपमेय की तुलना उपमान के विकार से की जाती है वहाँ विक्रियोपमा अलंकार होता है।१५।

[1]त्रैलोक्यासंभवि किमप्यारोप्य प्रतियोगिनि।
कविनोपमीयते या प्रथते साऽद्भुतोपमा ॥१६
प्रतियोगिनमारोप्य तदभेदेन कीर्तनम्।
उपमेयस्य सा मोहोपमाऽसौ भ्रान्तिमद्वचः ॥१७

जहां कवि उपमेय में किसी लोकातिशायी बात का आरोप करके उसकी तुलना (उपमान के साथ) करता है वहां अद्भुतोपमा अलङ्कार होता है। जहां उपमेय में उपमान का आरोप करके कवि दोनों का अभेद कर देता है वहां 'मोहोपमा' अलंकार होता है। यहाँ भ्रान्ति भी बनी रहनी चाहिए।१६-१७।

उभयोर्धर्मिणोस्तथ्यानिश्चयात्संशयोपमा।
उपमेयस्य संशय्य निश्चयान्निश्चयोपमा ॥१८

जहां उपमेय और उपमान के सामान्य धर्मों का वास्तविक रूप से निश्चय न हो सके वहाँ संशयोपमा जबकि उपमेय के संशय को निश्चित होने को निश्चयोपमा अलकार कहते हैं।१८।

वाक्यार्थेनैव वाक्यार्थोपमा स्याद्युपमानतः।
आत्मोपमानादुपमा साधारण्यतिशायिनी ॥१९

जहां उपमेय वाक्यार्थ की उपमान वाक्यार्थ के साथ तुलना की जावे वहां 'वाक्यार्थोपमा' अलंकार होता है। जहां उपमेय को उपमान बना दिया जावे और उसमें चमत्कारातिशय हो वहाँ असाधारणी उपमा होती है।१९।

उपमेयं यदन्यस्य तदन्यस्योपमा मता।
यद्युत्तरोत्तरं याति तदाऽसौ गमनोपमा[2] ॥२०

जहाँ उपमेय किसी अन्य का (उपमान से विपरीत) दिखाया या वर्णित किया जावे वहाँ अन्योपमा अलंकार होता है। यदि उपमा द्वारा उत्तरोत्तर उत्क र्ष का वर्णन हो तो उसे 'गगनोपमा' कहा जाता है।२०।

---

१ क. ख. ङ. त्रैकाल्यासंभविकमपा°। २ छ. गगनो°।

प्रशंसा चैव निन्दा च कल्पिता सदृशी तथा ।
किंचिच्चासदृशी ज्ञेया उपमा पञ्चधा पुनः ॥२१

पुनः उपमा के पाँच भेद होते हैं—प्रशंसा, निन्दा, कल्पिता, सदृशी तथा असदृशी ।२१।

उपमानेन यत्तत्त्वमुपमेयस्य रूप्यते ।
गुणानां समता दृष्ट्वा रूपकं नाम तद्विदुः ॥२२
उपमैव तिरोभूतभेदा रूपकमेव वा ।
सहोक्तिः सहभावेन कथनं तुल्यधर्मिणाम् ॥२३

जहाँ गुणों की समता को देखकर उपमान मे ही उपमेय का निरूपण कराया जाता है वहाँ रूपक अलंकार होता है, अथवा जहाँ उपमेय और उपमान में सादृश्य सम्वन्धी अभेद कहा जाता है उसे रूपक कहते हैं। जहाँ उपमेय और उपमान के साधारण धर्म का सह भाव से (सह, साथ, संगति द्वारा) कथन या उल्लेख हो वहाँ सहोक्ति अलंकार होता है ।२२-२३।

भवेदर्थान्तरन्यासः सादृश्येनोत्तरेण सः ।
अन्यथोपस्थिता वृत्तिश्चेतनस्येतरस्य च ॥२४
अन्यथा मन्यते यत्र तामुत्प्रेक्षां प्रचक्षते ।
लोकसीमानिवृत्तस्य वस्तुधर्मस्य कीर्तनम् ॥२५
भवेदतिशयो नाम संभवासंभवाद्द्विधा ।

जहाँ उत्तर (वाक्य) से सादृश्य दिखाया जाता है वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। जहाँ अन्य रूप में प्रस्तुत वृत्ति को जब अन्य रूप में कहा जाता है तो वहाँ उत्प्रेक्षा अलकार होता है । जहाँ किसी पदार्थ का लोक-सीमातिशायी वर्णन हो वहाँ 'अतिशय' अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—संभव तथा असम्भव ।२४-२५½।

गुणजातिक्रियादीनां यत्र[1] वैकल्यदर्शनम् ॥२६
विशेषदर्शनायैव सा विशेषोक्तिरुच्यते ।

---
१ क. ङ. यत्तद्वैक° ।

जहाँ गुण, जाति, क्रिया आदि में विकलता (परस्पर-विरोध) दिखाया जाता है वहाँ विशेषोक्ति अलंकार होता है।२६½।

प्रसिद्धहेतुव्यावृत्त्या यत्किंचित्कारणान्तरम् ॥२७
यत्र स्वाभाविकत्वं वा विभाव्यं सा विभावना।

जहाँ किसी प्रसिद्ध कारण को हटाकर उसके स्थान पर कारणान्तर की स्थापना की जाती है, और उसे (कारणान्तर को) स्वाभाविकता प्रदान की जाती है, वहाँ विभावना अलंकार होता है।२७½।

संगतीकरणं युक्त्या यदसंगच्छमानयोः ॥२८
विरोधपूर्वकत्वेन तद्विरोध इति स्मृतम्।

जहाँ परस्पर विरोधी वस्तुओं का विरोधात्मक रूप दिखाकर फिर युक्तिपूर्वक उनका संगत रूप दिखाया जावे वहाँ विरोध अलंकार होता है।२८½।

सिसा (षा) धयिषितार्थस्य हेतुर्भवति साधकः ॥२९
कारको ज्ञापक इति द्विधा सोऽप्युपजायते।
प्रवर्तते कारकाख्यः प्राक्पश्चात्कार्यजन्मनः ॥३०
पूर्वशेष इति ख्यातस्तयोरेव विशेषयोः।
कार्यकारणभावाद्वा स्वभावाद्वा नियामकात् ॥३१
अविनाभावनियमो[1] ह्यविनाभावदर्शनात्।
ज्ञापकाख्यस्य भेदोऽस्ति नदीपूरादिदर्शनम् ॥३२

अर्थ के साधक को हेतु कहते है। इसके दो भेद हैं—कारक तथा ज्ञापक। कारक नामक हेतु कार्य होने के पश्चात् उपस्थित किया जाता है, और ज्ञापक नामक हेतु कार्य-जन्म से पूर्व। उनका कार्य-कारण-भाव से अथवा स्वाभाविक नियम से पूर्वकारक तथा शेप कारक नाम विख्यात है। अविनाभाव के दिखाने से, ज्ञापक हेतु का भेद अविनाभाव नियम ही है। यह अविनाभाव नियम नदी में पूरादि दर्शन की तरह है। अर्थात् जिस प्रकार नदी का पूर (बाढ़) वर्षा का ज्ञापक होता है वैसे ही यहाँ अविनाभाव नियम है।२९-३२।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽर्थालङ्कारकथनं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः।३४४

———

१ ख. 'यमादर्शनाव्यक्तद'।

अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

शब्दार्थालंकाराः

अग्निरुवाच—

[1]शब्दार्थयोरलंकारो द्वावलंकुरुते समम् ।
एकत्र निहितो हारः स्तनं ग्रीवामिव स्त्रियाः ॥१
प्रशस्तिः कान्तिरौचित्यं संक्षेपो यावदर्थता ।
अभिव्यक्तिरिति व्यक्तं षड्भेदास्तस्य जाग्रति ॥२

अग्निदेव बोले—शब्दार्थालंकार (उभयालंकार) शब्द और अर्थ, दोनों को समान रूप से उस प्रकार अलंकृत करते हैं जिस प्रकार स्त्रियों के वक्ष का हार उरोजों के साथ-साथ उनके ग्रीवा-सौन्दर्य को भी बढ़ाता है। शब्दार्थालङ्कार के छह भेद स्वीकार किये गये हैं—प्रशस्ति, कान्ति, औचित्य, संक्षेप, यावदर्थता और अभिव्यक्ति ।१-२।

प्रशस्तिः परवन्मर्मद्रवीकरणकर्मणः ।
वाचोयुक्तिर्द्विधा सा च प्रेमोक्तिस्तुतिभेदतः ॥३
प्रेमोक्तिस्तुतिपर्यायौ प्रियोक्तिगुणकीर्तने ।

दूसरों के हृदय को द्रवित करने वाले कर्म को प्रशस्ति कहते हैं। प्रशस्ति कथन की शैली दो प्रकार की है—प्रेमोक्ति तथा स्तुति। प्रेमोक्ति और स्तुति यों तो समानार्थक शब्द हैं, (पर इनमें थोड़ा अन्तर अवश्य है) प्रिय के सम्बन्ध में सामान्य कथन को प्रेमोक्ति कहते है और उसके गुण कीर्तन को स्तुति कहते हैं ।३-४½।

कान्तिः सर्वमतो रुच्यवाच्यवाचकसंगतिः ॥४
यथा वस्तु तथा रीतिर्यथा वृत्तिस्तथा रसः ।
ऊर्जस्विमृदुसंदर्भादौचित्यमुपजायते ॥५

सब प्रकार से रुचिकर शब्द एवं अर्थ की संगति को 'कान्ति अलंकार' कहते हैं। जहां पर विषयानुकूल रीति, वृत्ति और रस का समावेश दिखाया

१ क. ङ. °रो वाचालं° ।

जाये वहाँ 'औचित्य अलंकार' होता है। इसके दो भेद हैं—ऊर्जस्वी और मृदुसंदर्भ।४-५।

संक्षेपो वाचकैरल्पैर्बहोरर्थस्य संग्रहः।
अन्यूनाधिकता शब्दवस्तुनोर्यावदर्थता ॥६

जहाँ अल्प शब्दों से अधिक अर्थ की प्रतीति हो, वहां 'संक्षेप अलंकार' होता है। जहाँ पर शब्द और वर्ण्य वस्तु, दोनों को न न्यून और न अधिक रूप में प्रस्तुत किया जाय, वहाँ यावदर्थता अलंकार होता है।६।

प्रकटत्वमभिव्यक्तिः श्रुतिराक्षेप इत्यपि।
तस्या भेदौ श्रुतिस्तत्र [1]शाब्दं स्वार्थसमर्पणम् ॥७
भवेन्नैमित्तिकी पारिभाषिकी द्विविधैव सा।
[2]संकेतः परिभाषेति ततः स्यात्पारिभाषिकी ॥८
[3]मुख्यौपचारिकी चेति सा च सा च द्विधा द्विधा।
साभिधेयस्खलद्वृत्तिरमुख्यार्थस्य वाचकः ॥९
यया शब्दो निमित्तेन केनचित्सौपचारिकी।
सा च लाक्षणिकी गौणी लक्षणा गुणयोगतः ॥१०
[4]अभिधेयाविनाभूतप्रतीतिर्लक्षणोच्यते।
अभिधेयेन सम्बन्धात्सामीप्यात्समवायतः ॥११
वैपरीत्यात्क्रियायोगाल्लक्षणा पञ्चधा मता।
गौणी गुणानामानन्त्यादनन्ता तद्विवक्षया ॥१२

भावप्रकटीकरण का नाम अभिव्यक्ति है। इसके दो भेद हैं—श्रुति (शब्द-स्वार्थ समर्पण) तथा आक्षेप। श्रुति (शब्दस्वार्थसमर्पण) के दो भेद हैं—नैमित्तिकी और पारिभाषिकी। परिभाषा संकेत को कहते हैं। संकेतित अर्थ प्रकट करने वाली अभिव्यक्ति पारिभाषिकी कहाती है। नैमित्तिकी के पुनः दो भेद हैं—मुख्या तथा औपचारिकी। औपचारिकी अभिव्यक्ति वहाँ मानी गयी है जहाँ किसी कारण विशेष से अभिधेय (मुख्यार्थ) का स्खलन (बाध) हो जाये। तथा मुख्यार्थ से भिन्न अर्थ के वाचक शब्द का ग्रहण हो। इस औपचारिकी के दो भेद हैं—लाक्षणिकी और गौणी। लक्षणा की विशेषताओं के योग के कारण

१ ख. ब्दं चार्थ॰। २ क. ङ संज्ञातः। ३ 'मुख्यौपचारिकी⋯⋯द्विधा' नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः। ४ ख. ग. ॰भूता प्र॰।

औपचारिकी अभिव्यक्ति वहाँ मानी गयी है, जहाँ किसी कारणविशेष से अभिधेय (मुख्य) का स्खलन अर्थात् बाध हो जाये, तथा मुख्यार्थ से भिन्न अर्थ के वाचक शब्द का ग्रहण हो। ७-१२।

अन्यधर्मस्ततोऽन्यत्र लोकसीमानुरोधिना।
सम्यगाधीयते यत्र स समाधिरिह स्मृतः ॥१३

जहाँ लोक मर्यादा के आग्रह से एक वस्तु का धर्म दूसरी वस्तु में सम्यक् प्रकार से वर्णित किया जाता है वहाँ 'समाधि' अलंकार कहा गया है। १३।

[1]श्रुतेरलभ्यमानोऽर्थो यस्माद्भाति सचेतनः।
स आक्षेपो ध्वनिः स्याच्च ध्वनिना व्यज्यते यतः ॥१४

जहाँ कर्णेन्द्रिय द्वारा अप्राप्य जिस अन्य अर्थ की प्रतीति होती है वह आक्षेप का विषय है, इसे ध्वनि भी कहते हैं, क्योंकि इसकी प्रतीति ध्वनि (नामक काव्याङ्ग) से होती है। १४।

शब्देनार्थेन यत्रार्थः कृत्वा स्वयमुपार्जनम्।
प्रतिषेध इवेष्टस्य यो विशेषोऽभिधित्सया ॥१५
तमाक्षेपं ब्रुवन्त्यत्र स्तुतं स्तोत्रमिदं पुनः।
अधिकारादपेतस्य वस्तुनोऽन्यस्य या स्तुतिः ॥१६

जहाँ शाब्दिक अर्थ से भाव ग्रहण करके भी किसी विशेष बात को कहने की इच्छा से उसका प्रतिषेध सा किया जाता है, उसे 'आक्षेप' अलंकार कहते हैं। अवर्णनीय विषय सामग्री का गुण कथन स्तुत अथवा स्तोत्र कहाता है। १५-१६।

यत्रोक्तं गम्यतेऽन्योऽर्थस्तत्समानविशेषणः।
सा समासोक्तिरुदिता संक्षेपार्थतया बुधैः ॥१७

जहाँ विशेषणों की समानता के बल पर कोई अर्थ किसी अन्य पर भी घटने लगे, इस संक्षेप के कारण ऐसे स्थलों में विद्वान् उसे 'समासोक्ति' अलंकार कहते हैं। १७।

---

१ क. ङ. °तेर्वलसमानार्थो।

[1]अपह्नुतिरपह्नुत्य किंचिदन्यार्थसूचनम्।
पर्यायोक्तं यदन्येन प्रकारेणाभिधीयते।
[2]एषामेकतमस्येव समाख्या ध्वनिरित्यतः ॥१८

जहाँ किसी अर्थ (बात) को छिपाकर अन्य अर्थ की सूचना दी जाये वहाँ 'अपह्नुति' अलंकार होता है। प्रकार विशेष (शैली विशेष) से कही गयी बात को 'पर्यायोक्त' कहते हैं। इन प्रकारों में से एक प्रकार ध्वनि भी कहा गया है। अथवा इन उपर्युक्त अलंकारों को (श्रुति के भेदों को) सामूहिक रूप से ध्वनि भी कह सकते हैं। १८-१९।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शब्दार्थालंकारकथनं नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।३४५

———

अथ षट्चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

काव्यगुणविवेकः

अग्निरुवाच—
अलंकृतमपि प्रीत्यै न काव्यं निर्गुणं भवेत्।
[3]वपुष्यललिते स्त्रीणां हारो भारायते परम् ॥१

अग्निदेव बोले—जिस प्रकार असुन्दर शरीर वाली नारियों के लिये रत्न-हार भार बन जाता है, इसी प्रकार माधुर्यादि गुणों से रहित काव्य अलंकृत होने पर भी आह्लादक नहीं होता।१।

न च वाच्यं गुणो दोषो[4] भाव एव भविष्यति।
गुणाः श्लेषादयो दोषा[5] गूढार्थाद्याः पृथक्कृताः ॥२

---

१ ख. रपाकृत्य। २ ख. °कत्रसंज्ञे चस°। ३ 'वपुष्यललिते ......इति द्विधा' क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ४ ख. ग. दोषाभाव एष भ°। ५ ख. ग. 'दोषाः शूरार्था°।

(भरत के अनुसार) गुणों का दोषाभाव रूप स्वीकृत करना युक्ति संगत नहीं है। श्लेष आदि (दश) गुण और गूढार्थ आदि (दश) दोष (अभावात्मक अथवा वैपरीत्य रूप में) परस्पर सम्बद्ध नहीं है। २।

य: काव्ये महतीं छायामनुगृह्णात्यसौ गुणः ।
संभवत्येष सामान्यो वैशेषिक इति द्विधा) ॥३

जो साधन काव्य में महती शोभा लाता है, उसे गुण कहते हैं। इसके दो भेद हैं—सामान्य और विशेष। ३।

सर्वसाधारणीभूतः सामान्य इति मन्यते ।
शब्दमर्थमुभौ प्राप्तः सामान्यो भवति त्रिधा ॥४

सर्व प्रकार की रचना में प्राप्य गुण को सामान्य कहते हैं। इसके तीन भेद हैं—शब्दगुण, अर्थगुण तथा शब्दार्थगुण। ४।

शब्दमाश्रयते काव्यं शरीरं यः स तद्गुणः ।
श्लेषो लालित्यगाम्भीर्ये सौकुमार्यमुदारता[1] ॥५
सत्येव यौगिकी चेति गुणाः शब्दस्य सप्तधा ।
सुश्लिष्टसंनिवेशत्वं शब्दानां श्लेष उच्यते[2] ॥६

जो काव्य के शरीर रूप शब्द के आश्रित रहता है उसे शब्द गुण कहते हैं। इसके सात भेद हैं—श्लेष, लालित्य, गाम्भीर्य, सुकुमारता, उदारता, सत्य और यौगिकी। शब्दों के सघन गुम्फन का नाम श्लेष है। ५-६।

गुणादेशादिना पूर्वं पदसंबद्धमक्षरम् ।
यत्र संधीयते नैव तल्लालित्यमुदाहृतम् ॥७

जिस सन्दर्भ में (व्याकरण सम्बन्धी) गुण, आदेशादि के द्वारा पद में सम्बद्ध अक्षरों में सन्धि नहीं की जाती, वह लालित्य गुण माना गया है। ७।

---

१ ख. ग. °ता। रूढिश्च योगि°। २ क. ख. ग. ङ. °ते। यणा°।

[1]विशिष्टलक्षणोल्लेखलेख्यमुत्तानशब्दकम् ।
गाम्भीर्यं कथयन्त्यार्यास्तदेवान्येषु शब्दताम् ॥८
अनिष्टु (ष्ठु) राक्षरप्रायशब्दता सुकुमारता ।
उत्तानपदतौदार्यं युतं श्लाघ्यैर्विशेषणैः ॥९
ओजः समासभूयस्त्वमेतत्पद्यादिजीवितम्[2] ।
आब्रह्म स्तम्बपर्यन्तमोजसैकेन पौरुषम् ॥१०

गाम्भीर्य गुण उसे कहते हैं जिसमें शब्द तो उत्तान-सुगम हो, पर वर्ण्य-विषय विशिष्ट चिह्न से समन्वित हो । इन विशिष्टताओं से रहित रचना कोरा शब्द जाल है । सुकोमल वर्ण योजना से युक्त शब्दावली में सुकुमार गुण माना गया है । श्लाघ्य विशेषणों से संवलित छिछले (ओज संयुक्त) पदों के प्रयोग में औदार्यगुण रहता है । ८-१० ।

उच्यमानस्य शब्देन येन केनापि वस्तुनः ।
उत्कर्षमावहन्नर्थो गुण इत्यभिधीयते ।११
माधुर्यं संविधानं च कोमलत्वमुदारता ।
प्रौढ़िसामयिकत्वं च तद्भेदाः षट्[3] चकासति ॥१२
क्रोधेर्ष्याकारगाम्भीर्यं माधुर्यं धैर्यगाहिता ।
संविधानं परिकरः स्यादपेक्षितसिद्धये ॥१३

किसी भी प्रकार से प्रस्तुत किये गये विषय में यदि उत्कर्ष का निर्वाह किया गया हो तो ऐसे स्थल पर 'अर्थ गुण' रहता है । माधुर्य, संविधान, कोमलता, उदारता, प्रौढ़ि, सामयिकत्व—ये छह अर्थ गुण के भेद हैं । क्रोध, ईर्ष्या आदि भावों की अवस्था के समान गम्भीरता का जहाँ अभाव हो और धैर्य का समावेश हो वहां माधुर्य गुण होता है । इष्टध्येय की सिद्धि के लिए जहां अमानवीय शक्ति का प्रयोग हो, ऐसे सन्दर्भ में संविधान गुण होता है ११-१३।

यत्काठिन्यादिनिर्मुक्तसंनिवेशविशिष्टता ।
तिरस्कृत्यैव मृदुता भाति कोमलतेति सा ॥१४

---

१ क. ङः °णोपेतरेखामु° । २ ख. ग. °तद्गद्या° । ३ क. ङ. षड्दाहृताः । क्रो° ।

जो सन्दर्भ क्लिष्टता आदि से रहित होता है, जहां प्रयासपूर्वक शब्द नियोजन का त्याग किया जाता है और जिसमें मृदुता का समावेश रहता है, वहां कोमलता गुण होता है। १४।

लक्ष्यते स्थूललक्षत्वप्रवृत्तेर्यत्र लक्षणम् ।
गुणस्य तदुदारत्वमाशयस्यातिसौष्ठवम् ।।१५

जिस रचना में प्रमुख रूप से स्थूल लक्ष्य को ही प्रकट करने में प्रवृत्ति रहती है, और (मूल वस्तु के) आशय का सौष्ठव स्पष्ट रहता है वहाँ 'उदारता' गुण होता है।१५।

अभिप्रेतं प्रतिहतं निर्वाहस्योपपादिकाः ।
[1]युक्तयो हेतुगर्भिण्यः प्रौढा प्रौढिरुदाहृता[2] ।।१६

जहां पर अभीष्ट अर्थ के विघातक तत्त्व के लिए प्रौढ़ तथा न्यायोचित युक्तियों का प्रयोग हो वहां पर 'प्रौढिगुण' कहा गया है। १६।

स्वतन्त्रस्यान्यतन्त्रस्य[3] वा (वा) ह्यान्तःसमयोगतः ।
तत्र व्युत्पत्तिरर्थस्य या सामयिकतेति सा ।।१७

जहां स्वतन्त्र रूप से अथवा परतन्त्र रूप से अर्थों की बाह्य और आन्तरिक योग से व्युत्पत्ति दिखाई जाती है वहां 'सामयिकता' गुण होता है। १७।

शब्दार्थावुपकुर्वाणो नाम्नोभयगुणः स्मृतः ।
तस्य प्रसादः सौभाग्यं यथासंख्यं प्रशस्यता ।।१८
पाको राग इति प्राज्ञैः षट् प्रपञ्चविपञ्चिताः ।
सुप्रसिद्धार्थपदता प्रसाद इति गीयते ।।१९

शब्द और अर्थ के उपकार करने वाले गुणों को 'उभय गुण' कहा गया है। इसके छह भेद किये गये हैं—प्रसाद, सौभाग्य, यथासंख्य, प्रशस्ति, पाक और राग। जहां अति प्रसिद्ध अर्थों वाली पदावली का प्रयोग हो वहां प्रसाद गुण रहता है। १८-१९।

---

१ क. ख. ग. मुक्तयो। २ क. ङ: °ता। सुत°। ३ ख. ग. °स्य राद्धान्तः।

उत्कर्षवान्गुणः कश्चिद्यस्मिन्नुक्ते प्रतीयते ।।
तत्सौभाग्यमुदारत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ।।२०

जिस उक्ति में किसी उत्कर्ष युक्त गुण का समावेश प्रतीत होता है उसे सौभाग्य गुण कहते हैं। मनीषी इसे उदारता भी कहते हैं। २०।

यथासंख्यमनुद्देशः सामान्यमतिदिश्यते ।
समये वर्णनीयस्य दारुणस्यापि वस्तुनः ।।२१
अदारुणेन शब्देन प्राशस्त्यमुपवर्णनम् ।
उच्चैः परिणतिः काऽपि पाक इत्यभिधीयते ।।२२

सामान्य रूप से प्राप्त गुण को यथासंख्य कहा गया है। यथा समय वर्णनीय कठोर विषय का वर्णन जब कोमल शब्दों से किया जाता है तो वहाँ 'प्राशस्त्य गुण' होता है। जहां वर्ण्य विषय की उत्तम परिणति हो वहाँ 'पाकगुण' कहा जाता है। २१-२२।

मृद्वीकानारिकेलाम्बुपाकभेदाच्चतुर्विधः ।
आदावन्ते च सौरस्यं मृद्वीकापाक एव सः ।।२३

पाक के चार भेद हैं—मृद्वीकपाक, पाक, नारिकेल पाक और अम्बुपाक। जहां आरम्भ में तथा अन्त में सरसता रहती है वहाँ 'मृद्वीकापाक' होता है।२३।

काव्येच्छया विशेषो यः स राग इति गीयते।
अभ्यासोपहितः[1] कान्तिं सहजामपि वर्तते ।।२४
हारिद्रश्चैव कौसुम्भो नीलीरागश्च स त्रिधा।
वैशेषिकः परिज्ञेयो यः स्वलक्षणगोचरः ।।२५

काव्यपरम्परानुसार विशेष रूप से प्राप्त गुण राग कहाता है। इसमें स्वाभाविक कान्ति विद्यमान रहती है। हारिद्र, कौसुम्भ और नीलीराग में इसके तीन भेद हैं। जो गुण किसी विशेष रचना में व्यक्तिगत रूप से रहें, वैशेषिक गुण कहाते हैं। २४-२५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये काव्यगुणविवेककथनं नाम षट्चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।३४६

---

१ क. ङ. °तः कीर्तिःसजातिमतिव°।

अथ सप्तचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

काव्यदोषविवेकः

अग्निरुवाच —

उद्वेगजनको दोषः [1]सत्यानां स च सप्तधा ।
वक्तृवाचकवाच्यानामेकद्वित्रिनियोगतः ॥१
तत्र वक्ता कविर्नाम [2]प्रथते स च भेदतः ।
संदिहानोऽविनीतः सन्नज्ञो ज्ञाता चतुर्विधः ॥२

अग्निदेव बोले—सहृदयों के हृदय को उद्विग्न (विक्षोभित) करने वाला तत्त्व काव्यदोष कहलाता है और वह वक्तृ, वाचक और वाच्य के भेद से सात प्रकार का होता है । प्रथम प्रकार का वक्तृदोष कवि की ओर से ही होता है । इसके चार भेद है—संदिहान, अविनीत, सन्नज्ञ तथा ज्ञाता । १-२ ।

निमित्तपरिभाषायामर्थसंस्पर्शिवाचकम् ।
तद्भेदौ पदवाक्ये द्वे कथितं लक्षणं द्वयोः[3] ॥३

निमित्त की परिभाषा में अर्थ का संस्पर्श देने वाले को वाचक दोष कहते हैं । इसके दो भेद हैं—पद और वाक्य । ३ ।

असाधुत्वाप्रयुक्तत्वे द्वावेव पदनिग्रहौ ।
शब्दशास्त्रविरुद्धत्वमसाधुत्वं विदुर्बुधाः ॥४
व्युत्पन्नैरनिवद्धत्वमप्रयुक्तत्वमुच्यते ।
छान्दसत्वमविस्पष्टत्वं[4] च कष्टत्वमेव च ॥५
तदसामयिकत्वं च ग्राम्यत्वं चेति पञ्चधा ॥

असाधुत्व और अप्रयुक्तत्व ये दो दोप पद के अन्तर्गत आते है । शब्दशास्त्र अर्थात् व्याकरण की विरुद्धता को विद्वान् असाधुत्व दोप कहते हैं । विद्वानों से अरचित प्रयोग को दोष माना गया है, अर्थात् कवियों ने जिसका प्रयोग न

---

१ छ. सम्याना । २ क. ङ. प्रथमे । ३ ख. ग. °योः । ससाधुत्वा- प्रमुक्त° । ४ ख. ग. °ष्टयुद्धं क° ।

किया हो। ये पांच काव्यदोष हैं—छान्दसत्व, अविस्पष्ट, कष्टत्व असामयिकत्व तथा ग्राम्यत्व। ४-५½।

छान्दसत्वं न भाषायामविस्पष्टमबोधतः[१] ॥६
गूढार्थता विपर्यस्तार्थता संशयितार्थता।
अविस्पष्टार्थता भेदास्तत्र गूढार्थतेति सा ॥७
यत्रार्थो दुःखसंवेद्ये विपर्यस्तार्थता पुनः।
विवक्षितान्यशब्दार्थप्रतिपत्तिमलीमसा ॥८

छान्दसत्व दोष वहाँ होता है जहाँ कोई ऐसा प्रयोग दिखाई दे जो केवल वैदिक साहित्य में ही प्रयुक्त होता हो। भाषा अर्थात् लौकिक साहित्य में उसका प्रयोग न होता हो। शब्द के अर्थ का अबोध अविस्पष्ट दोष कहाता है, इसके तीन भेद हैं—गूढ़ार्थता, विपर्यस्तार्थता, संशयितार्थता। गूढ़ार्थता दोष वहाँ होता है जहां किसी शब्द के अर्थ का ज्ञान कष्टसाध्य हो। जहाँ पर अभीष्ट अर्थ से विपरीत किसी अन्य अर्थ की धुंधली सी अथवा अस्पष्ट प्रतीति हो वहां विपर्यस्तार्थता दोष होता है। ६-८।

अन्यार्थत्वासमर्थत्वे एतामेवोपसर्पतः।
संदिह्यमानवाच्यत्वमाहुः संशयितार्थताम् ॥९

जहां वास्तविक अर्थ की जानकारी न हो सके और पाठक दो अर्थों की संदेहजन्य द्विविधा में ही रह जाय वहाँ संशयितार्थता दोष होता है। ९।

दोषत्वमनुबध्नाति सज्जनोद्वेजनादृते।
असुखोच्चार्यमाणत्वं[२] कष्टत्वं समयाच्युतिः[३] ॥१०
असामयिकता[४] नेयामेतां च मुनयो जगुः।
ग्राम्यता तु जघन्यार्थप्रतिपत्तिः खलीकृता ॥११
वक्तव्यग्राम्यवाच्यस्य वचनात्स्मरणादपि।
तद्वाचकपदेनाभिसाम्याद्भवति सा त्रिधा ॥१२

---

१ ख. च. °विस्पष्ट° । २ ख. ग. °त्व° समयाच्युतिरीरिता। अ°।
३ क. ङ. °तिः। समयाऽपिकृता नेमेसतां। च. °तिः। आसामायक°
४ ख. °तालेया°।

जहाँ सहृदयों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों को उच्चारण (किसी शब्द विशेष का) में कष्ट हो, वहाँ कष्ट से उच्चरित होने के कारण कष्टत्व दोष होता है। कविपरम्परा के विरुद्ध कही गई बात को साहित्यशास्त्रियों ने असामयिकता दोष माना है। ग्राम्यता दोष वहाँ होता है जहाँ किसी शब्द से जघन्य अर्थात् जुगुप्सित अर्थ का आभास हो। इसके तीन भेद हैं—ग्रामीण के वचन का कथन, अन्य वचन से उस कथन का स्मरण तथा तत्कथन का तद्वत् प्रयोग।१०-१२।

दोषः साधारणः [1]प्रातिस्विकोऽर्थस्य स तु त्रिधा[2]।
अनेकभागुपालम्भः साधारण इति स्मृतः ॥१३
क्रियाकारकयोर्भ्रंशो विसंधिः पुनरुक्तता।
व्यस्तसंबन्धिता चेति पञ्च साधारणा मताः ॥१४

अर्थ दोप (वाच्यदोष) दो प्रकार के होते है—साधारण और प्रातिष्ठिक। सर्वत्र प्रचलित उपालम्भ साधारण दोष कहाता है। इसके पाँच भेद हैं। क्रियाभ्रंश, कारकभ्रंश, विसंधि, पुनरुक्तता और व्यस्त-संबन्धिता। १३-१४।

अक्रियत्वं क्रियाभ्रंशो भ्रष्टकारकतां पुनः।
कर्त्रादिकारकाभावो विसंधिः संधिदूषणम् ॥१५
विगतो वा विरुद्धो वा संधिः स भवति द्विधा।
संधेर्विरुद्धता कष्टमपदार्थान्तरागमात् ॥१६

जहाँ पर क्रिया का अभाव हो वहाँ अक्रियत्व और जहाँ कर्तादिकारक का अभाव होता है वहां 'कारकभ्रंश' दोष होता है। संधिदोष को विसन्धि कहते हैं। इसके दो भेद हैं—सन्धि का अभाव और विरुद्धसंधि। विरुद्धसंधि वहाँ होती है जहाँ अन्य पदार्थ के आगमन से अर्थ ज्ञान में कष्ट हो। १५-१६।

पुनरुक्तत्वमाभीक्ष्ण्यादभिधानं द्विधैव तत्।
अर्थावृत्तिः पदावृत्तिरर्थावृत्तिरपि द्विधा ॥१७
प्रयुक्तवरशब्देन तथा शब्दान्तरेण च।
नाऽऽवर्तते पदावृत्तौ वाच्यमावर्तते पदम् ॥१८

---

१ ख. ग. °तिष्ठिकोऽ°। २ छ. द्विधा।

वस्तु का पुनः-पुनः कथन पुनरुक्त दोष कहाता है। इसके दो भेद हैं—पदावृत्ति तथा अर्थावृत्ति। अर्थावृत्ति के भी दो भेद हैं—वर (उचित) शब्द की आवृत्ति से तथा शब्दान्तर (अन्य शब्द) की आवृत्ति से। शब्दावृत्ति में शब्द की आवृत्ति होती है और अर्थावृत्ति में अर्थ की। १७-१८।

व्यस्तसम्बन्धता सुष्ठु संबन्धो व्यवधानतः।
संबन्धान्तरनिर्भासात्संबन्धान्तरजन्मनः ॥१९
अभावेऽपि तयोरन्तर्व्यवधानात्त्रिधैव सा।
अन्तरा पदवाक्याभ्यां प्रतिभेदं पुनर्द्विधा ॥२०

जहाँ पर सुन्दर सम्बन्ध के निर्वाह में बाधा हो वहाँ व्यस्त सम्बन्धता दोष होता है। इसके तीन भेद हैं—अन्य सम्बन्ध का आभास, अन्य सम्बन्ध का जन्म, इन दोनों के न रहने पर भी अर्थज्ञान में बाधा। पद और वाक्य में होने के कारण पुनः प्रत्येक भेद के दो-दो भेद होते हैं।१९-२०।

([1]वाच्यमर्थ्यर्थ्यमानत्वात्तद्द्विधा[2] पदवाक्ययोः।
[3]व्युत्पादितं पूर्ववाच्यं व्युत्पाद्यं चेति भिद्यते ॥२१
इष्टव्याघातकारित्वं हेतोः स्यादसमर्थता।
असिद्धत्वं विरुद्धत्वमनैकान्तिकता तथा ॥२२
एवं सत्प्रतिपक्षत्वं कालातीतत्वसंकरः।
पक्षे सपक्षे नास्तित्वं विपक्षेऽस्तित्वमेव तत् ॥२३
[4]काव्येषु [5]परिपाद्यानां न भवेदप्यरुंतुदम्।
एकादश निरर्थत्वं दुष्करादौ न दुष्यति) ॥२४

अर्थ में प्रयोजनीय होने से वाक्य दोष दो प्रकार का होता है। पद दोष तथा वाक्य दोष। पद-दोष व्युत्पादित होता है अर्थात् उच्चारण मात्र से प्रतीत हो जाता है जबकि वाक्य दोष का ज्ञान व्युत्पाद्य अर्थात् व्युत्पत्ति करने पर ही ज्ञात होता है। जहाँ ईप्सित अर्थ में बाधा पहुँचाने वाला कोई कारण हो

---

१ 'वाच्यमर्थार्थ्यमानत्वात्तद्द्विधा……दुष्यति' च. पुस्तके नास्ति। २ क. ङ. °मर्थोऽन्यमा°। ३ क. ङ. दितापूर्ववाचा व्युत्पादं वेति। ४ ख. ग. °षु पारिसद्या°। ५ क. ङ. रिषेधानां।

वहाँ असमर्थता दोष होता है। असिद्धत्व, विरुद्धत्व, अनैकान्तिकता, सत्प्रति-पक्षत्व, कालातीतसंकर, पक्षसपक्ष नास्तित्व, विपक्ष अस्तित्व (ये सब 'हेतु' अलंकार के भेद हैं) दोष, काव्य में प्रतिपादित होने पर विशेष मनस्ताप विधायक नहीं होते। दुष्कर (समासादि के कठिन स्थलों पर) आदि में ग्यारह प्रकार का निरर्थत्व (जिसमें निरर्थक शब्द लेते हैं) भी दोष नहीं रहता। ।२१-२४।

दुःखा करोति दोषज्ञान्मूढार्थत्वं न दुष्करे।
न ग्राम्यतोद्वेगकारी प्रसिद्धेर्लोकशास्त्रयोः ॥२५
क्रियाभ्रंशेन लक्ष्मास्ति क्रियाध्याहारयोगतः।
भ्रष्टकारकताक्षेपवलाध्याहृतकारके[1] ॥२६

दुष्करस्थल में गूढ़ार्थता दोष नहीं रहता। लोक में तथा शास्त्र में प्रसिद्ध ग्राम्यता भी उद्वेगकारी नहीं होती। क्रियाभ्रंश में क्रिया के अध्याहार करने से यह दोष नहीं रहता। आक्षेप के वल से जहाँ कारक का अध्याहार हो वहाँ भ्रष्टकारकता दोप नहीं रहता।२५-२६।

प्रगृह्ये गृह्यते नैव क्षतं विगतसंधिना[2]।
कष्टपाठाद्विसंधित्वं दुर्वचादौ न दुर्भगम् ॥२७
अनुप्रासे पदावृत्तिर्व्यस्तं संबन्धिता शुभा।
नार्थसंग्रहणे दोषो व्युत्क्रमाद्यैर्न लिप्यते ॥२८

विगतसंधिता से भी कोई विशेष हानि नहीं होती। दुर्वचन आदि में कठिन पाठ के कारण 'विसंधिता' दोष भी नही रहता। अनुप्रास में पदावृत्ति के कारण व्यस्तसंवन्धिता दोष भी शुभ माना गया है। अर्थसंग्रहण काल में व्युत्क्रमादि दोष नहीं रहता।२७-२८।

[3]विभक्तिसंज्ञा लिङ्गानां यत्रोद्वेगो न धीमताम्।
संख्यायास्तत्र भिन्नत्वमुपमानोपमेययोः ॥२९
अनेकस्य तथैकेन वहूनां वहुभिः शुभा।
कवीनां समुदाचारः समयो नाम गीयते ॥३०

---

१ क. ङ. °के। गृह्यते गृह्यते नै। ख. ग. °के। अगृह्यागृह्यते। २ क. ख. °धिता। क°। ३ क. ङ. च. °संख्यालि°।

जहाँ उपमान और उपमेय का लिंग पृथक्-पृथक् हो वहाँ विभक्ति दोष, संख्यादोष, लिंगदोष उद्वेगकारक नही माना गया है। अनेक व्यक्तियों का एक बात को कहना अथवा बहुतों का बहुत बार कहना भी शुभ होता है। कवियों का समुदाचार समय कहाता है।२६-३०।

सामान्यश्च विशिष्टश्च धर्मवद्भवति द्विधा।
सिद्धसैद्धान्तिकानां च कवीनां वा विवादतः ॥३१
यः प्रसिध्यति सामान्य इत्यसौ समयो मतः।
सर्वे सि (सैं) द्धान्तिका येन संचरन्ति निरत्ययम्।३२
कियन्त एव वा येन सामान्यस्तेन स द्विधा[1]।
छेदसिद्धान्ततोऽन्यः स्यात्केषाञ्चिद्भ्रान्तितो यथा ॥३३
तर्कज्ञानं मुनेः कस्य कस्यचित्क्षणभङ्गिका।
भूतचैतन्यता[2] कस्य ज्ञानस्य सुप्रकाशता[3] ॥३४
[4]प्रज्ञातस्थूलता शब्दानेकान्तत्वं तथाऽर्हतः।

इसके दो भेद हैं—सामान्य और विशेष। सफल सैद्धान्तिकों के अथवा कवियों के विवाद के परिणामस्वरूप जो प्रसिद्ध होता है उसे सामान्य समय (कविख्याति) कहते हैं। इस सामान्य समय के पुनः दो भेद होते हैं, एक तो वह जिसका अनुसरण सब सैद्धान्तिक बिना किसी संकोच के करते हैं और दूसरा वह जिसका अनुसरण कतिपय सैद्धान्तिक ही करते हैं। एक अन्य छेद सिद्धान्त है जैसा कि कुछ व्यक्तियों ने भ्रान्तित किया है। किसी मुनि का तर्कज्ञान, किसी मुनि का क्षणभंगुर सिद्धान्त, किसी की भूत चैतन्यता और किसी की प्रज्ञातस्थूलता, किसी का शब्दानेकत्व आदि। अर्थात् कोई मुनि तो जगत् को ही तर्क प्रधान मानकर चलता है और कोई इसे क्षणिक समझता है। कोई प्राणि-चैतन्य को स्वीकार करता है तो कोई जगत् को अपने आप में प्रकाशमान मानता है, कोई इस स्थूल संसार को ही सब कुछ समझता है। कोई अर्हत् (जैनागम) जगत् को शब्द रूप ही मानते हैं। ३१-३४½।

---

१ क. ङ. ॰धा। इदं सिद्धं ततोऽन्यत्स्यात्के॰ । २ क. ङ. कस्माज्ज्ञान॰। ३ क. ङ. ॰ता। षडङ्गुलस्थूलश॰। ४ ख. ग. प्रकूलस्थू॰।

शैववैष्णवशाक्तेयसौरसिद्धान्तिनां मतिः ॥३५
जगतः कारणं ब्रह्म सांख्यानां सप्रधानकम् ।
अस्मिन्सरस्वतीलोके संचरन्तः परस्परम् ॥३६
बन्धन्ति व्यतिपश्यन्तो यद्विशिष्टः स उच्यते ।
परिग्रहादप्यसतां सतामेवापरिग्रहात् ॥३७
भिद्यमानस्य तस्यायं द्वैविध्यमुपगीयते ।
प्रत्यक्षादिप्रमाणैर्यद्बाधितं तदसद्विदुः ॥३८
कविभिस्तत्प्रतिग्राह्यं ज्ञानस्य द्योतमानता ।
यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थसत् ॥३९
[1]अज्ञानाज्ज्ञाततत्त्वे च ब्रह्मैव परमार्थसत् ।
विष्णुः सर्गादिहेतुः स शब्दालङ्काररूपवान् ॥
अपरा च परा विद्या तां ज्ञात्वा मुच्यते भवात् ॥४०

शैव, वैष्णव, शाक्त तथा सौर सिद्धान्तवादियों के मत से इस संसार का कारण ब्रह्म है जब कि सांख्य इस जगत् को प्रकृतिनिर्मित मानते हैं। इस काव्यजगत् में जो नियम परस्पर व्यवहार काव्याचार द्वारा बनता है उसे विशिष्ट समय कहा गया है। असज्जनों के ग्रहण से तथा सज्जनों के परित्याग से इसके दो भेद होते है। प्रत्यक्षादि प्रमाणों से जो बंधा होता है उसे असत् और कवियों द्वारा प्रतिगृहीत सत्। ब्रह्म का परमार्थ सत् दो तत्त्वों में विभक्त है—अज्ञान तत्त्व और अज्ञात तत्त्व। सृष्टि का आदि कारण विष्णु है, वही शब्द और अलंकार रूप है। जगत् में अपरा (अप्रत्यक्ष) परा (प्रत्यक्ष) में दो विद्यायें होती हैं। इन्हें जानकर व्यक्ति संसार से मुक्त हो जाता है।३५-४०।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये काव्यदोषविवेककथनं नाम
सप्तचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३४७

———

१ ख. च. ॰नाज्ज्ञानतत्त्वेकमोक्ष्यैव ।

अथाष्टचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

एकाक्षराभिधानम्

अग्निरुवाच—

एकाक्षराभिधानं च मातृकं[1] च वदामि ते ।
अ विष्णुः प्रतिषेधः स्यादा पितामहवाक्ययोः ॥१
सीमायामव्ययमा च भवेत्संक्रोधपीडयोः ।
इः कामे रतिलक्ष्म्योरी उः शिवे रक्षकाद्य ऊः ॥२
ऋ [2]शब्दे चादितौ ॠ स्याल्लृ लॄ ते वै दितौ गुहे ।
ए देवी ऐ योगिनी स्यादो ब्रह्मा औ महेश्वरः ॥३

अग्निदेव बोले—अब मैं एकाक्षर कोष और मातृकाओं के सम्बन्ध में बतलाऊँगा । 'अ' का अभिप्राय है विष्णु तथा प्रतिषेध 'आ' का अभिप्राय है पितामह, वाणी और सीमा । यह 'आ' जब अव्यय के रूप में प्रयुक्त होता है तब यह क्रोध और पीड़ा को अभिव्यक्त करता है । इकार काम में तथा ईकार रति और लक्ष्मी के लिए प्रयुक्त होता है । उकार का प्रयोग शिव के लिये और ऊकार का राक्षस इत्यादि के लिए होता है । ऋकार का प्रयोग शब्द के लिए, ॠकार का प्रयोग अदिति देवता के लिए और लृ तथा लॄ का प्रयोग क्रमशः दिति और गुह के लिए किया जाता है । एकार का प्रयोग देवी के लिए, ऐकार का योगिनी के लिए, ओकार का ब्रह्मा के लिए और औकार का प्रयोग महेश्वर के लिए होता है ।१-३।

अं काम (मे) अः प्रशस्तं स्यात्को ब्रह्मादौ कु कुत्सिते ।
खं शून्येन्द्रियमुखं गो गंधर्वे च विनायके ॥४
गं गीते गो गायने स्याद्घो घण्टा किंकिणीमुखे ।
ताडने ङश्च विषये स्पृहायां चैव भैरवे[3] ॥५
चो दुर्जने निर्मले छश्छेदे जिर्जयने तथा ।
जं गीते झः प्रशस्ते स्याद्बले ञो गायने च टः ॥६
ठश्चन्द्रमण्डले शून्ये [4]शिवे चोद्बन्धने मतः ।
डश्च रुद्रे ध्वनौ त्रासे ढक्कायां ढो ध्वनौ मतः ॥७

---

१ ख. ग. °तृकार्णं व° । २ ख. च. °ब्दे वाजितौ ऋः स्यादृतो ले-स्याल्लृतौ गृहे । ३ ख. ग. °वे । चतुष्करे निर्म° । ४ क. ङ. शिवो बोद्बन्ध, । ख. ग. शिवोडोद्बन्ध° ।

अं का प्रयोग काम में, और अः का प्रयोग प्रशस्ति के लिए होता है। 'क' ब्रह्मा इत्यादि देवताओं के लिए और 'कु' का प्रयोग कुत्सित के लिये होता है। 'खं' का अर्थ है आकाश, इन्द्रिय, तलवार, गन्धर्व और विनायक। 'गं' का अर्थ है गीत और गो का अर्थ है गायन। 'घ' का अर्थ है घण्टा तथा किंकिणि। 'ङ' का अर्थ है ताडन, विषय, इच्छा और भैरव। 'च' का अर्थ है दुर्जन और निर्मल, 'छ' का छेदन करना, 'जि' का जीतना, 'जम्' का गीत, 'झः' का प्रशस्ति और 'ञ' का बल। ट का अर्थ है गायन, 'ठ' का अर्थ है मण्डल, आकाश, शिव और बन्धन। 'ड' का अर्थ है रौद्र ध्वनि और त्रास तथा ढ का अर्थ है ढक्का की ध्वनि।४-७।

णो निष्कर्षे निश्चये च तश्चौरे क्रोडपुच्छके।
भक्षणे थश्छेदने दो धारणे शोभने मतः ॥८
धो धातरि च धूस्तूरे नो वृन्दे सुगते तथा।
प उपवने विख्यातः पूश्च झञ्झानिले मतः ॥९
फु फूत्कारे निष्फले च विः (विः) पक्षी भं च तारके।
मा श्रीर्मानं च माता [1]स्याद्योगे यो यातरीरिणे ॥१०

णकार का अर्थ है निष्कर्ष तथा निश्चय और तकार का अर्थ है चोर तथा नीड और पक्षी की दुम। 'थ' का अर्थ है भक्षण करना तथा काटना। 'द' का अर्थ है धारण करना और शोभित करना। 'ध' का अर्थ है विधाता और धतूरे का पुष्प। 'न' का अर्थ है समूह अथवा सुगत। 'प' उपवन के अर्थ में विख्यात है तथा 'पू' झंझावात के अर्थ में माना गया है। 'फु' का अर्थ फूत्कार और निष्फल, 'वि' का अर्थ है पक्षी और 'भ' का अर्थ है तारक। 'मा' का अर्थ है लक्ष्मी परिणाम और माता। 'य' का अर्थ है योग तथा यात्रा।८-१०।

रो वह्नौ बलशक्रे च लो विधातरि ईरितः[2]।
विश्लेषणे वो वरुणे शयने शश्च शं सुखे ॥११
षः श्रेष्ठे सः परोक्षे च सा लक्ष्मीः स [3]कचे मतः।
धारणे हस्तथा रुद्रे क्षः क्षेत्रे चाक्षरे मतः ॥१२

---

१ क. ङ. °गे या यानवारिणि। रो। २ ख. ग. °तः। श्लेषणे लीर्वो व°।
३ ख. ग. करे।

क्षो नृसिंहे हरौ तद्वत्क्षेत्रपालकयोरपि ।
मन्त्र एकाक्षरो देवो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥१३

'र' का अर्थ है अग्नि, वल और इन्द्र तथा 'ल' विधाता के अर्थ में कहा गया है। 'व' का प्रयोग विश्लेषण और वरुण के अर्थ में, 'श' का शयन अर्थ में और 'शं' का सुख अर्थ में किया जाता है। 'ष' का अर्थ श्रेष्ठ, 'स' का परोक्ष, 'सा' का लक्ष्मी और 'स' का केश कहा गया है। 'ह' का प्रयोग धारण करने तथा रुद्र के लिए और 'क्ष' का प्रयोग क्षेत्र और अक्षर के लिए माना गया है। वह नृसिंह हरि और क्षेत्र तथा पालक के अर्थ में भी प्रयुक्त किया जाता है। यह एकाक्षर मंत्र साक्षात् देवता रूप तथा भोग और मोक्ष का देने वाला है।११-१३।

क्षौं हयशिरसे नमः सर्वविद्याप्रदो मनुः ।
अकाराद्यास्तथा मन्त्रा मातृकामन्त्र उत्तमः ॥१४
एकपद्मेऽर्चयेदेतान्नव दुर्गाश्च पूजयेत् ।
भगवती कात्यायनी कौशिकी चाथ चण्डिका ॥१५
प्रचण्डा सुरनायिका उग्रा पार्वती दुर्गया ॥१६
ओम् चण्डिकायै विद्महे भगवत्यै धीमहि ।
तन्नो दुर्गा प्रचोदयात् ॥१७
क्रमादि तु षडङ्गं स्याद्गणो गुरुर्गुरुः क्रमात् ।
अजिताऽपराजिता चाथ जया च विजया ततः ॥१८
कात्यायनी भद्रकाली मङ्गला सिद्धिरेवती ।
[1]सिद्धादिवटुकाः पूज्या हेतुकश्च कपालिकः ॥१९
एकपादो भीमरूपो दिक्पालान्मध्यतो नव ।
[2]ह्रीं दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा [3]मन्त्रसिद्धये ॥२०

'क्षौं हयशिरसे नमः' यह मन्त्र सभी विद्याओं का देने वाला है। अकार इत्यादि मन्त्र उस देवता के हैं जिसका वे प्रतिनिधित्व करते हैं। यह मंत्र उत्तम कहे गये हैं। इन्हें मातृका मन्त्र कहा गया है। एक पद्म यन्त्र के

१. ख. ग. सिद्ध्यादि° । २ 'ह्रीं…मन्त्रार्थसिद्धये' नास्ति ख. ग. पुस्तकयोः ।
३ ख. ग. °र्थस्य च सि° ।

ऊपर दुर्गा के साथ भगवती, कात्यायनी, कौशिकी, चण्डिका, प्रचण्डा, सुर-नायिका, उग्रा और पार्वती आदि नौ देवियों का पूजन करना चाहिए। 'ॐ चण्डिकायै विद्महे भगवत्यै धीमहि। तन्नो दुर्गा प्रचोदयात्' इस मन्त्र के द्वारा षडङ्ग पूजा-विधि से अजिता, अपराजिता, जया, विजया, कात्यायनी, भद्रकाली, मङ्गला, सिद्धि और रेवती का पूजन करना चाहिए। साथ ही गणों, हेतु, कापालिक, एकपाद, भीमरूप और दिक्पालों का भी पूजन करना चाहिए। 'ह्रीं दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा'—यह मन्त्र अर्थसिद्धि के लिए होता है।१४-२०।

गौरी पूज्या च धर्माद्याः स्कन्दाद्याः शक्तयो यजेत्।
प्रज्ञा ज्ञानक्रिया वाचा वागीशी ज्वालिनी तथा॥२१
('वामा ज्येष्ठा च रौद्री च गौरीं ह्रीं च पुरःसरा।
ह्रीं सः, महागौरि रुद्रदयिते स्वाहेति वा॥२२
ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः सुभगा ललिता तथा।)
कामिनी काममाला च इन्द्राद्याः शक्तिपूजनम्॥२३

इसी मन्त्र से कर्म और स्कन्द आदि देवताओं का तथा प्रज्ञा, ज्ञान क्रिया, वाचा, वागीशी, और ज्वालिनी शक्तियों का भी यजन करना चाहिए। इसी प्रकार 'गौरी' ह्रीं' सहित उपर्युक्त मन्त्रों से वामा, ज्येष्ठा और रौद्रा का पूजन करना चाहिए। 'ह्रीं सः महागौरी रुद्रदयिते स्वाहा'—इस मन्त्र से ज्ञान-शक्ति, क्रियाशक्ति, सुभगा और ललिता का यजन करना चाहिये। इसी प्रकार कामिनी, काममाला और इन्द्रादि शक्तियों का भी पूजन करना चाहिए।२१-२३।

ओम् गं स्वाहा मूलमन्त्रोऽयं गं वा गणपतये नमः।
षडङ्गो रक्तशुक्लश्च दन्ताक्षपरशूत्कटः॥२४
समोदकोऽथ गन्धादि गन्धोल्कायेति च क्रमात्।
गजो महागणपतिर्महोल्कः पूज्य एव च॥२५
कूष्माण्डाय, एकदन्ताय त्रिपुरान्तकाय श्यामदन्तविकट-
हरहासाय लम्बनासाननाय पद्मदंष्ट्राय मेघोल्काय
धूमोल्काय वक्रतुण्डाय विघ्नेश्वराय विकटोत्कटाय
गजेन्द्रगमनाय भुजगेन्द्रहाराय शशाङ्कधराय गणाधिपतये
स्वाहा॥२६

---

१ 'वामा……ललिता तथा' छ. पुस्तके नास्ति।

एतैर्मनुभिः स्वाहान्तैः पूज्यस्तिलहोमादिमाऽर्थभाक् ।
काद्यै राबीजसंयुक्तैस्तैराद्यैश्च नमोन्तकैः ॥२७
मन्त्राः पृथक्पृथग्वा [1]स्युर्द्विरेफद्विर्मुखाक्षिणः ।
कात्यायनं स्कन्द आह यत्तद्व्याकरणं वदे ॥२८

गणपति के पूजन का मुख्य मन्त्र है 'ॐ गं स्वाहा' इसी मंत्र से गणेश के छह अंगों का रक्तशुक्ल, दन्ताक्षपरशु, उत्कट, समोदक, गन्धादि और गन्धोल्क का भी पूजन क्रमशः करना चाहिये । इसी प्रकार से गज, महागणपति, और महोल्क का भी पूजन करना चाहिए । "कूष्माण्डाय......गणाधिपतये स्वाहा'—इन मन्त्रों से स्वाहाकार से युक्त तिल की आहुतियाँ देने से सभी कामनाओं की सिद्धि होती है । इनके आदि में 'क' बीज तथा अन्त में 'नमः' का प्रयोग करना चाहिये । अथवा इस देवता का पूजन उस विजय मन्त्र से करना चाहिये जिसके आदि में 'हः' और अन्त में 'नमः' का प्रयोग किया जाता है । फिर इन्हीं मन्त्रों द्वारा तिलों से होम आदि करके मन्त्रार्थभूत देवता का पूजन करे । अथवा द्विरेफ, द्विर्मुख, एवं द्व्यक्ष आदि पृथक्-पृथक् मन्त्र हो सकते हैं । अब कुमार कार्तिकेय जी ने कात्यायन को जिसका उपदेश किया था, वह व्याकरण बतलाऊँगा ।२७-२८।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये एकाक्षराभिधानं नामाष्टाचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।३४८

अथैकोनपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

व्याकरणसारः

स्कन्द उवाच—
वक्ष्ये व्याकरणं सारं सिद्धशब्दस्वरूपकम् ।
कात्यायन [2]विबोधाय [3]बालानां बोधनाय च ॥१

---

१ क. ङ. स्युर्देवेषद्विषगाद्रिगाः । का° । ख. स्युर्देवद्दिक्षुदुथाक्षिगाः । का°
२ क. ख. ग. ङ. विरोधा° । ३ ख. ग. लानामविधारय । प्र° ।

स्कन्द बोले—कात्यायन ! अब मैं बोध के लिये तथा बालकों को व्याकरण का ज्ञान कराने के लिए सिद्ध शब्दरूप सारभूत व्याकरण का वर्णन करता हूँ, सुनो ।१।

प्रत्याहारादिकाः संज्ञाः शास्त्रसंव्यवहारगाः ॥२
अइउण्, ऋलृक्, एओङ्, ऐऔच्, हयवरट्, लण्
ञमङणनम्, झभञ, घढधष्, जबगडदश्,
खफछठथचटतव्, कपय्, शषसर्, हल् ॥३
इति प्रत्याहारः ॥४

पहले प्रत्याहार आदि संज्ञायें बतलायी जाती हैं, जिनका व्याकरणशास्त्रीय प्रक्रिया में व्यवहार होता है । 'अइउण्.......हल्' ये माहेश्वर सूत्र एवं 'अक्षर-समाम्नाय' कहलाते हैं । इनमें 'अण्' आदि 'प्रत्याहार' बनते हैं ।२-४।

उपदेश इद्धलन्त्यं भवेदजनुनासिकः ।
आदिवर्णो गृह्यमाणोऽप्यन्त्येनेता सहैव तु ॥५
तयोर्मध्यगतानां स्याद्ग्राहकः स्वस्य तद्यथा[1] ॥६
[2]अण्, एङ्, अट्, यङ्, (य्) (यञ्) छब् (व्), झम् (ष्)
भष्, अक्, इक्, (उक्), अण्, इण्, यण, परेण[3]
णकारेण । अम्, यम्, ङम्, अच्, इच्, (एच्) ऐच्,
अय्, मय्, झय्, खय्, जव्, (श्) झव् (र्), खव् (र्)
चव् (र्), (यर्), शव् (र्), अस् (श्), हस् (श),
बस् (श्), भस् (वश्), (झश्), अल्, हल्, ब
(व) ल्, रल्, झल्, शल्, इति प्रत्याहारः (राः) ॥७

---

१ क. ख. °था । एङ् यञ् अण् पूर्वेण णकारेण । छव् अट् झष् भष् अक् अट् ठक् अण् इण् यण् परेण णकारेण । अम् जम् ङम् अच् इच् ऐच् यम् मस् षय् यर् स्वर वर शर अश् हश् वश् झश् जश् अल् । २ ख. °ण् वङ् अड् यङ् कररुश्च दुग्धकः षड अक इ उ अग् । ग °ण् एङ् अङ् कररूश्च दुग्धेकः पड अक इ उ अण् । ३ ख. °ण अय मम जय अव इत्र वप यम यग्व यज रठ रख खर अश दृश वश भर जस् श अल हल वल रज ज्वल मल शस इति । ग° ग्ग अय मम जय अव इउ वप यम यख यज रु रख खर सर अश दश वश भर जस् श अल हल वल रल ज्वल मल शस इति ।

उपदेशावस्था में अन्तिम 'हल्' तथा अनुनासिक 'अच्' की 'इत्' संज्ञा होती है। अन्तिम इत्संज्ञक वर्ण के साथ गृहीत होने वाला आदि वर्ण उन दोनों के मध्यवर्ती अक्षरों का तथा अपना भी ग्रहण कराने वाला होता है। इसी को 'प्रत्याहार' कहते हैं। जैसा कि निम्नाङ्कित उदाहरण से स्पष्ट होता है—'अण्, एङ्, अट् यय्, अथवा (यञ्) छव्, झष्, भष्, अक्, इक्, उक्। अण्, इण्, यण्—ये तीनों पर णकार अर्थात् लण् सूत्र के णकार से बनते हैं। अम्, यम्, ङम्, अच्, इच्, एच्, ऐच्, अय्, मय्, झय्, खय्, जश्, झर्, खर्, चर्, यर्, शर्, अश्, हश्, वश्, झश्, अल्, हल्, वल्, रल्, झल्, शल्—ये सभी प्रत्याहार हैं।५-७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये व्याकरणसारवर्णनं नामैकोनपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३४९

अथ पञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

संधिसिद्धरूपम्

स्कन्द उवाच—

वक्ष्ये[1] संधिं सिद्धरूपं स्वरसंधिमथाऽऽदितः।
दण्डाग्रं साऽऽगता दधीदं नदीहते मधूदकम् ॥१
[2]पितॄषभः, ऌकारश्च तवेदं सकलोदकम्।
अर्धर्चोऽयं तवल्कारः सैषा सैन्द्री तवौदनम् ॥२
खट्वौघोऽभवदित्येवं व्यसुधीर्वस्वलं कृतम्।
पित्रर्थोपवनं दात्री नायको लावको नयः ॥३
त इह तयिहेत्यादि तेऽत्र योऽत्र जलेऽकजम्।
प्रकृतिं नो अहो एहि अ अवेहि इ इन्द्रकम् ॥४
उ उत्तिष्ठ कवी एतौ वायू एतौ वने इमे।
अमी एते यज्ञभूते एहि देव इमं नय ॥५

---

१ क. ङ. संधिस्वरूपं च स्व°। २ ख. ग. °भः, होतृकारश्चैवमिदं सकलं कललो°।

स्कन्द बोले—कात्यायन ! अब सिद्ध संधियों का वर्णन करूँगा। पहले 'स्वर संधि' बतलायी जाती है—दण्डाग्रम्, साऽऽगता, दधीदम्, नदीहते, मधूदकम्, पितृॄषभः, लृृकारः तवेदम्, सकलोदकम् अर्धर्चोऽयम्, तवल्कारः, सैषा, सैन्द्री, तवौदनम्, खट्वौघोऽभवत्; इत्येवम्, व्यसुधीः, वस्वलंकृतम्, पित्रर्थोपवनम्, दात्री, नायकः; लावकः; नयः, त इह तयिह इत्यादि। तेऽत्र; योऽत्र, जलेऽकजम्। जहाँ सन्धि न होकर प्रकृति रूप ही रह जाता है, उसे 'प्रकृतिभाव' कहते हैं। उसके उदाहरण हैं—नो अहो; ऐहि, अ अवेहि, इ इन्द्रकम्, उ उत्तिष्ठ, कवी एतौ वायू एतौ, वने इमे, अमी एते, यज्ञ भूते, एहि देव, इमं नय।१-५।

वक्ष्ये संधिं व्यञ्जनानां 'वाग्यतोजेकमातृकः[2]।
षडेते तदिमेऽबादि वाङ्नीतिः षण्मुखादिकम् ॥६
वाङ्मनसं वाग्भावादिर्वाक्श्लक्ष्णं तच्छरीरकम्।
तल्लुनाति तच्चरेच्च क्रुङ्ङास्ते च सुगणि (ण्णि) ह ॥७
भवांस्चरन्भवांश्छात्रो भवांष्टीका भवांष्ठकः।
भवांस्तीर्थं भवान्स्थेयान्भ (ल्ल ?) वाँल्लेखा भवाञ्जयः ॥८
भवाञ्छेते भवाञ्च्शेते भवाञ्शेते भवाण्डीनः।
त्वम्भर्ता त्वङ्करिष्यादिः संधिर्ज्ञेयो विसर्गतः।९

अब व्यञ्जसंधि का वर्णन करूँगा—वाग्यतः (वाक्+यतः)। अजेकमातृकः (अच्+एकमातृकः)। षडेते (षट्+एते)। तदिमे (तत्+इमे) अबादि (अप्+आदि)। वाङ्नीतिः (वाक्+नीतिः)। षण्मुखः (षट्+मुखः)। वाङ्मनसम् (वाक्+मनसम्) इत्यादि। वाग्भावादिः (वाक्+भावादिः), वाक्श्लक्ष्णम् (वाक्+श्लक्ष्णम्)। तच्छरीरकम् (तत्+शरीरकम्)। तल्लुनाति (तत्+लुनाति)। तच्चरेच्च (तत्+चरेत्+च)। क्रुङ्ङास्ते(क्रुङ+आस्ते)। सुगणिह (सुगण्+इह)। भवांश्चरन् (भवान्+चरन्)। भवांश्छात्रो (भवान्+छात्रः)। भवांष्टीका (भवान्+टीका)। भवांष्ठकः (भवान्+ठकः)। भवांस्तीर्थम् (भवान्+तीर्थम्)। भवान्स्थेयान् (भवान्+स्थेयान्)। भवाँल्लेखा (भवान्+लेखा)। भवाञ्जयः (भवान्+जयः)। भवाञ्छेते (भवान्+शेते)। भवाञ्च्शेते (भवान्+शेते)। भवाञ्शेते (भवान्+शेते)।, भवाण्डीनः (भवान+डीनः) त्वम्भर्ता (त्वम्+भर्ता)। त्वङ्करिष्यादिः (त्वम्+करिष्यादिः) इत्यादि।६-९।

---

१ ख. ग. वाग्राताष्टैक°। २ क. ङ. °तो जैक°।

कश्छिन्द्यात्कश्चरेत्कष्टः कष्ठः कस्थश्च कश्चलेत् ।
क≍खनेत्क≍करोति स्म क ≍ पठेत्क ≍ फलेत वा ॥१०
कश्श्वशुरः कः श्वशुरः कस्स्वरः कः स्ववरः ।
कः फलेत कः शयिता कोऽत्र योधः क उत्तमः ॥११
देवा एते भो इह स्वदेवा यान्ति [1]भगो व्रज ।
[2]सुपूः सुदूरात्रिरत्र वायुर्याति पुनर्न हि ॥१२
पुनरेति स यातीह एष याति कः ईश्वरः ।
ज्योतीरूपं तव च्छत्रं म्लेच्छधीश्छिद्रमाच्छिदत् ॥१३

अब विसर्ग-संधि के सम्बन्ध में भी जान लेना चाहिये । कश्छिन्द्यात् (कः + छिन्द्यात्), कश्चरेत् (कः + चरेत्), कष्टः, कष्ठः, कस्थः (कः + स्थः), कश्चलेत् (कः + चलेत्), क ≍ खनेत् (कः + खनेत्) क≍करोतिस्म (कः + करोतिस्म), क ≍ पठेत् (कः + पठेत्), क ≍ फलेत् (कः + फलेत्), कश्श्वसुरः (कः + श्वशुरः), कःश्वशुरः (कः + श्वशुरः), कस्स्वरः (कः + स्वरः), कः स्ववरः (कः + स्स्ववरः), कः फलेत, कः शयिता, कोऽत्र योधः (कः + अत्र + योधः),क उत्तमः (कः + उत्तमः) देवा एते), (देवा + एते),भो इह स्व देवा यान्ति (भो + इह + स्वदेवाः + यान्ति) । भगोव्रज (भगः + व्रज), सुपूः(सु + पूर) सुदूरात्रिरत्र (सुदूः + रात्रिः + अत्र), वायुर्याति(वायुः + याति) पुनर्नहि (पुनः + नहि), पुनरेति (पुनः + एति), स यातीह (सः + याति + इह), एष याति (एषः + याति), क ईश्वरः (कः + ईश्वरः), ज्योतीरूपं (ज्योतिः + रूपम्), तवच्छत्रम् (तव + छत्रम्) म्लेच्छधीश्छिद्रमाच्छिदत् (म्लेच्छधीः + छिद्रम् + आच्छिदत् । ।१०-१३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये संधिसिद्धरूपकथनं नाम पञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।३५०

———

१ क. ङ. °गोऽनुजः सु° । २ ख. ग. सुपीः स्नहरग्निर° ।

अथैकपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

सुब्विभक्तिसिद्धरूपम्

स्कन्द उवाच—

[1]विभक्तिसिद्धरूपं च कात्यायन वदामि ते।
द्वे विभक्ती सुप्तिङश्च सुपः सप्त विभक्तयः ॥१
सु औ जसिति प्रथमा अमौट्शसो द्वितीया (यिका)।
टा भ्यां भिसिति तृतीया ङेभ्यांभ्यसश्चतुर्थ्यपि ॥२
ङसिभ्यांभ्यसः पञ्चमी स्यान्ङसोसामिति षष्ठ्यपि।
ङिओस्सुविति सप्तमी स्यात्स्युः प्रातिपदिकात्पराः ॥३

स्कन्द बोले—कात्यायन ! अब मैं तुम्हारे सम्मुख विभक्ति-सिद्धरूपों का वर्णन करता हूँ। विभक्तियाँ दो हैं—'सुप् और तिङ्'। 'सुप्' विभक्तिया, सात हैं। 'सु और जस'—यह प्रथमा विभक्ति है। अम् औट् शस्' यह द्वितीया 'टा भ्याम् भिस्'—यह तृतीया, 'ङे भ्याम्, भ्यस्'—यह चतुर्थी, 'ङसि भ्याम् भ्यस्' यह पञ्चमी, 'ङस् ओस् आम्'—यह षष्ठी तथा 'ङि ओस् सुप्'—यह सप्तमी विभक्ति है। ये सातो विभक्तियाँ प्रातिपदिक संज्ञा वाले शब्दों से परे प्रयुक्त होती हैं।१-३।

द्विविधं प्रातिपदिकं ह्यजन्तं च हलन्तकम्।
प्रत्येकं त्रिविधं तत्स्यात्पुमान्स्त्री च नपुंसकम् ॥४
दृश्यन्ते नायकास्तेषामनुक्तानां च वीर्यतः।
वृक्षः सर्वोऽथ पूर्वश्च प्रथमश्च द्वितीयकः ॥५
तृतीयः खड्गपा वह्निः सखा पतिरहर्पतिः।
पटुर्ना ग्रामणीन्द्रश्च खलपूर्मित्रभूः स्वभूः ॥६
सुश्रीः सुधीः पिता भ्राता ना कर्ता क्रोष्टुनप्तृकौ।
सुरा रा गौस्तथा द्यौर्ग्लौः स्वरान्ताः पुंसि नायकाः ॥७

---

१ ख. ग. °भक्तिं सिद्धरूपां च।

प्रातिपदिक दो प्रकार के होते हैं—अजन्त और हलन्त । प्रत्येक के तीन-तीन भेद हो जाते हैं—पुंल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग । इनमें से जिसके विषय में नहीं कहा गया है उनके भी प्रतिनिधि शब्द होते हैं—जैसे वृक्षः, सर्वः, पूर्वः, प्रथमः, द्वितीयकः, तृतीयः, खड्गपा, वह्निः, सखा, पतिः, अहर्पतिः, पटुः, ना, ग्रामणीः, इन्द्रः, खलपूः, मित्रभूः, स्वभूः, सुश्रीः, सुधीः, पिता, भ्राता, ना, कर्ता, क्रोष्टा, नप्ता, सुरः, रा, गौः, द्यौः, ग्लौः—यह सब स्वरान्त पुंल्लिग शब्द हैं ।४-७।

सुवाक्त्वक्पृषत्सम्राड्जन्मभाक्च सुराडपि ।
आपो मरुद्भवन्दीव्यन्भवांश्च मघवान्पिवन् ॥८
भगवानघवानर्वा वह्निमत्सर्ववित्सुपृत्[1] ।
[2]सुसीमा कुण्डी राजा च श्वा युवा मघवा तथा ॥९
पूषा सुकर्मा यज्वा च [3]सुवर्मा च सुधर्मणा ।
अर्यमा वृत्रहा पन्थाः [4]सुककुदादिपञ्च च ॥१०
प्रशान्सुतांश्च पञ्चाऽऽद्याः सुगौः सुराः सुपूरपि ।
चन्द्रमाः सुवचाः श्रेयान्विद्वांश्चोशनसा सह ॥११
पेचिवान्गौरनड्वान्गोधुङ्मित्रद्रुहोऽश्वलिट् ।
स्त्रियां जाया जरा वाला एडका सह वृद्धया ॥१२
([5]क्षत्रिया [6]बहुराजा च बहुपासार्कबालकाः ।
माया कौमुदगन्ध्या च सर्वा पूर्वा सहान्यथा) ॥१३
द्वितीया चा तृतीया च बुद्धिः स्त्री श्रीर्नदी सुधीः ।
भवन्ती चैव दीव्यन्ती भाती भान्ती च यान्त्यपि ॥१४
शृण्वती तुदती कर्त्री तुदन्ती कुर्वती मही ।
रुन्धती क्रीडन्ती दान्ती पालयन्ती सुराण्यपि (?) ॥१५
गौरी पुत्रवती नौश्च [7]वधुदेवतया भुवा ।
तिस्रो द्वे कति वर्षाभूः स्वसा माता वरा च गौः ॥१६

---

१ क. ख ग. °त्सुपः । सु° । २ क. ङ. सुसमिक्षिणी रा° । ख. ग. सुसमीकुन्तिरा° । ३ क. ङ. °र्मा वसु° । ४ क. ङ. सुकूपत्सुपपञ्च । ख. ग. सुकहूकादिकं च कः । प्र° । ५ 'क्षत्रिया......सहान्यथा' नास्ति छ. पुस्तके । ६ क. ङ. वहवो यावद्वहूदामार्थवाकुला । मा° । ७ ख. ग. वसुर्देवगुरुर्भवा ।

नौर्वाक्त्वक्प्राच्यवाचीति तिरश्ची समुदीच्यपि ।
शरद्विद्युत्सरिद्योषिदग्निवित्सस्यदा [1]दृश (ष) त्[2] ॥१७
यैषा सा वेदवित्संविद्बह्वी राज्ञी त्वया मया ।
सीमा पञ्चादयो राजा धूः पूश्चैव दिशा गिरा ॥१८
चतस्रो विदुषी चैव केयं दिक्, [3]दृक्च तादृशी ।
असौ स्त्रियां नायकाश्च नायकाश्च नपुंसके ॥१९

सुवाक्, त्वक्; पृषत्, सम्राट्, जन्म, भाक्, सुराट्, आपः; मरुत्, भवन्, दीव्यन्, भवान्, मघवान्, पिबन्, भगवान्, अघवान्, अर्वा, वह्निमत्, सर्ववित्, सुपृत्, सुसीमा, कुण्डी, राजा, श्वा, युवा, मघवा, पूषा, सुकर्मा, यज्वा, सुवर्मा, सुधर्मा, अर्यमा, वृत्रहा, पन्थाः, सुककुद्, आदि, पञ्च, सुगौः सुराः, सुपूः चन्द्रमाः, सुवचाः, श्रेयान्, विद्वान्, उशनाः, पेचिवान्, गौः, अनड्वान्, गोधुक्, मित्रद्रुह्, अश्वलिट्—ये सब पुंल्लिंग शब्द हैं। स्त्रीलिङ्ग शब्द हैं –जाया, जरा, वाला, एडका, वृद्धा, क्षत्रिया, बहुराजा, बहुदासा, अर्कवालका, माया, कौमुदगन्ध्या, सर्वा, पूर्वा, द्वितीया, तृतीया, बुद्धिः, स्त्री, श्रीः, नदी, सुधीः, भवन्ती, दीव्यन्ती, भाती, भान्ती और यान्ती। शृण्वती, तुदती, कर्त्री, तुदन्ती, कुर्वती, मही, रुन्धती, क्रीडन्ती, दान्ती, पालयन्ती, सुराणी, गौरी, पुत्रवती, नौः, वधूः देवता, भूः, तिस्रः, द्वे, कति, वर्षाभूः, स्वसा, माता, वरा, गौः, नौः, वाक्, त्वक्, प्राची, अवाची; तिरश्ची, समुदीची; शरद्, विद्युत्, सरित्, योषित्, अग्निवित्, सस्यदा, दृषत्; या; एषा, सा, वेदवित्, संविद्, बह्वी, राज्ञी, त्वया, मया, सीमा, राजा, धूः, पूः, दिशा, गिरा, चतस्रः विदुषी, का, इयं, दिक्, तादृशी ।८-१९।

कुण्डं सर्वं सोमपं च दधि वारि खलप्वथ ।[4]
मधु त्रपु कर्तृ भर्तृ अतिभर्तृ पयः पुरः ॥२०
प्राक्प्रत्यक्च तिर्यगुदग्जगज्जाग्रत्तथा स (श) कृत् ।
सुसंपच्च सुदण्डीह अहः किं चेदमित्यपि ॥२१
षट् सर्पिः श्रेयश्चत्वारि अदोऽन्ये ह्रीदृशाः परे ।
एतेभ्यः प्रथमादयश्च स्युः प्रातिपदिकात्पराः ॥२२

---

१ क. ङ. मृशत् । २ क. ङ. °त् । योषा सा वेदवित्सिद्धिर्हूराजावदाम° ।
३ ख. ग. षट् च ।४ ख. ग. खलं पृथु । म° ।

नपुंसकलिंग शब्द हैं—कुण्ड, सर्व, सोमप्, दधि, वारि, खलपू, मधु, त्रपु; कर्तृ, भर्तृ, अतिभर्तृ, पयः, पुरः, प्राक्, प्रत्यक्, तिर्यक्, उदक्, जगत्, जाग्रत्; सकृत्, सुसम्पत्, सुदण्डी, अहः, किम्, इदम्, षट्, सर्पिः, श्रेयः, चत्वारि और अदस्। इन प्रातिपदिकों के परे प्रथमा इत्यादि विभक्तियाँ रहा करती हैं।२०-२२।

धातुप्रत्ययहीनं यत्स्यात्प्रातिपदिकं तु तत्।
प्रातिपदिकात्स्वलिङ्गार्थवचने प्रथमा भवेत् ।।२३
संबोधने च प्रथमा उक्ते कर्मणि कर्तरि।
कर्म यत्क्रियते तत्स्याद्द्वितीया कर्मणि स्मृता ।।२४
क्रियते येन करणं कर्ता यश्च करोति सः।
अनुक्ते तिङ्कृत्तद्धितैस्तृतीयाकरणे भवेत् ।।२५

प्रातिपदिक उसे कहते हैं जो धातु, प्रत्यय और प्रत्ययान्त से रहित अर्थवान् शब्द है। प्रातिपदिक से प्रातिपदिकार्थ, लिङ्गमात्राधिक्य और वचनमात्र का बोध कराने के लिये प्रथमा विभक्ति होती है। सम्बोधन में तथा उक्त कर्म और कर्ता में भी प्रथमा विभक्ति का प्रयोग किया जाता है। जो किया जाता है, उसकी 'कर्म' संज्ञा है। कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। जिसकी सहायता से कर्म किया जाता है, उसे 'करण' कहते हैं। तथा जो कार्य करता है, उसे 'कर्ता' कहते हैं। तिङ्, कृत्, तद्धित, प्रत्ययों और समास से अनुक्त कर्ता में और करण में भी तृतीया विभक्ति होती है।२३-२५।

कारके कर्तरि च सा सम्प्रदाने चतुर्थ्यपि।
यस्मै दित्सा (त्सां) धारयते सम्प्रदानं तदीरितम् ।।२६
अपादानं यतोऽपैति आदत्ते च भयं यतः।
अपादाने पञ्चमी स्यात्स्वस्वाम्यादौ च षष्ठ्यपि ।।२७
आधारो योऽधिकरणं विभक्तिस्तत्र सप्तमी।
एकार्थे चैकवचनं द्व्यर्थे द्विवचनं भवेत् ।।२८

कर्ता कारक में भी तृतीया का प्रयोग होता है। सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति होती है जिसे कुछ देने की इच्छा होती है, उसे सम्प्रदान कहा जाता है। जिससे कुछ दूर होना है ग्रहण किया अथवा जिससे भय होता है उसे

अपादान कहते हैं। इसमें पञ्चमी विभक्ति होती है। स्वस्वामिभाव में षष्ठी विभक्ति होती है। आधार को अधिकरण कहते हैं जिसमें सप्तमी विभक्ति होती है। एक के अर्थ में एकवचन का और दो के अर्थ में द्विवचन का प्रयोग होना चाहिए।२६-२८।

वहुषु वहुवचनं सिद्धरूपाण्यथो वदे।
वृक्षः सूर्योऽम्बुवाहोऽर्को हे रवे हे द्विजातयः ॥२९
विप्रौ गजान्महेन्द्रेण[1] यमाभ्यामनिलैः कृतम्।
रामाय मुनिवर्याभ्यां केभ्यो धर्माद्धरौ रतिः ॥३०
शराभ्यां पुस्तकेभ्यश्च अर्थस्येश्वरयोर्गतिः।
वालानां सज्जने प्र तिर्हंसयोः कमलेषु च ॥३१
एवं काममहेशाद्याः शब्दा ज्ञेयाश्च वृक्षवत्।

इसी प्रकार वहुतों में वहुवचन का प्रयोग होता है। अव मैं उनके सिद्ध-रूपों को वताऊँगा। ये शब्द इस प्रकार से वनते हैं—(प्रथमा एक वचन) वृक्षः, सूर्यः, अम्बुवाहः, अर्कः, (सम्वोधन एक वचन) हे रवे, (सम्वोधन वहुवचन) हे द्विजातयः। (प्रथमा और द्वितीया द्विवचन) विप्रौ, (द्वितीया वहुवचन) गजान्, (तृतीया एकवचन) महेन्द्रेण, (तृतीया, चतुर्थी, पंचमी द्विवचन) यमाभ्याम् (तृतीया वहुवचन) अनिलैः, (चतुर्थी एक वचन) रामाय, (तृतीया, चतुर्थी, पंचमी द्विवचन) मुनिवर्याभ्याम्, (चतुर्थी, पंचमी, वहुवचन) केभ्यः, (पंचमी एकवचन) वर्मात्, (सप्तमी एकवचन) हरौ, (प्रथमा एकवचन) रतिः, (तृतीया, चतुर्थी, पंचमी द्विवचन) शराभ्याम्, (चतुर्थी, पंचमी वहुवचन) पुस्तकेभ्यः, (षष्ठी एकवचन) अर्थस्य, (षष्ठी, सप्तमी द्विवचन) ईश्वरयोः, (प्रथमा एकवचन) गीतः, (षष्ठी वहुवचन) वालानाम्, (सप्तमी एकवचन) सज्जने, (प्रथमा एकवचन) प्रीतिः, (षष्ठी, सप्तमी, द्विवचन) हंसयोः, (सप्तमी वहुवचन) कमलेषु। इसी प्रकार वृक्ष के समान काम और महेश इत्यादि शब्दों को भी जानना चाहिए।२९-३१½।

सर्वे विश्वे च सर्वस्मै सर्वस्मात्कतरो मतः ॥३२

१ क. ङ: °मनशैः कृ°।

सर्वेषां खं[1] च विश्वस्मिञ्शेषं रूपं च वृक्षवत् ॥३२
एवं चोभयकतरकतमान्यतरादयः ॥३३
पूर्वे पूर्वाश्च पूर्वस्मै [2]पूर्वस्मात्सुसमागतः ।
पूर्वे बुद्धिश्च पूर्वस्मिञ्शेषरूपं तु सर्ववत् ॥३४

'सर्व' शब्द के प्रथमा बहुवचन, चतुर्थी एकवचन, पंचमी एकवचन और षष्ठी बहुवचन में क्रमशः ये रूप होते हैं—सर्वे, सर्वस्मै, सर्वस्मात्, सर्वेषाम् । कतरत् शब्द का प्रथमा एकवचन में कतरः रूप होता है। ख शब्द का प्रथमा और द्वितीया के एकवचन में खम् रूप होता है। विश्व शब्द का प्रथमा बहुवचन तथा सप्तमी एकवचन में क्रमशः रूप होते हैं—विश्वे और विश्वस्मिन् । इनके शेष रूप वृक्ष के समान होते हैं। इसी प्रकार उभय कतरत्, कतमः, अन्यतर इत्यादि शब्दों के रूप भी होते हैं। पूर्व शब्द के प्रथमा बहुवचन में दो रूप होते हैं—पूर्वे और पूर्वाः । पूर्व शब्द के चतुर्थी और पंचमी में क्रमशः पूर्वस्मै और पूर्वस्मात् रूप होते हैं। सप्तमी एक वचन में पूर्वस्मिन् रूप होता है और शेष रूप सर्वशब्द के समान होते है ।३२-३४।

एवं परावराद्याश्च दक्षिणोत्तरकान्तराः ।
अपराश्चाधरो नेमाः प्रथमाः प्रथमेऽर्कवत् ॥३५
एवं चरमास्तयान्ता अल्पार्धा नेम आदयः (?) ।
द्वितीयस्मै द्वितीयाय द्वितीयस्माद्तीयकात् ॥३६
द्वितीयस्मिन्द्वितीये च तृतीयश्च तथाऽर्कवत् ।
सोमपाः सोमपौ ज्ञेयौ सोमपाः सोमपां व्रज ॥३७
कीलालपौ सोमपश्च सोमपात्सोमपे दद ।
सोमपाभ्यां सोमपाभ्यः सोमपः सोमपौ[3] कुलम् ॥३८

इसी प्रकार पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, कान्तर, अपर, अधर, शब्दों के रूप भी होते हैं। प्रथम, चरम, अल्प और अर्ध शब्दों के रूप अर्कवत् होते हैं। द्वितीय शब्द के चतुर्थी, पंचमी और सप्तमी में क्रमशः दो-दो रूप चलते हैं—द्वितीयस्मै द्वितीयाय, द्वितीयस्मात्, द्वितीयकात्, द्वितीयस्मिन्, द्वितीये ।

---

१ ख. सुट् । २ ख. ग. °स्मात्स्वात्समा° । ३ ख. ग. °मपां घनम् ।

तृतीय शब्द के रूप अर्क के समान चलते हैं। सोमपा का प्रथमा एकवचन और बहुवचन में सोमपाः, प्रथमा और द्वितीया द्विवचन में सोमपौ, द्वितीया एक वचन में सोमपाम्, द्वितीया बहुवचन, पंचमी एकवचन और षष्ठी एक वचन में सोमपः रूप होता है। पंचमी एकवचन में कहीं-कहीं सोमपात् रूप भी होता है। चतुर्थी एक वचन में सोमपे, तृतीया, चतुर्थी और पंचमी के द्विवचन मे 'सोमपाभ्याम्' तथा चतुर्थी और पंचमी के बहुवचन में 'सोमपाभ्यः रूप होता है। ३५-३८।

एवं कीलालपाद्याः स्युः कविरग्निस्तथा[1]ऽरयः।
हे कवे कविमग्नी[2] तान्हरीन्सात्यकिना हृतम् ॥३९
रविभ्यां रविभिर्देहि वह्नये यः समागतः।
[3]अग्नेरग्न्योस्तथाऽग्नीनां कवौ कव्योः कविष्वथ ॥४०
एवं सुसृतिरभ्रान्तिः सुकीर्तिः सुधृतिस्तथा।
सखा सखायौ सखायः, हे सखे व्रज सत्पतिम् ॥४१

इसी प्रकार कीलालपा शब्द के रूप भी हुआ करते हैं। कवि, अग्नि तथा अरि के रूप एक समान हुआ करते हैं। कवि का संबोधन के एक वचन में हे कवे, सप्तमी के एक वचन में कवौ, षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में कव्योः, सप्तमी के बहुवचन में कविषु रूप होता है। रवि शब्द के तृतीया, चतुर्थी और पंचमी के द्विवचन में रविभ्याम् तथा तृतीया के बहुवचन में रविभिः रूप होता है। वह्नि शब्द का चतुर्थी एक वचन में वह्नये रूप होता है। अग्निशब्द का षष्ठी विभक्ति के एकवचन, द्विवचन और बहुवचन में क्रमशः यह रूप होते हैं—अग्नेः, अग्नयोः, अग्नीनाम्। कवौ, कव्योः, कविषु। इसी प्रकार सुसृति, अभ्रान्ति, सुकीर्ति और सुधृति आदि शब्दों के रूप जानने चाहिए। यहाँ इनका प्रथमा का एकवचनान्त रूप दिया गया है। यथा—सुसृतिः, अभ्रान्तिः, सुकीर्तिः, सुधृतिः। अब सखि शब्द के रूप दिये जाते हैं—सखा, सखायौ, सखायः। ये प्रथमा विभक्ति के सभी वचनों के रूप है। सम्बोधन के एकवचन में रूप है—हे सखे। जैसे—'हे सखे! सत्पतिं व्रज' अर्थात् हे मित्र! तुम अच्छे स्वामी के पास जाओ। ३९-४१।

---

१. क. ख. ग. °था वयः। २ ख. ग. °ग्नीस्था हरीनस्मान्विषाक्त°। ३ ख. ग. असुर°।

सखायं च सखायौ च सखीन्सख्याऽऽगतो दद।
सख्ये सख्युश्च सख्युश्च सख्योः शेषः कवेरिव ॥४२
पत्या पत्ये च पत्युश्च पत्युः पत्योस्तथाऽग्निवत्।
द्वौ द्वौ द्वाभ्यां द्वाभ्यां द्वित्वाद्यर्धे द्वयोर्द्वयोः ॥४३
त्रयस्त्रींश्च त्रिभिस्त्रिभ्यस्त्रयाणां च त्रिषु क्रमात्।
कविवत्कति कतीति शेषं बहुवचनं स्मृतम् ॥४४

द्वितीया के सभी वचनों के रूप हैं—सखायम्, सखायौ, सखीन्। तृतीया एक वचन में उसका रूप सख्या, चतुर्थी एक वचन में सख्ये, पंचमी और षष्ठी के एकवचन में सख्युः और षष्ठी तथा सप्तमी के द्विवचन में सख्योः रूप होता है। शेष रूप कवि के समान होते हैं। पति शब्द के तृतीया एक वचन में पत्या, चतुर्थी एकवचन में पत्ये, पंचमी और षष्ठी एक वचन में पत्युः, षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में पत्योः तथा शेष रूप अग्नि के समान होते हैं। द्वौ शब्द के प्रथमा आदि विभक्तियों में इस प्रकार रूप होते हैं। द्वौ, द्वौ, द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वयोः और द्वयोः। त्रि शब्द के पुंल्लिग में सभी विभक्तियों में क्रमशः ये रूप होते हैं—त्रयः, त्रीन्, त्रिभिः, त्रिभ्यः, त्रिभ्यः, त्रयाणाम् और त्रिषु। कतिशब्द का रूप भी कवि के समान चलता है। और शेष रूप बहुवचन में चलते हैं।४२-४४।

नीर्नियौ च नियो हे नीः, नियं नियौ नियो निया।
नीभ्यां नीभिर्नियै नीभ्यो नियां नियि नियोस्तथा ॥४५
सुश्रीः सुधीप्रभृतयो ग्रामणीः पूजयेद्धरिम्।
ग्रामण्यौ ग्रामण्यो ग्रामण्यं ग्रामण्या ग्रामणीभिः ॥४६

'नी' शब्द के प्रथमा विभक्ति के सभी वचनों में ये रूप होते हैं—नीः, नियौ, नियः, सम्बोधन के एकवचन में इसका रूप होगा हे नीः, द्वितीया के सभी वचनों में इसके रूप होते हैं—नियं, नियौ, नियः। तृतीया के सभी वचनों में रूप हैं—निया, नीभ्यां, नीभिः। चतुर्थी के एकवचन तथा बहुवचन में उसके रूप हैं—नियै और नीभ्यः। सप्तमी एकवचन में नियां और नियि तथा द्विवचन में नियोः रूप होता है। सुश्रीः और सुधीः इत्यादि रूप नीः के समान होते हैं। ग्रामणीः शब्द के प्रथमा के सभी वचनों में रूप इस प्रकार होते है—ग्रामणीः, ग्रामण्यौ, ग्रामण्यः। जैसे ग्रामणीः (गाँव का मुखिया विष्णु का

पूजन करे। द्वितीया के एकवचन में इसका रूप होता है ग्रामण्यम्। तृतीया के एकवचन और वहुवचन में इसके रूप क्रमशः ग्रामण्या और ग्रामणीभिः होते हैं।४५-४६।

ग्रामण्योर्ग्रामण्यामेवं सेनानीप्रमुखाः [1]सुभूः।
सुभुवौ च स्वयंभुवः स्वयंभुवं स्वयंभुवः॥४७
स्वयंभुवा स्वयंभुवि एवं प्रतिभुवादयः।
खलपूः खलप्वौ श्रेष्ठौ खलप्वं च खलप्वि च॥४८

षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में ग्रामण्योः तथा सप्तमी के एकवचन में उसका रूप 'ग्रामण्याम्' होता है। इसी प्रकार सेनानी इत्यादि शब्दों के रूप भी चलते हैं। सुभू शब्द के प्रथमा विभक्ति के एकवचन और द्विवचन में सुभूः और सुभुवौ रूप होते हैं। स्वयंभू के प्रथमा वहुवचनः में स्वयंभुवः, द्वितीया के एकवचन और वहुवचन में स्वयंभुवम् और स्वयंभुवः, तृतीया के एकवचन में स्वयंभुवा, सप्तमी के एकवचन में स्वयंभुवि। इसी प्रकार प्रतिभू इत्यादि शब्दों के रूप चलते हैं। खलपू के प्रथमा विभक्ति के एकवचन और द्विवचन में रूप होते है खलपूः और खलप्वौ, द्वितीया के एक वचन में खलप्वम् और सप्तमी के एकवचन में खलप्वि रूप होते हैं।४७-४८।

[2]एवं शरपूमुखाः स्युः क्रोष्टा क्रोष्टार ईरिताः।
क्रोष्टूंश्च क्रोष्टुना क्रोष्ट्रा क्रोष्टूनां क्रोष्टरीदृशम्॥४९
पिता पितरौ पितरः, हे पितः पितरौ शुभौ।
पितॄन्पितुः पितुः पित्रोः पितॄणां पितरीदृशम्॥५०
([3]एवं भ्राता च जमातृमुखा नॄणां नृणां तथा।
कर्ता कर्तारौ कर्तॄंश्च कर्तॄणां कर्तरीदृशम्॥५१

इसी प्रकार 'शरपू' आदि शब्दों के रूप जानने चाहिए। 'क्रोष्टु' शब्द के क्रमशः पांच रूप इस प्रकार होते हैं—क्रोष्टा, क्रोष्टारौ, क्रोष्टारः। क्रोष्टारम्, क्रोष्टारौ। द्वितीया के वहुवचन में 'क्रोष्टून्'—यह रूप वनता है। तृतीया

---

१ क. ख. ग. स्वभूः। २ क. ङ. एव सुलूमु। ३ 'एवं······सुराय्यपि' क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

आदि के स्वरादि प्रत्ययों में दो-दो रूप चलते हैं। एक 'क्रोष्टु' शब्द के, दूसरे 'क्रोष्टृ' शब्द के। यथा—क्रोष्टुना, क्रोष्ट्रा, क्रोष्टवे क्रोष्ट्रे, क्रोष्टोः क्रोष्टुः, इत्यादि। षष्ठी के वहुवचन में 'क्रोष्टूनाम्' यह एक ही रूप होता है। सप्तमी के एकवचन में क्रोष्टौ, क्रोष्टरि—ये रूप होते हैं। हलादि विभक्तियों में इसके रूप 'शम्भु' आदि शब्दों के समान होते हैं। 'पितृ' शब्द के रूप—१. पिता, पितरौ पितरः। सम्बोधन में हे पितः! हे पितरौ! हे पितरः!। २. पितरम्, पितरौ, पितॄन्। ३. पित्रा, पितृभ्यां, पितृभिः। ४. पित्रे, पितृभ्याम्, पितृभ्यः। ५. पितुः पितृभ्यां, पितृभ्यः। ६. पितुः पित्रोः, पितॄणाम्। ७. पितरि, पित्रोः, पितृषु। इसी प्रकार 'भ्रातृ' और 'जामातृ' आदि शब्दों के रूप जानने चाहिए। भ्राता, भ्रातरौ, भ्रातरः। जामाता, जामातरौ, जामातरः इत्यादि। 'नृ' शब्द के रूप 'पितृ' शब्द के समान होते हैं। केवल षष्ठी के वहुवचन में उसके नॄणाम्, नृणाम्—ये दो रूप होते हैं। कर्ता, कर्तारौ, कर्तारः। कर्तारम्, कर्तारौ। द्वितीया के वहुवचन में कर्तॄन्, षष्ठी के वहुवचन में कर्तॄणाम् और सप्तमी के एकवचन में 'कर्तरि' रूप होते हैं। शेष रूप 'पितृ' शब्द के समान जानने चाहिये।४६-५१।

पितृवच्चैवमुद्गाता स्वसा नप्त्रादयः स्मृताः।
[1]सुराः सुरायौ सुरायः सुरायां च सुराय्यपि ॥५२
गौः, गावौ गां गा गवा च गोर्गवोश्च गवां गवि।
एवं द्यौर्ग्लौश्चापि तथा स्वरान्ताः पुंसि नायकाः ॥५३
सुवाक्सुवाचौ सुवाचा सुवाग्भ्यां च सुवाक्ष्यपि।
एवं दिक्प्रमुखाः प्राङ्च प्राञ्चौ प्राञ्चं च भो व्रज ॥५४
प्राग्भ्यां (च) प्राग्भिः प्राचां च प्राचि च प्राङ्षु प्राङ्क्ष्वपि।
एवं ह्युदङ्ङुदीची वा सम्यङ्प्रत्यक्समीच्यपि ॥५५

'पितृ' के समान उद्गातृ, स्वसृ और नप्तृ इत्यादि शब्द भी माने गये हैं।। 'सुरै' शब्द के प्रथमा विभक्ति के तीनों वचनों में रूप हैं— सुराः, सुरायौ, सुरायः। वहुवचन में 'सुरायाम्' और सप्तमी एक वचन में सुरायि। गो शब्द के प्रथमा एक वचन गौः; द्विवचन में गावौ, द्वितीया एकवचन में गाम् और वहुवचन में गाः, तृतीया एक वचन में गवा; चतुर्थी और पंचमी

---

१ सुराः.........सुराय्यपि' नास्ति ख. ग. पुस्तकयोः।

एकवचन में गोः, षष्ठी और सप्तमी के द्विवचनों में गवोः, षष्ठी के बहुवचन में गवाम् और सप्तमी के एक वचन में 'गवि' रूप होता है। इसी प्रकार द्योः, और ग्लौः इत्यादि शब्दों के रूप भी होते हैं। इस प्रकार स्वरान्त पुंल्लिंग शब्दों के रूपों का वर्णन किया गया। 'सुवाक्' शब्द का प्रथमा के एकवचन और द्विवचन में सुवाक्, सुवाचौ, तृतीया के एकवचन में सुवाचा, तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में सुवाग्भ्यां और सप्तमी बहुवचन में सुवाक्षु रूप होता है। इसी प्रकार दिक् आदि शब्दों के रूप भी चलते हैं। प्राञ्च् शब्द के प्रथमा के एक वचन और द्विवचन में प्राङ् और प्राञ्चौ; द्वितीया के एकवचन में प्राञ्चम्, तृतीया, चतुर्थी और पंचमी में प्राग्भ्यां; तृतीया बहुवचन में प्राग्भिः, षष्ठी बहुवचन में प्राचाम्, सप्तमी एकवचन में प्राचि तथा सप्तमी बहुवचन में प्राङ्षु और प्राङ्क्षु दो रूप होते हैं। इसी प्रकार उदञ्च् और उदीची तथा सम्यञ्च्; प्रत्यञ्च् और समीची के रूप भी होते हैं।५२-५५।

तिर्यङ् तिरश्च सध्र्यङ् च विश्व (ष्व) द्र्यङ्पूर्ववत्स्मृताः।
अदद्र्यङ्ङदमुयङ् स्यात्तथाऽमुमुयङीरितः ॥५६
अदद्र्यञ्चो ह्यमुद्री च अदद्र्यग्भ्यां च पूर्ववत्।
तत्त्वतृट् तत्त्वतृषौ च तत्त्वतृड्भ्यां समागतः ॥५७
तत्त्वतृषि, तत्त्वतृट्सु एवं काष्ठतडादयः।
भिषग्भिषग्भ्यां भिषजि जन्मभागादयस्तथा ॥५८
मरुत्, मरुद्भ्यां मरुति एवं शत्रुजिदादयः।
भवान्भवन्तौ भवतां भवंश्चैव भवन्त्यपि ॥५९
महा महान्तौ महतामेवं भगवदादयः।

तिर्यञ्च् शब्द के प्रथमा एकवचन में तिर्यङ्; द्वितीया बहुवचन; पंचमी एकवचन और षष्ठी एकवचन में तिरश्चः रूप होते हैं। इसी प्रकार सध्र्यञ्च्, विश्वञ्च् आदि शब्द के रूप भी माने गये हैं। अदद्र्यञ्च्; अदमुद्र्यञ्च्, अमुमुयञ्च, आदि रूप भी एक समान बताये गये हैं। अदद्र्यञ्च् और अदद्र्यग्भ्याम् रूप भी इसी प्रकार बनते हैं। तत्त्वतृष् के प्रथमा एक वचन और द्विवचन में तत्त्वतृट् और तत्त्वतृषौ तृतीया; चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में तत्त्वतृड्भ्याम्, सप्तमी एक वचन में तत्त्वतृषि और सप्तमी बहुवचन में तत्त्वतृट्सु रूप होते हैं। इसी प्रकार काष्ठतृट् आदि शब्दों के रूप भी होते हैं। भिषग् के प्रथमा एकवचन में भिषक्, तृतीया, चतुर्थी

और पंचमी के द्विवचन में भिषग्भ्याम् और सप्तमी के एकवचन में 'भिषजि' रूप होता है। इसी प्रकार जन्मभाक् इत्यादि रूप भी होते हैं। मरुत् शब्द के प्रथमा एकवचन में मरुत्, तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन मे मरुद्भ्याम् और सप्तमी के एकवचन में मरुति रूप होते हैं। इसी प्रकार शत्रुजित् इत्यादि शब्दों के रूप भी होते हैं। भवत् शब्द के प्रथमा-एकवचन में भवान्, प्रथमा तथा द्वितीया के द्विवचन में भवन्तौ, षष्ठी-बहुवचन में भवताम्। भवत् शब्द के शतृप्रत्ययान्त रूप 'भवन्' और नपुंसक लिंग में प्रथमा द्विवचन में भवन्ती रूप होते हैं। महत् शब्द के प्रथमा एक वचन में महान्, प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में महान्तौ तथा षष्ठी बहुवचन में महताम् रूप होते हैं। इसी प्रकार भगवद् इत्यादि शब्दों के रूप भी होते हैं।५६-५९३।

एवं मघवान्मघवन्तौ अग्निमच्चाग्निमत्यपि ॥६०
अग्निचित्स्वेवमेवान्यद्वेद वित्तत्त्ववित्त्वपि।
वेदविदामेवमन्यद्य: समस्तेन सर्ववित् ॥६१
राजा (च) राजानौ राज्ञ:; राज्ञि राजनि (च) राजन्।
यज्वा (च) यज्वानस्तद्वत्करी दण्डी च दण्डिनौ ॥६२

मघवन् शब्द के प्रथमा एकवचन में मघवान्, प्रथमा तथा द्वितीया के द्विवचन में मघवन्तौ रूप होते है। इसी प्रकार अग्निमत् शब्द के रूप भी होते है। अग्निचित् से समान वेदवित् और तत्त्ववित् रूप भी होते हैं। वेदवित् के षष्ठी बहुवचन में वेदविदाम् रूप होता है। सर्ववित् शब्द के रूप भी इसी प्रकार बनते हैं। राजन् शब्द के प्रथमा एकवचन में राजा, प्रथमा तथा द्वितीया द्विवचन में राजानौ, द्वितीया बहुवचन पंचमी एकवचन और षष्ठी एकवचन में राज्ञः तथा सप्तमी एकवचन में राज्ञि और 'राजनि' रूप होते हैं। इसी प्रकार यज्वा और यज्वान: रूप भी चलते हैं। करी और दण्डी क्रमश: 'करिन्' और दण्डिन् शब्द के प्रथमा एकवचन के रूप हैं। दण्डिन् शब्द का प्रथमा और द्वितीया में दण्डिनौ रूप होता है।६०-६२।

पन्था: पन्थानौ च पथ: पथिभ्यां पथि चेदृशम्।
मन्था ऋभक्षा: पथ्याद्या: पञ्च पञ्च च पञ्चभि: ॥६३

प्रतान्प्रतानौ प्रतान्भ्यां हे प्रतांश्च सुशर्मणः ।
आपोऽपः, अद्भिरप्येवं प्रशांश्चैव प्रशाम्यपि ॥६४
कः केन सर्ववित्केषु अयं चेमे [1]इमान्नयः (?) ।
अनेन चाऽऽभ्यामेभिश्च अस्मै चैभ्यः स्वमस्य च ॥६५
अनयोरेषामेषु स्याच्चत्वारश्चतुरस्तथा ।
चतुर्णां च चतुर्ष्वस्ति सुगीः श्रेष्ठः सुगीर्ष्वपि ॥६६

'पथिन्' शब्द के प्रथमा एकवचन में पन्थाः, प्रथमा तथा द्वितीया द्विवचन में पन्थानौ, प्रथमा वहुवचन, पंचमी एकवचन और षष्ठी एकवचन में पथः, तृतीया, चतुर्थी और पंचमी के द्विवचन मे पथिभ्याम् तथा सप्तमी के एकवचन में पथि रूप होता है। इसी प्रकार मन्थिन्, ऋभुक्षिन् आदि शब्दों के रूप भ होते हैं। पंच शब्द के प्रथमा, द्वितीया और तृतीया में क्रमशः रूप होते हैं— पंच, पंच और पञ्चभिः। प्रतान् शब्द के प्रथमा एकवचन में प्रतान्, प्रथमा तथा द्वितीया के द्विवचन में प्रतानौ, तृतीया, चतुर्थी और पंचमी के द्विवचन में प्रतान्भ्याम् तथा सम्बोधन में हे प्रतान् ! रूप होते हैं। सुशर्मन् शब्द के प्रथमा वहुवचन, पंचमी एकवचन और षष्ठी एकवचन में सुशर्मणः रूप होता है। अप् शब्द के प्रथमा बहुवचन में आपः तथा पञ्चमी और षष्ठी वहुवचन में अपः रूप बनते हैं। तृतीया वहुवचन में अद्भिः रूप भी बनता है। किम् शब्द के पुंल्लिग में प्रथमा एकवचन में कः, तृतीया एकवचन में केन और सप्तमी बहुवचन में केपु रूप बनते है। इदम् शब्द के पुंल्लिग के प्रथमा-एकवचन में अयम्, प्रथमा बहुवचन में इमे, द्वितीया वहुवचन में इमान्, तृतीया एकवचन में अनेन, तृतीया, चतुर्थी और पंचमी द्विवचन में आभ्याम्, तृतीया वहुवचन में एभिः चतुर्थी एकवचन में अस्मै चतुर्थी और पंचमी बहुवचन में एभ्यः, षष्ठी एकवचन में अस्य, षष्ठी और सप्तमी द्विवचन में अनयोः, षष्ठी वहुवचन में एषाम् और सप्तमी बहुवचन में एषु रूप बनते हैं। चतुर् शब्द के पुंल्लिग की प्रथमा में चत्वारः, द्वितीया में चतुरः, षष्ठी में चतुर्णाम् और सप्तमी में चतुर्षु रूप बनते हैं। सुगिर् शब्द के प्रथमा एकवचन में सुगीः और सप्तमी वहुवचन में सुगीर्षु रूप होते हैं ।६३-६६।

सुद्यौः सुदिवौ सुद्युभ्यां विड्विषौ विट्सु यादृशः ।
यादृग्भ्यां चैव विड्भ्यां च षट् षट् षण्णां च षट्स्वपि ॥६७

---

१ ख. ग. °मानपि। अ॰।

सुवचाः सुवचसा च सुवचोभ्यामथेदृशम् ।
हे सुवचो हे उशनन्नुशना वोशनस्यपि ॥६८

सुद्यौस् के प्रथमा एकवचन में सुद्यौः, प्रथमा और द्वितीया द्विवचन में सुदिवौ, तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी में सुद्युभ्यां रूप बनते है। विट् शब्द के प्रथमा एकवचन में विट्, प्रथमा तथा द्वितीया द्विवचन में विषौ; तृतीया, चतुर्थी और पंचमी के द्विवचन में 'विड्भ्याम्' और सप्तमी के बहुवचन में विट्सु रूप बनते हैं। यादृक् शब्द के पुंल्लिग प्रथमा बहुवचन में यादृशः तथा तृतीया चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में यादृग्भ्याम् रूप बनते हैं। 'षट्' शब्द के प्रथमा, द्वितीया, षष्ठी और सप्तमी में क्रमशः ये रूप होते हैं—षट्, षट्, षण्णाम् और षट्सु। सुवचस् शब्द के प्रथमा एक वचन में सुवचः, तृतीया एकवचन में सुवचसा तृतीया, चतुर्थी और पंचमी के द्विवचन में 'सुवचोभ्याम्' और सम्बोधन के बहुवचन में हे सुवचः रूप होते हैं। उशनस् शब्द के प्रथमा एकवचन उशना, सप्तमी एकवचन में उशनसि और सम्बोधन के एकवचन में हे 'उशनन्' रूप बनते हैं।६७-६८।

पुर (रु) दंसा अनेहा हे विद्वन्विद्वांस उत्तमाः ।
विदुषे नमो विद्वद्भ्यां विद्वत्सु च बभूविवान् ॥६९
एवं च पेचिवाञ्श्रेयाञ्श्रेयांसौ श्रेयसस्तथा ।
असौ अमू अमी श्रेष्ठा अमुममूनिहामुना ॥७०
अमीभिरमुष्यै वाऽमुष्मादमुष्य वाऽमुयोस्तथा ।
अमीषाममुष्मिन्नित्येवं (च) गोधुग्भिरागतः ॥७१
गोधुक्ष्वित्येवमन्येऽपि [1]मित्रध्रुहो मित्रद्रुहा ।
मित्रध्रुग्भ्यां मित्रद्रु (ध्रु) ग्भिरेवं चित्तद्रुहादयः ॥७२

पुरुदंसस् के तृतीया एकवचन में पुरुदंसा और अनेहस् का प्रथमा एकवचन में अनेहा रूप बनते हैं। विद्वस् शब्द के प्रथमा बहुवचन में विद्वांसः, चतुर्थी एकवचन में विदुषे, तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी द्विवचन में विद्वद्भ्याम् सप्तमी बहुवचन में विद्वत्सु और सम्बोधन के एकवचन में हे विद्वन् रूप होता है। इसी प्रकार बभूविस् और पेचिवस् के प्रथमा एकवचन में क्रमशः

१ ख. ग. °श्रघुङ्मित्त। इष्यते। मि°।

वभूविवान् और पेचिवान् तथा श्रेयस् शब्द के प्रथमा एकवचन में श्रेयान् और द्वितीया द्विवचन में श्रेयांसौ, द्वितीया वहुवचन, पंचमी एकवचन और षष्ठी एकवचन में श्रेयसः रूप वनते है। अदस् (पुंल्लिग) शब्द के प्रथमा एकवचन में असौ, प्रथमा और द्वितीया द्विवचन में अमू, प्रथमा वहुवचन में अमी, द्वितीया एकवचन में अमुम्, द्वितीया वहुवचन में अमून्, तृतीया एकवचन में अमुना, तृतीया वहुवचन में अमीभिः, चतुर्थी एकवचन में अमुष्मै; पंचमी एकवचन में अमुष्मात्; षष्ठी एकवचन में अमुष्य, षष्ठी और सप्तमी द्विवचन में अमुयोः, षष्ठी वहुवचन में अमीषाम् और सप्तमी एकवचन में अमुष्मिन् रूप होते हैं। गोवुक् शब्द के तृतीया वहुवचन में गोवुग्भिः और सप्तमी वहुवचन मे गोवृक्षु रूप होते हैं। मित्रद्रुह् शब्द के प्रथमा बहुवचन में मित्रद्रुहः, तृतीया एकवचन में मित्रद्रुहा, तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी द्विवचन में मित्रधुग्भ्याम् और तृतीया वहुवचन में मित्रधुग्भिः रूप होते हैं। इसी प्रकार चित्रद्रुह् आदि के रूप भी होते हैं।६९-७२।

स्वलिट् स्वलिड्भ्या स्वलिहि अनड्वाननडुत्सु च।
अजन्ताश्च हलन्ताश्च पुंस्यथोऽ (था) थ स्त्रियां वदे ॥७३

स्वलिट् शब्द के प्रथमा एकवचन में स्वलिट्, तृतीया, चतुर्थी और पंचमी द्विवचन में स्वलिड्भ्याम् और सप्तमी एकवचन में स्वलिहि रूप वनते हैं। अनडुह् शब्द के प्रथमा एकवचन में अनड्वान् और सप्तमी वहुवचन में अनडुत्सु। ये अजन्त और हलन्त पुंल्लिग शब्द हैं। अब मैं अजन्त और हलन्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के विषय में वतलाऊँगा।७३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सुब्विभक्तिसिद्धरूपकथनं नामैकपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३५१

अथ द्विपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

स्त्रीलिङ्गशब्दसिद्धरूपम्

स्कन्द उवाच—
रमा रमे रमाः शुभा रमां रमे रमास्तथा ।
रमया च रमाभ्यां च रमाभिः कृतमव्ययम् ॥१
रमायै च रमाभ्यां रमायां (या) (श्च) रमयोः शुभम् ।
रमाणां च रमायां च रमास्वेवं कलादयः ॥२

स्कन्द बोले—रमा शब्द के प्रथमा विभक्ति के तीनों वचनों में रूप होते हैं—रमा, रमे, रमाः, द्वितीया के तीनों वचनों में रूप है—रमाम्, रमे, रमाः, तृतीया के तीनों वचनों में—रमया, रमाभ्याम्, रमाभिः, चतुर्थी के एकवचन और द्विवचन में क्रमशः रमायै और रमाभ्याम्, षष्ठी के तीनों वचनों में रमायाः, रमयोः, रमाणाम्, तथा सप्तमी के एकवचन और बहुवचन में रमायाम् और रमासु रूप होते हैं। इसी प्रकार कला इत्यादि के रूप भी होते हैं।१-२।

जरा जरसौ जर (रे) इति जरसश्च जरा जराम् ।
जरसं च जरास्वेवं सर्वा सर्वे च सर्वया ॥३
सर्वस्यै देहि सर्वस्याः सर्वस्याः सर्वयोस्तथा ।
शेषं रमावद्रूपं स्याद्द्वे द्वे तिस्रश्च तिसृणाम् ॥४

जरा शब्द के प्रथमा के तीनों वचनों में जरा, जरसौ अथवा जरे और जरसः अथवा जराः रूप होते हैं। द्वितीया एकवचन में जराम् अथवा जरसम् और सप्तमी बहुवचन में जरासु रूप होते हैं। सर्व शब्द के स्त्रीलिंग में प्रथमा विभक्ति के एकवचन और द्विवचन में क्रमशः सर्वा और सर्वे, तृतीया एकवचन में सर्वया, चतुर्थी एकवचन में सर्वस्यै पंचमी और षष्ठी एकवचन में सर्वस्याः तथा षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में सर्वयोः रूप बनते हैं। शेष रूप रमा के समान ही होते हैं। द्वि शब्द के प्रथमा तथा द्वितीया में द्वे, द्वे, त्रि शब्द के प्रथमा तथा द्वितीया में तिस्रः, षष्ठी में तिसृणाम् रूप बनते हैं।३-४।

बुद्धिर्बुद्ध्या बुद्धये च बुद्ध्यै बुद्धेश्च हे मते ।
[1]कविवत्स्यान्मुनीनां च नदी नद्यौ नदीं नदीः ।।५
नद्यां नदीभिर्नद्यै च नद्यां चैव नदीषु च ।
कुमारी जृम्भणीत्येवं श्रीः श्रियौ च श्रियः श्रिया ।।६
श्रियै श्रिये स्त्रीं स्त्रियं च स्त्रीश्च स्त्रियः स्त्रिया स्त्रियै ।
स्त्रियाः स्त्रीणां स्त्रियां च ग्रामण्यां धेन्वै च धेनवे ।।७

बुद्धि शब्द के प्रथमा एकवचन में बुद्धिः, तृतीया एकवचन में बुद्ध्या, चतुर्थी एकवचन में बुद्धये अथवा बुद्ध्यै, पंचमी और षष्ठी एकवचन में बुद्धेः रूप बनता है। मति शब्द का सम्बोधन हे मते ! रूप बनता है। मति और मुनि के रूप कवि के समान चलते है। नदी शब्द के प्रथमा के एकवचन और द्विवचन में क्रमशः नदी और नद्यौ, द्वितीया के एकवचन और बहुवचन में क्रमशः नदीम् और नदीः, तृतीया के एकवचन और बहुवचन में क्रमशः नद्या और नदीभिः, चतुर्थी के एकवचन में नद्यै, सप्तमी के एकवचन और बहुवचन में क्रमशः नद्याम् और नदीषु रूप बनते है। इसी प्रकार कुमारी और जृम्भणी शब्दों के रूप भी चलते हैं। श्री शब्द के प्रथमा के सभी वचनों में श्रीः, श्रियौ, श्रियः, तृतीया के एकवचन में श्रिया, चतुर्थी के एकवचन में श्रियै अथवा श्रिये रूप बनते हैं। स्त्री शब्द के द्वितीया एकवचन में स्त्रीम् अथवा स्त्रियम् द्वितीया के बहुवचन में स्त्रीः अथवा स्त्रियः, तृतीया के एकवचन में स्त्रिया, चतुर्थी के एकवचन में स्त्रियै, पंचमी और षष्ठी के एकवचन में स्त्रियाः, षष्ठी के बहुवचन में स्त्रीणाम् और सप्तमी के एकवचन में स्त्रियाम् रूप होते हैं। ग्रामणी का सप्तमी एकवचन में ग्रामण्याम् रूप होता है। धेनु का चतुर्थी एकवचन में धेन्वै रूप बनता है।५-७।

जम्बूर्जम्ब्वौ च जम्बूश्च जम्बूनां च फलं पिव ।
वर्षाभ्वौ च पुनर्भ्वौ च मातॄर्वाऽपि च गौश्च नौः ।।८
वाग्वाचा वाग्भिश्च वाक्षु स्रग्भ्यां स्रजि स्रजोस्तथा ।
विद्वद्भ्यां चैव विद्वत्सु [2]भवती स्याद्भवन्त्यपि ।।९

जम्बू का प्रथमा एकवचन में तथा द्विवचन में क्रमशः जम्बूः तथा जम्ब्वौ, द्वितीया बहुवचन में जम्बूः और षष्ठी बहुवचन में जम्बूनाम् रूप बनते हैं

---

१ ख. ग. °त्स्यान्मतीनां। २ ख. ग. °तीभ्यां भवत्यपि।

जैसे—जम्बूनां फलं पिब (अर्थात् जामुन के फल का पान करो) इसी प्रकार वर्षाभू तथा पुनर्भू का प्रथमा तथा द्वितीया के द्विवचन में रूप क्रमशः वर्षाभ्वौ और पुनर्भ्वौ होते हैं। मातृ शब्द का द्वितीया वहुवचन में मातॄः रूप बनता है। गो तथा नौ शब्द का प्रथमा तथा संबोधन के एकवचन में क्रमशः गौः तथा नौः रूप बनते हैं। वाक् शब्द का प्रथमा एक वचन में वाक्, तृतीया एक वचन में वाचा, तृतीया बहुवचन में वाग्भिः और सप्तमी बहुवचन में वाक्षु रूप बनते हैं। स्रक् शब्द के तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में स्रग्भ्याम्, सप्तमी एकवचन में स्रजि तथा षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में स्रजोः रूप बनते है, विद्वस् शब्द के तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में विद्वद्भ्याम् तथा सप्तमी के वहुवचन में विद्वत्सु रूप होते हैं। उकारानुबन्ध भवत् शब्द के स्त्री-लिंग में प्रथमा एकवचन में भवती तथा ऋकारानुवन्ध भवत् शब्द का भवन्ती रूप होता है।८-६।

दीव्यन्ती भाती भान्ती च तुदन्ती च तुदत्यपि।
रुदती रुन्धती देवी गृह्णती चोरयन्त्यपि ॥१०
दृषद्दृषद्भ्यां दृषदि [1]विशेषविदुषी कृतिः।
समित्समिद्भ्यां समिधि सीमा सीम्नि च सीमनि ॥११

इसी प्रकार दीव्यत् शब्द के नपुंसकलिंग के प्रथमा और द्वितीया में दीव्यन्ती। इसी प्रकार भाती, भान्ती, तुदन्ती, तुदती, रुदती, रुन्धती, देवी, गृह्णती और चोरयन्ती रूप भी बनते हैं। दृषद् शब्द के प्रथमा एक वचन में दृषद् तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी मे दृषद्भ्याम् और सप्तमी में दृषदि रूप बनते हैं। समित् शब्द के प्रथमा एक वचन में समित्, तृतीया चतुर्थी और पंचमी के द्विवचन में समिद्भ्याम् और सप्तमी के एकवचन में समिधि रूप बनते हैं। सीमन् शब्द के प्रथमा एकवचन में सीमा और सप्तमी एक वचन में सीम्नि अथवा सीमनि रूप होते हैं।१०-११।

दामनीभ्यां ककुद्भ्यां च केयमाभ्यां तथाऽऽसु च।
गीर्भ्यां चैव गिरा गीर्षु सुभूः सुपूः पुरा पुरि ॥१२
द्योर्द्युभ्यां दिवि द्युषु (च) तादृश्या तादृशी दिशः।
यादृश्यां यादृशी तद्वत्सुवचोभ्यां सुवचः स्वपि ॥
असौ [2]चामुम (मू अ) मूं चामूरमूभिरमुयाऽमुयोः ॥१३

---

१ ख. ग. 'शेषावि° । २ ख. ग. चामूरमुममूरमूभिरमुयाव (मु) योः ।

दामनी शब्द के तृतीया चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में दामनीभ्याम्। ककुद् शब्द के तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी द्विवचन में ककुद्भ्याम्। इदम् शब्द के तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी द्विवचन में दामनीभ्याम्। ककुद् शब्द के तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी द्विवचन में ककुद्भ्याम्। इदम् शब्द के तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में आभ्यां और सप्तमी के बहुवचन में आसु रूप होते हैं। गिर् शब्द के तृतीया, चतुर्थी, और पंचमी के द्विवचन में गीर्भ्याम्, तृतीया के एकवचन में गिरा और सप्तमी के बहुवचन में गीर्षु रूप बनते हैं। सुभूः और सुपूः के प्रथमा एकवचन में क्रमशः सुभूः और सुपूः रूप होते हैं। पुर् शब्द के तृतीया एक वचन में पुरा तथा सप्तमी एकवचन में पुरि रूप होते है। द्यौस् शब्द के प्रथमा एक वचन में द्यौः, तृतीया, चतुर्थी और पंचमी के द्विवचन में द्युभ्याम्, सप्तमी एकवचन में दिवि और सप्तमी बहुवचन में द्युषु रूप होते हैं। तादृक् के प्रथमा एकवचन में तादृशी और तृतीया के एकवचन में तादृश्या रूप होते हैं। दिक् शब्द के प्रथमा बहुवचन का दिशः रूप है। यादृश् शब्द के प्रथमा एकवचन में यादृशी और सप्तमी एकवचन में यादृश्याम् रूप होते हैं। इसी प्रकार सुवचस् शब्द का तृतीया, चतुर्थी और पंचमी के द्विवचन में सुवचोभ्याम् और सप्तमी में सुवचःसु रूप होता है। अदस् शब्द के प्रथमा एकवचन में असौ द्विवचन में अमू और बहुवचन में अमूः, द्वितीया के एकवचन में अमूम् तृतीया के एकवचन में अमुया, बहुवचन में अमूभिः और षष्ठी तथा सप्तमी के द्विवचन में अमुयोः रूप बनते है।१२-१३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये स्त्रीलिंगशब्दसिद्धरूपकथनं नाम द्विपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३५२

अथ त्रिपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नपुंसकशब्दसिद्धरूपम्

स्कन्द उवाच—

नपुंसके किं के कानि किं के कानि ततो [1]जलम् ।
सर्वं सर्वे च पूर्वाद्याः सोमपं सोमपानि च ॥१

स्कन्द बोले—नपुंसक किम् शब्द के प्रथमा तथा द्वितीया विभक्तियों के तीनों वचनों में रूप किम्, के, कानि होते हैं। इसी प्रकार जल शब्द के भी रूप होते हैं। सर्व शब्द के प्रथमा के एकवचन और द्विवचन के रूप बनते हैं सर्वम् और सर्वे। इसी प्रकार पूर्व इत्यादि शब्दों के भी रूप चलते हैं। सोमपा शब्द के प्रथमा एकवचन और बहुवचन में रूप सोमपम् और सोमपानि बनते हैं।१

ग्रामणि ग्रामणिनी च ग्रामणि ग्रामणीन्यपि ।
वारि वारिणी वारीणि वारि (री) णां वारिणीदृशम् ॥२
शुचये शुचिने देहि मृदुने मृदवे तथा ।
त्रपु त्रपुणि (णी) त्रपूणां च खलपूनि खलप्वि च ॥३

ग्रामणी शब्द के प्रथमा और द्वितीया के एकवचन और द्विवचन के रूप ग्रामणि और ग्रामणिनी तथा बहुवचन में ग्रामणीनि होते हैं। वारि शब्द के प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के तीनों वचनों में रूप होते हैं—वारि, वारिणी, वारीणि, षष्ठी बहुवचन में इसके रूप हैं वारीणाम् और सप्तमी एकवचन में वारिणि रूप बनते हैं। शुचि शब्द के चतुर्थी एकवचन में शुचये-शुचिने और मृदु के मृदुने अथवा मृदवे रूप बनते है। त्रपु शब्द के प्रथमा तथा द्वितीया के एकवचन में और द्विवचन में क्रमशः त्रपु और त्रपुणी रूप बनते है। खलपू शब्द के प्रथमा बहुवचन में खलपूनि तथा सप्तमी एकवचन में खलप्वि रूप बनते हैं।२-३।

कर्त्री च कर्तृणे कर्त्रे अतिर्यतिरिणां तथा ।
अभिन्यभिनिनी चैव सुवचांसि सुवाक्षु च ॥४

---

१ ख. ग. जगत् ।

कर्तृ शब्द के तृतीया एकवचन में कर्त्रा, चतुर्थी एकवचन में कर्त्रे रूप बनता है। अतिर् शब्द के सप्तमी एक वचन में अतिरि और षष्ठी बहुवचन में अतिरिणाम् रूप बनते हैं। अभिनि शब्द के प्रथमा और द्वितीया के एकवचन और द्विवचन में क्रमशः अभिनि और अभिनिनी रूप होते हैं। सुवच् शब्द के प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन में सुवचांसि और सप्तमी के बहुवचन में सुवाक्षु रूप होते हैं।४।

यद्यत्विमे तत्कर्माणि इदं चेमे त्विमानि च।
ईदृक्त्वदोऽमुनी अमूनि अमुना स्यादमीषु च ॥५

यत् शब्द के प्रथमा तथा द्वितीया एकवचन में यत्, यत् 'तत् के प्रथमा तथा द्वितीया एकवचन में तत्, कर्म के प्रथमा तथा द्वितीया, के बहुवचन में कर्माणि, इदम् के प्रथमा और द्वितीया के तीनों वचनों में इदम्, इमे, इमानि, ईदृक्, शब्द का प्रथमा तथा द्वितीया के एकवचन में ईदृक्, अदस् के प्रथमा तथा द्वितीया के तीनों वचनों में अदः अमुनी अमूनि, तृतीया एकवचन में अमुना और सप्तमी बहुवचन में अमीषु रूप होते हैं।५।

अहमावां वयं मां वै आवामस्मान्मया कृतम्।
आवाभ्यां च तथाऽस्माभिर्मह्यमस्मभ्यमेव च ॥६
मदावाभ्यां मदस्मच्च पुत्रोऽयं मम चाऽऽवयोः।
अस्माकमपि चास्मासु त्वं युवां यूयमीजिरे ॥७

अस्मद् शब्द के प्रथमा विभक्ति के तीनों वचनों में अहम्, आवाम्, वयम्, द्वितीया के तीनों वचनों में माम्, आवाम्, अस्मान्, तृतीया के तीनों वचनों में मया, आवाभ्यां, अस्मा, षष्ठी के तीनों वचनों में मम, आवयोः, अस्माकम् और सप्तमी के बहुवचन में अस्मासु रूप होते हैं।६-७।

त्वां (च) युवां च युष्मांश्च त्वया युष्माभिरीरितम्।
तुभ्यं युवाभ्यां युष्मभ्यं त्वत्, युवाभ्यां च युष्मच्च ॥८
तव युवयोर्युष्माकं त्वयि युष्मासु भारती।
उपलक्षणमत्रैव अज्झलन्ताश्च ते स्मृताः ॥९

युष्मद् शब्द के प्रथमा विभक्ति के तीनों वचनों में त्वम्, युवाम्, यूयम् द्वितीया के तीनों वचनों में त्वाम्, युवाम्, युष्मान्, तृतीया के एकवचन और बहुवचन में क्रमशः त्वया और युष्माभिः, चतुर्थी के तीनों वचनों में तुभ्यम्, युवाभ्यां, युष्मभ्यम्, पंचमी के तीनों वचनों में तव, युवयोः, युष्माकम्, सप्तमी के एकवचन और बहुवचन में क्रमशः त्वयि और युष्मासु रूप होते हैं। ये उदाहरण उपलक्षण मात्र हैं इसी प्रकार (अन्य) अजन्त और हलन्त शब्दों के रूप कहे गये हैं।८-९।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नपुंसकशब्दसिद्धरूपकथनं नाम
त्रिपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः।३५३

अथ चतुष्पञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

कारकम्

स्कन्द उवाच—
कारकं संप्रवक्ष्यामि विभक्त्यर्थसमन्वितम्[1]।
ग्रामोऽस्ति [2]हेमहार्केह नौमि विष्णुं श्रिया सह ॥१

स्कन्द बोले—अब मैं विभक्त्यर्थ से युक्त कारक के सम्बन्ध में बताऊँगा। इनका प्रयोग इस प्रकार किया जाता है। 'ग्रामोऽस्ति, यहाँ प्रथमा विभक्ति हुई है। हे महार्क यहाँ सम्बोधन में प्रथमा है। इह नौमि विष्णुं श्रिया सह यहाँ विष्णुं में द्वतीया हुई है।१।

स्वतन्त्रः कर्ता विद्यां तां कृतिनः समुपासते।
हेतुकर्ता[3] लम्भयते[4] हितं वै कर्मकर्तरि ॥२
स्वयं भिद्यते प्राकृतधीः स्वयं च छिद्यते तरुः।
कर्ताऽभिहित उत्तमः कर्ताऽनभिहितोऽधमः ॥३

स्वतन्त्र कर्ता उसे कहते हैं जो (क्रिया में) स्वतन्त्र रूप से विवक्षित रहता है, जैसे 'विद्यां तां कृतिनः समुपासते' यहाँ कृतिनः कर्ता है। 'हेतुकर्ता का

---

१ ख. ग. °म्। समोऽस्ति महार्केह। २ क. ङ. हेमहार्क्वेहमासविष्णुः श्रि°।
३ ख. ग. °र्ता न म्रियते। ४ क ङ. लभते।

'चैत्रो मैत्रं लम्भयते ।' कर्मकर्ता का उदाहरण—'स्वयं भिद्यते प्राकृतधीः' (प्राकृत बुद्धि के व्यक्ति में स्वयं भेद उत्पन्न हो जाता है) 'स्वयं च छिद्यते तरुः' (वृक्ष स्वयं काटा जाता है।) जो कर्ता उक्त होता है, उसे उत्तम और जो अनुक्त होता है उसे अधम कहते हैं।२-३।

[1]कर्तानभिहितो धर्मः शिष्ये व्याख्यायते यथा।
कर्ता पञ्चविधः प्रोक्तः कर्म सप्तविधं शृणु।।४
ईप्सितं कर्म च यथा श्रददधाति हरिं यतिः।
अनीप्सितं कर्म यथा अहिं लङ्घयते भृशम् ।।५
नैवेप्सितं नानीप्सितं दुग्धं संभक्षयन्रजः।
भक्षयेदप्यकथितं गोपालो दोग्धि गां पयः ।।६

अनुक्त कर्ता वहां पर होता है जैसे—'धर्मः शिष्ये व्याख्यायते' (शिष्य के लिए धर्म की व्याख्या की जाती है)। पाँच प्रकार का कर्ता कहा जा चुका है अब सात प्रकार के कर्म के विषय में सुनो—'ईप्सितम् कर्म' (अभीष्ट को कर्म कहते हैं) जैसे –'श्रद्धाति हरिं यतिः' (यति विष्णु के प्रति श्रद्धा रखता है)। अनीप्सित कर्म जैसे—'अहिम् लङ्घयते भृशम्' (सर्प का अत्यन्त उल्लंघन करता है) ईप्सित और अनीप्सित कर्म जैसे—'दुग्धं सम्भक्षयन् रजःभक्षयेत्' (दुग्ध खाते हुए धूलि खाना चाहिए)। अकथित कर्म जैसे—'गोपालो दोग्धि गां पयः' (ग्वाला गाय से दूध दुहता है) ।४-६।

कर्तृकर्माथ गमयेच्छिष्यं ग्रामं गुरुर्यथा।
कर्म चाभिहितं पूजा क्रियते वै श्रिये हरेः ।।७
[2]कर्मानभिहितं स्तोत्रं हरेः कुर्यात्तु सर्वदम्।
करणं द्विविधं प्रोक्तं वाह्यम (मा) भ्यन्तरं तथा ।।८
चक्षुषा रूपं गृह्णाति वा (वा) ह्यं दात्रेण तल्लुनेत्।
संप्रदानं त्रिधा प्रोक्तं प्रेरकं ब्राह्मणाय गाम् ।।९

---

१ ख. ग. °र्तानाभिहितो धर्मः शिष्यो व्याख्यायतेऽन्यथा। २ क. ङ. °र्माभिनिहि°।

नरो [1]ददाति नृपतये दासं तदनुमन्तृकम् ।
अनिराकर्तृकं भर्त्रे दद्यात्पुष्पाणि सज्जनः ।।१०

कर्तृकर्म—जहाँ प्रयोजक कर्ता का प्रयोग होता है, वहाँ प्रयोज्य कर्ता कर्म के रूप में परिणत हो जाता है । यथा —'गुरुः शिष्यं ग्रामं गमयेत्' (गुरु शिष्य को ग्राम भेजे) । यहाँ गुरु प्रयोजक कर्ता है, और शिष्य प्रयोज्य कर्ता या 'कर्मभूत कर्ता' है । 'अभिहित कर्म' 'श्रिये हरेः पूजा क्रियते' (लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए श्री हरि की पूजा की जाती है) । यहाँ कर्म में प्रत्यय होने से पूजा 'उक्त कर्म' है, इसी को 'अभिहित कर्म' कहते हैं । अनभिहित कर्म—जहाँ कर्ता में प्रत्यय होता है, वहाँ कर्म अनभिहित हो जाता है, अतएव उसमें द्वितीया विभक्ति होती है । जैसे —'हरेः सर्वदं स्तोत्रं कुर्यात्' (श्री हरि की सर्वमनोरथ-दायिनी स्तुति करें) । करण दो प्रकार का बतलाया गया है—बाह्य और आभ्यन्तर । 'तृतीया करणे भवेत्' इस नियम के अनुसार करण में तृतीया होती है । आभ्यन्तर का उदाहरण देते हैं—'चक्षुषा रूपं गृह्णाति' । (नेत्र से रूप को ग्रहण करता है ।) यहाँ नेत्र 'आभ्यन्तर करण' है, अतः इसमें तृतीया विभक्ति हुई । 'बाह्यकरण का उदाहरण है—दात्रेण तल्लुनेत् ।' (हसुआ से उसको काटे) । यहाँ दात्र 'बाह्यकरण' है । अतः उसमें तृतीया हुयी है । सम्प्रदान तीन प्रकार का बताया गया है । प्रेरक, अनुमन्तृक और अनिराकर्तृक । जो दान के लिये प्रेरित करता हो, वह 'प्रेरक' है । जो प्राप्त हुयी किसी वस्तु के लिए अनुमति या अनुमोदन मात्र करता है, वह 'अनुमन्तृक' है । जो न प्रेरक है, न अनुमन्तृक है, अपितु किसी की दी हुयी वस्तु को स्वीकार कर लेता है, उसका निराकरण नहीं करता, वह 'अनिराकर्तृक-सम्प्रदान' है । 'सम्प्रदाने चतुर्थी' । इस नियम के अनुसार सम्प्रदान में चतुर्थी होती है । तीनों सम्प्रदानों के क्रमशः उदाहरण दिये जाते हैं—१. नरो ब्राह्मणाय गां ददाति । (मनुष्य ब्राह्मण को गाय देता है) । २. नरो नृपतये दासं ददाति । (मनुष्य राजा को दास अर्पित करता है ।) ३. 'सज्जनः भर्त्रे पुष्पाणि दद्यात्' (सज्जनपुरुष स्वामी को पुष्प दे) ।७-१०।

अपादानं द्विधा प्रोक्तं चलमश्वात्तु धावतः ।
पतितश्चाचलं ग्रामादागच्छति स वैष्णवः ।।११

---

१ क. ङ. °तिर्थसूयेवासस्तदधिमन्तिकम् । अनिशकर्तृकं दात्रे दद्यात्प्राग्र्योऽपि सज्ज° ।

चतुर्धा चाधिकरणं व्यापकं दध्नि वै घृतम् ।
तिलेषु तैलं देवार्थमौपश्लेपिकमुच्यते ॥१२
गृहे तिष्ठेत्कपिर्वृक्षे स्मृतं वैपयिकं यथा ।
जले मत्स्यो वने सिंहः स्मृत सामीप्यकं यथा ॥१३
गंगायां घोपो वसति औपचारिकमीदृशम् ।

अपादान दो प्रकार का होता है--'चल और अचल' । कोई भी अपादान क्यों न हो, ('अपादाने पञ्चमी स्यात्'—इस नियम के अनुसार उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है । 'धावतः अश्वात् पतितः' (दौड़ते हुए घोड़े मे गिरा)यहां चल अपदान है । 'स वैष्णवः ग्रामादायाति (वह वैष्णव गांव से आता है) यहाँ अचल अपादान है । अधिकरण चार प्रकार के होते हैं—अभिव्यापक, औपश्लेषिक, वैपयिक और सामीप्यक । जो तत्त्व किसी वस्तु में व्यापक हो, वह आधारभूत वस्तु अभिव्यापक 'अधिकरण' है । यथा–'दध्नि घृतम् ' (दही में घी है) । 'तिलेषु तैलं देवार्थम्' । (तिल में तेल है जो देवता के उपयोग में आता है ।) यहाँ घी दही में और तैल तिल में व्याप्त है । अतः इनके आधारभूत दही और तिल अभिव्यापक अधिकरण हैं । अव 'औपश्लेपिक अधिकरण' वताया जाता है—'कपिर्गृहे तिष्ठेद् वृक्षे च तिष्ठेत्' । (वंदर घर के ऊपर स्थित होता है और वृक्ष पर भी स्थित होता है ।) कपि के आधारभूत जो गृह और वृक्ष हैं, उन पर वह सटकर वैठता है । इसीलिए वह 'औपश्लेपिक अधिकरण' माना गया है । अव वैपयिक अधिकरण वताते हैं—विषयभूत अधिकरण को 'वैषयिक' कहते हैं–यथा—'जले मत्स्यः ।' 'वने सिंहः' । (जल में मछली वन में सिंह) । अव सामीप्यक अधिकरण वतलाते हैं--'गंगायां घोषो' वसति' । (गंगा में गोशाला वसती है) । यहाँ गंगा का अर्थ है गंगा के समीप । ऐसे वाक्य औपचारिक माने जाते हैं । जहाँ मुख्यार्थ वाधित होने से उसके सम्बन्ध से युक्त अर्थान्तर की प्रतीति होती है, वहाँ 'लक्षणा' होती है । इस तरह के वाक्य प्रयोग को 'औपचारिक' कहते हैं ।११-१३½।

तृतीया वाऽथ वा षष्ठी स्मृताऽनभिहिते तथा ॥१४
विष्णुः सम्पूज्यते लौकैर्गन्तव्यं तेन तस्य वा ।
प्रथमाऽभिहितकर्तृकर्मणोः प्रणमेद्धरिम् ॥१५
हेतौ तृतीया चान्येन वसेद्वृक्षाय वै जलम् ।
चतुर्थी तादर्थ्येऽभिहिता पञ्चमी पर्युपाङ्मुखैः ॥१६
योगे वृष्टः परिग्रामाद्देवोऽयं वलवत्पुरा ।

पूर्वो ग्रामादृते विष्णोर्न मुक्तिरितरो हरेः ।।१७
पृथग्विनाद्यैस्तृतीया पञ्चमी च तथा भवेत् ।
पृथग्ग्रामाद्विहारेण विना श्रीश्च (श्रियं) श्रिया श्रियः ।।१८
कर्मप्रवचनीयाख्यैर्द्वितीया योगतो भवेत् ।
अन्वर्जुनं च योद्धारो ह्यभितो ग्राममीरितम् ।।१९

अनभिहित कर्ता में तृतीया अथवा षष्ठी विभक्ति होती है । यथा 'विष्णुः सम्पूज्यते लोकेः' (लोगों द्वारा विष्णु पूजे जाते हैं) यहाँ कर्म में प्रत्यय हुआ है । अतः कर्म उक्त है और कर्ता अनुक्त । इसलिए अनुक्तकर्ता 'लोक' शब्द में तृतीया विभक्ति हुई है । 'तेन गन्तव्यम्', तस्य गन्तव्यं (उसको जाना चाहिए) वहाँ उपर्युक्त नियम के अनुसार तृतीया और षष्ठी— दोनों का प्रयोग हुआ है । षष्ठी का प्रयोग कृदन्त के योग में ही होता है । अभिहितकर्ता और कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है । इसलिए 'विष्णुः' में प्रथमा विभक्ति हुयी है । 'भक्तः हरिं प्रणमेत्' (भक्त भगवान को प्रणाम करे ।) यहाँ अभिहित कर्ता 'भक्त' में प्रथमा विभक्ति हुई है और अनुक्त कर्म 'हरि' में द्वितीया विभक्ति । 'हेतु में तृतीया विभक्ति होती है यथा—अन्नेन वसेत् ।' (अन्न के हेतु कहीं भी निवास करे ।) यहाँ हेतुभूत अन्न में तृतीया विभक्ति हुयी है । 'तादर्थ्य' में चतुर्थी विभक्ति कही गयी है । यथा-'वृक्षाय जलम्' 'वृक्ष के लिए पानी' । यहाँ वृक्ष शब्द में 'तादर्थ्य' प्रयुक्त चतुर्थी विभक्ति हुयी है । परि, उप, आङ्, आदि के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है । यथा —'परिग्रामात् पुरा बलवत् दृष्टोऽयं देवः ।' (गाँव से कुछ दूर हटकर दैव ने पूर्वकाल में बड़े जोर की वर्षा की थी) इस वाक्य में 'परि' के साथ योग होने के कारण 'ग्राम' शब्द में पञ्चमी विभक्ति हुयी है । दिग्वाचक शब्द, अन्यार्थक शब्द तथा 'ऋते' आदि शब्दों के योग में भी पञ्चमी विभक्ति होती है । यथा —पूर्वो ग्रामात् । ऋते विष्णोः । न मुक्तिः इतरा हरेः । पृथक् और विना आदि के योग में तृतीया एवं पञ्चमी विभक्ति होती है—जैसे 'पृथग् ग्रामात्' यहाँ 'पृथक्' शब्द के योग में ग्राम शब्द से पञ्चमी विभक्ति हुयी । और पृथग् 'विहारेण' यहाँ 'पृथक्' शब्द के योग में विहार शब्द से तृतीया विभक्ति हुई है । इसी प्रकार 'विना' शब्द के योग में भी जानना चाहिए । 'विना श्रिया'— यहां विना के योग में श्री शब्द से द्वितीया और 'विना श्रियः'—यहाँ विना के योग में श्री शब्द से तृतीया और 'विना श्रियः'—यहाँ 'विना' के योग में 'श्री' शब्द से पञ्चमी हुयी है । कर्म-

प्रवचनीय संज्ञक शब्दों के योग मे द्वितीया विभक्ति होती है जैसे—'अन्वर्जुनं योद्धारः'—योद्धा अर्जुन के सन्निकट प्रदेश में हैं। यहाँ 'अनु' कर्मप्रवचनीय संज्ञक हैं। इसके योग में अर्जुन शब्द में द्वितीया विभक्ति हुई। इसी प्रकार अभितः, परितः आदि के योग में भी द्वितीया होती है। जैसे—अभितो ग्राम-मीरितम्' गाँव के सब तरफ कह दिया है।१४-१६।

नमः स्वाहास्वधास्वस्तिवषडाद्यैश्चतुर्थ्यपि।
नमो देवाय ते स्वस्ति तुमर्थाद्भाववाचिनः॥२०
पाकाय पक्तये याति तृतीया सहयोगके।
हेत्वर्थे कुत्सितेऽङ्गे सा तृतीया च विशेषणे॥२१
पिताऽगात्सह पुत्रेण काणोऽक्ष्णा गदया हरिः।
अर्थेन निवसेद्भृत्यः काले भावे च सप्तमी॥२२
विष्णौ नते भवेन्मुक्तिर्वसन्ते स गतो हरिम्।
नृणां स्वामी नृषु स्वामी नृणामीशः सतां पतिः॥२३
नृणां साक्षी नृषु साक्षी गोषु नाथो गवां पतिः।
गोषु सूतो गवां सूतो राज्ञां दायादकोऽस्त्विह॥२४

नमः स्वाहा, स्वधा, स्वस्ति और वषट् आदि के साथ-साथ चतुर्थी का प्रयोग होता है। जैसे—'नमो देवाय' (देवता को नमस्कार) और 'ते स्वस्ति' (तुम्हारा कल्याण हो) तुमुन् के अर्थ में भाववाचक संज्ञाओं के साथ भी चतुर्थी का प्रयोग होता है—जैसे—'पाकाय पक्तये याति' (पकाने के लिए जाता है)। सहयोग, हेत्वर्थ, कुत्सित अंग और विशेषण के साथ भी तृतीया का प्रयोग होता है—जैसे—'पिताऽगात् सह पुत्रेण' ('पुत्र के साथ पिता गया) 'काणोऽक्ष्णा' (आँख से काना) 'गदया हरिः' (गदाधारी विष्णु) और 'अर्थेन निवसेद्भृत्यः' धन के लिए नौकर को रहना चाहिए)। काल और भाव में सप्तमी का प्रयोग होता है जैसे—'वसन्ते स गतो हरिम्' (वह वसन्त में हरि के पास गया)। 'विष्णौ नते भवेन्मुक्तिः' (विष्णु का नमस्कार करने पर मुक्ति होती है)। कुछ अर्थों में षष्ठी और सप्तमी दोनों विभक्तियाँ होती हैं--जैसे 'नृणां स्वामी', नृषु स्वामी, नृणामीशः (मनुष्यों का स्वामी) सतां पतिः (सज्जनों का स्वामी), नृणां साक्षी, नृषु साक्षी' (मनुष्यों का साक्षी) गोषु नाथो, 'गवाम् पतिः' (गायों का स्वामी), गोषु सूतो, गवाम् सूतो, (गायों से उत्पन्न) 'राज्ञां दायादकः' (राजाओ का साझीदार)।२०-२४।

अन्नस्य हेतोर्वसति षष्ठी स्मृत्यर्थकर्मणि ।
मातुः स्मरति गोप्तारो नित्यं स्यात्कर्तृ कर्मणोः ॥२५
अपां भेत्ता तव कृतिर्न निष्ठादिषु षष्ठ्यपि ॥२६

'अन्नस्य हेतोर्वसति' (अन्न के लिए रहता है) । जिसका स्मरण किया जाता है उसमें कर्म के अर्थ में षष्ठी का प्रयोग होता है । जैसे—'मातुः स्मरति' (माता का स्मरण करता है) । इसी प्रकार कर्ता और कर्म के निष्ठा आदि में भी षष्ठी का प्रयोग होता है—जैसे—'अपाम् भेत्ता' (जल का भेदन करने वाला) 'तव कृतिर्न' (तुम्हारी कृति नहीं है) ।२५-२६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कारकनिरूपणं नाम चतुष्पञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।३५४

अथ पञ्चपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

समासः

स्कन्द उवाच—
षोढा समासं वक्ष्यामि अष्टाविंशतिधा पुनः ।
नित्यानित्यविभागेन लुगलोपेन च द्विधा ॥१

स्कन्द बोले—अब मैं समास के विषय में बताऊँगा । यह छः प्रकार के होते है और पुनः जिसके अट्ठाईस भेद होते हैं । कुछ समास नित्य और कुछ अनित्य होते हैं । उनके दो पैर और होते हैं—लुक् और अलुक् ॥१

कुम्भकारश्च नित्यः स्याद्धेमकारादिकस्तथा ।
राज्ञः [1]पुमान्राजपुमाननित्योऽयं समासकः ॥२
कष्टश्रितो लुक्समासः कण्ठेकालादिकस्त्वलुक् ।
स्यादष्टधा तत्पुरुषः प्रथमाद्याः सुपा सह ॥३

---

१ ख. ग. ०जपुंसामनि० ।

कुछ समास नित्य होते हैं जैसे कुम्भकार और हेमकार इत्यादि। 'राज्ञः पुमान्' का 'राजपुमान्' हो जाना अनित्य समास है। लुक् समास का उदाहरण है—'कष्टश्रितः और अलुक् समास का 'कण्ठे काल' इत्यादि। प्रथमा इत्यादि विभक्तियों से युक्त रहने के कारण तत्पुरुष समास आठ प्रकार का होता है। प्रथमान्त आदि शब्द सुबन्त के साथ समस्त होते हैं।२-३।

प्रथमातत्पुरुषोऽयं पूर्व कायस्य विग्रहे।
पूर्वकायोऽपरकायो ह्यधरोत्तरकायकः ॥४
अर्ध कणाया अर्धकणा भिक्षातू (तु) र्यमथेदृशम्।
आपन्नजीविकस्तद्वद्द्वितीया माधवाश्रितः ॥५
वर्ष भोग्यो वर्षभोग्यो धान्यार्थश्च तृतीयया।
चतुर्थी स्याद्विष्णुवलिर्वृकभीतिश्च पञ्चमी ॥६
राज्ञः पुमान्राजपुमान्षष्ठी वृक्षफलं तथा।
सप्तमी चाक्षशौण्डोऽयमहितो नञ्समासकः ॥७

'पूर्वकायः' इस तत्पुरुष समास में जब 'पूर्वं कायस्य' ऐसा विग्रह किया जाता है, तब यह 'प्रथमा तत्पुरुष' समास कहा जाता है। इसी प्रकार 'अपरकायः'—कायस्य अपरम्, इस विग्रह में, 'अधरकायः' कायस्य अधरम्-- इस विग्रह में और 'उत्तरकायः'—कायस्योत्तरम्—इस विग्रह में भी प्रथमा तत्पुरुष समास कहा जाता है। ऐसे ही 'अर्धकणा' इसमें अर्द्धम् कणायाः— ऐसा विग्रह होने से प्रथमा तत्पुरुष समास होता है एवं भिक्षातुर्यम्—इसमें 'तुर्यं भिक्षायाः' ऐसा विग्रह होने से 'तुर्यभिक्षा' और पक्षान्तर में 'भिक्षातुर्यम्' —ऐसा षष्ठी तत्पुरुष होता है। ऐसे ही 'आपन्नजीविकः' यह द्वितीया तत्पुरुष समास है। इसका विग्रह इस प्रकार होता है—'आपन्नो जीविकाम्'। पक्षान्तर में 'जीविकापन्नः' ऐसा रूप होता है। इसी प्रकार 'माधवाश्रितः'— यह द्वितीया समास है, इसका विग्रह 'माधवम् आश्रितः' इस प्रकार है। 'वर्षभोग्यः' यह द्वितीया तत्पुरुष समास है—इसका विग्रह है 'वर्षं भोग्यः'। 'धान्यार्थः' यह तृतीया-समास है। इसका विग्रह 'धान्येन अर्थः' इस प्रकार है। 'विष्णुबलिः'—यहाँ 'विष्णवे बलिः'—इस विग्रह में चतुर्थी तत्पुरुष समास होता है। 'वृकभीतिः' यह पञ्चमी तत्पुरुष है। इसका विग्रह 'वृकाद् भीतिः' —इस प्रकार है। 'राजपुमान्' यहाँ 'राज्ञः पुमान्'—इस विग्रह में षष्ठी

तत्पुरुष समास होता है। इसी प्रकार 'वृक्षस्य फलम्' 'वृक्षफलम्' यहाँ षष्ठी तत्पुरुष समास है। 'अक्षशौण्डः' (द्यूत क्रीड़ा में निपुण) इसमें सप्तमी-तत्पुरुष समास है। अहितः—जो हितकारी न हो, वह—इसमें 'नञ्समास' है।४-७।

कर्मधारयः सप्तधा नीलोत्पलमुखाः स्मृताः।
विशेषणपूर्वपदो विशेष्योत्तरतस्तथा ॥८
वैयाकरणखसूचिः शीतोष्णं द्विपदं शुभम्।
उपमानपूर्वपदः शङ्खपाण्डुर इत्यपि ॥९
उपमानोत्तरपदः पुरुषव्याघ्र इत्यपि।
संभावनापूर्वपदो गुणबुद्धिरितीदृशम् ॥१०
गुण इति वृत्तिर्वाच्या [1]सुहृदेव सुवन्धुकः।
अवधारणापूर्वपदो वहुव्रीहिश्च सप्तधा ॥११

'नीलोत्पल' आदि जिसके उदाहरण, वह 'कर्मधारय' समास सात प्रकार का होता है—१–विशेषण पूर्वपद (जिसमें विशेषण पूर्वपद हो और विशेष्य उत्तरपद अथवा)। इसका उदाहरण—'नीलोत्पल' (नीला कमल)। २–विशेष्योत्तरविशेषणपद—इसका उदाहरण है—'वैयाकरणखसूचिः' (कुछ पूछने पर आकाश की ओर देखने वाला वैयाकरण) ३– विशेषणोभयपद (अथवा विशेषणद्विपद) जिसमें दोनों पद विशेषण रूप ही हों। जैसे शीतोष्ण (ठंडा-गरम)। ४–उपमान पूर्वपद। इसका उदाहरण है—'शङ्खपाण्डुरः' (शङ्ख के समान सफेद)। ५–उपमानोत्तरपद—इसका उदाहरण है—'पुरुष व्याघ्रः (पुरुषो व्याघ्र इव) ६–सम्भावनापूर्वपद—(जिसमें पूर्वपद सम्भावनात्मक हो) उदाहरण—गुणवृद्धिः (गुण इति वृद्धिः स्यात्) अर्थात् 'गुण' शब्द बोलने से वृद्धि की सम्भावना होती है)। तात्पर्य यह है कि 'वृद्धि हो'—यह कहने की आवश्यकता हो तो 'गुण' शब्द का ही उच्चारण करना चाहिए। ७ अवधारणपूर्वपद—(जहाँ पूर्वपद में 'अवधारण' (निश्चय) सूचक शब्द का प्रयोग हो, वह)। जैसे—'सुहृदेव सुबन्धुकः' (सुहृद् ही सुबन्धु है)। बहुव्रीहि समास भी सात प्रकार का ही होता है।८-११।

द्विपदश्च वहुव्रीहिरारूढभवनो नरः।
[2]अर्चिताशेषपूर्वोऽयं वह्वङ्घ्रिः परिकीर्तितः ॥१२

---

१ ख. ग. °हृदामेकवन्धकः। २ ख. ग. अर्जिता°।

एते विप्राश्चोपदशाः संख्योत्तरपदस्त्वयम् ।
संख्योभयपदो यद्वद्द्वित्रा द्वयेकत्रयो नरः ॥१३
सहपूर्वपदोऽयं स्यात्समूलोद्धृतकस्तरुः ।
व्यतिहारलक्षणोऽर्थः केशाकेशि नखानखि ॥१४

१-द्विपद, २ बहुपद, ३-संख्योत्तरपद, ४-संख्योभयपद, ५-सहपूर्वपद, ६--व्यतिहारलक्षणार्थ तथा ७--दिग्लक्षणार्थ। 'द्विपद बहुव्रीहि' में दो ही पदों का समास होता है। यथा—'आरूढ़भवनो नरः'। (आरूढं भवनं येन सः) इस विग्रह के अनुसार जो भवन पर आरूढ़ हो गया हो, उस मनुष्य का बोध कराता है।) 'बहुपद बहुव्रीहि' में दो से अधिक पद समास में आवद्ध होते हैं। इसका उदाहरण है—'अयम् अर्चिताशेषपूर्वः।' (अर्चिता अशेषाः पूर्वा यस्य सोऽयम् अर्चिताशेषपूर्वः) अर्थात् जिसके सारे पूर्वज पूजित हुए हों, वह 'अर्चिताशेषपूर्व' है। इसमें 'अर्चित' 'अशेष' तथा 'पूर्व'—ये तीनों पद समास में आबद्ध हैं। ऐसा समास 'बहुपद' कहा गया है। 'संख्योत्तरपद' का उदाहरण है—'एते विप्रा उपदशाः'—ये ब्राह्मण लगभग दस हैं। इसमें 'दस' संख्या उत्तरपद के रूप में प्रयुक्त है। 'द्वित्राः द्वयेकत्रयः' इत्यादि संख्योभयपद के उदाहरण है। 'सहपूर्वपद' का उदाहरण—'समूलोद्धृतकः तरुः'। (सह मूलेन उद्धृतं कं शिखा यस्य सः)। अर्थात् जड़सहित उखड़ गयी है शिखा जिसकी, वह वृक्ष)—यहाँ पूर्वपद के स्थान में 'सह' (स) का प्रयोग हुआ है। व्यतिहार-लक्षण का उदाहरण है—केशाकेशि, नखानखि युद्धम् (आपस में झोंटा-झोंटौवल, परस्पर नखों से बकोटा-बकोटी पूर्वक कलह)। १२-१४।

दिग्लक्ष्या स्याद्दक्षिणपूर्वा द्विगुराभाषितो द्विधा ।
एकवद्भावि (वी) द्विशृङ्गं पञ्चमूली त्वनेकधा ॥१५
द्वन्द्वः समासो द्विविधो हीतरेतरयोगकः ।
रुद्रविष्णू समाहारो भेरीपटहमीदृशम् ॥१६
द्विधाऽऽख्यातोऽव्ययीभावो नामपूर्वपदो यथा ।
शाकस्य मात्रा शाकप्रति यथाऽव्ययपूर्वकः ॥१७
उपकुम्भं चोपरथ्यं प्राधान्येन चतुर्विधः ।
उत्तरपदार्थमुख्योऽयं द्वन्द्वश्चोभयमुख्यकः ॥१८
पूर्वार्थे सोऽव्ययीभावो बहुव्रीहिश्च वाह्यगः ॥१९

दिग्लक्षणार्थ का उदाहरण—उत्तरपूर्वा (उत्तर और पूर्व के अन्तराल की दिशा)। 'द्विगु' समास दो प्रकार का बतलाया गया है। 'एकवद्भाव' तथा 'अनेकधा' स्थिति को लेकर ये भेद किये गये हैं। संख्यापूर्वपद वाला समास 'द्विगु' है। इसे 'कर्मधारय' का ही एक भेद—विशेष स्वीकार किया गया है। 'एकवद्भाव' का उदाहरण है—द्विशृङ्गम् (दो सींगों का समाहार)। 'पञ्चमूली' भी इसी का उदाहरण है। 'अनेकधा' या 'अनेकवद्भाव' का उदाहरण है।—'सप्तर्षयः' इत्यादि। 'पञ्चब्राह्मणाः' में समास नहीं होगा, क्योंकि यहाँ संज्ञा नहीं है। 'द्वन्द्व' समास भी दो ही प्रकार का होता है—१. इतरेतरयोगी २. समाहारवान्। प्रथम का उदाहरण है—रुद्रविष्णू (रुद्रश्च विष्णुश्च—रुद्र तथा विष्णु)। यहाँ इतरेतर—योग है। समाहार का उदाहरण है—भेरीपटहम् (भेरी च पटहश्च, अनयोः समाहारः—अर्थात् भेरी और पटह का समाहार)। यहाँ 'तुर्याङ्ग' होने से इनका एकवद्भाव होता है। अव्ययीभाव समास भी दो तरह का होता है—१. नामपूर्वपद और २. ('यथा' आदि) अव्ययपूर्वपद। प्रथम का उदाहरण है—शाकस्य मात्रा—शाकप्रति। यहाँ 'शाक' पूर्वपद है और मात्रार्थक 'प्रति' अव्यय उत्तरपद। दूसरे का उदाहरण—'उपकुमारम्—उपरथ्यम्' इत्यादि है। समास को प्रायः चार प्रकारों में विभक्त किया जाता है—१. उत्तरपदार्थ की प्रधानता से युक्त (तत्पुरुष), २. उभयार्थ-प्रधान द्वन्द्वसमास, ३. पूर्वपदार्थ प्रधान 'अव्ययीभाव' तथा ४. अन्य अथवा बाह्यपदार्थ-प्रधान 'बहुव्रीहि'।१५-१६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये समासविभागकथनं नाम पञ्चपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः।३५५

———

अथ षट्पञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

तद्धितः

स्कन्द उवाच—

तद्धितं [1]त्रिविधं वक्ष्ये सामान्या वृत्तिरीदृशी[2]।
लच्यंसलो वत्सलः स्यादिलचि स्यात्तु फेनिलम्।।१

१ क. ङ. द्विविधं। २ "गुणवान्मतुपि प्रोक्तश्चूडालश्चालरीदृशम्" इत्यर्धं ख. ग. पुस्तकयोरधिकम्।

लोमशः शे पामनो ने इलचि स्यात्तु [1]पिच्छिलम् ।
अणि प्राज्ञ आर्चिकः स्याद्दन्तादुरचि दन्तुरः ॥२
रे स्यान्मधुरं सुशि (षि) रं वे स्यात्केशव ईदृशम् ।
हिरण्यं ये मालवो वे वलचि स्याद्रजस्वलः ॥३

स्कन्द बोले—अब त्रिविध 'तद्धित' का वर्णन करूँगा । 'तद्धित' के तीन भेद है—सामान्या वृत्ति तद्धित, अव्यय तद्धित तथा भाववाचक तद्धित । 'सामान्या वृत्ति तद्धित' इस प्रकार है—'अंस' शब्द से 'लच्' प्रत्यय होने पर 'अंसलः' बनता है, इसका अर्थ है बलवान् । 'वत्स' शब्द से 'लच्' प्रत्यय होने पर 'वत्सलः' रूप होता है, इसका अर्थ स्नेहवान् है । 'फेन' शब्द से 'इलच्' प्रत्यय होने पर 'फेनिलम्' रूप होता है, इसका अर्थ है—फेनयुक्त जल । लोमादि गण से 'श' प्रत्यय होता है, (विकल्प से 'मतुप्' भी होता है)—इस नियम के अनुसार 'श' प्रत्यय होने पर 'लोमशः' प्रयोग बनता है । (मतुप् होने पर 'लोमवान्' होता है । इसी तरह 'रोमशः, रोमवान्'—ये प्रयोग सिद्ध होते हैं ।) पामादि शब्दों से 'न' होता है—इन नियम के अनुसार 'पाम' शब्द से 'न' होने पर 'पामनः' 'अङ्गात् कल्याणे ।'—इस वार्तिक के अनुसार 'कल्याण' अर्थ में 'अङ्ग' शब्द से 'न' होने पर 'लक्ष्मणः' (उत्तम लक्षणों से युक्त) ये रूप बनते हैं । वैकल्पिक 'मतुप्' होने पर तो 'पामवान्' आदि रूप होंगे । जिसे खुजली हुई हो, वह पामन या 'पामवान्' है । इसी तरह पिच्छादि शब्दों से 'इलच्' होता है—इस नियम के अनुसार 'इलच्' होने पर 'पिच्छिलः' 'पिच्छवान्', 'उरसिलः,' 'उरस्वान्' इत्यादि रूप होते हैं । 'पिच्छिलः' का अर्थ 'पंखवान्' होता है । मार्ग का विशेषण होने पर यह फिसलन युक्त का बोधक होता है । उरस्वान् का अर्थ मनस्वी समझना चाहिए । (प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो णः) के अनुसार 'ण' प्रत्यय होने पर प्रज्ञा शब्द से 'प्राज्ञः' (प्रज्ञावान्), श्रद्धा शब्द से श्राद्धः (श्रद्धावान्) और 'अर्चा' शब्द से 'आर्चः' (अर्चावान्) रूप बनते हैं । 'दन्त' शब्द से 'उरच्' प्रत्यय होने पर 'दन्तुरः' यह रूप होता है । 'मधु' शब्द से 'र' प्रत्यय होने पर मधुरम् और सुषि शब्द से र प्रत्यय होने पर 'सुषिरम्', केश शब्द से 'व' प्रत्यय होने पर केशवः' 'हिरण्य' तथा 'मणि' शब्दो मे 'व' प्रत्यय होने पर 'हिरण्यवः' 'मणिवः'—ये प्रयोग सिद्ध होते हैं । 'रजस्' शब्द से 'वलच्' प्रत्यय होने पर 'रजस्वलम्' पद की सिद्धि होती है ।१-३।

---

१ ख. ग. °म् । न प्राज्ञा आलुकः श्राद्धो दन्ता° ।

इनौ धनी करी हस्तो धनिकं टिकनीरितम् ।
पयस्वी विनि मायावी ऊर्णायुर्युसि ईरितम् ॥४
वाग्मी मिनि आलचि स्याद्वाचालश्चाऽऽटचीरितम् ।
फलिनो वर्हिणः केकी वृन्दारकस्तथा कनि ॥५

वन, कर तथा हस्त—इन शब्दों से 'इनि' प्रत्यय होने पर क्रमशः 'धनी,' 'करी', और 'हस्ती'—ये पद सिद्ध होते हैं। 'घन' शब्द से 'ठन्' प्रत्यय होने पर 'घनिकं कुलम्' या 'धनिकः पुरुषः'—ये प्रयोग सिद्ध होते हैं। 'पयस्' तथा 'माया' शब्दों से 'विनि' प्रत्यय होने पर 'पयस्वी' 'मायावी'—ये रूप बनते है। 'ऊर्णा' शब्द से मत्वर्थीय 'युस्' प्रत्यय होने पर 'ऊर्णायुः' पद की सिद्धि बतायी गयी है। 'वाच् शब्द से 'ग्मिनि' प्रत्यय होने पर 'वाग्मी' तथा 'आलच्' प्रत्यय होने पर 'वाचालः'—ये रूप बनते हैं। उसी से 'आटच्' प्रत्यय होने पर 'वाचाटः' रूप बनता है। 'फल' तथा 'वर्ह' शब्दों से 'इनच्' प्रत्यय होने पर क्रमशः 'फलिनः' 'वर्हिणः'--ये रूप वनते हैं। 'वृन्द' शब्द से 'आरकन्' प्रत्यय होने पर 'वृन्दारकः' इन पद की सिद्धि होती है।४-५।

आलुचि शीतं न सहते शीतालुश्चैवमीदृशम् ।
हिमालुरालुचि स्याच्च हिमं न सहते तथा ॥६
रूपं वातादुलचि स्याद्वातुलश्चान (ण) पत्यके ।
वाशिष्ठः कौरवो वासः पाञ्चालः सोऽस्य वासकः ॥७
तत्र वासो माथुरः स्याद्वेत्यधीते च चान्द्रकः ।
[1]व्युत्क्रमं वेत्ति क्रमको नरश्चक्राम कौशकः (?) ८

'शीतं न सहते', 'हिमं न सहते'—इस विग्रह में 'शीत' तथा 'हिम' शब्दों से 'आलुच्' प्रत्यय करने पर 'शीतालुः' तथा 'हिमालुः' रूप बनते हैं। 'वात' शब्द से 'उलच्' प्रत्यय होने पर वातुलः' रूप बनता है। 'अपत्य' अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है । 'वशिष्ठस्यापत्यं पुमान् वाशिष्ठः'। 'कुरोरपत्यं पुमान् कौरवः'। (वशिष्ठ की सन्तान 'वाशिष्ठ' कहलाती है। तथा 'कुरु' की सन्तान

१ 'व्युत्क्रम' ......कौशकः' इत्यत्र "व्यक्तसंवेत्ति बुरुको नरश्चक्रमशोंऽशकः" इति क. ङ. पुस्तकयोः ।

'कौरव') 'वहाँ उसका निवास है'—इस अर्थ में सप्तम्यन्त 'समर्थ', शब्द से 'अण् प्रत्यय होता है। तथा—'मथुरायां वासोऽस्येति माथुरः' (मथुरा मे निवास है इसका इसलिये यह माथुर है) 'सोऽस्य वासः'। वह इसका वास-स्थान है, इस अर्थ में भी प्रथमान्त 'समर्थ' से 'अण्' प्रत्यय होता है। 'उसको जानता और उसको पढता है'—इस अर्थ में द्वितीयान्त 'समर्थ' पद से 'अण्' प्रत्यय होता है। 'चान्द्रं व्याकरणमधीते तद् वेद वा इति चान्द्रः।' (चान्द्र एव चान्द्रकः स्वार्थे क प्रत्ययः) । 'क्रमादि' शब्दों मे 'वुन्' प्रत्यय होता है ('वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है।) 'क्रमं वेत्ति इति क्रमकः—जो क्रमपाठ को जानता है, वह 'क्रमक' है। इसी तरह 'पदकः', शिक्षकः, मीमांसकः, इत्यादि पद बनते हैं। 'कोशम् अधीते वेद वा' जो कोश को जानता या पढ़ता है, वह 'कौशक' है।६-८।

प्रियंगूणां भवं क्षेत्रं प्रैयंगवीन (ण) कं खञि।
मौद्गीनं कौद्रवीणं च वैदेहश्चान (ण) पत्यके ॥९
इञि दाक्षिर्दाशरथिः फकि नाडायनादिकम्।
आश्वायनः स्याच्च फञि यञि गार्ग्यश्च वात्स्यकः ॥१०
ढकि स्याद्वैनतेयादिश्चाटकैरस्तथैरकि।
ढ्रकि गौधेरको रूपं गौधारश्चाऽऽरकीरितम् ॥११

'प्रियंगूणां भवं क्षेत्र' में खञ् प्रत्यय लगाने से 'प्रैयंगवीणकम्' बनता है। मुद्ग शब्द से खञ् होने पर मौद्गीन और कोद्रव से खञ् होने पर कौद्रवीण की सिद्धि होती है। विदेह शब्द से अण् प्रत्यय होने पर वैदेहः शब्द बनता है। अपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय लगाने से दाक्षिः, दाशरथिः, फक् प्रत्यय लगाने से नाडायन, फञ् प्रत्यय लगाने से आश्वायन, यञ् प्रत्यय लगाने से गार्ग्यः, वात्स्यकः, ढक् प्रत्यय लगाने से वैनतेयः, ऐरक् प्रत्यय लगाने से चाटकैर, ढ्क प्रत्यय लगाने से गौधेरक और आरक् प्रत्यय लगाने से गौधारः शब्द बनते है।९-११।

क्षत्रियो घे कुलीनः खे ण्ये कौरव्यादयः स्मृताः।
यति मूर्धन्यमुख्यादिः सुगन्धिरिति रूपकम् ॥१२

'क्षत्रियः' में 'घ' प्रत्यय, कुलीन में 'ख' प्रत्यय और 'कौरव्य' आदि मे 'ण्य' प्रत्यय कहे गये हैं। 'यत्' प्रत्यय लगाने से मूर्धन्य, मुख्य और सुगन्धि आदि शब्द बनते हैं।१२।

तारकादिभ्य इतचि नभस्तारकितादयः ।
अनङि स्याच्च कुण्डोघ्नी [1]पुष्पधन्वसुधन्वनी ॥१३

तारक इत्यादि में 'इतच्' प्रत्यय लगाने से तारकित इत्यादि शब्द बनते है। कुण्डोघ्नी, पुष्पधन्वा और सुधन्वा में 'अनङ्' प्रत्यय लगता है।१३

चुञ्चुपि वित्तचुञ्चुः स्याद्वित्तमस्य च शब्दके ।
चणपि स्यात्केशचणो रूपे स्यात्पटरूपकम् ॥१४
ईयसि च पटीयान्स्यात्तरप्यक्षतरादिकम् ।
पचतितरां च तरपि तमप्यटतितमामपि ॥१५
मृदुकल्पः कल्पपि स्यादिन्द्रकल्पोऽर्ककल्पकः ।
राजदेशीयो देशीये देश्ये देश्यादिरूपकम् ॥१६
पटुजातीयो जातीये जानुमात्रं च मात्रचि ।
ऊरुद्वयसो द्वयसच्यूरुदघ्नं च दघ्नचि ॥१७

'चुञ्चुप्' प्रत्यय लगाने से वित्तचुञ्चुः, चणप् प्रत्यय लगाने से 'केशचणः' होता है। 'पटु' शब्द से प्रशस्त अर्थ में 'रूप' प्रत्यय होने पर 'पटुरूपः' पद बनता है। अतिशयार्थ द्योतन के लिए 'तमप्' 'इष्ठन्' 'तरप्' और 'ईयसुन्' ये दोनों दो में से एक श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हैं और 'तमप्' तथा 'इष्ठन्' ये दोनों बहुतों में से एक की श्रेष्ठता बताते हैं। 'ईयस्' प्रत्यय लगाने से पटीयान्, 'तरप्' प्रत्यय लगाने से अक्षतर, तरप् आम् प्रत्यय लगाने से पचतितरान् तथा तमप्, आम् प्रत्यय लगाने से अटतितरा शब्द बनते हैं। 'कल्पप्' प्रत्यय लगाने से मृदुकल्पः, इन्द्रकल्पः, और अर्ककल्पः शब्द बनते हैं। देशीयर् प्रत्यय लगाने से राजदेशीय, देश्य लगाने से देश्य इत्यादि, जातीय लगाने से पटुजातीयः, 'मात्रच्' लगाने से जानुमात्रम्, 'द्वयसच्' लगाने से ऊरुद्वयसः, दघ्नच् लगाने से 'उरुदघ्नम्। १४-१७।

तयपि स्यात्पञ्चतयो दौवारिकष्ठकीरितम् ।
सामान्यवृत्तिरुक्ताऽथ अव्ययाख्यश्च तद्धितः ॥१८
यस्माद्यतस्तसिलि च यत्र तत्र त (त्र) लीरितम् ।
अस्मिन्काले ह्यधुना स्यादिदानीं चैव दान्यपि (नीमि) ॥१९

---

१ क. ङ. 'धन्वा सुधन्विनि। चुञ्चू°। ख. ग. 'धन्वाक्षयड्‌यपि। चुञ्चू°।

'तमप्' लगाने से पञ्चतयः, 'ठक्' लगाने से दौवारिक, बनते है। यहाँ तक सामान्य वृत्तियाँ बता दी गयी है। अब अव्यय नामक तद्धित प्रत्यय का निरूपण किया जाता है। तसिल् प्रत्यय लगाने से यस्मात् का यतः और त्रल् प्रत्यय लगाने से यत्र, तत्र शब्द बनते हैं। अधुना और दानीम् प्रत्यय लगाने से अस्मिन् काले के स्थान पर अधुना और इदानीम् शब्द बनते हैं।१८-१६।

सर्वस्मिन्सर्वदा दा स्यात्तस्मिन्काले र्हिलीरितम्।
तर्हि होऽस्मिन्काल इह [1]कर्हि कस्मिंश्च कालके ॥२०
यथा थालि थमि कथं पूर्वस्यां दिशि संचयेत्।
अस्ताति चैव पूर्वस्याः पूर्वादिग्रामणीयकाः ॥२१
पुरस्तात्संचरेद्गच्छेत्सद्यस्तुल्येऽहनीरितम्।
उतिः पूर्वाब्दे च परुत्पूर्वतरे परार्यपि ॥२२

'दा' प्रत्यय लगाने से सर्वस्मिन् काले का सर्वदा, र्हिल् प्रत्यय लगाने से तस्मिन् काले का तर्हि, ह लगाने से अस्मिन् काले का इह, र्हिल् लगाने से कस्मिन् काले का कर्हि शब्द बनते हैं। थाल् प्रत्यय लगाने से यथा थम् लगाने से कथम्, पूर्वस्या दिशि इस विग्रह में पूर्व शब्द से पुरः, पुरस्तात्, समाने अहनि इस अर्थ में सद्यः, पूर्वाब्दे इस अर्थ में परुत् और पूर्वतरे वर्षे इस अर्थ में परारि प्रयोग होते हैं।२०-२२।

ऐषमोऽस्मिन्संवत्सरे रूपं समसणीरितम्।
एद्यवौ परेद्यवि स्यात्परस्मिन्नहनीरितम् ॥२३
अद्यास्मिन्नहनि द्ये स्यात्पूर्वेद्युश्च तथैद्युसि।
दक्षिणस्यां दिशि [2]वसेद्दक्षिणाद्दक्षिणाद्युभौ ॥२४
उत्तरस्यां दिशि वसेदुत्तरादुत्तराद्युभौ।
[3]उपरि वसेदुपरिष्टाद्भवेद्रिष्टाति ऊर्ध्वकात् ॥२५

समसण् प्रत्यय लगाने से 'अस्मिन् संवत्सरे' का ऐषमः, एद्यवि प्रत्यय लगाने से 'परस्मिन्नहनि, अर्थ में परेद्यवि और द्ये तथा द्युस् प्रत्यय लगाने से

---

१ ख. क्वेति। २ क. ङ. वसेत्प्रत्ययेतत्रचेरितम्। उ॰। ख. वसेत्प्रत्ययेतस्वधीरितम्। उ॰। ३ 'उपरि......ऊर्ध्वकात्' इत्यत्र "आलोद्यपरिवामेषु प्रविष्टाद्वसतेरपि "इति दृश्यते क. ङ. पुस्तकयोः।

अस्मिन्नहनि इस अर्थ में अद्य और पूर्वस्मिन् दिने इस अर्थ में पूर्वेद्युः शब्द बनते है। 'दक्षिणस्याम् दिशि वसेत्' अर्थ में दक्षिणात् और दक्षिणाहि दोनों रूप होते हैं। इसी प्रकार उत्तरस्यां दिशि वसेत् अर्थ में उत्तरात् रूप होता है। उपरिवसेत् अर्थ में उपरिष्टाद् तथा ऊर्ध्व शब्द से रिष्टातिल् प्रत्यय होता हैं।२३-२५।

उत्तरेण च पित्रोक्तमाचि च स्याच्च दक्षिणा ।
आहौ दक्षिणाहि वसेद्द्विप्रकारं द्विधा च धा ॥२६

उत्तर शब्द से एनप् प्रत्यय लगने पर 'उत्तरेण' और दक्षिणा शब्द आच् प्रत्यय से होता है।

दक्षिणा में आहि प्रत्यय लगाने से दाक्षिणाहि शब्द बनता है। धा प्रत्यय लगाने से द्विधा शब्द बनता है जिसका अर्थ है दो प्रकार।२६।

ध्यमुञि चैकध्यं कुरु त्वं द्वैधं धमुञि चेदृशम् ।
द्वौ प्रकारौ [1]द्विधा धाचि आसुसुरतरं यथा ॥२७
निपातास्तद्धिताः प्रोक्तास्तद्धितो भाववाचकः ।
पटोर्भावः पटुत्वं त्वे पटुता तलि चेरितम् ॥२८
प्रथिमा चेमनि पृथोः सौख्यं सुखात्ष्यञीरितम् ।
स्तेयं याति च स्तेनस्य ये सख्युः सख्यमीरितम् ॥२९

ध्यमुञ् प्रत्यय लगाने से ऐकध्यम् तथा धमुञ् प्रत्यय लगाने से द्वैध और धाच् प्रत्यय लगाने से द्विधा शब्द बनते हैं। इन सबका अर्थ होता है दो प्रकार। निपातों को भी तद्धित कहा गया है। ये तद्धित भाववाचक होते हैं जैसे—पटोर्भावः में त्व प्रत्यय लगाने से पटुत्वम् और तल् प्रत्यय लगाने से पटुता शब्द बनते हैं। पृथु में इमन् प्रत्यय लगाने से प्रथिमा तथा सुख में ष्यञ् प्रत्यय लगाने से सौख्यम् शब्द बनते हैं। स्तेन में य प्रत्यय लगाने से स्तेय और सखि में य प्रत्यय लगाने से सख्य शब्द बनते हैं।२७-२९।

कपेर्भावश्च कापेयं सैन्यं पथ्यं यकीरितम् ।
आश्वं कौमारकं चाणि रूपं चाणि च यौवनम् ॥
आचार्यकं कनि प्रोक्तमेवमन्येऽपि तद्धिताः ॥३०

---

१ क. ख. °धा वाचि आमुमुक्षुतरा तथा। ख. °धा वारि अयुयुष्टतरास्तथा।

ढक् प्रत्यय लगाने से भी भाववाचक संज्ञायें होती हैं जैसे—कपेर्भावः कापेयम्, ष्यञ् करने से सैन्यम् और यत् करने से पथ्यम् रूप होते हैं। अण् प्रत्यय लगाने से आश्वम्, कौमारकं और यौवनम् भाववाचक संज्ञाएँ बनती हैं। आचार्य में कन् प्रत्यय लगाने से आचार्यकम् बनता है। इसी प्रकार अन्य तद्धित प्रत्यय भी होते है।३०।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये तद्धितरूपकथनं नाम
षट्पञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः।३५६

अथ सप्तपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

उणादिसिद्धरूपम्

कुमार उवाच—
उणादयोऽभिधास्यन्ते प्रत्यया धातुतः परे।
उणि कारुश्च [1]शिल्पी स्याज्जायुर्मायुश्च पित्तकम् ॥१
गोमायुरायुर्वेदेषु वहुलं स्युरुणादयः।
आयुः स्वादुश्च हेत्वाद्याः किशारुर्धान्यशूककः ॥२
कृकवाकुः कुक्कुटः [2]स्याद्गुरुर्भर्ता मनुस्तथा।
शयुश्चाजगरो ज्ञेयः सरुरायुधमुच्यते ॥३
स्वरुर्वज्रं त्रपुः सीसमसारं फल्गुरीरितम्।
गृध्रश्च क्रनि किरचि मन्दिरं तिमिरं तमः ॥४
इलचि सलिलं वारि कल्याणं भण्डिलं स्मृतम्।
बुधो विद्वान्क्वसौ स्याच्च शिविरं गुप्तसंस्थितिः ॥५
ओतुर्विडालश्च तुनि [3]अभिधानादुगादयः।
कर्णः कामी च गृहभूर्वास्तु जैवातृकः स्मृतः ॥६

कुमार बोले—धातु के बाद अब उणादि प्रत्ययों का वर्णन किया जा रहा है। उण् प्रत्यय लगाने से कारुः, शिल्पी, जायुः, मायुः, गोमायुः, आयुर्वेद, आयुः, स्वादुः, हेतुः, किशारु, धान्यशूकक, कृकवाकु, कुक्कुट, गुरु, भर्ता, मनु,

---

१ क. ङ. श्रेणी। २ ख. ग. स्यात्तरुर्भ°। ३ क. ङ. °नाद्द्वादशाद°।

शयु, अजगर, सरु, आयुध, स्वरु, वज्र, त्रपु, और फल्गु। क्रन् प्रत्यय लगने पर गृध्र बनता है। किरच् प्रत्यय से मन्दिर, तिमिर (अन्धकार) शब्द बनते हैं। इलच् प्रत्यय से सलिल (जल) और कल्याण अर्थ वाले भण्डिल शब्द की निष्पत्ति होती है। क्वसु प्रत्यय से बुध अर्थ वाला विद्वान् और किरच् से शिविर शब्द बनते हैं। तुन् प्रत्यय से ओतु, (विडाल) और कृ धातु से न प्रत्यय होने पर कर्ण, कम् धातु से णिङ् प्रत्यय करने पर कामी, वस् धातु के तुन् करने पर वास्तु, जिसका अर्थ है गृहभूमि और जीव् धातु से आतृकन् करने पर जैवातृक शब्द बनते हैं।१-६।

[1]अनड्वान्वहतेर्ह्निः स्याज्जातौ जीवार्णवौषधम्।
नौ वह्निरिनिनि हरिणो मृगः कामी च भाजनम्॥७
करण्डो भाजनं भाण्डं सरण्डश्च चतुष्पदः।
तरुरेरण्डः संघातो वरण्डः साम निर्भरम्॥८
स्फारं प्रभूतं स्यान्नन्तप्रत्यये चीरवल्कलम्।
कातरो भीरुरुग्रस्तु प्रचण्डो यावसं तृणम्॥९
जगच्चैव तु भूर्लोको (कः) कृशानुर्ज्योतिरर्ककः।
वर्वरः कुटिलो धूर्तश्चत्वरं च चतुष्पथम्॥१०
चीवरं भिक्षुप्रावृत्तिरादित्यो मित्र ईरितः।
([2]पुत्रः सुनुः पिता तातः पृदाकुर्व्याघ्रवृश्चिके॥११
गर्तोऽवटोऽथ भरतो नटोऽपरेऽप्युणादयः।।१२

वह् धातु से अनड्वान् शब्द बनता है। जीव् धातु से आतु प्रत्यय करने पर जीवातु होता है, जिसका अर्थ है अर्णव औषध। वह् धातु से नि प्रत्यय से वह्नि, हृ धातु से इनन् प्रत्यय से हरिण बनता है, जिसका अर्थ है मृग, कामी और भाजन। कृ धातु से अण्डन् प्रत्यय करने पर करण्डः बनता है, जो भाजन और भाण्ड का वाचक है। सृ धातु से अण्डन् करने पर सरण्डः होता है, जो चौपाये का वाचक है। इर् धातु से अण्डन् प्रत्यय करने पर एरण्ड शब्द बनता है, जो वृक्ष का वाचक है। वृ धातु से अण्डन् करने पर वरण्ड बनता है, जो सामवेद का वाचक है। स्फाय् धातु से रक् प्रत्यय करने पर प्रभूतवाची स्फार,

---

१ क. ङ. ॰ड्वांनत्र तु स्तौ स्यादाप्तौ जीवन्तिरौप॰। २ "पुत्रः...लिङ्गीरितः" ख. ग. पुस्तकयोर्नास्ति।

चि से क्रन् करने पर वल्कलवाची चीर, भी से क्रुकन् करने पर डरपोक वाची भीरुक, उच् से रन् करने पर उग्र, यु से असच् करने पर तृणवाची यावस, गम् से अत् करने पर भूलोकवाची जगत्, कृश् से आनुक् करने पर अग्निवाची कृशानु, अर्च् से क करने पर सूर्यवाची अर्क, वृ से ष्वरच् करने पर कुटिलवाची वर्वर, धूर्व् से तन् करने पर धूर्त, चत् से ष्वरच् करने पर चौराहावाची चत्वर, चि से ष्वरच् करने पर भिक्षुवस्त्रवाची चीवर, मिद् से क्त्र करने पर सूर्यवाची मित्र, पू से क्त्र करने पर पुत्र, सू से नु करने पर सूनु, पा से तृच् करने पर पिता, तन् से तन् करने पर तात, पर्द् से काकु करने पर व्याघ्र और वृश्चिक अर्थवाची पृदाकु, गृ से तन् करने पर गड्ढावाची गर्त और भृ से अतच् करने पर नट अर्थवाची भरत शब्द की निष्पत्ति होती है। ये उणादिसिद्ध रूप हैं। इनके अतिरिक्त भी (बहुत से) उणादि प्रत्यय होते हैं।७-१२।

इत्यादिमहापुराण आग्नेय उणादिसिद्धरूपकथनं नाम
सप्तपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३५७

अथाष्टपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

तिङ्विभक्तिसिद्धरूपम्

कुमार उवाच—
तिङ्विभक्तिं प्रवक्ष्यामि तथाऽऽदेशं समासतः।
तिङस्त्रिष्वपि वर्तन्ते भावे कर्मणि कर्तरि[1] ।।१
सकर्मकाकर्मकाच्च कर्तरि द्विपदे स्मृताः।
सकर्मकात्कर्मणि च तदादेशस्तथेरितः ।।२
वर्तमाने लडाख्यातो विध्याद्यर्थे लिङीरितः)।
विध्यादौ लोडाशिषि च भूतानद्यतने च लङ् ।।३
भूते लुङ् लिट् [2]परोक्षेऽथ भाविन्यद्यतने च लुट्।
लिङाशिषि च शेषेऽर्थे लृड्भविष्यति लृङ्भवेत् ।।४

---

१ "सकर्मका कर्तृकाच्च कर्तरि द्विपदे स्मृतः°" इत्यधिकं क. ङ. पुस्तकयोः।
२ ख. ग. °क्षेऽर्थे भा°।

लिङ्निमित्ते क्रियातिपत्तौ तङानावात्मनेपदम् ।
पूर्वं नव परस्मैपदं [1]तिप्तसन्तीति प्रथमः पुमान् ॥५
सिप् थस् थ मध्यमनरो मिब्वस्मश्चोत्तमः पुमान् ।
त [2]आतामन्ताऽऽत्मने मुख्यस्थासाथां ध्वं च मध्यमः ॥६
[3]उत्तम इ वहि महि भूवाद्या धातवः स्मृताः ।
भुविरेधिः पचिर्नन्दिर्ध्वंसिः श्रंसिः पदिस्त्वदिः ॥७

कुमार बोले—अब मैं संक्षेप से तिङ् विभक्ति तथा आदेश के संबन्ध मे बतलाऊँगा। भाव, कर्म और कर्तृ तीनों में तिङ् प्रत्यय रहते है। कर्तृ मे सकर्मक और अकर्मक से दो पद कहे गये हैं। उसका आदेश सकर्मक और अकर्मक कहे गये है। वर्तमान में लट् लकार विधि आदि में लिङ्लकार, आशीर्वाद में लोट्, अनद्यतन भूत में लङ् लकार (सामान्य) भूत में लुङ्, परोक्ष में लिट्, अनद्यतन भावी में लुट्, आशी तथा शेष अर्थ में लिङ्, भविष्यत् में लृट् और लृङ्, निमित्त में लिङ् और क्रियातिपत्ति मे तङ् प्रत्यय होते हैं। यह आत्मने पद है इसमें से पहले के नौ परस्मैपद है, जिसके प्रथम पुरुप के तीनों वचनों में क्रमशः ये प्रत्यय होते हैं—तिप्, तस्, अन्ति, मध्यम-पुरुष में सिप्, थस्, थ, उत्तमपुरुप में मिप्, वस् और मस् प्रत्यय होते है। आत्मने पद के प्रत्यय इस प्रकार है—प्रथम पुरुप—ते, आताम्, अन्त, मध्यम-पुरुप में थ, आसाथाम्, ध्वम्, उत्तमपुरुष में इ, वहि, महि, भूव आदि धातुयें कही गई हैं। इसके अतिरिक्त ये भी धातुयें होती हैं—एधि, पचि, नन्दि, ध्वंसि, शंसि, पदि, त्वदि ।१-७।

[4]शीङिः क्रोडो जु (डिर्जु) होतिश्च जहातिश्च दधात्यपि ।
दीव्यतिः स्वपितिर्नहिः सुनोतिर्वसिरेव च ॥८
तुदिर्मृ शतिर्मुञ्चती रुधिर्भुजिस्त्यजिस्तनिः ।
शवादिके विकरणे मनिश्चैव करोत्यपि ।९
क्रीडतिर्वृ ङ् ग्रहिश्चोरिः पा नीरर्चिश्च नायकाः ।
[5]भुवि स्यात्तिङ् भवति स भवतस्तौ भवन्ति ते ॥१०
भवसि त्वं युवां भवथो यूयं भवथ चाप्यहम् ।
भवाम्यावां भवावश्च भवामो ह्येधते कुलम् ॥११

---

१ ख. ग. 'प्तसन्तीति। २ ख. ग. आतांझाऽऽत्म'। ३ क. ख. ङ. ०मः इड्वहिमहिङ्भू०। ४ ख. शीङ् क्रुङो जु° ५ ख. लटि।

एधेते द्वे तथैधन्ते एधसे त्वं हि मेधया ।
एधेथे च समेधध्वे एधे ह्येधावहे धिया ॥१२
एधामहे हरेर्भक्त्या पचतीत्यादि पूर्ववत् ।
भूयतेऽनुभूयतेऽसौ भावे कर्मणि वै यकि ॥१३

शी, क्रीड्, हु, हा, धा, दिव्, स्वप्, नह्, भू, वस्, तुद्, मृश्, मृञ्च्, रुध्, भुज्, त्यज्, तन्, वृ, ग्रह्, चुर्, पा, नी और अर्च् आदि धातुओं में शप् आदि विकरण लगते हैं। भू में तिङ् आदि प्रत्यय लगाने से इस प्रकार रूप बनते हैं—स: भवति, तौ भवत:, ते भवन्ति । त्वम् भवसि, युवाम् भवथ:, यूयं भवथ । अहं भवामि, आवाम् भवाव:, वयम् भवाम: । कुलं एधते, द्वे एधेते, ते एधन्ते । त्वम् मेधया एधसे, युवाम् मेधया एधेथे, यूयम् मेधया एधध्वे, अहं धिया एधे, आवां धिया एधावहे, वयं धिया एधामहे । इसी प्रकार हरेः भक्त्या पचति इत्यादि रूप पूर्ववत् बनते हैं । भाव और कर्म में यक् प्रत्यय लगाकर भूयते अथवा अनुभूयते रूप बनते हैं ।८-१३।

बुभूषति सनीत्येवं [1]णिचि भावयतीश्वरम् ।
यङि बोभूयते वाद्यं बोभोति स्याच्च यङ्लुकि ॥१४
पुत्रीयति पुत्रकाम्यत्येवं पटपटायते ।
घटयत्यथ सनि णिचि बुभूषयति रूपकम् ॥१५
भवेद्भवेतां च लिङि भवेयुश्च भवेः परे ।
भवेतं च भवेतैवं भवेयं च [2]भवेव च भवेम च (?) ॥१६

सन् प्रत्यय से बुभूषति, णिच् से भावयति, यङ् से बोभूयते और यङ्लुक् से बोभोति, नामधातु से पुत्रीयति, पुत्रकाम्यति, पटपटायते, णिच् से घटयति और सन्-णिच् से बुभूषयति रूप बनते हैं । लिङ् लकार के प्रथम पुरुष में भवेत्, भवेताम्, भवेयु:, मध्यमपुरुष में भवेः भवेतम् भवेत और उत्तम पुरुष में भवेयम्, भवेव, भवेम रूप होते हैं ।१४-१६।

एधेत (च) एधेयातामेधेरन्मनसा श्रिया ।
एधेथाश्च एधेयाथामेधेध्वमेधेय एधेवहि एधेमहि ॥१७
अस्तु तावद्भवतां लोटि भवन्तु भवताद्भव ।
भवतं भवत भवानि भवाव च भवाम च ॥१८

---

१ ख ग. °चि तारय । २ क. ङ. भवेम ।

इसी प्रकार एध् धातु के लिङ् लकार में इस प्रकार रूप बनते हैं— प्रथम पुरुष, मनसा श्रिया एधेत, मनसा श्रिया एधेयाताम्, मनसा श्रिया एधेरन्। मध्यम पुरुष, एधेथाः, एधेयाथाम्, एधेध्वम्। उत्तम पुरुष, एधेय, एधेवहि, एधेमहि। लोट् लकार में भू धातु के रूप इस प्रकार होते हैं—प्रथम पुरुष—(अस्तु) भवतु, भवताम्, भवन्तु। मध्यमपुरुष, भव, भवताद् भवतम्, भवत। उत्तम पुरुष—भवानि, भवाव, भवाम।१७-१८।

एधतामेधेतामेधन्तामेधै पचावहै पचामहै।
अभ्यनन्ददपचतामपचन्नपचस्तथा ॥१९
अभवतमभवतापचमपचावापचाम च।
एधेतैधेतामैधध्वमैधे चैधामहीरितम् ॥२०
अभूदभूतामभूवन्नभूञ्चाभूवमेव लुङ्।
ऐधिष्टैधिषातां [1]नरौ (रा) वैधिण्ठा ऐधिषीदृशम् ॥२१
लिटि वभूव वभूवतुर्वभूवुश्च वभूविथ।
वभूवथुर्वभूव च वभूविव वभूविम ॥२२
पेचे पेचाते पेचिरे त्वमेधांचकृषे तथा।
एधांचक्राथे [2]पेचिध्वे पेचे पेचिमहे तथा ॥२३

एध् धातु के लोट् लकार में रूप इस प्रकार चलते हैं—प्रथम पुरुष—एधताम्, एधेताम्, एधन्ताम्। एधै, पचावहै, पचामहै, अभ्यनन्दत्, अपचताम्, अपचन्, अपचः, अभवतम् अभवत, अपचम्, अपचाव, अपचाम एधेत, एधेताम्, एधध्वम् एधे और एधामहि रूप भी विभिन्न धातुओं के विभिन्न लकारों में कहे गये हैं। भू धातु के लुङ् लकार में रूप इस प्रकार चलते है—अभूत्, अभूताम्, अभूवन्, अभूः, अभूवम्, एध् धातु के लुङ् लकार में ऐधिष्ट, ऐधिषाताम्, ऐधिष्ठाः ऐधिषि। भू धातु के लिट् लकार के रूप हैं—वभूव, वभूवतुः, वभूवुः, वभूविथ, वभूवथुः, वभूव, वभूविव, वभूविम, पच् के लिट् में पेचे, पेचाते, पेचिरे, एध् के लिट् में एधांचकृषे, एधांचक्राथे, पच् के पेचिध्वे, पेचे, पेचिमहे।१९-२३।

लुटि भविता भवितारौ भवितारो हरादयः।
भवितासि भवितास्थो भवितास्मस्तथा वयम् ॥२४

---

१ छ. नरा। २ ख ग. ध्वे एधतामेधेय पचावहै पचामहै°। लु°।

पक्ता पक्तारौ पक्तारः पक्तासि त्वं शुभौदनम् ।
पक्ताध्वे पक्ताहे चाहं पक्तास्महे हरेश्चरुम् ।।२५
लिङाशिषि सुखं भूयाद्भूयास्तां हरिशंकरौ ।
भूयासुस्ते च भूयास्त्वं युवां भूयास्तमीश्वरौ ।।२६
भूयास्त यूयं भूयासमहं भूयास्म सर्वदा ।
यक्षीष्ट ह्यं धिषीयास्तां यक्षीरन्नेधिषीय च ।।२७
यक्षीवह्यं धिषीमहि लिङि चायक्ष्यतेति लृङ् ।
अयक्ष्येतामयक्ष्यन्तायक्ष्येऽयक्ष्येथां युवाम् ।।२८
अयक्ष्यध्वमैधिष्यावह्यै धिष्यामह्यरेर्वयम् ।
लृटि स्याद्भविष्यतीति ऐधिष्यामह ईदृशम् ।२६
एवं विभावयिष्यन्ति वोभविष्यति रूपकम् ।
घटयेत्पटयेत्तद्वत्पुत्रीयति च काम्यति ।।३०

लुट् लकार के रूप हैं—भविता, भवितारौ, भवितारः, भवितासि, भवितास्थः, वयं भवितास्मः, शुभौदनम् पक्ता, पक्तारौ, पक्तारः, पक्तासि, पक्ताध्वे, पक्ताहे, पक्तास्महे । आशीर्लिङ् में इस प्रकार रूप होते हैं—सुखं भूयात्, हरिशंकरौ भूयास्ताम्, भूयासुः, भूयाः, भूयास्तम्, भूयास्त, भूयासम्, भूयास्म । यज् और एध् के लिङ् में यक्षीष्ट, एधिषीयास्ताम्; यक्षीरन्, एधिषीय, यक्षीवहि, एधिषीमहि । लृङ् लकार में अयक्ष्यत अयक्ष्येताम्, अयक्ष्यन्त, अयक्ष्ये, अयक्ष्येथाम्, अयक्ष्यध्वम्, ऐधिष्यावहि । ऐधिष्यामहि । भू और एध् के लृट् लकार के रूप हैं—भविष्यति, एधिष्यामहे, भू से णिच् करने पर लृट् में विभावयिष्यन्ति सन् करने पर लृट् में बोभविष्यति, घट् णिच् लिङ् में घटयेत्, पट् णिच् लिङ् में पटयेत् । पुत्र शब्द से नामधातु में क्यच् करने पर पुत्रीयति और काम्यच् करने पर पुत्रकाम्यति रूप होते है ।२४-३०।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये तिङ्विभक्तिसिद्धरूपकथनं नामाष्टपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।३५८

अथैकोनषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

कृत्सिद्धरूपम्

कुमार उवाच—
कृतस्त्रिष्वपि विज्ञेया भावे कर्मणि कर्तरि ।
अज् ल्युट् क्तिन् घञो भावे (च) 'युजकारत[2] एव च ॥१
अचि धर्मस्य विनय उत्करः प्रकरस्तथा ।
देवो भद्रः श्रीकरश्च ल्युटि रूपं तु शोभनम् ॥२

कुमार बोले—भाव, कर्म और कर्तृ इन तीनों में कृत् प्रत्यय होते है। अच्, ल्युट्, क्तिन्, घञ्, युच् और अकार प्रत्यय भाववाचक शब्दों में लगते हैं। अच् प्रत्यय लगने से विनयः, अप् प्रत्यय लगने से उत्करः तथा प्रकरः, अच् प्रत्यय से देवः तथा भद्रः और अप् लगने से श्रीकरः शब्द बनते है। ल्युट् प्रत्यय में रूप बनता है 'शोभनम्' ।१-२।

क्तिनि वृद्धिः स्तुतिमती घञि भावोऽथ युच्यपि ।
कारणा भावनेत्यादि अकारे च चिकित्सया ॥३
तथा तव्यो ह्यनीयश्च कर्त्तव्यं करणीयकम् ।
देयं ध्येयं चैव यति ण्यति कार्यं च कृत्यकाः ॥४

'क्तिन्' प्रत्यय से वृद्धि, स्तुति और मति, घञ् से भावः, युच् से कारणा, भावना इत्यादि और अकार से चिकित्सा इत्यादि शब्द बनते हैं। तव्यत् और अनीयर् प्रत्यय लगाने से क्रमशः कर्तव्यम् और करणीयम् शब्द बनते है। यत् प्रत्यय से देयम् और ध्येयम्। ण्यत् से कार्यम्। यहाँ तक कृत्यसंज्ञक प्रत्यय कहे गये है।३-४।

कर्तरि क्तादयो ज्ञेया भावे कर्मणि च क्वचित् ।
गतो ग्रामं गतो ग्राम आश्लिष्टश्च गुरुस्त्वया ॥५
शतृशानचौ (च) भवेन्नेधमानो भवन्त्यपि ।
ण्वल्तृचौ सर्वधातुभ्यो भावको भविता तथा ॥६

---

१ क. ङ. °कागनए° । २ ख. ग. °रउ ए° ।

क्विवन्तश्च स्वयंभूश्च भूते लिटः [1]क्वसुकान च्।
वभूविवान्पेचिवांश्च पेचानः श्रद्दधानकः ॥७
अणि स्युः कुम्भकाराद्या भूतेऽप्युणादयः स्मृताः ।
वायुः पायुश्च कारुः स्याद्वहुल छन्दसीरितम् ॥८

'वत' प्रत्यय कर्ता, भाव और कर्म मे भी होता है। जैसे--गतोग्रामम्, गतोग्रामः, त्वया गुरुः आश्लिष्टः। शतृ और शानच् प्रत्यय लगाने से भवन् और एधमानः तथा भवन्ती शब्द भी बनते हैं। ण्वुल् और तृच् प्रत्यय सभी धातुओ के साथ लगते हैं जैसे—भावकः और भविता। स्वयंभूः शब्द क्विप् प्रत्ययान्त है। भूतकाल में लिट् लकार के स्थान पर क्वसु और कानच् प्रत्यय लगाने से वभूविवान्, पेचिवान्, पेचानः, श्रद्दधानकः शब्द बनते है। कुम्भकार इत्यादि में अण् प्रत्यय होता है। उणादि प्रत्यय भूत अर्थ में होते है। उण् प्रत्यय लगने से वायुः, पायुः और कारुः आदि शब्द बनते है। वेद में ये प्रत्यय बहुल प्रकार से (अनियमित रूप से) होते है।५-८।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कृत्सिद्धरूपकथनंनामैकोन-षष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।३५९

अथ षष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः
स्वर्गपातालादिवर्गाः

अग्निरुवाच—
स्वर्गादिनामलिङ्गो यो हरिस्तं प्रवदामि ते ।
स्वः स्वर्गनाकत्रिदिवा द्योदिवौ द्वे त्रिविष्टपम् ॥१
देवा वृन्दारका लेखा रुद्राद्या गणदेवताः ।
विद्याधरा (रो) प्सरोयक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः ॥२
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः ।
देवद्विषोऽसुरा दैत्याः सुगतः स्यात्तथागतः ॥३
ब्रह्माऽऽत्मभूः सुरज्येष्ठो विष्णुर्नारायणो हरिः ।
रेवतीशो हली रामः कामः पञ्चशरः स्मृतः ॥४

---

१ क. ख. ग. 'सुर्भवेत् । ब° ।

अग्निदेव बोले—अब मैं स्वर्गादि नामों के पर्यायों को बतला रहा हूँ। स्वर्ग के पर्यायवाची स्वः, नाक, त्रिदिव, द्योः, दिव और त्रिविष्टप। देव शब्द के पर्याय हैं—वृन्दारक और लेख। रुद्र इत्यादि गण देवता हैं। देवयोनियां हैं—विद्याधर, अप्सरस्, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध और भूत। देवताओं के शत्रु हैं—असुर, दैत्य। सुगत और तथागत—ये बुद्ध के नाम हैं आत्मभू और सुरज्येष्ठ ब्रह्मा के नाम हैं। विष्णु, नारायण और हरि विष्णु के नाम हैं। रेवतीश, हली और राम बलराम के नाम हैं। कामदेव के पर्याय हैं— पञ्चशर और स्मर।१-४।

लक्ष्मीः पद्मालया पद्मा स (श) र्वः सर्वेश्वरः शिवः।
कपर्दोऽस्य जटाजूटः पिनाकोऽजगवं धनुः ॥५
प्रमथाः स्युः पारिषदा मृडानी चण्डिकाऽम्बिका।
द्वैमातुरो गजास्यश्च सेनानीरग्निभूर्गुहः ॥६
[1]आखण्डलः शुनासीरः सुत्रामा च दिवस्पतिः।
पुलोमजा शचीन्द्राणी [2]देवी तस्य तु वल्लभा ॥७

लक्ष्मी, पद्मालया और पद्मा—ये लक्ष्मीजी के तथा शर्व, सर्वेश्वर और शिव—ये भगवान् शंकर के नाम हैं। उनकी बँधी हुई जटा के दो नाम हैं—कपर्द और जटाजूट। उनके धनुष के भी दो नाम हैं—पिनाक और अजगव। शिवजी के पार्षद प्रमथ कहलाते हैं। मृडानी, चण्डिका और अम्बिका - ये पार्वती जी के, द्वैमातुर और गजास्य (गजानन) ये गणेश जी के तथा सेनानी, अग्निभू और गुह—ये स्वामी कार्तिकेय जी के नाम हैं। आखण्डल, शुनासीर, सुत्रामा और दिवस्पति—ये इन्द्र के तथा पुलोमजा, शची और इन्द्राणी—ये उनकी प्रियतमा शची देवी के नाम हैं।५-७।

स्यात्प्रासादो वैजयन्तो जयन्तः पाकशासनिः।
ऐरावतोऽभ्रमातङ्गैरावणाभ्रमुवल्लभाः ॥८
ह्लादिनी वज्रमस्त्री स्यात्कुलिशं भिदुरं पविः।
व्योमयानं विमानोऽस्त्री पीयूषममृतं सुधा ॥९
स्यात्सुधर्मा देवसभा स्वर्गङ्गा सुरदीर्घिका।
स्त्रियां बहुष्वप्सरसः स्वर्वेश्या उर्वशीमुखाः ॥१०

१ ख. ग. °ण्डलशुनासीरसुत्रामाणो दि०। २ क. ख. ग. °वी हस्तिस्य।

हाहा हूहूश्च गन्धर्वा अग्निर्वह्निर्धनञ्जयः ।
जातवेदाः कृष्णवर्त्मा आश्रयाशश्च पावकः ॥११
हिरण्यरेताः सप्तार्चिः शुक्रश्चैवाऽऽशुशुक्षणिः ।
शुचिरप्पित्तमौर्वस्तु वाडवो वडवानलः ॥१२
वह्नेर्द्वयोर्ज्वालकीलावर्चिर्हेतिः शिखा स्त्रियाम् ।
त्रिषु स्फुलिङ्गोऽग्निकणो धर्मराजः परेतराट् ॥१३
[१]कालोऽन्तको दण्डधरः श्राद्धदेवोऽथ राक्षसः ।
कौणपास्रपक्रव्यादा यातुधानश्च नैर्ऋतिः ॥१४
प्रचेता वरुणः पाशी श्वसनः स्पर्शनोऽनिलः ।
सदागतिर्मातरिश्वा प्राणो मरुत्समीरणः ॥१५
जवो [२]रंहस्तरसी तु लघु क्षिप्रमरं द्रुतम् ।
सत्वरं चपलं तूर्णमविलम्बितमाशु च ॥१६

उनके प्रासाद को वैजयन्त कहते हैं । इन्द्रपुत्र का नाम है जयन्त । उनके हाथी के पर्याय हैं—ऐरावत, अभ्रमातङ्ग, ऐरावण और अभ्रमुवल्लभ । उनके आयुध के पर्याय हैं—ह्लादिनी, वज्र, कुलिश, भिदुर और पवि । उनके वाहन को व्योमयान और विमान कहा जाता है । अमृत के पर्याय हैं—पीयूष, अमृत और सुधा । देवसभा को सुधर्मा कहते हैं । आकाश-गंगा को स्वर्गङ्गा और सुरदीर्घिका कहा गया है । उर्वशी इत्यादि को अप्सरस् और स्वर्वेश्या कहा जाता है । अप्सरस् शब्द का प्रयोग स्त्रीलिङ्ग तथा बहुवचन में होता है । गन्धर्वों के नाम हैं हाहा, हूहू । अग्नि के पर्याय हैं—वह्नि, धनञ्जय, जातवेदाः, कृष्णवर्त्मा, आश्रयाश, पावक, हिरण्यरेता, सप्तर्चि, शुक्र, आशुशुक्षणि, शुचि, अप्पित्त, और्व, वाडव, वडवानल । अग्नि की ज्वाला के पर्याय हैं—ज्वाल, कील, अर्चि, हेति और शिखा जो कि स्त्रीलिङ्ग शब्द हैं । अग्नि की चिनगारी को स्फुलिग और अग्नि कहते है । इनका प्रयोग तीनों लिङ्गों में किया जाता है । यम के पर्याय हैं—धर्मराज, परेतराट्, काल, अन्तक, दण्डधर, और श्राद्धदेव । राक्षस के पर्याय है—कौणप, आस्रप, क्रव्याद्, यातुधान, नैर्ऋति । वरुण के पर्याय हैं प्रचेता और पाशी । वायु के पर्याय हैं श्वसन, स्पर्श, अनिल, सदागति, मातरिश्वा, प्राण, मरुत् और समीरण । वेग के पर्याय है, जव, रंहस्, तरसी, लघु, क्षिप्र, अर, द्रुत, सत्वर, चपल, तूर्ण, अविलम्बित और आशु ।८-१६।

---

१ ख. ग. कालान्तकः । २ क. ङ. रंहश्च तु रयो ल° ।

सततेऽनारताश्रान्तसंततविरतानिशम् ।
नित्यानवरताजस्रमप्यथातिशयो भरः ॥१७
अतिवेलभृशात्यर्थातिमात्रोद्गाढनिर्भरम् ।
तीव्रैकान्तनितान्तानि गाढवाढदृढानि च ॥१८
गुह्यकेशो यक्षराजो राजराजो धनाधिपः ।
स्यात्किनरः किंपुरुषस्तुङ्गवदनो मयुः १९
निधिर्ना शेवधिर्व्योम त्वभ्रं पुष्करमम्बरम्[२] ।
द्योदिवौ चान्तरिक्षं खं काष्ठाशाककुभो दिशः ॥२०

निरन्तर के पर्याय हैं सतत, अनारत, अश्रान्त, संतत, अविरत, अनिश, नित्य, अनवरत और अजस्र । अतिशय के पर्याय हैं भर, अतिवेल, भृश, अत्यर्थ, अतिमात्र, उद्गाढ, तीव्र, एकान्त, नितान्त, गाढ, बाढ और दृढ । कुवेर के पर्याय हैं—गुह्यकेश, यक्षराज, राजराज और धनाधिप । उनके सेवकों के नाम है किन्नर, किंपुरुष, तुरङ्गवदन और मयु । निधि के नाम हैं 'निधि' और शेवधि । आकाश के पर्याय हैं—व्योम, अभ्र, पुष्कर, अम्बर, द्यौ, दिव, अन्तरिक्ष और ख । दिशा के पर्याय हैं—आशा, काष्ठा, ककुभ् ।१७-२०।

अभ्यन्तरं त्वन्तरालं चक्रवालं तु मण्डलम् ।
तडित्वान्वारिदो मेघस्तनयित्नुर्बलाहकः ॥२१
[१]कादम्बिनी मेघमाला स्तनितं गर्जितं तथा ।
शम्पाशतह्रदाह्लादिन्यैरावत्यः क्षणप्रभा ॥२२
तडित्सौदामिनी विद्युच्चञ्चला चपलाऽपि च ।
स्फूर्जथुर्वज्रनिर्घोषो वृष्टिघातस्त्ववग्रहः ॥२३

अभ्यन्तर और अन्तराल मध्य के तथा चक्रवाल और मण्डल गोलाकार एवं समुदाय के वाचक हैं । मेघ के पर्याय है—तडित्वान्, वारिद, मेघ, स्तनयित्नु और बलाहक । मेघावलि के पर्याय हैं—मेघमाला और कादम्बिनी । मेघों के गर्जन के पर्याय हैं—स्तनित तथा गर्जित । विद्युत् के पर्याय है—शम्पा, शतह्रदा, ह्लादिनी, ऐरावती, क्षणप्रभा, तडित्, सौदामिनी, चञ्चला और चपला । बिजली के गर्जन को कहते हैं—स्फूर्जथु, वज्र और निर्घोष । अनावृष्टि के पर्याय हैं—वृष्टिघात और अवग्रह ।२१-२३।

---

१ क. ङ. °म् । द्योदिवा चा° । २ ख. ग. °दम्बरी मे° ।

धारासंपात आसारः शीकरोऽम्बुकणाः स्मृताः ।
वर्षोपलस्तु करका मेघच्छन्नेऽह्नि दुर्दिनम् ॥२४
अन्तर्धा व्यवधा पुंसि त्वन्तर्धिरपवारणम् ।
अपिधानतिरोधानपिधानाच्छादनानि च ॥२५

वर्षा की झड़ी के पर्याय हैं धारासम्पात और आसार। जल की बूंदों को कहा जाता है शीकर और अम्बुकण । ओलों के पर्याय हैं वर्षोपल और करका। मेघाच्छादित दिन को दुर्दिन कहते हैं। अन्तर्धा, व्यवधा और अन्तर्धि पुंल्लिग शब्द हैं। अपवारण, तिरोधान, पिधान और आच्छादन ये आठों न दिखाई पड़ने को कहते हैं।२४-२५।

अब्जो जैवातृकः सोमो ग्लौर्मृगाङ्कः कलानिधिः ।
विधुः कुमुदबन्धुश्च बिम्बोऽस्त्री मण्डलं त्रिषु ॥२६
कला तु षोडशो भागो भित्तं शकलखण्डके ।
चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना प्रसादस्तु प्रसन्नता ॥२७
लक्षणं लक्ष्मकं चिह्नं शोभा कान्तिर्द्युतिश्छविः ।
सुषमा परमा शोभा तुषारस्तुहिनं हिमम् ॥२८
अवश्यायस्तु नीहारः प्रालेयः शिशिरो हिमः ।
नक्षत्रमृक्षं भं तारा तारकाऽप्युडु वा स्त्रियाम् ॥२९

चन्द्रमा के पर्याय है अब्ज, जैवातृक, सोम, ग्लौ, मृगाङ्क, कलानिधि, विधु और कुमुदबन्धु। चन्द्रमण्डल को चन्द्रबिम्ब भी कहते हैं। सोलहवें भाग को कला कहते है और भाग के पर्याय हैं—भित्त, शकल और खण्ड। चन्द्रिका के पर्याय हैं—कौमुदी और ज्योत्स्ना । प्रसन्नता का पययि है-प्रसाद। चिह्न के पर्याय हैं—लक्षण और लक्ष्मक। शोभा के पर्याय हैं—कान्ति, द्युति और छवि। सुषमा कहते हैं रमणीयता को। हिम के पर्यायि हैं—तुषार और तुहिन। ओस के पर्याय है—नीहार और प्रालेय। शिशिर को हिम कहते है। नक्षत्र के पर्याय है—ऋक्ष, भ, तारा तारका और उडु। उडु शब्द विकल्प से स्त्रीलिंग है।२६-२९।

गुरुर्जीव आंगिरस उशना भार्गवः कविः ।
विधुंतुदस्तमो राहुर्लग्नं राश्युदयः स्मृतः ॥३०

सप्तर्षयो मरीच्यत्रिमुखाश्चित्रशिखण्डिनः ।
[1]हरिदश्वब्रध्नपूषद्युमणिर्मिहिरो रविः ॥३१
परिवेषस्तु परिधिरुपसूर्यकमण्डले ।
किरणोस्रमयूखांशुगभस्तिघृणिधृष्णय[2]: ॥३२
भानुः करो मरीचिः स्त्रीपुंसयोर्दीधितिः स्त्रियाम् ।
स्युः प्रभा रुग्रुचिस्त्विड्भा भाश्छविद्युतिदीप्तयः ॥३३
रोचिः शोचिरुभे क्लीवे प्रकाशो द्योत आतपः ।
कोष्णं कवोष्णं मन्दोष्णं कदुष्णं त्रिषु तद्वति ॥३४
तिग्मं तीक्ष्णं खरं तद्वद्दिष्टोऽनेहा च कालकः ।
घस्रो दिनाहनी चैव सायंसन्ध्या पितृप्रसूः ॥३५

बृहस्पति के पर्याय हैं—गुरु जीव और आंगिरस । शुक्र के पर्याय हैं—उशना, भार्गव और कवि । राहु के पर्याय हैं विधुंतुद और तम । राशियों के उदय अत्रि को लग्न कहा गया है । मरीचि और अत्रि आदि सप्तर्षि को चित्र शिखण्डि कहते हैं । सूर्य के पर्याय हैं—हरिदश्व, ब्रध्न, पूषा, द्युमणि, मिहिर और रवि । सूर्यमण्डल के पर्याय हैं—परिवेश, परिधि और उपसूर्य । किरण के पर्याय हैं—उस्र, मयूख, अंशु, घृणि, घृष्णि, भानु, कर, मरीचि और दीधिति । प्रभा, रुक्, रुचि, त्विट्, भा, आभा छवि, द्युति, दीप्ति, रोचिस्, शोचिस् —ये प्रभा के नाम हैं । धूप के नाम हैं—प्रकाश, द्योत और आतप । इनमें से मरीचि स्त्रीलिंग और पूंल्लिग दोनों में होता है । दीधिति स्त्रीलिंग शब्द है और रोचिः, शोचिः दोनों ही नपुंसकलिंग शब्द हैं । कुछ-कुछ गर्म को कोष्ण, कवोष्ण, मंदोष्ण और कदुष्ण कहते हैं । तीक्ष्ण के पर्याय हैं—तिग्म और खर । समय के पर्याय हैं—दिष्ट, अनेहस् और काल । दिन के पर्याय हैं—घस्र और अहन् । सायंकाल के पर्याय हैं—सन्ध्या और पितृप्रसू ।३०-३५

प्रत्यूषोऽहर्मुखं कल्यमुषः प्रत्युषसी अपि ।
प्राह्णापराह्णमध्याह्नास्त्रिसंध्यमथ शर्वरी ॥३६
[1]यामी तमी तमिस्रा च [2]ज्यौत्स्नी चन्द्रिकयाऽन्विता ।
आगामिवर्तमानाहर्युक्तायां निशि पक्षिणी ॥३७

---

१ "राशीनामुदयो लग्नं तेषु मेषवृषादयः" इति क. ङ. पुस्तकयोरधिकम् ।
२ ख. ग. °णिरश्मयः । १ क. ख. ग. यामा । २ क. ङ. ज्योत्स्ना ।

अर्धरात्रनिशीथौ द्वौ प्रदोषो रजनीमुखम् ।
स पर्वसंधिः प्रतिपत्पञ्चदश्योर्यदन्तरम् ॥३८
पक्षान्तौ पञ्चदश्यौ द्वे पौर्णमासी तु पूर्णिमा ।
कलाहीने सानुमतिः पूर्णे राका निशाकरे ॥३९
अमावास्या त्वमावस्या दर्शः सूर्येन्दुसंगमः ।
सा दृष्टेन्दुः सिनीवाली सा नष्टेन्दुकला कुहूः ॥४०

प्रातः काल के पर्याय हैं—प्रत्यूष, अहर्मुख, कल्य, उपस् और प्रत्युषस् । दिन के पहरों को प्राह्ण, अपराह्ण और मध्याह्न कहते हैं । सन्ध्या को त्रिसन्ध्य और शर्वरी भी कहते है । रात्रि के पर्याय हैं—यामी, तमी और तमिस्रा। चन्द्रिका से युक्त रात्रि को ज्योत्स्नी कहते हैं । आगामी तथा वर्तमान दिनों से युक्त रात्रि को पक्षिणी कहा जाता हैं। आधीरात को अर्धरात्र और निशीथ कहते हैं। रात्रि के प्रारम्भ को प्रदोष कहा जाता है । प्रतिपदा और अमावस्या के बीच को पर्वसंन्धि कहते हैं । दोनों अमावस्याओं को पक्षान्त और पूर्णिमा को पूर्णमासी कहा जाता है । एक कला से हीन चन्द्रमा से युक्त रात्रि अनुमति कहलाती है और पूर्ण चन्द्रमण्डल से युक्त रात्रि को राका कहा जाता है। अमावस्या को दर्श और सूर्येन्दुसंगम कहते हैं । जिसमें चन्द्रमा की कला दिखाई पड़ती है उसे सिनीवाली और जिसमें चन्द्रकला अदृश्य होती है उसे कुहू कहते है ।३६-४०।

संवर्तः प्रलयः कल्पः क्षयः कल्पान्त इत्यपि ।
कलुषं वृजिनैनोघमंहोदुरितदुष्कृतम् ॥४१
स्याद्धर्ममस्त्रियां पुण्यश्रेयसी सुकृतं वृषः ।
मुत्प्रीतिः प्रमदो हर्षः प्रमोदामोदसंमदाः ॥४२
स्यादानन्दथुरानन्दः शर्मशातसुखानि च ।
श्वः श्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मङ्गलं शुभम् ॥४३
भावुकं भविकं भव्यं कुशलं क्षेममस्त्रियाम् ।
दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः ॥४४
क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः प्रधानं प्रकृतिः स्त्रियाम् ।
हेतुर्ना कारणं वीजं निदानं त्वादिकारणम् ॥४५
चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः ।
बुद्धिर्मनीषा धिषणा धीः प्रज्ञा शेमुषी मतिः ॥४६

प्रेक्षोपलब्धिश्चित्संवित्प्रतिपज्ज्ञप्तिचेतनाः ।
धीर्धारणावती मेधा संकल्पः कर्म मानसम् ।।४७

प्रलय को संवर्त, कल्प, क्षय और कल्पान्त भी कहते हैं। पाप के पर्याय हैं कलुष, वृजिन एनस्, अघ, मंहस्, दुरित और दुष्कृत । कर्म के पर्याय हैं—पुण्य, श्रेयस्, सुकृत् और वृष । हर्ष के पर्याय हैं मुत्, प्रीति, प्रमद, प्रमोद, आमोद, संमद, आनन्दथुः, आनन्द, शर्म, शात और सुख । कल्याण के पर्याय हैं—श्वः, श्रेयस्, शिव, भद्र, मंगल, शुभ, भावुक, भविक, भव्य, कुशल और क्षेम । भाग्य के पर्याय है—दैव, दिष्ट, भागधेय, नियति और विधि । आत्मा के पर्याय हैं क्षेत्रज्ञ और पुरुष । प्रकृति को कहते हैं प्रधान । हेतु के पर्याय हैं कारण, बीज, निदान और आदिकारण । चित्त के पर्याय हैं—चेतस्, हृदय, स्वान्त, हृद्, मानस और मन । बुद्धि के पर्याय हैं मनीषा, धिषणा, धी, प्रज्ञा, शेमुषी, मति, प्रेक्षोपलब्धि, चित्, संवित्, प्रतिपत्, ज्ञप्ति और चेतना । धारण करने वाली बुद्धि मेधा है । संकल्प है मन का कर्म ।४१-४७।

संख्या विचारणा चर्चा विचिकित्सा तु संशयः ।
अध्याहारस्तर्क ऊहः समौ निर्णयनिश्चयौ ।।४८
मिथ्यादृष्टिर्नास्तिकता भ्रान्तिर्मिथ्यामतिर्भ्रमः ।
अंगीकाराभ्युपगमप्रतिश्रवसमाधयः ।।४९
मोक्षे धीर्ज्ञानमन्यत्र विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोः ।
मुक्तिः कैवल्यनिर्वाणश्रेयोनिःश्रेयसामृतम् ।।५०

विचार के पर्याय हैं—संख्या, विचारणा और चर्चा । विचिकित्सा कहते हैं—संशय को, तर्क के पर्याय हैं अध्याहार और ऊह । निर्णय और निश्चय समान अर्थ वाले हैं । नास्तिकता को मिथ्यादृष्टि कहते है । भ्रान्ति के पर्याय हैं मिथ्या मति और भ्रम । स्वीकृति को अंगीकार, अभ्युपगम, प्रतिश्रव और समाधि कहते हैं । मोक्ष से सम्बद्ध बुद्धि को विज्ञान कहा गया है । मुक्ति के पर्याय हैं—कैवल्य और निर्वाण । अमृत के पर्याय हैं श्रेयस् और निःश्रेयस् ।४८-५०।

मोक्षोऽपवर्गोऽथाज्ञानमविद्याऽहंमतिः स्त्रियाम् ।
विमर्दोत्थे परिमलो गन्धे जनमनोहरे ।।५१
आमोदः सोऽतिनिर्हारी सुरभिर्घ्राणतर्पणः ।
शुक्लशुभ्रशुचिश्वेतविशदश्येतपाण्डराः ।।५२

अवदातः सितो गौरो वलक्षो धवलोऽर्जुनः ।
हरिणः पाण्डुरः पाण्डुरीषत्पाण्डुस्तु धूसरः ।५३
कृष्णे नोलासितश्यामकालश्यामलमेचकाः।
पीतो गौरो हरिद्राभः पालाशो हरितो हरित् ।।५४
रोहितो लोहितो रक्तः शोणः कोकनदच्छविः ।
अव्यक्तरागस्त्वरुणः श्वेतरक्तस्तु पाटलः ।।५५
श्यावः स्यात्कपिशो धूम्रधूमलौ कृष्णलोहिते ।
कडारः कपिलः पिङ्गपिशङ्गौ कद्रुपिङ्गलौ ।।५६
चित्रं किर्मीरकल्माषशवलैताश्च कर्वुरे ।
व्याहार उक्तिर्लपितमपभ्रंशोऽपशब्दकः ।।५७

मोक्ष अपवर्ग को कहते हैं । अज्ञान को अविद्या और अहम्मति कहा गया है ये दोनों स्त्रीलिङ्ग शब्द हैं । मसलने से उत्पन्न होने वाला तथा मनुष्यों के मन को हरण करने वाला गन्ध परिमल कहलाता है । अत्यन्त हरण करने वाले गन्ध को आमोद कहा गया है । सुरभि के पर्याय हैं—घ्राण और तर्पण । श्वेत के पर्याय हैं शुक्ल, शुभ्र, शुचि, विशद, श्वेत, पाण्डर, अवदात, सित, गौर, वलक्ष, धवल और अर्जुन । पीलिमा युक्त श्वेतवर्ण को हरिण, पाण्डुर और पाण्डु कहते हैं । वहुत हल्का होने पर इस रंग को धूसर कहा गया है । काले रंग के पर्याय हैं—कृष्ण, नील, असित, श्याम, काल, श्यामल और मेचक । पीले रंग को पीत, गौर और हरिद्राभ कहते हैं । हरे को पालाश, हरित, तथा हरित् कहते हैं । लाल को रोहित, लोहित और रक्त कहते हैं । लाल कमल के समान रंग को शोण कहते हैं । अरुण उस लालिमा को कहते हैं जो अस्पष्ट होती है और पाटल कहते हैं गुलावी को । भूरे रंग को श्याव अथवा कपिश कहते हैं और काले के साथ लाल को धूम्र और धूमल । कडार, पिङ्ग, पिशङ्ग, कद्रु और पिङ्गल भूरे रंग का वाचक है । चित्तीदार के पर्याय हैं चित्र, किर्मीर, कल्माष, शवल एत और कर्वुर । वाणी के पर्याय हैं — व्याहार, उक्ति और लपित । अपशब्द को अपभ्रंश कहते हैं ।५१-५७।

तिङ्सुवन्तचयो वाक्यं क्रिया वा कारकान्विता ।
इतिहासः पुरावृत्तं पुराणं पञ्चलक्षणम् ।।५८
आख्यायिकोपलब्धार्था प्रवन्धकल्पना कथा ।
समाहारः संग्रहस्तु प्रवह्लिका प्रहेलिका ।।५९

समस्या तु समासार्था स्मृतिस्तु धर्मसंहिता ।
आख्याह्वे चाभिधानं च वार्ता वृत्तान्त ईरितः ॥६०
हूतिराकारणाऽऽह्वानमुपन्यासस्तु वाङ्मुखम् ।
विवादो व्यवहारः स्यात्प्रतिवाक्योत्तरे समे ॥६१

तिङन्त (क्रियापदों) और सुवन्त (संज्ञा पदों) के समूह को वाक्य कहा जाता है। क्रिया उसे कहते हैं जो कारकों से युक्त रहती है। इतिहास कहते है प्राचीन वृत्तान्त को। पुराण के पाँच लक्षण हुआ करते हैं। जिसका अर्थ पहले से ज्ञात हो उसे आख्यायिका कहते हैं। और जहाँ पर प्रबन्ध की कल्पना की जाती है उसे कथा कहते हैं। संग्रह कहते हैं समाहार को और प्रहेलिका कहते हैं बुझौवल को। सक्षिप्त अर्थवाली समस्या कहलाती है। और धर्मसंहिता को स्मृति कहते हैं। आख्या, आह्वा और अभिधान ये नाम के वाचक हैं। वार्ता को वृत्तान्त कहा गया है। हूति आकारणा और आह्वान ये पुकारने के अर्थ में आते है। वाणी के आरंभ को उपन्यास और वाङ्मुख कहते हैं। विवाद और व्यवहार मुकदमेवाजी का नाम है। प्रतिवाक्य और उत्तर ये दोनों समानार्थक हैं।५८-६१।

उपोद्घात उदाहारो ह्यथ मिथ्याभिशंसनम् ।
अभिशापो यशः कीर्तिः प्रश्नः पृच्छाऽनुयोगकः ॥६२
आम्रेडितं द्विस्त्रिरुक्तं [1]कुत्सानिन्दे च गर्हणे ।
स्यादाभाषणमालापः प्रलापोऽनर्थकं वचः ॥६३
अनुलापो मुहुर्भाषा विलापः परिदेवनम् ।
विप्रलापो विरोधोक्तिः संलापो भाषणं मिथः ॥६४
सुप्रलापः सुवचनमपलापस्तु निह्नवः ।
[2]रुशती वागकल्याणी संगतं हृदयंगमम् ॥६५

उपोद्घातऔर उदाहार—ये भूमिका के नाम हैं। झूठा कलंक लगाने को मिथ्याभिशंसन और अभिशाप कहा गया है। यश कहते हैं कीर्ति को और प्रश्न का पर्याय है पृच्छा। किसी बात को दो या तीन वार कहना आम्रेडित कहलाता है और कुत्सा तथा निन्द्रा कहते हैं तिरस्कार को। परस्पर की बातचीत, आलाप और अनर्थक वाणी को प्रलाप कहा गया है। बार-बार किसी बात को कहना अनुलाप कहलाता है और परिदेवना को विलाप कहा गया है।

१ ख. ग. निन्दा च। २ क. ङ. छ. उषती।

विरोधी वचनों को विप्रलाप और परस्पर भाषण को संलाप कहते हैं। अच्छी बातचीत को सुप्रलाप तथा किसी बात को छिपाना अपलाप कहलाता है। अकल्याणकारी वाणी रुशती कहलाती है तथा हृदयङ्गम करने को संगति कहा जाता है।६२-६५।

अत्यर्थमधुरं सान्त्वमवद्धं स्यादनर्थकम् ।
निष्ठुराश्लीलपरुषं ग्राम्यं वै सूनृतं प्रिये ॥६६
सत्यं तथ्यमृतं सम्यङ्नादनिःस्वाननिःस्वनाः ।
आरवारावसंरावविरावा अथ मर्मरः ॥६७
स्वनिते वस्त्रपर्णानां भूषणानां तु शिञ्जितम् ।
वीणाया निक्वणः क्वाणस्तिरश्चां वाशितं रुतम् ॥६८
कोलाहलः कलकलो गीतं गानमिमे समे ।
स्त्री प्रतिश्रुत्प्रतिध्वाने [1]तन्त्रीकण्ठान्निसा (पा) दकः ॥६९
काकली तु कले सूक्ष्मे ध्वनौ तु मधुरास्फुटे ।
कलो मन्द्रस्तु गम्भीरे तारोऽत्युच्चैस्त्रयस्त्रिपु ॥७०
समन्वितलयस्त्वेकतालो वीणा तु वल्लकी ।
विपञ्ची सा तु तन्त्रीभिः सप्तभिः परिवादिनी ॥७१

अत्यन्त मधुर बातचीत को सान्त्वना तथा अनर्थक बातचीत को अवद्ध कहते हैं। निष्ठुर, अश्लील और परुष को ग्राम्य और प्रियवाणी को सुनृत कहा जाता है। सत्य, तथ्य, ऋत और सम्यक्—ये यथार्थबोधक हैं। नाद, निःस्वान, निःस्वन, आरव, आराव, संराव और विराव अव्यक्त शब्द के वाचक हैं। वस्त्र और पत्तों की ध्वनि को मर्मर, आभूषणों की ध्वनि को शिञ्जित, वीणा की ध्वनि को निक्वण, तथा क्वाण और पक्षियों के कलरव को वाशित कहते हैं। कोलाहल और कलकल सामूहिक ध्वनि को कहते हैं। गीत और गान समानार्थक हैं। प्रतिश्रुति और प्रतिध्वान—ये प्रतिध्वनि के वाचक हैं। प्रतिश्रुत् शब्द स्त्रीलिंग है। वीणा के कण्ठ से निषाद आदि स्वर प्रकट होते हैं। सूक्ष्मध्वनि को काकली, मधुर और अव्यक्त ध्वनि को कल, गम्भीर ध्वनि को मन्द्र और अत्यन्त उच्चध्वनि को तार कहते हैं। लययुक्त को एकताल और वीणा को वल्लकी कहते है। सात तंत्रियों से युक्त वीणा विपञ्ची कहलाती है।६६-७१।

---

१ क. ङ. ०ण्ठानिषादका। का॰।

ततं वीणादिकं वाद्यमानद्धं मुरजादिकम् ।
वंशादिकं तु [1]सुषिरं कांस्यतालादिकं घनम् ।।७२
चतुर्विधमिदं वाद्यं वादित्रातोद्यनामकम् ।
मृदङ्गा मुरजा भेदास्त्वङ्क्यालिङ्ग्योर्ध्वकास्त्रयः ।।७३
स्याद्यशः पटहो ढक्का भेर्यामानकदुन्दुभिः (?) ।
आनकः पटहो भेदा [2]झर्झरीडिण्डिमादयः ।।७४
मर्दलः पणवस्तुल्यो क्रियामानं तु तालकः ।
लयः साम्यं ताण्डवं तु नाट्यं लास्यं च नर्तनम् ।।७५
तौर्यत्रिकं नृत्यगीतवाद्यं नाट्यमिदं त्रयम् ।
राजा भट्टारको देवः साभिषेका च देव्यपि ।।७६

वीणा आदि वाद्य 'तत' (तारयुक्त) समूह के अन्तर्गत, मुरज आदि 'आनद्ध' समूह के अन्तर्गत, वंशी आदि 'सुषिर' समूह के अन्तर्गत कांस्य और ताल आदि 'घन' समूह के अन्तर्गत आते है। इन चारों प्रकार के वाजों का नाम वाद्य, वादित्र और आतोद्य है। मृदङ्ग और मुरज ढोल के नाम है उसके भेद हैं अङ्क्य, आलिङ्ग्य और ऊर्ध्व। यशःपटह को ढक्का तथा भेरी को आनक और दुंदुभि कहते हैं। इसके अन्य भेद है—आनक, पटह, झर्झरी और डिण्डिम आदि। मर्दल और पणव समान बाजे हैं। ताल कहते हैं क्रियामान को और लय का अभिप्राय है साम्य। ताण्डव नाट्य के अन्तर्गत तथा लास्य नर्तन में आता है। नृत्य, गीत और वाद्य से युक्त नाट्य अथवा तौर्यत्रिक कहलाता है। राजा को भट्टारक तथा देव शब्दों से तथा अभिषिक्ता रानी को देवी शब्द से संवोधित किया जाता है।७२-७६।

शृङ्गारवीरकरुणाद्भुतहास्यभयानकाः ।
वीभत्सरौद्रौ च रसाः शृङ्गारः शुचिरुज्ज्वलः ।।७७
उत्साहवर्धनो वीरः कारुण्यं करुणा घृणा ।
कृपा दया चानुकम्पाऽप्यनुक्रोशोऽप्यथो हसः ।।७८
हासो हास्यं च वीभत्सं विकृतं त्रिष्विदं द्वयम् ।
विस्मयोऽद्भुतमाश्चर्यं चित्रमप्यथ भैरवम् ।।७९
दारुणं भीषणं भीष्मं घोरं भीमं भयानकम् ।
भयंकरं प्रतिभयं रौद्रं तूग्रममी त्रिषु ।।८०

१ क. ङ. शुषिरं । २ ख. ग. °झ॑रो डि° ।

चतुर्दश दरस्त्रासौ (सो) भीतिर्भीः साध्वसं भयम् ।
विकारो मानसो भावोऽनुभावो भाववोधनः (कः) ॥८१
गर्वा (र्वोऽ) भिमानोऽहंकारो मानश्चित्तसमुन्नतिः ।
अनादरः परिभवः [1]परिभावस्तिरस्क्रिया ॥८२
व्रीडा लज्जा त्रपा ह्रीः स्यादभिध्यानं धने स्पृहा ।

रस ये हैं—शृङ्गार, वीर, करुण, अद्भुत, हास्य, भयानक, वीभत्स और रौद्र। शृङ्गार शुचि और उज्ज्वल होता है। उत्साहवर्धन और वीर—ये वीर रस के नाम हैं। कारुण्य करुणा, घृणा, कृपा, दया, अनुकम्पा और अनुक्रोश ये दया के नाम हैं। हस, हास, हास्य—ये हँसी के नाम हैं। वीभत्स और विकृत—ये वीभत्स के नाम हैं। ये 'रस' अर्थ में पुं० और 'रसविशिष्ट' अर्थ में त्रिलिंग हैं। विस्मय, अद्भुत, आश्चर्य, चित्र—ये आश्चर्य के नाम हैं। भैरव, दारुण, भीपण, भीष्म, भयानक, भयङ्कर, प्रतिभय—ये भयानक के नाम हैं। रौद्र, उग्र—रौद्र के नाम हैं। 'अद्भुत' से लेकर 'उग्र' शब्द पर्यन्त चौदहो शब्द त्रिलिंग हैं। दर, त्रास, भीति, भी, साध्वस, भय—ये डर के नाम हैं। मानस विकार का नाम भाव और मानस विकार सूचक कटाक्ष आदि का नाम अनुभाव है। गर्व, अभिमान, अहंकार, मान और चित्तसमुन्नति—ये गर्व के नाम हैं। अनादर, परिभव, परीभाव और तिरस्क्रिया—ये तिरस्कार के नाम हैं। व्रीडा, लज्जा, त्रपा और ह्री—ये लज्जा के नाम हैं। धन विषयक स्पृहा को अभिध्यान कहते हैं ॥७७-८२½॥

कौतूहलं कौतुकं च कुतुकं च कुतूहलम् ॥८३
स्त्रीणां विलासविव्वोकविभ्रमा ललितं तथा ।
हेला लीलेत्यमी हावाः क्रियाः शृङ्गारभावजाः ॥८४
द्रवकेलिपरीहासाः क्रीडा लीला च कूर्दनम् ।
स्यादाच्छुरितकं हासः सोत्प्रासः समनाक्स्मितम् ॥८५
अधोभुवनपातालं छिद्रं श्वभ्रं वपा सुषिः
गर्तावटौ भुविश्वभ्रे तमिश्रं (स्रं) तिमिरं तमः ॥८६
सर्पः पृदाकुर्भुजगो दन्दशूको बिलेशयः ।
विषं क्ष्वेडश्च गरलं निरयो दुर्गतिः स्त्रियाम् ॥८७

कौतूहल के पर्याय है—कौतुक, कुतुक और कुतूहल। विलास, विव्वोक; विभ्रम, ललित, हेला और लीला ये स्त्रियों के हाव हैं ये सभी क्रियायें शृंगार

---

१ ख. ग. परीभा'।

भाव से उत्पन्न होती हैं। द्रव, केलि, परिहास, क्रीड़ा, लीला और कूदना क्रीड़ा के नाम हैं। हास के भेद हैं—आच्छुरितक, हास, सोत्प्रास और स्मित। पाताल का पर्याय है— अधोभुवन। छिद्र के पर्याय हैं श्वभ्र, वपा, सुषि, गर्त और अवट। अंधकार के पर्याय हैं—तमिस्र, तिमिर, और तम। सर्प के पर्याय हैं —पृदाकु, भुजग, दन्दशूक और विलेशय। विष को क्ष्वेड और गरल कहते हैं। नरक के पर्याय हैं निरय और दुर्गति। इनमें दुर्गति स्त्रीलिंग है।८३-८७।

पयः कीलालममृतमुदकं भुवनं वनम्।
भङ्गस्तरङ्ग ऊर्मिर्वा कल्लोलोल्लोलकौ च तौ ॥८८
पृषन्ति विन्दुपृषताः कूलं रोधश्च तीरकम्।
तोयोत्थित तत्पुलिनं जम्वालं पङ्ककर्दमौ ॥८९
जलोच्छ्वासाः परीवाहाः कूपकास्तु विदारकाः।
आतरस्तरपण्यं स्याद्द्रोणी काष्ठाम्बुवाहिनी ॥९०

जल के पर्याय हैं—पय, कीलाल, अमृत: उदक, भुवन और वन। तरङ्ग के पर्याय हैं—भङ्ग, ऊर्मि, कल्लोल और उल्लोलक। बिन्दु के पर्याय हैं—पृषत्, बिन्दु और पृषत। तट के पर्याय हैं—कूल, रोधस् और तीर। जल से बने हुए (रेतीले) तट को पुलिन कहते हैं। कीचड़ को जम्बाल, पङ्क और कर्दम कहा जाता है। नाली को जलोच्छ्वास और परिवाह कहते हैं। कुएँ के पर्याय हैं— कूपक और विदारक। (नदी को) पार करने के शुल्क को आतर और तरपण कहा जाता है। काठ के बने हुए जल ले जाने के पात्र को द्रोणी कहा जाता है।८८-९०।

कलुषश्चाऽऽविलोऽच्छस्तु प्रसन्नोऽथ गभीरकम्।
अगाधं [1]दासकैवर्तौ शम्बूका जलशुक्तयः ॥९१
सौगन्धिकं तु कह्लारं नीलमिन्दीवरं कजम्।
स्यादुत्पलं कुवलयं सिते कुमुदकैरवे ॥९२
शालूकमेषां कन्दः स्यात्पद्मं तामरसं कजम्।
नीलोत्पलं कुवलयं रक्तं कोकनदं स्मृतम् ॥९३

---

१ ख. ग. दाशकै°।

करहाटः शिफा कन्दः किंजल्कः केशरोऽस्त्रियाम् ।
खनिः स्त्रियामाकरः स्यात्पादाः प्रत्यन्तपर्वताः ।।९४
उपत्यकाऽद्रेरासन्ना भूमिरूर्ध्वमधित्यका ।
स्वर्गपातालवर्गाद्या उक्ता नानार्थकाञ्शृणु ।।९५

कलुष को आविल और साफ पानी को अच्छ और प्रसन्न कहते हैं। गहरे जल को अगाध और गम्भीर कहते है। धीवर को दास और कैवर्त कहते हैं। सीपी को शम्बूक कहते है मलकोका को सौगन्धिक और कह्लार कहते हैं। नील कमल को इन्दीवर, कज, उत्पल, और कुवलय तथा श्वेत कमल को कुमुद और कैरव कहते है। कमलों की जड़ को शालूक कहते. हैं। कमल के पर्याय हैं – पद्म, तामरस और कज। नीलकमल को कुवलय और रक्तकमल को कोकनद कहा जाता है। कुमुदिनी की जड़ को करहाट, तथा केसर को किञ्जल्क कहते है। खान को खनि और आकर कहते हैं। पर्वतों की तलहटियों को पाद कहा जाता है। पर्वत के निकट की भूमि (घाटी) को उपत्यका और उनके ऊपर की भूमि को अधित्यका कहते हैं। स्वर्ग और पाताल आदि वर्ग का वर्णन किया गया है, अब विभिन्न अर्थो वाले शब्दों को सुनो।९१-९५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये स्वर्गपातालादिवर्गकथनं नाम
षष्ठ्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः।३६०

अथैकषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अव्ययवर्गः

अग्निरुवाच—
आङीषदर्थेऽभिव्याप्तौ सीमार्थे धातुयोगजे ।
आ प्रगृह्यः स्मृतौ वाक्येऽप्यास्तु स्यात्कोपपीडयोः ।।१
पापकुत्सेषदर्थे[1] कु धिङ्निर्भर्त्सननिन्दयोः ।
चान्वाचयसमाहारेतरेतरसमुच्चये ।।२

---

१ ख. ग. 'र्थे कुः किंधिक्कुत्सन' ।

स्वस्त्याशीः क्षेमपुण्यादौ प्रकर्षे लङ्घनेऽप्यति ।
स्वित्प्रश्ने च वितर्के च तु स्याद्भेदेऽवधारणे ।।३

अग्निदेव बोले—'आङ्' का प्रयोग ईषत्, अभिव्याप्ति और सीमा के अर्थ में होता है। कहीं कहीं वह प्रगृह्य के रूप में भी होता है और कभी-कभी उससे क्रोध और पीडा का अर्थ ज्ञात होता है। 'कु' का प्रयोग पाप, कुत्सा और ईषत् के अर्थ में होता है। धिङ् का अर्थ होता है भर्त्सना और निन्दा। 'च' का अर्थ है अन्वाचय, समाहार, इतरेतर और समुच्चय। स्वस्ति, का प्रयोग आशीस, क्षेम, पुण्य इत्यादि में और प्रकर्ष तथा उल्लंघन में भी होता है। स्वित् का अर्थ होता है प्रश्न और वितर्क। 'तु' का प्रयोग भेद और अवधारणा में किया जाता है।१-३।

सकृत्सहैकवारे स्यादाराद्दूरसमीपयोः ।
प्रतीच्यां चरमे पश्चादुताप्यर्थविकल्पयोः ।।४
पुनः [1]सदार्थयोः शश्वत्साक्षात्प्रत्यक्षतुल्ययोः ।
खेदानुकम्पासंतोषविस्मयामन्त्रणे वत ।।५
हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः ।
प्रति प्रतिनिधौ वीप्सालक्षणादौ प्रयोगतः ।।६

'सकृत्' का अर्थ है एक बार। 'आरात्' दूर और समीप के अर्थ में प्रयुक्त होता है। पश्चाद् पश्चिम तथा अन्तिम के अर्थ में प्रयुक्त होता है। उत का प्रयोग भी और अर्थो के विकल्प में होता है। पुनः का अर्थ है बार-बार। इसी अर्थ में शश्वत् का भी प्रयोग होता है। प्रत्यक्ष और तुल्य के अर्थ में साक्षात् का प्रयोग होता है। वत का प्रयोग खेद, अनुकम्पा, वाक्यारम्भ, और विषाद में किया जाता है। प्रति का प्रयोग प्रतिनिधि तथा वीप्सा के अर्थ में होता है।४-६।

इति [2]हेतुप्रकरणप्रकाशादिसमाप्तिषु ।
प्राच्यां [3]पुरस्तात्प्रथमे पुरार्थेऽग्रत इत्यपि ।।७
यावत्तावच्च साकल्येऽवधौ मानेऽवधारणे ।
मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकार्त्स्न्येष्वथो अथ ।।८

---

१ क. ङ. सहार्थे । २ ख. ग. हेतौ प्रकारेण । ३ ख. ग. पुरस्तु प्रथ ।

वृथा निरर्थकाविध्योर्नानाऽनेकोभयार्थयोः ।
नु पृच्छायां विकल्पे च पश्चात्सादृश्ययोरनु ॥९
प्रश्नावधारणानुज्ञानुनयामन्त्रणे[1] ननु ।
गर्ह्यसमुच्चयप्रश्नशङ्कासम्भावनास्वपि ॥१०

इति हेतु के अर्थ में तथा प्रकरण और प्रकाश आदि की समाप्ति में प्रयुक्त होता है । पुरस्तात् का प्रयोग पूर्व दिशा, प्रथम, पुरा, प्राचीन काल मे और आगे के अर्थ में भी होता है । यावत् और तावत् का प्रयोग साकल्य अवधि, परिमाण और अवधारणा के अर्थ में होता है । मंगल, अनन्तर, आरम्भ, प्रश्न और सम्पूर्णता के अर्थ में अथ प्रयुक्त होता है । वृथा का अर्थ है—निरर्थक और अविधि तथा नाना का प्रयोग अनेक तथा उभय के अर्थ में होता है । पृच्छा और विकल्प में 'नु' का प्रयोग होता है तथा पश्चात् और सादृश्य के अर्थ में 'अनु' का । प्रश्न, अवधारणा, अनुज्ञा, अनुनय और आमन्त्रण में 'ननु' प्रयुक्त होता है । इसका प्रयोग निन्दा समुच्चय और सम्भावना में भी होता है ।७-१०।

उपमायां विकल्पे वा सामि त्वर्धे जुगुप्सिते ।
अमा सह समीपे च कं वारिणि च मूर्धनि ॥११
इवेत्थमर्थयोरेवं नून तर्केऽर्थनिश्चये ।
तूष्णीमर्थे सुखे जोषं किं पृच्छायां जुगुप्सने ॥१२
नाम प्राकाश्यसंभाव्यक्रोधोपगमकुत्सने ।
अलं भूषणपर्याप्तिशक्तिवारणवाचकम् ॥१३
[2]हूं वितर्के परिप्रश्ने समयान्तिकमध्ययोः ।
पुनरप्रथमे भेदे[3] निर्निश्चयनिषेधयोः ॥१४

'वा' का अर्थ है उपमा और विकल्प । सामि का प्रयोग अर्ध और जुगुप्सा में किया जाता है । अमा का अर्थ है साथ और समीप । 'कं' का अर्थ है जल तथा मूर्धा । 'एवम्' का प्रयोग 'इव' तथा 'इत्थम्' के अर्थ में तथा 'नूनम्' का तर्क और निश्चय में किया जाता है । 'जोषम्' का प्रयोग चुपचाप और सुख के अर्थ में होता है । 'किम्' पृच्छा तथा जुगुप्सा के अर्थ मे प्रयुक्त होता है । नाम का प्रयोग

१ ख. गः 'णार्थज्ञानु°' । २ क. ङ. हुं । ३ ख. ग. °दे विनाऽऽश्चर्यनि° ।

स्पष्टत: सम्भावना क्रोध और कुत्सा अर्थ में किया जाता है। अलम्, शब्द भूषण, पर्याप्ति, शक्ति और निषेध का वाचक है। 'हु' वितर्क और परिप्रश्न के अर्थ में तथा समया निकट और मध्य के अर्थ में प्रयुक्त होता है। पुन: का प्रयोग बार-बार तथा भेद के अर्थ में होता है। नि: का अर्थ है निश्चय और निषेध।११-१४।

स्यात्प्रबन्धे चिरातीते निकटागामिके पुरा।
उरर्यूरी चोररी च विस्तारेऽङ्गीकृतौ त्रयम् ॥१५
स्वर्गे परे च लोके स्ववर्तिा संभाव्ययोः किल।
निषेधवाक्यालंकारे जिज्ञासावसरे खलु ॥१६
समीपोभयतः शीघ्रसाकल्याभिमुखेऽभितः।
नामप्रकाशयोः प्रादुर्मिथोऽन्योन्यं रहस्यपि ।१७
तिरोऽन्तर्धौ तिर्यगर्थे हा विषादशुगर्तिषु।
अहहेत्यद्भुते खेदे हि हेतावधारणे ॥१८

'पुरा' का प्रयोग प्रबन्ध (अविच्छेदेन क्रियाकरण) अर्थ में, चिरन्तन अर्थ में, भूत अर्थ में समीप और भावी अर्थ में होता है। उररि, ऊरि और उररी इन तीनों का प्रयोग विस्तार और अङ्गीकार में किया जाता है। स्व: का प्रयोग स्वर्ग और परलोक के अर्थ में किया जाता है। किल का अर्थ वार्ता और सम्भावना होता है। निषेध, वाक्यपूर्ति जिज्ञासा और अवसर के लिए खलु प्रयुक्त होता है। अभित: का प्रयोग निकट, दोनों ओर, शीघ्रता से, सम्पूर्ण रूप से और सामने के अर्थ में किया जाता है। प्रादु: का प्रयोग नाम और प्राकाश्य के अर्थ में होता है। मिथ: का अर्थ है—परस्पर अथवा एकान्त मे। तिर: का अर्थ है—अन्तर्धान होना और टेढ़ा। विषाद, शोक और दुःख में 'हा' का प्रयोग किया जाता है। 'अहह' का प्रयोग आश्चर्य तथा खेद को सूचित करता है। 'हि' का अर्थ है हेतु और अवधारणा।१५-१८।

चिराय चिररात्राय चिरस्यार्था (द्या) श्चिरार्थका:।
मुहुः पुनः पुनः शश्वदभीक्ष्णमसकृत्समाः ॥१९
द्राग्झटित्यञ्जसाऽह्नाय सपदि द्राङ्मङ्क्षु द्रुते।
बलवत्सुष्ठु किमुत विकल्पे किं किमूत च ॥२०

तु हि च स्म ह वै पादपूरणे [1]पूजनेऽप्यति।
दिवाऽह्नीत्यथ दोषा च नक्तं च रजनाविति ॥२१

'चिर' के अर्थ में ही चिराय, चिररात्राय और चिरस्य आदि प्रयुक्त होते हैं। मुहुः, पुनः पुनः, शश्वत्, अभीक्ष्णम् और असकृत् ये सब समानार्थक हैं। द्राक्, झटिति, अंजसा, आह्नाय, सपदि, द्राङ् और मङ्क्षु का प्रयोग शीघ्रता के अर्थ में किया जाता है। किसी बात पर बल देने के लिए बलवत्, सुष्ठु और किमुत का प्रयोग किया जाता है। विकल्प के अर्थ में भी किम्, और किमुत प्रयुक्त होते है। 'तु' 'हि' 'च' 'स्म' 'ह' और 'वै' का प्रयोग पादपूर्ति के लिए किया जाता है। पूजा के अर्थ में अघि का प्रयोग होता है। दिन के अर्थ में दिवा तथा रात्रि के अर्थ में दोषा और नक्तम् प्रयुक्त होते हैं।१९-२१।

तिर्यगर्थे साचि तिरोऽप्यथ संबोधनार्थकाः।
स्युः प्याट् पाडङ्ग हे है भोः समया निकषा हिरुक् ॥२२
अतर्किते तु सहसा स्यात्पुरः पुरतोऽग्रतः।
स्वाहा देवहविर्दाने श्रौषड्वौषड्वषट्स्वधा ॥२३
किंचिदीषन्मनागल्पे प्रेत्यामुत्र भवान्तरे।
यथा तथा चैव साम्ये अहो हो इति विस्मये ॥२४
मौने तु तूष्णीं तूष्णीकं सद्यः सपदि तत्क्षणे।
दिष्ट्या समुपजोषं चेत्यानन्देऽथान्तरेऽन्तरा ॥२५
अन्तरेण च मध्ये स्युः प्रसह्य तु हठार्थकम् ॥

तिरछे के अर्थ में साचि और तिरः का प्रयोग होता है। प्याट्, पाट्, अङ्ग, हे, है और भोः का प्रयोग होता है सम्बोधन के अर्थ में। निकट के अर्थ में समया, निकषा और हिरुक् प्रयुक्त होते हैं। बिना विचारे जो कुछ किया जाता है उसे सहसा कहते हैं। सामने के अर्थ में पुरः, पुरतः और अग्रतः का प्रयोग होता है। देवताओं को हविष् प्रदान करने में स्वाहा, श्रौषट्, वौषट् वषट् और स्वधा तथा पितरों को दिये जाने वाले हविष् के लिए स्वधा का प्रयोग होता है। अल्प के अर्थ में किञ्चित्, ईषत् और मनाक् का प्रयोग होता है। परलोक के लिए प्रेत्य और अमुत्र शब्दों का प्रयोग होता है। यथा, तथा और

---

1 ख. ग. ने स्वति।

एव साम्य के अर्थ में तथा अहो और हो विस्मय में प्रयुक्त होते हैं। मौन के अर्थ में तूष्णीम् तथा तूष्णीकम् तथा तुरन्त के लिए सद्यः और सपदि का प्रयोग होता है। मध्य के अर्थ में अन्तरे, अन्तरा तथा अन्तरेण शब्दों का प्रयोग होता है तथा हठ पूर्वक किये जाने वाले कर्म में प्रसह्य शब्द का प्रयोग होता है।२२-२५½।

युक्ते द्वे सांप्रतं स्थानेऽभीक्ष्णं शश्वदनारते ॥२६
अभावे नह्य नो नापि मा स्म माऽलं च वारणे।
पक्षान्तरे चेद्यदि च तत्त्वे त्वद्धाञ्जसा द्वयम् ॥२७
प्राकाश्ये प्रादुराविः स्यादोमेवं परमं मते।
समन्ततस्तु परितः सर्वतो विष्वगित्यपि ॥२८
अकामानुमतौ काममसूयोपगमेऽस्तु च।
ननु च स्याद्विरोधोक्तौ कच्चित्कामप्रवेदने ॥२९
निःषमं दुःषमं गर्ह्ये [1]यथास्व तु यथायथम्।
मृषा मिथ्या च वितथे यथार्थं तु यथातथम् ॥३०

साम्प्रतं और स्थाने ये दोनों शब्द उचित के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। निरन्तरम् के अर्थ में अभीक्षणम् और शश्वद् शब्द प्रयुक्त होते हैं। अभाव के अर्थ में नहि, अ नो और न का प्रयोग होता है और प्रतिषेध में मा, स्म, मा और अलम् शब्दों का। पक्षान्तर के लिए चेत् और यदि तथा वास्तविकता के लिए अद्धा और अञ्जसा ये दोनों शब्द प्रयुक्त होते हैं। प्रकट करने के अर्थ में प्रादुः और आविः तथा स्वीकृति, ओम्, एवम् और परमम् प्रयुक्त होते हैं। चारों ओर के अर्थ में समन्ततः, परितः, सर्वतः और विष्वग् शब्द प्रयुक्त होते हैं। अनिच्छया अनुमति और असूया से अंगीकार अर्थ में कामम् का प्रयोग होता है। ननु का प्रयोग विरोधोक्ति में तथा कच्चित् का प्रयोग इष्ट प्रश्न में किया जाता है। निन्दनीय अर्थ में 'निःषमम्' और दुःषमम् प्रयुक्त होते हैं तथा ठीक-ठीक के अर्थ में यथास्वम् और यथायथम् का प्रयोग होता है। असत्य के अर्थ में मृषा और मिथ्या तथा सत्य अर्थ में यथार्थम् और यथायथम् का प्रयोग होता है।२६-३०।

स्युरेवं तु पुनर्वै वेत्यवधारणवाचकाः।
प्रागतीतार्थकं नूनमवश्यं निश्चये द्वयम् ॥३१

---

१ ख. ग. °थार्थस्तु य°।

संवद्वर्षेऽवरे त्ववर्गामेवं स्वयमात्मना ।
अल्पे नीचैर्महत्युच्चैः प्रायो भूम्न्यद्रुते शनैः ॥३२
[1]सना नित्ये वहिर्वाह्ये स्मातीतेऽस्तमदर्शने ।
[2]अस्ति सत्त्वे रुषोक्तावू प्रश्नेऽ (चा) नुनये त्वयि ॥३३
हूं तर्के स्यादुषा रात्रेरवसाने नमो नतौ ।
पुनरर्थेऽङ्ग निन्दायां दुष्ठु सुष्ठु प्रशंसने ॥३४

एवं, तु, पुनः वै और वा निश्चय अर्थ के वाचक हैं। प्राग् का प्रयोग अतीत के अर्थ में तथा नूनम् और अवश्यम् का प्रयोग निश्चय के अर्थ में किया जाता है। वर्ष के अर्थ में संवत्, इधर के अर्थ में अर्वाक् और आम् तथा एवम् अंगीकार में प्रयुक्त होते हैं। स्वयम् आत्मना (अपने से) अर्थ में आता है। अल्प के अर्थ में नीचैः, महान् के अर्थ में उच्चैः, आधिक्य के अर्थ में प्रायः, अशीघ्रता के अर्थ में शनैः प्रयुक्त होते हैं। नित्य के अर्थ में सना वाह्य के अर्थ में वहिः, अतीत के अर्थ में स्म और अदर्शन के अर्थ में अस्तम् प्रयुक्त होते हैं। विद्यमान के अर्थ में अस्ति, रोषपूर्ण वाणी के अर्थ में उ, प्रश्न में ऊम् और अनुनय में अयि प्रयुक्त होते हैं। तर्क के अर्थ में हूं, रात्रि की समाप्ति में उषा, प्रणाम में नमः, पुनः के अर्थ में अङ्ग, निन्दा के अर्थ में दुष्टु और प्रशंसा के अर्थ में सुष्ठु शब्दों का प्रयोग होता है।३१-३४।

सायं साये प्रगे प्रातः प्रभाते निकषाऽन्तिके ।
परुत्परार्यैषमोऽब्दे पूर्वे पूर्वतरे यति ॥३५
अद्यात्राह्न्यथ पूर्वेऽह्नीत्यादौ पूर्वोत्तरापरात् ।
तथाऽधरान्यान्यतरेतरात्पूर्वेद्युरादयः ॥३६
उभयद्युश्चोभयेद्युः परेत्वह्नि परेद्यवि ।
ह्यो गतेऽनागतेऽ (ह्न्य) ह्नि श्वः परश्वः परेऽहनि॥३७
तदा तदानीं युगपदेकदा सर्वदा सदा ।
एतर्हि संप्रतीदानीमधुना सांप्रतं तथा ॥३८

दिवसावसान के अर्थ में सायं, प्रभात के अर्थ में प्रगे और प्रातः और निकट के अर्थ में निकषा का प्रयोग होता है। अव्यवहित पूर्व वर्ष अर्थ में

१ ख. ग. सदा। २ "अस्ति......त्वयि" इत्यत्र "स्वस्ति सत्पुरुषोक्तौ च अप्रश्नेऽनुनये द्वयम्" इति ख. ग. पुस्तकयो ।

परुत् व्यवहित पूर्व वर्ष अर्थ में परारि और वर्तमान वर्ष अर्थ में ऐषमस् का प्रयोग होता है दोनों दिनों के लिए उभयेद्यु; आने वाले दिन के लिए परेद्यवि, बीते हुए दिन के लिए ह्यः, आने वाले दिन के लिए श्वः और उसके बाद वाले दिन को परश्वा शब्द प्रयुक्त होते हैं। तदा और तदानीम्, युगपद् और एकदा, सर्वदा और सदा, सम्प्रति और इदानीम् तथा अधुना और साम्प्रतम् समानार्थक शब्द हैं।३५-३८।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽव्ययवर्गकथनं नामैकषष्ट्यधिक-त्रिशततमोऽध्यायः ॥३६१

अथ द्विषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नानार्थवर्गः

अग्निरुवाच—
आकाशे त्रिदिवो नाको लोकस्तु भुवने जने।
पद्ये यशसि च श्लोकः शरे खड्गे च सायकः ॥१

अग्निदेव बोले—आकाश और त्रिदिव (स्वर्ग) के अर्थ में नाक शब्द का प्रयोग किया जाता है। उसी भाँति भुवन तथा जन (समूह) के अर्थ में लोक शब्द, पद्य एवं यश के अर्थ में श्लोक शब्द और शर (बाण) तथा खड्ग के अर्थ में सायक शब्द प्रयुक्त होता है।१।

आनकः पटहो भेरी कलङ्कोऽङ्कापवादयोः।
मारुते वेधसि ब्रध्ने पुंसि कः कं शिरोम्बुनोः ॥२
स्यात्पुलाकस्तुच्छधान्ये संक्षेपे भक्तिसिक्थके।
महेन्द्रगुग्गुलूलूकव्यालग्राहिषु कौशिकः ॥३

पटह (ढोल) और भेरी (तुरुही) के अर्थ में आनक शब्द, अङ्क (चिह्न) तथा अपवाद (लाञ्छन-निन्दा) के अर्थ में कलङ्क शब्द मारुत (वायु) वेधा (ब्रह्मा) और ब्रध्न (सूर्य) के अर्थ में पुंल्लिग 'क' शब्द का प्रयोग तथा शिर एवं जल के अर्थ में (... क लिङ्ग वाले) 'क शब्द का प्रयोग किया जाता

है। तुच्छ धान्य संक्षेप (विस्तार रहित) और भक्तसिक्थक (माँड़) के अर्थ में पुलाक शब्द, महेन्द्र (इन्द्र) गुग्गुल (गूगुल) उलूक (उल्लू) तथा सर्प पकड़ने वाले (मदारी) के अर्थ में कौशिक शब्द प्रयुक्त होता है।२-३।

शालावृकौ कपिश्वानौ मानं स्यान्मितिसाधनम्।
सर्गः स्वभावनिर्मोक्षनिश्चयाध्यायसृष्टिषु ४॥
योगः संनहनोपायध्यानसंगतियुक्तिषु।
भोगः सुखे स्त्र्यादिभृतावब्जौ शङ्खनिशाकरौ॥५
काकेभगण्डौ करटौ दुश्चर्मा शिपिविष्टकः।
रिष्टं क्षेमाशुभाभावेष्वरिष्टे तु शुभाशुभे॥६
व्युष्टिः [1]काले समृद्धौ च दृष्टिर्ज्ञानेऽक्षिण दर्शने।
निष्ठा निष्पत्तिनाशान्ताः काष्ठोत्कर्षे स्थितौ दिशि॥७

वानर तथा कुत्ता के लिए शालावृक (भेड़िया) शब्द, मितिसाधन (तौलने के साधन) के लिए मान शब्द और स्वभाव, निर्मोक्ष (त्याग) निश्चय, अध्याय एवं सृष्टि के अर्थ में सर्ग का प्रगोग किया जाता है। योग शब्द संनहन (कवच) उपाय (साम, दण्ड, आदि), ध्यान (चिन्तन), संगति (संगम) तथा युक्ति के अर्थ में प्रयुक्त होता है। भोग शब्द सुख और स्त्री को उपभोग के वदले दिये जाने वाले धन का वाचक है। अब्ज शब्द शंख और चन्द्रमा के अर्थ में आता है। कौआ और हाथी के गण्डस्थल के अर्थ में करट शब्द, दुश्चर्म (बुरे चमड़े) के अर्थ में शिपिविष्ट शब्द प्रयुक्त होता है। रिष्ट शब्द क्षेम, अशुभ और अभाव के अर्थ में और अरिष्ट शब्द शुभ और अशुभ के अर्थ में प्रयुक्त होता है। समय एवं समृद्धि के अर्थ में व्युष्टिशब्द ज्ञान, नेत्र तथा देखने के अर्थ में दृष्टि शब्द, निष्पत्ति (निष्पादन अथवा सिद्धि), नाश (अदर्शन) और अन्त (विध्वंस) के अर्थ में निष्ठा शब्द और उत्कर्ष, स्थिति (मर्यादा) तथा दिशा के अर्थ में काष्ठा शब्द प्रयुक्त होता है।४-७।

भृगोवाचस्त्विवडा इलाः प्रगाढं [2]भृशकृच्छ्रयोः।
भृशप्रतिज्ञयोर्बाढं [3]शक्तस्थूलौ दृढौ त्रिषु॥८
विन्यस्तसंहतौ व्यूढौ कृष्णो व्यासेऽर्जुने हरौ।
पणो द्यूतादिषूत्सृष्टे भृतौ मूल्ये धनेऽपि च॥९

---

१ छ. फले। २ ख. ग. °शशिक्षयोः। ३ ख. शक्तः स्थुले दृढे त्रि°।

मौर्व्यां द्रव्याश्रिते सत्त्वशुक्लसंध्यादिके गुणः ।
श्रेष्ठेऽधिपे ग्रामणीः स्याज्जुगुप्साकरुणे घृणे ॥१०
[1]तृष्णा स्पृहापिपासे द्वे विपणिः स्याद्वणिक्पथे ।
विषाभिमरलोहेष तीक्ष्णं क्लीबे खरे त्रिषु ॥११

भू, गौ और वाणी के अर्थ में इडा तथा इला शब्द, भृश (अतिशय) तथा कृच्छ् (दुःख) के अर्थ में प्रगाढ़ शब्द, अत्यन्त एवं प्रतिज्ञा (दृढ़ संकल्प) के अर्थ में वाढम् शब्द, शक्त (बलवान्) और स्थूल (मोटे) के अर्थ में दृढ़ शब्द का प्रयोग तीनों लिङ्गों में किया जाता है। विन्यस्त और संहत के अर्थ में व्यूढ शब्द, व्यास, अर्जुन तथा हरि (विष्णु) के अर्थ में कृष्ण शब्द, और जुआ आदि में दांव पर लगाये हुए द्रव्य, वेतन और धन के अर्थ में पण शब्द का प्रयोग होता है। मौर्वी (धनुष की रस्सी), सत्त्व, शुक्ल, संधि (संधि-निग्रह आदि के प्रसंग में) और सन्धि (जोड़ आदि) के अर्थ में गुण शब्द, श्रेष्ठ अधिप के अर्थ में ग्रामणी शब्द तथा जुगुप्सा (निन्दा) और करुणा के अर्थ में घृणा शब्द प्रयुक्त होता है। स्पृहा (ललक) और पिपासा के अर्थ में तृष्णा शब्द, वणिक्पथ (बाजार की गली) के अर्थ में विपणि शब्द, विष, अभिमर (सङ्ग्राम) लोहे और प्रचण्ड के अर्थ में तीक्ष्ण शब्दों का तीनों लिङ्गों में प्रयोग किया जाता है। ८-११।

प्रमाणं हेतुमर्यादाशास्त्रेयत्ताप्रमातृषु ।
करणं क्षेत्रगात्रादावीरिणं शून्यमूषरम् ॥१२
यन्ता हस्तिपके सूते वह्निज्वाले च हेतयः ।
श्रुतं शास्त्रावभृ (धृ) तयोर्युगपर्याप्तयोः कृतम् ॥१३
ख्याते हृष्टे प्रतोतोऽभिजातस्तु कुलजे बुधे ।
विविक्तौ पूजविजनौ मूर्च्छितौ मूढसोच्छ्रयौ ॥१४
अर्थोऽभिधेयरैवस्तुप्रयोजननिवृत्तिषु ।
निदानागमयोस्तीर्थमृषिजुष्टजले गुरौ ॥१५

हेतु (कारण), मर्यादा (सीमा), शास्त्र की इयत्ता (प्रतिपाद्य विषय की सीमा) और प्रमाता (ज्ञाता) अर्थ में प्रमाण शब्द, क्षेत्र (खेत) और गात्र (शरीर) के अर्थ में करण शब्द, और शून्य (निराश्रय स्थान) तथा ऊसर (भूमि के अर्थ में ईरिण शब्द प्रयुक्त होता है। हस्तिपक (पीलवान) और

---

१ क. ख. तृष्णे ।

सूत (सारथी आदि) के अर्थ में यन्ता शब्द अग्नि की ज्वाला के अर्थ में हेति शब्द, शास्त्र और अवधृत (धारणा किया हुआ) के अर्थ में श्रुत शब्द, युग (सत्य युगादि) और पर्याप्त (पूरे) के अर्थ में वृत शब्द का प्रयोग किया जाता है। ख्यात (विख्यात) और प्रसन्न के अर्थ में प्रतीत शब्द, कुलीन और बुध (पण्डित) के अर्थ में अभिजात शब्द, पवित्र विजन (एकान्त-स्थान) के अर्थ में विविक्त शब्द तथा मूढ (मोहित) और सोच्छ्रय (वुद्धिसमेत) के अर्थ में मूर्च्छित शब्द का प्रयोग किया जाता है। अभिधेय (शब्द का वाच्य अर्थ) वन, वस्तु, प्रयोजन (हेतु) निवृत्ति (विराग) अर्थ में अर्थ शब्द, निपान (प्याऊ), आगम (शास्त्र) ऋषि सेवित जल और गुरु (उपाध्याय) अर्थ में तीर्थ शब्द का प्रयोग होता है।१२-१५।

प्राधान्ये राजलिङ्गे च वृषाङ्गे ककुदोऽस्त्रियाम्।
स्त्री संविज्ज्ञानसंभाषाक्रियाकाराजिनामसु ॥१६
धर्मे रहस्युपनिषत्स्यादृतौ वत्सरे शरत्।
पदं व्यवसितित्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु ॥१७
त्रिष्विष्टमधुरौ स्वादू मृदू चातीक्ष्णकोमलौ।
सत्ये साधौ विद्यमाने प्रशस्तेऽभ्यर्हिते च सत् ॥१८

प्राधान्य (मुख्यता) राजलिङ्ग (राजाओं के छत्र-चमरादि चिह्न) और बैल के कन्धे के उठे हुए अंग के अर्थ में ककुद शब्द, ज्ञान (विद्या) संभाषा (संभाषण) क्रियाकार (क्रिया के नियम), आजि (युद्ध) और नाम (संज्ञा) के अर्थ में संवित्, शब्द का प्रयोग होता है। धर्म (शास्त्रोक्त कर्म; शुभ पुण्य दान आदि) रहस् (एकान्त) के अर्थ में उपनिषत् शब्द, ऋतु (वसन्तादि) और वत्सर (वर्ष) के अर्थ में शरत् शब्द, व्यवसाय, रक्षण, स्थान, चिह्न, चरण, और वस्तु के अर्थ में पद शब्द का प्रयोग किया जाता है। इच्छित और मधुर अर्थ में स्वादु शब्द, अकठित, और कोमल अर्थ में मृदु शब्द, सत्य, साधु (उत्तम) प्रशस्त एवं अभ्यर्हित (पूजनीय) अर्थ में सत् शब्द का प्रयोग किया जाता है।१६-१८।

विधिर्विधाने दैवेऽपि प्रणिधिः प्रार्थने चरे।
वधूर्जाया स्नुषा स्त्री च सुधा लेपोऽमृतं स्नुही ॥१९
स्पृहा संप्रत्ययः श्रद्धा पंडितम्मन्यगर्वितौ।
ब्रह्मबन्धुरधिक्षेपे भानू रश्मिदिवाकरौ ॥२०

ग्रावाणौ शैलपाषाणौ मूर्खनीचौ पृथग्जनौ ।
तरुशैलौ शिखरिणौ तनुस्त्वग्देहयोरपि ॥२१
आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिः स्वभावो ब्रह्म वर्ष्म च ।
उत्थानं पौरुषे तन्त्रे व्युत्थानं प्रतिरोधने ॥२२

विधान तथा दैव (भाग्य) के अर्थ में विधि शब्द, प्रार्थना (याचना) और चर (जासूस) के अर्थ में प्रणिधि शब्द, जाया (स्त्री) स्नुषा (पुत्रबधू) और स्त्रीमात्र के अर्थ में वधू शब्द तथा लेप (चूना) अमृत (मोक्ष, जल तथा घृत) एवं स्नुही (सेहुँड़) के अर्थ में सुधा शब्द का प्रयोग होता है । संप्रत्यय (आदर-सत्कार) तथा विश्वास एवं स्पृहा (आकांक्षा) के अर्थ में श्रद्धा शब्द, पण्डितम्मन्य (मूर्ख) और गर्वित (अहंकारी) के अर्थ में समुन्नद्ध शब्द, अधिक्षेप (निन्दा) के अर्थ में ब्रह्मबन्धु शब्द तथा रश्मि (किरण) और दिवाकर के अर्थ में भानु शब्द का प्रयोग किया जाता है । शैल (पर्वत) तथा पाषाण (पत्थर) के अर्थ में ग्रावाण शब्द, मूर्ख एवं नीच के अर्थ में पृथग्जन शब्द वृक्ष और पर्वत के अर्थ में शिखरी शब्द और चमड़ी तथा देह के अर्थ में तनु शब्द का प्रयोग होता है । यत्न, धृति, बुद्धि, स्वभाव, ब्रह्म और वर्ष्म (देह) के अर्थ में आत्मा शब्द, पौरुष और तन्त्र (कुटुम्ब के कृत्य) के अर्थ में उत्थान शब्द और प्रतिरोधन (तिरस्कार एवं प्रतिबन्ध) के अर्थ में व्युत्थान शब्द का प्रयोग किया जाता है ।१९-२२।

निर्यातनं वैरशुद्धौ दाने न्यासार्पणेऽपि च ।
व्यसनं विपदि भ्रंशे दोषे कामजकोपजे ॥२३
मृगयाऽक्षो दिवा स्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः ।
तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः ॥२४
पैशू (शु) न्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम् ।
वाग्दण्डश्चैव पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः ॥२५

वैरशुद्धि (वैर के मिटाने), दान और न्यासार्पण (धरोहर के लौटाने) के अर्थ में निर्यातन शब्द, विपत् (विपत्ति) भ्रंश (विनाशन और अधःपतन) कामज (काम द्वारा उत्पन्न) और कोपज (क्रोध द्वारा उत्पन्न मर्मभेदी वाक्य)

के अर्थ में व्यसन शब्द प्रयुक्त होता है। मृगया, अक्ष, दिवा, शयन, परिवाद (निन्दा) स्त्रीभोग, मद, तौर्यत्रिक (नाचना, गाना और बजाना) और वृथाट्या (व्यर्थ घूमना) ये दश दोष काम द्वारा उत्पन्न होते हैं। पैशुन्य (चुगुली) साहस, द्रोह, ईर्ष्या, असूया, (निन्दा) अर्थदोष (व्यर्थ व्यय), वाक्पारुष्य और दण्डपारुष्य ये आठ दोष क्रोध द्वारा उत्पन्न होते हैं।२३-२५।

अकर्मगुह्ये कौपीनं मैथुनं संगतौ रते।
प्रधानं परमार्था धीः प्रज्ञानं बुद्धिचिह्नयोः ॥२६
क्रन्दने रोदनाह्वाने वर्ष्म देहप्रमाणयोः।
आराधनं साधने स्यादवाप्तौ तोषणेऽपि च ॥२७
रत्नं स्वजातिश्रेष्ठेऽपि लक्ष्म चिह्नप्रधानयोः।
कलापो भूषणे बर्हे तूणीरे संहतेऽपि च ॥२८
तल्पं शय्याट्टदारेषु डिम्भौ तु शिशुबालिशौ।
स्तम्भौ स्थूणाजडीभावौ [1]सभ्ये संसदि वै सभा ॥२९

अकार्य और लंगोटी के अर्थ में कौपीन शब्द, संगति तथा रति के अर्थ में मैथुन शब्द, परमात्मा और धी के अर्थ में प्रधान शब्द और बुद्धि तथा चिह्न के अर्थ में प्रज्ञान शब्द प्रयुक्त होता है। रोदन और आह्वान के अर्थ में क्रन्दन, देह एवं प्रमाण अर्थ में वर्ष्म, साधन तथा संतोष के अर्थ में आराधन शब्द का प्रयोग होता है। स्वजाति में श्रेष्ठ होने पर और मणि अर्थ में रत्न शब्द, चिह्न और प्रधान अर्थ में लक्ष्म शब्द, भूषण, मयूरपंख, तरकस और समुदाय तथा काञ्ची के अर्थ में कलाप शब्द का प्रयोग होता है। शय्या, अटारी और स्त्री के अर्थ में तल्प शब्द, शिशु तथा मूर्ख के अर्थ में डिम्भ शब्द खंभा और जड़ता के अर्थ में स्तम्भ शब्द, सभ्य (सामाजिक) और संसद् (परिषद्) के अर्थ में सभा शब्द प्रयुक्त होता है।२६-२९।

किरणप्रग्रहौ रश्मी धर्माः पुण्ययमादयः।
ललामं पुच्छपुण्ड्राश्वभूषाप्राधान्यकेतुषु ॥३०
प्रत्ययोऽधीनशपथज्ञानविश्वासहेतुषु।
समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः ॥३१
अत्ययोऽतिक्रमे कृच्छ्रे सत्यं शपथतथ्ययोः।
वीर्यं बलप्रभावौ च रूप्यं रूपे प्रशस्तके ॥३२

---

१ ख. ग. सत्ये।

किरण और प्रग्रह (घोड़े आदि बांधने की रस्सी) के अर्थ में रश्मि शब्द, पुण्य (सुकृत्) यम (संयम) आदि के अर्थ में धर्म शब्द, पुच्छ (पूछ) पुण्ड्र (घोड़े आदि के भालचित्र वर्ण) (घोड़े का भूषण), प्राधान्य और केतु पताका के अर्थ में ललाम शब्द का प्रयोग होता है। अधीन, शपथ ज्ञान, विश्वास और हेतु (कारण) अर्थ में प्रत्यय शब्द, शपथ आचार (शास्त्रीय काल, सिद्धान्त और संवित् (संभाषा) अर्थ में समय शब्द का प्रयोग होता है। अतिक्रम (उल्लंघन) कृच्छ्र (दु:ख) दोष, दण्ड और आपदा अर्थ में अत्यय शब्द शपथ और तथ्य के अर्थ में सत्य शब्द, बल तथा प्रभाव के अर्थ में वीर्य शब्द और प्रशस्त रूप के अर्थ में रूप्य शब्द प्रयुक्त होता है।३०-३२।

दुरोदरो द्यूतकारे पणो (णे) द्यूते दुरोदरम् ।
महारण्ये दुर्गपथे कान्तार: पुंनपुंसकम् ।।३३

यमानिलेन्द्रचन्द्रार्कविष्णुसिंहादिके हरि: ।
दरोऽस्त्रियां भये श्वभ्रे जठर: कठिनेऽपि च ।।३४

उदारो दातृमहतोरितरस्त्वन्यनीचयो: ।
चूडा किरीटं केशाश्च संयतामौलयस्त्रय: ।। ३५

बलि: करोपहारादौ सैन्यस्थैर्यादिके बलम् ।
स्त्री कटीवस्त्रबन्धेऽपि नीवी परिपणेऽपि च ।।३६

शुक्ले मूषिके श्रेष्ठे सुकृते वृषभे वृष: ।
द्यूताक्षे सारिफलकेऽप्याकर्षोऽथाक्षमिन्द्रिये ।।३७

जुआरी और बाजी के अर्थ में दुरोदर शब्द, जुए के अर्थ में (नपुंसकलिंग) दुरोदर शब्द, महारण्य (घोर जंगल) और दुर्गम मार्ग के अर्थ में (पुंल्लिंग और नपुंसक लिंग में) कान्तार शब्द का प्रयोग होता है। यमराज, पवन, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, विष्णु और सिंह आदि के अर्थ में हरि शब्द, भय और श्वभ्र (गड्ढा) के अर्थ में दर शब्द, कठिन और हीन अर्थ में जठर शब्द का प्रयोग किया जाता है। दाता और महत् (पूज्य) के अर्थ में उदार शब्द, अन्य और नीच के अर्थ में इतर शब्द, चूड़ा (चोटी) मुकुट और संयतकेश (जूड़ा) के अर्थ में मौलि शब्द का प्रयोग होता है। कर (मालगुजारी) तथा उपहार(पूजा सामग्री) के अर्थ में बलि शब्द, सैन्य और स्थैर्यादि के अर्थ में बल शब्द, स्त्री के कटिवस्त्र के बन्धन रूप अर्थ में तथा परिपण मूलधन अथवा बंधक रखने

के अर्थ में नीवी शब्द, शुक्रल (महापराक्रमी) चूहा, श्रेष्ठ, सुकृत (धर्म) और वृषभ (बैल) के अर्थ में वृष शब्द, द्यूत (जुआ) अक्ष (पाशा) शारिफलक (चौपड़) और आकर्षण के अर्थ में आकर्ष शब्द तथा इन्द्रिय अर्थ में नपुंसकलिंग में अक्ष शब्द प्रयुक्त होता है।३३-३७।

नाद्यूताङ्गे च कर्षे च व्यवहारे कलिद्रुमे।
उष्णीषः स्यात्किरीटादौ कर्षूः कुल्याभिधायिनी ॥३८
प्रत्यक्षेऽधिकृतेऽध्यक्षः सूर्यवह्नी विभावसू।
शृङ्गारादौ विषे वीर्ये गुणे रागे द्रवे रसः ॥३९
तेजः पुरीषयोर्वर्च आगः पापापराधयोः।
छन्दः पद्येऽभिलाषे च साधीयान्साधुबाढयोः ॥४०
व्यूहो वृन्देऽप्यहिर्वृत्रेऽप्यग्नीन्द्वर्कास्तमोनुदः ॥४१

पुंलिग होने पर अक्ष शब्द द्यूताङ्ग (जुए के अंग), कर्ष (सोलह मासे का माप) चक्र (रथ का पहिया) व्यवहार (आय-व्यय की चिन्ता) और बहेड़े के वृक्ष के अर्थ में प्रयुक्त होता है। किरीट आदि अर्थ में उष्णीष शब्द और कुल्याभिधायिनी (छोटी नदी) के अर्थ में कर्षू शब्द का प्रयोग होता है। प्रत्यक्ष (द्रष्टा) और अधिकारी के अर्थ में अध्यक्ष शब्द, सूर्य और अग्नि अर्थ में विभावसु शब्द प्रयुक्त होता है। शृङ्गार आदि रस विष, वीर्य, गुण, राग तथा द्रव अर्थ में रस शब्द, तेज और पुरीष (विष्ठा) अर्थ में वर्चस शब्द, उत्सव तथा तेज (प्रताप) अर्थ में महस् शब्द, पाप तथा अपराध के अर्थ में आगस्, शब्द, पद्य और अभिलाषा के अर्थ में छन्दस् शब्द, साधु और बाढ (स्वीकार करने) के अर्थ में साधीयस् शब्द का प्रयोग होता है। वृन्द (समुदाय) अर्थ में व्यूह शब्द वृत्र अर्थ में अहि शब्द, अग्नि, चन्द्र तथा सूर्य के अर्थ में तमोनुद शब्द का प्रयोग किया जाता है।३८-४१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानार्थवर्गनिरूपणं नाम
द्विषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः।३६२

अथ त्रिषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

भूमिवनौषध्यादिवर्गाः

अग्निरुवाच—

वक्ष्ये भूपुराद्रिवनौषधिसिंहादिवर्गकान् ।
भूरनन्ता क्षमा धात्री क्ष्माऽपि कुः स्याद्धरित्यपि ॥१
मृन्मृत्तिका प्रशस्ता तु मृत्स्ना मृत्सा च मृत्तिका ॥

अग्निदेव बोले—अब मैं भू, पुर, पर्वत, वन, ओषधि और सिंह आदि वर्गों का वर्णन कर रहा हूँ। भू के पर्यायवाची हैं अनन्ता, क्षमा, धात्री, क्ष्मा, कु। मृत् और मृत्तिका मिट्टी के अर्थ में और मृत्सा तथा मृत्स्ना अच्छी मिट्टी के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।१-१½।

जगत्त्रिविष्टपं लोकं भुवनं जगती समा ॥२
अयनं वर्त्ममार्गाध्वपन्थानः पदवी सृतिः ।
सरणिः पद्धतिः पद्या वर्तन्येकपदीति च ॥३
पूः स्त्री पुरीनगर्यौ वा पत्तनं पुटभेदनम् ।
स्थानीयं निगमोऽन्यत्तु यन्मूलनगरात्पुरम् ॥४
तच्छाखानगरं वेशो वेश्याजनसमाश्रयः ।
आपणस्तु निषद्यायां विपणिः पण्यवीथिका ॥५
रथ्या प्रतोली विशिखा स्याच्चयो वप्रमस्त्रियाम् ।
प्राकारो वरणः शालः प्राचीरं (नं) प्रान्ततो वृतिः ॥६
भित्तिः स्त्री कुड्यमेडूकं यदन्तर्न्यस्तकीकसम् ॥

जगत्, त्रिविष्टप, लोक, भुवन और जगती शब्द भूतल के अर्थ में, अयन, वर्त्म, मार्ग, अध्वा, (अध्वन्), पन्था, (पथिन्), पदवी, सृति, सरणि, पद्धति, पद्या, वर्तनी और एकपदी शब्द मार्ग के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। स्त्रीलिंग पूर्, पुरी, नगरी और नपुंसक लिंग, पत्तन, पुटभेदन, स्थानीय और निगम नगर के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। मूल नगर (राजधानी) से भिन्न जो पुर होता है, उसे शाखा-नगर या उपनगर कहते हैं। वेश्याओं के निवासस्थान का नाम वेश और वेश्याजनसमाश्रय है। आपण शब्द निषद्या (बाजार, हाट, दुकान) के अर्थ में आता है। विपणि और पण्यवीथिका—ये दो बाजार की गली के नाम

है। रथ्या, प्रतोली और विशिखा—ये शब्द गली तथा नगर के मुख्य मार्ग का बोध कराने वाले है। खाई से निकालकर जमा किये हुए मिट्टी के ढेर को चय और वप्र कहते हैं। वप्र शब्द का केवल स्त्रीलिंग में प्रयोग नहीं होता। प्राकार, वरण, शाल और प्राचीर— ये नगर के चारों ओर बने हुए (चहारदीवारी) के नाम हैं। भित्ति और कुड्य—ये दीवार के वाचक है। भित्ति शब्द स्त्रीलिंग है। एडूक ऐसी दीवार को कहते है, जिसके भीतर हड्डी लगायी गई हो।२-६½।

वासः कुटी द्वयोः शाला सभा संजवनं त्विदम् ॥७
चतुःशालं मुनीनां तु पर्णशालोटजोऽस्त्रियाम् ।
चैत्यमायतनं तुल्ये वाजिशाला तु मन्दुरा ॥८
हर्म्यादि धनिनां वास· प्रासादो देवभूभुजाम् ।
स्त्री द्वार्द्वारं प्रतीहारः स्याद्वितर्दिस्तु वेदिका ॥९
कपोतपालिकायां तु विटङ्कंपुंनपुंसकम् ।
कपाटमररं तुल्ये निःश्रेणिस्त्वधिरोहि (ह) णी ॥१०
संमार्जनी शोधनी स्यात्संकरोऽवकरस्तथा ॥

वास और कुटी पर्यायवाचक हैं। शाला और सभा भी पर्यायवाचक हैं। चार शालाओं युक्त गृह को संजवन कहते है। पर्णशाला और उटज मुनियों की झोपड़ी के अर्थ में और वाजिशाला तथा मन्दुरा अश्वशाला के अर्थ में प्रयुक्त होते है। हर्म्य आदि धनिकों के घर के अर्थ में, प्रासाद, देवालय राजमहल के अर्थ में, द्वार और प्रतीहार दरवाजे के अर्थ में, वितर्दि और वेदिका वेदी या चबूतरे के अर्थ में, कपोतपालिका तथा विटङ्क कबूतर के दरबे के अर्थ में, कपाट एवं अरर किवाड़ के अर्थ में, निःश्रेणि और अधिरोहणी काठ की सीढ़ी के अर्थ में संमार्जनी तथा शोधनी झाड़ू के अर्थ मे और संकर अवकर तथा अवकार कूड़ा-करकट के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।७-१०½।

अद्रिगोत्रगिरिग्रावा गहनं काननं वनम् ॥११
आरामः स्यादुपवनं कृत्रिमं वनमेष (व) यत् ।
स्यादेतदेव प्रमदवनमन्तः पुरोचितम् ॥१२
वीथ्यालिरावलिः पङ्क्तिश्रेणीलेखास्तु राजयः ।
वानस्पत्यः फलैः पुष्पात्तैरपुष्पाद्वनस्पतिः ॥१३
[1]ओषध्यः फलपाकान्ताः पलाशी द्रुद्रुमागमाः ।

१ ख. ग. ओषधिः ।

स्थाणुर्वा ना ध्रुवः शङ्कुः प्रफुल्लोत्फुल्लसंस्फुटाः ॥१४

अद्रि, गोत्र, गिरि और ग्राव पर्वत के अर्थ में, गहन, कानन और वन जंगल के अर्थ में, आराम, उपवन बगीचे के अर्थ में और प्रमदवन स्त्रियों के उद्यान के अर्थ में प्रयुक्त होते है। वीथी, आलि, आवालि, पंक्ति, श्रेणी, लेखा और राजि पंक्ति या रेखा के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, वानस्पत्य, फल, पुष्प, युक्त वृक्ष के अर्थ में और फल पुष्प रहित वृक्ष के अर्थ में वनस्पति शब्द का प्रयोग होता है। ओषधि पके फल समेत वृक्ष के अर्थ में, पलाशी, द्रु, द्रुम और अगम पेड़ के अर्थ में, स्थाणु, ध्रुव और शङ्कु शाख, पत्ते रहित वृक्ष के अर्थ में, प्रफुल्ल, उत्फुल्ल, और संस्फुट फूले हुए वृक्ष के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।११-१४।

पलाशं छदनं [1]पर्णमिध्ममेधः समित्स्त्रियाम्।
बोधिद्रुमश्चलदलो दधित्थग्राहिमन्मथाः ॥१५
तस्मिन्दधिफलः पुष्पफलदन्तशठावपि।
उदुम्बरे हेमदुग्धः कोविदारे द्विपत्रकः ॥१६
सप्तपर्णो विशालत्वक्कृतमालं (लः) सुवर्णकः।
आरेवतव्याधिघातसंपातचतुरङ्गुलाः ॥१७
स्याज्जम्वीरे दन्तशठो वरुणं [2]तिक्तशाककः।
पुंनागे पुरुषस्तुङ्गः केशरो देववल्लभः ॥१८
पारिभद्रे निम्वतरुर्मन्दारः पारिजातकः।
वञ्जुलश्चित्रकृच्चाथ द्वौ पीतनकपीतनौ ॥१९
आम्रातके मधूके तु गुडपुष्पमधुद्रुमौ।

पलाश, छदन और पर्ण पत्ते के अर्थ में, इध्म, एधस् और समिध् अग्नि को प्रज्वलित करने वाले काठ या तृण के अर्थ में, बोधिद्रुम और चलदल पीपल के वृक्ष के अर्थ में, दधित्थ, ग्राही, दधिफल, पुष्पफल और दन्तशठ कैथ के अर्थ में, उदुम्बर और हेमदुग्ध गूलर के अर्थ में, कोविदार और द्विपत्रक कचनार के अर्थ में, सप्तपर्ण और विशालत्वक् छितवन वृक्ष के अर्थ में, कृतमाल, सुवर्णक आरेवत और व्याधिघात, संपाक और चतुरङ्गुल—ये सभी शब्द सोनालु अथवा घनवेहड़ा के वाचक हैं। जम्वीर और दन्तशठ जमीरी नीबू के

१ ख. ग. पत्रमि॰। २ क. ङ. छ. ॰शावकः।

अर्थ में, तिक्तशाक वरुण या वरण के अर्थ में, पुरुषतुङ्ग केशर और देववल्लभ पुंनाग (नागकेशर) के अर्थ में, निम्बतरु, पारिभद्र (नीव) के अर्थ में, मन्दार और पारिजात मदार के अर्थ में, वञ्जुल और चित्रकृत् शीशम जाति के वृक्ष विशेष के अर्थ में, पीतन और कपीतन आमड़ा के अर्थ में, गुड़पुष्प और मधुद्रुम मधूक (महुवे) के अर्थ में प्रयुक्त होता है।१५-१९½।

पीलौ गुडफलः स्रंसी नादेयी चाम्बुवेतसः ।।२०
[1]शोभाञ्जने शिग्रुतीक्ष्णगन्धकाक्षीरमोचकाः ।
रक्तोऽसौ मधुशिग्रुः स्यादरिष्टः फेनिलः समौ ।।२१
गालवः शावरो [2]लोध्रस्तिरीटस्तिल्वमार्जनौ ।
शेलुः श्लेष्मातकः शीत उद्दालो वहुवारकः ।।२२
[3]वैकङ्कतः स्रुवावृक्षो ग्रन्थिलो व्याघ्रपादपि ।
तिन्दुकः स्फूर्जकः कालो नादेयी [4]भूमिजम्बुका ।।२३
काकतिन्दौ पीलुकः स्यात्पाटलिर्मोक्षमुष्ककौ ।
क्रमुकः पट्टिकाख्यः स्यात्कुम्भी कैडर्यकट्फले ।।२४
वीरवृक्षोऽरुष्करोऽग्निमुखी भल्लातकी त्रिषु ।
सर्जकासनजीवाश्च पीतसालेऽथ मालके ।।२५

गुडफल और स्रंसी पीलू के अर्थ में, नादेयी जलवेत के अर्थ में, शिग्रु, तीक्ष्णगन्धक, आक्षीव और मोचक शोभाञ्जन (सहिजन) के अर्थ में, मधुशिग्रु लालसहिजन के अर्थ में, अरिष्ट और फेनिल रीठा के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। गालव, शावर, लोध्र, तिरीट, तिल्व और मार्जन लोध्र के अर्थ में, शेलु, श्लेष्मातक, शीत, उद्दाल और वहुवारक लसोड़े के अर्थ में, विकङ्कत स्रुवावृक्ष, ग्रन्थिल और व्याघ्रपाद् कटाय वृक्ष के अर्थ में, तिन्दुक और स्फूर्जक तेंदुआ के अर्थ में नादेयी और भूमिजम्बुक नारंगी के अर्थ में, काकतिन्दुक और (काक) पीलुक कड़ुआ तेंदुआ के अर्थ में, पाटलि और मोक्ष तथा मुष्कक काली पाटरि के अर्थ में, क्रमुक और पट्टिकाख्य लाल लोघ के अर्थ में, कुम्भी, कैटर्य और फट्फल कायफल के अर्थ में, वीरवृक्ष, अरुष्कर, अग्निमुखी और भल्लातकी भिलावा के अर्थ में, सर्जक, असन और जीव सखुआ के अर्थ में, सर्ज और अश्वकर्ण, साल के अर्थ में किया जाता है।२०-२५।

---

१ ख. ग. सौभाञ्जने। २ ख. ॅस्तिलकार्जुनौ। ३ ख. विकङ्कतः। ४ क. ङ. छ. ॅम्बुकः। क्रा॰।

सर्जश्विकर्णौ वीरेन्द्राविन्द्रद्रुः ककुभोऽर्जुनः ।
इङ्गुदी तापसतरुर्मोचा शाल्मलिरेव च ।।२६
चिरविल्वो नक्तमालः करजश्च करञ्जके ।
प्रकीर्यः पूतिकरजो मर्कट्यङ्गारवल्लरी ।।२७
रोही रोहितकः प्लीहशत्रुर्दाडिमपुष्पकः ।
गायत्री वालतनयः खदिरो दन्तधावनः ।।२८

वीरतरु, इन्द्रद्रु, ककुभ और अर्जुन अर्जुनवृक्ष के अर्थ में, इङ्गुदी और तापसतरु गोंदी के अर्थ में, मोचा और शाल्मलि सेमर के अर्थ में, चिरविल्व, नक्तमाल, करज और करञ्जक कंजा के अर्थ में, प्रकीर्य और पूतिकरज काटेदार कंजे के अर्थ में, मर्कटी, अङ्गारवल्लरी कंजे के भेदविशेष के अर्थ में, रोही, रोहितक, प्लीहशत्रु और दाडिम-पुष्पक लालकजे के अर्थ में, गायत्री, वालतनय, खदिर और दन्तधावन खैर या कत्था के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। २६-२८।

अरिमेदो विट्खदिरे कदरः खदिरे सिते ।
पञ्चाङ्गुलो वर्धमानश्चञ्चुर्गन्धर्वहस्तकः ।।२९
पिण्डीतको मरुवकः पीतदारु च दारु च ।
देवदारुः पूतिकाष्ठं श्यामा तु महिलाह्वया ।।३०
लता गोवन्दनी गुन्द्रा प्रियंगुः फलिनी फली ।
मण्डूकपर्णपत्त्रोर्णनटकट्वङ्गटुण्टुकाः ।।३१
श्योनाकशुकनासर्क्षदीर्घवृन्तकुटन्नटाः ।
पीतद्रुः सरलश्चाथ निचुलोऽम्बुज इज्जलः ।।३२
काकोदुम्वरिका फल्गुररिष्टः पिचुमर्दकः ।
सर्वतोभद्रको निम्वे शिरीषस्तु कपीतनः ।।३३

अरिभेद और विट्खदिर दुर्गन्धवाले खैर के अर्थ में, पञ्चाङ्गुल, वर्धमान और चञ्चु रेड़ वृक्ष के अर्थ में, गन्धर्वहस्तक श्वेतकत्था के अर्थ में, पिण्डीतक और मरुवक मैनफल के अर्थ में, पीतदारु, दारु और पूतिकाष्ठ देवदारु के अर्थ में, श्यामा, महिलाह्वया, लावा, गोवन्दिनी, गुन्द्रा, प्रियंगु, फलिनी और फली

काकुनि के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। मण्डूकपर्ण, पत्रोर्ण, नट, कट्वङ्ग, टुण्टुक, सरिवन के अर्थ में, श्योनाक, शुकनास, ऋक्ष, दीर्घवृन्त और कुटन्नट सोनापाठा के अर्थ में, पीतद्रु और सरल, सरलवृक्ष के अर्थ में, निचुल अम्बुज और इज्जल वेंत के अर्थ में, काकोदुम्बरिका और फल्गु कठूवरि के अर्थ में, अरिष्ट पिचुमर्दक और सर्वतोभद्र नीम के अर्थ में, शिरीष और कपीतन शिरसा के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।२९-३३।

वकुलो वञ्जुलः प्रोक्तः पिच्छिलागुर्रुशिंशपाः।
जया जयन्ती तर्कारी कणिका गणिकारिका ॥३४
श्रीपर्णमग्निमन्थः स्याद्वत्सको गिरिमल्लिका।
कालस्कन्दस्तमालः [1]स्यात्तण्डुलीयोऽल्पमारिषः ॥३५
सिन्धुवारस्तु [2]निर्गुण्डी सैवाऽऽस्फीता (स्फोटा) वनोद्भवा।
[3]गणिका यूथिकाऽम्बष्ठा सप्तला [4]नवमालिका ॥३६
अतिमुक्तः पुण्ड्रकः स्यात्कुमारी तरणिः सहा।
तत्र शोणे कुरवकस्तत्र पीते कुरण्टकः ॥३७
नीला झिण्टी द्वयोर्बाणा झिण्टी सैरीयकस्तथा।
तस्मिन्रक्ते कुरवकः पीते सहचरी द्वयोः ॥३८
[5]धुस्तूरः कितवो धूर्तो रुचको मातुलुङ्गके।
समीरणो मरुवकः प्रस्थपुष्पः फणिज्जकः ॥३९
[6]कुठेरकस्तु[7] पर्णासेऽथास्फीतो वसुकार्कके।
शिवमल्ली पाशुपती वृन्दा वृक्षादनी तथा ॥४०
जीवन्तिका वृक्षरुहा गुडूची तन्त्रिकाऽमृता।
सोमवल्ली मधुपर्णी मूर्वा तु मोरटी तथा ।४१

वकुल और वञ्जुल मौलिश्री के अर्थ में, पिच्छिला, अगुरु और शिंशपा शीशम के अर्थ में, जया, जयन्ती और तर्कारी ये जैंत वृक्ष के अर्थ में, कणिका, गणिकारिका, श्रीपर्ण और अग्निमन्थ अरणी के अर्थ में, वत्सक और गिरिमल्लिका कुरैया के अर्थ में, कालस्कन्द और तमाल ताड़ के अर्थ में,

---

१ क. ङ. छ. °त्तन्दुली°। २ ख. ग. °ण्डी तीव्रस्फोटा व°। ३ ख. ग. गलिका। ४ ख. नवमल्लिका। ५ ख. धत्तूरः। ६ ख. कुवेर°। ७ ख. °स्तु कर्णा शेखा स्तोतो।

सिन्धुवार और निर्गुण्डी म्योड़ी के अर्थ में, स्फीता अथवा स्फोट और वनोद्भवा जंगली वेला के अर्थ में, गणिका, यूथिका और अम्बष्ठा जूही के अर्थ में, सप्तला और नवमालिका वर्षा की बेल के अर्थ में प्रयुक्त होते है। अतिमुक्तक और पुण्ड्रक मालती लता के अर्थ में, कुमारी, तरणि, और सहा कटसरैया के अर्थ में, लालकटसरैया के अर्थ में कुरवक और पीली कटसरैया के अर्थ में कुरण्टक शब्द प्रयुक्त होता है। नीलझिण्टी के अर्थ में वाणा, साधारण में सैरीयक तथा झिण्टी शब्दों का प्रयोग किया जाता है। रक्तझिण्टी के अर्थ में कुरबक और पीली झिण्टी के अर्थ में सहचरी शब्द प्रयुक्त होते हैं। धत्तूर, कितव और धूर्त धतूरे के अर्थ में, रुचक और मातुलुङ्गक, विजौरा नीबू के अर्थ में, समीरण, मरुवक, प्रस्थपुष्प और फणिज्जक मरुआवृक्ष के अर्थ में, कुठेरक पलाश के अर्थ में, आस्फीत वसुक और अर्कक मदार के अर्थ में, शिवमल्ली और पाशुपत अर्जुन वृक्ष के अर्थ में, वृन्दा, वृक्षादनी, जीवन्तिका और वृक्षरुहा वाँदा के अर्थ में, गुडूची, तन्त्रिका, अमृता, सोमवल्ली और मधुपर्णी गिलोय या गुर्च के अर्थ में, मूर्वा, मोरटी और मूर्वा, मरोड़फकी के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।३४-४१।

मधूलिका मधुश्रेणी गोकर्णी पीलुपर्ण्यपि।
पाठाऽम्बष्ठा विद्धकर्णी प्राचीना वनतिक्तिका ॥४२
कटुः कटंभरा चाथ चक्राङ्गी शकुलादनी।
आत्मगुप्ता [1]प्रावृषायी कपिकच्छुश्च मर्कटी ॥४३
अपामार्गः शैखरिकः प्रत्यक्पर्णी मयूरकः।
[2]फञ्जिका ब्राह्मणी भार्गी द्रवन्ती शम्बरी वृषा ॥४४

मधूलिका, मधुश्रेणी, गोकर्णी और पीलुपर्णी चिनार के अर्थ में, पाठा, अम्बष्टा, विद्धकर्णी, प्राचीना और वनतिक्तिका पाढरि के अर्थ में, कटु, कटम्भरा, चक्राङ्गी और शकुलादनी कुटकी के अर्थ में, आत्मगुप्ता, प्रावृषायी, कपिकच्छु और मर्कटी केवांच के अर्थ में, फञ्जिका, ब्राह्मणी और भार्गीभंगरैया के अर्थ में, द्रवन्ती, शम्बरी और वृषा मूसाकानी के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।४२-४४।

---

१ ख. ग. प्रावृषायणी। २ ख. ग. कञ्जिका।

मण्डूकपर्णी भण्डीरी समङ्गा कालमेषिका ।
रोदनी कच्छुराऽनन्ता समुद्रान्ता दुरालभा ॥४५
पृश्निपर्णी पृथक्पर्णी [1]कलशिर्धावनिर्गुहा ।
निदिग्धिका स्पृशी व्याघ्री क्षुद्रा दुस्पर्शया सह ।४६
अवल्गुजः सोमराजी सुवल्लिः सोमवल्लिका ।
कालमेषी कृष्णफला वाकुची [2]पूतिफल्यपि ॥४७

मण्डूकपर्णी, भण्डीरी, समङ्गा और कालमेषिका मंजीठ के अर्थ में, रोदनी, कच्छुरा, अनन्ता, समुद्रान्ता और दुरालभा अनन्तमूल के अर्थ में, पृश्निपर्णी, पृथक्पर्णी, कलशि, धावनि और गुहा पिठवनी के अर्थ में, निदिग्धिका, स्पृशी, व्याघ्री, क्षुद्रा और दुःस्पर्शा भटकटैया के अर्थ में, अवल्गुज, सोमराजी, सुवल्लि, सोमवल्लिका, कालमेषी, कृष्णफला, वाकुची और पूतिफली बकुची के अर्थ में होते हैं ।४५-४७।

कणोषणोपकुल्या स्याच्छ्रेयसी गजपिप्पली ।
चव्यं तु चविका [3]काकचिञ्ची गुञ्जे तु कृष्णला ॥४८
विश्वा विषा प्रतिविषा वनशृङ्गाटगोक्षुरौ ।
नारायणी शतमूली कालेयकहरिद्रवः ॥४६
दार्वी पचंपचा दारु शुक्ला हैमवती वचा ।
वचोग्रगन्धा षड्ग्रन्था गोलोमी शतपर्विका ॥५०
[4]आस्फोता गिरिकर्णी स्यात्सिहास्यो वासको वृषः ।
मिशी मधुरिका छत्रा कोकिलाक्षेक्षुरक्षुरा ॥५१
विडङ्गोऽस्त्री कृमिघ्नः [5]स्याद्वज्रदुः स्नुक्स्नुही सुधा ।
मृद्वीका गोस्तनी द्राक्षा वला वाट्यालकस्तथा ॥५२
काला मसूरविदला त्रिपुटा त्रिवृता त्रिवृत् ।
मधुकं क्लीतकं [6]यष्टिमधुका मधुयष्टिका ॥५३

---

१ ख. ग. °लशी धावनी गुहा । २ ख. ग. °तिपर्ण्यपि । ३ ख. ग. °कबिम्बी गु° । ४ क. ख. ग. ङ. °स्फोटा गिरिमल्ली स्या° । ५ क. ङ. °ज्रद्रुस्तु गृहा गुहा । मृ° । ख. ग. °ज्रद्रुस्तु स्नु° । ६ क. ख. ङ. °ष्टिकाराख्या कारवी स्मृता । वि° ।

कणा, उषणा और उपकुल्या गजपीपरि के अर्थ में, श्रेयसी और गज-पिप्पली छोटी पीपरि के अर्थ में, चव्य चविका, काकचिञ्ची, गुञ्जा, कृष्णला घुंघुची के अर्थ में, विश्वा, विषा, और प्रतिविषा अतसी के अर्थ में वनशृङ्गार और गोक्षुर गोखुरु के अर्थ में, शतमूली सतावरि के अर्थ में, नारायणी, कालेयक, हरिद्रु, दार्वी, पंचपचा और दाह दारुहल्दी के अर्थ में, शुक्ला और हैमवती सफेद वच के अर्थ में तथा वचोग्रगन्धा, षड्ग्रन्था, गोलोमी और शतपर्विका खुरासानी वच के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। आस्फोता और गिरिकर्णी, विष्णुक्रान्ता के अर्थ में, सिंहास्य, वासक और वृष रुसा के अर्थ में, मिशी, मधुरिका और छत्रा सौंफ के अर्थ में, कोकिलाक्ष, इक्षुर और क्षुर तालमखाना के अर्थ में, विडङ्ग और कृमिघ्न वायविडङ्ग के अर्थ में, मृद्वीका, गोस्तनी और द्राक्षा किसमिस (छोहारा) के अर्थ में, बला और वाट्यालक वरियारा के अर्थ में, काला और मसूरविदला कालानिसोत के अर्थ में, त्रिपुटा और त्रिवृता त्रिवृत् निसोत के अर्थ में, मधुक, क्लीतक, यष्टिमधुका और मधुयष्टिका मुलेठी के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।४८-५३।

विदारी क्षीरशुक्लेक्षुगन्धा क्रोष्ट्री च या सिता।
गोपी श्यामा शारिवा स्यादनन्तोत्पलशारिवा ॥५४
मोचा रम्भा च कदली भण्टाकी [1]दुष्प्रधर्षिणी।
स्थिरा ध्रुवा [2]सालपर्णी शृङ्गी तु वृषभो वृषः ॥५५
गाङ्गेरुकी [3]नागवला मुषली तालमूलिका।
ज्यो (ज्यौ) त्स्नी पटोलिका जाली अजशृङ्गी विषाणिका ॥५६
स्याल्लाङ्गलिक्यग्निशिखा ताम्बूली [4]नागवल्ल्यपि।
हरेणू रेणुका कौन्ती[5] ह्रीबेरी दिव्यनागरम् ॥५७
कालानुसार्यवृद्धाश्मपुष्पशीतशिवानि तु।
शैलेयं तालपर्णी तु दैत्या गन्धकु (पु) टी मुरा ॥५८

विदारी, क्षीरशुक्ला, इक्षुगन्धा और क्रोष्ट्री भूमि में होने वाले सफेद कुम्हड़े के अर्थ में, गोपी, श्यामा, शारिवा, अनन्त और उत्पल शारिवा

---

१ ख. °धर्षणी। २ ख. ग. शालपर्णी। ३ क. ङ. °गवल्ली सुखताला चमू°। ४ ख. ग. °गपर्ण्यपि। ५ क. ङ. °न्ती हृरीवेदोदीव्यबालकम्। ख. °न्ती क्लीबेरोदीव्यवालकम्।

प्रियंगुलता के अर्थ में, मोचा, रम्भा और कदली केला के अर्थ में, भण्टाकी और दुष्प्रधर्षिणी वैगन के अर्थ में, स्थिरा, ध्रुवा, सालपर्णी सरिवन के अर्थ में, शृङ्गी, वृषभ और वृषन काकड़ासिंगी के अर्थ में, गाङ्गेरुकी और नागबला ककड़ी के अर्थ में, मुसली और तालमूलिका मुसली के अर्थ में, ज्यो (ज्यौ) त्स्नी पटोलिका और जाली चचेड़ा के अर्थ में, अजशृङ्गी और विषाणिका मेढ़ासिंगी के अर्थ में, लाङ्गलिकी और अग्निशिखा कलिहारी के अर्थ मे, ताम्बूली और नागवल्ली पान के अर्थ में; हरेणू रेणुका और कौन्ती गगनधूरि के अर्थ में, ह्रीवेरी और दिव्य नागर नेत्रबाला के अर्थ में, कालानुसार्य; वृद्ध, अश्मपुष्प, शीतशिव और शिलाजीत के अर्थ में, शैलेय, तालपर्णी, दैत्या, शैलेयथ गन्धकुटी और मुरा तालीसपत्र के अर्थ में प्रयुक्त होता है ।५४-५८।

ग्रन्थिपर्णं शुकं [1]बर्हि वला तु त्रिपटा त्रुटिः ।
शिवा तामलकी चाथ हनुर्हट्टविलासिनी ।।५९
कुटं नटं द (दा) शपुरं [2]वानेयं परिपेलवम् ।
तपस्विनी जटामांसी पृक्का देवी लता लशूः[3] ।।६०
कर्चूरको द्राविडको गन्धमूली शठी स्मृता ।
स्यादृक्षगन्धा [4]छगलान्त्रा वेगी वृद्धदारकः ६१
तुण्डिकेरी रक्तफला बिम्बिका पीलुपर्ण्यपि ।
चाङ्गेरी चुक्रोऽम्बष्ठा स्वर्णक्षीरी हिमावती ।।६२
सहस्रवेधी चुक्रोऽम्लवेतसः शतवेध्यपि ।
जीवन्ती जीवनी जीवा भूमिनिम्बः किरातकः ।।६३

ग्रन्थिपर्ण, शुक और वर्हि गठिवन के अर्थ में, त्रिपुटा और त्रुटि छोटी इलायची के अर्थ में, शिवा और तामलकी भूमि आंवले के अर्थ मे, हनु और हट्टविलासिनी नखी नामक गन्धद्रव्य के अर्थ में, कुटन्नट, दाशपुर, वानेय, परिपेलव और मोथा के अर्थ में, तपस्विनी जटामांसी के अर्थ में, पक्का, देवी, लता, लशू, असवरग के अर्थ में, कर्चूरक और द्राविड़क कचूर के अर्थ में, गन्धमूली धतूरे के अर्थ में, ऋक्षगन्धा, छगलान्त्रा, वेगी और वृद्धदारक विधारा के अर्थ में प्रयुक्त होते है । तुण्डिकेरी, रक्तफला विम्बिका और पीलुपर्णी

१ ख. ग. °हिरेला । २ क. ख. ङ. वालेयं । ३ ख. ग. लघुः । ४ ख. ग. °ला आवेदी गन्धदा° ।

कुंदरू के अर्थ में, चाङ्गेरी, चूक्रिका, और अम्बष्ठा अम्लोनिया के अर्थ में, स्वर्णक्षीरी और हिमावती मकोय के अर्थ में, सहस्रवेधी, चुक्र, अम्लवेतस और शतवेधी अमलवेत के अर्थ में, जीवन्ती, जीवनी और जीवा जीवन्ती के अर्थ में, भूमिनिम्ब और किरातक चिरायता के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।५६-६३।

कूर्चशीर्षो मधुकर (रक) श्चन्द्रः [1]कपिवृकस्तथा ।
दद्रुघ्नः स्यादेडगजो वर्षाभूः शोथहारिणी ॥६४
[2]कुनन्दती निकुम्भस्त्रा यमानी वार्षिका तथा ।
लशुनं गृञ्जनारिष्टमहाकन्दरसोनकाः ॥६५
वाराही [3]वरदा गृष्टिः काकमाची तु वायसी ।
शतपुष्पा सितच्छत्राऽतिच्छत्रा मधुरा मिसिः ॥६६
अवाक्पुष्पी कारवी च सरणा तु [4]प्रसारणी ।
[5]कटंभरा भद्रवला कर्बूरश्च शटी ह्यथ ॥६७
पटोलः कुलकस्तिक्तः कारवेल्लः कटिल्लकः ।
कूष्माण्डकस्तु [6]कर्कारुरिर्वारुः कर्कटी स्त्रियौ ॥६८
इक्ष्वाकुः कुटुतुम्वी स्याद्विशाला त्विन्द्रवारुणी ।
अर्शोघ्नः सूरणः कन्दो मुस्तकः कुरुविन्दकः ॥६९
वंशे त्वक्सारकर्मारवेणुमस्करतेजनाः ।
छत्रातिच्छत्रपालघ्नौ मालातृणकभूस्तृणे ॥७०
तृणराजाह्वयस्तालो घोण्टा क्रमुकपूगकौ ।

कूर्चशीर्ष और मधुरक जीवक के अर्थ में, चन्द्र और कपिवृक कबीला के अर्थ में, दद्रुघ्न और एडगज चकवड़ के अर्थ में, वर्षाभू, शोथहारिणी,—कुनन्दती, निकुम्भस्त्रा, यमानी, वार्षिका—लशुन, गृञ्जन, अरिष्ट, महाकन्द और रसोनक लहसुन के अर्थ में, वाराही, वदरा और गृष्टि विलाईकन्द के अर्थ में, काकमाची और वायसी काकजंघा के अर्थ में, शतपुष्पा, सितच्छत्रा, अतिच्छत्रा, मधुरा और मिसी सौंफ के अर्थ में, अवाक्पुष्पी, कारवी, सरणा,

१ ख. ग. °न्द्रः कम्पिल्वकस्त° । २ "कुनन्दती……तथा" इत्यत्र "सकुलदन्ती निगतस्त्रायमाना कर्षिकास्तथा" इति क. ङ. पुस्तकयोः वर्तते । ३ ख. वदरी । ४ ख. ग. °सारिणी । ५ ख. ग. कटुंभरा । ६ क. ङ. °रुर्वा° ।

और प्रसारिणी या लता के अर्थ मे, कटभरा और भद्रवला कूवड़ीलता के अर्थ में, कर्चूर और शटी आमाहल्दी के अर्थ मे, पटोल, कुलक तिक्त परवल के अर्थ में, कारवेल्ल और कटिल्लक करेला के अर्थ में, कूष्माण्डक और कर्कारु कुम्हड़े के अर्थ में, उर्वारुक और कर्कटी ककड़ी के अर्थ में, इक्ष्वाकु और कटुतुम्बी कड़वी लौकी के अर्थ में, विशाला और इन्द्रवारुणी इन्द्रायनि के अर्थ में, अर्शोघ्न, सूरण, और कन्द जिमीकन्द के अर्थ में, मुस्तक और कुरुविन्दक मोथा के अर्थ मे, त्वक्सार, कर्मार, वेणु, मस्कर और तेजन बांस के अर्थ में, छत्र, अतिच्छत्र और पालघ्न पानी में उत्पन्न होने वाला तृण के अर्थ में, माला, तृणक और भूस्तृण नये तृण के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। तृणराज ताड़ के अर्थ में, घोण्टा, क्रमुक और पूग सुपारी के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।६४-७०१/२।

शार्दूलद्वीपिनौ व्याघ्रे हर्यक्षः [1]केशरी हरिः ॥७१
कोलः पोत्री वराहः स्यात्कोक ईहामृगो वृकः ।
लूतोर्णनाभौ तु समौ तन्तुवायश्च मर्कटे ॥७२
वृश्चिकः शूककीटः स्यात्सारङ्गस्तोककौ समौ ।
कृकवाकुस्ताम्रचूडः पिकः कोकिल इत्यपि ॥७३
काके तु करटारिष्टौ व (व) कः [2]कह्व उदाहृतः ।
कोकश्चक्रश्चक्रवाकः कादम्वः कलहंसकः ॥७४
पतङ्गिका पुत्तिका स्यात्सरघा मधुमक्षिका ।
द्विरेफपुष्पलिड्भृङ्गषट्पदभ्रमरालयः ॥७५

शार्दूल और द्वीपी व्याघ्र के अर्थ में, हर्यक्ष, केसरी और हरि सिंह के अर्थ में, कोल, पोत्री, और वराह सुअर के अर्थ में, कोक, ईहामृग ओर वृक भेड़िया के अर्थ में, लूता उर्णनाभ, तन्तुवाय और मर्कट मकड़ी के अर्थ में, वृश्चिक ओर शूककीट विच्छू के अर्थ में, सारङ्ग और स्तोकक पपीहा के अर्थ में, कृकवाकु ताम्रचूड़ मुर्गा के अर्थ से, पिक और कोकिल कोयल के अर्थ में, करट और अरिष्ट कौवे के अर्थ में, वक और कह्व वकुला के अर्थ में, कोक और चक्रवाक चकवा के अर्थ मे, कादम्व और कलहंस वत्तख के अर्थ में, पतङ्गिका और पुत्तिका पांखी के अर्थ में, सरघा और मधुमक्षिका मधुमक्खी के अर्थ में, द्विरेफ,

१ ख. ग. केसरी । २ क. ख. कङ्क ।

पुष्पलिड्, भृङ्ग, षट्पद, भ्रमर और अलि भँवरे के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।७१-७५।

केकी शिखयस्य वाक्केका शकुन्तिशकुनिद्विजाः ।
स्त्री पक्षतिः [1]पक्षमूलं चञ्चुस्तोटिरुभे स्त्रियौ ॥७६
गतिरुड्डीनसण्डीनौ कुलायो नोडमस्त्रियाम् ।
पेषी (शी) कोषो द्विहीनेऽण्डं पृथुकः शावकः शिशुः ॥७७
पोतः पाकोऽर्भको डिम्भः संदोहव्यूहकौ गणः ।
स्तोमौघनिकरव्राता निकुरम्बं कदम्बकम् ॥
संघातसंचयौ वृन्दं पुञ्जराशी तु कूटकम् ॥७८

केकी और शिखी मोर के अर्थ में, शकुन्ति, शकुनि और द्विज पक्षी मात्र के अर्थ में, पक्षति, पक्षमूल, चञ्चु और तोटि, चोंच के अर्थ में, उड्डीन और सण्डीन उड़ने के अर्थ में, कुलाय और नीड घोंसले के अर्थ में, पेशीकोष, और द्विहीन अण्डे के अर्थ में, पृथुक, शावक, शिशु, पोत, पाक, अर्भक और डिम्भ बच्चे के अर्थ में, सदोह, व्यूह; गण, सोम, ओघ, निकर, व्रात, निकुरम्ब, कदम्बक, संघात, संचय और वृन्द समूह के अर्थ में; पुञ्ज, राशि और कूट अनाज की ढेरी के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।७६-७८।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये भूमिवनौषध्यादिवर्गनिरूपणं नाम त्रिषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।३६३

अथ चतुःषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नृब्रह्मक्षत्रविट्शूद्रवर्गाः

अग्निरुवाच —

नृब्रह्मक्षत्रविट्शूद्रवर्गान्वक्ष्येऽथ नामतः ।
नरः पञ्चजना मर्त्या योषिद्योषाऽवला वधूः ॥१

---

१ छ. °लं लञ्चुं ।

कान्तार्थिनी तु या याति संकेत साऽभिसारिका ।
कुलटा पुंश्चल्यसती नग्निका स्त्री च कोटवी ॥२
कात्यायन्यर्धवृद्धा या सैरन्ध्री परवेश्मगा ।
असिक्नी स्यादवृद्धा या मालिनी तु रजस्वला ॥३
वारस्त्री गणिका वेश्या भ्रातृजायास्तु यातरः ।
ननन्दा तु स्वसा पत्युः सपिण्ड (ण्डा) स्तु सनाभयः ॥४

अग्निदेव बोले—अब मैं मनुष्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्गों का वर्णन उनके नामानुसार कर रहा हूँ। नर, पञ्चजन, मर्त्य और मनुष्य पुरुषमात्र के अर्थ में, योषित्, योषा, अबला और वधू स्त्रीभाव के अर्थ में, परपुरुषार्थ, संकेत स्थान जाने वाली स्त्री को अभिसारिका कहा जाता है। कुलटा, पुंश्चली, और असती व्यभिचारिणी के अर्थ में, नग्निका और कोटवी नग्नस्त्री के अर्थ में, कात्यायनी अर्धवृद्धी के अर्थ में, सैरन्ध्री दासी के अर्थ में, असिक्नी युवती दासी के अर्थ में, मालिनी रजस्वला के अर्थ में, वारस्त्री और गणिका वेश्या के अर्थ में, याता, देवरानी या जेठानी के अर्थ में, ननन्दा पति की वहिन के अर्थ में तथा सपिण्ड और सनाभि भाई बन्धु के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।१-४।

समानोदर्यसोदर्यसगर्भसहजाः समाः ।
सगोत्रबान्धवज्ञातिबन्धुस्वस्वजनाः समाः ॥५
दंपती जंपती भार्यापती जायापती च तौ ।
गर्भाशयो जरायुः स्यादुल्वं च कललोऽस्त्रियाम् ॥६
गर्भो भ्रूण इमौ तुल्यौ क्लीबं शण्डो (ण्ढो) नपुंसकम् ।
स्यादुत्तानशया डिम्भा बालो माणवकः स्मृतः ॥७

समानोदर्य, सोदर्य, सगर्भ, सहज सगे भाई के अर्थ में, सगोत्र, बान्धव, ज्ञाति, बन्धु स्व और स्वजन सगोत्री भाई के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। दम्पती, जम्पती, भार्यापती और जायापती स्त्रीपुरुष के अर्थ में, गर्भाशय, जरायु, उल्व और कलल गर्भ को लपेटने वाली झिल्ली के अर्थ में प्रयुक्त होता है। कलल शब्द पुंलिग और नपुंसक लिंग दोनो है। गर्भ और भ्रूण ये दोनों तुल्य शब्द हैं। क्लीव शण्ड और नपुंसक हिजड़े के अर्थ में, उत्तानशया और डिम्भ बच्चे के अर्थ में, बाल और माणवक बालक के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।५-७।

पिचि (च) ण्डिलो बृहत्कुक्षिरभ्रटो नतनासिके ।
विकलाङ्गस्तु पोगण्ड आरोग्यं स्यादनामयम् ॥८
स्यादेडे वधिरः कुब्जे गडुलः ककुरे [1]कुनिः ।
क्षयः शोषश्च यक्ष्मा च प्रतिश्यायस्तु पीनसः ॥६
स्त्री क्षुत्क्षुतं [2]क्षवः पुंसि कासस्तु क्षवथुः पुमान् ।
शोथस्तु श्वयथुः शोफः पादस्फोटो विपादिका ॥१०
किलास सिध्म कच्छ्वां तु पाम पामा विचर्चिका ।
कोठो मण्डलकं कुष्ठं श्वित्रे दुर्नामकार्शसी ॥११
आनाहस्तु विवन्धः स्याद्ग्रहणी रुक्प्रवाहिका ।
वीजवीर्येन्द्रियं शुक्रं पललं क्रव्यमामिषम् ॥१२

पिचिण्डिल और बृहत्कुक्षि तुन्दिल के अर्थ में, अभ्रट और नत-नासिक नकचपटे के अर्थ में, विकलांग और पोगण्ड वामन के अर्थ में, आरोग्य और अनामय आरोग्य के अर्थ में, एड और बधिर बहिरे के अर्थ में, कुब्ज और गडुल कूबड़े के अर्थ में, लूले के अर्थ में कुनि, क्षय, शोष यक्ष्मा राजयक्ष्मा के अर्थ मे, प्रतिश्याय और पीनस जुकाम के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। स्त्रीलिंग क्षुत्, पुंलिंग क्षव और स्त्रीलिंग क्षुत छींक के अर्थ में, कास और क्षवथु खाँसी के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। शोथ, श्वयथु और शोफ सूजन के अर्थ में, तथा पाद-स्फोट और विपादिका व्यवाइ के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। किलास और सिध्म सेहुआं रोग के अर्थ में, कच्छू, पाम, पामा और विचर्चिका खुजली के अर्थ में, कोढ और मण्डलक मण्डलाकार कोढ़ के अर्थ में, कुष्ठ और श्वित्र सफेद कोढ़ के अर्थ मे, दुर्नामक और अर्श गुदारोग के अर्थ में, आनाह और विवन्ध कब्जियत के अर्थ में, ग्रहणी और प्रवाहिका संग्रहणी के अर्थ में, शुक्र, (तेज, रेतस्) बीज और वीर्य-इन्द्रिय बीज के अर्थ में, पलल, क्रव्य और आमिष मांस के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।८-१२।

बुक्काऽग्रमांसं हृदयं हृन्मेदस्तु वपा वसा ।
पश्चाद्ग्रीवाशिरा मन्या नाडी तु धमनिः शिरा ॥१३
तिलकं क्लोम मस्तिष्कं दूषिका नेत्रयोर्मलम् ।
अन्त्रं पुरीतद्गुलमस्तु प्लीहा पुंस्यथ वस्नसा ॥१४

---

१ क. ङ. कुणिः । २ क. ङ. छ. क्षम्यं ।

स्नायुः स्त्रियां कालखण्डयकृती तु समे इमे ।
[1]स्यात्कर्परः कपालोऽस्त्री कीकसं कुल्यमस्थि च ॥१५

वुक्का और अग्रमांस कलेजे के अर्थ में, हृदय और हृत् हृदय के अर्थ में, मेद, वपा और वसा चर्बी के अर्थ में, पश्चाद्ग्रीवा, शिरा और मन्या गले की पिछली नस के अर्थ में, नाड़ी, धमनी और शिरा नाड़ी के अर्थ में, तिलक और क्लोम पेट में पानी की झिल्ली (फेफड़ा) के अर्थ में, मस्तिष्क और गोर्द मस्तक-स्नेह के अर्थ में, दूषिका नेत्रों के मैल के अर्थ में, अन्त्र और पुरीतत् आंत के अर्थ में, गुल्म और प्लीहा पिलही के अर्थ में, वस्नसा और स्नायु वायु-वाहिनी नाडी के अर्थ में, कालखण्ड और यकृत् दाहिनी कुक्षि के मांस खण्ड (कलेजे) के अर्थ में, कर्पर और कपाल शिर की हड्डी के अर्थ मे, कीकस, कुल्य और अस्थि हड्डी के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है ।१३-१५।

स्याच्छरीरास्थ्नि कंकालः पृष्ठास्थ्नि तु कशेरुका ।
शिरोस्थनि करोटिः स्त्री पाश्वर्स्थनि तु [2]पर्शुका ॥१६
अङ्गं प्रतीकोऽवयवः शरीरं वर्ष्म विग्रहः ।
कटो ना श्रोणिफलकं कटिः श्रोणिः ककुद्मती ॥१७
पश्चान्नितम्वः स्त्रीकट्याः क्लीवे तु जघनं पुरः ।
कूपकौ तु नितम्वस्थौ द्वयहीने [3]कुकुन्दरे ॥१८
स्त्रियां स्फिचौ कटिप्रोथावुपस्थो वक्ष्यमाणयोः ।
भगं योनिर्द्वयोः शिश्नो मेढ्रो (ढ्रं) मेहनशेफसी ॥१९
पिचि (च) ण्डकुक्षी जठरोदरं तुन्दं कुचौ स्तनौ ।
चूचुकं तु कुचाग्रं स्यान्न ना क्रोडं भुजान्तरम् ॥

कंकाल शरीर की हड्डी के अर्थ में, कशेरुका पीठ की रीढ़ के अर्थ में, करोटि शिर की हड्डी के अर्थ में 'पर्शुका' पसली के अर्थ में, अङ्ग, प्रतीक और अवयव अङ्ग के अर्थ मे, शरीर, वर्ष्म और विग्रह शरीर के अर्थ में, कट, श्रोणिफलक, कटि, श्रोणि और ककुद्मती कटि के अर्थ में, 'नितम्ब' स्त्री की कटि के पिछले भाग के अर्थ मे, और उसके आगे वाले भाग के अर्थ में जघन,

---

१ ग. छ. °त्कर्पूरः । २ ख. ग. पार्श्वकम् । ३ ख. ग. ककुन्दरे ।

शब्द प्रयुक्त होता है। कूपक और ककुन्दर नितम्ब के दोनों गड्ढों के अर्थ में, स्फिच तथा कटिप्रोथ स्त्री के दोनों कूल्हों के अर्थ में, उपस्थ, भग; और लिंग के अर्थ में, भग और योनि भग के अर्थ में, और शिश्न, मेढ़ मेहन और शेफस् लिंग के अर्थ में, प्रयुक्त होते हैं। पिचण्ड, कुक्षि, जठर, उदर और तुन्द पेट के अर्थ में, कुच स्तन के अर्थ में, चूचुक और कुचाग्र कुच के अग्रभाग के अर्थ में, क्रोड और भुजान्तर गोद के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।१९-२०।

स्कन्धो भुजशिरोंऽसोऽस्त्री संधी तस्यैव जत्रुणी।
पुनर्भवः कररुहो नखोऽस्त्री नखरोऽस्त्रियाम् ॥२१
प्रादेशतालगोकर्णास्तर्जन्यादियुते तते।
अङ्गुष्ठे सकनिष्ठे स्या द्वितस्तिर्द्वादशाङ्गुलः ॥२२
पाणौ चपेटप्रतलप्रहस्ता विस्तृताङ्गुलौ।
बद्धमुष्टिकरो रत्निररत्निः सकनिष्ठवान् (ष्ठिकः) ॥२३
कम्बुग्रीवा त्रिरेखा साऽवटुर्घाटा कृकाटिका।
अधः स्याच्चिबुकं चोष्ठादथ गण्डौ गलो हनुः ॥२४
अपाङ्गौ नेत्रयोरन्तौ कटाक्षोऽपाङ्गदर्शने।
चिकुरः कुन्तलो वालः प्रतिकर्म प्रसाधनम् ॥२५

स्कन्ध, भुजशिर और अंस कन्धे के अर्थ में, जत्रुणी कन्धे के समीप हँसुली के अर्थ में, पुनर्भव, कररुह, नख और नखर नाखून के अर्थ में, अँगूठे से लेकर तर्जनी तक फैलाये हुए हाथ को प्रादेश, अँगूठे से मध्यमा तक को ताल और अनामिका तक फैलाए हुए हाथ को गोकर्ण कहते है। अंगूठे और कनिष्ठिका के मध्य भाग को, जो बारह अंगुल विस्तृत रहता है, वितस्ति (बालिस्त) कहा जाता है। चपेट, प्रतल और प्रहस्त अंगुलियों के बीच के भाग हथेली (चटकने) के अर्थ में, रत्नि और अरत्नि मुट्ठी बांधे हाथ के अर्थ में, कम्बुग्रीवा और ग्रीवा (गले) के अर्थ में, अवटु, घाटा और कृकाटिका घांटी के अर्थ में, चिबुक ओष्ठ के नीचे वाले भाग (ठुड्डी) के अर्थ में, गण्ड और कपोल गाल के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं और चिबुक के नीचे की हड्डी के अर्थ में हनु शब्द का प्रयोग होता है। अपांग नेत्र के किनारे के अर्थ

में, कटाक्ष तिरछी चितवन के अर्थ में, चिकुर, कुन्तल और वाल केश के अर्थ में, प्रतिकर्म और प्रसाधन शब्द शृंगार करने के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।२१-२५।

आकल्पवेशौ नेपथ्यं [1]प्रत्यक्षं खेलयोगजम्।
चूड़ामणिः शिरोरत्नं तरलो हारमध्यगः ॥२६
कर्णिका तालपत्रं स्याल्लम्वनं स्याल्ललन्तिका।
मञ्जीरो नूपुरं पादे किङ्किणी छुद्रघण्टिका ॥२७
दैर्घ्यमायाम आरोहः परिणाहो विशालता।
पटच्चरं जीर्णवस्त्रं संव्यानं चोत्तरीयकम् ॥२८
रचना स्यात्परिस्पन्द आभोगः परिपूर्णता।
समुद्गकः संपुटकः प्रतिग्राहः पतद्ग्रहः।२९

आकल्प, वेश और नेपथ्य अलंकार रचनादि की शोभा के अर्थ में, शिरोरत्न, चूड़ामणि के अर्थ में; तरल हार के मध्य में रहने वाली बड़ी मणि के अर्थ में, कर्णिका तर्की के अर्थ में, तालपत्र ऐरन के अर्थ में, लम्बन और ललन्तिका लम्बी कण्ठी के अर्थ में, मञ्जीर और नूपुर पायजेब के अर्थ में, किंकिणी और छुद्रघण्टिका घूंघुर के अर्थ में, दैर्घ्य, आयाम और आरोह (लम्वाई) के अर्थ में, परिणाह और विशालता चौड़ाई के अर्थ में, पटच्चर और जीर्ण वस्त्र फटे पुराने वस्त्र के अर्थ में, संव्यान और उत्तरीयक दुपट्टे के अर्थ में, रचना और परिस्पन्द शिल्पादि रचना के अर्थ में, आभोग और परिपूर्णता पूर्णता के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। ढक्कनदार पेटी को समुद्गक और सम्पुटक कहते हैं। प्रतिग्राह और पतद्ग्रह—ये पीकदान के नाम हैं।२६-२९।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नृब्रह्मक्षत्रविट्शूद्रवर्गनिरूपणं नाम चतु:षष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३६४

---

१ ख. ग. °क्षं स्वेन यो°।

अथ पञ्चषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

ब्रह्मवर्गः

अग्निरुवाच —

वंशोऽन्ववायो गोत्रं स्यात्कुलान्यभिजनान्वयौ ।
मन्त्रव्याख्याकृदाचार्य आदेष्टा त्वध्वरे व्रती ।।१
यष्टा च यजमानः स्याज्ज्ञात्वाऽऽरम्भ उपक्रमः ।
सतीर्थ्याश्चैकगुरवः सभ्याः सामाजिकास्तथा ।।२
सभासदः सभास्तारा ऋत्विजो याजकाश्च ते ।
अध्वर्यूद्गातृहोतारो यजुः सामर्ग्विदः क्रमात् ।।३
चषालो यूपकटकः समे स्थण्डिलचत्वरे ।
आमिक्षा सा शृतोष्णे या क्षीरे स्याद्दधियोगतः ।।४
पृषदाज्यं सदध्याज्ये परमान्नं तु पायसम् ।
उपाकृतः पशुरसौ योऽभिमन्त्र्य क्रतौ हतः ।।५
परं पराकं शमनं प्रोक्षणं च वधार्थकम् ।
पूजा नमस्याऽपचितिः सपर्यार्चार्हणाः समाः ।।६

अग्निदेव बोले—वंश, अन्ववाय, गोत्र, कुल और अभिजन वंश के अर्थ में, मंत्रों की व्याख्या करने वाले के अर्थ में, आचार्य, यज्ञ में व्रत की दीक्षा ग्रहण करने वाले के अर्थ में आदेष्टा, यष्टा और यजमान का प्रयोग होता हैं। उपक्रम आरम्भ करने के अर्थ में, सतीर्थ्य और एकगुरु सहपाठी के अर्थ में, सभ्य, सामाजिक, सभासद और सभास्तार सभा में बैठने वाले के अर्थ में, ऋत्विक् याजक के अर्थ में, अध्वर्यु, उद्गाता और होता क्रमशः यजुर्वेदी, सामवेदी और अथर्ववेदी (ऋत्विक्) के अर्थ में प्रयुक्त होते है। चषाल और यूपकटक यज्ञ-स्तम्भ के अर्थ में, स्थण्डिल यज्ञ के चबूतरे के अर्थ में, आमिक्षा दधियुक्त पके हुये दुग्ध के अर्थ में, पृषदाज्य दही युक्त घृत के अर्थ में, पायस खीर के अर्थ में, उपाकृत यज्ञ में हत होने वाले अभिमंत्रित पशु के अर्थ में, परम्पराक, शमन और प्रोक्षण यज्ञीय पशु के वध के अर्थ में प्रयुक्त होते है। पूजा, नमस्या, अपचिति, सपर्या, अर्चा और अर्हणा पूजा के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।१-६।

वरिवस्या तु शुश्रूषा परिचर्याऽप्युपासनम् ।
नियमो व्रतमस्त्री तच्चोपवासादि पुण्यकम् ॥७
मुख्यः स्यात्प्रथमः कल्पोऽनुकल्पस्तु ततोऽधमः ।
कल्पे विधिक्रमौ ज्ञेयौ विवेकः पृथगात्मता ॥८
संस्कारपूर्वं ग्रहणं स्यादुपाकरणं श्रुतेः ।
भिक्षुः परिव्राट् कर्मन्दी पाराशर्यपि मस्करी ॥९
ऋषयः सत्यवचसः स्नातकश्चाऽऽप्लुतव्रती ।
[1]ये निर्जितेन्द्रियग्रामा यतिनो यतयश्च ते ॥१०
शरीरसधनापेक्षं नित्यं यत्कर्म तद्यमः ।
नियमस्तु स यत्कर्मानित्यमागन्तुसाधनम् ॥
स्याद्ब्रह्मभूयं ब्रह्मत्वं ब्रह्मसायुज्यमित्यपि ॥११

वरिवस्या, शुश्रूषा, परिचर्या और उपासन सेवा के अर्थ में, नियम व्रत के अर्थ में, प्रथमकल्प मुख्य विधान के अर्थ में, अनुकल्प गौण विधि के अर्थ मे, विधि और क्रम कल्प के अर्थ में, विवेक और पृथगात्मता प्रकृति और पुरुष के भेदज्ञान के अर्थ में, उपाकरण विधानपूर्वक वेदाध्ययन के अर्थ में, भिक्षु, परिव्राट्, कर्मन्दी, पाराशरी और मस्करी संन्यासी के अर्थ में, सत्यवचस् ऋषि के अर्थ में, स्नातक, आप्लुतव्रती वेदाध्ययन समाप्त करके दूसरे (गृहस्थ) आश्रम में प्रविष्ट होने के अर्थ में, निर्जितइन्द्रियग्राम और यति जितेन्द्रिय के अर्थ में, यम शरीरमात्र से साध्य होने वाले नित्यकर्म के अर्थ में, नियम कभी-कभी होने वाले विशेष कर्म के अर्थ में, ब्रह्मसूत्र, ब्रह्मत्व और ब्रह्मसायुज्य ब्रह्म में लीन होने के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।७-११।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये ब्रह्मवर्गनिरूपणं नाम पञ्चषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।३६५

---

१ ख. ग. ये संयतेन्द्रि° ।

अथ षट्षष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

क्षत्रविट्शूद्रवर्गाः

अग्निरुवाच—
मूर्धाभिषिक्तो राजन्यो बाहुजः क्षत्रियो विराट् ।
राजा तु प्रणताशेषसामन्तः स्यादधीश्वरः ॥१
चक्रवर्ती सार्वभौमो नृपोऽन्यो मण्डलेश्वरः ।
मन्त्री धीसचिवोऽमात्यो महामात्राः प्रधानकाः ॥२
द्रष्टरि व्यवहाराणां प्राड्विवाकाक्षदर्शकौ ।
भौरिकः कनकाध्यक्षोऽथाध्यक्षाधिकृतौ समौ ॥३
अन्तःपुरे त्वधिकृतः स्यादन्तर्वंशिको जनः ।
सौविदल्लाः कञ्चुकिनः स्थापत्याः सौविदाश्च ते ॥४
षण्डो वर्षवरस्तुल्याः [1]सेवकार्थ्यनुजीविनः ।
विषयानन्तरो राजा शत्रुर्मित्रमतः परम् ॥५

अग्निदेव बोले—मूर्धाभिषिक्त, राजन्य, बाहुज, क्षत्रिय और विराट्—ये क्षत्रिय के वाचक हैं। जिस राजा के सामने सभी सामन्त नरेश मस्तक झुकाते हैं, उसे अधीश्वर कहते हैं। चक्रवर्ती सार्वभौम महा राजाधिराज के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। मन्त्री, धीसचिव और अमात्य मंत्री के अर्थ में, महामात्र प्रधानमंत्री के अर्थ में, प्राड्विवाक् और अक्षदर्शक धर्माध्यक्ष (न्यायाधीश) के अर्थ में, भौरिक सुवर्ण सिक्के के अध्यक्ष के अर्थ में (नैष्क्रिक चाँदी के सिक्के के अध्यक्ष के अर्थ में) अध्यक्ष और अधिकृत अधिकारी के अर्थ में, अन्तर्वेशिक अन्तःपुर के अध्यक्ष के अर्थ में, सौविदल्ल, कञ्चुकी स्थापत्य और सौविद रनिवास के सेवक के अर्थ में, षण्ड और वर्षवर हिंजड़े के अर्थ में, सेवक, अर्थी और अनुजीवी सेवक के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। अपने राज्य की सीमा पर रहने वाला राजा शत्रु होता है और शत्रु की राज्य-सीमापर रहने वाला राजा अपना मित्र होता।१-५।

उदासीनः परतरः पार्ष्णिग्राहस्तु पृष्ठतः ।
चरः स्पशः स्यात्प्रणिधिरुत्तर काल आयतिः ॥६

[1] ख. ग. °काद्यानु° ।

तत्कालस्तु तदात्वं स्यादुदर्कः फलमुत्तरम् ।
अदृष्टं वह्नितोयादि दृष्टं स्वपरचक्रजम् ॥७
भद्रकुम्भः पूर्णकुम्भो भृङ्गारः कनकालुका ।
प्रभिन्नो गर्जितो मत्तो वमथुः करशीकरः ॥८
[1]स्त्रियां सृणिस्त्वङ्कुशोऽस्त्री परिस्तोमः कुथो द्वयोः ।
कर्णीरथः प्रवहणं दोला प्रेङ्खादिका स्त्रियाम् ॥९
आधोरणा हस्तिपका हस्त्यारोहा निषादिनः ।
भटा योधाश्च योद्धारः कञ्चुको वारणोऽस्त्रियाम् ॥१०

उदासीन शत्रु-मित्र से भिन्न राजा के अर्थ में, विजिगीषु राजा के पीछे रहने वाले राजा को पार्ष्णिग्राह कहते हैं। चर, स्पश, प्रणिधि जासूस के अर्थ में, आयति, उत्तरकाल भविष्य के अर्थ में, तत्काल, तदात्व वर्तमान के अर्थ में, उदर्क आगामी फल के अर्थ में, अदृष्ट भय अग्नि, जल आदि जनित भय के अर्थ में, दृष्ट भय अपने तथा अन्य सेना जनित भय के अर्थ में, भद्रकुम्भ और पूर्णकुम्भ पूर्णकलश के अर्थ में, भृङ्गार, कनकालुका झारी के अर्थ में, प्रभिन्न गर्जित और मत्त मदश्रावी हाथी के अर्थ में, वमथु और करशीकर हाथी के सूंड से निकले हुए जल के अर्थ में, अंकुश और सृणि अंकुश के अर्थ में, परिस्तोम और कुथ हाथी के ऊपर पड़े हुए चित्रविचित्र झूले के अर्थ में, कर्णीरथ और प्रवहण डोला के अर्थ में, दोला और प्रेङ्खादि पालकी डोला के अर्थ में, अधोरण, हस्तिपद, हस्त्यारोह और निषादी पीलवान के अर्थ में, भट, योधा और योद्धा सैनिक अर्थ में, कञ्चुक और वारण कवच (बख्तर) के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। इनका प्रयोग स्त्रीलिंग के अतिरिक्त सभी लिङ्गों में होता है।६-१०।

शीर्षण्यं च शिरस्त्रेऽथ तनुत्रं वर्म दंशनम् ।
आमुक्तः प्रतिमुक्तश्च पिनद्धश्चापिनद्धवत् ॥११
व्यूहस्तु बलविन्यासश्चक्रं चानीकमस्त्रियाम् ।
एकेभैकरथा त्र्यश्वा पत्तिः पञ्चपदातिका ॥१२
पत्त्यङ्गैस्त्रिगुणैः सर्वैः क्रमादाख्या यथोत्तरम् ।
सेनामुखं गुल्मगणौ वाहिनी पृतना चमूः ॥१३

---

१ छ. °यां शृणि° ।

अनीकिनी दशानीकिन्योऽक्षौहिण्यो गजादिभिः ।
धनुः कोदण्ड इष्वासौ (सः) कोटिरस्याटनी स्मृता[1] ॥१४

शीर्षण्य टोप के अर्थ में, तनुत्र, वर्म और दशन कवच के अर्थ में; आमुक्त, प्रतिमुक्त, पिनद्ध, अपिनद्ध, पहने हुए झिल्लिम के अर्थ में, प्रयुक्त होते हैं। व्यूह और बल विन्यास मोर्चे के अर्थ में, चक्र और अनीक सेना के अर्थ में, 'पत्ति' एक हाथी, एक रथ, तीन घोड़े और पाँच पैदल वाली सेना के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। पत्ति के प्रत्येक अंग को क्रमशः तिगुना करने पर विशेष नामकी सेना का निर्माण होता है जैसे—पत्ति के अङ्गभूत १ हाथी १ रथ ३ घोड़े और ५ पैदल को क्रमशः तिगुना करने पर ३ हाथी ३ रथ ९ घोड़े तथा १५ पैदल की सेना मुख नामक सेना होती है। इसी प्रकार सेनामुख के प्रत्येक अंग को क्रमशः तिगुना करने पर 'गुल्म' नामक सेना, गुल्म के अंग को तिगुना करने पर 'गण' नामक सेना, गण को तिगुने करने पर 'वाहिनी' नामक सेना, वाहिनी को तिगुना करने पर 'पृतना' नामक सेना पृतना को तिगुना करने पर 'चमू' नामक सेना, चमू को तिगुना करने पर 'अनीकिनी' नामक सेना और अनीकिनी को तिगुना करने पर 'अक्षौहिणी' नामक सेना तैयार होती है।

'उपर्युक्त सेना विशेष में गजादि निर्णयचक्र'

सेना	पत्ति	सेनामुख	गुल्म	गण	वाहिनी	पृतना	चमू	अनीकिनी	अक्षौहिणी
गजरथ	१	३	९	२७	८१	२४३	७२९	२१८७	२१८७०
घोड़े	३	९	२७	८१	२४३	७२९	२१८७	६५६१	६५६१०
पैदल	५	१५	४५	१३५	४०५	१२१५	३६४५	१०९३५	१०९३५०

धनु, कोदण्ड और इष्वास धनुष के अर्थ में, कोटि और अटनी धनुष् के अन्तिम भाग के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।११-१४।

नस्तकस्तु धनुर्मध्यं मौर्वी ज्या शिञ्जिनी गुणः ।
पृषत्कबाणविशिखा अजिह्मगखगाशुगाः ॥१५
तूणोपासङ्गतूणीरनिषङ्गा इषुधिर्द्वयोः ।
असिर्ऋष्टिश्च निस्त्रिंशः करवालः कृपाणवत् ॥१६

१ ख. ग. °ता। लस्त°।

त्सरुः खड्गस्य मुष्टौ [1]स्यादीली तु [2]करपालिका ।
द्वयोः कुठारः सु (स्व) धितिश्छुरिका चासिपुत्रिका ॥१७
प्रासस्तु कुन्तो विज्ञेयः सर्वला तोमरोऽस्त्रियाम् ।
वैतालिका वोधकरा मागधा वन्दिनस्तु तौ (ते) ॥१८
संशप्तकास्तु समयात्संग्रामादनिवर्तिनः ।
पताका वैजयन्ती स्यात्केतनं ध्वजमस्त्रियाम् ॥१९
अहं पूर्वमहं पूर्वमित्यहंपूर्विका स्त्रियाम् ।
अहमहमिका सा स्याद्योऽहंकारः परस्परम् ॥२०

नस्तक, धनुर्मध्य धनुष् के मध्य भाग के अर्थ में, मौर्वी ज्या, शिञ्जिनी और गुण धनुप की डोरी (प्रत्यञ्चा) के अर्थ में, पृषत्क, बाण, विशिख, अजिह्मग, खग और आशुग बाण के अर्थ में, तूण; उपासङ्ग, तूणीर, निषंग और इषुधि तरकस के अर्थ में, असि, ऋष्टि, निस्त्रिंश, करवाल और कृपाण तलवार के अर्थ में, त्सरु खड्ग की मूठ के अर्थ में, ईली और करवालिका गुप्ती के अर्थ में, कुठार और सुधिति फरसा के अर्थ में, छुरिका और असिपुत्रिका छुरी के अर्थ में, प्रास और कुन्त भाला के अर्थ में, सर्वला और तोमर गँड़ासे के अर्थ में, वैतालिक और बोधकर प्रातःकाल राजा को जगाने वाले के अर्थ में, मागध और वन्दी वंशपरम्परा के गुणगान करने वाले के अर्थ में, संशप्तक युद्धस्थल से न भागनेवाले वीर के अर्थ में, पताका, वैजयन्ती, केतन और ध्वज पताका के अर्थ में; अहंपूर्विका 'मैं पहले मैं' पहले, के अर्थ में और अहमहमिका आपस में होड़ करने के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।१५-२०।

शक्तिः पराक्रमः प्राणः शौर्य स्थानसहोवलम् ।
मूर्च्छा तु कश्मलं [3]मोहोऽप्यवमर्दस्तु पीडनम् ॥२१
अभ्यवस्कन्दनं त्वभ्यासादनं विजयो जयः ।
[4]निर्वासनं संज्ञपनं [5]मारणं प्रतिघातनम् ॥२२
स्यात्पञ्चता कालधर्मो दिष्टान्तः प्रलयोऽत्ययः ।
विशो भूमिस्पृशो वैश्या वृत्तिर्वर्तनजीवने ॥

---

१ क. ङ. स्यादाली । ख. स्यादानी तु । २ ख. ग. करवालिका ।
३ क. ख. ग. मोहः पटहाडम्बरौ समौ । अ॰ । ४ ख. ग. निर्वपणम् ।
५ क. ग. ङ. सारणं ।

शक्ति, पराक्रम, प्राण शौर्य, स्थान, सहस् और बल—ये सभी शब्द बल के वाचक हैं। मूर्च्छा, कश्मल और मोह मूर्च्छा के अर्थ में, अवमर्द और पीडन कष्ट पहुँचाने के अर्थ में, अभ्यवस्कन्दन और अभ्यासादन शत्रु को घर दबाने के अर्थ में, जय और विजय जीतने के अर्थ में, निर्वासन संज्ञापन, मारण और प्रतिघातन वध करने के अर्थ में, पञ्चता, कालधर्म दिष्टान्त, प्रलय और अत्यय मृत्यु के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। विश्, भूमिस्पृश् और वैश्य वैश्यजाति के अर्थ में, वृत्ति वर्तन, जीवन और जीविका के उपाय के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।२१-२३।

कृष्यादिवृत्तयो ज्ञेयाः कुसीदं वृद्धिजीविका।
उद्धारोऽर्थप्रयोगः स्यात्कणिशं शस्यमञ्जरी ॥२४
[1]किशारुः सस्यशूकं स्यात्स्तम्बो गुच्छस्तृणादिनः।
धान्यं व्रीहिः स्तम्बकरिः कडंगरो बुषं (सं) स्मृतम् ॥२५

कृषि और पशुपालन वैश्य जाति की जीविका कही गई है। कुसीद, वृद्धि-जीविका और अर्थप्रयोग व्याज से चलायी जाने वाली जीविका के अर्थ में, उद्धार ऋण के अर्थ में, कणिश और शस्यमञ्जरी धान आदि की वाली के अर्थ में, किशारु और शस्यशूक जवा आदि के अग्रभाग (टूंड़) के अर्थ में, स्तम्ब गुच्छे के अर्थ में, धान्य, व्रीहि और स्तम्बकरि धान्य सामान्य के अर्थ में, कडङ्गर और वुष भूसा के अर्थ में प्रयुक्त होते है।२४-२५।

माषादयः शमीधान्ये शूकधान्ये यवादयः।
तृणधान्यानि नीवाराः शूर्पं प्रस्फोटनं स्मृतम् ॥२६
स्यूतप्रसेवौ कण्डोलपिटौ [2]कटकिनिञ्जकौ।
समानौ रसवत्यां तु पाकस्थानमहानसे ॥२७
पौरोगवस्तदध्यक्षः सूपकारास्तु वल्लवाः।
आरालिका आन्धसिकाः सूदा औदनिका गुणाः ॥२८
क्लीबेऽम्बरीषं भ्राष्ट्रो ना कर्कर्यालुर्गलन्तिका।
आलिंजरः स्यान्मणिकं सुषवी कृष्णजीरके ॥२९
आरनालस्तु कुल्माषं वाह्लीकं हिङ्गु रामठम्।
निशा हरिद्रा पीता स्त्री खण्डे मत्स्यण्डिफाणिते ॥३०

---

१ ख. ग. किसारः। २ ख. °किणिञ्जकौ।

माष आदि (उड़द, मूंग, मोथी, राजमाष, कुलथी, चना, तिल, काकण्ड और चीवर) शमी धान्य के अर्थ में, जौ (टूंड़ वाले अनाज) आदि शूक धान्य के अर्थ में, तृणधान्य और नीवार तिन्नी आदि के अर्थ में, प्रस्फोटन सूर्प और सूप के अर्थ में, स्यूत और प्रसेव वोरा के अर्थ में, कण्डोल और पिट वांस के झावे के अर्थ में, कट और किनिञ्जक चटाई के अर्थ में, रसवती, पाकस्थान और महानस रसोई घर के अर्थ में, पौरोगव रसोई के अध्यक्ष के अर्थ में, सूपकार, वल्लव, आरालिक, आन्धसिक, सूद, औदनिक और गुण रसोई-दार के अर्थ में, अम्बरीष और भ्राष्ट्र भूंजने वाले पात्र खपरी आदि के अर्थ में, कर्करी, आलू और गलन्तिका करवा के अर्थ में, आलिञ्जर और मणिक नेहुका के अर्थ में, सुपवी काले जीरा के अर्थ में, आरनाल और कुल्माष कांजी के अर्थ में, वाह्लीक, हिंगु और रामठ हींग के अर्थ में, निशा, हरिद्रा, और पीता हल्दी के अर्थ में, मत्स्यण्डी और फाणित खांड़ के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।२६-३०।

कूर्चिका क्षीरविकृतिः स्निग्धं मसृणचिक्कणम् ।
पृथुकः स्याच्चिपिटको धाना भ्र (भृ) ष्टयवाः स्त्रियः ॥३१
जेमनं [1]लेह आहारो माहेयी सौरभी च गौः ।
युगादीनां च वोढारो युग्यप्रासङ्ग्यशाटकाः (कटाः) ॥३२
चिरप्रसूता वष्कयणी धेनुः स्यान्नवसूतिका ।
संधिनी वृषभाक्रान्ता वेहद्गर्भोपघातिनी ॥३३
पण्याजीवो ह्यापणिको न्यासश्चोपनिधिः पुमान् ।
विपणो विक्रयः संख्या संख्येये ह्यादश त्रिषु ॥३४
विंशत्याद्याः सदैकत्वे सर्वाः संख्येयसंख्ययोः ।
संख्यार्थे द्विबहुत्वे स्तस्तासु चाऽऽनवतेः स्त्रियः ॥३५

कूर्चिका और क्षीरविकृति खोवा के अर्थ में; स्निग्ध, मसृण और चिक्कण चिकने के अर्थ में, पृथुक और त्रिपिटक चिउरा के अर्थ मे, धाना और भ्रष्ट-यवा वहुरी के अर्थ मे, जेमन, लेह और आहार भोजन के अर्थ में, माहेयी, सौर-भी और गौ गाय के अर्थ में, युग्य और प्रासंग्य कंधे पर जुआ ढोने वाले बैल के अर्थ में शाकट गाड़ी खींचने वाले बैल के अर्थ में, चिरप्रसूता और वष्कयिणी

१ क. ङ. छ. लेप ।

देर से व्याई हुयी गाय (वकेना) के अर्थ में, वेनु, नवसूतिका नयी ब्याई गाय के अर्थ में, संधिनी गर्भिणी गाय के अर्थ में, वेहत् और गर्भोपघातिनी गर्भपात कराने वाली गाय के अर्थ में, पण्याजीव और आपणिक क्रय-विक्रय करने वाले (साहूकार) के अर्थ में, न्यास और उपनिधि धरोहर के अर्थ में; विपण और विक्रय बेंचने के अर्थ में एक से दस तक और क्षीरस्वामी के मत में दस से अट्ठारह तक तथा बीस से आरम्भ कर सौ तक की संख्या तीनों लिङ्गों में एकवचन होती है। संख्यार्थ में प्रयोग करने पर ये संख्यायें द्विवचन और बहुवचन में प्रयुक्त होती है और नब्वे तक की संख्याओं के रूप स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होते हैं।३१-३५।

पङ्क्तेः [1]शतसहस्रादि क्रमाद्दशगुणोत्तरम् ।
मानं तुलाऽङ्गुलिप्रस्थैर्गुञ्जाः पञ्चाद्यमाषकः ॥३६
ते षोडशाक्षः कर्षोऽस्त्री पलं कर्षचतुष्टयम् ।
सुवर्णविस्तौ हेम्नोऽक्षे कुरुविस्तस्तु तत्पले ॥३७
तुला स्त्रियां पलशतं भारः स्याद्विंशतिस्तुलाः ।
कार्षापणः कार्षिकः स्यात्कार्षिके ताम्रिके पणः ॥३८
द्रव्यं वित्तं स्वापतेयं रिक्थमृक्थं धनं वसु ।
रीतिः स्त्रियामारकूटो ना स्त्रियामथ ताम्रकम् ॥३९
शुल्वमौदुम्बरं लौहे तीक्ष्णं कालायसायसी ।
क्षारः काचोऽथ चपलो रसः सूतश्च पारदे ॥४०
गरलं माहिषं शृङ्गं त्रपुसीसकपिच्चटम् ।
हिण्डीरोऽब्धिकफः फेनो मधूच्छिष्टं तु सिक्थकम् ॥४१
रङ्गवङ्गे पिचुस्थूलो कूलटी तु मनःशिला ।
यवक्षारश्च पाक्यः स्यात्त्वक्क्षीरा[2] वंशलोचना ॥४२

पंक्ति को दशगुने करने पर शत और इसे दश गुने करने पर सहस्र की संख्या बनती है। इसी प्रकार क्रमशः सभी संख्याओं को दशगुने करने पर शेष सभी संख्यायें बन जाती है। मान तीन प्रकार के होते हैं—तुलामान, अंगुलिमान और प्रस्थमान। पाँच गुंजे (रत्ती) का एक माशा होता है। अक्ष और कर्ष १६ माशे के अर्थ में, कर्षचतुष्टय पल के अर्थ में, प्रयुक्त होते हैं। एक अक्ष सोने को 'सुवर्ण' और 'विस्त' कहते है तथा एक पल सुवर्ण का नाम 'कुरुबिस्त'

१ ख. ग. °स्राणि क्र° । २ ख. ग. °क्षरी वं° ।

माष आदि (उड़द, मूंग, मोथी, राजमाष, कुलथी, चना, तिल, काकण्ड और चीवर) शमी धान्य के अर्थ में, जौ (टूंड़ वाले अनाज) आदि शूक धान्य के अर्थ में, तृणधान्य और नीवार तिन्नी आदि के अर्थ में, प्रस्फोटन सूर्प और सूप के अर्थ में, स्यूत और प्रसेव वोरा के अर्थ में, कण्डोल और पिट वांस के झावे के अर्थ में, कट और किनिञ्जक चटाई के अर्थ में, रसवती, पाकस्थान और महानस रसोई घर के अर्थ में, पौरोगव रसोई के अध्यक्ष के अर्थ में, सूपकार, वल्लव, आरालिक, आन्धसिक, सूद, औदनिक और गुण रसोई-दार के अर्थ में, अम्बरीष और भ्राष्ट्र भूंजने वाले पात्र खपरी आदि के अर्थ में, कर्करी, आलू और गलन्तिका करवा के अर्थ में, आलिञ्जर और मणिक नेढुका के अर्थ में, सुपवी काले जीरा के अर्थ में, आरनाल और कुल्माष कांजी के अर्थ में, वाल्हीक, हिंगु और रामठ हींग के अर्थ में, निशा, हरिद्रा, और पीता हल्दी के अर्थ में, मत्स्यण्डी और फाणित खांड़ के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।२९-३०।

कूर्चिका क्षीरविकृतिः स्निग्धं मसृणचिक्कणम् ।
पृथुकः स्याच्चिपिटको धाना भ्र (भृ) ष्टयवाः स्त्रियः ।।३१
जेमनं [1]लेह आहारो माहेयी सौरभी च गौः ।
युगादीनां च वोढारो युग्यप्रासङ्ग्यशाटकाः (कटाः) ।।३२
चिरप्रसूता वष्कयणी धेनुः स्यान्नवसूतिका ।
संधिनी वृषभाक्रान्ता वेहद्गर्भोपघातिनी ।।३३
पण्याजीवो ह्यापणिको न्यासश्चोपनिधिः पुमान् ।
विपणो विक्रयः संख्या संख्येये ह्यादश त्रिषु ।।३४
विंशत्याद्याः सदैकत्वे सर्वाः संख्येग्रसंख्ययोः ।
संख्यार्थे द्विवहुत्वे स्तस्तासु चाऽऽनवतेः स्त्रियः ।।३५

कूर्चिका और क्षीरविकृति खोवा के अर्थ में; स्निग्ध, मसृण और चिक्कण चिकने के अर्थ में, पृथुक और त्रिपिटक चिउरा के अर्थ में, धाना और भ्रष्ट-यवा वहुरी के अर्थ में, जेमन, लेह और आहार भोजन के अर्थ में, माहेयी, सौर-भी और गौ गाय के अर्थ में, युग्य और प्रासंग्य कंधे पर जुआ ढोने वाले बैल के अर्थ में शाकट गाड़ी खींचने वाले बैल के अर्थ में, चिरप्रसूता और वष्कयिणी

१ क. ङ. छ. लेप ।

देर से व्याई हुयी गाय (बकेना) के अर्थ में, धेनु, नवसूतिका नयी ब्याई गाय के अर्थ में, संधिनी गभिणी गाय के अर्थ में, बेहत् और गर्भोपघातिनी गर्भपात कराने वाली गाय के अर्थ में, पण्याजीव और आपणिक क्रय-विक्रय करने वाले (साहूकार) के अर्थ में, न्यास और उपनिधि धरोहर के अर्थ में; विपण और विक्रय बेंचने के अर्थ में एक से दस तक और क्षीरस्वामी के मत में दस से अट्ठारह तक तथा बीस से आरम्भ कर सौ तक की संख्या तीनों लिङ्गों में एकवचन होती है। संख्यार्थ में प्रयोग करने पर ये संख्यायें द्विवचन और बहुवचन में प्रयुक्त होती है और नब्बे तक की संख्याओं के रूप स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होते हैं।३१-३५।

पङ्क्तेः [1]शतसहस्रादि क्रमाद्दशगुणोत्तरम् ।
मानं तुलाऽङ्गुलिप्रस्थैर्गुञ्जाः पञ्चाद्यमाषकः ॥३६
ते षोडशाक्षः कर्षोऽस्त्री पलं कर्षचतुष्टयम् ।
सुवर्णविस्तौ हेम्नोऽक्षे कुरुविस्तस्तु तत्पले ॥३७
तुला स्त्रियां पलशतं भारः स्याद्विंशतिस्तुलाः ।
कार्षापणः कार्षिकः स्यात्कार्षिके ताम्रिके पणः ॥३८
द्रव्यं वित्तं स्वापतेयं रिक्थमृक्थं धनं वसु ।
रीतिः स्त्रियामारकूटो ना स्त्रियामथ ताम्रकम् ॥३९
शुल्बमौदुम्बरं लौहे तीक्ष्णं कालायसायसी ।
क्षारः काचोऽथ चपलो रसः सूतश्च पारदे ॥४०
गरलं माहिषं शृङ्गं त्रपुसीसकपिच्चटम् ।
हिण्डीरोऽब्धिकफः फेनो मधूच्छिष्टं तु सिक्थकम् ॥४१
रङ्गवङ्गे पिचुस्थूलो कूलटी तु मनःशिला ।
यवक्षारश्च पाक्यः स्यात्त्वक्क्षीरा[2] वंशलोचना ॥४२

पंक्ति को दशगुने करने पर शत और इसे दश गुने करने पर सहस्र की संख्या बनती है। इसी प्रकार क्रमशः सभी संख्याओं को दशगुने करने पर शेष सभी संख्यायें बन जाती है। मान तीन प्रकार के होते हैं—तुलामान, अंगुलिमान और प्रस्थमान। पाँच गुंजे (रत्ती) का एक माशा होता है। अक्ष और कर्ष १६ माशे के अर्थ में, कर्षचतुष्टय पल के अर्थ में, प्रयुक्त होते हैं। एक अक्ष सोने को 'सुवर्ण' और 'बिस्त' कहते हैं तथा एक पल सुवर्ण का नाम 'कुरुविस्त'

१ ख. ग. °स्राणि क्र° । २ ख. ग. °क्षरी वं° ।

है। सौ पल की एक 'तुला' होती है। यह स्त्रीलिंग शब्द है। भार बीस तुला के अर्थ में, कार्षापण, कार्षिक चांदी के रुपये के अर्थ में, पण तांबे के पैसे के अर्थ में द्रव्य, वित्त, स्वापतेय, रिक्थ, ऋक्थ, धन और वसु धन के अर्थ में, रीति और आरकूट पीतल के अर्थ में, ताम्र, शुल्व और औदुम्बर तांबे के अर्थ में, तीक्ष्ण, कालायस और अयस् लोहे के अर्थ में, क्षार और काच कांच के अर्थ में, चपल, रस, सूत और पारद पारा के अर्थ में, गरल भैंसे के सींग के अर्थ में, त्रपु, सीसक और पिच्चट सीसे के अर्थ में, हिण्डीर, अब्धिकफ और फेन समुद्र फेन के अर्थ में, मधूच्छिष्ट और सिक्थक मोम के अर्थ में, रङ्ग और वङ्ग रांगा के अर्थ में, पिचु और तूल रुई के अर्थ में, कूनटी, मनः शिला मैनसिल के अर्थ में, यवक्षार और पाक्य जवाखार के अर्थ में, त्वक्क्षीरी और वंशलोचना वंशलोचन के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।३६-४२।

वृषला जघन्यजाः शूद्राश्चाण्डालान्त्याश्च शं (सं) कराः।
कारुः शिल्पी संहतैस्तैर्द्वयोः श्रेणिः सजातिभिः ॥४३
रङ्गाजीवश्चित्रकरस्त्वष्टा तक्षा च वर्धकिः।
नाडिंधमः स्वर्णकारो नापितान्तावसायिनः ॥४४
जावालः स्यादजाजीवो देवाजीवस्तु देवलः।
जायाजीवास्तु शैलूपा भृतको भृतिभुक्तथा ॥४५
विवर्णः पामरो नीचः प्राकृतश्च पृथग्जनः।
विहीनोऽपसदो जल्मो भृत्ये दासेरचेटकाः।४६
पटुस्तु पेशलो दक्षो मृगयुर्लुब्धकः स्मृतः।
चाण्डालस्तु दिवाकीर्तिः पुस्तं लेप्यादिकर्मणि ॥४७

वृपल और जघन्यज शूद्र जाति के अर्थ में, संकर चाण्डाल के अर्थ में, कारु शिल्पी के अर्थ में, श्रेणि सजातीय शिल्प-संघ के अर्थ में, रङ्गाजीव और चित्रकर रंगरेज के अर्थ में, त्वष्टा, तक्षा और वर्धकि बढ़ई के अर्थ में, नाडिंधम और स्वर्णकार सोनार के अर्थं में, नापित और अन्तावसायी नाई के अर्थ में, जाबाल और अजाजीव गड़ेरिया के अर्थ मे, देवाजीव और देवल पण्डा पुजारी के अर्थ में, जायाजीव और शैलूष नट के अर्थ मे, भृतक और भृतिभुक् मजदूर के अर्थ में, विवर्ण, पामर नीच, प्राकृत, पृथग्जन, निहीन, अपसद और जाल्म नीच के अर्थ मे, भृत्य, दासेर, और चेटक सेवक के अर्थ में, पटु, पेशल और दक्ष चतुर के अर्थ में, मृगयु और लुब्धक बहेलिया

के अर्थ में, दिवाकीर्ति चाण्डाल के अर्थ में, पुस्त लीपने वाले के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।४३-४७।

पञ्चालिका पुत्रिका स्याद्वर्करस्तरुणः पशुः ।
मञ्जूषा पेटकः [1]पेडा तुल्यसाधारणौ समौ ।।४८
प्रतिमा स्यात्प्रतिकृतिर्वर्गा ब्रह्मादयः स्मृताः ।।४९

पञ्चालिका और पुत्रिका गुड़िया के अर्थ में, वर्कर तरुण पशु के अर्थ में, मञ्जूषा, पेटक और पेटा पेटारी के अर्थ में, प्रतिमा और प्रतिकृति मूर्ति के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। इस प्रकार ब्राह्मण आदि वर्गों का वर्णन किया गया।४८-४९।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये क्षत्रविट्शूद्रवर्गनिरूपणं नाम षट्षष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।३६६

अथ सप्तषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

सामान्यनामलिङ्गानि

अग्निरुवाच—

सामान्यान्यथ वक्ष्यामि नामलिङ्गानि तच्छृणु ।
सुकृती पुण्यवान्धन्यो महेच्छस्तु महाशयः ।।१
प्रवीणनिपुणाभिज्ञविज्ञनिष्णातशिक्षिताः ।
[2]स्युर्वदान्यस्थूललक्षदानशौण्डा बहुप्रदे ।।२
कृती कृतज्ञः कुशल आसक्तोद्युक्त उत्सुकः ।
इभ्य आढ्यः परिवृढो ह्यधिभूर्नायकोऽधिपः ।।३
लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मणः श्रीलः [3]स्वतन्त्रः स्वैर्यपावृतः ।
खलपूः स्याद्बहुकरो दीर्घसूत्रश्चिरक्रियः ।।४

---

१ ख. ग. पेटा । २ ख. ग. °लक्ष्यदा° । ३ क. ग. °न्त्रः स्थैर्यगौरवः । ख° । ख. ग. °न्त्र स्थैर्य आवृ° ।

जाल्मोऽसमीक्ष्यकारी स्यात्कुण्ठो मन्दः क्रियासु यः ।
कर्मशूरः कर्मठः स्याद्भक्षको घस्मरो (रो) ऽद्मरः ॥५

अग्निदेव बोले—अब मैं सामान्यतः नामलिंगों का वर्णन करूँगा । आप उसे सुनिये । सुकृति, पुण्यवान् और धन्य—ये शब्द पुण्यात्मा और सौभाग्यशाली पुरुष के लिए आते हैं । जिनकी अभिलाषा, आशय या अभिप्राय महान् हों उन्हें महेच्छ और महाशय कहते हैं । प्रवीण, निपुण, अभिज्ञ, विज्ञ, निष्णात और शिक्षित-सुयोग्य एवं कुशल के अर्थ में आते हैं ।वदान्य, स्थूललक्ष दानशौण्ड और बहुप्रद—ये अधिक दान करने वाले के वाचक हैं । कृती, कृतज्ञ और कुशल—ये भी प्रवीण, चतुर एवं दक्ष के ही अर्थ में आते हैं । आसक्त, उद्युक्त और उत्सुक—ये उद्योगी और कार्यपरायण पुरुष के लिए प्रयुक्त होते हैं । अधिक धनवान् को इभ्य और आढ्य कहते हैं । परिवृढ, अधिभू, नायक और अधिप—ये स्वामी के वाचक हैं । लक्ष्मीवान्, लक्ष्मण तथा श्रील—ये शोभा और श्री से सम्पन्न पुरुष के अर्थ में आते हैं । स्वतन्त्र, स्वैरी और अपावृत शब्द स्वाधीन अर्थ के बोधक हैं । खलपू और बहुकर—खलिहान या मैदान साफ करने वाले पुरुष के अर्थ मे तथा दीर्घसूत्र और चिरक्रिय—ये आलसी बहुत विलम्ब से काम पूरा करने वाले पुरुष के बोधक है । बिना विचारे काम करने वाले को जाल्म और असमीक्ष्यकारी करते हैं । जो कार्य करने में ढीला हो, वह कुण्ठ कहलाता है। कर्मशूर और कर्मठ—ये उत्साहपूर्वक कार्य करने वालों के वाचक हैं । खाने वाले को भक्षक, घस्मर और अद्मर कहते हैं ।१-५।

लोलुपो गर्धलो गृध्नुर्विनीतप्रश्रितौ तथा[1] ।
धृष्टे धृष्णुर्वियातश्च निभृतः प्रतिभान्विते ॥६
प्रगल्भो भीरुको भीरुर्वन्दारुरभिवादके ।
भूष्णुर्भविष्णुर्भविता ज्ञाता विदुरविन्दुकौ ॥७
मत्तशौण्डोत्कटक्षीवाश्चण्डस्त्वत्यन्तकोपनः ।
देवानञ्चति देवद्र्यङ् विष्वद्र्यङ्[2] विष्वगञ्चति ॥८
यः सहाञ्चति सध्र्यङ् स[3] स तिर्यङ् यस्तिरोऽञ्चति ।
वाचोयुक्तिः पटुर्वाग्मी वावदूकश्च वक्तरि ॥९

---

१ क. ख. ग. ङ ०था । लिङ्गानि लिङ्गिनः साधुर्निभृ॰ । २ ङ. छ. विश्वद्र्यङ् विश्वग॰ । ३ ख. ग. स घूर्णितः प्रचलायितः । वा॰ ।

स्याज्जल्प (ल्पा) कस्तु वाचालो वाचाटो वहुगर्ह्य वाक्।
अपध्वस्तो धिक्कृतः स्याद्वद्धे कीलितसंयतौ ।१०

लोलुप, गर्धल और गृध्नु—ये लोभी के पर्याय हैं। विनीत और प्रश्रित ये विनययुक्त पुरुष का बोध कराने वाले हैं। धृष्णु और वियात—ये धृष्ट के लिए प्रयुक्त होते है। प्रतिभाशाली पुरुष के अर्थ में निभृत और प्रगल्भ शब्द का प्रयोग होता है। भीरुक और भीरु—डरपोक के, वन्दारु और अभिभावक प्रणाम करने वाले के, भूष्णु, भविष्णु और भविता होने वाले के तथा ज्ञाता, विदुर और विन्दुक—ये जानकार के वाचक हैं। मत्त, शौण्ड, उत्कट और क्षीव—ये मतवाले के अर्थ में आते हैं। चण्ड और अत्यन्तकोपन—ये अधिक क्रोध करने वाले पुरुष के बोधक हैं। देवताओं का अनुकरण करने वालों को देवद्र्यङ् और सब ओर जाने वाले को विष्वद्र्यङ् कहते हैं। इसी प्रकार साथ चलने वाला सध्र्यङ् और तिरछा चलने वाला तिर्यङ् कहलाता है। वाचोयुक्ति पटु, वाग्मी और वावदूक—ये कुशलवक्ता के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। बहुत अनाप-शनाप बकने वाले को जल्पाक, वाचाल, वाचाट और बहु-गर्ह्यवाक् कहते हैं। अपध्वस्त और धिक्कृत—ये धिक्कार हुए पुरुष के वाचक हैं। कीलित और संयत शब्द बद्ध (बंधे हुए) का बोध कराने वाले हैं।९-१०।

वरणः शब्दनो नान्दीवादी नान्दीकरः समौ।
व्यसनार्तोपरक्तौ द्वौ वद्धे कीलितसंयतौ ॥११
विहस्तव्याकुलौ तुल्यौ नृशंसक्रूरघातकाः।
पापो धूर्तो वञ्चकः स्यान्मूर्खे वैदेहबालिशौ ॥१२
कदर्ये कृपणक्षुद्रौ मार्गणो याचकार्थिनौ।
अहंकारवानहंयुः शुभंयुस्तु शुभान्वितः ॥१३
कान्तं मनोरमं रुच्यं हृद्याभीष्टे ह्यभीप्सिते।
असारं फल्गु शून्यं वै मुख्यवर्यवरेण्यकाः ॥१४
श्रेयाञ्श्रेष्ठः पुष्कलः स्यात्प्राग्र्याग्रीयमग्रियम्।
वड्रोरुविपुलं पीनपीव्नी तु स्थूलपीवरे ॥१५

वरण और शब्दन—ये आवाज करने वाले के अर्थ में आते हैं। नान्दी पाठ करने वालों को नान्दीवादी और नान्दीकर कहते हैं। व्यसनार्त और

उपरक्त—ये पीड़ित के अर्थ में आते हैं। विहस्त और व्याकुल ये शोकाकुल पुरुष का बोध कराते हैं। नृशंस, क्रूर, घातक और पाप—ये दूसरों से द्रोह करने वाले निर्दय मनुष्य के वाचक हैं। ठग को घूर्त और वञ्चक कहते हैं। वैदेह (वैधेय) और वालिश—ये मूर्ख के वाचक हैं। कृपण और क्षुद्र—ये कदर्य (कंजूस) के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। मार्गण याचक और अर्थी—ये याचना करने वाले के अर्थ में आते हैं। अहङ्कारी को अहङ्कारवान् और अहंयु तथा शुभ के भागी को शुभान्वित और शुभंयु कहते हैं। कान्त, मनोरम और रुच्य—ये सुन्दर अर्थ के वाचक हैं। हृद्य, अभीष्ट और अभीप्सित—ये प्रिय के समानार्थक शब्द हैं। असार, फल्गु तथा शून्य—ये निस्सार अर्थ का बोध कराने वाले है। मुख्य, वर्य, वरेण्यक, श्रेयान्, श्रेष्ठ और पुष्कल—ये श्रेष्ठ के वाचक है। प्राग्र्य, अग्र्य, अग्रीय, तथा अग्रिय शब्द भी इसी अर्थ में आते हैं। वड्र, उरु और विपुल—ये विशाल अर्थ के बोधक हैं। पीन, पीवन्, स्थूल और पीवर—ये स्थूल या मोटे अर्थ का बोध कराने वाले हैं।११-१५।

स्तोकाल्पक्षुल्लकाः सूक्ष्मं श्लक्ष्णं दभ्रं कृशं तनु।
मात्राकुटीलवकणा भूयिष्ठं पुरुहं पुरु ॥१६
अखण्डं पूर्णसकलमुपकण्ठान्तिकाभितः।
समीपे संनिधाभ्यासौ नेदिष्ठं सुसमीपकम् ॥१७
सुदूरे तु दविष्ठं श्याद्वृत्तं निस्तलवर्तुले ।
उच्चप्रांशून्नोतोदग्रा ध्रुवो नित्यः सनातनः ॥१८
आविद्धं कुटिलं भुग्नं वेल्लितं वक्रमित्यपि।
चञ्चलं तरलं चैव कठोरं जठरं दृढम् ॥१९
प्रत्यग्रोऽभिनवो [1]नव्यो नवीनो नूतनो नवः।
एकतानोऽनन्यवृत्तिरुच्चण्डमविलम्बितम् ॥२०
उच्चावचं नैकभेदं संवाधकलिलं तथा।
तिमितं स्तिमितं क्लिन्नमभियोगस्त्वभिग्रहः ॥२१
स्फातिर्वृद्धौ प्रथा ख्यातौ समाहारः समुच्चयः।
अपहारस्त्वपचयो विहारस्तु परिक्रमः ॥२२

स्तोक; अल्प, क्षुल्लक, सूक्ष्म, श्लक्ष्ण, दभ्र, कृश, तनु, माया, त्रुटि, लव और कण—ये स्वल्प या सूक्ष्म अर्थ के वाचक हैं। भूयिष्ठ, पुरुह और पुरु—

---

१ ख. ग. °व्योह्यस्रमत्यन्तपश्चिमम्। ए°।

ये अधिक अर्थ के बोधक हैं। अखण्ड, पूर्ण और सकल---ये समग्र के वाचक हैं। उपकण्ठ, अन्तिक, अभितः, संनिधि और अभ्याश---ये समीप अर्थ में आते हैं। अत्यन्त निकट को नेदिष्ठ कहते हैं। बहुत दूर के अर्थ में दविष्ठ शब्द का प्रयोग होता है। वृत्त, निस्तल और वर्तुल---ये गोलाकार के वाचक हैं। उच्च प्रांशु, उन्नत और उदग्र—ये ऊँचा के अर्थ में आते हैं। ध्रुव, नित्य और सनातन—ये नित्य अर्थ के बोधक हैं। आविद्ध, कुटिल, भुग्न, वेल्लित और वक्र—ये टेढ़े का बोध कराने वाले हैं। चञ्चल और तरल---ये चपल के अर्थ में आते हैं। कठोर, जरठ और दृढ—ये समानार्थक शब्द है। प्रत्यग्र, अभिनव, नव्य, नवीन, नूतन और नव—ये नये के अर्थ में आते हैं। एकतान और अनन्यवृत्ति—ये एकाग्र चित्तवाले पुरुष के बोधक है। उच्चण्ड और अविलम्वित—ये फुर्ती के वाचक हैं। उच्चावच और नैकभेद---ये अनेक प्रकार के अर्थ में आते हैं। सम्बाध और कलित---ये संकीर्ण एवं गहन के बोधक हैं। तिमित, स्तिमित और क्लिन्न---ये आर्द्र या भीगे हुये के अर्थ में आते है। अभियोग और अभिग्रह—ये दूसरे पर किये हुए दोषारोपण के नाम हैं। स्फाति शब्द वृद्धि के और प्रथा शब्द ख्याति के अर्थ में आता है। समाहार और समुच्चय ये समूह के वाचक हैं। अपहार और अपचय---ये ह्रास का बोध कराने वाले हैं। विहार और परिक्रम---ये घूमने के अर्थ में आते हैं।१६-२२।

प्रत्याहार उपादानं निर्हारोऽभ्यवकर्षणम्।
विघ्नोऽन्तरायः प्रत्यूहः स्यादास्या त्वासना स्थितिः ॥२३
संनिधिः संनिकर्षः स्यात्संक्रमो दुर्गसंचरः।
उपलम्भस्त्वनुभवः प्रत्यादेशो निराकृतिः ॥२४
परिरम्भः परिष्वङ्गः संश्लेष उपगूहनम्।
अनुमा पक्षहेत्वाद्यैर्डिम्वे भ्रमरविप्लवौ ॥
असंनिकृष्टार्थज्ञानं शब्दाद्धि शाब्दमीरितम्।
सादृश्यदर्शनात्तुल्ये बुद्धिः स्यादुपमानकम् ॥२६
कार्यं दृष्ट्वा विना न स्यादर्थापत्तिः परार्थधीः।
प्रतियोगिन्यगृहीते भुवि नास्तीत्यभावकः ॥२७
[1]इत्यादिनामलिङ्गो हि [2]हरिरुक्तो नृबुद्धये ॥२८

---

१ 'इत्यादि······नृबुद्धये' नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः। २ ख. ग. °क्तो न दृश्यते। °इ।

प्रत्याहार और उपादान—ये इन्द्रियों को विषयों से हटाने के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। निर्हार तथा अभ्यवकर्षण—ये शरीर में धँसे हुए शस्त्रादि को युक्तिपूर्वक निकालने के अर्थ में आते हैं। विघ्न, अन्तराय और प्रत्यूह—ये विघ्न का बोध कराने वाले है। आस्या, आसना और स्थिति—ये बैठने की क्रिया के बोधक है। संनिधि और संनिकर्ष—ये समीप रहने के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। किले में प्रवेश करने की क्रिया को संक्रम और दुर्ग-संचर कहते हैं। उपलम्भ और अनुभव—ये अनुभूति के नाम है। प्रत्यादेश और निराकृति—ये दूसरे के मत का खण्डन करने में आते है। परिरम्भ, परिष्वङ्ग, संश्लेप और उपगूहन—ये आलिंगन के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। पक्ष और हेतु आदि के द्वारा निश्चित होने वाले ज्ञान का नाम अनुमा या अनुमान है। बिना हथियार की लड़ाई तथा भयभीत होने पर किये हुए शब्द का नाम डिम्ब, भ्रमर (या डमर) तथा विप्लव है। शब्द के द्वारा जो परोक्ष अर्थ का ज्ञान होता है, उसे शाब्दज्ञान कहते हैं। समानता देखकर जो उसके तुल्य वस्तु का बोध होता है, उसका नाम उपमान है। जहाँ कोई कार्य देखकर कारण का निश्चय किया जाय, अर्थात् अमुक कारण के बिना यह कार्य नहीं हो सकता है—इस प्रकार विचार करके जो दूसरी वस्तु अर्थात् कारण का ज्ञान प्राप्त किया जाय, उसे अर्थापत्ति कहते हैं। प्रतियोगी का ग्रहण न होने पर जो ऐसा कहा जाता है कि 'अमुक वस्तु पृथ्वी पर नही है। उसका नाम अभाव है। इस प्रकार मनुष्यों का ज्ञान बढ़ाने के लिए मैंने नाम और लिङ्गस्वरूप श्रीहरि का वर्णन किया है।२३-२८।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सामान्यनामकथनं नाम सप्तषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।।३६७

अथाष्टषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

प्रलयवर्णनम्

अग्निरुवाच—

चतुर्विधस्तु प्रलयो नित्यो यः प्राणिनां लयः ।
सदा विनाशो जातानां ब्राह्मो नैमित्तिको लयः ।।१

चतुर्युगसहस्रान्ते प्राकृतः प्रकृतौ लयः ।
लय आत्यन्तिको ज्ञानादात्मनः परमात्मनि ॥२
नैमित्तिकस्य कल्पान्ते वक्ष्ये रूपं लयस्य ते ।
चतुर्युगसहस्रान्ते क्षीणप्राये महीतले ॥३

अग्निदेव बोले—प्रलय के चार प्रकार हैं । उत्पन्न वस्तुओं और प्राणियों का सदा विनाश होते रहना 'नित्यलय', ब्रह्ममय समस्त सृष्टि का नाश होना 'नैमित्तिक लय' और चारों युगों के सहस्र बार व्यतीत होने पर प्रकृतिजनित समस्त वस्तुओं का प्रकृति में लीन हो जाना 'प्राकृत लय' तथा ज्ञान द्वारा आत्मा का परमात्मा में लीन हो जाना 'आत्यन्तिक लय' कहलाता है । (अब) मैं उस नैमित्तिक लय का विवरण बता रहा हूँ जो कल्प के अन्त में चारों युगों के सहस्र बार व्यतीत होने और भूमण्डल के क्षीणप्राय होने पर सम्भव होता है ।१-३।

अनावृष्टिरतीवोग्रा जायते शतवार्षिकी ।
ततः सत्त्वक्षयः स्याच्च ततो विष्णुर्जगत्पतिः ॥४
स्थितो जलानि पिबति भानोः सप्तसु रश्मिषु ।
भूपातालसमुद्रादितोयं नयति संक्षयम् ॥५
ततस्तस्यानुभावेन तोयाहारोपबृंहिताः ।
त एव रश्मयः सप्त जायन्ते सप्त भास्कराः ॥६
दहन्त्यशेषं त्रैलोक्यं सपातालतलं द्विज ।
कूर्मपृष्ठसमा भूः स्यात्ततः कालाग्निरुद्रकः ॥७
शेषा हि श्वाससंपातः[1] पातालानि दहत्यधः ।
पातालेभ्यो भुवं विष्णुर्भुवः स्वर्गं दहत्यतः ॥८
अम्बरीषमिवाऽऽभाति त्रैलोक्यमखिलं तथा ।
ततस्तापपरीतास्तु लोकद्वयनिवासिनः ॥९
गच्छन्ति ते महर्लोकं महर्लोकाज्जनं ततः ।

उस समय सौ वर्षों तक निरन्तर अत्यन्त भीषण अनावृष्टि होती रहती है, जिससे समस्त प्राणियों का संक्षय हो जाता है । जगदीश्वर भगवान् विष्णु

---

१ छ. °पातात्पाता° ।

सूर्य की सातों किरणों में स्थित रहकर समस्त जल पी जाते है। इस प्रकार पृथिवी, पाताल और समुद्र आदि के जल के सूख जाने पर जल पीने के कारण बढ़ी हुयी सूर्य की वे सातों किरणें (पृथक् पृथक्) सात सूर्य के रूप में परिणत हो जाती हैं। अये द्विज ! उन्ही सातों सूर्यों द्वारा पाताल तल आदि समस्त त्रैलोक्य के भस्मसात् होने पर यह पृथ्वी कछुवे की पीठ की भांति कठोर हो जाती है। (सर्व प्रथम) कालाग्निरूपी रुद्रदेव नागराज शेष के श्वास द्वारा पाताल को भस्म करते हैं। पाताल से निकली हुयी अग्नि द्वारा पृथिवी, तथा पृथिवी से निकली हुयी अग्नि द्वारा विष्णुदेव स्वर्ग को भस्म कर डालते हैं। उस समय यह सम्पूर्ण त्रैलोक्य जलती हुयी भट्ठी की भांति दिखायी देता है। तत्पश्चात् उस अग्नि से संतप्त होकर दोनों लोकों के निवासी प्राणी महर्लोक को चले जाते हैं और महर्लोक से पुनः जनलोक की यात्रा प्रारम्भ करते हैं।४-९।

रुद्ररूपी जगद्दग्ध्वा मुखनिःश्वासतो हरेः ।।१०
उत्तिष्ठन्ति ततो मेघा नानारूपाः सविद्युतः।
शतं वर्षाणि वर्षन्तः शमयन्त्यग्निमुत्थितम् ।।११
सप्तर्षिस्थानमाक्रम्य स्थितेऽम्भसि शतं मरुत्।
मुखनिःश्वासतो विष्णोर्नाशं नयति तान्घनान् ।।१२
वायुं पीत्वा हरिः शेषे शेते चैकार्णवे प्रभुः।
ब्रह्मरूपधरः सिद्धैर्जलगैर्मुनिभिः स्तुतः ।।१३
आत्ममायामयीं दिव्यां योगनिद्रां समास्थितः।
आत्मानं वासुदेवाख्यं चिन्तयन्मधुसूदनः ।।१४
कल्पं शेते प्रबुद्धोऽथ ब्रह्मरूपी सृजत्यसौ।
द्विपरार्धं ततो व्यक्तं प्रकृतौ लीयते द्विज ।।१५
स्थानात्स्थानं दशगुणमेकस्माद्गुण्यते [1]स्थले।
ततोऽष्टादशमे (के) भागे परार्धमभिधीयते ।।१६
परार्धं द्विगुणं यत्तु प्राकृतः [2]प्रलयः स्मृतः।
अनावृष्ट्याऽग्निसंपर्कात्कृते संज्वलने द्विज ।।१७

रुद्ररूपी कालाग्नि द्वारा सम्पूर्ण संसार के जल जाने पर भगवान् विष्णु

१ क. ख. ग. मुने। २ क. ख. सलयः।

के निःश्वास द्वारा विद्युत् समेत अनेक भाँति के मेघ उत्पन्न होते हैं, जो सौ वर्ष तक निरन्तर बरसते हुये इस प्रचण्ड अग्नि को शान्त कर देते हैं। सप्तर्षि के स्थान में पहुंच कर वायु इस (अगाध) जल में सौ वर्ष तक ठहरकर भगवान् विष्णु के निःश्वास से उत्पन्न हुये उन मेघों को नष्ट करता रहता है। उस समय ब्रह्मरूपधारी प्रभु नारायण देव वायु पान करते हुये उस एकार्णव में शयन करते हैं, जिनकी स्तुति सिद्ध और मुनि गण वहाँ भी पहुँचकर किया करते है। इस प्रकार भगवान मधुसूदन अपनी मायारूपी और दिव्यरूपवाली उस योग निद्रा को प्राप्त कर अपने को वासुदेव के रूप में समझते हुए शयन करते रहते हैं। एक कल्प तक शयन करने के अनन्तर ब्रह्मस्वरूप नारायण देव जागकर पुनः इस संसार का निर्माण करते हैं और द्विज! व्यक्त रूप यह सारा ब्रह्माण्ड द्विपरार्ध काल तक प्रकृति में लीन रहता है। एक संख्या को दश से गुणा करके उसे पुनः आठ-बार दश-दश से गुणा करने पर जो संख्या बनती है उसे परार्ध कहा जाता है। अये द्विज! परार्ध के दुगुने समय तक प्राकृतिक वस्तुओं आदि का प्रकृति में लीन रहना प्राकृत लय कहलाता है। यह अनावृष्टि और अग्निदाह द्वारा उत्पन्न होता है।१०-१७।

महदादेर्विकारस्य [1]विशेषान्तस्य संक्षये।
कृष्णेच्छाकारिते तस्मिन्संप्राप्ते प्रतिसंचरे ॥१८
आपो ग्रसन्ति वै पूर्वं भूमेर्गन्धादिकं गुणम्।
[2]आत्मगन्धा ततो भूमिः प्रलयत्वाय कल्पते ॥१९
रसात्मिकाश्च तिष्ठन्ति ह्यापस्तासां रसो गुणः।
पीयते ज्योतिषा तासु नष्टास्वग्निश्च दीप्यते ॥२०
ज्योतिषोऽपि गुणं रूपं वायुर्ग्रसति भास्क (स्व) रम्।
नष्टे ज्योतिषि वायुश्च बली दोधूयते महान् ॥२१
वायोरपि गुणं स्पर्शमाकाशं ग्रसते ततः।
वायौ नष्टे तु चाऽऽकाशं नीरवं तिष्ठति द्विज ॥२२

भगवान् कृष्ण की इच्छा से जनित उस प्रलय में महदादि विकारों का उस अपने विशेष (सूक्ष्मताओं) में लीन होने पर जल सर्व प्रथम भूमि के गन्धादि गुणों

१ छ. विशाषा°। २ ख. ग. आत्तगन्धा।

को नष्ट करता है। तत्पश्चात् गन्धहीन होने पर पृथिवी भी नष्ट हो जाती है। केवल रसात्मक वस्तुएँ और जल ही शेष रह जाते हैं, किन्तु उनके रस रूपी गुण को तेज पी जाता है। जिससे नष्ट हुयी अग्नि पुनः प्रदीप्त हो जाती है। उसी प्रकार तेज के उस रोचनशील गुण को वायु ग्रसित कर लेता है, जिसके कारण उस ज्योति के नष्ट होने पर वायु अत्यन्त प्रचण्ड होकर सबको कम्पित करने लगता है। अये द्विज ! वायु के स्पर्श गुण को आकाश नष्ट कर देता है और वायु के विनष्ट होने पर आकाश नितान्त नीरव हो जाता है।१८-२२।

आकाशस्याथ वै शब्दं भूतादिर्ग्रसते च खम्।
अभिमानात्मकं खं च भूतादिं ग्रसते महान् ॥२३
भूमिर्याति लयं चाप्सु आपो ज्योतिषि तद्व्रजेत्।
वायौ वायुश्च खे खं च अहंकारे लयं स च ॥२४
महत्तत्त्वे महान्तं च प्रकृतिर्ग्रसते द्विज।
व्यक्ताऽव्यक्ता च प्रकृतिर्व्यक्तस्याव्यक्तके लयः ॥२५
पुमानेकाक्षरः शुद्धः सोऽप्यंशः परमात्मनः।
प्रकृतिः पुरुषश्चैतौ लीयेते परमात्मनि ॥२६
न सन्ति यत्र सर्वेशे नामजात्यादिकल्पनाः।
सत्तामात्रात्मके ज्ञेये ज्ञानात्मन्यात्मनः परे ॥२७

उस समय आकाश के शब्द रूपी गुण को भूत (सूक्ष्म तत्त्व) आदि नष्ट करते हैं और अहंकार उन तत्त्वों को तथा उन्हें महान् नष्ट करता है। इस प्रकार पृथ्वी का लय जल में और जल का लय तेज में तेज का लय वायु में, वायु का लय आकाश में और आकाश का लय अहंकार में हो जाता है। अये द्विज ! प्रकृति महान् को महत्तत्त्व में विलीन करती है। प्रकृति व्यक्ति और अव्यक्त दोनों है। व्यक्त का अव्यक्त में लय होता है। एकक्षर. तथा शुद्ध पुरुष जो परमात्मा का ही अंश है, प्रकृति के साथ उस परमात्मा मे विलीन होता है जिस सर्वेश्वर में नाम और जाति आदि की कल्पना नहीं होती है तथा जो केवल सत्तामात्र, ज्ञानात्मा, आत्मा से परे और ज्ञेय रूप है।२३-२७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नित्यनैमित्तिकप्राकृतप्रलयवर्णनं नामाष्टषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः।३६८

— —

अथैकोनसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

आत्यन्तिकलयगर्भोत्पत्त्योर्निरूपणम्

अग्निरुवाच—

आत्यन्तिकं लयं वक्ष्ये ज्ञानादात्यन्तिको लयः ।
आध्यात्मिकादिसंतापं ज्ञात्वा स्वस्य विरागतः ॥१
आध्यात्मिकस्तु संतापः शारीरो मानसो द्विधा ।
शारीरो बहुभिर्भेदैस्तापोऽसौ श्रूयतां द्विज ॥२
([1]त्यक्त्वा जीवो भोगदेहं[2] गर्भमाप्नोति कर्मभिः ।
आतिवाहिकसंज्ञस्तु देहो भवति वै द्विज ॥३
केवलं स मनुष्याणां मृत्युकाल उपस्थिते ।
याम्यैः पुंभिर्मनुष्याणां तच्छरीरं द्विजोत्तम ॥४)
नीयते याम्यमार्गेण नान्येषां प्राणिनां मुने ।
ततः स्वर्याति नरकं स भ्रमेर्घ (द्व) टयन्त्रवत् ॥५

अग्निदेव बोले—(अब) मैं उस आत्यन्तिक लय का वर्णन कर रहा हूं, जो ज्ञान के द्वारा प्राप्त होता है और वह ज्ञान अपने आध्यात्मिक आदि संताप के जान लेने पर ही विराग द्वारा उत्पन्न होता है। अये द्विज ! शारीरिक और मानसिक भेदों से वह आध्यात्मिक संताप दो प्रकार का होता है। शारीरिक संताप में अनेक भेदों वाला होता है उन्हें सुनो। अये द्विज ! यह जीव अपने भोग शरीर का त्याग करके कर्मानुसार गर्भ में जाता है। उस समय उसकी 'आतिवाहिक' संज्ञा होती है। द्विजोत्तम ! मनुष्यों का मृत्यु काल उपस्थित होने पर यम के दूतगण दक्षिण रास्ते से उनका शरीर यमपुरी पहुँचा देते हैं। तत्पश्चात् वह जीव वहाँ पहुँच कर नीचे ऊपर होने वाले घट यन्त्र की भांति अपने कर्मानुसार स्वर्ग और नरक आया-जाया करता है। अये मुने ! अन्य प्राणियों के लिए वैसी व्यवस्था नहीं है।१-५।

कर्मभूमिरियं ब्रह्मन्फलभूमिरसौ स्मृता ।
यमो योनि (नी) श्च नरकान्निरूपयति कर्मणा ॥६

---

१ 'त्यक्त्वा······द्विजोत्तम' च पुस्तके नास्ति । २ क. ङ. °हं सर्वमा° ।

पूरणीयाश्च तेनैव यमं चैवानुपश्यताम् ।
वायुभूताः प्राणिनश्च गर्भं ते प्राप्नुवन्ति हि ॥७
यमदूतैर्मनुष्यस्तु नीयते तं च पश्यति ।
धर्मी च पूज्यते तेन पापिष्ठस्ताड्यते गृहे ॥८
शुभाशुभं कर्म तस्य चित्रगुप्तो निरूपयेत् ।
वान्धवानामशौचे तु देहे खल्वातिवाहिके ॥९
तिष्ठन्नयति धर्मज्ञ दत्तपिण्डाशनं ततः ।
तं त्यक्त्वा प्रेतदेहं तु प्राप्यान्यं प्रेतलोकतः ॥१०
वसेत्क्षुधातृषायुक्त आमश्राद्धान्नभुङ्नरः ।
आतिवाहिकदेहात्तु प्रेतपिण्डैर्विना नरः ॥११
न हि मोक्षमवाप्नोति पिण्डांस्तत्रैव सोऽश्नुते ।
कृते सपिण्डीकरणे नरः सम्वत्सरात्परम् ॥१२
प्रेतदेहं समुत्सृज्य भोगदेहं प्रपद्यते ।

ब्रह्मन् ! यह लोक कर्मभूमि है और परलोक फलभूमि यमराज जीव को उसके कर्मानुसार भिन्न-भिन्न योनियों तथा नरकों में डाला करते हैं। यमराज ही जीवों द्वारा नरकों को भरते हैं। वे ही इनके नियामक हैं। जीव वायु रूप होकर गर्भ में प्रविष्ट होते हैं। यम के दूतों द्वारा मनुष्य वहाँ पहुँचकर यमराज का दर्शन करता है। धार्मिक होने से यमराज द्वारा वहाँ उसका सुसम्मान होता है और पापी होने से उसे ताड़ना मिलती है। वहां चित्रगुप्त उसके शुभाशुभ कर्म को वता देते हैं। अये धर्मज्ञ ! वह आतिवाहिक संज्ञक जीव अन्त्येष्टि क्रिया में वान्धवों द्वारा दिए गये पिण्डदान भोजन से वञ्चित ही रह जाता है क्योंकि उसे उसके त्यागपूर्वक प्रेतलोक से प्राप्त अन्य प्रेतशरीर को धारण करके सदैव भूख-प्यास से व्याकुल ही रहना पड़ता है। उस आम (कच्चा) श्राद्ध-भोजी प्राणी प्रेत पिण्डदान के विना अपने उस आतिवाहिक शरीर से मुक्त नहीं हो पाता है। इसलिए वह उन्ही पिण्डों का भोजन करता है। इस प्रकार सपिण्डन हो जाने पर वर्ष के अनन्तर वह प्राणी उस प्रेत शरीर को त्यागकर भोग देह धारण करता है।९-१२½।

भोगदेहावुभौ प्रोक्तावशुभा (भ) शुभसंज्ञितौ ॥१३
भुक्त्वा तु भोगदेहेन [1]कर्मवन्धान्निपात्यते ।

१ क. ख. ग. °र्मं. स्वर्गान्नि° ।

तं देहं [1]परतस्तस्माद्भक्षयन्ति निशाचराः ।।१४
पापे तिष्ठति चेत्स्वर्गं तेन भुक्तं तदा द्विजं ।
तदा द्वितीयं गृह्णाति भोगदेहं तु [2]पापिनाम् ।।१५
भुक्त्वा तु पापं वै पश्चाद्येन भुक्तं त्रिविष्टपम् ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे स्वर्गभ्रष्टोऽभिजायते ।।१६
पुण्ये तिष्ठति चेत्पापं तेन भुक्तं तदा भवेत् ।
तस्मिन्संभक्षिते देहे शुभं गृह्णाति विग्रहम् ।।१७
कर्मण्यल्पावशेषे तु नरकादपि मुच्यते ।
मुक्तस्तु नरकाद्याति तिर्यग्योनिं न संशयः ।।१८

यह दोनों शुभ और अशुभ संज्ञक देह भोगदेह ही कही जाती है जिनके द्वारा वह फलों के उपभोग पूर्वक अपने कर्मबन्धन को शिथिल करता है। उस देह के पतित होने पर राक्षसगण उसका भक्षण कर जाते हैं। अये द्विज ! उस पापी अवस्था में भी उसे स्वर्ग का उपभोग प्राप्त होता है किन्तु उस समय उसे दूसरी (शुभ) भोगदेह प्राप्त हो जाती है। पाप का परिणाम भोगने के अनन्तर वह जीव जो स्वर्ग-सुख का भी अनुभव कर लेता है और भी सम्पन्न तथा पवित्रकुल में जन्म ग्रहण करता है। उस पुण्य कुल एवं अवस्था में रहते हुए भी उसे पाप के परिणाम भोगने पड़ते हैं किन्तु पश्चात् उसे शुभ शरीर की प्राप्ति हो जाती है। कुछ थोड़े से कर्म शेष रहने पर उसे नरक से मुक्त कर दिया जाता है किन्तु वहां से मुक्त होने पर भी उसे तिर्यग् (पक्षी) आदि की योनि प्राप्त होती है इसमें सन्देह नहीं है।१३-१८।

जीवः प्रविष्टो गर्भं तु कललेऽप्यत्र तिष्ठति ।
घनीभूतं द्वितीये तु तृतीयेऽवयवास्ततः ।।१९
चतुर्थेऽस्थीनि त्वङ्मासं पञ्चमे रोमसंभवः ।
षष्ठे चेतोऽथ जीवस्य दुःखं विन्दति सप्तमे ।।२०
जरायुवेष्टिते देहे मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिस्तथा ।
मध्ये क्लीबं तु वामे स्त्री दक्षिणे पुरुषस्थितिः ।।२१
तिष्ठत्युदरभागे तु पृष्ठस्याभिमुखस्तथा ।
यस्यां तिष्ठत्यसौ योनौ तां स वेत्ति न संशयः ।।२२

१ क. ख. ङ. पततस्त । २ क. ख. पातितम् ।

सर्वं च वेत्ति वृत्तान्तमारभ्य [1]नरजन्मनः ।
[2]अन्धकारे च महतीं पीडां विन्दति मानवः ॥२३

जीव जिस गर्भ में प्रविष्ट होता है उसमें पहले मास में (स्त्री-पुरुष के रज वीर्य का) कलल होता है अर्थात् कल-कल शब्द होते हुए वह पकता है। दूसरे मास में वह घनीभूत होता है, तीसरे मास में उसमें अवयव उत्पन्न होते हैं, चौथे मास में हड्डियां, चमड़े और मांस बन जाते हैं और पाँचवें मास में रोम उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार शरीर के सर्वाङ्ग सम्पन्न होने पर छठे मास में उसमें जीव प्रविष्ट होता है और सातवें मास में उसे (नाना प्रकार के) कष्टों का अनुभव होने लगता है। जरायुवेष्टित देह में रहकर शिर से अञ्जलि लगाए वह प्राणी गर्भ के भीतर नपुंसक होने पर मध्य में, स्त्री होने पर बांये और पुरुष होने पर दाहिनी ओर स्थित रहता है। पीठ की ओर मुख किये स्थित रहता है। जिस योनि में वह रहता है उसे उसका पूर्ण ज्ञान रहता है। इसमें संशय नहीं। उसे अपने पूर्व जन्म का समस्त वृत्तान्त का वहाँ स्मरण होता है तथा उस अंधकार में उसे मार्मिक पीड़ा का घोर अनुभव भी होता है।१९-२३।

मातुराहारपीतं तु सप्तमे मास्युपाश्नुते ।
अष्टमे नवमे मासि भृशमुद्विजते तथा ॥२४
[3]व्यवायपीडामाप्नोति मातुर्व्यायामके तथा ।
व्याधिश्च व्याधितायां स्यान्मुहूर्तं शतवर्षवत् ॥२५
संतप्यते कर्मभिस्तु कुरुतेऽथ मनोरथान् ।
गर्भाद्विनिर्गतो ब्रह्मन्मोक्षज्ञानं करिष्यति ॥२६
सूतिवातैरधोभूतो निःसरेद्योनियन्त्रतः ।
पीड्यमानो मासमात्रं करस्पर्शेन दुःखितः[4] ॥२७
खशब्दात्क्षुद्रश्रोतांसि देहे श्रोत्रं विविक्तता ।
श्वासोच्छ्वासौ गतिर्वायोर्वक्रसंस्पर्शनं तथा ॥२८
अग्रे रूपं दर्शने स्यादूष्मा पङ्क्तिश्च पित्तकम् ।
मेधा वर्णं बलं छाया तेजः शौर्यं शरीरके ॥२९

---

१ क. ख. ङ. °नवज° । २ छ. अन्धकारं । ३ छ. °वाये पी° । ४ ख. ग. °तः ॥ शब्दादिक्षुद्रस्रोतांसि देहे श्रोत्राविधि तथा । श्वा° ।

जलात्स्वेदश्च रसनं देहे वै संप्रजायते ।
[1]क्लेदो वसा रसा रक्तं शुक्रमूत्रकफादिकम् ।।३०

सातवें मास में माँ के अन्न-जल को प्राप्त करता है । इसी प्रकार आठवें, नवें मास में उसे अत्यन्त उद्विग्न होना पड़ता है । उसे मां के शारीरिक परिश्रम की पीड़ा का अनुभव होता है । इतना ही नहीं अपितु माता में किसी प्रकार की व्याधि उत्पन्न होने पर उसको मुहूर्त्त मात्र में सौ वर्ष की पीड़ा का अनुभव होने लगता है । उस समय वह अपने कर्म-बन्धनों से संतप्त होता है और उसमें अनेक प्रकार के मनोरथ उत्पन्न हो जाते हैं । 'अये ब्रह्मन् ! इस गर्भ से निकलकर मैं मोक्ष-ज्ञान ही प्राप्त करूँगा'—इस प्रकार की प्रार्थना करता है । पश्चात् प्रसूतिवायु द्वारा नीचे जाकर योनि-यन्त्र के बाहर निकलता है जो एक मास तक पीड़ित और कर-स्पर्श से भी दुःखी हो जाया करता है । उसकी देह में आकाश शब्द द्वारा दोनों कानों के निर्माण एवं उसकी विविक्तता होती है और वायु द्वारा, श्वास, उच्छ्वास गति और स्पर्श, अग्नि द्वारा (सबके) रूप को देखना तथा ऊष्मा, पङ्क्ति, पित्त, बुद्धि, वर्ण, बल, छाया, तेज और शौर्य उत्पन्न होते हैं । उसी प्रकार जल द्वारा स्वेद, जिह्वा, क्लेद, वसा, रस, रक्त, वीर्य, मूत्र और कफ आदि उत्पन्न होते हैं ।२४-३०।

भूमेर्घ्राणं [2]केशनखं रोम च शिरसतथा ।
मातृजानि मृदून्यत्र त्वङ्मांसहृदयानि च ।।३१
नाभिर्मज्जा शकृन्मेदः क्लेदान्यामाशयानि च ।
पितृजानि शिरा स्नायुः शुक्रं चैवाऽऽत्मजानि तु ।।३२
कामक्रोधौ भयं हर्षो धर्माधर्मातिमता[3] तथा ।
आकृतिः स्वरवर्णौ तु मेहनाद्यं तथा च यत् ।।३३
तामसानि तथा ज्ञानं प्रमादालस्यतृट्क्षुधाः ।
मोहमात्सर्यवैगुण्यशोकायासभयानि च ।।३४
कामक्रोधौ तथा शौर्यं यज्ञेप्सा बहुभाषिता ।
अहंकारः परावज्ञा राजसानि महामुने ।।३५

१ ख. ग. °दो रक्तं वसारक्तं शु° । २ छ. °खं गौरवं स्थिरतोऽस्थितः । मा° । ३ ख. ग. °मार्थता ।

धर्मेप्सा मोक्षकामित्वं परा भक्तिश्च केशवे ।
दाक्षिण्यं व्यवसायित्वं सात्त्विकानि विनिर्दिशेत् ॥३६
चपलः क्रोधनो भीरुर्बहुभाषी कलिप्रियः ।
स्वप्ने गगनश्चैव बहुवातो नरो भवेत् ॥३७

पृथ्वी द्वारा नाक, केश, नाखून, शिर के लोम तथा मातृ-जन्य (माता के अनुसार) कोमल त्वचा मांस और हृदय का निर्माण होता है। नाभि, मज्जा यकृत्, मेदा, आमाशय, नाड़ी, स्नायु, वीर्य, काम, क्रोध, भय, हर्ष, धर्म, अधर्म, आकृति, स्वर-वर्ण तथा लिंग आदि की रचना पिता के अनुसार होती है। ज्ञान, प्रमाद, आलस्य, भूख, प्यास, मोह, मात्सर्य गुण-हीनता, शोक, आयास और भय तमोगुण द्वारा उत्पन्न होते हैं। काम, क्रोध, शौर्य, यज्ञ की इच्छा, वहुभाषिता, अहंकार, दूसरे की अवहेलना करना रजोगुण द्वारा उत्पन्न होते है। उसी प्रकार धर्म की इच्छा, मोक्ष की कामना, भगवान् की उत्तम भक्ति दाक्षिण्य और व्यवसायी होना सतोगुण द्वारा प्राप्त होते है। वायु की अधिकता से मनुष्य चपल,-क्रोधी, भीरु, बहुभाषी, कलहप्रिय और स्वप्न में आकाश की यात्रा करने वाला होता है।३१-३७।

अकालपलितः क्रोधी महाप्राज्ञो रणप्रियः ।
स्वप्ने च दीप्तिमत्प्रेक्षी वहुपित्तो नरो भवेत् ॥३८
([1]स्थिरमित्रः स्थिरोत्साहः स्थिराङ्गो द्रविणान्वितः ।
स्वप्ने जलसितालोकी वहुश्लेष्मा नरो [2]भवेत्) ॥३९
रसस्तु प्राणिनां देहे जीवनं रुधिरं तथा ।
लेपनं च तथा मांसं मेहस्नेहकरं तु तत् ॥४०
धारणं त्वस्थिमज्जा स्यात्पूरणं वीर्यवर्धनम् ।
शुक्रवीर्यकरं ह्योजः प्राणकृज्जीवसंस्थितिः ॥४१
ओजः शुक्रात्सारतरमापीतं हृदयोपगम् ।
षडङ्गं सक्थिनी बाहुमूर्धाजठरमीरितम् ॥४२
षट् त्वचा बाह्यतो यद्वदन्या रुधिरधारिका ।
किलासधारिणी चान्या चतुर्थी कुण्डधारिणी ॥४३

---

१ 'स्थिरमित्रः······भवेत्' छ. पुस्तके नास्ति। २ क. ख. ग. °त्। श्रीरस्थिप्रा°।

[1]पञ्चमीमिन्द्रियस्थानं[2] षष्ठी प्राणधरा मता ।
कला सप्तमी मांसधरा द्वितीया रक्तधारिणी ॥४४
यकृत्प्लीहाश्रया चान्या मेदोधराऽस्थिधारिणी ।
मज्जाश्लेष्मपुरीषाणां धरा पक्वाशयस्थिता ॥
षष्ठी पित्तधरा शुक्रधरा शुक्राशयाऽपरा ॥४५

जिसके असमय में ही बाल सफेद हो जायँ, जो क्रोधी, महाबुद्धिमान् और युद्ध को पसन्द करने वाला हो, जिसे सपने में प्रकाशमान वस्तुयें अधिक दिखायी देती हों, उसे पित्तप्रधान प्रकृति का मनुष्य समझना चाहिए । जिसकी मैत्री, उत्साह और अंग सभी स्थिर हों, जो धन आदि से सम्पन्न हो तथा जिसे स्वप्न में जल एवं श्वेत पदार्थों का अधिक दर्शन होता है, उस मनुष्य में कफ की प्रधानता रहती है । प्राणियों के शरीर में रस जीवन देने वाला होता है, रक्त लेपन का कार्य करता है तथा मांस मेहन एवं स्नेहन क्रिया का प्रयोजक है । हड्डी और मज्जा का काम है शरीर को धारण करना । वीर्य की वृद्धि शरीर को पूर्ण बनाने वाली होती है । ओज शुक्र एवं वीर्य का उत्पादक है वही जीव की स्थिति एवं प्राण की रक्षा करने वाला है । ओज शुक्र की अपेक्षा भी अधिक सार वस्तु है । वह हृदय के समीप रहता है । और उसका रंग कुछ-कुछ पीला होता है । दोनों जंघे (ये समस्त पैर के उपलक्षण हैं), दोनों भुजायें, उदर और मस्तक—ये छः अग बताये गये हैं । त्वचा के छह स्तर हैं । एक तो वही है, जो बाहर दिखायी देती है । दूसरी वह है, जो रक्त धारण करती है । तीसरी किलास (धातु विशेष) और चौथी कुण्ड (धातु विशेष) को धारण करने वाली है । पाँचवीं त्वचा इन्द्रियों का स्थान है और छठी प्राणों को धारण करने वाली मानी गयी है । कला भी सात प्रकार की है—पहली मांस धारण करने वाली, दूसरी रक्तधारिणी, तीसरी जिगर एवं प्लीहा को आश्रय देने वाली, चौथी मेदा और अस्थि धारण करने वाली, पांचवीं मज्जा श्लेष्मा और पुरीष को धारण करने वाली, जो पक्वाशय में स्थित रहती है, छठी पित्त धारण करने वाली और सातवीं शुक्र धारण करने वाली है । यह शुक्राशय में स्थित रहती है ।३८-४५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेय आत्यन्तिकलयगर्भोत्पत्तिनिरूपणं नामैकोनसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।३६९

———

१ 'पञ्चमी''' मता' नास्ति छ. पुस्तके । २ क. ङ. °मी चित्रधिष्टानं ष° ।

अथ सप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

शरीरावयवाः

अग्निरुवाच —

श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा घ्राणं धीः खं च भूतगम् ।
शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः खादिषु तद्गुणाः ॥१
पायूपस्थौ करौ पादौ वाग्भवेत्कर्म खं तथा ।
उत्सर्गानन्दकादानगति[1] वागादिकर्म तत् ॥२
पञ्च कर्मेन्द्रियाण्यत्र पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि च ।
इन्द्रियार्थाश्च पञ्चैव महाभूता मनोधिपाः ॥३
आत्माऽव्यक्तश्चतुर्विंशत्तत्त्वानि[2] पुरुषः परः ।
संयुक्तश्च वियुक्तश्च यथा मत्स्योदके उभे ॥४
अव्यक्तमाश्रितानीह रजः सत्त्वतमांसि च ।
[3]आन्तरः पुरुषो जीवः स परं ब्रह्म कारणम् ॥५

अग्निदेव बोले—कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका—ये ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। आकाश सभी भूतों में व्यापक है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये क्रमशः आकाश आदि पाँच भूतों के गुण है। गुदा उपस्थ (लिङ्ग या योनि), हाथ, पैर और वाणी—ये कर्मेन्द्रिय कहे गये हैं। मलत्याग, विषयजनित आनन्द का अनुभव, ग्रहण, चलन तथा वार्तालाप—ये क्रमशः उपर्युक्त इन्द्रियों के कार्य हैं। पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच इन्द्रियों के विषय, पांच महाभूत, मन, बुद्धि, आत्मा (महत्तत्त्व), अव्यक्त (मूल प्रकृति) ये चौबीस तत्त्व हैं। इन सबसे परे है—पुरुष। वह इनसे संयुक्त भी रहता है और पृथक् भी, जैसे मछली और जल—ये दोनों एक साथ संयुक्त भी रहते हैं वियुक्त भी। रजोगुण, तमोगुण और सत्त्वगुण—ये अव्यक्त के आश्रित हैं। अन्तःकरण की उपाधि से युक्त पुरुष 'जीव' कहलाता है, वही निरुपाधिक स्वरूप से 'परब्रह्म' कहा गया है जो सबका कारण है।१-५।

---

१ ख. ग. °तिश्वासादिकर्मतः। प°। २ ख. ग. °त्त्वादिपु°। ३ क. ख. ग. अन्तरः।

स याति परमं स्थानं यो वेत्ति पुरुषं परम् ।
सप्ताऽऽशयाः स्मृता देहे रुधिरस्यैक आशयः ॥६
[1]श्लेष्मणश्चाऽऽमपित्ताभ्यां पक्वाशयस्तु पञ्चमः ।
वायुमूत्राशयः सप्त स्त्रीणां गर्भाशयोऽष्टमः ॥७
पित्तात्पक्वाशयोऽग्नेः स्याद्योनिर्विकशिता [2]द्युतौ ।
पद्मवद्गर्भाशयः स्यात्तत्र धत्ते सरक्तकम् ॥८
शुक्रं स्वशुक्रतश्चाङ्गं कुन्तलान्यत्र कालतः ।
न्यस्तं शुक्रमतो योनौ नैति गर्भाशयं मुने ॥९
ऋतावपि च योनिश्चेद्वातपित्तकफावृता ।
भवेत्तदा विकाशित्वं नैव तस्यां प्रजायते ॥१०

उस पुरुष श्रेष्ठ (परब्रह्म) को पूर्ण तथा जानने वाला (जीव) परम स्थान (मोक्ष) की प्राप्ति करता है। इस देह में सात आशय हैं। पहला रुधिर का आशय; दूसरा श्लेष्मा का आशय, तीसरा आमाशय, चौथा पित्त का आशय, पाँचवा पक्वाशय, छठा वायु का आशय और सातवाँ मूत्राशय होता है। स्त्रियों के आठवाँ गर्भाशय भी होता है। पित्त के तीक्ष्ण होने पर पक्वाशय द्वारा योनि का विकास होता है, जिसके भीतर कमल के आकार की भाँति गर्भाशय रहता है और जो रक्त समेत शुक्र धारण करता है। जिस समय शुक्र द्वारा अङ्गों और समयानुसार शिर के केश की उत्पत्ति होती है उस समय (अर्थात् बच्चे के गर्भाशय में रहते समय) योनि में गिरा हुआ वीर्य गर्भाशय में नहीं पहुँचता है। हे मुने ! ऋतुकाल में भी वात, पित्त और कफ से घिरी हुई होने के कारण योनि में विकास नहीं होता है (अर्थात् उस समय गर्भ धारण नहीं हो सकता है)।९-१०।

बुक्कात्पुक्कसकप्लीहकृतकोष्ठाङ्गहृद्व्रणाः[3] ।
तण्डकश्च महाभाग निवद्धान्याशये मतः ॥११
रसस्य पच्यमानस्य साराद्भवति देहिनाम् ।
प्लीहा यकृच्च धर्मज्ञ रक्तफेनाच्च पुक्कसः ॥१२
रक्तं पित्तं च भवति [4]तथा तण्डकसंज्ञकः ।
मेदो रक्तप्रसाराच्च बुक्कायाः संभवः स्मृतः ॥१३

१ ख. ग. °ष्मणः श्वासपि° । २ क. ङ. क्षुतौ । ख. ध्रुतौ । ग. द्रुता ।
३ क. ङ. °णाः । उण्डरुश्च । ख. °णाः । डुण्डुकश्च । ४ क. ङ. °था डण्डुक° ।

रक्तमांसप्रकाराच्च भवन्त्यन्त्राणि देहिनाम् ।
[1]सार्धत्रिव्यायाम (व्याम) संख्यानि तानि नृणां
विनिर्दिशेत् ॥१४
त्रिव्यामानि तथा स्त्रीणां प्राहुर्वेदविदो जनाः ।
रक्तवायुसमायोगात्कामे[2] यस्योद्भवः स्मृतः ॥१५

वुक्का से फुक्कस, प्लीहा, यकृत्, कोष्ठाङ्ग, हृदय, व्रण तथा तण्डक होते हैं। ये सभी आशय में निवद्ध है। प्राणियों के पकाये जाने वाले रस के सार से प्लीहा और यकृत् होते है। हे धर्म के ज्ञाता! रक्त के फेन से पुक्कस की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार रक्त, पित्त तथा तण्डक भी उत्पन्न होते हैं। मेदा और रक्त के प्रसार से वुक्का की उत्पत्ति होती है। रक्त और मांस के प्रसार से देहधारियों की आंतें वनती हैं। पुरुष की आंतों का परिमाण साढ़े तीन व्याम लम्बी वतलाते हैं। रक्त और वायु के संयोग से काम का उदय होता है।११-१५।

कफप्रसाराद्भवति हृदयं पद्मसंनिभम् ।
अधोमुखं तच्छुषिरं यत्र जीवो व्यवस्थितः ॥१६
चैतन्यानुगता भावाः सर्वे तत्र व्यवस्थिताः ।
तस्य वामे यथा प्लीहा दक्षिणे च तथा यकृत् ॥१७
दक्षिणे च तथा क्लोम पद्मस्यैवं प्रकीर्तितम् ।
श्रोतांसि यानि देहेऽस्मिन्कफरक्तवहानि च ॥१८
तेषां भूतानुमानाच्च भवतीन्द्रियसंभवः ।
नेत्रयोर्मण्डलं शुक्लं कफाद्भवति पैतृकम् ॥१९
कृष्णं च मण्डलं वातात्तथा भवति मातृकम् ।
पित्तात्त्वङ्मण्डलं ज्ञेयं मातापितृसमुद्भवम् ॥२०

कफ के प्रसार से कमल की भांति हृदय उत्पन्न होता है जिसके कोषाशय में यह जीव अधोमुख किये स्थित रहता है। उस स्थान में चैतन्य आदि उसके सभी भाव अनुगत होते रहते हैं। ठीक उसी प्रकार से जैसे उसके वांये भाग में प्लीहा और दाहिनी ओर यकृत् रहता है। उस कमल के दाहिनी ओर क्लोम

१ ख. ग. °व्यासर्सं। २ ख. ग. °त्कालीय°।

रहता है। इस देह में कफ और रक्त आदि के वाहक कान आदि हैं, वे उन्हीं पञ्चभूतों द्वारा उत्पन्न इन्द्रियों से ही उत्पन्न होने वाले हैं। दोनों नेत्रमण्डल का श्वेतभाग कफ से उत्पन्न तथा पैतृक होता है। नेत्रों का कृष्णभाग माता तथा वात के अंश से प्रकट होता है। पित्त द्वारा माता-पिता के संमिश्रण से त्वक् मण्डल उत्पन्न होता है।१६-२०।

मांसासृक्कफजा जिह्वा मेदोसृक्कफमांसजौ।
वृषा (ष) णौ दश प्राणस्य ज्ञेयान्यायतनानि तु ॥२१
मूर्धा हृन्नाभिकण्ठाश्च जिह्वा शुक्रं च शोणितम्।
गुदं वस्तिश्च गुल्फं च [1]कण्डुराः षोडशेरिताः ॥२२
द्वे करे द्वे च चरणे चतस्रः पृष्ठतो गले[2]।
देहे पादादिशीर्षान्ते [3]जालानि चैव षोडश ॥२३
मांसस्नायुशिरास्थिभ्यश्चत्वारश्च[4] पृथक्पृथक्।
मणिवन्धनगुल्फेषु निबद्धानि परस्परम् ॥२४
षट् कूर्चानि[5] स्मृतानीह हस्तयोः पादयोः पृथक्।
ग्रीवायां च तथा मेढ्रे कथितानि मनीषिभिः ॥२५

मांस, रक्त और कफ के सम्मिश्रण से जिह्वा की रचना होती है। मेदा, रक्त, कफ तथा मांस से अण्डकोष की उत्पत्ति होती है। प्राणी के दश स्थान बताये गये है--मूर्धा, हृदय, नाभि, कण्ठ, जिह्वा, शुक्र, शोणित, गुदा, वस्ति (मूत्राशय) तथा गुल्फ स्थान हैं। सोलह कण्डुरा होते हैं। हाथ पैर में दो-दो पीठ और गले में चार-चार इस प्रकार देह में चरण से शिर तक सोलह जाल होते हैं। ये मांस, स्नायु (नसें) शिरा (धमनी नाड़ी) से पृथक्-पृथक् मणिवन्ध और गुल्फ (एड़ी) में चार रूपों में निबद्ध हैं। हाथ और पैर से पृथक् पृथक् ग्रीवा तथा लिङ्ग में कूर्च होते हैं।२१-२५।

पृष्ठवंशस्योपगताश्चतस्रो मांसरज्जवः।
[6]तावन्त्य (त्य) श्च तथा पेश्यस्तासां वन्धनकारिकाः ॥२६

---

१ क. ख. ग. कण्डराः। २ ख. ग. °ले। द्वे द्वे पा°। ३ ख. ग. जानुनी द्वे च पो°। ४ छ. °स्थिन्यश्च°। ५ ख. ग. °ट् कूर्पाणि स्मृ°। ६ छ. नवत्यश्च।

[1]सीरण्यश्च तथा सप्त पञ्च मूर्धानमाश्रिताः ।
एकैका मेढ्रजिह्वास्ता अस्थिषष्टिशतत्रयम् ।।२७
सूक्ष्मैः सह चतुः षष्टिर्दशना विंशतिर्नखाः ।
पाणिपादशलाकाश्च तासां स्थानचतुष्टयम् ।।२८
षष्ट्यङ्गुलीनां द्वे पार्ष्ण्योर्गुल्फेषु च चतुष्टयम् ।
चत्वार्यरत्न्योरस्थीनि जङ्घयोस्तद्वदेव तु ।।२९
द्वे द्वे जानुकपोलोरुफलकांशसमुद्भवम् (द्भवे) ।
अक्षस्थानांशकश्रोणिफलके चैवमादिशेत्[2] ।।३०

पृष्ठ के मध्य भाग में जो मेरुदण्ड है, उसके निकट चार मांसमयी डोरियाँ है तथा उतनी ही पेशियाँ भी हैं, जो उन्हें बांधे रखती हैं। सात सीरणियाँ हैं। उनमें से पांच तो मस्तक के आश्रित हैं और एक-एक मेढ्र (लिंग) तथा जिह्वा में है। हड्डियाँ अठारह हजार हैं। सूक्ष्म और स्थूल—दोनों मिलकर चौसठ दांत है। बीस नख हैं। इनके अतिरिक्त हाथ और पैरों की शलाकाएँ हैं। जिनके चार स्थान हैं। अंगुलियों में साठ, एड़ियों में दो गुल्फों में चार, अरत्नियों में चार और जंघों में भी चार हड्डियाँ हैं। घुटनों मे दो, गालों में दो, ऊरुओं में दो, तथा फलकों के मूलभाग में भी दो ही हड्डियां हैं। इन्द्रियों के स्थानों तथा श्रोणिफलकों में भी इसी प्रकार दो-दो हड्डियां बतायी गयी है।२६-३०।

भगास्तोकं तथा पृष्ठे चत्वारिंशच्च पञ्च च ।
ग्रीवायां च तथाऽस्थीनि जत्रुकं च तथा हनुः ।।३१
तन्मूलं द्वे ललाटाक्षिगण्डनासाङ्घ्र्यवस्थिताः ।
पर्शुकास्तालुकैः सार्धमर्वुदैश्च द्विसप्ततिः ।।३२
द्वे शङ्खके कपालानि चत्वार्येव शिरस्थ था ।
उरः सप्तदशाऽस्थीनि संधीनां द्वे शते दश ।।३३
अष्टषष्टिस्तु शाखासु षष्टिश्चैकविवर्जिता ।
अन्तरा वै त्र्यशीतिश्च स्नायोर्नवशतानि च ।।३४
त्रिंशाधिके द्वे शते तु अन्तराधौ तु सप्ततिः ।
ऊर्ध्वगाः षट् शतान्येव शाखास्तु कथितानि तु ।।३५

१ क. ङ. सीवन्यश्च । ख. ग. सीदन्त्यश्च । २ क. ख °त् । तथा हस्ते त° ।

पञ्च पेशीशतान्येव चत्वारिंशत्तथोर्ध्वगाः ।
चतुः शतं तु शाखासु अन्तराधौ च षष्ठिका ॥३६
स्त्रीणां चैकाधिका वै स्याद्विंशतिश्चतुरुत्तरा ।
स्तनयोर्दश योनौ च त्रयोदश तथाऽऽशये ॥३७

भग में भी थोड़ी सी हड्डियां हैं। पीठ में पैंतालीस और गले में भी पैंतालीस हैं। गले की हँसली; ठोड़ी तथा उसकी जड़ में दो-दो अस्थियाँ हैं। ललाट, नेत्र, कपोल, नासिका, चरण, पसली, तालु तथा अर्बुद—इन सब में सूक्ष्म रूप से बहत्तर हड्डियाँ हैं। मस्तक में दो शंख और चार कपाल हैं तथा छाती में सत्रह हड्डियाँ हैं। संधियाँ दो सौ दश बतायी गई हैं। इनमें से शाखाओं में अड़सठ तथा उनसठ हैं और अन्तरा में तिरासी संधियां बतलायी गयी है। स्नायु की संख्या नौ सौ है, जिनमें से अन्तराधि में दो सौ तीस हैं, सत्तर ऊर्ध्वगामी हैं और शाखाओं में छह सौ स्नायु हैं। पेशियाँ पांच सौ बतलायी गयी हैं। इनमें चालीस तो ऊर्ध्वगामिनी है, चार सौ शाखाओं में हैं और साठ अन्तराधि में हैं। स्त्रियों की मांसपेशियां पुरुषों की अपेक्षा सत्ताईस अधिक हैं। उनमें दश दोनों स्तनों में, तेरह योनि में तथा चार गर्भाशय में स्थित हैं।३१-३७।

गर्भस्य च चतस्रः स्युः शिराणां च शरीरिणाम् ।
त्रिंशच्छतसहस्राणि तथाऽन्यानि नवैव तु ॥३८
षट्पञ्चाशत्सहस्राणि रसं देहे वहन्ति ताः ।
केदार इव कुल्याश्च क्लेदलेपादिकं च यत् ॥३९
द्वासप्ततिस्तथा [1]कोट्यो व्योम्नामिह महामुने ।
मज्जाया मेदसश्चैव वसायाश्च तथा द्विज ॥४०
मूत्रस्य चैव पित्तस्य श्लेष्मणः शकृतस्तथा ।
रक्तस्य सरसस्यात्र क्रमशोऽञ्जलयो मताः ॥४१
अर्धार्धाभ्यधिकाः सर्वाः पूर्वपूर्वाञ्जलेर्मताः ।
अर्धाञ्जलिश्च शुक्रस्य तदर्धं च तथौजसः ॥४२
रजसस्तु तथा स्त्रीणां चतस्रः कथिता बुधैः ।
शरीरं मलदोषादिपिण्डं ज्ञात्वाऽऽत्मनि त्यजेत् ॥४३

---

१ ख. ग. °ट्यो रोम्णामि° ।

देहधारियों के शरीर में तीस लाख नौ तथा छप्पन हजार नाड़ियां हैं। जैसे छोटी-छोटी नालियाँ क्यारियों में पानी बहाकर ले जाती हैं, उसी प्रकार वे नाड़ियाँ सम्पूर्ण शरीर में रस को प्रवाहित करती हैं। क्लेद और लेप आदि उन्हीं के कार्य हैं। महामुने! इस देह में बहत्तर करोड़ छिद्र या रोम—कूप हैं तथा मज्जा, मेदा, वसा, मूत्र, पित्त, श्लेष्मा, मल, रक्त और रस-इनकी क्रमश: 'अञ्जलियाँ' मानी गयी है। इनमें से पूर्व-पूर्व अञ्जलि की अपेक्षा उत्तरोत्तर सभी अञ्जलियाँ मात्रा में डेढ़ गुनी अधिक हैं। एक अञ्जलि में आधी वीर्य की आधी ओज की है। विद्वानों ने स्त्रियों के रज की चार अञ्जलियां बतायी है। यह शरीर मल और दोप आदि का पिण्ड हैं, ऐसा समझकर अपने अन्त:करण में इसके प्रति होने वाली आसक्ति का त्याग करना चाहिए।२८-४२।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शरीरावयवविभाग वर्णनं नाम सप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः।३७०

अथैकसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नरकनिरूपणम्

अग्निरुवाच—
उक्तानि 'यममार्गाणि[2] वक्ष्येऽथ मरणे नृणाम्।
ऊष्मा प्रकुपितः काये [3]तीव्रवायुसमीरितः ॥१
शरीरमुपरुध्याथ कृत्स्नान्दोषान्रुणद्धि वै।
छिनत्ति प्राणस्थानानि पुनर्मर्माणि चैव हि ॥२
शैत्यात्प्रकुपितो वायुश्छिद्रमन्विष्यते ततः।
द्वे नेत्रे द्वौ तथा कर्णौ द्वौ तु नासापुटौ तथा ॥३
ऊर्ध्वं तु सप्त च्छिद्राणि अष्टमं वदनं तथा।
एतैः प्राणो विनिर्याति प्रायशः शुभकर्मणाम्।४
अधः पायुरुपस्थं च अनेनाशुभकारिणाम्।
मूर्धानं योगिनो भित्त्वा जीवो यात्यथ चेच्छया ॥५

---

१ क. ङ. 'ममोक्षाणि। २ ख. ग. °र्गादि व°। ३ क. ख. 'वायुः स'।

अग्निदेव बोले—अब मैं उन यम के मार्गों के सम्बन्ध में बतलाऊँगा जो मनुष्यों के मरने पर प्राप्त होते हैं। शरीर में ऊष्मा के प्रकुपित होने पर उसे तीव्र वायु कहा जाता है। वह शरीर में अवरोध उत्पन्न करके सम्पूर्ण दोषों को अवरुद्ध करके प्राण-स्थानों और गर्भस्थानों को काट देती है। तदनन्तर शैत्य से प्रकुपित वायु अपने निर्गमन के लिए छिद्र खोजती है। दो नेत्र, दो कान, दो नासापुट, ऊर्ध्ववायुस्थान और मुख इन आठ मार्गों से प्रायः पुण्यात्माओं का प्राण निकलता है। पाप कर्म करने वाले के प्राण वायु उपस्थ स्थानों से निकलते हैं। जीव योगियों के मस्तक को तोड़कर इच्छानुसार निकल जाता है।१-५।

अन्तकाले तु सम्प्राप्ते प्राणेऽपानमुपस्थिते।
तमसा संवृते ज्ञाने संवृतेषु च मर्मसु ॥६
स जीवो नाभ्यधिष्ठानाच्चाल्यते मातरिश्वना।
बाध्यमानश्चाऽऽनयते अष्टाङ्गाः प्राणवृत्तिकाः ॥७
च्यवन्तं जायमानं वा प्रविशन्तं च योनिषु।
प्रपश्यन्ति च तं सिद्धा [1]देवा दिव्येन चक्षुषा ॥८
गृह्णाति तत्क्षणाद्योगे शरीरं चाऽऽतिवाहिकम्।
आकाशवायुतेजांसि विग्रहादूर्ध्वगामिनः ॥९
जलं मही च पञ्चत्वमापन्नः पुरुषः स्मृतः।
आतिवाहिकदेहं तु यमदूता नयन्ति तम् ॥१०

अन्तकाल उपस्थित होने पर जब प्राणवायु अपानवायु से मिलती है, ज्ञान अज्ञान से आवृत हो जाता है और सभी मर्मस्थान अवरुद्ध हो जाते हैं। उस समय जीव वायु के द्वारा नाभि स्थान से विचलित कर दिया जाता है और पुनः अवरुद्ध होकर प्राण वायु के आठ अंगों से मिल जाता है उस समय गिरते हुए, उत्पन्न होते हुए और योनियों में प्रविष्ट होते हुए उसे सिद्ध जन तथा देवगण अपने दिव्य चक्षु से देखा करते हैं। उस समय से वह जीव सूक्ष्म शरीर को ग्रहण कर लेता है। वह पुरुष ऊर्ध्वगामी शरीर से आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी में मिलकर पञ्चत्व प्राप्त कर लेता है। उस समय यमदूत उस सूक्ष्म शरीर को लेकर चलते हैं।६-१०।

---

१ ख. ग. देवं।

यांम्यं मार्ग महाघोरं षडशीतिसहस्रकम् ।
अन्नोदकं नीयमानो बान्धवैर्दत्तमश्नुते ॥११
यमं दृष्ट्वा यमोक्तेन चित्रगुप्तेन चेरितान् ।
प्राप्नोति नरकान्रौद्रान्धर्मी शुभपथैर्दिवम् ॥१२
भुज्यन्ते पापिभिर्वक्ष्ये नरकांस्ताश्च यातनाः ।
अष्टाविंशतिरेवाधः क्षितेर्नरककोटयः ॥१३
सप्तमस्य तलस्यान्ते घोरे तमसि संस्थिताः ।
घोराख्या प्रथमा कोटिः सुघोरा तदधः स्थिता ॥१४
अतिघोरा महाघोरा घोररूपा च पञ्चमी ।
षष्ठी तरलताराख्या सप्तमी च भयानका ॥१५

वहाँ वह महाभयंकर छियासी हजार योजन यम के मार्ग से ले जाया जाता हुआ अपने बन्धुओं के द्वारा दिये गये अन्न और जल को प्राप्त करता है। यम को देखकर यम के कहने से चित्रगुप्त के द्वारा प्रेरित भयङ्कर नरकों को प्राप्त करता है किन्तु धार्मिक व्यक्ति कल्याणप्रद मार्गो से स्वर्गलोक को चला जाता है। अब मैं उन नरकों का तथा उन यातनाओं का वर्णन करूँगा जिनका भोग पापियों द्वारा किया जाता है। पृथ्वी के नीचे अट्ठाइस करोड़ नरक हैं। सप्तम तल के नीचे घोर अन्धकार में रहने वाले घोर नामक नरक प्रथम कोटि में है। उनके नीचे सुघोर, अतिघोर, महाघोर और पांचवां घोर नामक नरक है। उसके नीचे छठा तरलतर और सातवां भयानक नामक नरक कहा गया है।११-१५।

भयोत्कटा कालरात्री महाचण्डा च चण्डया ।
कोलाहला प्रचण्डाख्या पद्मा नरकनायिका ॥१६
पद्मावती भीषणा च भीमा चैव करालिका ।
विकराला महावज्रा त्रिकोणा पञ्चकोणिका ॥१७
सुदीर्घा वर्तुला सप्तभूमा चैव [1]सुभूमिका ।
[2]दीप्तमायाऽष्टाविंशतयः कोटयः पापिदुःखदाः ॥१८
अष्टाविंशतिकोटीनां पञ्च पञ्च च नाय (यि) काः ।
रौरवाद्याः शतं चैकं चत्वारिंशच्चतुष्टयम् ॥१९

---

१ ख. ग. सुधूलिका। २ ख. ग. दीप्तायामष्टविंशत्याः को'।

तामिश्रमन्धतामिश्रं महारौरवरौरवौ ।
असिपत्रं (त्र) वनं चैव लोहभारं तथैव च ॥२०
नरकं कालसूत्रं च महानरकमेव च ।
संजीवनं महावीचि तपनं संप्रतापनम् ॥२१
[1]संघातं च सकाकोलं कुड्मलं पूतिमृत्तिकम् ।
लोहशङ्कुमृजीषं च प्रधानं शाल्मलीं नदीम् ॥२२
नरकान्विद्धि [2]कोटीशनागान्वै घोरदर्शनान् ।
पात्यन्ते पापकर्माणि एकैकस्मिन्वहुष्वपि ॥२३

भयोत्कटा, कालरात्रि, महाचण्डा, चण्ड्या, कोलाहला, प्रचण्डा और पद्मा, नरकनायिका, पद्मावती, भीषणा, भीमा, करालिका, विकराला, महावज्रा, त्रिकोणा, पंचकोणिका, सुदीर्घा, वर्तुला, सप्तभूमा, सुभूमिका और दीप्तमाया इत्यादि अट्ठाइस करोड़ नरकों की पाँच-पाँच नायिकायें हैं। रौरव इत्यादि पांच सौ चौसठ नरक हैं। जिनके नाम हैं—तामिश्र, अन्धतामिश्र, महारौरव, रौरव, असिपत्रवन, लोहभार, कालसूत्र, महानरक, संजीवन, महावीचि, तपन सम्प्रतापन, संघात, सकाकोल, कुड्मल, पूतिमृत्तिक, लोहशंकु, ऋजीष और शाल्मली—इनमें करोड़ों नाग रहा करते हैं और उनका दर्शन अत्यन्त भयंकर होता है। एक-एक अथवा अनेक पाप कर्मों के लिए मनुष्य इनमें डाल दिये जाते हैं।१६-२३।

[3]मार्जारोलूकगोमायुगृध्रादिवदनाश्च ते ।
तैलद्रोण्यां नरं क्षिप्त्वा ज्वालयन्ति हुताशनम् ॥२४
अम्बरीषेषु चैवान्यांस्ताम्रपात्रेषु चापरान् ।
अयस्पात्रेषु चैवान्यान्बहुवह्निकणेषु च ॥२५
शूलाग्रारोपितांश्चान्ये छिद्यन्ते नरकेऽपरे ।
ताड्यन्ते कशाभिस्तु भोज्यन्ते चाप्ययोगुडान् ॥२६
यमदूतैर्नराः पांशून्विष्ठारक्तकफादिकान् ।
तप्तं मद्यं पाययन्ति पाटयन्ति पुनर्नरान् ॥२७
यन्त्रेषु पीडयन्ति स्म भक्ष्यन्ते वायसादिभिः ।
तैलेनोष्णेन सिच्यन्ते छिद्यन्ते नैकधा शिरः ॥२८

---

१ ख. ग. संहारकं सं । २ ख. °शसंख्यान्वै । ३ ख. ग. °र्जारवृकगो° ।

हा तातेति क्रन्दमानाः स्वकं निन्दन्ति कर्म ते ।
महापातकजान्घोरान्नरकान्प्राप्यगर्हितान् ॥२९
कर्मक्षयात्प्रजायन्ते महापातकिनस्त्विह ।
मृगश्वशूकरोष्ट्राणां ब्रह्महा योनिमृच्छति ॥३०

वहाँ बिल्ली, उलूक, शृगाल और गृध्र आदि के समान मुख वाले यमदूत इन्हें तेल के कड़ाह में डालकर आग जला देते हैं। कुछ पापियों को तवों में, कुछ को ताम्रपात्रों में, कुछ को लौह पात्रों में और कुछ को बहुत से अग्नि कणों में डाल देते हैं। अन्य पापियों को काँटों से युक्त नरक में डालकर उन्हें छेदा जाता है। कुछ को चाबुकों से पीटा जाता है और कुछ को लोहे के ठोकरों को खाना पड़ता है। यमदूतों के द्वारा मनुष्यों को धूलि, विष्ठा, रक्त, कफ इत्यादि तथा तप्त, मद्य पिलाया जाता है। और उन्हें पुनः विदीर्ण किया जाता है। उन्हें यन्त्रों में पीसा जाता है और कौवों इत्यादि के द्वारा उनका भक्षण किया जाता है, उनके ऊपर गर्म तेल छिड़का जाता है तथा अनेक वार उनका सिर काटा जाता है ऐसा किया जाने पर हा तात! हा तात चिल्लाते हुए अपने कर्मों की निन्दा करते हैं क्योंकि इन्हें वड़े-बड़े पापों से उत्पन्न होने वाले घोर नरकों को प्राप्त करना पड़ता है। वे वड़े-बड़े पापी अपने कर्मों के नष्ट होने पर पुनः इस संसार में उत्पन्न होते हैं। ब्रह्महत्या करने वाला मृग, कुत्ता, शूकर ओर उष्ट्रों की योनि में जाता है।२३-३०।

खरपुक्कश (स) म्लेच्छानां मद्यपः स्वर्णहार्यपि ।
कृमिकीटपतङ्गत्वं गुरुगस्तृणगुल्मताम् ॥३१
ब्रह्महा क्षयरोगी स्यात्सुरापः श्यावदन्तकः ।
स्वर्णहारी तु कुनखी दुश्चर्मा गुरुतल्पगः ॥३२
यो येन संस्पृशत्येषां स तल्लिङ्गोऽभिजायते ।
अन्नहर्ता मायावी स्यान्मूको वागपहारकः ॥३३
धान्यं हृत्वाऽतिरिक्ताङ्गः पिशुनः पूतिनासिकः ।
तैलहृत्तैलपायी स्यात्पूतिवक्त्रस्तु सूचकः ॥३४
परस्य योषितं हृत्वा ब्रह्मस्वमपहृत्य च ।
अरण्ये निर्जने देशे जायते ब्रह्मराक्षसः ॥३५

---

१ ख. ग. निर्जले ।

मदिरा पान करने वाला गधा, नीच और म्लेच्छों की योनि प्राप्त करता है। सोने को चुराने वाला कीट पतङ्गों की योनि प्राप्त करता है। गुरुगामी तृण और गुल्म होता है। ब्रह्महत्या करने वाला क्षयरोगी, सुरापान करने वाला काले दाँतों वाला, सोने को चुराने वाला कुरूप नाखूनों वाला और गुरु की शय्या पर जाने वाला दुश्चर्म वाला होता है। जो जिस वस्तु का स्पर्श करता है वह उसके चिह्न से चिह्नित हो जाता है। अन्न को चुराने वाला मायावी और झूठ बोलने वाला मूक होता है। धान्य को चुराने वाला अतिरिक्त अंग से युक्त, चुगलखोर, दुर्गन्धयुक्त नासिका वाला होता है। तेल चुराने वाले को तेल पीना पड़ता है और गप लगाने वाला दुर्गन्धयुक्त मुखवाला होता है। परस्त्री और ब्राह्मणों के धन को चुराने वाला वन अथवा निर्जन स्थान में ब्रह्मराक्षस होता है।३१-३५।

रत्नहारी हीनजातिर्गन्धांश्छुच्छुन्दरी शुभान्।
पत्रं शाकं शिखी हृत्वा मुखरो धान्यहारकः ।।३६
अजः पशुं पयः काको यानमुष्ट्रः फलं कपिः।
मधु दंशः फलं गृध्रो गृहकाक उपस्करम् ।।३७
श्वित्री वस्त्रं सारसं च झिल्ली लवणहारकः।
उक्त आध्यात्मिकस्तापः शस्त्राद्यैराधिभौतिकः ।।३८
ग्रहाग्निदेवपीडाद्यै र (रा) धिदैविक ईरितः।
त्रिधा तापं हि संसार ज्ञानयोगाद्विनाशयेत् ।।३९
कृच्छ्रैर्व्रतैश्च दानाद्यैर्विष्णुपूजादिभिर्नरः ।।४०

रत्नों को चुराने वाला हीन जाति में उत्पन्न होता है और अच्छे-अच्छे सुगन्धित पदार्थों को चुराने वाला छछूँदर, शाक-पात चुराने वाला मयूर, धान्य को चुराने वाला कौवा, पशु का अपहरण करने वाला बकरा, दूध चुराने वाला कौवा, सवारी को चुराने वाला ऊँट, फल को चुराने वाला बन्दर, मधु को चुराने वाला मक्खी, फल को चुराने वाला गृध्र और अन्य सामग्री को चुराने वाला गृहकाक होता है। वस्त्र और सरस वस्तुयें चुराने वाला श्वेत कुष्ठ से युक्त और नमक चुराने वाला झींगुर होता है। यह आध्यात्मिक ताप का वर्णन किया गया है। शस्त्र आदि से कष्ट की प्राप्ति होना आधिभौतिक

१ छ. 'माद्मुक्ति'।

ताप है। आधिदैविक ताप उसे कहते हैं जो ग्रह, अग्नि, देवता जन्य पीड़ाओं से उत्पन्न होती है। तीनों प्रकार के तापों से युक्त इस संसार का विनाश ज्ञान, योग, हठयोग, व्रत और दान आदि तथा विष्णु के पूजन आदि से करना चाहिए।३६-४०।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नरकनिरूपणं नामैकसप्तत्यधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः।३७१

अथ द्विसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

यमनियमाः

अग्निरुवाच—
संसारतापमुक्त्यर्थं वक्ष्याम्यष्टाङ्गयोगकम्।
ब्रह्मप्रकाशकं ज्ञानं योगस्तत्रैकचित्तता ॥१
चित्तवृत्तिनिरोधश्च जीवब्रह्मात्मनोः परः।
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ ॥२
यमाः पञ्च स्मृता विप्र[1] नियमा भुक्तिमुक्तिदाः।
शौचं संतोषतपसी स्वाध्यायेश्वरपूजने ॥३

अग्निदेव बोले—(अब) मैं सांसारिक संतापों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए अष्टाङ्ग योग का वर्णन करूँगा जो ब्रह्म को प्रकाशित करने वाला ज्ञान है। योग कहते हैं चित्त की एकाग्रता को। चित्तवृत्ति का निरोध ही योग है जो कि जीवात्मा और ब्रह्मात्मा से परे रहा करता है। हे विप्र! यम पाँच कहे गये हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। भोग और मोक्ष को प्रदान करने वाले नियम हैं—शौच, सन्तोष, तपस्, स्वाध्याय और ईश्वर-पूजन।१-३।

भूतापीडा ह्यहिंसा स्यादहिंसा धर्म उत्तमः।
[2]यथा गजपदेऽन्यानि पदानि [3]पथगामिनाम् ॥४

---

१ छ. °माद्भुक्ति २ ख. °था नागप° ३ क. ख. ङ. पदगा°।

एवं सर्वमहिंसायां धर्मार्थमभिधीयते ।
उद्वेगजननं हिंसा संतापकरणं तथा ॥५
रुक्कृतिः शोणितकृतिः पैशुन्यकरणं तथा ।
हितस्यातिनिषेधश्च मर्मोद्घाटनमेव च ॥६
सुखापह्नुतिः संरोधो वधो दशविधा च सा ।
यद्भूतहितमत्यन्तं वचः सत्यस्य लक्षणम् ॥७
सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥८

प्राणियों को कष्ट न देना अहिंसा है। अहिंसा ही उत्तम धर्म है। जिस प्रकार पथिकों के सभी पद हाथी के पद में समाहित हो जाते हैं उसी प्रकार अहिंसा में सभी धर्मों का अन्तर्भाव बतलाया गया है। अहिंसा के दश प्रकार होते है—किसी को उद्विग्न करना, संतप्त करना, रोगी बनाना, रक्त निकालना, चुगली करना, हित का प्रतिषेध करना, मर्म भेदन करना, सुख को छिपाना, अवरोध उत्पन्न करना और वध करना। सत्यवाणी का लक्षण यह है कि उससे प्राणियों का अत्यन्त हित होना चाहिए। सत्य बोलना चाहिए किन्तु प्रिय बोलना चाहिए, अप्रिय सत्य नहीं बोलना चाहिए। प्रिय असत्य नहीं बोलना चाहिए, यही सनातन धर्म है। ४-८।

मैथुनस्य परित्यागो ब्रह्मचर्यं तदष्टधा ।
स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ॥९
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च ।
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥१०
ब्रह्मचर्यं क्रियामूलमन्यथा [1]विफला क्रिया ।
वशिष्ठश्चन्द्रमाः शुक्रो देवाचार्यः पितामहः ॥११
तपोवृद्धा वयोवृद्धास्तेऽपि स्त्रीभिर्विमोहिताः ।
गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेयास्त्रिविधाः सुराः ॥१२
चतुर्थी स्त्री सुरा ज्ञेया ययेदं मोहितं जगत् ।
माद्यति प्रमदां दृष्ट्वा सुरां पीत्वा तु माद्यति ॥१३
यस्माद्दृष्टमदा नारी तस्मात्तां नावलोकयेत् ॥

---

१ ख. ग. °फलाः क्रियाः । व° ।

मैथुन का परित्याग ब्रह्मचर्य कहलाता है। स्मरण, कीर्तन क्रीडा, दर्शन, गुप्तभाषण, संकल्प, अध्यवसाय और कर्मरूप विद्वानों ने मैथुन के इन आठ प्रकारों को बताया है। ब्रह्मचर्य ही सभी कर्मों का मूल और ब्रह्मचर्य का अभाव सभी कर्मों को विफल बनाने वाला होता है। वशिष्ठ, चन्द्रमा, शुक्राचार्य, वृहस्पति और ब्रह्मा ये सभी तपोवृद्ध और वयोवृद्ध थे। तथापि ये सभी स्त्रियों के द्वारा मोहित कर लिए गये। मदिरा तीन प्रकार की होती है—गौडी, पैष्टी, और माध्वी। चौथी प्रकार की मदिरा है स्त्री जिससे यह सारा जगत् मुग्ध हो जाता है। मदिरा का पान करने से प्रमत्तता उत्पन्न होती है किन्तु स्त्रियों को देखने मात्र से ही मद उत्पन्न होता है अतएव उसकी ओर देखना भी नहीं चाहिए।९-१३½।

यद्वा तद्वा परद्रव्यमपहृत्य बलान्नरः ॥१४
अवश्यं याति तिर्यक्त्वं जग्ध्वा चैवाहुतं हविः।
कौपीनाच्छादनं वासः कन्थां शीतनिवारिणीम् ॥१५
पादुके चापि गृह्णीयात्कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम्।
देहस्थितिनिमित्तस्य वस्त्रादेः स्यात्परिग्रहः ॥१६
शरीरं धर्मसंयुक्तं रक्षणीयं प्रयत्नतः।
शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यम (मा) भ्यन्तरं तथा ॥१७
मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भावशुद्धिरथाऽन्तरम्।
उभयेन शुचिर्यस्तु स शुचिर्नेतरः शुचिः ॥१८
यथा कथंचित्प्राप्त्या च संतोषस्तुष्टिरुच्यते।
मनसश्चेन्द्रियाणां च ऐकाग्र्यं तप उच्यते[1] ॥१९

बलपूर्वक दूसरे के धन का अपहरण करने से और देवताओं को दी गयी आहुति का भक्षण करने से मनुष्य निश्चय ही पक्षियोनि को प्राप्त कर लेता है। मनुष्य को कभी भी दूसरे (के धन) का सग्रह नही करना चाहिये चाहे उसे वस्त्र के रूप में शरीर ढकने को लंगोटी, शीत से बचने के लिए गुदड़ी और पैरों के खड़ाऊँ ही क्यों न मिले। वस्त्र इत्यादि का संग्रह तो केवल शरीर की रक्षा के लिए ही होता हैं क्योंकि कर्ममय शरीर की रक्षा यत्नपूर्वक करनी ही चाहिए। शौच दो प्रकार का बताया गया है—बाह्य शौच तथा

---

१ ख. ग. °ते। तत्तपः स° ।

आभ्यन्तर शौच। वाह्य शौच वह है जो मिट्टी और जल द्वारा उत्पन्न होता है। और आभ्यन्तर शौच कहते हैं भावनाओं की शुद्धि को। दोनों प्रकार के शौचों से युक्त मनुष्य ही पवित्र होता है अन्य नहीं। जिस किसी वस्तु को प्राप्त कर लेने से उत्पन्न होने वाला संतोष तुष्टि कहलाता है और तप कहते हैं मन और इन्द्रियों की एकाग्रता को।१४-१९।

तज्जयः सर्वधर्मेभ्यः स धर्मः पर उच्यते।
वाचिकं मन्त्रजप्यादि मानसं रागवर्जनम् ॥२०
शारीरं देवपूजादि सर्वदं तु त्रिधा तपः।
प्रणवाद्यास्ततो वेदाः प्रणवे पर्यवस्थिताः ॥२१
वाङ्मयः प्रणवः सर्वं तस्मात्प्रणवमभ्यसेत्।
अकारश्च तथोकारो मकारश्चार्धमात्रया ॥२२
तिस्रो मात्रास्त्रयो वेदा लोका भूरादयो गुणाः।
जाग्रत्स्वप्नः सुषुप्तिश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥२३
[1]ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्कन्ददेवीमहेश्वराः।
प्रद्युम्नः श्रीर्वासुदेवः सर्वमोङ्कारकः क्रमात् ॥२४
[2]अमात्रो नष्टमात्रश्च [3]द्वैतस्यापगमः शिवः।
ओंकारो विदितो येन स मुनिर्नेतरो मुनिः ॥२५

उसे ही सभी धर्मों से जीतना चाहिए क्योंकि वह परम धर्म कहा गया है। तप तीन प्रकार का होता है। मंत्र जाप आदि से होने वाला तप वाचिक, विराग से उत्पन्न होने वाला तप मानसिक और देवताओं के पूजन आदि से उत्पन्न होने वाला तप शारीरिक कहलाता है। तीनों प्रकार का तप सभी कुछ प्रदान करने वाला होता है। वेद ओंकार से आरम्भ होता है इसीलिए उनका पर्यवसान प्रणव में ही हो जाता है। सम्पूर्ण वाङ्मय प्रणवमय है इसलिए प्रणव का अभ्यास करना चाहिए। ओंकार में अकार, उकार, मकार और अर्धमात्रा रहते हैं। ओंकार के तीनों अक्षर तीन मात्राओं, तीन वेदों, तीनों लोकों, तीन गुणों के प्रतीक हैं। तीन अवस्थायें होती हैं जागृत्, स्वप्न और सुषुप्ति। तीन देवता हैं ब्रह्मा, विष्णु और महेश अथवा ब्रह्मा,

१ 'ब्रह्मा······महेश्वराः' छ. पुस्तके नास्ति। २ क. ङ. °त्रोऽनन्तमा°।
३ ख. ग. °तस्योप°।

विष्णु और रुद्र अथवा स्कन्द देवी अथवा महेश्वर अथवा प्रद्युम्न, श्री और वासुदेव। ये सभी क्रमशः ओंकार के ही प्रतीक हैं। अमात्र का अर्थ है जिसकी मात्रा नष्ट हो गई। यह है द्वैत का अभाव जिसे शिव कहा जाता है। जिसने ओंकार को जान लिया वही मुनि है अन्य मुनि नहीं है।२०-२५।

चतुर्थी मात्रा गान्धारी प्रयुक्ता मूर्ध्नि लक्ष्यते।
तत्तुरीय परंब्रह्म ज्योतिर्दीपो घटे यथा ॥२६
तथा हृत्पद्मनिलयं ध्यायेन्नित्यं जपेन्नरः।
प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ॥२७
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।
एतदेकाक्षरं ब्रह्म एतदेकाक्षरं परम् ॥२८
एतदेकाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्।
छन्दोऽस्य देवी गायत्री अन्तर्यामी ऋषिः स्मृतः ॥२९
देवता परमात्माऽस्य नियोगो भुक्तिमुक्तये।
भूरग्न्यात्मने हृदयं भुवः प्रा (प्र) जापत्यात्मने ॥३०
शिरः स्वः सूर्यात्मने च शिखा कवचमुच्यते।
ओं भूर्भुवः स्वः कवचं सत्यात्मने ततोऽस्त्रकम् ॥३१

ओंकार की चतुर्थी मात्रा गान्धारी है जो मस्तक के ऊपर प्रयुक्त दिखाई पड़ती है। वही अंतिम परब्रह्म है। जैसे घट में ज्योतिर्दीप रहा करता है उसी प्रकार हृदय कमल मे ब्रह्म रहा करता है मनुष्य को निरन्तर उसका ध्यान और जप करते रहना चाहिए। प्रणव, धनुष् और ब्रह्म लक्ष्य कहा जाता है। अप्रमत्त व्यक्ति के द्वारा उस (लक्ष्य) का वेधन करना चाहिए जिससे बाण स्थानीय आत्मा ब्रह्ममय हो जाती है। यह प्रणव रूप एकाक्षर ही परब्रह्म है। इस एकाक्षर का ज्ञान कर लेने से अभीष्ट की प्राप्ति हो जाती है। देवी गायत्री इसका छन्द और अन्तर्यामी ऋषि कहा गया है। परमात्मा इसका देवता है और विनियोग भुक्ति और मुक्ति के लिए किया जाता है। भूः अग्न्यात्मा का हृदय, भुवः प्रजापत्यात्मा का शिर और स्वः सूर्यात्मा का शिखारूप कवच कहा जाता है। इसीलिए ॐ भूः भुवः स्वः सत्यात्मा के लिए कवच-स्वरूप है।२६-३१।

विन्यस्य पूजयेद्विष्णुं जपेद्वै भुक्तिमुक्तये ।
जुहुयाच्च तिलाज्यादि सर्वं संपद्यते नरे ॥३२
यस्तु द्वादशसाहस्रं जपमन्वहमाचरेत् ।
तस्य द्वादशभिर्मासैः परं ब्रह्म प्रकाशते ॥३३
अणिमादि कोटिजप्याल्लक्षात्सारस्वतादिकम् ।
वैदिकस्तान्त्रिको मिश्रो विष्णोर्वै त्रिविधो मखः ॥३४
[1]त्रयाणामीप्सितेनैकविधिना हरिमर्चयेत् ।
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ नमस्कारेण योऽर्चयेत् ॥३५
स यां गतिमवाप्नोति न तां क्रतुशतैरपि ।
यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ॥
तस्यैते कथिता ह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मनः ॥३६

इसके द्वारा न्यास करके विष्णु का पूजन करना चाहिए तथा भू और मोक्ष के लिए इसी का जप करना चाहिए। इसके द्वारा तिल और आज्यादि की आहुति देने से मनुष्य सर्व-सम्पन्न हो जाता है। जो व्यक्ति प्रतिदिन इस मंत्र का बारह हजार जप करता है उसे बारह महीनों में ही परब्रह्म का प्रकाश प्राप्त हो जाता है। इसका एक करोड़ बार जप करने से अणिमा इत्यादि सिद्धियां तथा एक लाख जप करने से सारस्वत ज्ञान प्रान प्राप्त हो जाता है। विष्णु का यज्ञ तीन प्रकार का होता है वैदिक, तांत्रिक, और मिश्र। तीनों प्रकार की सिद्धि के लिए एक विधि से विष्णु का पूजन करना चाहिए। पृथ्वी के ऊपर दण्डवत् गिरकर नमस्कार के द्वारा जो व्यक्ति विष्णु की अर्चना करता है वह व्यक्ति जिस गति को प्राप्त करता है, उस गति को सौ यज्ञों से भी प्राप्त नहीं किया जा सकता है। जिस महात्मा पुरुष की भक्ति देवता और गुरु में समान होती हे उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं।३२-३६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये यमनियमनिरूपणं नाम द्विसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३७२

---

१ ख. ग. 'नैव वि° ।

अथ त्रिसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

आसनप्राणायामप्रत्याहाराः

अग्निरुवाच—

आसनं कमलाद्युक्तं तद्‌बद्‌ध्वा चिन्तयेत्परम् ।
शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।।१
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ।
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।।२
उपविश्याऽऽसने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ।
समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।।३
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ।
पार्ष्णिभ्यां वृषणौ रक्षंस्तथा प्रजननं पुनः ।।४

अग्निदेव बोले—कमल इत्यादि आसन बताये गये हैं इस आसन को लगाकर पवित्र स्थान में जाकर परमात्मा का चिन्तन करना चाहिए। आसन न तो अत्यन्त ऊंचा होना चाहिए और न तो अत्यन्त नीचा। यह वस्त्र, मृगचर्म अथवा कुश का होना चाहिए। मन को एकाग्र करके चित्त, इन्द्रिय और कर्मों को अपने वश में करके उस आसन के ऊपर बैठकर आत्म-शुद्धि के लिए योग में संलग्न होना चाहिए। पहले शरीर, शिर और ग्रीवा को एक साथ स्थिर करना चाहिए तदनन्तर दिशाओं की ओर देखते हुए केवल अपने नासिकाग्र का अवलोकन करना चाहिए। दोनों एड़ियों के द्वारा अण्ड कोषों और जननेन्द्रिय को छिपा लेना चाहिए।१-४।

ऊरुभ्यामुपरि स्थाप्य बाहू तिर्यक्प्रयत्नतः ।
दक्षिणं करपृष्ठं च न्यसेद्वामतलोपरि ।।५
उन्नम्य शनकैर्वक्त्रं मुखं विष्टभ्य चाग्रतः ।
प्राणः स्वदेहजो वायुस्तस्याऽऽयामो निरोधनम् ।।६

नासिकापुटमङ्गुल्याऽऽपीड्यैव च परेण च ।
औदरं रेचयेद्वायुं रेचनाद्रेचकः स्मृतः ॥७
वाह्येन वायुना देहं[1] दृतिवत्पूरयेद्यथा ।
तथा पूर्णश्च संतिष्ठेत्पूरणात्पूरकः स्मृतः ॥८
न मुञ्चति न गृह्णाति वायुमन्तर्बहिः स्थितम् ।
सम्पूर्णकुम्भवत्तिष्ठेदचलः स तु कुम्भकः ॥९

दोनों जंघाओं के ऊपर बाँहों प्रयत्नपूर्वक तिरछी करके रखना चाहिए । दाहिने हाथ के पृष्ठ भाग को बाँयें हाथ की हथेली के ऊपर रखना चाहिए । धीरे धीरे मुख को उठाकर आगे की ओर स्थिर कर लेना चाहिए । शरीर में रहने वाली वायु प्राणवायु कहलाती है उसका रोकना आयाम कहलाता है । एक उँगली से नासिकापुट को दबाकर दूसरे नासिकापुट से पेट की वायु को बाहर निकाला जाता है, इसलिए उसे रेचक कहते हैं । तदनन्तर बाहरी वायु के द्वारा शरीर को मशक के समान वायु से भरना चाहिए । इस प्रकार शरीर को वायु से पूर्ण करने को पूरक कहा गया है । कुम्भक उस क्रिया को कहते हैं जिसमें साधक न तो अन्दर की वायु को छोड़ता है, न तो बाहर की वायु को ग्रहण करता है अपितु पूर्ण घट की भाँति निश्चल बना रहता है ।५-९।

कन्यकः सकृदुद्घातः स वै द्वादशमात्रिकः ।
मध्यमश्च वि (द्वि) रुद्घातश्चतुर्विंशतिमात्रिकः ॥१०
उत्तमश्च त्रिरुद्घातः षट्त्रिंशत्तालमात्रकः ।
स्वेदकम्पाभिघातानां जननश्चोत्तमोत्तमः ॥११
अजितां नाऽऽरुहेद्भूमिं हिक्काश्वासादयस्तथा ।
जिते प्राणे स्वल्पदोषविण्मूत्रादि प्रजायते ॥१२
आरोग्यं शीघ्रगामित्वमुत्साहः स्वरसौष्ठवम् ।
वलवर्णप्रसादश्च सर्वदोषक्षयः फलम् ॥१३
जपध्यानं विनाऽगर्भः सगर्भस्तत्समन्वितः ।
इन्द्रियाणां जयार्थाय सगर्भं धारयेत्परम् ॥१४
ज्ञानवैराग्ययुक्ताभ्यां प्राणायामवशेन च ।
इन्द्रियांश्च (याणि) विनिर्जित्य सर्वमेव जितं भवेत् ॥१५

---

1 क. ङ. °हं भूमिव° । ख. ग. °हं भृतिव° ।

इन्द्रियाण्येव तत्सर्वं यत्स्वर्गनरकावुभौ ।
निगृहीतविसृष्टानि स्वर्गाय नरकाय च ॥१६

एक बार ओंकार के उच्चारण को कन्यक कहते हैं। जिसमें १२ मात्रायें होती हैं। दो बार ओंकार का उच्चारण मध्यम कहलाता है। इसमें चौवीस मात्राएँ होती हैं। और तीन बार ओंकार के उच्चारण को उत्तम कहा गया है। जिसमें छत्तीस ताल की मात्रायें होती हैं। इनमें क्रमशः स्वेद, कम्प और अभिघात उत्पन्न होता है। हिचकी और स्वास रोगियों को (योग की अजिता भूमि में पदार्पण नहीं करना चाहिए)। प्राणवायु को जीत लेने पर मलसूत्र इत्यादि दोष कम हो जाते है। योग के फल हैं—आरोग्य, शीघ्रगामित्व, उत्साह, स्वरसौष्ठव, वल, वर्ण का निखार तथा सभी दोषों का विनाश। जप और ध्यान के विना किया गया योग अगर्भ और जप तथा ध्यान से किया हुआ योग सगर्भ कहलाता है। इन्द्रियों के ऊपर विजय प्राप्त करने के लिए सगर्भ योग का अभ्यास करना चाहिए। ज्ञान, वैराग्य और प्राणायाम से इन्द्रियों को जीत लेने से सभी कुछ जीता जा सकता है। इन्द्रियाँ ही स्वर्ग और नरक दोनों हैं। इन्द्रिय-निग्रह स्वर्ग के लिए और उन्हें स्वतन्त्र छोड़ देना नरक के लिए होता है।१०-१६।

शरीरं रथमित्याहुरिन्द्रियाण्यस्य वाजिनः ।
मनश्च सारथिः प्रोक्तः प्राणायामः कशः स्मृतः ॥१७
ज्ञानवैराग्यरश्मिभ्यां[1] मायया विधृतं मनः ।
शनैर्निश्चलतामेति प्राणायामैकसंहितम् ॥१८
जलविन्दुं कुशाग्रेण मासे मासे पिबेत्तु यः ।
संवत्सरशतं साग्रं प्राणायामश्च तत्समः ॥१६
इन्द्रियाणिप्रसक्तानि प्रविश्य विषयोदधौ ।
आहृत्य यो निगृह्णाति प्रत्याहारः स उच्यते ॥२०
उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं मज्जमानं यथाऽम्भसि ।
भोगनद्यतिवेगेन ज्ञानवृक्षं समाश्रयेत् ॥२१

---

१ ख. ग. °श्मिभ्यामायम्य वि°।

शरीर को रथ कहा गया है और इन्द्रियां उसके घोड़े हैं मन सारथि और प्राणायाम चाबुक कहा गया है। ज्ञान और वैराग्य के द्वारा माया इस मन को पकड़ रखती है। जो केवल प्राणायाम के द्वारा ही शनैः-शनैः निश्चलता को प्राप्त करता है। एक सौ वर्षों तक प्रतिमास कुशाग्र से जलबिन्दु का पान करना और प्राणायाम करना ये दोनों एक समान हैं। विषय सागर में प्रवेश करके (विषयों में) आसक्त इन्द्रियों को पकड़ कर निगृहीत करना प्रत्याहार कहलाता है। जिस प्रकार जल में डूबता हुआ व्यक्ति किसी वस्तु का सहारा लेकर अपने आप को बाहर निकाल लेता है उसी प्रकार भोग नदी में निमज्जित होने वाले को ज्ञान वृक्ष का आश्रय लेना चाहिए।१७-२१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेय आसनप्राणायामप्रत्याहारनिरूपणं नाम त्रिसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः।३७३

———

अथ चतुःसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

ध्यानम्

अग्निरुवाच—

ध्यै चिन्तायां स्मृतो धातुर्विष्णुचिन्ता मुहुर्मुहुः।
अनाक्षिप्तेन मनसा ध्यानमित्यभिधीयते ॥१
आत्मनः समनस्कस्य मुक्ताशेषोपधस्य च।
ब्रह्मचिन्ता समा शक्तिर्ध्यानं नाम तदुच्यते ॥२
ध्येयालम्बनसंस्थस्य सदृशप्रत्ययस्य च।
प्रत्ययान्तरनिर्मुक्तः प्रत्ययो ध्यानमुच्यते ॥३
ध्येयावस्थितचित्तस्य प्रदेशे यत्र कुत्रचित्।
ध्यानमेतत्समुद्दिष्टं प्रत्ययस्यैकभावना ॥४
एवं ध्यानसमायुक्तः स्वदेहं यः परित्यजेत्।
कुलं स्वजनमित्राणि समुद्धृत्य हरिर्भवेत् ॥५

अग्निदेव बोले—चिन्ता करने के अर्थ में 'ध्यै' धातु का प्रयोग होता है। बार-बार एकाग्र मन से विष्णु का चिन्तन करना 'ध्यान' कहलाता है। मन

और आत्मा से सभी उपाधियों को छोड़कर ब्रह्मचिन्तन करना ही ध्यान कहलाता है। ध्यान योग्य आलम्बन में मन को स्थिर करके अन्य प्रकार की प्रतीति से मुक्त होना ध्यान कहलाता है। ध्येय में चित्त को स्थित करके यत्र तत्र उसी की प्रतीति का विश्वास करना ध्यान कहलाता है। इस प्रकार ध्यानावस्थित होकर जो व्यक्ति अपने शरीर का परित्याग करता है वह अपने कुल, स्वजन और मित्रों का उद्धार करके विष्णु हो जाता है।१-५।

एवं मुहूर्तमर्धं वा ध्यायेद्यः श्रद्धया हरिम्।
सोऽपि यां गतिमाप्नोति न तां सर्वैर्महामखैः ।।६
ध्याता ध्यानं तथा ध्येयं यच्च ध्यानप्रयोजनम्।
एतच्चतुष्टयं ज्ञात्वा योगं युञ्जीत तत्त्ववित् ।।७
योगाभ्यासाद्भवेन्मुक्तिरैश्वर्यं चाष्टधा महत्।
ज्ञानवैराग्यसंपन्नः श्रद्दधानः क्षमान्वितः ।।८
विष्णुभक्तः सदोत्साही ध्यातेत्थं पुरुषः स्मृतः।
मूर्तामूर्तं परं ब्रह्म हरेर्ध्यानं हि चिन्तनम् ।।९
सकलो निष्कलो ज्ञेयः सर्वज्ञः परमो हरिः।
अणिमादिगुणैश्वर्यं मुक्तिर्ध्यानप्रयोजनम् ।।१०

जो व्यक्ति इस प्रकार एक अथवा आधे क्षण श्रद्धापूर्वक विष्णु का ध्यान करता है वह जिस गति को प्राप्त कर लेता है उसे सभी यज्ञों द्वारा भी प्राप्त नहीं किया जा सकता है। ध्याता, ध्यान, ध्येय और ध्यान का प्रयोजन—इन चारों को जानकर तत्ववेत्ता व्यक्ति को योग में लग जाना चाहिए। योगाभ्यास से मोक्ष और आठ प्रकार का महान् ऐश्वर्य प्राप्त होता है। ध्याता पुरुष वह कहलाता है जो ज्ञान और वैराग्य से युक्त, श्रद्धावान्, क्षमाशील, विष्णुभक्त और सदा उत्साहवान् रहता है। परब्रह्म मूर्त और अमूर्त दोनों रूपों में रहता है। विष्णु का चिन्तन ही ध्यान कहलाता है। विष्णु सकल, निष्कल, ज्ञेय, सर्वज्ञ और सर्वश्रेष्ठ हैं। ध्यान का प्रयोजन है अणिमा आदि गुण, ऐश्वर्य और मोक्ष।६-१०।

फलेन योजको विष्णुरतो ध्यायेत्परेश्वरम्।
गच्छंस्तिष्ठन्स्वपञ्जाग्रदुन्मिषन्निमिषन्नपि ।।११

शुचिर्वाऽप्यशुचिर्वाऽपि ध्यायेत्सततमीश्वरम् ।
स्वदेहायतनस्यान्ते मनसि स्थाप्य केशवम् ॥१२
हृत्पद्मपीठिकामध्ये [1]ध्यानयोगेन पूजयेत् ।
ध्यानयज्ञः परः शुद्धः सर्वदोषविवर्जितः ॥१३
तेनेष्ट्वा मुक्तिमाप्नोति बाह्यशुद्धैश्च नाध्वरैः ।
हिंसादोषविमुक्तित्वाद्विशुद्धिश्चित्तसाधनः ॥१४
ध्यानयज्ञः परस्तस्मादपवर्गफलप्रदः ।
तस्मादशुद्धं संत्यज्य ह्यनित्यं बाह्यसाधनम् ॥१५
यज्ञाद्यं कर्म संत्यज्य योगमत्यर्थमभ्यसेत् ।
विकारमुक्तमव्यक्तं भोग्यभोगसमन्वितम् ॥१६

विष्णु ही फल को देने वाले है अतः चलते, रुकते, सोते, जागते आँखें खोले या आँखें बन्द किये हुए परमेश्वर (विष्णु) का ध्यान करते रहना चाहिए। मनुष्य चाहे पवित्र हो या अपवित्र उसे निरन्तर ईश्वर का ध्यान करते रहना चाहिए। शरीरान्त में मन में केशव को स्थापित करके हृदय-कमलासन में ध्यान योग से ईश्वर का पूजन करना चाहिए। ज्ञानयज्ञ अत्यन्त शुद्ध और सभी दोषों से रहित है। इसलिए ध्यानयज्ञ से ही मोक्ष प्राप्त होता है (केवल) बाह्य शुद्ध यज्ञों से नहीं। हिंसा और दोष से विमुक्त होने के कारण विशुद्धि ही चित्त का साधन है। इसलिए ज्ञान यज्ञ ही श्रेष्ठ और मोक्ष फल को देने वाला है। इसलिए बाह्य साधन को छोड़ देना चाहिए क्योंकि वह अशुद्ध और अनित्य होता है। यज्ञ इत्यादि कर्मों को छोड़कर निरन्तर योग का ही अभ्यास करना चाहिए क्योंकि वह विकाररहित अव्यक्त और भोग्य भोगों से युक्त रहता है।११-१६।

चिन्तयेद्धृदये पूर्वं क्रमादादौ गुणत्रयम् ।
तमः प्रच्छाद्य रजसा [2]सत्त्वेन च्छादयेद्रजः ॥१७
ध्यायेत्त्रिमण्डलं पूर्वं कृष्णं रक्तं सितं क्रमात् ।
सत्त्वोपाधिगुणातीतः पुरुषः पञ्चविंशकः ॥१८

---

१ क. ख. ङ. 'नमार्गेण पू॰' । २ ख. ग. '॰त्त्वेनाऽऽच्छा॰' ।

ध्येयमेतदशुद्धं च त्यक्ताशुद्ध विचिन्तयेत् ।
ऐश्वर्य पङ्कजं दिव्यं पुरुषोपरि संस्थितम् ॥१९
द्वादशाङ्गुलविस्तीर्ण शुद्धं विकसितं सितम् ।
नालमष्टाङ्गुलं तस्य नाभिकन्दसमुद्भवम् ॥२०
पद्मपत्राष्टकं ज्ञेयमणिमादिगुणाष्टकम् ।
कणिकाकेशरं नालं ज्ञानवैराग्यमुत्तमम् ॥२१
विष्णुधर्मश्च तत्कन्दमिति पद्मं विचिन्तयेत् ।
तद्धर्मज्ञानवैराग्यं शिवैश्वर्यमयं परम् ॥२२

सर्वप्रथम क्रमशः हृदय में तीनों गुणों का ध्यान करना चाहिए। तदन्तर रजोगुण से तमोगुण तथा सत्त्वगुण से रजोगुण को आच्छादित करके सूर्यमण्डल का ध्यान करना चाहिए। उसका क्रम यह है कि पहले कृष्ण फिर रक्त और अन्त में श्वेत वर्ण का ध्यान करना चाहिए। सत्त्व आदि गुणों से युक्त पंचविंशात्मक पुरुष होता है। यह ध्येय अशुद्ध होता है। चिन्तन उस पुरुष का करना चाहिए जो अत्यन्त शुद्ध होता है। पुरुष के ऊपर एक दिव्य और ऐश्वर्यसम्पन्न कमल स्थित रहता है। वह बारह अंगुल विस्तृत, शुद्ध, विकसित और श्वेत वर्ण का होता है। उसका नाल आठ अंगुल का होता है और उसकी उत्पत्ति नाभिरूपी कन्द से होती है। अणिमा इत्यादि आठ गुणों को कमल के आठ दल समझना चाहिए। ज्ञान और वैराग्य उसके क्रमशः कर्णिका-केशर और नाल हैं। विष्णु धर्म उसका कन्द है। इस प्रकार उस कमल का चिन्तन करना चाहिए। वह धर्म, ज्ञान वैराग्य तथा परम शिव और ऐश्वर्य से युक्त रहता है।१७-२२।

ज्ञात्वा पद्मासनं सर्वं सर्वदुःखान्तमाप्नुयात् ।
तत्पद्मकर्णिकामध्ये शुद्धदीपशिखाकृतिम् ॥२३
अङ्गुष्ठमात्रममलं ध्यायेदोङ्कारमीश्वरम् ।
कदम्बगोलकाकारं तारं रूपमिव स्थितम् ॥२४
ध्यायेद्वा रश्मिजालेन दीप्यमानं समन्ततः ।
[1]प्रधानं पुरुषातीतं स्थितं पद्मस्थमीश्वरम् ॥२५

१ ख. ग. 'धानपु' ।

ध्यायेज्जपेच्च सततमोकारं परमक्षरम् ।
मनःस्थित्यर्थमिच्छन्ति स्थूलध्यानमनुक्रमात् ॥२६
तद्भूतं निश्चलीभूतं लभेत्सूक्ष्मेऽपि संस्थितम् ।
नाभिकन्दे स्थितं नालं दशाङ्गुलसमायतम् ॥२७
नालेनाष्टदलं पद्मं द्वादशाङ्गुलविस्तृतम् ।
सकर्णिके केसराले सूर्यसोमाग्निमण्डलम् ॥२८
अग्निमण्डलमध्यस्थः शङ्खचक्रगदाधरः ।
पद्मी चतुर्भुजो विष्णुरथ वाऽष्टभुजो हरिः ॥२९

पद्मासन को जान लेने से सभी दुःखों का अन्त हो जाता है। उस कमल की कर्णिका के बीच में शुद्ध दीपशिखा की आकृति वाले अंगुष्ठमात्र निर्मल ईश्वर का चिन्तन करना चाहिए। कदम्ब, गोलक के आकार के रूप में उसकी स्थिति रहती है। वह चारों ओर से रश्मि-समूह के द्वारा दीप्त रहा करता है। वह प्रधान पुरुषातीत निश्चल और कमलासनस्थ रहता है। निरन्तर ओंकार रूप परम अक्षर का ध्यान और जप करना चाहिए। उससे ही सूक्ष्म नाभिकन्द के ऊपर निश्चल रूप से एक कमल स्थिर रहता है जिसका नाल दश अंगुल विस्तृत है। नाल के ऊपर अष्टदल कमल है जो बाहर अंगुल विस्तृत है। कर्णिकाओं और केसर के सहित वह सूर्य चन्द्रमा और अग्निमण्डल का प्रतीक होता है। अग्निमण्डल के बीच में शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म को धारण करने वाले चतुर्भुज अथवा अष्टभुज भगवान् विष्णु निवास करते हैं।२३-२९।

शार्ङ्गाक्षवलयधरः पाशांकुशधरः परः ।
स्वर्णवर्णः श्वेतवर्णः सश्रीवत्सः सकौस्तुभः ॥३०
वनमाली स्वर्णहारी स्फुरन्मकरकुण्डलः ।
रत्नोज्ज्वलकिरीटश्च पीताम्बरधरो महान् ॥३१
सर्वाभरणभूषाढ्यो वितस्तिर्वा यथेच्छया ।
अहं ब्रह्म ज्योतिरात्मा वासुदेवो विमुक्त ओम् ॥३२
ध्यानाच्छ्रान्तो जपेन्मन्त्रं जपाच्छ्रान्तश्च चिन्तयेत् ।
जपध्यानादियुक्तस्य विष्णुः शीघ्रं प्रसीदति ॥३३
जपयज्ञस्य वै यज्ञाः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
जपिनं नोपसर्पन्ति व्याधयश्चाऽऽधयो ग्रहाः ॥३४

भुक्तिर्मुक्तिर्मृत्युजयो जपेन [1]प्राप्नुयात्फलम् ।।३५

वे मृगचर्म और रुद्राक्ष धारण करने वाले हैं। दूसरे पाश और अंकुश को धारण करने वाले हैं। उनका रंग स्वर्णिम और श्वेत हैं। वे श्रीवत्स और कौस्तुभ को धारण करने वाले, वनमाली और स्वर्ग की कान्ति को चुराने वाले हैं। उनका कुण्डल भासमान तथा मुकुट रत्नों से उज्ज्वल रहता है। वे पीताम्बर धारण करने वाले सभी आभूषणों से विभूषित और स्वेच्छा से रूप धारण करने वाले हैं। मैं ब्रह्मज्योति आत्मा वासुदेव विमुक्त और ओंकार हूँ। इस प्रकार ध्यान करते हुए मंत्र का जप करना चाहिए और विष्णु का ध्यान करना चाहिए। इस प्रकार जप और ध्यान करने वाले से विष्णु शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं। (साधारण) यज्ञ जप यज्ञ की सोलहवी कला को भी प्राप्त नहीं करते हैं। जप करने वाले के पास आधियाँ, व्याधियाँ और ग्रह नही पहुँचते हैं। जप करने से भोग, मोक्ष और मृत्यु के ऊपर विजय फल रूप में प्राप्त होते हैं।३०-३५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये ध्याननिरूपणं नाम चतुःसप्तत्यधिक-त्रिशततमोऽध्यायः ।३७४

अथ पञ्चसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

धारणा

अग्निरुवाच—

धारणा [2]मनसो[3] ध्येये संस्थितिर्ध्यानवद्द्विधा ।
[4]मूर्तामूर्तहरिध्यानमनोधारणतो हरिः ।।१
[5]यद्बाह्यावस्थितं लक्ष्यं तस्मान्न चलते मनः ।
तावत्कालं प्रदेशेषु धारणा मनसि स्थितिः ।।२

---

१ ख. ग. °याद्धरिम् । २ क. ङ. °मथ संध्याय सं° । ३ ख. ग. °नसि ध्येयसं° । ४ 'मूर्तामूर्त...हरिः' नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः । ५ 'यद्बाह्यावस्थितं...मनः' इत्यत्र 'यदा व्यवसितं लक्षत्तत्समाल्लभते मनः' इति क. ङ. पुस्तकयोः ।

कालावधिपरिच्छिन्नं देहे संस्थापितं मनः ।
न प्रच्यवति यल्लक्ष्याद्धारणा साऽभिधीयते ॥३
धारणा द्वादशायामा[1] ध्यानं द्वादशधारणाः ।
ध्यानं द्वादशकं यावत्समाधिरभिधीयते ॥४
धारणाभ्यासयुक्तात्मा यदि प्राणैर्विमुच्यते ।
कुलैकविंशमुत्तार्य स्वर्याति परमं पदम् ॥५

अग्निदेव बोले—ध्येय में मन की स्थिति को धारणा कहा गया है। ध्यान के समान वह भी दो प्रकार की होती है। साकार और निराकार रूप में भगवान् विष्णु का चिन्तन और धारण करना, बाह्य अवस्थित लक्ष्य से मन का चञ्चल न होना और उन प्रदेशों में मन की स्थिति ही धारणा है। जिस समय शरीर में काल और समय से परे रहने वाला मन शरीर में स्थापित रहता है और वह अपने लक्ष्य से विचलित नहीं होता है उस समय धारणा होती है। धारणा में द्वादश आयाम होते हैं और ध्यान में द्वादश धारणायें रहा करती हैं। इस प्रकार के बारह ध्यानों को धारणा कहते हैं। धारणा के अभ्यास से युक्त आत्मा जिस समय प्राणों से मुक्त हो जाती है उस समय वह स्वर्ग में जाकर परमपद को प्राप्त कर लेती है।१-५।

यस्मिन्यस्मिन्भवेदङ्गे योगिनां व्याधिसंभवः ।
तत्तदङ्गं धिया व्याप्य धारयेत्तत्त्वधारणम् ॥६
आग्नेयी वारुणी चैव [2]ऐशानी चामृतात्मिका ।
साग्निः शिखा फडन्ता च विष्णोः कार्या द्विजोत्तम ॥७
नाडीभिर्विकटं दिव्यं शूलाग्रं वेधयेच्छुभम् ।
पादाङ्गुष्ठात्कपोलान्तं रश्मिमण्डलमादृतम् ॥८
तिर्यक्चाधोर्ध्वभागेभ्यः प्रयान्त्योऽतीव तेजसा ।
चिन्तयेत्साधकेन्द्रस्तं यावत्सर्वं महामुने ॥९
भस्मीभूतं शरीरं स्वं ततश्चैवोपसंहरेत् ।
शीतश्लेष्मादयः पापं विनश्यन्ति द्विजातयः ॥१०

---

१ क. ङ. °शाङ्गया ज्ञेयं द्वादशध्यानकम्। यस्मि°। २ क. ङ. °नी चैव, तैजसी। सा°।

योगियों को जिस-जिस अंग में व्याधि की उत्पत्ति होती है उस उस अंग में बुद्धि को व्याप्त करके तत्त्व चिन्तन करना चाहिए। अये द्विजोत्तम ! विष्णु के लिए, आग्नेयी, वारुणी, ऐशानी और अमृतात्मिका-धारण अग्नि के साथ फट् का उच्चारण करके शिखा बाँधनी चाहिए। नाड़ियों के द्वारा विकट और दिव्य शूलाग्र का बन्धन करना चाहिए। ऐसा करने से पैर के अंगूठे से कपोल तक शरीर रश्मियों से मंडित हो जाता है और वह तिर्यक्, नीचे तथा ऊपर सभी ओर अत्यन्त तेज से व्याप्त हो जाता है। हे महामुने ! श्रेष्ठ साधक को इस प्रकार चिन्तन करना चाहिए। भस्मीभूत शरीर का उपसंहरण इस प्रकार करना चाहिए जिससे शीत और श्लेष्मा आदि नष्ट हो जाते हैं।६-१०।

शिरो [1]धीरं विचारं च कण्ठं चाधोमुखे स्मरेत्।
ध्यायेदच्छिन्नचित्तामा[2] भूयोभूतेन चाऽऽत्मना ॥११
स्फुरच्छीकरसंस्पर्शप्रभूते[3] हिमगामिभिः।
धाराभिरखिलं विश्वमापूर्य भुवि चिन्तयेत् ॥१२
ब्रह्मरन्ध्राच्च संक्षोभाद्यावदाधारमण्डलम्।
सुषुम्नान्तर्गतो भूत्वा संपूर्णेन्दुकृतालयम् ॥१३
संप्लाव्य हिमसंस्पर्शतोयेनामृतमूर्तिना।
क्षुत्पिपासाक्रमप्रायसंतापपरिपीडितः ॥१४
धारयेद्वारुणीं मन्त्री तुष्ट्यर्थं चाप्यतंत्रितः।
वारुणी धारणा प्रोक्ता ऐशानी (नीं) धारणां शृणु ॥१५

शिर और विचार को स्थिर करके कण्ठ को नीचे की ओर करके निरन्तर आत्मा का चिन्तन करते रहना चाहिए। हिमवत् शीतल अमृतमूर्ति जल के द्वारा क्षोभवश ब्रह्मरन्ध्र से मूलाधार तक का चिन्तन करे। सम्पूर्ण चक्रमण्डल को आप्लावित करके सुषुम्णा नाड़ी के भीतर होकर पूर्ण चन्द्रमण्डल का चिन्तन करे। क्षुधा और पिपासा के संताप से प्राप्त होने वाले क्लेशों से अत्यन्त पीडित होकर तुष्टि के लिए वारुणीतत्त्व को धारण करना चाहिए। वारुणी धारणा के सम्बन्ध में बतलाया जा चुका है, अब ऐशानी धारणा के सम्बन्ध में सुनो।११-१५।

---

१ छ. रं च कारं। २ ख. ग. °त्तार्थः पापो भू°। ३ ख. °भूतमिह गा°।

व्योम्नि ब्रह्ममये पद्मे प्राणापाने क्षयं गते ।
प्रसादं चिन्तयेद्विष्णोर्यावच्चिन्ता क्षयं गता ॥१६
महाभावं जपेत्सर्व ततो व्यापक ईश्वरः ।
अर्धेन्दुं परमं शान्तं निराभासं निरञ्जनम् ॥१७
असत्यं सत्यमाभाति तावत्सर्व चराचरम् ।
यावत्स्वस्यन्दरूपं तु न दृष्टं गुरुवक्त्रतः ॥१८
दृष्टे तस्मिन्परे तत्त्वे आब्रह्म सचराचरम् ।
प्रमातृमानमेयं च ध्यानहृत्पद्मकम्पनम् ॥१९
मातृमोदकवत्सर्वं जपहोमार्चनादिकम् ।
विष्णुमन्त्रेण वा कुर्यादमृतां धारणां वदे ॥२०
सम्पूर्णेन्दुनिभं ध्यायेत्कमलं तन्त्रिमुष्टिगम् ।
शिरःस्थं चिन्तयेद्यत्नाच्छशाङ्कायुतवर्चसम् ॥२१
सम्पूर्णमण्डलं व्योम्नि शिवकल्लोलपूर्णितम् ।
तथा हृत्कमले ध्यायेत्तन्मध्ये स्वतनुं स्मरेत् ॥
साधको विगतक्लेशो जायते धारणादिभिः ॥२२

प्रौण और अपान नामक वायु के क्षीण हो जाने पर योगी को हृदयाकाश में ब्रह्ममय कमल के ऊपर विराजमान भगवान् विष्णु की कृपा का चिन्तन उस समय तक करना चाहिए जब तक कि चिन्तन ही (स्वयं) समाप्त न हो जाये। तदनन्तर उसे महाभाव का जप करना चाहिए। उस समय एक अर्धचन्द्र परम शान्त आभास रहित निरञ्जन रूप में सर्वव्यापक ईश्वर गुरु के मुख से निकलता हुआ प्रतीत होता है जिससे यह सारा असत्य चराचर सत्य के रूप में भासित होने लगता है। उस परम तत्त्व के दिखाई पड़ने पर ब्रह्म से लेकर सचराचर पर्यन्त प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय ध्यान और हृदय कमल तथा जप, होम, और पूजन इत्यादि सब कुछ मातृ-मोदक (खिलौने) के समान प्रतीत होने लगते हैं। विष्णुमन्त्र के द्वारा जिस अमृत-धारणा को करना चाहिए उसके सम्बन्ध में भी मैं बतला रहा हूँ। सम्पूर्ण चन्द्राकार कमल को तांत्रिक की मुष्टिगत समझना चाहिए। शिर में चन्द्रमा के तेज का ध्यान करना चाहिए। आकाश में सम्पूर्ण मण्डल को कल्याणमयी

लहरियों से युक्त समझकर हृदय कमल में उसका ध्यान करना चाहिए और उसके बीच में अपने शरीर का स्मरण करना चाहिए। इस प्रकार धारणा इत्यादि से साधक सभी क्लेशों से रहित हो जाता है।१७-२२।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये धारणानिरूपणं नाम
पञ्चसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।३७५

अथ षट्सप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

समाधिः

अग्निरुवाच—
यदात्ममात्रं निर्भासं स्तिमितोदधिवत्स्थितम्।
चैतन्यरूपवद्ध्यानं तत्समाधिरिहोच्यते ॥१
ध्यायन्मनः संनिवेश्य यस्तिष्ठेदचलः स्थिरः।
निर्वातानलवद्योगी समाधिस्थः प्रकीर्तितः ॥२

अग्निदेव बोले—मन की वह स्थिति जब वह आत्मोन्मुख, भासरहित प्रशान्त सागर के समान स्थिर और चैतन्य स्वरूप होता है तो उसे समाधि कहा जाता है। ध्यान करते हुये मन को वश में रखकर अचल और स्थिर रहने वाला, वायुहीन और अग्नि के समान रहने वाला योगी समाधिस्थ कहलाता है।१-२।

नशृणोति न चाऽऽघ्राति (?) न पश्यति न [1]रस्यति।
न च स्पर्शं विजानाति न संकल्पयते मनः ॥३
न चाभिमन्यते किंचिन्न च बुध्यति काष्ठवत्।
एवमीश्वरसंलीनः[2] समाधिस्थः स गीयते ॥४

उस समय वह न तो कुछ सुनता है, न सूंघता है, न देखता है, न आस्वादन करता है, न स्पर्श का अनुभव करता है, न संकल्प करता है, न

---

१ छ, वम्यति। २ ख. ग. °लीनो यस्तिष्ठेदचलस्थिरः। य°।

कुछ समझता है और न कुछ जानता है। इस प्रकार काष्ठ के समान प्रतीत होने वाला, ईश्वर में लीन रहने वाला योगी समाधिस्थ कहलाता है।३-४।

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
ध्यायतो विष्णुमात्मानं समाधिस्थस्य योगिनः॥५
उपसर्गाः प्रवर्तन्ते दिव्याः सिद्धप्रसूचकाः।
पातितः [1]श्रावणो धातुर्दर्शनस्वाङ्गवेदनाः॥६
प्रार्थयन्ति च तं देवा भोगैर्दिव्यैश्च योगिनम्।
नृपाश्च पृथिवीदानैर्धनैश्च सुधनाधिपाः॥७
वेदादिसर्वशास्त्रं च स्वयमेव प्रवर्तते।
अभीष्टच्छन्दो विषयं काव्यं चास्य प्रवर्तते॥८
रसायनानि दिव्यानि दिव्याश्चौषधयस्तथा।
समस्तानि च शिल्पानि कलाः सर्वाश्च विन्दति॥९
सुरेन्द्रकन्या इत्याद्या गुणाश्च प्रतिभादयः।
तृणवत्तां त्यजेद्यस्तु तस्य विष्णुः प्रसीदति॥१०

जिस प्रकार निर्वाण को प्राप्त होने वाले दीपक में स्थिरता उत्पन्न हो जाती है, समाधिस्थ योगी की समता उसी से की जाती है। अपने आपको विष्णुमय ध्यान करते हुए समाधिस्थ योगी के सभी दिव्य कर्म सिद्धि के सूचक हुआ करते हैं। इस प्रकार के योगी से देवता सभी दिव्य भोगों के द्वारा प्रार्थना किया करते हैं। राजा उनकी प्रार्थना पृथ्वी दान से, और धनिक धन से किया करते हैं। वेद आदि समस्त शास्त्र स्वयं ही उसके लिए प्रवृत्त हुआ करते हैं। उसके लिए सभी अभीष्ट छन्द और काव्य भी प्रवर्तित होने लगते हैं। वह (समाधिस्थ योगी) सभी दिव्य रसायन ओषधियों, समस्त शिल्प और सभी कलाओं को प्राप्त कर लेता है। जो व्यक्ति देवेन्द्र की कन्या इत्यादि तथा प्रतिभा इत्यादि गुणों का तृणवत् परित्याग कर देता है उससे विष्णु प्रसन्न होते हैं।५-१०।

अणिमादिगुणैश्वर्यः शिष्ये ज्ञानं प्रकाश्य च।
भुक्त्वा भोगान्यथेच्छातस्तनुं त्यक्त्वा लयात्ततः॥११

१ क. ख. ङ. °णो वार्तोदेश कालादिवे°।

तिष्ठेत्स्वात्मनि विज्ञान आनन्दे ब्रह्मणीश्वरे।
मलिनो हि यथाऽऽदर्श आत्मज्ञानाय न क्षमः ॥१२
[1]तथा विपक्षकरण आत्मज्ञानाय न क्षमः।
सर्वाश्रयान्निजे देहे देही विन्दति वेदनाम् ॥१३
योगयुक्तस्तु सर्वेषां योगान्नाऽऽप्नोति वेदनाम्।
आकाशमेकं हि यथा घटादिषु पृथग्भवेत् ॥१४
तथाऽऽत्मैको ह्यनेकेषु जलाधारेष्विवांशुमान्।
ब्रह्म खानिलतेजांसि जलभूक्षितिधातवः ॥१५

अणिमा इत्यादि गुणों से सम्पन्न वह योगी शिष्य में अपने ज्ञान को प्रकाशित करके तथा सभी भोगों का उपभोग करके इच्छानुसार अपने शरीर का परित्याग कर देता है। इसके बाद वह आत्मभूत, विज्ञानस्वरूप और आनन्दमय ब्रह्म में लीन हो जाता है। जिस प्रकार शीशा धुन्धला होने पर उसमें अपना रूप दिखाई नही पड़ता है उसी प्रकार इन्द्रियों के विरुद्ध होने पर आत्मज्ञान नही हो पाता है। आत्मा अपने शरीर में वेदना को स्वयं प्राप्त किया करती है। किन्तु योगी अपने योग के कारण किसी भी वेदना को प्राप्त नहीं करता है। जिस प्रकार एक ही आकाश घटादि में अलग-अलग दिखाई पड़ता है और जिस प्रकार विभिन्न जलाधारों में एक ही सूर्य अनेक रूपों में दिखाई पड़ता है उसी प्रकार अनेक शरीरों में रहने वाली एक ही आत्मा अनेक रूपों में दिखाई पड़ती है। ब्रह्म, आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी ये ब्रह्म के स्वरूप हैं। ११-१५।

इमे लोका एष चाऽऽत्मा तस्माच्च सचराचरम्।
मृद्दण्डचक्रसंयोगात्कुम्भकारो यथा घटम् ॥१६
करोति तृणमृत्काष्ठैर्गृहं वा गृहकारकः।
करणान्येवमादाय तासु तास्विह योनिषु ॥१७
सृजत्यात्मानमात्मैवं संभूय करणानि च।
[2]कर्मणा दोषमोहाभ्यामिच्छयैव स बध्यते ॥१८
ज्ञानाद्विमुच्यते जीवो धर्माद्योगी न रोगभाक्।
वर्त्याधारस्नेहयोगाद्यथा दीपस्य संस्थितिः ॥१९

१ 'तथा ...क्षमः' छ. पुस्तके नास्ति। २ ख. ग. °णा द्वेष°।

विक्रियाऽपि च दृष्ट्वैवमकाले प्राणसंक्षयः ।
अनन्ता रश्मयस्तस्य [1]दीपवद्यः स्थितो हृदि ।।२०

ये सम्पूर्ण लोक आत्मा ही है । आत्मा से ही चराचर जगत् की अभिव्यक्ति होती है । जिस प्रकार कुम्हार मिट्टी, दण्ड और चक्र के संयोग से घड़े का निर्माण करता है अथवा घर बनाने वाला तिनके, मिट्टी और लकड़ी से घर का निर्माण करता है उसी प्रकार आत्मा ही विभिन्न इन्द्रियों को लेकर विभिन्न योनियों में अपने आपका सृजन करती है । जीव कर्म, दोष, मोह और इच्छा से बँध जाता है और ज्ञान से मुक्त हो जाता है । धर्म के कारण योगी रोग का भोग नहीं करता है । जिस प्रकार वत्ती, पात्र और तेल के योग से दीपक बनता है इनमें से एक के अभाव में भी दीपक रह नहीं सकता उसी प्रकार योग और धर्म के बिना विकार (रोग) की प्राप्ति देखी जाती है और इस प्रकार अकाल में ही प्राणों का क्षय हो जाता है । हृदय में दीपक के समान रहने वाली आत्मा में अनन्त रश्मियाँ रहा करती है ।१९-२०।

सितासिताः कद्रुनीलाः कपिलाः पीतलोहिताः ।
ऊर्ध्वमेकः स्थितस्तेषां यो भित्त्वा सूर्यमण्डलम् ।।२१
ब्रह्मलोकमतिक्रम्य तेन याति परां गतिम् ।
यदस्यान्यद्रश्मिशतमूर्ध्वमेव व्यवस्थितम् ।।२२
तेन देवनिकायानि धामानि प्रतिपद्यते ।
येनैकरूपाश्चाधस्ताद्रश्मयोऽस्य मृदुप्रभाः ।।२३
इह कर्मोपभोगाय तैश्च संचरते हि सः ।
बुद्धीन्द्रियाणि सर्वाणि मनः कर्मेन्द्रियाणि च ।।२४
अहंकारश्च बुद्धिश्च पृथिव्यादीनि चैव हि ।
अव्यक्त आत्मा क्षेत्रज्ञः क्षेत्रस्यास्य निगद्यते ।।२५

जो श्वेत, कृष्ण, भूरी, नीली, कपिल, पीली और लाल होती हैं उनमें से ऊपर की ओर जाने वाली एक रश्मि सूर्य मण्डल का भेदन करके और ब्रह्म-लोक का अतिक्रमण करके ऊपर को गई है, उससे योगी परमगति को प्राप्त कर लेता है । इससे भिन्न जो सौ रश्मियाँ ऊपर की ओर स्थित रहती हैं उनके द्वारा देवताओं के निवासस्थान प्राप्त हो जाते हैं । इनमें से कुछ रश्मियाँ नीचे

१ ख. ग. 'परूपःस्थि॰' ।

की ओर रहती हैं जिनकी कांति अत्यन्त कोमल मानी गयी हैं। कर्मों का उपभोग करने के लिए आत्मा उन्हीं के साथ संचरण करती है। सभी ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, कर्मेन्द्रियाँ, अहंकार, बुद्धि और पृथ्वी इत्यादि से युक्त इस शरीर में अव्यक्त आत्मा क्षेत्रज्ञ रूप से रहता है।२१-२५।

ईश्वरः सर्वभूतस्य सदसन्सदसच्च सः।
बुद्धेरुत्पत्तिरव्यक्ता ततोऽहंकारसंभवः ।।२६
तस्मात्खादीनि जायन्त एकोत्तरगुणानि तु।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च तद्गुणाः २७
यो यस्मिन्नाश्रितश्चैषां स तस्मिन्नेव लीयते।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव गुणास्तस्यैव कीर्तिताः ।।२८
रजस्तमोभ्यामाविष्टश्चक्रवद्भ्राम्यते हि सः।
अनादिरादिमान्यश्च स एव पुरुषः परः ।।२९
लिङ्गेन्द्रियैरुपग्राह्यः स विकार उदाहृतः।
यतो वेदाः[1] पुराणानि विद्योपनिषदस्तथा ।।३०
श्लोकाः सूत्राणि भाष्याणि यच्चान्यद्वाङ्मयं भवेत्।
पितृयानोपवीथ्याश्च यदगस्त्यस्य चाऽऽन्तरम् ।।३१
तेनाग्निहोत्रिणो यान्ति प्रजाकामा दिवं प्रति।

ईश्वर ही सभी प्राणियों की सत्ता और अभाव का कारण है। बुद्धि से अव्यक्त की उत्पत्ति होती है जिससे अहंकार उत्पन्न होता है उससे भिन्न-भिन्न गुणों वाले आकाश इत्यादि उत्पन्न होते हैं। उनके गुण है शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। इनमें से जो गुण जिस तत्त्व के आश्रित रहता है वह उसी में लीन भी हो जाता है। सत्त्व रज और तम इसी के गुण कहे हैं। यह आत्मा रजोगुण और तमोगुणों के द्वारा व्याप्त होकर चक्रवत् भ्रमित होता रहता है। जो अनादि होते हुए भी आदिवान् है वही परम पुरुष है। जिसका ग्रहण लिंग और इंद्रियों के द्वारा होता है उसे विकार कहा गया है। जिससे वेद पुराण सभी विद्यायें, उपनिषद् श्लोक, सूत्र, भाष्य और अन्य वाङ्मय उत्पन्न होता है वही परमात्मा है। पितृयानमार्ग की उपवीथी से लेकर अगस्त्य तारा के बीच का जो मार्ग है, उससे प्रजाकामी यजमान स्वर्ग को चले जाते हैं।२६-३१।[2]

---

१ क. घ. ङ. देवाः।

ये च दानपराः सम्यगष्टाभिश्च गुणैर्युताः ॥३२
अष्टाशीतिसहस्राणि मुनयो गृहमेधिनः ।
पुनरावर्तने वीजभूता धर्मप्रवर्तकाः ॥३३
सप्तर्षिनागवीथ्याश्च देवलोकं समाश्रिताः ।
तावन्त एव मुनयः सर्वारम्भविवर्जिताः ॥३४
तपसा ब्रह्मचर्येण सङ्गत्यागेन मेधया ।
यत्र यत्रावतिष्ठन्ते यावदाहू (भू) त संप्लवम् ॥३५
वेदानुवचनं यज्ञा ब्रह्मचर्यं तपो दमः ।
श्रद्धोपवासः सत्यत्वमात्मनो ज्ञानहेतवः ॥३६

जो आठ गुणों से युक्त तथा दानशील हैं वे भी उसी भाँति यात्रा करते हैं। अट्ठासी हजार गृहस्थ मुनि पुनरावर्तन में वीजभूत और धर्मप्रवर्तक माने गये हैं। सप्तर्षियों के मार्ग तथा सर्वलोक के मार्ग देवलोक की ओर उन्मुख रहा करते हैं। मनुष्य सभी प्रकार के आरम्भ से रहित इन मार्गों को तपस्या, ब्रह्मचर्य, अनासक्ति और बुद्धि के द्वारा प्रलय पर्यन्त प्राप्त कर लेता है। आत्मज्ञान के हेतु हैं—स्वाध्याय, यज्ञ, ब्रह्मचर्य, तप, दम, श्रद्धा, उपवास और सत्य।३२-३६।

सत्त्वाश्रयैर्निदिध्यास्यः समस्तैरेवमेव तु ।
द्रष्टव्यस्त्वथ मन्तव्यः श्रोतव्यश्च द्विजातिभिः ॥३७
य एवमेनं विन्दन्ति ये चाऽऽरण्यकमाश्रिताः ।
उपासते द्विजाः सत्यं श्रद्धया परया युताः ॥३८
क्रमात्ते संभवन्त्यर्चिरहः शुक्लं तथोत्तरम् ।
अयनं देवलोकं च सवितारं सविद्युतम् ॥३९
ततस्तान्पुरुषोऽभ्येत्य मानसो ब्रह्म लौकिकान् ।
करोति पुनरावृत्तिस्तेषामिह न विद्यते ॥४०

सभी द्विजातियों के द्वारा सत्त्वगुण का आश्रय लेकर आत्मतत्त्व का श्रवण, मनन, निदिध्यासन और दर्शन करना चाहिए। जो लोग इस प्रकार से आत्मा को प्राप्त करते हैं अथवा वानप्रस्थ आश्रम में रहने वाले द्विज परम श्रद्धा से युक्त होकर जिस सत्य की उपासना करते हैं वे क्रमशः उसी से युक्त हो जाते हैं। स्फुलिंग, दिन, शुक्लपक्ष, उत्तरायण, देवलोक, सूर्यमण्डल, तथा विद्युत् इत्यादि को मानस पुरुष प्राप्त कर लेता है। जिससे लौकिक पुरुषब्रह्ममय होकर पुनरावृत्ति से मुक्त हो जाते हैं।३७-४०।

यज्ञेन तपसा दानैर्ये हि स्वर्गजितो जनाः ।
धूमं निशां कृष्णपक्षं दक्षिणायनमेव च ॥४१
पितृलोकं चन्द्रमसं नभो वायुं जलं महीम् ।
क्रमात्ते संभवन्तीह पुनरेव व्रजन्ति च ॥४२
एतद्यो न विजानाति मार्गद्वितयमात्मनः ।
दन्दशूकः पतङ्गो वा भवेत्कीटोऽथवा कृमिः ॥४३
हृदये दीपवद्ब्रह्मध्यानाज्जीवोऽमृतो भवेत् ।
न्यायागतधनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः ॥
श्राद्धकृत्सत्यवादी च गृहस्थोऽपि विमुच्यते ॥४४

यज्ञ, तप, दान, से स्वर्ग लोक को जीतने वाले मनुष्य, धूम, निशा, कृष्णपक्ष, दक्षिणायन, पितृलोक, चन्द्रमा, आकाश, वायु, जल और पृथ्वी पर होते हुए क्रमशः इस लोक में पुनः आ जाते हैं। जो व्यक्ति आत्मा के इन दो मार्गों को नहीं जानता है वह सर्प, पतङ्ग, कीट अथवा कृमि होता है। हृदय मे दीपक के समान ब्रह्म का ध्यान करने से जीव अमर हो जाता है और वह गृहस्थ भी मुक्त हो जाता है जो न्याय से प्राप्त होने वाले धन में रुचि रखने वाला, तत्त्वज्ञाननिष्ठ, अतिथिप्रिय, श्राद्ध करने वाला और सत्यवादी होता है।४१-४४।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये समाधिनिरूपणं नाम
षट्सप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।३७६

अथ सप्तसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

ब्रह्मज्ञानम्

अग्निरुवाच—

ब्रह्मज्ञानं प्रवक्ष्यामि संसाराज्ञानमुक्तये ।
[1]अयमात्मा परं ब्रह्म अहमस्मीति मुच्यते ॥१

---

१ ख. ग. अहमा° ।

देह आत्मा न भवति दृश्यत्वाच्च घटादिवत् ।
प्रसुप्ते मरणे देहादात्माऽन्यो ज्ञायते ध्रुवम् ।।२
देहः स चेद्व्यवहरेदविकार्यादिसंनिभः ।
चक्षुरादीनीन्द्रियाणि नाऽऽत्मा वै करणं त्वतः ।।३
मनो धीरपि आत्मा न दोपवत्करणं त्वतः ।
प्राणोऽप्यात्मा न भवति सुषुप्ते चित्प्रभावतः ।।४
जाग्रत्स्वप्ने च चैतन्यं संकीर्णत्वान्न बुध्यते ।
विज्ञानरहितः प्राणः सुषुप्ते[1] ज्ञायते यतः ।।५

अग्निदेव बोले—अब मैं संसार और अज्ञान से मुक्त होने के लिए ब्रह्मज्ञान का वर्णन करूँगा। 'मैं ही आत्मा हूँ' 'मैं परब्रह्म हूँ', इस प्रकार विचार करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह शरीर आत्मा नहीं हो सकता है क्योंकि वह घट इत्यादि की भाँति दृश्य रहा करता है। सोने और मरने के समय निश्चय ही यह आत्मा शरीर से भिन्न ज्ञात होने लगता है। आत्मा शरीर इसलिए भी नही हो सकता है क्योंकि आत्मा विकार रहित हुआ करता है। चक्षु इत्यादि इन्द्रियाँ भी आत्मा नहीं हो सकती हैं। क्योंकि वे करण (आत्मा के साधन) मात्र हैं। मन और बुद्धि भी आत्मा नहीं कहे जा सकते हैं क्योंकि वे भी दीपक के समान करण (आत्मज्ञान के साधन) मात्र हैं। प्राण भी आत्मा नही है क्योंकि सुषुप्ति काल में भी उस (आत्मा) का प्रभाव बना ही रहता है। यह चैतन्य अत्यन्त संकीर्ण होने के कारण जागृति और स्वप्न में ज्ञात नहीं होता है किन्तु विज्ञान रहित होने पर प्राण सुषुप्ति में भी ज्ञात हो जाता है।१-५।

अतो नाऽऽत्मेन्द्रियं तस्मादिन्द्रियादिकमात्मनः ।
अहंकारोऽपि नैवाऽऽत्मा देहवद्व्यभिचारतः ।।६
उक्तेभ्यो व्यतिरिक्तोऽयमात्मा सर्वहृदिस्थितः ।
सर्वद्रष्टा च भोक्ता च नक्तमुज्ज्वलदीपवत् ।।७
समाध्यारम्भकाले च एवं सचिन्तयेन्मुनिः ।
यतो ब्रह्मण आकाश खाद्वायुर्वायुतोऽनलः ।।८
अग्नेरापो जलात्पृथ्वी ततः सूक्ष्मं शरीरकम् ।
अपञ्चीकृतभूतेभ्य आसन्पञ्चीकृतान्यतः ।।९

---

१ ख. ग्र. प्रसु ते ।

स्थूलं शरीरं ध्यात्वाऽस्माल्लयं ब्रह्मणि चिन्तयेत् ।
पञ्चीकृतानि भूतानि तत्कार्यं च विराट् स्मृतम् ॥१०

इन्द्रिय आदि भी आत्मा नहीं है और न अहंकार ही आत्मा है क्योंकि वह जिस शरीर में रहता है उसके अनुसार आचरण करने लगता है। उपर्युक्त सभी वस्तुओं से भिन्न रहने वाली आत्मा सभी के हृदय में स्थित रहा करती है। रात्रि में प्रकाशमान दीपक के समान वही सर्वद्रष्टा और सर्वभोक्ता होती है। मुनि को समाधि के आरम्भ-काल में इस प्रकार ध्यान करना चाहिए—ब्रह्म से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, और पृथ्वी से सूक्ष्म शरीर उत्पन्न हुआ है। अलग-अलग रहने वाले पञ्च-महाभूतों से ही पञ्च भूतात्मक शरीर निर्मित हुआ है। इस प्रकार स्थूल शरीर का ध्यान करते हुए ब्रह्म में उसके लय का चिन्तन करना चाहिए। सम्मिलित रूप से पंचमहाभूतों को ही विराट् कार्य कहा गया है।६-१०।

एतत्स्थूलं शरीरं हि आत्मनोऽज्ञानकल्पितम् ।
इन्द्रियैरथ विज्ञानं धीरा जागरितं विदुः ॥११
विश्वस्तदभिमानी स्यात्त्रमेतदकारकम् ।
अपञ्चीकृतभूतानि तत्कार्यं लिङ्गमुच्यते ॥१२
संयुक्तं सप्तदशभिर्हिरण्यगर्भसंज्ञितम् ।
शरीरमात्मनः सूक्ष्मं लिङ्गमित्यभिधीयते ॥१३
जाग्रत्संस्कारजः स्वप्नः प्रत्ययो विषयात्मकः ।
आत्मा तदुपमानी स्यात्तैजसो ह्यप्रपञ्चतः ॥१४
स्थूलसूक्ष्मशरीराख्यद्वयस्यैकं हि कारणम् ।
आत्मा [1]ज्ञानं च साभासं [2]तदध्याहृतमुच्यते ॥१५

यह स्थूल शरीर आत्मा के ज्ञान से निर्मित हुआ है। धीर लोग इसे इन्द्रियों के द्वारा विशेष रूप से जान लेते हैं। इन्द्रियों के द्वारा होने वाले ज्ञान को ही जागरण कहा जाता है। विश्व और उसका अभिमानी देवता कारक रहित है। अपञ्चीकृत भूतों को ही लिङ्ग रूप कार्य कहा जाता है। वह सत्रह अवयवों से युक्त हिरण्यगर्भ संज्ञक सूक्ष्म शरीर और आत्मा का चिह्न कहा

१ ख. ग. ॰नं रसा॰ । २ ख. ग. ॰दव्याकृत॰ ।

जाता है। स्वप्न जागरण के संस्कारों से हो उत्पन्न होता है जिसका ज्ञान विषयात्मक होता है। तेज से उत्पन्न होने वाले अप्रपञ्च से ही उपमानी आत्मा उत्पन्न होती है। इसका कारण स्थूल और सूक्ष्म शरीरों में से एक ही है। आत्मज्ञान स्वरूप है किन्तु आभास से युक्त होकर उसे अव्याहृत कहा जाता है।११-१५।

न सन्नासन्न सदसदेतत्सावयवं न तत्।
निर्गतावयवं नेति नाभिन्नं भिन्नमेव च ॥१६
भिन्नाभिन्नं ह्यनिर्वाच्यं वन्धसंसारकारकम्।
एकं स ब्रह्मविज्ञानात्प्राप्तं नैव च कर्मभिः ॥१७
सर्वात्मना हीन्द्रियाणां संहारः कारणात्मनाम्।
बुद्धेः स्थानं सुषुप्तं स्यात्तद्द्वयस्याभिमानवान् ॥१८
प्राज्ञ आत्मा त्रयं चैतन्मकारः प्रणवः स्मृतः।
अकारश्च उकारोऽसौ मकारो ह्ययमेव च ॥१९
अहं साक्षी च चिन्मात्रो जाग्रत्स्वप्नादिकस्य च।
नाज्ञानं चैव तत्कार्यं संसारादिकबन्धनम् ॥२०

यह आत्मा न तो अस्तित्व से और न अनस्तित्व से उत्पन्न हुआ है, न सावयव है और न निरवयव, न भिन्न है न अभिन्न अपितु भिन्नाभिन्न, अनिर्वाच्य और इस संसार के वन्धनों को उत्पन्न करने वाली है। वह एक ब्रह्मविज्ञान से प्राप्त होता है कर्मों से नहीं। आत्मा से कारणात्मक इन्द्रियों का संहार होता है और बुद्धि का स्थान सुषुप्ति ले लेती है। इन्द्रिय और बुद्धि दोनों आत्मा से सम्बद्ध है और इन्द्रिय, बुद्धि और आत्मा—ये तीनों प्रणव के मकार के समान होते हैं। प्रणव में अकार, उकार एवं मकार तीन अक्षर रहते हैं। मैं चित् स्वरूप और जागृति एवं स्वप्नादि का साक्षी हूँ। मैं संसार इत्यादि वन्धनों का कारणभूत अज्ञानी नहीं हूँ।१९-२०।

नित्यशुद्धवन्ध (बुद्ध) मुक्तसत्यमानन्दमद्वयम्।
ब्रह्माहमस्म्यहं ब्रह्म परं ज्योतिर्विमुक्त ओम् ॥२१
अहं ब्रह्म परं ज्ञानं समाधिर्बन्धघातकः।
चिरमानन्दकं ब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तकम् ॥२२

अयमात्मा परं ब्रह्म तद्ब्रह्म त्वममी (सी) ति च।
गुरुणा बोधितो जीवो ह्यहं ब्रह्मास्मि वाह्यतः ॥२३
सो (योऽ) ऽसावादित्यपुरुषः सोऽसावहमखण्ड ओम्।
मुच्यतेऽसारसंसारादब्रह्मज्ञो ब्रह्म तद्भवेत् ॥२४

मैं नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्य, आनन्द, ब्रह्म, परमज्योति-विमुक्त ओंकार हूँ। मैं वह हूँ जो समाधि के बन्धनों का नाश करने वाला, चिरकाल तक आनन्द देने वाला सत्य और अनन्त है। मैं परब्रह्म आत्म-स्वरूप हूँ। गुरु के द्वारा इस प्रकार का ज्ञान कराये जाने पर कि 'तू ब्रह्म है' जीव यह समझने लगता है कि मैं ब्रह्म हूँ। मैं आदित्यस्वरूप और अखण्ड ओंकार हूँ। इस प्रकार विचार करते हुए ब्रह्मज्ञानी असार संसार से मुक्त होकर ब्रह्म हो जाता है।२१-२५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये ब्रह्मज्ञाननिरूपणं नाम सप्तसप्तत्यधिक-त्रिशततमोऽध्यायः।३७७

अथाष्टसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

ब्रह्मज्ञानम्

अग्निरुवाच—

अहं ब्रह्म परं ज्योतिः पृथिव्यव[1](ब) नलोज्झितम्।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्वाय्वाकाशविवर्जितम् ॥१
अहं ब्रह्म परं ज्योतिरादिकार्यविवर्जितम्।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्विराडात्मविवर्जितम् ॥२
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्जाग्रत्स्थानविवर्जितम्।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्विश्वभावविवर्जितम् ॥३
अहं ब्रह्म परं ज्योतिराकाराक्षरवर्जितम्।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्वाक्पाण्यङ्घ्रिविवर्जितम् ॥४

१ क. ङ. °व्यनिललिप्सता। अ°।

अहं ब्रह्म परं ज्योतिः पायूपस्थविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः श्रोत्रत्वक्चक्षुरुज्झितम् ॥५

अग्निदेव बोले—मैं परब्रह्म हूँ और अग्नि रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और कार्यरहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और विराट् आत्मा से रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और जाग्रत् स्थान से रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और सभी भावों से रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और आकार तथा अक्षर से रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और मलमूत्र इन्द्रियों से रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और कान, त्वचा और चक्षु से रहित ज्योति हूँ। १-५।

अहं ब्रह्म परं ज्योती रसरूपविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सर्वगन्धविवर्जितम् ॥६
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्जिह्वाघ्राणविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः स्पर्शशब्दविवर्जितम् ॥७
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्मनोबुद्धिविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिश्चित्ताहंकारवर्जितम् ॥८
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः प्राणापानविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्व्यानोदानविवर्जितम् ॥९
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः समानपरिवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्जरामरणवर्जितम् ॥१०

मैं परब्रह्म और रसरूप रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और सभी प्रकार के गन्धों से रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और जिह्वा तथा नासिका से रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और स्पर्श और शब्द से रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और मन तथा बुद्धि से रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और चित्त तथा अहंकार से रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और प्राण और अपानवायु से रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और व्यान तथा उदान वायु से रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और समान वायु से रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और जरामरण रहित ज्योति हूँ।६-१०।

अहं ब्रह्म परं ज्योतिः शोकमोहविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः क्षुत्पिपासाविवर्जितम् ॥११

अहं ब्रह्म परं ज्योतिः शब्दोद्भूतादिवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्हिरण्यगर्भवर्जितम् ॥१२
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः स्वप्नावस्थाविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिस्तैजसादिविवर्जितम् ॥१३
अहं ब्रह्म परं ज्योतिरपकारादिवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सभाज्ञानविवर्जितम् ॥१४
अहं ब्रह्म परं ज्योतिरध्याहृतविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सत्त्वादिगुणवर्जितम् ॥१५

मैं परब्रह्म और शोक तथा मोह रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और भूख-प्यास से रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और शब्द तथा उत्पत्ति आदि रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और हिरण्यगर्भ रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और स्वप्नावस्था रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और तेज आदि रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और अपकारादि रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और सभाज्ञान रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और अध्याहार रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और सत्त्वादिगुण रहित ज्योति हूँ।११-१५।

अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सदसद्भाववर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सर्वावयववर्जितम् ॥१६
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्भेदाभेदविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सुषुप्तिस्थानवर्जितम् ॥१७
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः प्राज्ञभावविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्मकारादिविवर्जितम् ॥१८
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्मानमेयविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्मितिमातृविवर्जितम् ॥१९
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः साक्षित्वादिविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः कार्यकारणवर्जितम् ॥२०
देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहंकारवर्जितम् ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिमुक्तं ब्रह्म तुरीयकम् ॥२१
नित्यशुद्धबुद्धमुक्तं सत्यमानन्दमद्वयम् ।
ब्रह्माहमस्म्यहं ब्रह्म सविज्ञानं विमुक्त ओम् ॥२२
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः समाधिर्मोक्षदः परः ॥२३

मैं परब्रह्म और सदसद्‌भावरहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और सभी अवयवों से रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और भेदाभेद रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और सुषुप्ति स्थान रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और प्राज्ञभाव रहित ज्योति हूँ। मैं परब्रह्म और साक्षित्वादि रहित ज्योति हूँ। यह ब्रह्म शरीर इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण और अहंकार से रहित तथा जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति इत्यादि से युक्त तुरीया अवस्थात्मक है। यह ब्रह्म, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्य, आनन्द और अद्वितीय है। ॐ मैं ब्रह्म हूँ। ज्ञान युक्त ब्रह्म और विमुक्त हूँ। मैं परब्रह्म हूँ तथा श्रेष्ठ मोक्ष को प्रदान करने वाला हूँ।१६-२३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये ब्रह्मज्ञानकथनं नामाष्टसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः।३७८

अथैकोनाशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

ब्रह्मज्ञानम्

अग्निरुवाच—
यज्ञैश्च देवानाप्नोति वैराजं तपसा पदम्।
ब्रह्मणः कर्मसंन्यासाद्वैराग्यात्प्रकृतौ लयम्॥१
ज्ञानात्प्राप्नोति कैवल्यं पञ्चैता गतयः स्मृताः।
प्रीतितापविषादादेर्विनिवृत्तिर्विरक्तता॥२
संन्यासः कर्मणां त्यागः कृतानामकृतैः सह।
अव्यक्तादौ विशेषान्ते विकारोऽस्मिन्निवर्तते॥३
चेतनाचेतनान्यत्वज्ञानेन ज्ञानमुच्यते।
परमात्मा च सर्वेषामाधारः परमेश्वरः॥४
[1]विष्णुनाम्ना च देवेषु वेदान्तेषु च गीयते।
यज्ञेश्वरो यज्ञपुमान्प्रवृत्तैरिज्यते ह्यसौ॥५
निवृत्तैर्ज्ञानयोगेन [2]ज्ञानमूर्तिः स चेक्ष्यते।
ह्रस्वदीर्घप्लुताद्यं तु वचस्तत्पुरुषोत्तमः॥६

---

१ ख. ग. °नाम च। २ ख. ग. नगम्यः स इज्यते।

तत्प्राप्तिहेतुर्ज्ञानं च कर्म चोक्तं महामुने ।
आगमोक्तं विवेकाच्च द्विधा ज्ञानं तथोच्यते ॥७

अग्निदेव बोले—यज्ञ के द्वारा देवताओं को और तपस्या के द्वारा विराट् पुरुष के पद को प्राप्त किया जाता है। कर्म संन्यास से ब्रह्म और वैराग्य से प्रकृति में लय प्राप्त होता है। ज्ञान से मोक्ष प्राप्त होता है—ये पाँच गतियाँ कही गयी हैं। वैराग्य कहते हैं प्रीति, ताप और विषाद इत्यादि से निवृत्ति को। किये हुए अथवा न किये हुए कर्मों का त्याग ही संन्यास कहलाता है। इसमें अव्यक्त आदि में विकार हुआ करता है। चेतन और अचेतन ज्ञान के भेद को ज्ञान कहा जाता है। सबका आधार परमेश्वर परमात्मा ही है। देवताओं और उपनिषदों में विष्णु के नाम से उसी का गान किया जाता है। यज्ञेश्वर कहते हैं यज्ञ पुरुष को जिसका यजन यज्ञ के द्वारा किया जाता है। वही इस संसार से विरक्त रहने वालों के द्वारा ज्ञान के कारण ज्ञानमूर्ति कहा जाता है। वही पुरुषोत्तम है और वाणी में रहने वाला ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत इत्यादि विकार वही है। हे महामुनि ! उसी की प्राप्ति के लिए ज्ञान और कर्म हेतु रूप कहे गये हैं। ज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—शास्त्रोक्त और विवेकजन्य ।१-७।

शब्दब्रह्माऽऽगममयं परं ब्रह्म विवेकजम् ।
द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये ब्रह्मशब्द (शब्दब्रह्म) परं च यत् ॥८
वेदादिविद्या ह्यपरमक्षरं ब्रह्म सत्परम् ।
तदेतद्भगवद्वाच्यमुपचारेऽर्चनेऽन्यतः ॥९
संभर्तेति तथा भर्ता भकारोऽर्थद्वयान्वितः ।
नेता गमयिता स्रष्टा गकारोऽयं महामुने ॥१०
ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना ॥११
वसन्ति विष्णौ भूतानि स च धातुस्त्रिधात्मकः ।
एवं हरौ हि भगवाञ्शब्दोऽन्यत्रा (त्रो) पचारतः ॥१२

शास्त्रोक्त ज्ञान शब्द ब्रह्म और विवेकजन्य ज्ञान परब्रह्म है। ब्रह्म दो प्रकार का जानना चाहिए शब्दब्रह्म और परब्रह्म। वेदादि विद्यायें शब्दब्रह्म कहलाती हैं वही भगवान् की वाणी है जो उपचार और अर्चन से भिन्न है।

भगवत् शब्द मे जो भकार है उसके दो अर्थ हैं—पोषण करने वाला और सबका आधार तथा गकार का अर्थ है—नेता (कर्मफल की प्राप्ति कराने वाला), गमयिता (प्रेरक), ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन छह की भग संज्ञा है। विष्णु में सभी भूत प्राणियों का निवास रहता है। वह तीन प्रकार की धातुओं से बनता है। इसी प्रकार विष्णु के लिए भगवान् शब्द का प्रयोग किया जाता है किन्तु अन्यत्र उपचार से जाना जाता है।८-१२।

उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानाम (मा) गतिं गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥१३
ज्ञानशक्तिः परैश्वर्य वीर्य तेजांस्यशेषतः।
भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः ॥१४
खाण्डिक्य (क्यो) जनकायाऽऽह योऽयं केशिध्वजः पुरा।
अनात्मन्यात्मबुद्धिर्या आत्मस्वमिति ? या मतिः ॥१५
अविद्याभवसंभूतिर्बीजमेतद्द्विधा स्थितम्।
पञ्चभूतात्मके देहे देही मोहतमाश्रितः ॥१६
अहमेतदितीत्युच्चैः कुरुते कुमतिर्मतिम्।
इत्थं च पुत्रपौत्रेषु तेद्देहोत्पातितेषु च ॥१७
करोति पण्डितः साम्यमनात्मनि कलेवरे।
सर्वदेहोपकाराय कुरुते कर्म मानवः ॥१८

भगवान् उसे कहते हैं जो प्राणियों की उत्पत्ति, लय, अगति, गति, विद्या और अविद्या को जानता है। ज्ञान शक्ति, ऐश्वर्य, वीर्य, तेज तथा सभी अत्याज्य गुण भगवान् शब्द से सूचित किये जाते हैं। खाण्डिक्य केशिध्वज ने जनक से जिस योग को बताया था वह इस प्रकार है—अनात्मा में आत्मा अथवा अनात्मा को आत्मा समझने की बुद्धि अविद्या से होती है। इसके बीज दो प्रकार पंचभूतात्मक शरीर में मोहान्धकार से युक्त आत्मा रहा करती है जो 'अहम्' इस प्रकार की कुमति से युक्त रहती है। इसी प्रकार पुत्र-पौत्र और उनसे उत्पन्न होने वालों के प्रति भी ऐसी ही बुद्धि बन जाती है। विद्वान् व्यक्ति अनात्मभूत शरीर में समभाव रखता है। जिससे मनुष्य सभी के शरीर के उपकारार्थ कर्म किया करता है।१३-१८।

देहश्चान्यो यदा पुंसस्तदा वन्धाय तत्परम् ।
निर्वाणमय एवायमात्मा ज्ञानमयोऽमलः ॥१९
दुःखज्ञानमयो धर्मः प्रकृतेः स तु नाऽऽत्मनः ।
जलस्य नाग्निना सङ्गः स्थालीसङ्गात्तथापि हि ॥२०
[1]शब्दास्ते कादिका धर्मास्तत्कृत्वा वै महामुने ।
तथाऽऽत्मा प्रकृतौ सङ्गादहंमानादिभूषितः ॥२१
भजते प्राकृतान्धर्मानन्यस्तेभ्यो हि सोऽव्ययः ।
वन्धाय विषयासङ्गं मनो निर्विषयं धिये ॥२२
विषयात्तत्समाकृष्य ब्रह्मभूतं हरिं स्मरेत् ।
आत्मभावं नयत्येनं तद्ब्रह्मध्यायिनं मुने ॥२३
विचार्य स्वात्मनः शक्त्या लौहमाकर्षको यथा ।
आत्मप्रयत्नसापेक्षा विशिष्टा या मनोगतिः ॥२४

जब पुरुष शरीर से भिन्न है तो वह सारा कर्म केवल वन्धन का ही कारण होता है। किन्तु ज्ञानमय और निर्मल आत्मा मुक्त रहा करती है। दुःख और ज्ञानमय धर्म प्रकृति का है आत्मा का नहीं। जैसे जल का अग्नि के साथ संग नहीं होता है किन्तु पतीली इत्यादि के द्वारा दोनों का साथ हो जाता है। तथा खलखलाहट आदि की अव्यक्त ध्वनि भी होने लगती है महामुनि ! उसी प्रकार यह आत्मा प्रकृति के संसर्ग से अहम् और मानादि से युक्त हो जाती है। प्राकृतधर्मों का सेवन करने वाला अव्यय कहलाता है। विषयासक्त मन वन्धन के लिए और विषयरहित मन ज्ञान के लिए होता है। इसलिए उस मन को विषय से हटाकर ब्रह्मरूप विष्णु का स्मरण करना चाहिए। अये मुने ! इस प्रकार आत्मा को ब्रह्म में लगा देना चाहिए जिस प्रकार चुम्बक अपनी शक्ति से लोहे को अपनी ओर आकृष्ट करता है उसी प्रकार ब्रह्म अपनी शक्ति से अपने स्वरूप में मिला लेता है। आत्मप्रयत्नसापेक्ष जो मन की विशिष्ट गति होती है।१९-२४।

तस्या ब्रह्मणि संयोगो याग इत्यभिधीयते ।
विनिष्पन्दः समाधिस्थः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥२५
यमैः सनियमैः स्थित्वा प्रत्याहृत्या [2]मरुज्जवैः ।
प्राणायामेन पवनैः प्रत्याहारेण चेन्द्रियैः ॥२६

१ क. ख. ग. ङ. शब्दोद्रेका° । २ ख. श. °ज्जयैः । प्रा° ।

वशीकृतैस्ततः कुर्यात्स्थितं चेतः शुभाश्रये ।
आश्रयश्चेतसो ब्रह्म मूर्तं चामूर्तकं द्विधा ॥२७
सनन्दनादयो ब्रह्मभावभावनया युताः ।
कर्मभावनया चान्ये देवाद्याः स्थावरान्तकाः ॥२८
हिरण्यगर्भादिषु च ज्ञानकर्मात्मिका द्विधा ।
त्रिविधा भावना प्रोक्ता विश्वं ब्रह्म उपास्यते ॥२९

उसका ब्रह्म से संयोग होने से योग कहा जाता है । निष्पन्द रहित समाधिस्थ साधक परब्रह्म को प्राप्त करता है। यम नियमों से युक्त होकर और प्राणायाम से वायु और प्रत्याहार से इन्द्रियों को वश में करके चित्त को शुभ आश्रय में लगा देना चाहिए। चित्त का आश्रय ब्रह्म दो प्रकार का होता है—निराकार और साकार। सनन्दन इत्यादि ब्रह्मभाव की भावना से युक्त रहते हैं किन्तु देवताओं से लेकर स्थावरपर्यन्त अन्य प्राणी कर्म भावना से युक्त रहते हैं। हिरण्यगर्भ आदि में ज्ञान और कर्मात्मक दो प्रकार की भावना होती है। कहीं-कहीं यह भावना तीन प्रकार की भी कही जाती है। इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व ब्रह्म है इस भाव से उपासना की जाती है ।२५-२९।

प्रत्यस्तमितभेदं यत्सत्तामात्रमगोचरम् ।
वचसामात्मसंवेद्यं तज्ज्ञानं ब्रह्मसंज्ञितम् ॥३०
तच्च विष्णोः परं रूपमरूपस्याजमक्षरम् ।
अशक्यं प्रथमं ध्यातुमतो [1]मूर्तादि चिन्तयेत् ॥३१
मद्भावभावमापन्नस्ततोऽसौ परमात्मना ।
भवत्यभेदो भेदश्च तस्याज्ञानकृतो भवेत् ॥३२

ब्रह्मज्ञान उसे कहते हैं जिसमें भेद नष्ट हो जाता है जो सत्तामात्र होता है और जो वाणी के द्वारा आत्मसंवेद्य रहा करता है। यह निराकार विष्णु का परमरूप है जो अज और अक्षर होता है इस प्रथम निराकार विष्णु की उपासना अशक्य होने से उसके मूर्त रूप का चिन्तन करना चाहिए। तदनन्तर

१ ख. ग. मूर्तानि ।

परमात्मा के साथ एकाकार होकर उसका अज्ञ नजन्य भेद अभेद में परिवर्तित हो जाता है ।३०-३२।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये ब्रह्मज्ञाननिरूपणं नामैको-नाशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।३७९

अथाशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अद्वैतब्रह्मविज्ञानम्

अग्निरुवाच--

अद्वैतब्रह्मविज्ञानं [1]वक्ष्ये यद्भवतोऽगदत् ।
शालग्रामे तपश्चक्रे वासुदेवार्चनादिकृत् ॥१
मृगसङ्गान्मृगोभूत्वा ह्यन्तकाले स्मरन्मृगम् ।
जातिस्मरो [2]मृगं त्यक्त्वा देहं योगात्स्वतोऽभवत् ॥२
अद्वैतब्रह्मभूतश्च जडवल्लोकमाचरत् ।
क्षत्ता सौवीरराजस्य विष्टियोगममन्यत ॥३
उवाह शिविकामस्य क्षत्तुर्वचनचोदितः ।
गृहीतो विष्टिना ज्ञानी उवाहाऽऽत्मक्षयाय तम् ॥४
ययौ [3]जडगतिः पश्चाद्ये त्वन्ये त्वरितं ययुः ।
शीघ्रान्शीघ्रगतीन्दृष्ट्वा अशीघ्रं तं नृपोऽब्रवीत् ॥५

अग्निदेव बोले—अब मैं उस 'अद्वैत ब्रह्मविज्ञान' का वर्णन करूँगा, जिसे भरत ने (सौवीरराज को) बतलाया था। प्राचीन काल की बात है, राजा भरत शालग्राम क्षेत्र में रहकर भगवान् वासुदेव की पूजा आदि करते हुए तपस्या कर रहे थे। उनकी एक मृग के प्रति आसक्ति हो गयी थी इसलिए अन्तकाल में उसी का स्मरण करते हुए प्राण त्यागने के कारण उन्हें मृग होना पड़ा। मृगयोनि में भी वे' जातिस्मर' हुए—उन्हें पूर्व-जन्म की बातों का स्मरण

---

१ क. ङ. वदे यद्भावतोऽगमत् । २ छ. मृगस्त्यक्त्वा । ३ क. ङ. छ. जलगतिः ।

रहा। अतः उस मृग-शरीर का परित्याग करके वे स्वयं ही योगवल से एक ब्राह्मण के रूप में प्रकट हुए। उन्हें अद्वैत ब्रह्म का पूर्ण वोध था। वे साक्षात् ब्रह्मस्वरूप थे। तो भी लोक में जडवत् व्यवहार करते थे। उन्हें हृष्ट पुष्ट देखकर सौवीर नरेश के सेवक ने वेगार में लगाने के योग्य समझा। सेवक के कहने से वे सौवीरराज की पालकी ढोने लगे। यद्यपि वे ज्ञानी थे, तथापि वेगार में पकड़ जाने पर अपने प्रारब्ध भोग का क्षय करने के लिए राजा का भार वहन करने लगे, परन्तु उनकी गति मंद थी। वे पालकी में पीछे की ओर लगे थे तथा उनके सिवा दूसरे जितने कहार थे, वे सब के सब तेज चल रहे थे। राजा ने देखा, अन्य कहार शीघ्रगामी है तथा तीव्र गति से चल रहे है। यह जो नया आया है वहुत मन्द है। तब वे वोले ।१-५।

राजोवाच—

किंश्रान्तोऽस्यल्पमध्वानं त्वयोढा शिबिका मम।
किमायाससहो न त्वं पीवा[1] नासि निरीक्ष्यसे ॥६

राजा बोले—अरे, क्या थक गये? अभी तो थोड़ी दूर ही तक मेरी पालकी को ले चले हो। क्या तुम इतने भी परिश्रम को सहन नहीं कर सकते हो? क्या तुम मोटे नही दिखायी दे रहे हो।१-६।

ब्राह्मण उवाच—

नाहं पीवा न वै वोढा शिबिका भवतो मया।
न श्रान्तोऽस्मि न वाऽऽयासो वोढव्योऽसि महीपते ॥७
भूमौ पादयुगं तस्थौ जङ्घे पादद्वये स्थिते।
ऊरू जङ्घाद्वयावस्थौ[2] तदाधारं तथोदरम् ॥८
वक्षःस्थलं तथा वाहू स्कन्धौ चोदरसंस्थितौ।
स्कन्धस्थितेयं शिविका मम [3]भारोऽत्र[4] किंकृतः ॥९
शिबिकायां स्थितं चेदं देहं त्वदुपलक्षितम्।
तत्र त्वमहमप्यत्र प्रोच्यते चेदमन्यथा ॥१०

---

१ ख. ग. छ. °वानसि। २ क. ङ. °यावास्था त° ३। छ. भावोऽत्र।
४ क. ङ. °रो न कि°।

अहं त्वं च तथाऽन्ये च भूतैरुह्याम पार्थिव ।
गुणप्रवाहपतितो गुणवर्गो हि यात्ययम् ॥११
कर्मवश्या गुणाश्चैते सत्त्वाद्याः पृथिवीपते ।
अविद्यासंचितं कर्म तच्चाशेषेषु जन्तुषु ॥१२

ब्राह्मण बोला—हे राजन् ! न तो मैं मोटा हूँ, न मैं तुम्हारी पालकी को वहन कर रहा हूँ, न मैं थका हुआ हूँ और न तो तुम्हारा वहन किया जा रहा है। मेरे दोनों पैर पृथ्वी पर स्थित हैं। मेरी दोनों जङ्घायें मेरे दोनों पैरों पर स्थित है, ऊरुद्वय जङ्घाओं पर आधारित हैं और उनका आधार उदर है। वक्षःस्थल, दोनों भुजायें और दोनों कन्धे उदर पर स्थित हैं। यह पालकी तो मेरे कन्धों पर स्थित है इससे मेरे ऊपर क्या भार पड़ा है। इस पालकी पर सवार तुम्हारा शरीर ही तुम हो। जैसे तुम्हारे शरीर को तुम कहा जाता है वैसे ही यहाँ मेरे शरीर को मैं। अये राजन् ! मैं तुम तथा अन्य सभी इन्हीं पञ्चभूतों से ढोये जा रहे हैं। गुणों के प्रवाह में वहकर गुणवर्ग इसी प्रकार से चलता रहता है। अये राजन् ! सत्त्व आदि ये सभी गुण कर्मों के अधीन हैं। सभी जीवों में जो यह कर्म है वह अविद्या के द्वारा सचित है।७-१२।

[1]आत्मा शुद्धोऽक्षरः शान्तो निर्गुणः प्रकृतेः परः ।
प्रवृद्ध्यपचयौ नास्य एकस्याखिलजन्तुषु ॥१३
यदा नोपचयस्तस्य यदा नापचयो नृप ।
तदा पीवा न (ना) सीति[2] त्वं कया युक्त्या त्वयेरितम् ॥१४
भूजङ्घापादकट्यूरुजठरादिषु संस्थिता ।
शिबिकेयं तथा स्कन्धे तदा भारः[3] समस्त्वया ॥१५
तदन्यजन्तुभिर्भूपशिबिकोत्थानकर्मणा ।
शैलद्रव्यगृहीतोत्थः पृथिवीसंभवोऽपि वा ॥१६
यथा पुंसः पृथग्भावः प्राकृतैः करणैर्नृप ।
सोढव्यः स महाभारः कतरो नृपते मया ॥१७
यद्द्रव्या शिबिका चेयं तद्द्रव्यो भूतसंग्रहः ।
भवतो मेऽखिलस्यास्य समत्वेनोपबृंहितः ॥१८

---

१ 'आत्मा……जन्तुषु' च. पुस्तके नास्ति । २ ख. ग. 'सीतीत्थं क.' । ३ क. ङ. छ. भाव: ।

तच्छ्रुत्वोवाच[1] राजा तं गृहीत्वाऽङ्घ्री क्षमाप्य च।
प्रसादं कुरु त्यक्त्वेमां शिविकां ब्रूहि शृण्वते ॥
यो भवान्यन्निमित्तं वा यदागमनकारणम् ॥१९

यह आत्मा शुद्ध, अमर, शान्त, निर्गुण और प्रकृति के परे रहने वाली है। सभी जन्तुओं में इस एकात्मा की न तो वृद्धि होती है और न उसका नाश ही। हे राजन्! यदि आत्मा की वृद्धि नहीं होती है तो उसकी क्षति भी नहीं हो सकती है। फिर क्या तुम स्थूल नहीं हो, इस प्रकार तुमने किस युक्ति से कहा है। जिस प्रकार पृथ्वी, जंघा, कटि, उदर आदि के ऊपर यह पालकी रखी हुयी है उसी प्रकार कंधे के ऊपर भी उसका भार तुम्हारे समान ही है। अये राजन्! इस सम्बन्ध में अन्य जन्तु अधिक श्रेष्ठ नहीं है। पालकी के अतिरिक्त वृक्षों, पर्वतों, द्रव्यों तथा पृथ्वी पर रहने वाले अस्तित्व को रातदिन सभी जन्तु वहन किया करते हैं। हे राजन्! क्योंकि यह पुरुष (आत्मा) प्राकृत कारणों से भिन्न है इसलिए मेरे द्वारा कोई भार कैसे वहन किया जा सकता है। यह पालकी उसी भूत समुदाय से बनी हुई है जिससे अन्य द्रव्य बने हुए हैं और जिन्हें हम अज्ञान अथवा अहंकार के कारण अपने रूप में समझने लगते हैं। यह सुनकर राजा ने उसके चरणों को पकड़कर उससे क्षमा याचना करते हुए कहा—कृपा करके इस पालकी को छोड़कर ये बताइये कि आप कौन हैं? और आपका यहाँ पर आगमन कैसे हुआ।१३-१९।

ब्राह्मण उवाच—
श्रूयतां योऽहमित्येतद्वक्तुं नैव च शक्यते।
उपभोगनिमित्तं च सर्वत्राऽऽगमनक्रिया ॥२०
सुखदुःखोपभोगौ तु तौ [2]देश (शा) द्युपपादकौ।
धर्माधर्मोद्भवौ भोक्तुं जन्तुर्देशादिमृच्छति ॥२१

ब्राह्मण बोला—हे राजन्! मेरी बात सुनिये, मैं क्या हूँ यह मैं बतला ही नहीं सकता हूं। मैं यहां सर्वत्र इसलिए घूम रहा हूँ जिससे मैं अपने कर्मों का भोग कर सकूं। यहाँ पर जिस सुख और दुःख का उपभोग किया जाता है वे

१ ख. ग. °च यानं तु हित्वा शीघ्रं क्ष°। २ ग. देशाद्युपकारकौ।

धर्म और अधर्म से उत्पन्न होते हैं और उनका उपभोग करने के लिए प्राणियों को देश-देशान्तरों में भटकना पड़ता है।२०-२१।

राजोवाच—
योऽस्ति सोऽहमिति ब्रह्मन्कथं वक्तुं न शक्यते।
आत्मन्येष न दोषाय शब्दोऽहमिति यो द्विज ॥१२

राजा बोले—अये ब्राह्मण ! तुम क्यों नहीं कह सकते हो कि जो कुछ सत् है मैं वही हूँ। हे द्विज ! आत्मा में 'मैं' शब्द का प्रयोग दूषित नहीं कहा जाता है।२२।

ब्राह्मण उवाच —
[1]शब्दोऽहमिति दोषाय नाऽऽत्मन्येष तथैव तत्।
अनात्मन्यात्मविज्ञानं शब्दो वा भ्रान्तिलक्षणः ॥२३
यदा समस्तदेहेषु पुमानेको व्यवस्थितः।
तदा हि को भवान्कोऽहमित्येतद्विफलं वचः ॥२४
त्वं राजा शिविका चेयं वयं वाहाः पुरः सराः।
अयं च भवतो लोको न सदेतन्नृपोच्यते ॥२५
वृक्षाद्दारु ततश्चेयं शिविका त्वदधिष्ठिता।
का वृक्षसंज्ञा जाताऽस्य दारुसंज्ञाऽथ वा नृप ॥२६
वृक्षारूढो महाराजो नायं वदति चेतनः।
न च दारुणि सर्वस्त्वां ब्रवीति शिविकागतम् ॥२७

ब्राह्मण बोला—आत्मा में 'मैं' शब्द का प्रयोग यद्यपि दूषित नहीं है तथापि अनात्मा में आत्मज्ञान भ्रान्ति का लक्षण है। जब शरीरों में एक ही पुरुष (आत्मा) निवास करता है तो आप कौन हैं और मैं कौन हूँ'—इस प्रकार का कथन ही व्यर्थ है। हे राजन् ! आप राजा है, यह पालकी है, हम लोग वाहक हैं और यह सब लोक आपका है—यह कथन असत्य है। वृक्ष से लकड़ी ली गई है जिसकी यह पालकी बनी हुयी है। जिसके ऊपर आप बैठे हुए हैं किन्तु हे राजन् ! तुम्हें इस पालकी पर बैठा हुआ देखकर कोई भी मनुष्य यह नहीं कहता है कि महाराज वृक्ष के ऊपर बैठे हुए है। इसी प्रकार आपको किसी लकड़ी पर बैठा हुआ देखकर कोई यह नहीं कहेगा कि आप पालकी पर बैठे हुए हैं।२३-२७।

---

१ ख. ग. °ब्दोऽयमि°।

शिविका दारुसंघातो रचनास्थितिसंस्थितः ।
अन्विष्यतां नृपश्रेष्ठ तद्भेदे शिविका त्वया ॥२८
पुमान्स्त्री गौरयं वाजी कुञ्जरो विहगस्तरुः ।
देहेषु लोकसंज्ञेयं विज्ञेया कर्महेतुषु ॥२९
जिह्वा ब्रवीत्यहमिति दन्तोष्ठौ तालुकं नृप ।
एतेनाहं यतः सर्वे वाङ्निष्पादनहेतवः ॥३०
किं हेतुभिर्वदत्येषा वागेवाहमिति स्वयम् ।
तथाऽपि वाङ्नाहमेतदुक्तं मिथ्या न युज्यते ॥३१

लकड़ी के समूह को पालकी तभी कहा जाता है जबकि वह एक विशेष प्रकार की रचना में परिणत हो जाती है। हे राजन् ! तभी आप लकड़ी और पालकी का भेद कर पाते हैं। यह पुरुष है, यह स्त्री है। यह गाय है, यह घोड़ा है, यह पक्षी है, यह वृक्ष है सभी शरीरधारियों के ये नाम कर्म के हेतु हुआ करते हैं। हे राजन् ! दांत और तालु की सहायता से जिह्वा 'मैं' शब्द का उच्चारण करती है किन्तु 'मैं' शब्द उन अवयवों का नहीं हो सकता है क्योंकि वे वाणी को उत्पन्न करने के हेतु ही हैं। वाणी ही किसलिए अपने लिए 'मैं' शब्द का प्रयोग करती है तथापि मैं वाणी नहीं हूं यह कथन भी असत्य होने से उपयुक्त नहीं कहा जा सकता है।२८-३१।

पिण्डः पृथग्यतः पुंसः शिरः पाण्यादिलक्षणः ।
ततोऽहमिति कुत्रैतां संज्ञां राजन्करोम्यहम् ॥३२
यदन्योऽस्ति परः कोऽपि मत्तः पार्थिवसत्तम ।
तदेषोऽहमयं चान्यो वक्तुमेवमपीष्यते[1] ॥३३
परमार्थभेदो न नगो न पशुर्न च पादपः ।
शरीराच्च विभेदाश्च य एते कर्मयोनयः ॥३४
यस्तु राजेति यल्लोके यच्च राजभरात्मकम् ।
तच्चान्यच्च [2]नृपेत्थं तु न सत्सम्यगनामयम् ॥३५
त्वं राजा सर्वलोकस्य पितुः पुत्रो रिपो रिपुः ।
पत्न्याः पतिः पिता सूनोः कस्त्वां भूप वदाम्यहम् ॥३६

---

१ ख. ग. °ते । पुमान्न देवो न च गौर्न प° । २ ख. ° पेष्टं तु न सत्संकल्पमानयम् ।

त्वं किमेतच्छिरः किं तु शिरस्तव तथोदरम् ।
किमु पादादिकं त्वं वै तवैतत्किं महीपते ।।३७
समस्तावयवेभ्यस्त्वं पृथग्भूतो व्यवस्थितः ।
कोऽहमित्यत्र निपुणं भूत्वा चिन्तय पार्थिव ।।
तच्छ्रुत्वोवाच राजा तमवधूतं द्विजं हरिम् ।।३८

हे राजन् ! जब शिर और पायु इत्यादि रूप यह पिण्ड आत्मा से अलग है तो मैं उसके लिए 'मैं' शब्द का प्रयोग कैसे कर सकता हूँ । हे राजन ! मुझसे जो कुछ भिन्न हैं वही यह मैं हूँ, यह भी कहा जा सकता है । यह पर्वत है, यह पशु है, यह वृक्ष है इस प्रकार का भेद पारमार्थिक भेद नही होता है । ये भेद शरीर-गत ही हैं जो कि कर्मो का जन्म-स्थान कहा गया है । इस लोक में जो राजा है अथवा जो राजा का योद्धा है—ये सब भेद समीचीन नही हैं । आप सारी प्रजा के राजा हैं, अपने पिता के पुत्र हैं इसलिये हे राजन् ! आपको क्या कहूँ । तुम शिर हो क्या ? ये शिर और उदर तुम्हारा ही नहीं है ? क्या आप पाद इत्यादि हैं ? क्या ये सब आपके नहीं हैं ? आप समस्त अवयवों से भिन्न रहा करते हैं । हे राजन् ! मैं क्या कहूँ इस विषय में बड़ी चतुरता से विचार करो । यह सुनकर राजा ने उस अवधूत रूप विष्णु से कहा ।३२-३८।

राजोवाच—
श्रेयोऽर्थमुद्यतः प्रष्टुं कपिलर्षिमहं द्विज ।
तस्यांशः कपिलर्षेस्त्वं मत्कृतेदा (ज्ञा) नदो भुवि ।।३९
ज्ञानवीच्युदधेर्यस्माद्यच्छ्रेयस्तच्च मे वद ।।४०

राजा बोले—अये ब्राह्मण ? अपने कल्याण के लिए मैने ऋषि कपिल से भी यही पूछना चाहा था, आप उन्ही कपिल ऋषि के अंश हैं और इस पृथ्वी पर मुझे ज्ञान प्रदान करने वाले हैं । ज्ञान रूपी तरंगों से तरङ्गित सागर में जो भी मेरे लिए कल्याणकारी हो मुझसे बताइये ।३९-४०।

ब्राह्मण उवाच—
भूयः पृच्छसि किं श्रेयः परमार्थं न पृच्छसि ।
श्रेयांसि परमार्थानि अशेषाण्येव भूपते ।।४१

देवताराधनं कृत्वा धनसम्पत्तिमिच्छति।
पुत्रानिच्छति राज्यं च श्रेयस्तस्यैव किं नृप ॥४२
विवेकिनस्तु संयोगः श्रेयो यः परमात्मनः।
यज्ञादिका क्रिया न स्यान्नास्ति द्रव्योपपत्तिता[1] ॥४३
परमार्थात्मनोर्योगः परमार्थ इतीष्यते।
एको व्यापी समः शुद्धो निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥४४
जन्मवृद्ध्यादिरहित आत्मा सर्वगतोऽव्ययः।
परं (र) ज्ञानमयोऽसङ्गी गुणजात्यादिभिर्विभुः ॥४५

ब्राह्मण बोला—तुम बार-बार कल्याण की बात पूछते हो, परमार्थ के विषय में नहीं पूछते हो। हे राजन्! सभी कल्याण मोक्ष ही हैं। देवताओं का पूजन करके मनुष्य धन और सम्पत्ति की इच्छा करता है, पुत्रों की इच्छा करता है और राज्य की इच्छा करता है। हे राजन्! क्या उसी को कल्याण कहते हैं। विवेकियों के लिए परमात्मा के साथ संयोग ही कल्याणकारी होता है, यज्ञ इत्यादि कर्म और द्रव्य इत्यादि की प्राप्ति नहीं। परमात्मा और आत्मा का संयोग ही परमार्थ कहलाता है। जो एक सर्वव्यापी, सबमें समान, शुद्ध, निर्गुण और प्रकृति से परे रहा करता है। आत्मा जन्म और वृद्धि आदि से रहित, सर्वगत और अवयव होती है। वह सर्वश्रेष्ठ, ज्ञानमय, अनासक्त, गुण और जाति आदि से रहित विभु है।४१-४५।

[2]निदाघऋतुसंवादं वदामि द्विज तं शृणु।
[3]ऋतुर्ब्रह्मसुतो ज्ञानी तच्छिष्योऽभूत्पुलस्त्यजः ॥४६
निदाघः प्राप्तविद्योऽस्मान्नगरे वै पुरे स्थितः।
देविकायास्तटे तं च तर्कयामास वै ऋतुः ॥४७
दिव्ये वर्षसहस्रेऽगान्निदाघमवलोकितुम्।
निदाघो वैश्वदेवान्ते भुक्त्वाऽन्नं शिष्यमब्रवीत् ॥
भुक्त्यन्ते तृप्तिरुत्पन्ना[4] तुष्टिदा साऽक्षया यतः ॥४८

---

१ क. ख. ग. ङ. °पपादिता। २ क. ख. ग. ङ. °ऋभुसंवादमद्वैतबुद्धये शृ°।
३ ख. ग. ऋभुर्ब्र°। ४ ख. ग. तुष्टिं गन्ता क्व वासकः। ऋभुरु°।

हे द्विज अब मैं तुमसे निदाघ और द्विज के संवाद को कहता हूँ उसे सुनो ! ऋतु ब्रह्मपुत्र और ज्ञानी था। उसका एक शिष्य था—पौलस्त्य। निदाघ बड़ा विद्वान् था। ऋतु ने देविका-तट पर उससे विवाद प्रारम्भ किया। वह दिव्य हजार वर्ष व्यतीत होने के बाद निदाघ से मिलने के लिए गया। निदाघ ने वैश्वदेव बलि देकर अन्न खाकर शिष्य से कहा—भोग के बाद तृप्ति उत्पन्न हुयी है जो संतोषजनक और अविनाशिनी है।४६-४८।

ऋतुरुवाच—
क्षुदस्ति यस्य भुक्तेऽन्ने तुष्टिर्ब्राह्मण जायते।
न मे क्षुदभवत्तृप्तिं कस्मात्त्वं परिपृच्छसि ॥४९
क्षुक्तृष्णे देहधर्माख्ये न ममैते यतो द्विज[1]।
पृष्टोऽहं तत्त्वया ब्रूयां तृप्तिरस्त्येव मे सदा ॥५०
पुमान्सर्वगतो व्यापी आकाशवदयं तत.[2]।
अतोऽहं प्रत्यगात्माऽस्मीत्येतदर्थे भवेत्कथम् ॥५१
सोऽहं गन्ता न चाऽऽगन्ता नैकदेशनिकेतनः।
त्वं चान्यो न भवेन्ना (र्ना) पि नान्यस्तत्तोऽस्मि
वाऽप्यहम् ॥५२
मृन्मयं हि गृहं यद्वन्मृदा लिप्तं स्थिरी भवेत्।
पार्थिवोऽयं तथा देहः पार्थिवैः परमाणुभिः ॥५३

ऋतु बोला—हे ब्राह्मण ! जो भूखा होता है वह भोजन करने से संतुष्ट होता है। जब मै भूखा ही नहीं था तो तुम मेरी तुष्टि के सम्बन्ध में क्या पूछते हो। हे ब्राह्मण ! भूख और प्यास नामक जो शारीरिक धर्म है वह मुझमें है ही नही इसलिए तुम्हारे प्रश्न के उत्तर में मैं यही कहना चाहता हूँ कि मैं निरन्तर सन्तुष्ट ही रहता हूँ। यह पुरुष (आत्मा) सर्वगत और आकाशवत् व्यापी हुआ करता है। इसलिए मै प्रत्यगात्मा हूँ यह कैसे हो सकता है। वह मैं न जाने वाला हूँ, न आने वाला हूँ और न एक स्थान में रहने वाला हूँ। तुम मुझसे भिन्न नही हो और न मैं तुमसे भिन्न हूँ। जिस प्रकार मिट्टी का बना हुआ घर मिट्टी के लेप से स्थिर होता है उसी प्रकार यह पार्थिव शरीर पार्थिव परमाणुओ से स्थिर होता है।४९-५३।

---

१ ख. ग. ॰ज। ततः क्षुत्संभवा तावत्तृप्ति॰। २ ख. ग. ॰तः। कुतः कुत्र क्व गन्तासीत्ये॰।

ऋतुरस्मि तवाऽऽचार्यः प्रज्ञादानाय ते द्विज ।
इहाऽऽगतोऽहं यास्यामि परमार्थस्तवोदितः ॥५४
एकमेवमिदं विद्धि न भेदः सकलं जगत् ।
वासुदेवाभिधेयस्य स्वरूपं परमात्मनः ॥५५
ऋतुर्वर्षसहस्रान्ते पुनस्तन्नगरं ययौ ।
निदाघं नगरप्रान्त एकान्ते स्थितमब्रवीत् ॥
एकान्ते स्थीयते कस्मान्निदाघ ऋतुमब्रवीत् ॥५६

हे ब्राह्मण ! मैं ऋतु हूँ, तुम्हारा आचार्य तुमको बुद्धि देने वाला है। इसलिए मैं यहाँ आया हूँ और जब तुम्हें ज्ञान हो जायगा तब मैं चला जाऊँगा। इस सारे जगत् को एक ही समझो इसमें कोई भेद नहीं है क्योंकि यह जगत् वासुदेव नामक परमात्मा का स्वरूप है । एक हजार वर्ष बीत जाने पर ऋतु उस नगर में गया और नगर के एक प्रदेश में रहने वाले उससे बोला--निदाघ ने ऋतु से कहा ।५४-५६।

निदाघ उवाच--
भो विप्र जनसंवादो महानेष नरेश्वरः ।
[1]प्रविवीक्ष्य पुरं रम्यं तेनात्र स्थीयते मया ॥५७

निदाघ बोला—हे ब्राह्मण ! जनता में यह बात फैल गयी है कि महाराज नगर में आकर उसका निरीक्षण करेंगे । इसीलिये मैं यहाँ बैठा हुआ हूँ ।५७।

ऋतुरुवाच—
नराधिपोऽत्र कतमः कतमश्चेतरो जनः ।
कथ्यतां मे द्विजश्रेष्ठ त्वमभिज्ञो द्विजोत्तम ॥५८

ऋतु बोला – यहाँ कौन राजा है और कौन प्रजा है । हे द्विजोत्तम ! तुम्हीं मुझे यह बताओ क्योंकि तुम ज्ञानी हो ।५८।

निदाघ उवाच—
[2]योऽयं गजेन्द्रमुन्मत्तमद्रिशृङ्गसमुत्थितम् ।
अधिरूढो नरेन्द्रोऽयं परिवारस्तथेतरः ॥५९

---

१ ख. प्रविविक्षुः । २ 'योऽयं ''' समुत्थितम्' नास्ति क. ख. ङ. पुस्तकेषु ।

गजो योऽयमधो ब्रह्मन्नुपर्येष स भूपतिः ।
ऋतुराह गजः कोऽत्र राजा चाऽऽह निदाघकः ॥६०
ऋतुर्निदाघ आरूढो दृष्टान्तं पश्य वाहनम् ।
उपर्यहं यथा राजा त्वमधः कुञ्जरो यथा ॥६१
ऋतुः प्राह निदाघं तं कतमस्त्वामहं वदे ।
उक्तो निदाघस्तं नत्वा प्राह मे त्वं गुरुर्ध्रुवम् ॥६२
नान्यस्माद्द्वैतसंस्कारसंस्कृतं मानसं तथा ।
ऋतुः प्राह निदाघं तं ब्रह्मज्ञानाय चाऽऽगतः ॥६३
परमार्थं सारभूतमद्वैतं दर्शितं मया ॥६४

निदाघ बोला—जो व्यक्ति इस उत्तम तथा पर्वत के चोटी के समान ऊँचे गजराज के ऊपर बैठा हुआ है वही राजा है और जो लोग इसके चारों ओर हैं वे ही उसकी प्रजा हैं। ये जो नीचे हैं वही हाथी है और जो इसके ऊपर है वही राजा है। निदाघ ने उत्तर दिया—हे ऋतु ! तुम नीचे बैठो और मैं तुम्हारे ऊपर सवार हो जाऊँ तो ऊपर रहने वाला मैं राजा और नीचे रहने वाले तुम हाथी बन जाओगे। ऋतु ने निदाघ से कहा मैं तुमसे क्या कह रहा हूँ। इस प्रकार कहने पर निदाघ ने प्रणाम करके ऋतु से कहा कि तुम निश्चय ही मेरे गुरु हो क्योंकि तुमने मेरे को अद्वैत ज्ञान से संस्कृत कर दिया है। ऋतु ने निदाघ से कहा मैं ब्रह्मज्ञान देने के लिये ही यहाँ आया था इसलिए मैंने सारभूत, परमार्थभूत अद्वैत का उपदेश दिया है। ५९-६४।

ब्राह्मण उवाच—
निदाघोऽप्युपदेशेन तेनाद्वैतपरोऽभवत् ।
सर्वभूतान्यभेदेन ददृशे स तदाऽऽत्मनि ॥६५
अवाप मुक्तिं ज्ञानात्स तथा त्वं मुक्तिमाप्स्यसि ।
एकः समस्तं त्वं चाहं विष्णुःसर्वगतो[1] यतः ॥६६
पीतनीलादिभेदेन यथैकं दृश्यते नभः ।
भ्रान्तिदृष्टिभिरात्माऽपि तथैकः स पृथक्पृथक् ॥६७

ब्राह्मण बोले—उस उपदेश से ब्राह्मण भी अद्वैतमय हो गया। उस समय से वह अपने में बिना किसी भेद के सभी प्राणियों को देखने लगा। उसने

---

१. क. ख. ग. ङ. ॰र्वनिदाघक, । पी॰ ।

ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त कर लिया उसी प्रकार तुम भी मोक्ष प्राप्त कर लोगे। एक ही विष्णु मुझमें तुममें और सबमें विद्यमान है। जिस प्रकार एक ही आकाश पीले और नीले आदि भेदों में दिखाई पड़ता है। उसी प्रकार जिनकी दृष्टि भ्रम से युक्त है उन्हें एक ही आत्मा अलग-अलग दिखाई पड़ती है। ६५-६७।

अग्निरुवाच—
मुक्तिं ह्यवाप भवतो [1]ज्ञानसारेण भूपतिः।
संसाराज्ञानवृक्षारि ज्ञानं ब्रह्मेति चिन्तय ॥६८

अग्निदेव बोले—राजा ने आपके द्वारा ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त कर लिया था। ब्रह्म का चिंतन करो क्योंकि उसका ज्ञान संसार के अज्ञान रूपी वृक्ष को नष्ट करने वाली अग्नि है।६८।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽद्वैतब्रह्मविज्ञाननिरूपणं नामाशीत्यधिक त्रिशततमोऽध्यायः।३८०

अथैकाशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

गीतासारः

अग्निरुवाच—
गीतासारं प्रवक्ष्यामि सर्वगीतोत्तमोत्तमम्।
[2]कृष्णो यमर्जुनायाऽऽह पुरा वै भुक्तिमुक्तिदम् ॥१

अग्निदेव बोले—(अब मैं) गीतासार बतलाऊँगा जो सभी गीताओं में उत्तमोत्तम है और जिसे प्राचीन काल में कृष्ण ने अर्जुन से कहा था। वह (गीतासार) भोग और मोक्ष प्रदान करने वाला है।१।

---

१ क. ख. ग. ज्ञानात्सौवीर भू°। २ छ. °ष्णोऽर्जुनाय यमाह।

श्रीभगवानुवाच—

गतासुरगतासुर्वा न शोच्यो देहवानजः ।
आत्माऽजरोऽमरोऽभेद्यस्तस्माच्छोकादिकं त्यजेत् ॥२
ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्कामस्ततः क्रोधः क्रोधात्संमोह एव च ॥३
संमोहात्स्मृतिविभ्रंशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।
दुःसङ्गहानिः सत्संगान्मोक्षकामी च कामनुत् ॥४
कामत्यागादात्मनिष्ठः स्थिरप्रज्ञस्तदोच्यते ।
या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ॥५
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥६

श्री भगवान् बोले—शरीरधारियों के मरने-जीने का शोक नहीं करना चाहिए क्योंकि यह आत्मा अजन्मा, अजर, अमर और भेदरहित है। इसलिए शोक इत्यादि का परित्याग कर देना चाहिए। जब मनुष्य विषयों का चिन्तन करता रहता है तो उसकी विषयों में आसक्ति उत्पन्न हो जाती है। आसक्ति से कामनायें उत्पन्न होती हैं, कामनाओं से क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध से सम्मोह उत्पन्न होता है, सम्मोह से स्मृति नष्ट होती है और बुद्धि का नाश होने से मनुष्य का सर्वनाश हो जाता है। सत्सङ्ग से दुःसङ्गति दूर होती है और मोक्ष की इच्छा करने वाला कामनाओं का त्याग कर देता है। कामनाओं के परित्याग से आत्मनिष्ठा उत्पन्न होती है जिससे मनुष्य स्थिरप्रज्ञ कहलाता है। जो सभी प्राणियों की रात्रि है उसमें संयमी जागता है और जिसमें सभी प्राणी जागते है वह ज्ञानी मनुष्य के लिये रात्रि होती है, जो व्यक्ति अपने आप में ही संतुष्ट रहता है उसका किसी से भी कुछ प्रयोजन नहीं रहता है।२-६।

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ॥७
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यति ॥८

ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ॥९
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ।
[1]सर्वभूतेषु चाऽऽत्मानं सर्वभूतानि चाऽऽत्मनि ॥१०
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्रसमदर्शनः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥११

न तो उसे होने वाले कार्य से कुछ प्रयोजन रहता है और न तो न होने वाले कार्य से ही कुछ प्रयोजन रहता है। हे वीर ! वह गुण और कर्मों के विभाग को भलीभाँति समझता है। सभी गुण गुणों में ही रहा करते है— ऐसा समझकर वह उनमें आसक्त नहीं होता है। वह ज्ञान रूपी नौका के द्वारा सभी इच्छाओं को पार कर लेता है। अये अर्जुन ! जो व्यक्ति आसक्ति रहित होकर सभी कर्मों को ब्रह्मार्पण करके करता है उसकी ज्ञानाग्नि सभी कर्मों को भस्म कर देती है। वह पापकर्मों से उसी प्रकार अछूता रहता है जिस प्रकार जल में रहने वाला कमलपत्र जल से अछूता रहता है। समदर्शी योगी सभी प्राणियों में अपनी आत्मा को और अपने आप में सभी प्राणियों का दर्शन करता है। योगभ्रष्ट व्यक्ति पवित्रों और धनवानों के घर में जन्म ग्रहण करता है ।७-११।

न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ।
दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ॥१२
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥१३
चतुर्विधा भजन्ते मां ज्ञानी चैकत्वमास्थितः ।
अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ॥१४
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ।
अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ॥१५
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ।
अन्तकाले स्मरन्मां च मद्भावं यात्यसंशयः[2] ॥१६

---

१ क. ख. ग. ङ. °भूतस्थमात्मा° । २ ख. ग. °शयम् । यं ।

हे तात ! (सबका) कल्याण करने वाला दुर्गति को प्राप्त नहीं करता है। यह मेरी दैवीमाया गुणमयी और कठिनता से जानी जाने वाली है। इस माया से वही लोग पार हो सकते हैं जो मेरी शरण में आ जाते हैं। हे भरत-वंश में श्रेष्ठ ! चार प्रकार के लोग मेरी सेवा करते है—दुःखी, जिज्ञासु, धन के इच्छुक और ज्ञानी। इनमें से ज्ञानी ही (मेरे) एकत्व में स्थित होता है। ब्रह्म अविनाशी और सर्वश्रेष्ठ है। स्वभाव ही अध्यात्म कहा जाता है। प्राणियों और उनके भावों को उत्पन्न करने वाला ज्ञानकर्म कहा जाता है। संसार तथा उससे सम्बद्ध ज्ञान नश्वर होता है किन्तु आत्मज्ञान अनन्त कहा गया है। देहधारियों में श्रेष्ठ ! कर्मयोगी मनुष्यों के यज्ञों में मैं ही रहा करता हूँ। अन्तकाल में मेरा स्मरण करते हुए निश्चय ही मनुष्य मुझे प्राप्त कर लेता है।१२-१६।

यं यं भावं स्मरन्नन्ते त्यजेद्देहं तमाप्नुयात्।
प्राणं न्यस्य भ्रुवोर्मध्ये अन्ते प्राप्नोति मत्परम् ॥१७
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म वदन्देहं त्यजंस्तथा।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्ताः[१] सर्वा मम विभूतयः ॥१८
श्रीमन्तश्चोर्जिताः सर्वे ममांशाः प्राणिनः स्मृताः।
अहमेको विश्वरूप इति ज्ञात्वा विमुच्यते ॥१९
क्षेत्रं शरीरं यो वेत्ति क्षेत्रज्ञः स प्रकीर्तितः।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥२०
महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ॥२१
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥२२

अन्त समय में मनुष्य जिस-जिस भाव का स्मरण करते हुए शरीर का त्याग करता है उसी को वह प्राप्त करता है। दोनों भृकुटियों के बीच में प्राणों को रखकर मेरा ध्यान करते हुए और 'ओम्' इस एकाक्षर ब्रह्म का उच्चारण करते हुए जो व्यक्ति प्राणों को छोड़ता है वह मुझे प्राप्त करता है। ब्रह्म से लेकर अणु पर्यन्त सभी मेरी विभूतियाँ है। धनवान् तथा वीर प्राणी

१ छ. सर्वे।

मेरे ही अंश कहे गये हैं। मैं ही विश्वरूप हूँ, ऐसा जान लेने से मनुष्य मुक्त हो जाता है। क्षेत्र कहते हैं शरीर को और उसको जानने वाला क्षेत्रज्ञ कहा गया है। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का ज्ञान ही मेरा ज्ञान माना गया है। पंचमहाभूत, अहंकार, बुद्धि, अव्यक्त दश इन्द्रियाँ, पाँच इन्द्रियों के विषय, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, उन सबका समूह, चेतना और धैर्य इन सबको संक्षेपतः विकारयुक्त क्षेत्र कहा गया है।१७-२२।

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥२३
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥२४
असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥२५
मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥२६
अध्यात्मज्ञाननिष्ठत्वं तत्त्वज्ञानानुदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥२७
ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यं ज्ञा (यज्ज्ञा) त्वामृतमश्नुते।
[1]अनादि परमं ब्रह्म सत्त्वं नाम तदुच्यते ॥२८

ज्ञान के विषय हैं—मानरहित होना, दम्भ रहित होना, अहिंसा, क्षमा, ऋजुता, आचार्य-पूजा, पवित्रता, स्थिरता, आत्मसंयम, विषयों से वैराग्य, अहंकारहीनता, जन्ममृत्यु, जरा, व्याधि, दुःख और दोषों का ज्ञान, पुत्र, कलत्र और गृह आदि में अनासक्ति, इष्ट और अनिष्ट में नित्यसमान रूप से रहना, मेरे प्रति अनन्य भाव से दोषरहित भक्ति, एकान्तवास, जनसमूह से वैराग्य, अध्यात्मज्ञान, निष्ठा और तत्त्वज्ञान जो कुछ इससे भिन्न है उसे अज्ञान कहा गया है। अब मैं उसे बताऊँगा जो जानने योग्य है और जिसे जानकर अमृत की प्राप्ति होती है। वह अनादि और परब्रह्म है जिसे सत्त्व कहा जाता है।२३-२८।

---

१ ख. ग. दिमत्परम् ब्रह्म न सत्तन्नासदु'।

सर्वतः पाणिपादान्तं स (दं तत्स) र्वतोक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥२९
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं [1]सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥३०
बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिकेऽपि यत् ॥३१
अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।
भूतभर्तृ च विज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥३२
ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य सस्थितम् ॥३३

उसके हाथ और पैर सब ओर फैले रहते हैं, उसके नेत्र, शिर और मुख सभी ओर रहते हैं। वह लोक में सब कुछ सुनने वाला और सबको आवृत करके रहता है। वह सभी इन्द्रियों के गुणों से आभासित होते हुए भी सभी इन्द्रियों से रहित होता है। वह आसक्तिहीन, सबका भरण करने वाला निर्गुण और गुणों का भोक्ता है। वह प्राणियों के बाहर और भीतर रहता है। वही चर और अचर है। सूक्ष्म होने के कारण वह अविज्ञेय है और दूर होते हुए भी निकट है। वह अविभक्त होते हुए भी प्राणियों में विभक्त सा रहता है। वही प्राणियों का भरण करने वाला, विज्ञेय, सबको ग्रसित करने वाला और सबसे शक्तिशाली है। वह ज्योतियों में भी ज्योति और अंधकार से परे रहने वाला कहा गया है। वही ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञानगम्य और सबके हृदयों में रहने वाला है।२९-३३।

ध्यानेनाऽऽत्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन (ण) चापरे ॥३४
अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वाऽन्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चाऽऽशु तरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥३५
सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥३६

---

१ क ङ. °र्वभूतेषु नि° । ख. ग. °र्वभूतेभ्यो नि° ।

गुणा वर्तन्त इत्येवं योऽवतिष्ठति नेङ्गते ।
मानावमानमित्रारितुल्यस्त्यागी स निर्गुणः ॥३७
ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥३८

कुछ लोग ध्यान में अपने में अपनी आत्मा को देखते हैं। अन्य लोग इसे सांख्य योग से देखते हैं। और दूसरे इसे कर्मयोग से देखते हैं। अन्य लोग उसे न जानते हुए भी दूसरों से सुनकर उसकी उपासना किया करते हैं। ब्रह्म के श्रवण में लगे हुए भी वे लोग शीघ्र ही (संसार सागर को) पार कर लेते हैं। सत्त्व से ज्ञान और रजस् से लोभ उत्पन्न होता है। तमोगुण से प्रमाद और मोह तथा संसार से अज्ञान उत्पन्न होता है। इस प्रकार से रहने वाले गुणों में जो अविचल भाव से स्थित रहता है और मान-अपमान तथा शत्रु-मित्र में समान व्यवहार करने वाला और त्यागी होता है वही निर्गुण है। ज्ञान का जो अश्वत्थ तरु है उसकी जड़ें ऊपर की ओर और शाखायें नीचे की ओर रहती हैं। उसे अव्यय कहा गया है तथा छन्द ही उसके पत्ते हैं। इस प्रकार जो उस अश्वत्थ तरु को जानने वाला है वही वेदज्ञ है।३४-३६।

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च ।
अहिंसादिः क्षमा चैव दैवी[1] संपत्ततो नृणाम् ॥३९
न शौचं नापि वाऽऽ (चा) चारो ह्यासुरी संपदोद्भवः ।
[2]नरकत्वात्क्रो (दाः क्रो) धलोभकामास्तस्मात्त्रयं
त्यजेत् ॥४०
यज्ञस्तपस्तथा दानं सत्त्वाद्यैस्त्रिविधं स्मृतम् ।
आयुः सत्त्वं वलारोग्यसुखायान्नं तु सात्त्विकम् ॥४१
दुःखशोकामयायान्नं तीक्ष्णरूक्षं तु राजसम् ।
अमेध्योच्छिष्टपूत्यन्नं तामसं नीरसादिकम् ॥४२
यष्टव्यो विधिना यज्ञो निष्कामाय स सात्त्विकः ।
यज्ञः फलाय[3] दम्भाय राजसस्तामसः क्रतुः ॥४३

---

१ छ. °पत्तितो । २ "नरकत्वात्क्रो (क्षः क्रो)......त्रयं त्यजेत्" इत्यत्र "त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः । कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेदिति क. ङ. पुस्तकयोः पाठः । ३ क. ङ.° दम्भार्थं ।

श्रद्धामन्त्रादिविध्युक्तं तपः शारीरमुच्यते ।
देवादिपूजाऽहिंसादि वाङ्मयं तप उच्यते ॥४४

इस संसार में प्राणियों की सृष्टियाँ दो प्रकार की है एक दैवी और दूसरी आसुरी। अहिंसा इत्यादि और क्षमा दैवी सम्पत्ति है तथा अशौच और अनाचार आसुरी सम्पत्तियों से उत्पन्न होते हैं। क्रोध, लोभ और काम नरक के हेतु हैं इसलिये इन तीनों को त्याग देना चाहिए यज्ञ, तथ एवं दान सात्त्विक, राजस और तामस भेद से तीन प्रकार कहे गए है। सात्त्विक अन्न, आयु सत्त्व, वल, आरोग्य और सुख के लिए होता है। तीखा और रूखा अन्न राजस् है जो दु:ख, शोक रोग के लिए होता है। नीरस इत्यादि अमेध्य, उच्छिष्ट और दुर्गन्ध युक्त अन्न तामस कहा गया है। सात्त्विक यज्ञ वह कहलाता है जो विना किसी कामना के विधिपूर्वक किया जाता है। फल के लिए किया जाने वाला यज्ञ राजस् और दम्भ के लिए किया जाने वाला यज्ञ तामस है। श्रद्धा मन्त्र इत्यादि और विधिपूर्वक किया गया तप शारीरिक तप कहा गया है तथा देव आदि की पूजा और हिंसादि वाङ्मय तप कहा जाता है। ३९-४४।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं स्वाध्यायसज्जपः ।
मानसं [1]चित्तसंशुद्धिर्मौनमात्मविनिग्रहः ॥४५
सात्त्विकं च तपोऽकामं फलाद्यर्थं तु राजसम् ।
तामसं परपीडायै सात्त्विकं दानमुच्यते ॥४६
देशादौ[2] चैव दातव्यमुपकाराय राजसम् ।
अदेशादाववज्ञात तामसं दानमीरितम् ॥४७
ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।
यज्ञदानादिकं कर्म भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम् ॥४८
अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ॥४९
तामसः[3] कर्मसंयोगान्मोहात्क्लेशभयादिकात् ।
राजसः सात्त्विकोऽकामात्पञ्चैते कर्महेतवः ॥५०

१ क. ङ. °शुद्धेर्मौ° । २ ख. ग. °व विज्ञातमु° । ३ क. ङ. °संन्यासो मोहा° । ख. ग. °संत्यागो मोहा° ।

उद्विग्न न करने वाला वाक्य सत्य कहलाता है। जप कहते हैं स्वाध्याय को जिससे मन की शुद्धि होती है और मौन से आत्म-निग्रह होता है। इच्छा रहित तप सात्त्विक और फल इत्यादि के लिए किया गया तप राजस् कहलाता है तथा तामस तप उसे कहते हैं जो दूसरों को पीड़ित करने के लिए किया जाता है। (उचित) देश आदि में दिया गया दान सात्त्विक दान कहलाता है, उपकार के लिए दिया गया दान राजस तथा अनुचित देश में तथा अपमान पूर्वक दिया गया दान तामस दान कहा गया है। 'ॐ तत्सत्' इस प्रकार से ब्रह्म का त्रिविध निर्देश किया गया है। यज्ञ और दान आदि कर्म मनुष्यों के भोग और मोक्ष देने वाले होते हैं। कर्म का फल तीन प्रकार का होता है—अनिष्ट, इष्ट और इष्टानिष्ट। यह उन्हीं के लिए होता है जो बिना त्याग के शरीर छोड़ते हैं। संन्यासियों में यह कभी भी नहीं होता है। कर्म के हेतु पाँच हैं—तामस हेतु जो कर्म संयोग और मोह से होता है, राजस हेतु जो क्लेश और भय आदि से होता है और सात्त्विक हेतु जो कामनाओं के नाश से होता है।४४-५०।

अधिष्ठानं तथा कर्त्ता करणं च पृथग्विधम्।
त्रिविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥५१
एकं ज्ञानं सात्त्विकं स्यात्पृथग्ज्ञानं तु राजसम्।
अतत्त्वार्थं तामसं स्यात्कर्माकामाय सात्त्विकम् ॥५२
कामाय राजसं कर्म मोहात्कर्म तु तामसम्।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समः कर्ता सात्त्विको राजसो ह्यपि ॥५३
शठोऽलसस्तामसः स्यात्कार्यादिधीश्च सात्त्विकी।
[1]कार्यार्थं सा राजसी स्याद्विपरीता तु तामसी ॥५४
मनोधृतिः सात्त्विकी स्यात्प्रीतिकामेति राजसी।
तामसी तु प्र (पुत्र (?)) शोकादौ सुखं[2] सत्त्वात्त-
दन्तगम् ॥५५

भेद रहित ज्ञान सात्त्विक पृथग् ज्ञान राजस और तत्त्वहीन ज्ञान तामस कहा गया है। जो कर्म बिना किसी कामना के किया जाता है वह सात्त्विक

---

१ क. ग. °र्यादिधीरा°। २ ख. ग. ङ. ° त्वाद्य उत्तमः। सु°।

कर्म, जो किसी कामना से किया जाता है वह राजस कर्म और जो मोहवश किया जाता है वह तामस कर्म कहलाता है। कार्य की सफलता और असफलता में समान रूप से रहने वाला कर्ता सात्त्विक है, जो राजस कर्ता के विपरीत इन दोनों में से किसी से प्रभावित नहीं होता है और तामस कर्ता शठ तथा आलसी हुआ करता है। कार्य के आदि में रहने वाली बुद्धि सात्त्विकी, कार्य के लिए रहने वाली बुद्धि राजसी और इन दोनों से विपरीत रहने वाली बुद्धि तामसी कहलाती है। मानसिक धैर्य बुद्धि सात्त्विक, प्रीति की इच्छा करने वाली राजसी और शोक आदि में रहने वाली बुद्धि तामसी है, सात्त्विक सुख आदि से अन्त तक रहता है।५१-५५।

सुखं तद्राजसं चाग्रे अन्ते दुःखं तु तामसम्।
अतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।।५६
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य विष्णुं सिद्धिं च विन्दति।
कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा।।५७
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं जगद्विष्णुं च वेत्ति यः।
सिद्धिमाप्नोति भगवद्भक्तो भागवतो ध्रुवम्।।५८

राजसिक कर्म अन्त में सुखकारी होता है और तामसिक कर्म आदि और अन्त दोनों में दुःखदायी होता है। इसलिए प्राणियों की प्रवृत्ति सात्त्विक कर्मों में ही होनी चाहिए उसी प्रवृत्ति से यह सब कुछ व्याप्त है। अपने धर्म से विष्णु की आलोचना करके मनुष्य को सिद्धि प्राप्त होती है जो व्यक्ति मन, वचन और कर्म से सभी अवस्थाओं और सभी कालों में ब्रह्म से लेकर अणुपर्यन्त इस जगत् और विष्णु को जानता है वह भगवद्भक्त निश्चय ही सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।५६-५८।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गीतासारनिरूपणं नामैकाशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः।३८१

— —

अथ द्व्यशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

यमगीता

अग्निरुवाच—

यमगीतां प्रवक्ष्यामि उक्ता या[1] नाचिकेतसे ।
पठतां शृण्वतां भुक्त्यै मुक्त्यै मोक्षार्थिनां सताम् ॥१

अग्निदेव बोले—अब मैं वह यमगीता सुनाऊँगा जो नचिकेता को सुनायी गयी थी जिसके पढ़ने और सुनने से मुमुक्षु सज्जनों को भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है ।१।

यम उवाच—

आसनं शयनं यानं परिधानगृहादिकम् ।
वाञ्छत्यहोऽतिमोहेन सुस्थिरं स्वयमस्थिरः ॥ २
भोगेषु श (ष्वस) क्तिः सततं तथैवाऽऽत्मावलोकनम् ।
श्रेयः परं मनुष्याणां कपिलोद्गीतमेव हि ॥३
[2]सर्वत्र समदर्शित्वं निर्ममत्वमसङ्गता ।
श्रेयः परं मनुष्याणां गीतं पञ्चशिखेन हि ॥४
आगर्भजन्मबाल्यादिवयोऽवस्थादिवेदनम् ।
श्रेयः परं मनुष्याणां गङ्गाविष्णुप्रगीतकम् ॥५
आध्यात्मिकादिदुःखानामाद्यन्तादिप्रतिक्रिया ।
श्रेयः परं मनुष्याणां जनकोद्गीतमेव च ॥६
अभिन्नयोर्भेदकरः प्रत्ययो यः परात्मनः ।
तच्छान्तिपरमं श्रेयो ब्रह्मोद्गीतमुदाहृतम् ॥७
कर्तव्यमिति यत्कर्म ऋग्यजुः सामसंज्ञितम् ।
कुरुते श्रेयसेऽसङ्गाज्जैगीषव्येण गीयते ॥८

यम बोले—ये मनुष्य स्वयं अस्थिर होते हुए भी मोहवश स्थिर रहने वाले आसन, शयन, यान, परिधान और गृह आदि की इच्छा करते हैं—यह

---

१ छ. माचिकेतसे । २ 'सर्वत्र······निर्ममत्वमसङ्गता' नास्ति ख. पुस्तके ।

कितने आश्चर्य की बात है। कपिल ने पहले ही बताया है कि भोगों में अनासक्ति तथा निरन्तर आत्मदर्शन ही मनुष्यों का परम कल्याण है। पंचशिख ने भी यही कहा है कि सर्वत्र समदर्शित्व निर्ममत्व और असंगता मनुष्यों के परम कल्याण का साधन है। गर्भ से लेकर जन्म और बाल्य आदि अवस्थाओं का ज्ञान मनुष्यों के परम कल्याण का हेतु है—यह गंगाविष्णु का गान है। जनक के द्वारा बताया गया मनुष्यों का परम कल्याण इसमें है कि वह आध्यात्मिक आदि दुःखों को क्षणिक समझकर धैर्यपूर्वक सहन करे। 'जीवात्मा और परमात्मा वस्तुतः अभिन्न हैं। इनमें भेद की प्रतीति का निवारण करना परम कल्याण का हेतु है'—यह ब्रह्मा का सिद्धान्त है। जैगीषव्य के अनुसार अनासक्त भाव से कल्याण के लिए ऋक्, यजु और साम के द्वारा बताये गये कर्म को करना कल्याणकारक है।२-८।

हानिः सर्वविधित्सानामात्मनः सुखहैतुकी।
श्रेयः परं मनुष्याणां देवलोद्गीतमीरितम् ।।९
कामत्यागात्तु विज्ञानं सुखं ब्रह्म परं पदम्।
कामिनां नहि विज्ञानं सनकोद्गीतमेव तत् ।।१०
प्रवृत्तं च निवृत्तं च कार्यं कर्म परोऽब्रवीत्।
श्रेयसां श्रेय एतद्धि नैष्कर्म्यं ब्रह्म तद्धरिः ।।११
पुमांश्चाधिगतज्ञानो भेदं नाऽऽप्नोति सत्तमः।
ब्रह्मणा विष्णुसंज्ञेन परमेणाव्ययेन च ।।१२
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं सौभाग्यं रूपमुत्तमम्।
तपसा लभ्यते सर्वं मनसा यद्यदिच्छति ।।१३

देवल के द्वारा वर्णित है कि सब प्रकार से अपने द्वारा किये जाने वाले कर्मों का नाश ही सभी सुखों का हेतु है। सनक के द्वारा कामियों का जो विज्ञान बताया गया है वह है कामनाओं का परित्याग जो कि सुख और परब्रह्म के समान है। कर्म दो प्रकार के होते है—प्रवृत्त कर्म और निवृत्त कर्म। इनमें से निवृत्त कर्म सर्वश्रेष्ठ और कल्याणों में भी परमकल्याण तथा ब्रह्मरूप विष्णु है। ज्ञानी पुरुष विष्णु संज्ञक और अव्यय ब्रह्म से कभी भेद को नहीं प्राप्त होता है। तपस्या के द्वारा मनुष्य ज्ञान, विज्ञान, आस्तिक्य, सौभाग्य, श्रेष्ठरूप तथा अन्य मनोवांछित कामनाओं को प्राप्त कर लेता है।९-१३।

नास्ति विष्णुसमं ध्येयं तपो नानशनात्परम् ।
नास्त्यारोग्यसमं धन्यं नास्ति गङ्गासमा सरित् ॥१४
न सोऽस्ति वान्धवः कश्चिद्विष्णुं मुक्त्वा जगद्गुरुम् ।
अधश्चोर्ध्वं हरिश्चाग्रे देहेन्द्रियमनोमुखे ॥१५
इत्येव संस्मरन्प्राणान्यस्त्यजेत्स हरिर्भवेत् ।
यत्तद्ब्रह्म यतः सर्वं यत्सर्वं तस्य संस्थितम् ॥१६
अग्राह्यकमनिर्देश्यं सुप्रतिष्ठं च यत्परम् ।
परापरस्वरूपेण विष्णुः सर्वहृदि स्थितः ॥१७
यज्ञेशं यज्ञपुरुषं केचिदिच्छन्ति तत्परम् ।
केचिद्विष्णुं हरं केचित्केचिद्ब्रह्माणमीश्वरम् ॥१८

विष्णु के समान कोई ध्येय नहीं है, उपवास से बढ़कर कोई तप नहीं है, नीरोग के समान कोई धन्य नहीं है और गंगा के समान कोई नदी नहीं है। जगद्गुरु विष्णु को छोड़कर अन्य कोई वान्धव नहीं है। भगवान् विष्णु ही नीचे, ऊपर, आगे, शरीर में इन्द्रिय में, मन में और मुख में है। इस प्रकार स्मरण करते हुए जो व्यक्ति अपने प्राणों को छोड़ता है वह विष्णु हो जाता है। ब्रह्म से ही सव कुछ उत्पन्न होता है और उसी में स्थित रहता है। वह ब्रह्म जो अग्राह्य, अनिर्देश्य, सुप्रतिष्ठित और सर्वश्रेष्ठ है वही परापर रूप से विष्णु के रूप में सभी के हृदय में स्थित रहता है। कुछ लोग यज्ञेश की इच्छा करते हैं और कुछ लोग यज्ञपुरुष की इच्छा करते हैं। कुछ लोग विष्णु की, कुछ लोग शिव की और कुछ ब्रह्मा की कामना करते हैं।१४-१८।

इन्द्रादिनामभिः केचित्सूर्यं सोमं च कालकम् ।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं जगद्विष्णुं वदन्ति च ॥१९
स विष्णुः परमं ब्रह्म यतो नाऽऽवर्तते पुनः ।
सुवर्णादिमहादानपुण्यतीर्थावगाहनैः ॥२०
ध्यानैर्व्रतैः पूजया च धर्मश्रुत्या [1]तदाप्नुयात् ।
आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ॥२१

---

१ ख. ग. तमाप्नु॰ ।

बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांश्चेति गोचरान् ॥२२
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ।
यस्त्वविज्ञानवान्भवत्ययुक्तमनसा सदा ॥२३
न सत्पदमवाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ।

कुछ लोग इन्द्र इत्यादि नामों से सूर्य, सोम, काल, ब्रह्म से लेकर अणु तक सम्पूर्ण जगत् को और विष्णु को सम्बोधित करते हैं। वही विष्णु और वही परब्रह्म है जिससे पुनरावृत्ति नही होती है। उसे सुवर्ण इत्यादि महादान से, पुण्यतीर्थो में स्नान करने से, ध्यान और व्रतों से तथा पूजा और धर्मोपदेश सुनने से प्राप्त किया जा सकता है। आत्मा को रथी समझिए, शरीर को रथ, बुद्धि को सारथी और मन को रस्सी। इन्द्रियों को घोड़े और विषयों को चाबुक कहा गया है। बुद्धिमानों ने आत्मा, इन्द्रिय और मन से युक्त रहने वाले को भोक्ता कहा है। जो ज्ञानवान् तथा विरक्त नही होता है वह मोक्ष पद को प्राप्त नहीं करता है और संसार में लौट आता है किन्तु जो व्यक्ति ज्ञानवान् होता है और जिसका मन परब्रह्म में निरत रहता है वह उस परमपद को प्राप्त कर लेता है जहाँ से उसे फिर इस संसार में आना नहीं पड़ता है।१६-२३½।

—यस्तु विज्ञानवान्भवति युक्तेन मनसा सदा ॥२४
स तत्पदमवाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते ।
विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः ॥२५
सोऽध्वानं परमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ।
इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ॥२६
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः ।
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ॥२७
पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठासापरा गतिः ।
एषु सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते ॥२८
दृश्यते त्वग्र (ग्र्य) या बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ।
यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञानमा (न आ) त्मनि ॥२९
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेच्छान्त आत्मनि ।
ज्ञात्वा ब्रह्मात्मनोर्योगं यमाद्यैर्ब्रह्म सद्भवेत् ॥३०

ज्ञानरूपी सारथी और मन रूपी रस्सियों से युक्त मनुष्य उस मार्ग को प्राप्त करता है जो विष्णु का परमपद कहा गया है। इन्द्रियों से परे विषय है, विषयों से परे मन है, मन से परे बुद्धि है और बुद्धि से परे आत्मा है। उस आत्मा से परे अव्यक्त और अव्यक्त से भी परे परमपुरुष है। उस परमपुरुष से परे कुछ भी नहीं है। वही सबकी पराकाष्ठा और परमगति है। इन सभी प्राणियों में गूढ़ रूप से रहने वाली आत्मा प्रकाशित नहीं होती है। वह तो केवल सूक्ष्मद्रष्टा लोगों के द्वारा सूक्ष्म और अग्रबुद्धि के द्वारा देखी जाती है। विद्वान् को अपनी वाणी और मन पर नियन्त्रण करना चाहिए और आत्मा में ज्ञान को नियंत्रित करना चाहिए क्योंकि यम आदि से ब्रह्म और आत्मा का योग जान लेने से मनुष्य सद्ब्रह्म हो जाता है।२४-३०।

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ।
यमाश्च नियमाः पञ्च शौचं सन्तोषसत्तपः ॥३१
स्वाध्यायेश्वरपूजा च आसनं पद्मकादिकम्।
प्राणायामो वायुजयः प्रत्याहारः स्व (ख) निग्रहः ॥३२
शुभे ह्येकत्र विषये चेतसो यत्प्रधारणम्।
निश्चलत्वात्तु धीमद्भिर्धारणा द्विज कथ्यते ॥३३
पौनः पुन्येन तत्रैव विषयेष्वेव धारणा।
ध्यानं स्मृतं समाधिस्तु अहंब्रह्मात्मसंस्थितिः ॥३४
घटध्वंसाद्यथाऽऽकाशमभिन्नं नभसा भवेत्।
मुक्तो जीवो ब्रह्मणैवं सद्ब्रह्म ब्रह्म वै भवेत् ॥३५
आत्मानं मन्यते ब्रह्म जीवो ज्ञानेन नान्यथा।
जीवो ह्यज्ञानतत्कार्यमुक्तः स्यादजरामरः ॥३६

यम पाँच हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। नियम भी पाँच हैं—शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-पूजा। पद्म आदि आसन हैं। प्राणायाम वायु से उत्पन्न होता है और प्रत्याहार कहते हैं आत्मनिग्रह को। हे ब्राह्मण! किसी शुभ वस्तु में निश्चल रूप से चित्त के लगाने को ही बुद्धिमानों ने धारणा कहा है। उन्हीं विषयों में पुनः-पुनः मन लगाना ध्यान कहा गया है। 'मैं ब्रह्म हूँ'—इस प्रकार की स्थिति समाधि कहलाती है। जिस प्रकार घड़े के टूट जाने पर (उसमें प्रतिबिम्बित होने वाला) आकाश आकाश में मिल जाता है उसी प्रकार ब्रह्म से युक्त होने पर जीव ब्रह्म ही हो जाता

है क्योंकि वह ब्रह्म स्वरूप ही है। ब्रह्म ही आत्मा है जिसे अज्ञान के कारण जीव समझा जाता है। यह जीव अज्ञान तथा उसके कार्यों से मुक्त अजर और अमर है।३१-३६।

अग्निरुवाच—
वशिष्ठ यमगीतोक्ता पठतां भुक्तिमुक्तिदा।
आत्यन्तिको लयः प्रोक्तो वेदान्तब्रह्मधीमयः ॥३७

अग्निदेव बोले—हे वशिष्ठ! मैंने जिस यमगीता को कहा है उसका पाठ करने से भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। यही आत्यन्तिक लय कहा गया है और यही वेदान्तियों की बुद्धि से युक्त रहता है।३७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये यमगीताकथनं नाम
द्व्यशीतित्रिशततमोऽध्यायः।३८२

———

अथ त्र्यशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः
आग्नेयमहापुराणमाहात्म्यम्

अग्निरुवाच—
आग्नेयं ब्रह्मरूपं ते पुराणं कथितं मया।
सप्रपञ्चं निष्प्रपञ्चं [1]विद्याद्वयमयं महत् ॥१
ऋग्यजुः सामाथर्वाख्या विद्याविष्णुर्जगज्जनिः।
छन्दः शिक्षाव्याकरणं (ण) निघण्टुज्योतिराख्यकाः ॥२
निरुक्तधर्मशास्त्रादिमीमांसान्यायविस्तराः।
आयुर्वेदपुराणाख्या धनुर्गन्धर्वविस्तराः ॥३
[2]विद्या सैवार्थशास्त्राख्या वेदान्ताान्या[3] (?)ह रिर्महान्।
इत्येषा चापरा विद्या परविद्याऽक्षरं परम् ॥४
यस्य भावोऽखिलं विष्णुस्तस्य नो वाधते कलिः।
अनिष्ट्वा तु महायज्ञानकृत्वाऽपि पितृस्वधाम् ॥५

———

१ विद्व्यद्द° । २ ख. ग. °द्याश्चैवा° । ३ ख. ग. °न्ताद्या ह° ।

अग्निदेव बोले—मैंने तुमसे ब्रह्मरूप अग्निपुराण कह दिया है। यह सप्रपञ्च और निष्प्रपञ्च (परा) दोनों विद्याओं से युक्त है। प्रथम प्रकार की विद्या के अन्तर्गत आने वाले विषय हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, छन्दःशास्त्र, शिक्षा, व्याकरण, निघण्टु, ज्योतिष्, निरुक्त, धर्मशास्त्र, मीमांसा, न्याय, आयुर्वेद, पुराण, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थशास्त्र। द्वितीय प्रकार की विद्या में आने वाला है वेदान्त दर्शन तथा वह ज्ञान जो ब्रह्म-साक्षात्कार करा देता है। जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक विष्णु का चिन्तन करता रहता है उसे कलि पीड़ित नही करता है। चाहे वह महायज्ञों का अनुष्ठान न करे या पितरों को वलि न दे ।१-५।

कृष्णमभ्यर्चयन्भक्त्या नैनसो भाजनं भवेत् ।
सर्वकारणमत्यन्तं विष्णुं ध्यायन्न सीदति ।।६
अन्यतन्त्रादिदोषोत्थो बिषयाकृष्टमानसः ।
कृत्वाऽपि पापं गोविन्दं ध्यायन्पापैः प्रमुच्यते ।।७
तद्ध्यानं यत्र गोविन्दः सा कथा यत्र केशवः ।
तत्कर्म यत्तदर्थीयं किमन्यैर्बहुभाषितैः ।।८
न तत्पिता तु पुत्राय न शिष्याय गुरुर्द्विजः ।
परमार्थं परं ब्रूयाद्यदेतत्ते मयोदितम् ।।९
संसारे भ्रमता लभ्यं पुत्रदारधनं वसु ।
सुहृदश्च तथैवान्ये नोपदेशो द्विजेदृशः ।।१०

भक्तिपूर्वक कृष्ण की अर्चना करने से मनुष्य पाप का भागी नहीं होता है। सभी के कारणभूत विष्णु का ध्यान करने से मनुष्य किसी दुःख में नहीं फंसता है। जो व्यक्ति गोविन्द (कृष्ण) का ध्यान करता है, वह सभी पापों से छुटकारा पा जाता है। चाहे उनमें अन्य प्रकार के तन्त्रों से उत्पन्न होने वाले दोष हों, चाहें उसका मन विषयों में आसक्त हो अथवा वह पापकर्म ही क्यों न करता है। अधिक कहने से क्या लाभ ? वही ध्यान है जिसमें गोविन्द हों वही कथा है जिसमें केशव हों और वही कर्म है जो उन (कृष्ण) के उद्देश्य से किया गया हो। मैंने तुमसे जिस परमार्थ की बात की है उसे न तो कोई पिता अपने पुत्र से करता है और न कोई गुरु अपने शिष्य से। हे द्विज ! इस संसार

में भटकने वाला व्यक्ति पुत्र, कलत्र, धन, मित्र, तथा अन्य वस्तुओं को तो प्राप्त कर लेता है किन्तु उसे ऐसा उपदेश कभी भी प्राप्त नहीं होता है।६-१०

किं पुत्रदारैर्मित्रैर्वा किं मित्रक्षेत्रवान्धवैः ।
उपदेशः परो वन्धुरीदृशो यो विमुक्तये ॥११
द्विविधो [1]भूतसर्गोऽयं दैव आसुर एव च ।
विष्णुभक्तिपरो दैवो विपरीतस्तथाऽऽसुरः ॥१२
एतत्पवित्रमारोग्यं धन्यं दुःस्वप्ननाशनम् ।
सुखप्रीतिकरं नॄणां मोक्षकृद्यत्तवेरितम् ॥१३
येषां गृहेषु लिखितमाग्नेयं हि पुराणकम् ।
पुस्तकं स्थास्यति सदा तत्र नेशुरुपद्रवाः ॥१४
किं तीर्थैर्गोप्रदानैर्वा किं यज्ञैः किमुपोषितैः ।
आग्नेयं ये हि शृण्वन्ति अहन्यहनि मानवाः ॥१५
यो ददाति तिलप्रस्थं सुवर्णस्य च माषकम् ।
शृणोति श्लोकमेकं च आग्नेयस्य तदाप्नुयात् ॥१६

पुत्रों, स्त्रियों और मित्रों से क्या लाभ ? मित्रों, क्षेत्रों और बन्धनों से भी क्या ? इस प्रकार का उपदेश ही बन्धु है जो मोक्ष को प्रदान करने वाला है। प्राणियों की सृष्टि दो प्रकार की है—दैवी और आसुरी। विष्णु की भक्ति में लीन रहने वाले लोग दैवी तथा उनसे भिन्न आसुरी सृष्टि के अन्तर्गत आते हैं। मैंने तुम्हें जो उपदेश दिया है वह पवित्र, नीरोग करने वाला, शुभ, दुःस्वप्नों का नाशक, मनुष्यों में सुख और प्रीति को उत्पन्न करने वाला तथा मोक्षप्रद है। जिनके घर में लिखा हुआ अग्निपुराण विद्यमान रहता है वहाँ सदैव उपद्रव नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य प्रतिदिन अग्निपुराण सुनते हैं उनके लिए तीर्थों से क्या, गोदानों से क्या, यज्ञों से क्या और उपवासों से क्या ? एक प्रस्थ तिल तथा एक माशा सोना देने से वही फल प्राप्त होता है जो फल अग्निपुराण का एक श्लोक सुनने से प्राप्त होता है।११-१६।

अध्यायपठनं चास्य गोप्रदानाद्विशिष्यते ।
अहोरात्रकृतं पापं श्रोतुमिच्छोः प्रणश्यति ॥१७

१ क. छ. 'तमार्गोऽ'।

कपिलानां शते दत्ते यद्भवेज्ज्येष्ठपुष्करे।
तदाग्नेयं पुराणं हि पठित्वा फलमाप्नुयात् ॥१८
प्रवृत्तं च निवृत्तं च धर्मं विद्याद्द्वयात्मकम्।
आग्नेयस्य पुराणस्य शास्त्रस्यास्य समं न हि ॥१९
पठन्नाग्नेयकं नित्यं शृण्वन्वाऽपि पुराणकम्।
भक्तो वशिष्ठ मनुजः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२०
नोपसर्गा न चानर्था न चौरारिभयं गृहे ॥
तस्मिन्स्याद्यत्र चाऽऽग्नेयपुराणस्य हि पुस्तकम् ॥२१
न गर्भहारिणी भीतिर्न च वालग्रहा गृहे।
यत्राऽऽग्नेयं पुराणं स्यान्न पि (पै) शाचादिकं भयम् ॥२२

अग्निपुराण के एक अध्याय का पाठ गोदान से भी बढ़कर होता है। इसके सुनने की इच्छा मात्र से ही रात-दिन के पापों का नाश हो जाता है। अग्निपुराण का पाठ करने से वही फल प्राप्त होता है जो ज्येष्ठ पुष्कर क्षेत्र में सौ कपिला गायों के दान से होता है। धर्म दो प्रकार का होता है प्रवृत्त और निवृत्त। उन दोनों प्रकार के धर्मों की समता अग्निपुराण से नहीं की जा सकती है। हे वशिष्ठ! अग्निपुराण का पाठ और श्रवण करने वाला सभी पापों से मुक्त हो जाता है। जिस घर में अग्निपुराण की पुस्तक होती है उस घर में न तो गर्भपात का भय होता है, न बालकों को सताने वाले ग्रह होते हैं और न वहाँ पिशाचादि का भय रहता है।१७-२२।

शृण्वन्विप्रो वेदविस्त्यात्क्षत्रियः पृथिवीपतिः।
ऋद्धिं प्राप्नोति वैश्यश्च शूद्रश्चाऽऽरोग्यमृच्छति ॥२३
यः पठेच्छृणुयान्नित्यं समदृग्विष्णुमानसः।
ब्रह्माऽऽग्नेयं पुराणं सत्तत्र नश्यन्त्युपद्रवाः ॥२४
दिव्यान्तरी (रि) क्षभौमाद्या दुःस्वप्नाद्यभिचारकाः।
यच्चान्यद्दुरितं किंचित्तत्सर्वं हन्ति केशवः ॥२५
पठतः शृण्वतः पुंसः पुस्तकं यजतो महत्।
आग्नेयं श्रीपुराणं हि हेमन्ते यः शृणोति वै ॥२६
प्रपूज्य गन्धपुष्पाद्यैरग्निष्टोमफलं लभेत्।
शिशिरे पुण्डरीकस्य वसन्ते चाश्वमेधजम् ॥२७
ग्रीष्मे तु वाजपेयस्य राजसूयस्य वर्षति।

गो सहस्रस्य शरदि फलं तत्पठतो ह्यृतौ ॥२८
आग्नेयं हि पुराणं[1] यो भक्त्याऽग्रे पठतो हरेः ।
सोऽर्चयेच्च वशिष्ठेह ज्ञानयज्ञेन केशवम् ॥२९

जो व्यक्ति प्रतिदिन अग्निपुराण को पढ़ता और सुनता है वह समदर्शी और विष्णुप्रिय हो जाता है। जहाँ अग्निपुराण रहता है वहाँ सभी उपद्रव नष्ट हो जाते हैं (अग्निपुराण का अध्ययन करने से) भगवान् श्रीकृष्ण दिव्य, अन्तरिक्ष में होने वाले तथा पृथ्वी से सम्बद्ध दुःस्वप्न इत्यादि अभिचार तथा अन्य सभी प्रकार के पापों का नाश करते हैं। हेमन्त ऋतु में अग्निपुराण का पाठ और श्रवण करने से मनुष्य को यज्ञ से भी महान् फल प्राप्त होता है। सुगन्धित पदार्थों और पुष्प इत्यादि से शिशिर ऋतु में भगवान् कृष्ण का पूजन करने से अग्निष्टोम का फल प्राप्त होता है तथा वसन्त ऋतु में ऐसा करने से अश्वमेध का फल प्राप्त होता है। ग्रीष्म ऋतु में ऐसा करने से वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है और वर्षा ऋतु मे इसके करने से राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त होता है। शरद् ऋतु में इस (अग्निपुराण) का पाठ करने वाले को एक हजार गायें प्राप्त होती हैं। जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णु के सम्मुख अग्निपुराण का पाठ करता है, हे वशिष्ठ ! वह तो ज्ञानयज्ञ के द्वारा भगवान् कृष्ण की ही पूजा करता है। २२-२९।

यस्याऽऽग्नेयपुराणस्य पुस्तकं तस्य वै जयः ।
लिखितं पूजितं गेहे भक्तिर्मुक्तिः करेऽस्ति हि ॥३०
इति कालाग्निरूपेण गीतं मे हरिणा पुरा ।
आम्नायं हि पुराणं वै [2]ब्रह्मविद्याद्वयास्पदम् ॥
विद्याद्वयं वशिष्ठेदं भक्तेभ्यः कथयिष्यसि ॥३१

जिसके पास अग्निपुराण की पुस्तक होती है उसकी (सर्वत्र) विजय होती है और जिसके घर में उसका लेखन और पूजन होता है उसके घर में भोग और मोक्ष दोनों ही आ जाते है। मैंने प्राचीन काल में अग्नि के रूप में भगवान् विष्णु के लिए कहा था क्योंकि यह अग्निपुराण दोनों ब्रह्मविद्याओं का स्थान है। हे वशिष्ठ ! इन दोनों विद्याओं को भक्तों से ही कहना चाहिए। ३०-३१।

---

१ खः णं वै ब्रह्मविद्याद्वयास्पदम्। सोऽ°। २ क. ङ. °यात्मकम्।

वशिष्ठ उवाच—

व्यासाऽग्नेयपुराणं ते रूपं विद्याद्वयात्मकम् ।
कथितं ब्रह्मणो विष्णोरग्निना कथितं यथा ।।३२

सार्धं देवैश्च मुनिभिर्मह्यं सर्वार्थदर्शकम् ।
पुराणमग्निना गीतमाग्नेयं ब्रह्मसंमितम् ।।३३

यः पठेच्छृणुयाद्व्यास लिखेद्वा लेखयेदपि ।
श्रावयेत्पाठयेद्वाऽपि पूजयेद्धारयेदपि ।।३४

सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्तकामो दिवं व्रजेत् ।
लेखयित्वा पुराणं यो दद्याद्विप्रेभ्य उत्तमम् ।।३५

स ब्रह्मलोकमाप्नोति कुलानां शतमुद्धरेत् ।
एकं श्लोकं पठेद्यस्तु पापपङ्काद्विमुच्यते ।।३६

तस्माद् व्यास सदा श्राव्यं शिष्येभ्यः सर्वदर्शनम् ।
शुकाद्यैर्मुनिभिः सार्धं श्रोतुकामैः पुराणकम् ।।३७

आग्नेयं पठितं ध्यातं शुभं स्याद्भुक्तिमुक्तिदम् ।
अग्नये तु नमस्तस्मै येन गीतं पुराणकम् ।।३८

वशिष्ठ बोले—अये व्यास ! दोनों प्रकार की विद्याओं से युक्त इस अग्निपुराण को आपने ब्रह्मा से वैसे ही कहा है जैसे अग्नि ने विष्णु से कहा था । देवताओं और मुनियों के साथ अग्नि ने मुझे इस पुराण को सुनाया है जो सर्वार्थदर्शी तथा ब्रह्मसम्मित है । अये व्यास ! जो व्यक्ति इस पुराण को पढता या सुनता है, लिखता या लिखवाता है, दूसरे को सुनवाता या दूसरे से पढ़वाता है, इसका पूजन करता है या इसको धारण करता है वह सभी पापों से मुक्त होकर स्वर्गलोक को चला जाता है । इस उत्तम पुराण को लिखवाकर जो व्यक्ति ब्राह्मणों को देता है, वह ब्रह्मलोक को प्राप्त कर लेता है और अपने सौ कुलों का उद्धार कर देता है । इसका एक श्लोक पढ़ने वाला पाप से छुटकारा पा जाता है । इसलिए हे व्यास ! इसे सुनने वाले शुक आदि मुनियों के साथ इस पुराण को सभी शिष्यों को सुनाना चाहिये क्योंकि यह पुराण सर्वदर्शी है । इस शुभ अग्निपुराण का पाठ और ध्यान भोग और मोक्ष देने वाला हुआ करता है, इसलिये मैं उस अग्निदेव को नमस्कार करता हूँ जिन्होंने इस पुराण का गान किया है ।३२-३८।

व्यास उवाच—
वशिष्ठेन पुरागीतं सूतंतत्ते मयोदितम् ।
परा विद्याऽपरा विद्या स्वरूपं परमं पदम् ॥३९
आग्नेयं दुर्लभं रूपं प्राप्यते भाग्यसंयुतैः ।
ध्यायन्तो ब्रह्म चाऽऽग्नेयं पुराणं हरिमागताः ॥४०
विद्यार्थिनस्तथा विद्यां राज्यं राज्यार्थिनो गताः ।
अपुत्राः पुत्रिणः सन्ति नाश्रया आश्रयं गताः ॥४१
सौभाग्यार्थी च सौभाग्यं मोक्षं मोक्षार्थिनो गताः ।
लिखन्तो लेखयन्तश्च निष्पापाश्च श्रियं गताः ॥४२
शुकपैलमुखैः सूत आग्नेयं तु पुराणकम् ।
रूपं चिन्तय यातासि भुक्तिं मुक्तिं न संशयः ॥४३
श्रावय त्वं च शिष्येभ्यो भक्तेभ्यश्च पुराणकम् ॥४४

व्यास बोले—हे सूत, मैंने जो कुछ कहा है वह वशिष्ठ के द्वारा पहले ही कहा जा चुका है। यही परा और अपरा] विद्या है और परमपद का स्वरूप भी। अग्निपुराण का दुर्लभ रूप भाग्यवानों को ही प्राप्त होता है। अग्नि-पुराण और ब्रह्म का ध्यान करने से विष्णु की प्राप्ति हो जाती है। विद्यार्थियों को विद्या, राज्य की इच्छा करने वालों को राज्य, पुत्रहीनों को पुत्र, निराश्रयों को आश्रय, सौभाग्य की कामना करने वालों को सौभाग्य और मोक्षार्थियों को मोक्ष प्राप्त हो जाता है। इसके लिखने और लिखाने से मनुष्य निष्पाप होकर लक्ष्मी को प्राप्त कर लेते हैं। हे सूत ! यह अग्निपुराण शुक और पैल के मुखों से सुनाया गया है। तुम इसके रूप का चिन्तन करो जिससे तुम्हें निश्चय ही भोग और मोक्ष प्राप्त होगा। तुम भी अपने शिष्यों और भक्तों को यह पुराण सुनाओ।३९-४४

सूत उवाच—
व्यासप्रसादादाग्नेयं पुराणं श्रुतमादरात् ।
आग्नेयं ब्रह्मरूपं हि मुनयः शौनकादयः ॥४५
भवन्तो नैमिषारण्ये यजन्तो हरिमीश्वरम् ।
तिष्ठन्तः श्रद्धया युक्तास्तस्माद्वः समुदीरितम् ॥४६
अग्निना प्रोक्तमाग्नेयं पुराणं वेद संमितम् ।
ब्रह्मविद्याद्वयोपेतं भुक्तिदं मुक्तिदं महत् ॥४७

नास्मात्परतरः सारो नास्मात्परतरः सुहृत् ।
नास्मात्परतरो ग्रन्थो नास्मात्परतरा गतिः ४८
नास्मात्परतरं शास्त्रं नास्मात्परतरा श्रुतिः ।
नास्मात्परतरं ज्ञानं नास्मात्परतरा स्मृतिः ॥४९
नास्मात्परो ह्यागमोऽस्ति नास्माद्विद्या पराऽस्ति हि ।
नास्मात्परः स्यात्सिद्धान्तो नास्मात्परममङ्गलम् ॥५०
नास्मात्परोऽस्ति वेदान्तः पुराणं परमं त्विदम् ।
[1]नास्मात्परतरं भूमौ विद्यते वस्तु दुर्लभम् ॥५१

सूत बोले—शौनक आदि मुनिवरो ! मैंने श्री व्यास जी की कृपा से श्रद्धापूर्वक अग्निपुराण का श्रवण किया है। यह अग्निपुराण ब्रह्म स्वरूप है। आप सब लोग श्रद्धा युक्त होकर इस नैमिषारण्य में भगवान् श्री हरि का यजन करते हुए निवास करते हैं अतः (आपको सर्वोत्तम अधिकारी समझकर) मैंने आप से इस पुराण का वर्णन किया है। 'अग्निदेव इस पुराण के वक्ता हैं, अतएव यह 'आग्नेय पुराण' कहलाता है। इसे वेदों के तुल्य माना गया है। यह 'ब्रह्म' और 'विद्या'—दोनों से युक्त है। भोग और मोक्ष प्रदान करने वाला श्रेष्ठ साधन है। इससे बढ़कर सर्वोत्तम सार, इससे उत्तम सुहृद् इससे श्रेष्ठ ग्रन्थ तथा इससे उत्कृष्ट कोई गति नहीं है। इस पुराण से बढ़कर शास्त्र नहीं हैं, इससे उत्तम श्रुति नहीं है, इससे श्रेष्ठ ज्ञान नही है तथा इससे उत्कृष्ट कोई स्मृति नहीं है। इससे श्रेष्ठ आगम, इससे श्रेष्ठ विद्या, इससे श्रेष्ठ सिद्धान्त और इससे श्रेष्ठ मंगल नही है। इससे बढ़कर वेदान्त भी नही है। यह पुराण सर्वोत्कृष्ट है। इस पृथ्वी पर अग्निपुराण से बढ़कर श्रेष्ठ और दुर्लभ वस्तु कोई नहीं है।४५-५१।

आग्नेये हि पुराणेऽस्मिन्सर्वविद्याः प्रदर्शिताः ।
सर्वे मत्स्यावताराद्या गीता रामायणं त्विह ॥५२
हरिवंशो भारतं च नवसर्गाः प्रदर्शिताः ।
आगमो वैष्णवो गीतः पूजा दीक्षा प्रतिष्ठया ॥५३
पवित्रारोहणादीनि प्रतिमालक्षणादिकम् ।
प्रासादलक्षणाद्यं च मन्त्रा वै भुक्तिमुक्तिदाः ॥५४

---

१ ख. 'स्मात्सार' ।

शैवागमस्तदर्थश्च शाक्तेयः सौर एव च ।
मण्डलानि च वास्तुश्च मन्त्राणि विविधानि च ॥५५
प्रतिसर्गश्चानुगीतो ब्रह्माण्डपरिमण्डलम् ।
द्वीपो भुवनकोषश्च द्वीपवर्षादिनिम्नगाः ॥५६
गयागङ्गाप्रयागादितीर्थमाहात्म्यमीरितम् ।
ज्योतिश्चक्रं ज्योतिषादि गीतो युद्धजयार्णवः ॥५७
मन्वन्तरादयो गीता धर्मा वर्णादिकस्य च ।
अशौचं द्रव्यशुद्धिश्च प्रायश्चित्तं प्रदर्शितम् ॥५८

इस अग्निपुराण में सब विद्याओं का प्रदर्शन (परिचय) कराया गया है। भगवान् के मत्स्य आदि सम्पूर्ण अवतार, गीता और रामायण का भी इसमें वर्णन है। 'हरिवंश' और 'महाभारत' का भी परिचय है। नौ प्रकार की सृष्टि का भी दिग्दर्शन कराया गया है। वैष्णव आगम का भी गान किया गया है। देवताओं की स्थापना के साथ ही दीक्षा तथा पूजा का उल्लेख किया गया है। पवित्रारोहण आदि की विधि, प्रतिमा के लक्षण आदि तथा मन्दिर के लक्षण आदि का वर्णन है। साथ ही भोग और मोक्ष देने वाले मन्त्रों का उल्लेख है। शैव-आगम और उनके प्रयोजन, शाक्त आगम, सूर्य सम्बन्धी आगम, मण्डल, वास्तु और भाँति-भाँति के मन्त्रों का वर्णन है। प्रतिसर्ग का परिचय कराया गया है। ब्रह्माण्ड-मण्डल तथा भुवनकोश का भी वर्णन है। द्वीप, वर्ष आदि और नदियों का भी उल्लेख है। गङ्गा तथा प्रयाग आदि तीर्थों की महिमा का वर्णन किया गया है। ज्योतिश्चक्र (नक्षत्र-मण्डल) ज्यौतिष आदि विद्या तथा युद्ध जयार्णव का भी निरूपण है। मन्वन्तर आदि का वर्णन तथा वर्ण और आश्रम आदि के धर्मों का प्रतिपादन किया गया है। साथ ही अशौच, द्रव्यशुद्धि तथा प्रायश्चित्त का भी ज्ञान कराया गया है।५२-५८।

राजधर्मा दानधर्मा व्रतानि विविधानि च ।
व्यवहाराः शान्तयश्च ऋग्वेदादिविधानकम् ॥५९
सूर्यवंशः सोमवंशा धनुर्वेदश्च वैद्यकम् ।
गान्धर्ववेदोऽर्थशास्त्रं मीमांसा न्यायविस्तरः ॥६०
पुराणसंख्यामाहात्म्यं छन्दो व्याकरणं स्मृतम् ।
अलंकारो निघण्टुश्च शिक्षाकल्प इहोदितः ॥६१

राजधर्म, दानधर्म, भाँति-भाँति के व्रत, व्यवहार, शान्ति तथा ऋग्वेद आदि के विधान का भी वर्णन है। सूर्यवंश, सोमवंश, धनुर्वेद, वैद्यक, गान्धर्व वेद, अर्थशास्त्र, मीमांसा, न्यायविस्तर, पुराण-संख्या, पुराण-माहात्म्य, छन्द, व्याकरण, अलंकार, निघण्टु, शिक्षा और कल्प आदि का भी इसमें निरूपण किया गया है।५९-६१

नैमित्तिकः प्राकृतिको लय आत्यन्तिकः स्मृतः।
वेदान्तं ब्रह्मविज्ञानं योगो ह्यष्टाङ्ग ईरितः ॥६२
स्तोत्रं पुराणमाहात्म्यं विद्या ह्यष्टादश स्मृताः।
ऋग्वेदाद्याः परा ह्यत्र परा विद्याऽक्षरं परम् ॥६३
सप्रपञ्चं निष्प्रपञ्चं ब्रह्मणो रूपमीरितम्।
[1]इदं पञ्चदशसाहस्रं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥६४
देवलोके दैवतैश्च पुराणं पठ्यते सदा।
लोकानां हितकामेन संक्षिप्योद्गीतमग्निना ॥६५
सर्वं ब्रह्मेति जानीध्वं मुनयः शौनकादयः।
शृणुयाच्छ्रावयेद्वाऽपि यः पठेत्पाठयेदपि ॥६६
लिखेल्लिखापयेद्वाऽपि पूजयेत्कीर्तयेदपि ॥६६½

नैमित्तिक, प्राकृतिक और आत्यन्तिक लय का वर्णन है। वेदान्त, ब्रह्मज्ञान और अष्टाङ्ग योग का निरूपण है। स्तोत्र, पुराण-महिमा और अष्टादश विद्याओं का प्रतिपादन है। ऋग्वेद आदि अपरा विद्या, परा विद्या तथा परम अक्षर तत्त्व का भी निरूपण है। इतना ही नहीं, इसमें ब्रह्म के सप्रपञ्च (सविशेष) और निर्विशेष (निष्प्रपञ्च) रूप का वर्णन है। यह पुराण पन्द्रह हजार श्लोकों का है। देवलोक में इसका विस्तार एक अरब श्लोकों में हैं। देवता सदा इस पुराण का पाठ करते हैं। सम्पूर्ण लोकों का हित करने के लिए अग्निदेव ने इसका संक्षेप से वर्णन किया है। शौनकादि मुनियों! आप इस सम्पूर्ण पुराण को ब्रह्ममय ही समझें। जो इसे सुनता या सुनाता, पढ़ता या पढ़ाता, लिखता या लिखवाता तथा इसका पूजन और कीर्तन करता है, वह परम शुद्ध हो सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करके कुलसहित स्वर्ग को जाता है। ६२-६६।

---

१ ख. ग. 'दं चतुर्दश'। ङ. °दं द्वादश°।

(¹पुराणपाठकं चैव पूजयेत्प्रयतो नृपः ॥६७
गोभूहिरण्यदानाद्यैर्वस्त्रालंकारतर्पणैः ।
तं सम्पूज्य लभेच्चैव पुराणश्रवणात्फलम् ॥६८
पुराणान्ते च वै कुर्यादवश्यं द्विजभोजनम् ।)
निर्मलः प्राप्तसर्वार्थः सकुलः स्वर्गमाप्नुयात् ॥६९
शरयन्त्रं पुस्तकाय सूत्रं वै पत्रसंचयम् ।
पट्टिकाबन्धवस्त्रादि दद्याद्यःस्वर्गमाप्नुयात् ॥७०
यो दद्याद् ब्रह्मलोकी स्यात्पुस्तकं यस्य वै गृहे ।
तस्योत्पातभयं नास्ति भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ॥७१
यूयं स्मरत आग्नेयं पुराणं रूपमैश्वरम् ।
सूतो गतः पूजितस्तैः शौनकाद्या हरिं ययुः ॥७२

राजा को चाहिए कि संयमशील होकर पुराण के वक्ता का पूजन करे । गौ, भूमि तथा सुवर्ण आदि का दान दे, वस्त्र और आभूषण आदि से तृप्त करते हुए वक्ता का पूजन करके मनुष्य पुराण-श्रवण का पूरा-पूरा फल पाता है । पुराण-श्रवण के पश्चात् निश्चय ही ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए । जो इस पुस्तक के लिए शरयन्त्र (पेटी), सूत, पत्र (पन्ने), काठ की पट्टी, उसे बाँधने की रस्सी तथा वेष्टनवस्त्र आदि दान करता है, वह स्वर्गलोक को जाता है । जो अग्निपुराण की पुस्तक का दान करता है, वह ब्रह्मलोक में जाता है । जिसके घर में यह पुस्तक रहती है, उसके यहाँ उत्पात का भय नही रहता है । वह भोग और मोक्ष को प्राप्त करता है । मुनियो ! आप लोग इस अग्निपुराण को ईश्वर रूप मानकर सदा इसका स्मरण रक्खें ।६७-७२।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये आग्नेयपुराणमाहात्म्यकथनं नाम त्र्यशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।३८३

श्रीमद्द्वैपायनमुनिप्रणीत अग्निपुराण समाप्त ।

आदि से अन्त तक समस्त श्लोकों की संख्या ११४५७

ॐ श्रीकृष्णाय नमः ॐ